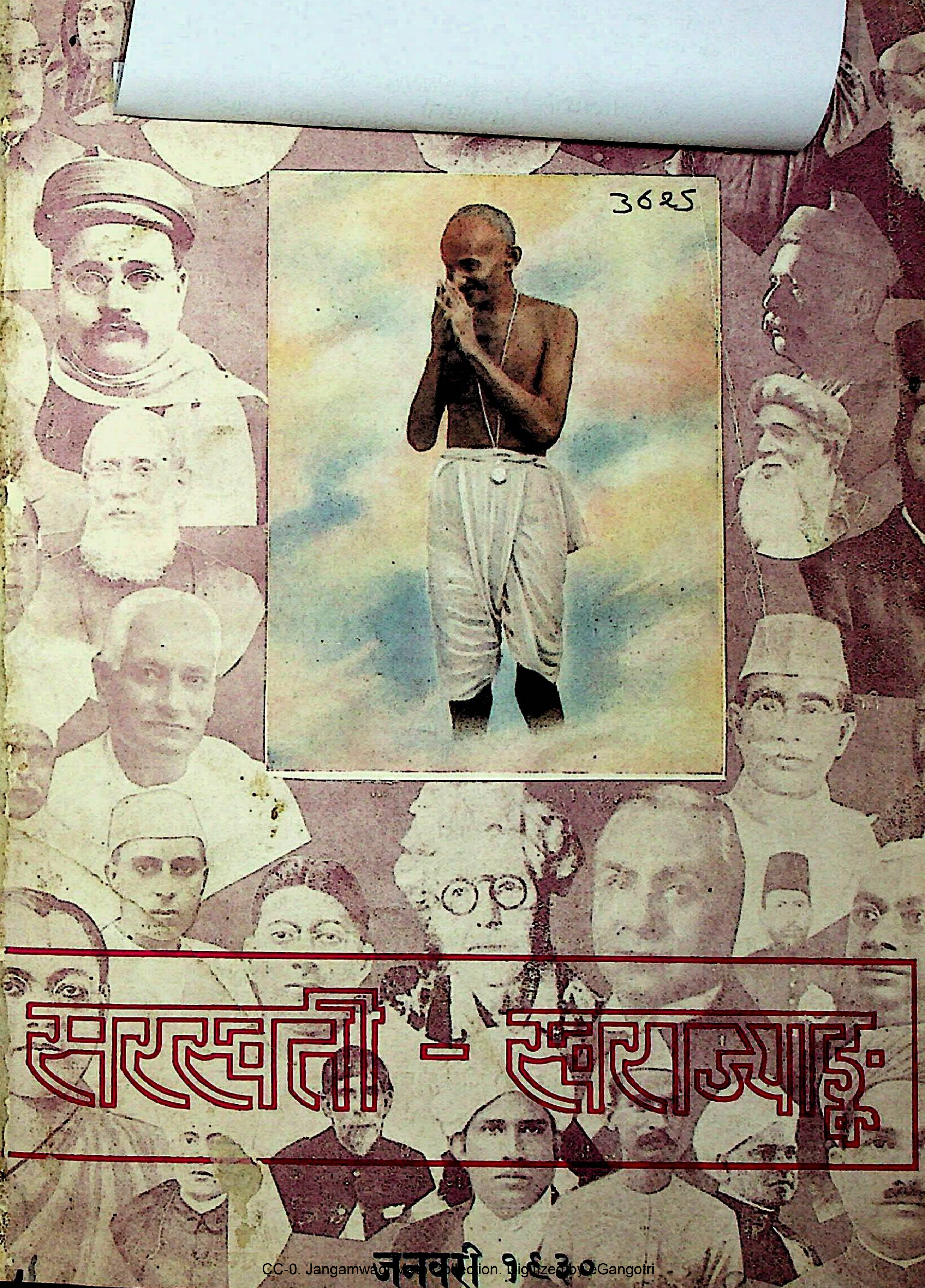
| | | |
|---|---|---|
| | | |
| | | |
| | | |
| | | |
| | | |
| | | |
| | | |
| | | |
| | | |
| | | |
| | | |
| | | |
| | | |
| | | |
| | | |

जनवरी १९३०


3625
सरस्वती - स्वराज्याङ्क
जनवरी १९३०



**सप्तर्षि**

**"भारत में दुन्दुभी 'स्वराज्य' की बजानेवाले, अर्पित 'स्वराज्य-अंक' चरणों में आपके।"**

# सरस्वती - स्वराज्याङ्क

वार्षिक मूल्य ६।।) Yearly Subscription, Rs. 6-8

सम्पादक
देवीदत्त शुक्ल

प्रति संख्या ।।=) As. 10 per copy.
[ इस अङ्क का मूल्य १) एक रु० ]

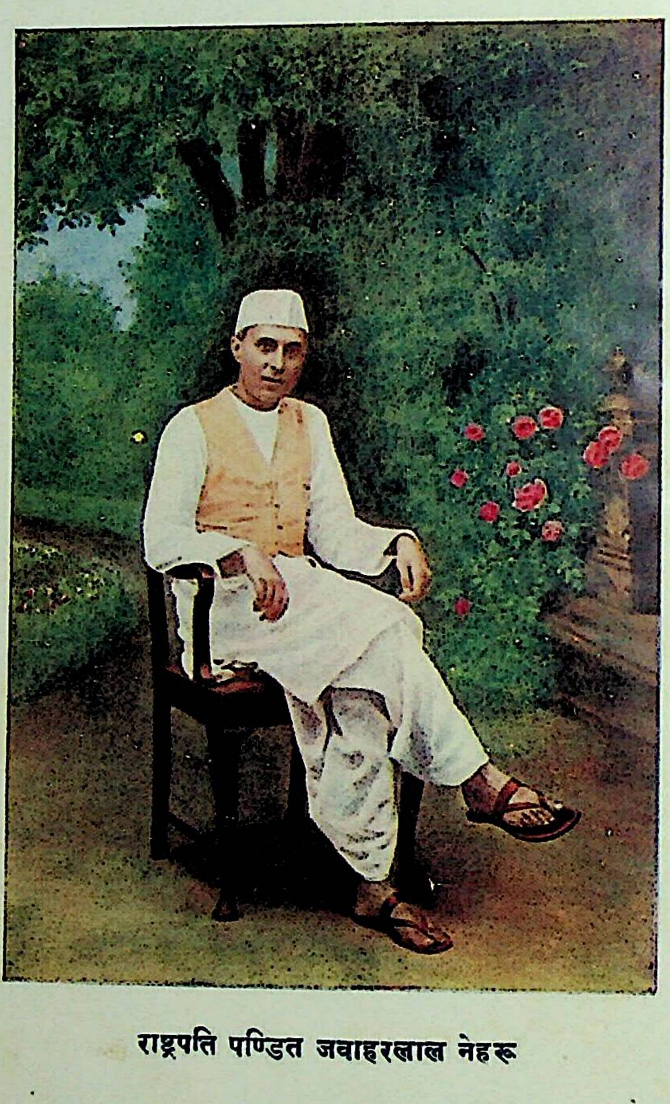
भाग ३१, खण्ड १ ] जनवरी १९३०—पौष १९८६ [ सं० १, पूर्ण-संख्या ३६१

## निवेदन

सरस्वती का यह नव वर्षाङ्क 'स्वराज्याङ्क' के रूप में निकल रहा है। इस समय देश में 'स्वराज्य' की चर्चा बड़े ज़ोरों पर है। इस सम्बन्ध में हमारी राष्ट्रीय महासभा कांग्रेस ने तथा लोक-नेताओं ने जो काम किया है वह सदा याद करने योग्य है। अब इनके प्रयत्नों के सफल होने के लक्षण दिखाई दे रहे हैं। भारत-सरकार तथा विलायती सरकार दोनों ने भारतीय लोक-नेताओं की माँगों से सहानुभूति प्रकट की है, और निकट भविष्य में उसे बहुत कुछ स्वराज्य-सम्बन्धी अधिकार मिलता दिखाई दे रहा है। अतएव सरस्वती के इस 'विशेषाङ्क' में इस महत्त्व-पूर्ण सामयिक विषय की भिन्न भिन्न दृष्टियों से चर्चा की गई है। आशा है, पाठकों को यह अङ्क रुचिकर और उपयोगी प्रतीत होगा।

—देवीदत्त शुक्ल

# लेख-सूची



राष्ट्रपति पण्डित जवाहरलाल नेहरू

# आगे बढ़े चलेंगे

( १ )

यदि रक्त बूँद भर भी होगा कहीं बदन में।
नस एक भी फड़कती होगी समस्त तन में।
यदि एक भी रहेगी बाक़ी तरंग मन में।
हर एक साँस पर हम आगे बढ़े चलेंगे।
वह लक्ष्य सामने है, पीछे नहीं टलेंगे।

( २ )

मंज़िल बहुत बड़ी है, पर शाम ढल रही है।
सरिता मुसीबतों की आगे उबल रही है।
तूफ़ान उठ रहा है, प्रलयाग्नि जल रही है।
हम प्राण होम देंगे, हँसते हुए जलेंगे।
पीछे नहीं टलेंगे, आगे बढ़े चलेंगे।

( ३ )

अचरज नहीं कि साथी भग जायँ छोड़ भय में।
घबरायँ क्यों? खड़े हैं भगवान जो हृदय में।
धुन ध्यान में धँसी है, विश्वास है विजय में।
बस, और चाहिए क्या? दम एक-दम न लेंगे।
जब तक पहुँच न लेंगे, आगे बढ़े चलेंगे।

—रामनरेश त्रिपाठी

# स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है

हम भारतवासियों के लिए स्वराज्य-शब्द बड़े महत्त्व का है। इस शब्द का प्रयोग पहले-पहल दादाभाई नौरोजी ने १९०६ की कांग्रेस में, जो कलकत्ते में हुई थी, किया था। इसके पश्चात् लोकमान्य तिलक ने कहा था कि स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। लोकमान्य तिलक के इस कथन का रहस्य यह है कि हमको अँगरेज़ों ने नहीं जीता है। भारतवर्ष पर अँगरेज़ों को जो अधिकार है वह उनकी किसी जीत का फल नहीं है। सर जान माल्कम ने स्वलिखित भारतवर्ष के राजनैतिक इतिहास की भूमिका में इस बात को स्वीकार किया है। वे कहते हैं—

**स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है, क्योंकि इस देश को अँगरेज़ों ने हमसे युद्ध में नहीं जीता है। 'राइज़ आफ़ क्रिश्चियन पावर इन इंडिया' नामक प्रसिद्ध इतिहास-ग्रन्थ के रचयिता मेजर श्रीवामनदास वसु, आई० एम० एस० (रिटायर्ड) ने इस लेख में इसी बात को ऐतिहासिक प्रमाणों से सिद्ध किया है।**

"सेना और शक्ति का बिना युद्ध के भारतवर्ष में प्रवेश नहीं हो सकता था। परन्तु सरल व्यापारी को प्रत्येक प्रकार का प्रोत्साहन दिया जा[ता] था। और जब पता चलता था कि ये आरम्भ[...] बसनेवाले लोग व्यापार में जैसे कुशल हैं वैसे [...] डाकुओं से अपनी सम्पत्ति की रक्षा करने में [...] चतुर सैनिक हैं तब भारतवर्ष की मुख्य राज[...] शक्तियों की दृष्टि में ये बजाय द्वेष के आदर[...] पात्र समझे जाते थे औ[र] वे समय पड़ने पर ए[क] दूसरे के विरुद्ध इनकी मैत्री और सहायता प्राप्त करने का प्रयत्न करती थीं।

"यदि शक्ति के अभि[...]मान में आकर हम या[...] भूल जायँ कि भारतव[र्ष] हमारे अधिकार में कै[से] आया और अनुभव [से] हमने जो सीखा है उसकी परवा केवल इसलिए [न] करें कि हमारा विश्वास एक ऐसी बात में है जिसे हम वास्तविक शक्ति समझते हैं तो यह उन उपायों की अवहेलना करना होगा जिनके ऊपर भारतवर्ष में हमारे

शक्ति का ताना-बाना अवलम्बित है। इस प्रकार हम अपने ही हाथों अपनी हुकूमत का पतन निकट बुला लेंगे।"*

भारतवर्ष विजित देश नहीं है। इँग्लेंड ने इसे कभी नहीं जीता है। भारतवर्ष को जीत लेने का विचार तक इँग्लेंडवासियों के मन में नहीं पैदा होता था। यह बात पार्लियामेंट के 'ऐक्टों' में कई बार कही जा चुकी है। सन् १७९३ में जब ईस्ट इंडिया कम्पनी का चार्टर बदला गया था तब उसमें यह बात स्पष्ट भाषा में नहीं कही गई थी कि—"भारतवर्ष में देश जीतने और राज्य बढ़ाने के उपायों का प्रयोग करना एक ऐसी बात है जो अँगरेज़ जाति की इच्छा, इज़्ज़त और नीति के विरुद्ध है।" †

यदि अँगरेज़ भारतवर्ष को जीत सकते या यदि उन्होंने इस देश को जीता होता तो उनके मुँह से ऐसी बातें न निकलतीं। तब वे गर्व से कहते कि हमने भारतवर्ष को जीता है जैसा कि सर जार्ज नेपियर ने सिंध को जीतने के बाद अभिमान के साथ कहा था। सिंध के गवर्नर की हैसियत से उसने अपनी ६ अगस्त १८४४ ईसवी की घोषणा में कहा था—

"सिंध के समस्त मुसलमान निवासियों को यह मालूम होना चाहिए कि मैं सिंध का विजेता हूँ। मैंने इस देश को जीता है। परन्तु मैं तुम्हारे धर्म में हस्तक्षेप नहीं करना चाहता। मैं तुम्हारे धर्म का सम्मान करता हूँ। परन्तु यह आवश्यक है कि तुम भी मेरे धर्म का सम्मान करो। हम दोनों एक ही ईश्वर को पूजते हैं।"

सिंध के पराजित अमीरों को उसने १८ मार्च सन् १८४३ को लिखा था—

"तुम्हें स्मरण करना चाहिए कि शेर मुहम्मद के साथ तुम्हारी साज़िश के लिए मुझे बहुत कुछ करना है। तुम जो झूठी बातें कहते हो उनसे भी मुझे बहुत आश्चर्य्य होता है।...यदि तुम मुझे और कष्ट दोगे तो मैं तुम्हें हथकड़ी-बेड़ी के हवाले कर दूँगा। तुम इसी व्यवहार के योग्य हो। तुम मेरे क़ैदी हो और यद्यपि मैं तुम्हें जान से नहीं मारूँगा...तथापि मैं तुम्हें जहाज़ में क़ैद करूँगा। अमीरो! तुम्हें मालूम होना चाहिए कि यदि क़ैदी लोग अपने विजेता के विरुद्ध षड्यन्त्र रचते हैं तो उनका जीवन संकट में पड़ जाता है।"‡

पर यदि थोड़ी देर के लिए हम यही मान लें कि भारतवर्ष को अँगरेज़ों ने जीता है तो भी इस देश के साथ न्याय होना चाहिए। वेल्स, कनाडा, दक्षिणी अफ़्रीका आदि ऐसे देश हैं जिन्हें अँगरेज़ों ने जीता है। परन्तु इसी कारण वे उन पर अधिकार तो नहीं किये हुए हैं। उन्हें स्वराज्य मिल चुका है। तब भारतवर्ष के ही साथ ऐसा व्यवहार क्यों किया जा रहा है। इन्हीं कारणों से लोकमान्य तिलक ने कहा था कि 'स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है और इसको

* राइज़ आफ़ क्रिश्चियन पावर इन इंडिया भाग १ ठ ३७,३८। † वही पुस्तक पृष्ठ ४०।

‡ राइज़ आफ़ क्रिश्चियन पावर इन इंडिया भाग ५ पृष्ठ १०८ (फुट नोट्स)

प्राप्त करने के लिए हमें सब प्रकार से प्रयत्न करना चाहिए।' उनका यह कहना सर्वथा ठीक है। अभी तक यह कहा जाता रहा है कि हम भारतीय नाबालिग़ हैं। जब तक हम राज-काज सँभालने के लायक़ न हो जायँ तब तक इतने बड़े देश का शासन हमारे हाथों में कैसे सौंपा जा सकता है। यदि यह भी मान लिया जाय तो क्या ब्रिटेन के १५० वर्ष के शासन के पश्चात् भी हम अ[illegible] बालिग़ नहीं हुए ? इतने समय में तो उनके 'ट्रस[illegible] का काम समाप्त हो जाना चाहिए। अब ह[illegible] बालिग़ हो गये हैं। अब हमारी आँखें खुल गई हैं। अब हमारी मिलकियत हमें वापस मिलनी चाहिए।

हिन्दुस्तान मिलकियत मेरी
मैं हूँ मालिक इसका

—वामनदास व[illegible]

# प्राचीन भारत में स्वराज्य

[ कहा जाता है कि प्रजातन्त्रात्मक शासन भारतीयों के लिए एक अनोखी वस्तु होगी। इस लेख के लेखक अध्यापक श्रीगौरीशङ्कर चटर्जी ने विस्तार के साथ इस बात को प्रमाणित किया है कि भारतीय प्रजातन्त्रात्मक शासन-प्रणाली से परिचित ही नहीं थे, किन्तु प्राचीन भारत में उस प्रणाली-द्वारा शासित कतिपय राज्य तक यहाँ सदियों तक स्थापित रहे। अध्यापक महोदय ने इस सम्बन्ध में जो महत्त्व-पूर्ण सप्रमाण विवेचन किया है वह सुपाठ्य और हृदयग्राही है। ]

प्रायः लोगों में यह धारणा है कि भारतवर्ष में सदा एकतन्त्र राज्य रहा है। परन्तु यह धारणा पूर्णरूप से भ्रामक है। यद्यपि भारत के भिन्न-भिन्न प्रदेशों में राजतन्त्र-शासन ही अधिकतर प्रचलित था, तथापि प्रजातन्त्र-राज्य भी यहाँ थे। भारत की शासन-प्रणाली के विषय में हाल में पाश्चात्य और भारतीय पण्डितों ने बहुत कुछ खोज की है। उनकी मौलिक गवेषणा से यह निश्चित हो जाता है कि भारत की राजनैतिक संस्था के विषय में हमारी भ्रान्त धारणाओं का आमूल परिवर्तन आवश्यक है। कहा जाता है कि भारत में पाश्चात्य जनतन्त्र-शासन का प्रवर्त्तन विपज्जनक है, क्योंकि यह बात भारतवासियों के चिरन्तन राजनैतिक संस्कार के विरुद्ध होगी। इंडियन सेंट्रल कमिटी के सभापति सर शंकरन नायर ने भी हाल में अपनी प्रकाशित रिपोर्ट में कहा है कि परम्परा और स्वभाव से भारतीय प्रजातन्त्रात्मक शासन-प्रणाली से अपरिचित रहे हैं। राजनैतिक विचारवाले भारतवासियों में स्वराज्य प्राप्त करने की उच्चाभिलाषा अँगरेज़ों के आगमन के पश्चात् ही उत्पन्न हुई है। अग्रलिखित प्रमाणों से यह सिद्ध

१ By tradition and habit Indians have been strangers to a democratic form of government. It is to the advent of the British . . . . . that the politically-minded Indian owes his aspiration to self-government.—A summary of the Report given in a recent number of the Pioneer. The report has, however, been contradicted by Sir Sankaran.

करने का प्रयत्न किया जायगा कि यह विश्वास भ्रममूलक है; और इस भ्रम को दूर करना प्राचीन भारत के इतिहास के ज्ञाताओं का एक अवश्य कर्तव्य है।

बौद्धकालीन भारत का इतिहास लिखते हुए परलोकगत डाक्टर रीस डेविड्स ने कहा था कि भगवान् बुद्ध के समय में भारत में नरपति-शासित राज्यों के अतिरिक्त कुछ ऐसे भी प्रदेश थे जिनका शासन-सूत्र राजाओं के द्वारा नहीं परिचालित होता था[1]। यह बात जान कर उक्त पण्डित को बड़ा आश्चर्य हुआ था। रीस डेविड्स का ग्रन्थ १९०३ ईसवी में छप कर प्रकाशित हुआ था। इसके पश्चात् श्रीयुत काशीप्रसाद जायसवाल ने १९१२ ईसवी में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के अधिवेशन में इस विषय पर एक प्रबन्ध पढ़ा था। उस प्रबन्ध का अँगरेज़ी अनुवाद माडर्न रिव्यू (१९१३) में भी प्रकाशित हुआ था[2]। इसके पश्चात् विद्वानों का ध्यान इस ओर गया, इस विषय के गुरुत्व को उन्होंने अनुभव किया। आज इस विषय में आंगल-भाषा में और अन्य पाश्चात्य भाषाओं में अनेक महत्त्वपूर्ण लेख और ग्रन्थ मौजूद हैं[3]।

**वेद में स्वराज्य का उल्लेख**

राजा-रहित जनपदों का उल्लेख वेद में भी मिलता है। ज़िमार ने अपने सुप्रसिद्ध पुस्तक 'आल्ट इन्दिसे लेवेन' में लिखा है कि ऋग्वेद के दशम मण्डल के ९१ वें सूक्त के षष्ठ ऋक् में ऐसे एक राज्य की अवस्थिति का प्रमाण मिलता है जिसका शासन-भार थोड़े से राजवंशी कुलीनों के हाथों में था[4]। परन्तु कोई एक उसका अकेला राजा नहीं था। मैकडोनल्ड और कीथ ने अपने 'वैदिक इन्डेक्स' नामक ग्रन्थ में ज़िमार-कल्पित मत का प्रतिवाद किया है। परन्तु वे यह भी कहते हैं कि ऐसा होना असम्भव नहीं है। ज़िमार का यह भी कथन है कि अथर्ववेद के कुछ वाक्यों से यह सिद्ध होता है कि राजा का निर्वाचन होता था[5]। उनके मत से यह राज-निर्वाचन बहुधा अभिजन-सम्प्रदाय के शासन-काल में एक कुलीन के द्वारा अन्य कुलीनों पर आधिपत्य

---

१ देखो बुद्धिस्ट इंडिया—पृष्ठ १—२—१६

२ माडर्न रिव्यू—१९१३—पृष्ठ ५३५

३ यह पुस्तक विशेष कर उल्लेखयोग्य है—
- (क) कर्पोरेट् लाइफ़ इन एंशियंट इंडिया (कलकत्ता १९१८)
- (ख) हिन्दू पालिटी (जायसवाल) (कलकत्ता १९२४)
- (ग) स्टेट इन एन्शयंट इंडिया (डाक्टर बेणीप्रसाद, प्रयाग १९२८)
- (घ) एन्शयंट इंडियन पालिटी (नरेन्द्रनाथ लाहा)

४ ज़िमार—आल्ट इन्दिसे लेवेन—पृष्ठ १७५

५ अथर्ववेद ३.३. और ३,४. ऋग्वेद. १०.१२४.८.

जमाने की चेष्टा को सूचित करता है। इस मत के समर्थन में वे अथर्ववेद के वचन को उद्धृत करते हैं[1]। अथर्ववेद के ५-१९-१० के वाक्य से भी पता चलता है कि एकाधिक व्यक्तियों का एककालीन शासन भारतवर्ष में नई बात नहीं थी। वैतहव्यों में दश शत व्यक्ति एक साथ राज्य करते थे; ब्राह्मण की गौ को खा डालने के कारण वे विनष्ट हुए।[2]

ऊपर लिखे हुए प्रमाणों से यह तो सिद्ध ही होता है कि यदि जनतन्त्र-शासन नहीं तो अभिजन-सम्प्रदाय कर्तृक शासन यहाँ अवश्य रहा होगा। वैदिक युग के लिए ही ऊपर के प्रमाण प्रासङ्गिक हैं, परवर्त्ती युग में तो जनतन्त्र-राज्यों की स्थिति के विषय में भूरि-भूरि प्रमाण मिलते हैं।

१९०३ ईसवी में जब रीस डेविड्स ने विद्वानों का ध्यान भारत के गणराज्य या संघ-शासन[1] की ओर आकृष्ट किया तब उनको यह नहीं मालूम था कि ऐसे राज्यों के लिए पारिभाषिक शब्द संस्कृत और पाली साहित्य में मौजूद हैं। पाणिनि के व्याकरण में संघ-शब्द का उल्लेख हुआ है।[3] भट्टोजिदीक्षित संघ का अर्थ 'संहनन' बताते हैं।[4] बालमनोरमाकार ने संहनन का अर्थ 'मेलन' किया है। अर्थात् संघ के माने जनसमूह या जनमण्डली है। यह तो इसका यौगिक अर्थ है, परन्तु राज-नीति में इसका विशेष रूढ़ अर्थ है। वह क्या है? सूत्रकार स्वयं सूत्र में इस अर्थ को स्पष्ट करते हैं। संघ-शब्द का अर्थ 'गण' है। परन्तु 'गण' शब्द का अर्थ क्या है? क्या यह अँगरेज़ी-शब्द 'रिपब्लिक' का समानार्थक था, पाणिनि इसका क्या अर्थ समझते थे? सूत्र ५. ३. ११४ से इस अर्थ का पता लगता है। इस सूत्र का यह अर्थ है कि बाहीक-प्रदेश के ब्राह्मण राजन्य-वर्जित आयुध-जीविसंघ[5] के उत्तर स्वार्थ में ञ्यट् प्रत्यय हो। उदाहरण-स्वरूप क्षुद्रक-शब्द को लीजिए। यह बाहीक प्रदेश के अर्थात् पञ्चनद के एक अंश के निवासी किसी संघ का नाम था। यह संघ अब्राह्मण और अराजन्य भी था। इसके उत्तर ञ्यट् प्रत्यय होकर क्षौद्रक्य-पद सिद्ध हुआ। ऐसे ही मालव्य-शब्द भी सिद्ध हुआ। क्षुद्रक और मालव का उदाहरण परवर्त्ती वैयाकरणों ने दिया है, तथापि जैसा कि रामकृष्ण गोपाल भाण्डारकर का कथन है, यह समझना अनुचित न होगा कि पाणिनि स्वयं बाहीक-प्रदेश के इन संघों से सुपरिचित थे। अब

पाणिनि में गण-राज्य का उल्लेख

---

१ अथर्ववेद. १. ९. ३. ३.४.३. ४.२२. १.२

२ देखो रमेशचन्द्र मजूमदारधृत अथर्ववेद का वचन—कर्पोरेट लाइफ़ इन एन्श्यंट इंडिया पृष्ठ ९०

३ संघे चानौत्तराधर्य्ये ३. ३. ४२ संघांकलक्षणेष्वञ्यञिञामण् (४. ३. १२७) आयुधजीविसङ्घाञ्ञ्यड् बाहीकेष्वब्राह्मणराजन्यात् ५. ३. ११४ संघोद्घौ गणप्रशंसयोः ३. ३. ८६.

४ संहननं संघः—भावे अप।

५ ञ्यड्यञ्ञ आयुधजीविसङ्घ बाहीकेष्वब्राह्मणराजन्यात् ५. ३. ११४)

आगे के सूत्रों के ऊपर विचार कीजिए। इन सूत्रों में पाणिनि कुछ और आयुधजीविसंघों के नाम बताते हैं, जिनके उत्तर भी स्वार्थिक तद्धित प्रत्यय होता है।[1] सूत्र ५. ३.११७ से पर्शु-शब्द से अण् और यौधेय-शब्द से अञ् का विधान किया है। ये भी आयुधजीविसंघ के ही नाम हैं। यौधेय-संघ का नाम पाणिनि के परवर्त्ती काल में भी मिलता है। कुछ सिक्कों पर जो कानिंगहम के मतानुसार ईसवी सन् के पूर्व की पहली शताब्दी के हैं, 'यौधेयेन' लिखा मिलता है।[2] कुछ सिक्कों पर 'यौधेयगणस्य जय' लिखा मिलता है। हरिषेण-रचित समुद्रगुप्त के लेख में यौधेयगण का उल्लेख है। इस लेख से यह तुरन्त मालूम हो जाता है कि यौधेयों में प्रचलित शासन-प्रणाली राज-शासन से भिन्न थी, क्योंकि उनका राजाओं से पृथक् निर्देश किया गया है। मालवगण का उल्लेख भी सिक्कों में आता है। रामकृष्ण गोपाल भाण्डारकर के व्याख्यानुसार पाणिनि ने मालवों का संकेत अपने व्याकरण में किया है। मालवगण के सिक्कों पर 'मालवानां जयः', 'मालवगणस्य जयः', 'मालवाहणजयः' आदि लिखे मिलते हैं। ये सिक्के ईसवी सन् पूर्व दूसरी शताब्दी के हैं।[3] समुद्रगुप्त के लेख में भी इनका उल्लेख यौधेयों के साथ किया गया है। 'राजन्यादिभ्यो वुञ्' (४. २.५३), यह पाणिनि का और एक सूत्र है। राजन्यादिगण में उदुम्बर और आर्जुनायन शब्दों का पाठ किया गया है। उदुम्बरों के सिक्कों पर 'उदुम्बर' यह शब्द मिलता है। राखालदास बनर्जी ने इन सिक्कों का काल ईसवी सन् पूर्व पहली शताब्दी बतलाया है।[5] रँपसन ने भी इनका काल ईसवी सन् पूर्व पहली शताब्दी में निर्दिष्ट किया है।[6] कुछ सिक्के ऐसे भी हैं जिन पर 'आर्जुनायन' लिखा है। इनका भी काल पहली शताब्दी (ई० स० पूर्व) है। वृष्णि-संघ का उल्लेख पाणिनि के सूत्र में आता है।[7] वृष्णियों में गणतन्त्र-शासन प्रचलित था, क्योंकि कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में

---

१ संघोद्घौ गणप्रशंसयोः ३. ३. ८६.
वृकाट्ट्येण्यण् ५-३-११७
दामन्यादित्रिगतेष्ठाच्छः ५-३-११६
पर्श्वादियौधेयादिभ्योरणञौ ५. ३. ११७

२ कानिंगहम् 'कयेनूस् आफ़ एन्श्यंट इंडिया' पृ० ७६ रैपसन इंडियन् क्वायेंस पृ० १५

३ स्मिथ् कटलॉग ऑफ़ क्वायेंस इन दि इंडियन म्यूज़िअम् पृ० १६२

४ जर्नल ऑफ़ दि एशिअटिक सोसाइटी ऑफ़ बङ्गाल १९१४ पृ० २४९

५ रॅपसन इंडियन क्वायन्स पृ० ११

६ रॅपसन इंडियन क्वायन्स पृ० २१

७ राजन्यबहुवचनद्वन्द्वेऽन्धकवृष्णिषु

वृष्णियों को संघ कहा है।[1] महाभारत में भी अन्धकवृष्णिसंघ के ऊपर एक दीर्घ आलोचना है।[2]

उपरिलिखित सन्दर्भ से यह प्रतीत होता है कि पाणिनि संघ का अर्थ राजा-रहित शासन, बहुशासन, सम्मिलित शासन, गणराज्य या प्रजाशासित राज्य समझते हैं, क्योंकि जिन संघों का उल्लेख उन्होंने अपने सूत्र में किया है उनमें से बहुतों के सिक्के प्राप्त हुए हैं और ये सिक्के गणों के नाम से चलाये गये थे न कि राजाओं के नाम से। शिलालेखों से भी पता चलता है कि 'गण' या 'संघ', ये शब्द स्वतन्त्र राजनैतिक जमात के लिए व्यवहृत होते थे।[3]

कौटिल्य

अब यह प्रश्न उठता है, 'आयुधजीवि' शब्द का अर्थ क्या है। कौटिल्य ने एक पूरा अध्याय ही संघ के वर्णन में दिया है। इनके मत में संघ के दो भेद हैं। एक तो 'वार्त्ताशस्त्रोपजीविसंघ' और दूसरा 'राजशब्दोपजीविसंघ'।[4] 'उपजीवि'-शब्द का अर्थ 'जीविका अर्जन करनेवाला' नहीं है, किन्तु 'व्यवहार में लानेवाला' है।[5] अर्थात् कुछ संघ ऐसे थे जो शस्त्र को काम में लाते थे, अर्थात् शस्त्रविद्या में निपुण थे। दूसरे ऐसे थे जिनके प्रधान पुरुषों या नेताओं में राजा शब्द या उपाधि ग्रहण करने की प्रथा थी। कौटिल्य के राजशब्दोपजीवी संघों का वर्णन बहुत कुछ पाली-त्रिपिटक में मिलता है। पाणिनि के 'आयुधजीविसंघ' और कौटिल्य के 'शस्त्रोपजीविसंघ' एक ही हैं। भट्टोजिदीक्षित "आयुधजीविसंघाञ्ज्यड्......" इस सूत्र की व्याख्या करते हुए कहते हैं—'आयुध' इति किम्। मल्लाः ञ् अर्थात् मल्ल-संघ की गिनती आयुधजीविसंघ में नहीं थी। पाली-त्रिपिटक से मालूम होता है कि मल्ल लोग कुशीनार और पावा के आस-पास रहते थे। ये एक प्राच्यसंघ थे। प्राच्यसंघों में राजा-शब्द धारण करने की प्रथा थी। शक्यों के राजा शुद्धोदन थे। लिच्छिविकों के भी राजा थे। अतः यह मालूम होता है कि पाणिनि के प्राचीन टीकाकारों को संघ के दो भेद भली भाँति मालूम थे। और

---

१ अर्थशास्त्र १.६.३

२ महाभारत-शान्तिपर्व अध्याय ८१

३ विजयगढ़ का शिलालेख, जिसमें ये शब्द मिलते हैं—यौधेयगणपुरस्कृतस्य महाराजमहासेनापतेः फ्लीट-गुप्त इंसक्रिप् शनूस् पृ० २५२

४ काम्भोजसुराष्ट्रक्षत्रियश्रेण्यादयो वार्त्ताशस्त्रोपजीविनः लिच्छिविक-वृजिक-मल्लकमद्रककुकुर-कुरु-पाञ्चालादयो राजशब्दोपजीविनः।

५ देखो रमेशचन्द्र मजूमदार 'कर्पोरेट् लाइफ़ इन एन्शयंट इंडिया—पृ० १०३ टिप्पणी दूसरी। और जायसवाल हिन्दू पालिटी पृष्ठ ३६

दीक्षित की टीका तो इन प्राचीन टीकाओं के आधार पर ही बनी है। बहुत संभव है कि पाणिनि को भी ये भेद मालूम रहे हों।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र[1] से यह जान पड़ता है कि संघों के मुखिया होते थे, जिनको 'संघमुख्य' कहते थे। उनको न्यायपूर्वक आचरण करना पड़ता था, उनको सबका चित्तानुवर्त्तन करना पड़ता था, वे जितेन्द्रिय होते थे।

कौटिल्य के समय में उत्तरी भारतवर्ष में सर्वत्र संघ पाये जाते थे। कम्बोज-संघ भारतवर्ष के उत्तर-पश्चिम प्रान्त में, सुराष्ट्रसंघ काठियावाड़ में, कुरु और पाञ्चालों के संघ मध्यदेश में, और लिच्छिविक, वृजिक मल्लक भारत के पूर्व में थे।

बौद्धसाहित्य में गणराज्य

स्वर्गीय पण्डित रीस डेविड्स ने बुद्ध के समय के संघों की एक सूची 'बुद्धिस्ट इंडिया' में दी है। निम्नलिखित संघ उस समय थे—

(१) कपिलवस्तु का शाक्य-संघ
(२) सुंसुमार पर्वत पर स्थित भग्गों का संघ
(३) अल्लकप्प का बुलिगण
(४) केसपुत्त का कालामागण
(५) रामगामवासी कोलियवर्ग
(६) कुसिनार का मल्लसंघ
(७) पावा के रहनेवाले मल्लकुल
(८) पिप्पहलिवन के मोरियकुल
(९) मिथिला का विदेहसंघ
(१०) वैसाली का लिच्छविगण[2]

भगवान् बुद्ध ने स्वयं कुछ नियमों का उल्लेख किया है, जिनका पालन करने से संघ का अभ्युदय होता है और जिनके विरुद्धाचरण से संघ की अवनति होती है। जब अजातशत्रु ने वृजि-संघ का उच्छेद करने का संकल्प करके भगवान् बुद्ध के समीप अपने मन्त्री को सलाह लेने के लिए भेजा तब भगवान् ने अपने प्रिय शिष्य आनन्द से अनेकानेक प्रश्न किये और संघ के

१ अर्थशास्त्र ( श्यामशास्त्री का संस्करण ) अध्याय ११ पृ० ३७६-३७९
२ रीस डेविड्स-बुद्धिस्ट इंडिया पृष्ठ २२
　„　　डायलाग्ज़ आॅफ़ दी बुद्ध पृष्ठ १७९-८०-(दूसरा खण्ड)
महापरिनिब्बान सुत्तन्त १.२१.२७.

मंगलसाधक अनेक नियम बताये, जिनमें संघसभा का पौनःपुनिक अधिवेशन मुख्य प्रतीत होता है।[१]

स्वर्गीय पंडित रीस डेविड्स ने शाक्यसंघ की शासन-प्रणाली का वर्णन अपने बौद्ध-कालीन भारत नामक ग्रन्थ में इस तरह किया है—

"राज्य-शासन-सम्बन्धी सम्पूर्ण कार्य-कलाप जनसभा में निष्पन्न होता था। इस सभा में युवक और वृद्ध उपस्थित रहते थे। ऐसी ही एक सभा में राजा पसेनदी के प्रस्ताव पर[२] विचार किया गया था। जब अम्बष्ठ कार्यवशात् कपिलवस्तु को जाता है तब सबसे पहले शाक्यों की जनसभा में जाकर उपस्थित होता है। उस समय शाक्यों की जनता जवान और वृद्ध सुन्दर आसनों पर विराजमान होती थी।[३] ऐसी जनसभा को सन्थागार कहते थे। बुद्ध भगवान् के देहान्त के उपरान्त आनन्द ने शाक्यों के सन्थागार में जाकर भगवान् के मृत्युसंवाद को गोचर किया।[४] सभा का एक सभापति चुना जाता था। यही सभापति राज्य का भी प्रधान पुरुष समझा जाता था। इसी के सिर पर राज्यभार रहता था। इस प्रधान या मुखिया को 'राजा' कहते थे। यहाँ इस शब्द का अर्थ भूपति या नरपति नहीं था, परन्तु राष्ट्रप्रधान था, अर्थात् यह शाक्यसंघ 'राजोपजीविसंघ' था। शाक्यों के राजा की तुलना एथेंस के आरकन या रोमन कन्सल के साथ हो सकती है।[५] 'ललित विस्तर' में लिखा है कि राजा शुद्धोदन शाक्यगणों के साथ सम्मिलित होकर सन्थागार में प्रस्तुत विषय पर आलोचना कर रहे थे।[६]

विनयपिटक[७] में भद्दिय 'राजा' कहा गया है। दीघनिकाय[८] में शुद्धोदन भी 'राजा' कहा गया है। जातकों से पता चलता है कि कोई एक ही व्यक्ति शाक्यों का राजा नहीं था। परन्तु राज्य का शासन-सूत्र जन-निर्वाचित प्रधानपुरुष के हाथों में था, जिसका शासन अल्पकालीन स्थायी होता था और जो राजा-शब्द से सम्बोधित किया जाता था।

---

१ दीघनिकाय महापरिनिब्बान सुत्तन्त, सेक्रेड बुक्स आफ़ दी ईस्ट सिरीज़ का बारहवाँ ग्रन्थ पृष्ठ ३-६

२ राजा पसेनदी ने किसी एक शाक्य-दुहिता के पाणिप्रार्थी होकर शाक्यों के पास दूत भेजा था—
( भद्दसालजातक )

३ अम्बट्ठ सुत्तन्त (दीघनिकाय)

४ महापरि निब्बानसुत्त

५ रीस डेविड्स बुद्धिस्ट इंडिया पृष्ठ २१

६ ललितविस्तर (XII, p. 115, Bibliotheca Indica Edition)

७ विनय (II. 181)

८ दीघनिकाय (11. 52)

सभा की कार्य-प्रणाली का वर्णन महागोविन्द सुत्तन्त में इस तरह किया गया है—

शक्र के स्वर्ग में देवताओं की एक सभा का अधिवेशन हुआ। प्रधान ने सभा के समक्ष कार्यक्रम को रक्खा। सभासदों ने प्रस्तुत विषय का व्याख्यान किया। इसके उपरान्त सर्व-सम्मति से स्वीकृत प्रस्ताव लेखकों के (Recorders, or Clerks of the House) सिपुर्द कर दिये गये। इस देवताओं की सभा का वर्णन मनुष्य-सभा के अनुसार ही किया गया होगा। इस आख्यान के रचयिता सन्थागार की कार्य-प्रणाली से सुपरिचित थे। उन्होंने देवताओं की सभा का वर्णन करते समय मनुष्य-सभा के विषय में अपने ज्ञान का उपयोग किया होगा।

बौद्धधर्म्मसंघ राजनैतिकसंघ का अनुकरण ही था। बौद्धधर्म्मसंघ के भिक्षुओं की सभा में जिन नियमों के अनुसार कार्य होता था उनसे भी राजनैतिक सभा के बारे में हमें बहुत कुछ हाल मिल सकता है—धर्म्मसभा में 'प्रस्ताव' के लिए पारिभाषिक शब्द 'ञत्ति' था। 'प्रस्ताव' सर्वसम्मति से स्वीकार किया जाता था और यदि सब सहमत नहीं होते थे तो निर्णय के लिए एक कमिटी के पास भेजा जाता था।[१]

रीस डेविड्स का मत है कि किसी प्रस्ताव पर वोटिङ्ग नहीं होती थी। परन्तु जायस-वाल का मत है कि वैयक्तिक सम्मति के ग्रहण करने के पूर्व उस पर सबकी पृथक् पृथक् राय ली जाती थी और अधिकतर लोगों की राय हो जाने से प्रस्ताव स्वीकार कर लिया जाता था।[२]

शाक्यों की राज्यशासन-प्रणाली लिच्छवियों के सदृश थी। जातकों में लिच्छवि के शासकों को गणराज कहा है। अट्ठकथा में लिच्छवियों की राज्यरीति का वर्णन आता है। तीन उच्च कर्मचारी होते थे—यथा राजा, उपराजा और सेनापति। निस्सन्देह ये तीनों कार्य्याध्यक्ष थे। एकपण्ण जातक में लिखा है कि लिच्छवियों की राजधानी वैशाली-नगर में थी। राज्य का भार सात हज़ार सात सौ सात निवासियों के हाथ में था, जो 'राजा' कहलाते थे। इतने ही उपराजा और इतने ही सेनापति और भांडागारिक भी थे। डाक्टर रमेशचन्द्र मजूमदार कहते हैं कि इस वर्णन से यह प्रतीत होता है कि सम्पूर्ण राष्ट्र छोटे छोटे परगनों में विभक्त था। प्रत्येक परगने में स्वायत्त शासन के लिए स्वतंत्र शासनयंत्र मौजूद थे। प्रत्येक परगने के मुखिया एक सभा में एकत्र होते थे, और इसी सभा के हाथ में सम्पूर्ण राष्ट्र का शासन था।

---

१ Cambridge History of India, p. 176.

२ इस विषय में विनय-ग्रन्थ के वचनों को पढ़ना चाहिए। Oldenberg and Rhys Davids, Vinaya Texts, Vol. III, pp. 44 ff.

एथेन्स में क्लाईस्थिनीज़ के सुधार के बाद जो राज्यप्रबंध स्थापित हुआ था उससे और लिच्छवियों की राज्यरीति का बहुत कुछ सादृश्य है। एथेंस में भी एक केन्द्रीय सभा थी, जिसके सभ्य क्षुद्रतम परगने (Demes) के प्रतिनिधि थे।[1]

विदेहगण और लिच्छविगण दोनों एक संधिसूत्र से आवद्ध थे, और दोनों ने मिलकर एक संयुक्त राज्य स्थापित किया था। इस संयुक्तसंघ या गण का नाम संवज्जि था[2] जैन कल्पसूत्र में नवमल्ल और नव लिच्छवियों के मेल से निर्मित अट्ठारगण राजाओं की एक विचार-सभा का उल्लेख है।[3]

यूनानी लेखकों से भी हमें स्वायत्त शासन-सम्बन्धी बहुत कुछ प्रमाण मिलते हैं। मेगास्थिनीज़ भारतवर्ष में प्रचलित एवं जनप्रवाद के बारे में कहता है कि "डायोनिसस से चन्द्रगुप्त तक १५३ राजे और ६०४२ वर्ष गिने जाते हैं। इनमें तीन बार गणराज्य (स्थापित) हुआ।"[4] यह यूनानी लेखक चन्द्रगुप्त के दरबार में बहुत वर्ष तक रहा। उसको राष्ट्रों की शासनप्रणाली के निरीक्षण करने के बहुत मौक़े मिले। वह कहता है कि कुछ राज्य तो ऐसे थे जहाँ एक राजा शासन करता था, और कुछ ऐसे जहाँ स्वायत्त शासन अर्थात् प्रजातन्त्र-शासन प्रचलित था।[5] एरियन्, कार्टियस्, डायाडेरस्, जस्टिन्-प्लुटार्क, स्ट्राबो—ये सब वैदेशी लेखक प्रजापालित राजाहीन राष्ट्रों का उल्लेख करते हैं। अलकज़ेंडर के भारत-आक्रमण के समय पंजाब-प्रदेश में ये राज्य थे। उदाहरण-स्वरूप निसियंस, ओरिटाई, सवरकाई, अद्रेष्टाई, मल्लोआई, अक्षिद्रकाई आदि का उल्लेख किया जा सकता है।

यूनानी लेखकों का प्रमाण

महाभारत, शान्तिपर्व, १०७ अध्याय में, गणराज्यों की 'विस्तृत' आलोचना की गई है। सुधियों का ध्यान उस अध्याय की ओर आकर्षित होना चाहिए।

ऐतरेय ब्राह्मण के समय से भगवान् बुद्ध के समय तक भारतवर्ष में सर्वत्र प्रबल पराक्रान्त गणराज्य थे। अलेकज़ेंडर के भी समय में पंजाब-प्रदेश में बहुसंख्यक गणराज्य थे। मध्यप्रदेश और मालवा के कुछ राज्यों को छोड़ कर प्राच्य और पाश्चात्य भारत में गण-शासन ही प्रचलित था। पश्चिमी भारत में आयुधजीविसंघ थे, प्राच्य भारत में राजशब्दोपजीविसंघ थे। सिक्कों

१, R. C. Mazumdar, Corporate Life in Ancient India, पृ० ६४
२. Buddhist India, p. 22.
३. Jain Kalpasutra, Jacobi, p. 65.
४. Indika of Arrian, translated by McCrindle, Chap. IX.
५ McCrindle, Megasthenes, Arr. XII.

के प्रमाण से मालूम होता है कि कुछ पश्चिमी गणों में राजा भी थे; परन्तु यह 'राजा'-शब्द राष्ट्र-प्रधान का नामान्तर था। औदुम्बर, कुनिन्द आदि गणों में एक राजा भी होता था। आर्जुनायन, यौधेय, शिवि, वृष्णि इत्यादि संघों के सिक्के केवल 'गण' के नाम से चलाये गये। अक्षरों की बनावट के प्रमाण से ये सिक्के लगभग ईसवी पूर्व १०० के सिद्ध होते हैं—अर्थात् चन्द्रगुप्त के समय से २०० वर्ष के अन्दर अन्दर गणराज्यों से हमारा फिर साक्षात्कार होता है। समुद्रगुप्त के समय ( ईसवी सन् चतुर्थ शताब्दी ) में भी ये गण-राज्य थे। उसके उपरान्त गणों के आक्रमण तथा अन्य कारणों से ये गणराज्य ध्वंस क प्राप्त हुए। अस्तु यह तो स्थिर है कि भारतवर्ष में लगभग १५०० वर्ष तक प्रजापालित राज्य रहे। आशा है कि भारत के अँगरेज़ी शासक उसके प्राचीन इतिहास का अध्ययन करेंगे और भारत का भावी शासन-संस्कार इस इतिहास-ज्ञान की सुदृढ़ भित्ति पर प्रतिष्ठित करेंगे। अन्यथा भ्रान्ति से वे छुटकारा नहीं पा सकते। स्वायत्त शासन-रूपी वृक्ष योरप और अमेरिका के जलवायु में ही नहीं परिवर्धित होता, भारत में भी इस वृक्ष ने दृढ़मूल होकर कराल काल के संहारक खड्ग को निरस्त किया। अगर एथेंस ने अपने गौरवमय युग में प्रजातन्त्र-शासन-प्रणाली को चरम सीमा तक पहुँचा दिया तो यह भी सत्य है कि उसी युग में भारताक्रमणकारी विजयी वीर अलिकसुन्दर के कर्म्मचारियों ने वाहीक-प्रदेश में स्वाधीनता की भक्त जातियों को पाया, जिन्होंने किसी राजा के सामने अपना सिर नीचा करना नहीं सीखा था। भेद इतना ही है कि दुर्भाग्य-वश भारत में थ्यूसिडाइडिस नहीं उत्पन्न हुआ, जो स्वाधीनता का जय-गान करके सुललित भाषा में कर सकता था। इतिहास की अमृतभाषिणी सत्यानृतज्ञानशालिनी वाग्देवी यहाँ मूक है। फलतः संघ का इतिहास विस्मृति के अतल गर्भ में लुप्त होगया। आज भारत के सौभाग्य से इस लुप्त इतिहास का उद्धार हुआ है। इसके उद्धारकर्ता हम भारतीयों के सर्वथा धन्यवाद के पात्र हैं।

—गौरीशङ्कर चटर्जी



# भारतीय जाग्रति और स्वराज्य की माँग

भारतीय दिव्य विभूति स्वामी विवेकानन्द ने अपने विशाल अन्तर्देश से जो एक बार यह उद्घोष किया था कि "हे प्रभो, हे विश्वजननी, मुझे पुरुषत्व प्रदान करो, हे आदि-शक्ति, मेरा अपौरुष दूर करके मुझे मनुष्य बनाओ।" आज भारत उसी महामन्त्र की साधना कर रहा है। यही नहीं, उनके इस आह्वान पर कि "आओ, पुरुष बनो। अपने संकुचित केन्द्रों से बाहर निकल आओ। संसार की अन्य जातियों को देखो, कैसी बढ़ी जा रही हैं। क्या तुम मनुष्य का प्रेम करते हो? क्या तुममें अपने देश के प्रति अनुराग है? तो आओ हम लोग ऊँची ऊँची और अच्छी अच्छी बातों के लिए भिड़ें। पीछे मत देखो। बस आगे बढ़ो।"—वह कर्मक्षेत्र में डटा भी दिखाई देता है। उसमें स्वराज्य-प्राप्ति की महत्त्वाकांक्षा जाग उठी है और वह उसे अपना जन्मसिद्ध अधिकार घोषित कर रहा है। आज यदि स्वामी विवेकानन्द परम धाम से आकार देखें तो अपने मन्त्र और आह्वान के प्रभाव को देखकर चकित हो जायँ। क्योंकि उनके महामन्त्र से दीक्षित होकर उनके स्पष्ट आह्वान के अनुसार आज भारत अपने सदियों के आलस्य और मोह का परित्याग करके संसार के समुन्नत राष्ट्रों के समकक्ष हो जाने के लिए दृढ़ निश्चय कर चुका है।

> भारतीय वर्तमान शासन-व्यवस्था से असन्तुष्ट हैं और उसके स्थान पर वे 'स्वराज्य' प्रतिष्ठित करना चाहते हैं। इस लेख में लेखक महोदय ने यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि भारतीयों की इस जाग्रति से किसी भी प्रकार का पशुबल टक्कर नहीं ले सकता और वे स्वराज्य लेकर ही रहेंगे।

और यह सब वह भारत कर रहा है जो अभी उस दिन तक 'जगन्मिथ्या' की भावना में मग्न था, जो 'कन्थाकोपीन' को ही मानवजीवन का एक-मात्र ध्येय मानता था। परन्तु आज वह अपनी वर्तमान अवस्था से असन्तुष्ट है, इसी

लिए वहाँ क्रान्ति का जन्म हुआ है। वह अपनी प्राचीन इमारत को तोड़-फोड़ कर उसके स्थान में नूतन भवन की रचना का आयोजन कर रहा है। और इस दिशा में वह जिस आत्मबल का परिचय दे रहा है उसका प्रभाव देख कर यही कहना पड़ता है कि किसी भी प्रकार का पशुबल उससे टक्कर नहीं ले सकता है।

वास्तव में भारत में नवयुग का प्रवर्तन हुआ है। अपनी निर्बलता का अनुभव करके अब वह सभी क्षेत्रों का नये ढङ्ग से संस्कार कर रहा है। उसके उद्योग-धन्धे अब पाश्चात्य पद्धति के अनुसार चलाये जा रहे हैं। खेती-बारी में भी वैज्ञानिक पद्धति ग्रहण की जा चुकी है। जोतने-बोने और काटने-माड़ने का जो प्रचलित ढङ्ग है उसमें भी मेशीनों का समावेश किया जा रहा है। वह भी उपयोगिता का महत्त्व ताड़ गया है। इसी से व्यर्थ शारीरिक परिश्रम गँवा कर वह मूर्ख नहीं बना रहना चाहता। वह उन मेशीनों और यन्त्रों का सदुपयोग करने लगा है जिनसे परिश्रम और समय दोनों की बचत होती है, साथ ही काम भी चौकस होता है।

वास्तव में भारत ने नये आदर्शों को ग्रहण किया है। प्राचीनतावादी भारतीय आज नूतनतावादी हो रहे हैं। कुलीन लोग जिन पेशों या धन्धों को पहले अपवित्र समझते थे उनको वे बड़े चाव के साथ ग्रहण कर रहे हैं।

आज का भारत वह भारत नहीं है जो 'ईस्ट इंडिया कंपनी' के ज़माने में था। उस समय भारत कई राज्यों में विभक्त था, जो अपनी अपनी महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए सारे देश को युद्ध का अखाड़ा बनाये रहते थे। परन्तु आज के भारत में राष्ट्र-भावना का सञ्चार हुआ है। समग्र भारत के अँगरेज़ी शासन के अधीन हो जाने से तथा उन्नत पाश्चात्य शिक्षा तथा राजनैतिक संस्थाओं के अस्तित्व में आ जाने से आज के भारत में स्वाभिमान का भाव आविर्भूत हुआ है। पाश्चात्य आदर्शों का प्रभाव पड़ने से उसके सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक विचारों में घोर परिवर्तन उपस्थित होगया है। और अब वह सारे देश में राष्ट्रीय एकता और भ्रातृभावना के लिए यत्नवान् है। यही कारण है कि आज का भारत वर्तमान शासन-व्यवस्था से असन्तुष्ट है और वह स्वभाग्य-निर्णय की महत्त्वाकांक्षा का भाव प्रकट कर रहा है। उसकी इसी भावना का यह परिणाम है कि आज भारत का राजनैतिक वायु-मण्डल विक्षुब्ध हो उठा है—चारों ओर अशान्ति का ही भयङ्कर दृश्य दिखाई दे रहा है। इसी से आये दिन हम किसी न किसी लेखक, कवि या सम्पादक को वर्तमान सरकार के विरुद्ध अप्रीति का या राजद्रोह का प्रचार करने के अपराध में गिरफ़्तार होने की ख़बर सुनते रहते हैं। यही नहीं, इस सम्बन्ध में हम देश के नवयुवक विद्यार्थियों को भी त्रस्त किये जाते देखते हैं। देशवासियों के ऐसे मनोभावों का दमन करने के लिए ही सरकार को समय समय पर कतिपय नये नये कठोर क़ानूनों की भी सृष्टि करनी पड़ी है। और पुराने क़ानूनों का उपयोग करके उसने देश के उन लोकनेताओं को नज़रबन्द करके अपने उग्र रूप का परिचय दिया है जिन्होंने देश को स्वाधीन-भावना का सन्देश सुनाया है। परन्तु

सरकार की इस सम्बन्ध की सारी कार्यवाही व्यर्थ हुई है। उसके जेलों का भय लोगों के हृदय से बिलकुल जाता रहा। अब लोग अपने स्वाधीन विचारों के लिए हँसते हँसते जेल-यात्रा करते हैं। जेल से लौटने पर उनका स्वागत होता है और उनकी वीरों जैसी पूजा होती है और वे देश-भक्त के रूप में प्रसिद्ध होते हैं। एक ओर सरकार ऐसे लोगों को चोर-डाकुओं को तरह बन्दी करके दण्ड देती है और उन पर सदा अपनी कड़ी निगरानी रखती है, दूसरी ओर समाज में, लोक में उनका नेता के रूप में आदर-सत्कार होता है। यह विषम परि-स्थिति इस बात का सूचक है कि सरकार और प्रजा के बीच बहुत भारी अन्तर होगया है। ये दोनों एक ही बात को कैसे भिन्न दृष्टिकोण से देखते हैं, यहीं हमें भारत के हृदय का परिचय मिलता है।

चाहिए तो यह था कि अँगरेज़ जैसी सभ्य जाति के लोग अपने वादों के अनुसार भारतीयों की माँगों को समयानुसार पूरी करते रहते जिससे देश का 'सुराज्य' अब तक 'स्वराज्य' होगया होता। परन्तु भारत-सरकार ने भारतीयों की मनोभावना का जैसा चाहिए वैसा आदर कभी नहीं किया, इसी से उसका 'सुराज्य' 'स्वराज्य' हो जाने के बदले आज 'कुराज्य' के नाम से प्रसिद्ध हो रहा है। जिस दिन भारत में अँगरेज़ी शासन प्रवर्तित हुआ था उस दिन भारत-सरकार की क़ानून-पुस्तक में 'राजद्रोह' का क़ानून कहाँ था। परन्तु आज उसकी उसे रचना ही नहीं करनी पड़ी है, किन्तु उसकी उसने जहाँ देखो धूम मचा दी है। इससे क्या सूचित होता है? यही न कि भारतीय वर्तमान शासन-व्यवस्था से असन्तुष्ट हैं और वे उसके स्थान में 'स्वराज्य' प्रतिष्ठित करना चाहते हैं। गत २० वर्षों का भारतीय इतिहास ऐसे ही असन्तोष का इतिहास है।

असल बात यह है कि सदियों के दास्य-जीवन का आलस्य त्यागकर भारतीय राष्ट्र अब जाग पड़ा है। यही नहीं, वह स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए बद्धपरिकर हो रहा है। यह राष्ट्र की जाग्रत आत्मा का ही सूचक है। आर्य-जाति का पुरुषार्थ अब अपना परिचय देने को उत्सुक दिखाई दे रहा है। और जब ३३ करोड़ का यह भारतीय राष्ट्र इस तरह स्वाधीनता का अधिकार प्राप्त करने का निश्चय कर चुका है तब सारा संसार भी उसकी सफलता के मार्ग में बाधा डालने का दुस्साहस नहीं कर सकता। जिन अत्याचार-मूलक बन्धनों के कारण कोई जाति उन्नति-पथ पर अग्रसर नहीं हो सकती उनको तोड़ फेंकने के लिए जब वह कृत-संकल्प हो जाती है तब उसमें एक प्रकार की अपूर्व शक्ति का सञ्चार हो जाता है जिससे वह सभी प्रकार की बाधाओं को अतिक्रमण कर जाती है। भारत आज ऐसी ही स्थिति में है।

भारत इस समय पीड़ित है। अपनी पीड़ा का उसे भले प्रकार अनुभव हो चुका है, अतएव उससे मुक्त होने के लिए वह ओषधि के लिए यत्नवान् है। उसकी वह ओषधि स्वराज्य की प्राप्ति है और इसकी प्राप्ति के लिए देश के शिक्षित-समुदाय का एक बड़ा अंश वर्षों से लगा हुआ है। उसके इस प्रयत्न का परिणाम यह हुआ है

कि देश सोते से जाग उठा है। पाश्चात्य-सभ्यता की गरिमा का जादू उसके सिर से अब उतर गया है। स्वाभिमान के जाग्रत हो उठने से वह पाश्चात्यों का उनकी प्रत्येक बात में सामना करने के लिए अपने को समर्थ बना रहा है। इसी से आज भारत में क्रान्ति का सूत्रपात हुआ है। जहाँ एक ओर वह वर्तमान विदेशी सरकार की नीति से असन्तुष्ट होकर अपने जन्मगत अधिकार की प्राप्ति के लिए उससे असहयोग करने की धमकी दे रहा है, वहाँ वह समुन्नतिबाधक प्राचीन रूढ़ियों के ताना-बाना को तोड़कर अपने लिए स्वाधीनता के वायुमण्डल की रचना कर रहा है। जातपाँत, खानपान, छूतछात जैसे सामाजिक एवं राजनैतिक चिड़ों की अब उसे परवा नहीं।

भारत ने अँगरेज़ी नौकरशाही से युद्ध घोषित कर दिया है। इस बात को कूटनीतिज्ञों को छोड़ कर और कोई अस्वीकार नहीं कर सकता। यह युद्ध सन् १९२० से छिड़ा हुआ है, जिसका प्रधान लक्ष्य स्वराज्य-प्राप्ति है।

भारत के हितविरोधियों का कहना है कि वह अभी स्वराज्य का अधिकारी नहीं है। वे उसे स्व-शासन के लिए अयोग्य ठहराते हैं। उनका कहना है कि उसने आत्मशासन करने के लिए पर्याप्त और आवश्यक शिक्षा नहीं प्राप्त की है। परन्तु ऐसी शिक्षा प्रदान करने का ही अधिकार किसे प्राप्त है? भारत का जलवायु, भूगोल, स्वभाव आदि सभी कुछ तो निराला और अनूठा है। संसार की कोई भी जाति इस बात को नहीं समझ सकी है। और समझे भी कैसे? जब किसी ने उस अध्यात्म-भावना का अर्जन भी किया हो। यदि भारत अपने ढङ्ग से रहने, शासन करने और उपदेश देने पाये तो संसार का भी समुचित विकास हो जाय। आज उसने अपने इस महत्त्व को हृदयङ्गम किया है। इसी से उसने स्वराज्य की लड़ाई ठान दी है, क्योंकि संसार में उसका भी अपना एक मिशन है जिसको वह अपने वर्तमान पराधीन रूप में पूरा नहीं कर सकता।

और यदि यह बात हम थोड़ी देर के लिए मान भी लें कि भारत स्वराज्य करने के योग्य नहीं तो इससे यह बात थोड़े ही सिद्ध होती है कि दूसरे लोगों को उस पर शासन करने का अधिकार प्राप्त हो जाता है। वास्तव में प्रत्येक राष्ट्र को अपने ढङ्ग से अपना जीवन बिताने का स्वाभाविक हक़ प्राप्त है, किसी बाहरी ढंग से उसका काम नहीं चलने का।

भारत ने अपना ध्येय निर्धारित कर लिया है। उसने निश्चय कर लिया है कि वह अपना प्रबन्ध खुद कर लेगा। इस सम्बन्ध में वह विदेशियों की न तो सहायता का इच्छुक है, न उनके अड़ंगे ही उसे सह्य होंगे। अब न तो उसे किसी के आश्वासनों की परवा है, न वह धमकियों में ही आनेवाला है। वह स्वयं जीवित रहना चाहता है, साथ ही दूसरों को भी जीवित रखना चाहता है। उसका अब एक यही निश्चय है कि वह विदेशियों को अपने ऊपर शासन करने में मदद नहीं देगा, क्योंकि अपना शासन वह स्वयं करना चाहता है।

—मिहिरचन्द्र जैन

# न घर के न घाट के

(१)

पेंशन और पिंजरापोल वास्तव में एक ही वस्तु है। अन्तर केवल इतना ही है कि पेंशन मनुष्य के उपकार के लिए है और पिंजरापोल पशुओं के उपकार के लिए। परन्तु न तो सब बूढ़े पशुओं को पिंजरापोल में स्थान मिलता है और न सब आदमी पेंशन ही पाते हैं। इस दृष्टि से मेरे भाग्य अच्छे थे। अपने जीवित रहने का सर्टीफ़िकेट देकर मैं प्रतिमास पेंशन पा जाता, परन्तु उस पेंशन में से इनकम-टैक्स का कटना मुझे बहुत खलता था।

गवर्नमेंट के विरुद्ध यही मेरी पहली शिकायत थी। परन्तु एक बूढ़े पेंशनर के लिए राजनीति के विशाल क्षेत्र में टाँग अड़ाना ठीक वैसे ही मूर्खता का काम है, जैसे किसी बूढ़े पशु का पिंजरापोल के अन्य पशुओं से रुष्ट होकर इधर-उधर उछल कर उन्हें चिढ़ाना। जिस प्रकार अवस्था अधिक हो जाने पर गाँठों में वात पकड़ लेता है और पेट में क़ब्ज़ हो जाता है, वैसे ही दिमाग़ में भी एक प्रकार की क़ब्ज़ियत से विकार उत्पन्न हो आता है। ये बातें .ख़ूब अच्छी तरह से मेरे दिमाग़ में भर गई थीं।

पेंशन लेकर नौकरी से अलग होने के पहले ही रायबहादुर की उपाधि मेरे ऊपर लाद दी गई थी। मेरे एक मित्र ने मुझे समझाया कि रायबहादुर की उपाधि का महत्त्व ठीक राजाबहादुर के ही समान है, क्योंकि राय का अर्थ है राजा। अपनी इस नवीन उपाधि के साथ अपना नाम एक तख़्ती पर लिखवा कर दरवाज़े के पास टाँग दिया। जब कभी मैं घर से निकलता या बाहर से आकर घर में प्रवेश करने लगता तब मेरी दृष्टि अपने नाम और उपाधि पर पड़ कर ज़रा सा रुक जाती। दूसरे लोग भी जो उधर से होकर निकलते, उनकी दृष्टि उस तख़्ती पर पड़े बिना न रहती। मेरी जान-पहचान के एक ऐसे भी रायबहादुर थे, जिन्हें यदि कोई रायबहादुर लिखना भूल जाता तो वे बहुत रुष्ट होते। मैं इस श्रेणी में नहीं था, तो भी रायबहादुर की उपाधि से सम्बोधित किये जाने पर प्रसन्न अवश्य होता।

कौन जानता था कि एक दिन देश में लम्बे नामों के विरुद्ध आन्दोलन की बाढ़-सी आ जायगी। कोश की सहायता से 'असहयोग' का अर्थ तो कोई

मालूम कर सकता था, परन्तु यह समस्या बड़ी टेढ़ी थी कि कौन किससे असहयोग करे। यदि हम सरकार का सहयोग करना अस्वीकार कर दें तो जितनी भर सरकारी नौकरियाँ हैं वे सब त्याग देनी पड़ेंगी, यहाँ तक कि पेंशन लेने में भी सन्देह हो जायगा। किसान लोग ज़मींदारों को लगान देना छोड़ देंगे, अन्त में धोवियों तथा नाइयों के भी अपने अपने ग्राहकों का काम छोड़ देने का भय है। यही बात यदि मेरी गृहस्वामिनी तथा मेरे बच्चों की मा के सामने भी आ जाय तो कदाचित् वे भी मेरा सहयोग छोड़ दें। यदि वह कुञ्जी का गुच्छा मेरे सामने पटक कर कह दे कि अपने घर का सारा प्रवन्ध आप कर लीजिए तो मेरी क्या दशा होगी।

कुछ रायबहादुरों ने अपनी सनदें वापस कर दीं। कुछ लोगों ने अपने पदक और कुछ ने सरकारी डिप्लोमे वापस कर दिये। मेरा साइनबोर्ड भी लोगों की दृष्टि में खटकने लगा। मेरी बैठक सड़क के पास ही थी। जो लोग उधर से निकलते, प्रायः उन सबको मैं देखता और उनकी टीका-टिप्पणी भी सुना करता।

वालकों तथा युवकों की टीका-टिप्पणी विशेषरूप से अपमानजनक मालूम पड़ती थी। साइनबोर्ड पर एक वार दृष्टि डाल कर वे इस ढङ्ग से बातचीत करने लगते।

"ओह, यहाँ भी एक रायबहादुर हैं।"

"ये सब सरकार के चापलूस हैं।"

"फ़ौजी घोड़ों के समान इनकी पीठ पर भी यह [टा]यटिल छाप दिया गया है।"

"आम तौर से गाय-बैल के ही गले में घं[टी] बँधी रहती है, परन्तु यहाँ तो नाम के गले में घं[टी] बँधी है।"

कुछ दिनों तक इस प्रकार की टीका-टिप्प[णी] सुनने के वाद एक दिन मैंने साइनवोड उता[र] लिया और उसे लकड़ीख़ाने में डाल दिया।

( २ )

जव कोई सेना युद्ध में पराजय स्वीकार कर[ती] है तव वह अपना रङ्गीन झंडा गिराकर सफ़ेद झं[डा] उठा लेती है। मेरा युद्ध का रंगीन झंडा साइ[न]बोर्ड था और जहाँ पर वह लगा था, वहीं सफ़े[द] दीवार सफ़ेद झंडा था। युद्ध में असहयोग [की] विजय हुई और मेरी पराजय।

परन्तु दोनों दलों में सन्धि स्थापित करने [के] लिए जिस नियम का अवलम्वन किया गया [वह] युद्ध के नियमों से विपरीत था। जिस दल [की] पराजय होती है, साधारण तौर से वही सन्धि [के] लिए अपना दूत विजेता के पास भेजता है। परन्[तु] मेरे सम्वन्ध में जो कुछ हुआ वह ठीक इसके विपरीत था। मैं अपने घर में चुपचाप बैठा र[हा] और विजयी दल के दूत बराबर मेरे द्वार पर चक्क[र] लगाने लगे। कुछ दूत ऐसे आते जो बहु[त] मृदुतापूर्वक नम्र शब्दों में बोलते, कुछ लम्बे-चौ[ड़े] लेक्चर झाड़ने लगते और कुछ परलोक की या[द] दिलाते। ये सभी मेरे अपरिचित नहीं थे। उ[स] दल में एक ऐसे भी सज्जन सम्मिलित थे जिनसे मेरा परिचय था। उनका नाम था गङ्गाध[र] पकडारती। वे प्रायः मेरे घर पर ताश खेलने आया करते। नये आन्दोलन के नेताओं में से [वे]

भी एक थे। इधर कुछ दिनों से उनके दर्शन नहीं हुए, परन्तु मेरे साइनबोर्ड का अन्तर्धान होना मानो उनके आविर्भाव की सूचना थी। एक दिन आकर उन्होंने उत्सुकता-पूर्वक मुझे बधाई दी। उन्होंने कहा—ख़ूब किया भोलानाथ बाबू, अब आप देश-सेवा में लग जाइए। क्या आपने राय-बहादुरी की सनद लौटा दी है?

मैंने उत्तर दिया—सनद तो ज़रा सा काग़ज़ का टुकड़ा है। क्या उसे लौटाने की कोई विशेष आवश्यकता है?

"अवश्य! अन्यथा सरकार को मालूम कैसे होगा कि आप असहयोगियों में सम्मिलित हैं। यह बात सरकार को मालूम हो जानी चाहिए कि अब आप उससे कोई सम्बन्ध नहीं रखते।"

"परन्तु कहीं अधिकारिगण मेरी पेंशन में न गड़बड़ करें?"

"ऐसा वे लोग नहीं कर सकते। परन्तु यदि आपको पेंशन छोड़नी ही पड़ी तो कौन-सी बड़ी बात है। कितने वकील-बैरिस्टरों ने हज़ारों रुपयों की प्रेक्टिस छोड़ दी है। क्या आप ज़रा-सा त्याग नहीं कर सकते?"

"ख़ैर, इस सम्बन्ध में तो मैंने अभी कुछ विचार नहीं किया।"

"इसमें विचार करने की कौन-सी बात है? क्या आपने जब साइनबोर्ड हटाया था तब कुछ सोचना-विचारना पड़ा था? और यह आप विलायती धोती क्यों पहने हैं? विदेशी कपड़े आज-कल जलाये जा रहे हैं। आज ही आप खद्दर के कपड़े ख़रीद लीजिए। कल आपके पास एक डेपुटेशन आवेगा।"

गदाधर गुनगुना कर एक स्वदेशी गीत गाता हुआ चला गया। मैं तुरन्त ही बाज़ार जाकर खद्दर की धोती और कुर्ता ख़रीद लाया। दूसरे दिन मेरे पास डेपुटेशन आया। इसमें दो या तीन वृद्ध और कई नवयुवक देशभक्त थे। वे लोग इस विचार-परिवर्तन के लिए मुझे बधाई देने लगे। डेपुटेशन के प्रधान ने कहा कि आगामी शनिवार को हम लोगों की एक सभा होगी आशा है, आप उसका सभापतित्व स्वीकार करेंगे।

पचीस-तीस वर्ष तक मैं सरकार का एक उच्च पदाधिकारी था। सभा-सोसाइटी का हाल मैं क्या जानूँ? मैंने इस भार के स्वीकार करने में असमर्थता प्रकट की और कोई दूसरा सभापति निर्वाचित करने का अनुरोध किया, क्योंकि न तो मैं कभी सार्वजनिक सभा में सम्मिलित हुआ था और न जनता में बोलने का मुझे अभ्यास ही था।

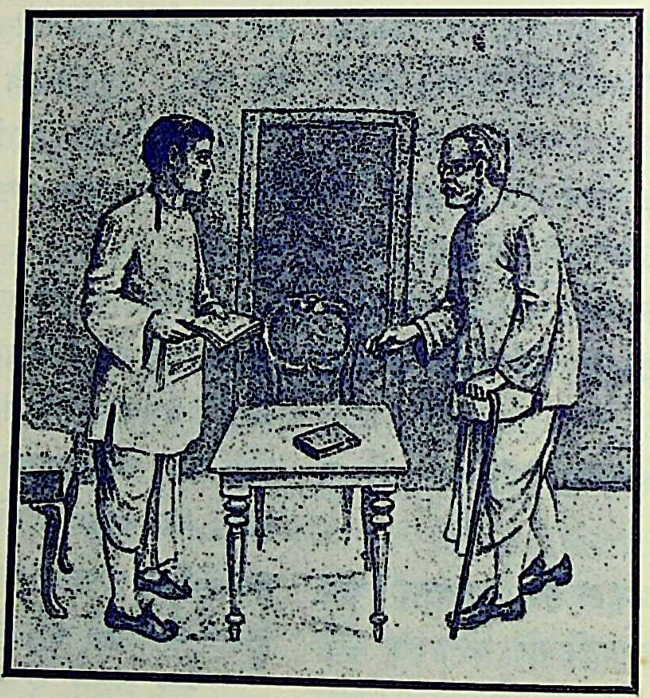
उन लोगों ने मेरी इस आपत्ति पर ध्यान नहीं दिया और कहा कि यह आवश्यक नहीं है कि आप बड़ी लम्बी-चौड़ी वक्तृता दें।

मैंने उत्तर दिया कि मैंने कोई विचार तक स्थिर नहीं किया है कि मुझे क्या कहना होगा।

डेपुटेशन के प्रधान ने कहा—इसके लिए आपको बिलकुल कठिनाई न होगी। निताई, देखो, तुम सभापति के लिए एक व्याख्यान लिख कर भोलानाथ बाबू को दे दो, ये उसें याद कर लेंगे। भोलानाथ बाबू, हम लोगों को अब दूसरी जगह

जाना है। शनिवार के चार बजे स्वयंसेवक आवेंगे और आपको सभा-स्थान में ले जायँगे।

डेपुटेशन जब चला गया तब मैंने सोचा कि स्कूल और कालेज में हमें सारी किताबें याद करनी पड़ती थीं, और अब मुझे एक व्याख्यान रटना पड़ेगा। मुझे पता तक नहीं कि उस व्याख्यान में कौन-कौन-सी बातें कहनी होंगी। ख़ुफ़ियापुलिस के रिपोर्टर एक एक शब्द नोट करेंगे और सम्भव है कि पहली ही वक्तृता के बाद मेरे ऊपर राजद्रोह का मामला चलाया जाय। परन्तु दूसरे का लिखा हुआ व्याख्यान तोते के समान [पढ़] कर मैं अभि[यो]ग में क्यों फसूँ? [जो] कुछ विचार मुझे प्रकट करने हैं उन्हें मैं भी [स्वयं] लिख सकता हूँ। इतने दिनों तक मैं रिपोर्ट [औ]र तजवीज़ लिखा करता था और आज एक [दू]सरी चीज़ लिखनी है। मैंने सोचा कि इतने दिनों तक मैं सरकार की नौकरी करता रहा, आज सर[कार] पर आक्षेप करना बहुत अनुचित-सा मालूम पड़ेगा, तो भी मैंने थोड़े से नोट लिख लिये और सोचा पीछे से इन्हीं को बढ़ा कर एक छोटा-सा व्याख्[यान] तैयार कर लूँगा।



[ सन्ध्या-समय मैदान में टहल कर जब मैं घर लौटा तब निताई बैठा मेरी प्रतीक्षा कर रहा था। एक अख़बार लिये वह पढ़ रहा था। ]

सन्ध्या-स[मय] मैदान में टहल [कर] जब मैं घर लौ[टा] तब निताई बै[ठा] मेरी प्रतीक्षा [कर] रहा था। एक अ[ख़]बार लिये वह [पढ़] रहा था। मैंने पूछा— कहिए निताई बा[बू], आपने व्याख्या[न] तैयार कर लिया है?

निताई [ने] निश्चिन्त भाव [से] कहा—एक व्याख्या[न] तैयार करने [में] कितनी देर लगती है? आपके लि[ये] मैंने एक ब[ड़ी] ओजस्विनी वक्तृ[ता] तैयार कर ली है।

"लाइए ज़रा देखूँ तो।"

निताई ने जेब से काग़ज़ का एक पुलिंदा निकाला। पन्ने उलट कर मैंने कहा—यह [तो] बहुत लम्बी वक्तृता है।

"तो हानि क्या है? सब पत्रों में इसकी रिपोर्ट छपेगी और आप एक ही दिन में प्रसिद्ध हो जायँगे।"

"मैंने सोचा कि मेरे लिए तो यह लार्ड बैरन का-सा मामला होगा।"

उन काग़ज़ों को लेकर मैं पढ़ने लगा। परन्तु लिखावट बड़ी घसीट थी। इससे मुझे बड़ी कठिनाई मालूम पड़ने लगी।

निताई ने उन काग़ज़ों को मेरे हाथ से ले लिया। उसने कहा—ज़रा खींच कर लिखने की मेरी आदत है। मैं पढ़ कर आपको सुनाये देता हूँ।

वह तुरन्त ही पढ़ने लगा। उसकी आकृति पर इतना तेज था कि मैं उसके पास से हट कर ज़रा दूर चला गया। उसकी कण्ठ-लहरी से घर के बच्चे आकर्षित होगये। जो लोग उस सड़क से जा रहे थे वे भी खड़े होकर उसका व्याख्यान सुनने लगे। मैंने कहा—निताई बाबू, यह सार्वजनिक सभा नहीं है। आप यह व्याख्यान मेरे सुनने के लिए पढ़ रहे हैं, न कि सड़क के यात्रियों के लिए।

निताई ने उत्साह-पूर्वक इसका विरोध करके कहा—जिस तरह सभा में बोलना होता है, ठीक उसी तरह यह व्याख्यान मुझे यहाँ भी पढ़ना चाहिए। अन्यथा यह प्रभावशाली कैसे होगा?

"परन्तु आपका-सा न तो मेरे गले में ज़ोर है और न सार्वजनिक सभा में बोलने का मुझे अभ्यास ही है।"

"बहुत अच्छा, अब मैं अपना स्वर कुछ धीमा कर दूँगा।"

चाहे वह धीमे स्वर से पढ़ता या ज़ोर से, मैंने निश्चय कर लिया कि अब निताई को पढ़ने से रोक दूँ। मैंने कहा—"अब आप आगे पढ़ने का कष्ट न कीजिए। परन्तु मैं यह जानना चाहता हूँ कि आप जो कुछ कह रहे हैं इसे आप घोर राजद्रोह नहीं समझते?"

"हो सकता है।"

"ऐसे ही व्याख्यान आप स्वयं भी दिया करते हैं?"

"मैं दे सकता हूँ या नहीं, इस सम्बन्ध में कुछ विचार नहीं किया। यह व्याख्यान तो आपके लिए लिखा है।"

"परन्तु मुझे भी तो अपने लिए कुछ सोचना है।"

"तो क्या आप अनुत्साहित हो रहे हैं?"

"अत्यन्त उत्साहशील होने का यश मुझे नहीं प्राप्त है। परन्तु इस प्रकार बेवक़ूफ़ बनने का मैं कोई भी कारण नहीं समझता। मैं स्वयं जो कुछ कहूँ उसके लिए राजद्रोह का मामला चलाया जाय तो मैं तैयार हूँ। परन्तु दूसरे की लिखी हुई बातों को उगल कर मैं व्यर्थ में नहीं फँसना चाहता।"

"तो क्या जो भाषण मैंने लिखा है उसे आप न पढ़ेंगे?"

"आप इन काग़ज़ों को मेरे पास छोड़ जाइए। मैं फिर विचार करूँगा।"

निताई ने काग़ज़ों को रख दिया और क्रुद्ध होकर सीढ़ी से नीचे उतर गया।

( ३ )

सभा में बड़ी भीड़ थी। स्वयंसेवकों के साथ मैं जैसे ही वहाँ पहुँचा, प्रशंसा की बाढ़-सी आगई। मेरे सभापति निर्वाचित किये जाने पर लोगों को और भी अधिक प्रसन्नता हुई। मैंने स्वयं अपना भाषण लिखा था और उसे याद भी कर लिया था। किसी प्रकार सब विचारों को मैंने प्रकट कर दिया। भाषण समाप्त करके जब मैंने अपना आसन फिर ग्रहण किया तब जनता में थोड़ा-बहुत उल्लास था, किन्तु उत्साह नहीं था। सभा-भङ्ग होने पर मैंने देखा कि निताई समीप ही खड़ा है और क्रुद्ध दृष्टि से मेरी ओर देख रहा है। जैसे ही मैं वहाँ से चलने लगा, किसी नेता ने आकर कहा कि प्रारम्भिक अवस्था में आपका यह भाषण ख़राब नहीं कहा जा सकता। यदि आप अभ्यास बढ़ाते जायँगे तो एक अच्छे वक्ता बन सकते हैं।

दूसरे ही दिन सवेरे ही भिन्न-भिन्न समाचार-पत्रों में भिन्न-भिन्न प्रकार की टिप्पणियाँ प्रकाशित हुईं। देशी पत्रों की राय थी कि मेरे समान व्यक्ति से इससे अधिक निर्भीक और स्पष्ट वक्तृता की आशा नहीं की जा सकती थी। एंग्लो इंडियन पत्रों ने असहयोगियों में मेरे सम्मिलित होने पर आश्चर्य प्रकट किया। उनका कथन था कि मैंने बड़ी ख्याति के साथ सरकार की नौकरी की थी, अब उसके विरोधियों में सम्मिलित होना कृतघ्नता है। नरमदल का होकर भी मेरे भाषण की भाषा बहुत ही आपत्तिजनक थी।

दूसरे दिन गवर्नर के प्राइवेट सेक्रेटरी का एक पत्र मिला। उसमें लिखा था—

प्रिय रायबहादुर,

कृपया कल साढ़े दस बजे सुबह आकर मुझ[से] मिलिए।

यह साधारण तौर से प्रसिद्ध है कि योरपी[य] लोग पदवीधारी भारतनिवासियों के सिरनामे [में] केवल पदवी का ही उपयोग करते हैं नाम का नहीं। पदवी की आड़ में नाम बिलकुल छिप जाता है। साथ ही जिन लोगों को ऐसे पत्र मिलते हैं [वे] प्रसन्न भी ख़ूब होते हैं। यदि कोई व्यक्ति रा[य]बहादुर या ख़ानबहादुर बना दिया जाता है तो क्या उसका माता-पिता का रक्खा हुआ नाम लुप्त [हो] जाता है? अँगरेज़ी पदवियों के सम्बन्ध में [यह] बात नहीं है। अर्थात् जिसे नाइट की उपाधि [दी] जाती है उसके सिरनामे पर पत्र में 'सर नाइट' [नहीं] लिखा जाता। यह पहला ही अवसर था [कि] नाम छोड़ कर केवल उपाधि से किसी का सम्बो[]धन करना मुझे अनुचित मालूम पड़ा।

नियत समय से कुछ पहले ही मैं गवर्न[मेंट] हाउस में पहुँच गया। प्राइवेट सेक्रेटरी का स[हा]कारी एक बंगाली था। उसने एक व्यङ्ग्यात्मक हँ[सी] हँस कर कहा—कहिए रायबहादुर साहब, [अब] आज-कल आप नये दल के नेता बन गये हैं?

मैंने कुछ रुखाई के साथ उत्तर दिया—तो क्या मैंने कुछ अनुचित किया है?

"मगर से वैर करके आप जल में नहीं र[ह] सकते।"

"क्या जल मगर का ही है?"

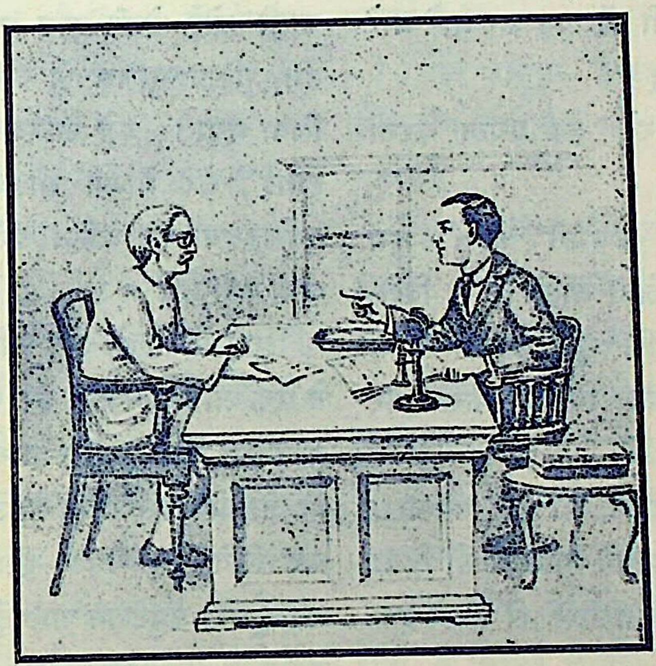
लालकोट पहने हुए एक चपरासी ने आकर कहा—साहब ने आपको सलाम कहा है।

मैं साहब के पास गया। उचित अभिवादन के बाद उसने मुझे बैठने को कहा।

साहब की ओर मुँह करके मैं बैठ गया। मेज़ पर कुछ समाचार-पत्र पड़े थे। उनमें से एक पत्र उठाकर साहब ने उसके एक पैरे पर हाथ रखकर एक रूखी हँसी हँस कर पूछा—यह आपका भाषण है?

"हाँ साहब।"

"भाषण बहुत बुरा तो नहीं है, किन्तु बिलकुल सरकार के अनुकूल नहीं है। आप बहुत दिनों तक सरकार के कर्मचारी थे। पदवी के द्वारा सम्मानित भी किये जा चुके हैं। इस दशा में साम्राज्य-विरोधियों के दल में आपका सम्मिलित होना उचित नहीं है।



[ मैं अपनी उपाधि वापस कर रहा हूँ ]

जेब से अपना उपाधि-पत्र निकाल कर मैंने प्राइवेट सेक्रेटरी के सामने मेज़ पर रख दिया और कहा कि मैं अपनी उपाधि वापस कर रहा हूँ। सरकारी सेवा में बहुत दिन कर चुका, अब वृद्धावस्था में मातृभूमि की सेवा करूँगा।

कुछ क्षण टकटकी लगा कर प्राइवेट सेक्रेटरी मेरी सनद को देखता रहा। अन्त में उसने रोष से कहा—जिन लोगों में योग्यता होती है, सरकार उन्हें पुरस्कार देती है, साथ ही जो लोग उन्हें तंग करते हैं उन्हें वह दंड भी देती है।

मैंने तुरन्त ही उत्तर दिया—मैं दंड के लिए तैयार हूँ। यह कहकर तुरन्त ही उठ खड़ा हुआ और कमरे से बाहर चला आया।

जब मैं गाड़ी में बैठ गया तब मेरे हृदय में यह बात आई कि मैंने बहुत जल्दी कर दी। बिना सोचे-समझे मैं कोई भी काम नहीं करता हूँ। फिर इन लोगों को व्यर्थ में इतना रुष्ट क्यों कर दिया। राज-द्रोह का दण्ड झेलने के लिए मेरे प्रयत्न करने की कोई सम्भावना नहीं थी,

क्योंकि स्वभाव से मैं इसका विरोधी था। नेता बनने की अभिलाषा मेरे हृदय में नहीं थी। इस दशा में गवर्नमेंट-हाउस में जाकर प्राइवेट सेक्रेटरी से झगड़ा करने में मुझे क्या लाभ था?

घर पर आकर जब मैं जलपान करने लगा तब मेरा चेहरा बहुत उदास था। मेरी स्त्री ने कहा कि बुढ़ापे में तुम्हें यह सब क्या सूझा है?

"कुछ तो नहीं। सूझा क्या है?"

"व्यर्थ की पागलपन्थी में पड़ कर मारे मारे फिरने से तुम्हें क्या लाभ है?"

"देश की दशा सुधारने का प्रयत्न करना पागलपन्थी है?"

"तो इसे तुम क्या समझते हो? तुम ब्रिटिश सरकार से मोहरा लेना चाहते हो? विशेषतः ऐसी दशा में जब कि तुम उसका नमक खा चुके हो, तुम उसका विरोध कैसे कर सकोगे?"

"ब्रिटिश सरकार ने हमारे ही देश का पैसा तो हमको दिया है, कुछ अपने गाँठ से तो दिया नहीं, तिस पर भी वह इस वसीले से सारे देश को चूसे ले रही है।"

"ऐसे विचार तुम्हारे हृदय में पहले कभी नहीं उत्पन्न हुए। बुढ़ाई के कारण तुम्हारी बुद्धि क्षीण सी हो गई है। किसी दिन जेल में ठूँस दिये जाओगे।"

"तो इससे क्या होगा? देश के बहुत से बड़े बड़े आदमी जेल गये हैं।

"अच्छा, तो क्या तुम भी जेल की चक्की पीस कर बड़े आदमियों में नाम लिखाना चाहते हो?"

जब मैंने देखा कि ये बातें समाप्त नहीं होना चाहतीं तब उत्तर देना बन्द कर दिया और चुपचाप अपनी बैठक में चला आया। मैंने इस बात को ख़ूब अच्छी तरह से अनुभव किया कि देशभक्त बनना कोई आसान काम नहीं है। अभी तक एक वक्तृता देने के अतिरिक्त मैंने और कुछ भी नहीं किया था। इस वक्तृता में भी बहुत मुलायम शब्दों में सरकार का विरोध किया था, भड़काने वाली कोई ऐसी बात नहीं थी। केवल इतने में ही ख़ुफ़िया-पुलिस के ब्लैकबुक में मेरा नाम लिख लिया गया। बड़े साहब की भी पुतलियाँ गर्म होगईं, घर में स्त्री भी चढ़ रही है। हम जैसे दुर्बलहृदय का कठिन परीक्षा में ठहरना आसान काम नहीं है।

कुछ दिनों के बाद चीफ़ प्रेसीडेंसी मजिस्ट्रेट ने एक आर्डर निकाल कर सारी सार्वजनिक सभायें बन्द कर दीं। साथ ही यह भी घोषणा की गई कि जो लोग इस आज्ञा का उल्लङ्घन करेंगे वे गिरफ़्तार कर लिये जायँगे। इसके बाद ही मेरे पास एक दूसरा डेपुटेशन आ पहुँचा। इसका उद्देश था मजिस्ट्रेट की आज्ञा का विरोध करना। उन लोगों ने कहा कि सभा करके हम लोगों को यह सूचित कर देना चाहिए कि यह आज्ञा न्याय-विरुद्ध है और इसे मानने के लिए हम तैयार नहीं हैं।

इस काम में हाथ डालने की मुझे ज़रा भी इच्छा न हुई। सभा में सम्मिलित होते ही जब गिरफ़्तार करके लोग जेल भेज दिये जायँगे तब सभा करने से लाभ ही क्या हो सकता है। डेपुटेशन के सदस्यों ने मुझसे कहा कि इस प्रकार की आज्ञा

निकालना एक प्रकार का अत्याचार करना है। इसके विरोध का सबसे अच्छा उपाय है इसका उल्लंघन करना। बिना किसी लाभ की आशा के जेल जाना मुझे नहीं पसंद आया। अतएव सभा में उपस्थित होने के लिए सहमत नहीं हुआ।

डेपुटेशन के प्रधान ने कहा—हमने समझा था कि आपमें कुछ साहस है और देश के लिए कुछ त्याग करने पर तैयार हो सकेंगे, परन्तु यह हमारा भ्रम था। किसी के जीवन भर की आदत कैसे छूट सकती है? कहीं कोई रायबहादुर भी सरकार का विरोध कर सकता है?

डेपुटेशन रोष के साथ मेरे यहाँ से चला गया। मैं पार्टी से अलग कर दिया गया। मेरी दशा ठीक धोबी के कुत्ते की सी हुई, जो न घर का होता है और न घाट का। साहब लोगों को मुँह दिखाने लायक़ न रहा, घर पर स्त्री भी मुश्किल से बोलती, अन्त में देशभक्तों की श्रेणी से भी नाम कट गया।

दूसरे दिन के समाचार-पत्र में एक चिट्ठी प्रकाशित हुई। उसमें स्पष्ट रूप से मेरा मखौल उड़ाया गया था। लेखक ने लिखा था कि जिस तरह चीते के दाग़ नहीं मिटाये जा सकते, वैसे ही सरकारी नौकरी के भी।

घर पर चित्त बहुत खिन्न रहता था, इसलिए थोड़े दिनों तक मैंने अपने एक मित्र के यहाँ जाकर रहने का निश्चय किया। उनका नाम था बाबू हर-प्रसाद। वे इंजीनियर थे। साहबी ढंग के आदमी थे। मेरा बहुत दिनों का उनका सम्पर्क था, इसलिए उन्हीं के बँगले पर जाकर मैं उतरा। कुछ इधर-उधर की बात-चीत के बाद उन्होंने पूछा—कहो भोलानाथ, आज-कल समाचार-पत्रों में प्रायः कुछ न कुछ पढ़ने में आता है। यह सब क्या मामला है? आज-कल आपके विचार कैसे हो गये हैं?

"कोई ऐसी बात नहीं है। उन लोगों ने मुझे नये दल में मिलाने का प्रयत्न किया था।"

"परन्तु आप एकाएक देशभक्त कैसे हो गये? आप तो गवर्नमेंट के आदमी हैं। आपको रायबहादुर की उपाधि मिली है। फिर ऐसी भूल का क्या कारण है?"

"यदि संसार के सभी राष्ट्र स्वतंत्र हैं तो हमीं लोग सदा इस स्वतंत्रता से क्यों वञ्चित रक्खे जायँ?"

"आपके दिमाग़ में यह विचार कहाँ से उत्पन्न हुआ? जब सरकार की नौकरी करते थे तब क्या कभी स्वतंत्रता का ख़याल आया था?

"तो क्या कोई ऐसी बात है जिसके कारण मैं देश के सम्बन्ध में कुछ भी चिन्ता न करूँ?"

"इस काम के लिए और बहुत-से लोग हैं, इससे हमसे आपसे क्या मतलब?"

हम लोगों में यही सब बातचीत हो रही थी। इतने में मिस्टर चौधरी भी आ पहुँचे। ये एक डिप्टी कलक्टर थे। हरप्रसाद ने उनसे मेरा परिचय करा दिया। उक्त महोदय ने दृढ़ता के साथ मेरा हाथ पकड़ कर हिलाते हुए ज़ोर से कहा—ओह, आपके सम्बन्ध में बहुत कुछ बातें मालूम हुई थीं। आप एक नये नेता हैं।

"यह सब यों ही था। नेता होना तो दूर रहा, जैसे ही मैं उस दल में सम्मिलित हुआ, वैसे ही निकाल भी दिया गया।"

"वाह, यह अच्छा हुआ। अब आपके लिए यही सबसे अच्छा है कि अपनी पुरानी पार्टी में ही डटे रहिए।"

इधर-उधर की दो चार बातें और करके मैं चुप हो गया। प्राइवेट सेक्रेटरी से मुझसे क्या क्या बातें हुई, मैंने रायबहादुर की सनद किस तरह वापस कर दी, इस सबकी चर्चा नहीं की।

साँझ को हरप्रसाद मुझे अपने क्लब में ले गये। वहाँ कुछ लोग 'ब्रिज' खेल रहे थे। उन लोगों को थोड़ी देर तक मुझ पर बड़ा क्रोध आता रहा। परन्तु अन्त में जब उन्हें मालूम हुआ कि मैं गवर्नमेंट का विरोधी नहीं हूँ तब उन लोगों का सारा रोष जाता रहा, और मुझसे सन्तुष्ट हो गये।

दो दिन के बाद हरप्रसाद ने कहा कि आज साँझ को श्रीमलिक का मेरे यहाँ निमन्त्रण है।

मैंने पूछा—मलिक कौन हैं?

"वे बैरिस्टर हैं। क़ानून के बड़े भारी विद्वान् हैं, प्रैक्टिस भी ख़ूब चलती है। एक अँगरेज़ महिला के साथ उन्होंने विवाह किया है। आज वे सपत्नीक मेरे यहाँ भोजन करने आवेंगे।"

"मलिक ने अँगरेज़ महिला के साथ विवाह किया है?"

"अजी नहीं। इसी देश में वह पहले एक अँगरेज़-परिवार में कुछ काम-धाम किया करती थी, पीछे से मलिक ने उसके साथ विवाह कर लिया। आज शाम को आप ज़रा कोट-पायजामा पहन लीजिएगा।"

"क्यों यदि धोती पहने रहूँगा तो क्या हा[नि] होगी?"

"देखिए, चाहे कैसी भी हों, श्रीमती म[लि]क अँगरेज़ महिला ही हैं। धोती पहन कर उ[नके] साथ भोजन करना ज़रा अच्छा नहीं लगता।"

यह बात मुझे बहुत बुरी लगी। मैंने कहा—हमारे पिता-पितामह सदा से धोती पहनते [चले] आये, परन्तु आज एक अँगरेज़ महिला का स्वा[गत] करने के लिए आपको धोती बुरी मालूम पड़ र[ही] है। इस एक साधारण स्त्री की बात तो ज[ाने] दीजिए, यदि लाट साहब भी अपनी मेम को ले[कर] आजायँ, मैं चाहे किसी के भी घर पर रहूँ, धो[ती] छोड़ कर और कुछ नहीं पहन सकता।

हरप्रसाद भौचक्का-सा रह गया। उसने कहा—आप तो हद से ज़्यादा पुराने विचार के आदमी हैं। धोती पहन कर उनके साथ आप कैसे भोजन करेंगे?

"न तो उनके साथ भोजन करने की मु[झे] लालसा है और न उनसे मिलने को ही उत्सुक हूँ। मैं अलग कमरे में बैठ कर भोजन करूँगा। आप[का] अँगरेज़ी खाना भी मुझे पसंद नहीं है। मैं ब्राह्म[ण] से बनवा लूँगा।

उस दिन न तो मैंने अँगरेज़ी खाना खा[या] और न मलिक दम्पति से मिला। दूसरे दिन [मैं] लौट आया।

देशभक्तों की श्रेणी में नाम लिखाने को मैंने फि[र] कभी नहीं प्रयत्न किया।*

—रामावतार शर्मा

* श्रीयुत नगेन्द्रनाथ गुप्त की एक कहानी।

# स्वराज्य-संग्राम में असहयोग-आन्दोलन का स्थान

[इस लेख में लेखक ने यह दिखाया है कि स्वराज्य-संग्राम में असहयोग का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है, साथ ही यह भी बताया है कि पाश्चात्य प्रभावों ने भारतीय जीवन की सरलता को खोकर उसे ऐसा कृत्रिम बना दिया है कि वह असहयोग के तेजस्वी रूप को धारण नहीं कर सकता। भारतीय राजनीतिज्ञों के सामने यह एक विषम समस्या है। इस अन्धकार में आशा की भी एक किरण है और वह यह कि भारतीय जीवन में जिस लालसा और अधिकार-कामना का प्रवेश होगया है वह भारतवासियों को निश्चेष्ट भी न बैठने देगा और कभी क्रान्ति और कभी अहिंसात्मक असहयोग—इन्हीं दो कूलों के मध्य में होकर स्वराज्य-लालसा की नदी प्रवाहित होगी।]

प्रत्येक राज्य-विधान का उद्देश यही है कि उससे उन लोगों के दैनिक जीवन में सुविधा हो जिनके कर से उस राज्य-विधान के अस्तित्व की रक्षा की जाती है। यह एक सीधी सी बात है कि जिससे जिस काम के लिए पैसा लेते हो उसका वह काम संतोषजनक रीति से करो। साथ ही यह भी एक साधारण समझ-दारी की बात है कि जिसका काम पूरा न होगा वह किसी को पैसा क्यों देने लगा। अतएव प्राकृतिक नियमों की दृष्टि से यह सर्वथा वैध है कि जब राज्य-विधान-विशेष प्रजा की आवश्यकताओं की पूर्त्ति न कर सके तब करबन्दी की घोषणा करके वह उसके अस्तित्व को असम्भव कर दे। करबन्दी के अतिरिक्त राज्य-विद्रोह और रक्तपात भी एक उपाय है। यदि उद्देश उत्तम हो तो आवश्यकतानुसार किसी अधम उपाय का अवलम्बन भी क्षम्य समझा जा सकता है। इस दृष्टि से रक्तपात और शान्तिभंग-द्वारा यदि समाज में सुव्यवस्था और धर्म की स्थापना हो तो वह भी नितान्त गर्हित नहीं माना जा सकता। परन्तु प्रगतिशील मानव-समाज के लिए यह कोई आदर्श नहीं है। हाँ, यदि शान्ति-भंग न करते हुए, किसी को किसी प्रकार का कष्ट न देते हुए कोई जाति

त्याग, कष्ट-सहन और धैर्य-द्वारा राज्य-विधान में परिवर्तन करा ले तो यह उसके लिए प्रशंसा और औरों के लिए अनुकरण की बात हो। भारत के शासन में अनेक त्रुटियाँ देखकर महात्मा गांधी ने गत सन् १९२१ में इसी प्रकार के आदर्श शान्ति-पूर्ण असहयोग का सूत्र-पात किया था। उस आन्दोलन से 'सरस्वती' के प्रायः सभी पाठक परिचित होंगे। उसी के सम्बन्ध में यहाँ दो एक बातें बताना इस छोटे से लेख का उद्देश है।

अधिकांश लोगों की समझ में असहयोग-आन्दोलन सफल नहीं हुआ। कुछ के मतानुसार इस असफलता का कारण उसमें निहित तत्त्व की अपूर्णता है, किन्तु कुछ महानुभावों की सम्मति यह है कि असहयोग के असफल होने का केवल एक ही अर्थ है और वह यह कि उसके अपूर्व तेज को अशक्त भारतीय समाज नहीं धारण कर सका। जो हो, असहयोग को तात्त्विक दृष्टि से त्रुटि-पूर्ण और अव्यावहारिक कहने का अधिकार केवल उन लोगों को है जिनके हृदय में गम्भीर देशानुराग के अतिरिक्त अन्य किसी लालसा का प्राबल्य नहीं है। जो देशभक्ति को भी अपने किसी अन्य लक्ष्य की सिद्धि के लिए साधन-स्वरूप बनाना चाहते हैं वे स्वार्थ-बुद्धि से प्रेरित होने के कारण पग पग पर दुर्बलता का अनुभव कर सकते हैं और अपनी प्रत्यक्ष हानि देखकर यदि उसका विरोध करें तो उसका कोई मूल्य नहीं। असहयोग की परीक्षा की केवल एक ही कसौटी है और वह यह कि अपना सर्वनाश हो जाने पर भी अविचलित रहने को तैयार एक निरस्त्र प्रजा उसे साधन बनाकर किस हद तक राज्य-विधान के परिवर्तन में सफल हो सकती है।

स्वराज्य के लिए प्रयत्न करनेवाले भारतीय राज-नीतिज्ञों के कई दल हैं। नरमदल का कहना यह है कि क़ानून के भीतर रह कर शासकों से सुधार माँगो। इस दलवाले वैसी ही राजनीति के सेवक हैं जैसी राजनीति सुन्दर सुसज्जित कमरों में, आरामकुर्सी पर बैठे-बैठे सम्भव है। सच बात यह है कि नरमों की राजनीति एक फटकार में पूँछ दबा लेती है। किन्तु इसी त्रुटि के कारण नरमदल की राजनीति की तीव्र निन्दा नहीं की जा सकती। प्रत्येक पराधीन राष्ट्र के जीवन में एक ऐसा समय आ सकता है जब वह शक्ति और आत्म-विश्वास से वंचित हो जाय। जिन दिनों भारतीय राष्ट्रीय महासभा की स्थापना हुई थी उन दिनों साधारण सुविधायें माँगने के अतिरिक्त उसके द्वारा किसी अन्य प्रकार के प्रस्ताव की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। परिस्थिति की विवशता को व्यक्त करने के अतिरिक्त भी नरमदल की एक उपयोगिता है और वह है अत्यधिक उत्साही देशभक्तों को समय समय पर नियन्त्रण की आवश्यकता का अनुभव कराना। हर्ष की बात है कि इस देश के नरमदल के नेताओं ने हृदय की अपेक्षा बुद्धि को अधिक महत्त्व प्रदान करते रहने पर भी देश के कार्यों में कभी बहुत बड़ा अड़ंगा नहीं लगाया है।

गरमदल की राजनीति नरमदल की राजनीति से थोड़ी भिन्न है। गरमदलवाले नरमों की अपेक्षा अधिक देशभक्त और अधिक उत्साही होने का कम से कम बाह्य प्रमाण तो प्रस्तुत कर देते हैं। रानाडे

और गोखले के स्वदेशानुराग पर किसी को सन्देह नहीं हो सकता। किन्तु औसत श्रेणी के एक नरम और एक गरम राजनीतिज्ञ को लीजिए, दोनों की तुलना करने पर यह स्पष्ट हुए बिना न रहेगा कि जहाँ गरमदलवाले की कार्य्य-पद्धति जनता की कल्पना को अधिक उत्तेजित करनेवाली है वहाँ साथ ही साथ उसमें त्याग और उत्साह की मात्रा भी अधिक है। असहयोग के पहले गरमदलवालों का देश में बड़ा प्रभाव था। इसका कारण स्पष्ट है। उग्र लेखों और भाषणों से एक संहारात्मक शक्ति का आविर्भाव होता है जो लोगों के चित्त को अपनी ओर आकर्षित कर लेती है। परन्तु अधिकतर गरमदलवाले इस बात की ओर कम ध्यान रखते हैं कि उक्त शक्ति को रचनात्मक दिशाओं में प्रयुक्त करने से ही समाज को कुछ लाभ हो सकता है, अन्यथा केवल विषाद की वृष्टि करके वह सदा के लिए लुप्त हो जायगी। गरमदलवाले गरजना जानते हैं, बड़े बड़े व्याख्यान देना जानते हैं और प्रायः अपने विचारों और भाषणों वा लेखों के कारण जेल तक जाते हैं। किन्तु, क़ानून की पाबन्दी कराने के लिए स्थापित न्यायालय, झूठ को सच और सच को झूठ बनानेवाली पुलिस और समृद्धिशाली सरकारी गुप्तचर-विभाग गरम से गरम देशभक्त को भी हैरान करके प्रायः ठंढा कर देते हैं। नैराश्य और कष्ट से टकरा कर संहारात्मक उत्साह प्रायः शून्य में विलीन हो जाता है, उसका कुछ परिणाम नहीं निकलता।

गरमदल के अतिरिक्त एक दल क्रान्तिकारियों का है जो रक्तपात-द्वारा विदेशी शासन का विध्वंस करना चाहता है। ब्रिटिश-साम्राज्य का संगठन देखते हुए भारतवर्ष में अँगरेज़ी सत्ता को निर्मूल करने का उसका दुर्बल प्रयत्न कभी सफल हो सकेगा, इसमें तो बहुत बड़ा सन्देह है। किन्तु शायद उस दल का ख़याल है कि 'टेढ़ जानि शंका सब काहू' वाली कहावत के अनुसार उसके उग्र प्रयत्नों से किंचित् सशंक होकर सरकार कम से कम उन सुधारों को स्वीकार कर लेना उचित समझेगी जिन्हें माँगने में नरमदलवाले नरम और गरमदलवाले गरम भाषा का प्रयोग करते हैं।

असहयोग-आन्दोलन इन सबसे भिन्न है। उसने मानव-समाज के सम्मुख एक बहुत ऊँचा और प्रभावशील आदर्श रखने की चेष्टा तो की ही है, साथ ही भारतीय राजनीति में युगान्तर भी उपस्थित किया है। सबसे पहली बात जो इस आन्दोलन ने की वह यह कि इसने व्याख्यानों और लेखों में समय समय पर प्रकट किये जानेवाले असन्तोष को खरी और स्पष्टतापूर्ण अभिव्यक्ति प्रदान की है। किसी बात को गोल-मोल ढंग से कहने का तो जैसे फ़ैशन ही जाता रहा। इससे दलित जन-समूह में एक प्रकार की जीवनी शक्ति का सञ्चार होगया। बेचारे नरमदलवाले, जो फूँक फूँक कर क़दम रखने के आदी थे, उक्त स्पष्टता से एकाएक घबरा से उठे। भारत में शैतानियत का राज्य है, मैं रामराज्य स्थापित करना चाहता हूँ—इस हद तक तो नरमदलवालों की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। निकट भविष्य में सत्याग्रह और असहयोग के कारण भयंकर उत्पात-उपद्रव की भीषण कल्पना करके वे सहम उठे।

असहयोग का सूत्रपात किये जाने पर बड़े बड़े गरम नेताओं और कार्य्यकर्त्ताओं की रंगत भी खूब देखने में आई। उनमें से इने-गिने ही ऐसे निकले जिन्होंने गम्भीरतापूर्वक देश-सेवा करने का विचार किया था। शेष के सामने वास्तविक त्याग की एक बहुत बड़ी समस्या खड़ी हो गई। जिन लोगों ने सदैव बड़े लम्बे-चौड़े व्याख्यान दिये थे उनसे जनता पूछने लगी—तुममें कितना त्याग है? लम्बी हाँकना छोड़कर अब यह बताओ कि तुम्हारे हृदय में कितनी वेदना है? व्याख्यान मूक होगये, लेख ठण्डे पड़ गये। असहयोग ने भी संहारात्मक प्रवृत्तियों को उभाड़ा, परन्तु वहाँ रचनात्मक त्याग का इतना बड़ा तक़ाज़ा था कि बड़े बड़े पोढ़े कलेजे के देशभक्त भी डगमगा गये। असहयोगी होकर गरजना आल्हा-ऊदल के समय के क्षत्रियों की तरह प्राणों की बाज़ी लगाकर विवाह करना था। इस प्रकार यह निर्विवाद है कि यदि हम औसत श्रेणी के नरम, गरम, क्रान्तिकारी और असहयोगी कार्य्यकर्ताओं की तुलना करें तो असहयोगी में अधिक त्याग, सरलता, दूरदर्शिता और देश-भक्ति देखी जायगी। सब दलों के प्रतिनिधि-रूप व्यक्तियों के विचारों और कार्य्यों की आलोचना करने से यह स्पष्ट हो जायगा कि जहाँ पहला दल वस्तुतः कुछ नहीं करना चाहता, दूसरा दल शब्दाडम्बर से आगे खिसकने को नहीं तैयार है, और तीसरा दल चट्टान से सिर टकराना चाहता है वहाँ चौथा दल कुछ ऐसी बात कर गुज़रना चाहता है जिससे वर्तमान सरकार के सामने एक समस्या खड़ी हो जायगी और यदि सरकार को अपना अस्तित्व बनाये रखना है उसे प्रजा की कठिनाइयों को दूर करने का गम्भी[र] प्रयत्न भी करना पड़ेगा।

राजनीति में प्रार्थनाओं का कोई मू[ल्य] नहीं, और जिन राजनीतिज्ञों के हाथ से [श]क्ति छीननी है वे यह अच्छी तरह जा[नते] हैं कि गरजनेवाले बादल बरसते नहीं। वे केवल इस प्रकार के आन्दोलन से डर सकते [हैं] जिसका आशय है—हमारी बात तुम्हें माननी [ही] पड़ेगी, न मानोगे तो तुम्हारी ही हानि है। असहयोग में जहाँ अनुनय-विनय नहीं है, व[हाँ] गर्जन-तर्जन भी नहीं है, परन्तु है प्रचण्ड दृढ़ता क्योंकि उसका उद्भव एक ऐसे उदार हृदय और उ[न्नत] मस्तिष्क के विशुद्ध चिन्तन का परिणाम [है] जो अपने लक्ष्य पर अच्छी तरह कटिबद्ध होक[र] सरल और निष्काम भाव से उसकी सिद्धि के लि[ए] प्रयत्न करता है, जिसमें न सांसारिक सुखों [की] आसक्ति है और न जिसमें गर्व का भाव है। इस दृढ़ता में, इस संकल्प में, इस शान्त, अवि[चलित], निरपेक्ष ललकार में एक चरित्र-बल है जिसके बिना स्वराज्य मिलने का कोई अर्थ नहीं। क्रान्तिकारी-दल लोगों में इस चरित्र-बल क[े] विकास करने की ओर ध्यान न देकर उस मा[ली] की तरह ग़लती कर रहा है जो पौधे के मूल क[ो] सींचकर उसके पत्तों को हरा नहीं बनाता, बल्कि पीले जर्जर पत्तों को तोड़ कर हरे पत्तों का मनोहर दृश्य प्रस्तुत करना चाहता है। हमारी समझ [में] शान्तिपूर्ण असहयोग ने देश में जितनी बड़ी क्रान्ति उपस्थित कर दी है उतनी बड़ी क्रान्ति स[शस्त्र]



स्वर्गीय देश-बन्धु चित्तरञ्जन दास

क्रान्तिकारी दल नहीं उपस्थित कर सका है। और, असहयोग के आलोचक उसे असफल भले ही कहें, किन्तु उसके सम्बन्ध में यह सदैव आदर के साथ कहा जायगा कि उसने सरकार को कठिनाई में डाल दिया और यदि जनसमूह ने उसके कठोर अनुशासन-प्रिय तपस्वी प्रवर्त्तक की आज्ञाओं का पूरा पूरा पालन किया होता तो सरकार को हारना ही पड़ता।

भारत के राजनैतिक उद्धार के लिए प्रयत्नशील चार प्रधान दलों की संक्षिप्त चर्चा करने के अनन्तर अब हम अपने मुख्य प्रश्न का उत्तर देने की चेष्टा करेंगे—स्वराज्य-संग्राम में असहयोग-आन्दोलन का क्या स्थान है? भारतीय राजनीति के वर्तमान प्रौढ़ वय में प्रार्थना और अनुनय-विनय की नीति की तो चर्चा ही व्यर्थ है। उसके दिन चले गये और यह भारत का सौभाग्य है कि उसका जीवन अधिक दीर्घ नहीं हुआ। गरमदल का काम भी समाप्त होगया सा जान पड़ता है। असहयोग-आन्दोलन में जितनी वास्तविक उष्णता है उसके सामने गरमदल की सरगरमी ठंढी-सी हो गई है, और यद्यपि असहयोग जाग्रत नहीं है, तथापि वह किसी भी समय एक ललकार में जगाया जा सकता है। अतएव इन दो दलों में तो इतनी तेजस्विता नहीं है कि असहयोग और सत्याग्रह का सामना कर सकें। अब रह गया क्रान्तिकारी दल, सो उसके विरुद्ध सबसे बड़ा तर्क यह है कि यदि राज्य-विद्रोह सम्भव होता तो उचित परिस्थिति के उत्पन्न होने पर वह किसी के रोके न रुक सकता। सच बात यह है कि जिस जाति के पास शस्त्र नहीं है, वह जाति शारीरिक शूरता से रहित होकर कायरता की ओर ही प्रगति करती है। क्रान्तिकारी-दल हत्या और रक्तपात से सरकार को क्षण भर के लिए भले ही भयभीत कर दे, किन्तु न तो वर्तमान अवस्था में यह सम्भव है कि भारत की अधिकांश जनता उसका क्रियात्मक समर्थन करेगी और न यही आशा है कि उसका वर्तमान उद्योग, जिसे प्रायः असफलता और कठिनाई से ही सामना करना पड़ता है, देश के लिए विशेष कल्याणकर होगा। देश इस हद तक शक्तिहीन हो गया है कि उसके हृदय में उचित क्रोध का भी आविर्भाव नहीं होता। असहयोग के प्रवर्त्तक ने 'असहयोग' को सबल का अस्त्र बताया है, दुर्बल का नहीं। परन्तु सच बात यह है कि जिस समय इस आन्दोलन ने जन्म ग्रहण किया था उस समय भारतीय जनता किंकर्त्तव्य-विमूढ़ हो रही थी और कुछ ने तो असहयोग की तेजस्विता से मुग्ध होकर उसकी अनुयायिता स्वीकार कर ली थी, और कुछ ने यह आशा कर ली थी कि महात्मा गांधी अपने ही प्रयत्न से स्वराज्य प्राप्त कर लेंगे। इस दुर्बलता का परिणाम सफलता नहीं हो सकती थी। अब असहयोग-आन्दोलन पर निरन्तर चिन्तन और मनन करते रह कर सम्भव है, निकट भविष्य में ही हमारे देशवासी अपने स्वरूप को पहचानें और अपनी उन मस्तिष्क शिराओं में नवीन रक्त का संचार करके बल और ओज प्रदान करें जो सम्पूर्ण शरीर में स्फूर्ति और जाग्रति का सन्देश भेजती हैं। बल पाकर भी यदि भारतवर्ष ने उसे पशुबल न बनाया, यदि

वह गौरव-पूर्ण दिन आया जब कि शक्तिशाली होकर भी उसने अहिंसात्मक असहयोग का प्रयोग करके ही राज्य-विधान में परिवर्तन कराया तो वह निस्सन्देह विश्व के सामने गर्व करने योग्य दिन होगा।

परन्तु बहुत बड़ी कठिनाई तो यह है कि दासत्व के भावों से भरी हुई भारतीय राष्ट्रीयता इतनी शक्ति कहाँ से प्राप्त कर लेगी जो उसे अहिंसात्मक असहयोग को पूर्ण रूप में धारण करने के योग्य बनावे। जिस आत्मबल के आधार पर अहिंसात्मक असहयोग की भित्ति खड़ी हुई है वह वर्तमान परिस्थिति में कैसे विकसित होगा, यह एक बड़ी भारी समस्या है। प्रस्तुत समय में पाश्चात्य प्रभावों ने देश में अपने ही प्रति अविश्वास उत्पन्न कर दिया है और व्यक्तित्व में खोखलापन उत्पन्न करके जीवन को इतना कृत्रिम बना डाला है कि कोई जादू की लकड़ी ही हममें एकाएक हमारी सुप्त तेजस्विता को जाग्रत कर सकती है। रेल, तार आदि के प्रवेश ने जहाँ हमारे जीवन में अनेक सुविधाओं की सृष्टि की है वहाँ अनेक हानियाँ भी उत्पन्न की हैं। धीरे धीरे हमारा ग्राम-जीवन असन्तोषकर होगया है और सम्मिलित कुटुम्ब-प्रथा के अस्तित्व को बड़ा भारी धक्का लगा है। उद्योगवाद और यन्त्र-युग की वेगशील बाढ़ में परिश्रमी कृषकों ने अपनी स्वतन्त्रता को टकों पर बेच दिया है। संक्षेप में हमारे कहने का आशय यह है कि स्वतन्त्र व्यवसाय करते रहने पर, सम्मिलित कुटुम्ब-प्रथा के शक्तिशाली बने होने पर तथा पाश्चात्य जगत् की चकाचौंध कर देनेवाली भौतिक सभ्यता के वेगपूर्वक [illegible] न करने पर जिस स्वार्थ-त्याग की आशा भा[illegible] समाज से की जा सकती थी वह वर्तमान [illegible] में असम्भव नहीं तो कष्टसाध्य अवश्य [illegible]

साथ ही उस परिस्थिति की कल्पना करना [illegible]म्भव नहीं है जब सम्पूर्ण भारतीय जन-समूह [illegible] सांसारिक स्वार्थों की ही दृष्टि से संगठित [illegible] की ओर प्रवृत्त हो और जिस दिन यह स्वप्न [illegible] रूप में परिणत होगा उस दिन किसी भी [illegible] प्रिय शासकवर्ग का टिकना सम्भव नहीं र[illegible] परन्तु उस परिस्थिति का उत्पन्न होना तथा [illegible] नैराश्य-जात असहयोग का पूर्ण शक्ति के [illegible] संचालित किया जाना एक ऐसी बात है [illegible] ब्रिटिश कूटनीतिज्ञता, जो प्रायः अत्यन्त [illegible] भ्रामक मृदुता का रूप ग्रहण कर सकती है, [illegible] का रूप कभी न ग्रहण करने देगी।

प्रश्न यह है कि फिर क्या होगा। भार[illegible] ब्रिटेन के कृपण हाथों से किस प्रकार स्वराज्य[illegible] को निकाल सकेगा। भारतवर्ष के पास न सै[illegible] बल है और न चरित्र-बल अथवा आत्मब[illegible] फिर क्या इस पुण्यभूमि के ललाट में दासता [illegible] कलङ्क-टीका अमिट होकर लगी ही रहेगी? [illegible] प्रश्न का उत्तर देना भारत के बड़े बड़े राजनीति[illegible] का काम है। हमारी अल्पमति में तो भार[illegible] में वस्तुवाद के प्रवाह को रोकना अब [illegible] जान पड़ता है, इस प्रवाह को रोकने में यहाँ [illegible] जनता का विशेष कल्याण भी नहीं दिखाई देता, [illegible] करने से पाखण्ड ही की वृद्धि अधिक सम्भव [illegible] इसका अर्थ यह नहीं है कि सरल जीवन [illegible]

करने, मोटा कपड़ा पहनने, चरखा चलाने आदि की शिक्षा अनिष्टकरी है। नहीं, महापुरुषों का तो यह कर्त्तव्य है कि भटकते हुए जीवों को उत्तम पुरुषार्थ का ही उपदेश करें। किन्तु यह निश्चित है कि आत्म-विश्वास-शून्यता की इस भूमि में अध्यात्मवाद और मायावाद के लिए कुछ दिनों तक उपजाऊ क्षेत्र नहीं रहेगा। इस देश में धन की पिपासा, अधिकार की पिपासा, प्रतिष्ठा-प्राप्ति की पिपासा प्रबल रूप से परितृप्ति की अपेक्षा कर रही है। और यह प्रवृत्ति जहाँ एक ओर अहिंसात्मक असहयोग के मार्ग में अड़चनें खड़ी करेगी, सरकार के प्रलोभनों के सम्मुख नत-शिर हो जाने की दुर्बलता उत्पन्न करेगी, वहाँ सरकार से एक न एक रूप में लड़ते रहने की लालसा की भी सृष्टि करेगी। ऐसी दशा में जान पड़ता है कि कभी अहिंसात्मक असहयोग और कभी गुप्त षड्यन्त्र, इन्हीं दो कूलों के मध्य में भारत की स्वराज्य-लालसा की नदी प्रवाहित होगी। अन्तिम सफलता का श्रेय किसे प्राप्त होगा, यह बताना तो किसी भविष्यद्वक्ता का काम है, किन्तु इतना निश्चित है कि भारतीय जनता में आत्म-विश्वास का संचार करने, उसे अपनी क्षमता और अधिकार का ज्ञान कराने, उसमें निर्भीकता, राजनैतिक सच्चरित्रता, त्याग आदि के भाव भरने तथा उसकी दास मनोवृत्ति को मिटाने का श्रेय तो अहिंसात्मक असहयोग को ही प्राप्त होगा और वह आदर्श के रूप में बना रहे अथवा कार्य्य-रूप में परिणत किया जा सके, सब तरह से वर्तमान भारतीय जीवन में उसका अवतरण श्रेयस्कर कहा जायगा और उस अपूर्व पुरुष की अमर कीर्त्ति का कारण होगा जिसकी राग-रोष-रहित, दीन-दुःख-कातर और सत्य-निष्ठा-विशिष्ट कल्पना से उसने जन्म पाया है।

—गिरिजादत्त शुक्ल

# नव ग्रह

कोई देश गुलामी की ज़ंजीर से जकड़ कर सदैव के लिए नहीं रक्खा जा सकता। जब तक शासक और शासन-प्रणाली—चाहे वे देशी हों या विदेशी, दोनों देश के सम्मान का ख़याल रखते हैं, उसके व्यापार और कला-कौशल की रक्षा करते हैं और देश में अमन-चैन रहता है, तभी तक उन दोनों का जनता-द्वारा स्वागत होता है। परन्तु जब देश के व्यापार और कला-कौशल का ह्रास होने लगता है, जिससे देशवासी दिन प्रतिदिन दरिद्र होने लगते हैं और उनके भूखों मरने की नौबत आ पहुँचती है, तब अपनी स्थिति का उन्हें बोध होता है। उस समय देश में कुछ ऐसे लोगों का उदय होता है जो उसके उत्थान के लिए यत्नवान् होते हैं। १९ वीं शताब्दी के उत्तरांश का भारतीय इतिहास इसी बात का इतिहास है। इस काल में जिन महापुरुषों ने उसकी दैन्यावस्था का अनुभव करके उसकी स्थिति के सुधारने का अनवरत प्रयत्न किया है उनके त्याग के जीवन से भारत में नये प्राणों का सञ्चार हुआ है और यह उन्हीं के प्रयत्नों का सुपरिणाम है कि आज हम अपनी स्वराज्य-प्राप्ति की तैयारी कर रहे हैं। इस लेख में हम अपने वैसे ही स्वर्गगत कुछ महापुरुषों की कर्म-गाथा का पारायण करना चाहते हैं।

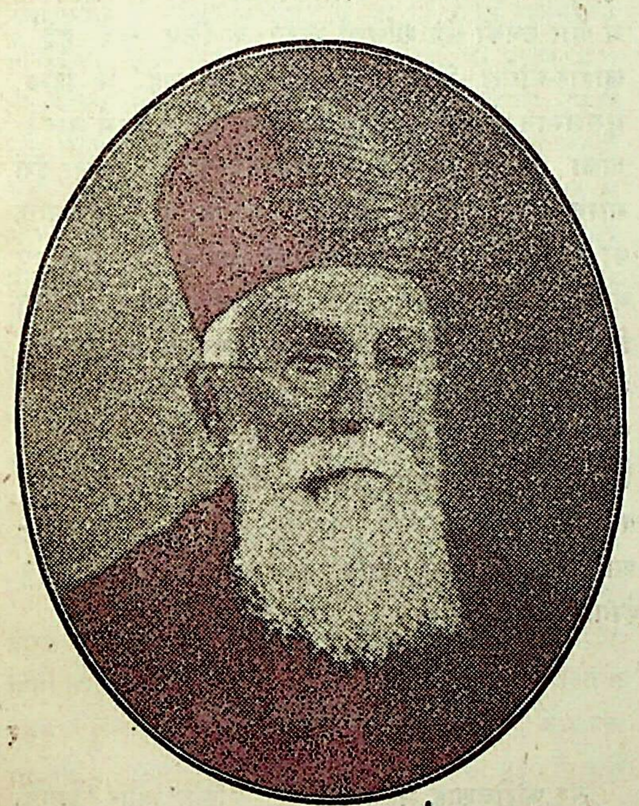
## दादाभाई नौरोजी

जो स्वराज्य हमारा इस समय ध्येय है उसकी माँग सर्वप्रथम दादा भाई नौरोजी ने सन् १९०६ में कलकत्ते की कांग्रेस में की थी। उनका जन्म सित[illegible] सन् १८२४ में एक पारसी वणिक्-परिवार में हु[आ] था। शिक्षा समाप्त करने पर भी नौरोजी ने अपनी जीवि[का] के लिए किसी सरकारी पद की आकांक्षा नहीं [की]। वे प्रतिभा-सम्पन्न पुरुष थे; चाहते तो सहज में कोई उच्च सरकारी पदाधिकारी हो जाते। परंतु [कि]से उन महापुरुष की गुप्त शक्तियों का पता था? कौन [उस] तिमिराच्छिन्न सूर्य के जाज्वल्यमान प्रकाश को जानता था? अपनी योग्यता से ही वे पार्लियामेंट तक के सदस्य निर्वा[चित] हुए थे। उनका जन्म ऐसे समय में हुआ था जब अंग्र[ेज] बचे-खुचे भारतीय भारत को भी अपनी राजनैतिक [चाल] द्वारा अपनी सत्ता में ले आने का प्रयत्न कर रहे [थे]। उस समय भारत अज्ञान के घोर अंधकार में पतन [और] अपमान के गह्वर में गिरा जा रहा था। एक जा[ति] दूसरी जाति से, एक भाषा-भाषी दूसरे भाषा-भाषि[यों] से और एक दल के लोग दूसरे दल के लोगों से लड़[कर] अपनी शक्तियों का ह्रास कर रहे थे। कौन जानता [था] कि ऐसे समय एक ऐसा महापुरुष उत्पन्न हु[आ] है जो बाद को एकता और स्वराज्य का सं[देश] सुनाएगा।

दादाभाई देश के उत्थान के लिए उत्पन्न हुए थे। उनका चरित्र दृढ़, रहन-सहन अत्यंत सादा, व्यवहार शु[द्ध], स्वभाव मिलनसार, हृदय देश-भक्ति से भरा हुआ और जीवन देश के उत्थान के लिए उत्सर्गमय था। उन्होंने अपने करोड़ों देशबन्धुओं को क्षुधा की अग्नि[में] जलते और पतित होते हुए देखा था। और इसलि[ए]

उन्होंने अपनी अपरिमित शक्ति का उपयोग दुःखी भारत के हर एक अंग की पुष्टि करने में किया।

अँगरेज़ों ने भारत के साथ जो भलाई की है उससे नौरोजी अच्छी तरह परिचित थे। बच्चों की हत्या, और सती-प्रथा को रोक एवं डाकुओं का उपद्रव शांत कर उन्होंने जनता को जैसा निर्भय बना दिया था उसके लिए वे उनके बहुत आभारी थे। प्रेस और भाषण की स्वतन्त्रता और ज्ञान के प्रसार-द्वारा उन्होंने देश में जो जाग्रति उत्पन्न



[ स्वर्गीय दादाभाई नौरोजी ]

की थी वे उसे भी ख़ूब अच्छी तरह जानते थे। परन्तु नौरोजी ही ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने सबसे पहले इस बात का अनुभव किया कि इस स्वस्थ शासन-प्रणाली में रोग के कीड़े लग चुके हैं और उनमें से एक भारत का आर्थिक ह्रास और दूसरा चारित्रिक पतन है। आर्थिक ह्रास तो इस प्रकार हो रहा था कि हर साल भारत का करोड़ों रुपया बाहर खिंचता हुआ चला जाता था। और भारतीयों को अयोग्य समझ कर उन्हें बड़े बड़े पद न देने के कारण उनका चारित्रिक पतन होता जा रहा था। उनमें इस बात का विश्वास नहीं रहा कि वे भी राज्य-संचालन की योग्यता रखते हैं। दादा भाई ने इन रोगों का निदान ढूँढ़ लेने के पश्चात् एक सच्चे वैद्य की नाईं आजीवन उसकी चिकित्सा का भरसक प्रयत्न किया।

नौरोजी तीन बार सन् १८८६, १८९३ औ १९०६ में क्रमशः कलकत्ता, लाहौर और कलकत्ता में होनेवाले भारतीय कांग्रेस के अधिवेशनों के सभापति हुए और इँग्लेंड में पार्लियामेंट के सदस्य रहे। भारत और इंग्लेंड दोनों ही जगह उन्होंने भारत की आर्थिक दुर्दशा की ख़ूब विवेचना की। सैकड़ों व्याख्यान दिये और किताबें लिखीं। उन्हें सबसे अधिक यह बात अखरती थी कि जो धन भारत से बाहर जाता है वह किसी भी रूप में वापस नहीं आता। इसके साथ ही भारत से योरपीय अफ़सरों की पेंशन, अँगरेज़ी फ़ौज की तनख़्वाह, भारत-सरकार का विलायत का ख़र्च और भारत में स्थित अँगरेज़ वकीलों, बैरिस्टरों, डाक्टरों की आय तथा अँगरेज़ी मिलों के फ़ायदे के रूप में जो रुपया विलायत जाता है वह दिन प्रतिदिन भारत को कंगाल बनाता जाता है। दादाभाई का कहना था कि यदि भारतवर्ष धनवान् देश होता तो भी हर साल इतना रुपया भारत के बिना किसी लाभ के बाहर जाना बड़ी विकट समस्या होती। परन्तु जब भारत संसार का सबसे ग़रीब देश माना जाता है तब भारत से इतना रुपया हर साल बाहर निकल जाना उसे दिन प्रतिदिन कंगाल ही बनाना है। अर्थ-शास्त्र के सिद्धान्त के अनुसार किसी देश का कला-कौशल उसकी पूँजी पर निर्भर है और पूँजी देश की बचत करने की शक्ति पर। परन्तु जहाँ कङ्गाली ने हाथ-पैर फैला दिये हों, जहाँ आधे से अधिक मनुष्यों को एक बार भी पेटभर भोजन न नसीब होता हो, वहाँ बचत किस प्रकार संभव है? स्वभावतः लक्ष्मी के इस प्रतिकूल प्रवाह के ही कारण भारत की सन्तान के लिए व्यापार और कला-कौशल की वृद्धि करना बिलकुल असम्भव होगया था। इसी प्रकार भारतीयों को उच्च

और ज़िम्मेदार पदों से वंचित रखने का भी घातक प्रभाव हुआ। फलतः नौरोजी ने भारत और इँग्लेंड दोनों जगहों में इस सम्बन्ध में अपने विचारों का ज़ोरों से प्रचार किया। उनका कहना था इस सम्बन्ध में हमारी माँग का यह मतलब कदापि नहीं था कि हम केवल भारतीयों के लिए कुछ उच्च पदों के आकांक्षी हैं, बरन हम अँगरेज़ों के साथ सरकारी ज़िम्मेदारियों में हाथ बँटाना चाहते हैं। हम अपने देश के उन पदों पर आरूढ़ होना चाहते हैं जिनसे मनुष्य की स्वाभाविक शक्तियों, उसके चरित्र, व्यक्तित्व और नेतृत्व का विकास होता है। परन्तु उनकी नहीं सुनवाई हुई। आख़िर को उन महापुरुष ने यह भविष्यवाणी की। उन्होंने कहा—"ब्रिटेन भारतवर्ष पर या कोई अन्य देश अन्य देश पर केवल न्याय और नीति के बल पर ही क़ब्ज़ा रख सकता है। तुम हथियार और सैनिक बल से साम्राज्य की स्थापना कर सकते हो, परन्तु उसकी रक्षा केवल न्याय और चरित्र के बल पर ही हो सकती है। पशुबल का कभी न कभी अवश्य ह्रास होगा और विजय की पताका केवल न्याय और सत्य के हाथों में रहेगी।" उनके इस उद्गार का सरकार पर चाहे असर न पड़ा हो, परन्तु वह उनके देशवासियों के हृदयों में प्रवेश कर गया। वह उनके सच्चे हृदय की झंकार थी।

नौरोजी का कार्यक्षेत्र केवल राजनैतिक ही न था। वे पक्के समाज-सुधारक भी थे। परन्तु वे उसे कांग्रेस का अंग नहीं मानते थे। उनका विश्वास था कि कांग्रेस किसी जाति-विशेष की संस्था नहीं है। उसमें हर एक जाति के हिन्दू जिनके रस्म-रवाज एक दूसरे से भिन्न हैं, मुसलमान, ईसाई, पारसी, सिक्ख, जैनी आदि सम्मिलित हैं। और इतनी जातियों की एक सामूहिक सभा न तो किसी एक जाति के रीति-रवाजों से पूर्ण रूप से परिचित ही हो सकती है और न किसी एक के लिए नियम ही बना सकती है। जाति के विशेषज्ञों को ही समाज-सुधार में हाथ डालना चाहिए। राष्ट्रीय कांग्रेस को केवल ऐसे प्रश्नों तक परिमित रहना चाहिए जिनका संबंध संपूर्ण राष्ट्र से है।

भारत की छिन्न-भिन्न शक्तियों का दादा भाई को अ[च्छा] परिचय था। उनका कहना था कि भारतवर्ष के सम्मि[लित] प्रयत्न से जो कुछ मिलेगा उसका लाभ सभी [को] एक-सा ही होगा, वह लाभ चाहे जिस रूप में हो, हर एक जाति की इच्छायें एक हैं। उन्होंने क[हा] है—"हम सब एक ही नौका में बैठे हैं और [या] एक ही साथ या तो पार उतरेंगे या डूब मरेंगे। एक ख़ास जाति में उत्पन्न होकर भी वे भारत[ीय] थे और उनकी सब शक्तियाँ भारत के लिए ख़र्च हुईं। लाहौर-कांग्रेस में उन्होंने कहा था—चाहे मैं हि[न्दू], मुसलमान, पारसी, ईसाई या कोई दूसरा धर्म मान[ने] वाला होऊँ, हूँ मैं एक भारतीय ही। हमारा [देश] भारत है और हमारी राष्ट्रीयता भारतीय है।" देश[भक्त] का कैसा भव्य उद्गार है! नौरोजी देश के लिए पैदा [हुए] थे और वे देश की सेवा करते करते मरे। उनका निर्धा[रित] किया हुआ पथ ही आज हमारा स्वराज्य का पथ है। नौरोजी स्वराज्य प्राप्त करने में भले ही असफल हुए हों, परन्तु उनके निर्धारित सिद्धान्त ही स्वराज्य के सिद्धा[न्त] हैं और इसी लिए नौरोजी को स्वराज्य-आन्दोल[न] का पिता कहना कोई अत्युक्ति नहीं है। स्वराज[्य]-आन्दोलन के इस ऋषि की सन् १९१७ में मृ[त्यु] होगई।

## सर फ़ीरोज़शाह मेहता

सर फ़ीरोज़शाह मेहता 'बम्बई के सिंह' और 'बम्ब[ई] के बिना ताज के बादशाह' थे। वे दादाभाई नौरोजी [के] साथ के कार्यकर्ता और अपने समय के अत्यन्त शक्ति[-]शाली नेता थे। उनकी इस शक्ति के मुख्य स्रोत उनकी प्रतिभा, विद्वत्ता, सादा और मिलनसार स्वभाव, आद[र्श] प्रेम और त्याग थे। वे वक्ता भी अत्यन्त उच्च कोटि के थे। जनता की उन पर अगाध श्रद्धा थी। वे अपने समय की जनता के हृदय-सम्राट् थे। विद्यार्थी उनको जान देने के लिए तैयार रहते थे। एक बार महात्मा गांधी को दक्षि[ण] अफ़्रीका के अपने कार्य के पक्ष में भारत में लोकमत तैया[र]

करने की आवश्यकता हुई थी। उस समय वे जस्टिस रानाडे, जस्टिस बदरुद्दीन तैयबजी, गोखले और भाण्डारकर के पास गये थे। सभी ने उनको सर फ़ीरोज़शाह से सहायता लेने की सलाह दी। यह बात मेहता महोदय के महत्त्व की ही सूचक है।

सर फ़ीरोज़शाह १८९० में कलकत्ते में होनेवाले कांग्रेस के छठे अधिवेशन के सभापति हुए थे। कांग्रेस उस समय अपने शैशव में थी और उसे प्रौढ़ बनाने में सर फ़ीरोज़शाह का बहुत अधिक हाथ था। उनके राजनैतिक जीवन का मुख्य कार्य कांग्रेस के सिद्धान्तों का प्रचार था। विलायतवालों को भारत की दशा से परिचित कराना, उनकी दृष्टि भारतवर्ष की ओर करना और हिन्दू-मुस्लिम-एकता और कांग्रेस का संगठन करना था। सर फ़ीरोज़शाह ने मुसलमानों को कांग्रेस की छत्रच्छाया में लाने का ख़ूब प्रयत्न किया था। मुसलमानों में उस समय यह विचार फैला हुआ था कि वे कांग्रेस और देश दोनों से अलग रहें। उन्होंने उनके हृदय से इस विचार को दूर करने का बड़ा प्रयत्न किया। उनका कहना था कि जब हम सब कांग्रेस के सदस्य कांग्रेस में केवल मनुष्य-रूप से एकत्र होते हैं तब हम एक ही देश के नागरिक हैं, जब हमारी राष्ट्रीयता की भित्ति एक ही है, हम एक ही राष्ट्र की प्रजा हैं, हमारा एक ही क़ानून है, जब हम सब एक साथ ही राज्य के सुख-दुख के भागी हैं और जब हम सब अपने हक़ों के बराबर बराबर भोगनेवाले हैं, तब भारतीय राष्ट्र के बच्चे बच्चे को कांग्रेस की छत्रच्छाया में आना चाहिए। यदि यह विचार राष्ट्र को एक सूत्र में नहीं बाँध सकता तो फिर संगठन की संभावना ही क्या है? उनके ऐसे विचारों का देश के कोने कोने में प्रभाव पड़ा।

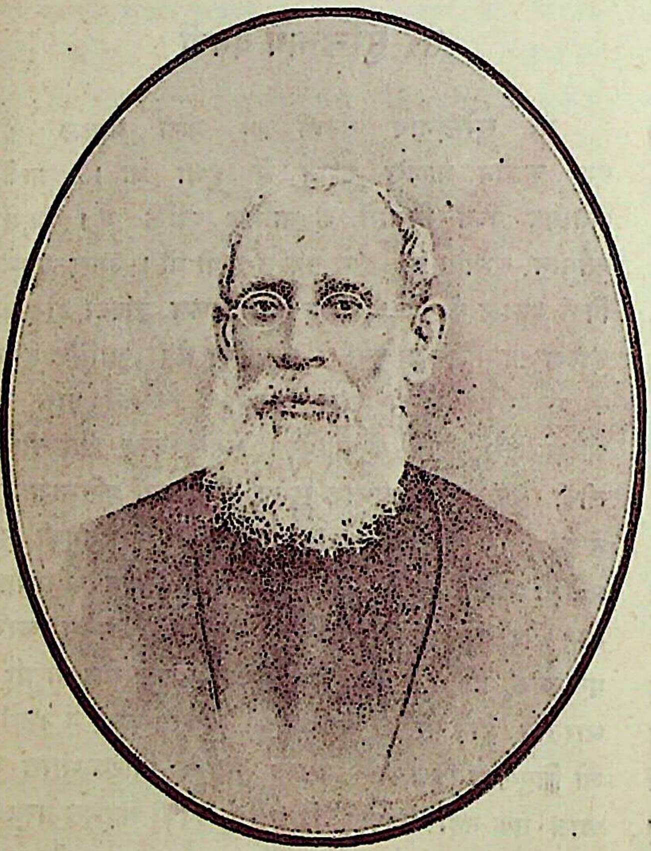
देश और विदेश दोनों जगह कांग्रेस के सिद्धान्तों के प्रचार और संगठन से भारत के शिक्षित समुदाय में एक अपूर्व जाग्रति हो गई। लोग अपने अधिकारों और देश के प्रति अपने कर्त्तव्यों को समझने लगे। अधिकारों के ज्ञान और उन्नति की आकांक्षा से केवल भारत की राजनैतिक गति ही तीव्र नहीं हुई थी, बल्कि सामाजिक और धार्मिक सुधारों के आन्दोलन भी प्रारम्भ होगये।

सर फ़ीरोज़शाह ने जो कार्य अपने हाथ में लिया उसमें वे पूर्णतया सफल हुए। उन्होंने लोगों के हृदय में यह भावना उत्पन्न कर दी कि हर एक भारतीय का कर्त्तव्य देश को विद्रोह से बचाना और अपनी स्थापित की हुई महान् संस्था राष्ट्रीय कांग्रेस के नियमों का पालन करना और उसके बतलाये हुए पथ पर चलना है। कांग्रेस के इन प्रधान स्तम्भ का जन्म सन् १८४५ में और मृत्यु सन् १९१५ में हुई थी।

## सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी

सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी का जन्म बङ्गाल के एक कुलीन ब्राह्मण घराने में हुआ था। उनके पितामह उच्च विचारों के धार्मिक व्यक्ति थे। उन्हें वर्तमान सभ्यता की हवा तक न लगी थी। परन्तु उनके पिता बङ्गाल के एक सुप्रसिद्ध और सफल डाक्टर होने के कारण सामाजिक रूढ़ियों से बहुत दूर थे। धार्मिक होने पर भी पीढ़ियों से ही बाल-विवाह के विरोधी होने के कारण इस घराने के स्त्री-पुरुष सभी स्वस्थ और दीर्घजीवी हुए। तब बालक सुरेन्द्र फिर क्यों प्रतिभाशाली न हों? वे एक प्रतिभाशाली विद्यार्थी थे और उनकी वह प्रतिभा अन्य बहुतों की नाईं विद्यार्थी-जीवन के समाप्त होने पर लुप्त नहीं होगई। जीवन में प्रवेश करने पर उनके हर एक कार्य में उसका प्रमाण मिलता था। भारतीय होने पर भी अँगरेज़ी की वक्तृत्व-कला में उन्होंने जो निपुणता दिखलाई उसका नमूना ब्रिटिश-भारत में आज तक नहीं दिखाई दिया है। उनकी अद्भुत वक्तृत्व-शक्ति और कार्य-शैली ने उन्हें स्वभावतः एक वीर नेता बना दिया। उनका यह नेतृत्व कई रूपों में प्रकट हुआ। वे अच्छे वक्ता और सफल लेखक थे। १८७१ में 'बङ्गाली' के सम्पादन में उन्होंने अपनी प्रभावशाली लेखनी का परिचय दिया। 'बङ्गाली' के द्वारा देश-सेवा करते हुए सुरेन्द्र बाबू को 'अदालत के अपमान' के अभियोग में जेल भी जाना पड़ा। परन्तु उनका उत्साह इससे फीका पड़नेवाला नहीं था। उन्होंने दूने जोश से देश-सेवा प्रारम्भ

की। इसके पहले भी उन्हें देश-सेवा का दंड मिल चुका था। अपनी प्रतिभा के बल से उन्होंने इँगलेंड में सन् १८६६ में मानसहित आई० सी० एस० की परीक्षा पास की थी। कुछ समय मजिस्ट्रेट रहने के पश्चात् अपने विचारों के कारण वे उस पद के अयोग्य ठहराये गये। परन्तु उन जैसे योग्य व्यक्ति के लिए दूसरा कार्य मिलना कोई कठिन बात न थी। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने उन्हें 'मेट्रोपोलिटन इन्स्टीट्यूट' में इँगलिश का प्रोफ़ेसर



[ स्वर्गीय सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ]

बना दिया। यह काम उनकी रुचि के अनुकूल ही था। क्योंकि विद्यार्थियों में देशसेवा के भाव भरने का उन्हें यहाँ पूरा अवसर मिला।

परन्तु सुरेन्द्र जैसे देश-भक्त के लिए यह सम्भव नहीं था कि वे इतने से सन्तुष्ट होते। देश की दुर्दशा, फूट, अन्याय और अत्याचार उन्हें मैदान में बुलाने लगे। आख़िर वे मैदान में आये। शासन-प्रणाली के परि[illegible] करने के आन्दोलन में उन्होंने बङ्गाल का नेतृत्व स्वी[illegible] किया। उन्होंने सन् १८८३ में इस आन्दोलन के [illegible] फंड इकट्ठा करना प्रारम्भ किया। जेल हो आ[illegible] कारण उनकी प्रसिद्धि थी ही, अतएव उन्हें अपने [illegible] में बहुत कुछ सफलता प्राप्त हुई। केवल बङ्गाल ही ने [illegible] बल्कि दूसरे प्रान्तों ने भी उनकी बहुत कुछ सहायता [illegible]

इसके उपरान्त सुरेन्द्र बाबू की राजनैतिक प्रगति [illegible] पकड़ने लगी। कांग्रेस को दृढ़ बनाना, देश में [illegible] का मंत्र फूँकना और कांग्रेस का कार्य करना उनका [illegible] था। इस सेवा के उपलक्ष में अपने योग्य नेता को [illegible] ने सन् १८९५ की पूना में होनेवाली कांग्रेस का स[illegible] पति बना कर सम्मानित किया। कांग्रेस का सं[illegible] उसके लिए एक विधान निश्चित करना उनका [illegible] उद्देश्य होगया। कांग्रेस के ११ वर्षों के कार्य ने [illegible] को जाग्रत कर दिया था। जनता में नई स्फूर्ति [illegible] उत्साह आ गया था। प्रान्तों और जातियों में सं[illegible] की लहर आ गई थी। और भारत के राजनैतिक [illegible] की नींव डाल दी थी। इतना होने पर भी [illegible] की इस विशाल संस्था का अभी तक कोई वि[illegible] निश्चित नहीं हुआ था। सुरेन्द्रनाथ के नेतृत्व में [illegible] विधान निश्चित हुआ। कांग्रेस के नियम ब[illegible] उन्होंने उसे अधिक संगठित और बलशाली बना दि[illegible]

सुरेन्द्र बाबू के जीवन का एक महत्त्व-पूर्ण कार्य [illegible] भङ्ग के समय का है। लार्ड कर्ज़न के शासन-का[illegible] सन् १९०५ में यह आपत्ति बङ्गाल पर आई [illegible] बङ्गाल का उत्तरी भाग उसके पुराने प्रान्त से [illegible] किया जानेवाला था। उसकी घोषणा करनेवाले [illegible] राजनीति-पटु लार्ड कर्ज़न। बङ्गाल के ऊपर [illegible] बम गिर गया हो, बङ्गालियों को उससे बड़ी गहरी [illegible] लगी। उन्होंने कर्ज़न की घोषणा के विरुद्ध आन्दो[illegible] उठाया और देश ने उनका साथ दिया। सुरेन्द्र बाबू [illegible] नेता का नेतृत्व पाकर वङ्ग-भङ्ग का आन्दोलन वि[illegible] रूप धारण कर गया। बङ्गाल ही एक ऐसा कला-कौश[illegible] पूर्ण प्रान्त था जहाँ से भारत की कारीगरी का नेस्त-ना[illegible]

होना प्रारम्भ हुआ। अतएव स्वदेशी वस्तुओं के प्रचार का आन्दोलन प्रारम्भ किया गया। इसी समय से भारत ने वास्तविक रूप में अपनी दयनीय स्थिति का अनुभव करके अपने समुद्धार की ओर अपना पग बढ़ाया।

इस अवसर पर सुरेन्द्र बाबू ने अपनी प्रखर तेजस्विता का पूर्ण परिचय दिया था। बाद को इधर मांटेगू महोदय ने जो सुधार जारी किये और जिन्हें कांग्रेस ने अस्वीकार कर दिया था उन्हें उनके दल ने स्वीकार कर लिया, जिससे वे बङ्गाल के मन्त्री बनाये गये और उन्होंने सरकार-द्वारा दी गई सर की उपाधि भी ग्रहण कर ली। यह वह समय था जब उनका नरमदल कांग्रेस से अलग होकर सरकार से सहयोग कर रहा था। इस अवसर पर उनके सरकार के साथी हो जाने से जनता का अनुराग उन पर से बहुत कुछ घट गया था। परन्तु यह तो स्पष्ट ही है कि उन्होंने भारत के राजनैतिक क्षेत्र में राष्ट्र-निर्माण का जो महत्त्वपूर्ण कार्य किया है उसके लिए उनका नाम भारत के राजनैतिक इतिहास में सदा अमर रहेगा। इनकी मृत्यु सन् १९२६ में होगई।

## गोपाल कृष्ण गोखले

"मातृ-भूमि के प्रति मेरी महत्त्वाकांक्षाओं की कोई सीमा नहीं है। मैं अपने देश-भाइयों को अपने देश में उसी अवस्था में देखना चाहता हूँ जिस दशा में दूसरे लोग अपने देश में हैं। मैं अपने देश के स्त्री-पुरुषों को जाति और धर्म के बिना किसी भेदभाव के और बिना किसी रोक-टोक और अप्राकृतिक दबाव के, पूर्ण रूप से विकसित देखना चाहता हूँ। मैं भारतवर्ष को राजनैतिक, व्यापारिक, धार्मिक, साहित्यिक, वैज्ञानिक और कलाकौशल की दृष्टि से संसार के बड़े बड़े राष्ट्रों के बीच उचित स्थान पर आरूढ़ देखना चाहता हूँ, यही मेरी महत्त्वाकांक्षा है।"

महामना गोखले इसी महत्त्वाकांक्षा को लेकर कार्य-क्षेत्र में अवतीर्ण हुए थे और देश से सम्बन्ध रखनेवाला ऐसा कोई भी विषय नहीं था जिस पर उन्होंने प्रकाश न डाला हो और उस विषय में कोई कार्य न किया हो। अध्ययन समाप्त करने पर वे पूना के फ़र्ग्यूसन कालेज में बहुत वर्षों तक प्रोफ़ेसर रहे और अपनी इस स्थिति में ही उन्होंने बहुत से देशभक्त उत्पन्न किये। परन्तु जब अध्ययन की गम्भीरता के साथ ही साथ उनका कार्यक्षेत्र विस्तीर्ण होने लगा तब उन्हें अत्यन्त भारी हृदय से सन् १९०२ में अपने प्रिय कालेज के अध्यापन-कार्य से विरत होना पड़ा। यहीं से उनका कार्य प्रारम्भ हुआ। उसी साल वे भारत की व्यवस्थापिका सभा के सदस्य हुए और उसके सदस्य की हैसियत से उन्होंने उन सब प्रश्नों पर प्रकाश डाला जिनसे देश का सम्बन्ध था। राजनैतिक, व्यापारिक, आर्थिक, प्रेस, तथा कृषि-सम्बन्धी, रेल और फेक्टरी, पूँजीपति और श्रम-जीवी और शिक्षा-सम्बन्धी ऐसा कोई प्रश्न नहीं था जिस पर उन्होंने कौंसिल में आवाज़ न उठाई हो। चाहे उनके प्रस्ताव और बिल पास हुए हों या नहीं, वे युवकों के से अदम्य उत्साह से अपना कार्य बराबर करते गये। वे भारतीय राजनीति के गूढ़ विचारक थे और इसी कारण महात्मा गांधी जैसे महापुरुष उन्हें अपना राजनैतिक गुरु मानते हैं। अपनी इस प्रखर प्रतिभा और दूर-दर्शिता के कारण ही उन्हें केवल ३९ वर्ष की आयु में ही राष्ट्रीय कांग्रेस के सभापति बनने का वह सौभाग्य प्राप्त हुआ था जो आज तक उस आयु में किसी को नहीं हुआ।

गोखले दादा भाई नौरोजी की राजनैतिक सेवाओं से अच्छी तरह परिचित थे। वे उन्हें श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे और अपना गुरु मानते थे। स्वभावतः उन्होंने नौरोजी का अनुकरण किया। परन्तु समय की आवश्यकता तथा उनके गम्भीर पाण्डित्य के कारण उनके विचार अधिक पुष्ट और कार्यक्षेत्र अधिक विस्तीर्ण हो गया था।

गोखले के विचार से भारत के राजनैतिक उत्थान के तीन उपाय थे—शान्ति, सुधार और मितव्यय। वे मनुष्य के हक़ बराबर समझते थे। और जीवन भर ग़रीब से ग़रीब आदमी का भी हक़ दिलाने के लिए वे लड़ते रहे। किसी जाति-विशेष का अपनी स्वार्थ-लिप्सा की तृप्ति के लिए जनता के ऊपर अपना स्वत्व

स्थापित करना वे पाप समझते थे। वे अपने देश-वासियों को दूसरे देश-वासियों की तरह स्वतन्त्र और पूर्ण विकसित देखना चाहते थे। परन्तु इसके लिए वे औपनिवेशिक स्वराज्य से अधिक की आवश्यकता नहीं समझते थे। दादा भाई की भाँति गोखले को भी अँगरेज़ी सभ्यता और



[ स्वर्गीय गोपाल कृष्ण गोखले ]

अँगरेज़ चरित्र में विश्वास था। वे यह न भूले थे कि उन्हीं की कृपा से देश में शान्ति स्थापित हुई थी, रेल, पोस्ट आफ़िस और तार के सुभीते हुए थे और भारतीयों को न्याय मिलने लगा था। परन्तु यह पाश्चात्य शासन-प्रणाली किसी निश्चित उद्देश्य की पूर्ति का एक साधन थीं, वह स्वयं कोई उद्देश्य नहीं थी। दूरदर्शी गोखले को मालूम हो गया था कि उसमें घुन लग गया है। वह प्रणाली शासन का उद्देश्य पूरा करने में पूर्ण रूप से असफल हुई है। उसका सबसे भारी दोष यह था कि वह भारतीयों के विकास को मार रही थी और उनकी शक्तियों को प्रतिदिन क्षीण और शुष्क करती जा रही थी। दूसरा दोष भारतीयों का राजनैतिक ह्रास था। तीस करोड़ भारतीयों के हाथ में उतना भी अधिकार नहीं है जितना पार्लियामेंट के एक सदस्य को ब्रिटिश-गवर्नमेंट की प्रणाली की समालोचना करने का है। तीसरे हथियार छीन लेने के कारण हम अपने घर-द्वार की रक्षा करने में भी असमर्थ बना दिये गये। नेटाल जैसे जनसत्तात्मक उपनिवेशों में भी भारतीयों के साथ जङ्गलियों जैसा व्यवहार किया जाता है। इसी प्रकार भारत की कङ्गाली और दुर्दशा का भी सब श्रेय उन्होंने इसी प्रणाली को दिया। रोज़ रोज़ अकाल, प्लेग और अन्य भयानक बीमारियों से लाखों के मृत्यु के मुख में जाने के लिए क्या यह ज़िम्मेदार नहीं है? भारत की इस कंगाली से पिण्ड छुड़ाने के लिए गोखले ने कला-कौशल की शिक्षा पर बहुत अधिक ज़ोर दिया था। देश को राजनैतिक अधःपतन से मुक्त करने के लिए उन्होंने शासन-प्रणाली में परिवर्तन कराना ही एक-मात्र उपाय बतलाया था। इससे उनका यह मतलब था कि अधिकारियों के हाथों से न्यायपूर्ण आन्दोलन द्वारा अपने अधिकार प्राप्त किये जायँ। इन अधिकारों की प्राप्ति के लिए उन्होंने देश की एक जाति की एकता, मनुष्यों की चारित्रिक उन्नति कर और देश में राष्ट्रीयता का मन्त्र फूँक कर शक्ति संचय करने का उपदेश दिया था।

गोखले के जीवन का सबसे बड़ा कार्य शिक्षा-प्रचार रहा है। वे स्वयं एक आदर्श शिक्षक थे और शिक्षा को ही भारतीयों का स्वर्ग-सोपान समझते थे। शिक्षा ही भारतीयों को उनकी ज़िम्मेदारियों का पाठ पढ़ा सकती

और समय पर देश के लिए उनकी आहुति ले सकती थी। इसी के लिए उन्होंने सन् १९१० में बड़ी व्यवस्थापक सभा में अनिवार्य 'प्रायमरी शिक्षा' का बिल पेश किया था और उस पर एक कमीशन बैठाने की आयोजना की थी।

उनके जीवन का दूसरा बड़ा कार्य सर्वेन्ट आफ़ इंडिया सोसायटी की स्थापना है। इस सोसायटी के द्वारा उन्होंने देश में राजनैतिक देश-भक्तों का एक दल तैयार करने का उपक्रम किया। उनकी यह संस्था अपने ढङ्ग की एक ही संस्था अब तक रही है।

गोखले नरमदल के नेता थे। कांग्रेस में फ़ीरोज़-शाह मेहता के बाद वही श्रेष्ठ नेता गिने जाते थे। उन्होंने आजीवन स्वार्थ-रहित होकर देश की सेवा की। सरकार और प्रजा दोनों के वे सदा प्रियपात्र बने रहे। उनका जीवन संन्यासी का जीवन था। वे उच्च कोटि के राजनीतिज्ञ थे। अपनी प्रखर बुद्धि और संयत विचारों के द्वारा ही उन्होंने अपने जीवन को सफल बनाया था। परन्तु अन्त में ऐसे सात्विक नेता को भी नौकरशाही से दादा भाई नौरोजी की ही भाँति निराश होना पड़ा था।

भारत के इस श्रेष्ठ राजनीतिज्ञ का जन्म सन् १८६६ में और मृत्यु सन् १९१५ में हुई थी।

## लोकमान्य तिलक

जिस समय भारत की स्वतन्त्रता का इतिहास लिखा जायगा तब उसमें लोकमान्य तिलक का नाम प्रथम श्रेणी के पुरुषों में सुनहरे अक्षरों में लिखा जायगा। भारत की राजनैतिक जाग्रति और उद्धार के विषय में जो कार्य तिलक ने किया है वह चिर स्मरणीय कार्य है। सम्पूर्ण भारतवर्ष में नवीन ज्योति प्रकाशित करके स्वतन्त्रता देवी की स्थापना करना इन्हीं महापुरुष का काम था। जिस समय स्वराज्य का नाम लेना बड़ा भारी अपराध समझा जाता था, उस समय पूना के इन्हीं तिलक महाराज ने स्वराज्य-शब्द का उच्चारण-मात्र ही नहीं किया था, किन्तु स्पष्ट शब्दों में यह घोषित किया था कि 'स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है और उसे हम प्राप्त करेंगे।'

सम्पूर्ण भारत में स्वतन्त्रता की लड़ाई का भाव पैदा करने और उसके लिए हज़ारों सिपाही तैयार करने का श्रेय इन्हीं को प्राप्त है।

जिस समय तिलक कालेज में अध्ययन कर रहे थे तभी उन्होंने यह दृढ़ निश्चय कर लिया था कि बूढ़े भारत को स्वतन्त्रता प्राप्त कराना ही मेरे भविष्य जीवन का ध्येय होगा। अध्ययन समाप्त करने के बाद उन्होंने देश-सेवा का संन्यास ही ले लिया और आजीवन अपने निश्चय पर दृढ़ रहे।

बाल गङ्गाधर का जन्म सन् १८५६ की जुलाई में हुआ था। उनके पिता ने उन्हें अँगरेज़ी की शिक्षा दी थी। स्कूल की शिक्षा समाप्त करने के बाद वे पूना के कालेज में भर्ती कराये गये। अध्ययन समाप्त करने के बाद उन्होंने अपने निश्चय को कार्य में परिणत किया। यह वह समय था जब कांग्रेस की स्थापना नहीं हुई थी। उन्होंने अपने सहपाठी आगरकर के साथ देश-सेवा का व्रत ग्रहण करके प्रसिद्ध लेखक विष्णु शास्त्री चिपलूणकर के सहयोग में अपना काम प्रारम्भ कर दिया। बाद को अध्ययन समाप्त कर आप्टे भी इस मित्र-मण्डल में शामिल होगये। पूना की यह मित्र-चौकड़ी अपने ढङ्ग की एक अनोखी वस्तु थी। इसी चौकड़ी ने सर्वप्रथम इस देश में देशभक्ति का बीज वपन किया था। प्रारम्भ में इन लोगों ने एक राष्ट्रीय अँगरेज़ी स्कूल की स्थापना की और दो पत्र चलाये—एक अँगरेज़ी में और एक मरहठी में। बाद को चिपलूणकर की मृत्यु के बाद इन मित्रों में मतभेद होगया। अन्त में लाचार होकर तिलक ने पत्रों का सारा भार अपने ऊपर लेकर स्कूल से अपना सम्बन्ध भङ्ग कर लिया। यहीं से तिलक के राजनैतिक जीवन का वास्तविक विकास होता है। अपने प्रकाशन के दिन से ही इन पत्रों ने जनता का प्रेम प्राप्त कर लिया था। और अब जब दोनों पत्रों का सञ्चालन स्वतन्त्र रूप से तिलक

करने लगे तब उनकी लोक-प्रियता और भी बढ़ गई। शुरू शुरू में ही एक अपमान-जनक लेख लिखने के कारण तिलक को जेल जाना पड़ा था। इधर जब वे उनका सञ्चालन स्वतन्त्ररूप से करने लगे थे तब उनमें उग्रता की मात्रा और भी अधिक आगई और सन् १८९७ में उन्हें राजद्रोह के अपराध में दण्ड दिया गया। इस बात से उनकी और भी प्रसिद्धि होगई। जेल के दण्ड से उनका तेज क्षीण नहीं हुआ और वे दिन दिन उग्रतर ही होते गये। कांग्रेस में यद्यपि वे अल्पमत में थे, तथापि वे अपनी कहने से कभी नहीं चूके। कांग्रेस में फ़ीरोज़शाह मेहता और गोखले आदि नेताओं के प्रभाव के कारण उनकी नहीं चलने पाती थी।

अन्त में वह समय आगया जब नरमदल और गरम-दल का पृथक् हो जाना अनिवार्य होगया। सन् १९०७ में सूरत की कांग्रेस में तिलक और उनका दल कांग्रेस से अलग हो गया। उस घटना के बाद वे सरकारी अधिकारियों की आँखों में और भी अधिक खटकने लगे। उनके गरमदल के मुख्य नेता होने के कारण अधिकारी उनका दमन करने का अवसर ढूँढ़ रहे थे। अन्त में दो लेखों के कारण उन पर राजद्रोह का अभियोग चलाया गया और वे ६ वर्ष के लिए जेल भेज दिये गये। बंबई-हाईकोर्ट जस्टिस दावर ने जब ६ वर्ष के कठिन कारावास की सज़ा सुनाई थी तब तिलक ने उस समय गर्जते हुए जो महत्त्वपूर्ण कथन किया था उसका किसी ने कविता में इस प्रकार अनुवाद किया है—

आज मुझे यद्यपि जूरी ने अपराधी ठहराया है।
तो भी मेरे मन ने मुझको निर्दोषी बतलाया है।
मानव-शक्ति कहीं भी जिसके आगे कोई चीज़ नहीं।
ऐसी ऊँची शक्ति सदा संसारचक्र है चला रही।
ईश्वर का संकेत मनोगत दिखलाई यह मुझे पड़े।
मेरे सङ्कट सहने से ही इस हलचल का तेज बढ़े।

जेल से लौटने के पश्चात् तिलक ने अपने कार्य में किसी प्रकार की शिथिलता नहीं आने दी, वरन वे मिस्टर मांटेगू के शब्दों में "Undaunted King of India" 'भारत के निर्भीक राजा' ही होगये।

तिलक की मानसिक और हार्दिक उच्चता के विषय में जितना कहा जाय, उतना ही थोड़ा है। वे उच्च कोटि के विद्वान् थे। उनका संस्कृत का पाण्डित्य असाधारण था। राजनैतिक पटुता और नैतिक पवित्रता में सदा प्रवीण और खरे ही पाये गये। भारत के राजनीतिज्ञों में उनका अपना स्थान सबसे भिन्न है। नेतृत्व का गुण उनमें जन्मजात था। व्यवहार में मिलनसार और हृदय के गम्भीर थे। उनकी बुद्धि तीव्र और निश्चय के दृढ़ थे।

लोकमान्य सिर्फ़ सिद्धान्तों को पकड़े बैठे रहना राजनीतिमत्ता नहीं समझते थे। सिद्धान्तों को सामने रखते हुए, उद्देशों को सफलता-पूर्वक प्राप्त करना उनकी नीति थी। वे सरकारी घोषणाओं पर तथा कूटनीतिज्ञों पर विश्वास नहीं करते थे। जिस समय ब्रिटिश सरकार ने गत महायुद्ध के अवसर पर भारत से सहायता माँगी थी उस समय महादूरदर्शी राजनीतिज्ञ तिलक ही अकेले थे जो देश के अन्य नेताओं से सहमत नहीं हुए थे। उन्होंने उस अवसर पर दृढ़ता से कहा कि युद्ध-काल में राष्ट्रीय सहायता बिना किसी स्पष्ट समझौते के नहीं दी जानी चाहिए। युद्ध में विजय प्राप्त करने के बाद सरकार हमें कैसे राजनैतिक अधिकार प्रदान करेगी, इसकी उसे घोषणा कर देनी चाहिए। [illegible] दशा में हमारा राष्ट्र सहायता देने का निश्चय करेगा।

तिलक ऐसे ही उग्र राजनैतिक नेता थे। इसी [illegible] जनता ने उन्हें लोकमान्य की पदवी से विभूषित किया था। देश के इन श्रेष्ठ नेता की सन् १९२० के अगस्त में मृत्यु होगई।

---

## लाला लाजपतराय

लालाजी का जन्म २८ जनवरी सन् १८६५ ई० को फ़ीरोज़पुर-ज़िले के टोडिकी ग्राम में हुआ था। [illegible] अग्रवाल वैश्य थे। नार्मल स्कूल की शिक्षक-परीक्षा

पास करके वे शिक्षक हो गये, परन्तु उन्होंने पढ़ना नहीं छोड़ा और अन्त में अँगरेज़ी पढ़ कर वे वकील हो गये। वे प्रतिभासम्पन्न थे, इसी लिए थोड़े दिनों में वे पंजाब के नामी वकील हो गये।

लाला लाजपतराय पञ्जाबी थे और उनमें सब पञ्जाबी गुण मौजूद थे। वे सत्यवक्ता और साफ़ दिल के आदमी थे। उनके हृदय में स्वतन्त्रता का सच्चा रूप विराजमान था। वे एक आदर्श वीर थे। असहयोग-आन्दोलन में तो उन्होंने अपनी इस वीरता का पूर्णरूप से परिचय दिया था। असाधारण रूप से अस्वस्थ होने पर भी जिस उत्साह से वे उस समय मैदान में आये थे उससे महाकवि वर्ड्सवर्थ के 'सुखी योद्धा' की याद आये बिना नहीं रहती।

लालाजी निर्भयता की एक सजीव मूर्ति थे। अपने जीवन में वे न्याय और सत्य से कभी नहीं डिगे। संसार के वैभव, यातना और दुःख के भय उन्हें सत्य से विमुख नहीं कर सकते थे। अपनी सत्यता और निर्भयता के कारण वे सदैव हँसमुख रहे। अत्यन्त शारीरिक निर्बलता के समय भी वे हँसी से ही अपने को स्वस्थ रखते थे। उनका एक बड़ा गुण दानशीलता था। लालाजी अधिक धनवान् व्यक्ति न थे और न उनके पास पैतृक सम्पत्ति ही थी। परन्तु देश के लाभ का, उसकी जाग्रति का ऐसा कोई कार्य न था जिसमें लालाजी ने अपनी शक्ति भर और कहीं कहीं अपनी शक्ति से बाहर सहायता न दी हो।

लालाजी का जीवन एक 'कर्मवीर' का जीवन था। शायद ही ऐसा कोई कार्यक्षेत्र हो जिसमें उन्होंने कार्य न किया हो। वे हमारे सामने एक बड़े यात्री, वकील, शिक्षा-प्रचारक, धर्म और समाज-सुधारक, लेखक, सम्पादक और एक शक्तिशाली नेता के रूप में उपस्थित होते हैं। उन्होंने योरप, अमेरिका और एशिया का भ्रमण कर अपने ज्ञान-कोष को पूर्ण किया था। शिक्षा को वे देश के उत्थान की पहली सीढ़ी समझते थे। उन्होंने स्वयं लाहौर में दयानन्द-एंग्लोवैदिक कालेज की स्थापना की, और जीवन भर वे अपने शहर, प्रान्त और राष्ट्र में शिक्षा-प्रचार के लिए अविरत परिश्रम करते रहे। योरप और अमेरिका के भ्रमण में उन्होंने वहाँ के देशों की शिक्षा-प्रणालियों का गूढ़ अध्ययन और मनन किया था, जिसका तत्त्व उन्होंने अपनी शिक्षा-सम्बन्धी पुस्तक में दिया है। इस क्षेत्र की उनकी सेवा का सर्व-श्रेष्ठ उदाहरण 'तिलक राजनैतिक विद्यालय' की स्थापना है।

लालाजी समाज-सुधार के कट्टर पक्षपाती और एक प्रसिद्ध कार्यकर्त्ता थे। 'हिन्दू-सभा' के अन्तर्गत खड़े होकर उन्होंने हिन्दू-जाति के लिए क्या क्या नहीं किया। बाल-विवाह रोकने, पर्दा-प्रथा उठाने, विधवाओं के साथ सद्-व्यवहार करने, लड़कियों की शिक्षा, और अछूतोद्धार आदि ऐसा कोई आन्दोलन न था जिसमें लालाजी का बड़ा हाथ न हो। इनमें से भी स्त्री-शिक्षा के प्रचार और अछूतोद्धार के लिए लालाजी ने बहुत ही कार्य किया था। देश के उत्थान की उनके हृदय में सच्ची लगन थी और उन्होंने गाँवों की झोंपड़ियों में घूम-घूम कर अपना सन्देश देश के उन अपमानित, पराजित, दीन और दुःखी बन्धुओं तक पहुँचाया जिनमें भारत की सच्ची आत्मा निवास करती है।

समाज-सुधारक के साथ ही लालाजी पक्के धर्म-सुधारक भी थे। वे 'आर्य-समाज' के एक प्रतिष्ठित सदस्य और उत्साही नेता थे। अविद्या के कारण भारत के धर्म में रूढ़ियों की जो दीमक लग गई थी उसे दूर करने का श्रेय आर्यसमाज को है। उसके द्वारा हिन्दू-जाति में जो क्रान्ति उत्पन्न हुई है उसका बहुत-कुछ श्रेय लालाजी को है। सन् १९१५ में अँगरेज़ी में आर्यसमाज का इतिहास लिख कर उन्होंने समाज का कुछ कम उपकार नहीं किया।

लालाजी जैसे उच्च कोटि के वक्ता थे, वैसे ही प्रतिभा-शाली सम्पादक और लेखक भी थे। उनके लेखों और पुस्तकों से उनकी प्रतिभा, देश-प्रेम और उनका अगाध पांडित्य प्रस्फुटित होता है। वे उर्दू और अँगरेज़ी के तीन-चार प्रसिद्ध दैनिक और साप्ताहिक पत्रों के संस्थापक और स्वयं अँगरेज़ी के सुप्रसिद्ध साप्ताहिक पत्र (पीपुल) के

यशस्वी सम्पादक थे। उन्होंने अपनी ओजस्वी लेखनी से इतिहास, राजनीति और गैरीबाल्डी और मेज़िनी जैसे



[स्वर्गीय लाला लाजपतराय]

देशभक्तों की जीवनियाँ लिखी हैं। उनकी इन पुस्तकों में से "पोलिटिकल फ़्यूचर आफ़ इंडिया," "यंग इंडिया," "इँगलेंड्स डेट् टू इंडिया" और "दुःखी भारत" आदि भारत के राजनैतिक साहित्य की अमर पुस्तकें हैं। इन

पुस्तकों में लालाजी का हृदय रक्खा हुआ है। की भविष्य सन्तान उनमें अपनी माता की की कथा पढ़ेगी और उनसे अपने हृ उत्साह, बल और स्फूर्ति का सञ्चय क को मातृभूमि पर बलिदान होने को करेगी।

लालाजी का हम एक मनस्वी, राजनीतिपटु, वीर और अद्वितीय नेता में दर्शन करते हैं। अपने राष्ट्र को से मुक्त करने, उसे संसार की दृष्टि में नित करने के लिए ही इन वीर नेता हुआ था। उसी के स्वतन्त्रता के संग्राम में इन पराक्रमी योद्धा ने अन्त में प्राण भी दे दिये। इसके पहले इन्हें स में देशनिकाले का दण्ड और १९२१ विद्रोह के अभियोग में जेल का क पड़ा था।

लालाजी का स्वतन्त्रता का यह युद्ध इस देश तक ही परिमित नहीं था। वे इँगलेंड गये तब तब वे अपने स्वतन्त्रता के लिए उसी प्रकार लड़े जिस देश में। एक बार वे राष्ट्रीय कां ओर से एक डेपुटेशन में भारत की सुनाने विलायत गये थे। सन् १७ अमेरिका के उपनिवेशों को स्वतन्त्र करने पिट और फ़ाक्स ने भी उतनी हिम्मत जितनी हिम्मत से लाला लाजपत भारत की स्वतन्त्रता की आवाज़ पार्लियामेंट में उठाई थी।

इँगलेंड की नाईं अमेरिकामें भी भारत के उनकी सेवायें अपरिमित थीं। महायुद्ध के प्रा वे वहाँ गये थे और लगातार पाँच वर्षों तक वहाँ वहाँ उन्होंने भारत के सम्बन्ध में अच्छे अच्छे ट्रै लेख पत्रों में छपवाये, न्यूयार्क और बाहर अमेरि

अपने व्याख्यानों द्वारा अमेरिकावासियों को सच्चे भारत का दिग्दर्शन कराया। न्यूयार्क में 'यंग इंडिया' नामक पत्र निकाला, 'इंडिया हेडक्वार्टर्स', 'इंडियन होमरूल लीग' और 'इंडिया इन्फ़ारमेशन बूरो' की स्थापना की। इसके फलस्वरूप लाखों अमेरिकन भारत की दुर्दशा से परिचित हो गये, स्वतन्त्रता-प्रिय अमेरिकनों में से बहुतों ने आंसू बहाये और उन्हीं में से जे० टी० सन्डरलेंड जैसे भारतभक्त उत्पन्न हुए। स्वतन्त्रता के युद्ध में इस प्रकार अमेरिका को अपनी ओर करने का सम्पूर्ण श्रेय लालाजी को ही है। पंजाब के इस शेर की सन् १९२८ के नवम्बर में मृत्यु हो गई।

परन्तु किसी को यह न सोचना चाहिए कि जिन लालाजी ने देश को विदेशी शक्ति से मुक्त करने के लिए स्वतन्त्रता का सङ्ग्राम छेड़ा था, गवर्नमेंट को मौके मौके पर लांछित और पराजित किया था वे ब्रिटेन के दुश्मन थे। नहीं वे ब्रिटेन के मित्र थे और उसे एक बड़ी भूल करने से बचाना चाहते थे। वे उसे उस भूल से बचाना चाहते थे जो उसने ३२ करोड़ मनुष्यों को—जिन्हें ग्रेट ब्रिटेन और अमेरिका के मनुष्यों की नाईं ही प्रजातन्त्र राज्य का हक़ है—परतन्त्र रख कर की थी। वे ब्रिटिश साम्राज्य को चाहते थे, परन्तु उसके ⅕ भाग को स्वतन्त्र और ⅘ भाग को गुलाम नहीं रखना चाहते थे। वे ब्रिटिश साम्राज्य को चाहते थे, परन्तु पूर्ण स्वतन्त्र। वे भारत को कैनेडा और आस्ट्रेलिया की नाईं ही स्वतन्त्र बनाना चाहते थे और इस प्रकार ब्रिटेन से भारत का अटूट सम्बन्ध जोड़ना चाहते थे। वे ब्रिटिश राष्ट्र के कार्यों को, उसकी भारतीय शासन-प्रणाली को घृणा की दृष्टि से देखते थे, उसके निवासियों को नहीं। बहुत से अँगरेज़ उनके पक्के और सच्चे मित्र थे। ब्रिटेन का नुक़सान करने की उनकी इच्छा न थी, परन्तु वे यह भी नहीं चाहते थे कि ब्रिटेन भारत की हानि करे। राजा राममोहन राय के यह सिद्धान्त कि "मैं स्वतन्त्र होना चाहता हूँ, नहीं तो अपना अस्तित्व ही नहीं चाहता" के लालाजी पूर्ण अनुयायी थे।

लालाजी भारत के मेज़िनी और सन-यात-सेन थे। इटली और चीन के लिए जो कुछ इन महावीरों ने किया वही लालाजी ने भारत के लिए किया। लालाजी उन्हीं की नाईं देश-भक्त थे, इन्हीं की नाईं अपने देश की दुर्दशा और अपमान की ठेस उनके हृदय में लगी थी और उन्हीं की नाईं वे अपने देश और देशवासियों को सम्मान की वेदी पर प्रतिष्ठित करना चाहते थे।

---

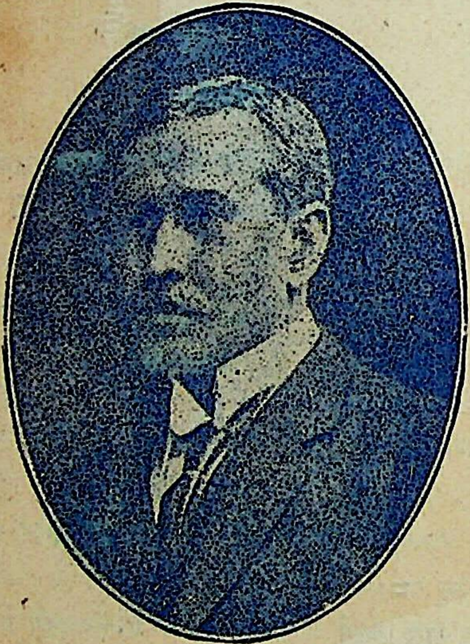
## लार्ड सत्येन्द्रप्रसन्नसिंह

सत्येन्द्रप्रसन्न कलकत्ता-हाईकोर्ट के प्रतिभाशाली बैरिस्टर थे। उन्होंने बैरिस्टरी के पेशे से लक्ष्मी और कीर्ति दोनों का अर्जन किया। वकालत के सिवा उन्होंने जिस जिस काम में हाथ लगाया उसी में अपनी अद्वितीय प्रतिभा का परिचय दिया। उनका जीवन सब प्रकार से सफल जीवन था और उस सफलता का कारण उनका बलिष्ठ और स्वस्थ शरीर, कार्य-क्षमता, अविरत परिश्रम, शक्ति-पूर्ण तीव्र मेधा, वक्तृता देने की शक्ति, व्यावहारिक बुद्धिमत्ता, साहस और सचाई था।

सन् १८७७ में बीरभूम-ज़िला-स्कूल से मेट्रिक की परीक्षा पास करके वे १३ वर्ष के ही वय में प्रेसीडेंसी कालेज में प्रविष्ट हुए और वहां से 'फ़र्स्ट' परीक्षा उच्च कोटि में पास कर सन् १८८१ में अपने भाई नरेन्द्र-प्रसन्न के साथ, जो उस समय मेडिकल कालेज में अध्ययन करते थे, विलायत चले गये।

सत्येन्द्रप्रसन्न 'लिंकन इन' और नरेन्द्रप्रसन्न मेडिकल कालेज में भरती हो गये। दोनों ने वहां जी तोड़ परिश्रम किया। नरेन्द्रप्रसन्न 'इन्डियन मेडिकल सर्विस' में ले लिये गये। सत्येन्द्रप्रसन्न एक प्रतिभाशाली विद्यार्थी थे। 'लिंकन इन' में उन्हें इतने पुरस्कार और स्कालरशिप मिले जितने वहां से किसी दूसरे भारतीय को नहीं मिले। जब जब उनके सामने आर्थिक समस्यायें आईं तभी तभी उन्होंने इसी प्रकार प्राप्त पुरस्कारों और स्कालरशिपों से अपना निर्वाह किया। इस समय

उन्होंने क़ानून के अध्ययन के साथ कई अन्य विदेशी भाषाओं का भी अध्ययन किया। उनमें लेटिन मुख्य थी। क़ानून के ज्ञान में उन्होंने ऐसी प्रतिभा दिखाई कि आख़िरी परीक्षा बिना पास किये ही उन्हें बैरिस्टरी का प्रमाण-पत्र मिल गया। अपने विद्यार्थी-जीवन में उन्होंने योरप के बड़े भाग की यात्रा की थी, जिससे उनका अनुभव बहुत अधिक बढ़ गया था।



स्वर्गीय लार्ड सिन्हा

सन् १८८६ में उन्होंने कलकत्ता-हाईकोर्ट में वकालत प्रारम्भ की। प्रारम्भ में उन्हें सफलता प्राप्त करने के लिए बहुत कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। परन्तु उन जैसे प्रतिभाशाली वकील से सफलता कब तक दूर रह सकती थी। सफलता का कोई मौक़ा उन्होंने कभी हाथ से न जाने दिया। बैरिस्टर होकर भी वे थोड़ी फ़ीस लेकर नीचे की छोटी अदालतों में भी वकालत करने लगे। वे तर्कपूर्ण युक्तियों में बंगाल में अपना सानी नहीं रखते थे। यह प्रतिभा उन्होंने इन्हीं छोटी अदालतों में काम करके प्राप्त की थी। इनमें काम करने से उनमें आत्म-विश्वास जाग्रत हो गया था। वहाँ साधारण जनों से सम्बन्ध रहने के कारण उन्होंने म स्वभाव और चरित्र का .ख़ूब अध्ययन और मनन था। उनकी वे सब शक्तियाँ पूर्णरूप से विकसि जिनकी एक प्रतिभाशाली और दक्ष वकील को आ कता पड़ती है।

सत्येन्द्रप्रसन्न ने सन् १८८६ में वकालत प्रा की थी। १९०३ में वे 'स्टैंडिंग कौंसिल' और चार पश्चात् बङ्गाल के 'एडवोकेट जनरल' नियुक्त १९०९ में वे वायसराय की एक्ज़ीक्यूटिव कौंसि 'ला मेम्बर' बनाये गये। १९१४ में 'सर' की उ से विभूषित हुए। १९१५ से १९१७ तक उन्होंने 'एडवोकेट जनरल' के पद का काम किया। १९ उनके भाग्याकाश का सूर्य मध्याह्न पर था। उसके उन्होंने वकालत नहीं की। उसी साल वे बीक नरेश और लार्ड मेस्टन के साथ भारत-सरकार के निधि बनाकर 'इम्पीरियल वार कान्फ़रेन्स' में भेजे १९१८ में वे 'किंग कौंसिल' और उसी वर्ष 'इम्पी वार केबीनेट' के सदस्य नियुक्त हुए। १९१९ में ' कौंसिल' के सदस्य के रूप में उनसे शपथ ली गई वे 'लार्ड' की उपाधि से विभूषित किये गये। १ और १९२० में वे भारत के 'अन्डर सेक्रेटरी आफ़ रहे और अपने उस पद से उन्होंने 'हाऊस आफ़ ला में भारत का सुप्रसिद्ध 'गवर्नमेंट आफ़ इंडिया पास कराया। सन् १९२० में वे बिहार उड़ीसा प्रान्त के गवर्नर बनाये गये। अस्वस्थता के क १९२१ में उन्हें इस पद से इस्तीफ़ा देना पड़ा। साल उन्हें के० सी० एस० आई० की उपाधि भारत-सरकार का सबसे बड़ा सम्मान मिला सरकार की ओर से जो सम्मान लार्ड सिंह को वह आज तक किसी दूसरे भारतीय को नहीं हुआ।

लार्ड सिंह का राजनैतिक जीवन १९१५ से प्रा होता है। उसके पहले छोटे-मोटे कार्यों के सिवा अ राजनैतिक क्षेत्र में कभी प्रत्यक्ष भाग नहीं लि १९१५ में वे राष्ट्रीय कांग्रेस के सभापति बनाये गये



स्वर्गीय दादा भाई नौरोजी



स्वर्गीय सर फ़ीरोज़शाह मेहता

उस पद से उन्होंने जो भाषण दिया था वह भारतीय इतिहास में चिर स्मरणीय रहेगा, क्योंकि उसी के परिणाम-स्वरूप पार्लियामेंट ने २० अगस्त सन् १९१७ को उत्तर-दायित्व-पूर्ण शासन की घोषणा की थी। उस समय तक कांग्रेस की नीति ब्रिटिश साम्राज्य के अन्दर ही भारत में औपनिवेशिक राज्य स्थापित करने की थी। लार्ड सिंह के हृदय में भारत और इँग्लैंड के स्थायी संबन्ध स्थापित होने में पूर्ण विश्वास था और जैसे जैसे वे आयु में बढ़ते गये, वैसे ही वैसे उनका यह विश्वास भी दृढ़ होता गया, यहाँ तक कि मृत्यु के पहले भी उन्होंने 'साइमन-कमीशन' से सहयोग करने की सलाह दी थी और उसके लिए भरपूर प्रयत्न किया था। भारत के इस महान् व्यक्ति की सन् १९२८ में इँग्लैंड में मृत्यु हो गई।

## हकीम अजमलख़ाँ

हकीम अजमलख़ाँ के पूर्वज मध्य-एशिया के तुर्किस्तान के प्रसिद्ध नगर काशग़र से बाबर के साथ भारत-वर्ष आये थे। चिकित्सा इनके घराने का पुराना व्यवसाय है। भारतवर्ष में यूनानी चिकित्सा के प्रचार का जितना श्रेय इनके घराने को है उतना और किसी को नहीं। इनके घराने में यूनानी चिकित्सा के सिद्धहस्त हकीम हुए हैं। इनके घराने का शाही दरबार में बड़ा आदर रहा है। हकीम अजमलख़ाँ के पिता हकीम महमूदख़ाँ भी बड़े नामी हकीम थे। वे केवल भारत में ही नहीं, अपनी चिकित्सा के लिए एक ओर कान्स्टेन्टिनोपिल और कैरो और दूसरी ओर बुख़ारा तक मशहूर थे। उनके 'तिब्बिया स्कूल' के शिक्षा पाये हुए हकीमों की बड़ी प्रतिष्ठा है।

हकीम अजमलख़ाँ का जन्म दिल्ली में हुआ था। उन्होंने अपनी पारिवारिक संस्कृति के अनुसार सब प्रकार की शिक्षा प्राप्त की थी। फ़ारसी, अरबी, तर्क-शास्त्र, भौतिक शास्त्र, साहित्य, ज्योतिष, गणित आदि विषयों के साथ साथ अपने पैत्रिक व्यवसाय यूनानी चिकित्सा के भी वे पण्डित थे।



हकीम साहब बड़े यात्री थे। उन्होंने सन् १९०४ में मेसोपोटामिया, बसरा, बग़दाद और बहुत से प्रसिद्ध शहरों और मुस्लिम तीर्थ-स्थानों की तथा सन् १९११ में योरप के प्रसिद्ध प्रसिद्ध शहरों और विशेषतः इँग्लैंड की यात्रा की थी और उसी साल ७ जुलाई को सम्राट् पंचम जार्ज के राज्यारोहण में भी सम्मिलित हुए थे। हकीमजी जैसे मनस्वी व्यक्ति केवल यात्रा से सन्तुष्ट नहीं रह सकते थे। इन यात्राओं में देश देश के रीति-रवाज, शिक्षा-पद्धति, वहाँ की राजनैतिक संस्थाओं, धार्मिक और सामाजिक रीति-रवाजों और वहाँ की चिकित्सा-पद्धतियों का अध्ययन किया था। यही नहीं, देश देश के पुस्तकालयों में अध्ययन कर उन्होंने अपना ज्ञान-भांडार भी भर लिया था। उन्हें अँगरेज़ी की शिक्षा नहीं दी गई थी, परन्तु यात्राओं में उन्होंने उसका अच्छा अभ्यास कर लिया था।

हकीम साहब सन् १९१८ की देहली-कांग्रेस की स्वागतकारिणी समिति के सभापति चुने गये थे। इसके पहले वे राजनीति में अधिक भाग नहीं लेते थे। देहली-कांग्रेस के बाद भी वे अपने दैनिक कार्य-क्रम—निर्बलों और रोगियों की चिकित्सा, ग़रीबों की सहायता, अपने अस्पताल की देख-रेख और अपने कालेज के विद्यार्थियों की शिक्षा-दीक्षा में ही व्यस्त रहते थे। परन्तु जब सन् १९१९ में पंजाब में अशांति के बादल उठे तब उनसे चुपचाप बैठा न रहा गया। स्वामी श्रद्धानन्द के साथ रातदिन घोर परिश्रम कर उन्होंने जनता में शान्ति का संचार किया। इस प्रकार उन्होंने अपनी प्यारी दिल्ली को 'मारशल लॉ' के अत्याचारों से बचाया। इसी समय से वे राजनैतिक क्षेत्र में पूर्णरूप से भाग लेने लगे।

अमृतसर के हत्या-काण्ड ने हकीमजी को पाँव से चोटी तक असहयोगी बना दिया। महात्मा गांधी के वे सच्चे भक्त बन गये। उस समय से वे आजीवन वर्तमान राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रधान नायक बने रहे। देश भर में हिन्दू-मुस्लिम-एकता के नारों से आकाश गुंजा दिया और राष्ट्रीयता ही उनका प्रधान धर्म होगया। इसी लिए सन् १९२० में जब देशबंधु कारागार

भेज दिये गये थे, अजमलख़ाँ ही कांग्रेस के अहमदाबादवाले अधिवेशन के सभापति बनाये गये। तदुपरांत १९२१ में मुस्लिम लीग के अमृतसर के अधिवेशन के भी सभापति हुए थे।

हिन्दू-मुस्लिम-एकता के लिए जो काम हकीम अजमलख़ाँ ने किया वह किसी ने नहीं किया। उनका स्वभाव शान्त और नम्र था और उनमें वे सब गुण मौजूद थे जो ऐसे विद्वान् और धार्मिक पुरुष में होने चाहिए। उनका चरित्र उज्ज्वल था और हिन्दू और मुसलमान इस सम्बन्ध में एक समान उन्हें अपना नेता मानते थे। हिन्दू मुसलमान दोनों उनकी एक ही सी पूजा करते थे। इसी लिए तो महात्मा गांधी ने कहा था कि "यदि हिन्दू-मुस्लिम समझौते के लिए डिक्टेटर नियत करने का अधिकार मुझे दे दिया जाय तो मैं हकीम अजमलख़ाँ को नियत करूँगा।" हिन्दू-मुस्लिम-एकता के ये प्रधान कर्णधार थे।

## देशबन्धु चित्तरंजन दास

देशबन्धु का जन्म ५ मार्च सन् १८७० को कलकत्ते में हुआ था। उस समय किसी को इस बात का स्वप्न भी न हुआ होगा कि अर्ध-शताब्दी के पश्चात् यह बालक वह शक्ति संग्रह करेगा जिसका लोहा बड़ी-बड़ी शक्तियाँ मानेंगी।

कलकत्ता-प्रेसीडेंसी कालेज से १८९० में बी० ए० की परीक्षा पासकर चित्तरञ्जन इन्डियन सिविल-सर्विस की परीक्षा पास करने के लिए विलायत गये। परन्तु जिसके पिता और पितामह ने धर्म और समाज-सुधार, दीन-दुखियों की सेवा और उन्हें अन्याय और अत्याचार की प्रतारणा से मुक्त करने में अपना जीवन लगा दिया हो उसका जन्म केवल किताबों में सिर खपाने के लिए नहीं हुआ था। अपनी साहित्यिक अभिरुचि और वक्तृत्व-प्रतिभा का परिचय वे कालेज में दे चुके थे। परन्तु विलायत से आते ही उन्हें विस्तीर्ण क्षेत्र में कूदने का अवसर मिल गया। दास किताबों के दास न रह सके। उसी समय पार्लियामेंट के एक सदस्य मिस्टर जॉन ने अपने एक व्याख्यान के सिलसिले में हिन्दुओं मुसलमानों पर बहुत ही अनुचित आक्षेप किये चित्तरञ्जन जैसे युवक के लिए वे आक्षेप असहनीय प्रतिवाद में लन्दनस्थ भारतीयों की एक सभा में उन आक्षेपों की धज्जियाँ उड़ा दीं और परिणाम पार्लियामेंट का वह सदस्य इस वीर-युवक से माँगने आया। इससे उनकी वहाँ धाक जम इसके पहले भी उन्होंने दादाभाई नौरोजी के पार्लि के चुनाव में, और बाद को सुरेंद्रनाथ बनर्जी चुनाव में अविरत परिश्रम कर अपनी कर्तव्यशील परिचय दिया था। इँग्लेंड के सुप्रसिद्ध ग्लैडस्ट सभापतित्व में वे एक बार भारत की अवस्था पर व्या देने के लिए भी निमंत्रित किये गये थे। इसके वहाँ के राजनैतिक क्षेत्र में वे सदैव भारत के राज सुधारों के विषय में अपने विचार प्रकट किया और अच्छे अच्छे शिक्षित अँगरेज़ विद्वानों से भारत की नैतिक स्थिति पर बहस किया करते थे। अपनी उस पक्व अवस्था में ही दास बाबू अँगरेज़ों के कई फ़िर् लोगों में भारत के प्रति उनकी ज़िम्मेदारियों के भाव करने में सफल हुए थे। उनके राजनीति के क्षेत्र में कूदने का यह परिणाम हुआ कि वे परीक्षा में हो गये। परन्तु परीक्षा की असफलता उनके जीव असफल नहीं बना सकती थी। जिस कार्य के उन्होंने जन्म लिया था, विलायत में रहकर उन्होंने लिए ख़ूब तैयारी करली। अन्त में दास बाबू बै पास कर भारत लौट आये और २४ वर्ष की अवस् सन् १८९४ में कलकत्ता-हाईकोर्ट में वकालत करने

विलायत में सार्वजनिक कार्यों में भाग लेने के दास बाबू ने राजनैतिक क्षेत्र के लिए काफ़ी प्राप्त कर लिया था। विलायत से लौटकर अपने पिता का वह ऋण चुकाने का निश्चय कि जो वे दान-दक्षिणा तथा अपने कुटुम्बियों की सेवा में कर गये थे और जो बे-मियादी होगया था। के बढ़ते ही उन्होंने पिता का क़र्ज़ पाई पाई चुका

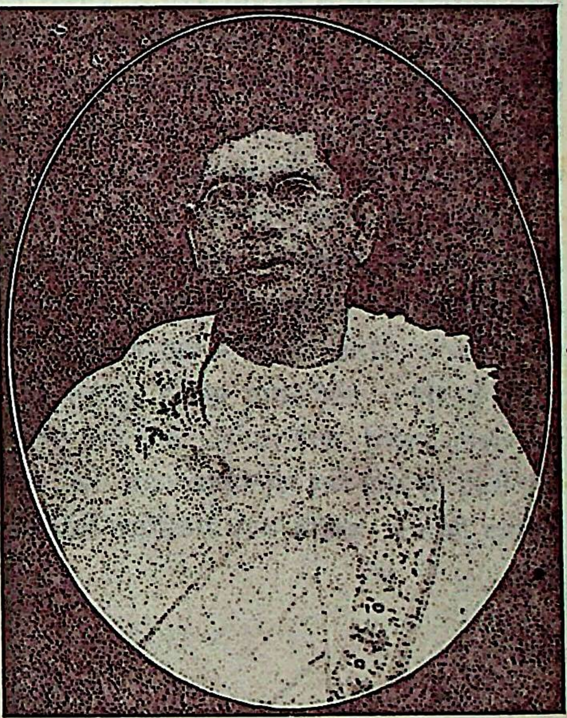
कलकत्ते जैसे वकील बैरिस्टरों के गढ़ में किसी नये वकील बैरिस्टर को प्रसिद्धि प्राप्त करना ज़रा टेढ़ी खीर है। परन्तु कुछ वर्ष पश्चात् ही दास बाबू के भाग्याकाश में सूर्य का उदय हुआ। मानिकतल्ला-बम्बकेस के अभियुक्त राष्ट्रीय नेता अरविन्द घोष को निर्दोष प्रमाणित करके उन्होंने अपनी धाक जमा ली। शीघ्र ही वे बङ्गाल के एक प्रसिद्ध एडवोकेट होगये। लक्ष्मी भी प्रसन्न हुईं और उनकी आमदनी डेढ़ हज़ार रुपया रोज़ तक पहुँच गई।

**दास बाबू का साहित्यिक जीवन**—वकालत में दास बाबू को जो सम्मान और आर्थिक सफलता प्राप्त हुई थी वह उनकी विलक्षण प्रतिभा का अच्छा उदाहरण था। परन्तु सफलता के शिखर पर पहुँचने पर भी उन्हें अपने व्यवसाय से विशेष प्रेम नहीं था। उनकी आन्तरिक इच्छा प्रतिभाशाली कवि बनने और साहित्यिक क्षेत्र में सफलता प्राप्त करने की थी। सन् १९१५ में उन्होंने 'नारायण' नाम का एक पत्र निकाला, जिसने बङ्गाल-साहित्य के क्षेत्र में एक नई आभा के साथ पदार्पण किया। उन्होंने लेखकों का ऐसा दल तैयार किया जिसने पुरानी साहित्यिक रूढ़ियों के चिथड़े उड़ा दिये। 'नारायण' 'जोला' और 'इबसन' की आत्मायें लेकर साहित्य-क्षेत्र में अवतीर्ण हुआ। रूढ़ि-उपासक समालोचक अपने हथियार लेकर 'नारायण' की जड़ काटने के लिए बढ़े। परन्तु 'नारायण' तो सत्य की विवेचना के लिए आया था। उसने बङ्गाल-भाषा का आवरण बदल दिया।

दास बाबू एक प्रतिभाशाली कवि थे। 'मालञ्च' 'माला' 'अन्तर्यामि' 'किशोर किशोर' और 'सागरसंगीत' आदि उनकी उच्च कोटि की कवितायें हैं। परन्तु राजनैतिक संग्राम में व्यस्त रहने के कारण उनकी अन्तरात्मा कविता में पूर्ण रूप से प्रस्फुटित नहीं हो पाई।

सन् १९१७ तक दास बाबू ने राजनैतिक क्षेत्र में पाँव नहीं रक्खा। उस समय तक वे वकालत के साथ साहित्य-सेवा में ही लीन रहे। परन्तु राजनैतिक क्षेत्र में प्रत्यक्ष रूप से कार्य न करने पर भी दास बाबू देश-दशा या राजनीति से उदासीन नहीं थे। अपनी देश-भक्ति और स्वाधीनता की भावना का परिचय वे बहुत पहले इँग्लेंड में ही दे आये थे। इधर वंग-भंग के बाद से क्रान्तिकारी अभियुक्तों के मामलों की पैरवी करके उन्हें भारतीय क्रान्तियों के मूल और उनके असली रूप का अध्ययन करने का अच्छा मौक़ा मिला था जिससे वे देश की उथल-पुथल से भले प्रकार परिचित थे।

देशबन्धुदास के राजनैतिक विचार गरमदल के विचार थे। पर उनकी एक-मात्र श्रद्धा एक-मात्र आन्दोलन पर ही नहीं थी। अतएव वे चुपचाप सर्वसाधारण



[ स्वर्गीय देशबन्धु चित्तरञ्जन दास ]

में देशी भाषा के प्रचार-द्वारा लोगों की ज्ञान-वृद्धि का ही कार्य करते रहे।

कलकत्ते की बहुत-सी शिक्षा-संस्थायें दास बाबू की सहायता से चलती थीं। बहुत-सी ऐसी संस्थायें भी थीं जिन्हें दास बाबू गुप्त दान देते थे। परन्तु जब १९१७ की २० वीं अगस्त को भारत-मंत्री मांटेगू साहब ने भारत को उत्तरदायित्व-पूर्ण शासन-प्रणाली प्रदान करने की घोषणा की तब उन्होंने मैदान में आने का पूर्ण

निश्चय कर लिया। उसी समय उन्होंने मैमनसिंह के एक व्याख्यान में अपना राजनैतिक आदर्श व्यक्त कर दिया और मृत्यु के दिन तक वे अपने निश्चय पर डटे रहे।

स्वराज्य-आन्दोलन के समय चित्तरञ्जन ने लोकमान्य तिलक के कन्धे से कन्धा मिलाकर बहुत काम किया। और जब शाही घोषणा के अनुसार भारत के शासन में नये सुधार किये गये तब अमृतसर की कांग्रेस में उन्होंने नूतन शासन-विधान से सहयोग करने से इनकार किया। अमृतसर के हत्याकांड के सम्बन्ध में दास बाबू स्वयं पंजाब गये और देश-भाइयों पर किये गये अत्याचारों की केवल मनोयोग-पूर्वक जाँच ही नहीं की, बल्कि विपद्ग्रस्त पंजाबियों की पुष्कल धन से सहायता भी की।

अंत में वह समय आगया जब देशबन्धु अपने विशाल रूप में राजनैतिक क्षेत्र में अवतीर्ण हुए। महात्मा गांधी के असहयोग-आन्दोलन का पहले तो उन्होंने विरोध किया, परन्तु नागपुर-कांग्रेस में वे उनसे सहमत हो गये। उसी समय उन्होंने कर्त्तव्य की वेदी पर अपनी हज़ारों रुपये मासिक आय और सुख-आनंद और वैभव पर लात मार कर आदर्श त्याग का उदाहरण उपस्थित किया। उन्होंने अपने राजनैतिक कार्य-क्रम को महारानी विक्टोरिया के माध्यमिक काल की [illegible] प्रणाली के उन सिद्धान्तों पर अवलम्बित नहीं [illegible] जिनके प्रचारक गोखले, सर फ़ीरोज़शाह मेहता, सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी थे। लार्ड रोनाल्डशे और माइकेल ओडायर दोनों ने दास बाबू के जीव[न] प्रकाश डालते हुए अपनी पुस्तकों में यह माना है [कि] वे वर्तमान पाश्चात्य सभ्यता और उसके झूठे प्रलो[भनों] को घृणा की दृष्टि से देखते थे। देश के सामने [इस] आदर्श उपस्थित कर उन्होंने देश की इन प्रलोभनों [से] रक्षा की थी।

देश-सेवा के अपराध में दास बाबू एक बा[र जेल] भी गये थे। उस समय असहयोग-आन्दोलन ज़ो[रों पर] था। उसे असफल करने के लिए महात्मा गां[धी] जेल में डाल दिये गये थे। जेल से मुक्त होकर [दास] बाबू ने स्वराज्य-दल का संगठन किया और असह[योग-] आन्दोलन को नये ढङ्ग से चलाया। इसी दल ने [कौंसिलों में] चलकर द्वैध शासन की पोल खोली और कम से [कम] बङ्गाल और मध्यप्रान्त में उसकी निस्सारता प्रक[ट हो] गई। इस तरह नौकरशाही से स्वराज्य-प्राप्ति के [लिए] युद्ध करते हुए इन भारत-रत्न की १६ जून सन् १९[२५ को] मृत्यु होगई।

—रतनलाल माल[वीय]

## अधिकार से

रहते सदैव तलवार के भरोसे तुम
फिर क्यों भला यों डरते हो तलवार से।
क्यों न रहते हो तुम नित्य क्रूरता से दूर,
क्यों न सर्वदा ही काम लेते हो विचार से।
क्यों न निज नाता तोड़ देते हो सदा के लिए;
अविचार अत्याचार और अनाचार से।
न्याय दया से क्यों नहीं रखते सदा ही प्यार,
पूछना मुझे है ज़रा यह अधिकार से॥

## भारतीय

कैसे उन्हें मानें हम परम दया-निधान,
जो दया किसी पर कभी न दिखलाते हैं।
रहते सताते जो सदैव दीन निर्बलों को,
शूर वीर पद वे कदापि नहीं पाते हैं।
किस भाँति कहें हम उनको स्वदेश-भक्त,
देश-हित जो न निज स्वार्थ को भुलाते हैं।
रखते नहीं जो भक्ति-भाव भव्य भारत में।
वे तो भारतीय बस व्यर्थ ही कहाते हैं॥

—गोपालशरणसिंह

# भारत की राष्ट्रीय महासभा का विकास

> लेखक महोदय ने अपने इस लेख में राष्ट्रीय महासभा कांग्रेस के इतिहास का संक्षेप में वर्णन किया है और समयानुसार उसके उद्देशों में समय समय पर जो परिवर्तन हुए हैं उनको स्पष्ट करते हुए उसके विकास का दिग्दर्शन कराया है। इस प्रकार आपने कांग्रेस के वास्तविक रूप का चित्रण थोड़े में बहुत ही सुन्दर ढङ्ग से किया है।

जिस समय अँगरेज़ी राज्य की जड़ भारतवर्ष में दृढ़ता-पूर्वक जमने लगी उसी समय दूरदर्शी राजनीतिज्ञों ने यह समझ लिया था कि भारतवर्ष में पाश्चात्य विचारों के प्रवेश से एक राष्ट्रीय जाग्रति अवश्य होगी। लॉर्ड मेकाले आदि राजनीतिज्ञों ने इस प्रकार की भविष्यवाणी की थी और बतला दिया था कि अँगरेज़ी-शिक्षा आदि के प्रभाव से भारतीय विचार-धारा में योरपीय संस्थाओं का अवश्य अनुकरण होगा। जैसे जैसे भारत का योरप से संसर्ग बढ़ता गया और अँगरेज़ी ढंग के विश्वविद्यालय, हाईकोर्ट, प्रेस आदि के द्वारा भारत में पाश्चात्य सभ्यता प्रविष्ट की जाने लगी, वैसे वैसे यहाँ के राजनैतिक विचारों में परिवर्तन होता गया। शिक्षित जनता का ध्यान शासन-संबंधी दो मुख्य बातों की ओर अधिक आकर्षित लगा। एक तो यह कि भारतवासियों को स्था आत्म-शासन का अधिकार केंद्रिक सरकार ओर से मिलना चाहिए। इसके लिए आन्दो किया गया और जब लॉर्ड रिपन यहाँ वाइस थे तब यह अधिकार ज़िलों में दिया गया। बात जिसकी शिक्षित-समाज ने देना आरम्भ किया यह थी कि किस प्र जनता अपने वि सरकार पर प्रका कर सकती है। लिए दो उपाय पड़े। एक तो यह व्यवस्थापक सभाओं प्रजा के प्रतिनिधि जायँ और दूसरे कि एक ऐसी रा महासभा स्थापित की जाय जिस पर कर्मचारियों का प्रभाव न हो और जो जनता विचार निर्भयता के साथ उचित रूप से प्र कर सके।

जो महासभा आज-कल भारत की राष्ट्रीय महासभा अथवा इंडियन नेशनल कांग्रेस के नाम से प्रसिद्ध है वह इन्हीं विचारों का फल है। इस महासभा की उत्पत्ति के संबंध में दो-तीन बातें विशेष स्मरणीय हैं। हमको यह बात न भूलना चाहिए कि उसके जन्म का समय वर्तमान समय से बिलकुल भिन्न था। जो स्वतंत्रता का दृश्य हमारे सामने आज मौजूद है, जो राजनैतिक आदर्श हमने अपने लिए आज निर्दिष्ट किया है अथवा जिस निर्भयता से हम अपने क्रांतिकारी तथा तीव्र आलोचनात्मक विचार इस समय प्रकट करते हैं, यह सब उस समय की व्यावहारिक राजनीति से बहुत दूर था। इस कारण उक्त महासभा ने प्रारम्भ में अपने सामने ऐसे आदर्श रक्खे थे जो अब बहुत पीछे छूट गये हैं। इसके अतिरिक्त जिन लोगों ने उसकी स्थापना की वे भी वर्तमान समय के राजनैतिक नेताओं की भाँति न थे। उनमें भारत के प्रति श्रद्धा अवश्य थी और वे भारतीय समाज और शासन में सुधार करने के लिए बड़े उत्सुक थे, तथापि वे अँगरेज़ी राज्य से ऐसे असंतुष्ट न थे, जैसे आज-कल के कांग्रेस-नेता हैं। बहुत लोगों को यह सुनकर आश्चर्य होगा कि उक्त भारतीय महासभा के संस्थापक एक अँगरेज़ महोदय ही थे, जिनका नाम श्रीमान् ऐलन ऑक्टेवियन ह्यूम था। यह न समझ लेना चाहिए कि ये ह्यूम साहब भारत-भक्त श्रीमती एनीबेसेंट जैसे उदार अँगरेज़ थे। यह सुनकर और आश्चर्य होगा कि ह्यूम साहब भारत में इंडियन सिविल-सर्विस के एक कर्मचारी रह चुके थे। जिस समय उक्त महासभा स्थापित की गई उस समय वे सरकारी नौकरी से अलग हो चुके थे। उनके अतिरिक्त अन्य योरपीय तथा भारतीय सज्जनों ने इस महासभा की संस्थापना और उसके सफलता-पूर्वक परिचालन में प्रशंसनीय भाग लिया था।

पहले-पहल इस महासभा का अधिवेशन बंबई-नगर में सन् १८८५ में हुआ था। उस समय भारत-हितैषी लॉर्ड रिपन का शासन-काल समाप्त हो चुका था और लॉर्ड डफ़रिन वाइसराय होकर आये थे। उसका वह अधिवेशन क्रिसमस के अवकाश के दिनों में हुआ था। आज भी उसकी बैठकें पहले की ही भाँति उसी सप्ताह में होती हैं। बंबई के अधिवेशन में इस महासभा के तीन उद्देश इस प्रकार घोषित किये गये थे—

पहला—भारतवर्ष के निवासियों में जो भिन्न-भिन्न जातीय समुदाय हैं और जिनमें प्रायः विरोध-भाव बना रहता है वे एक राष्ट्रीय समष्टि में एकत्र तथा संगठित किये जायँ।

दूसरा—इस प्रकार से बने हुए एक भारतीय राष्ट्र की क्रमशः उन्नति की जाय और यह उन्नति जीवन के सभी अंगों में हो, अर्थात् मानसिक, नैतिक, सामाजिक और राजनैतिक सभी ओर ध्यान दिया जाय।

तीसरा—इँग्लेंड और इंडिया का संबंध दृढ़ किया जाय और इसका उपाय यह हो कि उन दशाओं में परिवर्तन किया जाय जो भारत के लिए अन्यायमूलक अथवा हानिकारक हों।

इन्हीं तीनों उद्देशों से हमारी राष्ट्रीय महासभा ने अपना कार्य प्रारम्भ किया।

और सन् १८८५ से लेकर सन् १९०७ तक उसका कार्य शांत वायु-मंडल में होता रहा। इस काल में कोई विशेष बात अधिक ध्यान देने योग्य नहीं हुई। किन्तु यह स्मरण रहे कि इस शांत वायु-मंडल में इस महासभा ने अपने उद्देश की पूर्ति में बहुत कुछ सफलता प्राप्त की। इसका पहला उद्देश तो सर्वथा पूरा होते रहने की ही अवस्था में रहेगा। दूसरे उद्देश की पूर्ति की भी यही दशा होगी। ये दोनों ऐसे ही उद्देश हैं जिनकी पूर्ति सदा होती रहेगी। तथापि इनके सम्बन्ध में महासभा ने बहुत कुछ सफलता प्राप्त की है। जनता धीरे धीरे एक समष्टि के भीतर आ रही है। यों तो प्राचीन आर्य-सभ्यता ने ही समस्त भारतवर्ष को एक सभ्यता के अंदर डाल दिया था और उसमें ऐक्य का भाव भर दिया था, तथापि मध्यकालीन भारतीय जनता के बिखरे हुए अंशों को एक करना आवश्यक था। इस कार्य में राष्ट्रीय महासभा ने बड़ा भाग लिया और आज भी ले रही है। प्रारम्भ में कुछ वर्षों तक मुसलमान लोग इस सभा को अपनाने से अस्वीकार करते रहे, किन्तु धीरे धीरे वे भी इसके अंदर आते गये और कुछ समय के बाद सभी धर्म, ध्येय तथा विचार के लोग इसमें आगये। परन्तु राष्ट्र की उन्नति की ओर सभा विशेष प्रगति न दिखला सकी। इसके अनेक कारण थे, तथापि इनता अवश्य हुआ कि भारतीय जनता समझने लगी कि उसके दुःखों तथा उसकी कठिन समस्याओं की ओर महासभा अपना ध्यान देगी और उनको शासनाधिकारियों के सामने उपस्थित करेगी। अतः ऐसे सब विचारों के एकत्र होने और बल पकड़ने का उचित स्थान मि[illegible] स्वभावतः यह कार्य अधिकतर शिक्षित समाज [illegible] था, क्योंकि अशिक्षित जनता तो बहुत दिनों [illegible] इस महासभा के संबंध में अंधकार ही में [illegible] रही। सच पूछिए तो सर्वसाधारण ने कां[illegible] सम्बन्धी व्यापारों में सन् १९२० से ही भाग [illegible] आरम्भ किया है। इस महासभा से एक और [illegible] लाभ हुआ, जो महत्त्व-पूर्ण है। वह यह [illegible] भारतीय राजनीतिज्ञों के लिए एक शिक्षा-क्षेत्र [illegible] गया, अर्थात् उनकी शिक्षा योरपीय ढंग से भार[illegible] में ही होने लगी। इससे यह बड़ा लाभ हुआ [illegible] योरपीय राजनीतिज्ञों का सामना योरपीय ढं[illegible] ही करने के लिए भारतीय राजनीतिज्ञों में [illegible] बढ़ने लगी।

सन् १९०७ से महासभा के इतिहास में [illegible] नया युग आरम्भ होता है। उस वर्ष सभा की बै[illegible] सूरत में हुई थी और सभापति डाक्टर रासवि[illegible] घोष निर्वाचित हुए थे। इसमें नरम और ग[illegible] दलवालों में पूरा विरोध होगया, और विवाद इ[illegible] बढ़ गया कि युद्ध-प्रवीण बालकों का-सा व्यव[illegible] होने लगा। इसमें संदेह नहीं कि यह विरोध प[illegible] से ही विद्यमान था, परन्तु सूरत में इसने अ[illegible] स्पष्टरूप प्रदर्शित कर दिया। परिणाम यह हु[illegible] कि महासभा की एकरूपता खंडित होगई। [illegible] दशा सन् १९१६ तक बनी रही। इस वि[illegible] का मुख्य कारण यह था कि नवयुवक-दल [illegible] पुराने लोगों के विचार पुराने मालूम होते थे। [illegible] लोग गरमदल के थे और अंत में कांग्रेस [illegible] एकता का इन्होंने भंग ही कर डाला। इस दल [illegible]

नेता प्रधानतः दक्षिणी भारत और मध्य-प्रदेश के थे। यह हाल देखकर पुरानों ने अपना उद्देश यह रक्खा कि भारतीय शासन में भी ब्रिटिश साम्राज्य के आत्म-शासित देशों की भाँति ही सुधार किया जाय और भारतवर्ष उन देशों के बराबर रहे। आरम्भिक उद्देश और इस उद्देश का अंतर स्पष्ट है। पहले में केवल भारत पर अत्याचारों या दुर्व्यवहारों को दूर कर इँग्लेंड और भारत का सम्बन्ध घनिष्ठ करना था, दूसरे में भारत के लिए आत्मशासनाधिकार की माँग उपस्थित की गई। इसके लिए यह मार्ग निर्दिष्ट किया गया कि वैध प्रयत्नों से शासन-पद्धति में सुधार कराये जायँ और राष्ट्रीय एकता का भाव बढ़ाया जाय। इस प्रकार राष्ट्र की उन्नति की जाय और मानसिक, नैतिक, आर्थिक तथा व्यावसायिक साधनों-द्वारा यहाँ का जीवन उत्तम और उच्चतर बनाया जाय। थोड़े ही दिनों में इन नये उद्देशों में भी परिवर्तन होनेवाला था।

कांग्रेस की यह भग्न दशा सन् १९१६ तक बनी रही। उस वर्ष उसकी बैठक लखनऊ में हुई और सभापति बाबू अम्बिकाचरण मजूमदार निर्वाचित हुए। इस सभा में दोनों दलों में एक प्रकार का संयोग हुआ। यद्यपि यह संयोग केवल ऊपरी था और दोनों दलों में ऐक्य-भाव का अभाव था, क्योंकि दोनों के शासन-सम्बन्धी तथा राजनैतिक विचारों में बड़ा भेद था। तथापि कुछ समय तक यह ऊपरी एकता क़ायम रही। लेकिन काग़ज़ की नाव कब तक चलती? गरमदल के विचार ज़ोर पकड़ने लगे, नरमदल मंद पड़ने लगा। धीरे-धीरे कुछ वर्षों में कांग्रेस गरमदल के अधिकार में पूर्ण रूप से आगई।

सन् १९१८ में महासभा की बैठक फिर बम्बई में हुई। यह बैठक और बैठकों की भाँति दिसम्बर में न होकर अगस्त में हुई। साधारणतः तो सभा की बैठक दिसम्बर में ही हुआ करती है, किन्तु यदि किसी समय—देश की परिस्थिति ऐसी हो जाय कि उपस्थित समस्याओं पर विचार करने के लिए राजनैतिक नेताओं का एकत्र होना आवश्यक ज्ञात हो तथा किसी बात पर जनता की सम्मति जाननी आवश्यक हो तो उस समय कांग्रेस की विशेष बैठक हो जाती है और उसे कांग्रेस की असाधारण या विशेष बैठक कहते हैं। इस दशा में भी उसकी साधारण बैठक दिसम्बर में होती ही है। ऐसी ही परिस्थिति में महासभा की बैठक सन् १९१८ के अगस्त में बम्बई-नगर में हुई। इसमें नरम और गरम-दल के परस्पर मतभेद के कारण अब एक साथ रहना असम्भव होगया। इसलिए नरम-दलवालों ने अपनी एक दूसरी सभा स्थापित की और उसका नाम 'नेशनल लिबरल फ़ेडरेशन' अर्थात् राष्ट्रीय नरम-दल-संघ रक्खा। इस संस्था की पहली बैठक बम्बई में ही सन् १९१८ में हुई और इसके सभापति स्वर्गीय सुरेन्द्रनाथ बनर्जी बनाये गये थे।

सन् १९१९ से महासभा गरम-दलवालों के अधिकार में होने लगी। यहाँ तक कि सन् १९२० में महासभा गरमदल के नये नेता गांधीजी के अधिकार में आगई। सन् १९२० में कांग्रेस की एक असाधारण बैठक सितम्बर के महीने में कलकत्ते

में हुई। इसके सभापति लाला लाजपतराय थे। सन् १९२० का साल कांग्रेस के इतिहास में बहुत प्रसिद्ध रहेगा। इस साल महात्मा गांधी ने अपना असहयोग-आन्दोलन खड़ा किया और उच्च असाधारण बैठक में अपने शांतिमय असहयोग का प्रोग्राम पास कराया। जब कांग्रेस की साधारण बैठक दिसम्बर में नागपुर में हुई तब शांतिमय असहयोग का प्रोग्राम पास करने के अतिरिक्त महासभा के उद्देश में भी क्रान्तिकारी परिवर्तन किया गया। नागपुर के अधिवेशन के सभापति श्रीयुत विजयराघवाचार्य थे।

उपर्युक्त अधिवेशन की बैठक में महात्मा गांधी ने यह प्रस्ताव किया कि अब से हमारा उद्देश यह रहेगा कि भारतवर्ष सभी वैध और शांतिपूर्ण साधनों से स्वराज्य प्राप्त करे। सभा ने यह प्रस्ताव पास कर दिया। इस परिवर्तन ने बड़ा आन्दोलन खड़ा कर दिया। स्वराज्य-शब्द चारों ओर सुनाई देने लगा। यद्यपि इस शब्द का अर्थ अस्पष्टता-रहित नहीं था, तथापि इसने लोगों के हृदय में एक नई बात पैदा कर दी। महात्मा गांधी देश के सर्वमान्य नेता होगये और जनता उनको पूज्य-दृष्टि से देखने लगी। असहयोग की धूम-धाम मची और सरकार के सामने शासन-सम्बन्धी विकट समस्यायें आने लगीं। लोगों को दृढ़ विश्वास होने लगा कि महात्मा गांधी भारतवर्ष के लिए स्वराज्य प्राप्त कर लेंगे और वह भी सविनय क़ानून भङ्ग के अस्त्र-द्वारा। आन्दोलन का उग्र रूप देखकर सरकार को भी भय हुआ और प्रांतीय सरकारों ने कांग्रेस के कार्यकर्त्ताओं तथा नेताओं को सविनय क़ानून भङ्ग करने के अपराध में दण्ड[illegible] आरम्भ किया। जब कांग्रेस ने अधिकारि[illegible] यह दशा देखी तब महात्माजी को उसने देश[illegible] सर्वाधिकारी (डिक्टेटर) नियुक्त कर दिया और[illegible] नियत किया कि सरकार से युद्ध करने का सा[illegible] तो हमारे पास है नहीं, अतएव सविनय क़ानून[illegible] का प्रयोग धूमधाम से किया जाय। यही [illegible] सरकार को कर (टैक्स) देना भी बंद किया जा[illegible] इससे शासन चलना असंभव हो जायगा। [illegible] प्रोग्राम बारदौली स्थान से आरम्भ होनेवाला [illegible] किन्तु बम्बई और चौरीचौरा में बलवा हो जाने[illegible] महात्माजी ने समझा कि उक्त आंदोलन आर[illegible] करने में अशांति का भय है, इसलिए उन्होंने [illegible] कुछ समय के लिए स्थगित कर देने की घोष[illegible] कर दी। इसके बाद महात्माजी ने एक नया प्रो[illegible] बनाया, जो बारदौली के प्रोग्राम के नाम से प्रसि[illegible] है। इसका उद्देश यह था कि हिन्दू-मुसलम[illegible] आदि भारत की भिन्न भिन्न जातियों में मेल क़ा[illegible] किया जाय और खद्दर-प्रचार शुरू हो। [illegible] १९२२ में महात्माजी को भी सरकार ने राज-विद्रो[illegible] के अपराध में पकड़ कर छः वर्ष के लिए कारावा[illegible] का दण्ड दे दिया, किन्तु सन् १९२४ में ही छोड़ दिये गये।

इस बीच में कांग्रेस की दशा में बड़ा परिवर्त[illegible] होगया। जब तक महात्माजी थे तब [illegible] कांग्रेस में एकमत रहा और वह एक[illegible] उन्हीं का मत था। परन्तु उनके जेल चले [illegible] पर कांग्रेस में दो दल होगये। एक का [illegible] यह था कि हम लोग असहयोग के सिद्धांत [illegible]

अनुसार सरकारी कौंसिलों अर्थात् व्यवस्थापक सभाओं में न जायँ और दूसरे का मत इसके विरुद्ध था। जब गया में कांग्रेस की बैठक श्रीयुत चित्तरञ्जन दास के सभापतित्व में हुई तब तो इस बात पर बड़ा विवाद हुआ। अंत में दूसरे मत-वालों की जीत हुई। किन्तु सभापति देशबन्धु चित्तरञ्जन दास इस दल के विरुद्ध थे, अतएव उन्होंने पंडित मोतीलाल नेहरू आदि नेताओं के साथ 'स्वराज्य-दल' के नाम से अपना दल अलग संगठित किया। इस दल ने देश में घूम घूम कर अपने सिद्धांत जनता को समझाये और उस पर प्रभाव डाला। स्वराज्य-दल की शक्तिबढ़ते देखकर कांग्रेस ने भी कौंसिलों में जाने की आज्ञा दे दी।

इधर ये सब बातें हो रही थीं कि महात्माजी छोड़ दिये गये। पूरे देश की दृष्टि उन्हीं की ओर फिरी। उस समय उनका स्वास्थ्य इतना अच्छा न था कि वे राजनैतिक मामलों में समुचित भाग ले सकते, तथापि सब लोग उन्हीं की ओर देख रहे थे। वे जुहू नामक स्थान में स्वास्थ्य सुधारने के लिए चले गये थे और वहाँ पर स्वराज्य-दल के नेता देशबन्धु चित्तरञ्जन दास और पण्डित मोतीलाल नेहरू को बुलाकर उनसे परामर्श किया। डेढ़ मास तक बहस होती रही। परन्तु महात्माजी ने कौंसिल में जानेवाला उनका प्रोग्राम नहीं स्वीकार किया और उन्होंने एक बिलकुल नया प्रस्ताव उपस्थित किया। अब वास्तव में कांग्रेस में दो दल होगये। एक ओर महात्माजी थे और दूसरी ओर स्वराज्य-दल। अपने प्रस्ताव-द्वारा महात्माजी ने यह पास करा दिया कि महासभा के सदस्यों को प्रतिमास २,००० गज़ हाथ का कता सूत कांग्रेस को देना पड़ेगा। कांग्रेस के बेलगाँव के अधिवेशन में स्वयं महात्माजी ही सभापति थे। उस बैठक में महात्माजी का उक्त प्रस्ताव पास होगया।

थोड़े दिन के बाद महात्माजी ने पूरे एक वर्ष के लिए मौन-व्रत धारण किया। कांग्रेस में फिर गड़बड़ मचने लगा। पंजाब के लाला लाजपतराय ने कांग्रेस के अंतर्गत एक और दल संगठित किया, इसका नाम उन्होंने इंडिपेंडेंट कांग्रेस-पार्टी रक्खा। उसके बाद हिन्दू-मुसलमानों में बहुत मतभेद पैदा होगया। इस कारण और अन्य कारणों से भी महासभा का महत्त्व कुछ घटने लगा। तब तक महात्माजी फिर राजनैतिक क्षेत्र में आगये। सन् १९२६ में महासभा की बैठक आसाम में गोहाटी में श्रीयुत श्रीनिवास आयंगर के सभापतित्व में हुई। इसमें एक ऐसा प्रस्ताव उपस्थित किया गया जिससे प्रकट होता है कि देश की दशा क्या से क्या होगई थी और जनता के विचारों में कितना परिवर्तन होगया था तथा कांग्रेस के उद्देश के सम्बन्ध में कितने क्रांतिकारी विचार उठ रहे थे। वह प्रस्ताव यह था कि भारत पूर्ण-रूप से स्वतंत्र किया जाय, अर्थात् अँगरेज़ी राज्य की कोई आवश्यकता नहीं है। किन्तु यह प्रस्ताव पास न हो सका। एक तो जनता इसके लिए अभी तैयार नहीं थी, दूसरे महात्माजी ने इसका विरोध किया। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि इधर कई वर्ष से कांग्रेस पर महात्माजी का ही पूर्ण अधिकार

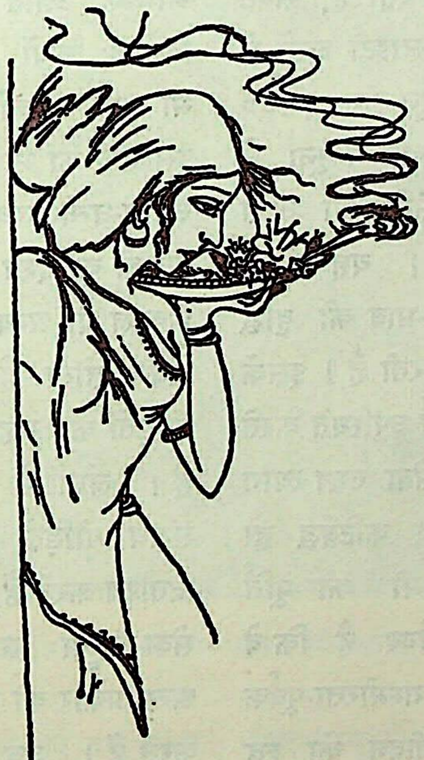
रहा है। अतएव उनके प्रभाव के कारण उक्त प्रस्ताव गोहाटी के अधिवेशन में तो न पास हो सका, पर उसके बाद जब कांग्रेस की बैठक मदरास में डाक्टर मुख्तार अहमद अनसारी के सभापतित्व में हुई तब उक्त प्रस्ताव पास होगया।

पूर्ण स्वतंत्रता का प्रस्ताव पास हो जाने से ज्ञात होता है कि उस समय देश की राजनैतिक धारा किस दिशा में प्रवाहित हो रही थी। यह समय ऐसा विकट आगया था कि सरकार और प्रजा दोनों के लिए परिस्थितियों का उचित ज्ञान बड़ा कठिन होगया था। अब कांग्रेस को पूरे देश का भार उठाना पड़ा, और वह थोड़े ही दिनों में जनता की दृष्टि में देश की सर्वप्रधान सभा होगई। जब गत वर्ष कांग्रेस की बैठक कलकत्ते में हुई तब सभापति का बड़ी धूमधाम से स्वागत हुआ। सभापति पंडित मोतीलाल नेहरू थे, जो राष्ट्रपति कहे गये और जिनकी गाड़ी में ३६ घोड़े जोते गये थे। इस बैठक में पूर्ण स्वतंत्रता के प्रस्ताव पर बड़ी बहस हुई। नवयुवक-दल इसका बड़ा पक्षपाती था। इस अवसर पर महात्मा गांधी ने देश को सँभाल लिया और दोनों दलों के स्वीकार करने योग्य एक प्रस्ताव पास कराया। इस वर्ष फिर यह प्रस्ताव कांग्रेस के सामने आवेगा। यह वर्ष राजनैतिक दृष्टि से बड़ा विकट तथा समस्या-गर्भ है। देश को यह निश्चय करने में बड़ी कठिनाई हुई है कि इस साल सभापति कौन बनाया जाय। अंत में सर्वसम्मति से यही निश्चय किया गया कि केवल महात्मा गांधी ही इस बार देश के कर्णधार हो सकते हैं। किन्तु उन्होंने इसे अस्वीकार किया। उनका कहना यह है कि देश के ... में नवयुवक लोग हैं और इनके विचार उनके वि... से आगे बढ़ गये हैं। अतः महात्माजी भी विश्वास करते हैं कि देश नवयुवकों और उनके विचारों से अधिक सहमत है। ऐसा विचार करके उन्होंने नवयुवक दल के प्रसिद्ध नेता पंडित जवाहरलाल नेहरू को भावी राष्ट्रपति अर्थात् राष्ट्रीय महासभा का सभापति बनाने के लिए कहा और अंत में देश ने इस बात को मान लिया। अतः पण्डित जवाहरलाल नेहरू इस साल की बैठक के सभापति होंगे।

यह तो हुआ इस महासभा का संक्षिप्त इतिहास, अब हम यहाँ इसकी दो-तीन बातों का उल्लेख करके इस लेख को समाप्त करेंगे। एक तो यह कि धीरे-धीरे कांग्रेस ने अपने लिए ऐसा स्थान बना लिया कि अब उसका सभापति देश का कर्णधार समझा जाता है और राष्ट्रपति कहलाता है। यदि ह्यूम साहब सन् १९२९ में जीवित होते तो उनको बड़ा आश्चर्य होता कि उनकी स्थापित सभा राई से पर्वत हो गई। कहाँ वह सभा जिसमें अँगरेज़ी पढ़े-लिखे गिने-गिनाये लोग थे, जिनके प्रति जनता के हृदय में असंदिग्ध श्रद्धा तथा अटल विश्वास न था और कहाँ वही सभा आज ऐसी होगई कि उसका सभापति पूरे देश को जिधर चाहे उधर फेर दे। दूसरी बात ध्यान देने योग्य यह है कि इस सभा की बैठक भिन्न-भिन्न वर्षों में भिन्न-भिन्न नगरों में हुआ करती है, जिससे समस्त भारत में एकता और समानता का भाव बना रहे। कभी बम्बई

में तो कभी आसाम में, कभी लाहौर में तो कभी कलकत्ते में, कभी लखनऊ में तो कभी कोकोनाडा में, इस प्रकार देश भर में सभा घूमा करती है। तीसरी बात यह है कि सभापति का चुनाव बहुत उदारता के साथ होता है। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, भारतवासी, अँगरेज़, स्त्री, पुरुष सभी श्रेणी के लोगों ने सभापतित्व का पद पाया है। और प्रायः देश के सभी बड़े बड़े नेता इस पद पर पहुँच चुके हैं। इस राष्ट्रीय महासभा ने अब वास्तव में अपना वास्तविक रूप प्रकट किया। देश को इससे बड़ी बड़ी आशायें हैं।

—रमाशंकरप्रसाद

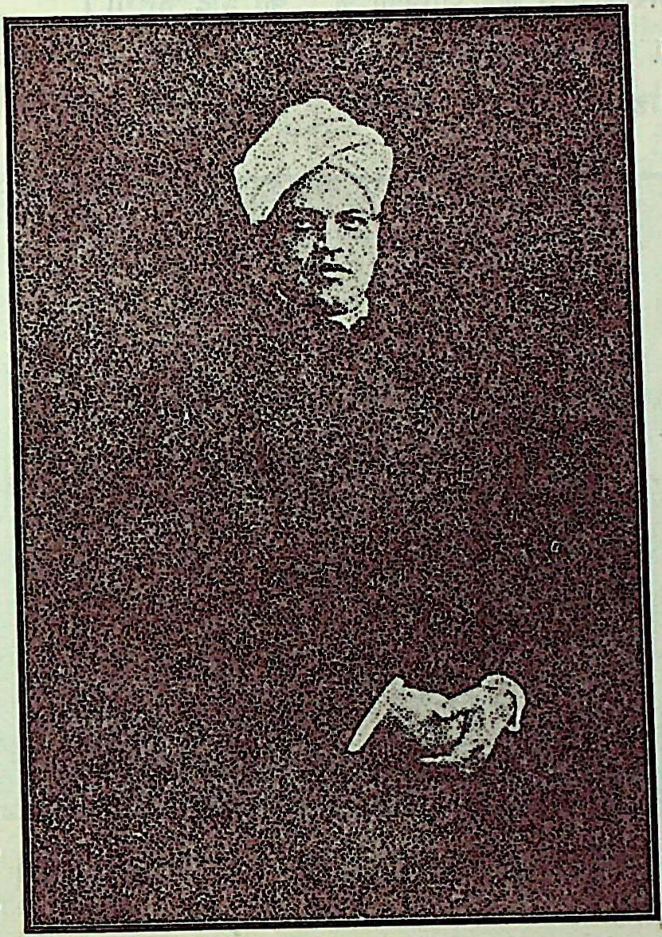


# सर्वेंट आफ़ इंडिया सोसाइटी

भारत की सर्वाङ्ग समुन्नति के लिए देश में जो दो-एक महत्त्वपूर्ण संस्थायें काम कर रही हैं, सर्वेंट आफ़ इंडिया सोसाइटी उनमें से एक है। १२ जून सन् १९०३ ईसवी को स्वर्गीय गोपाल कृष्ण गोखले ने पूना में इसकी स्थापना की थी। इस संस्था का उद्देश है देश की सभी प्रकार सेवा करना। यह संस्था प्रधानतया जन-साधारण में सेवा-भाव की वृद्धि करने के लिए रचनात्मक कार्य करती है। इसके सदस्य जनता के समक्ष ऐसा आदर्श उपस्थित करते हैं जिसको ग्रहण करके देशवासी सेवा तथा त्याग के द्वारा मातृभूमि की सेवा के लिए कटिबद्ध हो सकें और देश की सबसे बड़ी कमी की पूर्ति करें। सदस्यों का यह भी कर्तव्य है कि वे जनसाधारण की समस्याओं का गम्भीरता-पूर्वक अध्ययन करें और सार्वजनिक जीवन को दृढ़ बनाकर देश में राजनैतिक भावना का विस्तार करें, साथ ही समय समय पर राजनीति-सम्बन्धी आन्दोलन भी करते रहें। भिन्न-भिन्न जातियों में पारस्परिक मित्रता स्थापित करना तथा उनकी सहानुभूति एवं सहयोग प्राप्त करना भी इ सदस्यों का कर्तव्य है। देश की सामाजिक आर्थिक उन्नति के लिए जन-साधारण में विशेषतः स्त्रियों तथा अछूतों में शिक्षा-प्रचार भी इनके कर्तव्यों में ही है। इसके सदस्यों इस बात का भी ध्यान रखना पड़ता है कि उद्योग-धन्धे तथा व्यापार की वृद्धि हो अछूतों की दशा में सुधार हो। देश में जब अकाल या अन्य किसी प्रकार की आपत्ति स्थित होती है तब सोसाइटी के सदस्यों पीड़ितों की सहायता करना मुख्य कर्तव्य हो है। लोगों से धन एकत्र करके वे अकाल समय पीड़ितों में आवश्यकतानुसार अन्न वितरित करते हैं, रोगियों की चिकित्सा तथा सेवा-सुश्रूषा करते हैं, साथ ही आवश्यकतानु अन्य प्रकार की सुविधायें भी प्रदान करने का प्र करते हैं। जब कभी इस दिशा में प्रयत्न करने आवश्यकता पड़ती है तब इस सोसाइटी के सद देश-वासियों को सहायता के लिए आह्वान क हैं और निर्दिष्ट स्थानों पर स्वयंसेवकों के दल भि करते हैं।

सोसाइटी के सदस्यों में सभापति, उपसभापति, साधारण सदस्य तथा शिक्षाधीन सदस्य होते हैं। सभापति ही सोसाइटी का प्रधान तथा सञ्चालक होता है। सोसाइटी में प्रवेश करने पर प्रत्येक सदस्य को लगातार पाँच वर्ष तक प्रधान कार्यालय में रह कर शिक्षा ग्रहण करनी पड़ती है। इतने दिनों तक वह व्यक्ति शिक्षाधीन सदस्य कहलाता है और फिर शिक्षा समाप्त करके साधारण सदस्य बन जाता है।

सदस्यों की जीविका के लिए सोसाइटी की ओर से उन्हें कुछ वृत्ति भी दी जाती है। यह वृत्ति शिक्षाकाल में प्रत्येक सदस्य को पहले दो वर्ष तक ६५) मासिक और बाद को तीन वर्ष तक ७५) मासिक के हिसाब से दी जाती है। परन्तु जो सदस्य केवल परीक्षार्थ रक्खे जाते हैं, उन्हें स्थायी नियुक्ति के पूर्व तक केवल ५०) मासिक मिलते हैं। साधारण सदस्यों को पहले-पहल ८०) मासिक मिलते हैं; और पाँच वर्ष के बाद १२५) मिलने लगते हैं। तब फिर पाँच वर्ष के बाद आवश्यकतानुसार उसकी वृत्ति बढ़ा दी जाती है। इस वृत्ति के अतिरिक्त सदस्यों को मकान का किराया तथा कौंसिल की स्वीकृति होने पर अन्य प्रकार की भी सहायतायें मिला करती हैं।



[ महामाननीय श्री वी० एस० श्रीनिवास शास्त्री ]

सर्वेंट आफ़ इंडिया सोसाइटी का प्रत्येक सदस्य आजन्म के लिए उसका सदस्य होता है। सोसाइटी के नियमानुसार उसे जो प्रतिज्ञायें करनी पड़ती हैं उनका पालन करने के लिए वह सदा बाध्य रहता है, परन्तु परिस्थितिविशेष में सोसाइटी का प्रधान या कौंसिल किसी भी सदस्य को कुछ प्रतिज्ञाओं से मुक्त भी कर देती है। प्रवेश के समय जो प्रतिज्ञायें करनी पड़ती हैं उनका तात्पर्य इस प्रकार है—

( १ ) मेरे हृदय में सबसे पहले देश-हित-सम्बन्धी ही चिन्ता प्रवेश कर सकेगी और देश के कल्याण के लिए मैं अपनी समस्त शक्ति का उपयोग करूँगा।

( २ ) देश-सेवा के कार्य में मैं अपने व्यक्तिगत स्वार्थ की ओर न ध्यान दूँगा।

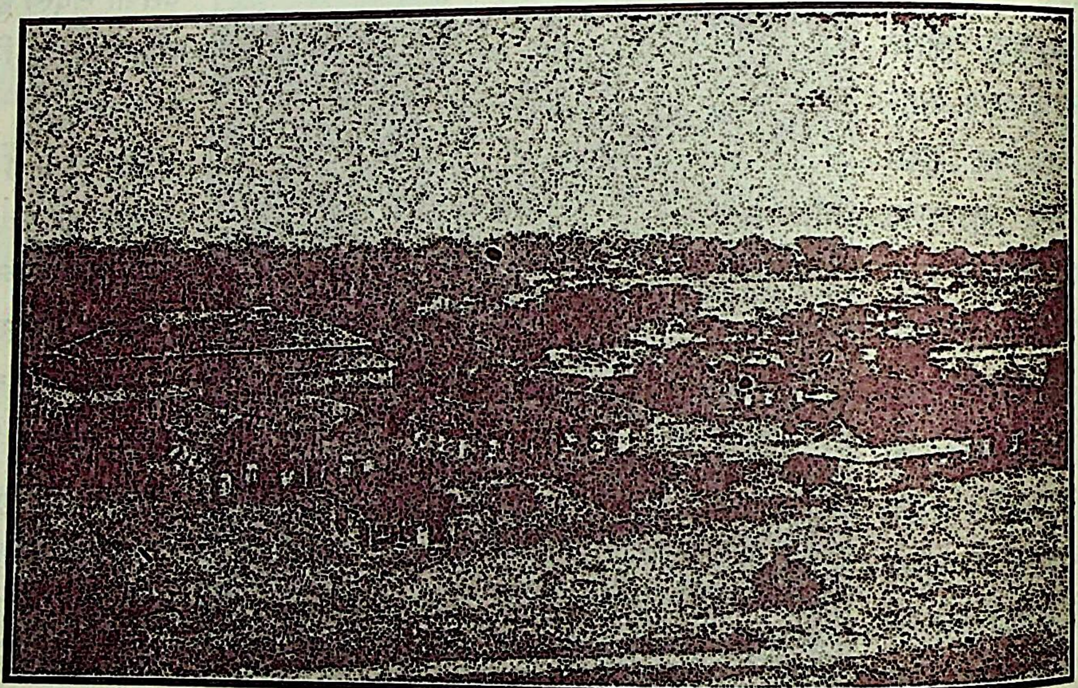
(३) किसी भी जाति या सम्प्रदाय-विशेष का पक्षपात न करके मैं भारतवासी-मात्र को अपना भाई समझूँगा और सबकी उन्नति का प्रयत्न करूँगा।

(४) मेरी तथा मेरे परिवार की जीविका के लिए सोसाइटी जो कुछ व्यवस्था करेगी उसी से सन्तोषपूर्वक अपना निर्वाह कर लूँगा। आर्थिक लाभ की आशा से मैं अपने एक क्षण का भी उपयोग न करूँगा।

(५) अपने जीवन को मैं सदा पवित्र रक्खूँगा।

(६) व्यक्तिगत रूप से किसी से झगड़ा न करूँगा।

(७) सोसाइटी के नियमों का मैं सदा साव-धानी के साथ पालन करूँगा और उसके उद्देशों



[ सर्वेंट आफ़ इंडिया सोसाइटी का प्रधान कार्यालय, पूना ]

की पूर्ति के लिए उत्साह-पूर्वक प्रयत्न रहूँगा। मैं न तो नियम के प्रतिकूल कोई करूँगा और न सोसाइटी के कार्यों का सुचा से सम्पादन करने में ही यथाशक्ति किसी की त्रुटि करूँगा।

आरम्भ में सोसाइटी के जन्मदाता गोपाल कृष्ण गोखले की मृत्यु होने पर भार

श्रीयुत वी० एस० श्रीनिवास शास्त्री बारह वर्ष इसके अध्यक्ष-पद पर कार्य करते रहे। कार्य-काल में सोसाइटी सफलतापूर्वक कार्य रही। इस संस्था की उपयोगिता तथा मह कारण जनता में इसका समुचित आदर हु शास्त्रीजी की कार्य-पटुता तथा उनके रा के प्रगाढ़ पाण्डित्य से मुग्ध होकर भारत-स

### ४१ वर्ष से प्रचलित है

# शोधी हुई छोटी हरैं

यदि आपको अपना स्वास्थ्य ठीक रखकर बलवान् और नीरोग रहना है तो आप अवश्य हमारी शोधी हुई छोटी हरैं का सेवन कीजिये। हमारी शोधी हुई छोटी हरैं मन्दाग्नि, अजीर्ण, पतला दस्त आना, अरुचि, उदरपीड़ा, उदरकृमि, जलन्धर, वायुगोला, बादी बवासीर इन सब रोगों को दूर कर अग्नि तेज़ करती है। उदर अर्थात् पेट की अग्नि तेज़ होने से भोजन पचता है और भोजन पचने से साफ़ दस्त होगा जिसके कारण शरीर सदैव सुखी और नीरोग रहेगा। हमारी शोधी हुई छोटी हरैं विशेष प्रकार की रीति और बड़े परिश्रम से बनाई गई हैं। यह खाने में बड़ी स्वादिष्ठ जिसको अत्यन्त सुख-भोगी मनुष्य भी बड़े प्रेम से सेवन कर सकते हैं। इसमें कसेलापन नाम-मात्र को भी नहीं है। इसलिए हर एक महाशय को चाहिए कि यह अपूर्व गुणदायक दवा का एक २ बक्स अपने २ घरों में रखकर लाभ उठावें। इन सर्वगुण-सम्पन्न शोधी हुई छोटी हरैं का मूल्य हमने सर्वसाधारण के सुभीते के लिए अत्यन्त ही थोड़ा रक्खा है। यह मूल्य इनके गुणों के सम्मुख कुछ भी नहीं है। इसके गुणदायक होने के सबूत में बहुत से प्रशंसापत्र हमारे पास मौजूद हैं। सिर्फ़ आप लोगों के वक्त ख़राब होने के सबब से इसमें लिखना उचित न समझा। मूल्य प्रतिबक्स जिसमें १०० हरैं रहती हैं केवल ।) मात्र है, महसूल डाक १ बक्स से तीन बक्स तक ॥)

**नोट**—आजकल लालचियों के मुँह में हमारे कार्यालय की बनी हुई छोटी हरैं की अधिक बिक्री देखकर पानी भर आया है और नक़ली हरैं बनाने के अतिरिक्त धोखा देने को हमारे विज्ञापन वा लेबिल के लेख की कुछ पंक्तियाँ भी लिख दी हैं। इस कारण ग्राहक महाशयों को सावधान करते हैं कि ख़रीदते समय हमारा नाम पढ़ लें। कार्ड आने पर औषधियों का बड़ा सूचीपत्र बिना मूल्य भेजा जाता है।

पता—हकीम रामकृष्णलाल रामचन्द्रलाल,

मालकान यूनानी मेडिकल-हाल, रानीमंडी, इलाहाबाद।

---




### बच्चों की ताक़त बढ़ानेवाली अपूर्व औषधि

# कृष्णा का बालामृत

इसके सेवन से बच्चों के शरीर में शुद्ध रक्त और मांस बढ़ता है। यह बच्चों की हड्डियों को मज़बूत करता है। यह बच्चों की निर्बलता और दुर्बलता और सूखी रोग (मिठुवा) को हटा कर मांस बढ़ाता और मोटा कर देता है। यह बुख़ार, खांसी और पतले दस्त के लिए भी उपकारी है। यह बच्चों के दांत आसानी से निकाल देता है। इसके सेवन से दूध अच्छी तरह हज़म होकर शरीर में शुद्ध रक्त बनता है। फिर शरीर बलिष्ठ और तेजवान् हो जाता है। मूल्य प्रति शीशी ॥।) डाकख़र्च ॥-)

कार्ड आने पर औषधियों का बड़ा सूची-पत्र बिना मूल्य भेजा जाता है।

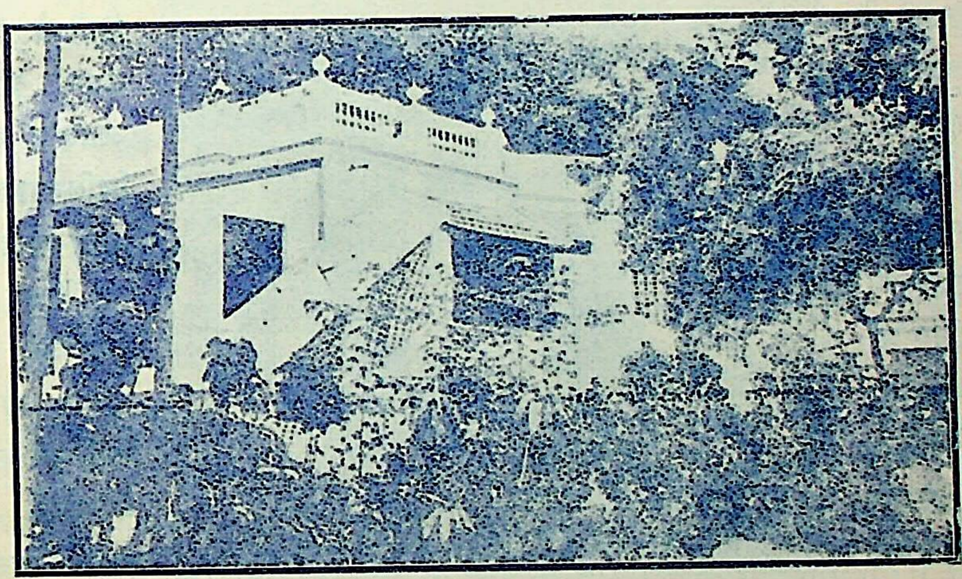
पता—हकीम रामकृष्णलाल रामचन्द्रलाल

मालकान यूनानी मेडिकल-हाल, रानीमंडी, इलाहाबाद

ने जब उन्हें अपना प्रतिनिधि बनाकर दक्षिण-अफ़्रीका भेजने का निश्चय किया तब सोसाइटी के सदस्यों की सम्मति से वे वहाँ चले गये। उनके चले जाने पर उनके स्थान पर सर्वसम्मति से श्रीयुत जी० के० देवधर सी० आई० ई० अध्यक्ष निर्वाचित किये गये।

परन्तु श्रीयुत देवधर का राजनैतिक कार्यों से विशेष अनुराग न होने से सोसाइटी ने राजनैतिक

सर्वेंट आफ़ इंडिया सोसाइटी के सदस्य एसेम्बली, कौंसिलों तथा स्थानीय बोर्डों में भी भाग लेकर जनता की हित-साधना में सदा सचेष्ट रहते हैं। इस संस्था के प्रमुख सदस्य पण्डित हृदयनाथ कुँजरू एसेंबली के एक नामी सदस्य हैं। वे जैसे अध्यवसायशील कार्यकर्त्ता हैं, वैसे ही प्रगल्भ वक्ता भी हैं। एसेंबली की कार्यवाही में वे बड़ी सावधानी से भाग लेते हैं, और प्रायः



[ सर्वेंट आफ़ इंडिया सोसाइटी, मदरास ]

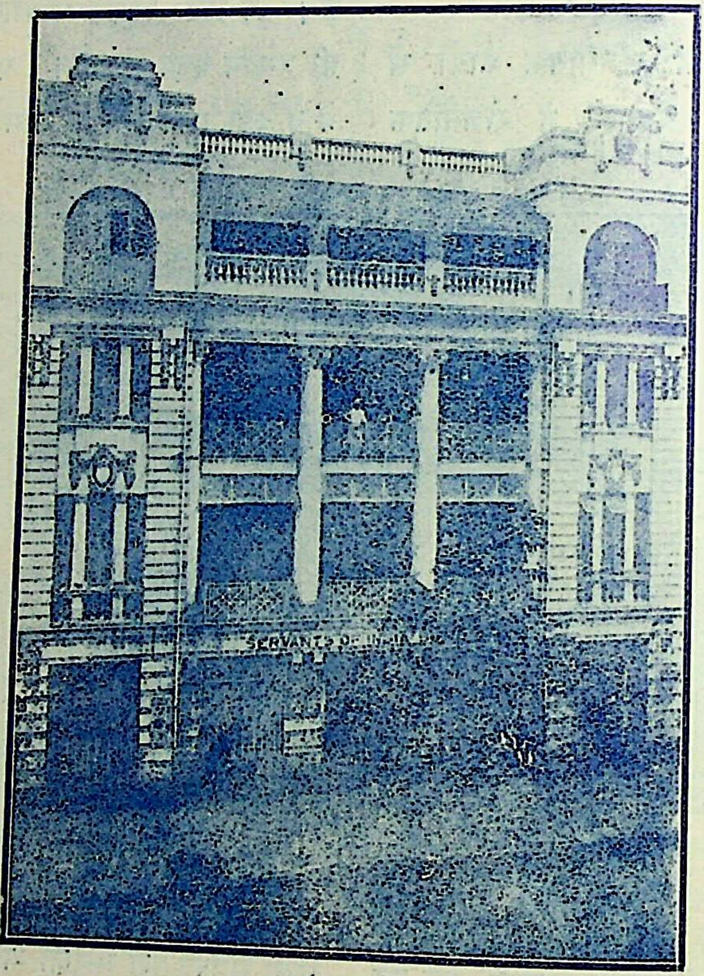
विभाग को अलग कर उसके अध्यक्ष का पद श्रीयुत हृदयनाथ कुँजरू को प्रदान किया। इस समय इन्हीं दोनों व्यक्तियों के निरीक्षण में इस संस्था के कार्य का सञ्चालन होता है। समाज-सेवा का कार्य-सञ्चालन श्रीयुत देवधर के निरीक्षण में होता है और राजनैतिक कार्यवाही श्रीयुत कुँजरू के निरीक्षण में होती है।

सभी महत्त्व-पूर्ण मसलों की चर्चा बड़ी गम्भीरता तथा सोच-विचार के साथ किया करते हैं। प्रवासी भारतीयों की स्वत्व-रक्षा के लिए तो वे सदा मुस्तैद रहते हैं। एसेंबली में दक्षिण-अफ़्रीका, पूर्वी अफ़्रीका, ब्रिटिश गायना, फ़ीजी तथा साम्राज्य के अन्य भागों में रहनेवाले प्रवासी भारतवासियों की दशा पर अब सरकार से प्रायः प्रश्न किया करते हैं।

F. 6

गत वर्ष के बजट के सम्बन्ध में उन्होंने ऐसी कितनी ही बातों का निर्देश किया था जिनसे उनकी गहरी जानकारी का ही पता नहीं मिलता, किन्तु जो साधारण जनता के बड़े लाभ की भी थीं। उत्तरी सीमान्तप्रदेश की समस्याओं का भी उन्होंने बड़ी गम्भीरता के साथ अध्ययन किया है। अपने पिछले कार्य-काल में एसेंबली में उन्होंने ऐसी कितनी ही महत्त्व-पूर्ण वक्तृतायें दी हैं जिनसे देशहित का घनिष्ठ सम्बन्ध है।

इस सोसाइटी के सदस्य महिलासमाज की उन्नति के लिए भी बड़ी लगन के साथ काम कर रहे हैं। पूना का सेवा-सदन इसका ज्वलन्त प्रमाण है। यह संस्था स्त्रियों को भिन्न-भिन्न विषयों की उच्च शिक्षा देने का प्रयत्न तो कर ही रही है, साथ ही उद्योग-धन्धों की ओर भी प्रोत्साहित करके उन्हें हर तरह से स्वावलम्बी बनाने का भी विशेष प्रयत्न करती है। मदरास-कांग्रेस के अवसर पर जो स्वदेशी वस्तुओं की प्रदर्शिनी हुई थी उसमें यहाँ की महिलाओं ने अपने हाथ की बनाई हुई बहुत-सी चीज़ें भेजी थीं। वहाँ की सभी चीज़ें जनता को बहुत ही आकर्षक तथा लोकोपयोगी सिद्ध हुईं। लोगों ने उन्हें हाथों हाथ ख़रीद लिया।



[ सर्वेंट आफ़ इंडिया सोसाइटी, बम्बई ]

भारतीय महिलाओं में सुशिक्षा तथा स्वा का प्रचार करने के लिए ही श्रीयुत जी० के० ने १९०९ में इस की स्थापना की। उनके अपरिमित वसाय तथा उत्तम शैली के ही कारण सदन की उत्त उन्नति हो रही है। चिकित्सा-शास्त्र धात्री-विद्या की उच्च शिक्षा देने का आयोजन कर विचार हो रहा ग्वालियर तथा म में इसके शाखा स्थापित होगये हैं। रास का 'वीमेन आफ़ सर्विस' के स लन का भार भी पूर्णरूप से देव के ही हाथ में आगया है। पहले यह श्रीमती कजून की अधीनता में थी। का 'भगिनीसमाज' भी नारी-सेवा-सदन की देख-रेख में कार्य कर रहा है। यहाँ शिक्षा गृहशिल्प आदि के प्रचार की ओर विशेष

दिया जाता है, साथ ही मेजिकलैंटर्न के द्वारा लेकचर भी हुआ करते हैं। भगिनी-समाज की ओर से स्त्रियों तथा बालकों के उपयुक्त पुस्तिकायें भी समय समय पर प्रकाशित करके वितरित की जाती हैं।

बच्चों के स्वास्थ्य-सुधार तथा धात्री-विद्या की उन्नति की ओर देवधरजी का ध्यान अधिक रहता है, इस सम्बन्ध में वे सदा प्रयत्नशील रहते हैं और समय समय पर अपने प्रभावशाली भाषण के द्वारा जनता का ध्यान आकर्षित करते रहते हैं।

सर्वेंट आफ़ इंडिया सोसाइटी श्रमजीवियों से भी बड़ी सहानुभूति रखती है। इनकी उन्नति के लिए जो आन्दोलन हुए हैं या हो रहे हैं उनका सोसाइटी ने प्राय: समर्थन किया है। इस दिशा में श्रीयुत एम० एम० जोशी का कार्य विशेष सराहनीय है। वे एसेंबली में श्रमजीवियों के नामज़द सदस्य हैं। वहाँ वे उनकी हित-रक्षा की ओर विशेष रूप से ध्यान देते हैं। बम्बई के मिल-मज़दूरों के पक्ष में उन्होंने समय समय पर ख़ूब काम किया है। देश भर में भ्रमण करके मज़दूरों की दशा का उन्होंने बड़ी तत्परता के साथ अध्ययन किया है। इनकी उन्नति के लिए जितने भी वैध साधनों का उपयोग किया जा सकता है, जोशीजी उन सबका अवलम्बन करने का प्रयत्न कर रहे हैं।

सोसाइटी के कुछ सदस्य किसी न किसी रूप में सहयोग-समितियों में भी कार्य कर रहे हैं। इन समितियों का देश की आर्थिक उन्नति पर बड़ा प्रभाव पड़ रहा है। श्रीयुत देवधर बम्बई की प्रान्तीय कोआपरेटिव सोसाइटी के सभापति हैं। वे इसके एक डाइरेक्टर भी हैं। मदरास-सरकार के निमन्त्रण पर वे वहाँ की सहयोग-समितियों की अवस्था तथा उनके आन्दोलन के सम्बन्ध में जाँच करने के लिए एक सरकारी कमेटी में सम्मिलित हुए थे। तीन महीने में सारे प्रान्त में चक्कर लगा कर वहाँ की सहयोग-समितियों की उन्नति के लिए कई उपाय निर्दिष्ट किये। इस यात्रा में उन्होंने स्थान स्थान पर लोकोपयोगी विषयों पर भाषण भी दिये, जिनका जनता पर अच्छा प्रभाव पड़ा।

श्रीयुत अमृतलाल बिट्ठलदास ठक्कर, सी० आई० ई० गुजरात में भीलों के सुधार के लिए बड़ा प्रयत्न कर रहे हैं। इस दिशा में उन्हें आशातीत सफलता भी हो रही है। उन्होंने एक भील-सेवक-मण्डल भी स्थापित कर रक्खा है, जिसके द्वारा उनमें शिक्षा-प्रचार तथा जाग्रति उत्पन्न की जा रही है। वे भिन्न-भिन्न स्थानों में जा जा कर भीलों तथा अन्य दलित जातियों की दशा का अध्ययन कर रहे हैं। उनके प्रयत्न से इन जातियों में जीवन-सा आगया है और ये पढ़ने-लिखने की ओर धीरे-धीरे ध्यान देने लगी हैं।

सर्वेंट आफ़ इंडिया सोसाइटी का प्रधान केन्द्र पूना में है। जो सदस्य शिक्षाधीन होते हैं वे यहीं रहते हैं और आवश्यक अध्ययन करते हैं। उनके उपयोग के लिए सोसायटी का एक बृहत् पुस्तकालय है। अपने उद्देशों के प्रचार के लिए सोसाइटी सामयिक पत्र भी प्रकाशित करती है। इस कार्य के लिए उसके अपने चार प्रेस भी हैं।

पत्रों के सिवा वह समय समय पर पुस्तक-पुस्तिकायें भी निकालती रहती है। आर्यभूषण तथा ज्ञान-प्रकाश नामक दो प्रेस पूना में हैं। वनवैभव नामक एक प्रेस बम्बई में और हितवाद नामक एक प्रेस नागपुर में है। यहाँ से 'हितवाद' नामक अँगरेज़ी में एक पत्र भी निकलता है।

'सर्वेंट आफ़ इंडिया' इस सोसायटी का मुखपत्र है। श्रीयुत एस० जी० वाजे के सम्पादकत्व में यह प्रतिसप्ताह पूना से प्रकाशित होता है। यह अँगरेज़ी में निकलता है। सामयिक साहित्य की निष्पक्ष तथा गम्भीर समालोचना के लिए यह प्रसिद्ध है। दक्षिण-अफ़रीका तथा अन्यान्य द्वीपों के—जहाँ भारतवासी अधिक संख्या में रहते हैं—पत्र भी इसमें प्रकाशित होते रहते हैं, जिनसे प्रवासी भारतवासियों के सम्बन्ध में पाठकों को उचित जानकारी प्राप्त होती रहती है। देश की राजनीति के सम्बन्ध में भी यह पत्र खूब चर्चा करता है। पत्र में रचनात्मक विचारों पर अधिक ज़ोर [illegible] जाता है, साथ ही निष्पक्षभाव से विशाल राष्ट्र[illegible] प्रजातन्त्रात्मक राष्ट्रीयता का समर्थन करते[illegible] अछूतों, स्त्रियों तथा श्रमजीवियों आदि अल्प[illegible] वालों का पक्ष-समर्थन किया जाता है।

ज्ञानप्रकाश सोसायटी का एक मराठी [illegible] है। यह अपने क्षेत्र में बड़ा लोकप्रिय है। [illegible] में उन्नत तथा सुधार-सम्बन्धी विचारों का स[illegible] किया जाता है और यह जाति तथा सम्प्रदा[illegible] भेदभाव मिटा कर राष्ट्रीय एकता क़ायम क[illegible] सम्बन्ध में प्रयत्न करता है।

इस प्रकार स्वर्गीय गोखले की यह [illegible] कीर्ति अपने वास्तविक कार्यों के द्वारा अपने [illegible] को चरितार्थ करते हुए देश की सेवा में यथा[illegible] यत्नवान् है।

—ठाकुरदत्त मिश्र



# छुई-मुई

प्रकृति-विभिन्नता का सौन्दर्य पा जाने पर मालूम होता है, कतिपय लोग अपनी दूसरों से कुछ भिन्न प्रकृति बनाने का प्रयत्न करते होंगे। दूसरे लोगों [की] अपेक्षा अपने भीतर कुछ व्यक्तिगत स्वभाव-[वि]शेषता उत्पन्न करना शायद मनुष्य-संस्कार के [इ]तिहास में कभी फ़ैशन की वस्तु रही होगी। या [य]ह भी नहीं कहा जा सकता कि वह इतिहास अब [भी] नहीं आरम्भ हो रहा है। जरा के हों या [शै]शव के, इस फ़ैशन के कुछ उदाहरण आज-कल [दे]खने में आते हैं।

मुंशी नवलराय को छुई-मुई से अधिक प्रीति [थ]ी। ऐसा पौधा ईश्वर की सृष्टि में और कौन-सा [है]? ज़रा उँगली छुवाई नहीं कि सारा पौधा मुरझा-[ज]ा जाता है। इतना मान! मनुष्य क्या इतना [म]ान करेगा? मुंशीजी को अपनी ही बात याद [आ]गई। एक बार इन्स्पेक्टर साहब ने उनकी बड़ी [मूँ]छों को देखते हुए कहा था, "वेल मुंशी! हम [अ]पने जूते के ब्रश के लिए तुमारी मूँछ का बाल [च]ाहता है।" मुंशीजी झट उनके जूते की ओर [दे]ख कर हँसते हुए बोले, "हुज़ूर! गुलाम हर [त]रह से हाज़िर है," और उन्होंने तुरन्त दफ़्तर की कैंची निकाल कर अपनी एक तरफ़ की मूँछ काट कर दे दी। इसी का प्रताप था कि मौक़े से क़लम की हुई मूँछों के साथ-साथ उनका पद भी ख़ूब बढ़ा और उनकी पद-वृद्धि के उत्सव पर साहब ने उनके यहाँ छुई-मुई का एक गमला भेजा।

चोली-दामन का साथ जो मुंशीजी की चतुर कतरनी ने स्थापित कर दिया था, बराबर बना रहा। उन्नतिक्रम में इन्स्पेक्टर साहब डाइरेक्टर हुए और मुंशीजी उनके पर्सनल असिस्टंट। इस समय दोनों में यही सम्बन्ध था।

इन्स्पेक्टर के गमले को कई वर्ष होगये थे और इन वर्षों में पौधे ने कई अण्डे-बच्चे दिये। मुंशीजी के यहाँ विशेष सावधानता से उनकी रक्षा की जाती थी। सच बात यह है कि ब्राह्मणों के यहाँ तुलसी-वृक्ष का भी इतना मान न होता होगा, जितना मुंशीजी के यहाँ छुई-मुई का होता था। तुलसी-मञ्जरी भगवान् के मस्तक पर ब्राह्मण के हाथ से उतनी भक्ति के साथ शायद न चढ़ती हो, जितनी भक्ति से साहब के कोट के कालर के काज़ के लिए मुंशीजी की छुई-मुई के फूलों का गुच्छा 'स्वीट-पी' से बसा कर अर्पित किया जाता था।

मुंशीजी की प्रतिष्ठा ख़ूब थी। उनकी धाक भी अच्छी बँधी थी। नवलराय डाइरेक्टर साहब

का दाहना हाथ थे। यदि शायद डाइरेक्टर साहब उनसे अपनी मूँछ काट देने को फिर कहते तो, अनुभव से अनुमान किया जाता है, नवलराय को आज्ञा-पालन में कोई सोच-विचार न होता; और नवलराय को यदि किसी काग़ज़ पर दस्तख़त कराना होता तो डाइरेक्टर साहब को, यह तो प्रतिदिन देखने की बात थी, ज़रा देर न लगती। साहब के आदेश की प्रतीक्षा में मुंशीजी की मूँछें दिनोंदिन बढ़ती जाती थीं और नवलराय के काग़ज़ों की प्रतीक्षा में साहब के फ़ाउंटेनपेन में सदा रोशनाई भरी रहती। लोग जानते थे कि जिसे डाइरेक्टर से या डाइरेक्टर के यहाँ से कोई काम कराना हो वह एक बार साहब से न मिल कर दस बार मुंशीजी से मिल ले। इसी लिए बड़े लोग, विशेषतः शिक्षाकार्य से सम्बन्ध रखनेवाले, उनसे दोस्ती रखते थे, और छोटे उनकी मुसाहबी करते थे।

बड़े लोगों को अपने बड़ेपन का शायद ध्यान न रहता हो, परन्तु जो लोग अपनी आशाओं से ऊँचे उठ जाते हैं वे अवश्य अपने को बड़ा समझने लगते हैं। एक अयशस्काय साधारण लेखक जब झूठ-मूठ सिरों पर उठा लिया जाता है और उसकी कीर्त्ति से प्रभावित होकर बाहर से लोग मिलने के लिए आने लगते हैं तब वह अपनी चटाई या कुर्सी पर एक विशेष ढङ्ग से बैठकर साहित्य-सिद्धान्तों की कुछ शिक्षा दे देना या समसामयिक साहित्य की थोड़ी-सी आलोचना कर देना अपना स्वाभाविक अधिकार समझने लगता है। मुंशी नवलराय ने आरम्भ में पचीस रुपये की नौकरी करके ईश्वर को धन्यवाद दिया था, यद्यपि किन्हीं कारणों से उस नौकरी को करके उन्हें विशेष ख़ुशी मिला। बाद में वे सोचने लगे थे कि यदि ... में हुआ तो पेंशन के समय तक सत्तर-अ... तक पहुँच जायँगे। परन्तु सौभाग्य से ... ने उस भयानक संग्राम पर विजय पाई। ... यह सोचते थे कि यदि तीन-चार वर्ष ... उन्हें असिस्टंट डाइरेक्टरी और एक ... और मिल जाय तो वे कल्पना का अधिका... बोलनेवाले कवियों से छीन लें।

असिस्टंट डाइरेक्टरी की कल्पना ... असम्भवता की कोई बात दिखलाई नहीं दे... मुंशीजी ने एफ़० ए० पास करने के बाद कुछ... परिस्थितियों के कारण २५) की नौकरी कर... उनको अपने माता-पिता का स्मरण नहीं... उनके एक अन्य अभिभावक ही ने उन्हें... था। वे मुंशीजी को बी० ए०, एल-एल० बी०... पढ़ाना चाहते थे। परन्तु मुंशीजी ने बी०... पदार्पण करते करते अपने पैरों में खुद ही कु... मार कर सोचा था कि अब सिर में भी कु... मार लें। इन्स्पेक्टर के दफ़्तर में क्लर्की ... करने के बरसों बाद तक वे अदृष्ट की उस वि... को कोसते रहे थे जिसके फन्दे में पड़कर वे ... सिर न तोड़ सके और क्लर्की के जाल में फँस... आसाम के किसी चाय के बाग़ीचे में कुली... का तुच्छ अधिकार उनसे क्यों छीन लिया ग... मुंशीजी दफ़्तर से आकर अपनी पुरानी डायरियाँ... करते और रोया करते। नई डायरियाँ लिखा...

इस बात को समय हुआ। मुंशीजी को ... करते-करते बीस बरस हो चुके थे, और ...

ी भाँति समय के प्रभाव से क्लर्की का ज़ख़्म भी ीरे-धीरे भरने लगा। ज़ख़्म भरने पर नई खाल जो िकलती है वह चिकनी होती है। मुंशीजी भी िकने हो चले। नई खाल कोमल भी होती है, से इस समय सोचने से क्या होगा? एक बार िस जगह चोट लग चुकती है, बीस बरस के ीतर उस जगह दूसरी चोट प्रायः कम लगती है।

इसलिए अब से दस बरस पहले मुंशीजी ने वाह भी कर लिया। डायरियाँ लिखना बन्द र दिया और पुरानी डायरियों को रद्दी के सन्दूक़ दबा दिया। बीच में स्टडी-लीव (पढ़ने के िए छुट्टी) लेकर उन्होंने बी० ए० भी पास किया। ब एक बार और स्टडी-लीव लेकर इँग्लैंड गये ़ असिस्टंट डाइरेक्टर हुए। आशा, प्रतिष्ठा और हस्थी के वशीकर प्रभाव में अब उन्होंने नौकरी ा अपना लिया था। इस दौरान में नौकरी के िए जिस शऊर की ज़रूरत थी वह उनमें आजाना सम्भव न था। सन्देह होता है कि चिकनी ाल के भीतर भी सब कुछ चिकना ही होता ़गा।

छुई-मुई के गुलाबी फूल के पास भौंरा डराता हुआ आया, और उस पर बैठने लगा। से क्या मालूम था कि फूल इतना मान करेगा। ल ने मचल कर लोटना चाहा कि भौंरा फिसल र अनेक शाखाओं को मुरझाता हुआ सँभला ़र उड़ गया। मुंशीजी ने शायद सोचा कि यदि ह एक तरफ़ से कट जाता तो और ऊँचा उठता। न्हें अपनी मूँछों का ध्यान आगया। उन मूँछों इतिहास में कितना आनन्द था। छुई-मुई और मूँछों की चिरजीवी जोड़ी विधाता ने अपने हाथ से रची थी।

दफ़्तर से लौट कर अपनी स्त्री के साथ चाय पी रहे थे। भौंरे की लीला देख कर चाय का प्याला मुँह से लगाते-लगाते ज़रा मुसकरा पड़े। उनके आनन्द-भोग में चाय का एक-एक घूँट योगी की एक-एक क्रिया का अनुसरण करने लगा। वाह! वाह! तुमसी कौन होगी, लज्जावन्ती! उसको दुत्कार कर फिर इस तरह रूठना। जैसे किसी नवयौवना सती कुमारी को धूर्त कामुक ने छू लिया हो।

"क्या कह रहे हो यह सब तुम?"—स्त्री ने पूछा।

"नहीं देखा! अभी एक भौंरा छुई-मुई से धृष्टता करना चाहता था। बस वह ग्लानि से विकल होगई। इस छु—"

"रात-दिन वही छुई-मुई, छुई-मुई। उस रोज़ इसके पीछे लौंडे को मारते-मारते अधमरा कर दिया था। मेरे सामने इसकी बात मत किया करो।"

"हर्गिज़ नहीं, मगर एक बात बताओ। तुम इतनी सुन्दर हो और इतना रूठो। ब्याह होने से साल दो साल पहले तो इन दोनों बातों में तुम न मालूम कितनी बढ़ी रही होगी। अच्छा मान लो, उस समय तुम्हारे किसी पड़ौसी धूर्त ने मौक़ा देख कर तुम्हारा हाथ पकड़ लिया। तब क्या तुम भी उसे दुत्कारने के बाद पलँग पर जाकर लोट रही थीं और इसी की तरह सिसकने लगी थीं? देखो मैंने इस बार नाम नहीं लिया।

गृहणी ने उनकी ओर तिरस्कार से देख कर प्याले को तिपाई पर रख दिया और कुछ न बोली। मुंशीजी हँसने लगे, तो वह जाने लगी।

"तुम्हें मेरी क़सम जो जाओ।" उन्होंने हाथ पकड़ कर बिठाया।

"अच्छा, सच कहना। यह मान करना तुमने इसी छुई-मुई—ओहो, भूल गया। आदत एक दम से कैसे छूट सकती है? अच्छा, अभी आधे नाम से अभ्यास करूँगा—इसी छु-मू से नहीं सीखा है?"

"सीखूँगी क्यों नहीं? ऐसी गुरुआनी मेरे घर आ पधारी है तो सीखूँगी नहीं। आश्चर्य यही है कि तुम्हें क्यों नहीं यह कुछ सिख पाती। मेरे बाबूजी भी नौकरी करते थे पर उन्होंने कभी अपनी आबरू पर बट्टा नहीं लगाया।"

मुंशीजी ने मूँछों पर ताव देते हुए हँस कर कहा, "आबरू पर बट्टा उसी की लगेगा जिसके आबरू होगी। तुम्हारे बाबूजी तो खुरचन से रहा करते थे।"

"अब तुम बाबूजी को भी कहोगे। ये री[illegible] से बाल रख लिये हैं तभी तो वे लोग तुम्हें [illegible] रहते हैं। मैं तुम्हारी इस छुई-मुई राँड़ [illegible] पल इस घर [illegible] रहने दूँगी।" और अभिमान [illegible] जाकर उसने [illegible] का एक पौधा [illegible] लिया। मुंशी[illegible] कहा, "हैं, हैं, [illegible] फिर जल्दी [illegible] खड़े हुए। इ[illegible] एक दूसरा पौ[illegible] उखाड़ लिया।



[रात-दिन वही छुई-मुई, छुई-मुई। उस रोज़ इसके पीछे लौंडे को मारते-मारते अधमरा कर दिया था। मेरे सामने इसकी बात मत किया करो]

दो क़दम [illegible] मुंशीजी पत्नी [illegible] जा पहुँचे। पत्नी [illegible] पौधों को हाथ [illegible] तनकर खड़ी [illegible] थी। मुंशीजी उसके सामने होकर किञ्चित् [illegible] किञ्चित वेदना [illegible] से उसे देखने [illegible] इस कटाक्ष-अभिनय में वाणी कहीं सरक गई [illegible]

इतने में नवलराय का पुत्र बाहर से गाता [illegible] आया—"ओना मासी धम्। बाप पढ़े ना—

माता-पिता को एक विशेष ढङ्ग से आमने-सामने खड़े देख कर वह चुप होगया।

पिता का क्रोध और दुःख लड़के को पाकर अब एकान्त क्रोध में परिणत होगया। उन्होंने उसे कान पकड़ कर घसीटा और ज़ोर से उसके गाल पर एक चपत जमाते हुए कहा, "यह सब कहाँ सीख कर आता है वे उल्लू के पट्ठे। और तुम भी देख-लो जी। अब मत कहना कि बे-क़सूर मारते हो। कहो तो अभी ठीक कर दूँ इसे।"

पत्नी बोली, "तुम्हारा लड़का है, जो चाहो करो।" हाथ के दोनों पौधे गिराकर वह डबडबाई वेदना के साथ वहाँ से चली गई।

इसके तीसरे दिन।

"तुम्हें मनाने के लिए, मालूम होता है, अब मुझे खाना छोड़ना पड़ेगा।"

"मुझे मनाने के लिए क्यों? क्या मैं रूठी हूँ।"

"क्या पता, क्या हो। जिस किसी को कोई बहुत अधिक चाहता है वह उसके लिए एक पहेली बन जाता है। तुमने उस दिन शाम को भी भोजन नहीं किया और कल दिन भर भी नहीं। एक साथ दो-दो ज़्यादतियाँ।"

"मैं ज़्यादती करनेवाली कौन हूँ? तुम्हारी छुई-मुई रहे—मैंने भोजन किया, न किया!"



[ क्रोध और अभिमान से जाकर उसने छुई-मुई का एक पौधा उखाड़ लिया ]

"नहीं, यह तुम्हारी फिर ज़बर-दस्ती है। छुई-मुई ही तो रोटी दे रही है।"

"सच कहती हूँ, मुझे तुम्हारी इस छुई-मुई की रोटी अच्छी नहीं लगती। तुम्हारी मूँछों की बात लोगों के लिए पुराण की कथा होगई है। उसे भूलते ही नहीं। और मैं तो भूल ही नहीं सकती।"

"यह तो तुम बहुत बार बता चुकी हो। जिन लोगों को रोटी नहीं मिलती वही हम से जलकर यह आक्षेप किया करते हैं। तुम ज़रूर जानती हो कि मुझमें बहुत अधिक आत्मसम्मान है और मैंने अपनी मूँछें देने में किसी प्रकार अपने आत्मसम्मान को नष्ट नहीं किया था—कुछ बढ़ाया ही हो।"

"क्यों नहीं! तुम तो बड़े गर्व से अपनी उस करतूत का सबसे बखान किया करते हो। मूँछों के बाल तो सबके कतरे ही जाते हैं और नाली में फेंक ही दिये जाते हैं। साहब के जूते का ब्रुश ही बन गया तो उनका कौन बड़ा निरादर हो गया।"

"अच्छा तो फिर तुम्हीं इसके विरुद्ध कुछ कहो। नाविल पढ़-पढ़कर झूठे मान-सम्मान की भावुकता बढ़ा ली है। सम्मान को बढ़ानेवाले पदार्थ हैं धन और स्थिति।"

गृहिणी ने ज़रा झिझकते हुए कहा, "जो लोग चाय के बाग़ में कुलीगिरी करने के लिए निकलते हैं वे तो धन और स्थिति की बात सोचते नहीं।"

मुंशीजी चौंके और उदासी के भाव से एक क्षण चुप रह कर बोले, "यह तुमने क्या कहा?"

"कुछ नहीं, भूल हो गई।"

मुंशीजी फिर थोड़ी देर चुप रहे, जैसे बड़े सोच में हों। फिर बोले, "बात सच है, पर तुम्हें मालूम कैसे हुई?"

अब स्त्री के चुप होने की बारी आई। मुंशीजी ने कहा, "बतलाती क्यों नहीं हो? मैं विश्वास दिलाता हूँ कि मैं इसमें तुम्हारा कोई अपराध नहीं समझूँगा।"

कुछ रुकते हुए स्त्री ने कहा, "अपराध तो सचमुच मेरा कुछ है भी नहीं। यदि किसी का है तो ईश्वर का। कल जब तुम दफ़्तर चले गये तब थोड़ी देर बाद डाकिये ने एक पार्सल लाकर दिया। मैं समझी उपन्यास आये होंगे। उपन्यासों के पार्सल डाकिया अक्सर ही दे जाता है। खोल कर देखा तो हाथ की लिखी एक जिल्द बँधी सी किताब थी। बड़ा कौतूहल और आ हुआ। उसके साथ में एक पुर्ज़ा भी था। उसे पढ़ लिया।"

"क्या लिखा था पुर्ज़े में और हाथ की किताब कौन थी?"

गृहिणी जल्दी से उठी और अपने बाक्स एक खुला हुआ पार्सल निकाल कर देती हुई "यह लो। किताब है 'देश की बात' और यह है।"

मुंशीजी दोनों चीज़ें देखकर बड़े वि सागर में मग्न हो गये। फिर थोड़ी दे सिर उठाकर बोले, "और चाय के बाग़ बात?"

"इस चिट्ठी में लिखा है, 'अब कभी पुरानी डायरियों को भी खोल लेते हो?' सामने तो रहस्यों का एक जाल-सा पुर रहा चिट्ठी से यह भी तो नहीं मालूम होता कि कहाँ से भेजी है। मैंने सोचा, 'डायरियों' का मतलब है। तब अटकल लगा कर मैंने चोर तरह किवाड़वाले सन्दूक को खखोड़ा। उस मुझे कई एक पुरानी पन्द्रह-बीस बरस पहले डायरियाँ मिलीं।"

"समझ गया"—कह कर मुंशीजी ने एक साँस ली। उन्होंने कहा—मुझे तुम थोड़ी अकेला रहने दो। मेरा चित्त बड़ा व्याकुल रहा है। मैं तुम्हें सब समझा दूँगा। एक बाद उन्होंने फिर कहा, "मुझे ज़रा काग़ज़-क़ ला दो। आज दफ़्तर नहीं जाऊँगा। मैंने

कैजुएल लीव ( प्रासंगिक छुट्टी ) में से अभी एक दिन भी नहीं लिया है।

दो-तीन रोज़ बाद मुंशीजी अपने मकान के दफ़्तरवाले कमरे में बैठे थे। इतने में अरदली ने आकर कहा, "कोई मिस साहबा हुज़ूर से मिलना चाहती हैं।"

मुंशीजी ने सिर उठाकर आश्चर्य से पूछा, "कौन मिस साहब ?"

"हुज़ूर यह क्या मालूम। नाम तो कुछ बताया नहीं।"

"अच्छा, आने दो।"

अरदली बाहर गया और कुछ क्षण में परम-रूप-लावण्य-युक्त एक कमनीयाकृति रमणी ने दफ़्तर में आकर उनको प्रणाम किया। मुंशीजी उसे देखकर चौंधिया-से गये और उसकी कान्ति और देशी पहनावे के रोब में आकर सहसा खड़े हो गये। रमणी ने उनके इस ठाठदार आदर-प्रदर्शन से कुछ झेंपकर एक दिव्य मुस्कराहट के साथ कहा, "नहीं, पिताजी! यह आप क्या कर रहे हैं? आप बैठिए।"

मुंशीजी उसके संबोधन से और भी अप्रतिभ हो गये और बैठते हुए बोले, "नहीं, बेटी! तुम बैठो। मैं भी बैठता हूँ।"

दोनों बैठ गये। तो मुंशीजी ने पूछा, "तुम कौन हो, बेटी? मैं तुम्हारी क्या सहायता कर सकता हूँ?"

"आपके लिए एक चिट्ठी लाई हूँ। उसे पढ़ लीजिए।" यह कह कर नवयौवना ने एक चिट्ठी निकालकर मुंशीजी को दी।

मुंशीजी ने चिट्ठी खोल कर पढ़ना आरम्भ किया। चिट्ठी लम्बी थी। पढ़ते पढ़ते उनके चेहरे का रंग बड़ी तेज़ी से चढ़ने-उतरने लगा। इस बीच में उनको शायद ध्यान न रहा कि कोई स्त्री उनके सामने बैठी है। एक दबी-सी आह निकल गई।

थोड़ी देर में उन्होंने अरदली को आवाज़ दी और उससे कहा, "देखो, अभी हमारे पास कोई न आये।" अरदली के चले जाने पर वे स्त्री से बोले, "तुम्हारी माताजी नहीं आईं?"

"उन्होंने पहले मुझी को यह देखने के लिए भेजा है कि आप हम लोगों के स्वागत के लिए तैयार होंगे या नहीं।"

"बेटी! तुम तो समझदार हो, पढ़ी-लिखी हो। तुम्हीं बताओ, क्या तुम दोनों मुझसे घृणा नहीं करती हो?"

"घृणा! घृणा क्यों?"

"तो तुम्हें मेरे बारे में सब बातें नहीं मालूम हैं?"

"मैं कैसे कह सकती हूँ। जो कुछ मुझे माता समय समय पर बतलाती रही हैं वही जानती हूँ।"

"अच्छा तो चलो, मैं तुम्हारी माता के पास चलता हूँ।"

"आप चलेंगे? अच्छा चलिए। हम लोग एक बड़ी मैली-सी धर्मशाला में ठहरे हैं।"

"यह क्यों कहती हो? मैं तुम्हारी धर्मशाला से भी अधिक मैला हूँ। तुम बैठो, अभी कपड़े पहन कर आता हूँ।"

मुंशीजी अन्दर गये। उनकी स्त्री कुछ काम कर रही थी। उसे पास बुला कर कहने लगे, "देखो,

मैं तुमसे कहता न था कि बहुत जल्दी कोई घटना होनेवाली है। जिसने वह 'देश की बात' भेजी थी उसी की लड़की आई है। दफ़्तर में बैठी है।"

"दफ़्तर में उसे क्यों बिठाया है?"

"मैंने कहा, पहले तुम्हें बतला तो दूँ। मैं सोचता हूँ कि अब जाकर उसे लिवा लाऊँ। तुम क्या कहती हो? यह देखो, उसकी चिट्ठी है।"

पत्नी ने चिट्ठी पढ़कर मुस्कराते हुए कहा, "उसे सौत तो न बनाओगे?"

"यह तो तुम दोनों मिलकर आपस में तय कर लेना।"

"ख़ूब कही। अच्छा जाओ जी जाओ, लिवा लाओ। एक छुई-मुई सौत तो हुई है, कटीली और घमण्डिन, दूसरी भी आ जायगी तो क्या है! सब्र कर लूँगी।" मुस्कराई।

"छुई-मुई! ख़ैर, दूसरी से तुम मत डरो। उसमें सौत होने की योग्यता कहाँ।" मुंशीजी उसकी ठोढ़ी में हाथ डालते हुए बोले, "कहाँ मेरी बारह बरस की नवेली और कहाँ वह तीन सौ बरस की बुढ़िया।—अच्छा तो मैं अब कपड़े पहन लूँ।"

"ज़रूर, ज़रूर! कहो तो मैं पहना दूँ या नाई, धोबी, दर्ज़ी को बुलवा दूँ। असिस्टंट डाइरेक्टर साहब नई दुलहिन से मिलने जा रहे हैं।"

मुंशीजी हँसते रहे। उनकी स्त्री इठलाती रही। कपड़े पहन कर उन्होंने कहा, "इस लड़की को यहीं बिठाओ। वापस लिवा जाना ठीक नहीं मालूम होता।"

स्त्री की सम्मति से मुंशीजी लड़की को भीतर लिवा लाये। गृहिणी ने उसे देखा और उसे गले लगा लिया। फिर वह अपने पति से [illegible] "क्योंजी, तुमने कुछ देखा?"

"क्या?"

"हमारी कमला भी बिलकुल ऐसी हो[illegible] इस समय नौ-दस बरस की होती।"

"एँ—हाँ! हूबहू सूरत मिलती है। मैंने [illegible] नहीं दिया था। लो, तुम्हारी कमला तुम्हें [illegible] बरस की होकर मिल गई। बधाई।"

"तुम्हें।"

मुंशीजी कमला को घर पर ही छोड़ [illegible] चले गये। धर्मशाले का नाम चिट्ठी [illegible] लिखा था।

मुंशीजी धर्मशाला पहुँचे। धर्मशाला के [illegible] कमरे में पहुँचे। किवाड़ कुछ भिड़ा हुआ [illegible] पहले झाँक कर देखा, फिर किवाड़ धीरे [illegible] खोला। कितना परिवर्तन हो गया था। [illegible] कुछ भी परिवर्तन नहीं हुआ था। मुंशी[illegible] देखते ही पहचान लिया।

माधुरी ने भी देखते ही पहचान लिया। किताब को ज़मीन पर रखकर वह काँपती-सी, रोती-सी, उठी। कुछ नहीं कहा गया तब [illegible] "नवलराय।"

मुंशीजी भी कह पड़े, "माधुरी।"

जब दोनों जने बैठे तब मुंशीजी ने पूछा, [illegible] अब लगभग सैंतीस वर्ष की होगी, परन्तु [illegible] नहीं मालूम होतीं।"

"तुम अब लगभग चालीस वर्ष के होगे, [illegible] बुड्ढे नहीं मालूम होते।"

दोनों हँस पड़े।

"मैं तो अपने को बुड्ढा ही समझता था। देखने से पहले तुम्हें भी बुड्ढी ही समझता था। मेरी दोनों धारणायें ग़लत निकलीं।"

"मैं तो इन बीस वरस अपने को बराबर युवती ही समझती रही। यदि कोई बुढ़ापे का चिह्न था तो बस तुम्हारी लड़की की चिन्ता। तुम्हें भी जवान ही समझती थी। सदैव स्वप्न देखा करती थी कि यदि कभी अचानक भेंट हो गई तो तुम वही पहले की तरह एक-दम मेरा आलिङ्गन कर लो। परन्तु तुमने वैसा नहीं किया।"

"तो क्या अब बहुत देर होगई?"

"नहीं, अब हम दोनों अपने को बुड्ढे ही समझें। बुढ़ापे में ऐसा कुछ नहीं होता, परन्तु बुढ़ापे की मुहब्बत चिरस्थायी होती है।"

मुंशीजी की मुस्कराहट से फिर हँसी की एक रेखा निकल गई, परन्तु उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया। उन्होंने पूछा, "यह क्या पढ़ रही थीं?"

"वही जो हम तुम सदैव एकान्त में बैठकर पढ़ा करते थे और जिसे पढ़कर भविष्य की स्कीमें बनाया करते थे—डिग्बी साहब की 'प्रास्परस ब्रिटिश इंडिया।' इन बीस बरस में सदा 'देश की बात' और डिग्बी साहब की किताब का तथा इतिहास का अध्ययन करती रही। 'देश की बात' उन्हीं दिनों ज़ब्त हुई थी और तुमने मेरे लिए उसकी नक़ल की थी। याद है?"

"याद है। तुमने उसे मेरे पास क्यों भेज दिया था?—और तुमने मुझे अपना बीस बरस का वृत्तान्त तो सुनाया ही नहीं। क्या श्रीमान्‌जी से पूछ कर आई हो?"

"न। सोचा कि श्रीमान्‌जी को ख़बर नहीं करनी चाहिए। एक-दम से जाकर श्रीमान्‌जी के सामने धम्-से कूद पड़ूँगी तो ज़रा मज़ा आयेगा।"

"तो क्या तुमने विवाह नहीं किया?"

"न, मेरे श्रीमान्‌जी विवाह होने से पहले ही भाग गये"—आँख मटकाकर—"घर से निकाल दिये गये, जी! विवाह फिर कहाँ से होता?"

"तो तुम बराबर क्वारी रहीं? बाबूजी कैसे माने?—भाई, सब हाल अब तुम मुझे पूरा पूरा शुरू से सुना कर कहो।"

"पर पहले तुम मुझे यह बताओ, क्या तुमने अपना विवाह कर लिया है?"

असमञ्जस के भाव से मुंशीजी ने उत्तर दिया, "हाँ।"

माधुरी उदास हो गई और धीरे से बोली, "ठीक है। डाइरेक्टर के पर्सनल असिस्टेंट से और किस त्याग की आशा करती। नवलराय! तुम मुझे भूल गये और देश को भी।"

मुंशीजी ने क्षमा-याचना की कातरता से कहा, "मैं तुम्हें नहीं भूला, माधुरी!"

किञ्चित् उत्तेजित होकर माधुरी बोली, "यह आशा मत करो कि अब मैं सहज में तुम्हारा विश्वास कर लूँगी। ओह! नवलराय तुम मुझ से कैसी कैसी प्रतिज्ञायें किया करते थे। मुझे उन प्रतिज्ञाओं के सुनने में आह्लाद हुआ करता था—यद्यपि मैं तुमसे उन प्रतिज्ञाओं को दुहराने के लिए हमेशा मना किया करती थी, क्योंकि मुझे तुम पर असीम विश्वास था। समाचार-पत्रों के पोट के पोट तुम मेरे पास लाया करते थे और

देश के नेताओं के जेल जाने की ख़बरें पढ़ कर तुम्हें क्रोध के कारण जाड़ों में पसीना आ जाया करता था। पर अब तुम नवलराय के नाममात्र हो, नवलराय नहीं हो।"

मुंशीजी ने कहा, "मैं तुम्हें अपना हाल सुनाऊँगा। पर पहले तुम मुझे अपनी पूरी कथा सुनाओ। तुम नहीं जानतीं, मेरे हृदय में इस समय क्या हो रहा है।"

"क्या हो रहा है? मेरी कथा का तुम्हारे लिए अब कोई मतलब नहीं है। ख़ैर, सुनो।"

मुंशीजी का कलेजा धड़क रहा था। वे सँभल कर बैठ गये।

"बाबूजी को जब हमारे-तुम्हारे प्रेम का—" वह व्यंग्य से हँसी—"हाल मालूम होगया और उन्हें मेरे गर्भ की भी बात मालूम होगई तब उन्होंने तुम्हें मार-पीट कर घर से निकाल दिया। उसके कुछ दिन बाद वे मुझे बम्बई ले गये। अनेक प्रयत्न करने पर भी गर्भ नहीं गिरा। उन दिनों मेरे मन में कैसे-कैसे भाव उठा करते थे। तुम्हारे प्रेम के सर्वश्रेष्ठ उपहार को नष्ट करने के विचार-मात्र से आत्मा तिलमिला उठती थी, पर विद्रोह करने का साहस मुझे न होता था। अन्त में एक रोज़ ग्लानि और क्षोभ की पराकाष्ठा होने पर मैं अपनी जान देने के लिए चुपचाप किसी तरह निकल भागी। अपने साथ ही इन तमाम पुस्तकों को भी इन्हें नष्ट कर देने के इरादे से लेती आई। परन्तु रात में सत्रह बरस की एक जवान सुन्दरी को अकेले भटकते देखकर एक कामुक सज्जन को दया आगई। उन्हीं के महल में यह लड़की पैदा हुई। लड़की जब दो महीने की हुई और मेरा स्वास्थ्य औ फिर चमका तब उन्होंने अपनी प्रेम-चेष्टा प्र की। तब मैं वहाँ से भी भागी। इस सोचती हूँ कि यदि मैंने उनसे विवाह कर होता तो मैं डाइरेक्टर के अनेक असिस्टें नौकर रख सकती। जीवन में ऐसी ही प्रायः हो जाया करती हैं, जिन पर बाद को पछ पड़ता है। ख़ैर, मैं वहाँ से भाग आई। उपरान्त पाँच-छः वर्ष कैसे बीते, वह तुम्हें ब की आवश्यकता नहीं। वह बड़े ही कष्ट का था। परन्तु बड़ी-बड़ी मुसीबतों में पड़कर भी यथाशक्ति स्वदेशी के व्रत को निवाहा। अ बच्चो के सुकुमार शरीर को मैंने खद्दर से डाला।

"अब तेरह-चौदह वर्षों से मैं इधर-उधर अ पकी करती फिर रही हूँ। तुम्हारी लड़की इंट्रेंस पास है और चार बरस से अध्यापकी क है। वह परम देश-भक्त है। 'जलियानवाला' के साल की कांग्रेस-कमेटी की स्पेशल रिपोर्ट पढ़कर वह घंटों तक सिसक-सिसक कर रहती है।

"तुम्हारी लड़की का भी एक व्रत है। आजन्म कुमारी रह कर अपने पिता के परिणाम प्रायश्चित्त करना चाहती है। मैं समझा-बुझा हार गई हूँ। वह कहती है कि यदि मेरे वि का भी कहीं ऐसा ही फल हुआ जैसा तुम्हारे वि का हुआ है तो क्या तुम्हें सुख होगा।"

मुंशीजी ने दीर्घ निश्वास छोड़कर कहा, "अ पिता से तो वह ख़ूब घृणा करती होगी—विशे

जब उसे इस बात का ख़याल आता होगा कि उसके पिता का तुम्हारे साथ कभी विवाह नहीं हुआ।"

"नहीं। मैंने सदा उसके हृदय में तुम्हारे प्रति सम्मान का भाव भरने की ही कोशिश की है। वह जानती है कि विवाह होने के बाद ही उसके पिता एक राजनैतिक अभियोग में कालेपानी भेज दिये गये थे। जब से यह मालूम हुआ और उसमें समझ आई तभी से उसका व्रत भी आरम्भ हुआ। अब से एक महीना पहले जब यह मालूम हुआ कि तुम डाइरेक्टर के पर्सनल असिस्टेंट हो तो हम दोनों को दुःख और आश्चर्य हुआ और उसका व्रत और भी कठोर होगया।"

इस बार मुंशीजी ने जेब से रूमाल निकाल कर अपना समूचा मुँह पोंछा—आँखें भी साफ़ कीं।

"अच्छा एक बात और पूछता हूँ। तुम्हें मेरा पता कैसे मालूम हुआ?"

"मेरी एक सह-अध्यापिका है। उसके भाई ने डाइरेक्टर से भेंट करने की आज्ञा के लिए प्रार्थना की थी। जिस समय डाइरेक्टर के दफ़्तर से उत्तर पहुँचा, उसका भाई बाहर गया हुआ था। मेरी साथिन, इस ख़याल से कि कोई ज़रूरी बात हो तो भाई को तार देकर बुलवा ले, मुझसे पढ़वाने के लिए वह उसे मेरे पास ले आई। तुम्हें मालूम है कि वह चिट्ठी नवलराय के हस्ताक्षर से गई थी। उसे देख कर ही मुझे संदेह हुआ।"

"ठीक। समझ गया। अब कहो तो मैं भी अपना हाल सुनाऊँ।"

"तुम्हारी मर्ज़ी। न सुनाओ तो भी कुछ हर्ज नहीं। मैं आज ही रात को चली जाना चाहती हूँ।"

"आज ही रात को चली जाओगी? क्या इसी इरादे से आई थीं?"

"नहीं। आई तो इस इरादे से थी कि गर्मियों की छुट्टियों भर तुम्हारे पास रहूँगी। उसके बाद जैसी आज्ञा दोगे वैसा करूँगी।"

"तुम मुझे त्याग रही हो?"

"मैं पहले ही से त्यागी हुई थी।"

"मेरा हाल सुनने की तुम्हें इच्छा नहीं है तो नहीं सुनाऊँगा। बरसों तक मैंने दिन रो-रो कर और रातें अपने सुखकाल की डायरियाँ पढ़ कर काटी हैं। हमेशा अपनी नौकरी को धिक्कारा है। पर यह सब मैं किससे कह रहा हूँ! शायद तुम चाह रही हो कि अब मैं जाऊँ। अच्छा, मैं कमला को अभी पहुँचा दूँगा।"

"कमला को! कमला कौन?"

"ओहो, भूल गया। भूल से मैंने और मेरी पत्नी ने उसका नाम कमला रख दिया है। मेरा अभिप्राय तुम्हारी लड़की से था।"

"ख़ैर, कोई बुराई नहीं हुई। अभी तक उसका नाम मिस नवेलीराय था। पर वह तुम्हारे योग्य पुत्री नहीं है। अब उसका नाम कमला ही हो जायगा। तुम्हारा यह अन्तिम चिह्न हम लोग अपने पास रक्खेंगे। लेकिन तुम लोगों से यह भूल कैसे हुई?"

"हमारी एक लड़की थी—कमला। इस समय नौ-दस बरस की होती। हम लोग उसे बेहद चाहते थे। दो साल हुए उसका देहान्त होगया। इस कमला की उस कमला से हूब-हू सूरत मिलती है।"

माधुरी एक मिनट मौन-मुद्रा में रही। फिर बोली, "अगर उचित समझो तो मैं एक बार तुम्हारी पत्नी से मिल लूँ।"

मुंशीजी ने उदासीन भाव से कहा, "चलो।"

घर पर एक विचित्र कौतुक देखने में आया। मुंशीजी और माधुरी जब आँगन में पहुँचे तब फटे चिथड़ों का एक पण्डाल देखा। उसमें जूतों की बन्दनवारें लटकी हुई थीं। बीच में कंडों के एक सिंहासन पर 'छुु-मु' रानी सजधज के साथ शोभायमान थीं। जूतों का एक हार उनकी शोभा को और बढ़ा रहा था। कीचड़ के तिलक अङ्ग अङ्ग पर लगे हुए थे। सामने एक जूते में रक्खा हुआ मिट्टी के तेल का एक चिराग़ धूप-दीप का अर्घ्य दे रहा था। मुंशीजी का लड़का ढमाढम-ढमाढम एक टीन के टुकड़े को बजा रहा था।

मुंशीजी अस्पष्ट रूप से ज़रा चौंके—कुछ ठिठके। माधुरी ने आश्चर्य के साथ पूछा, "यह क्या है?"

मुंशीजी ने शान्त होकर उत्तर दिया, "यह मेरी नौकरी की सालगिरह है। हमारे यहाँ छुई-मुई का पौधा पवित्र माना जाता है।"

माधुरी ने और कुछ न पूछा। एक मिनट तक इस झाँकी को ध्यान से देखकर उसने लड़के को गोद में उठाकर चूम लिया और पूछा, "तुम्हारी अम्मा कहाँ है?"

लड़का अपना बाजा बजाने के लिए गोदी में से फिसल कर बोला, "वहाँ कमरे में।"

मुंशीजी और माधुरी कमरे में पहुँचे। कमला और मुंशीजी की पत्नी बैठी हुई बातें कर रही थीं। सामने 'देश की बात' खुली रक्खी थी।

कमला अपनी माता को देखकर चह
उठी, "अम्मा! तुमने मुझे यह क्यों न ब
था कि मेरी एक और भी मा हैं? मेरी वे
बड़ी अच्छी हैं।"

माधुरी ने शिष्टाचार से गृहिणी को प्रणाम
और दोनों एक दूसरी से गले मिलीं। मा
हँसकर कहा, "मालूम होता है, तुमने इसे
लिया है। पहले पति छीना, अब बेटी को
का डौल जमा रही हो।

गृहिणी ने बुरा नहीं माना। यह बात
में कही गई थी और उसने उसे विनोद ही स
पर मुंशीजी उठकर अपनी बैठक में चले गये।

शाम को जब मुंशीजी कचहरी से लौटे त
पर चाय का सामान तैयार रक्खा पाया।
उतार कर, मुँह-हाथ धोकर, चाय पीने
बैठे। मेज़ के शेष तीन ओर उनकी पत्नी,
और माधुरी।

मुंशीजी अन्यमनस्क भाव से चाय पी र
उनके मन में कौन भाव विचरण कर रहे थे,
भाव माधुरी के मन में, और कौन भाव कम
मन में? केवल गृहिणी ही प्रसन्नवदन दिखा
थी। उसने चाय पीते पीते कहा, "माधुरीदे
आज रात को ही जाने को कह रही हैं।"

मुंशीजी ने उदासीन भाव से कहा, "
रोकने का प्रयत्न नहीं किया?"

"मैं क्या रोकती। स्वयं ही ठगी गई। मैं
हूँ कि मैं भी दो महीने इनके साथ रह आऊँ।"

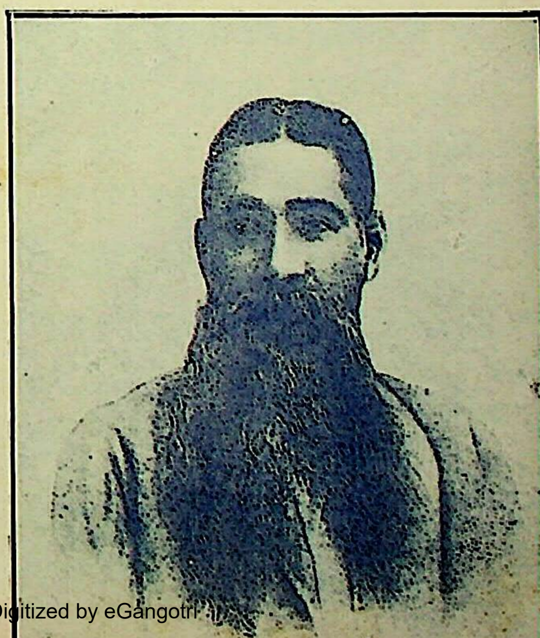
मुंशीजी चुप रहे। संकटापन्न हृदय का
अवलम्ब क्या है? उसी समय उनको एक



श्रीमती सरोजनी नायडू

लाहौर में एक पाषाण-मूर्ति है जिसके नीचे खुदा हुआ है— 'तुम क़लम से शासित होगे या तलवार से ?' ब्रिटिश-नेशन को मेरा चैलेंज है कि तुम इस बात को क़लम से तय करोगे या तलवार से, रोशनाई से या रक्त से ? भारतवर्ष शस्त्रहीन है। परन्तु यदि उसे दीवाल से पीठ के बल लड़ना हो तो वह अपनी हड्डियों की तलवार बना सकता है। वह अपनी स्वाधीनता प्राप्त करेगा।

नायडू



हुई। चाय पीने के बाद उन्होंने पुनः कपड़े पहने और बाहर एक टाँगा किराये कर डाइरेक्टर के बँगले पर पहुँचे। जब वे लौट कर आये तब उन्होंने अपनी पत्नी से कहा, "तुम क्या कहती हो? अगर मैं भी तुम लोगों के साथ चलूँ तो?"

पत्नी ने आश्चर्य से पूछा, "अगर तुम भी साथ चलो तो? सो कैसे हो सकता है?"

"मैं डाइरेक्टर साहब के यहाँ गया था। मैंने एक सप्ताह की कैज़ुएल लीव माँग ली है। यहाँ से जाकर दो महीने की मेडिकल लीव के लिए अर्ज़ी भेज दूँगा।"

"सच? चलो। मेरे विचार से माधुरीदेवी भी ख़ुश होंगी।"

मुंशीजी गये और दो महीने की छुट्टी भी उन्होंने लेही ली। दो महीने उन लोगों ने अधिकतर भिन्न-भिन्न पहाड़ों पर काटे। प्रकृति-पर्यटन में अवसर मिलने पर माधुरी और कमला दोनों कभी-कभी लेख लिखा करती थीं। वे मुंशीजी को दिखाकर पत्र-पत्रिकाओं में भेजे जाते। एकाध बार दोनों महिलाओं ने व्याख्यान भी दिये। उन्हें सुनकर मुंशीजी की आँखों में आँसू आजाते और उनकी पत्नी की तो सिसकी बँध जाती। मुंशीजी अब फिर रोज़ अपनी डायरी लिखने लगे थे। पिछले वर्षों में माधुरी ने एक उपन्यास लिखा था। वह उसकी अपनी ही दुखद कहानी थी। मुंशीजी ने इच्छा प्रकट की कि वह बहुत शीघ्र छपाया जाय और उन्हीं को समर्पित किया जाय।

माधुरी ने शङ्का की, "ज़ब्त तो न हो जायगा?"

"ज़ब्त क्यों हो जायगा?"

"क्यों, 'आनन्दमठ' तो ज़ब्त हो गया था।"

"अरे, अब वह पहले का ज़माना नहीं है न पहले कीसी पुस्तकें ही अब निकलती हैं और न अब सरकार को ही उतनी सहूलियतें हैं।

यही बातचीत धीरे-धीरे इस निश्चय में परिणत हुई कि मुंशीजी, माधुरी और कमला एक साथ रह कर प्रकाशन का कार्य्य करें।

जब मुंशीजी की छुट्टी समाप्त हुई तब वे लोग—चारों-पाँचों—इसी संकल्प को लेकर वापस आये।

नौकर घर पर रहता था और रोज़ छुई-मुई में पानी दिया करता था। उधर बरसात भी आरम्भ हो गई थी। छुई-मुई में फूल खिल रहे थे और उसकी डालियाँ लहरें मार रही थीं।

उस रोज़ भी एक भौंरा फूल के पेड़ के पास आया और फिसलता फिसलता ऊपर को उड़ गया। मुंशीजी ने मन में कहा, "समझदार है। It is never too late to mend—सुबह का भूला शाम को भी रास्ते पर आ जाय तो ग़नीमत है।"

उसी शाम को मुंशीजी फिर टाँगे पर बैठ कर साहब के यहाँ पहुँचे और उनकी छुई-मुई लौटा आये। उन्होंने कुछ इस ढङ्ग से बातें कीं कि शीघ्र ही उनका त्यागपत्र भी मंज़ूर कर लिया गया।

—'शिलीमुख'

# स्वराज्य की माँग

[ इस लेख के लेखक डॉक्टर ईश्वरीप्रसाद ने स्वराज्य की माँग का इ
बतलाते हुए एक प्रकार से वर्तमान भारतीय राजनैतिक प्रवाह का ही संक्षेप में वर्ण
दिया है। आपके लेख से इस बात का सम्यक् ज्ञान हो जाता है कि स्वराज्य
कैसे की गई और उसकी प्राप्ति के लिए देश ने अब तक कैसा और कहाँ तक आ
किया है। लेख का महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष मनन-योग्य और विचार प्राञ्जल

हमारे देश में इन दिनों स्वराज्य की धूम है। जहाँ देखिए वहाँ यही राग
देता है कि देश में स्वेच्छाचारिता का अन्त हो, व्यक्तिगत और जातीय स
का प्रचार हो और प्रत्येक स्त्री-पुरुष की शक्तियों का पूर्ण विकास हो।
की गति बलवान् है। नये नये आदर्शों का प्रादुर्भाव, विचारों का सं
अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं का सम्पर्क—इन सब कारणों से मनुष्यों के दृष्टिको
से कुछ होगये, संस्थायें लौट-पौट होगईं और राष्ट्र-विधान नये ढंग से होने लगे। भारत
भी उथल-पुथल होने लगी। स्वराज्य और साम्यवाद की चर्चा फैली। कुछ बिगड़
उत्साही पुरुष उद्वेग-प्रेरित हो स्वाधीनता की पुकार मचाने लगे। भारत में राष्ट्रीय आन्द
४५ वर्ष के बाद इस परिणाम पर आ पहुँचा। कालान्तर में विकट परिस्थितियों में प्रवेश कर
भी आदर्श-विभिन्नता न्यूनाधिक चली ही जाती है। इन्हीं सब विषयों पर इस छोटे से ले
ऐतिहासिक दृष्टि से विचार किया जायगा।

१९ वीं शताब्दी वास्तव में योरप क्या, सारे संसार के इतिहास में एक बड़ा मह
काल है। नेपोलियन के असामयिक पतन के बाद योरप में स्वेच्छाचारिता और निरंकुश
तूती बोलने लगी। आस्ट्रिया के प्रधान सचिव और स्वतंत्रता के कट्टर द्रोही मेटरनिक ने जर्म
ऐसी ख़ुफ़िया-पुलिस लगाई कि विद्यालयों में भी उत्कृष्ट आदर्शों का ह्रास होने लगा।
यह अनौदार्य अधिक समय तक न चला। परतंत्रता की बेड़ियाँ तोड़ डालने के लिए प्रबल आ
उत्पन्न हुई। जर्मनी में भी राष्ट्रीय ऐक्य के लिए उद्योग होने लगा। मेज़िनी ने 'युवा इटली
संगठन कर उसमें एक नई जान डाल दी। उसने इटली के युवकों को उपदेश कि

'मेरे मित्रो ! दुर्गम पहाड़ी स्थानों में जाओ, घाटियों में पर्यटन करो, गाँव गाँव घूमो, किसानों के अलावों पर बैठकर उन्हें स्वाधीनता का सन्देश सुनाओ और उनमें जाग्रति फैलाओ।' जर्मनी में बिसमार्क ने अपनी अद्भुत कूटनीति से विच्छिन्न राष्ट्रों को समुचित रूप से संगठित कर उनमें एक नई स्फूर्ति का संचार किया। क्रान्तिवादियों की आशा-लता फिर से लहलहा उठी और तृतीय नेपोलियन की पराजय से फ़्रांस के प्रजातन्त्र-शासन-सिद्धान्त की पुष्टि हुई। कालचक्र ने ऐसा पलटा खाया कि सन् १८७० ईसवी में वर्साई के जगद्विख्यात राज-प्रासाद में जर्मन-साम्राज्य की स्थापना हुई। नेपोलियन के ढोंग और ढकोसले का अन्त हुआ। बिसमार्क ने उसके मुँह पर अच्छी तरह कालिख लगा दा। इटली, जर्मनी, फ़्रांस के इतिहास में एक नये युग का जन्म हुआ। अन्य राष्ट्रों में भी चहल-पहल मची। राष्ट्रीयता का सितारा बुलन्द हुआ। जनता अपने स्वत्वों पर ज़ोर देने लगी और उत्तरदायित्वपूर्ण शासन के लिए आन्दोलन शुरू हुआ। १९ वीं शताब्दी के अन्त तक योरपीय राष्ट्रों का रूप-रंग ही बदल गया। साम्राज्यवाद का विरोध होने लगा। समाज-शैली अन्यायपूर्ण समझी जाने लगी। बड़े बड़े विद्वान्, वक्ता, दार्शनिक, समाज के प्राचीन नियमों की तीव्र आलोचना करने लगे। दीन धनहीन श्रमजीवी ही राष्ट्र के प्रधान अंग हैं, इनके प्रति राष्ट्रों का अनाचार बन्द होना चाहिए और इन्हें शासन में अधिक भाग मिलना चाहिए—यही आवाज़ चारों तरफ़ योरप के राष्ट्र-मंडल में गूँज गई।

इधर भारतवर्ष में भी इस शताब्दी में नये आदर्श प्रकट हुए। मुग़ल-साम्राज्य के नष्ट-भ्रष्ट होने पर सामाजिक सूत्र टूट गये। मराठों ने अपना राज्य स्थापित किया, परन्तु लूटमार की धूम रही। अन्त में अँगरेज़ों का बोलबाला हुआ, और एक के बाद एक देशी नरेश को विदेशियों के सम्मुख मस्तक नवाना पड़ा। स्वाधीनता का अपहरण होने से जातीय दुर्गति पराकाष्ठा को पहुँच गई। परन्तु लार्ड विलियम बैंटिंक के शासन-काल में कुछ औदार्य से काम लिया गया। राजा राममोहन राय ने सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध आवाज़ उठाई और ब्रह्मसमाज की स्थापना की। सन् ५७ की क्रान्ति से अँगरेज़ों का दृष्टिकोण बदल गया। उन्होंने अपनी नीति भी बदल दी। महारानी विक्टोरिया के प्रसिद्ध घोषणापत्र में स्पष्टरूप से कहा गया कि हमारे राज्य में प्रत्येक मनुष्य को अपना धर्म-पालन करने की पूरी आज़ादी रहेगी और कोई अपने मज़हब, रंग या जाति के कारण किसी ओहदे से वंचित न किया जायगा। इसका देश पर अच्छा प्रभाव पड़ा। शिक्षा का भी विकास हुआ। सर चार्ल्स वुड के प्रस्ताव से प्रारम्भिक शिक्षा का तो प्रबंध हो ही रहा था। अब यूनीवर्सिटियों के स्थापित होने से देश में एक नई प्रकार की जाग्रति फैलने लगी। अँगरेज़ी इतिहास, साहित्य और सायंस पढ़ने से नई आकांक्षायें उत्पन्न हुईं। वंगदेश में अँगरेज़ी शिक्षा अनिष्टकारी प्रतीत होने लगी। बड़े बड़े शिक्षित लोग पाश्चात्य

सभ्यता के चकाचौंध से अन्धे होकर ईसाई-धर्म की तरफ़ प्रवृत्ति करने लगे। कृष्णमोह बनर्जी, लालबिहारी डे, गोविन्द दत्त ने इसी प्रकार ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया। श्री केशवचन्द्र सेन ने अपने ओजस्वी, विचार-पूर्ण भाषणों से इन डावाँडोल कर्त्तव्यवि लोगों को गुमराह होने से रोका। सन् १८७२ ईसवी में उन्होंने समाज-संगठन समस्या को सामने रख उस पर विचार करना आरम्भ किया। जाति-व्यवस्था, मूर्तिपू का घोर विरोध किया, संशय-संकोच का परित्याग करने का आदेश किया और शिक्षि समुदाय से अपील की कि सर्वव्यापी परमब्रह्म में दृढ़ विश्वास रक्खो। साहित्य-क्षेत्र नये आदर्श दिखाई पड़ने लगे। माईकेल मधुसूदन दत्त, दीनबन्धु मित्र, बंकिमचन्द्र चट हेमचन्द्र बनर्जी, नवीनचन्द्र सेन प्रभृति पुरुषों ने विदेशीय भावों का भारतीय विचारशैली के सा मेल करने की चेष्टा की। पाश्चात्य आदर्श पूर्वीय लिबास में प्रकट होने लगे। पंडित ईश्वरच विद्यासागर ने विधवा-विवाह का समर्थन किया और बहु-विवाह को रोकने का अनुरोध किया स्त्री-शिक्षा के लिए भी उद्योग होने लगा। ईसाई अपने धर्म-प्रचार के अभिप्राय से स्कूलों में शि देने लगे। साथ ही साथ वैष्णव धर्म के संशोधन के लिए भी आन्दोलन होने लगा। पंडित शि चन्द्र विद्यार्णव के प्रयत्न से जन-साधारण का ध्यान इस तरफ़ आकृष्ट हुआ। बंकिम बाबू ने कृ की उपासना पर ज़ोर दिया और डाक्टर हास्टी और मिस्टर मेकडानल्ड आदि ईसाई विद्वानों करारा उत्तर देकर शिक्षित जनता पर बड़ा प्रभाव डाला। यह स्रोत बराबर बहता ही रह स्वामी विवेकानन्द, सिस्टर निवेदिता ने भी इसमें योग दिया और हिन्दूधर्म के आदर्शों नवीन आकर्षक रूप में जनता के सम्मुख रखकर देश का उपकार किया।

सन् १८७५ ईसवी में स्वामी दयानन्द सरस्वती ने आर्य-समाज की स्थापना की। उन्हों तत्कालीन हिन्दू धर्म की कड़ी आलोचना की, मूर्तिपूजा का विरोध किया, सामाजिक दो की निन्दा की और वैदिक धर्म पालन करने का आदेश किया। आर्य-समाज के सिद्धान्तों का य उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं है। इस लेख के उद्देश की दृष्टि से इतना ही कहना पर्या होगा कि हिन्दू-समाज में स्वामीजी ने एक हलचल मचा दी। अदम्य निर्भीकता के साथ उन्हों स्वेच्छाचारी, निरंकुश 'पोपों' का सामना किया और काशी के प्रसिद्ध शास्त्रार्थ में अपनी विद्व का सिक्का जमा दिया। स्वामीजी के विचारों का देश में वही असर हुआ जो बम्बगोले के गि का किसी शान्त सभा में हो। आर्य-समाज के विस्तृत कार्य-क्रम ने हिन्दू-जाति की मृत हड्डि में फिर से जान डाल दी। यह सब सामाजिक उथल-पुथल थी। राष्ट्रीय आन्दोलन का अभी ना निशान नहीं था। अँगरेज़ी शासन के विरुद्ध किसी की ताब न थी कि ज़बान निकाले। आजक के युवकों के लिए उस परिस्थिति का समझना दुस्तर है।

लार्ड रिपन के वाइसराय होते ही 'वर्नाक्युलर प्रेस ऐक्ट' रद हुआ और मिस्टर ग्लैडस्टन ने जो लिबरलदल के नेता थे, कड़े शब्दों में उसकी आलोचना की। इतने में इलबर्ट बिल का झगड़ा शुरू होगया। गोरे लोग पाजामे से बाहर होगये। चारों तरफ़ से काले हिन्दुस्तानियों पर गोलियों की बौछार पड़ने लगी। वाइसराय के लिए भी अनुचित वाक्यों का प्रयोग किया गया। श्रीयुत लालमोहन घोष ने अपने ढाका के भाषण में गोरे लोगों को खरी खरी सुनाई और वाइसराय की न्याय-पूर्ण नीति का समर्थन किया। इलबर्ट बिल को सरकार ने विवश होकर वापस ले लिया। गोरे-कालों में भेद तो था ही। इस आन्दोलन से उसने भयंकर रूप धारण किया। सन् १८८३ ईसवी में मिस्टर ह्यूम ने कलकत्ता-विश्वविद्यालय के ग्रेजुएटों के नाम एक पत्र लिखा, जिसमें उन्होंने देशोन्नति के लिए प्रयत्न करने की अपील की। इस पत्र के कुछ शब्द उद्धृत करने योग्य हैं—

"अनेक विदेशी मेरी तरह भारत और उसकी सन्तान से प्रेम करते हैं और उसके हित के लिए अपना समय और धन व्यय करते हैं, परन्तु उनका किया कुछ नहीं हो सकता। उनका उद्योग और त्याग आप लोगों की सहायता बिना सफल नहीं हो सकता। देश के कल्याण का काम आप लोगों को ही स्वयं करना पड़ेगा।"

इसी पत्र में उन्होंने कहा कि एक ऐसी संस्था की ज़रूरत है जिसमें शिक्षित समाज के राजनैतिक विचार सुव्यवस्थित किये जायँ और जहाँ शासन के दोषों का निरूपण किया जाय। कौन ऐसा भारतीय होगा कि जिसका हृदय इस पत्र के अन्तिम शब्दों को पढ़कर न क्षुब्ध हो जाय? वे लिखते हैं—

"जैसा कि मैंने पहले कहा, आप इस भूमि के सर्व्वोत्कृष्ट रत्न हैं। और यदि आप में भी ऐसे पचास व्यक्ति नहीं निकल सकते जिनमें यथेष्ट स्वार्थ-त्याग हो, देश के प्रति पर्य्याप्त प्रेम और उस पर उचित अभिमान हो, देशोपकारी कार्य्यों का स्वयं श्रीगणेश करने और यदि आवश्यकता हो तो उन्हीं में जीवन खपा देने का सच्चा स्वदेशानुराग हो तो भारतवर्ष के लिए कोई आशा नहीं है। फिर तो भारत-सन्तानों को सदा के लिए विदेशी शासकों के हाथ में दीन और असहाय यन्त्रवत् बना रहना चाहिए ही, और वे बने रहेंगे। क्योंकि जिन्हें स्वतन्त्र होना है उन्हें उद्योगशील होना ही पड़ेगा।"

इस अपील का शिक्षित समुदाय पर अच्छा प्रभाव पड़ा। शीघ्र मिस्टर ह्यूम ने 'इंडियन नेशनल यूनियन' स्थापित की और यह सलाह की कि पूना में एक कान्फ्रेंस हो जिसमें राजनैतिक प्रश्नों पर विचार किया जाय। इसके बाद ही वे इँग्लेंड गये और वहाँ पार्लिमेंट के प्रतिष्ठित सदस्यों से मिले और इस विषय में परामर्श किया। बंगाल में सभ्य समितियाँ बन रही थीं। मई सन् १८८३ ईसवी में बाबू सुरेन्द्रनाथ बनर्जी हाईकोर्ट का अपमान करने के अभियोग में छः

महीने के लिए जेल भेजे गये। देश भर में सनसनी फैल गई। जब बाबू सुरेन्द्रनाथ छूटकर आ तब देश ने हृदय से उनका स्वागत किया। समाचार-पत्रों में सरकार पर अनेक प्रकार के आ होने लगे। आन्दोलन का बाज़ार गर्म रहा, परन्तु राजनैतिक मामलों में दिलचस्पी रखने सज्जन देश भर में गिने-चुने ही थे। दिसम्बर सन् १८८५ में 'गोकुलदास तेजपाल संस्कृत-कालेज के हाल में कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन हुआ। कलकत्ते के सुप्रसिद्ध बैरिस्टर मिस्टर डवलू० सी बनर्जी सभापति बनाये गये। उस समय से कांग्रेस के अब तक ४४ अधिवेशन हो चुके हैं, पर पहली और ४४ वीं कांग्रेस के लक्ष्य और कार्यक्रम में ज़मीन-आसमान का फ़र्क़ है। पहली कांग्रेस कुल ७८ प्रतिनिधि थे, जिनमें मुसलमान केवल २ थे और ये भी बड़ी कठिनता से बुलाये गये थे, क्यों सरकार से लोग इतने भयभीत थे कि किसी को कांग्रेस में जाने का साहस नहीं होता था। इ सभा के गण्यमान्य पुरुष थे—दादा भाई नौरोजी, श्रीयुत महादेव गोविन्द रानाडे, श्रीयुत काशीना त्र्यम्बक तैलंग, श्रीयुत फ़ीरोज़शाह मेहता, और श्रीयुत सुब्रह्मण्य अय्यर। कांग्रेस के ध्येय श्रीयुत बनर्जी ने इस प्रकार वर्णन किया—

"मैत्री-पूर्ण व्यक्तिगत सम्पर्क-द्वारा देश-प्रेमियों के हृदय से समस्त सम्भव जातीय, सा दायिक वा प्रान्तीय कुसंस्कारों का निराकरण और राष्ट्रीय एकता के उन भावों का अधिकतर विका और गठन जिनका श्रीगणेश देश-प्रिय लार्ड रिपन के स्मरणीय शासन-काल में हुआ था मिस्टर बनर्जी ने अपने भाषण में कहा कि योरपीय शासन-प्रणाली की इच्छा करना राज-वि नहीं है। कांग्रेस ने ब्रिटिश राज्य का गुणानुवाद किया। प्रथम प्रस्ताव में ही श्रीयुत सुब्रह्म अय्यर ने जो बाद को मदरास हाईकोर्ट के चीफ़ जस्टिस हुए, अँगरेज़ी राज्य की महत्ता वर्णन किया और कहा कि जितने राज्य आज तक भारत में स्थापित हुए हैं उनमें यह सबसे श्रेष्ठ है। सब मिला कर ९ प्रस्ताव स्वीकृत हुए जिनमें ४ अधिक महत्त्व के हैं जो ये हैं—

१ लेजिस्लेटिव कौंसिलों का विस्तार और विकास।

२ 'सिविल सर्विस' की परीक्षा का इँग्लेंड और भारतवर्ष दोनों जगहों में होना।

३ भारतीय शासन के दोषों की जाँच।

४ भारत-सचिव की कौंसिल (India Council) का बर्खास्त होना।

दूसरे साल कलकत्ते में स्वर्गीय दादा भाई नौरोजी की अध्यक्षता में कांग्रेस का अधिवे हुआ। इसी साल हमारे प्रान्त के सर्वमान्य नेता पण्डित मदनमोहन मालवीय भी कांग्रेस में सम्मि लित हुए और इसी अवसर पर आपने अपने भाषण में ये शब्द कहे थे:—No taxation witho representation. That is the first commandment in the Englishman's political Bi अर्थात् बिना प्रतिनिधियों की सम्मति के कोई कर न लगना चाहिए। अँगरेज़ी राजनीति

यह पहला सिद्धान्त है। दादा भाई ने अपनी अटल राज-भक्ति का भी उल्लेख किया। लार्ड डफ़रिन ने कांग्रेस के मेम्बरों से भेट की, परन्तु कांग्रेस के ध्येय के साथ कुछ सहानुभूति न प्रकट की। उधर सर सैयद अहमद और आकलेंड कालबिन ने कांग्रेस का विरोध शुरू कर दिया और सन् १८८८ ईसवी में इलाहाबाद में कांग्रेस हुई तो उसके मार्ग में अनेक बाधायें डालीं। कांग्रेस का ध्येय अब तक 'साम्राज्य के अन्तर्गत स्वराज' (Self-government within the Empire) था। कौंसिलों के सुधार पर विशेष ज़ोर दिया जाता था। कई वर्ष तक यही दशा रही। प्रतिष्ठित धनी वकील बैरिस्टर बड़े दिन की छुट्टी में कांग्रेस के अधिवेशन में सम्मिलित होते थे और इस एक सप्ताह के आनन्द के बाद फिर अपने काम में लग जाते थे। ज़बानी जमा-ख़र्च अधिक था, वास्तविक काम की न्यूनता थी। सन् १८९९ ईसवी में लार्ड कर्ज़न भारत के वाइसराय होकर आये। आक्सफ़र्ड यूनिवर्सिटी के बेलीअल कालेज में आपने शिक्षा पाई थी। आपकी वाक्-पटुता, परिश्रम-शीलता और हौसलामन्दी की उनके कट्टर विरोधियों ने भी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। परन्तु उनके अहंकार-पूर्ण घोर साम्राज्यवाद ने उनके अनुपम गुणों को नष्टप्राय कर दिया, जिसके फलस्वरूप थोड़े ही दिनों में देश भर में राजविद्रोह की भयंकर अग्नि धधकने लगी। शिक्षित समुदाय का अपमान करने में लार्ड कर्ज़न ने कोई कसर न रक्खी। कौंसिल-चेम्बर में, कलकत्ता-विश्वविद्यालय के कनवोकेशनों में, दरबारों में, जहाँ मौक़ा मिला, हिन्दुस्तानियों की मार्मिक शब्दों में निन्दा की। लार्ड कर्ज़न की कठोर औदार्य्यहीन नीति का सविस्तर वर्णन स्थानाभाव के कारण इस लेख में नहीं हो सकता। परन्तु इतना कहना काफ़ी होगा कि 'यूनिवर्सिटीज़ ऐक्ट' (१९०४) और बंगाल-विच्छेद (१९०५) ने भारतीय जनता के हृदय को गहरी चोट पहुँचाई। बम्ब के गोले फिंकने लगे। कुछ बंगाली युवक ब्रिटिश राज्य का नाश करने की चेष्टा करने लगे। महाराष्ट्र में भी आन्दोलन हुआ। वहाँ भी राजनैतिक उद्वेग ने प्रचंड स्वरूप धारण किया। अँगरेज़ों के तिरस्कार ने आन्दोलन को और भी गर्म बना दिया। गोरे लोग कालों को घृणा की दृष्टि से देखते थे। बड़े से बड़े प्रतिष्ठित से प्रतिष्ठित हिन्दुस्तानियों को भी अँगरेज़ कुत्ते के समान समझते थे। कहा जाता है कि एक बार मदरास-हाईकोर्ट के चीफ़ जस्टिस सर चार्ल्स टर्नर इलाहाबाद के सुप्रसिद्ध जज मिस्टर महमूद को क्लब में ले गये। वहाँ एक अँगरेज़ उनके पास आकर महमूद साहब के सामने ही कहने लगा कि यहाँ नेटिव लोगों को आने की आज्ञा नहीं है। हैदराबाद के रेज़ीडेंट डेविड बार साहब की वर्णन की हुई कहानी कि एक भारतीय राजा को रेल के फ़र्स्ट क्लास कंपार्टमेंट में एक अँगरेज़ के पैर दबाते हुए सारी रात व्यतीत करनी पड़ी थी, प्रमाणित हो चुकी है।

अँगरेज़ हिन्दुस्तानियों का पारस्परिक वैमनस्य इसी प्रकार बढ़ गया। स्वदेशी और बायकाट की चर्चा छिड़ी। बंगाल में प्रजा का असन्तोष अपनी चरम सीमा को पहुँच गया। गरम और नरम दलों में करारी प्रतिद्वन्द्विता होने लगी। दिसम्बर १९०६ में कलकत्ते में कांग्रेस का अधिवेशन दादा भाई नौरोजी के सभापतित्व में हुआ। दोनों दलों में वाक्-युद्ध तो हो ही रहा था, मार-पीट की भी नौबत आ चुकी थी, परन्तु दादा भाई की उपस्थिति के कारण शान्ति रही। सभापति ने अपने भाषण में पहले-पहल यहीं **स्वराज्य** शब्द का प्रयोग किया और उसकी प्राप्ति को कांग्रेस का ध्येय निश्चित किया। इस शब्द का अर्थ करने में घोर मतभेद हुआ, जिसके फलस्वरूप सूरत की कांग्रेस (१९०७) में दोनों दलों में मुठभेड़ हुई। मुसलमान कांग्रेस से अलग रहे और उन्होंने गत वर्ष अपना मुसलिम लीग स्थापित कर लिया था। नरमदल वालों ने सर फ़ीरोज़शाह मेहता के कहने से शीघ्र अपनी सभा का और नया विधान बनाया जिसमें कांग्रेस का ध्येय रक्खा गया—ब्रिटिश-साम्राज्यांतर्गत उपनिवेशीय स्वराज्य। स्वराज्य की माँग कुछ ढीली पड़ गई। राष्ट्रीय शक्ति के दो भागों में विभक्त हो जाने के कारण कुछ शिथिल पड़ गई। परन्तु गरम दलवालों का कार्य-क्रम सरकार के लिए चिन्ता का कारण हुआ। लार्ड मार्ले इस समय इँग्लेंड में भारत-सचिव थे। उन्होंने शान्त-नीति का अनुगमन किया और लार्ड मिंटो की सहायता से राजनैतिक परिस्थिति को बहुत कुछ सँभाला। लखनऊ का कांग्रेस (१९१६) में दोनों दलों में ऐक्य स्थापित करने की चेष्टा सफल हुई और बाबू सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने अपने भाषण में, जो कांग्रेस का सबसे महत्त्वपूर्ण भाषण था, स्वराज्य का माँग का अनुमोदन किया। बड़े लाट की कौंसिल के १९ मेंबरों ने अपने मेमोरेंडम (Memorandum) में जो "जो उन सदस्यों के मेमोरेंडम" के नाम से प्रसिद्ध है, स्वराज्य की माँग का वर्णन किया। मेंम्बरों ने यह राय प्रकट की—"केवल सुशासन नहीं बल्कि वह शासन अपेक्षित है जिसे जनता इसलिए स्वीकार करती है कि वह उसके सामने उत्तरदायी है। भारत के मत में परिवर्त्तित दृष्टिकोण का वही स्वरूप है।" कांग्रेस के उक्त अधिवेशन के बाद ही श्रीमती ऐनीबेसेन्ट ने 'होमरूल लीग' की स्थापना की और लोकमान्य तिलक ने भी उनके साथ सहयोग किया। योरप में विकराल युद्ध हो रहा था। भारतवासियों ने इस आपत्तिकाल में साम्राज्य की जो सहायता की उसका अच्छा प्रभाव पड़ा। भारत-सचिव मिस्टर मान्टेग्यू ने २० अगस्त सन् १९१७ ई० को पार्लियामेंट में भारत के प्रति ब्रिटिश-सरकार की नीति का इस प्रकार वर्णन किया—

"श्रीमान् सम्राट् की सरकार की नीति, जिससे भारत-सरकार सर्वथा सहमत है, यह है कि शासन के प्रत्येक विभाग में भारतवासी अधिकाधिक संख्या में भरती किये

जायँ और भारतवर्ष को ब्रिटिश-साम्राज्य का एक सम्पूर्ण अङ्ग बनाये रख कर उसमें उत्तर-दायित्व-पूर्ण शासन-पद्धति की संस्थापना में प्रगति करने की दृष्टि से स्वयं-शासित संस्थाओं का क्रमशः विकास किया जाय।"

इसके बाद मिस्टर मान्टेग्यू भारत आये और लार्ड चेम्सफ़ोर्ड के साथ उन्होंने देश भर में दौरा किया। मान्टेग्यू-चेम्सफ़ोर्ड रिपोर्ट के प्रकाशित होने के पश्चात् सन् १९१९ में 'गवर्नमेंट आफ़ इंडिया ऐक्ट' पास हुआ।' उसके अनुसार शासन में कई आवश्यक संशोधन किये गये। परन्तु इससे कांग्रेस के नेता सन्तुष्ट न हुए। लिबरलपार्टी ने रिफ़ार्म की योजना का स्वागत किया, परन्तु कांग्रेस के प्रसिद्ध नेताओं ने उसको लाभकारी न समझ कर विरोध किया और उसमें भाग लेने से हाथ खींच लिया। इसी साल रौलटबिल के पास हो जाने पर महात्मा गांधी ने जिनका कार्यक्षेत्र अभी तक विशेष कर दक्षिण अफ़्रीका ही में रहा था, घोर आन्दोलन शुरू किया और राजनैतिक क्षेत्र में एक आश्चर्यजनक हलचल पैदा कर दी। कांग्रेस ने असहयोग का सिद्धान्त स्वीकार कर लिया। ख़िलाफ़त का झगड़ा छिड़ जाने के कारण मुसलमानों ने भी महात्मा गांधी का साथ दिया और मौलाना मुहम्मद-अली और शौकतअली दोनों भाई ज़ोर-शोर से असहयोग-आन्दोलन का समर्थन करने लगे। खद्दर, चरख़ा, विदेशी वस्त्र का बहिष्कार—इन्हीं तीन शब्दों से राष्ट्रीय गगन-मण्डल गूँज गया। ब्रिटिश सरकार शैतान की गवर्नमेंट कहलाने लगी। सत्याग्रह के सिद्धान्त का दुरुपयोग होने के कारण देश में कई भीषण उपद्रव हुए, जिनके कारण महात्माजी को भी बड़ा पश्चात्ताप करना और दुख उठाना पड़ा। सन् १९२२ ईसवी में श्रीयुत चित्तरंजन दास गया-कांग्रेस के सभापति हुए। उन्होंने कौंसिलों के बहिष्कार को बन्द करने के पक्ष में सम्मति प्रकट की और इसी अभिप्राय से स्वराज्यपार्टी की स्थापना की। पंडित मोतीलाल नेहरू ने भी जो गांधीजी की नीति से ऊब गये थे, श्रीयुत चित्तरंजन दास के पक्ष की पुष्टि की और कौंसिलों को स्वराज्य-प्राप्ति का साधन बताया। स्वाधीनता के सिद्धान्त का दास महोदय ने विरोध किया और कहा कि यदि अँगरेज़ हमें छोड़ कर चले भी जायँ तो भी यह नहीं कहा जा सकता कि स्वराज्य अवश्य ही मिल जायगा। बंगाल की प्रान्तीय राजनैतिक कान्फ़्रेंस के सभापति के आसन से आपने स्वराज्य की इस प्रकार व्याख्या की—

'मेरी समझ में स्वराज्य का पहला उद्देश यह है कि हमें भारत के विभिन्न श्रेणियों के लोगों के संगठन का कार्य्य सम्पन्न करने की स्वतंत्रता मिले; दूसरा यह कि हम इस कार्य्य को राष्ट्रीय प्रणाली पर करें; दो सहस्र वर्ष पहले की पद्धतियों पर न चलें, बल्कि अपनी राष्ट्रीय प्रतिभा और प्रकृति पर ध्यान देते हुए प्रगतिशील बनें।'

स्वराज्य भारतवर्ष के लिए वही हितकर होगा जो ब्रिटिश-साम्राज्य के अन्तर्गत हो। परन्तु कांग्रेस में कुछ देशप्रेमी ऐसे थे जो अपने जोश में युद्ध का झंडा उठाने को तैयार थे और कहते थे कि हमारा लक्ष्य स्वाधीनता होना चाहिए। इस विवादास्पद विषय में दास बाबू ने अपनी यह सम्मति प्रकट की—

"मुझे तो यह विचार विशेषरूप से आकर्षक जान पड़ता है। कारण यह कि इसका एक आध्यात्मिक महत्त्व भी है। मैं विश्व-शान्ति और संसार के संघटन का पक्षपाती हूँ। मेरा मत यह है कि ब्रिटिश-साम्राज्य के नाम से सम्बोधित महान् राष्ट्र-संघ, जो विभिन्न प्रकार के जीवन, सभ्यता और मानसिक दृष्टि-कोणवाली जातियों का एक संघ होगा, बुद्धिमान राजनीतिज्ञों के नेतृत्व में, संसार के उस बड़े से बड़े संघ में, जिसकी कल्पना मनुष्य का मस्तिष्क कर सकता है, सम्बद्ध करने, मानव-जाति के संघटन की समस्या को हल करने में स्थायी भाग अवश्य ही लेगा।

"यही अभीष्ट नहीं है कि शासन अच्छा हो। उत्तरदायित्व-पूर्ण होकर उसे जनता-द्वारा ग्राह्य भी होना चाहिए। ऐसा मानने पर ही भारतवर्ष समझेगा कि शासकों के दृष्टि-कोण में कोई परिवर्त्तन हुआ है।"

लार्ड रीडिंग के विलायत लौट जाने पर लार्ड अरविन वाइसराय होकर आये। पार्लियामेंट ने साइमन-कमीशन को हमारी राष्ट्रीय माँग को तौलने के लिए भेजा। पार्लियामेंट के लिए इस कमीशन का नियुक्त करना 'गवर्नमेंट आफ़ इंडिया ऐक्ट' के अनुसार लाज़िमी था। परन्तु भारतीय नेताओं ने इसका बहिष्कार कर दिया। कारण यह था कि कमीशन में कोई भारतीय सदस्य नहीं रक्खा गया था। कमीशन के विरुद्ध आन्दोलन ज़ोर-शोर से हुआ और लेजिस्लेटिव एसेम्बली में पण्डित मदनमोहन मालवीय, पण्डित मोतीलाल नेहरू, मिस्टर जिन्ना आदि नेताओं ने सरकार की नीति की तीव्र आलोचना की। परन्तु सरकार ने कुछ भी परवा न की। देश में असन्तोष बराबर जारी रहा। इतने में इँग्लेंड में मज़दूर-दल का ज़ोर हुआ। नये मन्त्रिमण्डल ने भारत के साथ सहानुभूति प्रकट की। लार्ड अरविन स्वयं केबिनेट से परामर्श करने इँग्लेंड गये। कहते हैं, बड़े औदार्य्य और सचाई के साथ लाट महोदय ने भारत के हृदय की आशा और भय ब्रिटिश गवर्नमेन्ट के सम्मुख रक्खे, जिसका परिणाम यह हुआ कि सरकार की ओर से एक विज्ञप्ति प्रकाशित की गई, जिसमें कहा गया कि भारत में उत्तरदायित्व-पूर्ण शासन स्थापित होगा। औपनिवेशिक दर्जा मिलने की कुछ आशा हुई। इसी विज्ञप्ति ने उत्तरदायित्व-पूर्ण (Responsible) शासन का अर्थ स्पष्ट किया और सन् १९१७ के वादे की पुष्टि की। वाइसराय की विज्ञप्ति को इँग्लेंड में कुछ लोगों ने अनुचित और असामयिक

यिक कहा, परन्तु भारत-सचिव ने उसका समर्थन करते हुए अपने भाषण में कहा कि इँग्लेंड के लिए भारत के प्रति उदार नीति का पालन करना ही श्रेयस्कर है। भारत के शत्रुओं ने बहुत कहा-सुना कि कमीशन की रिपोर्ट के पहले विज्ञप्ति प्रकाशित करना सर्वथा अनुचित है। इधर दिल्ली में नेताओं ने कान्फ्रेंस की और उसमें अपनी माँग यह रक्खी कि औपनिवेशिक दर्जे से कम मिलने पर भारत किसी प्रकार भी सन्तुष्ट न होगा। इसमें भिन्न-भिन्न दलों के नेता मौजूद थे। २ दिसम्बर सन् १६२६ तक की यह परिस्थिति है। देखें आगामी कांग्रेस इस विषय में क्या निर्णय करती है। कांग्रेस के सभापति पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने भी नेताओं की पूर्वोक्त विज्ञप्ति पर दस्तख़त किये हैं। देखें अब वे क्या सम्मति प्रकट करते हैं।

इस समय देश में कई पार्टियाँ हैं। सरकार की नीति पहले से नरम है, परन्तु ऐसी आशा करना कि पूरा स्वराज्य मिल जायगा, सर्वथा निर्मूल है। पार्टियों के उद्देश में बहुत फ़र्क़ है। स्वाधीनतावादी अँगरेज़ी साम्राज्य का अन्त चाहते हैं। बाज़ इनमें ऐसे भी हैं जिनके विचारों में दृढ़ता नहीं है। श्रीयुत श्रीनिवास अय्यंगर स्वाधीनतावादी हैं, परन्तु सरकारी पद स्वीकार करने के पक्ष में हैं। साम्यवादी पूँजीपतियों को नष्ट कर दीन धनहीन श्रमजीवियों का उपकार करने की महती आकांक्षा रखते हैं। स्वराज्य-पार्टीवाले सरकार के साथ भी हैं और अलग भी रहना चाहते हैं। परन्तु उनका लक्ष्य अब उपनिवेशीय स्वराज्य है। महात्मा गांधीजी के अनुयायी खद्दर और चरख़ा का राग अदम्य उत्साह से गाते हैं। इनमें कुछ ऐसे भी हैं जिनकी विचार-शक्ति सर्वथा नष्ट होगई है। यदि महात्माजी कच्चे चने खायँ तो ये भी कच्चे चने खाने लग जाते हैं और यदि वे वस्त्र धारण करना छोड़ते हैं तो ये भी नग्न होकर रणक्षेत्र में कूदने को तैयार हो जाते हैं। ऐसे लोगों से समाज के पुनरुद्धार में मदद मिलने की आशा रखना व्यर्थ है। लिबरल-पार्टी अपने ढंग की निराली ही है। इसमें धनी, प्रतिष्ठित, वकील, बैरिस्टर, रईस, व्यापारी, ज़मींदार, आनरेरी मजिस्ट्रेट, सरकारी उपाधिधारी सज्जन हैं, जिनमें से अधिकांश राजनैतिक समस्याओं को उसी दृष्टि से देखते हैं जिससे टेनिस के खेल को। चरख़ा और खद्दर इनके लिए वैसे ही हैं जैसे नकटे के लिए आरसी। इनके बड़े गण्य-मान्य नेता कहते हैं कि 'यह सब मेरी समझ में नहीं आता। मेरे वस्त्रों और राष्ट्रीय विचारों में क्यों सम्बन्ध होना चाहिए। मैं चाहे जैसी सिगार पिऊँगा, चाहे जैसे वस्त्र धारण करूँगा, चाहे जिस देश की बनी हुई चीज़ें ख़रीदूँगा—किसी को इन कामों में मुझे रोकने-टोकने का अधिकार नहीं है।' यह भी एक भारतीय देशभक्ति का नमूना है जो हमारे सम्मुख है। इस सिद्धान्त के औचित्य और अनौचित्य पर पाठक स्वयं विचार करें। एक

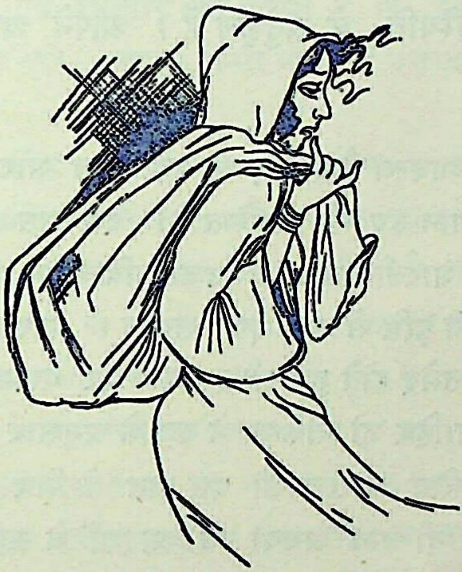
दूसरी पार्टी हिन्दू-मुसलमान साम्प्रदायिकों की है, जो केवल अपनी अपनी क़ौम की ही भ[लाई] चाहते हैं और दूसरी को जड़-मूल से नष्ट करना चाहते हैं। इनका दृष्टि-कोण अफ़सोस [के] क़ाबिल है। अपनी अदूरदर्शिता के कारण ये दया के पात्र हैं। इन पार्टियों के अतिरिक्त [एक] पार्टी रईस, अमीर, चापलूस लोगों की है जो समझते हैं कि स्वराज्य मिलते ही भारत रसातल [को] चला जायगा। न कोई लगान देगा, न बेगार चलेगी, न रिश्वतों से काम निकलेंगे, न परी[क्षा] पास किये बिना लड़कों को नौकरी मिलेगी। इसलिए स्वराज्य के मार्ग में बाधायें डाल[ना] उनके लिए हितकर होगा। ऐसी धारणाओं ने ही हमारे राष्ट्रीय जीवन को दु[ःखमय] बना दिया है। स्वराज्य किसी शक्ल का हो, ज़रूरत इस बात की है कि असली लक्ष्य [की] उपेक्षा न कर सब दलों को उन्नति के मार्ग पर चलना चाहिए। सामाजिक संगठन [के] लिए जातीय ऐक्य की परमावश्यकता है। अन्य देशों के इतिहास से हमें यही शि[क्षा] मिलती है।

स्वराज्य की माँग पूरी भी हो जाय तो उसका व्यावहारिक कार्य में सफल होना सरल का[म] नहीं है। इसके लिए जनता की शिक्षा, नागरिक के कर्त्तव्यों का ज्ञान, ईमानदारी, देश[हित] के लिए स्वार्थत्याग ज़रूरी हैं। जनता की शिक्षा की उत्तरोत्तर उन्नति होनी चाहिए। युवकों का कर्त्तव्य है कि वे दीन धनहीन कृषकों के झोपड़ों में भी रूखी-सूखी रो[टी] खाकर फूस की चटाई पर बैठकर स्वतंत्रता का मंत्र उनके कानों में फूँक दें। लोकम[त] को शिक्षित और परिष्कृत करें, जिससे शासन का यथेष्ट रूप बने और अत्याचार [का] दमन हो। प्रेस और प्लेटफ़ार्म दोनों को सँभालने की ज़रूरत है। ये ही जनता की राष्ट्[रीय] शिक्षा के साधन हैं। इनकी स्वार्थ-परता, धृष्टता, भीरुता एवं अज्ञानता राष्ट्र के लिए अनिष्टका[री] हैं। इन साधनों का सम्पादन करना और इन्हें यथोचित रूप से सुव्यवस्थित करना प्रत्ये[क] स्वराज्यवादी का परम धर्म है। यदि वह ऐसा नहीं करता तो वह उस अंधे मनुष्य [के] समान है जो गहन वन में वृक्षों की खोज में काँटेदार झाड़ियों में उलझता चल[ा] जाता है।

आधुनिक संसार में जीवित रहने के लिए भारत को स्वराज्य लेना ज़रूरी है। [य]ह उसका जन्मसिद्ध अधिकार है। किसी राष्ट्र अथवा जन-समुदाय के लिए उसके मार्ग में रुकाव[ट] डालना सर्वथा अन्याय-पूर्ण है। स्वराज्य भारतीयों को प्राणों से भी प्रियतर होना चाहिए। स्वराज्य पाने के लिए भारत का उतना ही हक़ है जितना इँग्लेंड का। इस विषय में इँग्लेंड [के] विश्वविख्यात विद्वान् बर्नार्ड के शब्द, जो उन्होंने आयरिश होमरूल के विषय में कहे थे, प[ढ़ने] योग्य हैं। ये शब्द भारत के लिए भी बिलकुल उपयुक्त हैं।

"यदि स्वराज्य अँगरेज़ के भोजन की तरह अस्वास्थ्यकर, उसके मद्य पीने की तरह असंयमित, उसके धूम्रपान की तरह गन्दा, उसके गार्हस्थ्य जीवन की तरह लम्पटता-पूर्ण, उसके निर्वाचनों की तरह दूषित, उसके व्यापार की तरह जीवन-शोषक लोभ से युक्त, उसके बन्दी-गृहों की तरह निर्दयतामय और उसके मार्गों की तरह निष्करुण हो तो भी आयर्लैंड को स्वराज्य का उतना ही उचित अधिकार है जितना इँग्लेंड को।"

—ईश्वरीप्रसाद



# भारत और पञ्चायती राज्य-विधान

[लेखक महोदय ने अपने इस लेख में भारतीय शासन-सुधारों के सम्बन्ध में यह ... है कि भारत के लिए पञ्चायती शासन-प्रणाली प्रचलित करना ही उसकी भौगोलि... सामाजिक और सांस्कृतिक स्थिति के अनुकूल है। आपने अपने विषय का अच्छे ... विवेचन किया है।]

भारत की शासन-व्यवस्था कैसी हो, यह प्रश्न आज भारतीय और अँगरेज़ राजनीति... के सामने समान-रूप से उपस्थित है। इस बात का तो निर्णय समय ही ... दिया है कि भारतीय लोकमत उत्तरदायित्वहीन शासन को अब अधिक ... तक उपेक्षा की दृष्टि से नहीं देख सकता। भारत के सभी दलों के राजनी... आपस में मतभेद होते हुए भी इस बात पर एकमत हैं कि भारत में एक ... शासन-पद्धति प्रवर्तित होनी चाहिए जो लोकमत के रुख़ के अनुसार अपना कायापलट कर ... इस नतीजे पर पहुँचने के लिए भारतवासी इस बात के लिए कटिबद्ध हैं कि या तो वर्त... शासन-पद्धति समूल नष्ट कर दी जाय अथवा नये आदर्शों के अनुरूप उसमें सुधार कर ... जायँ। अभी तो भारतीय लोकमत और स्वतन्त्र देशों के लोकमत में बड़ा अन्तर है। स्व... देशों का लोकमत एक समुद्र के समान होता है, जिसके प्रवाह के अनुकूल ही शासन-पद्धति की ... तैरती है। किन्तु भारत का लोकमत समुद्र की उन लहरों के समान है जो प्रचलित शासन-प... की कठोर चट्टान से टकरा कर जहाँ की तहाँ विलीन हो जाती हैं और जिनकी थपेड़ों का च... पर कुछ भी असर नहीं पड़ता। स्वतंत्र देशों में लोकमत का सम्बन्ध देश की सम्मत प्रजा... होता है और सारी प्रजा उसके निर्माण का कारण होती है। राष्ट्रीय लक्ष्य के विविध पह... के अनुसार स्वतन्त्र देशों के लोकमत में परस्पर विरोधी विभाग भी होते हैं। किन्तु यह ... होते हुए भी वहाँ का लोकमत दायित्वपूर्ण होता है। भारतीय लोकमत प्रायः आलोचनात्म... ही होता है। स्वतन्त्र देशों में सरकार लोकमत की उपेक्षा नहीं कर सकती। उसे लोकमत ... परिवर्तन के अनुसार अपना कायापलट करना पड़ता है। 'सर्व भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस' ...

४५ वर्षों से भारत में इसी प्रकार की सरकार की स्थापना के लिए प्रयत्न कर रही है। इन ४५ वर्षों में कांग्रेस ने देश के कोने कोने में राजनैतिक जाग्रति का प्रकाश फैला दिया है। इस जाग्रति के परिणाम-स्वरूप भारत में जो लोकमत तैयार हुआ है वह तब तक सन्तुष्ट नहीं हो सकता जब तक भारत में उसके अनुकूल शासन-पद्धति नहीं स्थापित हो जाती।

भारतीय शासन-विधान के सम्बन्ध में सबसे बड़ा कार्य्य गत वर्ष नेहरू-कमेटी-द्वारा सम्पादित हुआ है। इस कमेटी ने भारत के लिए एक शासन-विधान तैयार करके देश के सामने रक्खा है। देश का बहुमत इस विधान का समर्थक है। इस विधान में भारत में ब्रिटिश साम्राज्य के औपनिवेशिक शासन-पद्धति की स्थापना की माँग की गई है। नेहरू-कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में यह स्वीकार कर लिया है कि औपनिवेशिक शासन और उत्तरदायी शासन में कोई अन्तर नहीं। भारत किसी भी ऐसे उत्तरदायित्व-पूर्ण शासन से सन्तुष्ट हो जायगा।

संसार में आज-कल अनेक प्रकार की शासन-प्रणालियाँ प्रचलित हैं। किसी देश का शासन भी वहाँ के जलवायु, ऐतिहासिक परिस्थिति और जनता की मनोवृत्ति के अनुकूल ही होता है। भारत एक विशाल देश है। यह एक छोटा-सा महाद्वीप भी कहा जा सकता है। भारतीय जनता सदियों से धार्मिक एकता के सूत्र में बँधी है। समस्त भारतीय एक संस्कृति में बँधे हैं। राजनैतिक एकता का भी अभाव भारत में सदा से नहीं रहा है। भौगोलिक एकता की कमी को रेल, तार आदि २० वीं सदी के वैज्ञानिक आविष्कारों ने दूर कर दिया है। समस्त परिस्थितियों पर विचार करते हुए यह स्वीकार करना ही पड़ता है कि भारत पहले कभी एक राष्ट्र रहा हो या न रहा हो, किन्तु आज वह एक राष्ट्र है। एक समय था जब भारत की राष्ट्र-भाषा संस्कृत थी। उस समय से अब तक भारत को अनेक विषम परिस्थितियों में लाचार होकर पड़ना पड़ा है। परिणाम-स्वरूप देश में अनेक भाषाओं ने जन्म लेकर भारत की भाषा-सम्बन्धी एकता को नष्ट कर दिया है। अब हिन्दी के प्रचार-द्वारा यह ऐक्य भी पुनः स्थापित हो रहा है। भारतीय इतिहास पर ग़ौर करने पर पता चलता है कि भारत में एकाधिपत्य निरंकुश शासन भी प्रचलित रहा है, यद्यपि उस समय सुशासन के निमित्त देश विभिन्न प्रान्तों में बँटा था और प्रत्येक प्रान्त का शासन पृथक् था। अँगरेज़ों ने भारत में शासन-सम्बन्धी इसी नीति का अवलम्बन किया। उन्होंने सारे ब्रिटिश भारत को प्रान्तों में विभक्त किया और एक केन्द्रस्थ सरकार की भी स्थापना की। किन्तु यह सब भारत के सुशासन के लिए ही किया। सिद्धान्त रूप से तो उन्होंने भारत में निरंकुश एकाधिपत्य शासन-प्रणाली का ही अनुसरण किया। एकाधिपत्य की यह शासन-व्यवस्था उत्तरदायी लोकमत के सामने सिर झुकाते हुए क़ायम नहीं रह सकती थी। उसका

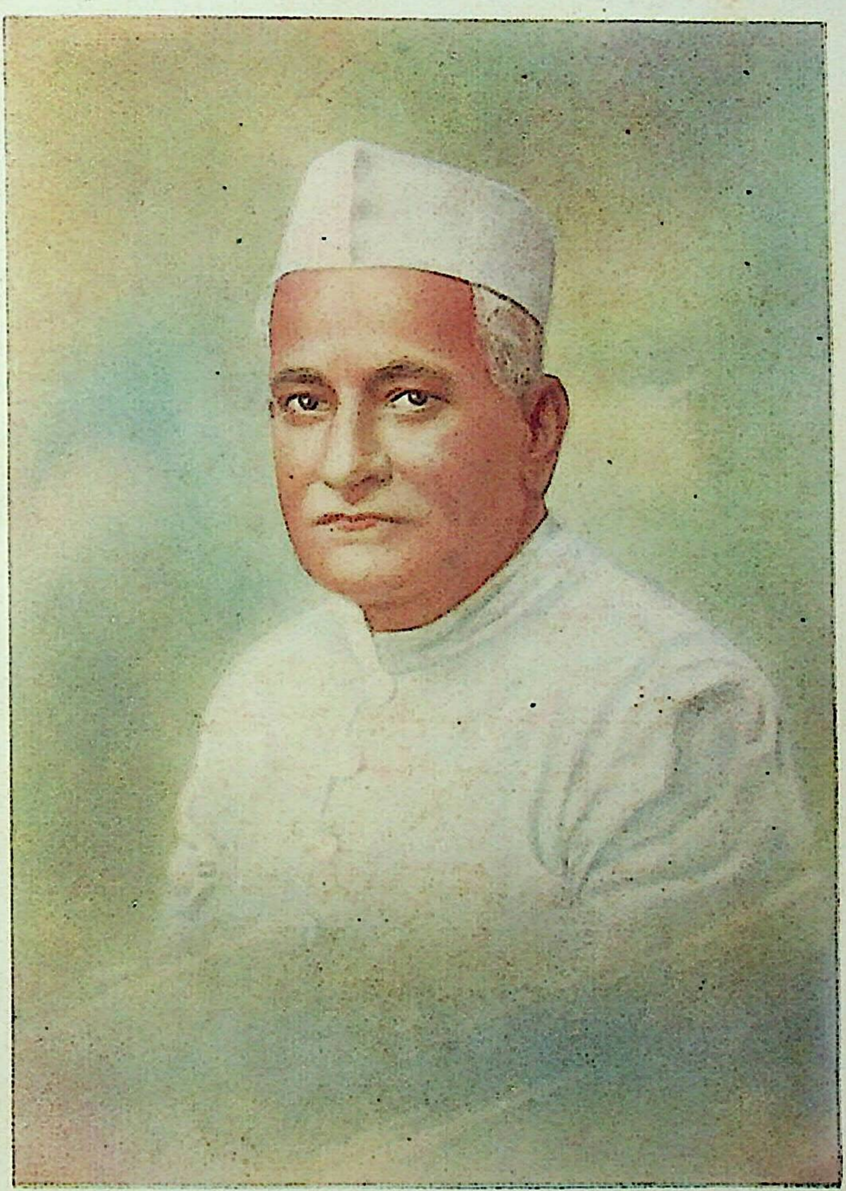
अस्तित्व निरंकुशता के आधार पर ही टिक सकता था। भारतीय विधान के सम्बन्ध में अँगरेज़ों की यही नीति अब तक क़ायम है।

भारतीय लोकमत देश में प्रजातन्त्र की स्थापना चाहता है। औपनिवेशिक स्वराज्य भी एक प्रकार का उत्तरदायी प्रजातन्त्र शासन ही है, किन्तु वह निरंकुश प्रजातन्त्र-शासन नहीं हो सकता। यह तो ब्रिटिश सरकार ने भी स्वीकार कर लिया है कि वह भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य देना चाहती है। यह औपनिवेशिक स्वराज्य किस प्रकार का हो और भारत को कब और किस प्रकार दिया जाय, इसी विषय पर ब्रिटिश राजनीतिज्ञ मनन कर रहे हैं। भारतीय राजनीतिज्ञों का जवाब स्पष्ट है। वे भारत में शीघ्रातिशीघ्र उत्तरदायी शासन की स्थापना चाहते हैं।

देश की विशालता, भारत की जन-संख्या और जनता की वर्तमान जाग्रति के रूप को देखते हुए यह तो एक प्रकार से निश्चित है कि यहाँ एकाधिपत्य प्रजातन्त्र-शासन के लिए गुंजाइश नहीं है। एकाधिपत्य शासन के बीजारोपण के लिए सबसे अनुकूल स्थान छोटे ही देश होते हैं। बड़े देशों को भी छोटी छोटी रियासतों में विभक्त करके उनमें एकाधिपत्य प्रजातन्त्र-शासन क़ायम किया जा सकता है। प्रजातन्त्र-शासन को सफल बनाने के लिए छोटे गाँवों, ज़िलों और नगरों में पारस्परिक व्यवहार के सम्बन्ध में यथासम्भव पूर्ण स्वराज्य होना चाहिए। देश को टुकड़े टुकड़े में विभाजित करने से सुशासन में अधिक सहायता मिलती है, क्योंकि प्रान्तीय अथवा स्थानीय अधिकारी ही अपनी आवश्यकताओं को सर्वापेक्षा अधिक समझते हैं। इसी नीति के अनुसार संसार के अनेक छोटे राष्ट्रों ने भी सुशासन के निमित्त देश को अनेक भागों में बाट देने की बुद्धिमानी की है। गत महायुद्ध के बाद आस्ट्रिया के अनेक टुकड़े हो जाने के अनन्तर वह एक छोटी सी लगभग ८० लाख की आबादी की एक रियासत रह गई। किन्तु सुशासन के उद्देश्य से उसी आस्ट्रिया ने देश को आठ हिस्सों में विभक्त करके देश में पञ्चायती राज्य-प्रणाली की स्थापना की है।

भारत के लिए भी सर्वापेक्षा अधिक श्रेयस्कर विधान, भारतीय प्रजातन्त्र की आवश्यकताओं, सुशासन और राष्ट्रीय प्रगति की दृष्टि से पञ्चायती राज्य-प्रणाली ही हो सकती है। भारत का अतीत इतिहास भी इसी सिद्धान्त का पोषक है।

भारत अतीत से विभिन्न प्रान्तों में विभक्त है और भिन्न-भिन्न प्रान्तों में बहुत दिनों तक भिन्न शासन होने के कारण उनमें बहुत-सी विभिन्नतायें आगई हैं। भारत म एक सबसे बड़ा सवाल भारतीय रियासतों का है। भारत का कोई भी सार्व-देशिक शासन-विधान भारतीय रियासतों की उपेक्षा नहीं कर सकता। प्रश्न यह है कि भारतीय प्रजातन्त्र में रियासतों का स्थान



## त्याग-मूर्त्ति पण्डित मोतीलाल नेहरू

हमारे लक्ष्य में ऐसा भारत होना चाहिए जिसमें सब लोग स्वतन्त्र हों, जिसमें स्त्रियाँ बन्धन-मुक्त हों, जिसमें श्रेणियों या सम्प्रदायों का पक्षपात न हो, जिसमें बिना किसी भेद-भाव के निःशुल्क शिक्षा दी जाती हो, जिसमें पूँजीपति और ज़मींदार मज़दूरों और रियाया को कष्ट न देते हों, जिसमें मज़दूरों का सम्मान हो, जिसमें वर्तमान संतति को त्रस्त करनेवाली दरिद्रता भूतकाल की बात समझी जाय।

पण्डित मोतीलाल नेहरू

स्थान होगा ? ये रियासत बिना भारतीय हित को क्षति पहुँचाये स्वतन्त्र नहीं छोड़ी जा सकतीं। भारत-सरकार और रियासतों के मध्य जो सन्धियाँ और समझौते हुए हैं उनका सम्मान करना भारतीय प्रजातन्त्र का नैतिक कर्त्तव्य होगा। उन कर्त्तव्यों को पालन करते हुए स्वतन्त्र भारत किस प्रकार शासन करेगा, यह भी एक जटिल प्रश्न है।

इन सब प्रश्नों पर विचार करने पर भारत में पञ्चायती राज्य-प्रणाली की स्थापना के अतिरिक्त दूसरा उपाय नहीं दिखलाई पड़ता। संसार में इस समय बड़े देशों में सबसे अधिक सफल शासन-प्रणाली पञ्चायती राज्य-प्रणाली ही है। बड़े देशों के लिए राष्ट्रीय हित की आकांक्षा की दृष्टि से पञ्चायती राज्य-विधान से बढ़कर दूसरा विधान नहीं। यह विधान सामाजिक झगड़ों और आर्थिक संकटों को स्थानान्तरित कर सु-व्यवस्था की स्थापना और सुशासन में सहायक होता है। एकाधिपत्य शासित देशों में राजधानी देश की संस्कृति और विद्वत्ता का अड्डा बन जाती है और सारा देश एक प्रकार से सूना पड़ जाता है। देश के धनी-मानी और प्रभावशाली लोग अपने स्थानों को त्याग कर राजनगरों में निवास करते हैं। इस प्रकार एक स्थान को नितान्त उजाड़ बना कर वे दूसरे स्थान को आवश्यकता से अधिक बसा देते हैं। पञ्चायती राज्य-शासन में लोक-जीवन, संस्कृति और राष्ट्रीय चहल-पहल के अनेक केन्द्र होते हैं और इससे राष्ट्रीय प्रगति एवं प्रजा के विकास में सहायता मिलती है।

इस समय पञ्चायती राज्य-प्रणाली अमरीका के संयुक्त-राज्य जर्मनी, स्विज़रलैंड, कनाडा, आस्ट्रेलिया और दक्षिण-अफ्रीका में बड़ी सफलता से काम कर रही है। इन समस्त देशों में सारा देश अनेक ऐसी रियासतों में बटा है जो एक दूसरे से स्वतन्त्र हैं। वास्तव में वे बहुत दिनों से स्वतन्त्र थीं और आवश्यकता पड़ने पर परस्पर एक दूसरे से युद्ध ठानती थीं और सन्धि भी करती थीं। उनके अलग-अलग क़ानून थे और राज-भक्ति तथा स्वदेश-प्रेम के भिन्न-भिन्न आदर्श थे। प्रत्येक रियासत का विकास भी पृथक् एवं स्वतन्त्ररूप से हुआ था। किन्तु बाहरी शत्रु के आक्रमण का सामना करने में ये छोटी रियासतें असमर्थ हुईं और अपनी रक्षा तथा अपनी पड़ोसी रियासतों की रक्षा के उद्देश से उन्होंने आपस में मिलकर एक प्रचण्ड संघ-शक्ति की रचना की। इसी सिद्धान्त पर संसार में पञ्चायती शासन-प्रणाली की रचना हुई। समस्त रियासतें सामूहिक रूप से काम कर सकें, इस उद्देश से एक सामूहिक शक्ति की ज़रूरत पड़ी। इस सामूहिक शक्ति की रचना समस्त रियासतों के योग से हुई। इसका नाम केन्द्रस्थ-सरकार पड़ा। समस्त स्वतन्त्र रियासतों ने मिलकर इसकी रचना की और सबने इसको अपना सिरताज समझा। इसके क़ानून-क़ायदे बनाये गये और सार्वजनिक हित की रक्षा के उद्देश से उनका पालन करना समस्त रियासतों ने अपना परम-धर्म समझा।

इस प्रकार अनेक स्वतन्त्र रियासतों ने आपस में समझौता करके एक विशाल राष्ट्र की सृष्टि की। अमेरिका, जर्मनी और स्वीज़लैंड इसी आदर्श के राष्ट्र हैं। कनाडा, आस्ट्रेलिया और दक्षिण-अफ़्रीका ब्रिटिश उपनिवेश हैं। वे ब्रिटिश सम्राट् को अपना सम्राट् मानते हैं और सम्राट् की इच्छा के अनुसार उक्त देशों के प्रजा-द्वारा देश का शासन होता है। इन उपनिवेशों की शक्ति बराबर नहीं है। पार्लमेंट के क़ानून के द्वारा उनको जो अधिकार मिले हैं उन्हीं के अनुसार उनका शासन होता है। किन्तु ब्रिटिश सम्राट् इन उपनिवेशों के शासन में कोई हस्तक्षेप बिना किसी विशेष परिस्थिति के नहीं करते। उनकी सरकार केवल इस बात का ध्यान रखती है कि ये उपनिवेश ब्रिटिश साम्राज्य से पृथक् न होने पावें, यद्यपि ब्रिटिश साम्राज्य में शामिल रहने या न रहने की पूरी स्वतन्त्रता इन उपनिवेशों को प्राप्त है। बाहरी मामलों में ब्रिटिश उपनिवेश को एक स्वतन्त्र राष्ट्र के रूप में कार्य्य करने की पूरी स्वतन्त्रता है। इस प्रकार सारा ब्रिटिश साम्राज्य एक प्रकार का विशाल पञ्चायती प्रजातन्त्र है और प्रत्येक ब्रिटिश उपनिवेश बड़ी बड़ी स्वतन्त्र रियासत हैं। भारत को भी एक ऐसी ही स्वतन्त्र रियासत बना देना ब्रिटिश सरकार की नीति है, कम से कम भारतीयों के साथ सम्राट् की सरकार का यह एक वादा है। यह वादा कब पूरा होगा, इसे कोई नहीं कह सकता। किन्तु भारतवासी जब चाहें इस वादे को पूरा करा सकते हैं। केवल उन्हें कमर कस कर तैयार होने की ज़रूरत है।

ब्रिटिश पार्लमेंट-द्वारा समय समय पर भारत को जो सुधार मिले हैं उन पर तथा वर्तमान भारत सरकार पर दृष्टि डालने से पता चलता है कि ब्रिटिश-नीति भारत में भी एक पञ्चायती प्रजातन्त्र क़ायम करने की है और उसका आदर्श उपनिवेशों में स्थापित प्रजातन्त्र है। इस सम्बन्ध में मांटेगू-चेम्सफ़र्ड-सुधार-द्वारा अधिक आशावर्द्धक कार्य्य हुआ है। मांटेगू-चेम्सफ़र्ड की सम्मिलित रिपोर्ट के पैरा १८९ में स्वीकार किया गया है कि "भारत के प्रान्त स्वतन्त्र रियासतें हैं और सबसे पहले इन्हीं में उत्तरदायी शासन की स्थापना के सम्बन्ध में कार्य्यवाही करनी चाहिए। उत्तरदायित्व का कुछ भार तो फ़ौरन दे देना चाहिए और हमारा यह लक्ष्य होना चाहिए कि अनुकूल परिस्थिति होते ही पूर्ण उत्तरदायित्व का भार प्रान्तों को सौंप दिया जाय। इसका मतलब यह कि प्रान्तों को क़ानून-निर्माण, शासन और अर्थ-सम्बन्धी पूरी स्वतन्त्रता उस समय फ़ौरन दे दी जानी चाहिए जब प्रान्त अपने उत्तरदायित्व पर उनका भार वहन करने के समर्थ हो जायँ।" इसी नीति के अनुसार भारत का प्रत्येक प्रान्त एक स्वतन्त्र रियासत मान लिया गया और उनमें एक स्वतन्त्र शासन की स्थापना हुई। प्रान्तीय शासन के दो भाग किये गये। एक भाग पर प्रजा के मत से शासन होने लगा और दूसरे पर गवनमेंट का निरंकुश शासन रहा। किन्तु यह द्विहस्ता शासन सफल न सिद्ध हुआ। प्रान्तीयता के भाव का पूर्ण

विकास केवल बंगाल में ही हो पाया। कहने का तात्पर्य्य यह कि मांटेगू-चेम्सफ़र्ड-स्कीम का जो मन्तव्य था वह शासकों की अदूरदर्शिता के कारण पूरा न हो पाया। उस स्कीम में भी एक बड़ी कमी यह थी कि देशी रियासत भारतीय विधान से दूर रक्खी गईं। भारत में होते हुए देशी रियासतें भारतीय विधान से पृथक् नहीं की जा सकतीं। भारत में प्रजातन्त्र के क़ायम होने पर उनके लिए केवल दो मार्ग हैं। एक तो यह कि वे जैसे अब बनी हैं वैसे ही तब भी बनी रहें और उनका सम्बन्ध जैसा वर्तमान ब्रिटिश सरकार से है वैसा ही उनका सम्बन्ध भविष्य भारतीय प्रजातन्त्र से रहे। अथवा भारतीय रियासतें भी एक स्वतन्त्र चीज़ होकर भारत के स्वतन्त्र प्रान्तों की तरह केन्द्रस्थ-सरकार के शासन को क़बूल करें और भारतीय प्रजातन्त्र का एक भाग बन जायँ। यह दूसरा उपाय देशी रियासतों की रक्षा और उनकी प्रजा के विकास के हित की दृष्टि से अधिक श्रेयस्कर होगा।

भारत में वर्तमान शासन पञ्चायती राज्य-प्रणाली के अनुकूल ही हो रहा है। पूर्ण उत्तर-दायित्व की कमी, पञ्चायती अदालत की स्थापना और भारत की राष्ट्रीय सरकार से देशी रियासतों के स्वस्थ सम्बन्ध का प्रश्न नये सुधारों और पारस्परिक समझौतों-द्वारा हल किया जा सकता है। भारतीय वातावरण में यही शासन-प्रणाली विकसित हो सकती है।

—रामधर दुबे

## प्रण

कर्म हित पैदा हुआ हूँ—जी चुराने को नहीं।
चाटुकारी से किसी का मन रिझाने को नहीं॥
बद्ध-कटि हो कर्म-पथ पर स्वार्थ बलि दें हो अभय।
देश का मस्तक उठाने को—झुकाने को नहीं॥
बात कहने को निडर हो, सत्य ही के पक्ष में।
नीचता के हाँ हुजूरी गीत गाने को नहीं॥
दीन-दुखियों को दुखों में साथ देने के लिए।
ढोंग के पाखण्ड-दल में, मान पाने को नहीं॥
गर्ज कर दासत्व-गढ़ को, नष्ट करने के लिए।
शक्ति अज्ञों के अखाड़े में दिखाने को नहीं॥
लुट रहे अन्याय से हैं शान्ति-पथ पर बन्धुगण।
स्वत्व-धन उनका बचाने को लुटाने को नहीं॥
कर्म-रक्षा के लिए, तन प्राण खोने के लिए।
भीरुता से काँप कर कायर कहाने को नहीं॥
कर रहा हूँ आज जो प्रण देश के उद्धार का।
विश्व सुन ले, है निभाने को, भुलाने को नहीं॥

—देवीप्रसाद गुप्त ( कुसुमाकर )

# षड्दर्शन

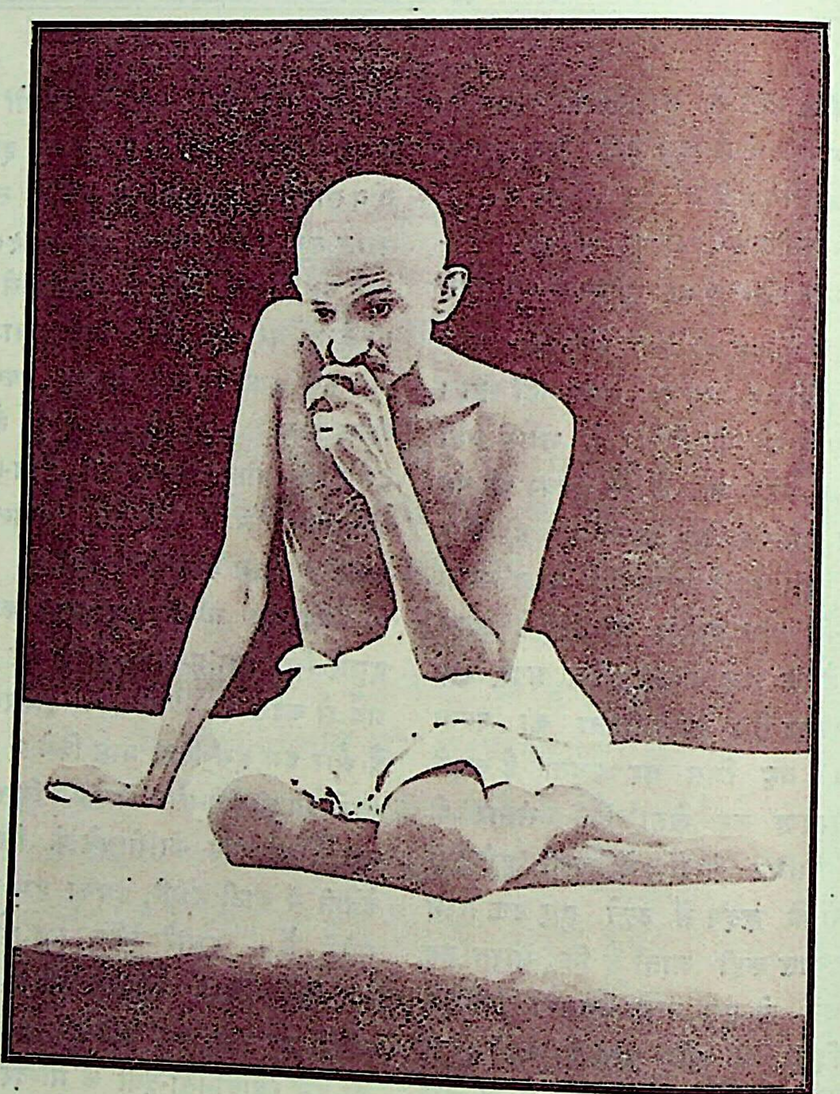
गत बीस वर्षों के स्वराज्य-आन्दोलन ने भारतवर्ष में एक नवीन युग आरम्भ कर दिया है। एक समय था जब भारतीय सब प्रकार का दुःख, अपमान और संकट चुपचाप सह लेते , और कहा करते थे कि ईश्वर की यही इच्छा है, हमारे भाग्य में यही लिखा है। परन्तु अब वह समय नहीं रहा। अब भारतीय अपनी समस्याओं को ईश्वर के भरोसे नहीं छोड़ना चाहते। अब वे कहने लगे हैं कि ईश्वर की यह इच्छा नहीं है कि हम पग पग पर अपमानित हों और सदैव कष्ट सहते रहें। हम अपने भाग्य को बदल सकते हैं। यही कारण है कि आज प्रत्येक भारतीय के हृदय में यह प्रश्न उठ रहा है कि वह अपनी और अपने राष्ट्र की उन्नति कैसे कर सकता है। पराधीनता का पञ्जा बड़ा विकट होता है। वह जिस पर पड़ता है उसके समस्त गुणों का अपहरण कर लेता है। संसार के इतिहास में यह बात अमिट शब्दों में लिखी हुई है। ऐसी दशा में भारतीयों के हृदय में उठते हुए उक्त प्रश्न के उत्तर में यदि यह बात कही जाती है कि भारत जब तक पराधीनता के बन्धन से मुक्त न हो जायगा तब तक वह किसी भी उन्नत दिशा की ओर हाथ-पैर नहीं बढ़ा सकता तो यह अनुचित नहीं है। इसके सिवा इस प्रश्न का और कोई उत्तर ही नहीं हो सकता। परन्तु इसी प्रश्न से भारतीय हृदय को सन्तोष नहीं हो जाता। वह फिर पूछता है कि हम पराधीनता के बन्धन से कैसे मुक्त हो सकते हैं, हमें स्वराज्य कैसे मिल सकता है? भारतवर्ष किसी समय में अत्यन्त उदार और दानी देश था। इसकी वर्तमान दलित अवस्था में भी भारतीयों में उसके वे गुण मौजूद हैं। यहाँ के लोगों ने माँगनेवालों को बड़े बड़े राज्य दे दिये थे। अपने इसी स्वभाववश भारतीय सोचते थे कि माँगने से उन्हें भी स्वराज्य मिल जायगा। परन्तु जब माँगते माँगते लगभग ४० वर्ष बीत गये तब उन्हें यह अनुभव हुआ कि माँगने से विधाता स्वर्ग भले ही दे दें, पर अँगरेज़-जाति हमें स्वराज्य नहीं दे सकती।

तब स्वराज्य कैसे मिले? क्या अँगरेज़ों से युद्ध किया जाय? युद्ध में हम उन्हें कैसे जीत सकते हैं? हमारे पास गोला-बारूद नहीं, ढाल-तलवार नहीं। सरकार की निगाह में हम ये चीज़ें स्वतन्त्र रूप से नहीं रख सकते? तब क्या किया जाय?

महात्मा गांधी ने सत्याग्रह का अमोघ अस्त्र देकर हमारे लिए इस प्रश्न को सरल कर दिया है। आज हम गर्व से कहते हैं—"स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है और हम इसे बिना प्राप्त किये न रहेंगे।" परन्तु इसके पहले स्वाधीनता-प्रेमी भारतीय कितनी उलझन में रहे होंगे, स्वराज्य के प्रश्न को सोचने के लिए उन्होंने कितनी रातें बेचैनी में काटी होंगी, इसका हम सहज ही अनुमान कर सकते हैं। हमारे लिए यह सौभाग्य की बात है कि हमें कोई उपाय नहीं सोचना है। महात्माजी के बताये उपायों पर चल कर हम ऐसा मार्ग तैयार कर सकते हैं जो हमें स्वाधीनता-देवी के मन्दिर तक पहुँचा सकता है। महात्मा गांधी के साथ ही साथ हमारे अन्य नेताओं ने भी स्वयं सब प्रकार के कष्ट उठाकर और अपने अनुभवों की कसौटी से कसकर हमारे सामने ऐसे आदर्श रक्खे हैं जो हमारे स्वराज्य-प्राप्ति के कार्य को सरल कर सकते हैं।

इन आदर्शों को हम छः विभागों में बाँट सकते हैं। ये छः विभाग हमारे स्वराज्य-आन्दोलन के छः दर्शन कहे

जा सकते हैं। अपने प्राचीन दर्शन-शास्त्रों को हम निर्जीव काग़ज़ की मूक पुस्तकों में पढ़ते हैं। परन्तु यह भी हमारे लिए एक सौभाग्य की ही बात है कि हमारे स्वराज्य-आन्दोलन के ये छहों स्वरूप अपनी जीवितावस्था में हमारे सामने मौजूद हैं। हम आमने-सामने उनका उपदेश सुन सकते हैं, अपनी उलझनें उनके सामने रख सकते हैं, उनके साथ स्वराज्य-संग्राम में आगे बढ़ सकते हैं।



[ महात्मा गान्धी ]

ऐसा कोई भारतीय नहीं जो अपने इन छहों दर्शनों को न जानता हो? महात्मा गांधी हमारे हृदय-सम्राट् हैं, त्यागमूर्ति पंडित मोतीलाल नेहरू हमारे बिना ताज के बादशाह हैं, श्रीमती एनी-बेसेंट हमारे स्वराज्य-शिशु के पालने की सहचरी हैं, डाक्टर अनसारी हमारे राष्ट्रीय शरीर के ही नहीं, हमारे हाड़-मांस के शरीर के भी डाक्टर हैं। पण्डित मदनमोहन मालवीय हमारे प्राचीन और नवीन युगों को मिला कर एक कर देनेवाले हैं। श्रीमती सरोजनी नायडू हमारे स्वराज्य-वन की कोकिला हैं। हमें इन छहों महात्माओं के निर्दिष्ट किये आदर्शों पर चलने की आवश्यकता है। इन छहों व्यक्ति... जीवन हमारे छहों दर्शन-शास्त्रों की भांति छः ... हैं, जिनको पढ़ लेने के बाद हम स्वाधीनता देवी ... में बिना बाधा के प्रवेश कर सकते हैं। ... कांग्रेस के अवसर पर हमारे ये छहों ऋषि रावी-... पर एक ... कर हमारे राष्ट्र के ... निर्णय करें ... सामने ... कार्य्यक्रम ... करेंगे ... ग्रहण कर ... आनन्द ... कर सकें, सर्वथा ... और सम्म... तथा जो ... सौ वर्ष की ... नता के ... निकाल कर ... भारत का ... नागरिक बन... इन छहों ने ... हमारे साम... आदर्श ... किये हैं, ... पंक्तियों में ... बात पर ... करेंगे।

महात्मा... ने हमें असहयोग का मार्ग दिखाया है। ...कांश लोगों का कहना है कि अँगरेज़ों की ...गनों का मुकाबला करने की हममें शक्ति ... इसलिए हमारी असमर्थता के कारण महात्माजी

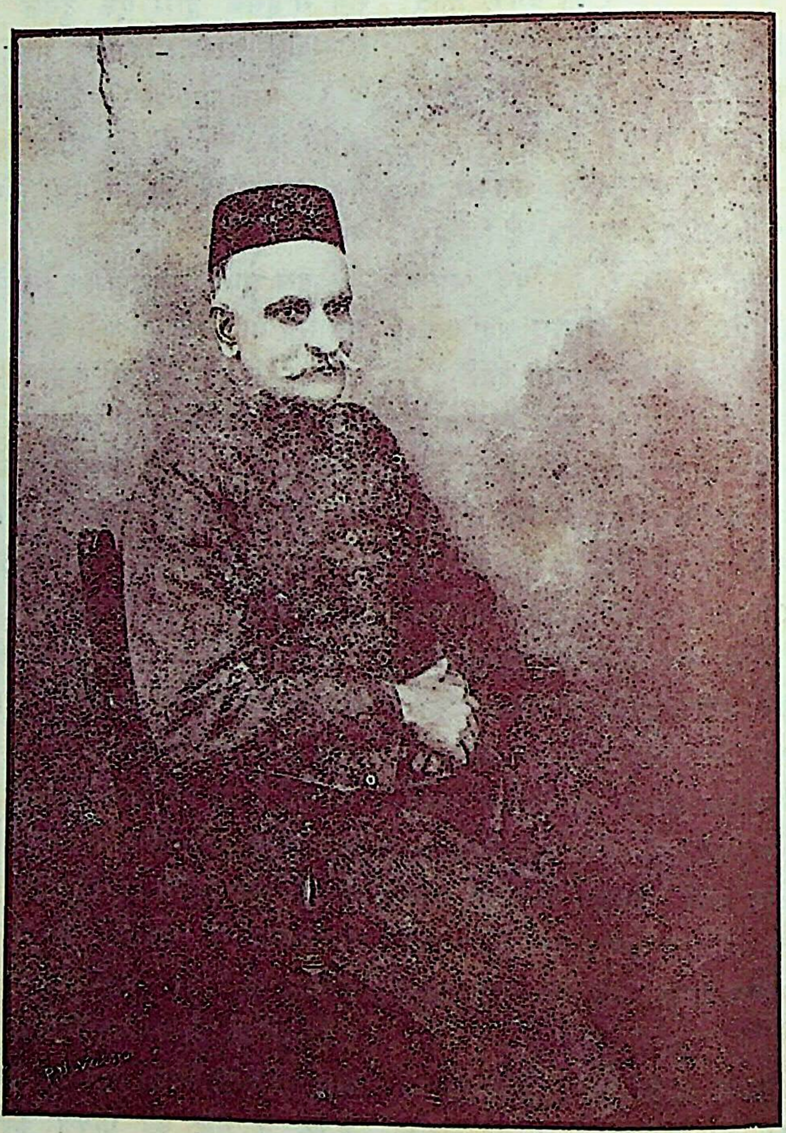
सुरक्षित मार्ग हमें बता दिया है। यदि हमारे हाथों में भी मेशीनगनें होतीं तो महात्माजी हमें कोई और ही मार्ग दिखाते। परन्तु यह धारणा ग़लत है। महात्माजी जैसा अपने हृदय में अनुभव करते हैं, वैसा ही कहते हैं। दिल में कुछ रखना और कहना कुछ और ही उनकी नीति नहीं है। इसे वे पाप समझते हैं। आज भारत महा-शक्तिशाली देश होता, तो भी वे अहिंसा का ही उपदेश करते जैसा कि हज़ारों वर्ष पूर्व गौतमबुद्ध ने किया था। महात्माजी का कहना है—"यदि भारतवर्ष तलवार के सिद्धान्त को ग्रहण करता है तो यह सम्भव है कि उसे क्षणिक विजय प्राप्त हो जाय। परन्तु तब वह भारत मेरे हृदय के गर्व की वस्तु न रहेगा।" परन्तु यह ध्यान में रखना चाहिए कि अहिंसा का अर्थ कायरता नहीं है। कायरता से तो हिंसा ही अच्छी है। इस सम्बन्ध में महात्माजी कहते हैं—"यदि हिंसा और कायरता में एक बात लेनी हो तो मैं हिंसा के लिए सलाह दूँगा। मेरे बड़े बेटे ने एक बार मुझसे पूछा था कि यदि १९०८ में जब मैं बुरी तरह घायल किया गया था, वह घटनास्थल पर मौजूद होता तो क्या करता? वह मुझे मरता छोड़ कर भाग जाता या अपनी शारीरिक शक्ति का प्रयोग करता और इस प्रकार मुझे बचाने का प्रयत्न करता? मैंने उसे यही उत्तर दिया था कि उसका कर्तव्य था कि वह मुझे बचाता, चाहे इस कार्य्य के लिए उसे हिंसा का ही सहारा लेना पड़ता।......मैं यह नहीं चाहता कि भारतवर्ष कायरता के साथ अपमान सहे। ऐसी स्थिति में तो मैं यही सलाह दूँगा कि वह शस्त्र धारण करे और अपने मान की रक्षा करे।"

इससे यह स्पष्ट होगया होगा कि महात्माजी के अहिंसात्मक असहयोग का क्या अर्थ है। इसका प्रयोग वे इसलिए नहीं चाहते कि भारतवर्ष शस्त्र-हीन है, बल्कि इसलिए कि वे इसके द्वारा संसार के सामने प्रेम-अहिंसा का आदर्श उपस्थित करना चाहते हैं। इसे ही वे मानव-धर्म समझते हैं। वे कहते हैं—"मैं कल्पना-जगत् का प्राणी नहीं हूँ। मेरा दावा है कि मैं व्यावहारिक आदर्श-वाद का प्रचारक हूँ। अहिंसा केवल साधु-सन्तों की ही वस्तु नहीं है। इससे सर्वसाधारण का भी वैसा ही कल्याण हो सकता है। अहिंसा मनुष्य का धर्म है, ठीक वैसे ही जैसे हिंसा पशु का धर्म है।" महात्माजी का अहिंसात्मक असहयोग में अगाध विश्वास है। उनकी राय में इसके द्वारा एक दुबले शरीर का मनुष्य भी अन्यायी साम्राज्य की सम्पूर्ण शक्ति का उपहास कर सकता है। असहयोग-आन्दोलन आरम्भ होने से पहले वे कांग्रेस के नेताओं से बराबर यही कहते थे—"एक बार शान्तिमय सत्याग्रह की परीक्षा कीजिए, बस एक बार।"

इस आन्दोलन ने हमारे देश में क्या बात पैदा कर दी, इसे सब जानते हैं। भविष्य में यह हमारी शक्ति कहाँ तक बढ़ा सकता है, यह कल्पना भी सब कर सकते हैं। भारत के लिए यह कोई नई वस्तु नहीं है, परन्तु सङ्गठित आन्दोलन के रूप में संसार के सामने इसे उपस्थित करने का श्रेय महात्मा गांधी को ही है। इसी कारण महात्मा गांधी आज संसार के सर्वश्रेष्ठ पुरुष समझे जा रहे हैं।

सत्याग्रह और अहिंसात्मक असहयोग के अतिरिक्त महात्माजी ने हिन्दू-मुसलिम-एकता, अछूतोद्धार और खादी-प्रचार पर भी ज़ोर दिया है और बराबर देते रहते हैं। उनकी सम्मति में अब ऐसी कोई वस्तु नहीं रह गई है जो इन दोनों धर्मों को पृथक् रख सके, क्योंकि बल-पूर्वक धर्म-परिवर्तन करानेवालों की दाल इस युग में नहीं गल सकती। फिर एक दूसरे से क्यों डरना। अस्पृश्यता के सम्बन्ध में वे कहते हैं—"यह कोई धर्मोक्ति नहीं है। यह शैतान की कृति है। शैतान ने सदैव शास्त्रों के प्रमाण दिये हैं। परन्तु शास्त्र भी तर्क और सत्य की उपेक्षा नहीं कर सकते। उनका उद्देश यह है कि वे तर्क को पवित्र करें और सत्य का प्रकाश फैलावें।" खादी के सम्बन्ध में वे कहते हैं—"चर्खा हमारी राष्ट्रीय जाग्रति की शक्ति है। यदि हम वास्तविक स्वराज्य की इच्छा करते हैं तो हमें आर्थिक स्वाधीनता प्राप्त कर लेनी चाहिए। विदेशी वस्त्र का बहिष्कार हमारे आन्दोलन का केवल अकर्मक स्वरूप है। इसे सकर्मक बनाने के लिए हमें समुचित वस्त्र स्वयं निर्माण

करने पड़ेंगे और यह केवल चर्खा चलाने से सम्भव हो सकता है।" इन समस्त बातों को महात्माजी ने अपनी दिनचर्य्या बना लिया है। सोते-जागते, उठते-बैठते वे इन बातों को करते रहते हैं। उनके इन कार्य्यों की मूकवाणी में जो गर्जन है वह उस देश के इतिहास में पहले ही पहल सुना गया है।



[ पण्डित मोतीलाल नेहरू ]

पण्डित मोतीलाल नेहरू ने देश के सामने एक वास्तविक सैनिक और सेनापति का आदर्श उपस्थित किया है। उन्होंने अपने कार्य्यों से हमें यह बतला दिया है कि हम जिस कार्य्य में लगें उसमें जी-जान से लगें, तभी सफलता मिल सकती है। कांग्रेस के प्रोग्राम पर उन्होंने जिस तत्परता से कार्य्य किया है उसका उदाहरण नहीं मिल सकता। कांग्रेस ने जब असहयोग का झण्डा ऊँचा किया तब उन्होंने अपनी पचीस हज़ार मासिक आय की वकालत की ज़रा भी परवा न की और वकालत छोड़ कर उसके झण्डे के नीचे जा डटे। राष्ट्र के सच्चे सिपाही की यही पहचान है। उनका समस्त जीवन सुख में व्यतीत हुआ था। परन्तु जब कांग्रेस ने कष्ट सहन करने का प्रस्ताव पास किया तब उन्होंने समस्त सुखों पर भी लात मार दी और जेल ज[ाने के लिए] स्वयंसेवकों की भरती करने लगे। अपने इसी क[ाम के] बीच में वे ६ दिसम्बर १९२१ को गिरफ़्तार हुए। जाते समय केवल इतनी ही [...] थी कि रा[...] काम शिथिल [न होने] पावे। उस [...] उन्होंने जेल [...] सन्देश भेजा [...] "आप लोगों [...] होने के पह[...] केवल एक [...] कहनी है। [...] तक अपना [...] पूरा न हो [...] आप लोग [...] त्मक आन्दो[लन से] विरत न [...] हज़ारों की [...] स्वयंसेवक [...] स्वतन्त्रता-दे[वी के] मन्दिर—जेल [...] की ओर [...] यात्रियों की [...] प्रतिदिन ब[ढ़ती] और इसमें [...] प्रकार कोई [...] वट न पहु[ँचे] [...] भारत के [...] ही हमारी स्वतन्त्रता-देवी के मन्दिर हैं।" [...] अनुमान किया जा सकता है कि राष्ट्र [...] का पालन करने में वे कितने सावधान [...] यही गुण वे प्रत्येक राष्ट्रीय कार्य्यकर्ता [में ...]



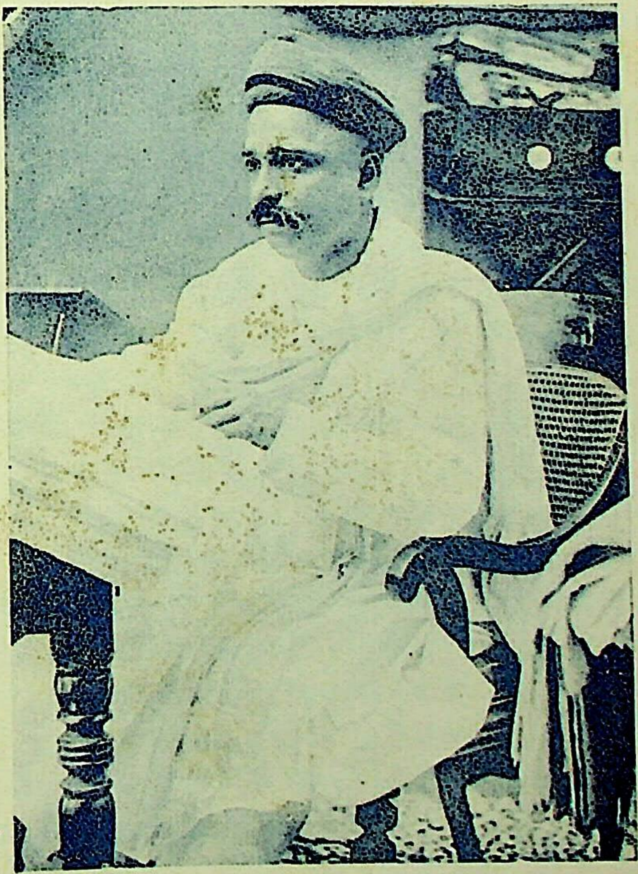
स्वर्गीय गोपाल कृष्ण गोखले

"कांग्रेस का लक्ष्य यह है कि भारतवर्ष का शासन भारतवासियों के हित के लिए हो और यथासमय ब्रिटिश-साम्राज्य के अन्तर्गत स्वशासित उपनिवेशों की भाँति इस देश में भी किसी न किसी प्रकार के औपनिवेशिक शासन की स्थापना हो।"

गोखले

"स्वराज्य प्राप्त करना हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। इतना ही नहीं मैं यहाँ तक कहता हूँ कि वह हमारा धर्म है। जिस प्रकार कोई मनुष्य अग्नि से ताप दूर नहीं कर सकता, वैसे ही कोई हमसे स्वराज्य अलग नहीं कर सकता।"

तिलक



स्वर्गीय लोकमान्य बाल गङ्गाधर तिलक

चाहते हैं। उनकी सम्मति में हमारा राष्ट्रीय आन्दोलन एक महायुद्ध से किसी बात में कम नहीं है और हमें तब तक सफलता नहीं मिल सकती जब तक हम कड़ाई से राष्ट्र की आज्ञाओं का पालन न करेंगे। यही बात है कि बहुत से आराम-तलब राष्ट्रीय कार्यकर्ता उनकी बातों से घबरा उठते हैं और उन्हें कठोर शासक कहने लगते हैं। परन्तु क्या बिना कठोर शासन के युद्ध के लिए अग्रसर होनेवाले का कभी समुचित संगठन हो सकता है ?

कौंसिलों के भीतर स्वराज्य-पार्टी का सङ्गठन करने का श्रेय स्वर्गीय देशबन्धु दास के साथ पण्डित मोतीलाल नेहरू को भी है। इस समय वे ही इस पार्टी के नेता हैं। इसका उन्होंने ऐसा सुन्दर सङ्गठन किया है कि उनका इशारा पाने से समस्त स्वराजिस्ट सदस्य कौंसिलों से बाहर निकल आ सकते हैं। अपने इसी विश्वास के बल पर उन्होंने गत जून मास में वायसराय और कतिपय गवर्नरों के व्यवस्थापक सभाओं का काल बढ़ाने की घोषणा करने पर स्वराजिस्ट सदस्यों के नाम एक विज्ञप्ति निकाली थी, जिसका यह आशय था कि वे व्यवस्थापिका सभाओं से बाहर निकल आवें और बाहर रहकर जनता के बीच में काम करें। इस विज्ञप्ति में एक स्थान पर उन्होंने कहा था—"हममें से जो कांग्रेस की ओर से बड़ी और छोटी व्यवस्थापक सभाओं के सदस्य हैं उन्हें अब यह सिद्ध करके दिखलाना है कि वे जैसे कौंसिलों के भीतर काम करते हैं वैसे ही उनके बाहर भी कर सकते हैं।"

राजनैतिक सङ्गठन की शक्ति में उनका बड़ा विश्वास है। कलकत्ते की कांग्रेस में सभापति की हैसियत से भाषण देते हुए एक स्थान पर उन्होंने कहा था—"सच बात तो यह है कि बिना अपनी शक्ति का सबूत दिये हम इँग्लैंड से कुछ नहीं पा सकते। उस शक्ति के प्राप्त करने का मार्ग केवल यही है कि हम अपना और अपने साधनों का सङ्गठन करें। यह सङ्गठन उनके लिए भी उतना ही आवश्यक है जो औपनिवेशिक स्वराज्य के लिए प्रयत्न कर रहे हैं जितना उनके लिए जो पूर्ण स्वाधीनता चाहते हैं। ऐसी स्थिति में हमारे सामने प्रत्यक्ष मार्ग यह है कि हम मिलकर कार्य्य करें और जिस सीमा तक हममें सबसे कमज़ोर जाने को तैयार है उसे वहाँ तक ले जायँ। यदि उस सीमा पर पहुँचने तक उसका श्रम न दूर हो जाय तो हमारा कर्तव्य है कि उसे हम वहीं छोड़ दें और आगे बढ़ें।"

श्रीमती एनीबेसेंट उसी जाति की एक रमणी हैं जो हमें परतन्त्रता के पाश में बाँधे हुए है। परन्तु भारत के प्रति अँगरेज़-जाति का यह व्यवहार उन्हें सह्य नहीं है। उन्नत राष्ट्र के नागरिकों का वे यह धर्म समझती हैं कि दलित राष्ट्रों के नागरिकों की उन्नति में वे भी भाग लें। उनके इस सिद्धान्त से आज हम भले ही कोई शिक्षा न ग्रहण कर सकें, तो भी जब भारत स्वाधीन राष्ट्र हो जायगा और उस समय भी, संसार में कहीं कोई दलित राष्ट्र रहेगा तब भारतवासियों को श्रीमती बेसेंट का यह आदर्श दलित राष्ट्रों की सहायता करने के लिए उत्साहित करेगा। तब हम इनकी सेवाओं की विशेष क़द्र कर सकेंगे और इनकी इन बातों का रहस्य समझ सकेंगे कि—"स्वराज्य का प्रयोजन यह कभी नहीं है कि हम अँगरेज़ों को अपने देश से बाहर निकाल देना चाहते हैं। हम आनन्द से उनके साथ मिलकर काम करेंगे। परन्तु अपने स्वतन्त्र देश में हम किसी प्रकार के भी अनियंत्रित शासन को, चाहे वह अँगरेज़ी हो या हिन्दुस्तानी, कभी नहीं रहने देना चाहते।"

श्रीमती बेसेंट को धार्मिक झगड़े पसन्द नहीं हैं। इनका कहना है—"संसार में जितने धर्म समय समय पर आविर्भूत हुए हैं उन सबने संसार का कुछ न कुछ कल्याण अवश्य किया है। किसी भी धर्म के सिद्धान्त नितान्त असत्य नहीं कहे जा सकते। हमें सब धर्मों का आदर करना चाहिए।" यदि श्रीमती बेसेंट की इन पंक्तियों से हम कुछ उपदेश ग्रहण कर सकें तो हमारे देश में जो धार्मिक झगड़े दिखाई पड़ रहे हैं वे सदा के लिए विदा हो जायँ। महात्माजी का असहयोग-आन्दोलन इन्हें पसन्द नहीं आया था। इससे वे कांग्रेस से उदासीन होगई थीं। परन्तु कांग्रेस का प्रेम उनके हृदय से कभी नहीं गया और

जब साइमन कमीशन के आगमन के समय उन्होंने देखा कि उसका बहिष्कार करने में कांग्रेस की सहायता करने की आवश्यकता है तब वे उसके झण्डे के नीचे फिर आगईं। इस अस्सी वर्ष से भी ऊपर की अवस्था में वे युवावस्था का-सा उत्साह लेकर कार्य्य करने लगीं। कमीशन के बहिष्कार के प्रस्ताव का समर्थन करते हुए उन्होंने मदरास की कांग्रेस में कहा था—"हमें इस कमीशन से कुछ मतलब नहीं है। हम इसे नाख़ून से भी न छुयेंगे। हमारा सम्मान हमारी वस्तु है। उसकी रक्षा करना हम अपना कर्तव्य समझते हैं......यह बहिष्कार लार्ड बर्कन-हेड को समुचित उत्तर देगा। यह भारतवर्ष का जवाब उस मनुष्य को होगा जिसने उसका यह कहकर अपमान किया है कि भारत कमीशन का बहिष्कार नहीं कर सकता और करेगा तो हम देख लेंगे। भारतवर्ष के प्रत्येक शहर से उन्हें यही उत्तर दीजिए और कहिए कि वे देखें।"

इसके बाद ही से ऐनीबेसेंट ने सारे देश में दौरा करना शुरू कर दिया। नेहरू-रिपोर्ट की सफल और कमीशन को बैरँग वापस करने के लिए उन्होंने घोर परिश्रम किया उसे देखकर बड़े बड़े युवकों के छूट जाते हैं। कहते हैं कि वस्था आराम के लिए होती परन्तु श्रीमती ने अपने अथक से यह सिद्ध दिखला दिया वृद्धावस्था में मनुष्य खूब कर सकता है। सन्देह नहीं कि जीवन के अनुभ संचित करके वृद्धावस्था में बैठ रहा तो उसके सारे व्यर्थ गये।



[ डाक्टर एनीबेसेंट ]

हम ऊपर आये हैं कि अनसारी हमारे स्थ्य के ही हमारे राष्ट्र के डाक्टर हैं। यह इन्हीं बातों के करने का प्रयत्न इस समय भा में ऐसा कोई नहीं जिसकी औपनिवेशिक स्वराज्य से कम हो। भारतवर्ष में दलों की ऐसी एकता इससे पहले कभी नहीं गई। इसका श्रेय डाक्टर अनसारी को ही है।

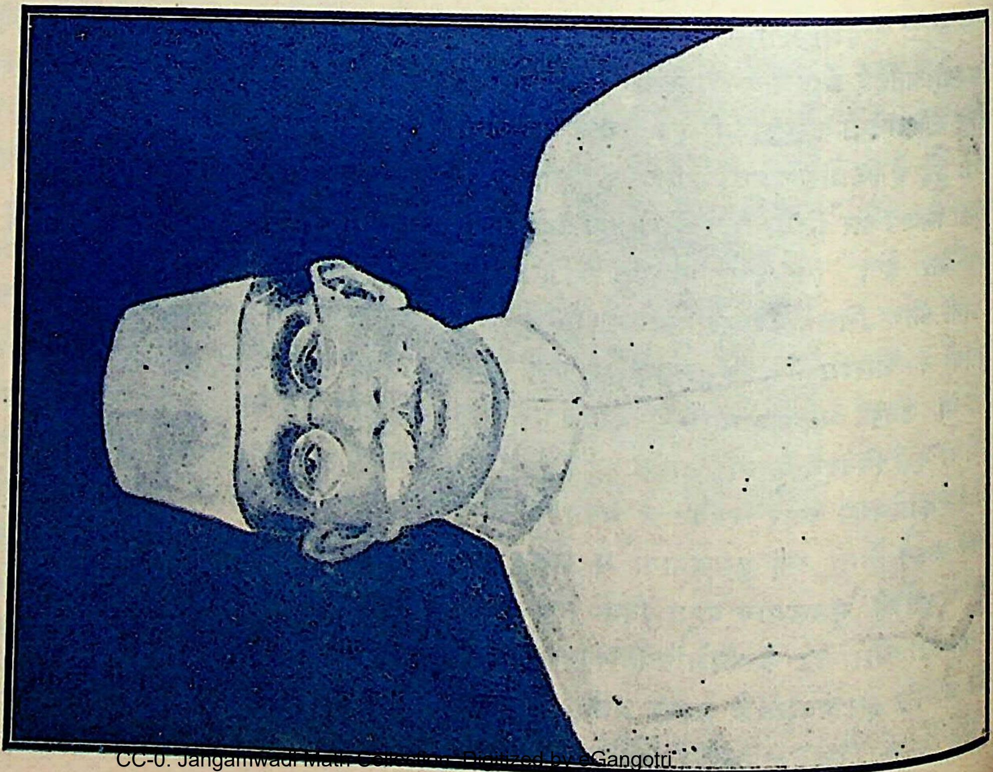
मोतीलाल नेहरू ने अपने कलकत्ते के भाषण में कहा था—"सर्वदल-सम्मेलन का श्रेय मदरास की कांग्रेस को है और उससे भी अधिक डाक्टर अनसारी को है जो उस कांग्रेस के सभापति थे और जिन्होंने इस सर्वदल-सम्मेलन को सफल बनाने में कुछ बाक़ी नहीं रक्खा।" निःसन्देह डाक्टर अनसारी ऐसी ही लगन के व्यक्ति हैं। वे सर्व-सम्मति से काम करना चाहते हैं। किसी को वे पीछे नहीं छोड़ना चाहते। मदरास की कांग्रेस में सभापति की हैसियत से भाषण देते हुए उन्होंने कहा था—

"कुछ ऐसी बातें हैं जिन्हें हिन्दू-मुसलमान दोनों को याद रखना चाहिए। उन्हें यह न भूलना चाहिए कि वे भारतीय हैं और भारत में ही उनका जीवन व्यतीत होगा। यहीं वे मरेंगे भी। विधाता ने दोनों का भाग्य एक सूत्र में बाँध दिया है। यदि दोनों एक दूसरे की उपेक्षा करके अपना राज्य स्थापित करना चाहते हैं तो यह सिवा मूर्खता के और कुछ नहीं कहा जा सकता। जिस स्वराज्य के लिए हम प्रयत्न कर रहे हैं वह न हिन्दू-राज्य होगा, न मुसलमान-राज्य। वह सम्मिलित राज्य होगा और सबकी रक्षा करेगा।…… ………………हमें कांग्रेस को लोकप्रिय बनाने का प्रयत्न करना चाहिए और सर्व सम्प्रदायों से कांग्रेस में शामिल होने की प्रार्थना करना चाहिए। मुझे यह जान कर प्रसन्नता हुई है कि मेरे अब्राह्मण मित्रों ने कांग्रेस में भाग लेने का निश्चय कर लिया है और वे एक बड़ी संख्या में यहाँ उपस्थित हैं। यह दुःख की बात है कि कांग्रेस में मुसलमानों और सिखों की संख्या कम होगई है। जिन पारसियों ने आरम्भ में बड़े उत्साह से कांग्रेस में भाग लिया था उनकी अवस्था और भी शोचनीय है। मैं ईसाइयों से एक निवेदन करना चाहता हूँ। यदि वे सोचते हों कि कांग्रेस से बाहर रहकर वे अपने सम्प्रदाय का हित कर सकते हैं तो उन्हें मुसलमानों से शिक्षा लेनी चाहिए। भारत के मुसलमान बहुत दिनों तक कांग्रेस से बाहर रह कर और राष्ट्र के विरोधियों का साथ देकर यह सोचते थे कि इस प्रकार ये अपनी जाति की भलाई कर सकेंगे। परन्तु वर्षों के कटु अनुभव के पश्चात् अब वे इस निर्णय पर पहुँचे हैं कि बिना कांग्रेस में शामिल हुए और अन्य जातियों के भाग्य से भाग्य का सूत्र जोड़े उनकी उन्नति नहीं हो सकती।……कांग्रेस का दरवाज़ा सब जातियों और सब सम्प्रदायों के लिए खोल दिया जाना चाहिए। विचारों में मतभेद होना अनिवार्य्य है, परन्तु इसके सुलझाने का एक-मात्र स्थान इंडियन नेशनल कांग्रेस है और इसे ही होना चाहिए।"

इससे आप अनुमान कर सकते हैं कि डाक्टर अनसारी सर्वदलों के सम्मिलन के कितने पक्षपाती हैं। राष्ट्र के शारीरिक स्वास्थ्य की भी उन्हें बड़ी चिन्ता रहती है। उनका कहना है—"प्राचीन अखाड़ों और जिमखानों के अदृश्य हो जाने से आत्म-रक्षा का भाव भी अदृश्य हो गया।" उनकी सम्मति में राष्ट्र की उन्नति के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि लोगों को स्वास्थ्य के सिद्धान्त बताये जायँ, अखाड़े खोले जायँ और सरकार भारतीय जनता को शस्त्र धारण करने से रोक कर उसके पुरुषार्थ का अपहरण न करे। वे हिन्दू-मुसलिम-एकता के जितने हामी हैं, उतने ही सब जातियों के मेल के समर्थक हैं और उतने ही सच्चे तथा सहृदय देशभक्त हैं। इन्हीं गुणों के कारण वे हर एक के विश्वास-पात्र हैं। और मामूली ग़रीब किसान से लेकर बड़े बड़े राजा-महाराजा तक उनके मित्र हैं।

पण्डित मदनमोहन मालवीय प्राचीन ढङ्ग के पण्डित हैं, तो भी वर्तमान नवयुग से एक इञ्च भी पीछे नहीं रहना चाहते। हिन्दूधर्म को इन्होंने जैसा समझा है, वैसा यदि शास्त्रों के पीछे पड़े रहनेवाले समस्त पण्डित समझ सकते तो हिन्दू-जाति का एक-दम काया पलट हो जाता। यह सन्तोष की बात है कि सत्य के सामने सूखे तर्क और शास्त्रों के गलित प्रमाण काम नहीं दे सकते और हिन्दू-पूज्य मालवीयजी के दिखाये गये मार्ग पर चलने लगे हैं। मालवीयजी आदर्श हिन्दू हैं और हिन्दू-मुसलिम-एकता में पूरा विश्वास रखते हैं। इनका कहना है—"हिन्दू-मुसलमान दोनों एक हैं और एक ही ईश्वर के बच्चे हैं। एक ही हिन्दुस्तान हमारा वतन है। मुट्ठीभर अँगरेज़





६,००० मील से आकर हिन्दुस्तान पर राज्य करें, इससे बढ़कर शरम की बात और क्या हो सकती है।...... अँगरेज़ों में यह ताक़त नहीं कि वे एक मिनट भी हिन्दुस्तान पर हुकूमत कर सकें, अगर हम यह भाव धारण कर लें कि ईश्वर हमारा पिता है और हिन्दुस्तान हमारी माता है।"

मालवीयजी ने राष्ट्र की बड़ी ठोस सेवायें की हैं। काशी का हिन्दू-विश्वविद्यालय इसका प्रमाण है। इनमें सबसे बड़ा गुण यह है कि ये बड़ी नम्रता और प्रेम से कार्य्य करना चाहते हैं। इसी कारण ये असहयोग के दिनों में राष्ट्रीय आन्दोलन से दूर रह कर भी किसी के अप्रिय नहीं हुए। कड़ी से कड़ी बात ये मीठे से मीठे शब्दों में कह सकते हैं। यह नेता के लिए सबसे बड़ा गुण है। मालवीयजी के इस गुण को हम भी अपने में पैदा कर लें तो अनेक झगड़ों और झंझटों से बच सकते हैं।

असहयोग-आन्दोलन से उदासीन होते हुए भी मालवीयजी कांग्रेस के साथ सदा रहे हैं और इधर जब से कांग्रेस ने औपनिवेशिक स्वराज्य की माँग उठाई है तब से तो ये उसकी सेवा में तन्मय होगये हैं।

हिन्दू-धर्म से अस्पृश्यता दूर करने के आन्दोलन में मालवीयजी का बड़ा हाथ रहा है। गङ्गा के तट पर चमार-भंगियों को दिन दिन भर बैठ कर पवित्र मन्त्र देकर इन्होंने हिन्दू-धर्म में एक नवीन जान डाल दी है। इनकी राय में प्रत्येक मन्दिर का द्वार अछूतों के लिए खुल जाना चाहिए। इस सम्बन्ध में ये कहते हैं—"शास्त्रों के अनुसार देवता के निकट जाने की योग्यता यह है कि मनुष्य के हृदय में भक्ति हो। पद, वर्ण या विद्वत्ता से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। ईश्वर किसी अपने भक्त को अपने निकट आने से कदापि नहीं रोकेगा और मन्दिरों के अधिकारियों को यह उचित नहीं है कि वे देवता के पास किसी को जाने से न रोकें। किसी धर्म-शास्त्र में यह नहीं लिखा है कि कोई भी व्यक्ति कितनी ही निम्नश्रेणी का वह क्यों न हो, देव-दर्शन से वञ्चित रक्खा जाय। हिन्दू-धर्म की महान् शिक्षा दो वाक्यों में भरी जा सकती है। वे हैं—'किसी के साथ ऐसा व्यवहार न करो जैसा कोई तुम्हारे साथ करे तो तुम्हें बुरा लगे' और 'सबके साथ ऐसा बर्ताव करो जैसा तुम चाहते हो कि सब तुम्हारे साथ करें।' इस शिक्षा के सामने अस्पृश्यता की समस्या कोई चीज़ नहीं रह जाती। जो हिन्दू इतने कट्टर हैं कि अपने इस नेता की बातों को भी नहीं मान सकते उनसे राष्ट्र का कभी कोई हित हो सकता है, इसमें सन्देह है।

श्रीमती सरोजनी नायडू को हमने अपने स्वराज्य-वन का कोकिल कहा है। यह उपमा इनके लिए सर्वथा सत्य है। कृषि की रक्षा के लिए किसान बाड़ा बनाता है। उसका बाड़ा हमारी आँखों के सामने रहता है और हम कहते हैं कि उसने एक काम किया है। परन्तु जो बालक चिल्ला चिल्ला कर चिड़ियों को उड़ाता है उसका भी काम कम आदरणीय नहीं है। केवल इसीलिए कि हम उसका चिल्लाना बाड़े की तरह ठोस रूप में नहीं देखते, हम उसकी कृषि-सेवा की उपेक्षा नहीं कर सकते। सरोजनीदेवी का कार्य्य इसी ढङ्ग का कार्य्य है। उन्होंने भारत के कोने कोने में कांग्रेस का सन्देश उमङ्ग-भरे शब्दों में पहुँचाया है। यह कार्य्य अल्प नहीं है। भारतीय स्त्री-समाज जिन बेड़ियों से जकड़ा हुआ है उन सबको तोड़ कर उन्होंने यह सिद्ध कर दिया है कि स्वाधीन और सुशिक्षिता होने पर स्त्रियाँ राष्ट्र की कैसी सेवा कर सकती हैं। भारतीय स्त्रियों के सामने इस समय सरोजनीदेवी जैसा आदर्श है, यही इस बात की सूचना है कि हमारा भविष्य अत्यन्त उज्ज्वल है।

जब कांग्रेस ने असहयोग का प्रस्ताव पास किया तब उसका प्रचार सरोजनीदेवी ने जिस तत्परता से किया था उसका वर्णन नहीं हो सकता। इन्होंने अपने स्वास्थ्य का कुछ भी ख़याल न करके सारे देश में घूम कर जाग्रति का मन्त्र फूँका था। गया की कांग्रेस में सत्याग्रह-प्रस्ताव का पास कराना इन्हीं का कार्य था। प्रतिदिन प्रातःकाल ये डेलीगेटों के कैम्प में जाकर उन्हें समझाती थीं और जब तक वह प्रस्ताव पास नहीं होगया तब तक इन्होंने चैन नहीं लिया।

भारत ही नहीं, भारत के बाहर भी इन्होंने जाकर भारतीय राष्ट्र के पक्ष में लोकमत तैयार किया है।

मिस मेयो ने 'मदर इंडिया' नामक गन्दी पुस्तक लिखकर अमरीका की जनता के सामने भारतवासियों का जो अपमान-जनक चित्र उपस्थित किया था उसे हटाकर उसके



[ श्रीमती सरोजनी नायडू ]

स्थान पर भारत का वास्तविक चित्र रखवाना सरोजनी देवी का ही कार्य्य था। एक-मात्र इसी उद्देश से प्रेरित होकर वे अमरीका गई थीं और उसके सब शहरों में अपने प्रभावशाली व्याख्यानों-द्वारा मिस मेयो के फैलाये अन्धकार को दूर कर दिया। उनके ललित व्याख्या[नों] से चकित होकर अमरीकावासी कह उठे—"इस महि[ला] रत्न का जिस भूमि से सम्बन्ध है वह मिस मेयो की म[दर] इंडिया की वस्तु नहीं हो सकती।"

अमरीका से सरोजनी देवी महात्मा गांधी [को] चिट्ठियों-द्वारा अपने कार्य्य की सूचना देती रहती [थीं]। एक चिट्ठी में उन्होंने लिखा था—"आपको यह जान[कर] प्रसन्नता होगी कि रेड इंडियन जाति के एक स्वाभि[मानी] नेता ने सेनफ्रांसिसको में मेरा एक व्याख्यान समाप्त [होने] पर मुझसे कहा था—"आपने अपने देश के सम्बन्ध [में] जो जोशीली बातें कही हैं उनके लिए आपको धन्यवाद देता हूँ। एक समय यह देश हमारा [था]। अब हम कम होते जा रहे हैं। परन्तु ये गोरे ह[मारे] प्राण भले ही ले लें, हमें जीत नहीं सकते। क[भी] नहीं।"

अमरीका के इस दौरे में भी सरोजनी देवी के भा[रत]वर्ष और कांग्रेस की निरन्तर चिन्ता बनी रहती थी। [एक] दूसरे पत्र में उन्होंने लिखा था—"मैं भारतवर्ष [और] अपने देशवासियों के लिए व्याकुल हूँ। मैं कांग्रेस [और] सर्वदल-सम्मेलन का हाल जानने के लिए उत्सुक [हूँ]। तारों-द्वारा अमरीका में बिलकुल असम्बद्ध ख़बरें [आती] हैं। दिसम्बर की कान्फ़्रेंस का मुझे बहुत कम समा[चार] मिला है।"

जिस देश में अहिंसा, संगठन, न्याय, प्रेम, [एक]... धर्म और उत्साह के प्रतिनिधि-स्वरूप महात्मा गांधी, ... मोतीलाल नेहरू, श्रीमती एनीबेसेंट, डाक्टर अन्सा[री], श्रीयुत पंडित मदनमोहन मालवीय और श्रीमती सरो[जनी] देवी जैसे महान् आदर्श और नेता हैं वह देश बहुत [दिनों] तक परतन्त्र नहीं रह सकता। आवश्यकता [केवल] इतनी ही है कि हम अपने इन नेताओं के बतलाये [हुए] मार्गों को देखें और उन पर चलने का प्रयत्न करें।

—श्रीनाथ...

# लोक-सेवक-मण्डल

## THE SERVANTS OF THE PEOPLE SOCIETY

[ स्वर्गीय लाला लाजपतराय ने शिक्षित देश-भक्त तैयार करने के लिए अपनी मृत्यु के कुछ समय पूर्व लाहौर में एक संस्था स्थापित की थी। इसकी रचना आपने पूना-स्थित स्वर्गीय माननीय गोखले की सर्वेंट आफ़ इंडिया सोसायटी के अनुकरण पर की थी। इसी संस्था का वर्णन लेखक महोदय ने इस लेख में संक्षेप में किया है। ]

स्थापना—उत्तर-भारत में राजनैतिक आन्दोलन को संगठित करने का श्रेय स्वर्गीय लाला लाजपतरायजी को है। राजनैतिक स्वाधीनता के विचार जनता में फैल रहे थे, परन्तु उन्हें शिक्षा तथा संगठन-द्वारा निमन्त्रित तथा स्थिर बनाने के लिए इस बात की आवश्यकता थी कि कोई ऐसा केन्द्र बनाया जाय जहाँ राजनैतिक स्वाधीनता तथा लोकसेवा के भाव अनुकूल वातावरण में विकसित हो सकें।

१९०७ ईसवी में लालाजी पूना गये थे। वहाँ उन्हें लोकमान्य तिलक और माननीय गोखले से भेंट करने का अवसर प्राप्त हुआ। पूना में गोखले की सर्वेंट आफ़ इंडिया नामक संस्था को देखकर लालाजी के हृदय में भी लाहौर में उसी ढंग की संस्था स्थापित करने का भाव पैदा हुआ। लाहौर वापस आकर लालाजी ने विद्यार्थियों को राजनीति का अनुशीलन करने के लिए छात्रवृत्ति देने का संकल्प किया। इंडियन एसोसिएशन (लाहौर) ने लालाजी को विदेश जाने के लिए जो धन दिया था वह इन छात्रवृत्तियों के लिए नियत किया गया।

१९०९-१९१० तथा १९१४ की देश-निर्वासन-सम्बन्धी घटनाओं के कारण लालाजी को अपने इस

विचार को क्रियात्मक रूप देने का अवसर नहीं मिला। १९१४ में लालाजी अमरीका गये। अवस्थाओं से बाधित होकर लालाजी को वहाँ पाँच साल तक रहना पड़ा। अमरीका के 'न्यूयार्क रैंड-स्कूल आफ़ सोशियालोजी' और 'स्कूल आफ़ सोशियल साइन्स' के निरीक्षण से 'न्यूयार्क रैंडस्कूल आफ़ सोशियालोजो' के ढंग पर राजनीति तथा समाजशास्त्र की शिक्षा देने के लिए स्कूल स्थापित करने का उनका विचार दृढ़ होगया।

**भारत में वापस**—१९१९ के दिसम्बर मास में लालाजी को मातृभूमि में वापस आने के लिए पास-पोर्ट मिला। १९२० की २० फ़र्वरी को लालाजी बम्बई पहुँचे। लालाजी ने 'न्यूयार्क रैंड-स्कूल आफ़ सोशियालोजी' के ढंग पर राजनीति की शिक्षा देने के लिए स्कूल स्थापित करने की स्कीम को फिर से पूर्ण करने की कोशिश शुरू की। अभी यह कोशिश जारी थी कि १९२० के अगस्त में लोक-मान्य तिलक का देहान्त होगया।

लोकमान्य तिलक की स्मृति को चिरस्थायी तथा जाग्रत बनाये रखने के लिए कई स्मारक बनाये गये। लोकमान्य तिलक पहले सार्वजनिक नेता थे, जिनका जनता ने इस प्रकार सब प्रकार का मत-भेद छोड़कर सम्मान किया था। लोकमान्य तिलक के स्वर्गवास ने लालाजी के राजनैतिक विद्यालय स्थापित करने के विचार को और भी पक्का कर दिया। और उनके नाम से लाहौर में 'तिलक-स्कूल आफ़ पालि-टिक्स' नाम की संस्था स्थापित की गई। असहयोग-आन्दोलन की अन्य हलचलों में लग्न होने से 'तिलक-स्कूल आफ़ पालिटिक्स' का काम स्थगित करना पड़ा। आख़िर दिसम्बर १९२० में नियम[illegible] कार्य शुरू किया गया। कुछ विद्वान व्याख्या[illegible] के लिए नियत किये गये। कुछ सज्जनों ने [illegible] कुछ लिये शिक्षा देने का कार्य स्वीकार कि[illegible] १५) से लेकर २५) मासिक की छात्रवृत्तियाँ [illegible] विद्यार्थियों को दी गईं। नियम-पूर्वक राजनी[illegible] शिक्षा देने के लिए श्रेणियाँ जारी की गईं।

इसी बीच में असहयोग-आन्दोलन के [illegible] सिले में लाहौर में १९२१ में राष्ट्रीय [illegible] की स्थापना की गई। इस कालेज का [illegible] राजनीति और अर्थशास्त्र की शिक्षा देना था।

इस कालेज की स्थापना से 'तिलक-स्कूल [illegible] पालिटिक्स' की रचना तथा कार्य-शैली में परि[illegible] करना पड़ा। राजनीति तथा अर्थशास्त्र की [illegible] देने का काम कालेज को सुपुर्द किया गया। [illegible] कालेज में पढ़नेवाले विद्यार्थियों को तिलक-[illegible] की ओर से छात्रवृत्तियाँ मिलती रहीं। तिलक-[illegible] आफ़ पालिटिक्स की ओर से नियत किये [illegible] व्याख्याता भी कालेज में पढ़ाने का काम करते [illegible]

तिलक-स्कूल आफ़ पालिटिक्स की स्कीम [illegible] मुख्य अंग नवयुवकों को समाज-सेवा तथा देश-[illegible] के कार्य के लिए क्रियात्मक और सिद्धान्त-सम्[illegible] शिक्षा देना था। देश-सेवा तथा लोक-सेवा [illegible] सिद्धान्तों को कार्य-रूप में परिणत करने के [illegible] पूना की सर्वेंट आफ़ इंडिया सोसायटी के [illegible] पर बनी हुई स्थायी सेवकोंवाली संस्था की आव[illegible] कता थी। इसलिए सोसायटी के स्थायी सेवकों [illegible] नियम और सोसायटी के काम को चलाने के [illegible] स्थायी-कोश क़ायम करने तथा एक उत्तम पुस्त[illegible]

खोलने के लिए धन-संग्रह का कार्य तथा साधन जुटाने की कोशिश शुरू की गई।

१६२१ के अक्टोबर में महात्मा गांधी के कर-कमलों से 'दि सर्वेंट्स आफ़ पीपल सोसायटी' (तिलक-स्कूल आफ़ पालिटिक्स इसका अंग समझा गया) की स्थापना की गई।

लालाजी ने अपनी कोठी सोसायटी को दान में दे दी। इस घर में से ही वे १६०७ में देश-निर्वासन के लिए गिरफ़्तार किये गये थे। लालाजी ने अपनी पुस्तकें जो संख्या में हज़ारों से ऊपर थीं—सोसायटी की लाइब्रेरी बनाने के लिए दान कर दीं। सबसे प्रथम ये तीन सज्जन सोसायटी के स्थायी सेवक व जीवन-सदस्य बने—लाला फ़िरोज़चन्द बी० ए०, लाला अचिन्तराम बी० ए०, लाला पुरुषोत्तमलाल सेंधी बी० ए०।

क़ौमी कालेज के जारी रहने तक सोसायटी ने तिलक-स्कूल आफ़ पालिटिक्स के द्वारा शिक्षा-सम्बन्धी काम जारी रक्खा। सोसायटी की लाइब्रेरी तथा इसके सदस्य क़ौमी कालेज की उपयोगिता को बढ़ाने में पूर्ण सहयोग देते रहे। कालेज बन्द होने पर सोसायटी ने शिक्षा-सम्बन्धी काम बन्द कर दिया और जनता में व्याख्यानों तथा अन्य साधनों के द्वारा शिक्षा के विस्तार का कार्य जारी रक्खा। सोसायटी की अधिक शक्ति तथा समय समाज-सेवा तथा देश-सेवा के सार्वजनिक आन्दोलनों में प्रयुक्त होने लगा। आज-कल सोसायटी मुख्यतया राष्ट्रीय सेवा-कार्य के लिए नवयुवकों को शिक्षित करने का कार्य करती है। शिक्षित तथा अनुभवी नवयुवक देश के भिन्न-भिन्न भाग में सर्वेंट्स आफ़ पीपुल सोसायटी के निरीक्षण में कार्य कर रहे हैं।

**कार्य-क्षेत्र**—जिस प्रकार स्वर्गीय लालाजी का सार्वजनिक जीवन विस्तृत, व्यापक और चैामुखा था, उसी प्रकार सोसायटी का कार्य-क्षेत्र भी विस्तृत, व्यापक और चैामुखा है। सोसायटी के निरीक्षण में राष्ट्रीय आन्दोलन, अछूतोद्धार-आन्दोलन, शिक्षालयों का संचालन, दुःखितों तथा पीड़ितों की सहायता का कार्य, जनता में राजनीति की शिक्षा देने के लिए व्याख्यानों का सिलसिला, पुस्तकालयों तथा वाचनालयों की स्थापना आदि कार्य हो रहे हैं। देश के लोकमत को संगठित तथा प्रबल बनाने के लिए 'पीपुल' और 'वन्दे मातरम्' नामक दो पत्र लाहौर से प्रकाशित होते हैं। इनके सिवा मज़दूर (कानपुर से) और समाज (आसाम से) नाम के समाचार-पत्र भी प्रकाशित हो रहे हैं। यद्यपि सोसायटी का मुख्य कार्यालय लाहौर में है तथापि इसका कार्य-क्षेत्र भारत में फैला हुआ है। सोसायटी के सदस्यों में आसाम, गुजरात, बिहार तथा संयुक्त-प्रान्त के निवासी सदस्य भी हैं।

**लालाजी का स्वर्गवास**—लालाजी ने अपने जीवन-काल में समय समय पर सोसायटी के सदस्यों को अपने साथ रख कर सार्वजनिक कार्यों के विषय में अनुभव प्राप्त करने का मौक़ा दिया। परन्तु देश तथा विदेश के सार्वजनिक कार्यों में अत्यन्त तल्लीन रहने से लालाजी सोसायटी को संगठित तथा दृढ़ बनाने का विशेष यत्न न कर सके। फिर भी समय समय पर सोसायटी की आर्थिक स्थिति को पक्का करने की योजनायें करते

रहे। उनके जीवन-काल में ही सोसायटी ने उनके नाम से सोसायटी के आँगन में पण्डित मदनमोहन मालवीयजी-द्वारा 'लाला लाजपतराय-भवन' की नींव रखवाई। लालाजी ने सोसायटी के लिए विशेष यत्न करने का निश्चय किया, हालाँ कि वे इस लोक से चल बसे।

लालाजी की मृत्यु के बाद सोसायटी पर आपत्ति तथा चिन्ता का पहाड़ टूट पड़ा। लालाजी की स्मृति में स्मारक बनाने का आन्दोलन शुरू किया गया। महात्मा गांधी, डाक्टर अन्सारी, पण्डित मदनमोहन मालवीय, श्रीयुत घनश्यामदास बिड़ला ने 'अखिल भारतीय लाजपतराय स्मारक-फ़ंड' के लिए अपील की। इस फ़ण्ड के बड़े भाग से सोसायटी की आर्थिक स्थिति को सुरक्षित करने का निश्चय किया गया है। वास्तव में लालाजी की स्मृति में नये स्मारक बनाने से पहले लालाजी के असली स्मारक उनके चलाये गये सार्वजनिक आन्दोलनों को संचालित करनेवाली संस्था को स्थिर बनाना आवश्यक है। लालाजी सोसायटी के आजीवन प्रधान थे। उनके स्वर्गवास के बाद श्रीयुत पुरुषोत्तमदासजी टण्डन इसके प्रधान नियत हुए हैं। श्रीयुत टण्डनजी पहले से सोसायटी के एसोसियेटेड (सहयोगी) सदस्य थे। लालाजी की भी इच्छा थी कि श्रीयुत पुरुषोत्तम-दासजी टण्डन सोसायटी के साथ अधिक से अधिक सम्बद्ध रहें।

इस समय सोसायटी के निम्नलिखित सदस्य हैं—

लाला फ़िरोज़चन्द्र बी० ए०, लाला जगन्नाथ बी० ए०, लाला मोहनलाल बी० ए०, लाला छबीलदास बी० ए० (आन), लाला अचि[illegible]राम बी० ए०।

निम्नलिखित सदस्य अनुभव तथा शिक्षा [illegible] कर रहे हैं—

पण्डित बलदेव चौबे बी० ए०, पण्डित अ[illegible]राम शास्त्री, बाबू हरिहरनाथ शास्त्री, प[illegible] मोहनलाल गौतम बी० ए०, पण्डित अमर[illegible] विद्यालङ्कार, बाबू लिङ्गराज मिश्र, एम० [illegible] बाबू हनूमानप्रसाद बी० ए०, एल-एल० [illegible] बाबू बलवन्तराय महता बी० ए०, तथा [illegible] लालबहादुर शास्त्री प्रोवेशनर हैं।

पण्डित राजाराम शास्त्री सहायक के रूप [illegible] कार्य कर रहे हैं।

डाक्टर गोपीचन्द भार्गव, एम० बी०, [illegible] एस०, लाला पुरुषोत्तमलाल सोधी, बाबू हर[illegible] सुन्दरलाल बी० ए०, लखीमपुर सोसायटी के ए[illegible] सिएटेड (सहयोगी) सदस्य हैं।

तिलक-स्कूल आफ़ पालिटिक्स तथा सर्वे[illegible] आफ़ पीपल्स सोसायटी के ट्रस्टी निम्नलि[illegible] सज्जन हैं—

भाई परमानन्द एम० ए०, लाला दुनी[illegible] वार० एट-ला, लाला जसवन्तराय एम० [illegible] लाला रामप्रसाद बी० ए०।

किसी ट्रस्टी का स्थान रिक्त होने [illegible] सोसायटी की कार्य-कारिणी कमेटी तथा [illegible] ट्रस्टी सम्मिलित अधिवेशन में उसके लिए [illegible] सज्जन को नियुक्त करेंगे।

ट्रस्टी सोसायटी की जायदाद के सम्[illegible] में नियन्त्रण करेंगे।

**जीवन-सदस्य कौन बन सकते हैं**—सोसायटी के प्रत्येक जीवन-सदस्य को सोसायटी के अधीन २० साल तक कार्य करने की प्रतिज्ञा करनी पड़ती है। किसी स्वदेशी या विदेशी यूनिवर्सिटी का स्नातक जीवन-सदस्य होने के लिए प्रार्थनापत्र दे सकता है। सारा समय सोसायटी के मेंबर को सहायक रूप में कार्य करनेवाला व्यक्ति भी मेंबर बन सकता है।

अविवाहित सदस्यों को पहले ५ साल तक ७५), फिर ५ साल तक ९०), फिर १००) निर्वाह के लिए मिलता है।

विवाहित सदस्यों को १००) प्रतिमास पहले पाँच वर्षों तक, फिर ११०) मिलता है।

कोई भी सदस्य स्वतन्त्र रूप से रुपया कमाने का धंधा नहीं कर सकता।

**सोसायटी का भविष्य**—अभी सोसायटी को स्थापित हुए ८ साल भी पूरे नहीं हुए हैं। इस थोड़े से समय में सोसायटी के कार्यों की छाप—पंजाब तथा भारतवर्ष के सार्वजनिक जीवन पर विशेष रूप से अङ्कित नहीं हो सकी।

उत्तर-भारत में राजनैतिक उद्देश से स्थापित संस्था एक-मात्र यही है। उत्तर-भारत का सार्वजनिक जीवन अभी तक व्यक्तियों पर निर्भर रहा है। इसी लिए इसमें स्थिरता नहीं आ सकी।

हमें आशा करनी चाहिए कि यह सोसायटी राजनैतिक तथा सार्वजनिक कार्यकर्ताओं को संगठित कर देश के विशेषतः पंजाब के राजनैतिक जीवन को तथा राष्ट्रीय आन्दोलन को स्वावलम्बी तथा स्थिर बनाने का यत्न करने में सफल होगी।

इन दिनों सोसायटी का निवासस्थान राजनैतिक आन्दोलन में काम करनेवालों के लिए राजनैतिक आश्रम सिद्ध हो रहा है। हम चाहते हैं कि यह संस्था दिन दिन उन्नति करे। पंजाब तथा देश के सार्वजनिक जीवन पर अपने संस्थापक की प्रभावशाली छाप चिर काल तक अङ्कित तथा स्मरणीय बनाने में सफल हो।

—भीमसेन विद्यालङ्कार

# स्वराज्य-प्राप्ति में अड़चनें

[ स्वराज्य-प्राप्ति के सम्बन्ध में जो अड़चनें हैं उनकी डाक्टर त्रिपाठी ने अपने इस लेख में बड़ी सुन्दर विवेचना की है। इस सम्बन्ध की आन्तरिक और बाहरी कठिनाइयों का विवेचन करते हुए इस बात पर भी विचार किया है कि देश में जातीयता और राजनैतिक एकता स्थापित होने में कौन कौन कठिनाइयाँ हैं। डाक्टर त्रिपाठी का यह लेख महत्त्वपूर्ण है और आपका विचार-क्रम स्पष्ट तथा संयत है। ]

इस विषय पर शायद अब कोई मत-भेद न होगा कि भारतीय आत्मा व्यथित होकर अथवा स्वाधीनता के उच्च भाव से प्रेरित होकर पराधीनता की बेड़ियों को तोड़ना और अन्य स्वाधीन देशों की तरह अपने भाग्य की डोर अपने हाथों में लेना चाहती है। भारतीयों की यह अभिलाषा केवल आशा-मात्र ही नहीं है। उसको वे कार्य-रूप में परिणत करने के लिए यथाशक्ति यत्न कर रहे हैं। राजनैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक आन्दोलनों के झकोरों से भारत में नये युग के आने की सूचना मिल रही है। देश में उथल-पुथल और जाग्रति के लक्षण हर तरफ़ दिखाई दे रहे हैं। स्वाधीनता का लक्ष्य, उसके प्राप्त करने की उत्कट अभिलाषा और साधनों के एकत्र करने के प्रयत्न के विषय में किसी स्वाधीनता-प्रेमी, मानवीय स्वत्वों के आदर करनेवाले और लोकोपकार की कामना रखनेवाले को कोई आपत्ति नहीं हो सकती। उनसे तो उसको प्रसन्नता ही होनी चाहिए।

भारत का अन्य देशों से विशेषतः ब्रिटिश साम्राज्य और ब्रिटेन से ऐसा सम्बन्ध है जिसके कारण भारत का प्रश्न एकदेशीय न रहकर अन्तर्राष्ट्रीय हो जाता है। इसी कारण सबकी दृष्टि भारत पर पड़ रही है। भारतीय आन्दोलनों से किसको क्या हानि और क्या लाभ होगा, इस विचार के चक्कर में कुछ न कुछ तो सभी किन्तु ब्रिटिश साम्राज्य और ब्रिटेन विशेषतः पड़ गये हैं। समय का प्रवाह एवं सभ्य-समाज का मानसिक सामयिक विकास ऐसा होगया है कि भारतवासियों की स्वाधीनता प्राप्त करने की इच्छा और आत्मोन्नति करने के प्रयत्न के विरुद्ध खुल्लमखुल्ला कहने का साहस शायद कुछ धृष्ट अथवा अर्द्धसभ्य मनुष्यों के अलावा कोई नहीं कर सकता। इँग्लैंड के चारों मुख्य राजनैतिक दलों के अधिनेता भी इस

सँभाल कर बातें करते हैं और भारतीय आदर्श को असंभव अथवा अनुचित नहीं कहते।

हमारे स्वाधीनता के आदर्श को सर्वथा उचित मानते हुए भी ब्रिटिश साम्राज्य के उपनिवेशियों और ब्रिटेनवालों को हमारे जन्म-प्राप्त अधिकारों के देने में क्यों हिचकिचाहट होती है? वे हमारे मार्ग में क्यों रोड़े डालने का यत्न करते हैं? उनको हमसे क्यों भय है? इन प्रश्नों का उत्तर देना कुछ कठिन नहीं, किन्तु इस लेख में केवल ब्रिटेनवालों की आपत्ति के कारणों पर ही विचार किया जाय, क्योंकि उनका हमसे अधिक गहरा संबंध है। इ.. के साथ दूसरा प्रश्न यह ही उठता है कि यह भारतवासियों की स्वराज्य-प्राप्ति की इच्छा इतनी प्रबल है तो फिर वे उसे स्वयं क्यों नहीं प्राप्त कर लेते। यह प्रायः कहा जाता है कि वास्तविक और आदरणीय स्वराज्य माँगने से नहीं मिलता और न कोई दे ही सकता है। वह तो अपने ही बल और पुरुषार्थ से प्राप्त होता है। इस प्रकार दो प्रश्न मुख्य हैं। पहला यह कि ब्रिटेन स्वाधीनतावादी होने पर भी क्यों संकोच और संशय में पड़ा हुआ है? दूसरा यह कि हमारी इतनी इच्छा होते हुए भी स्वराज्य हमें क्यों नहीं मिल रहा है?

ब्रिटेन को भारत को स्वराज्य देने में मुख्यतः तीन आपत्तियाँ हैं—पहली राजनैतिक, दूसरी सैनिक और तीसरी आर्थिक।

राजनैतिक आपत्ति इस कारण है कि ब्रिटेनवाले बृहत् साम्राज्य को बड़े आदर और अभिमान की दृष्टि से देखते हैं। वे कहते हैं कि हमारे पूर्वजों ने साम्राज्य के बनाने में घोर आपत्तियों और कठिनाइयों का सामना किया था और बड़ा भारी आत्मत्याग दिखाया था। अपनी बुद्धि, कार्यकुशलता और पसीने और रक्त के बल से उन्होंने कई पीढ़ियों तक एकाग्रता के साथ निरन्तर परिश्रम करने पर कहीं साम्राज्य की रचना कर पाई थी। साम्राज्य उनके गुणों और जाति-सेवा का देदीप्यमान स्मारक है। दूसरी बात यह है कि भारत साम्राज्य का हृदय है। उसी की बदौलत अफ़्रीका, एशिया और आस्ट्रेलिया तीन महाद्वीपों पर ब्रिटेन अपना अधिकार जमाये हुए है। भारत को छोड़ देने से तीनों महाद्वीपों में ब्रिटेन का पंजा ढीला पड़ जायगा और हमारा भविष्य ही नहीं किन्तु वर्तमान भी अन्धकारमय हो जायगा। जिस प्रकार भारतीय हमारी मनोवृत्ति पर सन्देह करते हैं, उसी प्रकार हमारा भी विश्वास उन पर नहीं होता। यद्यपि यह सच है कि भारत ने गत महायुद्ध में हमारी काफ़ी सहायता की थी, तथापि यह कैसे मान लिया जाय कि स्वाधीन होने पर और दशान्तर होने पर भी भविष्य में वह उसी प्रकार सहायता करेगा। सच पूछो तो साम्प्रतिक विचार-प्रवाह को देखते हुए भारत से सहायता के बदले विरोध मिलने की ही अधिक सम्भावना है। तीसरा कारण यह है कि भारतवर्ष के धुरे पर स्थित साम्राज्य-चक्र अन्तर्राष्ट्रीय अन्य चक्रों से प्रबल है। उसी की बदौलत हम भूमण्डल के अन्य दलों पर अपना आतंक जमाये हुए हैं। भारत हाथ से जाते ही उस चक्र के स्थगित ही नहीं किन्तु टूट जाने तक की संभावना है। अन्तिम

कारण यह है कि साम्राज्य की, विशेषतः भारत की बदौलत ब्रिटिश-सभ्यता, विद्या, कला, कौशल आदि का प्रचार होता है, जिसके लिए ब्रिटेन को नाज़ है और जिससे मानुषिक समाज अथवा लोक को लाभ होता है। स्वयं भारतवासी जावा, कम्बोडिया, महाचीन, मध्य-एशिया आदि में अपनी प्राचीन सभ्यता के स्मारक चिह्नों को देखकर आज दिन भी पुलकित और हर्षित होते हैं। तब भला हम अपनी सभ्यता के प्रसारक मुख्य साधनों को जान-बूझ कर छोड़-तोड़कर अपनी सभ्यता का गला क्यों घोटें और अपने आत्माभिमान पर कुठार-प्रहार क्यों करें।

दूसरा मुख्य कारण सैनिक है। ज्ञानी और आत्मबल के प्रेमी चाहे जो कहें। गत एवं आधुनिक इतिहास तो इसी बात का साक्ष्य दे रहा है कि संगरशक्ति, सेना और शस्त्र-बल से राज्य और साम्राज्य जीतते-हारते हैं। स्वयं भारत का प्राचीन इतिहास ही बतलाता है कि देवताओं को भी शस्त्र-अस्त्र की प्रायः उतनी ही आवश्यकता पड़ती थी जैसी कि मानव-समाज को। जहाँ वशिष्ठ आदि के कुछ गिने-चुने दो-एक दृष्टांत हैं, वहाँ शस्त्रधारियों के अगणित उदाहरण पाये जाते हैं। सारांश यह कि शक्ति का पल्ला शस्त्रधारियों की ही ओर क़रीब क़रीब सदैव झुकता रहा है। ऐसे सार्वजनिक अनुभव के होते हुए क्या आश्चर्य की बात है कि ब्रिटेन अपने बृहत् साम्राज्य की रक्षा शस्त्रों से करता है। इतने बड़े साम्राज्य की रक्षा के लिए विशाल सैनिक आयोजन की आवश्यकता है। यदि ब्रिटेन को साम्राज्य के लिए उपयुक्त सेना रखने के लिए साम्राज्य के साधन न[illegible] वह छोटा-सा द्वीप अपना कर्तव्य-पालन [illegible] सकता है। लाखों ब्रिटिश सैनिकों और [illegible] की शिक्षा, उनका भरण-पोषण भारत के [illegible] रहा है। भारत के व्यापार से ब्रिटि[illegible] सेना को बड़ा लाभ है। सैकड़ों जहाज़ हज़ारों मल्लाह भारत के भरोसे हैं। यह है कि भारत को भारी ख़र्च उठाना पड़ता है, सैनिक-बल से भारत में आन्तरिक शान्ति [illegible] बाहरी आक्रमणकारियों से भारत की र[illegible] रही है। इस सैनिक ढाल की छाया में भार[illegible] शान्ति के लाभों को भोग रहे हैं। भा[illegible] सेना यदि भारतीयों के हाथ में चली गई [illegible] योरपीयों को हटाने का प्रयत्न अवश्य [illegible] जिससे ब्रिटेन के हाथ टूट जायँगे और [illegible] अपने अधिकारों की रक्षा करना असंभ[illegible] जायगा।

तीसरा मुख्य कारण आर्थिक है। [illegible] का क़रीब साढ़े तीन अरब रुपया भारत में [illegible] है जिसकी रक्षा करना आवश्यक है। ब्रि[illegible] लिए भारत का बाज़ार और व्यापार कामधे[illegible] समान है। भारत का बाज़ार ब्रिटेन के [illegible] अमरीका के बाज़ार से भी बढ़ा-चढ़ा है। ब्रिटेन के ही लिए नहीं, किन्तु जापान, तथा अन्य योरपीय देशों के लिए भी लाभ[illegible] है। भारत बाहरी देशों से क़रीब ढाई [illegible] रुपयों का माल हर साल लेता है [illegible] अधिकांश ब्रिटेन के हिस्से में पड़ता है। व्यापार में क़रीब इक्यासी करोड़ का माल[illegible]

की या बुनी हुई चीज़ों का होता है, और साढ़े पैंसठ करोड़ का धातु की चीज़ों और मशीन आदि यंत्रों का है। यदि भारत का बाहर से ख़रीदा हुआ कुल माल देखा जाय तो उसका २८·७७ सूत या सूती चीज़ें हैं और १७·७५ धातु या उससे बनी चीज़ें हैं। भारत के व्यापार से सैकड़ों मिलें, कारख़ाने और अनेक बैंक चल रहे हैं। सैकड़ों जहाज़ और मालगाड़ियाँ दौड़ रही हैं। यदि यह व्यापार शिथिल पड़ जाय तो ब्रिटेन को वह आर्थिक धक्का लगे जिससे उसकी आर्थिक और सामाजिक स्थिति में भीषण उलट-पुलट हो जाय, लाखों घर बिगड़ जायँ, सब शान धूल में मिल जाय, आदमी, औरतें, बच्चे कपड़ों और भोजनों के लिए तरसने-तलफने लगें और दरिद्रता की घटा उमड़ आये। जिस नीति से ब्रिटेन का राजनैतिक और सैनिक बल जमा हुआ है उसका प्राण व्यापार ही है। वह गया तो सभी गया। ब्रिटेन ठंडा देश है, सरदी और भूख दोनों बेतरह ज़ोर दिखाते हैं। रहन-सहन, महँगा है, भोज्य और पेय पदार्थ महँगे हैं। व्यापार-हानि तो आत्मघात के समान है।

ब्रिटेनवाले यह भी कहते हैं कि यदि भारत ढाई अरब का माल मोल लेता है तो क़रीब क़रीब उतने का बाहर भी तो भेजता है। अतएव भारत को भी तो लाभ है। हमारी बदौलत ही तो भारत की गति संसार के सभी देशों में होगई है। भारत के प्रत्येक निवासी के हिस्से में चाहे उतना न पड़ता हो जितना कि एक ब्रिटेन के, किन्तु देश में तो बाहर से क़रीब क़रीब उतना ही धन जाता है जितना कि वहाँ से बाहर। दूसरी बात यह भी है कि भारत गर्म और मातदिल देश है, वहाँ के निवासियों का रहन-सहन सीधा-सादा है। उनका काम थोड़े ही वस्त्रों और भोजन से चल जाता है। वहाँ चीज़ें भी सस्ती हैं। अतएव भारतीयों को हमारी ऊपरी दशा देखकर डाह करना न चाहिए। यदि भीतरी दशा देखें तो उनको मालूम हो जायगा कि उनकी दरिद्रता नंगी है और हमारी दरिद्रता ढँकी हुई है। भारतवासियों की मानसिक स्थिति ऐसी हो रही है कि यदि उनको स्वराज्य दे दिया गया तो वे जूट और चाय का ही गहरा व्यापार अपने हाथ में लेकर अँगरेज़ों को धता न बतायेंगे, किन्तु संरक्षण की नीति का अवलम्बन करके हमारे व्यापार को अस्त-व्यस्त कर देंगे और उसका गला मरोड़ देंगे। हमारी औरतें कपड़े-रोटी को और बच्चे दूध और दलिया को तड़फड़ा कर मरने लगेंगे।

उपर्युक्त तीन मुख्य कारणों से ब्रिटिश लोग भारत को स्वराज्य देने में अपने ह्रास और नाश की आशंका करते हैं। विचारपूर्वक और स्वार्थांध न बनकर यदि आप उनको देखें तो यह स्पष्ट हो जायगा कि उनका भय निर्मूल नहीं, उनकी आपत्तियों में आत्मरक्षा का भाव निहित है। उनको भी अपना मान और अपनी जान उतनी ही प्यारी है जितनी कि हमें। जब मरणासन्न प्राणी अपनी रक्षा के लिए उत्कट प्रयत्न करता है तब सजीव जाति सशक्त होते हुए भी अपनी मृत्यु का आवाहन अट्टहास के साथ कैसे कर सकती है? कोई आश्चर्य नहीं कि लार्ड मिल्नर ने यह लिख

दिया कि "जब तक ब्रिटेन के दम में दम है और हाथ में तलवार है तब तक वह अपनी रक्षा करेगा ही।" यही स्वाभाविक है और यही मानुषिक भी है। किन्तु साथ ही यह भी स्वाभाविक है कि भारतवासी भी अपनी आत्मरक्षा और मान-रक्षा के लिए उद्योग और प्रयत्न करने के उतने ही अधिकारी हैं जितने कि ब्रिटिश अथवा अन्य कोई। वे भी अपने भाइयों, बहनों, बाल-बच्चों को नंगे और भूख से बिलबिलाते देखना नहीं चाहते। देश चाहे धनी हो, शासन चाहे कितना ही अच्छा हो, किन्तु जब तक हमारे देशवासी नंगे और भूखे हैं, जब तक हमारी उन्नति का मार्ग बंद है तब तक सब तुच्छ आडम्बर-मात्र हैं, सब कपोल-कल्पना है। क्या भारतवासी आदमी नहीं? क्या उनको जीवन का और आत्मोन्नति का अधिकार नहीं? केवल स्वार्थांध ही इनसे इनकार करेंगे। आँखोंवाले और अल्प-बुद्धिवाले भी कभी नहीं इनकार करेंगे।

अब दूसरे प्रश्न पर विचार कीजिए। भारतवासियों को स्वराज्य की इच्छा होते हुए भी वह उनको क्यों नहीं मिलता?

इसका सबसे पहला कारण यह है कि भारतवासियों में अभी तक वह उत्तेजना और वह उत्कट इच्छा नहीं हुई जो होना चाहिए। और जो कुछ हुई भी है वह उचितरूप से काम में नहीं आ रही है। उस इच्छा की प्राप्ति के उचित साधन नहीं एकत्र किये जाते जिनके बिना उसका सफल और कार्यरूप में परिणत होना ही दुःसाध्य है। केवल अपना दुखड़ा रोने, डींगें मारने, कल्पना और जल्पना करने से ही नहीं चल सकता। केवल अशांति की घूँटी पिला कर और ख़ून-ख़राबी की उत्तेजना से अधिक लाभ नहीं हो सकता। यदि उन्हें मारेंगे तो वे क्या हमारा मुँह ताकेंगे? हमारी घुड़की सुनकर या जोश देखकर वे लेकर भाग जायँगे। आपको यह दि[खाना] और साबित करना होगा कि देश में जा[तीयता] स्थापित होगई है और उसका मुख्य [उद्देश्य] स्वाधीनता है, चाहे वह स्वराज्य-द्वारा चाहे साम्राज्य द्वारा प्राप्त हो।

देश में जातीयता अथवा राजनैतिक एक[ता] स्थापन में तीन मुख्य कठिनाइयाँ हैं। पह[ला] हिन्दू-मुसलिम प्रश्न है। हिन्दुओं को यह डर [है कि] मुसलमानों के प्रबल हो जाने से उनको मुसलिम राज्य क़ायम करने की वासना [होने] लगेगी। वे एशिया के अन्य मुसलमान राज्यों [की] सहायता लेकर भारत पर आफ़त बुला [देंगे] हर एक बात में धर्म की दुहाई देकर उपद्रव [करते] रहेंगे। ज्यों-ज्यों उनको ढील दी जायगी, [त्यों-त्यों] वे अकड़ते जायँगे और अति करने लगेंगे। म[स्जिद] के आगे बाजा न बजाओ, नमाज़ के [समय] मंदिरों तक में घंटे न बजाओ, कभी कभी [गो-वध] करना आवश्यक है, इत्यादि बातें उठाते हैं [जिनसे] उनकी मनोवृत्ति का पता चलता है। मुसलमानों को भी यह डर है कि उनके राज्य [में रह कर] पर भी जिस हिन्दू-समाज ने उनका छुआ [पानी] पीने और उनके हाथ का पान खाने से [इनकार] किया उनसे भला क्या आशा की जाय। हि[न्दू]



स्वर्गीय लाला लाजपतराय

"हम समस्त भारत-वासियों को प्रतिज्ञा करनी चाहिए कि चाहे हमें प्राण देने पड़ें, चाहे हम अङ्ग-भङ्ग किये जायँ या फाँसी पर लटकाये जायँ, चाहे हमारी स्त्रियों और बच्चों पर अत्याचार किये जायँ, परन्तु हमारी स्वराज्य की इच्छा कदापि कम न होगी। इस देश के प्रत्येक बच्चे को यह प्रण कर लेना चाहिए कि जब तक उसके शरीर में प्राण रहेंगे या साँस चलती रहेगी तब तक वह राष्ट्र की स्वाधीनता के लिए प्रयत्न करता रहेगा।"

लाजपतराय

"हम एक-राष्ट्र के रूप में जीवन की परिपूर्णता चाहते हैं। राष्ट्रीय जीवन की वह परिपूर्णता स्वराज्य के रूप में मिलेगी। यह परिपूर्णता जीवन है और इसका अभाव विनाश। ईसा ने अपने शिष्यों से कहा था—'स्वर्ग का राज्य तुम्हारे अन्दर है।' उसी प्रकार स्वराज्य का राज्य हमारे अन्दर है। हमें चाहिए कि हम उस स्वराज्य की स्थापना करें।"

अरविन्द घोष



तपस्वी अरविन्द घोष

में जन-बल, धन-बल, विद्या-बल तो पहले ही से मौजूद है। यदि उनको राजनैतिक बल भी मिल गया तब तो वे हमें चटनी कर देंगे। हिन्दुओं में पहले कायस्थ और खत्रियों को ही अधिकतर शौक़ था, किन्तु अब सभी जाति के आदमी नौकरी के पीछे भेड़ियाधसान पिल पड़े हैं। पहले मुसलमानों को फ़ौजी नौकरी, पुलिस आदि महकमों में ख़ूब काम मिलता था, किन्तु अब कहीं पक्की जगह नहीं। एक जगह के लिए तीन मुसलमान अर्ज़ी देते हैं तो बीस हिन्दू। तीन से लायक़ होना उतना कठिन नहीं, किन्तु बीस से बढ़ जाना पहाड़ पर चढ़ने से कम नहीं। यदि नौकरी, कौंसिलों आदि में अभी से अपना हिस्सा न जमा लिया तो आगे चलकर "भामिनि भयेहु दूध की माखी"-वाली कहावत चरितार्थ होगी। सारांश यह कि हिन्दू को मुसलमान का और मुसलमानों को हिन्दुओं का डर खाये जाता है। यह स्थिति चाहे शोचनीय, अज्ञान-गर्भित अथवा असंगत क्यों न हो, किन्तु है और मौजूद है।

दूसरी कठिनाई हिन्दुओं का सामाजिक संगठन है। वर्ण-धर्म, जाति-धर्म की मार से समाज काँपने लगा, उसके अंग टूटने लगे। वर्ण-धर्म का प्राबल्य अभी तक जमा हुआ है। उत्तर में भी चमार, पासी, मेहतर आदि के साथ हमारा व्यवहार कुत्सित है, किन्तु दक्षिण में और विशेषत: मदरास, मैसूर, मालाबार आदि में उनकी दशा अत्यन्त शोचनीय है। उनके स्पर्श ही नहीं, किन्तु मुख देखने अथवा परछाईं छू जाने से ही उच्च वर्ण का क्षय होने लगता है! वर्णाभिमानी यदि शूद्र को मन्दिर में देव-दर्शन के निमित्त जाने अथवा कुएँ से पानी भर लेने की आज्ञा दे देते हैं तो अपनी समझ में बड़ी उदारता का परिचय और बड़े स्नेह की बानगी दिखाते हैं। प्लेटफ़ार्मों पर कूदने और अख़बारों में रँगने लगते हैं कि बड़ा दलितोद्धार हो रहा है। जिन्होंने बड़ा ज़ोर मारा वे दौड़कर एक पैसे का जनेऊ किसी को पहना आये या किसी अच्छे वर्णवाले से रसोई बनवाकर साथ में बैठकर एक दिन भोजन कर आये। बस समाज-उद्धार का ज़ोर से डंका पिटने लगा। मेरे कहने का यह तात्पर्य नहीं कि इन चीज़ों में कुछ तत्त्व नहीं। तत्त्व अवश्य है, किन्तु वैसा ही जैसे समुद्र में बुलबुले का। यह जाग्रति का वैसा ही लक्षण है जैसा कि स्वप्नावस्था में मच्छर मारने का। जाति में जीवन आना, जाग्रति होना और ही बात है। समानता, बंधुत्व आदि दूसरी ही चीज़ें हैं। महारोग से जर्जरित समाज का टोटकों अथवा छूमंतर से इलाज करने से कदापि काम नहीं चलेगा। मौलाना मोहम्मदअली का चोट करना बेजा नहीं जब वे फ़र्माते हैं कि जो हिन्दू अपने हिन्दू भाई को ही हीन और तुच्छ समझते हैं वे दूसरों का क्या साथ देंगे और किस मुँह से स्वाधीनता के अधिकार की दुंदुभी बजायेंगे। क्या ब्रिटिश लोग हमारी इस चिन्ताजनक कमज़ोरी से अनभिज्ञ हैं? वे भी समझते हैं कि नेताओं की गरज में पोल भरी है, वह जाग्रत का आत्मशक्ति से प्रेरित सिंहनाद नहीं। उनकी आँखों में धूल न डालकर हम उलटे अपनी आँखों में धूल डाल रहे हैं।

तीसरा मुख्य कारण शिक्षा की कमी है। अफ़्रीका और अफ़ग़ानिस्तान आदि देशों का दृष्टान्त देकर लोग कहते हैं कि स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए शिक्षा की विशेष आवश्यकता नहीं। उनकी स्वाधीनता के अन्यान्य कारण हैं, जिन पर विषयान्तर होने के भय से यहाँ विचार करना ठीक नहीं। केवल इतना कह देना काफ़ी है कि भौगोलिक, नैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक स्थितियाँ जो वहाँ अथवा रूस में हैं वे भारत में नहीं। तुर्की, रूस और अफ़ग़ानिस्तान ने भी यह समझ लिया कि समय बदल गया। बिना शिक्षा के शीघ्र प्रचार हुए स्वाधीनता की रक्षा करना दुष्कर है। अतएव वहाँ तरह तरह के प्रयत्न और साधन काम में लाये जा रहे हैं। जितना समय हम व्यर्थ बकवाद में नष्ट करते हैं, जितनी शक्ति का हम निरर्थक क्षय करते हैं, यदि उसको शिक्षा-प्रचार की ओर लगावें तो ठोस लाभ होने की अधिक संभावना है। उसके चमत्कार से बहुत-सी समस्यायें हल होने लगेंगी। प्रचार का काम ज़ोर के साथ चल निकलेगा।

चौथी मुख्य कठिनाई स्त्रियों की खेदजनक दशा है। उनकी शक्ति का यथावत् उपयोग न होने से देश की बड़ी भारी हानि हो रही है। तैंतीस करोड़ जनता में सोलह करोड़ के लगभग स्त्रियाँ हैं। देश की पूर्णशक्ति में से आधी शक्ति सुषुप्ति की अवस्था में है। उनको पर्दे में बंद करके अथवा अपठित रखकर हमारे समाज का एक अंग पक्षाघात से सुन्न हो रहा है। कुछ लोग सीता, सावित्री, अरुन्धती बनाने के मोहक स्वप्न देख रहे हैं। कुछ सतीत्व की दार्शनिक और सूक्ष्मतर परिभाषा रचकर उसका प्रचार कर रहे हैं। स्त्रियों को पहले स्त्रियाँ तो बनने दीजिए, पह[illegible] उनमें मनुष्यता और स्त्रीत्व का ज्ञान तो अंकु[illegible] होने दीजिए। तब फिर अपने आदर्शों को वे [illegible] ढूँढ़ निकालेंगी। ईश्वर चाहेगा तो आपको लेक्[illegible] झाड़ने की आवश्यकता ही न पड़ेगी। वह स[illegible] और शक्ति जो अब आप शायराना ख़्वाब ख़्[illegible] अथवा आध्यात्मिक कलाबाज़ी में नष्ट कर रहे [illegible] उसको यदि आप अपने स्वयं सुधार और आत्[illegible] निरीक्षण में ख़र्च करने का कष्ट उठायें तो आप[illegible] ही उपकार हो जायगा। यदि हममें आर्यरक्त [illegible] जिसका हमको अभिमान है, यदि हमारे [illegible] राम कृष्ण केवल गद्गद होकर आँखों से [illegible] गिराने के ही साधन-मात्र नहीं बरन दैनिक जीव[illegible] पथ के प्रदर्शक हैं, तो हमारी स्त्रियों में भी [illegible] रक्त है, उनके भी आदर्श हैं, जिनकी रक्षा वे [illegible] पुरुषों से अधिक करती आई हैं और करेंगी [illegible] आपके प्राण क्यों सूखे जाते हैं। या तो आ[illegible] भारतीय नारी की आत्मा और उसके हृदय [illegible] भाव को ही नहीं समझे अथवा पाश्चात्य सभ्[illegible] के कुछ बाहरी अंगों का रुख़ देखकर आप[illegible] हृदय में ऐसा भय समा गया है जिससे आ[illegible] भारतीय नारी को उनके दोषों की कथा सुना[illegible] अपना और उसका दोना का समय नष्ट कर रहे [illegible] और उसका एक प्रकार से या तो मनोरंजन [illegible] अनादर कर रहे हैं। सारांश कहने का यह है [illegible] भारतीय नारी को आत्मत्व प्राप्त करने का अवस[illegible] देने और उसकी शक्ति को जगाकर प्रवाहित [illegible] देने की बड़ी आवश्यकता हो गई है। भय छोड़[illegible]

उनको बढ़ने देना चाहिए। संभव है, नदी की तरह वह शक्ति उठती, गिरती, उलझती, सुलझती दिखाई पड़े, किन्तु सब बाधाओं से टकराती, खेलती नदी की तरह वह अवश्य कुछ काल के उपरान्त समत्व को प्राप्त कर गंभीरता और शांति के साथ प्रवाहित होने लगेगी, जिससे हमारी शुभ कामनाओं का क्षेत्र लहलहा उठेगा। इसमें विलम्ब करना बड़ी भूल है।

अब यह प्रश्न उठता है कि हम किन साधनों का अवलम्बन करें जिनके द्वारा हमको स्वराज्य शीघ्रातिशीघ्र मिल सके। क्योंकि यदि हमको स्वराज्य समीपवर्त्ती भविष्य में न मिला और आधुनिक शासन-चक्र चलता रहा तो हमारी जनता जो इस समय ही दुर्बल, निर्बल और दलित हो रही है, नष्ट-चेतन, मृतप्राय और निष्प्राण हो जायगी। काल-चक्र बड़े वेग से चल रहा है। जो आज दुस्साध्य है वह कल असाध्य हो जायगा। धिक्कार है ऐसे जीवन पर कि अपने भाइयों और बहनों, बालकों और बालिकाओं को घोर दुःख में देखते हुए भी हम भविष्य की मादक कल्पनाओं की प्रतीक्षा करते हैं।

उपर्युक्त विचारशैली में सहृदयता, सहानुभूति, सजीवता और पुरुषार्थ की अवश्य विशेषता है, जो प्रशंसनीय है। किन्तु उसमें संकल्प-मात्र की अधिकता है, साधनों का अनुसन्धान और मार्ग-प्रदर्शन नहीं। यह जान लेना चाहिए कि जो जाति और देश कोई हज़ार वर्ष से आपत्तियों, क्रान्तियों और विप्लवों का सामना करने पर भी आज उच्चादर्श, सत्संकल्प, उत्साह और कार्य-क्षमता का स्पष्ट प्रमाण दे रहे हैं वे दस-पाँच वर्षों में कदापि नहीं प्रनष्ट हो सकते। दूसरी विचारणीय बात यह है कि स्वतंत्रता की प्राप्ति जाति और देश के लिए उच्चतम विभूति है। उसकी प्राप्ति के लिए पीढ़ी-दर-पीढ़ी और जन्म-जन्मान्तर तक प्रयत्न करने की आवश्यकता प्रायः देखी गई है। जातीय अथवा दैशिक जीवन में समय की गणना दिनों और महीनों से नहीं, बरन वर्षों और पीढ़ियों से होती है। इस कथन का यह तात्पर्य नहीं कि आप अनन्त काल तक अथवा पचीस-पचास वर्ष तक प्रतीक्षा ही करते रहें। निवेदन केवल इतना ही है कि दो-चार अथवा छः महीने; वर्ष दो वर्ष या चार वर्ष के भीतर आप जातीय स्वतंत्रता के महायज्ञ की पूर्णाहुति देने के लिए विवेक और विचार का तिरस्कार कर अनुचित उतावली न करें। सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक उलझनों को सुलझाने, जातीयता की विशृङ्खल कड़ियों को जोड़ कर अन्तर्जातीय लड़ियों में गूँथनें में बड़ी सावधानता, सहिष्णुता, दूरदर्शिता, बहुज्ञता और कार्यकुशलता की आवश्यकता है। हाथ पर सरसों तक तो जमती ही नहीं, फिर उँगलियों पर राष्ट्र-रचना कैसे संभव है। यदि जनता ने असामयिक जोश में आकर अथवा प्रमादवश नेताओं पर अनुचित दबाव डालकर उन्हें आगे ढकेल दिया तो बहुत संभव है कि उससे उचित संचालन में बाधा पड़ जाय और आन्दोलन सुपथ-भ्रष्ट हो जाय। शायद इसी कारण महात्मा गाँधी कहते हैं कि जनता अपना जातीय-संगठन का कर्तव्य अनन्य-भाव से करती रहे और बड़े राजनैतिक दाँव-पेच के चक्कर

को विश्वासपात्र और ज्ञान-वृद्ध अनुभवी नेताओं के भरोसे छोड़ दे। उच्छृङ्खलता, उतावली, दुस्साहस और प्रमाद से यदि कुछ बनने की तो बहुत कुछ बिगड़ने की भी संभावना प्रतीत होती है। उत्साह के साथ संयम-नियम की, विचार, विवेक, त्याग और निरन्तर श्रम की भी जाति और देश को आवश्यकता है।

यह भी स्मरण रखना आवश्यक है कि राजनीति अथवा राष्ट्रनीति बड़ी लचीली और परिवर्तनशील है। उसका सदा के लिए कोई स्थिररूप नहीं। इस क्षेत्र में अभी तक ऐसे सिद्धान्त बहुत कम हैं जो स्थिर अथवा अमिट हों। किन्तु सबका लक्ष्य लोकोपकार, लोकसंग्रह ही है। इस लक्ष्य तक पहुँचने के साधन देश, काल, अवस्था के अनुकूल घटते-बढ़ते और बदलते रहते हैं। बुद्धिमानी इसी में है कि लक्ष्य सामने से हटने न पाये। उसको प्राप्त करने के लिए दत्त-चित्त होकर कठिनाइयों और बाधाओं को सहते हुए भी उत्साह, दृढ़ता के साथ सतत परिश्रम करना चाहिए। किन्तु आदर्श की प्राप्ति के साधनों में मतभेद है। इन साधनों की जाँच बड़ी सावधानता के साथ करने की आवश्यकता है। जातीय नौका को केवल अन्ध-विश्वास और ईश्वरेच्छा के भरोसे अज्ञात तमपूर्ण मार्ग में छोड़ देना एक प्रकार का जुआ खेलना है। जीत हुई तो कोई बात नहीं, किन्तु यदि हार हुई तो उससे क्या हानियाँ होंगी और उसका उत्तरदायित्व किस पर होगा?

यह बात तो स्पष्ट है और महात्माजी भी मानते हैं कि हम तलवार के ज़ोर से कम से कम कुछ समय तक तो स्वराज्य नहीं छीन स[...] अन्तर्राष्ट्रीय संघ में भी हमारा इतना [...] नहीं कि हम जो चाहें करा लें। ऐसी दशा में [...] करना चाहिए? लोकमान्य तिलक कहते [...] "आन्दोलन, आन्दोलन आन्दोलन।" यह आन्दो[...] ज़ोर के साथ और डटकर होना चाहिए। इ[...] आवश्यकता भारत में तो स्वयंसिद्ध है, [...] ब्रिटेन में भी है। कारण इसका यह है कि [...] और ब्रिटेन की उलझन दोनों के सुलझाने [...] सुलझेगी। एक के सुलझाने से वह शीघ्र [...] सकेगी अथवा नहीं, इसके विषय में [...] सन्देह है। जब तक आप अपने लक्ष्य पर [...] न जायँ तब तक उत्साह किन्तु विवेकपूर्ण आ[...]लन करते जाइए। किन्तु यह ध्यान रखिए [...] आप भारत से दरिद्रता और दासता दूर क[...] अवश्य अधिकारी हैं, किन्तु दूसरे देश में [...] भेजने का न आपको और न ब्रिटेन को अधि[...] है। हिन्दू, मुस्लिम, ब्राह्मण और अब्राह्मण प्र[...] राजनैतिक अंश को तो कम से कम शीघ्र ही [...] कर लीजिए। तदुपरान्त ब्रिटेन का सामना स[...] रूप से कीजिए और अपनी संयुक्त शक्ति का [...] पर दबाव डालिए। यों तो हर एक दल क[...] है कि जनता हमारे साथ है, हम जनता के [...]निधि हैं, किन्तु जब तक मुस्लिम, अब्राह्मण [...] सिक्ख आदि समूहों का अधिकांश इस बात [...] मान लेगा तब तक संयुक्त भारत के सच्चे [...]निधि होने का दावा संदिग्ध और काल्पनिक [...] रहेगा। आपस में चाहे ब्रिटेन के साथ जब [...] समझौता करेंगे तब ही आपको आदान-प्र[...]

जियो और जीते रहने दो की नीति का अवश्यमेव अवलम्बन करना पड़ेगा। दरवाज़ों को सदा के लिए बन्द करने का किसी को अधिकार नहीं, और व्यावहारिक दृष्टि से ऐसा करना भी असंभव एवं अनुचित है। अतएव धीरता, दृढ़ता और गंभीरता से काम करते हुए भी आदान-प्रदान की नीति को तिलाञ्जलि न देना चाहिए।

बहुत सूक्ष्म रीति या स्थूलरूप से ऊपर यह दिखलाने का प्रयत्न किया है कि स्वराज्य प्राप्त करने के मार्ग में हमारी कठिनाइयाँ आन्तरिक और बाहरी दोनों प्रकार की हैं। उनको साफ़ साफ़ समझ लेने और हल करने ही से वे हल हो सकेंगी। रूस, अमरीका, फ्रांस या इटली की सहायता से नहीं। इन समस्याओं को शीघ्रातिशीघ्र हल करने के लिए यह आवश्यक है कि भारतवासी और ब्रिटिश मज़दूर और उदार दल दोनों मिलकर प्रयत्न करें। अन्तरिक्ष में किसी भावी अन्तर्राष्ट्रीय योग के भरोसे बैठकर क्रान्ति की माला जपने या किसी अन्य देश की वास्तविक क्रान्ति की झूठमूठ नक़ल करने से चाहे छोटे-मोटे नाटक की-सी चहल-पहल भले ही हो जाय, किन्तु देश को स्वराज्य प्राप्त करना बड़ी सावधानता, धीरता, साहस और निरन्तर अथक जातीय परिश्रम से ही सम्भव है। ऐसी तरकीब निकालने का प्रयत्न करना चाहिए जिससे हमारी आर्थिक दशा भी सुधर जाय, स्वराज्य भी प्राप्त हो और अन्य देश के बाल-बच्चों को भी भूख से बिलबिलाना न पड़े। अब समय अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग, सार्वदेशिक जनता-संघ और मनुष्य-मात्र का है, नेशनलिज़्म और पृथक् जातीयता का नहीं। यह समय घबराने और उतावली का नहीं है। संसार भर में परिवर्तन होना आरम्भ होगया है। संसारचक्र दूसरी ओर चलने लगा है। देश, बन्धु, स्वसमाज के पूर्णहित एवं लोकहित की कामना अब इस नवीन युग में प्रतिद्वन्द्वी नहीं समझी जायँगी। इसके लक्षण स्पष्ट होने लगे हैं। संकीर्णतावाद के अन्त का समय निकट आगया है। सम्भव है कि हमको अपने आदर्श की प्राप्ति में कुछ वर्ष और लग जायँ, किन्तु यदि वह स्पष्टत: हमारे सामने है और उसके लिए हम यथाशक्ति निरन्तर और अथक परिश्रम करते रहेंगे तो उसको प्राप्त करने में कुछ भी संदेह नहीं।

—रामप्रसाद त्रिपाठी



# लिबरल-पार्टी

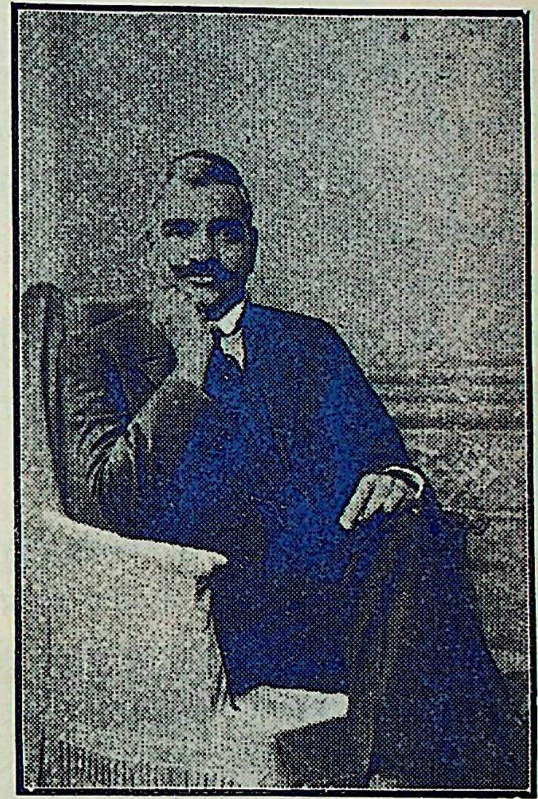
भारत के राजनैतिक क्षेत्र में जो लोग कार्य कर रहे हैं उनमें लिबरल-दल का एक विशेष स्थान है। संख्या में तो ये लोग बहुत अधिक नहीं हैं, परन्तु योग्यता, विद्वत्ता, अनुभव आदि की दृष्टि से इनका स्थान इतना ऊँचा है कि जो कुछ वे कहते हैं उससे कोई सहमत हो या असहमत, सरकार तथा जनता दोनों ही को उसे ध्यानपूर्वक सुनना पड़ता है तथा उस पर विचार करना पड़ता है। यह कहने में तनिक भी अत्युक्ति न होगी कि जो शक्तियाँ भारत के राजनैतिक भविष्य को एक नये साँचे में ढाल रही हैं उनमें लिबरल राजनीति किसी भी अन्य शक्ति से कम बलवती नहीं है।

"लिबरल" शब्द अँगरेज़ी भाषा का है। हिंदी में "लिबरल-पार्टी" के लिए "उदार-दल" का व्यवहार होने लगा है। फिर भी मैं अपनी मातृभाषा के इस शब्द को इस्तेमाल न करके इस लेख में एक विदेशी शब्द का व्यवहार कर रहा हूँ। इसका कारण है। मेरी समझ में "उदार" शब्द उस अर्थ का द्योतक नहीं है जिसका कि "लिबरल" है। यह सच है कि अँगरेज़ी-भाषा में "लिबरल" शब्द का साधारण "उदार" ही होता है। परन्तु राजनी "लिबरल" शब्द का एक विशेष अर्थ है। लोग न तो वर्तमान अवस्था से संतुष्ट हैं उसमें परिवर्तन कराने के लिए क्रान्ति समर्थन करते हैं उनको "लिबरल" कहते लिबरल लोगों को न तो क़यामत पसंद है क्रान्तिवाद। इसलिए "लिबरल-पार्टी" का अनुवाद "उदार-दल" नहीं, बल्कि "सुधा दल" होगा।

लिबरल-शब्द भारतीय राजनीति में नया लिबरल-पार्टी की संस्था लिबरल फ़ेडरेशन जन्म हुए अभी बारह वर्ष ही हुए हैं। के क़ायदे से तो अभी वह बालिग़ भी नहीं है, अभी तो उसका बाल्यकाल ही है। असल में लिबरल-पार्टी भारत का सबसे राजनैतिक दल है। वास्तव में यह दल दल है जो पचास वर्ष से भारत में राज सुधार कराने के लिए लगातार प्रयत्न कर है और जिसने कि आज से तेंतालीस वर्ष कांग्रेस को जन्म दिया था। लिबरल-पार्टी भी उसी नीति का पालन कर रही है कि



[सर तेजबहादुर सप्रू]



[डाक्टर आर० पी० पराञ्जपे]



[पंडित हृदयनाथ कुँजरू]



[मिस्टर सी० वाई० चिन्तामणि]

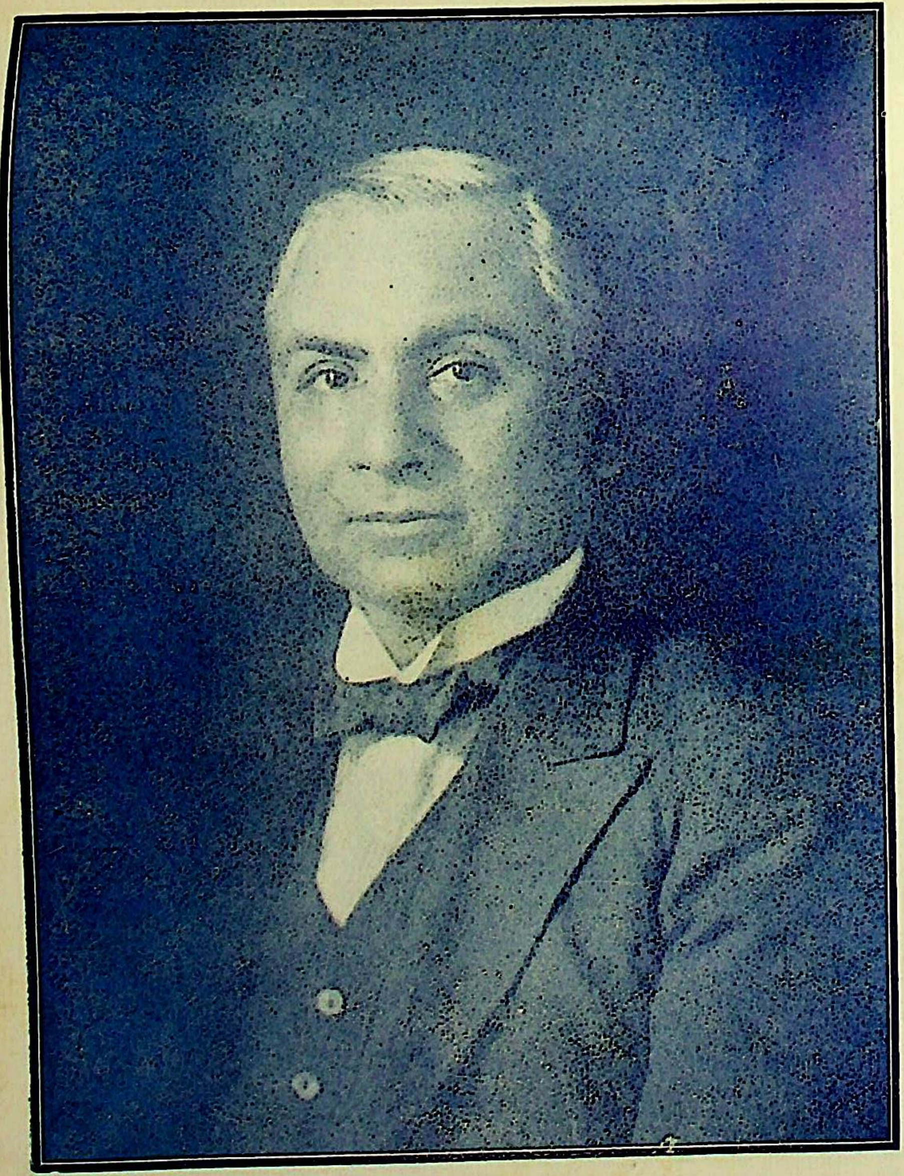
कि सन् १८८४ से सन् १९१६ तक, अर्थात् तीस वर्ष तक, कांग्रेस ने पालन किया था। लिबरल-पार्टी के नेता और कार्यकर्ता आज भी उन्हीं सिद्धांतों पर दृढ़ हैं जिनमें विश्वास रख कर ऋषिकल्प दादा भाई नौरोजी, नर-केसरी फ़ीरोज़-शाह मेहता, राजर्षि गोपाल कृष्ण गोखले और बंगाल के हृदय-सम्राट् सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने अपना जीवन देश-सेवा में बिताया था।

## लिबरल फ़ेडरेशन का जन्म

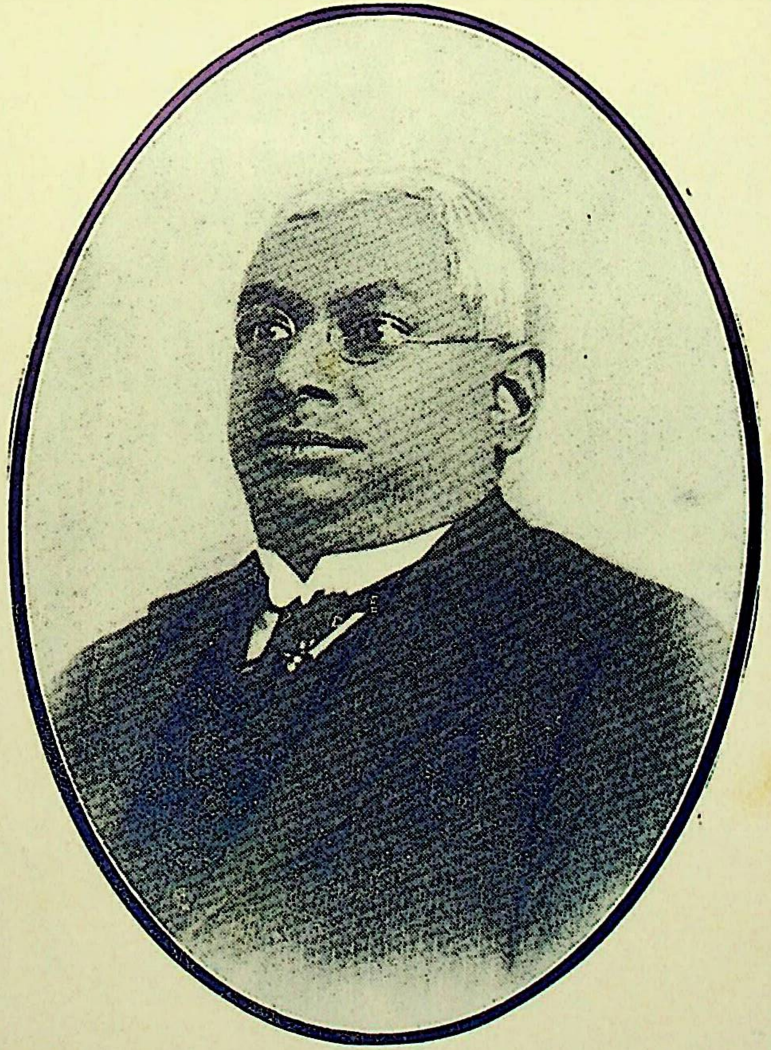
कुछ लोग सदा ही से कांग्रेस की नीति से असंतुष्ट थे। परंतु वंग-भंग के बाद देश में जो असन्तोष की लहर आई उसके कारण इन लोगों की संख्या बहुत बढ़ गई। लोकमान्य तिलक, देशभक्त लाजपतराय और वक्ता-प्रवर विपिनचन्द्र पाल की अध्यक्षता में एक नया राजनैतिक दल ही बन गया। साधारण जनता इस नये दल को "गरम-दल" और कांग्रेसवालों को "नरम-दल" कहने लगी। गरम दलवालों ने कांग्रेस को अपने सिद्धान्तों और अपनी नीति का अनुयायी बनाने की कोशिश की, परंतु इसमें उन्हें सफलता नहीं हुई। बाद को जब सन् १९०९-१० में लार्ड मारले और लार्ड मिंटो के शासन-काल में भारत को कुछ शासन-सुधार मिल गये और लार्ड हारडिंग के समय में बंगाल भी फिर से एक प्रान्त बना दिया गया तब यह असंतोष की लहर ठंडी पड़ गई और गरम-दल के नेता एक एक करके फिर से कांग्रेस में लौट आये।

रौलटबिल और जलियानवाला-कांड के स्वरूप भारत के राजनैतिक क्षेत्र में असं[illegible] दूसरी लहर आई। महात्मा गांधी के [illegible] में असहयोग-आन्दोलन का श्रीगणेश [illegible] कांग्रेस ने असहयोग का प्रस्ताव स्वीकार [illegible] लिया। जिन लोगों को कांग्रेस के सिद्धान्तों में विश्वास था वे कांग्रेस का रुख़ देख कर पहले ही उससे अलग हो[illegible] इन लोगों का विश्वास था कि मान्टेगू[illegible] से भारतवासियों को जो नये राजनैतिक अ[illegible] मिले हैं उनका उपयोग करके देश की भ[illegible] बहुत कुछ काम किये जा सकते हैं और सा[illegible] अधिकारियों की शक्ति कम की जा [illegible] है तथा जनता के प्रतिनिधियों के हाथों में [illegible] शासन-शक्ति आ सकती है। इसलिए [illegible] मान्टेगू-सुधारों से पूरा पूरा लाभ उठाने [illegible] में थे, उधर कांग्रेस का बहुमत इन सुधा[illegible] बहिष्कार कर देने के पक्ष में था। इसलि[illegible] लोगों ने कांग्रेस से अपना पुराना नाता तो[illegible] अपनी अलग राजनैतिक संस्था क़ायम क[illegible] जो लिबरल फ़ेडरेशन के नाम से मशहूर है।

लिबरल फ़ेडरेशन का जन्म सन् १९[illegible] हुआ। तब से उसके ग्यारह वार्षिक अधि[illegible] हो चुके हैं और बारहवाँ अधिवेशन दि[illegible] के अंत में मदरास में होगा। अब तक जो [illegible] उसके सभापति के सिंहासन को सुशोभि[illegible] चुके हैं उनके नाम ये हैं—स्वर्गीय सुरे[illegible] बनर्जी, सर शिवस्वामी ऐयर, श्रीयुत सी० चिंतामणि, दीवान बहादुर गोविंद राघव



सर तेजबहादुर सप्रू



श्रीयुत सी० वाई० चिन्तामणि

महामान्य श्रीनिवास शास्त्री, सर तेजबहादुर सप्रू, डाक्टर रघुनाथ पुरुषोत्तम परांजपे, सर मोरोपंत जोशी और सर चिमनलाल सीतलवाद। बारहवें अधिवेशन के सभापति सर फ़ीरोज़ सेठना मनोनीत हुए हैं। जिन सज्जनों ने उसकी स्वागत-कारिणी समिति के अध्यक्ष के पद को सुशोभित किया है उनमें सर दीनशाह वाछा, सर विनोदचन्द्र मित्र, सर मानिकजी दादा भाई, श्रीकृष्ण कुमार मित्र और पंडित हृदयनाथ कुँजरू के नाम उल्लेखनीय हैं।

## लिबरल-पार्टी के कार्यकर्ता

लिबरल फ़ेडरेशन के नेताओं और कार्य-कर्ताओं के सम्बन्ध में यहाँ दो-चार शब्द कह देना असंगत न होगा। स्वर्गीय सुरेन्द्रनाथ बनर्जी कांग्रेस के सबसे पुराने कार्यकर्ताओं में से थे और दो बार कांग्रेस के सभापति के आसन पर भी आसीन हो चुके थे। आपकी टक्कर के वक्ता आधुनिक भारत में दो-चार ही हुए होंगे। अपनी जवानी के दिनों में सुरेन्द्र बाबू बंगाल ही के क्या, सारे भारत के युवकों के हृदय-सम्राट् थे और वंग-विच्छेद के विरुद्ध आंदोलन के समय "बंगाल के बिना ताज के बादशाह" कहलाते थे।

सर दीनशाह वाछा भी कांग्रेस के बहुत ही पुराने कार्यकर्त्ताओं में से हैं। इस समय आपकी अवस्था पचासी वर्ष की है और बुढ़ापे के कारण अब आप राजनैतिक जीवन में कोई विशेष भाग नहीं लेते। भारत की निर्धनता के प्रश्न का आपने विशेष रूप से अध्ययन किया है और अपने समय में आप भारत-सम्बन्धी आर्थिक प्रश्नों के विशेषज्ञ माने जाते थे।

श्रीमती बीसेंट के नाम को कौन नहीं जानता? सन् १९१६-१९१८ में जब होमरूल-आंदोलन ज़ोरों पर था तब सभाओं में "माता बीसेंट की जय" वैसे ही सुनाई पड़ती थी जैसे कि आज-कल "महात्मा गांधी की जय" सुनाई पड़ती है। विदेशी होकर भी आपने भारत को मातृभूमि बना लिया है और उसकी ऐसी तत्परता और लगन के साथ सेवा की है कि भारतवासियों का भी मस्तक झुक जाता है और अस्सी वर्ष से अधिक की अवस्था में भी आज आप जिस उत्साह के साथ कार्य कर रही हैं वह नवयुवकों के लिए भी आदर्श है।

महामान्य श्रीनिवास शास्त्री बहुत समय तक भारत-सेवक-समिति के अध्यक्ष रह चुके हैं। इस समिति के सदस्य बनने के समय जीविका-उपार्जन के लिए कोई कार्य न करने तथा समिति से जीवन-निर्वाह भर के लिए ख़र्च लेकर देश-सेवा में जीवन व्यतीत करने का व्रत लेना पड़ता है। आप भारत की बड़ी कौंसिल के भी बहुत समय तक मेम्बर रह चुके हैं। आप बड़े कुशल वक्ता हैं। अगर आप विरोधियों की सभा में भी भाषण करते हैं तो उन पर भी आपके देवता-स्वरूप व्यक्तित्व का प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता। जो लोग सभा में आपको गालियाँ देते हुए आते हैं वे भी आपके भाषण को मंत्र-मुग्ध होकर सुनते हैं और आपकी प्रशंसा करते हुए घर लौटते हैं। ब्रिटिश

साम्राज्य के उपनिवेशों में, जहाँ भारतवासियों के साथ बड़ा बुरा बर्ताव किया जाता है और वे बड़ी घृणा की दृष्टि से देखे जाते हैं, आप सब जगह घूम घूम कर अपनी अमृतमयी वाणी की वर्षा कर चुके हैं। आपके भाषणों को सुनकर उपनिवेशों के गोरों का दृष्टिकोण बहुत कुछ बदल गया है। दो-चार साल से दक्षिण-अफ़्रीका में भारतवासियों की स्थिति में जो सुधार होगया है उसका बहुत कुछ श्रेय आप ही को प्राप्त है। इधर पाँच-छः वर्ष से आपका स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता। परमात्मा आपको दीर्घायु करे।

सर तेज़ बहादुर सप्रू इस समय लिबरल-पार्टी के प्रमुख नेता हैं। आप इलाहाबाद-हाईकोर्ट के नामी वकील हैं। आप देशसेवा में अपना समय लगा कर कितना त्याग कर रहे हैं, इस बात का अनुमान वही लोग कर सकते हैं जो यह जानते हैं कि हाईकोर्ट के बड़े वकीलों के समय का कितना मूल्य होता है। जिनको आपके साथ परिचय होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है वे जानते हैं कि आप जितने मिलनसार हैं उतने ही मेहमानबाज़ भी हैं। आप भारत-सरकार के ला-मेम्बर रह चुके हैं।

ला-मेम्बर रहते समय आपने कई ऐसे क़ानूनों को रद कराया जिनके कारण गोरों और कालों में भेद-भाव रहता था। आप ही के प्रयत्न से उस प्रेस-ऐक्ट का भी अंत हुआ जो सम्पादकों और पत्र-स्वामियों की गर्दन पर सदा तलवार की तरह लटका रहता था। असहयोग-आन्दोलन के समय आपने इस बात की बड़ी कोशिश की कि सरकार और महात्मा गांधी के [illegible] कुछ समझौता हो जाय, परंतु देश के दुर्भाग्य [illegible] आपका यह प्रयत्न सफल नहीं हुआ। एक [illegible] आप भारत के प्रतिनिधि-रूप साम्राज्य-परिषद् [illegible] भी सम्मिलित हो चुके हैं। वहाँ दक्षिण-अफ़्री[illegible] के तत्कालीन प्रधान मंत्री जनरल स्मट्स से [illegible] सदा से प्रवासी भारतवासियों के अधिकारों [illegible] कट्टर विरोधी रहे हैं, आपकी ऐसी ज़बर्दस्त मुठ[illegible] हुई जैसी सरकारी सभाओं में बहुत ही कम दे[illegible] में आती है। आपकी स्पष्टवादिता जनरल स्म[illegible] को बहुत बुरी लगी, परंतु साम्राज्य-परिषद् [illegible] बहुमत आप के पक्ष में हो गया। साइमन-कमी[illegible]शन के बहिष्कार को सफल बनाने के लिए आ[illegible] बड़ा प्रयत्न किया; परंतु आपका सबसे [illegible] काम नेहरू-रिपोर्ट के सम्बन्ध में था। जिन लो[illegible] को नेहरू-कमेटी की कार्रवाई का हाल मालूम [illegible] वे जानते हैं कि भारत का ऐसा शासन-विधा[illegible] तैयार करने में जिसे सब दलों और जातियों [illegible] लोग स्वीकार कर लें, आपका सबसे अधिक हा[illegible] था। नेहरू-कमेटी की सफलता का श्रेय पं[illegible] मोतीलाल नेहरू के बाद आप ही को है।

"लीडर"-सम्पादक श्रीयुत सी० वा[illegible] चिंतामणि को अगर लिबरल फ़ेडरेशन के प्राण [illegible] कहा जाय तो शायद अत्युक्ति न होगी। आपका सारा जीवन देश-सेवा ही में व्यतीत हुआ है [illegible] आपने "लीडर" का सम्पादन जिस योग्यता और निर्भीकता के साथ किया है उसकी आप[illegible] विरोधियों को भी प्रशंसा करनी पड़ती है। [illegible] लोग आपसे सहमत नहीं होते वे भी आप[illegible]

"लीडर" को पढ़ते हैं। मतभेद होने पर आप जिस कड़ाई के साथ आलोचना करते हैं उसमें न तो सरकार या अधिकारियों का लिहाज़ रहता है और न लोक-मत के नाराज़ हो जाने का डर। संयुक्त-प्रान्त के बड़े से बड़े अधिकारी आपकी आलोचनाओं से सदा डरते रहते हैं। कोई नौ वर्ष तक आपने प्रान्तीय कौंसिल में जो काम किया है वह इस बात का सबूत है कि जैसी ज़ोरदार आप की लेखनी है वैसी ही ज़ोरदार आपकी ज़बान है। लेकिन आपके भाषणों में केवल भाषा का धारा-प्रवाह ही नहीं रहता, उनसे फ़ौरन ही यह भी प्रकट हो जाता है कि आपने देश के, और विशेष कर इस प्रान्त के, प्रश्नों का पूरा पूरा अध्ययन किया है और आपको उनकी पूरी पूरी जानकारी है। आप एक बार इस प्रान्त की सरकार के मिनिस्टर भी रह चुके हैं। आपकी मिनिस्टरी के ज़माने में असहयोग-आन्दोलन का ज़ोर था। सरकार के अंदर की बातें बहुत कुछ गुप्त रहती हैं, परंतु जिन लोगों को उनका कुछ भी हाल मालूम है वे जानते हैं कि श्रीयुत चिंतामणि ने सदा इसी बात की भरसक कोशिश की थी कि जहाँ तक हो सके सरकार की दमन-नीति पर नियंत्रण रक्खा जाय। जब तक गवर्नर ने आपके पद की मर्यादा का ध्यान रक्खा तब तक आपने मिनिस्टर रहकर अपने प्रान्त की सेवा की, लेकिन ज्यों ही गवर्नर ने आपके पद की मर्यादा को भंग करना चाहा, आपने फ़ौरन मिनिस्टरी को लात मार दी। आपका अध्यवसाय जैसा प्रशंसनीय है, आपकी स्मरण-शक्ति भी वैसी ही विलक्षण है। आपका हृदय बड़ा स्वच्छ और निर्मल है और जिन लोगों को आपके साथ कार्य करने का अवसर मिलता है वे बहुत शीघ्र आपको अपना मित्र समझने लगते हैं।

सर शिवस्वामी ऐयर और सर चिमनलाल सीतलवाद क्रमशः मदरास और बम्बई की सरकार के मेम्बर रह चुके हैं। दोनों ही बड़े शांत और गम्भीर सज्जन हैं। सर शिवस्वामी ऐयर जैसा गम्भीर मनुष्य तो दूसरा कठिनाई से मिलेगा। डाक्टर रघुनाथ पुरुषोत्तम परांजपे अपने विद्यार्थी-जीवन ही में बड़े प्रतिभा-सम्पन्न समझे जाने लगे थे। आपने केम्ब्रिज-विश्वविद्यालय से गणित की सबसे बड़ी परीक्षा बड़ी प्रतिष्ठा के साथ पास की थी। परन्तु फिर नौकरी से रुपया कमाने के बजाय आपने देशभक्ति के भाव से प्रेरित होकर अपना जीवन पूना के एक राष्ट्रीय कालेज में अस्सी रुपये मासिक पर बिताना निश्चय किया। बीस साल तक उक्त कालेज की सेवा करने के बाद आपने उससे नाता तोड़ा। मान्टेगू-सुधारों के बाद आप बम्बई-प्रान्त के सर्वप्रथम शिक्षा-मंत्री हुए। आप विद्यार्थियों के लिए सैनिक शिक्षा का प्रबन्ध कराने के बड़े ज़बर्दस्त हामी हैं। इस समय आप लंदन में भारत-मंत्री की कौंसिल के मेम्बर हैं। परन्तु आप इतने निर्भीक हैं कि सरकारी पद पर रहते हुए भी आपने साइमन-कमीशन के सामने गवाही देने से इनकार कर दिया।

पंडित हृदयनाथ कुँजरू भी भारत-सेवक-समिति के सदस्य हैं। आपने अपना जीवन देश-सेवा ही के अर्थ अर्पण कर रक्खा है। पहले आप प्रान्तीय

कौंसिल के मेम्बर थे और इस समय एसेम्बली के मेम्बर हैं। आपको देश-सम्बन्धी मामलों का बड़ा अच्छा ज्ञान है और आप वक्ता भी बहुत अच्छे हैं। इस समय आप प्रवासी भारतवासियों की सेवा में लगे हुए हैं। इस प्रान्त में सेवा-समितियाँ स्थापित करने में जो प्रशंसनीय कार्य आपने किया है उससे प्रान्त के सभी लोग परिचित हैं।

## राजनीतिज्ञता और आत्मबलिदान

लिबरल-पार्टी के नेताओं की देश-भक्ति में कोई भी समझदार आदमी सन्देह नहीं कर सकता। तो भी लोगों के हृदय में यह प्रश्न उठा करता है कि अगर ये लोग भी सच्चे देश-भक्त हैं और कांग्रेस के नेता भी सच्चे देश-भक्त हैं तो दोनों में बहुधा मतभेद क्यों हो जाता है। इस प्रश्न का उत्तर दे सकने के लिए दोनों दलों के सिद्धान्तों पर विचार करना पड़ेगा। इस छोटे से लेख में इस वाद-विवाद के लिए स्थान नहीं है। यहाँ संक्षेप में इतना ही कह देना काफ़ी होगा कि कांग्रेसवालों के मूल-मंत्र देश-भक्ति और आत्म-बलिदान हैं और लिबरल-पार्टी के मूल-मंत्र हैं देश-भक्ति और राजनीतिज्ञता। अँगरेज़ी के एक प्रसिद्ध लेखक का कहना है कि देशभक्ति का अर्थ है देश के मान और अपमान को अपना मान-अपमान समझना और राजनीतिज्ञता का अर्थ है राजनीति में दूरदर्शिता से काम लेना। एक और प्रसिद्ध लेखक का कहना है कि राजनीतिज्ञ के लिए यह आवश्यक है कि वह प्रत्येक प्रश्न पर उसके प्रत्येक पहलू से विचार करे। लिबरल-पार्टी के नेता प्रत्येक प्रश्न पर प्रत्येक दृष्टिकोण से विचार करने की कोशिश करते हैं और इसलिए वे अपने [illegible] के साथ सदा समझौता करने के लिए तैयार [illegible] हैं। इसी का दूसरा परिणाम यह भी होता है [illegible] सिद्धान्त की दृढ़ता की कमी न होते हुए भी [illegible] किसी बात के लिए उतना उत्साह नहीं दिख[illegible] पड़ता जितना किसी प्रश्न पर एक ही दृ[illegible] विचार करनेवालों में दिखलाई पड़ता है। [illegible] सिवा दूरदर्शिता भी लोगों को बहुत कुछ आ[illegible] पीछा सोचने के लिए बाध्य करती है।

जब असहयोग-आन्दोलन का प्रारम्भ [illegible] तब उसके अनुयायियों ने आत्म-बलिदान की [illegible] का विलक्षण परिचय दिया। कोई भी [illegible] मनुष्य यह कहने का दुस्साहस नहीं कर स[illegible] कि यह आत्म-त्याग व्यर्थ गया। यह सत्य [illegible] स्वराज्य नहीं मिला, तो भी देश में एक अ[illegible] जाग्रति तो उत्पन्न हो ही गई। परन्तु साथ ही [illegible] भी मानना पड़ेगा कि असहयोग-आन्दोलन तीन [illegible] भी न चल पाया था कि उसी के बड़े [illegible] कार्यकर्ताओं को स्वर्गीय देशबन्धु दास और [illegible] मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में स्वराज्य-[illegible] नामक नये दल की स्थापना करनी पड़ी जि[illegible] कार्यक्रम (चाहे स्वराज्य-पार्टीवाले इसे स्वीकार [illegible] करें) लिबरल-पार्टी के कार्यक्रम से बहुत [illegible] नहीं है। क्या असहयोग-आन्दोलन का [illegible] होना और उसके स्थान पर स्वराज्य-पार्टी [illegible] आविर्भाव होना लिबरल-पार्टी की दूरदर्शि[illegible] का प्रमाण नहीं है? निस्सन्देह स्वराज्य-[illegible] पूरी तरह से लिबरल-पार्टी के सिद्धान्तों

स्वीकार नहीं करती, तो भी कौंसिलों में प्रवेश करने के समय से आज तक वह देश की भलाई के लिए जो कुछ भी रचनात्मक कार्य कर सकी है वह लिबरल-पार्टी के सिद्धान्तों का अनुसरण करके ही कर सकी है। आज प्रायः प्रत्येक कौंसिल में लिबरल-पार्टी और स्वराज्य-पार्टी के सदस्य मिलकर कार्य कर रहे हैं।

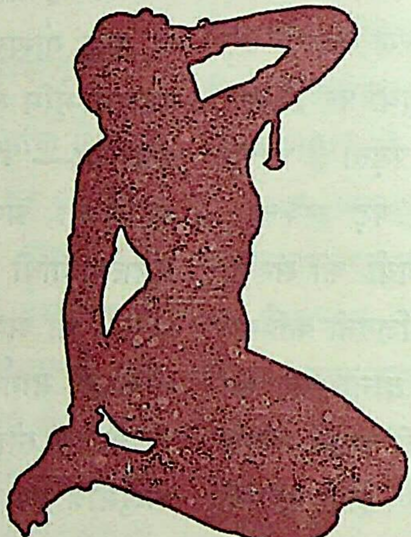
यह तो स्पष्ट ही है कि साधारण मनुष्यों के, और विशेष कर नवयुवकों के हृदयों पर जितना असर आत्मबलिदान के भाव का पड़ता है उतना राजनीतिज्ञता की बातों का नहीं पड़ सकता। इसी लिए लिबरल-पार्टी के अनुयायियों की संख्या कभी उतनी अधिक नहीं हो सकती जितनी कांग्रेस-पार्टी के अनुयायियों की। परन्तु दोनों ही का मूलमंत्र देश-भक्ति है और दोनों ही अपने अपने ढङ्ग से देश की सेवा कर रहे हैं। दोनों ही का उद्देश है भारत के लिए स्वराज्य प्राप्त करना, भारत में भारतवासियों को वह स्थान दिलाना जो अँगरेज़ों को इँगलिस्तान में, जर्मनों को जर्मनी में और अमरीकनों को अमरीका में प्राप्त है। अपने ध्येय की प्राप्ति के ढङ्गों में चाहे दोनों में जितना अन्तर हो, चाहे साधारण मनुष्य को उनमें विरोध भी दिखलाई पड़ने लगे, तो भी दोनों पृथक् पृथक् दलों में काम करते हुए भी एक ही सेना के सैनिक हैं। एक दल का विशेष कार्य है देश में जाग्रति उत्पन्न करना, और इसके लिए उसे ध्वंसात्मक साधनों का विशेष रूप से अवलम्बन करना पड़ता है। दूसरे दल का विशेष कार्य है उस जाग्रति का देश के लाभ के लिए उपयोग करना और इसके लिए उसे विशेष कर रचनात्मक साधनों का अवलम्बन करना पड़ता है। "अनैक्य में ऐक्य" इसी का नाम है। दोनों दलों के नेता ऊपरी विरोध रहते हुए भी एक दूसरे की उपयोगिता को समझते हैं। लोकमान्य तिलक और राजर्षि गोखले जीवन-पर्यन्त ऐसे दलों के नेता रहे जो एक दूसरे के विरोधी समझे जाते थे, परंतु गोखले की मृत्यु के अवसर पर तिलक ने श्मशान-भूमि में एकत्र जनता को सम्बोधन करके कहा था—"गोखले देशभक्तों में श्रेष्ठ थे। उनके जीवन को अपने जीवन का आदर्श बनाओ।" महात्मा गांधी और महामान्य शास्त्री दोनों ही गोखले को अपना राजनैतिक गुरु मानते हैं। आज दोनों के मार्ग पृथक् पृथक् हैं, परंतु दोनों के पारस्परिक स्नेह और सम्मान के भाव में कभी अणुमात्र भी कमी नहीं हुई। भगवान् कृष्ण ने गीता में कहा है—

> सांख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पंडिताः।
> एकमप्यास्थितः सम्यगुभयोर्विन्दते फलम् ॥
> यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते।
> एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति ॥

"मूर्ख लोग कहते हैं कि सांख्य और योग भिन्न-भिन्न हैं; परंतु पंडित लोग ऐसा नहीं कहते। किसी भी एक मार्ग का भली भाँति आचरण करने से दोनों का फल मिल जाता है। जिस स्थान पर सांख्यमार्गवाले पहुँचते हैं वहीं योगी भी पहुँचते हैं। सांख्य और योग एक ही हैं जिसने यह जान लिया उसी ने ठीक तत्त्व को पहचाना है।"

लिबरल-पार्टी और कांग्रेस-पार्टी भी दो भिन्न भिन्न मार्ग-मात्र हैं। दोनों का गन्तव्य स्थान एक ही है। जो एक को भला कहने की मंशा से दूसरे को बुरा कहता है वह ग़लती करता है। जिसके हृदय में देश-भक्ति है, जो अपनी मातृ-भूमि की सेवा करना चाहता है, वह अपनी ... और प्रकृति के अनुसार दोनों में से किसी ... का अनुसरण करके अपने देश और अपनी ... की भलाई कर सकता है।

—केशवचन्द्र



# बदला

( १ )

जिस समय डाक्टर राधावल्लभ संध्या को घूम कर घर लौटे उस समय मालिनी सिर-दर्द के कारण अपनी चारपाई पर चादर ओढ़े लेटी थी। डाक्टर साहब ने आते ही पूछताछ की तब मालिनी की मा उपादेवी ने कहा—बेटी की तबीयत अच्छी नहीं है।

डा०—मैं इस बीमारी का कारण जानता हूँ।

उ०—तुम क्या जानते हो?

डा०—घर में उसके विवाह की चर्चा न चलाई गई होती तो तबीयत कभी ख़राब न होती। यह अँगरेज़ी की शिक्षा ही कुछ ऐसी है कि लड़कों और लड़कियों का दिमाग़ ख़राब कर देती है। मैंने बहुत बड़ी ग़लती की जो इसे स्कूल और कालेज में पढ़ाया। यह भी तो नहीं पता चलता कि वह चाहती क्या है। 'बस विवाह नहीं करूँगी।' यह हठ क्या जाने कब तक चलेगा।

उ०—वह कहती है, मैं देश के लिए कुछ काम करूँगी।

डा०—ख़ाक करेगी। आज भोजन मिलना बन्द हो जाय तो उसे मालूम हो कि देश उसकी सहायता करने नहीं आवेगा। अभी तो देश मीठा है और सबसे अधिक तीते हैं मा-बाप। मालिनी से कह दो कि हम उसे अधिक काल तक अविवाहित नहीं रख सकते। हमारे कुल की प्रतिष्ठा का यही तक़ाज़ा है।

'कह दूँगी' कहती हुई उपादेवी डाक्टर साहब के पास से उठ कर चली गईं। जाकर उन्होंने मालिनी के कमरे का दरवाज़ा खटखटाया।

मालिनी ने किवाड़ खोल दिये।

उपादेवी ने भीतर चारपाई पर बैठते हुए ही मालिनी से प्रश्न किया—क्यों री, तेरी तबीयत कैसी है? तुझे क्या तकलीफ़ है?

मालिनी ने एक कुर्सी पर बैठ कर कहा—मेरे सिर में दर्द है।

उ०—तेरे पिता तो कुछ और ही कह रहे हैं?

मा०—क्या कह रहे हैं?

उ०—उसकी बीमारी की जड़ विवाह है। विवाह का नाम लेते ही उसकी तबीयत बिगड़ जाती है।

मा०—बात तो ठीक है, मैं विवाह नहीं करना चाहती।

उ०—पर वे तो इस साल तेरा विवाह करने पर तुले हुए हैं, कहते थे, तीन साल से टाल रहे हैं, अब नहीं टाल सकते। तो बता, तू अब क्या करेगी?

मा०—करूँगी क्या? पिताजी का विरोध करूँ, मैं ऐसी निर्लज्ज तो नहीं हूँ।

उ०—तब फिर कह दूँ कि मालिनी को कोई आपत्ति नहीं है।

मा०—नहीं, आपत्ति तो मुझे बराबर है, लेकिन यदि पिताजी मेरा विवाह कर देंगे तो मैं बाधा नहीं डालूँगी। अपने मन से मैं विवाह नहीं करूँगी।

उ०—आख़िर बात क्या है?

मा०—मैं देश की सेवा करना चाहती हूँ।

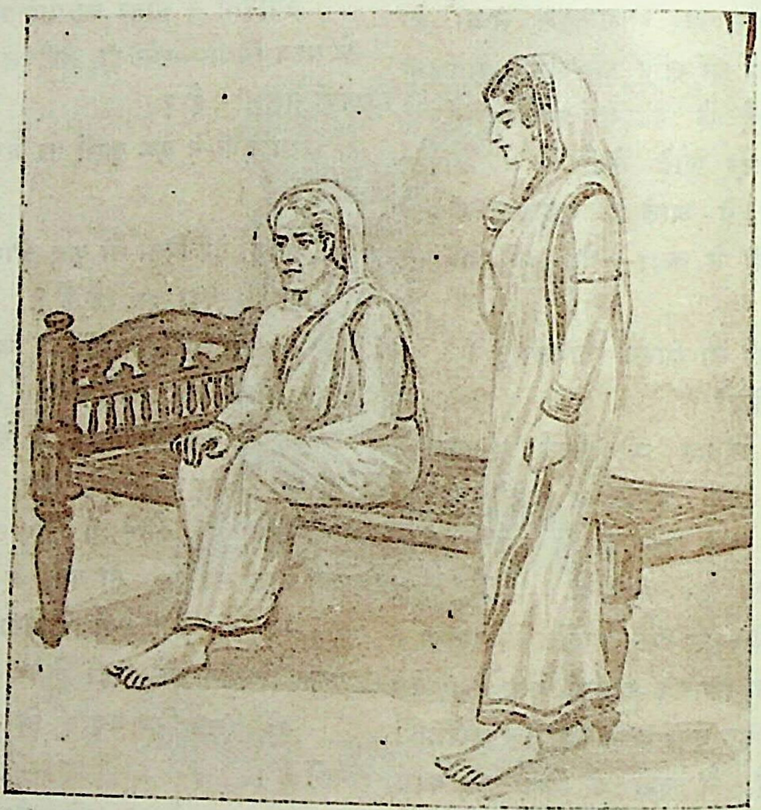
उ०—जीवन-पर्य्यन्त कुमारी रह कर? हमारे कुल में तो किसी ने ऐसा नहीं किया।

उषादेवी ने यह तीखे स्वर में कहा।

मालिनी ने उत्तर दिया—मा, मैं वही काम करना चाहती हूँ जिसे इस कुल में किसी ने नहीं किया

## ( २ )

कमलाकर द्विवेदी काशी से कलकत्ते घूमने आया था। धनी परिवार का अकेला दुलारा लड़का था। किसी बात की चिन्ता नहीं थी। उसका जीवन वैसा ही स्वतन्त्र था जैसे वसन्त में कोकिल का, रात्रि में तारात्रों का, सावन-भादों में बादलों का। लेकिन कलकत्ते आने पर एक ऐसी घटना घट गई जिसने उसे बेबस बना दिया, वैसा ही जैसा पिँजड़े में तोता होता है, कैद में देशभक्त होता है। एक दिन कलकत्ता-विश्व-विद्यालय के फाटक पर खड़ी एक घोड़ागाड़ी में उसने एक महिला को देखकर अपने आपको भुला दिया। गाड़ी के चले जाने पर भी वह अपनी मुग्धता की निद्रा से नहीं जागा। यही नहीं, यह निद्रा बढ़ती ही गई, यहाँ तक कि उसे देखकर आँखों की निद्रा भी दुम दबा कर भाग गई। उस महिला की मधुर चित-वन और बिजली-सी मुसकान तो कमलाकर की मान-सिक दृष्टि के सामने से किसी तरह हटती ही नहीं थी। यह एक अजीब बला बेचारे के सिर पर सवार होगई।



[ मा, मैं वही काम करना चाहती हूँ जिसे इस कुल में किसी ने नहीं किया ]

क्रीतदास की तरह कमलाकर नित्य ही उसी नियत समय पर विश्व-विद्यालय के फाटक के सामने खड़ा हो जाता और अपनी हृदयेश्वरी के दर्शन पाकर अधिकाधिक आकृष्ट होता और शान्ति पाने के स्थान में अशान्तचित्त हो जाता। हृदय की बढ़ती हुई उसे सुन्दरी से बातचीत करने का बहाना ढूँढ़ने प्रेरित किया। नित्य ही वह तरह तरह के बहाने निकालता, परन्तु जब उन्हें कार्य्य-रूप में करने का मौक़ा आता तभी क्या जाने कहाँ उसकी वाणी को मूक कर देता। इसी दस-पन्द्रह बीत गये।

एक ... लाकर ... का चमका। ... ने गाड़ी ... बढ़ा ... कराते ... लिफ़ाफ़ा ... की ओर ... दिया। ... की दृष्टि ... पहले ही ... ने उसे ... में रख ... थोड़ी दूर ... एकान्त ... उसे पढ़ ... किया। ... प्रकार था—

प्रिय महोदय,

आपको यहाँ मैं नित्य ही इसी समय देखती ... वेषभूषा आदि से आप कोई भले आदमी जान ... परन्तु भले आदमी तो इस तरह बेकार नहीं ... यदि आप सचमुच बेकार हों तो मैं आपको ... बता सकती हूँ।

आपकी एक ...

कमलाकर ने अपनी सारी मनोवेदना एक पत्र में लिख डाली और अगले दिन वह नियत स्थान पर गाड़ी की प्रतीक्षा में खड़ा रहा। कमलाकर को देखते ही सुन्दरी ने गाड़ी खड़ी करवा दी और मुसकरा कर कमलाकर को अपने पास बुलाया। धड़कते हुए हृदय को शान्त करने की चेष्टा करते हुए कमलाकर ने गाड़ी के पास पहुँच कर अपना पत्र देवी के चरणों पर फेंक दिया। देवी ने उसे पढ़ के कहा—छिः छिः आपने यह सब क्या लिखा है ? क्या अपनी बहन को यही सब लिखना उचित समझते हैं ? यह कह कर और कमलाकर पर एक प्रखर दृष्टिपात करती हुई सुन्दरी ने कोचवान को गाड़ी हाँकने की आज्ञा दे दी। मणिहीन सर्प की तरह कमलाकर का पीड़ित हृदय तड़फने लगा। उसकी आँखों के आगे निराशा का अन्धकार छा गया।

( ३ )

कमलाकर में अब इतनी हिम्मत नहीं थी कि वह उस सुन्दरी के सामने जाता। इसलिए दूसरे दिन वह ऐसी जगह खड़ा हुआ जहाँ से गाड़ी तो दिखाई पड़ सकती थी और सुन्दरी के भी क्षणिक दर्शन हो सकते थे किन्तु स्वयं वह नहीं दृष्टिगोचर हो सकता था। उसने उस दिन और कोई काम नहीं किया, सुन्दरी का नाम और कक्षा आदि का पता लगाने में उसने सारा समय बिता दिया। इसके बाद घर आकर उसने एक करुणा-जनक क्षमा-प्रार्थना-पत्र लिखा और शीघ्र ही लेटरबक्स के हवाले कर दिया। तीसरे दिन उसका निम्न लिखित उत्तर आया।

प्रिय महोदय,

आपका पत्र मिला। मुझे आपकी दशा पर दया आती है। आप युवक हैं। आपको चाहिए कि देश की दुरवस्था पर ध्यान दें। आपके पूर्व-पत्र से मुझे यह विश्वास होगया था कि आप वास्तव में बेकार हैं। नहीं तो आपके चित्त की ऐसी दुरवस्था न होती। ख़ैर अब आप मुझसे काम पूछ रहे हैं तो मैं बताती हूँ। सुनिए—

समाचार-पत्रों में तो आपने पढ़ा ही होगा कि क्रान्तिकारियों ने श्रीमान् श्रद्धेय चारु बाबू की हत्या कर डाली है। चारु बाबू कितनी ऊँची श्रेणी के देशभक्त थे, यह आपको मालूम होगा। कितनी सरल वेष-भूषा, कितना सरल स्वभाव। विश्व-प्रेम यदि दोष हो सकता है तो वे दोषी थे। सत्य-निष्ठा यदि अपराध है तो वे अपराधी थे। सहृदयता और मनुष्यता का यह तक़ाज़ा था कि जिस क्रूरता और बर्बरता के साथ क्रान्तिकारियों ने अँगरेज़ मैजिस्ट्रेट की हत्या की थी उसका चारु बाबू कठोर भाषा में खण्डन करते। बहुत दिनों तक प्रायः ऐसे कामों की आलोचना करते रहने के कारण चारु बाबू को क्रान्तिकारियों ने सन्देह की दृष्टि से देखना आरम्भ कर दिया था। वे उन्हें अधिक काल तक अपने मार्ग में रोड़ा अटकाते न देख सके और उन्होंने अपना हाथ इस नर-रत्न के रक्त से कलङ्कित किया। आह ! चारु बाबू के स्वर्गवास से देश की कितनी क्षति हुई है, अपने अल्प वय में ही उन्होंने देशवासियों के हृदय में जिस दिव्य आशा का सञ्चार कर दिया था उसको अस-फल बना कर हत्याकारियों ने कितना घोर, अक्षम्य अप-राध किया है, यह क्या मुझे आपको समझाना होगा। मैं नारी हूँ, मैं कुछ कर नहीं सकती, भारतीय होने के कारण मेरे हाथ-पैर भी क़ैद हैं, नहीं तो चारु बाबू के वध का बदला मैं लिये बिना कभी न रहती। अस्तु। जो काम मैं स्वयं नहीं कर पा रही हूँ उसे मैं चाहती हूँ कि आप अपने हाथ में लेकर अपनी बेकारी को दूर कर डालें। क्या यह स्वीकार है ? यदि हो, तो मैंने आपको क्षमा किया और यदि नहीं तो मेरे पास दूसरा पत्र लिखने की आवश्यकता नहीं। यदि आपने चारु बाबू के वध का बदला ले लिया तो मैं वह प्रेम भले ही न दे सकूँ जिसे आप चाहते हैं, किन्तु आपको भक्ति और श्रद्धा की दृष्टि से अवश्य देखूँगी। हाँ, इतना और कह सकती हूँ कि यदि मैंने इस जीवन में विवाह करने का कभी निश्चय किया, जिसकी अभी कोई

आशा नहीं है, तो सबसे अधिक अधिकारी मैं उसी को समझूँगी जो मेरा यह कार्य्य सम्पन्न कर देगा।

भवदीय मालिनी देवी

इस पत्र को पढ़कर कमलाकर विचार-सागर में डूब गया।

( ४ )

नलिनी मालिनी की सखी थी। दोनों सखियाँ प्रायः एक दूसरे के यहाँ बैठने के लिए आया-जाया करती थीं। बीमार होने के कारण मालिनी नलिनी के पास नहीं जा सकी। इसलिए नलिनी ही उससे मिलने के लिए आई। दो ही दिनों की बीमारी में मालिनी के चेहरे में बहुत अधिक परिवर्त्तन देखकर वह भौंचक सी रह गई।

बिस्तर पर चादर ओढ़े लेटी हुई मालिनी के बग़ल में बैठकर नलिनी ने घबराहट के स्वर में पूछा—बहन, दो ही दिन की बीमारी में तू इतनी दुबली हो गई। तेरा चेहरा तो ऐसा होगया है जैसे उसमें रक्त कभी रहा ही नहीं।

मालिनी ने क्षीण स्वर में कहा—बहन नलिनी! मैंने बहुत बड़ा पाप किया है, अनेक निरपराध परिवारों को अपार वेदना देने का, अनेक निर्दोष व्यक्तियों की हत्या का उत्तरदायित्व मेरे ऊपर है। आह! इतनी बड़ी ग़लती मैंने जीवन में कभी नहीं की। सखी नलिनी, सच है, प्रेम मनुष्य को अन्धा और उतावला बना देता है। अपने आपे में न रहकर मैंने अपने जीवन में सबसे बड़ी ग़लती कर डाली।

न०—सो क्या मालिनी? मैं तेरी बातों को समझ नहीं रही हूँ।

मा०—तू नहीं समझेगी, क्योंकि मैंने तुझे अपने जीवन का सबसे बड़ा रहस्य नहीं बताया। तेरे साथ मैंने यह बहुत बड़ा अन्याय किया है।

न०—ख़ैर, उस अन्याय का प्रायश्चित्त आज कर डालो। जितनी ही जल्दी बताओगी उतनी ही जल्दी मैं तुम्हें क्षमा कर दूँगी।

मा०—यह तो तुम जानती ही हो कि मैं चारु बाबू की चर्चा किया करती थी, उनके ग्र और लेखों को सदा बड़े चाव से पढ़ती थी। जीवन के प्रभात-काल में मैंने उनका नाम सबसे एक अध्यापिका से सुना और तभी से यह नाम नामवाला व्यक्ति मेरे चित्त पर ऐसा चढ़ा कि किसी प्रकार भुला नहीं सकी।

न०—ठीक है, मैं समझ गई। उस बार भी आई थी, तुम्हें उनकी हत्या के कारण उचित से अस्त-व्यस्त देखा था। परन्तु इस कारण कि चारु सार्वजनिक व्यक्ति थे और उनके सम्बन्ध में सभी को करने का अधिकार है, मेरा ध्यान इस ओर अधिक गया था। अच्छा तो इसी प्रेम की पीड़ा ने तुझे बेचैन कर रक्खा है। क्या तू उनसे ब्याह चाहती थी।

मा०—नहीं, मैं ऐसा चाह कर उनके मार्ग को काकीर्ण क्यों करती? मैं उन्हें केवल दूर से चाहती मेरा स्वार्थ इतना ही था कि वे जैसे हैं वैसे बने सरकार के एक गुप्तचर ने मेरे इतने स्वार्थ को भी नहीं होने दिया। उस नीच ने चारु बाबू के अपना हाथ रँग लिया। इतना ही नहीं, स्वयं क्रान्तिकारी प्रसिद्ध करके सारा दोष बेचारे क्रान्ति के मत्थे मढ़ दिया।

न०—ख़ैर वह पकड़ा तो गया और सरकारी गुप्तचर हो या कोई हो, उसे दण्ड मिलेगा ही।

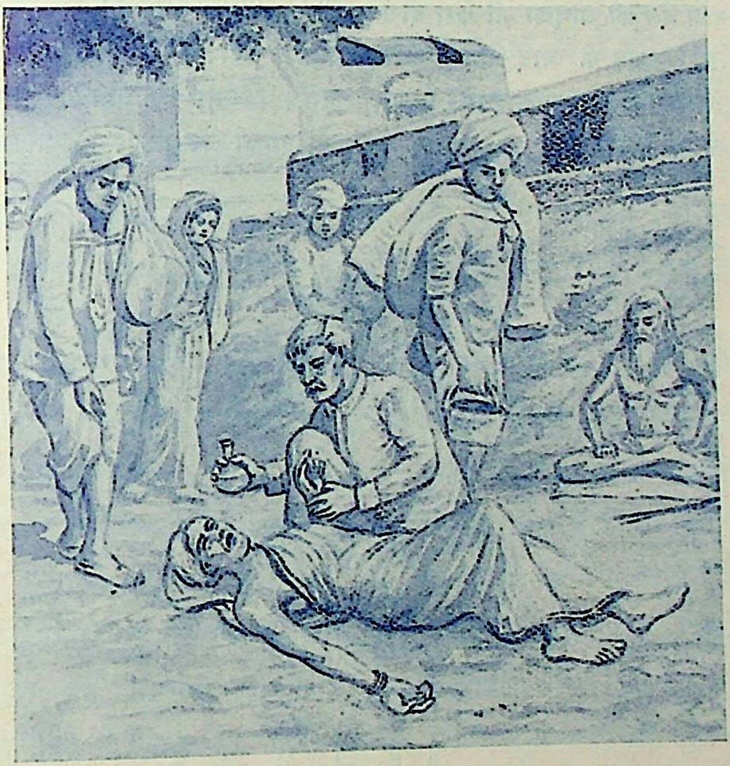
एक आह के साथ करवट बदलते हुए मालि कहा—बहन नलिनी, यही तो नहीं होगा। वह तो मौज करेगा। फांसी होगी हिन्दुस्तानी युवकों कितनी ही स्त्रियां विधवा हो जायँगी, कितनी ही मा के लाल खो जायँगे, कितने ही बच्चों के बाप न और यह सब अपराध मेरे ऊपर। हाय! मैं क्यों अभागी पैदा हुई।

न०—बहन! धीरज धरो। बच्चों की तर इतना कच्चा न करो।

मा०—धीरज क्या धरूँ, मैं हत्यारिन हूँ। मैंने क्या जाने कितने बसे हुए घरों को उजाड़ दिया। और फिर भी देशभक्त होने का घमण्ड मुझे है। आह! आह!!

नलिनी कुछ कहना चाहती थी। किन्तु उसने देखा कि मालिनी बेहोश होगई। घबरा कर उसने उषादेवी को सूचना दी। उन्होंने नौकर भेज कर अस्पताल से डाक्टर साहब को बुलवाया। डाक्टर साहब लड़की की सूरत देखते ही बेचैन होगये। अपनी दवा पर विश्वास न करके उन्होंने सिविल सर्जन को शीघ्र ही आने के लिए फ़ोन किया। उनके आने में आध घंटे की देर थी। इस बीच मालिनी अंट-शंट बकने लगी—

कमलाकर! आह कमलाकर! तुमसे भेंट न हुई होती तो अच्छा था। पाप की मूर्त्ति! तुम मेरे रास्ते में उस समय क्यों आये जब मेरा चित्त अस्वस्थ था। तुमने मेरे अपराध के घड़े को लबालब भर दिया।



[ 'हाय मालिनी' कह कर उषादेवी भूमि पर गिर पड़ी ]

उषादेवी, राधावल्लभ, नलिनी कोई इस प्रलाप का अर्थ न समझ सका। हाँ, राधावल्लभ को इतना सन्देह अवश्य होगया कि कमलाकर नाम का कोई पुरुष है जिससे मालिनी का अनुराग है। मालिनी विवाह से क्यों भागती थी, इसका रहस्य अब वे समझ गये।

सिविलसर्जन साहब ने आकर दवा दी और बहुत अधिक सावधानी करने की ताकीद करके वे चले गये।

( ५ )

दूसरे दिन मालिनी की तबीयत कुछ अच्छी थी। मा से, नलिनी से, नौकरानियों आदि से वह इतनी अच्छी तरह बोली कि सबकी चिन्ता मिट गई। आठ बजे के लगभाग उसे काशी का एक दैनिक पत्र मिला। उसमें यह समाचार था—

कमलाकर द्विवेदी नामक व्यक्ति को जो सरकारी गवाह बनकर अनेक क्रान्तिकारियों की पहचान करने का काम कर रहा था, अभियुक्तों में से एक ने मार डाला और अपना अपराध स्वीकर कर लिया है। अभियुक्त का कहना है कि कमलाकर किसी अभियुक्त को पहचानता नहीं था और सम्भवतः पुलिस से कुछ प्रलोभन पाकर ही असली अपराधी का नाम न बता कर झूठमूठ ही निर्दोष व्यक्तियों को फँसा रहा था।

यह समाचार पढ़ने के बाद ही समाचार-पत्र मालिनी के हाथ से छूट कर भूमि पर गिर पड़ा और वह स्वयं बे-दम सी होकर चारपाई पर गिर पड़ी। थोड़ी देर के बाद वह उठी और किसी से कुछ भी न कहकर चुपचाप बँगले के बाहर चली गई। संयोग की बात, दिन के प्रकाश में

भी किसी को यह न ख़याल आया कि जो मालिनी फाटक तक भी कभी पैदल नहीं जाती थी वह उस दिन कहाँ चली जा रही थी। एक घंटे के बाद नौकरानी उसके कमरे में भोजन की कुछ सामग्री लेकर आई, किन्तु मालिनी का कहीं पता न था। नौकरानी ने उषादेवी से कहा, उषादेवी ने रोते हुए डाक्टर राधावल्लभ से कहा। डाक्टर साहब घबराये हुए थाने की ओर दौड़े गये। मालिनी की हुलिया लिखा कर उन्होंने उसका पता लगानेवाले को १०००) का इनाम देने की घोषणा भी करा दी। किन्तु दिन के बाद सप्ताह, सप्ताह के बाद महीने और महीने के बाद अनेक साल आये और चले गये, किन्तु मालिनी फिर घर लौट कर नहीं आई।

\+ + + +

पूरे दस साल के बाद प्रयाग में कुम्भ लगा। राधावल्लभ और उषादेवी उसी में स्नान करने वहीं मैले-कुचैले कपड़े पहने, अर्द्धनग्न अवस्था में ने एक स्त्री को देखा। उसके बाल कटे हुए थे और और शरीर की दशा करुणाजनक थी। पगली, कह कर लड़के उस पर धूल उड़ाते और कंकड़ और वह भी दाँत किटकिटाती हुई उन्हें मारने को थी। 'हाय मालिनी' कह कर उषादेवी भूमि पर पड़ी। डाक्टर साहब चकित होकर चारों ओर लगे। किन्तु उन्हें वहाँ मालिनी कहीं न दिखाई हाँ, पगली किलकारियाँ मार रही थी।

—गिरी



# अर्थशास्त्र की दृष्टि में खद्दर

[ इस समय खद्दर का महत्त्व देश-व्यापी हो रहा है। इसके प्रचारक महात्मा गांधी इसे दरिद्र-नारायण के दूर करने का साधन समझते हैं। अपने प्रयत्न से वे इसे जो सार्वजनिक रूप दे रहे हैं, लेखक महोदय ने अपने इस लेख में उनकी उस बात का खण्डन किया है, और उनके इस प्रयत्न को आर्थिक दृष्टि से—प्रकारान्तर से—हानिकर बताया है। आपका कहना है कि वर्तमान सभ्यता के प्रभाव के कारण खद्दर को स्थायी रूप ग्रहण करना एक प्रकार से असम्भव है। इस सम्बन्ध में आपने जो सरल दलीलें दी हैं वे विचार करने के योग्य हैं। ]

कई वर्ष से महात्मा गांधी इस बात पर ज़ोर दे रहे हैं कि फिर घर घर में चरख़े का प्रचार हो और हाथ से कपड़े तैयार होने लगें। अपने प्रयत्न में उन्हें बहुत कुछ सफलता भी मिली है। किन्तु वह अवस्था अब भी बहुत दूर दीखती है जब घर घर चरख़े चलें और हाथ से कपड़े बुने जायँ। महात्माजी के चरख़े पर ज़ोर देने के दो तात्पर्य्य जान पड़ते हैं। पहला राजनैतिक और दूसरा आर्थिक। मैं चरख़े के राजनैतिक महत्त्व पर अवश्य विश्वास करता हूँ। खद्दर-प्रचार करके हम लोग लंकाशायर और मैन्चेस्टर के कपड़े के रोज़गार को धक्का पहुँचा सकेंगे और इस प्रकार ब्रिटिश सरकार पर दबाव डाल कर उनकी मानसिक मनोवृत्ति को बहुत कुछ बदल सकेंगे, जिससे वे हमारी स्वराज्य की माँग की ओर कुछ विचार-पूर्वक ध्यान देने लगें।

पर जब महात्माजी उद्योग-धन्धों के आधुनिक उन्नतिशील उपायों के स्थान में चरख़े को ग़रीबों की अन्नपूर्णा बनाना चाहते हैं तब उनका कथन हम स्वीकार नहीं कर सकते। जहाँ तक मैंने उनके भाषणों और लेखों की ओर ध्यान दिया है इन सबसे मुझे कहीं भी यह पता नहीं लग सका है कि चरख़े के द्वारा ब्रिटिश सरकार पर दबाव डालना उनका अभिप्राय है। मुझे तो उन सबसे यही मालूम होता है कि उन्नीसवीं शताब्दी के दूसरे भाग के कारलाइल और रस्किन जैसे विद्वानों की भाँति उद्योग-धन्धों के वर्तमान उन्नतिशील उपाय महात्माजी को भी खटकते हैं और उनकी बुराइयों को भी भारत से दूर करने के लिए वे व्यापार में पूर्ववत् साधारण उपायों का

अनुकरण करना चाहते हैं। महात्माजी के कुछ ऐसे अनुयायी अवश्य हैं जिनकी धारणा है कि महात्माजी ने भारत को स्वतंत्र करने के लिए ही यह उपाय निकाला है और उद्देश के पूरा हो हो जाने पर व्यापार के आधुनिक उपायों का अवलंबन करना वे भारत के लिए हानिकर नहीं समझेंगे।

यह बात यदि पण्डित मोतीलालजी अथवा स्वर्गीय देशबन्धु चित्तरंजन दास के विषय में कही जाती कि उन्होंने खद्दर को स्वराज्य-प्राप्ति का साधन-मात्र माना है और भारत के स्वतंत्र हो जाने पर वे भारत के व्यवसाय में मिलों को स्थान देना हानिकारक नहीं समझेंगे, तब तो शायद कोई इस बात को मान भी लेता। पर यही आक्षेप मैं महात्माजी पर लाने के लिए तैयार नहीं हूँ, क्योंकि महात्माजी सत्य के अवतार हैं और वे अब तक यही कहते आये हैं कि भारत में खद्दर की केवल आर्थिक उपयोगिता ही है।

यह सच है कि भारतीय जनता ग़रीब है और उसमें से अधिक लोग अपनी जीविका के लिए खेती पर ही निर्भर रहते हैं। खेती में इतने अधिक आदमी लग रहे हैं कि प्रति किसान पीछे बहुत ही कम आमदनी होती है। १९२५-१९२६ के भारत की कृषि-संबंधी रिपोर्ट से हमें यह पता लगता है कि ब्रिटिश भारत में खेतों का रक़बा लगभग सत्ताइस करोड़ इक्कावन लाख एकड़ और देशी रियासतों में कुल मिला कर लगभग सात करोड़ पचहत्तर लाख एकड़ है। अर्थात् सम्पूर्ण भारतवर्ष में खेती का कु[ल] लगभग पैंतीस करोड़ अट्ठाइस लाख एक[ड़] है। इतनी ज़मीन पर यहाँ खेती [के] लिए ७,६१,५०,००० किसान और [...] २,१७,५०,००० मज़दूर हैं। केवल [...] की संख्या देखने से यह मालूम होता है [...] किसान के लिए ४-६ एकड़ ज़मीन [...] यदि किसान और मज़दूर दोनों को [...] मिला दें तो प्रति किसान पीछे केवल ३-[...] ज़मीन निकलती है। नीचे दिये हुए अङ्[कों से] यह पता लग जाता है कि अमुक अमु[क प्रांत] में प्रति किसान पीछे अमुक परिमाण में [ज़मीन] निकलती है।

| प्रांत | प्रति किसान पीछे खेती का रक़बा (एकड़ में) | प्रांत |
|---|---|---|
| आसाम | २·९ | मध्य प्रदेश और बरार |
| बंगाल | ३·२ | मदरास |
| बिहार-उड़ीसा | ३·० | पश्चिमोत्तर-सीमाप्रांत |
| बम्बई | १२·१ | पंजाब |
| ब्रह्मदेश | ५·६ | संयुक्त-प्रांत |

इससे यह जान पड़ता है कि साध[ारण] भारतीय किसान अपने परिश्रम करने की [...] का पूरा फ़ायदा नहीं उठा सकता। ३·६ [...] ज़मीन पर खेती करनेवाला किसान उस ज़मी[न ...]

लिए अधिक दिनों तक मज़दूर नहीं रख सकता। खेत के जोतने, बीज बोने और फ़सल काटने के समय तो किसान भरसक परिश्रम करता है। पर साल के बहुत से दिनों तक उसे बेकार बैठा रहना पड़ता है। यही उसकी ग़रीबी का मूल-कारण है। किसानों का उनकी ज़मीन से जो सम्बन्ध होता है उसके कारण ही वे उसे छोड़ कर और शहरों में जाकर पैसा नहीं पैदा कर सकते। इसलिए वर्तमान दशा को सुधारने का केवल एक ही साधन है। वह यही कि कुछ ऐसे रोज़गार क़ायम किये जायँ जिन्हें किसान अपने बेकार दिनों में घर में ही बैठकर चला सकें। चरख़ा-भक्तों का खद्दर-प्रचार के लिए यही बड़ा भारी प्रमाण है, और यह प्रमाण अपनी हद तक सत्य भी है। पर इतने से ही समस्या नहीं हल हो जाती।

भारतीय किसान को वर्तमान अवस्था में जीविका चलाने के लिए थोड़े से ही परिश्रम से काफ़ी पैसा मिल जाता है। पर जिस रोज़गार में अधिक परिश्रम करके थोड़ा सा ही पैसा मिलता है उसे वह स्वीकार नहीं कर सकता। और चरख़ा ऐसे ही रोज़गारों में से एक है। चरख़े के सिवा बहुत से ऐसे सहकारी रोज़गार हैं जिनके द्वारा उसकी आमदनी बढ़ सकती है। जर्मनी में किसान फ़ुर्सत के समय खिलौने बनाकर काफ़ी पैसा पैदा कर लेता है। जापान के किसान भी बहुधा यही धन्धा करते हैं। आर्थिक दृष्टि से प्रत्येक किसान के लिए यह ज़रूरी है कि वह अपने बेकार समय में अन्य उद्योग-धन्धों-द्वारा पैसा पैदा करे। और इसी कारण हम किसी से यह ज़ोर देकर नहीं कह सकते कि तुम अमुक ही रोज़गार करो। यदि यह सत्य है, जैसा कि प्रतीत होता है कि किसानों का बहुत समय बेकार जाता है, और यदि यह भी सत्य है, जो वास्तव में सत्य है, कि उन्हें अपने साधारण जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए काफ़ी पैसा नहीं मिलता, तो फिर निस्सन्देह इस बात की बड़ी भारी आवश्यकता है कि उनके लिए कोई ऐसा उपाय निकाला जाय ताकि वे अपने बेकार समय में भी पैसा पैदा कर सकें।

उनके बेकार समय का कई प्रकार से सदुपयोग हो सकता है। आर्थिक दृष्टि से किसी भी किसान को उसी उपाय का अवलम्बन करना चाहिए जिससे उसे अधिक से अधिक लाभ हो सके। इसके लिए कोई सार्वजनिक सिद्धान्त नहीं बनाया जा सकता है, जिसके अनुकरण करने से सभी लोगों के बेकार समय का एक-सा सदुपयोग हो सके। यह तो देश, काल और अवस्था-भेद पर ही निर्भर है। कौन मनुष्य किस उद्योग-धन्धे का अवलम्बन करे, यह निश्चय करने के पहले बहुत-सी बातों पर विचार करना होगा। जैसे उसके गाँव की अवस्था—उसके पास नदी, पहाड़, नहर, कोई खदान या जंगल है या नहीं, उसकी शिक्षा, उसका सामाजिक जीवन—अमुक काम करने में उसे जातिदण्ड का भागी तो न होना पड़ेगा, उसके घर की अवस्था—उसके घर में कितनी स्त्रियाँ और कितने पुरुष हैं और कौन कौन किस काम के लायक़ हैं इत्यादि।

हम ऊपर लिख चुके हैं कि प्रति किसान पीछे केवल २.६ एकड़ ज़मीन निकलती है।

परिणाम यह होता है कि किसान परिश्रम करने की अपनी सारी योग्यता का सदुपयोग नहीं कर सकता। पर यदि खेती का कुल रक़बा बढ़ा दिया जाय तो उसे इस बात का मौक़ा मिल सकता है। इससे उसकी आमदनी भी बढ़ जायगी। निस्सन्देह भारत में कई स्थानों में अधिक ज़मीन ही नहीं है जहाँ किसानों को अपनी खेती की ज़मीन बढ़ा लेने का अवसर मिले। पर मैं तो यह कहना चाहता हूँ कि जहाँ यह बात सम्भव हो वहाँ अवश्य ही ऐसा किया जाय। जहाँ खेतों के बढ़ाने की गुंजाइश नहीं है, वहाँ किसान नीचे लिखे हुए सहकारी उद्योग-धन्धों में किसी भी एक को अपनाकर अपने बेकार समय का सदुपयोग कर सकता है। जैसे गाय-भैंस पाल कर दूध घी आदि पैदा करना, तरकारी भाजी या फूल-फल पैदा करना, बेत, बाँस या सरकंडे से टेबल, कुर्सी, टोकनी, मोढ़ा, चिक आदि बनाना, सन या मूँज से रस्सी बनाना, लकड़ी या मिट्टी से खिलौने बनाना, सूत कातना, कपड़े बुनना, मुर्गी पाल कर अंडे का रोज़गार करना, ताड़ या खजूर के पत्ते से पंखे बनाना इत्यादि। हमें चरखे से कोई ख़ास दुश्मनी नहीं है, पर हमारे कहने का ख़ास मतलब यह है कि चरखा लोगों की बेकारी दूर करने के लिए कोई सार्वजनिक साधन नहीं माना जा सकता। ऊपर लिखे हुए उद्योग-धन्धों में से काल, देश और अवस्था के भेद के अनुसार किसान किसी भी एक को लेकर अपनी बेकारी दूर कर सकता है। तब प्रत्येक मनुष्य को चरखे का ही पाठ क्यों पढ़ाया जाय?

अब तक हम यह बता चुके हैं कि नारायण के कष्टों को दूर करने के लिए एक सार्वजनिक साधन नहीं बनाया जा[...] हम अब यह कहना चाहते हैं कि आ[...] उन्नतिशील उपायों को हटाकर चरखे और[...] का उपयोग करने का कभी समर्थन नहीं[...] जा सकता है। चरखा उस समय का [...] जब मनुष्य की आवश्यकतायें बहुत सादी और[...] थीं वा उनकी पूर्त्ति थोड़ी सी ही तथा स[...] वस्तुओं से ही हो सकती थी। यदि हम[...] ज़माने की सादगी को ही फिर से अपना[...] चाहते हैं तब तो चरखे का कुछ अस्ति[...] सकता है। पर चरखे को क़ायम करने [...] हमें कुछ प्रश्नों की ओर ध्यान देना चाहिए[...] आज भारतवर्ष वस्तु उत्पन्न करने के आधुनि[...] उन्नतिशील उपायों से लाभ उठाना न चा[...] विज्ञान ने मनुष्यों के आराम और सुख [...] जो जो आविष्कार किये हैं उनसे क्या भा[...] अपने को वंचित रखना चाहता है? य[...] दोनों प्रश्नों के उत्तर में हम "हाँ" कहते[...] भारत में चरखे का कुछ मान हो सकता[...] किन्तु प्रतिदिन भारत की वर्तमान अवस्था[...] देखते हुए मैं दृढ़तापूर्वक कह सकता हूँ कि[...] के दोनों प्रश्नों का उत्तर "हाँ" हमारे पास[...] है। भारत की वर्तमान संतान अपनी आ[...] कताओं को बढ़ाती ही जा रही है और[...] आराम और सुख के लिए नई नई वस्तु[...] खोज में है। इन्हीं आराम और सुख[...] सामग्रियों की खोज में भारत ने अपनी[...]

## कांग्रेस के कुछ स्वर्गीय सभापति और कार्य्यकर्ता



बैठे हुए ( बाईं ओर से )—बी० चक्रवर्ती, ए० चौधरी, कृष्णस्वामी एय्यर, महाराज दरभंगा, दादा भाई नौरोजी, रासबिहारी घोष, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी।

खड़े हुए ( बाईं ओर से )—रतन टाटा, गोपाल कृष्ण गोखले, डी० ई० वाचा, रमेशचन्द्र दत्त, भूपेन्द्रनाथ वसु, सत्येन्द्रप्रसन्नसिंह।

[ २२ वीं कांग्रेस ( कलकत्ता १६०६ ) के अवसर पर लिये गये एक फ़ोटोग्राफ़ से ]

सादगी और शांत जीवन को पाश्चात्यों की तरह खो दिया है। यदि मुझे यह विश्वास हो जाय कि हमारा वह खोया हुआ सरल और शांत जीवन व्यापार की वर्तमान पद्धति को दूर किये बिना नहीं आ सकता तो सबसे पहले मैं इस बात की घोषणा करूँगा कि फिर से हम प्राचीनता की ओर झुकें। पर मेरा तो यह दृढ़ विश्वास है कि वस्तु उत्पन्न करने के आधुनिक उन्नतिशील उपायों को क़ायम रखते हुए भी हम वही सरल और शांत जीवन अनुभव कर सकेंगे। पाश्चात्य देशों की हाल की ही कुछ घटनाओं की ओर ध्यान देने से मेरा कथन सम्भव जान पड़ेगा। उन्हें भी अपनी वर्तमान सभ्यता की बुराइयों का कड़ुआ अनुभव हो चुका है। पर एक-दम से इस वर्तमान सभ्यता ही को छोड़ देने के बदले वे लोग उसकी बुराइयों को ही दूर करते रहे हैं। मज़दूर की मज़दूरी के समय के परिणाम को घटा देना, उनके रहने की सुव्यवस्था करना, उनके स्वास्थ्य, शिक्षा, मनोरंजन आदि के लिए अच्छा प्रबन्ध करना इत्यादि। इन सब सुधारों का उद्देश वर्तमान व्यापारिक पद्धति की कठिनाइयों और बुराइयों को दूर कर देना ही है। वर्षों तक ठोकर खाने के बाद ही योरपवाले इन सब बुराइयों से छुटकारा पा सके हैं। हम लोग भारतवर्ष में उनके अनुभव से लाभ उठा सकते हैं। और उन्हें अपना उदाहरण बनाकर हम इस प्रकार कार्य आरंभ कर सकते हैं ताकि वर्तमान सभ्यता की बुराइयाँ तो हमारे पास फटकने न पावें पर उनसे हम लाभ उठा सकें।

—व्रजगोपाल भटनागर



# स्वराज्य की शिक्षा

[ राष्ट्रोन्नति के लिए राष्ट्रीय शिक्षा की भी आवश्यकता है। अतएव लोक-नेता
प्रयत्न से देश में अनेक राष्ट्रीय विद्यालय चल रहे हैं। लेखक महोदय ने इस लेख में
कुछ महत्त्व-पूर्ण शिक्षा-संस्थाओं का परिचय दिया है, साथ ही उनकी उपयोगिता और
का भी वर्णन किया है। ]

यद्यपि प्राचीन विद्वानों का कथन है कि "शस्त्रेण रक्षिते राष्ट्रे शास्त्र-चिन्ता प्रवर्तते", तथापि शिक्षा-द्वारा ही राष्ट्रों का वास्तविक कल्याण हो सकता है और सच्चे राष्ट्र-सेवकों की रचना होती है। चाहे जहाँ देखिए, जापान, अमरीका, आयर्लैंड अथवा मिस्र—सभी देशों में जनता की जाग्रति में शिक्षा का बड़ा हाथ रहा है। दुर्भाग्य से भारतवर्ष में दो शताब्दियों के ब्रिटिश साम्राज्य के उपरान्त भी आज शिक्षितों की संख्या नहीं के बराबर है और जो कुछ है वह भी आदर्श शिक्षा से कोसों दूर। लार्ड मेकाले ने भारतवर्ष के लिए शिक्षा के जिस आदर्श की कल्पना की थी वह हितकर नहीं सिद्ध हुआ और न उस राजनीतिज्ञ का शायद यह उद्देश ही था। उसने तो ब्रिटिश राज्य को स्थायी बनाने के लिए ही अं[...] के माध्यम द्वारा शिक्षा का प्रसार उपादेय [...] था; और वही हुआ भी।

आज से दस वर्ष पूर्व महात्मा गांधी ने [...]निक शिक्षा-संस्थाओं के बॉयकाट की दुंदुभी [...] थी, पर इसके बहुत दिन पहले कुछ सा[...] संस्थाओं ने राष्ट्रीय शिक्षा का प्रश्न सुलझा[...] प्रयत्न किया था। इस क्षेत्र में सबसे पहले [...] की आर्यप्रतिनिधि-सभा अग्रसर हुई थी [...] नवम्बर १८९८ ईसवी में उसने एक गुरुकु[...] स्थापना का निश्चय किया था। यह उस [...] की बात है जब बंगाल के स्वदेशी आंदोल[...] जनता में राष्ट्रीय जाग्रति फैली भी नहीं थी, [...] शिक्षा की बात तो दूर थी। मार्च १[...] स्वामी श्रद्धानन्द ने जो उस समय महात्मा मुं[...] थे, काँगड़ी के गुरुकुल-विश्वविद्यालय की

दिया। पहले तो यह एक महाविद्यालय के रूप में था, फिर सन् १९११ में विश्वविद्यालय का विकसित रूप प्राप्त कर इसने दो महत्त्व-पूर्ण विभाग—वेद-महाविद्यालय एवं आयुर्वेद-महाविद्यालय—खोले। इस समय तो इसकी शाखायें उत्तर-भारत भर में हैं, और छः वर्ष पूर्व दिल्ली में इसी के अन्तर्गत एक पृथक् कन्या-गुरुकुल की स्थापना हुई है।

आज तक इस गुरुकुल से लगभग २०० स्नातक निकले हैं, जो भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में सफलता-पूर्वक काम कर रहे हैं। पुराने ढर्रे के पंडितों और यहाँ के स्नातकों में बहुत अंतर है। इनमें से २० के लगभग तो योरप, अमरीका आदि दूर देशों की यात्रा भी कर चुके हैं। हरद्वार के ऋषिकुल में यह नई रोशनी अभी तक नहीं पहुँच सकी है और यह उसकी एक बड़ी कमी है। क्योंकि सच्ची शिक्षा का उद्देश जैसा महाकवि मिल्टन ने कहा है, मनुष्य को जीवन की सभी परिस्थितियों में सफल हो सकने की शक्ति प्रदान करना ही है। पुरानेपन में सराबोर प्राचीन पद्धति की लँगड़ी शिक्षा जीवन के लिए उतनी ही निकम्मी है जितनी आधुनिकता से ओतप्रोत आज-कल की अँगरेज़ीपन की उछल-कूदवाली शिक्षा। इस दृष्टि से इस गुरुकुल ने पूर्व और पश्चिम की अच्छी बातों का समावेश करने का प्रयत्न किया है। इसका स्थायी कोष ७ लाख रुपये से ऊपर है; और यद्यपि बाढ़ के प्रकोप से इसकी कुछ दिन पूर्व बहुत हानि होगई थी, यहाँ के प्रधानाचार्य श्रीयुत रामदेवजी के अनवरत परिश्रम से यह गिरने नहीं पाई।

संयुक्त प्रान्तीय आर्य-प्रतिनिधि-सभा ने १९०५ में वृन्दावन में एक दूसरा गुरुकुल स्थापित किया, जिसमें लगभग २०० विद्यार्थी पढ़ते हैं, जिनमें से कुछ स्याम, फ़ीजी, ब्रह्म-देश आदि दूर देशों से भी आये हैं। यहाँ की वार्षिक आय लगभग ७०,०००) है और ब्रह्मचारी को यहाँ २५ वर्ष की आयु तक रहना पड़ता है।

मई १९०९ में प्रसिद्ध देश-भक्त राजा महेन्द्र-प्रताप ने वृन्दावन के प्रेम-महाविद्यालय की स्थापना की और इसके लिए अपने महल के अतिरिक्त ३०,०००) वार्षिक आय की जायदाद दे दी। पूर्वोक्त गुरुकुलों से इस संस्था में एक महत्त्व-पूर्ण विशेषता है। यहाँ औद्योगिक शिक्षा को प्राधान्य दिया जाता है। यद्यपि हिन्दी के माध्यम के अतिरिक्त अँगरेज़ी भी पढ़ाई जाती है, पर प्रत्येक विद्यार्थी को २ घंटे रोज़ कारख़ानों में काम करना अनिवार्य है। इन कारख़ानों में मिट्टी, लकड़ी, कताई, बुनाई, सिलाई आदि काम सिखाये जाते हैं। इंजीनियरी तथा छपाई का काम भी विद्यार्थी सीखते हैं। उनकी बनाई हुई वस्तुओं का बाज़ार में पर्याप्त आदर है। गुरुकुलों की शिक्षा के अतिरिक्त यहाँ उस प्रकार की औद्योगिक एवं व्यावहारिक शिक्षा का भी प्रबन्ध है जो आगरे के दयालबाग़ में विद्यार्थियों को दी जाती है। दयालबाग़ में विद्यार्थियों का एक अपना उपनिवेश-सा है, जहाँ उनकी अपनी ही पानी की कल, बिजली की मशीन तथा म्युनिसिपल्टी हैं। वहाँ वे चाकू, भाले, पीतल के बरतन, लोहे के सामान आदि सभी आवश्यक वस्तुएँ बना लेते हैं और थोड़ी-सी

दैनिक प्रयोग की वस्तुओं को छोड़ कर जीवन की अन्यान्य सामग्रियों के लिए किसी पर निर्भर नहीं रहते। सच्चे स्वराज्य की प्राप्ति के लिए ऐसी ही शिक्षा की देश को आवश्यकता है। प्रेम-महाविद्यालय की वार्षिक आय एक लाख बीस हज़ार के लगभग है और बाबू नारायणदास की देख-रेख में इसका कार्य सुचारु रूप से चल रहा है। आज-कल प्रसिद्ध सुधारक एवं लेखक श्रीयुत ए० टी० गिडवानी इसके प्रधानाचार्य हैं।

गुरुकुल ने कन्याओं के लिए एक संस्था पृथक् तो खोली, पर उसमें वह आधुनिकता नहीं आ सकी जो भारतवर्ष को संसार के अन्यान्य देशों के साथ ले चलने में सहायक हो सकती है। सच बात तो यह है कि किसी भी देश का स्वतन्त्रता के स्वप्न देखने से ही कल्याण नहीं हो सकता जब तक उसकी महिलाओं में जाग्रति न हो। हमारे पूर्वजों ने कहा तो है कि "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता:", पर हमने उस पर कुछ ध्यान नहीं दिया है। नेपोलियन से किसी ने पूछा कि फ्रांस के कल्याण के लिए सबसे आवश्यक क्या है? उस दूरदर्शी वीर ने धीरे से कहा—"आदर्श मातायें।" अस्तु, स्वराज्य की आदर्श शिक्षा का आयोजना में स्त्रियों की शिक्षा का प्रबन्ध न करने से स्वराज्य अधूरा ही रह जायगा।

स्त्रियों के लिए प्रोफ़ेसर डी० के० कर्वे ने बम्बई में एक अलग विश्वविद्यालय की स्थापना की है। इस आवश्यक क्षेत्र में आचार्य कर्वे ने जो काम किया है वह एक पूर्ण जीवन भर का कार्य है और मुख्यत: सामाजिक उद्देश से प्रारम्भ हुआ था। सन् १८९६ में आपने पूना में एक हिन्दू-विधवा-[आश्रम] खोला था और १९१५ में जब आप भारतीय [सामा]जिक कान्फ़रेन्स के सभापति हुए तब अपने [भाषण] में स्त्रियों की भावी यूनिवर्सिटी के सम्ब[न्ध में] कुछ विचार प्रकट किये। एक वर्ष पश्चात् ४ विद्यार्थिनियों से एक कालेज का श्रीगणेश [हुआ] और शीघ्र ही विश्वविद्यालय का संग[ठन] होगया। १९२० में सर विट्ठलदास ठाक[रसी ने] ५२,५००) वार्षिक आय का प्रबन्ध इस सं[स्था के] लिए कर दिया और तब से इसका केन्द्र [बम्बई] होगया। सेठ मूलराज खताऊ ने ३[...] एक छात्रावास के लिए दिया और गुजरात [का एक] कालेज तथा दो स्कूल इससे सम्बद्ध होगये। [तब] से आज तक लगभग ५० ग्रेजुएट स्त्रियाँ [शि]क्षा समाप्त करके निकली हैं। यों तो हिन्दू-विश्ववि[द्या]लय एवं अन्य विश्वविद्यालयों में भी स्त्रि[यों की] शिक्षा का प्रबन्ध है, पर कर्वेजी की इस सं[स्था में] शिक्षा का माध्यम देशी भाषायें हैं और [पाठ्य-] विषयों में पाकशास्त्र, बाल-चिकित्सा, सीना-[पिरोना] आदि भी हैं। इस समय इसके चांसलर [...] चुन्नीलाल मेहता और वाइस-चांसलर [...] परांजपे हैं।

स्त्रियों की शिक्षा के लिए प्रयाग का [महिला-] विद्यापीठ भी अच्छा काम कर रहा है। [असह-] योग के दिनों में इस संस्था की स्थापना [...] पुरुषोत्तमदास टंडन एवं बाबू संगमलाल [...] के परिश्रम से हुई थी। अभी तक इसका का[र्य] केवल परीक्षात्मक होने के कारण संकुचित [...] और आर्थिक संकटों से पढ़ाई का प्रबन्ध [...]

सका है। विद्या-विनोदिनी ( एंट्रेंस ), विदुषी ( बी० ए० ) तथा सरस्वती ( एम० ए० ) की परीक्षायें होती हैं और इसके परीक्षा-केन्द्र देश के अनेक स्थानों में हैं। सभी परीक्षायें हिन्दी में ही होती हैं, जो इस समय राष्ट्रीय माध्यम है। यहाँ की विदुषियों की संख्या कई सौ है और संस्था का अपना एक विशाल भवन भी है।

टंडनजी के ही प्रयत्न से प्रयाग में एक और हिन्दीविद्यापीठ भी स्थापित हुआ है, जो कई वर्षों से साहित्य-सम्मेलन के अन्तर्गत कार्य कर रहा है। यह संस्था शहर से दूर यमुना-पार है, जहाँ लगभग १०० एकड़ की भूमि में खेती की भी व्यावहारिक शिक्षा दी जाती है। सम्मेलन की परीक्षाओं के अतिरिक्त विद्यार्थियों को खेती तथा नाव चलाने आदि की भी शिक्षा दी जाती है और वे खेतों में स्वयं काम भी करते हैं। यहाँ राष्ट्रभाषा सीखने के लिए मदरास से भी कई विद्यार्थी इस समय आये हैं और युक्तप्रांत के कई ज़िलों के डिस्ट्रिक्टबोर्डों ने अपने विद्यार्थियों को छात्र-वृत्तियाँ देकर यहाँ शिक्षा के लिए भेजा है। सभी शिक्षा हिन्दी-द्वारा दी जाती है और भावी हिन्दी-विश्व-विद्यालय संभवत: इसी संस्था का विकसित रूप होगा।

यों तो इन्दौर के मालव-विद्यापीठ जैसे अर्वाचीन गुरुकुल की भाँति देश में और भी कितने ही पुराने गुरुकुल हैं, पर असहयोग के दिनों में राष्ट्रीय ढंग की शिक्षा देने के उद्देश से जो विद्यापीठ स्थापित हुए हैं उनमें काशी-विद्यापीठ, अहमदाबाद का गुजरात-विद्यापीठ, बिहार-विद्यापीठ तथा दिल्ली का जामै-मिल्लिया इसलामिया मुख्य हैं।

काशी-विद्यापीठ की नींव महात्मा गांधी ने स्वयं डाली थी और बाबू शिवप्रसाद गुप्त ने १०,००,०००) का दान इस संस्था के लिए देकर इसे अमर बना दिया है। इसके पास थोड़ी-सी भूमि भी है, जो ४१,०००) में ख़रीदी गई थी और जिसके एक भाग में लगभग एक लाख रुपये की लागत की इमारतें बनाई गई हैं। विद्यापीठ का कार्य तीन विभागों में बँटा है—विद्यालय-विभाग, शिल्प-विभाग तथा प्रकाशन-विभाग। ज्ञानमंडल ने संवत् १९८२ से अपना पुस्तक-विभाग इस संस्था को दे दिया है और तब से ज्ञानमंडल-ग्रंथमाला यहाँ से निकलने लग गई है। संवत् १९८५ से 'विद्यापीठ' नाम की एक त्रैमासिक पत्रिका भी यहाँ से प्रकाशित होती है, जिसके संपादक यहाँ के कुलपति डाक्टर भगवानदास तथा आचार्य नरेंद्रदेवजी हैं। जब से विद्यापीठ ने पुस्तक-प्रकाशन का कार्य अपने हाथ में लिया है, यहाँ से कुछ अच्छे अच्छे ग्रंथ निकले हैं। यहाँ विद्यार्थियों के लिए चरखे अथवा तकली पर सूत कातना, खादी पहनना तथा छुआछूत का विचार न रखना आवश्यक है। महाविद्यालय में विवाहित विद्यार्थी पढ़ तो सकते हैं, पर छात्रावास में नहीं रह सकते, परन्तु कुमार-विद्यालय में तो कोई विवाहित बालक पढ़ भी नहीं सकता। प्रयाग के हिन्दी-विद्यापीठ की भाँति यहाँ भी शिक्षालय अथवा छात्रावास में कुछ शुल्क नहीं लिया जाता और विद्यार्थियों की चिकित्सा का भी नि:शुल्क प्रबंध है। पहले

यहाँ के बालविद्यालय में छोटे छोटे बच्चों की भी भरती की जाती थी, पर थोड़े दिनों से यह विभाग बंद कर दिया गया है। कुमार एवं महाविद्यालय में विद्यार्थियों की संख्या क्रमशः ५५ तथा २८ है, पर प्रारंभ में यह संख्या २०० तथा १०० के लगभग थी। खेद का विषय है कि स्थापना के पश्चात् निरन्तर विद्यार्थियों की संख्या में कमी आती गई, पर गत तीन वर्षों से यह बात नहीं है।

बाबू शिवप्रसाद गुप्त ने अपनी सभी पुस्तकें, जिनकी संख्या लगभग २०,००० है, विद्यापीठ को दे दी हैं। शिल्पशाला में बढ़ई, बेंत तथा दर्ज़ी का काम सिखलाया जाता है, पर अधिकारियों का कहना है कि इसमें विशेष सफलता नहीं हो सकी है। विद्यापीठ की ओर से नगर में भिन्न-भिन्न विषयों पर व्याख्यानों का प्रबन्ध भी किया जाता है और बाहर की कुछ पाठशालायें भी इससे संबद्ध हैं। आज तक यहाँ से ३१४ विशारद और ५१ शास्त्री निकल चुके हैं, जिनमें से कुछ संपादन, कुछ राष्ट्रीय अध्यापन, कुछ खद्दर, कुछ अछूतोद्धार तथा मज़दूर-संगठन का कार्य कर रहे हैं और कुछ अभी विद्यापीठ में ही विशेष अध्ययन कर रहे हैं। इस संस्था की ओर से एक राष्ट्रीय शिक्षा-सम्मेलन की आयोजना हो रही है, जिसमें सभी ग़ैरसरकारी शिक्षा-संस्थाओं के प्रतिनिधि तथा अन्य शिक्षा के विशेषज्ञ निमंत्रित किये जायँगे और अनेक समस्याओं के विचार के बाद एक स्थायी शिक्षा-समिति की स्थापना होगी। इस सम्मेलन की आवश्यक सामग्री एकत्र करने के लिए विद्यापीठ के एक प्रतिनिधि महो[दय] की सभी राष्ट्रीय शिक्षा-संस्थाओं में गये [हैं।] उनके अनुभव के अनुसार एक विस्तृ[त] तैयार हो रहा है।

यहाँ का समावर्तन-संस्कार प्राचीन प[द्धति] होता है और देखने योग्य होता है। [...] ने १०,००,०००) के दान से अपने छोटे [...] स्मृति में "श्रीहरप्रसाद-शिक्षानिधि" की [...] करके इस संस्था को चिरस्थायी बना [...] क्योंकि इस रुपये का सूद ६०,०००) वार्षि[क] है, जो शिक्षा में ही व्यय होता है।

गुजरात-विद्यापीठ की स्थापना भी अ[...] के ही समय हुई थी। यहाँ भी हिन्[दी] शिक्षा अनिवार्य है और इसका मुख्य [...] स्वराज्य-प्राप्ति के लिए सभी प्रकार के आ[...] में भाग लेनेवाले कार्यकर्त्ता तैयार क[...] शिक्षा का माध्यम गुजराती है और बौद्धिक [...] के साथ साथ औद्योगिक शिक्षा को भी [...] देना इस संस्था की विशेषता है। यहाँ के [विद्या]र्थियों ने गुजरात के गाँवों में ग्राम-संगठन [...] कार्य किया है और बारडोली-सत्याग्रह [...] अग्रगण्य भाग लिया है। यहाँ ४०,०० [...] अधिक मूल्य की पुस्तकें हैं।

इस संस्था को महात्मा गांधी के सा[...] सत्याग्रह-आश्रम के निकट होने से [...] आदर्शों की पुष्टि करने में बड़ी सुवि[धा] [...] क्योंकि यद्यपि महात्माजी का उद्देश इस [...] में शिक्षा देना नहीं, राष्ट्रीय सेवक एवं [...] के कार्यकर्ता तैयार करना है, तथापि [...]

नैतिक राष्ट्रीय शिक्षा प्रदान करना ही इसका अन्तिम ध्येय है।

बिहार-विद्यापीठ दीघाघाट में गंगाजी के तट पर है, और इसकी भी स्थापना सन् १९२१ में हुई थी। इसके प्रमुख कार्यकर्ताओं में मौलाना मजहरुल हक़, बाबू व्रजकिशोर तथा बाबू राजेन्द्रप्रसाद आदि सज्जन हैं। इसके अन्तर्गत पटना राष्ट्रीय महाविद्यालय के अतिरिक्त और भी अनेक विद्यालय हैं, जिनकी संख्या ५० से ऊपर है और जिनमें लगभग ४,००० विद्यार्थी शिक्षा पाते हैं। यहाँ बंगाली तथा बिहारी विद्यार्थी विशेषत: पढ़ने आते हैं और प्राय: बाहर पेड़ों के नीचे ही पढ़ाई होती है। यहाँ के पुस्तकालय में ४,००० के लगभग पुस्तकें हैं और सबसे बड़ी विशेषता यहाँ की यह है कि यहाँ की वैज्ञानिक प्रयोगशाला के कितने ही यंत्र महाविद्यालय के शिल्पागार में ही बने हैं। शिक्षा का माध्यम हिन्दुस्तानी है और उपाधिप्राप्ति के लिए तीन वर्ष का पाठ-क्रम है। यहाँ राजनीति एवं इतिहास की शिक्षा में प्राचीन भारतीय राजनैतिक जीवन की भी तुलनात्मक विवेचना की जाती है और आधुनिक भारतीय इतिहास के विषय में जो भ्रम हैं उन्हें निवारण करने का प्रयत्न किया जाता है। विद्यार्थियों के जीवन में धार्मिकता लाने के लिए प्रार्थना के अतिरिक्त रात को रामायणपाठ विद्यार्थियों के लिए अनिवार्य है।

दिल्ली की जामै-मिल्लिया इसलामिया उर्दू का राष्ट्रीय विद्यापीठ है, जहाँ अरबी तथा फ़ारसी की उच्च शिक्षा के अतिरिक्त विज्ञान एवं इतिहास के विश्वस्त ग्रंथों के प्रकाशन का भी प्रबन्ध है। काशी-विद्यापीठ की भाँति इसके पास भी एक छापाख़ाना और पुस्तक-विक्रय-भांडार है। यहाँ एक उत्तम वाचनालय भी है, जिसकी देख-रेख उर्दू-एकाडेमी करती है। यह एकाडेमी इसी संस्था के अंतर्गत है और यह उर्दू-साहित्य का बड़ा उपकार कर रही है। एकाडेमी के अधिष्ठाता एक विद्वान् सज्जन डाक्टर सैयद आबिद हुसेन, एम० ए०, पी-एच० डी० हैं।

इन संस्थाओं के अतिरिक्त डॉक्टर ऐनी-बेसेंट के थियोसफ़िकल एजूकेशनल ट्रस्ट तथा डाकूर रवीन्द्रनाथ ठाकुर के शांति-निकेतन ने भी राष्ट्रीय शैली पर कुछ शिक्षा का कार्य किया है। डाकूर बेसेंट के ट्रस्ट के अन्तर्गत कई स्कूल एवं कालेज हैं, जिनमें बालक-बालिकायें शिक्षा पा रही हैं, पर शिक्षा का माध्यम है अँगरेज़ी। रवि बाबू की संस्था प्राय: कलात्मक है और राष्ट्रीय उद्देश उसमें अन्तर्निहित है, स्पष्ट नहीं।

इस संबंध में स्वर्गीय लाला लाजपतराय के तिलकस्कूल ऑफ़ पालिटिक्स, सर्वेंट्स ऑफ़ इंडिया सोसायटी, पूना की सेवासदन-सोसायटी तथा लोकमान्य तिलक की डेकन एजूकेशन सोसायटी का भी उल्लेख किया जा सकता है। तिलक-स्कूल में राजनैतिक प्रचारकों की, पूना के सेवासदन में महिला-शिक्षकों की तथा सर्वेंट्स ऑफ़ इंडिया सोसायटी में भावी नेताओं की ट्रेनिंग होती है। डेकन एजूकेशनल सोसायटी ने भारत के उस प्रांत में कई कालेज स्थापित किये हैं जो राष्ट्रीय तो नहीं कहे जा सकते, पर जिनका उद्देश वास्तव में राष्ट्र की सेवा ही करना है।

हम समझते हैं कि राष्ट्रीय विद्यालयों में जब तक खेती, व्यवसाय तथा दैनिक जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति करनेवाली शिक्षा की ओर अधिक ध्यान न दिया जायगा और केवल बौद्धिक अथवा मानसिक विकास को ही प्रधानता दी जायगी तब तक इनके द्वारा स्वराज्य-प्राप्ति अथवा राष्ट्र-सेवा का कार्य अच्छी तरह न हो सकेगा है, इस ओर ध्यान देते हुए हमारे भावी कार्यक्रम बनायेंगे।

—श्रीराम





सेठ जमनालाल बजाज



बाबू राजेन्द्रप्रसाद



श्रीनरसिंह चिन्तामणि केलकर



डाक्टर सत्यपाल

# जवाहर

मे.ती-लाल जहाँ लसै दसै जवाहर जोति;
ऐसे आनद-भवन मैं कमला विकसित होति।
लँगरे नैं दिल्ली दली बीर जवाहर जाट;
जसी जवाहर तेज सों विचलित लन्दन-लाट।
तू कठोर जड़ जगत मैं धनिकन ही को दास;
जसी जवाहर मृदुल यह चेतन, निधनिन आस;
हाट-हाट मैं विकत तू निपट कठोर महान।
जसी जवाहर मृदुल पर लुटत राज सनमान।
तू कमला के विभव को कनुका एक लखात;
नाथ जवाहर आपु है कमला को अवदात।
काहू धनिक गरे परो तू लालच जंजाल;
भारत को शृङ्गार वह जसी जवाहरलाल।
बड़े-बड़े जौहरिन नैं आँको विविधि उपाय;
भारत जौहर जवाहिर मोल न आँको जाय।
भारत सरबरि को करै जासु जवाहिर जोति;
जगत जौहरिन चखन मैं चकाचौंध भरि देति।

—कृष्णविहारी मिश्र

F. 16

# स्वराज्य-आन्दोलन और साम्प्रदायिक समस्या

[ भारतवासियों को स्वराज्य-प्राप्ति के लिए जहाँ अँगरेज़ राजनीतिज्ञों की ... का सामना करना पड़ रहा है, वहाँ इस देश के साम्प्रदायिक मत-भेदों से भी उनके मार्ग ... बाधा पड़ रही है। वास्तव में साम्प्रदायिक समस्याओं की ही जटिलता के कारण यहाँ के ... कार्य-कर्ता असाध्य साधना करके भी अपने उद्देश की ओर विशेष रूप से नहीं अग्रसर हो ... भारत में कैसे साम्प्रदायिक मतभेद हैं, उनके क्या कारण हैं, और उनके कारण राजनैतिक ... लन में कैसी बाधा पड़ रही है, इस लेख में लेखक महोदय ने इन्हीं विषयों पर विचार किया ...

धर्म की दृष्टि से गणना करने पर हिन्दू, मुसलमान, ईसाई और पारसी चार मुख्य धर्मों के लोग ही भारत में निवास करते हैं। बौद्ध-धर्मावलम्बियों की संख्या नहीं के बराबर है। इन चार मतों के उपासकों में से पारसियों का प्रश्न जटिल नहीं है। एक तो इनकी संख्या दाल में नमक के बराबर भी नहीं है, दूसरे ये जितने हैं भी उनमें से अधिकांश बम्बई-नगर की छोटी-सी चहारदीवारी के ही अन्दर हैं। तीसरे इनकी संख्या वर्ष-प्रति-वर्ष घट रही है और आश्चर्य नहीं यदि कुछ वर्षों में इस प्राचीन जाति का सदैव के लिए अन्त हो जाय। अब तक पारसियों की धार्मिक और सामाजिक कट्टरता ने ही उनके जातीय अस्तित्व को सुरक्षित रक्खा था। यदि उनमें यह बात न होती तो वे पारस में रहते हुए ही मुसलमान धर्मावलम्बी हो जाते और इतनी

दूर भाग भारत में आकर आश्रय ग्रहण ... पर इधर कुछ वर्षों से इस ऐतिहासिक ... एक-दम शिथिलता आगई है। जहाँ भारत ... निवासियों में दो-चार पुरुष साक्षर हैं और ... प्रायः सभी निरक्षर हैं, वहाँ पारसी-स... लगभग सभी नर-नारी देशी भाषा ही नहीं, ... भाषा के ज्ञान से भी वंचित नहीं हैं। ... योरपीय रीति-रवाजों का काफ़ी प्रचार हो ... और दिन-प्रति-दिन होता जा रहा है। ... स्वरूप आज का पारसी-समाज बहुत कुछ ... हो चुका है। प्रतिवर्ष पर्याप्त संख्या में ... नारियाँ योरपीय अथवा योरपीय रहन-स... अनुयायी अन्य भारतीय समाजों के पुरुषों ... अन्तर्जातीय विवाह करने लगी हैं। दूरदर्शी ... की भविष्यवाणी है कि यदि पारसी-समाज ... एक यह गति न बदली ( जिसकी आशा ... व्यर्थ प्रतीत होता है ) तो थोड़े ही ...

"पारसी" नाम केवल इतिहास के पृष्ठों पर रह जावेगा। पारसियों में राजनैतिक साम्प्रदायिकता छू भी नहीं गई है। स्वराज्यान्दोलन के प्रारंभ में ही दादा भाई नौरोजी, फ़ीरोज़शाह मेहता आदि नेताओं ने जिस उदारनीति का बीजारोपण किया वह अब सफल हुई है। पारसियों ने कौंसिलों में अपना पृथक् प्रतिनिधित्व करने के लिए भी कभी कोई आन्दोलन नहीं किया।

ईसाइयों का प्रश्न ज़रा जटिल है और वह देशी ईसाइयों के कारण नहीं। देशी ईसाई-समाज ने स्वराज्यान्दोलन की ओर से उदासीनता दिखलाई है, किन्तु अपने पृथक् साम्प्रदायिक हकों पर कभी नहीं ज़ोर दिया। इतना ही नहीं, अखिल भारतीय ईसाई परिषदों ने साम्प्रदायिकता-विरोधक प्रस्तावों को वर्ष-प्रति-वर्ष स्वीकृत कर अन्य सम्प्रदायों को मार्ग भी दिखलाया है। जो कुछ प्रश्न है वह है एँग्लो इन्डियन और योरेशियन ईसाइयों का। यह वर्णसंकर-समुदाय अब तक यह नहीं निश्चय कर सका कि वह योरपीय है अथवा भारतीय। इस समाज के प्रतिशत ९९ लोग योरपीय बनने और कहलाने के उत्कट अभिलाषी हैं, पर इससे "मनोरथानामगतिर्न विद्यते" की उक्ति ही चरितार्थ होती है। योरपीय बन जाने में जो कठिनाइयाँ हैं उनमें से दो अलंघनीय हैं। प्रथमतया विशुद्ध रक्त के योरपीय इन्हें योरपीय मानने से एक-दम इनकार करते हैं। विद्या-वैभव के कारण दो-एक व्यक्ति भारत के योरपीय समाज में चाहे सम्मिलित हो जायँ, किन्तु पूरा का पूरा समाज योरपीय नहीं हो सकता। दूसरी कठिनाई है "वर्ण" अथवा रङ्ग की। एक एँग्लो इंडियन महिला ने कुछ ही समय पूर्व लिखा था कि इस समय उसका सारा समाज गौर-वर्ण के बच्चे पैदा करने के उद्योग में लगा है! पर प्रकृति की निष्ठुरता देखिए, कभी कभी क्या अनेक बार "कृष्ण" का अवतार हो ही जाता है!! उसी उच्च-हृदया रमणी का लेख है कि ऐसे मङ्गलमय अवसर पर "बालकृष्ण" के दर्शन होते ही एँग्लो इंडियन परिवारों में केवल साधारण रोदन ही नहीं, कोहराम मच जाता है!!! कुछ समझदार और कुछ उदार-हृदय एँग्लो इंडियनों ने अब अपने को "भारतीय" कहने में ही अपना और अपने समाज का कल्याण समझा है। इनकी संख्या इस समय नहीं के बराबर है, पर भविष्य इन्हीं के साथ है। योरपीय शासन के कारण यह समाज आज योरपीय होना चाहता है और भारतीय शासन के उदय के साथ यह अपनी योरपीय अभिलाषाओं का निश्चय अंत कर देगा। एँग्लो इंडियन जाति प्रखर-बुद्धि तथा उद्यमशील है। भारतीय समाज का अंग बनते ही उससे देश को लाभ पहुँचने लगेगा।

अब हम मुसलमान-समाज की जटिल समस्या पर विचार करेंगे। इस समय शायद ही कोई भारतीय हो जिसने इस सम्बन्ध में कुछ न कुछ विचार न किया हो। अनेक लोगों को मुस्लिम प्रश्न असाध्य प्रतीत होता है। लेखक का इन लोगों से तीव्र मतभेद है। सच कहा जाय तो "हिन्दू-मुस्लिम-एकता" चिल्ला-चिल्ला कर ही लोगों ने हिन्दू-मुस्लिम-एकता को दुष्कर कर दिया है। दो विशाल समाजों में एकता न सबके चिल्लाने से होती है और न दो-चार राजनीतिज्ञों

के दो-चार दिनों के उत्कट प्रयत्नों से ही होती है। इस समस्या की तह में भूतकाल के ऐतिहासिक कारण हैं और उन्हें भविष्य का इतिहास आप ही आप हल कर देगा—यदि वर्तमान राजनीतिज्ञ "एकता" स्थापित करने के अथवा वैमनस्य के बीज बोने का प्रयत्न न कर परिस्थिति के अनुकूल न्याय और विचार से काम लें तो।

इस समय भारत का मुसलमान-समाज साम्प्रदायिकभावों से लबालब भरा है और हिन्दू-समाज उसे इसके लिए दिन-रात कोसता है। पर भारतीय राजनीतिज्ञों को इस युद्ध में न पड़ भविष्य को ध्यान में रख कर अपनी वर्तमान-नीति का निर्म्माण करना चाहिए। मुसलमान-समाज की साम्प्रदायिकता का प्रधान कारण क्या है? इसके अनेक उत्तर दिये गये हैं, किन्तु हमारी समझ में मध्य-कालीन भारत में शताब्दियों तक मुसलमानों के साम्राज्य और राज्यों का होना ही इसका एक और एक-मात्र कारण है। हिन्दू कहते हैं, देश हमारा है, अतएव उस पर मुसलमानों का कोई हक़ नहीं। मुसलमान कहते हैं कि देश तुम्हारा भले ही रहा हो, पर हम इस पर भूत-काल में शताब्दियों तक राज्य कर चुके हैं और फिर करने की अभिलाषा रखते हैं। हिन्दू-समाज पानीपत में पृथ्वीराज की पराजय से लेकर पलासी के युद्ध तक का सारा इतिहास भूल जाना चाहता है और प्राचीन भारत की हिन्दूसत्ता, हिन्दूधर्म तथा हिन्दू-संस्कृति को फिर से स्थापित करना चाहता है। मुसलमानों की दृष्टि में मुहम्मद ग़ोरी के प्रवेश के पूर्व भारत का कोई विशेष इतिहास था ही नहीं और यदि था तो किसी असभ्य जाति का था जिसकी ओर आ[ँख] फेंकना भी व्यर्थ है। दोनों भूल में हैं। [...] युवक को अक्ल के दाँत निकलते ही सम[झना] चाहिए कि न तो ख़ैबर की घाटी बन्द [हो] सकती है और न हिमालय को समुद्र में डा[ल] कोई अभेद्य दीवार खड़ी की जा सकती है। यह संभव भी होता तो वायुयानों के इस [युग में] आकाश-मार्ग पर कोई अभेद्य पर्दा नहीं डा[ला जा] सकता। भूत-काल में भारत हिन्दुओं का दे[श] हो चाहे नहीं, भविष्य में यह उनका देश तभी [होगा] जब उनकी भुजाओं में शक्ति, मस्तिष्क में बुद्धि [और] हृदय में उच्च संस्कृति का निवास रहेगा। इसी [प्रकार] मुसलमान-समाज भारत के प्राचीन हिन्दू[...] और अपनी वर्तमान स्थिति को न देख[...] मारना चाहता है। वह यह विस्मृत कर[...] कि इस्लामी सभ्यता के स्रोत फ़ारस और [...] भारत से उधार लेकर ही पहले-पहल अपनी बढ़ाई थी। यह विस्मरण चाहे क्षम्य हो, अपनी वर्तमान स्थिति पर ध्यान न देना [...] जनक है। हिन्दुओं के मुक़ाबले मुसलमानों [की] संख्या कम है और प्रजातंत्र-शासन में जन[...] ही पर सब कुछ निर्भर है। मुसलमान [...] कि इस देश में उनका "अल्पमत" (Mi[nority]) है, किन्तु कुछ बहके हुए मुसलमानों ने अपने अल्पमत के सामने एक विशेषण [...] प्रारंभ किया है। वे कहने लगे हैं कि [...] अल्पमत "शक्तिमान् अल्पमत" (Dy[...] Minority) है। मुसलमान हिन्दुओं की[...] किस प्रकार अधिक शक्तिमान् हैं, यह

समझ में नहीं आता। विद्या तथा धन में वे आज हिन्दुओं के सामने कुछ भी नहीं हैं। चार पाँच वर्ष के साम्प्रदायिक झगड़ों में "डण्डेबाज़ी" में भी वे कभी अपनी शक्ति नहीं दिखला पाये। हाँ यह अवश्य है कि मुसलमान-समाज में साम्प्रदायिक बन्धु-भाव और फलस्वरूप उत्पन्न छोटा-सा सङ्गठन है। पर साम्प्रदायिकता विष है, जो स्पर्श करते ही किसी भी समाज के सर्वाङ्ग में व्याप्त हो सकता है। साम्प्रदायिकता सीखने में विशेष विलम्ब नहीं लगता। पिछले चार-पाँच वर्षों में हिन्दुओं ने इसे थोड़ा-बहुत सीख लिया है। यदि मुसलमानों ने स्वयं साम्प्रदायिकता न छोड़ी तो हिन्दू-समाज कुछ ही वर्षों में इसमें भी उनसे बढ़ जायगा।

हिन्दू-समाज में यद्यपि मुसलमानों की-सी संघ-शक्ति नहीं है, तथापि इधर कुछ वर्षों से उसमें एक गुण-विशेष का प्रादुर्भाव हुआ है। सारी हिन्दू-जाति समानरूप से भारत को प्यार करने लगी है और सबकी एक-मात्र राजनैतिक अभिलाषा भावी भारत में प्रजातंत्र-शासन क़ायम करना है। लेखक इसे भारत के उज्ज्वल भविष्य की सबसे बड़ी गारंटी मानता है। मुसलमानों में इस प्रकार का कोई उच्च आदर्श काम नहीं कर रहा है। यद्यपि इस्लाम-धर्म में साम्यवाद को विशेष स्थान दिया गया है, तथापि इस्लामी इतिहास उसका ज़रा भी समर्थन नहीं करता। अशिक्षित मुसलमान 'बादशाह,' 'पादशाह', 'शाहंशाह', 'सुलतान' और 'नवाब' शब्दों के अन्दर ही संसार के सारे राज-नैतिक विचारों की इतिश्री समझता है। प्रजातंत्र किस चिड़िया का नाम है, यह वह जानता ही नहीं है। उसकी आँखें अब भी ख़ैबर की घाटी के उस पार इस्लामी देशों की ओर लगी हैं। वह समझता है कि बीसवीं सदी में भी कोई न कोई मुहम्मद गज़नी अथवा ग़ोरी उत्पन्न होकर हिन्दुस्तान में मुस्लिम-साम्राज्य क़ायम कर सकता है। अधिकांश शिक्षित मुसलमान अपने अशिक्षित भाई की इस अभिलाषा को मृगतृष्णा समझने लगे हैं। वे जानते हैं कि भावी भारत में प्रजातंत्र शासन का स्थापित होना अनिवार्य है। पर प्रजातन्त्र-शासन में विद्या और वाणिज्य-बुद्धि तथा अध्यवसाय के बल पर ही किसी सम्प्रदाय तथा व्यक्ति का प्रधानत्व हो सकता है। शिक्षित मुसलमान शिक्षित हिन्दुओं के सामने इन गुणों में अपने को बहुत पीछे पाते हैं। फलतः अपनी कमज़ोरी को छिपाने के लिए उन्हें साम्प्रदायिकता का सहारा लेना पड़ता है। इनकी माँग है कि योग्यता अथवा अयोग्यता का कोई विचार न होकर भारतीय तथा प्रान्तीय सरकारों, विश्वविद्यालयों, अदालतों तथा अन्य सार्वजनिक संस्थाओं में उनके लिए एक तिहाई स्थान रिक्त रक्खे जायँ!

हिन्दू-समाज अशिक्षित मुसलमानों की उपर्युक्त अभिलाषा से सशंकित है और शिक्षित मुसलमानों की माँग से बे-तरह चिढ़ता है। जब उसे सरकारी अफ़सर मौक़े बे-मौक़े मुसलमानों को प्रोत्साहित करते मालूम होते हैं तब वह आग-बबूला हो जाता है। वह देखता है कि एक ओर कुआँ है और दूसरी ओर खाईं। यदि मुसलमानों की माँगें स्वीकार कीं तो जातीय हानि होती है और यदि उन्हें सरकारी अफ़सरों के आश्रय में जाने दिया

तो स्वराज्य का आन्दोलन कमज़ोर पड़ता है। कुछ मुसलमान भी हिन्दू-समाज की इस परिस्थिति को समझ गये हैं और अँगरेज़ तथा हिन्दू जाति के स्वराज्य के संघर्ष में दोनों से लाभ उठाने का प्रयत्न कर रहे हैं।

हिन्दू-समाज को और हिन्दू-नेताओं को एक बात न भूलनी चाहिए। संसार में ऐसा कोई देश नहीं है जहाँ "अल्पमत" (Minority) का प्रश्न न मौजूद हो। संसार में ऐसा कोई देश नहीं है जहाँ के "अल्पमत" ने प्रजातन्त्र शासन का उसी प्रकार स्वागत किया हो जिस प्रकार "बहुमत" करता है। संसार में ऐसा कोई देश नहीं, जहाँ प्रजातन्त्र स्थापित होते ही "अल्पमत" की साम्प्रदायिक अभिलाषाओं का अंत न हो गया हो। मुसलमान भी अपने धर्म, भाषा, लिपि, रीति-रिवाजों को उतना ही प्यार करता है, जितना हिन्दू अपनी संस्कृति को करता है। जहाँ तक उसका उपाय चलेगा वह अपने "व्यक्तित्व" को नष्ट होने से बचावेगा। पर क्या मुसलमान का "व्यक्तित्व" भावी भारत में अक्षुण्ण रह सकता है? लेखक का यह निश्चित मत है कि नेहरू-रिपोर्ट के विरुद्ध मुसलमानों का आन्दोलन उनका सबसे बड़ा आन्दोलन है और इसके पश्चात् उन्हें परिस्थिति के सामने 'सिर झुकाना पड़ेगा'। उनका और उनकी संस्कृति का प्रभाव उनके गुणों की मात्रा में ही रह सकेगा। केवल साम्प्रदायिकता के बल पर कुछ भी होना कठिन है।

इस तरह जहाँ हम एक ओर यह चा[हते हैं] कि हिन्दू-समाज मुसलमानों की अभिलाषा[ओं और] माँगों से आवश्यकता से अधिक न खीं[चे,] हम यह भी चाहते हैं कि हिन्दू-जाति अप[ने] भारत के प्रति भी अन्याय न होने दे। [हि]... मुसलमानों की उपर्युक्त साम्प्रदायिक माँगों [को] हमें दृढ़तापूर्वक "न" कह देना चाहिए। [साम्प्र]दायिकता को हमें कहीं भी स्थान नहीं देना [है।] किन्तु मुसलमानों की कुछ माँगें ऐसी हैं जो पूर्णतया साम्प्रदायिक हृदय से ही निक[लीं,] किन्तु एक-दम अन्याय-पूर्ण नहीं जँचतीं। [इस] प्रकार की माँगों में से एक माँग पश्चिमोत्तर [सीमा] प्रान्त में शासन-सुधारों का प्रचलित किया [जाना] और सिन्ध का पृथक्करण है। हमें यहाँ इन के विवाद में नहीं पड़ना है, क्योंकि हमें [ज्ञात] है कि इन प्रश्नों पर गहरा मतभेद है। पर [यह] कहना स्वयं अपने लिए अनुचित न हो[गा कि] नितान्त गहरे विचार के पश्चात् भी हमें [इनमें] कोई भयप्रद बात नहीं दीखी। हम इस बा[त से] अपरिचित नहीं हैं कि सिन्ध और पश्चिमो[त्तर] सीमाप्रान्त पड़ोसी मुसलमानी राज्यों से मिले हैं और इनमें मुसलमानों का प्रधानत्व चिन्ता[जनक] समझा जा सकता है। किन्तु यदि गंभीरता[पूर्वक] विचार किया जाय तो विदित होगा कि यदि [इन] प्रान्तों के मुसलमान भविष्य में भी साम्प्रदा[यिक] भावों से परिपूर्ण रहें तो ख़ैबर की घाटी से [आने] वाले शत्रु का साथ वे हर हालत में देंगे, चाहे [सिन्ध] पृथक् प्रांत रहे और चाहे बम्बई के साथ। [इस] प्रकार इन दोनों प्रान्तों के हिन्दू आक्रमणका[रियों]

का यथाशक्ति मुक़ाबला दोनों अवस्थाओं में करेंगे। संक्षेप में मुस्लिम-आक्रमण के समय सिन्ध तथा सीमान्त-प्रान्त में गृह-युद्ध (civil war) अनिवार्य हो जायगा। बात प्रान्तों को समान सुधार देने अथवा उनके पृथक्करण अथवा एकीकरण की नहीं है। प्रधान बात है, प्रान्तों पर भारत की केन्द्रीय सरकार को यथोचित अधिकार देने की। श्रीयुत मुहम्मदअली जिना सिन्ध के पृथक्करण पर ज़्यादा ज़ोर देते हैं और मियाँ मुहम्मद शफ़ी प्रान्तों को "अवशिष्ट अधिकार" (Residuary powers) देने पर। हम शफ़ी साहब को जिना महोदय की अपेक्षा कहीं अधिक ख़तरनाक समझते हैं और जिना के साथ देशभक्त हिन्दू समझौता कर सकता है, पर शफ़ी के साथ नहीं। प्रान्तों को केन्द्रीय सरकार से भी अधिक शक्तिशाली करने के प्रश्न पर समझौता हो ही नहीं सकता।

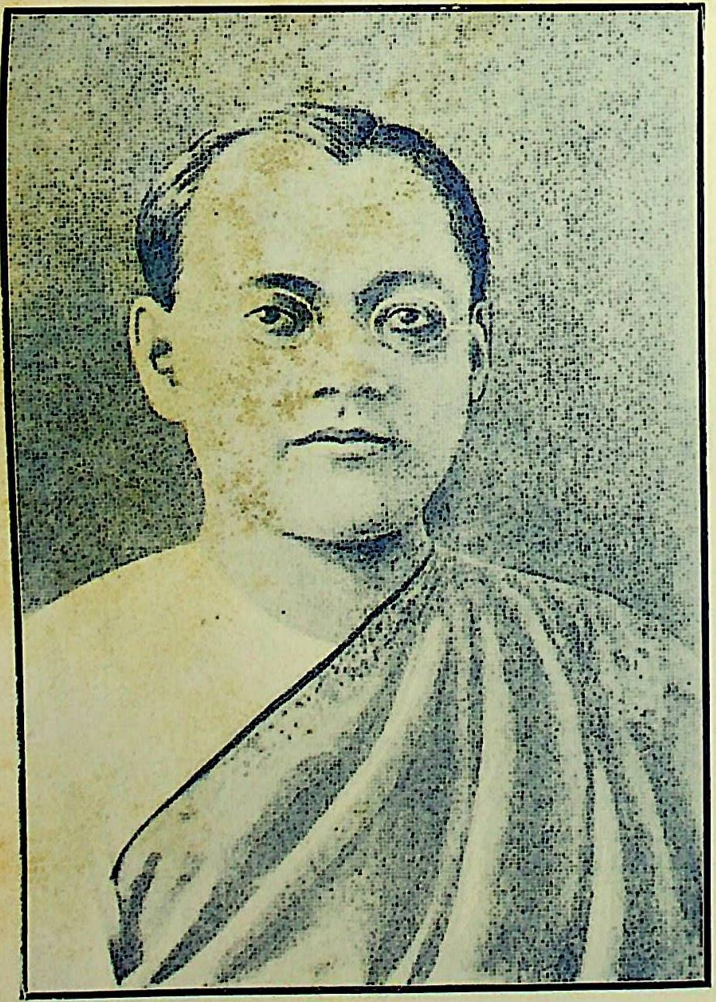
सिक्खों का प्रश्न इसी प्रश्न से मिलता-जुलता है, अतएव उस पर भी हमें दो शब्द कहने हैं। सिक्ख हिन्दू हैं, पर साम्प्रदायिकता के इस युग में उन्होंने भी अपने पृथक्त्व की आवाज़ उठाई है। पहले-पहल तो सिक्खों की इस साम्प्रदायिकता का मुसलमानों ने स्वागत किया, क्योंकि इससे पंजाब में हिन्दुओं का बल और भी कम हो जाता है। किन्तु सिक्खों की माँगों ने मुसलमानों की माँगों का खोखलापन और भी सिद्ध कर दिया। मुसलमानों के इस तर्क का कि मध्यकालीन भारत में उनका राज्य रहने के कारण उन्हें भारतीय शासन में विशेष स्थान रहना चाहिए, सिक्खों ने यह उत्तर दिया है कि केवल ७५ वर्ष पूर्व पंजाब में सिक्खों का राज्य रहने के कारण पंजाब के शासन में उनका ख़ास स्थान होना चाहिए! संक्षेप में सिक्ख भी अपने को "शक्तिमान् अल्पमत" समझते हैं। यथार्थ में देखा जाय तो वे मुसलमानों से कहीं अधिक शक्तिमान् हैं। सिक्खों की साम्प्रदायिकता का अन्त मुसलमानों की साम्प्रदायिकता के साथ ही होगा। सिक्खों का भारत के बाहर की किसी जाति के साथ नाता-रिश्ता नहीं। अतएव बाहर से आनेवाले शत्रु का मुक़ाबिला वे अपनी पूरी शक्ति से करेंगे। पर क्या किसी पड़ोसी मुस्लिम देश की आँखें सचमुच भारत पर लगी हैं? हमारी समझ में नहीं। आस-पास के सभी देश आज भी इँग्लेंड की सर्वग्राही सत्ता से भयभीत हो आत्मरक्षा के प्रयत्नों से ही छुट्टी नहीं पाते। साथ ही जब तक भारत स्वतंत्र नहीं हो जाता, उसकी रक्षा का भार इँग्लेंड पर रहेगा। जब भारत इतना शक्तिशाली हो जायगा कि वह इँग्लेंड के अधिकार से अपने को मुक्त कर लेगा तब वह क्षुद्र अफ़ग़ानिस्तान तथा फ़ारस की क्या परवा करेगा? यह भी असंभव नहीं है कि भारत तथा इँग्लेंड अपने पारस्परिक प्रश्न को शान्तिमय समझौते से हल कर लें। उस दशा में क्या अँगरेज़ राजनीतिज्ञ मुसलमानों की अनुचित साम्प्रदायिक अभिलाषाओं का उसी प्रकार समर्थन करेंगे जैसा कि आज कर रहे हैं? उस दिन की परिस्थिति आज की अवस्था के एकदम विपरीत होगी। केन्द्रीय सरकार को शक्तिशाली रखने में ब्रिटिश-साम्राज्य के राजनीतिज्ञों का उतना ही बड़ा स्वार्थ होगा जितना कि हिन्दुओं

का। इस भावी नीति का पूर्व्वाभास हमें आज भी उस रिपोर्ट में दीख सकता है जो साइमन-कमीशन के साथ सहयोग करनेवाली पंजाब प्रान्तीय कमिटी ने तैयार की है। मियाँ मोहम्मद शफ़ी के अनुयायी इस कमिटी के मुसलमान सदस्यों ने "अवशिष्ट अधिकारों" (Residuary powers) के प्रान्तों को देने का प्रश्न उठाया है। कमिटी के सभी हिन्दू सदस्यों ने इस मन्तव्य का विरोध किया है। अँगरेज़ सदस्यों ने किसका साथ दिया? हिन्दू सदस्यों का। तात्पर्य यह है कि आज भी विचारशील अँगरेज़ ब्रिटिश साम्राज्य तथा भारत दोनों के कतिपय समान स्वार्थ[illegible] थोड़ा-बहुत ज्ञान रखता है।

हम मानते हैं कि भारत के रा[illegible] आकाश में आज सबसे अधिक डरावना [illegible] साम्प्रदायिक कलह का है। पर इसमें प्र[illegible] की शक्ति नहीं है। हिन्दुओं की इस देश [illegible] अधिक संख्या है। अतएव हिन्दू नेता तथा [illegible] पर विशेष उत्तरदायित्व है। यदि [illegible] विचार से और दूसरे ने धैर्य्य के साथ का[illegible] तो आगामी पचास वर्षों में भारत फिर से [illegible] कम एशिया-महाद्वीप का मुकुट हो सकता [illegible]

—द्वारकाप्रसा[illegible]





श्रीयुत सुभासचन्द्र बोस



श्रीयुत जतीन्द्रमोहन सेन गुप्त

# राष्ट्रपति पंडित जवाहरलाल नेहरू

"संसार बदल गया है और दिन प्रति-दिन बड़ी तीव्र गति से बदलता ही जा रहा है। इस परिवर्तन को न देखना और अपने आपको इसके अनुकूल न बनाना भारी मूर्खता है। निस्सन्देह इसका यह अर्थ नहीं है कि हम समस्त प्राचीन बातों को छोड़ दें और प्रत्येक पश्चिमी बात की नक़ल कर लें। परन्तु हमें यह समझने का प्रयत्न अवश्य करना चाहिए कि जीवन की दौड़ में हम बहुत पिछड़ गये हैं। भारतवर्ष सर्वथा शान्त और शिथिल पड़ गया है। युवकों को देश में समुचित परिवर्तन उपस्थित करना चाहिए।"

उपर्युक्त कथन हमारे राष्ट्रपति पंडित जवाहरलाल नेहरू का है। यही इनका विश्वास है, यही इनकी धुन है, इसी की इन्हें चिन्ता है। रात-दिन, सोते-जागते, उठते-बैठते ये इसी भावना में रहते हैं कि भारतवर्ष की अकर्मण्यता कैसे दूर हो, वह स्वाधीन राष्ट्र कैसे हो। यही कारण है कि ये राजसी सुख का परित्याग करके एक साधारण सैनिक की भाँति सब प्रकार के कष्ट सहते हैं और निरन्तर देश के कार्य्य में लगे रहते हैं।

इस वर्ष भारतवर्ष ने पण्डित जवाहरलाल नेहरू को अपना राष्ट्रपति चुना है। आज-कल भारतवर्ष का राष्ट्रपति होना सिर पर पहाड़ उठाना है। भारतीय राष्ट्रनायक के ताज को महात्मा गांधी ने काँटों का ताज कहा है और उन्होंने यह भी कहा है कि इस समय केवल पंडित जवाहरलाल नेहरू ही एक ऐसे व्यक्ति हैं जिनमें यह ताज धारण करने का बल, साहस और धैर्य्य है।

भारतवर्ष में इस समय युवक-आन्दोलन ज़ोर पकड़ रहा है। भारतीय युवक अपनी अवस्था की मर्य्यादा का अनुभव करने लगे हैं और उसकी रक्षा के लिए वे सब प्रकार के कष्ट सहने को तैयार हैं। राष्ट्र को जकड़नेवाले प्राचीन धार्मिक और सामाजिक बन्धन अब भारतीय युवकों को नहीं बाँध सकते। वयोवृद्ध नेता जहाँ फूँक फूँक कर पैर रखते हैं, वहाँ वे सिर के बल कूद पड़ना चाहते हैं। इन युवकों को सङ्गठित करके एक निश्चित दिशा की ओर चलाने की शक्ति इस समय एक-मात्र पंडित जवाहरलाल नेहरू में है। इस दृष्टि से भी देश नें उन्हें अपना राष्ट्रपति चुना है।

पंडित जवाहरलाल नेहरू भी महात्मा गांधी की भाँति व्यावहारिक आदर्शवाद के समर्थक हैं। जिस कार्य को करना अपना कर्तव्य समझते हैं, उसी को करते हैं और बड़ी तत्परता से करते हैं। यही कारण है कि इन्होंने देश के राजनैतिक क्षेत्र

में ख़ासी जाग्रति उत्पन्न कर दी है। इनमें महात्मा गांधी का सा सत्याग्रह, पंडित मोतीलाल नेहरू का सा कठोर शासन, श्रीमती एनी बेसेंट का सा अथक परिश्रम, डाक्टर अनसारी का सा मेलमिलाप, पंडित मदनमोहन मालवीय का सा मिष्ट भाषण और श्रीमती सरोजनी देवी का सा उत्साह भरा है। सब नेताओं के कुछ न कुछ गुण इनमें मौजूद हैं। दलित भारत का यह बड़ा भारी सौभाग्य है कि उसे पंडित जवाहरलाल नेहरू जैसा नररत्न प्राप्त है। हम भारतवासी इनका जो सम्मान करें, थोड़ा है। देश ने इन्हें राष्ट्र का सर्वोच्च सम्मानास्पद स्थान देकर इनके प्रति अपने अनुराग और विश्वास का परिचय दिया है। इन्होंने इतने अल्प समय में इतनी उन्नति कैसे की, यह बात इनकी जीवनगाथा से स्पष्ट हो जाती है।



[ पण्डित जवाहरलाल नहरू ( अचकन पहने हुए ) ]

जवाहरलालजी का जन्म प्रयाग में १४ सन् १८८९ ईसवी को हुआ था। इनके हमारे राष्ट्रीय भवन के विशाल स्तम्भ पंडित मो नेहरू ने बड़ी सावधानी और उत्तम इनका लालन किया। इनके जीवन के से इस बात चलता है। अँगरेज़ी दे के लिए अध्यापक र थे और इनकी कांश शिक्षा में ही हुई थी लोगों का ख़याल है कि से शिक्षित लौटने पर विद्यार्थी कोई कार्य सकते जवाहरलाल चरित्र को माता-पिता बालक को जैसा चाहें वैसा सकते हैं। इन्होंने केम्ब्रिज के ट्रिनिटी में प्रकृति-विज्ञान का अध्ययन किया इनर टेम्पिल से बैरिस्टरी की परीक्षा की थी।

१९१३ से १९२० तक जवाहरलालजी ने बैरिस्टरी की। सन् १९२० में असहयोग-आन्दोलन में ये विलायत से लौटने पर १९१२ से ही भाग लेने लगे थे। मिसेज़ बेसेंट के होमरूल लीग से भी इनका



[ बालक जवाहरलाल तथा उनकी बहन ]

आरम्भ हुआ नहीं कि इन्होंने बैरिस्टरी करना बन्द कर दी और देश-सेवा का पथ ग्रहण किया। कांग्रेस सम्बन्ध था। १९१७ के स्वराज्य-आन्दोलन में भी इन्होंने यथेष्ट भाग लिया था। पर देश को

इनकी सम्पूर्ण सेवाओं की आवश्यकता थी। उसकी माँग ये कैसे अस्वीकार कर सकते थे?

कांग्रेस की ओर से पञ्जाबी भाइयों की जो सेवा की जा सकती थी वह की और उनके ऊपर



[ पण्डित जवाहरलाल नेहरू ( बैरिस्टर ) ]

सन् १९१९ में मार्शल ला के रूप में पञ्जाब पर जब विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ा तब इन्होंने

गये अत्याचारों को लेखबद्ध करके सामने उपस्थित किया। इससे राष्ट्रीय

को जो बल मिला उसे पाठक जानते ही होंगे।



[ पण्डित जवाहरलाल नेहरू ( जेल में ) ]

पंडित जवाहरलाल नेहरू अपने आत्म-सम्मान का बड़ा ख़याल रखते हैं। इनकी मनोवृत्ति भी बड़ी स्वाधीन है। ये किसी प्रकार का असिद्धान्तिक बन्धन नहीं पसन्द करते। इसका एक उदाहरण लीजिए। सन् १६२० में अफ़ग़ान-राज-प्रतिनिधि जब मसूरी में सन्धि-कान्फ़्रेंस के लिए

आये थे तब ये भी वहाँ गये थे। भारत-सरकार ने इनसे इस बात का वचन लेना चाहा कि ये उन प्रतिनिधियों से न मिलेंगे। ये उन लोगों को नहीं जानते थे, न उनसे मिलना ही चाहते थे, परन्तु सिद्धान्ततः ये किसी प्रकार का वचन नहीं देना चाहते थे। परिणाम यह हुआ कि सरकार ने इन्हें मसूरी से बाहर ही बाहर जाने की आज्ञा दी। पर इन्होंने ऐसी आज्ञा मानने से इनकार कर-दिया। कुछ दिनों के बाद सरकार को अपनी आज्ञा रद करनी पड़ी।

अवध के किसान-आन्दोलन में भी जवाहर-लालजी ने ख़ूब भाग लिया था और इन्हीं के सहयोग का फल था कि उस आन्दोलन ने इतना उग्र रूप धारण कर लिया था। सरकार ने अवध के किसानों के लिए जो 'अवध टिनेंसी एक्ट' बनाया है वह इस आन्दोलन का ही फल है। इससे किसानों की अवस्था में कुछ सुधार होगया है और वे सङ्गठन के महत्त्व को समझने लगे हैं।

सन् १९२१ ईसवी के दिसम्बर मास में जब असहयोग-आन्दोलन बड़े ज़ोरों पर था, पंडित जवाहरलाल नेहरू अपने कार्य्यों और प्रभावशाली व्यक्तित्व के कारण गिरफ़्तार कर लिये गये और ६ महीने के लिए जेल में बन्द कर दिये गये। इससे देश में बड़ा जोश फैला और स्वराज्य-आन्दोलन में जो थोड़ी-बहुत शिथिलता थी वह भी जाती रही। ३ महीने पश्चात् ये छोड़ दिये गये। पर उसके कुछ ही दिनों बाद फिर गिरफ़्तार किये गये और इन्हें डेढ़ साल की सज़ा मिली। इसके ९ महीना पश्चात् जब प्रान्त के बहुत से राजनैतिक कार्यकर्ता छूटे [illegible] छोड़ दिये गये।

१९२३ में जवाहरलालजी नाभा में गि[illegible] गये। उन दिनों वहाँ के अकाली सिक्खों की ओर से कुछ अत्याचार हो रहा था [illegible] सम्बन्ध में कुछ जानने की इच्छा से [illegible] गये थे। इन्हें नाभा-राज्य से बाहर [illegible] की आज्ञा दी गई, पर इन्होंने [illegible] को नहीं स्वीकार किया। इस गिरफ़्तारी [illegible] यही कारण था। इसके फलस्वरूप [illegible] मास की सज़ा का हुक्म सुनाया [illegible] षड्यन्त्र रचने का आरोप करके इनको [illegible] का भी प्रयत्न किया गया, पर न जाने क्या [illegible] वहाँ की सरकार ने इन्हें शीघ्र ही छोड़ [illegible]

पंडित जवाहरलाल नेहरू में कार्य[illegible] की विलक्षण शक्ति है। सन् १९२[illegible] कांग्रेस के प्रधान मंत्री का कार्य्य कर[illegible] इस पद से ये केवल दो वर्ष के लिए (सन् [illegible] अलग हुए थे। वह भी इसलिए कि [illegible] अपनी धर्मपत्नी श्रीमती कमला नेहरू [illegible] कराने के लिए योरप जाना पड़ा था। अपनी उस यात्रा के समय में भी ये योरप [illegible] में कांग्रेस के पक्ष में वहाँ का लोकमत [illegible] करने का प्रयत्न करते रहते थे। फ़र[illegible] १९२७ में ब्रुसेल्स में साम्राज्य-विरोधी संघ [illegible] अधिवेशन हुआ था। उसमें ये कांग्रेस के [illegible] की हैसियत से सम्मिलित हुए और [illegible] इन्होंने भारत की स्वाधीनता के प्रश्न को [illegible] स्वतंत्र नागरिकों का भी प्रश्न बनाया। [illegible]

इस संघ की कार्य्य-कारिणी समिति के सदस्य हैं। इसके पश्चात् नवम्बर सन् १९२७ में रूसी प्रजातंत्र की दसवीं वर्षगाँठ का महोत्सव हुआ, जिसमें भाग लेने के लिए ये रूस गये।

जवाहरलालजी को हिन्दुस्तानी सेवा-दल से बड़ा प्रेम है। इनकी सम्मति में राष्ट्रोन्नति के लिए सुशिक्षित, योग्य और कष्ट सहन करने के लिए सदा तैयार रहनेवाले स्वयंसेवकों की इन्हें बड़ी आवश्यकता है। इसीलिए इस दल की उन्नति और इसके संगठन के लिए ये सदा प्रयत्न करते रहते हैं। सन् १९२३ और १९२७ में ये हिन्दुस्तानी सेवा-दल के सभापति भी रह चुके हैं। इसके अतिरिक्त ये प्रजातंत्र-परिषद् और अखिल भारतवर्षीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस के भी सन् १९२७ और १९२८ में सभापति हो चुके हैं। गत दो वर्षों से देश में जो युवक-आन्दोलन चल रहा है उसमें भी इनका काफ़ी भाग है। देश के किसान, मज़दूर, युवक सभी इनको अपने प्राण समझते हैं। सबकी उन्नति की चिन्ता इन्हें सदा बनी रहती है। पर ये उन व्यक्तियों में नहीं हैं जो केवल सोचा ही करते हैं। ये जो सोचते हैं उसी के अनुसार कार्य्य भी करते हैं। इनके इतने लोकप्रिय होने का यही रहस्य है।

पाठकों से यह बात न छिपी होगी कि मदरास-कांग्रेस ने पूर्ण स्वाधीनता का प्रस्ताव पास किया था। उस प्रस्ताव को कांग्रेस में उपस्थित करने और उसके पास कराने का श्रेय पंडित जवाहरलाल नेहरू को ही है। १९२८ में 'इंडिपेन्स लीग' स्थापित कराने में इनका विशेष हाथ रहा है। कलकत्ते के अधिवेशन में कांग्रेस ने यह प्रस्ताव पास किया कि साल भर के भीतर यदि भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य नहीं मिलेगा तो वह पूर्ण स्वाधीनता के लिए जनवरी १९३० से युद्ध छेड़ देगी। इस प्रस्ताव से इस लीग का कार्य्य शिथिल पड़ गया है और हाल में वायसराय की घोषणा से यह आशा की जा रही है कि अब ब्रिटेन भारतवर्ष की इस उचित माँग को नहीं ठुकरा सकता। यदि ब्रिटेन ने इस अवसर पर समझदारी से काम न लिया तो निश्चित है कि पंडित जवाहरलाल नेहरू निकट भविष्य में और भी अधिक लगन से स्वाधीनता के लिए प्रयत्न करेंगे और उस मार्ग में जो बाधायें आयेंगी उन सबको सहर्ष सहन करेंगे।

इसमें सन्देह नहीं कि पंडित जवाहरलाल नेहरू रात-दिन काम में जुटे रहते हैं। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि इनका जीवन एक मशीन का सा जीवन है। ये बड़े सहृदय हैं। इन कामों के बीच ये प्रायः हँसते रहते हैं। इन्हें खेल-कूद का भी बड़ा शौक़ है। ये अच्छे घुड़सवार और तैराक भी हैं। पहाड़ों पर चढ़ने और घूमने में इन्हें बड़ा मज़ा आता है। छोटे बच्चों का समाज भी इन्हें बहुत प्रिय है। अपनी १२ वर्ष की बालिका इन्दु को इन्होंने अनेक विषयों की जानकारी से पूर्ण चिट्ठियाँ लिखी हैं। ये चिट्ठियाँ अँगरेज़ी में हैं और हाल ही में ये पुस्तक रूप में प्रकाशित हुई हैं।

हमें इस समय एक ऐसे नेता की आवश्यकता है जो केवल ज़बानी ही जमा-ख़र्च न रखता हो,

किन्तु जो कहे उसको करता भी हो, जो अपने सिद्धान्तों पर सदा दृढ़ रहे, जिसमें सचाई, निर्भयता, धैर्य्य, साहस और सहृदयता आदि गुण हों, जिसमें जनता का विश्वास हो और जो अपनी धुन का पक्का हो। पंडित जवाहर-लाल नेहरू में ये सब गुण मौजूद हैं। यही कारण है कि इस युग का नेतृत्व आज इनके हाथ में आगया है। हम चाहते हमारे नवयुवक इनके जीवन से अपने जीवन निर्माण करने में शिक्षा लें और इनके मिशन सफल बनायें*।

—लक्ष्मीशं

"मैं उस गवर्नमेंट के प्रति असन्तोष का भाव रखना एक गुण समझता हूँ कि सम्पूर्ण रूप से पूर्व की किसी भी शासन-प्रणाली की अपेक्षा भारत का अधिक अ किया है। भारतवर्ष ब्रिटिश-शासन में जितना पुरुषार्थहीन होगया है उतना पहले कभी था। इस विश्वास के कारण मैं इस शासन-पद्धति के प्रति प्रेमभाव रखना पाप समझता हूँ

महात्मा गान्धी।

* इस लेख में प्रकाशित चित्र हमने लाजर्नल प्रेस-द्वारा प्रकाशित पंडित जवाहरलाल नेहरू के लिये हैं। इस अलबम में आपके जीवन से सम्बन्ध रखनेवाले अनेक सुन्दर चित्र हैं। सम्पादक

# स्वराज्य के पथ पर

भारत की राष्ट्रीय महासभा जब बाईस वर्ष की हो चुकी थी उस समय प्रथम बार "स्वराज्य" शब्द का उसकी कार्यावली में प्रवेश हुआ। सन् १९०६ ईसवी में कलकत्ता-कांग्रेस के सभापति स्वर्गीय दादा भाई नौरोजी ने अपने भाषण में सबसे पहले इस शब्द का व्यवहार किया था।

स्वराज्य संस्कृत-शब्द है, इस कारण अत्यन्त प्राचीन है। फिर भी कांग्रेस के मन में बाईस वर्षों तक स्वराज्य की भावना नहीं आई। ऐसा करना बड़े साहस का काम होता; पर महासभा का श्रीगणेश दुःसाहसिक आन्दोलन के रूप में नहीं हुआ। इसकी आकांक्षायें इधर-उधर के छोटे-मोटे संशोधनों-सुधारों तक परिमित थीं। फिर भी इसकी दिल्लगी उड़ाई जाती थी, और इसके अस्तित्व के चतुर्थ वर्ष में एक वाइसराय ने इसे अति अल्पसंख्यक व्यक्तियों (microscopic minority) की सभा बतलाया था।

> लेखक महोदय ने इस लेख में बताया है कि जिस राष्ट्र ने स्वतन्त्र होने का पक्का इरादा कर लिया है उसे संसार की कोई शक्ति अपने अधीन नहीं रख सकती। आपका कहना है कि अभी देश में स्वराज्य के लिए त्याग की मात्रा यथेष्ट नहीं है, और जितना त्याग है उससे अधिक प्राप्ति की आशा करना व्यर्थ है।

जिन परिस्थितियों (condition) में इस समय भारतवर्ष है उनमें परिवर्तन कराने के लिए प्रयत्नशील कोई भी आन्दोलन उन लोगों से जिनके हाथ में शासन की बागडोर है, प्रोत्साहन नहीं पा सकता, यदि महासभा न होती, आन्दोलन न होता, अशान्ति न होती, तो भारतवर्ष अब भी वहीं रहता जहाँ पचास वर्ष पहले था। इस काल में जो सुधार हुए हैं वे अपर्याप्त हैं और आन्दोलन के दबाव में पड़ कर अनिच्छापूर्व्वक स्वीकृत हुए हैं, इसलिए नहीं कि जनता के अधिकार राजनैतिक बुद्धिमत्ता के साथ स्वयं स्वीकार कर लिये गये हैं। फिर विदेशी शासन से अधिक और क्या आशा की जा सकती है? और इस विवाद-रहित तथ्य को ध्यान में रखते हुए सरकार की बहुत-कुछ आलो-

चना अनावश्यक है। सरकार का वर्तमान रूप कोई आश्चर्य की बात नहीं, आश्चर्य्य तो तब होता जब वह इसके सिवा और कुछ होती।

संसार के किसी भी भाग में विदेशी शासन का सन्तोष-जनक होना असम्भव है, साथ ही देशी शासन भी प्रत्येक अवस्था में ईश्वर का प्रसाद ही नहीं कहा जा सकता है। शासक और शासन-पद्धति पर ही सब कुछ निर्भर है। फ्रांसीसियों के तो अपने राजा थे, रूसियों और चीनियों के तो अपने सम्राट् थे। पर उन राज्य-विधानों का विध्वंस क्यों किया गया? प्रश्न तो यह है कि राज-तन्त्र जिसमें राजा अपने ही देश का है, स्वराज्य है या नहीं?

देशी रियासतों में किसी हद तक स्वराज्य है। राजा विदेशी नहीं है, राज्य से धन बाहर नहीं चला जाता और यद्यपि नीति के विशेष मामलों में ब्रिटिश रेज़ीडेंट की राय मुख्य है, तथापि कोरी घर की बातों में बाहरी हस्तक्षेप बहुत कम है। पर यदि ब्रिटिश भारत के किसी निवासी से यह कहा जाय कि तुम अपना वासस्थान उठाकर देशी-राज्य में ले जाओ तो क्या वह राज़ी होगा? यदि नहीं तो क्यों नहीं?

अनेक देशी रियासतें कुशासन-ग्रस्त हैं, अनेक देशी शासक अयोग्य हैं, और बहुधा प्रजा की स्वतंत्रता सुरक्षित नहीं है। निस्सन्देह इसके अपवाद भी हैं; किन्तु यह स्पष्ट है कि जिस स्वराज्य की चर्चा हम कर रहे हैं वह देशी रियासतों के स्वराज्य से भिन्न है। सन् १९०६ से यह स्वराज्याकांक्षा अस्पष्ट रूप से मन में जागती रही और उत्तरोत्तर बढ़ती गई और इसकी माँग दिन दिन स्पष्टतर और अधिक आग्रहशील होती रही है। जब कोई राष्ट्र या देश स्वाधिकार-स्वी[illegible] (self-recognition, *i.e.*, recognition of [illegible] birthright) का दावा करता है और दूसरे [illegible] मान लेते हैं उस समय यह आवश्यक नहीं [illegible] प्रथम ही से सर्व्वथा सुस्पष्ट और सुनिर्दिष्ट [illegible] (schemes) तैयार हो। राष्ट्रीय-पद (status) [illegible] विशाल प्रश्न हल हो जाने पर छोटी-छोटी [illegible] (details) सहज ही संतोष-जनक रीति से [illegible] की जा सकती हैं। इसकी आवश्यकता [illegible] होने के पहले भिन्न-भिन्न विधानों को तैयार [illegible] और उन पर बहस करना, उनकी आलोचना [illegible] घोड़ा न होते चाबुक ख़रीदने के समान है। [illegible] राष्ट्र अपनी व्यवस्था आप करने के अयोग्य [illegible] है। और पक्षान्तर में यह कहा जा सकता है [illegible] जब एक राष्ट्र दूसरे के कार्य्यों पर अधिकार [illegible] लेता है तब उसकी यह क्रिया बलपूर्वक अप[illegible] कही जाती है।

भारत की परिस्थितियाँ (conditions) [illegible] हैं। शासन-पद्धति केवल इसी अर्थ में विदेशी [illegible] कि अन्तिम अधिकार एक विदेशी शक्ति [illegible] हाथ में है। शासन के प्रायः समस्त विभागों [illegible] देशी कर्म्मचारी ही कार्य्य चलाते हैं। जो शक्ति [illegible] इस शासन-यन्त्र को चला रहा है वह विदेशी [illegible] परन्तु कारख़ाने के श्रमिक इसी देश के [illegible] भारतवर्ष इच्छा-पूर्वक विदेशी शासन को सह [illegible] रहा है; यह बात ध्यान ही में नहीं आती [illegible] अनिच्छाशील वा विद्रोही भारत अधिक [illegible]

तक किसी अन्य राष्ट्र-द्वारा बल-पूर्वक कैसे बाध्य (coerce) किया जा सकता है। किसी राष्ट्र के संख्याबल का कोई मूल्य नहीं; स्थिर निश्चय होने की शक्ति ही पर सब कुछ निर्भर है। जिस राष्ट्र ने स्वतन्त्र होने का पक्का इरादा कर लिया है उसे संसार की कोई शक्ति अपने अधीन नहीं रख सकती।

मुझे स्मरण है कि राष्ट्रीय महासभा का प्रथम अधिवेशन बम्बई में सन् १८८५ में हुआ था और उसमें उपस्थित सज्जन संख्या में सौ से अधिक नहीं थे। फिर एक दिन ऐसा भी आया जब महासभा के बहुत से पुराने सदस्य घबराकर उससे पृथक् होगये, यद्यपि कांग्रेस का नूतन विचार अर्थात् स्वराज्य की माँग सर्वथा उचित और स्वाभाविक थी। ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, लोगों की दृष्टि-शक्ति निर्मल होती गई और उन्होंने अनुभव किया कि भारतवर्ष को वही स्थान मिलना चाहिए जो साम्राज्य के अन्य भागों को प्राप्त है। नरम-दल, गरम-दल, उदार-दल, प्रतिसहयोगी-दल आदि शब्दों का कोई अर्थ नहीं। इस देश में केवल एक दल हो सकता है—वह दल जो चाहता है कि भारतवर्ष अपने अधिकारों को प्राप्त करे। अब तक जितनी प्रगति हो सकी है, यदि वह नगण्य है तो इसका यही कारण है कि यहाँ के लोगों में ही मतैक्य नहीं है।

यहाँ के लोग यह सोचने में ग़लती करते हैं कि भारतवर्ष में देश-भक्ति वही वस्तु है जो इँग्लेंड में है। वहाँ लोग अपना व्यवसाय करते हैं, एक या दूसरे दल में सम्मिलित हो जाते हैं, उनमें से प्रमुख व्यक्ति पार्लिमेंट के सदस्य निर्वाचित होते हैं, उनमें से कोई-कोई मंत्री हो जाते हैं और साम्राज्य का शासन करते हैं। भारतवर्ष के कुछ लोग भी यह सोचते हैं कि ब्रिटिश-पद्धति भारतवर्ष में चलाई जा सकती है। इँग्लेंड की वर्तमान शासन-पद्धति किस सुदीर्घ और अनवरत संघर्ष का परिणाम है, इसका वे विचार नहीं करते। भारतवर्ष में कोई वकील महोदय सफलता प्राप्त करते हैं, कुछ रुपया कमाते हैं, अपने को उदार या राष्ट्रीय दल का बताते हैं, कहीं मन्त्री का वा कार्य्यकारिणी समिति के सदस्य का पद पा जाते हैं, और अपने को राजनीतिज्ञ समझने लगते हैं। यह सर्वथा महाभ्रम है, कारण भारतीय देश-प्रेम की राजनीतिज्ञता में सफल होने के लिए कठिन अग्नि-परीक्षा देनी पड़ेगी। क्या इँग्लेंड और भारतवर्ष की स्थिति एक ही है कि कोई वकील अनायास ही वकालत के स्थान में मन्त्री का पद स्वीकार कर ले।

भारतवर्ष में कुछ राजनैतिक संस्कार प्रवर्तित किये गये हैं। व्यवस्थापिका सभाओं की और वृद्धि की गई है और निर्वाचनाधिकार भी विस्तृत होगया है। मंत्रिगण कौंसिल के सदस्य होते हैं, कुछ विभाग उनकी अधीनता में रहते हैं, और सभी कार्य्यकारिणी समितियों में भारतीय सदस्य होने लगे हैं। प्रथम दृष्टिपात में यह जान पड़ेगा मानो जनता के प्रतिनिधियों को बहुत बड़े-बड़े अधिकार मिल गये हैं। परन्तु वास्तव में कोई भी परिवर्तन नहीं हुआ है। व्यवस्थापिका सभाओं को कोई यथार्थ अधिकार नहीं प्राप्त है और शासक-सम्प्रदाय सदैव उन्हें

रद कर सकते हैं। कार्य्यकारिणी समिति के भारतीय सदस्य सदैव अपने योरपीय सहयोगियों के साथ वोट देते हैं, और नीति के प्रश्नों पर विरोध करने वा किसी प्रकार का प्रभाव डालने में असमर्थ होते हैं। मंत्रिगण कार्यतः नाम-मात्र के अध्यक्ष होते हैं और स्थायी राजकर्मचारियों का विरोध नहीं कर सकते। शासन-पद्धति के स्वरूप और प्रकृति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। यदि कुछ हुआ है तो संघर्ष कम होने के स्थान में बढ़ता जा रहा है। राष्ट्रीय महासभा के इतिहास में राजनैतिक मत के लिए दंड-संख्या आगे से अधिक है, जिसका अर्थ यह है कि स्वराज्य-संघर्ष प्रखर होता जा रहा है। गांधीजी ने भारतवर्ष के राजनैतिक संघर्ष में वास्तव और आदर्श दोनों को प्रविष्ट किया है। उनके ऐसा करने के पहले भारत का अधिकांश राजनैतिक आन्दोलन नाटकीय अभिनय-मात्र था। लोग रंगमंच पर गर्व के साथ पदक्षेप करते थे, व्याख्यानबाज़ी और तर्जन-गर्जन की बहुलता थी, किन्तु परिणाम कुछ नहीं होता था। लोग कभी लाभ उठाते थे, परन्तु वे न संकट में पड़ते थे, न कोई हानि सहते थे। गांधीजी ने दिखा दिया है कि भारतवर्ष में देश-भक्ति का मूल्य पूर्ण आत्म-समर्पण, समस्त सांसारिक वस्तुओं का त्याग, व्यक्तिगत आकांक्षाओं का बलिदान है। यदि हम देश की सेवा करना चाहते हैं तो हमको शरीर-आच्छादन के वस्त्र तक को भी त्याग करना पड़ेगा। शौक़ीन राजनैतिक जो संकट से दूर भागते हैं, उनके शब्दाडम्बर से, पुस्तकगत विद्या से, राजनीति-कौशल से भारतवर्ष को स्वराज्य नहीं होगा।

कार्य्य-विधि पहले ही बताई जा चुकी है, यद्यपि उचित रूप से उसका अनुगमन नहीं किया गया है। न बल-प्रयोग होना चाहिए और न जड़ता। अराजक वा विप्लव-साधक उपायों से देश का कोई भला न होगा, क्योंकि इन प्रचंड उपायों का अर्थ अपने ही देशवासियों से झगड़ा मोल लेना है। सबसे अधिक प्रभावशाली और सबसे नैतिक दबाव (moral pressure) यह है कि हम इस बात को प्रमाणित कर दिखावें कि यदि हम सहायता न करेंगे शासन-यन्त्र का काम बिलकुल बन्द हो जायगा और हम अपनी ही शर्तों पर सहायता करेंगे। वास्तविक झगड़ा सरकार से उतना नहीं है जितना अपने ही देशवासियों से। ही नेता ऐसे हैं जिनका कोई अनुयायी नहीं, ही दल ऐसे हैं जिनके कोई सदस्य नहीं। के बाहर किसी प्रकार का प्रतिनिधित्व नहीं पड़ता और फिर भी आधे दर्जन दल और जो अपने को विभिन्न नामों से सूचित और जो किसी और के नहीं, अपने ही बने फिरते हैं। यदि सब दल मिलकर और एक संस्थागत होकर काम करें तो हमें पहुँचने में देर ही न लगे।

अविवेचना और अतिशयोक्ति से कोई मुक्त नहीं है। एक व्यक्ति के लिए, वह कितना महान् वा गौरव-युक्त क्यों न हो, एक वा दो के अन्त में स्वराज्य का वादा करना बालु

का उच्छ्‌वास-मात्र है, जिसकी कोई सार्थकता नहीं। यदि केवल चित्त-वृत्ति वा मनोभाव से आशय है तो निस्सन्देह चित्त सदैव स्वतन्त्र है और उसका स्थान निर्दिष्ट भी है, उसकी भी आवश्यकता है, पर ऐसा वादा करना जो पूरा न किया जा सके अपनी हँसी कराना है। स्वराज्य कल मिलेगा या दस वर्ष बाद मिलेगा— यह पूर्णतया हम पर निर्भर है। यदि अपने घर में हम अपना संशोधन करें तो हम बाहर भी अपने अधिकार प्राप्त कर सकते हैं, परन्तु तब तक क्या आशा की जा सकती है जब तक हमारे घर ही में फूट है।

भारतवर्ष स्वराज्य के पथ पर अग्रसर हो रहा है, इसमें तो क्षण भर को भी सन्देह नहीं। किस गति से वह उस पथ पर चलेगा और कब अपने उद्दिष्ट स्थान पर पहुँचेगा, यह उसी पर निर्भर है। इस समय तो प्रधान प्रश्न यह है कि निकट भविष्य में भारतवर्ष को औपनिवेशिक स्वराज्य मिलेगा या नहीं। कम से कम इस प्रश्न पर पूर्ण मतैक्य है। दूसरी ओर यह भी प्रायः निश्चित है कि अगले वर्ष में किसी समय जो गोलमेज़-सम्मेलन (Round Table Conference) होगा उसके परिणाम-स्वरूप भारत को तत्काल औपनिवेशिक स्वराज्य की प्राप्ति न होगी। कारण यह है कि अभी भारतीय लोक-मत इतना प्रभावशाली नहीं है कि वह माँग अस्वीकृत न की जा सके।

जिस प्रकार व्यक्तिगत वादे की कि स्वराज्य इस साल मिल जायगा या अगले साल कोई सार्थकता नहीं है, वैसे ही कुछ नेताओं का वा महासभा का ही स्वतंत्रता घोषित कर देना व्यर्थ है। और ऐसा करना तब तक व्यर्थ रहेगा जब तक इस घोषणा को कार्य्य का रूप देने की दृढ़ इच्छा का अभाव है। भारतवर्ष वा कोई अन्य देश वही पा सकता है जिसके वह योग्य है। केवल घोषणाओं से, वे कितनी भी ज़ोरदार क्यों न हों, कोई लाभ नहीं होने का। हमें काम करना पड़ेगा, केवल कहना नहीं। हमें सिद्ध करना होगा जैसा कि सर स्टैनली रीड ने कहा है, कि भारतवर्ष के अधिकारों को निरन्तर अस्वीकार करते रहने से वह ब्रिटिश-साम्राज्य से सम्बन्ध-विच्छेद करने के लिए बाध्य होगा। हमें केवल अपने अनैक्य को, फूट को बिदा कर देना है, फिर तो सब सहज हो जायगा।

—श्रीनगेन्द्रनाथ गुप्त



# घोषणा की एक कहानी

समाचार-पत्रों में पाठकों ने वायसराय महोदय की घोषणा और तत्सम्बन्धी आन्दोलन का रोचक वर्णन पढ़ा होगा। इस आन्दोलन और उसके पुछल्लों से हमें कोई सम्बन्ध नहीं है। इस विषय में अन्य अनुभवी विद्वान् पर्य्याप्त प्रकाश डालेंगे। इस लेख में एक ऐसा रोचक वर्णन करना है जो सम्भव है, पाठकों को वास्तव में रुचिकर प्रतीत हो।

इस घोषणा के अवसर पर इँग्लेंड में जो तूफ़ान उठ खड़ा हुआ उसकी असली कहानी बतलाना ही हमारा अभिप्राय है। इससे पाठकों को हमारे स्वराज्य-संग्राम की लड़ाई के असली केन्द्र के जिस रूप का ज्ञान होगा उस पर हम टीका नहीं करेंगे।

३१ अक्टूबर की रात्रि में लंदन में वायसराय की घोषणा का सविस्तर भावार्थ ज्ञात हुआ। उसी समय राजनैतिक तथा व्यापारिक क्षेत्रों में विशेष हलचल मच गई। लंदन के 'डेलीमिरर' पत्र की १ली नवम्बर की संख्या में यह तार प्रकाशित हुआ—'**भारत का भविष्य**—औपनिवेशिक स्वराज्य की प्राप्ति पर वायसराय की घोषणा—भारत के वायसराय लार्ड इरविन की घोष[णा का] विस्तृत विवरण रात्रि को मिला।'

इन्हीं दिनों सायमन-कमीशन के अ[ध्यक्ष] से सर सायमन के त्याग-पत्र देने की अफ़[वाह] गर्म थी। इस विषय में बड़े बड़े अन्दाज़ [लगाये] जा रहे थे और ३१ आक्टोबर की रात्रि को [जब] घोषणा का कुछ भी भाग मालूम हुआ [तो] समझा कि सायमन साहब ने उसी के [कारण] नाराज़ होकर इस्तीफ़ा दिया है। किन्तु ['डेली] मिरर' के उसी अङ्क में घोषणा के समा[चार से] कुछ ही हटकर पत्र के विशेष राजनैतिक [संवाद]दाता का यह संवाद छपा था कि 'सायम[न] के त्याग-पत्र की ख़बर ग़लत है।'

२री नवम्बर के इँग्लेंड के सभी प[त्र] ... लायक़ थे। इन सबमें हमें पुनः 'डेलीमि[रर]' ... मोटे अक्षरों के शीर्षक पसन्द आये। इस[के] प्रथम पृष्ठ पर लिखा था—"**भारत का भवि[ष्य]**" ... और तीसरे पृष्ठ पर चार पंक्तियों में ... था—"साधारण सभा में **भारतीय घोष[णा का] रहस्योद्घाटन**"। साधारण सभा (Ho[use of] Commons) में उस दिन दर्शक-गैलरियाँ ... भर गईं और मेम्बरों में इस क़दर जोश और ...

आई हुई थी, मानो आज इँग्लेंड पर युद्ध की घोषणा हो गई हो। साधारण सभा में हमारे



[ प्रधान-मन्त्री रामसे मैक्डानल्ड ]

हामना लायड जार्ज ने भारतीय प्रश्न उठाया। आपने पूछा—

"ब्रिटिश-साम्राज्य में भारत की वैध पदस्थिति के विषय में वायसराय की महत्त्वपूर्ण घोषणा के सम्बन्ध क्या सायमन-कमीशन से सलाह ली गई थी? क्या कमीशन घोषणा से सहमत था? क्या स घोषणा में पूर्व-सरकारों-द्वारा निश्चित नीति या घोषित कार्य-क्रम में समानतः और तत्वतः कोई रिवर्तन नहीं किया गया है?"

भारत-मन्त्री मिस्टर वेजवुड बेन ने उत्तर दिया—

"पहले प्रश्न का उत्तर है, 'नहीं'। कमीशन की स्थिति को ही स्पष्ट करने के लिए मैं यह साफ़ बतला देना चाहता हूँ कि उससे सलाह नहीं ली गई। इस कारण प्रश्न के दूसरे भाग का उत्तर देना आवश्यक नहीं है, क्योंकि वह सवाल ही नहीं उठता"। "प्रश्न के तीसरे भाग का उत्तर है कि सरकार



[ भारत-मन्त्री वेजवुड बेन ]

की ओर से वायसराय को यह अधिकार दिया गया है कि वे साफ़ साफ़ कह दें कि १९१७ की

घोषणा का यह स्पष्ट अर्थ है कि भारत की वैध प्रगति में उन्नति का अन्त औपनिवेशिक स्वराज्य होगा।"

अपने प्रश्नों के ये उत्तर पाकर मिस्टर लायड जार्ज ने कहा—

"इस उत्तर से यह तो स्पष्ट हो जाता है कि पूर्व-सरकारों की नीति अथवा समय के सम्बन्ध में यह घोषणा कोई अन्तर नहीं डालती, किन्तु इस विषय में क्या मैं यह पूछ सकता हूँ कि क्या भारत-सचिव का ध्यान भारतीय नेताओं के घोषणा-सम्बन्धी उस प्रस्ताव पर गया है जिसमें उन्होंने इसको 'दस्तूरुल अमल में असली तबदीली' करार दिया है।"

वेजवुड बेन—मैंने पहले प्रश्न का बहुत समझकर उत्तर दिया है और मैं अब उसमें कुछ नहीं जोड़ना चाहता।

कमांडर केनवर्दी—प्रश्न के पहले भाग के विषय में अर्थात् घोषणा के सम्बन्ध में सायमन-कमीशन के सहयोगियों से सलाह न लेने के विषय में मुझे यह पूछना है कि क्या साधारण सभा के किसी मेम्बर से अथवा सरकार के मंत्रिमण्डल के किसी सदस्य से इस विषय में कोई परामर्श किया गया था?

वेजवुड बेन—मेरा विचार है कि जो उत्तर मैंने पहले दिया है उसमें कुछ अधिक जोड़ने की ज़रूरत नहीं।

कमांडर ओ० लौकर लैंपसन—क्या सायमन-कमीशन से किसी के त्याग-पत्र की धमकी मिली है या मिली थी?

वेजवुड बेन—यह स्पष्ट है कि मैं ... कमीशन-सम्बन्धी किसी ... उत्तर नहीं देना चाहता।

कमांडर ओ० लौकर लैम्पसन—... कमीशन के हल्के को—(उसके ... में दख़ल देने का)—छोटा ... आपको क्या अधिकार है?

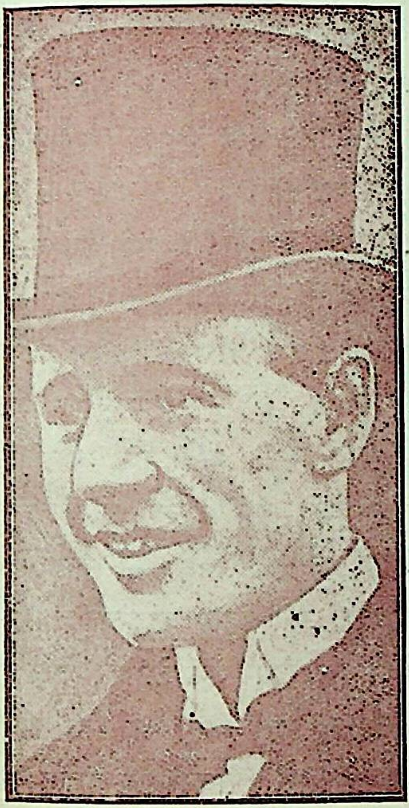
इस अवसर पर भूतपूर्व प्रधान-मंत्री बाल्डविन उठ खड़े हुए। आपने कहा—" ... 'डेली मेल' पत्र में प्रकाशित एक लेख पर ... विचार प्रकट करने के लिए मैं सभा से ... की प्रार्थना करता हूँ। मेरे लिए इस ... इतना कहना ही पर्य्याप्त है कि उस ... प्रकाशित प्रत्येक बात झूठी है और सा... हित में भी, केवल देश के हित के लिए ... बाधक सिद्ध होगी। समय मिलते ही मैं ... प्रत्येक बात का खण्डन करूँगा।"

इसके उपरान्त विरोधी (अनुदार तथा ... दल ने बृहस्पतिवार ७ नवम्बर का दिन ... विषय में वाद-विवाद के लिए सरकार ... लिया। राजनैतिक वायुमण्डल में यह ... हो गई कि इस बीच में भारत के रुख़ ... अध्ययन भी हो जायगा।

## भारत में आनन्द

इस वाद-विवाद के बाद ही 'मैंचेस्टर ... के सदृश प्रमुख पत्रों में यह तार छपा ... दिल्ली—शुक्रवार १ नवम्बर—भारत के ... लार्ड इरविन की घोषणा तथा सर साय...

मिस्टर मैकडानल्ड के पत्र-व्यवहार के प्रकाशन का तात्कालिक प्रभाव यह होगा कि सम्पूर्ण भारत में



[ वायसराय लार्ड इरविन ]

नरम विचारवाले ब्रिटिश सरकार से सहयोग करने के लिए बड़े जोश के साथ एकत्र हो जायँगे। उनसे अधिक गर्म विचार के राजनीतिज्ञ संभवतः अपना भाग लेने की कोशिश करेंगे। किन्तु यदि वे ऐसा करेंगे तो अति गर्म और **'बुद्धिमत्तापूर्ण'** विचारवाले राजनीतिज्ञों से उनका मतभेद हो जायगा। मुसलमानों-द्वारा इन प्रस्तावों का मित्रतापूर्ण समर्थन होगा, पर अपने विशेष हितों का उन्हें भय रहेगा।"

## मंत्रिमण्डल की कठिनतम समस्या

अब हम एक बार पुनः पाठकों को 'डेली-मिरर' के चौथे नवम्बर की सैर करावेंगे। मुझे सभी विलायती पत्रों में इसी की प्रतिध्वनि अधिक रोचक ज्ञात हुई। इस पत्र ने शीर्षक दिया था—**'भारतीय सनसनी**—मंत्रियों के लिए सबसे



[ अनुदार दल के नेता मिस्टर बाल्डविन ]

कठिन अवसर'। पत्र का राजनैतिक संवाददाता लिखता है—

"सरकार के लिए ख़तरे का समय—भारत और बेकारी दो ही प्रधान समस्यायें—

"भारतीय **'क्राइसिस'** से उत्पन्न भयानक आँधी का एक बहुत तेज़ झोंका भारत-सचिव मिस्टर वेजवुड बेन पर कल लगा था।

"यह आलोचना प्राय: सभी ने की कि मिस्टर बेन ने इस अवसर पर सुविचार से पूरी तरह काम नहीं लिया है। किन्तु मैं यह नहीं मानता कि मंत्रिमण्डल के सदस्य उतने नाराज़ हैं, जितना दिखलाने की वे चेष्टा करते हैं।

"संभवत: सरकार के गर्म विचारवाले समर्थक इस घटना के परिणाम को जान कर निराश होंगे। क्योंकि मेरा विश्वास है कि वे उन राजनीतिज्ञों की इस जल्दबाज़ी की सलाह को कदापि न स्वीकार करेंगे कि निकट भविष्य में भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य मिले।

"........ब्रिटिश-मंत्रिमंडल को वर्षों तक ऐसी नाज़ुक परिस्थिति का अभी तक सामना नहीं करना पड़ा था जैसा इस सप्ताह में।

"विदेशी और घरेलू नीति के बड़े व्यापक प्रभाववाले मामलों का सामना करना पड़ेगा और यह कहना अतिशयोक्ति नहीं है कि इस अति कठिन समस्या के अवसर पर मंत्रिमंडल की इज़्ज़त की पूरी परख होगी।

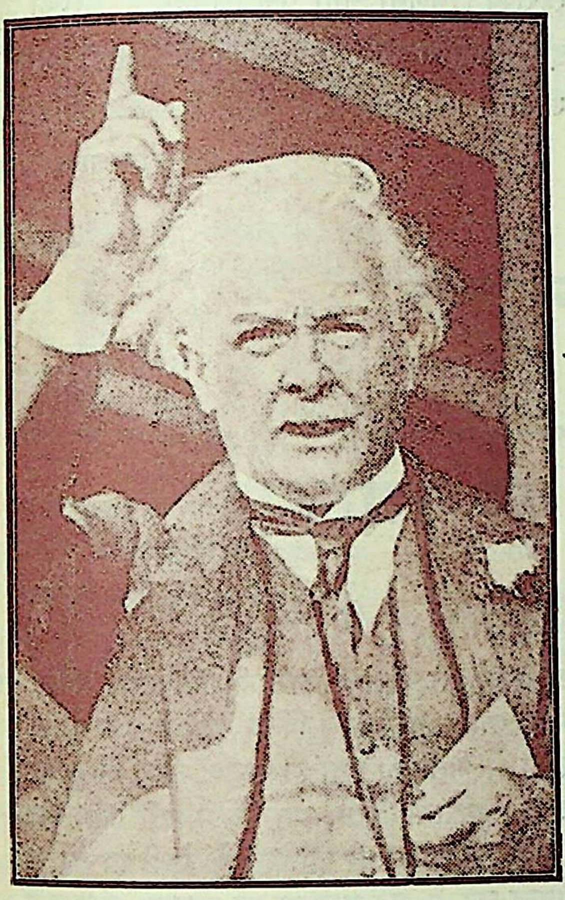
"औपनिवेशिक स्वराज्य के विषय में सरकारी घोषणा-सम्बन्धी प्रत्येक रहस्यों पर दोनों सभाओं में प्रश्न होंगे।..."

इस संवाद के साथ ही सम्पादक महोदय अपने अग्रलेख में लिखते हैं—"भारत के भविष्य के विषय में एक नाज़ुक परिस्थिति उत्पन्न है"। किन्तु मंत्रिमण्डल के भाग्य अ[illegible] इस सप्ताह एक प्रधान विचारणीय विषय [illegible] था—और वह था बेकारी की समस्या [illegible] मंत्रि-मण्डल का बजट! अति प्रतीक्षि[त] विकट भविष्यवाणियों से ओत-प्रोत बेकारी समस्या पार्लामेंट के चार नवम्बर की बैठक [में] बूझ कर पेश कर दी गई। ४,२०,००,०[००] की स्कीम पेश की गई और सदस्यों का ध्यान [उस] ओर खिंच गया। तो भी भारत की ओर [से] उदासीन नहीं हुए। पाँचवीं नवम्बर को ब[किंघम] पैलेस में सम्राट् ने मंत्रिमण्डल की एक [बैठक] कराई। उसमें क्या बातें हुईं, यह कौन जानता। इसी दिन 'डेली हेरल्ड' को छोड़ कर सभी पत्रों में लार्ड रीडिङ्ग की सरदार-[सभा में] होनेवाली बहस का बहुत बढ़ा-चढ़ा कर [मूल्य] 'कूता' गया। इस प्रकार एक घोषणा जिसका [वास्तव] में कोई महत्त्व नहीं था, एक बड़ा भारी [प्रश्न] बना दी गई, जिससे मंत्रिमण्डल दहल उठा। यदि प्रधान-मंत्री मिस्टर रामसे मैकडानल्ड [जैसे] ज़बरदस्त आदमियों में से न होते जिनका [यह] सिद्धान्त ही है कि अपने साथियों की विपत्ति [को] अपनी मानकर उनको कभी अकेले न छोड़ें, तो शायद भारत-सचिव मिस्टर वेजवुड बेन को त्यागपत्र देना पड़ता।

## सरदार-सभा का नाटक

पाँचवीं नवम्बर को सरदार-सभा में रीडिंग का भाषण सुनने को बड़ी भीड़

हुई। आपके व्याख्यान का विज्ञापन 'घोषणा का रहस्य' कह कर किया गया था। इस अवसर



[ मिस्टर लायड जार्ज ]

पर कई भारतीय 'भारतीय पोशाक' में दर्शकों की गैलरियों में बैठे थे। आज की बैठक में लार्ड रीडिंग, लार्ड चेम्सफ़ोर्ड, लार्ड लायड, लार्ड लेमिंगटन, लिटन, सिडेनहम, इसलिंगटन, एम्पथिल, ज़ेटलैंड, विलिंगडन, गोशेन आदि लार्डों ने भाग लिया था।

इस दिन की रिपार्ट हमारे भारतीय पत्रों में छप चुकी है। लार्ड रीडिंग ने केवल स्थिति को स्पष्ट करने के लिए अपना बयान दिया था, जिसमें यह साबित करना था कि विना किसी की सलाह के यह घोषणा की गई है। आपके व्याख्यान से यह भी स्पष्ट हुआ कि यदि अपना लाभ होने की आशा होती तो उदारदल निन्दा का प्रस्ताव भी पेश करता, पर मज़दूर-दल के पतन से केवल अनुदारदल का ही लाभ था। सबसे मज़ेदार दलील लार्ड बर्कनहेड की थी। आपने तो यहाँ तक कहा था कि सौ वर्षों में मैं ऐसी आशा नहीं करता कि भारत अपनी सेना, जलसेना तथा सिविलसर्विस पर नियन्त्रण पाने के योग्य होगा।



[ लार्ड रीडिंग ]

इन बहसों से एक बात यह भी साफ़ होगई कि मज़दूर-दल तथा वायसराय महोदय कोई

घोषणा करना चाहते थे। इस विषय में विरोधी पक्ष को अपनी ओर मिलाने के लिए वायसराय ने लायड जार्ज तथा लार्ड रीडिंग से भी परामर्श किया था, पर दो में से किसी को वे राज़ी न कर सके।

उपर्युक्त विवरण से पार्लामेंट के मौजूदा मनोवृत्ति का पता लग जाता है। स्वराज्य मिलना कहाँ तक सम्भव है, इस मनोवृत्ति को मनन करने से अपने जाता है।

—परिपूर्णानन्द

# कांग्रेस के वर्तमान कार्यकर्त्ता

शुद्ध स्वदेश-प्रेम से प्रेरित होकर स्वराज्य-प्राप्ति के शान्तिमय संग्राम में जो लोग कांग्रेस के आज्ञानुसार इस समय कार्य-क्षेत्र में अवतीर्ण हैं उनमें से कुछ का परिचय, बहुत संक्षेप में, हम यहाँ दे रहे हैं।

स्वातन्त्र्य-यज्ञ में अपना सर्वस्व होम करनेवाले हमारे राष्ट्रपति पण्डित जवाहरलाल नेहरू उन महान् आत्माओं में हैं जिन्होंने मातृ-भूमि के उद्धार के लिए अपने राजकीय वैभव को लात मारकर फ़क़ीरी ग्रहण की है! कांग्रेस के प्रधान-मन्त्री के नाते आप किस निर्भयता, सचाई और लगन के साथ सेवा करते हैं वह देशवासियों को भले प्रकार मालूम है, अतएव यहाँ आपका विशेष परिचय देने की ज़रूरत नहीं है।

त्याग-यज्ञ के अद्वितीय पुरोहित श्रीयुत पुरुषोत्तमदास टंडन उन श्रेष्ठ विभूतियों में हैं जिन्होंने शुद्ध स्वदेश-प्रेम से प्रेरित होकर पूरी निर्धनता स्वीकार की है। टंडनजी सौम्यता, सादगी और सरलता के अवतार हैं। आज से तेईस वर्ष पूर्व सन् १९०६ में आपने क़ानून की परीक्षा पास कर प्रयाग में वकालत करना प्रारम्भ किया था। किन्तु जिसके अन्तस्तल में सेवा और देश-भक्ति के स्वच्छ भाव कूटकूट कर भरे हुए हों वह महान् व्यक्ति कब तक पेट की ज्वाला बुझाने के लिए अपनी आत्मा का हनन कर सकता है। ठीक अवसर आते ही रौलट एक्ट के विरुद्ध सत्याग्रह-संग्राम में टंडन जी पूर्णतया लग गये। असहयोग के प्रारम्भ में ही अच्छी तरह चलती हुई वकालत पर आपने लात मार दी। तब से आप देश-सेवा में जुटे हुए हैं। सन् २१ में १½ वर्ष की जेल-यात्रा भी की! जेल से छूटने के बाद आप गोरखपुर की युक्त-प्रांतीय राजनैतिक कान्फ़्रेंस के सभापति हुए थे और नागपुर के झंडा-सत्याग्रह में भी आपने पूर्ण योग



[ पुरुषोत्तमदास टंडन ]

दिया था। सन् २५ में स्वर्गीय लाला लाजपतराय के बहुत आग्रह करने पर आप पंजाब-नेशनल बैंक के सहायक मन्त्री होकर गये और अन्ततो गत्वा इस वर्ष के सितम्बर

मास में आपने १,०००) मासिक की वह नौकरी छोड़ लोक-सेवक-मण्डल के अध्यक्ष होकर राष्ट्र-सेवा में फिर लग गये। आपके इस त्याग पर विश्व-वंद्य गांधीजी ने आपके विषय में लिखा है कि ऐसे ही पुरुषों से राष्ट्र बनता है।



[ श्रीयुत गणेशशङ्कर विद्यार्थी ]

मातृ-चटशाल के होनहार विद्यार्थी श्रीयुत गणेशशंकरजी उन त्यागियों में हैं जिन्होंने अपने जीवन के प्रथम पद से ही जन्म-भूमि के लिए सब कुछ कष्ट उठाने का बीड़ा उठाया है। देश-सेवा के लिए आपको कई बार जेल भी जाना पड़ा। जहाँ लोग एक-दो बार जेल हो आने से कुछ शिथिल पड़ जाते हैं, वहाँ विद्यार्थीजी तीन-चार बार जेल हो आने पर प्रत्येक बार खरे सोने की भाँति निकलते हैं! निस्संदेह विद्यार्थीजी के अपूर्व त्याग और कष्टसहिष्णुता के कारण प्रान्त में राष्ट्रीयता का वपन हुआ है। कांग्रेस के कामों में लगे रहना और उसके करने में सब झंझट सहना [illegible] लिए साधारण बात है! अपनी निस्पृह देश-[illegible] सच्ची लगन के कारण आज आप संयुक्त-प्रान्तीय [illegible] कमिटी के सभापति हैं। निस्संदेह विद्यार्थी[illegible] कृतियाँ और उनका 'प्रताप' उनकी वास्तविक [illegible] का ही परिणाम है।



[ श्रीयुत बाबू शिवप्रसाद गुप्त ]

श्रीयुत शिवप्रसादजी गुप्त उन अपवाद-स्वरू[illegible] में हैं जो देश के स्वातन्त्र्य-संग्राम में प्रचुर धन [illegible] सहायता करते हैं। राष्ट्रीय भावों के प्रचारार्थ [illegible] की सेवा करनेवालों की जो सहायता अब तक [illegible]

की है वह अकथनीय है ! असहयोग-आन्दोलन के बहुत पूर्व से ही आप गरम राजनैतिक दल के हैं। परन्तु कांग्रेस-द्वारा असहयोग के मानने के बाद तो आप पूर्णतया कांग्रेस के सेवक बन देश-सेवा में निरत रहते हैं। काशी-विद्यापीठ, ज्ञानमंडल और हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ दैनिकपत्र 'आज' की स्थापना कर आपने पराधीन भारत की जो सेवा की है वह भारतीय जागृति के इतिहास में स्वर्णाङ्कित रहेगी।

श्रीयुत श्रीप्रकाशजी राष्ट्र के उन वीरों में हैं जिन्होंने असहयोग के समय से आज तक देश के सेवार्थ अपना पूर्ण समय दे रक्खा है। कांग्रेस के आज्ञानुसार आपने बैरिस्टरी छोड़ी, नियमित रूप से कांग्रेस का कार्य करते रहते हैं। अपनी सेवाओं के फल-स्वरूप आप दो वर्षों से बराबर संयुक्त-प्रान्तीय कांग्रेस-कमेटी के प्रधान मंत्री हैं।



[ सम्पूर्णानन्द बी० एस-सी०, एल० टी० ]

श्रीयुत सम्पूर्णानन्द जी ने मातृ-भूमि की पुकार को सुन कर अपनी प्रोफ़ेसरी छोड़ दी और राष्ट्र-यज्ञ के प्रत्येक कार्य में अपना योग दिया है। कांग्रेस के प्रति अपने शुद्ध सात्विक सेवा-भाव के कारण आप संयुक्त-प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटी के प्रधान मंत्री भी रह चुके हैं। देश के कार्य में आपका त्याग सराहनीय है।

यह बड़े पौरुष और त्याग की बात है कि जिस समय पंजाब में सर ओडायर शासन कर रहे थे उस समय देश पर मरमिटनेवाले डाक्टर सत्यपाल ने पंजाब में राजनैतिक मन्त्र फूँकने का श्रेष्ठ कार्य किया था। अतएव १६१६ में उन पर सम्राट् के विरुद्ध युद्ध करने आदि के भयंकर अपराध लगा उन्हें आजन्म क़ैद की सज़ा दी गई। जेल से छूटने पर आप पूरी तरह फिर कांग्रेस के कार्य में जुट गये और इसके लिए आप फिर जेल भेजे गये। जेल से निकलने पर आप बिना किसी हिचकिचाहट के देश-सेवा करते रहे। पंजाब में कांग्रेस के झंडे को साम्प्रदायिक नेताओं के विरुद्ध, ऊपर उठाये रखने का श्रेय डाक्टर सत्यपाल को ही प्राप्त है। दिल्ली में अपने दिल की जलती हुई आग उगलने के कारण आपको दो वर्ष की सज़ा हुई, किन्तु कुछ मास बाद आप हाईकोर्ट-द्वारा छोड़ दिये गये। किन्तु फिर भी आप मुस्तैदी के साथ कांग्रेस के कार्य में लग गये। निस्संदेह डाक्टर सत्यपाल उन महान् आत्माओं में हैं जिन्होंने राष्ट्र-निर्माण के पुनीत अनुष्ठान में अपना सर्वस्व उत्सर्ग कर दिया है।

तपस्विनी पार्वतीदेवी उन वीराङ्गनाओं में हैं जिन्होंने अपनी माता की पुकार पर अपने आपको भेंटकर दो वर्ष की कड़ी क़ैद जेल में भुगती है। सत्याग्रह-आन्दोलन के समय बटाला-कन्या-पाठशाला में वे प्रधानाध्यापिका थीं, किन्तु एक जोशीला भाषण करने के कारण उन्हें पाठशाला छोड़नी पड़ी और वे अमृतसर आगईं और प्रान्त को स्वराज्य का सन्देश सुनाने का काम करने लगीं। जेल की कड़ी सज़ा काट आने के बाद वे कांग्रेस के कामों में मुस्तैदी के साथ लग गईं और आज भी पंजाब में दमन-चक्र के रहते हुए भी पूरी तरह कांग्रेस का कार्य कर रही हैं।



[ तपस्विनी पार्वती देवी ]

डाक्टर सैफुद्दीन किचलू बार० एट-ला पंजाब के मारशल ला के समय के कार्य-कर्ता हैं। डाक्टर सत्यपाल की भाँति इन्हें भी मारशल ला के युग में भारी सज़ा हुई थी। असहयोग में आपने पूरे त्याग के साथ कार्य किया और इसके लिए आप फिर जेल गये। किन्तु बीच में पंजाब की सांप्रदायिकता की बाढ़ से आप न बच सके और उसी के साथ बह गये। सौभाग्य से आप अब फिर पूरे राष्ट्रवादी बन कांग्रेस के कार्य में अवतीर्ण होगये। अपनी सच्ची राष्ट्रीयता के कारण आज आप लाहौर कांग्रेस की स्वागतकारिणी समिति के अध्यक्ष निर्वाचित हुए हैं। डाक्टर किचलू ने देश की आज़ादी के लिए काफ़ी त्याग किया है, इसमें कुछ सन्देह नहीं।

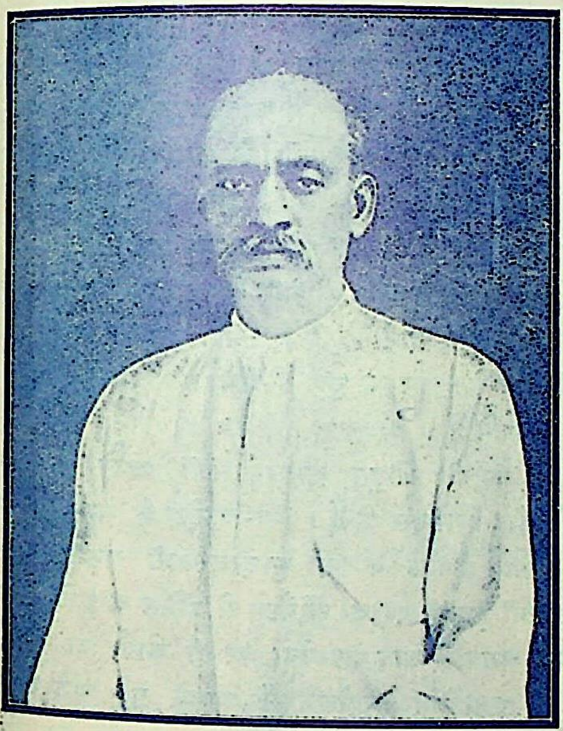
सरदार शार्दूलसिंह कवीश्वर देश के उन नर-रत्नों में हैं जिन्होंने देश के लिए दीवाना बन अनेक कष्ट सहे हैं। अपने देश से सच्चा प्रेम करने के अपराध में आप पाँच वर्ष तक जेल में रक्खे गये। निकलने पर स्वदेश-प्रेम में कुछ भी अन्तर नहीं पड़ा और की ही लगन और सचाई के साथ आज भी आप का कार्य कर रहे हैं। अपनी महान् सेवाओं के स्वरूप आज आप राष्ट्रीय महासभा की कार्य समिति के सदस्य हैं।

सिन्ध के प्रोफ़ेसर कृपलानी और स्वामी गोविन्द देश के उन दीवानों में हैं जिन्होंने असहयोग से देश की बलि-वेदी पर अपनी पूर्ण आहुति चढ़ा दी समय प्रोफ़ेसर कृपलानी हिन्दू-विश्व-विद्यालय में मासिक पर प्रोफ़ेसर थे, उस समय आप अपने के लिए केवल ४०) लेकर बाक़ी रक़म डाक्टर द्वारा स्थापित हैदराबाद में ब्रह्मचर्य-आश्रम को थे। असहयोग के प्रारम्भ में आप प्रोफ़ेसरी देश-सेवा में भिड़ गये। खादी-क्षेत्र में आपने जो सेवा की है वह अनुकरणीय है। महात्मा आचार्य कृपलानी के त्याग की प्रशंसा करते हुए था कि 'मैं चाहता हूँ कि कृपलानी ऐसे और देश में तैयार हों।' वास्तव में कृपलानीजी का प्रेम और उसके प्रति किया गया त्याग महान् है। गोविन्दानन्दजी भी पहले प्रोफ़ेसर थे। असहयोग पूर्व ही आपने जेल-जीवन व्यतीत किया था। उन स्वाधीनता-प्रिय मनुष्यों में हैं जो अपने विचार कारण पर्याप्तरूप से कष्ट झेल चुके हैं। आप सिन्धी-भाषा में एक पत्र निकाल उच्च राष्ट्रीय का प्रचार कर रहे हैं। आप पूर्ण स्वतन्त्रता-वादी हैं।

श्रीयुत जयरामदास दौलतराम बम्बई-कौंसिल सदस्य थे। किन्तु कांग्रेस-द्वारा निर्धारित विदेशी बहिष्कार-समिति के मन्त्रित्व-पद को स्वीकार आपने कौंसिल से त्याग-पत्र दे दिया और इस लगन के साथ आपने विदेशी वस्त्र-बहिष्कार किया। असहयोग-काल में भी आपने पूर्णरूप से दिया था।

बारडोली के विजयी सरदार श्रीयुत बल्लभभाई उन योद्धाओं में हैं जिन्होंने देश-सेवा का संन्यास ले

है। महात्मा गांधी के सम्पर्क में आने के बाद इन्होंने देश की अब तक ठोस-सेवा की है। सन् १९१९ के सत्याग्रह-संग्राम में ही इन्होंने अपने नेतृत्व-गुण का अच्छा परिचय दिया था। तब से राजनैतिक क्षेत्र में पूरी तरह कार्य कर रहे हैं। अहमदाबाद-उपद्रव के समय बल्लभभाई के दरवाज़े पर कड़ा पहरा बैठाया गया था और इन्हें



[ सरदार बल्लभभाई पटेल ]

बहुत कष्ट दिये गये थे। महात्माजी की गिरफ़्तारी के बाद बल्लभभाई ने गुजरात का सारा राजनैतिक कार्य अपने ऊपर ले लिया था। नागपुर-झंडा-सत्याग्रह का नेतृत्व अपने हाथ में ले उसे सफलता-पूर्वक चलाया। बोरसद-सत्याग्रह में भी इनका हाथ था। गत वर्ष बारडोली में जो सत्याग्रह-युद्ध छेड़ा गया था वह इन्हीं के प्रयत्न से सफल हुआ। बल्लभभाई ने सरकार के विरोध में छोटी-बड़ी कई लड़ाइयों में सफलता-पूर्वक लड़कर अपने शुद्ध स्वदेश-प्रेम का परिचय दिया है। देश ने इन्हें 'सरदार' की पदवी देकर इनका सम्मान किया है। ये असेंबली के प्रेसीडेंट पटेल के लघु भ्राता हैं।

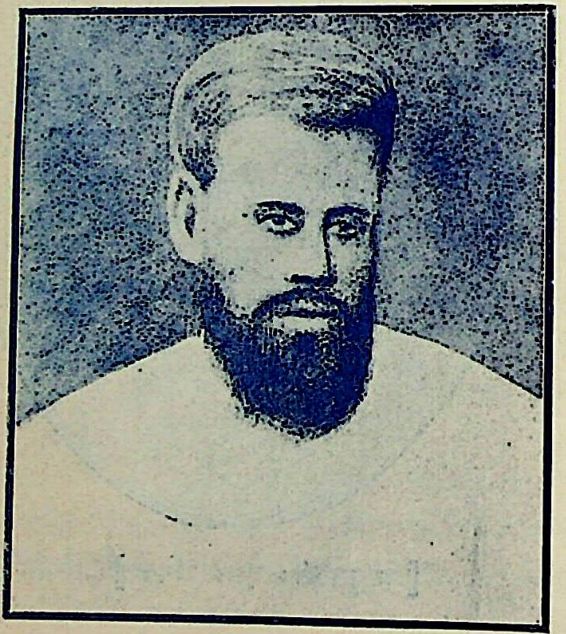
श्रीयुत बी० एस० पथिक उन महान् पुरुषों में हैं जिन्होंने देशी राज्यों की पीड़ित प्रजा के आर्तनाद को



[ श्रीयुत बी० एस० पथिक ]

संसार के संमुख उपस्थित करने के कारण बड़ी बड़ी तकलीफ़ें सही हैं। बार बार जेल जाना और बुरी तरह अपमानित होना पथिकजी के लिए कुछ भी नहीं है। पथिकजी की ऐसी ही श्रेष्ठ आत्मा है। आप राष्ट्र की सेवा निरन्तर निःस्वार्थ भाव से करते रहते हैं।

सेठ जमनालालजी बजाज़ उन वैरागियों में हैं जिन्होंने देश की पुकार पर अपने लाखों के व्यापार को सत्यानाश कर देश-सेवा का व्रत ग्रहण किया है। विदेशी वस्त्र के व्यापार में सेठजी लाखों रुपया वार्षिक कमाते थे, किन्तु असहयोग के प्रारम्भ में कांग्रेस के आज्ञानुसार आपने उस व्यापार को समूल बन्द करा दिया और तब से आज तक आप सदैव राष्ट्रीय कार्यों में तल्लीन हैं। वर्धा में आपने एक सत्याग्रह-आश्रम भी खोला है और खादी के कार्य में आपने विशेष रूप से कार्य किया है। नागपुर के झण्डा-सत्याग्रह में आप जेल भी हो आये हैं। आज-कल अछूतोद्धार में आप अधिक परिश्रम कर अछूत कहे जानेवाले भाइयों के लिए मन्दिर खुलवा विश्व-प्रेम के भाजन हो रहे हैं। सेठजी महात्माजी के अनन्य अनुयायी और भक्त हैं।

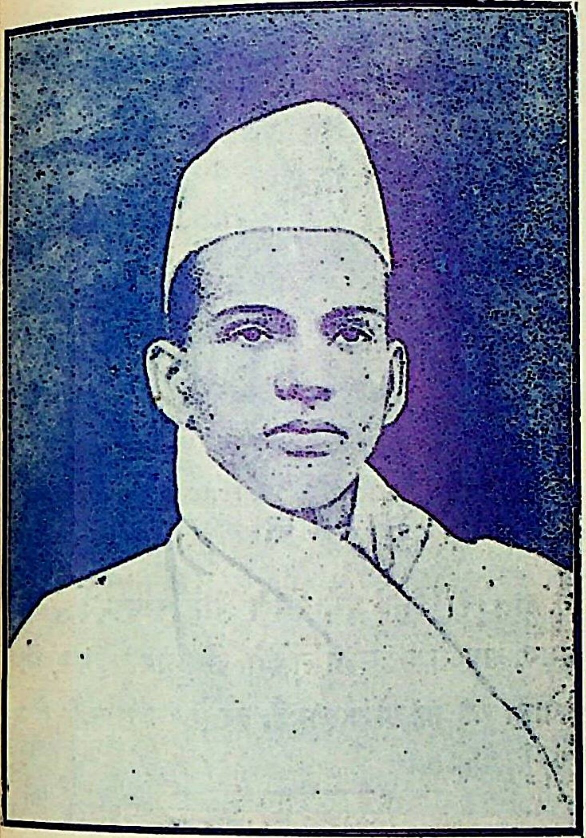


[ महात्मा भगवानदीन ]

महात्मा भगवानदीन उन सत्य-शोधकों में हैं जिन्होंने सत्य-शोधक के नाते अपने आपको राष्ट्रीय सेवा में उत्सर्ग कर दिया है। फ़तेहपुर की स्टेशन मास्टरी करते करते आपके हृदय में सत्य के प्रति अनुराग हुआ और तभी से आपने वह नौकरी छोड़ दी और जैन-ग्रन्थों का अध्ययन प्रारम्भ किया। १५ वर्ष पूर्व सन् १९१४ में भगवानदीनजी और सत्य की प्रतिज्ञायें ले जैन-सामाजिक सुधार में हुए थे। इसी समय आप हस्तिनापुर के जैन-गुरुकुल अधिष्ठाता थे और यहीं पर आपको राजनीति के का प्रेम हुआ। फिर तो इसी राजनैतिक कारण आपको गुरुकुल त्यागना पड़ा। तब से बराबर राजनीति में भाग ले रहे हैं। भगवानदीन अपने राजनैतिक जीवन में चार बार जेल-यात्रा कर हैं। नागपुर-झण्डा-सत्याग्रह के जन्मदाता होने के आपको १ ½ वर्ष की जेल की हवा खानी पड़ी। आपने नागपुर में असहयोग-आश्रम स्थापित किया, आज तक चल रहा है और जिसके सदस्य श्रीयुत अवारी और दांडेकर हैं। आप मध्य-प्रान्तीय कमेटी के प्रधान रह चुके हैं और इस समय उसके सभापति हैं।

कर्मवीर श्रीयुत सुन्दरलालजी अपने विद्यार्थी से ही गरम-दल के हैं। वङ्ग-विच्छेद के समय में भाग लेने के कारण सुन्दरलालजी सन् १९ अपनी क़ानूनी परीक्षा में बैठने से वर्जित करा दिये उस समय से आप देश-सेवा का ही कार्य कर रहे

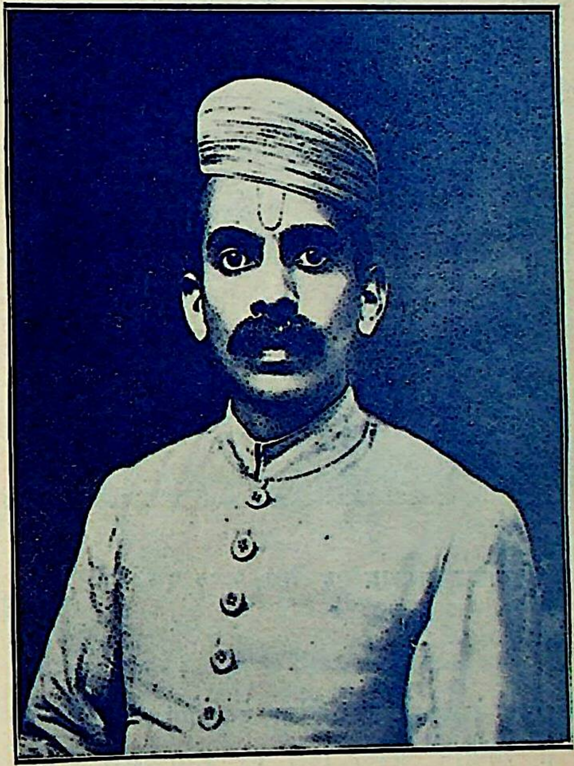
असहयोग-आन्दोलन में आपने पूरे जोश के काम किया। इसी के फलस्वरूप आपको एक कारावास हुआ। सन् १९२१ में आपने नागपुर में विद्यालय और असहयोग-आश्रम स्थापित किया। सत्याग्रह में आप फिर छः मास के लिए जेल भेजे हिन्दुस्तानी मध्य-प्रान्तीय कांग्रेस कमिटी के ४ वर्ष आप सभापति रहे, किन्तु सन् २५ में कौंसिल से मत-भेद होने पर आपने त्याग-पत्र दे दिया, उसके पश्चात् पठन-पाठन में लग गये। 'भारत में राज्य' के आप ही लेखक हैं। इस समय आप की प्रतीक्षा में एकान्त सेवन कर रहे हैं जब फिर शान्तिमय असहयोग की दुन्दुभी बजायेंगे।



[ श्रीयुत सुन्दरलाल ]

मध्य-प्रान्त के वर्तमान कार्यकर्ताओं में सेठ गोविन्द-दास और पण्डित द्वारकाप्रसाद मिश्र अपना विशेष स्थान रखते हैं। इन दोनों महानुभावों ने भी देश की समुचित सेवा की है। सेठजी ने तथा मिश्रजी ने कौंसिल और असेम्बली में जाकर स्वराज्य-दल का पूरा पूरा साथ दिया है। सेठजी हाल में दुर्गावती-आश्रम नामक खादी-कार्यालय खोलकर खादी-प्रचार का ही काम नहीं कर रहे हैं, किन्तु उन्होंने अकाल-पीड़ितों की सहायता करने के लिए देश के लिए एक नया आदर्श रक्खा है।

श्रीयुत नरसिंह चिन्तामणि केलकर महाराष्ट्र के प्रसिद्ध देशभक्त कार्यकर्ता हैं। उस प्रान्त में राष्ट्रीय भावों को भरने में स्वर्गीय लोकमान्य तिलक के बाद केलकर का ही स्थान है। आज भी आप केसरी-पत्र का सम्पादन कर रहे हैं। असहयोग में आपने पूरी तरह से योग दिया था। प्रतियोगी सहयोगी के नाते आप सन् २६ में कांग्रेस से विमुख होगये थे, किन्तु आज फिर आप कांग्रेस के झण्डे के नीचे रह कर कार्य कर रहे हैं।

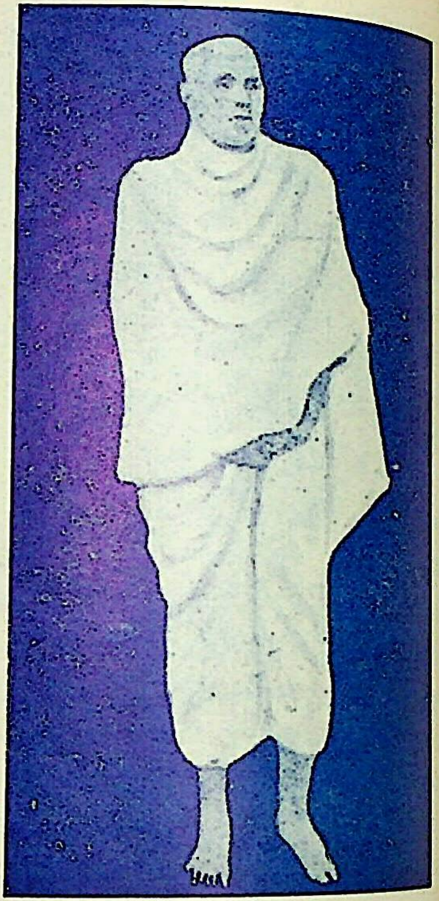


[ आनरेबल सेठ गोविन्ददास, मेम्बर स्टेट कौंसिल ]

बम्बई के श्रीयुत जमनादासजी मेहता पक्के स्वतन्त्रता-वादी हैं। आप बम्बई की ओर से बड़ी व्यवस्थापक-सभा के सदस्य भी हैं। अपने पक्के राष्ट्रीय विचारों के कारण आप आज-कल बम्बई-प्रान्तीय कांग्रेस-कमेटी के सभा-पति हैं। कांग्रेस के प्रत्येक कार्य में आप बड़ी संलग्न-नता के साथ कार्य करते हैं। साइमन-कमीशन के बहि-ष्कार में आपने काफ़ी भाग लिया था।



[ पंडित द्वारकाप्रसाद मिश्र, एम० एल० ए० ]



[ श्रीयुत कोंडा वेंकटपैया ]

परम देशभक्त श्रीयुत कोंडा वेंकटपैया उन बड़े सेवकों में हैं जिन्होंने अपनी दिल की आग बुझाने के लिए पूरा संन्यास धारण किया है। आप वर्षों से चुपचाप कांग्रेस की सेवा कर रहे हैं। कोकनाडा-कांग्रेस के आप स्वागताध्यक्ष थे। असहयोग से आज तक आप कट्टर अपरिवर्तनवादी रहे हैं। बड़ी तल्लीनता के साथ आप देश का ठोस कार्य करने में संलग्न रहते हैं। अपने कार्यों का ढिंढोरा न पीट कर अन्दर ही अन्दर कांग्रेस के कार्यों में २४ घंटे लगे रहना आपका गुण है। आप पर महात्माजी का बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा है, और आप उनके अनन्य अनुयायी हैं।

श्रीयुत चक्रवर्त्ती राजगोपालाचार्य ने महात्मा[illegible] जेल में रहने के अवसर पर अपरिवर्तनवादियों की [illegible] कांग्रेस का संचालन किया था। उनकी अनुपस्थि[illegible] इन्हीं ने 'यंग-इंडिया' का सम्पादन किया [illegible] आप सलीम के बड़े नामी वकील थे और [illegible] खूब चलती हुई वकालत को असहयोग के [illegible] तिलांजलि दे राष्ट्र-सेवा के कार्य में जुट गये। आ[illegible] कांग्रेस के अधीनस्थ मादक-द्रव्य-निषेध-संघ के प्रधान[illegible] के नाते उस बृहत् कार्य को कर रहे हैं।

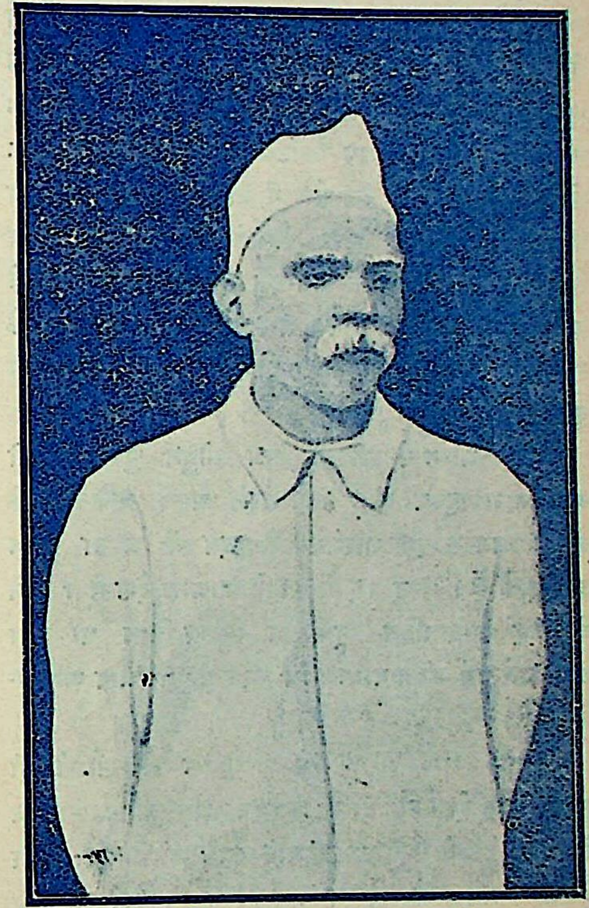
श्रीयुत साम्बमूर्त्ति पूर्ण स्वतंत्रतावादियों में [illegible] हैं और अपनी इसी स्वाधीनता-प्रियता के लिए आज[illegible] जेल में अपना समय काट रहे हैं। श्रीयुत साम[illegible]

देश के कामों में अपना पूर्ण समय देनेवाले अपरिवर्तन-वादी नेता हैं। इसके पूर्व भी आप जेल जा चुके हैं। असहयोग में अपनी लाखों की चलती हुई वकालत पर लात मार चुके हैं। निस्संदेह साम्बमूर्त्ति सौम्यता और त्याग की सच्ची मूर्त्ति हैं। जेनरल अवारी-द्वारा चलाये गये नागपुर के शस्त्र-सत्याग्रह में आपने पूर्ण योग दिया और मदरास-कांग्रेस के अवसर पर सर्वप्रथम आपके ही उद्योग से रिपब्लिकन कांग्रेस की स्थापना हुई। आपके ऐसे वास्तविक पुरुष को पाकर कोई भी देश गौरवान्वित हो सकता है।

डाक्टर पट्टाभि सीतारमैया श्री साम्बमूर्त्ति के रिक्त स्थान पर कांग्रेस-कार्य-कारिणी समिति के सदस्य हैं। आन्ध्रजातीय कला-शाला खोलने का श्रेय आपको ही प्राप्त है। असहयोग के प्रारम्भ से आज तक आप पूर्ण स्वतंत्रतावादी और अपरिवर्तनवादी रहे हैं। ग्रामीण जनता के सेवार्थ आपने सहयोग-समितियों में बहुत भाग लिया है। अपनी वक्तृत्व और लेखन-शक्ति में आप अद्वितीय हैं। संस्कृत के विद्वान् होते हुए भी आप अँगरेज़ी भाषा के भी प्रगाढ़ पंडित हैं और अपने राष्ट्रीय भावों को आप प्रत्येक सप्ताह 'जन्मभूमि'-द्वारा प्रदर्शित करते रहते हैं।

गंटूर के श्रीयुत नरसिंहराव आज नौ वर्ष से अपने प्रान्त में असहयोग का झंडा फहरा रहे हैं। जिस समय गंटूर में कर न देने के आन्दोलन के अवसर पर फ़ौज अपना डेरा डाले हुए पड़ी थी, श्रीयुत नरसिंहराव पर एक ख़बर भेजने के कारण १,०००) जुर्माना हुआ था और तब से आज तक राव महोदय कांग्रेस के रचनात्मक कार्य-क्रम को पूरा करने में लगे हुए हैं। १९२८ में साइमन-कमीशन के गन्टूर पहुँचने पर आपने ज़बरदस्त हड़ताल करवाई। इसके अतिरिक्त राव महोदय प्रचुर धन-द्वारा भी कांग्रेस की सेवा कर रहे हैं।

श्रीयुत गंगाधर राव देशपांडे कांग्रेस के बड़े पुराने कार्यकर्त्ता हैं। एक समय देशपांडेजी स्वर्गीय लोकमान्य तिलक के दाहने हाथ समझे जाते थे। तत्पश्चात् महात्माजी के आन्दोलन में आपने पूर्ण योग दिया।



[ श्रीयुत गंगाधर राव देशपांडे ]

गंगाधर रावजी बड़े ही निःस्पृह और सच्चे कार्यकर्त्ता हैं, जो दुःखों और कष्टों का बिना ही विचार किये अपने महान् कर्त्तव्यों का पालन करते हैं।

श्रीयुत डाक्टर हार्डीकरजी कर्नाटक प्रांत के सर्वेसर्वा हैं और हिन्दुस्तानी सेवा-दल के मुख्य संस्थापकों में हैं। देश-प्रेम की लगन आपको प्रारम्भ ही से थी। जिस समय आप अमेरिका में डाक्टरी का अध्ययन कर रहे थे, उस समय स्वर्गीय लाला लाजपतराय के साथ मिलकर अमेरिका में भारतीय होमरूल-आन्दोलन आपने चलाया

था। आपकी देश-सेवा की सच्ची लगन को देखकर लोकमान्य तिलक ने भी आपकी प्रशंसा की थी। देश वापस आने पर आप स्वाधीनता-संग्राम में बराबर साथ देते रहे हैं। अपने अपूर्व त्याग के कारण आज आप युवक-समाज में प्रतिष्ठित नेताओं में समझे जाते हैं। नागपुर-सत्याग्रह में आप कर्नाटक की ओर से अपनी सेना लेकर राष्ट्रीय झंडे के रण-क्षेत्र में जा पहुँचे और नागपुर पहुँचते पहुँचते आप अपने सैनिकों-सहित गिरफ़ार कर लिये गये। हिन्दुस्तानी सेवा-दल के प्रधान मंत्री के नाते आपने युवकों का जो सैनिक संगठन किया है वह देश के स्वातन्त्र्य-संग्राम में अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा, इसमें कुछ भी संशय नहीं।

युवक-भारत के तपस्वी नेता श्रीयुत सुभाषचन्द्रजी वसु उन महापुरुषों में हैं जो अपने अपूर्व बलिदान के कारण आज सम्पूर्ण भारतवर्ष के हृदय में अपना स्थान जमा चुके हैं। सन् १३ में आपने आजन्म देश-सेवा करने के लिए अविवाहित रहने का निश्चय किया था और आज ३३ वर्ष की अवस्था प्राप्त करने पर भी आप अविवाहित हैं।

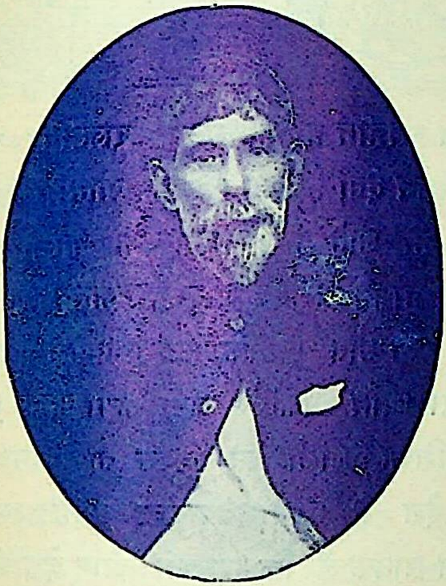
आई० सी० एस० होकर विदेश से लौटते ही सुभाष बाबू देशबन्धु दास के साथ असहयोग-आन्दोलन में शरीक होगये। युवक सुभाष का यह महान् त्याग देखकर सम्पूर्ण बङ्गाल स्तम्भित हो गया। देशबन्धु दास को आप पर पूरा विश्वास था और इसी लिए आप राष्ट्रीय कालेज के अध्यक्ष और बाद में वालंटियरों के भरती होने पर उसके भी अध्यक्ष आपही हुए। सन् २१ में देशबन्धु की गिरफ़ारी होने के साथ आप भी गिरफ़ार हुए और आपको छः मास का दण्ड हुआ। जेल से छूटने पर आप उत्तरी बङ्गाल के बाढ़-पीड़ितों की सहायता में लग गये। स्वराज्य-पार्टी के सङ्गठन में और 'फ़ारवर्ड' पत्र के सञ्चालन में आपने बहुत परिश्रम किया। कलकत्ता-कारपोरेशन के आप एक्ज़िक्यूटिव अफ़सर नियुक्त हुए, किन्तु २१ आक्टोबर सन् १९२४ को आप बङ्गाल के काले क़ानून के अनुसार नज़रबन्द कर दिये गये। मांडलाजेल में आपका स्वास्थ्य बिलकुल बिगड़ गया। इस पर डाक्टरों की सम्मति से आप १४ मई सन् १९२६ को बिना शर्त छोड़ दिये गये।

जेल से छूटने के बाद से आप निरन्तर देश-सेवा में लगे रहते हैं। आप पूर्ण-स्वतन्त्रतावादी और देश के लिए अपना सर्वस्व अर्पण करनेवाले योद्धा हैं। कलकत्ता-कांग्रेस की स्वागतकारिणी समिति के आप प्रधान मंत्री थे। 'लिबर्टी' पत्र निकालने का श्रेय आपही को है। आज-कल आप बङ्गाल-प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के प्रधान हैं। इतनी अल्पावस्था में सुभाष बाबू ने देश के नेताओं में जो स्थान प्राप्त किया है वह सर्वथा आपके अपूर्व त्याग और महान् सेवाओं के कारण है।

श्रीयुत यतीन्द्रमोहन सेन गुप्त उन कार्यकर्ताओं में हैं जिन्होंने अपने त्याग और सचाई के कारण राष्ट्र-नेताओं में अपना स्थान प्राप्त किया है। श्रीयुत सेन गुप्त इनर टेम्पिल के बैरिस्टर हैं। देश के कार्यों में आप प्रारम्भ ही से भाग लिया करते थे और असहयोग के युग में आपने अपनी बैरिस्टरी छोड़ कारावास का दण्ड सहा। गुप्तजी के त्याग का एक उदाहरण चाँदपुर-हड़ताल का है, जिसमें आपने भाग लेकर अपनी समस्त [illegible] हड़तालियों के सेवार्थ ख़र्च कर डाली। आज-कल आप कलकत्ता-कारपोरेशन के मेयर हैं और बंगाल-स्वराज्य पार्टी के नेता। अपनी निःस्पृह देश-सेवाओं के कारण आप कांग्रेस-कार्य-कारिणी के सदस्य हैं।

डाक्टर प्रफुल्लचन्द्र राय देश के उन वयोवृद्ध कार्यकर्ताओं में हैं, जो अपने जीवन के प्रारम्भ ही से राष्ट्र-सेवा का व्रत धारण किये हुए कार्य कर रहे हैं। आज [illegible] वर्ष पूर्व स्वर्गीय गोखले ने महात्मा गांधी को प्रोफ़ेसर राय का परिचय कराते हुए कहा था "ये हैं, प्रोफ़ेसर राय जो ८००) मासिक पाते हैं, पर अपने ख़र्च के लिए केवल ४०) लेकर बाक़ी सब लोक-सेवा में लगा देते हैं। इन्होंने शादी नहीं की है और न करना ही चाहते हैं।" [illegible] देश के बड़े भाग्य से वयोवृद्ध डाक्टर राय आज भी [illegible] कार्य में घर घर खादी की फेरी लगाते रहते हैं। [illegible] प्रचार के लिए डाक्टर राय अपने कन्धों पर खद्दर

गठरी लादे हुए मुहल्ले मुहल्ले घूमते हैं। "आज-कल तो मैं अपनी रसायन-शाला में बैठकर आविष्कार करने का महत्त्वपूर्ण कार्य छोड़कर देहातों में ही घूमता फिरता



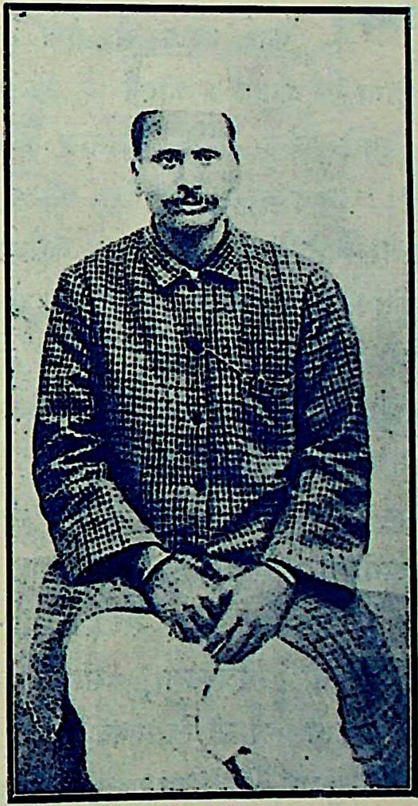
[ डाक्टर प्रफुल्लचन्द्र राय ]

हूँ और चर्खा तथा खादी का प्रचार कर रहा हूँ।" ये शब्द स्वयं डाक्टर राय के हैं जो उनके श्रेष्ठ मनोभावों को पूर्णतया प्रदर्शित करते हैं।

श्रीयुत राजेन्द्रप्रसादजी बिहार के अन्यतम नेता हैं। आप बिहार के एक श्रेष्ठ वकील हैं। क़ानूनी ज्ञान आपका यहाँ तक बढ़ा हुआ है कि आप एक समय जज (विचारपति) बनाये जानेवाले थे। परन्तु असहयोग के पदार्पण करते ही आप अपनी बढ़ी-चढ़ी वकालत को छोड़ राष्ट्र-सेवा में जुट गये, जिसके फ़लस्वरूप आपको जेल भी जाना पड़ा। बिहार-प्रान्त में राजनैतिक जाग्रति उत्पन्न करने का श्रेय राजेन्द्रप्रसादजी को ही प्राप्त है। बिना प्रदर्शन किये हुए, चुपचाप कार्य करनेवालों में आपका स्थान सर्वोपरि है। आप कांग्रेस के प्रधान मंत्री भी रह चुके हैं।

श्रीयुत व्रजकिशोरप्रसादजी बिहार-प्रान्त के वयोवृद्ध महात्मा हैं। वृद्ध होते हुए भी आपने जिस तत्परता के साथ असहयोग-आन्दोलन में कार्य किया वह सर्वथा सराहनीय है। इन्हीं वयोवृद्ध व्रजकिशोरजी ने गया-कांग्रेस की स्वागत-कारिणी समिति के अध्यक्ष-पद को सुशोभित किया था। आज भी आप चलने की शक्ति न रहते हुए भी कांग्रेस के कार्यों में भाग लिया करते हैं। बिहार-विद्यापीठ के संचालन का भार आपके ही कंधों पर है।

खेद है, इस लेख में हम देश के मुख्य-मुख्य देश-भक्तों का भी उल्लेख न कर सके। केवल उन्हीं का उल्लेख कर सके हैं जिनका यत्किञ्चित् परिचय हमें है।



[ श्रीयुत व्रजकिशोरप्रसादजी ]

यह भारत के शुभ भविष्य का सूचक है कि उसके भी पुत्रों में अनेक ऐसे हैं जो 'सपूत' कहे जाने के अधिकारी हैं। यह वास्तव में एक बड़ी भारी बात है।

—वैजनाथ, कपूर

# शिक्षा में स्वराज्य

इस देश में कई कारणों से राजतन्त्र पर अनावश्यक और हानि-कारक रूप से सबका ध्यान रहता है। यदि यहाँ को दशा कोई ध्यान से देखे तो ऐसा प्रतीत होगा कि जनता के जीवन में राजनीति न केवल सबसे मुख्य किन्तु एकमात्र विचार का विषय है । यह सत्य है कि देश की राजनैतिक अवस्था पर विचार करना सबका कर्तव्य है, पर जीवन-क्षेत्र को इतना सङ्कुचित करना अनुचित है कि और किसी विषय का उल्लेख न हो । किसी भी दैनिक पत्र को उठाकर देखिए, या तो राजनीति अथवा धार्मिक विवाद, यही दो विषय हैं, इन्हीं पर सम्पादकीय टिप्पणी है, संवाददाता इन्हीं विषयों के समाचार भेजते हैं, पाठक इन्हीं की खोज में रहते हैं। यह सर्वथा गर्हणीय है। शिक्षा, साहित्य, चित्र-कला, सङ्गीत, व्यापार, व्यायाम, विज्ञान—ये भी तो विषय विचार के योग्य हैं। समाज-सुधार, स्त्रियों का प्रश्न, भाषा की वृद्धि, इन पर भी तो कभी ध्यान देना चाहिए। न तो व्यक्ति-विशेष न जन-सङ्घ ही केवल राजनीति के ध्यान में मग्न रह सकता है। यदि सदैव इसी विषय में लीन रहेगा तो मनुष्य में एक प्रकार की अमानुषता आ जायगी, औदार्य्य जाता रहेगा, और उसका जीवन रसहीन हो जायगा। राजनीति पर व्याख्यान देता है, तो सैकड़ों आदमी सुनने जमा हो जाते हैं। धार्म्मिक शास्त्रार्थ विवाद हो तो असंख्य भीड़ हो जाती है। शोक की बात है कि अन्य विषयों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित नहीं किया जाता!

शिक्षा-प्रणाली का विषय तो इतना और देश के कल्याण अथवा अहित का प्रधान-साधक है कि इसकी ओर देश का ध्यान सदा आकर्षित रहना चाहिए। की जैसी शिक्षा है, कल देश की वैसी होगी। खेद है कि शिक्षा-पद्धति कैसी चाहिए, अध्यापकों की क्या योग्यता होनी किन विषयों पर शिक्षा आवश्यक है, पुष्टि के क्या उपाय होने चाहिए, इत्यादि की चर्चा बहुत कम होती है।

भारतवर्ष की आधुनिक शिक्षा-प्रणाली कोई विशेष उद्देश्य अब नहीं है। जब प्रारम्भ हुआ था उस समय शासन-विभाग के पदों पर नियुक्त होने योग्य मनुष्यों को करना प्रधान उद्देश्य था। साथ ही मेकौले का यह सिद्धान्त भी गवर्नमेंट ने कर लिया था कि पश्चिम की एक कोई भी भारत के समस्त साहित्य-भांडार से विशेष

इसलिए प्रयास यही रहा कि पश्चिमीय ज्ञान ही भारत के बच्चों को दिया जाय—पश्चिम का साहित्य, पश्चिम का विज्ञान, पश्चिम की भाषा। स्कूल तक तो हिन्दी और उर्दू का अच्छा-बुरा प्रबन्ध भी था, परन्तु कालिजों में इनका नाम भी नहीं। संस्कृत और फ़ारसी के प्रश्न-पत्र अँगरेज़ी में रहते थे और उत्तर भी इनका अँगरेज़ी ही में देना पड़ता था। अँगरेज़ी में जितनी पुस्तकें पढ़ाई जाती थीं उनमें शायद ही कहीं धोखे से हिन्दुस्तान का नाम आ जाता था। यहाँ तक विचार-परतन्त्रता की सीमा बढ़ गई थी कि पढ़े-लिखे भारतवासी इँग्लेंड को अपना 'होम', मातृभूमि कहने लगे, और एक सुशिक्षित बङ्गाली के सुख की इयत्ता यह थी कि वह अँगरेज़ी भाषा में स्वप्न देखे। राजनैतिक जाग्रति और आन्दोलन का फल यह हुआ कि हमारे नेता हमें सिखाने लगे कि केवल भारत ही ज्ञान का भाण्डार है, धर्म्म कहीं है तो यहीं है, हवाई जहाज़ यहाँ उड़ते थे, प्रजातन्त्र भी हमारे लिए नई वस्तु नहीं है, कलाओं का, विज्ञान का, साहित्य का, कोई अंश ऐसा नहीं जो भारतवर्ष में न पाया जाता हो। परिणाम इसका यह हुआ कि स्वदेशाभिमान तो हममें यथेष्ट आ गया—परन्तु अत्यन्त सङ्कुचित प्रकार का;—और साथ ही विश्व-प्रेम का और यथार्थ ज्ञान-सञ्चालन का संहार हो गया।

यह निर्विवाद है कि मातृ-भाषा ही शिक्षा का उत्तम माध्यम है। आरम्भ में कुछ कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा। विज्ञान के अनेक शब्द हैं जिनका हिन्दी अथवा उर्दू में कोई समीचीन पर्यायवाचक शब्द नहीं है। परन्तु उनके गढ़ने की भी कोई आवश्यकता नहीं है। जीवित भाषा की तो यही विशेषता है कि जहाँ से अच्छा शब्द मिले, जिस भाषा से भी हो, उसे अपना लेती है। अँगरेज़ी में अनेक संस्कृत और अरबी शब्दों का समावेश हो गया है। कोई कारण नहीं कि सायंस के ऐसे शब्द—हैड्रोजेन, गैस, इलेक्ट्रिसिटी—जो समस्त संसार में प्रसरित हैं, यथावत् क्यों हिन्दी और उर्दू में भी प्रयोग किये जायँ। इनके निमित्त क्लिष्ट शब्दों का आविष्कार अनावश्यक ही नहीं, हानिकारक भी है। मातृ-भाषा में शिक्षा-प्रदान होने पर हमारे नवयुवक निरवरोध-रूप से ज्ञान-संचय कर सकेंगे और ज्ञान की वृद्धि कर सकेंगे।

साथ ही यह भी हमें न भूलना चाहिए कि इस युग में कोई भी देश सब प्रकार से स्वतंत्र नहीं रह सकता है। राज्य-शासन में तो स्वतंत्रता सब को इष्ट है और होनी चाहिए। परन्तु विद्या के मन्दिर में इस स्वतंत्रता को स्थान नहीं मिलना चाहिए। 'वायरलेस' का आविष्कार यदि इटालियन मारकोनी ने किया तो क्या हम उससे उपकार नहीं उठा सकते? "हैमलेट" इँग्लेंड में लिखा गया, पर क्या हम उसके आनन्द से वंचित रहें? आइन्स्टैन जर्मन है तो क्या हमारा शत्रु है? इस प्रकार का स्वदेश-प्रेम शिक्षा के क्षेत्र में विष का काम करेगा। शिक्षा में औदार्य्य परम आवश्यक है। और जब यह उदारता हमारे शिक्षकों में आ जायगी तभी यथार्थ शिक्षा में स्वराज्य मिलेगा।

—अमरनाथ झा

# स्वराज

[ १ ]

खड़े क्या हो तुम पर के द्वार
भिखारी से यों हाथ पसार ?
न माँगे से मिलते अधिकार
न हो जब तक भय का संचार
न खो दो बची बचाई लाज
मिला कब दान-समान स्वराज

[ २ ]

सबल के शुभ्र गले का हार
सुवीरों के कर का शृंगार
सजगता का सुन्दर उपहार
सुराष्ट्रों के सुख का आधार
समर-विजयी के सिर का ताज
बिका प्राणों के मोल स्वराज

[ ३ ]

बढ़ें, बढ़ने दो अत्याचार
उठे, उठने दो करुण पुकार
मचे, मचने दो हाहाकार
सजग होगा सोता संसार
जलेगी आग देश में आज
उठेगा धूम्र-समान स्वराज

[ ४ ]

कहाँ रोके रुकती है धार
चली जब हहरा कर एक बार
हुआ प्रतिबंधों का संहार
गिरी बाधाओं की दीवार
बहेगा विघ्नों का गिरिराज
बढ़ेगा प्रखर प्रवाह स्वराज

[ ५ ]

हमारा जन्म-सुलभ अधिकार
हमारे वैभव का विस्तार
हमारी आत्मिक शक्ति अपार
हमारे भुज का बल साकार
हमारे सुख का सुन्दर साज
मिलेगा निस्सन्देह स्वराज

[ ६ ]

उठी मसजिद से मधुर अज़ान
शिवालय से शंख-ध्वनि-तान
उषा का यह सुन्दर आह्वान
नई आशा का नया विधान
मिटेगा तम का कलुषित राज
उगेगा सूर्य-समान स्वराज

[ ७ ]

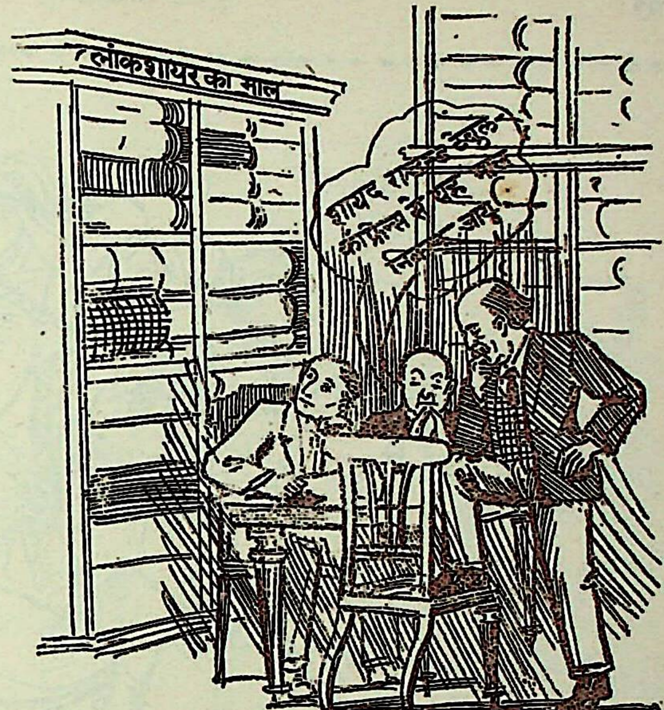
हुआ अब पतझड़ का अवसान
फलेगा फूलेगा उद्यान
सुखी होंगे हम मधुप-समान
छिड़ेगी वन में मधुमय तान
सुरभि-मय होगा सकल समाज
खिलेगा फूल-समान स्वराज

[ ८ ]

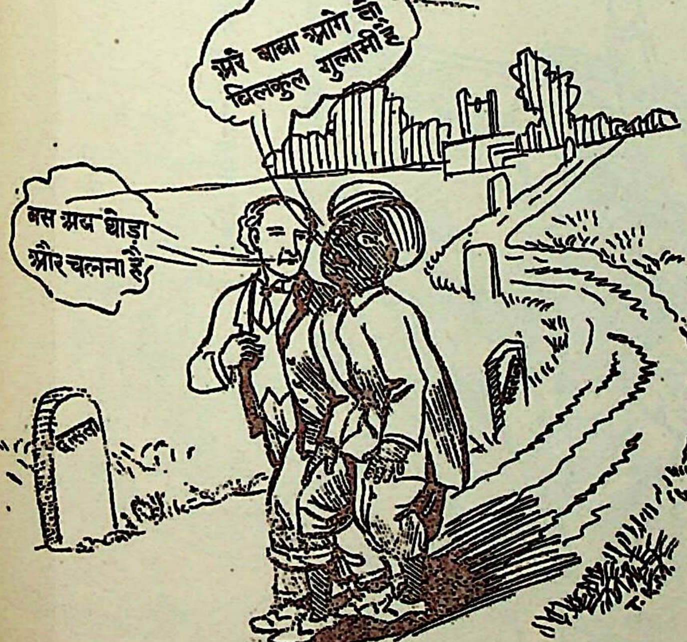
न वन में अपने पिंजर-त्रास
न घर में अपने कारावास
धरा अपनी, अपना आकाश
न होगी शेष पराई आश
सुखद होगा सब अपना साज
मिलेगा जब स्वाधीन स्वराज

—'विक

# हास्य और विनोद

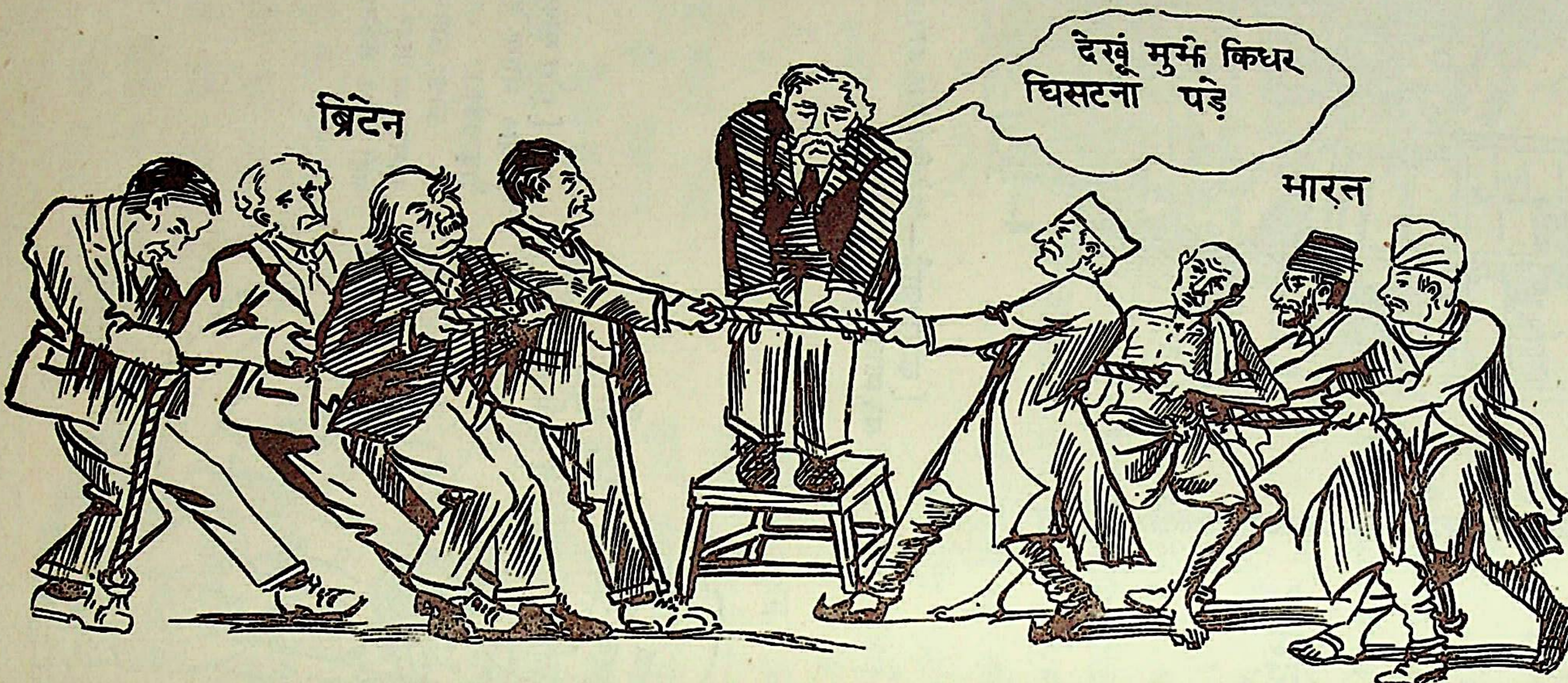



[ लायड जार्ज—'अरे हिन्दुस्तान हाथ से निकला जा रहा है।' लङ्काशायर का क्या होगा ? ]

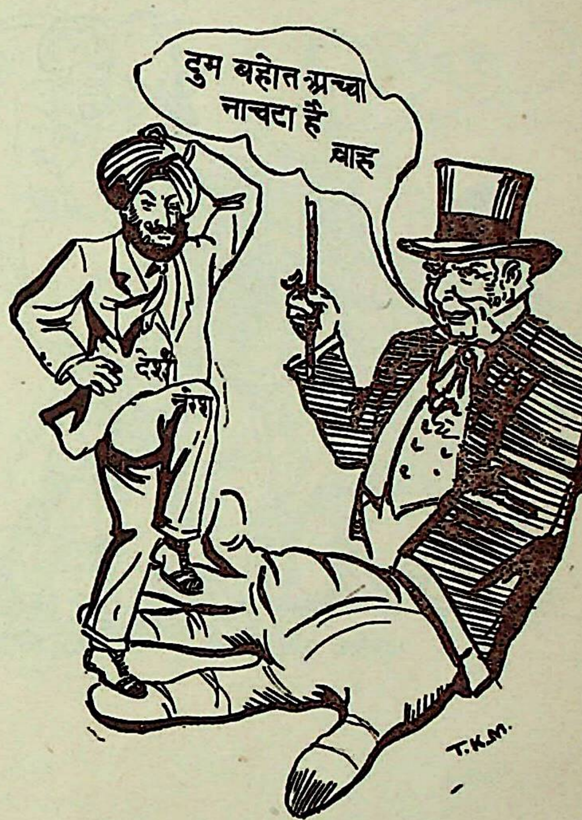



[ गोरा सायमन (काले सायमन से)—स्वाधीन भारत इसी ओर है। कुछ और दौड़ चलो।

काला सायमन मार्ग में औपनिवेशिक स्वराज्य का पत्थर देखकर—"बस, इससे आगे नहीं घिसट सकता।" ]



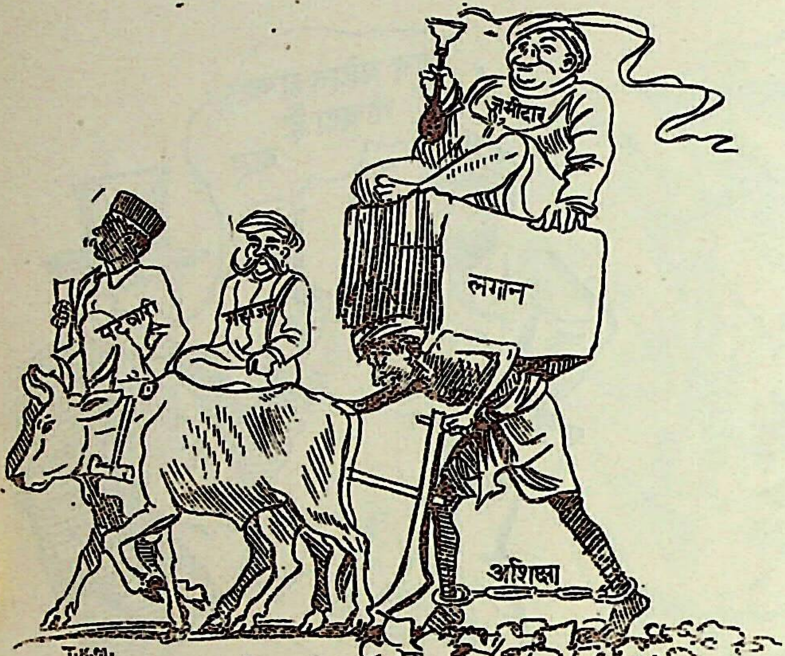

[ मैकडानल्ड—"कह नहीं सकता कि मुझे किधर घिसटना पड़ेगा।" ]




[ जान बुल ( देशी नरेशों से )—ताक धिनाधिन ]



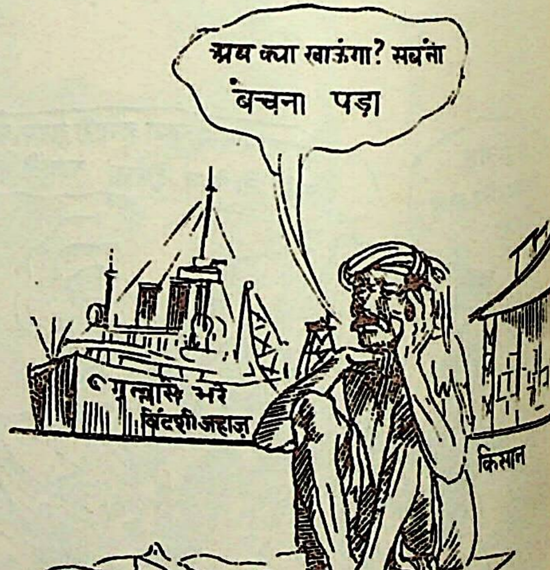

[ भारत की नाव की पतवार जान-बुल के हाथ मे है। देशी नरेश एक तरफ़ बैठे हैं, ब्रिटिश-भारत के नेता दूसरी तरफ़। देशी नरेशों के एकतरफ़ा भार से नाव डूबना चाहती है। नेता उन्हें अपनी ओर बुला रहे हैं, पर जान बुल की कड़ी आंखें देख वे जहां के तहां बैठे हैं।]

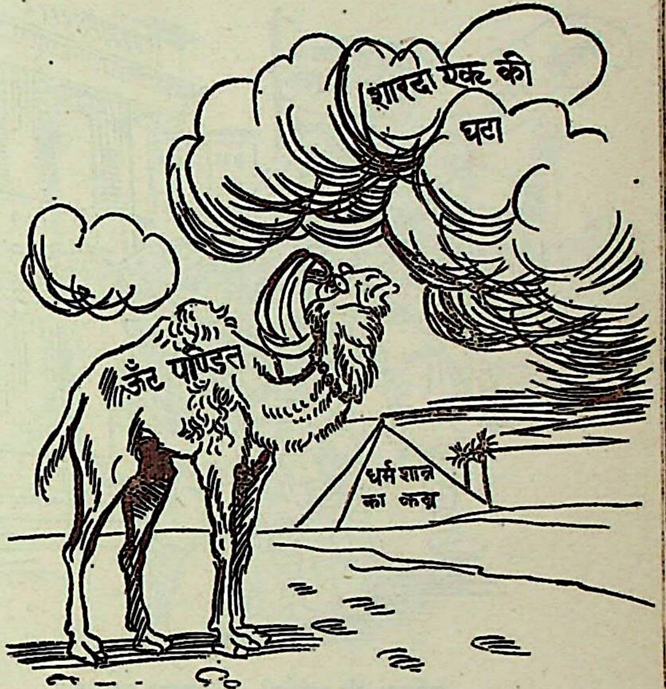



भारतीय कृषिकी दशा

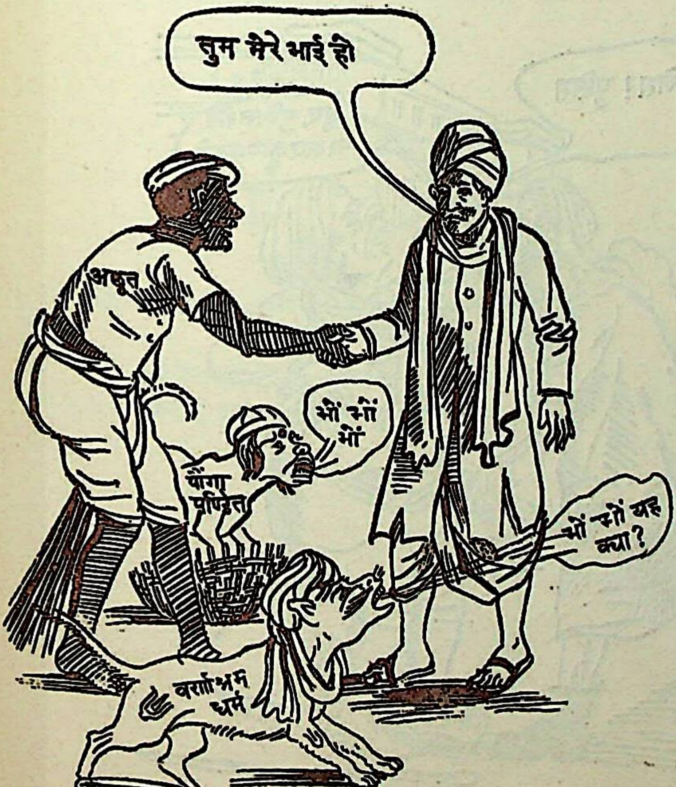
[ कृषक हल चला रहा है।
पर टैक्स का पत्थर है। पत्थर
ज़मींदार है। पैरों में अविद्या की
है। वैलों पर पटवारी और
महाजन वैठा है।]

[ भारतीय किसान अपना सब अनाज बेचकर वैठा है। घर में खाने को नहीं है। सिर पर हाथ रक्खे सोच रहा है—"कहीं क़र्ज़ मिलता तो जाकर बाज़ार से कुछ अन्न ले आता।" ]






[ काशी के ऊँट पंडित ऊपर देख कर कह रहे हैं—"अरे यह क्या ? अब लोटन को रेत कहाँ मिलेगी।" ]




[ पं० मदनमोहन मालवीय एक मेहतर से हाथ मिला रहे हैं—"तुम मेरे भाई हो।" ]




[सड़क पर पुलिस परेड का
ताकि कहीं शान्ति न भङ्ग हो जा

पुलिस की मुस्तैदी का पहला नमूना

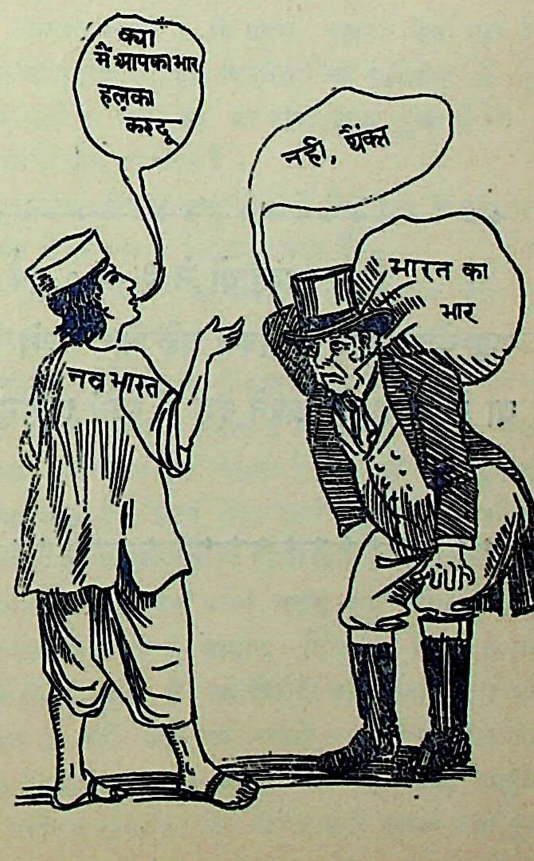



[ मुसाफ़िर—"डाकू लूट रहा है अरे पुलिस-पुलिस।" डाकू—"उसके पास तुम्हारी आवाज़ मेरे यहाँ से चले जाने के बाद पहुँचेगी।" ]

दूसरा नमूना




[ मौलाना मुहम्मदअली—"मैं पूर्ण स्वाधीनता चाहता हूँ जो साम्प्रदायिकतावाद से मिलेगी।" ]




[ जान बुल—"हाय भारत के बोझ से दबा जा रहा हूँ।"
नव भारत—घबराइए नहीं, मैं आ गया।
जान बुल—जाइए आपकी ज़रूरत नहीं। ]




## केलाग पैक्ट का रहस्य

[ जान बुल—शान्ति चाहिए, शान्ति । मेरे पीछे साम्राज्य के साधनों को छोड़ कर और कुछ नहीं है । ]

जिन भारतीयों ने ३,००० वर्ष तक अपने देश में स्वयं शासन किया और अपने राष्ट्र को संसार के सबसे बड़े और सबसे अधिक प्रभावशाली राष्ट्रों में से एक बना दिया था वे आज भी अपने देश में स्वयं शासन करने की पूर्ण योग्यता रखते हैं ।

जे० टी० सन्डरलैंड

# अपनी बात

## भारत और स्वराज्य

अभी कुछ ही दिन पहले तक हम लोग आपस के झगड़े-झंझट के समय एक दूसरे को धमकाने के लिए प्रायः कहा करते थे, जानते नहीं हो, यह अँगरेज़ी राज्य है। तब अँगरेज़ी राज्य की ऐसी ही धाक थी। लोगों को इस बात का विश्वास था कि इस राज्य में कोई न तो किसी के साथ अन्याय कर सकता है, न अत्याचार ही। अपने इसी विश्वास के कारण लोग इसे रामराज्य कहते थे और यह कहकर कि अँगरेज़ी राज्य में शेर और बकरी एक ही घाट में पानी पीते हैं, इसका बखान किया करते थे।

पर अब भारत को धीरे धीरे आत्मबोध हो रहा है। उसे इस बात का अनुभव हो रहा है कि वह तो वास्तव में परतन्त्रता की बेड़ियों से आबद्ध है। इस बात से उसके स्वाभिमान को भारी ठेस पहुँची है। उसने अपने भूतकाल का पर्यावेक्षण और वर्तमान दशा की विवेचना करके अपने भविष्य के निर्माण का निश्चय किया है। अब उसको यह ज्ञान हुआ है कि दूसरों का 'सुराज' स्वराज्य के समान नहीं—'good government is no substitute for self-government.'

× × ×

भारत का यह असन्तोष जड़ पकड़ गया है। वह इधर-उधर कुछ शासन-सम्बन्धी अधिकार या किसी भारतीय को ऊँचा पद दे देने से नहीं दूर होने का। संसार की शक्तिशाली शक्तियों के बीच उसका जो इस समय स्थान है वह उसके लिए अपमानजनक है। जो जातियाँ अभी कल तक असभ्य कहलाती थीं उन्हें जब वह स्वाधीन राष्ट्रों की पंक्ति में बैठा देख अपने को जगद्गुरु का पद पाकर भी परतन्त्रता की हीन अवस्था में पाता है तब वह मर्माहत हो जाता है। यही क्षोभ उसके असन्तोष का मूल-कारण है।

भारतीय देखते हैं कि उनका अपना देश नहीं है। उनके बाप-दादों का देश विदेशियों के अधिकार में है। उनके माथे पर यह कलङ्क का टीका लगा हुआ है कि वे गुलाम हैं और पराधीन हैं।

स्वर्गीय गोपाल कृष्ण गोखले जैसे नेता ने इस पराधीनता के सम्बन्ध में इस तरह कहा है—

"वर्तमान पद्धति की अधीनता में भारतीय लोग एक प्रकार के बौने बनाये जा रहे हैं, अर्थात् उनकी बाढ़ मारी जा रही है। हमें हीनता के वायुमण्डल में अपने जीवन का सारा समय बिताना पड़ता है। हममें से जो सबसे अधिक छाती तान कर चलता है उसे भी सिर झुकाकर चलना पड़ता है। 'ईटन' और 'हारो' स्कूल के विद्यार्थी यह महत्त्वाकांक्षा कर सकते हैं कि किसी दिन हम 'ग्लेडस्टन' या 'नेल्सन' या 'वेलिंगटन' बनेंगे, परन्तु ऐसा मनोभाव हममें नहीं उदय होने दिया जाता। जिस श्रेष्ठ स्थान के प्राप्त करने के हम योग्य हैं उसे विदेशी परतन्त्रता के वर्तमान शासन में नहीं प्राप्त कर सकेंगे। आत्मशासित लोग जिस नैतिक उच्चता का अनुभव करते हैं उसका अनुभव हम नहीं कर सकते। धीरे धीरे हमारी शासन तथा युद्ध-

सम्बन्धी शक्तियों का लोप हो जायगा और हम वास्तव में अपने देश में ही 'लकड़ी फाड़नेवाले' और 'पानी भरनेवाले' मज़दूर बन जायँगे।"

× × ×

भारतीयों को इस बात का ज्ञान होगया है कि उन्होंने अपने देश का शासन-सूत्र लगातार तीन हज़ार वर्ष तक सफलता-पूर्वक चलाया है। उस समय उन्होंने अपने राष्ट्र को संसार में सर्वश्रेष्ठ और अत्यन्त प्रभावशाली बना दिया था। उनकी अपनी एक ख़ास सभ्यता है। यह उसी सभ्यता का सुपरिणाम है कि वे अपनी इस परतन्त्रावस्था में भी सदाचार और बुद्धिमत्ता में योरप की किसी भी सभ्य जाति से कम नहीं हैं। अपनी सभ्यता, अपनी संस्थाओं तथा अपने देश की आवश्यकताओं का ज्ञान जितना अधिक स्वयं भारतीयों को हो सकता है, उतना विदेशी शासकों को न तो हो सकता है और न उतनी हित-भावना ही वे उसके प्रति रख सकते हैं।

भारतवासी यह जानते हैं कि संख्या में वे चीनियों को छोड़ कर सबसे अधिक हैं—उनकी सभ्यता भी बहुत प्राचीन है और वह आज भी प्रचलित है। एक समय इस सभ्यता का प्रभाव मिसर, पूर्व-अफ़्रीका, ग्रीस, एशिया-मायनर से फ़ारस, तुर्किस्तान, मध्यएशिया, चीन व जापान और प्रशान्त महासागर के पार मेक्सिको, पेरू इत्यादि तक विस्तृत था। उन्होंने प्रायः सभी प्रकार के विज्ञानों को जन्म दिया है। उनका साहित्य विशाल, दर्शन-शास्त्र अद्वितीय और कला-कौशल आदर्श रहे हैं। उनमें ऐसे ऐसे शासक, राजनीतिज्ञ, अर्थशास्त्री, विद्वान्, कवि, योद्धा, स्थपति शिल्पी, परिव्राजक, धर्मोपदेष्टा, उपनिवेश-स्थापयिता और कृषक होगये हैं जिनका लोहा आज भी संसार में माना जाता है। बुद्ध जैसे धर्म-प्रचारकों और अशोक और अकबर जैसे शासकों का जन्म भारत ने ही दिया है। आज भी वह नर-रत्नों से शून्य नहीं है। राममोहन राय, दयानन्द, रामकृष्ण, विवेकानन्द, महात्मा गांधी, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, जगदीशचन्द्र वसु, रमण आदि जगन्मान्य हैं। आबू के जैन-मन्दिर, इलोरा के गुफा-मन्दिर, श्रीरङ्गपट्टन का विष्णु-मन्दिर तथा तंजोर और मदु[रा के] विशाल मन्दिर, अनाम, काम्बोज, श्याम के [...] मन्दिरों के विराट् ध्वंसावशेष एवं दिल्ली की [...] मस्जिद, .कुतुबमीनार और शाही महल, आगरे [का] ताजमहल आदि इमारतें उसके भूतकालीन गौ[रव के] भव्य प्रमाण हैं। भारत यह सब देखता है। [...] साथ ही वह यह भी देखता है कि आज वह आठ [हज़ार] मील दूर निवास करनेवाले एक छोटे टापू के [...] लोगों के शासन में परतन्त्रता का जीवन व्यतीत [कर] रहा है।

भारत का प्राकृतिक वैभव, उसका धनैश्वर्य, [...] उर्वरता, उसकी विशाल शान्तिप्रिय जन-संख्या, [...] बाधाहीन विस्तार, उसकी भौगोलिक स्थिति इ[न] कारण पृथिवी की परस्वापहारी जाति पुराकाल से [...] और लोलुप दृष्टि लगाये हुए है। साम्राज्यवादि[यों] के लिए वह अपने ऐसे ही महत्त्व के कारण [...] से 'सोने की चिड़िया' बना हुआ है। अँगरेज़ों के [...] उसके पड़ जाने से आज संसार में उन्हें कितना [...] प्राप्त हो गया है? इस कारण भारत संसार की अन्त[र्राष्ट्रीय] राजनीति का एक विचार करने योग्य विषय है। अ[पने] गौरव और उस कारण दुर्दशा का भी उसे पूरा ज्ञान [...]

× × ×

भारत को जहाँ अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अपनी [...] के महत्त्व का ज्ञान हो गया है, वहाँ उसको [...] वादियों के रूप का भी पूरा परिचय मिल गया है। [...] रीका, अफ़्रीका और एशिया के अपने अर्धीन[स्थ देशों] के साथ उनकी जो नीति अब तक रही है उससे [...] आँखें खुल गई हैं। उनके इस भूतकाल [...] हास से वह जान गया है कि साम्राज्यवादि[यों के] वचनों और वादों का क्या मूल्य है। पर इसमें [...] कोई दोष भी नहीं है। वे अपने साम्राज्य [...] जैसे हो सकेगा, करेंगे। ऐसी दशा में वे अपने [...] देशों को स्वाधीन करके अपने पैरों पर अपने ही ह[ाथों] कुल्हाड़ी मार सकते हैं? साम्राज्यवाद मान[व]-नता का संहारक है। यदि कोई साम्राज्य-सर[कार]

अधीन लोगों को उनके नैसर्गिक अधिकार प्रदान कर दे तो उस साम्राज्य का यदि अन्त नहीं हो जायगा तो वह साम्राज्य भी नहीं रहेगा। यही कारण है कि ग्रेट ब्रिटेन अपने अधीन देशों के साथ कूट-नीति से व्यवहार करता है। परन्तु अब कूट-नीति में, चिकनी-चुपड़ी बातों में भारत भूलने का नहीं। भारत ने जान लिया है कि ग्रेट ब्रिटेन भारतीयों को अधिकार तब तक नहीं प्रदान करेगा जब तक वह उनसे छीन लेने के समर्थ नहीं हो जायगा। भारत आज उसी बल को सञ्चय कर रहा है।

× × ×

स्वाधीनता का अपना ख़ास मूल्य है, भिक्षावृत्ति से वह प्राप्त नहीं होती। उसकी प्राप्ति के लिए उसका समुचित मूल्य चुकाना ही होगा। स्वाधीनता के लिए जो मूल्य देना पड़ता है वह संसार की किसी भी वस्तु की प्राप्ति के लिए नहीं देना पड़ता। उसका मूल्य होता ही है वैसा अधिक। परन्तु जिसे उसे लेना है, जो उसको प्राप्त करने में कटिबद्ध है, वह उसे ले ही करके मानता है, फिर चाहे उसका सर्वस्व ही क्यों न चला जाय। परन्तु इस तरह अपने को मिटा कर जो उसे प्राप्त करता है, अर्थात् जो स्वतन्त्र हो जाता है, उसका स्वाधीन रूप नये जीवन का सूचक होता है। उस दशा में उस सर्वस्व के न्योछावर कर देने की सूद-सहित भरपाई हो जाती है। सौभाग्य की बात है, भारत ने उस मूल्य को आँक लिया है और वह उसे अदा करने के लिए नये नये साधनों का उपयोग करके अपने को समर्थ बना रहा है। इस दिशा में वह कहाँ तक आगे बढ़ गया है, इसका निदर्शन हमारी वर्तमान स्थिति से भले प्रकार हो रहा है। हमारी स्थिति यही बात सूचित कर रही है कि हम अपने धेय के बहुत कुछ सन्निकट आ पहुँचे हैं। नहीं तो शाही-कमीशन की रिपोर्ट के प्रकाशित होने के पहले ही भारत-मन्त्री आज 'राउंड टेबल कान्फ़रेंस' में शामिल होने के लिए भारतीयों को आमन्त्रित न कर बैठते।

भारतीय अब कीड़ों-मकोड़ों का सा अपमान-जनक जीवन नहीं व्यतीत करना चाहते। वे अब सामाजिक, अर्थ-नैतिक, राजनैतिक सब दुरवस्थाओं के सुधार के लिए कटिबद्ध हैं। उन्होंने अतीत की हीनता, दीनता, अपूर्णता सबसे अपना सम्बन्ध भङ्ग करने को ठान लिया है। आज वे आत्मत्याग की शिक्षा ले रहे हैं, वे सब कष्ट, कारागार, मृत्यु तक को प्रसन्नता के साथ आलिंगन करने को प्रस्तुत हैं। ऐसी अवस्था में उन लोगों को जो देशसुधार की ओर से उदासीन हैं, जो देश की दशा को पूर्ण रूप से हृदयंगम नहीं कर सके हैं, अपना दृष्टिकोण (angle of vision) बदल देना होगा। उन्हें जीवन के उन्नत आदर्शों को ग्रहण करना होगा। उन्हें अपने जीवन को तेजस्वी, निःशङ्क, आनन्दमय और निर्भीक बनाना होगा। बाहरी बन्धनों को उन्हें तोड़ फेंकना होगा। तभी वे इस सच्चे जीवन के आदर्श को समझ सकेंगे। महात्मा गांधी का सारा प्रयत्न जीवन के ऐसे ही आदर्श को उपस्थित करना है। इसी को ग्रहण करने से स्वाधीनता की प्राप्ति हो सकेगी दूसरे उपाय से नहीं।

× × ×

हमारी वह स्वाधीनता कैसी होगी, उसे स्वर्गीय देशबन्धु दास ने इस तरह बताया है—

"उन्हें शासन की उस पार्लियामेंटरी पद्धति की बात नहीं सोचनी चाहिए जो केवल मध्यश्रेणी के लोगों का, पूँजीपतियों का, जनता पर, श्रमिकों पर, दीन लोगों पर शासन है, अर्थात् अधिक बलवानों का निर्बलों पर अत्याचार है। उनमें से कुछ ऐसे लोग हैं जो यह समझते हैं कि सरकार के कुछ अन्य विभागों पर उनको अधिकार दे दिये जायँ, बस स्वराज्य मिल गया। मेरा कहना है कि इस प्रकार का स्वराज्य मध्य-श्रेणी के लोगों का होगा। ऐसे भी कुछ लोग होंगे जो यह कहेंगे कि इस स्वराज्य को ले लो, इसे हम जनता को दे देंगे। यह मन में जानते हुए कि वे किसी को देंगे नहीं, इस तरह कहते हैं। हम तुरन्त स्वार्थी बन जायँगे और जनता एवं श्रेणियों में लड़ाई छिड़ जायगी। मैं तो दम रहते तक इस प्रकार के स्वराज्य का विरोध करूँगा। स्वराज्य जनता के लिए होना चाहिए। उसका प्राप्त करना जनता का ही काम है"।

आज भारत 'सुशासन' के स्थान पर ऐसा 'स्वराज्य' माँग ही नहीं रहा है, किन्तु उसकी प्राप्ति के लिए वह

यत्नवान् है। उसने यह घोषणा स्पष्टरूप से कर दी है कि हम अँगरेज़ों के वर्तमान साम्राज्य में समानपद पर ही रहेंगे, अन्यथा हम उससे अलग हो जायँगे। यह कहकर वह चुप ही नहीं हो रहा है, किन्तु अपनी इस महानकांक्षा की पूर्ति के लिए तत्परता और परिश्रम के साथ अपने को तैयार भी कर रहा है। वह जानता है कि ब्रिटिश साम्राज्य से वह लड़ नहीं सकता। इसी लिए उसने वशिष्ठ के आदर्श को ग्रहण किया है। भारत की स्वाधीनता का अहर्निश स्वप्न देखनेवाले महात्मा गांधी आज भारत के लिए महर्षि वशिष्ठ का ही आदर्श उपस्थित कर रहे हैं। इस आदर्श का उपदेश वे भारत के कोने कोने में कर आये हैं और उसको सामने रक्खे हुए वे ब्रिटिश की विश्वविजयी शक्ति से टक्कर लेने के लिए तैयार कर रहे हैं। आज भारत का ऐसा ही रूप है।

भारत के इस रूप को देखकर इँग्लेंड के विचारवान् राजनीतिज्ञ चिन्तित हुए ।

## सूचना

स्वराज्याङ्क के लिए हमें काफ़ी से अधिक लेख ... हैं। यहाँ तक कि हम उन सबको इस अङ्क में ... निकाल सके। इसका हमें खेद है। अपनी इस अ... र्थता के लिए हम अपने कृपालु लेखकों से क्षमा ... हैं। शेष लेखों को हम फ़रवरी और मार्च की सं... में निकालने का यत्न करेंगे।

## प्राप्ति-स्वीकार

इलाहाबाद के लाजर्नल प्रेस ने राष्ट्रपति ... जवाहरलाल नेहरू के चित्रों का एक अलबम प्र... किया है। इसमें उनकी बचपन से लेकर अब त... भिन्न-भिन्न अवस्थाओं के चित्र संग्रहीत हैं। इ... के देखने से उनके जीवन के क्रम-विकास का अच्छ... परिचय मिल जाता है। संग्रह सुन्दर है। मूल्य २)।

इस देश का प्रत्येक ईमानदार मनुष्य यह कहने को बाध्य है कि 'मैं अपने दे... से प्रेम करता हूँ, मैं अपनी स्वाधीनता से प्रेम करता हूँ, मैं अपनी व्यवस्था अपने आप कर... का अधिकार—जन्मसिद्ध अधिकार प्राप्त करूँगा।' यदि यह अपराध है तो मैं इस अपरा... को स्वीकार करता हूँ। यदि यह अपराध है तो मैं इस कर्त्तव्य से डिगने की अपेक्षा फाँसी... पर लटक जाने को तैयार हूँ। मैं सोचता हूँ कि वर्तमान समय में प्रत्येक भारतवासी का एक-मात्र यही कर्त्तव्य है।

देशबन्धु दास

Printed and Published by K. Mittra, at The Indian Press, Ltd., Allahabad.

## लेख-सूची

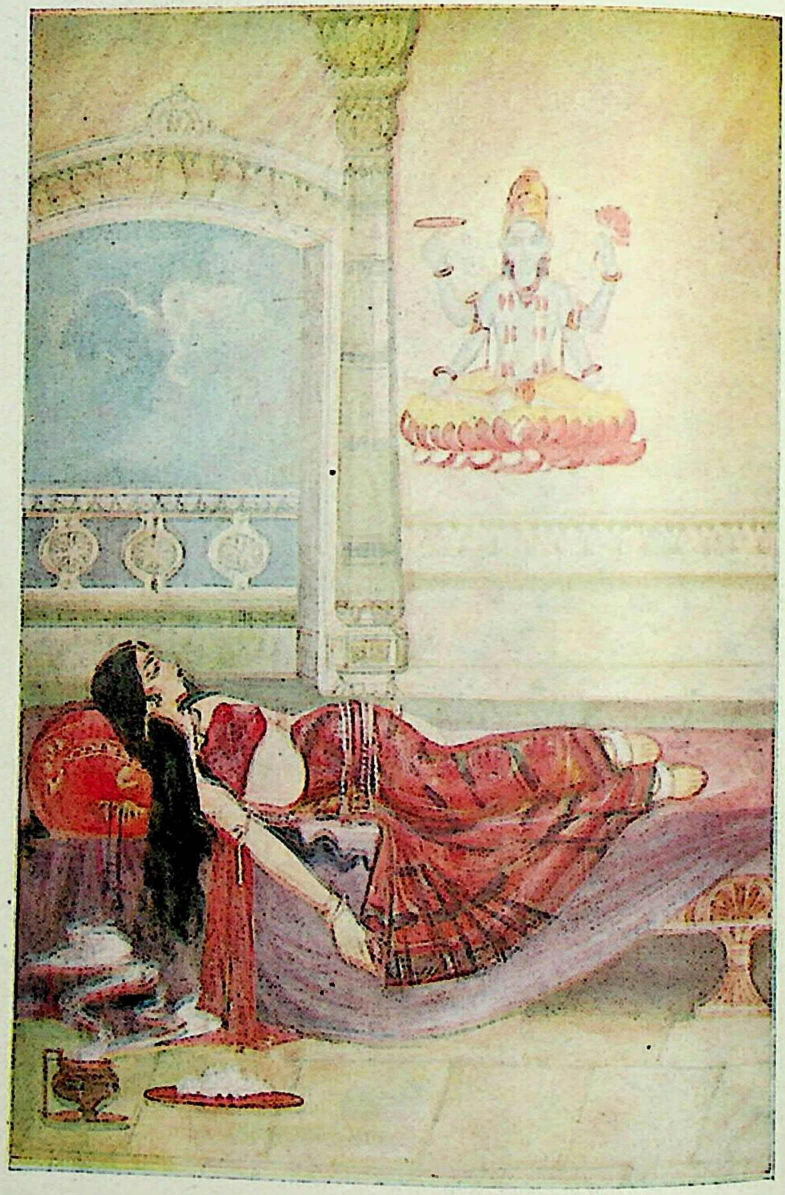
---

## चित्र-सूची



---

पं. वीरभद्र शर्मा



राम-जन्म

# सरस्वती

सचित्र
मासिक पत्रिका

| वार्षिक मूल्य ६।।)<br>Yearly Subscription, Rs. 6-8 | सम्पादक<br>**देवीदत्त शुक्ल** | प्रति संख्या ।।=)<br>As. 10 per copy. |
|---|---|---|

भाग ३१, खण्ड २ ] आक्टोबर १९३०—आश्विन १९८७ [ सं० ४, पूर्ण-संख्या ३७०


## हृदय का हठ

ऊपर से आदर मैं क्यों नहीं दिखाऊँ तुम्हें,
रहता तुम्हारा सब काल मुझे भय है।
पर यदि सत्य पूछते हो तो तुम्हारे लिए,
मेरे मन में न हुआ प्रेम का उदय है।
मैंने निज उर को बहुत समझाया किन्तु,
उस पर होती किसी भाँति न विजय है।
मेरा कुछ दोष नहीं मैं तो चाहता हूँ खूब,
क्या करूँ तुम्हें न कभी चाहता हृदय है॥

—गोपालशरणसिंह

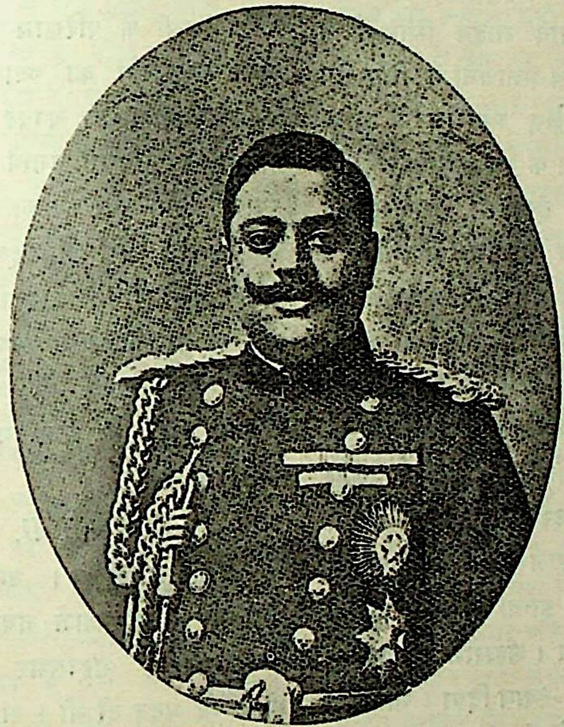
# महाराज माधवराव सिंधिया

बीसवीं शताब्दी के इतिहास में ग्वालियर-राज्य के स्वर्गवासी महाराज सर माधवराव साहब सिंधिया आलीजाह बहादुर का नाम स्वर्णाङ्कित रहेगा। वे एक आदर्श भारतीय नरेश थे। उनकी मृत्यु से समस्त देश की भारी क्षति हुई है, जिस प्रकार देशभक्त गोखले से हुई है। वे क्षात्र तेज की जीती-जागती प्रतिमा थे। घुड़दौड़ और मरदानगी के खेलों में उनका मुक़ाबला करना दुस्तर कार्य था। लन्दन के पोलो ग्राउंड में एक सङ्कट के अवसर पर उन्होंने जिस ढङ्ग से अपना घोड़ा सँभाल कर अनेक पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों को कुचल जाने से बचाया था उसे देखकर हज़ारों दर्शक आश्चर्यचकित हो गये थे। सैनिक शक्ति के संगठन में वे परम निपुण थे। ग्वालियर की सेना ने फ्रांस के रणक्षेत्र में जो अपूर्व वीरता प्रकट की वह देश और विदेश के सैनिकों के लिए ईर्ष्याजनक थी। वे जब परेड और चाँदमारी लेते तब बहादुर सिपाहियों के भी छक्के छूट जाते थे। महाराज की वीरता और साहस को देखकर सारी सेना चकित हो जाती थी। सेना के संचालन में वे एक एक सिपाही के रुख़ का ख़याल रखते थे। वे यह हृदय से चाहते थे कि इस वीर-भोग्या वसुन्धरा में कमज़ोर और आलसी आदमियों की सृष्टि न बढ़े। वे यह कहा करते थे कि वह क्षत्रिय नहीं है जिसे घोड़े की पीठ पर सवारी करना नहीं आता।

धार्मिक विचारों में महाराज कदापि संकीर्ण नहीं थे। उन्होंने साम्प्रदायिकता को अपने शासन-कार्य में किञ्चित् भी स्थान नहीं दिया था। हिन्दू और मुसलमान दोनों के लिए गणेश-उत्सव और ताज़िया म[…] गणेश-उत्सव में महाराज अपने दर्शन देने ही नहीं बल्कि प्रतिदिन मण्डली के साथ खड़े रह क[र] कीर्तन करते थे। उसी प्रकार ताज़िया में [...] की रात और दफ़न के समय बराबर शामिल [...] वे अपनी हिन्दू और मुसलमान प्रजा को एक [...] देखते थे। यह उनकी एक विशेषता थी। [...] अफ़सरों को उनका यह आदेश था कि 'वे स[ब] और धर्म के लोगों के साथ समानता [...] करें'। जातीय पक्षपात का सिद्धान्त ग़लत है [...] दुर्भाव पैदा करता है। शासन के सम्बन्ध [...] प्राथमिक कर्त्तव्य मानना चाहिए कि किसी के सा[थ] भी प्रकार—धार्मिक भावना और—जातीय पक्षपात [...] भी न कर सबके साथ समानता का बर्ताव हो। [...] शासन की साधारण बात है; किन्तु अत्यन्त मह[त्त्वपूर्ण] सिद्धान्त है। मैं चाहता हूँ कि मेरे अफ़सर [...] दैनिक कार्यों में कड़ाई से इसका अनुसरण [...] अपने राजभवन के पास ही पब्लिकपार्क में [...] हिन्दुओं के लिए लक्ष्मीनारायण का एक मन्दि[र बन]वाया था। वहीं नज़दीक में ही मुसलमानों के लि[ए] मसजिद, सिक्खों के लिए गुरुद्वारा और थियाँ[सॉफ़िस्टों] के लिए बृहत् समाज-भवन बनवाया था।

महाराज बड़े दूरदर्शी राजनीतिज्ञ थे। [...] उन्होंने राज्य में 'मजलिस आम' की स्थाप[ना की] थी, जो ग्वालियर-राज्य की 'लेजिसलेटिव एसेम्बली' [है।] इसकी स्थापना करते समय महाराज ने यह स्पष्ट [शब्दों] में कहा था कि आज जो मजलिस का विधान है [...] हमेशा नहीं क़ायम रहेगा। इस मजलिस क[...]

रूप तो इस प्रकार के शासन का प्रारम्भ है। अवसर पाकर यही ज़िम्मेदार संस्था हो जायगी। अच्छी शासन-व्यवस्था महाराज का प्रधान लक्ष्य था। उन्होंने अपनी पूज्य मा से पण्डित शिवचरणलालजी के मुक़द्दमे के समय कहा था—'मा, मैं निरंकुश शासक कहला कर दूसरों पर सख़्ती करने की इच्छा नहीं रखता। मुझे वस्तुतः बड़ा दुख होता है जब कि मैं उन पर सख़्ती करता हूँ जो राज्य के पुराने नौकर हैं और जिन्हें योग्य बनाने में राज्य ने लाखों रुपया ख़र्च किया है। मैं बेईमानी को प्रोत्साहन नहीं दे सकता। और ऐसों को बिना सज़ा दिये हुए नहीं छोड़ूँगा। आप जानती हैं कि मैं राज्य की अच्छी शासन-व्यवस्था के लिए ज़िम्मेदार हूँ। यदि मैं बड़े अफ़सरों की बदअमनी की उपेक्षा कर जाऊँ तो मैं यह कैसे आशा करूँगा कि छोटी तनख़्वाहवाले लोग ईमानदार रहेंगे।... ... ... ... जब मैं आलसी नहीं रहना चाहता, तब मैं कैसे सहन करूँगा कि दूसरे आलसी रहें।' सार्वजनिक सभाओं में अपने अफ़सरों की कमज़ोरियाँ प्रकट करने में महाराज साहब कभी नहीं चूकते थे। ख़ूब खुल कर कहते थे और उन्हें लज्जित कर देते थे। उनकी प्रजा राजशासन के सम्बन्ध में आन्दोलन कर सके, इसलिए उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा था कि 'यदि रियासत का रईस रियासत की बुराई करे तो प्रजा को चाहिए कि अपनी जान देकर भी वह रईस को उन हानिकारक कार्यों को न करने दे।'



[ श्रीमंत स्वर्गीय महाराजा सर माधवराव साहब सिंधिया आलीजाह बहादुर ]

महाराज का सादा रहन-सहन, प्रत्येक श्रेणी के व्यक्ति से निःसङ्कोच मिलना और राजकाज परिश्रम-पूर्वक करना विशेष गौरव की बात थी। आराम करना जानते ही नहीं थे। उन्होंने कोई दीवान नहीं रक्खा था। इसी से वे ठीक दस बजे आफ़िस में आकर लगातार सोलह सोलह घण्टे तक काम करते थे।

जहाँ महाराज में इतने सब गुण थे, वहाँ वे प्रजाप्रिय और आदर्श देशभक्त नरेश भी थे। तमाम शासन-सम्बन्धी सुधारों के अलावा किसानों की उन्नति उनका प्रधान लक्ष्य था। सार्वजनिक सभाओं में महाराज ने किसानों को हाथ जोड़ कर एक बार नहीं, अनेक बार अन्नदाता कहा। अपने अफ़सरों को किसानों को लक्ष्य कर उन्होंने कितना पवित्र आदेश दिया—'मेरी राय नाक़िस में यही लोग (किसान) हैं जो हम सबके अन्नदाता हैं, हम सबकी ज़िन्दगी व रिआसत की आमदनी सब इन्हीं लोगों के ऊपर मुनहसर है। ख़्वाह कोई डिपार्टमेंट हो, उसका डायरेक्ट या इनडायरेक्ट इन्हीं लोगों के काम व पैदावार से तअल्लुक़ है। मिसाल के लिए कस्टम डिपार्टमेंट को ही लीजिए अगर मुल्क में काश्तकारी न हो तो कस्टम की आमदनी कहाँ से आवेगी। काश्तकारी का रुतबा जैसा मैंने कहा—सबसे आला है और इसी लिए उनके साथ आफ़ीसरान 'का बर्ताव ऐसा होना चाहिए जैसा कि मा अपने बेटे के साथ करती है। लेकिन आफ़ीसरान अक्सर अपने ज़िले में आकर अपने तईं यह भूल जाते हैं। वह समझते हैं कि

अगर मुल्क के सूरज हैं तो हम हैं। वह यह नहीं समझते कि अगर उनके बेजा बर्ताव से रिआया को तकलीफ़ पहुँची और काश्त घटी तो फिर वह सूबा और अफ़सर कहाँ से कहलावेंगे। यह बात कुछ ख़ास ग्वालियर से ही ताल्लुक़ नहीं रखती; बल्कि यह सब जगह के लिए लागू है।'

यह है राम-राज्य की भावना। आज जो महात्मा गांधी हृदय-परिवर्तन की माँग करते हैं उसे परम राजनीतिज्ञ प्रजाहितैषी सर माधवराव साहब सिंधिया ने अपने शासन-काल में बत्तीस लाख प्रजाजनों के लिए सब से प्रथम पूर्ण की। किसानों के लिए महाराज ने ग्राम-पंचायतें, बाँध, नये नये प्रकार के हल (सेंदिया हल), खाद, सहकारी बैंक, उपदेशक, इंस्पेक्टर, कृषि-साहित्य आदि नये व पुराने तरीक़ों और वैज्ञानिक प्रयोगों से वे सब बातें कर दिखाईं, जिन्हें बड़े बड़े कृषि कमीशनों की रिपोर्टें वर्षों में पूरा नहीं कर सकेंगी। महाराज ने वैसे तो अनेक पुस्तकें लिखी हैं, किन्तु 'ज़मीदार हितकारिणी' जैसी सुन्दर और उपयोगी पुस्तक किसानों के लिए अत्यंत उपयोगी है। जहाँ उन्होंने यह सब कुछ लिखा, वहाँ शासन के सम्बन्ध में उनकी 'दरबार पालिसी' अपना अलग महत्त्व रखती है। महाराज ने ये सब पुस्तकें राष्ट्र-भाषा हिन्दी में लिखी हैं। इतना ही नहीं, उन्होंने राज-भाषा भी हिन्दी को ही बनाया। महाराज ने सदिच्छा से ही हिन्दी को यह उपयुक्त स्थान दिया। ग्वालियर की प्रजा न तो उर्दू-भाषा-भाषी है और न मराठी-भाषा-भाषी। वह तो ठेठ हिन्दी बोली बोलती है। उसके लिए हिन्दी को राजभाषा बनाकर महाराज ने सर्वथा न्याय का ही कार्य किया। परन्तु उस समय राज्य के अफ़सर फ़ारसी और उर्दू तथा मराठी के हामी थे। इसलिए हिन्दी-लिपि तो हो गई है, किन्तु भाषा जटिल ही बनी रही। खेद है कि आज तक उसमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ। आशा है, ग्वालियर-सरकार का ध्यान इस ओर आकृष्ट होगा और वह एक ऐसी सादी हिन्दी का प्रचार करेगी जो हिन्दू और मुसलमान दोनों के लिए आमफ़हम होगी।

महाराज का ध्यान देश के व्यापार और उद्[योग] की ओर भी अत्यधिक था। वे प्रतिभा-सम्पन्न व्यापारी थे। उन्होंने अपने राज्य में अनेक कल-का[रख़ाने] खोले, उनमें लाखों और करोड़ों रुपया लगाया। [वे] चाहते थे कि ग्वालियर-राज्य व्यापार और उद्योग[-धंधों में] इतनी तरक्क़ी कर ले कि ब्रिटिश भारत के भी प्रान्[त] लाभ उठावें। वे यह भी चाहते थे कि बाहर के व्यापारी राज्य में आकर कारख़ाने खोलें और [व्यापार] करें। इसी के परिणाम-स्वरूप उधर सर हुक[ुमचंद] जैसे व्यापारियों का ध्यान आकर्षित हुआ था। [इसके] अलावा महाराज ने बम्बई के व्यापार और उद्[योग] में कई करोड़ रुपये लगाये थे। कलकत्ता और ब[म्बई के] व्यापारियों में महाराज का बड़ा आदर था। [व्यापार] में महाराज की बुद्धि इतनी प्रखर थी कि वहाँ [के लोग] अक्सर हँसी में उन्हें मारवाड़ी कह दिया करते थे। [भारत] में कपड़े का जो उद्योग पनपा उसमें अन्य राज्यों के [अति]रिक्त महाराज का भी बहुत बड़ा हाथ था। [इसके] अलावा वहाँ के अन्य व्यवसायों की भी उनकी [कृपा] से तरक्क़ी हुई।

जहाँ ये सब बातें थीं, वहाँ महाराज ब्रिटिश [सरकार] के परम राजभक्त थे। उन्होंने अपने राजपुत्र और पुत्री के नाम 'जार्ज जयाजीराव' और 'मेरी [कमला]राजा' रक्खे। महासमर में उन्होंने सरकार को [दिल] खोल कर मदद दी थी। समय समय पर महाराज [ब्रिटिश] सरकार को बराबर सहायता देते रहे। ब्रिटिश स[रकार में] भी महाराज का अच्छा सम्मान था। देश के राष्ट्[रीय] नेताओं से भी वे बड़े प्रेम से मिलते थे, उनका [आदर] करते थे। बम्बई में हिन्दू-विश्वविद्यालय के [लिए] चान्सलर की हैसियत से बीकानेर-नरेश और पंडित मदनमोहन मालवीयजी के साथ माधव[राव] एक विराट् सभा में वे भी पधारे थे। इस सभा में [बड़ी] भीड़ थी। बम्बई के तमाम करोड़पती और [लखपती] गुजराती और मारवाड़ी व्यापारियों का समुदाय [उपस्थित] था। महामना मालवीयजी ने हिन्दू-विश्वविद्यालय [के] लिए चन्दे की अपील की और इंजीनियरिंग [कालेज]

का नक़्शा लोगों को समझाया। इस बीच में भारत के हृदय-सम्राट् महात्मा गांधी उस सभा में पधारे। जनता खड़ी होगई और महात्माजी की जय जयकार होने लगी। असहयोग-संग्राम आरम्भ होने का समय था। दोनों महाराज भी खड़े हो गये। महात्माजी पीछे से आकर ज़मीन पर एक कोने में बैठने लगे। महाराज ग्वालियर ने यह देख कर महात्माजी का हाथ पकड़ा और कहा कि यदि आप यहाँ बैठेंगे तो मुझे और भी पीछे बैठना होगा। महात्माजी दोनों नरेशों के बीच की कुर्सी पर आकर बैठ गये। ग्वालियर-नरेश ने बम्बई की जनता से विश्व-विद्यालय के लिए दान माँगा। तब महात्मा जी ने खड़े होकर कहा कि आज ग्वालियर के नरेश मेरे शहर में एक विद्या-कार्य के लिए दान माँगते हैं, तो हमें आज खुल कर उनकी पसारी हुई झोली भर देनी चाहिए। यद्यपि ग्वालियर के सम्बन्ध में मेरी शिकायतें रही हैं। मेरे उधर से निकलने पर स्टेशन पर दर्शकों पर अड़चनें डाली गईं व और भी दूसरे मामले हुए। मुझे इस सम्बन्ध में यंग इंडिया में लिखना पड़ा। पर आज हमें उन सब बातों को भुला कर महाराज की अपील का स्वागत करना चाहिए। इस पर महाराज ने तुरन्त खड़े होकर अत्यन्त विनम्रभाव से कहा कि 'आज मेरा बड़ा भाग्य है कि ऐसे महापुरुष के पास बैठा हूँ। ग्वालियर के सम्बन्ध में आपने जो कहा है सो वैसी ग़लतियाँ ग़लत-फ़हमी से एडमिनिस्ट्रेशन में हो जाती हैं। मैं जिस राज्य का एक ताबेदार हूँ उसे आगे से सुधारने में इन सब भावों का ख़याल रक्खूँगा।' महाराज के इस प्रकार के भाषण का जनता पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा। जनता ने वीर सैनिक, प्रजाभक्त और नीति-निपुण महाराज का हृदय से अपूर्व स्वागत किया।

महाराज के उद्योग से पूना में छत्रपति शिवाजी की मूर्ति का उद्घाटन हो सका। उस समय देश इस बात का विरोधी था कि छत्रपति शिवाजी की मूर्ति का उद्घाटन प्रिंस आफ़ वेल्स से कराया जाय। अतएव इस उत्सव की सफलता के लिए महाराज केसरी-सम्पादक श्रीनरसिंह चिन्तामणि केलकर के घर पर गये और नेताओं को शांत किया। इसके उपरांत महाराज की यह भी प्रबल इच्छा थी कि शिवाजी का एक राष्ट्रीय स्मारक बनाया जाय। पर वह न हो सका। उन्होंने अपनी स्नेहमयी जननी जीजा महाराज का शिवपुरी में अपूर्व स्मारक बनाया है। उस प्रस्तर-मूर्ति की मिट्टी साफ़ करते हुए उन्होंने कहा था कि 'मैं इसको अपनी मा समझता हूँ और तुम लोग पत्थर की मूर्ति।'

आज सर जान साइमन ने भारतवर्ष को इम्पीरियल इंडिया और डोमेस्टिक इंडिया में बाँट कर जो कार्य किया है, इसका समर्थन स्वर्गवासी महाराज राजाओं की ओर से कदापि न करते। वर्तमान नरेशों के समान वे राज्यों के संरक्षण के लिए व्याकुल नहीं होते थे कि हमारा संबंध सीधा इँग्लेंड की सरकार से ही रक्खा जाय, अन्यथा हमारा सर्वनाश हो जायगा। उन्होंने प्रिंसेज़ चेम्बर में इस माँग का विरोध ही किया और कहा कि हमारा अपना अच्छा शासन ही हमारे संरक्षण की ज़बर्दस्त गारंटी है। हमारे राज्य प्राचीन कीर्ति के स्मारक हैं। इन्हें नष्ट करने का किसी का भी भाव नहीं है। इसी से ब्रिटिश भारत के नेता महाराज को नेशनलिस्ट कहते थे। हमारे वर्तमान नरेश भारत-सरकार से संबंध बनाये रखने में भयभीत होते हैं, किन्तु उन्होंने तो भारत-सरकार को देशी राज्यों का संबन्ध समस्त भारत से जोड़ने के लिए बाध्य किया था और नरेन्द्र-मण्डल की स्थापना करवाई थी। उन्होंने इसमें ज़रा भी अपमान नहीं समझा था कि प्रिंसेज़ चेम्बर में बैठना किसी भी प्रकार उनके लिए अपमानकारक है।

इस प्रकार नीतिनिपुण, कर्तव्यवान् और देशभक्त महाराज के न रहने से भारत राष्ट्र की जो अपार हानि हुई उसकी पूर्ति बिरले ही किसी व्यक्ति से होगी।

—जी० एस० पथिक

# चैननगर के चार बेकार

[कहानी लिखने में श्रीयुत सुदर्शनजी यशस्वी हुए हैं। आप कहानी लिखने में सि-हस्त हैं। इस कहानी में यह बताने का प्रयत्न किया गया है कि आधुनिक सभ्यता जब कि दिव्य देश में जाती है तब वहाँ क्या होता है। इस शैली में यह सुदर्शनजी की पहली चीज़ आशा है, पाठकों को यह कहानी पसन्द होगी।]

कुछ समय गुज़रा, उत्तरी भारतवर्ष में दो पहाड़ियों के बीच में एक हरा-भरा गाँव आबाद था, जिसका नाम चैननगर था। यहाँ के निवासी सीधे-सादे थे, हर एक अपना अपना काम अपने हाथ से करता था, और किसी को किसी से कोई शिकायत न थी।

चैननगर के लोग दिन भर परिश्रम करते थे, इसलिए वहाँ बीमारियाँ न थीं, ओषधियाँ न थीं, वैद्य न थे। वहाँ के लोग प्यार-मुहब्बत से रहते थे, इसलिए वहाँ कचहरियाँ न थीं, वकील न थे, जेलख़ाने न थे। वहाँ के लोग शान्त-स्वभाव थे, इसलिए वहाँ चोरियाँ न होती थीं, न वहाँ पुलिस थी, न बन्दूकें, न तलवारें, न तोपें थीं। वहाँ के लोग जितेन्द्रिय थे, इसलिए वहाँ न रूप-यौवन की दूकानें थीं, न शराब थी, न क़त्ल-ख़ून की घटनायें होती थीं। वहाँ के लोग अतिथि-सत्कार को धर्म्म समझते थे, इसलिए वहाँ न धर्म्म-शालायें थीं, न सरायें थीं, न होटल थे। वहाँ मेहनत-मज़दूरी के मोटे नियम के सिवा दूसरा कोई नियम न था। वह नियम यह था कि जो काम करे खाये, जो बेकार रहे भूखों मरे। सब काम करते थे, केवल चार आदमी ऐसे थे जिनको बेकारी पसन्द थी। वे भूखों मरते थे और दूस दान पर जीते थे। आख़िर एक दिन उन्हें भी लो गाँव से निकाल दिया। अब वहाँ सब काम कर थे, बेकार कोई भी न था।

मगर शैतान को असभ्य मूर्खों की यह छोटी दुनिया पसन्द न आई, और उसने निश्चय कर लि मैं इसे सभ्य बनाऊँगा और यहाँ के रहनेवालों के वैभव और उन्नति के द्वार खोल दूँगा।

दूसरे दिन शैतान की आज्ञा से एक सुन्दर धनवान् सौदागर चैननगर में आया और सा देखने के बाद बोला—शोक, तुम लोग बिलकुल और असभ्य हो। पता नहीं, इस दशा में तुम कैसे हो?

लोगों ने यह व्यवस्था सुनी, और वे आश्चर्य सौदागर का मुँह देखने लगे।

सौदागर ने कहा—मैंने सारे संसार की यात्रा की और मैंने बड़ी बड़ी अद्भुत वस्तुएँ देखी हैं। ऐसा ग़रीब और दीन-हीन गाँव मैंने और कहीं देखा।

लोगों ने यह सुना और कहा—हमें तो यह ही न था। क्या हम अब सभ्यता नहीं सीख सक

सौदागर ने उत्तर दिया—मुझे चार आदमी दे दो, और मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि तुम्हारे गाँव का एक एक आदमी सभ्य बन जायगा। परन्तु शर्त यह है कि वे चारों बेकार हों।

चैननगर में एक भी बेकार न था। लोग निराश हो गये और बोले—शोक! हमें क्या ख़बर थी कि कभी हमको बेकारों की भी आवश्यकता पड़ जायगी। यह ख़बर होती तो हम उन चार बेकारों को गाँव से कभी न निकालते। मगर सौदागर हताश न हुआ और उसने उन्हीं लोगों में से चार आदमी चुन लिये। उसने उन्हें खाने को स्वादिष्ठ भोजन दिये, पहनने को बहुमूल्य और महीन वस्त्र दिये। उसने कहा—जाओ, गाँव की सैर करो। तुम्हारा यही काम है।

और वे चार बेकार गाँव में फिरने लगे। परन्तु कुछ ही दिनों में उनका जी उदास हो गया, और उन्होंने सौदागर से कहा—हमें कुछ काम दीजिए, हम बेकार नहीं रह सकते।

सौदागर ने मुस्करा कर उनकी तरफ़ देखा, और धीरे से कहा—तुम बड़े आदमी हो। बड़े आदमी काम नहीं किया करते। काम करना मँजूरों और कुलियों का काम है।

चारों बेकार यह सुनकर कि अब वे बड़े आदमी बन गये हैं, ख़ुशी से फूले न समाये और बोले—तुम कितने दयालु हो? तुमने हमें बड़ा आदमी बना दिया है। अब वास्तव में हमें स्वयं काम करने की क्या ज़रूरत है? हमारा काम दूसरे लोग किया करेंगे। मगर हमारे पास उनको देने के लिए कुछ नहीं है। न हम खेती करते हैं, न हमारे पास अनाज है।

सौदागर एक बार फिर मन को मोह लेनेवाले ढंग से मुस्कराया और बोला—तुम बड़े आदमी हो, बड़े आदमी अपना काम बिना कुछ दिये ही करा लिया करते हैं। मगर जो कुछ कहो, मैं तुम्हारे लिए ख़र्च करने को तैयार हूँ। उन्होंने कहा—इस गाँव के लोगों को बुला कर हुक्म दीजिए—कि वे हमारे लिए पाँच सुन्दर आकाशचुम्बी महल बना दें। ख़र्च जितना हो जाय, इसकी कोई चिन्ता नहीं।

दूसरे दिन से लोगों ने खेती-बारी का काम बन्द कर दिया, और महल बनाने में लग गये। महल बन गये। ये महल बड़े विशाल और सुन्दर थे। इन्हें देखकर दिल की कली खिल जाती थी, मगर गाँव की फ़सल मारी गई। सौदागर ने लोगों को रुपया दिया, परन्तु रुपया से किसी का पेट न भरता था। लोग ज़ार ज़ार रोते थे और कहते थे, हाय! अब क्या होगा?

सौदागर ने एक बेकार को बुलाकर कहा—कुछ आदमियों को नौकर रख लो, उन्हें बाहर भेजकर सस्ते दामों में अनाज ख़रीदो और यहाँ मँगवा कर महँगे दामों में बेचो। जो बचे वह तुम्हारा हिस्सा है।

उस बेकार ने ऐसा ही किया, और यह पहला अवसर था जब चैननगर के निवासियों ने बाहर से आया हुआ अनाज खाया। उन्होंने कहा—यह आदमी कितना भला है? अगर यह न होता तो हम और हमारे बाल-बच्चे भूखों मर जाते।

अब उनको बाहर की चीज़ें अच्छी मालूम होने लगीं, और अनाज मँगवानेवाले उस बेकार ने कई और चीज़ें मँगानी शुरू कर दीं। कुछ ही महीनों में वह धनवान् हो गया और उसने कई दूकानें खोलकर उन पर अपने कारिन्दे बैठा दिये। वह आप अपने हाथ से कोई काम न करता था, उसका सब काम दूसरे लोग करते थे।

दूसरे वर्ष जब फ़सल खड़ी थी तब एक रात को कुछ मृग आये और फ़सल का कुछ भाग ख़राब कर गये। सौदागर ने गाँव के लोगों को गाँव के चौक में जमा किया, और कहा—इस प्रकार तो ये जानवर तुम्हारी सारी फ़सल ख़राब कर जायँगे। अगर तुम कहो तो मेरा आदमी ऐसा प्रबन्ध कर सकता है कि फिर कभी ये मृग तुम्हारे खेतों के पास तक न फटक सकें।

चैननगर के लोगों ने कहा—देखो, यह आदमी कैसा भद्र है। अगर यह न होता तो हमारे सारे खेतों को मृग चर जाते।

दूसरे दिन दूसरे बेकार ने गाँव के कुछ लोगों को लाठियाँ देकर खेतों की रक्षा के लिए खड़ा कर दिया। जब फ़सल कटी तब उसने अपने नौकरों से कहा—आधा

अनाज मेरे पास उठा लाओ, आधा उनके लिए रहने दो। नौकरों ने ऐसा ही किया। बेकार ने तीन हिस्से आप रख लिये, एक हिस्सा नौकरों को बाँट दिया।

यह पहला अवसर था जब चैननगर के लोगों ने दूसरों के द्वारा रक्षा की सुविधा का अनुभव किया, और यह सोचने की ज़रा परवा न की कि मृग कितना खाते और हमने अब कितना दिया? मगर लोगों को जो अनाज मिला यह उनकी ज़रूरत से कम था—चैननगर में चोरियाँ होने लगीं। खेतों के रक्षक ने कहा—अगर तुम चाहो तो मैं तुम्हारे मकानों के द्वार पर अपने पहरेदार खड़े कर सकता हूँ। फिर क्या मजाल जो तुम्हारा एक सेर अनाज भी चोरी चला जाय?

गाँववालों ने कहा—बड़ी ख़ुशी से।

मकानों और दूकानों पर पहरेदार खड़े हो गये, चोरी बन्द हो गई, मगर चोरी को रोकने के लिए जो ख़र्च हुआ वह चोरी की रक़म से कहीं ज़्यादा था।

इस तरह दूसरे बेकार का कारबार भी दिनदूनी रात चौगुनी उन्नति करने लगा। थोड़े ही दिनों में उसने भी अपने कई महल खड़े कर लिये। मगर वह आप अपना काम न करता था, उसके सब काम दूसरे लोग करते थे।

कभी वह दिन था जब चैननगर में सब ग़रीब थे, मगर खाने-पीने की किसी को कमी न थी। अब कार-बार चलता था, मगर लोग भूखों मर रहे थे। परिणाम यह हुआ कि लड़ाई-झगड़े शुरू हो गये। वह प्यार, वह मुहब्बत, वह सादगी, वह पवित्रता न जाने कहाँ चली गई? अब लोगों को एक दूसरे का ज़रा भी ख़याल न था। बात बात में छुरियाँ चलने लगीं। चैननगर में बेचैनी फैल गई। सौदागर ने यह दशा देखी तब लोगों से कहा—अगर तुमने इन बातों का इलाज न किया तो मुझे भय है कि तुम्हारा प्राचीन और सुन्दर गाँव नष्ट हो जायगा। क्या तुम कोई ऐसा प्रबन्ध नहीं कर सकते कि ऐसी दुर्घटनायें सदा के लिए बन्द हो जायँ?

लोगों ने सौदागर की तरफ़ देखकर सिर झुका लिया, और धीरे से कहा—कुछ आप ही करें। हमसे तो कुछ न होगा।

सौदागर ने उत्तर दिया—अच्छा, हम सोचेंगे।

दूसरे दिन एक किसान और एक महाजन में झगड़ा हो गया। महाजन का कहना था कि इसके ज़िम्मे २० सेर अनाज है। किसान कहता था कि यह झूठ है, मुझे इसको केवल १० सेर अनाज देना है। दोनों [illegible] थे, झगड़ते थे और एक दूसरे को गालियाँ दे रहे थे। एक दूकानदार ने इसकी सूचना जाकर सौदागर को दी। सौदागर ने उसी समय एक आदमी भेजकर [illegible] को अपने पास बुलाया और तीसरे बेकार से कहा—इनके झगड़े का फ़ैसला कर दो।

बेकार ने दोनों की बात-चीत सुनी और फिर किसान से कहा—तूने महाजन से २० सेर अनाज भी लिया और उसे गालियाँ भी दी हैं। इसलिए मेरा फ़ैसला है कि तू इसे २५ सेर अनाज दे।

महाजन ने ख़ुश होकर कहा—कैसा अच्छा फ़ैसला है। २० सेर न देता था, अब २५ सेर देना पड़ा।

किसान को २५ सेर देना पड़ा।

अब उस बेकार ने महाजन को सम्बोधित कर कहा—तेरे पास क्या प्रमाण है कि तूने इसको २० सेर अनाज दिया था। उसका बयान है कि मैंने केवल १० सेर लिया है।

महाजन चुपचाप खड़ा भूमि की तरफ़ देखता रहा। उसके पास कोई प्रमाण न था।

बेकार ने कहा—तुझे केवल १० सेर अनाज [illegible] सकता था, मगर तूने उसे गालियाँ दी हैं, और [illegible] लोग इसकी गवाही देने को तैयार हैं। गालियाँ [illegible] सर्वथा अनुचित था। क्या तेरे पास इसका [illegible] जवाब है?

महाजन चुपचाप खड़ा भूमि की तरफ़ देखता रहा। उसके पास कोई जवाब न था।

बेकार ने कहा—मेरा फ़ैसला यह है कि तेरे [illegible] अनाज में से ५ सेर जुर्माने का काट लिया जाय, [illegible] तुझे दे दिया जाय।

महाजन क्या कह सकता था।

किसान ने खुश होकर कहा—कैसा अच्छा फ़ैसला है। १० सेर न लेता था, अब ५ ही सेर लेना पड़ा।

लोगों ने यह सुना तब कहा—हम कैसे सौभाग्य-वान् हैं। अगर यह आदमी न होता तो हम लड़ लड़ कर मर जाते।

इस तरह तीसरे बेकार का काम भी चल निकला, और उसके पास भी कई गगनचुम्बी महल हो गये। वह भी कोई काम अपने हाथ से न करता था। उसके सब काम दूसरे लोग करते थे।

मगर अभी चौथा बेकार ग़रीब था। सौदागर ने उसके लिए कमाई का साधन सोचने का बहुत प्रयत्न किया। अधिक सोचने से उसके सिर में दर्द होने लगा, उसकी कनपटियाँ फटने लगीं, मगर उसे कोई मार्ग न दिखाई दिया। हार कर वह शैतान के पास गया, और उसे तीन वर्षों की कहानी सुना कर बोला—गाँव की पौन आबादी पर हमारा अधिकार हो चुका है, मगर अभी एक बेकार बाक़ी है। अगर इसके लिए कोई अच्छा सा काम निकल आवे तो चैननगर का एक एक आदमी हमारी मुट्ठी में आ जाय। शैतान ने अपने नायब की पीठ पर धीरे से थपकी दी और अपनी गोल गोल और छोटी छोटी आँखों से उसकी तरफ़ देख कर कहा—जाओ, वहाँ एक लोहे की चक्की लगा दो। बाक़ी मैं आप समझ लूँगा।

कुछ दिनों के बाद चैननगर के बाहर खुली जगह में लोहे की चक्की लग गई। रात के समय शैतान ने आकर उसमें अपनी शैतान-शक्ति दाख़िल कर दी। दूसरे दिन से इसने गेहूँ, बाजरा, मक्की और चने का आटा पीसना शुरू कर दिया। और यह आटा इतना महीन था कि गाँव के गँवार लोग देख कर दङ्ग रह गये। उन्होंने ऐसा आटा आज तक न खाया था। एक ही दिन में चैननगर की सैकड़ों पत्थर की चक्कियाँ बेकार हो गईं, और एक ही दिन में चैननगर की सैकड़ों विधवा स्त्रियाँ और बिना बाप के बच्चे भूखों मरने लगे। मगर और लोग खुश थे, और अपने सौभाग्य पर फूले न समाते थे।

चौथा बेकार सामने एक तख़्त-पोश पर बैठा हुक्का पीता रहता था। वह संध्या-समय इतना कमा कर उठता था, जितना गाँव का कोई अन्य आदमी न कमाता था। उसने सौदागर की सम्मति से वहाँ और भी कई कलें लगा दीं, और गाँव के कई और ग़रीबों को भी दाने दाने का मोहताज कर दिया। इस तरह शैतान की मेहरबानी से चौथा बेकार भी अमीर हो गया। मगर वह भी अपना कोई काम अपने हाथ से न करता था। उसका सब काम गाँव के दूसरे लोग करते थे।

चैननगर आज भी उत्तरी भारतवर्ष की उन दो पहाड़ियों के बीच में उसी तरह आबाद है। अब वहाँ देखने योग्य कई इमारतें बन गई हैं। वहाँ कचहरियाँ हैं, वहाँ अस्पताल हैं, वहाँ सरायें और धर्म्म-शालायें हैं, वहाँ बड़े बड़े कारख़ाने हैं, वहाँ ऊँचे ऊँचे महल हैं। अगर कोई यात्री उधर जा निकलता है तो गाँव की शोभा देखकर उसकी तबीअत हरी हो जाती है, उसका हृदय-कमल खिल उठता है। परन्तु अब वहाँ का क़ानून बदल गया है। पहले सब काम करनेवाले खाते थे, केवल चार बेकार भूखों मरते थे। अब चार बेकार ऐश करते हैं, बाक़ी सब काम करनेवाले भूख से बिलबिलाते हैं।

—सुदर्शन

# छी*

( १ )

है कपि वह कभी न कवि है,
है दैशिक भाव न जिसमें।
छी मूढ़ पेट-पालन की—
रहती है युक्ति न किसमें ?

( २ )

है बाहुबली वह जिसने,
अपना दासत्व मिटाया।
छी शूर न हो, यदि तुमने—
दुष्टों का हाथ बँटाया॥

( ३ )

सुन्दरता यौवन विद्या,
ये सभी व्यर्थ हैं किसके ?
नवनीत-मनोमन्दिर में,
छी पति-पद-प्रेम न जिसके॥

( ४ )

सिकता सी हुई रसिकता—
उसकी, अपने मनमाना।
जो पररमणी पर पापी,
छी स्मर-वश हुआ दिवाना॥

( ५ )

जगती पर गुण पा करके,
किसने कुछ सुयश न पाया ?
छी हो निर्लज्ज हा जिसने,
अपने मुख निज गुण गाया॥

( ६ )

मानव होकर भी किसका—
दानव में होगा लेखा ?
छी उक्ति-युक्ति से जिसने,
पर-दुर्गुण ही को देखा॥

*सम्भवतः हिन्दी में यह पहली कविता है जिसका नाम एक अक्षर का हो।

( ७ )

जीवित होकर भी किसने,
मृतकों में नाम लिखाया ?
छी हो समर्थ रिपु-दल से,
जिसने बल नहीं दिखाया ॥

( ८ )

किसका जग-जन्म विफल है,
वांछित है किसका मरना ?
छी बात बात में जिसने,
मन में सीखा है डरना ॥

( ९ )

किससे सुख सदा विमुख है,
अपयश सिर पर है किसके ?
छी पर-अपकृत की चिन्ता
मन में रहती है जिसके ॥

( १० )

ऊपर चढ़ कर फिर भू पर,
नर कौन तुरत गिर जाता ?
निज मर्यादा का पालन,
छी ! करना जिसे न आता ॥

( ११ )

कब नर पिशाच इस जग ने
किस नर पामर को बूझा ?
जो पर से मिल कर ज्यों ही,
छी निज भाई से जूझा ॥

( १२ )

वन्ध्या सी पुत्रवती भी,
होती है किसकी माता ?
लड़ करके धर्म-समर में,
छी मरना जिसे न आता ॥

( १३ )

यम क्यों न गले में उसके,
बरबस डालेगा फन्दा ?
जो धोखा देकर जग को,
छी माँग रहा है चन्दा ॥

( १४ )

जो पर-भाषा-भूषा पर,
हर दम रहता है लट्टू ।
छी देश-भलाई वह क्या—
कर सकता कभी निखट्टू ?

( १५ )

किसका सिर कभी भुवन में—
पूजित हो, हुआ न ऊँचा ?
छी जिस जघन्य के मन में,
संभृत है स्वार्थ समूचा ॥

( १६ )

ऊँचे स्वर ताल बजा कर,
जग हँसी उड़ाता किसका ?
जो रिपु को सम्मुख पाकर,
छी चुपके पीछे खिसका ॥

( १७ )

किस पंडित को भी जनता,
मन में कहती अज्ञानी ?
दुष्कर्म-निरत छी होकर,
जो बना फिरे अभिमानी ॥

( १८ )

शिक्षित उसको क्यों कहिए ?
जिसमें न कर्म-तत्परता।
छी उससे कौन शुभाशा ?
जिसमें है विधि-निर्भरता ॥

( १९ )

कहना ही जिसने सीखा,
करने में किया बहाना।
छी उस जघन्य को छूकर,
हमको है उचित नहाना॥

( २० )

खल के छल में पड़ कर जो,
अपने से हुआ बिराना।
छी उसके भी मरने पर,
क्या होगा अश्रु बहाना!

—रामचरित उपा

# एक अश्वमेध-यज्ञ के यूप की प्राप्ति

वैदिक कर्मकाण्डानुयायी पुरातन आर्य-जाति में यज्ञों का विशेष महत्त्व था। ये यज्ञ सोम, वाजपेय, अग्निष्टोम, राजसूय, रुद्र, ब्रह्म, गोमेध, अश्वमेध, बहुस्वर्णक आदि नामों से प्रख्यात थे। चक्रवर्ती सम्राट्-पद प्राप्त करनेवालों को अश्वमेध-यज्ञ करना अनिवार्य था। इस यज्ञ के किये विना वह यह पद नहीं प्राप्त कर सकता था। यज्ञों में यूपारोपण की प्रथा थी। कर्मकाण्डीय ग्रन्थों में यूपों की स्थापना का विस्तृत वर्णन पाया जाता है। महामुनि वाल्मीकिजी ने इन यूपों को यज्ञ की विभूति कहा है (वाल्मीकीय रामायण इंडियन प्रेस पृष्ठ ९६७, राजा औदात्त के यज्ञों की कथा)।

अश्वमेध-यज्ञ के यूप में बलि-अश्व बाँधा जाता था। उसके बांधने के लिए जो रज्जु होती थी वह तीन फेरे देकर यूप में लपेट दी जाती थी और नीचे की ओर उसके दोनों छोर लटकते रहते थे। तीसरे फेरे की समाप्ति पर ग्रंथि बँधी रहती थी। ये यज्ञ-यूप परम पुनीत माने जाते थे और यज्ञ पूर्ण हो जाने के पश्चात् यज्ञ के स्मारक-रूप में यज्ञस्थली में स्थापित रहते थे। इन यूपों की संख्यायें भिन्न-भिन्न यज्ञों में भिन्न-भिन्न होती थीं। यज्ञयूप खदिर, पलाश, आम्र, विल्व, देवदारु, लसोड़े आदि के होते थे। उनके आकार भी भिन्न-भिन्न यज्ञों में भिन्न-भिन्न प्रकार के होते थे। कविकुलगुरु श्रीकालिदासजी ने 'कुमार-सम्भव' के पंचम सर्ग में यज्ञ-यूप की पवित्रता की ओर इंगित किया है, यथा—

> निवर्तयास्मादसदीप्सितान् मनः।
> क तद्विधस्त्वं क च पुण्यलक्षणा॥
> अपेक्ष्यते साधुजने न वैदिकी।
> श्मशानशूलस्य न यूपसत्क्रिया॥

यद्यपि हिंसा पाप कर्म है, परन्तु यज्ञों में पशु-हिंसा वैदिक विधानानुकूल होने से अक्षय पुण्य का मूल समझी जाती थी।

कवि-कुल-पूजित महर्षि वाल्मीकिजी ने अपने 'पौलस्त्य-वध' नामक महाकाव्य के आदिकांड के १४ वें सर्ग में महाराज दशरथकृत अश्वमेध-यज्ञ का विशद और विस्तृत वर्णन इस प्रकार दिया है—

> "प्राप्ते यूपोच्छ्रये तस्मिन् षड्बैल्वाः खदिरास्तथा।
> तावन्तो बिल्वसहिताः परीनिश्च तथा परे॥२२॥
> श्लेष्मान्तकमयो दृष्टो देवदारुमयस्तथा।
> द्वावेव तत्र विहितौ बाहुव्यस्तपरिग्रहौ॥२३॥
> कारिताः सर्व एवैते शास्त्रज्ञैर्यज्ञकोविदैः।
> शोभार्थं तस्य यज्ञस्य काञ्चनालंकृताभवत्॥२४॥
> एकविंशतियूपास्ते एकविंशत्यरत्नयः।
> वासोभिरेकविंशद्भिरेकैकं समलंकृताः॥२५॥
> विन्यस्ता विधिवत् सर्वे शिल्पिभिः सुकृता दृढाः।
> अष्टाश्रयः सर्व एव श्लक्ष्णरूपसमन्विताः॥२६॥
> आच्छादितास्ते वासोभिः पुष्पैर्गन्धैश्च पूजिताः।
> सप्तर्षयो दीप्तिमन्तो विराजन्ते यथा दिवि॥२७॥
> इष्टकाश्च यथान्यायकारिताश्च प्रमाणतः।
> चितोऽग्निर्ब्राह्मणैस्तत्र कुशलैः शिल्पकर्मणि॥२८॥
> सचित्यो राजसिंहस्य सञ्चिता कुशलैर्द्विजैः।
> गरुडो रुक्मपक्षो वै त्रिगुणोऽष्टा दशात्मकः॥२९॥

नियुक्तास्तत्र पशवस्तत्तदुद्दिश्य दैवतम् ।
उरगा पक्षिणश्चैव यथाशास्त्रं प्रचोदिताः ॥३०॥
शामित्रे तु हयस्तत्र तथा जलचराश्च ये ।
ऋषिभिः सर्वमेवैतन्नियुक्तं शास्त्रतस्तदा ॥ ३१ ॥
पशूनां त्रिशतं तत्र यूपेषु नियतं तदा ।
अश्वरत्नोत्तमं तत्र राज्ञो दशरथस्य ह ॥३२॥
कौसल्या तं हयं तत्र परिचर्य्य समन्ततः ।
कृपाणैर्विशशासैनं त्रिभिः परमया मुदा ॥३३॥

उस यज्ञ में अठपहलू इक्कीस खंभे गाड़े गये थे। उनमें ६ स्तम्भ खैर के और उनके सामने ६ बेल के, ६ ढाक के, १ लसोड़े का, २ देवदारु के अंकभर मोटे थे। वे २१ अरत्नि ऊँचे थे और सब स्वर्ण तथा वस्त्र से भूषित किये गये थे। शिल्पियों ने उनको ऐसा गाड़ा था कि हिलते नहीं थे। उस समय उनकी शोभा आकाश के सप्तर्षि-मंडल की तरह देख पड़ती थी। पुष्पों और गन्ध-द्रव्यों से उनकी पूजा की गई। शिल्पकर्म में चतुर ब्राह्मणों ने अग्निस्थापन के लिए ईंटें लाकर त्रिगुण गरुड़ाकार ६ वेदियाँ बनाईं। उन गरुड़ों के पक्ष-स्थान पर स्वर्ण की ईंटों को रक्खा। वहाँ उन उन देवताओं के लिए सर्प, पशु, पक्षी, राजहंस, सिंह आदि बनाये गये। घोड़ों और जलचर जन्तुओं को ऋषियों ने शास्त्र की रीति से बनाया। इस तरह तीन सौ पशु उन खंभों में बाँधे गये। इसके पश्चात् कौशल्या ने उस घोड़े का प्रोक्षण आदि से संस्कार करके तीन तलवारों से छेदन किया और फिर अश्वमेधयज्ञ की रीति जैसी शास्त्रों में बतलाई गई है, सब की। ( वाल्मीकीय रामायण, इंडियन प्रेस, पृष्ठ २० )

उपर्युक्त वर्णन से प्रकट होता है कि यज्ञयूप २१ अरत्नि लंबे होते थे। वे अठपहलू होते थे और नाना जलचरों, थलचरों, नभचरों तथा देवता आदि की मूर्तियों या उनके चित्रों से अलंकृत रहते थे। उनमें बलिपशु बाँधने के लिए रस्सी बँधी रहती थी। आर्य्य-देश में समय समय पर ये यज्ञ होते रहते थे।

भारतवर्ष में अहिंसाप्रतिपादक बौद्ध तथा जैन आदि धर्मों के अभ्युदय-काल में यज्ञ आदि कर्मकांडों का ह्रास होने लगा। यज्ञों में पशुबलि गर्हित और ठहराई गई। देश में धार्मिक स्वतंत्रता व्याप गई। चारों ओर से 'अहिंसा परम ध्वनि होने लगी, राजाज्ञाओं-द्वारा पशुबलि गई। परिणाम यह हुआ कि यज्ञ आदि कर्म गये। लगे हाथों पराशर आदि महर्षियों की भी यज्ञ-निषेध के अनुशासन ठूँस दिये गये।

अश्वालम्भं गवालम्भं संन्यासं पलपैतृकम् ।
देवराच्च सुतोत्पत्तिं कलौ पंच विवर्जयेत् ॥

जिन अनुशासनों के प्रभाव से बहुधा यज्ञ निषेध होगया वे अनुशासन सर्वतोभावेन मान्य क्योंकि संन्यास की प्रथा बराबर प्रचलित ही प्रकार यदा-कदा किसी न किसी रूप में यज्ञ होते रहे।

प्रतापशील सम्राट् अशोक के परलोकगामी बौद्ध-संघों ने गड़बड़ाध्याय का पाठ प्रारंभ किया। मौर्य-साम्राज्य का भी पतन प्रारंभ होगया। धिपति महाराज वीर विक्रमादित्य से १३४ वर्ष वंशीय बृहद्रथ मगधाधीश हुआ। यह महा अविवेकी राजा था। इसे इसके सेनापति शुंगवंशी मित्र ने मार कर विक्रम से १२७ वर्ष पूर्व सिंहासन अपने हस्तगत कर लिया। पुष्यमित्र था। वैदिक धर्म की ओर उसका पूर्ण अनुराग कांड में उसे पूर्ण श्रद्धा थी। ब्राह्मणों के विचार मगध-भूमि अपावन थी, इसी लिए इस धर्मशील ने पाटलिपुत्र से राजधानी हटा कर पावन को अपनी राजधानी बनाया और मगधाधिपति सेनापति और कोशलाधिपति की उपाधि ग्रहण की। धर्म और कर्मकांड का पुनरुत्थान हुआ। वैदिक स्मृतियों, पुराणों और प्राचीन आर्य-गाथाओं होने लगा। तीर्थों की पुनः सृष्टि हुई। का संकलन होने लगा। वैदिक कर्मकांड साधारण में प्रचारार्थ जगह जगह हवन आदि किया गया। पुष्यमित्र ने सम्राट्-पद ग्रहण

प्रथम वैदिक प्रथानुकूल अश्वमेधों के करने का विधान किया। इस सम्राट् ने दो अश्वमेध-यज्ञ किये। कुमार वसुमित्र अश्व के साथ भेजी हुई सेना के सेनापति हुए। कविकुलगुरु कालिदासजी ने 'मालविकाग्निमित्र' नामक नाटक में इन यज्ञों की चर्चा की है, पर इन यज्ञों का साक्ष्य महाराज पुष्यमित्र के उस शिला-लेख से मिला है जो हमारे मित्र श्रीयुत बाबू जगन्नाथदासजी को अयोध्या के निकट रनोपाली नामक स्थान में एक मन्दिर की दिहली की शिला में खुदा हुआ मिला है। उस शिलालेख में पुष्यमित्र को दो अश्वमेध करनेवाला लिखा है, यथा—

'कोसलाधिपेन द्विरश्वमेधयाजिनः सेनापतेः पुष्यमित्रस्य षष्ठेन कौशिकी पुत्रेण ध:.........................
......धर्मराज्ञा पितुः फल्गुदेवस्य केतनं कारितं'

इसके पश्चात् गुप्तवंशीय सम्राट् चन्द्रगुप्त, समुद्रगुप्त आदि ने भी अश्वमेध-यज्ञ किये और अंत में कान्यकुब्जेश्वर राठौर-सम्राट् जयचन्द्रजी ने भी राजसूय-यज्ञ किया। इन यज्ञों के होने से यह निष्कर्ष भी निकलता है कि पराशर-स्मृति में जो अश्वमेध आदि यज्ञों का निषेध का अनुशासन है वह प्रक्षिप्त ही समझा गया और वैदिक धर्म के पुनरुत्थान-काल में अमान्य रहा। यह भी ऐसा भी ज्ञात हुआ है कि इस काल में यज्ञों के यूप तो खदिर आदि काष्ठों के ही बनाये जाते थे, पर यज्ञ की समाप्ति पर चिरस्थायी यज्ञ-स्मृति के लिए यज्ञवेदी पर पत्थर का यज्ञ-यूप स्थापित कर दिया जाता था। ऐसा एक गुप्तकाल का यज्ञ-यूप मथुरा-म्यूज़ियम में विद्यमान है जो ईसापुर नामक ग्राम में मिला था। उस पर तत्कालीन लेख भी है और बलिपशु के बाँधने की रस्सी के चिह्न भी बने हुए हैं। पर वह यज्ञ-यूप वैसे विधान के साथ नहीं बना है जैसा कि वाल्मीकि मुनि ने आदिकांड के चौदहवें सर्ग में वर्णन किया है। उस पर न पशु-पक्षियों और न देवताओं की मूर्तियाँ हैं और न वह आकार में ही उपर्युक्त विधानानुकूल है। 'सरस्वती' के पाठकों को आज हम एक ऐसे यज्ञ-यूप की प्राप्ति का समाचार सुनाना चाहते हैं जो अश्वमेध-यज्ञ के यूप की विधि के अनुकूल बना हुआ है और सब प्रकार से पूर्णांग है।

कानपुर-प्रांत की डेरापुर-तहसील में कानपुर से दक्षिण-पश्चिम कोण में ४५ मील के अंतर पर 'लाला-भगत' नामक एक ग्राम है। यह एक छोटा सा अप्रसिद्ध ग्राम है। कानपुर, इटावा और फ़र्रुखाबाद-प्रान्तों की सीमायें इसी के निकट मिलती हैं। कानपुर से काल्पी की ओर जानेवाली पक्की सड़क पर सचेंडी नामक एक ग्राम है। यहीं से एक कच्ची सड़क गङ्गा की नहर की कंसुआ नामक डिस्ट्रीब्यूटरी की पटरी से होकर इस ग्राम को गई है। ग्राम से पश्चिम की ओर थोड़े अंतर पर एक विस्तृत खेड़ा प्राचीन काल की ईंटों का पड़ा है। इस खेड़े का विस्तार अस्सी-नब्बे बीघे के लगभग है। इसकी ऊँचाई भी ३२ फ़ुट के लगभग है। इस खेड़े की लंबाई पूर्व-पश्चिम ९०० डग और चौड़ाई उत्तर-दक्षिण ६०० डग के लगभग है। खेड़ा अस्तव्यस्त दशा में नहीं है, केवल उत्तर की ओर एक छोटा सा नाला कट गया है। खेड़े के चतुर्दिक् परिखा और खाई के चिह्न जान पड़ते हैं, और जगह जगह पर जलाशयों के भी चिह्न देख पड़ते हैं, जो अब साधारण गर्त से जान पड़ते हैं। इन गर्तों में कहीं नितान्त उथला, कहीं दो फ़ुट के लगभग गहरा गँदला जल भी भरा रहता है। हमारे अनुमान में यह खेड़ा किसी देवमंदिर, महान् दुर्ग या राजप्रासाद का भग्नावशेष है। परन्तु अधिकतर संभावना यह है कि यहाँ कोई महान् दुर्ग रहा होगा, क्योंकि जनश्रुति में यह स्थान कोट कहाता है। ऐसा हमने लोगों से सुना है। इस खेड़े के चारों कोनों पर तथा और कई स्थानों पर इसके इर्द-गिर्द ईंटों के बड़े बड़े डीह हैं, जो दुर्ग-रक्षकों या अन्य राज-कर्मचारियों के मन्दिरों के भग्नावशेष हो सकते हैं। इसके उत्तर-पूर्व कोण का एक भाग स्तूपाकार है। जो ईंटें इस खेड़े में भरी पड़ी हैं वे १८ इंच लम्बी १२ इंच चौड़ी और तीन इंच मोटी हैं। ये ईंटें अशोककालीन ईंटों से बहुत कुछ मिलती-जुलती हैं, कुछ ईंटें वहाँ प्रारंभिक गुप्तकाल की भी देख पड़ती

हैं और ऐसा प्रतीत होता है कि इस डीह ने अपने जीवन-काल में शुंग, कुशान और गुप्तवंशीय नरेशों को अपने अंक में शरण दी है और उनके उत्थान-पतन को स्वयं देखा है। हमारे इस विचार की पुष्टि का आधार इस टीले के समीपवर्ती कुछ स्थानों में क्षत्रप सुदास की मुद्राओं का मिलना है।

जनश्रुति के आधार पर 'लालाभगत' का प्राचीन नाम 'देवग्राम' था। इसके अतिरिक्त वहाँ के वृद्धतम लोग भी इस टीले के संबन्ध में और कुछ नहीं जानते हैं। 'देवग्राम' के नाम को सुनकर हमारा यह अनुमान दृढ़ हो गया कि यहाँ अवश्य कोई महान् देव-कार्य का अनुष्ठान हुआ होगा और उसी के स्मारकरूप में इस स्थान का नाम देवग्राम पड़ा होगा।

टीले के उत्तर-पूर्व के छोर पर गुप्तकालीन प्राचीन ईंटों की मिट्टी के गारे से बनी हुई एक छोटी सी मढ़ी है, जो बहुत अर्वाचीन काल की बनी हुई जान पड़ती है। परन्तु अर्वाचीन होते हुए भी वह इतनी प्राचीन है कि उस ग्राम में उसके निर्माण-काल को जाननेवाला अब कोई पुरुष शेष नहीं है। इस मढ़ी के भीतर सीकरी या धौलपुर के चितले प्रस्तर का एक अति प्राचीन अठपहलू खम्भ है, जिसका रंग ललाई लिये हुए है। यही खम्भ हमारे इस लेख का मूलाधार है।

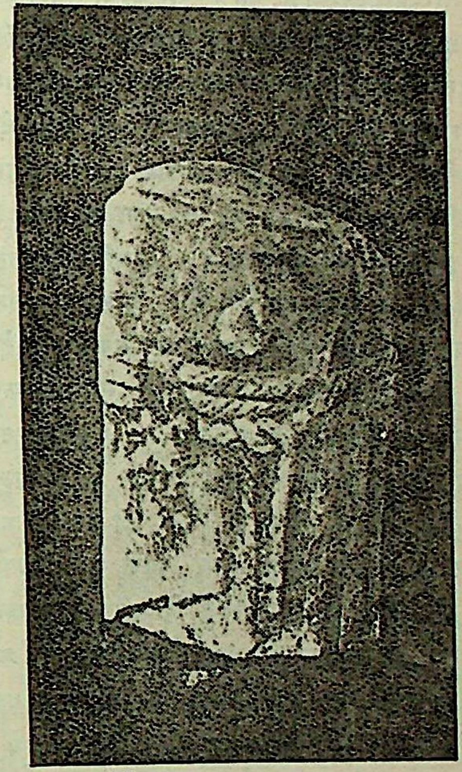
ब्रिटिश-शासन-काल में जब से पुरातत्त्व-सम्बन्धी खोज का आरम्भ इस देश में हुआ है तब से लेकर विगत वर्ष तक किसी विद्वान् पुरातत्त्वान्वेषी अथवा राज्यकर्मचारी का ध्यान उपर्युक्त स्थान की ओर नहीं गया। हज़ारों बार हाकिम लोग वहाँ आये-गये होंगे, पर किसी ने वहाँ के महान् स्मारक की ओर अपना ध्यान नहीं दिया और न उसे देखने का कष्ट किया। सार यह कि वह स्मारक जो एक यज्ञ-यूप है, विस्मृति के गर्भ में ही विलीन रहा। सौभाग्यवश कान-पुर में श्रीयुत पण्डित रामेश्वरदयालजी डिप्टीकलक्टर की नियुक्ति हुई। पण्डितजी को पुरातत्त्व का अगाध ज्ञान है। आप प्रगाढ़ विद्या-प्रेमी हैं। ललित कलाओं से आपका पूर्णानुराग है, रात-दिन पुरातन के खोज की आपको लगन लगी रहती है। प्राचीन वस्तुओं, मूर्तियों, तथा मुद्राओं का संग्रह भी आपका अपूर्व है, आपका स्वभाव [illegible] सरल है और आप बड़े ही मृदुभाषी तथा प्रजा[illegible] इस कारण नागरिक तथा ग्रामीण जनता आप[illegible] के साथ मिला करती है, और जब आप दौरे प[illegible] तब पटवारियों, ज़मींदारों, किसानों आदि से [illegible] के सम्बन्ध में बहुत कुछ अन्वेषण किया करते हैं [illegible] कारण आप बहुत कुछ ऐतिहासिक रहस्य [illegible] चुके हैं और ऐतिहासिक चिह्नों की खोज [illegible] जहाँ जहाँ आप रहे हैं वहाँ वहाँ आपने खोज-[illegible] महत्त्व के कार्य अपने व्यय से किये हैं। श्रीयुत रामेश्वरदयालजी ही को सबसे प्रथम इस देव[illegible] और इस यज्ञ-यूप के शोध का श्रेय है। [illegible] पाते ही आपने अपना कैम्प लालाभगत में [illegible] और जाकर खम्भे को देखा। यह खम्भा खंडित [illegible] शिरोभाग का एक खंड यहाँ से दो मील प[illegible] पड़ा बताया गया।

मुख्य खम्भा देवीजी कहकर पूजा [illegible] निकटवर्ती ग्रामों की हिन्दू-जनता की इस खम्भ[illegible] पर अगाध श्रद्धा थी। चैत्रवदी अष्टमी को [illegible] मेला लगता था। सुदूर ग्रामों तक के यात्री [illegible] आते थे और खम्भ पर घी, तेल तथा सिन्दूर [illegible] जिसके कारण खम्भे पर बनी हुई मूर्तियाँ तथा [illegible] हो गये थे और भली भाँति पहचाने नहीं जा [illegible] यह खम्भा सात फ़ुट के लगभग भूमि में [illegible] था। डूमापुर में जो शिरोभाग पड़ा था वह [illegible] मुण्ड बताया जाता था। उसकी भी पूजा देवी [illegible] होती थी। वर्ष में एक बार वहाँ भी मेला [illegible] पण्डित रामेश्वरदयालजी ने उसे भी उठा मँगा[illegible] पर अन्धविश्वासी ग्रामीणों ने उसे लाना न चाहा [illegible] कहा कि आप व्यर्थ उसे उठवा मँगाना चाहते हैं [illegible] यहाँ रहे होगा नहीं; रात को स्वयं उड़ कर [illegible] जायगा। पर पंडितजी ने उनके कहने की [illegible] और खम्भे के उस खंड को डूमापुर [illegible] मँगाया, क्योंकि उन्हें तो ऐतिहासिक खोज [illegible] लगी थी।

पंडित रामेश्वरदयालजी के सम्मुख इस समय कठिन समस्यायें उपस्थित थीं। उनका मन तो उन्हें खंभे का पूर्ण रहस्य जानने के लिए विवश कर रहा था, जिसका जानना बिना खम्भे को खोद कर निकाले असम्भव था। दूसरी ओर धर्मान्ध ग्रामीणों से उत्पात की आशंका थी। विचारों में कुछ काल तक द्वंद्व होता रहा। अन्त में उन्होंने खम्भे को खोद कर बाहर निकाल लेने का दृढ़ संकल्प कर लिया। ग्राम के भागीदार ज़मींदारों ने जो समझदार थे, समझाने पर खम्भे को बाहर निकालने के लिए अपनी स्वीकृति दे दी, पर पड़ोसी अन्य ग्रामों के कुछ अन्धविश्वासी लोग हाय हाय मचाने लगे और उपद्रव करने पर उतारू हो गये। उनके विरुद्ध ज़िला-मजिस्ट्रेट के यहाँ अभियोग चलाने को गये, पर पंडित रामेश्वर-दयालजी अपने संकल्प में अटल रहे। साहसी वीर पुरुष किसी उचित काम के करने में विघ्न-बाधाओं से विचलित नहीं होते हैं, वे प्रारम्भशूर न होकर अंतशूर होते हैं। पंडितजी ने पुष्कल धन व्यय कर निर्भीकता से उस खम्भे को उस संकीर्ण मठी से खोद कर बाहर निकलवाया और उसे साफ़ करा डाला। जिस मठी में यह खम्भा था वह पूर्वाभिमुख थी और इस खम्भे के गिर्द एक छोटा सा अर्घा भी बना था। सम्भव है, किसी ने इस खम्भे को शिव-लिंग कल्पित कर उसके गिर्द में अर्घा बनवा दिया हो।

विगत फाल्गुन मास में मेरा जाना भी कानपुर हुआ। एक रोज़ मैं डिप्टी साहब से जिनसे मेरा बहुत दिनों से परिचय और प्रेम था, मिलने गया। प्रसंगवश उन्होंने इस नवीन शोध की मुझसे चर्चा की। खम्भे का विवरण सुनते ही मेरा हृदय उछलने लगा। यह तो कोई अद्भुत खम्भा है, कदाचित् यज्ञ-यूप है, इत्यादि ऐसे नाना विचार हृदय में छलांगें मारने लगे। यही इच्छा हो रही थी कि अभी जाकर उस खम्भे को देखूँ। पर अपरिचित मार्ग, अपरिचित स्थान, पहुँचने के लिए साधनों का काठिन्य, हृद्-रोग-जनित शरीर की निर्बलता, शीत का आतंक आदि चित्त को भीरु बनाने लगे, पर "मन हठ पस्यो न सुनहि सिखावा चहत वारि पै भीत बनावा" वाली बात हुई। प्रातःकाल होते ही लालाभगत जाने के लिए निश्चय कर लिया गया। डिप्टी साहब मुझे साथ ले वहाँ को चल दिये, ४२ मील कच्ची सड़क की धूल फाँकते हुए नौ बजे के लगभग हम लोग देवग्राम के विस्तृत तथा विशाल टीले के नीचे जा पहुँचे।

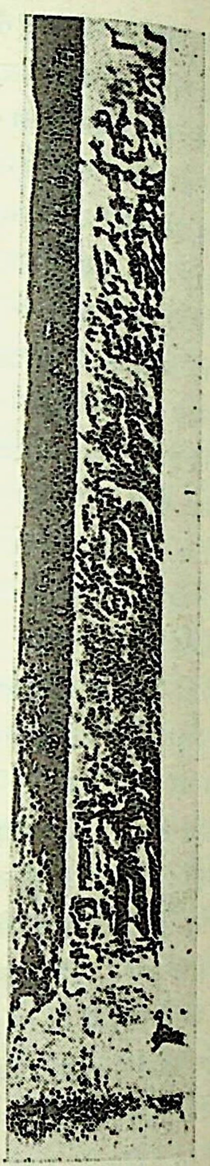
ब्राह्मी शक्ति के वाहन कुक्कुट की विशालमूर्ति को जो मठी के द्वार से ४० फ़ुट के अन्तर पर पड़ी है, अच्छी भाँति देखे बिना ही मैं पहले खंभे की ओर



[ यूप का शिरोभाग ]

सीधा चला गया। मेरी दृष्टि पहले खंभे के शिरो-भाग पर पड़ी, जो डूमापुर से लाया गया था। उसे देखते ही मेरा चित्त आनन्द से उछल पड़ा। फ़ाउंड फ़ाउंड फ़ाउंड, (वह पाया, वह पाया, वह पाया) वाली बात हुई। अहा मैं क्या देख रहा हूँ—यह तो अश्वमेध-यज्ञ-यूप का शिरोभाग है। हो न हो यह किसी सम्राट् के अश्वमेध-यज्ञ के स्मारक यूप का खंड है। इसमें तो बलिपशु बांधने की रज्जु के तीन फेटे अंकित

हैं, नीचे ग्रन्थि भी बनी है, दोनों छोर कैसी सुन्दरता से अंकित किये गये हैं। इसके एक पहल में एक त्रिशूल और दूसरे पहल में एक कँगूरा भी बना है—रस्सी के ऊपरी भाग पर किसी वस्तु का चिह्न बना है जो अंडाकार है, रस्सियों के फेरों की चौड़ाई ३ इंच है—निश्चय ही यह यज्ञ-यूप का खंड है। उसे देखते देखते मेरा मन नहीं अघाता था, अतृप्त आँखों से उसे देख रहा था। पर अभी तो बहुत देखना है, यह विचार कर मैं समीप पड़े हुए बृहत् प्रस्तर-स्तंभ की ओर झुका। देखता क्या हूँ कि वह अठपहलू खंभा है, नीचे चौकोर और ऊपर अष्टकोण है, उस पर जलचर, थलचर, नभचर जन्तुओं तथा देवादि की मनोहर भव्य मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। महामुनि बाल्मीकिजी ने भी तो यज्ञ-यूपों का ऐसा ही वर्णन किया है। इसमें भी तो अष्टकोण हैं। उन्हीं के लेखानुसार यह भी तो मूर्तियों से अलंकृत है। निश्चय, निश्चय, निश्चय ही यह यज्ञ-यूप है, इसमें तो अब कुछ संदेह ही नहीं है कि यह यज्ञ-यूप है। पर यह किसका है, कब का है, और यहाँ कैसे है, इसने कौन कौन वंशों का उत्थान व पतन देखा है, और क्यों इस विस्मृत के साम्राज्य में आया है, मैं इन प्रश्नों पर विचार ही कर रहा था कि डिप्टी साहब ने मेरा ध्यान दूसरे पहल में उत्कीर्ण एक खंडित लेख की ओर आकर्षित किया। उसे देखते ही मेरे आनन्द, शोक और आश्चर्य की सीमा न रही। आनंद तो यह कि खंभे का कुछ शोध मिल जायगा, शोक यह कि लेख खंडित होने से उसका पूर्ण ऐतिहासिक रहस्य ज्ञात नहीं हो सकेगा और आश्चर्य यह कि ऐसे महान् सुदीर्घ काल के यश और स्मृति-चिह्न दैवदुर्विपाक-वश कराल काल का वज्रदण्ड सहते हुए भी अब तक दुरवस्था में कहीं कहीं लुके-छिपे जीर्ण-शीर्ण रूप में पड़े हुए अन्तिम साँस भरते हुए रूँधे हुए कंठ से प्राचीन आर्य-सभ्यता की कथायें मन्द-स्वर से सुना रहे हैं और भारतीय गौरवशाली, प्रजावत्सल धर्मप्राण, यशस्वी, विजयी सम्राटों का यशो-गान कर रहे हैं। मैं इस समय तन्द्रावस्था में था, भारत के अतीत काल का दृश्य मेरी आँखों के सामने घूम रहा था। हृदय नाटक-गृह बन गया था, नाना विचारों



[ यज्ञ-यूप ]

और भावनाओं से उसमें पट-परिवर्तन का कार्य हो रहा था। प्राचीन यज्ञस्थलियों, यज्ञोत्सवों, विजय-यात्राओं, प्रासादों, दरबारों, देवमंदिरों, चैत्यों तथा वि[...] दृश्यों को मैं इसी तन्द्रा की मोहमयी अवस्था में दे[...] था, स्वाहा और स्वधा की ध्वनि मेरे कानों में गूँ[...] थी, वैदिक मन्त्रों के पाठ तथा सामगान का [...] मंडल में पूरित है ऐसा भासित हो रहा था, कभी [...] के मुखों से उच्चरित विरदावली कर्ण-कुहरों में [...] करती जान पड़ती थी, कभी दरबारों में आये हु[...]

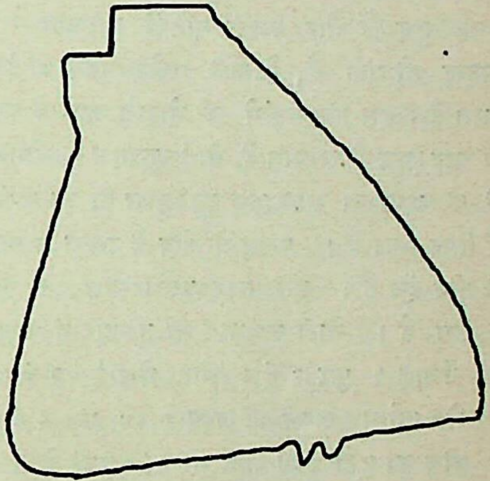
सामन्तों के अभिवादनीय शब्द सुन पड़ते थे, कभी त्रिरत्न-वन्दना के हेतु बुद्धं शरणं गच्छामि, धर्मं शरणं गच्छामि, संघं शरणं गच्छामि, शब्दों का आभास होता था। नाना विचारों के प्रभाव से प्रभावित हो मैं ऐसे ही अतीत के स्वप्न देख रहा था, निस्तब्ध खड़ा प्रस्तर मूर्तिवत् हो रहा था। इतने में बहुत से ग्रामीण सज्जन वहाँ आ पहुँचे, मेरी सुखनींद टूट गई। अतीत लोक से मैं वर्तमान लोक में आ पहुँचा। सुखमय विचार दुखमय विचारों में परिवर्तित होगये। मुँह से अनायास कालदेव की वंदना में राजर्षि भर्तृहरिजी का श्लोक निकल पड़ा—

सा रम्या नगरी महान्स नृपतिः सामन्तचक्रं च तत्,
पार्श्वे तस्य वचो विदग्धपरिषत्ताश्चन्द्रबिम्बानना:॥
उद्वृत्तः स च राजपुत्रनिवहस्ते वन्दनास्ताः कथाः।
सर्वं यस्य वशादगात्स्मृतिपथं कालाय तस्मै नमः॥

हाय—शिवि दधीचि कोऊ अब नाहीं।
रहे नाम ही ग्रंथन माहीं।

पर यहाँ तो यह भी दशा नहीं है। हाय यहाँ तो कालदेव ने ऐसा संहार किया है कि ग्रंथों की कौन कहे, प्रस्तर पर भी उत्कीर्ण लेख पूर्ण रूप से शेष नहीं रह सके हैं। मन की कल्पनायें जल के बुलबुले की तरह मन ही में विलीन होगई, काल्पनिक जगत् का लोप हो गया। यह डीह मुझे अतीव काल का कंकाल प्रतीत होने लगा, बिखरे हुए ईंट-खंड मुझे उस भव्य भवन की चिता के अवशेष अस्थि-खंडवत् प्रतीत होने लगे। संक्षेप यह कि मेरा सारा सुख-स्वप्न धूल में मिल गया, और पुनः खंभे का भली भाँति निरीक्षण करने और उसके सम्बन्ध में डिप्टी साहब से विचार-परिवर्तन करने में तत्पर हुआ। खंभ वास्तव में यज्ञ-यूप है, मेरी यह धारणा तो उसे देखते ही दृढ़ हो गई थी। परन्तु उसकी पुष्टि के क्या क्या हेतु हैं, यह खंभ किस काल का है और किसका संभवतः हो सकता है यह सब हम शुरू से खंभ का विवरण देकर बताया चाहते हैं।

भूगर्भ में एक टेढ़ा-मेढ़ा पत्थर लगभग साढ़े तीन फुट ऊँचा नींव में रक्खा हुआ था। इसके नीचे की चौड़ाई १७ इंच और ऊपरी भाग की लगभग ९ इंच थी। इसका आकार नीचे लिखे अनुसार था।

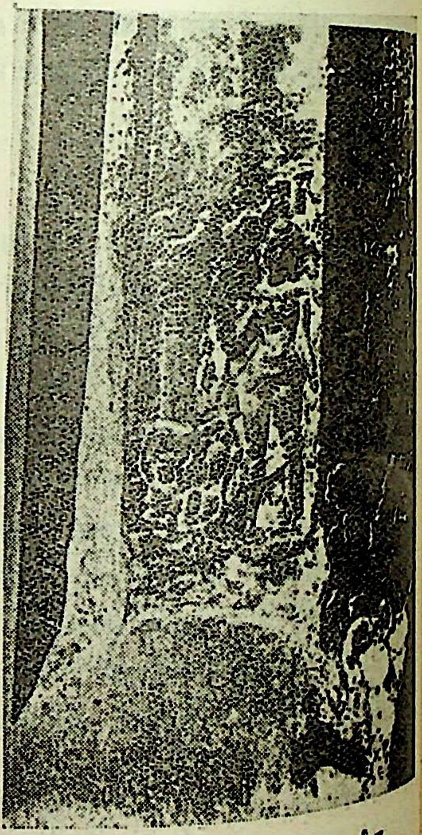


इसके नीचे और चारों ओर ईंटें जड़ी थीं। इन ईंटों में मिट्टी का गारा जमाया गया था। इन ईंटों के नीचे २६ इंच कंकरीट कुटी हुई थी, चूने का नाम भी न था। इसके नीचे न कोई ताम्रशासन रक्खा मिला, न कुछ मुद्रायें, जिससे ऐसा अनुमान होता है कि किसी काल में इस स्थान को खोद कर किसी ने फिर से इस प्रस्तर को जमा दिया, क्योंकि प्राचीन काल में यह प्रथा थी कि जहाँ कहीं कोई खंभ स्मारकरूप में आरोपित किया जाता था, वहाँ नींव में कुछ मुद्रादि अवश्य रख दी जाती थीं। इन चीज़ों के अभाव से हमारे अनुमान की पुष्टि होती है। इस प्रस्तर की चोटी पर यज्ञ-यूप का नीचे का सिर एकान्त में रक्खा हुआ था।

यज्ञ-यूप का नीचे का भाग ४½ फुट के लगभग मिट्टी में दबा था। यह यज्ञ-यूप नीचे चौकोर है और प्रत्येक पहल की चौड़ाई १ फुट ४ इंच के लगभग है। नीचे के चौकोर भाग की लम्बाई साढ़े छः फुट के लगभग है, जिसमें से २ फुट ३ इंच बेगढ़ा और ४ फुट ३ इंच के लगभग गढ़ा हुआ है। बीच बीच में पत्थर में जनेवे पड़े हुए हैं। इस भाग की कुल मुटाई ५ फुट ४ इंच के लगभग है।

चौकोर भाग के ऊपर के चारों कोनों पर स्त्री-मूर्तियाँ बनी हुई हैं, जो अपने दोनों हाथों को सिर के ऊपर मिलाये उन्हें चापरूप में किये हुए हैं। इनके ऊपर बेल-बूटे बने हुए हैं और उन्हीं मूर्तियों के ऊपर से खंभा अठपहलू हो गया है, जिसकी प्रत्येक पहल ७ इंच के लगभग है। इस प्रकार खंभे की मोटाई ऊपर के भाग में सवा चार ़फुट के लगभग है, जो 'अक्षभार' के समान है। खंभे के ऊपर का भाग कुछ टूटा हुआ है, जो अभी तक नहीं मिल सका है। परन्तु जो शेष है उसकी लम्बाई ६ ़फुट तीन इंच है। इस तरह कुल लम्बाई १२ ़फुट ६ इंच शेष है। चोटी का भाग जो डूमापुर में पड़ा था उसकी उँचाई १ ़फुट ६ इंच और मोटाई ४२ इंच है। इस समेत वर्तमान खम्भे की लम्बाई १४ ़फुट ६ इंच है। यदि बीच का टूटा हुआ भाग भी १½ ़फुट के लगभग लम्बा मान लिया तो खम्भे की कुल लम्बाई १६ ़फुट के लगभग हो जाती है, जो २१ अरत्नि के समान है, क्योंकि एक अरत्नि प्रायः ६ इंच के लगभग होता था, (अरत्नि का प्रमाण हाथ के पहुँचे की जड़ से लेकर टिहुनी तक का माना गया है) और यही यज्ञ-यूप की नाप है।

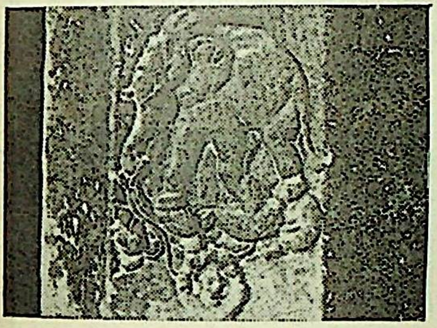
अब हम कुछ वर्णन उन मूर्तियों का करना चाहते हैं जो इस खंभे पर उत्कीर्ण हैं। यज्ञ-यूप का जो पहल गड़ी हुई दशा में दक्षिण-पश्चिम की ओर था उसमें सबसे नीचे "श्री गजलक्ष्मीजी" की भव्य मूर्ति बनी हुई है। मूर्ति का भाव और सौन्दर्य दर्शनीय है। मूर्ति खड़ी है, सिर के ऊपर दो गज स्वर्ण-कलशों से लक्ष्मीजी को स्नान करा रहे हैं, सिर के केश-पाश स्नानावस्था को सूचित करते हैं, क्योंकि वे कुछ बिखरे हुए हैं, साड़ी भी कंधे और पेट पर से उतर गई है, जिसका वे एक छोर दाहने हाथ से साधे हुए हैं, सिर पर शीर्षफूल चमक रहा है, वक्षःस्थल उभड़ा हुआ है, भुजाओं, जंघाओं और पैरों की बनावट बड़ी ही सुडौल और पुष्ट है। पैरों में घुटनों और हाथों में टिहुनियों तक आभरण हैं। कंठ में मणिजटित हार और कटि में मणिजटित तागड़ी है। कटि की क्षीणता भी दर्शनीय है। मुख पर दृढ़ता, आंतक और उत्साह का भाव भरा है। कदाचित् मूर्ति-कार ने मूर्ति को ऐसी अवस्था में इसलिए [illegible] है कि वह अपना मूर्ति-निर्माण का कौशल दिखा[illegible] मूर्ति के सम्मुख पुष्प-मंडित लता लहरा रही है [illegible] सामने एक स्त्री-मूर्ति के सिर पर एक खंभा बना [illegible] जिसके शिखर पर कुक्कुट और उसके नीचे सिंह [illegible] बनी हुई हैं। ये दोनों ब्राह्मी-शक्ति के वाहन हैं [illegible] यह खंभा यज्ञ-यूप का सूचक जान पड़ता है। इस [illegible] लय की लम्बाई ११ इंच के लगभग है। प्रकट [illegible] लक्ष्मीजी शुंग, कुशान और गुप्त सम्राटों की कुल[illegible] कुशान तथा गुप्त सम्राटों की मुद्राओं पर [illegible] बहुधा पाई जाती है। विजयी श्रीमानों और [illegible] सम्राटों को अपनी विजय-श्री अविचल रखने [illegible]



[यूप पर गज-लक्ष्मी की मूर्ति]

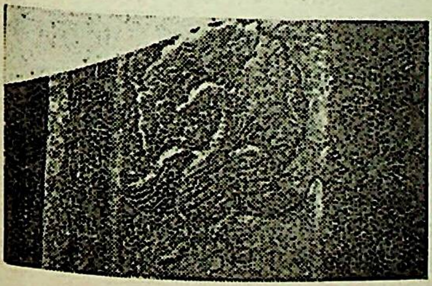
यह आवश्यक ही था कि सब देवों से अधिक वे [illegible] अर्चा करें और वही उन पर सानुकूल रहें और [illegible] लक्ष्मीमूर्ति इसी भावना की सूचक प्रतीत होती है [illegible]

गज-लक्ष्मीजी की मूर्ति से १ फ़ुट के लगभग ऊपर की ओर कई हस्तियों या वाराहों के सिर वृत्ताकार मिले हुए बने हैं। उनके मध्य में एक सिर किरीट धारण किये हुए बना है। इसके ऊपर चार सनाल अर्धप्रस्फुटित कमल-कलिकायें बनी हैं। इन कलिकाओं पर चारों पैर रक्खे हुए एक दिव्य हस्ति-मूर्ति खड़ी है जो शुंड में सनाल कमल-कलिकाओं को लिये हुए इस मुंड को अर्पित करता हुआ प्रतीत होती है। यह हस्तिमूर्ति बड़ी ही दिव्य और सजीव प्रतीत होती है। इस खंड की लम्बाई १० इंच के लगभग है।



[ यूप पर हस्ति-मूर्ति ]

हाथी से २ इंच ऊँचे सेनानी कुमार के वाहन मयूर की मूर्ति है। इसकी उँचाई ७½ इंच के लगभग है। मयूर पुच्छ फैलाये हुए नृत्य करता हुआ बनाया गया है और ऐसा सुन्दर है कि देखते ही बन पड़ता है।



[ यूप पर मयूर-मूर्ति ]

इसके ऊपर का दृश्य सूर्यदेव से सम्बन्ध रखता है। मयूरालय के ऊपर १२ बालरूपी नग्न मूर्तियाँ गोल बाँधे खड़ी हैं। ये मूर्तियाँ या तो वैखानस नामक बाल-खिल्य ऋषियों की हैं जो सूर्य के सदृश प्रकाशमान हैं और प्रातःकाल सूर्य-देव की वन्दना करने आते हैं (वाल्मीकि रामायण किष्किन्धा कांड पृष्ठ ४५२ इंडियन प्रेस) या मन्देह नामक राक्षसों की है जो सूर्योदयकाल में सूर्य-देव पर आक्रमण करने आते हैं और सूर्यदेव के ताप तथा ब्राह्मणों की दी हुई अर्घ्यांजलियों के प्रभाव से मर कर मंदाहरण-द्वीप में जा गिरते हैं। हमें इन मूर्तियों की अधिकतर संभावना वालखिल्य ऋषियों के होने की जान पड़ती है, क्योंकि वालखिल्य ऋषि अति कोमल बालरूप के वर्णन दिये गये हैं, परन्तु मन्देह राक्षस भयंकर पर्वताकार बताये गये हैं। (वाल्मीकि रामायण किष्किन्धा कांड पृष्ठ ४५१)

इन बालरूप मूर्तियों के ऊपर स्त्रियों की ३ मूर्तियाँ और बनी हैं जो उषा, प्रत्युषा और सुवर्चिला की मूर्तियाँ जान पड़ती हैं। उषा, प्रत्युषा और सुवर्चिला सूर्य की स्त्रियाँ हैं। ये पुष्टांगी मूर्तियाँ एक विशेष नाट्य भाव से एक एक पाँव आगे को बढ़ाये और एक एक हाथ कमर पर रक्खे हुए त्रिभङ्गी गति में खड़ी हैं। पाँवों में बहुत भारी भारी कड़े हैं, गले में हार, कमर में जड़ाऊ तागड़ी और कानों में कर्णफूल हैं। वक्ष-स्थल खुले हुए, केश-पाश मुकुटाकार गुँधे हैं, परन्तु भिन्न-भिन्न प्रकार के हैं, सिर पर परिधान भी विशेष प्रकार के हैं। मूर्तियाँ प्रसन्नवदन प्रतीत होती हैं। बाईं ओर खड़ी हुई मूर्ति के बायें हाथ में चँवर है और टिहुनी तक बलय या चूड़ियाँ हैं। मूर्तियों की बनावट बड़ी ही सुडौल और सुन्दर है।

इन मूर्तियों के ऊपर एक मुण्ड बना है, जिसका भाव बहुत ही आर्त जान पड़ता है। आँखें बैठी और मुँह खिन्न है। इस मुण्ड के ऊपर सूर्यदेव के घोड़ों की टापें रक्खी हुई हैं। ये घोड़े सूर्यदेव के रथ के घोड़े हैं। रथ में केवल चार ही घोड़े दिखाये गये हैं, यद्यपि वे सात होने चाहिए। ऐसा जान पड़ता है कि स्थानाभाव से केवल ४ ही घोड़े बनाये जा सके हैं। घोड़े चौकड़ी भरते हुए और अंधकाररूपी दैत्य का मर्दन करते हुए दिखाये गये हैं। सूर्यदेव रथ के घोड़ों की बागें साधे हुए रथ पर खड़े हैं, वे दिव्याम्बरधारी हैं, कोट का कटाव बड़ा ही विचित्र है।

वे कंकण-कुण्डल पहने हैं और निष्कों की माला धारण किये हुए सिर पर उष्णीश है और पैरों के बीच में कुछ पुष्प बने हैं और स्वस्तिक का चिह्न है। उनके दोनों ओर दो और दिव्य मूर्तियाँ बनी हैं, जो पिङ्गल और दंडी की मूर्तियाँ जान पड़ती हैं। दाहनी मूर्ति कुछ पुष्प-माल



[ यूप पर सूर्य तथा उनके सम्बन्ध की मूर्तियाँ ]

सी लिये है और वाममूर्ति के हाथ में छत्र-दण्ड ध्वजामय हैं। ये मूर्तियाँ भी वस्त्रालंकारों से विभूषित हैं। मूर्तियाँ दो फ़ुट के लगभग ऊँचाई में हैं।

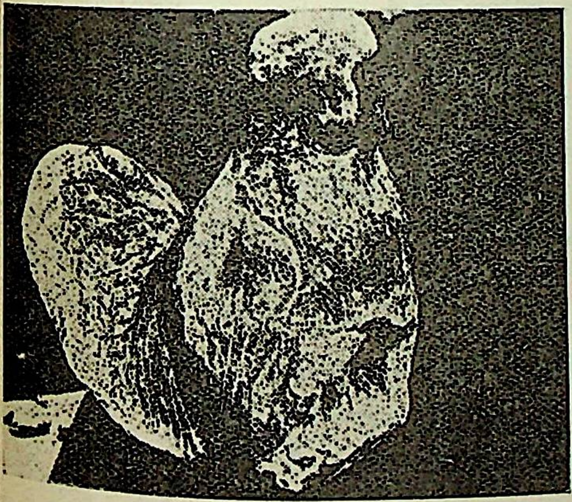
इसके ४ इंच ऊँचे पर ऊपर भवसागर का ... दण्डाकार एक वस्तु है। इसमें एक मंजूषा बँधी ... २ इंच की है। मंजूषा के ढकने पर बहुत सुन्... किया है। इसे दो सुकुमार राजहंस साधे हुए ... जा रहे हैं। हंसों के पंख, गर्दनें और चोंचें ऐसी ... से बनाई गई हैं कि उन्हें देखते ही कुशल शिल्पी ... साधु साधु ही कहना पड़ता है। हंसों के ऊपर दो ... बनी हुई हैं, जिनमें से १ नसेनी में १२ डंडे और दू... १६ डंडे देख पड़ते हैं, जो हमारे अनुमान में स्व... का सोपान जान पड़ता है और इस विषय का बोध ... पड़ता है कि यज्ञकर्ता की आत्मा यज्ञ-पुण्य के ... भवसागर को पार कर आनन्द से स्वर्गारोहण करती ...



[ यूप पर भवसागर का दृश्य ]

इस दृश्य को देख हमारी कल्पना एक दूसरी ... भी जाती है और वह कल्पना बुद्धदेव के त्रयस्त्रिं... से अपनी माता को अभिधर्म उपदेश देकर संकाश्य ... स्थान पर उतरने के सम्बन्ध में है, जिसका वर्णन चीनी ... व्राजक फ़ाहियान और हुएनसांग ने अपनी ... सम्बन्धी पुस्तकों में किया है। "बुद्धदेव जब ... धाम से आये थे तब उतरते समय तीन निःश्रेणियाँ ... हुई थीं—बुद्धदेव मध्य की निःश्रेणी पर थे। वह ... मयी थी। ब्रह्मलोक के महाराज ने दाहनी ओर ... निःश्रेणी प्रकट की थी। वे श्वेत चमर लेकर ... देवराज शक्र ने बाईं ओर तप्त कांचन की ... प्रकट की थी और वे सप्त रत्नमय छत्र ले कर खड़े ... ......ये तीनों निःश्रेणियाँ भूमि में धँस गईं। ... सात आरोह देखने को बच गये थे। ......पीछे ... आरोह पर विहार बनवाया इत्यादि इसी से मिलता ...

वर्णन हुएनसांग ने भी किया है ( फ़ाहियान पृष्ठ ३५; हुएनसांग पृष्ठ २०६ इंडियन प्रेस )। और जैसा हंसों व मंजूषा का दृश्य इस खंभे पर अंकित है, ठीक वैसा ही दृश्य देवपुत्र महाराज कनिष्क के उस डिब्बे पर भी है जो अब कलकत्ता-म्यूज़ियम में है और पेशावर के निकट महाराज कनिष्क के महाविहार में मिला था। पुरातत्त्वविद् जनरल कनिंघम ने सांकाश्य को वर्तमान संकिसा बताया है, जो इस स्थान से कुछ ही अन्तर पर है। हो सकता है कि इस दृश्य का सम्बन्ध कुछ सांकाश्य-सम्बन्धी उक्त कथा से हो। प्राचीन आर्य-सम्राट् बड़े उदार विचारों के थे, वे अन्य धर्मावलम्बियों का भी बड़ा मान करते थे। फिर बुद्धदेव की गणना तो दशावतारों के मध्य में है। पर इस कल्पना में कठिनता केवल यह आ पड़ती है कि त्रयस्त्रिंश स्वर्ग से भगवान् बुद्धदेव की अवतरण-कथा में तीन निःश्रेणियों की चर्चा है, पर यहाँ केवल दो ही निःश्रेणियाँ देख पड़ती हैं। सम्भव है कि बीचवाली टूटे हुए खंड में बनी रही हो अथवा स्थानाभाव से न बनाई गई हो। जो कुछ हो, राजहंस व निःश्रेणियों के दृश्यों के सम्बन्ध में हमारे उपर्युक्त दोनों विचार निरवलम्ब कल्पना-मात्र हैं।



[ कुक्कुट-मूर्ति ]

मढ़ी से लगभग ४० फुट के अन्तर पर एक कुक्कुट-मूर्ति पड़ी है। यह ३ फुट ऊँची, ३½ फुट लम्बी और ४½ फुट मोटी है। कुक्कुट की चोंच टूटी है, पंखों और पंजों की बनावट बड़ी ही स्वाभाविक है। इस कुक्कुट के पैरों के मध्य में पेट में एक छेद है। ऐसा जान पड़ता है कि इसमें कोई लोहे अथवा ताँबे की शलाका लगी रही होगी जिससे यह खंभ पर जड़ा था, कलकत्ता-म्यूज़ियम में रामपुरवा के अशोक-खम्भे की सिंहमूर्तियाँ ऐसी ही एक ताम्र-शलाका से जड़ी थीं, जो अद्यापि कलकत्ता-म्यूज़ियम में सिंहमूर्तियों के पास रक्खी हुई है। कुक्कुट ब्राह्मी महाशक्ति का वाहन तन्त्र-ग्रन्थों के अनुसार है। स्तम्भ के ऊपर प्रमुख मूर्ति गजलक्ष्मीजी की है, जो ब्राह्मीमहाशक्ति है। सम्भव है कि उन्हीं के वाहनरूप में इस कुक्कुट की स्थापना हुई हो। जागे लोग लालाभगत की इस कुक्कुट-मूर्ति से परिचित थे और वे कहा करते थे कि आल्हा-ऊदल के समय में यह अरुणशिखा प्रातःकाल जब बाँग देता था तब इसका शब्द कन्नौज में सुन पड़ता था और तभी प्रभात होता था। हमने स्वयं जागों की इस अन्धविश्वास की बात को सुना है।

निःश्रेणियों से ऊपर का खम्भ का भाग टूटा हुआ है और उसका अभी तक पता नहीं लगा है। इस भाग में और क्या बना था यह ज्ञात नहीं हो सकता, पर इतना अवश्य कहा जा सकता है कि इस पर एक लेख अवश्य था, क्योंकि जिस पहल में इस स्तम्भ की मूर्तियाँ बनी हैं उसी के सन्निकट पश्चिम की ओर दूसरे पहल में विक्रम से पूर्व द्वितीय शताब्दी की ब्राह्मीलिपि में एक खंडित लेख है, जिसके ऊपर के भाग का तो कोई शोध ही नहीं चल सकता है, पर नीचे का भाग जो शेष है उसकी एक पंक्ति में तो केवल "र" अक्षर शेष है और उसके नीचे की पंक्ति में "कुमार वर" अथवा "कुमार वीर" बड़े ही दिव्य और स्पष्ट अक्षरों में उत्कीर्ण है।

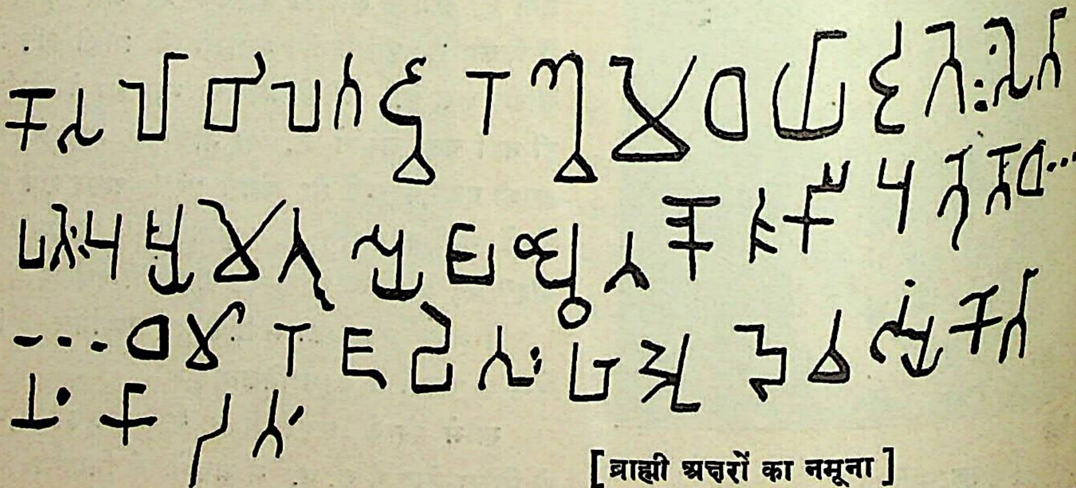
ये अक्षर रनोपाली में मिले हुए पुष्यमित्र के शिलालेख के अक्षरों से बहुत मिलते हैं।

खम्भे पर के अक्षरों में क, व, म अक्षर पुष्यमित्र के शिला-लेख के क, व, म अक्षरों के नितान्त अनुरूप ही हैं। इससे यह संभावना सिद्ध होती है कि खम्भे का लेख शुङ्ग सम्राट् पुष्यमित्र के काल का है। गुप्त या

कुशान-काल का नहीं, क्योंकि गुप्ताक्षरों के रूप इन अक्षरों के रूपों से बहुत भिन्न हैं और कुशान-काल के अक्षरों



[ यूप पर का शुङ्ग-कालीन खण्डित लेख ]



[ब्राह्मी अक्षरों का नमूना]

के इन अक्षरों के रूपों से परिवर्तन हो चुका था। अब यह तो प्रकट ही है कि यह खम्भा गुप्तकाल से प्रथम का है और कुशानवंशीय सम्राट् वीमाकडफाइसिस कनिष्क या हविष्क या जुष्क या वासुदेवादि किसी

यज्ञ नहीं किया, किसी प्राचीन ग्रन्थ या [illegible] प्राप्त उनके किसी लेख में भी इनके द्वारा किये

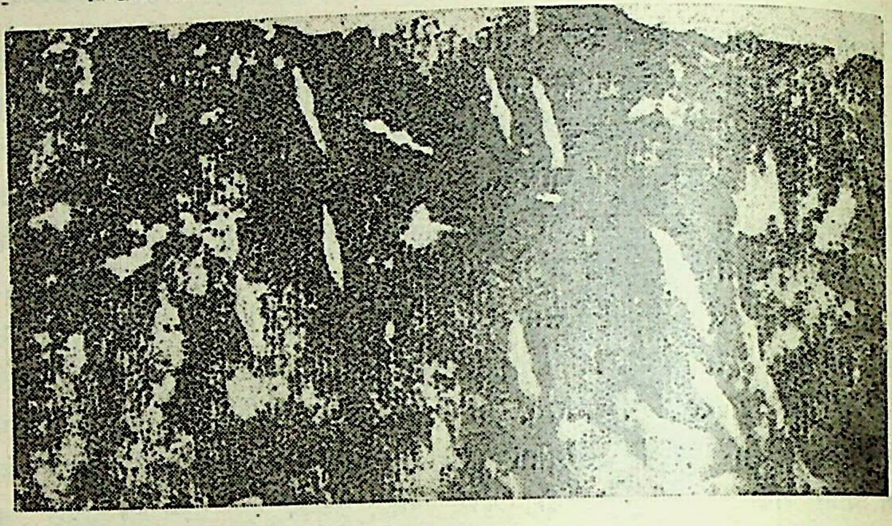
यज्ञ-कर्म का वर्णन भी नहीं मिलता है। कुशानवंशीय सम्राट् बौद्ध-धर्म के अनुयायी थे, वे वैदिक कर्मकाण्ड के माननेवाले भी नहीं थे, इससे यह यज्ञ-यूप उनका हो ही नहीं सकता है। उपर्युक्त कारणों से अधिकतर सम्भावना यही है कि यह खम्भा शुंगकाल का है। सम्राट् पुष्यमित्र ने दो अश्वमेध-यज्ञ भी किये थे जैसा कि उनके रनोपाली के लेख से प्रकट है। संभव है, उन दो यज्ञों में से एक यज्ञ इस देवग्राम में हुआ हो, क्योंकि यह देवग्राम ऐसे प्रदेश के अन्तर्गत है जो गङ्गा-यमुना के बीच का देश है और वैदिक धर्मानुयायियों में परमपुनीत देश माना गया है। इस प्रदेश का प्राचीनतम नाम "अन्तर्वेद प्रदेश" भी है और ब्रह्मावर्त तीर्थ भी इसी प्रदेश में है। कोसलाधिपति भारतवर्ष के सम्राट् थे। प्राचीन काल में पाटलिपुत्र, राजगृह, श्रावस्ति, अयोध्या आदि की भाँति कान्यकुब्जनगर भी एक महान् शक्तिमान् व प्रभावशाली राज्य की राजधानी रहा है। सम्भव है कि इस प्रभावशाली प्रदेश पर अपना आधिपत्य स्थापित करते समय सेनापति पुष्यमित्र ने यहाँ पर अश्वमेध-यज्ञ किया हो, क्योंकि यह स्थान कन्नौज के निकट ही उसी प्रदेश में है। इसी का निकटवर्ती स्थान ब्रह्मावर्त-क्षेत्र (वर्तमान बिठूर)—ब्रह्माजी के अश्वमेध-यज्ञ की यज्ञस्थली बताया जाता है। यह भी बहुत संभव है कि पुष्यमित्र ने दूसरा अश्वमेध-यज्ञ यहाँ किया हो। सम्राट् पुष्यमित्र ब्राह्मणकुलोद्भव थे। यह कहना अनुचित न होगा कि ऐतिहासिक स्मृति में यही एक-मात्र ऐसे सम्राट् थे जो ब्राह्मण थे, क्योंकि अन्य जितने सम्राट् थे वे प्रायः क्षत्री कुलों के ही थे, अतः ब्राह्मण सम्राट् का यज्ञ-स्थान समय पाकर ब्रह्मा की यज्ञस्थली कहाने लगा था। यह तो निर्विवाद ही है कि पुष्यमित्र के यज्ञों की यज्ञस्थली अयोध्यापुरी न थी, किन्तु कोई और ही स्थान थी। कारण यह कि यज्ञकाल में सम्राट् के जिन पत्रों या अनुशासनों का बोध लगता है वे सब यज्ञ-देश से लिखे गये हैं, ऐसा प्रतीत होता है। अतः यह यज्ञ-देश राजधानी से कोई भिन्न स्थान था और संभव है कि वह देश यही अन्तर्वेद रहा हो, क्योंकि यज्ञ-कर्म-काण्ड के लिए यह देश परम पुनीत माना गया है। यज्ञ-यूप का लेख खंडित हो जाने से और उस खंडित लेख के अप्राप्त होने से निश्चयात्मक रूप में कुछ नहीं कहा जा सकता, पर धारणा यही होती है कि यह लेख सम्राट् पुष्यमित्र का है। अब विचार यह करना है कि "कुमार वर" या "कुमार वीर" शब्द क्या प्रकट कर रहे हैं। हमारी समझ में कुमार वर या कुमार वीर शब्द भी हमारी धारणा के पोषक हैं, क्योंकि सम्राट्-कुमार "वसुमित्रजी" उत्सर्गित अश्व के साथ जानेवाली सेना के सेनापति थे। सिन्धु-तट पर यवनों को परास्त कर और उनके जनपदों को ध्वंस कर कुमार "वसुमित्रजी" ही ने अश्व का उद्धार कर दिग्विजय प्राप्त की थी और यज्ञ को निर्विघ्न समाप्त कराया था। संभव है कि इस महत् सेवा के पुरस्काररूप में समस्त शूरों, सामन्तों और सम्राट् कुमारों में श्रेष्ठ मानकर उनको "कुमार वर" वा "कुमार वीर" की उपाधि हो गई हो और इस यूप पर उन यशस्वी कुमार की यह उपाधि उत्कीर्ण करा दी गई हो और यूप की प्रशस्ति के गर्भ में जहाँ विस्तारपूर्वक यज्ञ, यज्ञकर्ता सम्राट्, उनकी कीर्तियों और दिग्विजय का उल्लेख हो वहाँ उनका पूर्ण परिचय भी दिया गया हो।

वीर कुमार वसुमित्र की बड़भागिनी माता को वसुमित्र की इस दिग्विजय के उपलक्ष में "वीर प्रसविनी माता" कह कर बधाई दी गई थी, जिसका वर्णन "मालविकाग्निमित्र नामक नाटक में है—

भर्त्रासि वीरपत्नीनां श्लाघ्यानां स्थापिता धुरि।
वीरसूरितशब्दोऽयं तनशा त्वामुपस्थितः॥

हमारा अनुमान है कि कुमार वर अथवा कुमार वीर शब्द कुमार वसुमित्र अथवा अग्निमित्र के द्योतक हैं।

जिस पहल में यह शुंगकालीन लेख है उसके सन्निकट दूसरे पहल में ११ चिह्न और बने हैं, जो हमें टाँकी के चिह्न जान पड़ते हैं। हम उनके सम्बन्ध में अभी तक कुछ कल्पना नहीं कर सके हैं। इसके आगे के तीसरे पहल में शंख-लिपि में एक गुप्तकालीन लेख है, जिसकी लिखावट ठीक वैसी ही है जैसी खीरीगढ़ से प्राप्त सम्राट् समुद्रगुप्त के अश्वमेध के घोड़े की मूर्ति की पीठ पर है और जिसका कुछ रहस्य



[ यूप पर टाँकी के चिह्न ]



[ यूप के तीसरे पहल पर शङ्ख-लिपि में गुप्त-कालीन लेख ]



मित्रवर बाबू जगन्नाथदासजी रत्नाकर ने उद्घाटित किया है। अनुमान से उस यूप के लेख में "चन्द्र" शब्द लिखा जान पड़ता है, परन्तु अभी ठीक नहीं कहा जा सकता है कि वास्तव में वह लेख क्या है ? उसके रहस्योद्घाटन का प्रयत्न अवश्य किया जा रहा है, पर इतना अवश्य कहा जा सकता है कि यह शंखलिपि प्रारम्भिक गुप्तकाल की है और पीछे से यह लेख उत्कीर्ण किया गया है, पर कब और क्यों इसका अभी कुछ शोध नहीं लगा है।

इस लेख के आगेवाले पहल में एक लेख और है। वह भी बहुत पिछले गुप्तकाल का जान पड़ता है और अनुमान होता है कि उसमें "गुप्त" शब्द भी लिखा है।

उपर्युक्त लेखों के आधार पर यह प्रामाणिक रूप से कहने का साहस होता है कि भारत के प्राचीन सम्राट् के इस कीर्तिध्वज ने भारत के स्वर्णयुग में जन्म लिया था, जब भारतीय सभ्यता उन्नताचल के उत्तमतम शिखर पर आरूढ़ थी, ललित कलायें पूर्णरूप से विकसित हो चुकी थीं, शुंग, कुशन, गुप्त, हूण, बैस, प्रतिहार आदि वंशों के उदय अस्त को इसने पूर्णतया देखा था और काल देव के भीषण प्रहारों और वज्राघातों को १२०० वर्ष तक वीरता से सहता हुआ अखंडित बना रहा और अंगदजी के पद के समान अटल रहा। पर जब पावन अंतर्वेद की भूमि पर यवनगणों के संकटमय चरणों का प्रवेश हुआ और धर्मान्ध अर्थलोलुप महमूद गज़नवी के पशु-बल-पूरित अत्याचारों से मथुरा में अग्निकाण्ड और जन-संहार हो देवस्थानों का ध्वंस हुआ, कन्नौज, स्रुघ्न आदि जन-पद विनाश किये गये, वहाँ के राजप्रासाद, देवालय आदि फूँके और तोड़े गये, आबाल-वृद्ध निर्दयता से काटे गये, ऐसा जान पड़ता है कि उसी समय देवग्राम का भी नाश किया गया, क्योंकि देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि वहाँ की बस्ती को उजड़े हुए एक युग-सा व्यतीत हो चुका है। हमारा अनुभव है कि उसी काल में यह यज्ञ-स्थली भी ध्वंस हुई और यह यज्ञ-स्तभ भी उसी काल में तोड़ा गया और इस जनपद के समस्त स्थान एक साथ ही विनष्ट कर दिये गये। इस स्तंभ पर अंतिम गुप्त या अधिक से अधिक यह भी कहने का साहस किया जा सकता है कि पड़िहार-काल के ही लेख उत्कीर्ण हैं और राठौर-काल का कोई लेख नहीं है। इससे हम इस परि-णाम पर पहुँचते हैं कि यह स्थान और यूप राठौर-काल से प्रथम ही विनाश को प्राप्त हो चुका था। ज्ञात नहीं कि इन टीलों के गर्भ में अभी तक अतीत काल के क्या क्या गौरव-मय चिह्न छिपे पड़े हैं और उनके साथ क्या क्या ऐतिहासिक रहस्य अज्ञात के अंक में अटूट निद्रा ले रहे हैं। क्या ही अच्छा हो यदि पुरातत्त्व-विभाग के अधीश्वर इस भूखण्ड को अपने अधिकार में लेकर यहाँ शीघ्र ही शोध का कार्य प्रारम्भ कर दें, हमें दृढ़ आशा है कि यदि इन टीलों में शोध की जावेगी तो बहुत कुछ प्राचीन काल की ऐतिहा-सिक सामग्री प्राप्त होगी।

हा कराल काल देव ! तुम्हारे चरित्र बड़े विचित्र है। प्रख्याति को पदमर्दित कर तुम्हीं विस्मृति के रसातल में पहुँचानेवाले हो। विजय को पराजय में और विभव को पराभव में परिवर्तित करने की तुम्हीं में शक्ति है। ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति, विकास और लय पर तुम्हारा ही अधिकार है। अत: हे महान् शक्तिशाली देव ! तुम्हें बार-बार प्रणाम है। प्रभो ! सौभाग्यवान् भारत को तुम महा अभागा बनाने का दृश्य दिखा चुके। अब दया करो और इस दृश्य पर पटाक्षेप कर दूसरे दृश्य का पटोत्तोलन करो, यही हमारी अंतिम प्रार्थना है।

लेख के अंत में हम पूज्य श्रीयुत पंडित रामेश्वर-दयालजी डिप्टीकलक्टर को हार्दिक धन्यवाद देते हैं, जिनकी कृपा से हमें इस स्थान को देखने का अवसर प्राप्त हुआ। साथ ही हम मित्रवर राय साहब प्रयागदयालजी क्यूरेटर प्राविंशल म्यूज़ियम को भी धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकते हैं, जिनसे विचार-परिवर्तन करने में हमें बहुत कुछ लाभ हुआ है, विशेषतः हंसों व मंजूषा के दृश्य-सम्बन्ध में।

हमारे इस लेख में कल्पनाओं ने भी बहुत कुछ स्थान पाया है। हम आशा करते हैं कि हमारी इन कल्पनाओं पर अन्य पुरातत्त्वविद् महानुभाव अपने विचार प्रकट करेंगे, जिससे हमें इस यूप के वास्तविक तत्त्व समझने और अपनी भूलों के संशोधन करने का अवसर प्राप्त हो सके।

—कृष्णबलदेव वर्मा

# प्रकृति की ध्वंस-लीला

[सितम्बर की सरस्वती में इस 'ध्वंसलीला' का जो अंश प्रकाशित हुआ है उसमें पुजारी आरबेस एपीसाइडिस की हत्या करने, और उस सम्बन्ध में उसके मित्र ग्लकास को हत्याकारी सिद्ध क एवं उस जघन्य कार्य को अपनी आँखों से देखनेवाले पुजारी क्यालेनास को अपने घर में क़ैद क तथा ग्लकास द्वारा निडिया के ग़ुलाम से उद्धार की कथा का वर्णन हो चुका है। इसके बाद ज हुआ उसका वर्णन यहाँ दिया गया है।]

( ५ )

एपीसाइडिस की हत्या के बारे में बहुत कुछ निडिया को मालूम था।

एपीसाइडिस सदा ग्लकास के घर जाया करता था। निडिया से भी उसकी अच्छी तरह जान-पहचान थी। एक दिन आरबेस ने निडिया से एपीसाइडिस के पीने के पानी में कुछ ज़हर मिला देने को कहा, लेकिन निडिया राज़ी न हुई। आरबेस ने उसे धन का लालच दिखाया तब भी वह राज़ी न हुई। जब उसने देखा कि निडिया से उसकी मनसा नहीं पूरी हो रही है तब उसने उससे साफ़ कह दिया कि मैं ख़ुद अपने हाथ से एपीसाइडिस की हत्या करूँगा। इसका वह मौक़ा ढूँढ़ रहा था।

अब जब एपीसाइडिस की हत्या के अपराध में ग्लकास पकड़ा गया तब आरबेस को चिन्ता हुई कि कहीं निडिया असली बात कह न बैठे, क्योंकि वह ज़रूर समझ गई होगी कि एपीसाइडिस का असल हत्यारा कौन है। उसका ग्लकास स्नेह करता था, अतएव उसके बचाने के लिए निडिया सबके सामने असली बात कह देने में कुछ भी देर न करेगी। एक तो नि जन्म की अन्धी थी दूसरे सब कोई उसका विश्वास थे। आरबेस के लिए यह थी एक बड़ी विकट समस्

सोचते सोचते आरबेस को एक उपाय सूझ ग वह एक दिन निडिया को भुलावा देकर अपनी में ले गया और वहाँ उसे क़ैद कर दिया, और पर सोसिया नाम की एक चतुर प्रहरी को नियत दिया। वह वहाँ दिन-रात दरवाज़े पर बैठी थी। परन्तु वह बहुत भली आदमी थी, इसलि निडिया के साथ दया का व्यवहार करती थी।

निडिया ने यह मौक़ा हाथ से नहीं जाने दि ग्लकास के लिए उसे बहुत चिन्ता थी। एक दिन रात को उसने सोसिया को बुला कर कहा—यदि तुम एक काम कर दो तो मैं तुम्हारा बहुत उपकार मानूँ

सोसिया ने कहा—अरे बाप रे! वह मुझसे होगा। पागल न हो जाओ। यदि मैं तुम्हें दूँ तो मेरी ही गर्दन मारी जायगी।

निडिया ने कहा—अरे यह बात नहीं है, इस घ छोड़ कर मैं एक पाँव भी बाहर नहीं रखना चाह मेरा दूसरा ही कार्य है।

सोसिया ने पूछा—तब बताओ, क्या है।

निडिया ने कहा—तुम मेरी एक चिट्ठी ग्लकास के मित्र सलास्ट के पास पहुँचा दो। यदि तुम मेरा यह काम कर दोगे तो मैं अपने हाथ का कड़ा और गले का हार तुमको दे दूँगी।

सोसिया ने मन में सोचा—यह कौन सा ऐसा काम है? इसमें क्या हानि है? इस घर के दरवाज़े में ताला लगा कर जाने और चिट्ठी पहुँचा कर तुरन्त लौट आने में जब इतनी मूल्यवान् वस्तुएँ मिल रही हैं तब तो यह मौक़ा हाथ से जाने देना उचित नहीं है।

सोसिया ने निडिया से उसके हाथ का कड़ा और गले का हार ले लिया। फिर एक टुकड़ा काग़ज़, एक लिफ़ाफ़ा और एक पेन्सिल लाकर उससे उसने कहा—लो, जो कुछ लिखना है, जल्दी लिख दो। मैं अभी जाकर सलास्ट को दे आऊँगी।

निडिया भले घर की लड़की थी। बचपन में उसके मा-बाप ने उसकी आँखों का अभाव दूर करने के लिए स्पर्शशक्ति की सहायता से उसे लिखना-पढ़ना सिखाया था। उसने सीखा भी ऐसी अच्छी तरह से था कि उसके लेख से यह नहीं मालूम होता था कि किसी नेत्र-शक्ति हीन लड़की का लिखा हुआ है।

सोसिया के दिये हुए काग़ज़ पर पेन्सिल से उसने एक चिट्ठी लिख और अच्छी तरह लिफ़ाफ़े में उसे बन्द करके सोसिया के हाथ में देकर कहा—इसे सलास्ट को देना। यदि मेरे साथ चालाकी करोगी तो उसकी सज़ा तुम्हें ऊपरवाले से मिलेगी। याद रखना। उनसे किसी का कोई काम छिपा नहीं रहता।

सोसिया धर्म्मवान् थी, वह पाप से बहुत डरती थी। निडिया की बात सुनते ही उसने कहा—नहीं वह हमसे न होगा। मैं विश्वासघातक नहीं हूँ। अभी मैं यह चिट्ठी दिये आती हूँ। तुम निडर होके सो जाओ।

( ६ )

सलास्ट के घर से लौट कर निडिया से सोसिया ने कहा कि चिट्ठी पहुँचा दी।

निडिया को अब एक नई आशा हुई। उसने सोचा कि चिट्ठी पढ़ते ही सलास्ट तुरन्त हाकिम से भेंट करके पुलिस की सहायता से मुझको इस क़ैद से छुड़ा ले जायगा। उसके बाद देख लेंगे कि सत्य की जय होती है या नहीं, ग्लकास को अन्याय-पूर्ण अभियोग से छुटकारा मिलता है या नहीं। इतने दुःख में भी इस विचार से निडिया का मन आनन्द से भर गया। परन्तु हाय! रात धीरे धीरे विदा हो गई और सवेरा होने पर सूर्य्य देवता का प्रकाश चारों ओर फैल गया। तब भी उसकी मुक्ति का कोई चिह्न न था। दरवाज़े के बाहर केवल नौकर-नौकरानियों की बात-चीत और पैरों की आहट सुनाई देती थी। वे सब लोग वार्षिक उत्सव में जाने के लिए तैयार हो रहे थे। उनमें से एक ने धीमी आवाज़ से कहा कि जैसा कर्म्म वैसा ही फल। परदेशी के साथ हम लोगों को नहीं मिलना चाहिए। अच्छा भाई जाने दो वे सब बातें। अब कहो, आज ग्लकास का सिंह ही से तो खेलाया जाना ठीक हुआ है न? क्या ऐसा करना ठीक होगा?

सुनते ही डर से निडिया की अन्तरात्मा काँप उठी। उसने मन ही मन कहा—यह कैसा पैशाचिक कार्य्य है? हे भगवन्! ग्लकास की रक्षा करो। हे प्रभो! मेरे प्राण-दाता, मेरे मुक्तिदाता, ग्लकास की जीवन-रक्षा करो।

निडिया के मुँह से और कोई बात न निकली। उसका हृदय व्यथा से भर गया। वह फिर दरवाज़े से कान लगा कर बाहर के लोगों की बातें सुनने लगी।

एक दूसरे नौकर ने ऊँची आवाज़ से जवाब दिया—ठीक क्यों न होगा? हाथों हाथ पकड़ा गया था। तब सज़ा क्यों न दी जाय? फिर आरबेस है इस मुक़द्दमे का प्रधान गवाह, जिसकी एक बात की क़ीमत लाख रुपया है।

दो-तीन आदमी एक ही साथ कह उठे—तब तो जानवरों का खेल इस बार बहुत ही मज़ेदार होगा।

पहले आदमी ने कहा—अवश्य! मैंने तो पहले कह दिया था कि इस बार सिंह से खेलने के लिए

कोई न कोई आदमी ज़रूर मिल जायगा। लो, मिल गया न ? मेरा अन्दाज़ ठीक हुआ।

इतने में आरवेस आ पहुँचा। कई एक क्षणों के भीतर उन सबका एक बड़ा जुलूस वहाँ से निकल कर वार्षिक मेले की ओर रवाना हुआ।

आरवेस रङ्गभूमि के द्वार पर गाड़ी से उतर कर अपने पूर्व-निर्दिष्ट स्थान पर जा बैठा, और उसके आदमी साधारण जनों के बीच में अपने स्थान में जा बैठे।

अपने स्थान में बैठ कर आरवेस ने देखा कि मेले का मैदान आदमियों से भरा हुआ है।

मैदान ख़ूब लम्बा चौड़ा था। उसका एक अंश लोहे के मोटे तार के जाल से घिरा हुआ था। उस घिरे हुए स्थान में सिंह का खेल दिखाया जाता था। उस स्थान के बाहर काठ की बनी हुई गैलरी में साधारण दर्शकों के लिए, और लोहे के तार के जाल से घिरे हुए स्थान में एक तरफ़ ईंटों से बने और क़ीमती कपड़े से ढँके हुए बड़े ऊँचे चबूतरे पर उच्च पदाधिकारी सरकारी अफ़सरों, अतिथियों और महिलाओं के लिए स्थान निरूपित हुआ था। सिंह के साथ ग्लकास की लड़ाई होने का समय बहुत निकट आ गया था। जाल से घिरे हुए तमाशे के उस स्थान की भूमि पर बालू और लकड़ी का बुरादा डाल दिया गया था। राजदण्ड से दण्डित भाग्यहीन अपराधियों की लड़ाई बहुत देर तक दर्शकों को देखने को मिल सके, इसका इन्तज़ाम रङ्ग-भूमि का प्रबन्ध करनेवालों ने बहुत कुछ यत्न से किया था।

जहाँ सरकारी अफ़सरों के बैठने का स्थान था, उसी तरफ़ ठीक बीच में हाकिम प्यानसा के लिए आसन दिया गया। हाकिम प्यानसा ही आज के विराट् उत्सव का सभापति था। उसी के आदेश से उत्सव का प्रारम्भ होने को था। सब बड़ी ही उत्सुकता के साथ उसके आदेश की प्रतीक्षा में थे।

अचानक चारों ओर बाजे बजने लगे। पहले घोड़े का खेल शुरू हुआ। सब कोई ग़ौर से उसे देखने लगे।

( ७ )

सुबह नींद के खुलते ही सलास्ट को याद आया— आज है प्रिय मित्र ग्लकास की मृत्यु का दिन। इस दुःखदायी चिन्ता के मन में उदय होते ही उसने तुरन्त आँखें बन्द कर लीं, और फिर सो जाने की चेष्टा करते करते उसको नींद आ गई। सलास्ट की आदत थी कि जब ऐसा कोई दुःख पड़ता जिससे छुटकारे की आशा न होती तब वह सो जाने की कोशिश करता और नींद में ही उसको शान्ति मिलती। आज भी उसने उसी उपाय का आश्रय लिया और दोपहर तक पड़ा सोता रहा। जब नींद खुली तब देखा, उसके नौकर-चाकर सब उसकी शय्या को घेरे हुए चुपचाप बैठे हैं। सलास्ट ने उन सबमें से एक से पूछा— क्या, जानवरों का खेल शुरू हो गया ?

"जी हाँ, वह तो बहुत देर से शुरू है। आपको बाजे की आवाज़ और घोड़े के पैरों की आहट नहीं सुनाई पड़ी।"

"आहा ! मैं भगवान् को धन्यवाद देता हूँ कि तब मैं सो गया था। मेरे घर से कोई नौकर तो खेल देखने नहीं गया ?"

"नहीं हुज़ूर, आपने तो मना किया था।"

सलास्ट ने आराम की साँस लेते हुए कहा— ठीक किया। जानवरों का खेल जानवरों को ही देखना चाहिए। उन सबको देखने दो।

फिर, मेज़ की ओर ताक कर कहा— मेज़ पर क्या पड़ा है ? चिट्ठी है ?

सलास्ट के नौकर डेवास ने कहा— जी हाँ, कल रात को एक आदमी दे गया था। आपकी तबीअत अच्छी नहीं थी, इसलिए कल वह चिट्ठी मैंने आपको नहीं दी।

"अच्छा, अब खोलो और पढ़कर सुनाओ।"

डेवास चिट्ठी खोलकर पढ़ने लगा—

आरवेस प्र...

महोदय,

मैं आपके मित्र ग्लकास की अन्...
लिखिया हूँ।

दुष्ट आरबेस मुझको भुलावा देकर अपनी कोठी में ले आया, और यहाँ एक छोटी कोठरी में मुझे क़ैद कर दिया है। इस पत्र के मिलते ही कृपया आप हाकिम के पास जाकर यहाँ से मुझे छोड़ाइए। एपीसाइडिस का असल हत्यारा ग्लकास नहीं—आरबेस है। उसके मन्दिर का क्यालेनास नाम का पुजारी सब हाल जानता है। वह भी आरबेस के यहाँ क़ैद है। मैं भी कुछ ऐसी बातें जानती हूँ जिससे बड़ी ही जल्दी हत्या के मिथ्या अपराध से ग्लकास को मुक्त कर सकूँगी। आप तुरन्त पुलिस की सहायता से मुझको और क्यालेनास को इस क़ैदख़ाने से उद्धार कीजिए। एक मुहूर्त्त का भी विलम्ब न कीजिएगा।

आपकी

अन्धी फूलवाली निडिया

सलास्ट पत्र सुनकर चौंक उठा। फिर नौकरों को बुलाकर कहा—मैं अभी हाकिम प्यानसा के पास जाता हूँ।

डेवास ने कहा—आप हाकिम के पास अब जायँगे? वहाँ आरबेस भी तो खेल देखने को गया है। यदि आप हाकिम के पास नालिश करेंगे तो आरबेस अपना अपराध नहीं स्वीकार करेगा और आपको ही झूठा बनायेंगे, तब आप कुछ प्रमाण भी न दे सकेंगे। इससे तो यही अच्छा है कि हम सब पहले चलकर क्यालेनास और निडिया को क़ैद से छुड़ा लावें, फिर साक्षी व प्रमाण-सहित हाकिम के सामने हाज़िर हों।

सलास्ट ख़ुशी के मारे तुरन्त उठकर खड़ा होगया। उसने कहा—बहुत ठीक। अच्छा चलो। सब नौकरों से कहो कि मेरे साथ आवें। इस समय सब लोग मेला देखने को गये हैं। रास्ते में कोई मिलेगा भी नहीं। चलो इसी वक़्त आरबेस के घर से निडिया और क्यालेनास को मुक्त कर लावें। हाकिम प्यानसा मेरा मित्र है। मैं उनको एक चिट्ठी लिखे देता हूँ कि एक घण्टे तक ग्लकास को दण्ड न दिया जाय। तब तक मैं उन दोनों को लेकर ग्लकास को सबके सामने निरपराध साबित कर सकूँगा। डेवास, तुम्हीं यह चिट्ठी लेकर हाकिम के पास जाओ। चिट्ठी हाकिम के ही हाथ में देना।

( ८ )

हाकिम प्यानसा ने रङ्गभूमि के अध्यक्ष को बुलाकर कहा—सलास्ट ने आसामी के लिए एक घंटे का समय माँगा था। अब तो लगभग एक घण्टे का समय होगया। अभी तक सलास्ट की कोई ख़बर नहीं। इधर सब लोग सिंह के साथ आसामी का खेल देखने के लिए उत्सुक हो रहे हैं।

अध्यक्ष ने कहा—तब आप जो उचित समझें, आदेश करें।

हाकिम प्यानसा ने हुक्म दिया कि अब सिंह को छोड़ दो और आसामी ग्लकास को रङ्गभूमि के पिंजड़े में ढकेल दो।

हुक्म के मिलते ही ग्लकास रङ्गभूमि के पिंजड़े में बड़े उत्साह के साथ ठेल दिया गया। भूखे सिंह से आत्मरक्षा करने के लिए एक छुरे के सिवा उसके हाथ में और कुछ भी नहीं दिया गया था।

छुरा हाथ में लिये ग्लकास ने निडर-भाव से रङ्गभूमि में प्रवेश किया। उधर सिंह भी छोड़ दिया गया। बाहर की रोशनी में आने से तथा मुक्ति के आनन्द से सिंह छलांग मार कर रंगभूमि के पिंजड़े के बीच में आ कूदा। मनुष्य की बास के मिलते ही उसके ख़ून के लालच से उसकी जीभ से पानी गिरने लगा।

ठीक उसी समय रंगभूमि के द्वार पर बहुत से आदमियों की चिल्लाहट सुनाई दी। सब उसी तरफ़ देखने लगे। सबने चकित होकर देखा कि सलास्ट ने कई-एक आदमियों के साथ रंगभूमि में प्रवेश किया। भीतर आकर उसने बड़े ज़ोर से कहा—हाकिम प्यानसा, मेहरबानी करके ग्लकास को छोड़ दीजिए। वह निरपराध है। विना विलम्ब आरबेस को बन्दी कीजिए। एपीसाइडिस की हत्या आरबेस ने की है, दण्ड उसी को मिलना चाहिए।

हाकिम प्यानसा ने ऊँची वेदी के ऊपर से खड़े होकर कहा—सलास्ट, क्या तुम पागल हो गये हो? तुम क्या कहते हो?

सलास्ट ने फिर कहा—देर मत कीजिए। तुरन्त ग्लकास को छोड़ दीजिए। नहीं तो उसकी मृत्यु का दायित्व आप पर होगा। एपीसाइडिस का हत्यारा कौन है, अभी मैं उसका प्रमाण देता हूँ। मैं अपने साथ साक्षी ले आया हूँ।

हे पम्पियाई के रहनेवालो, आप सब दुर्वृत्त आरबेस को देखे रहना। किसी प्रकार से वह भागने न पावे।

इतने में क्यालेनास और निडिया आये। क्यालेनास का चेहरा देख कर सब चौंक पड़े। उसकी कंकाल-सी देह देख कर मालूम होता था, मानो वह मृत्युपुरी से लौट कर आया है।

चारों ओर की भीड़ के भीतर से लोगों ने चिल्लाकर कहा—क्या यही हैं हमारे पुजारी क्यालेनास, या उनकी प्रेतमूर्त्ति है?

हाकिम ने जवाब दिया—हाँ, यही हैं पुजारी क्यालेनास। फिर क्यालेनास की ओर ताक कर पूछा—क्या तुम्हें कुछ कहना है?

"जी हाँ, आइसिस देवी के मन्दिर के पुजारी आरबेस ने ही एपीसाइडिस की हत्या की है। उन्हें हत्या करते मैंने अपनी आँखों से देखा है, इसी लिए आरबेस ने मुझे अपनी कोठी में क़ैद करके मार डालने का विचार किया था। परन्तु भगवान् के राज्य में पाप कभी नहीं ठहर सकता। उन्हीं की कृपा से सत्य का प्रकाश करने के लिए मुझे मुक्ति मिली है। ग्लकास को छोड़ दीजिए। वह निर्दोष है।

हाकिम प्यानसा ने विस्मित होकर कहा—अवश्य इसमें भगवान् का आशीर्वाद है, क्योंकि यही तो सबसे बड़ी अचरज की बात है कि ग्लकास को सामने पा कर भी सिंह उदास भाव से अब तक पिंजड़े के चारों ओर घूम रहा है, उसकी कुछ भी हानि नहीं की।

मेले के दर्शक चञ्चल हो उठे। भीड़ में से हज़ारों आदमियों ने एक ही साथ चिल्ला कर कहा—सिंह के मुँह में आरबेस को झोंक देना चाहिए। तुरन्त [illegible] सिंह के पिंजड़े में ढकेल दो।

प्यानसा ने हुक्म दिया—ग्लकास को मुक्त [illegible] नज़रबन्द रक्खो।

हाकिम के इस हुक्म की बात बिजली की [illegible] भर में चारों ओर फैल गई। आनन्द से [illegible] करने लगे। यहाँ तक कि हाकिम को मुक़दमा [illegible] लिए लोगों को चुप करना पड़ा।

प्यानसा ने पूछा—वह कौन है?

सलास्ट ने जवाब दिया—यह निडिया नाम [illegible] अन्धी लड़की है। इसने आज क्यालेनास [illegible] के मुँह से बचाया है, और ग्लकास की [illegible] की है।

प्यानसा—क्यालेनास, तुम पुजारी आरबेस [illegible] एपीसाइडिस की हत्या करने का अभियोग लगाते हो?

"हाँ हुज़ूर।"

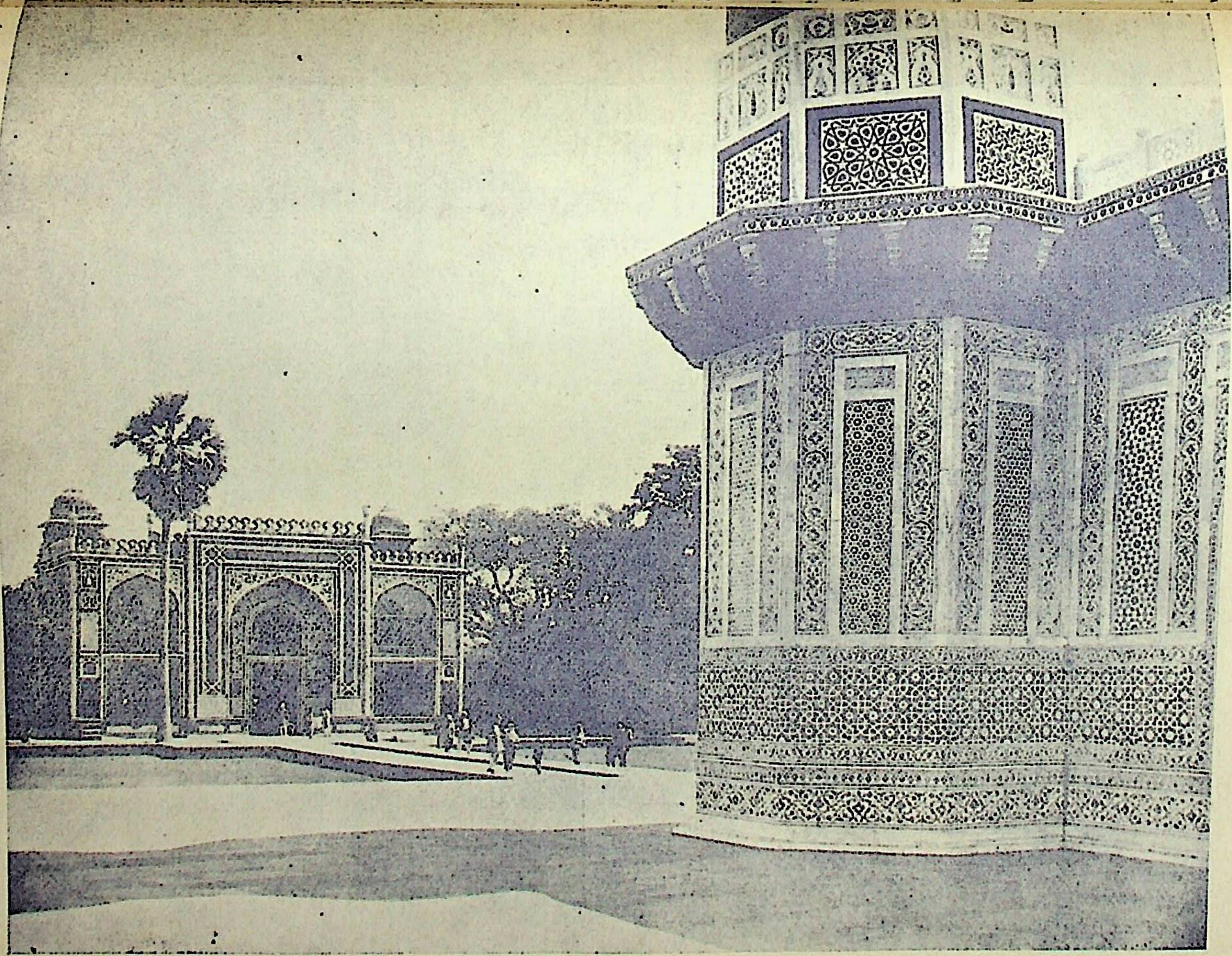
"क्या तुमने उसे हत्या करते अपनी आँखों [illegible] देखा है?"

"जी हाँ, मैंने अपनी आँखों से देखा है।"

अभी यही बहुत है, पीछे सुनूँगा—यह [illegible] हाकिम ने आरबेस से कहा—तुम्हारे विपक्षी [illegible] हत्या का अभियोग लगाते हैं। इसके बारे में [illegible] कुछ कहना है?

जनता इस बार क्रोध से चञ्चल हो उठी। [illegible] से सारा हाल जान कर एक ही साथ सबने चि[illegible] कहा—आरबेस को सिंह के आगे डाल दो।

उत्तेजित जनमण्डली की यह बात सुनते ही [illegible] काँप उठा! उसका मुँह डर से काला हो [illegible] लेकिन उसको मालूम था कि यह डरने का वक़्त [illegible] आफ़त सिर पर तो आ ही गई है, डरने से यह [illegible] होगी। इसलिए किसी तरह हृदय को साहस [illegible] कर हाकिम और क्रुद्ध जनमण्डली के सामने वह [illegible] खड़ा हो गया। फिर हाकिम के प्रश्न के जवाब में [illegible] कहा—हाकिम साहब, मुझ पर जो अभियोग [illegible] गया है वह सिवा पागल के प्रलाप के कुछ [illegible]



जामा मस्जिद

यदि आप मुझसे प्रश्न न करते तो मैं इसका कोई भी उत्तर देना उचित न समझता। सलास्ट ने मुझ पर पहले अभियोग लगाया है। यह तो आप सब जानते ही हैं कि सलास्ट और ग्लकास में मित्रता है। दूसरा अभियोग लगानेवाला मेरे मठ का एक पुजारी है। किन्तु हे पम्पियाइ-नगर के रहनेवालो, आप लोगों को यह बतलाने की ज़रूरत नहीं है कि क्यालेनास को धन का कितना लालच है। मैं ज़्यादा कुछ नहीं कहना चाहता। आप लोग ख़ुद समझ लें। मन भर रुपया मिलने से वह क्या नहीं कर सकता और क्या नहीं कह सकता है? क्यालेनास की बात विश्वास-योग्य है या नहीं, आप ही लोग विचार करें।

हाकिम ने सलास्ट से पूछा—तुम क्यालेनास को कहाँ से ले आये हो?

सलास्ट ने कहा—ये आरबेस की कोठी के अन्दर एक गुप्त कोठरी में क़ैद थे। हम सबने जाकर उन्हें वहाँ से मुक्त किया है।

हाकिम ने रुष्ट होकर आरबेस से कहा—आरबेस, यह कैसी बात है कि देवमन्दिर के एक पुजारी को तुमने अपने घर में क़ैद कर रक्खा था?

आरबेस ने नम्रता के साथ जवाब दिया—हुज़ूर, पहले मेरी बात तो मेहरबानी करके सुन लीजिए। इस क्यालेनास ने मेरे पास आकर एक दिन कहा कि यदि मैं उसे दस हज़ार मुहरें न दूँगा तो वह राजद्वार में मुझ पर एपीसाइडिस की हत्या करने का अभियोग लगावेगा। हुज़ूर, आप सब जानते हैं कि मैं परदेशी हूँ। यदि पम्पियाई का एक पुजारी मेरे विरुद्ध कोई भी अभियोग उपस्थित करेगा तो वह मेरे लिए बड़े ही अगौरव की बात होगी। इस लिए तब तक के लिए मैंने उसे रोक रक्खा था जब तक एपीसाइडिस का असली हत्यारा अदालत से दण्ड न पा जाय। यदि मैंने हत्या की होती और उसने देखा होता तो क्या वह किसी से न कह कर चुप रह जाता और मेरे हाथों में आने के पहले अदालत को न ख़बर देता? हाँ, मैंने अपनी रक्षा के लिए उसको अपने यहाँ रोक लिया था। यदि इसे आप अपराध मानते हों तो उसका क़ानून के अनुसार दण्ड सिर पर लेने को राज़ी हूँ।

हाकिम ने कहा—यदि यही बात है तब आरबेस पर कोई अपराध नहीं है। मेरी समझ में आरबेस ने अच्छी सफ़ाई दी है। यदि इस सफ़ाई का खण्डन न कर सकोगे तो सलास्ट तुम्हें मिथ्या अभियोग लगाने के अपराध में दण्डित होना पड़ेगा।

क्यालेनास से और चुप रहा न गया। उसने आँखें लाल करके क्रोध से काँपते हुए कहा—क्या आइसिस देवी झूठी हैं? क्या पम्पियाई-नगर से धर्म्म लुप्त हो गया है? आरबेस सत्यवादी है!! धर्म्मावतार! मैं सब देवताओं को साक्षी मान कर कहता हूँ कि आरबेस हत्यारा है। मैंने ख़ुद अपनी आँखों से उसे हत्या करते देखा है।

जनमण्डली ने फिर चिल्लाकर कहा—"आरबेस को सिंह के मुँह में डाल दो।" इसके बाद वे लोग आरबेस को वेदी के ऊपर से खींच लाकर सिंह के पिंजड़े में डालने के मतलब से एकदम आँगन की ओर झपट पड़े।

आरबेस ने देखा कि आफ़त बहुत नज़दीक आ गई है। वह साहस के साथ तुरन्त उठकर खड़ा हो गया और मेघ के से गम्भीर स्वर से कहा—देखो, भगवान् निर्दोषी को किस तरह बचाते हैं।

फिर दोनों हाथ जोड़कर आकाश की ओर दृष्टि उठाकर कहा—उठो, जागो, प्रलय के देवता, इन सब मिथ्यावादियों के ऊपर तुम अपनी अनगिनती वह्निशिखायें फैला दो।

जन-मण्डली आरबेस की विकट अंगभंगी को देखकर अवाक् होकर दंग रह गई।

इतने में ही लोगों ने देखा कि विसूवियस के शिखर को फोड़कर आग निकलनी शुरू हो गई है। थोड़ी देर के बाद ही आग की ज्वाला बढ़ते बढ़ते एक ऊँचे देवदार के पेड़ जैसी ऊँची उठती देख पड़ने लगी। कभी बहुत तेज़, कभी धीमी तो कभी भयंकर लाल।

पल भर में वहाँ का सारा कोलाहल शान्त हो गया! छोटे-बड़े, धनी-निर्धन सबके सब अपनी अपनी जान

बचाने के लिए जो जिधर पाया उधर भाग निकले। चारों ओर बच्चों और औरतों का आर्त्तनाद सुनाई देने लगा। अचानक भूमि थरथरा कर काँप उठी। भूचाल के साथ ही घर की दीवारों के टूट कर गिर पड़ने की भयंकर आवाज़ें होने लगीं। समुद्र का जल उछल उछल कर किनारे पर आने लगा। जल-स्थल व आकाश में तूफ़ान का ताण्डव नृत्य होने लगा। प्रकृति की इस ध्वंस-लीला के समय कौन कहाँ गया, कुछ ठिकाना न था। कहाँ गये हाकिम प्यानसा व उनका शासन-दण्ड, और कहाँ गया आरबेस! रास्ते में गल कर बहती हुई धातु और आग की शिखाओं से हवा इतनी गरम हो गई कि देह में लगते ही फफोले सा पड़ जाते। बड़े बड़े दालान आँखों के सामने टूट टूट कर गिरने लगे, अनगिनती कोठियों की छतें आग से जलने लगीं।

हाय! पम्पियाई के रहनेवाले प्रकृति की इस रोष-वह्नि से कहाँ भाग कर जायँगे? भगवान् के शासन-दण्ड से उनकी कैसे रक्षा होगी? इस भीषण विपत्ति से रक्षा करनेवाले राजा कहाँ गये? कहाँ है उनका राज्य? देश का देश श्मशान हो गया। गायें, भैंसें, आदमी, घोड़े, राजा, प्रजा सबके सब निरुपाय होकर आग में जल रहे थे। कौन किसको देखे? उन सबका व्याकुल क्रन्दन विसूवियस के कठिन हृदय को कोमल नहीं कर सका। हाहाकारध्वनि से सारा पम्पियाई भर गया।

( ६ )

ध्वंस का काम भरपूर होता रहा। आदमी डर से जो राह मिलती, भाग रहे थे। ग्लकास पिंजड़े से मुक्त हो ही चुका था। अपने प्रहरियों के भागते ही वह भी अपने प्राण बचाने के लिए भाग चला। इतने में दूर से ग्लकास की आवाज़ सुनकर निडिया उसके पास आकर रोने लगी। फिर बोली—ग्लकास, तुम्हें मैं बचा सकी, इस बात की मुझे बड़ी प्रसन्नता है। अब इस ध्वंस-लीला के बीच में मुझे मरने दो।

ग्लकास ने प्यार से कहा—निडिया, तुमने जान बचाई है। इसलिए मैं तुम्हारा कृतज्ञ हूँ। चलो, हम दोनों भाग कर जान बचावें।

ठीक इसी वक़्त ग्लकास के पैरों के तले [illegible] काँपने लगी थी, नज़दीक के पहाड़ से आग [illegible] से गली हुई धातु की धारा बह कर ज़ोर से आ[illegible] थी। बड़े बड़े पेड़ व प्रासाद टूट टूट कर बड़े [illegible] आवाज़ से गिरने लगे थे। ग्लकास निडिया का [illegible] पकड़े हुए उस ध्वंस-लीला के बीच में से भाग रहा [illegible] अचानक सामने के एक घर से किसी के फूट फू[illegible] रोने की आवाज़ सुनकर उन दोनों ने घर के [illegible] जाकर देखा कि एक वृद्ध ज़मीन से घुटने टेके हु[illegible] भगवान् से प्रार्थना करता रो रहा है।

ग्लकास ने कहा—भाई उठो, अब रोने [illegible] नहीं है। बाहर की विराट् ध्वंस-लीला के मुँह [illegible] कर अपनी जान बचाओ।

कुछ उत्तर न मिला। ग्लकास ने बत्ती की [illegible] में देखा कि एक मृत देह उस आदमी के पास प[illegible] मृतक का मुँह देखने से यह जान पड़ा कि उसकी [illegible] अभी हुई है। परन्तु मृत्यु से उसके मुँह की प्र[illegible] लुप्त नहीं हुई थी। हास्य की छाप उसके मुँ[illegible] ज्यों की त्यों बनी हुई थी। देखने से मालूम हो[illegible] कि वह मरा नहीं है, बल्कि स्वप्न में हँस रहा [illegible] उसके यौवन का स्वाभाविक सौन्दर्य अब तक उसके [illegible] में मौजूद था।

वृद्ध की आँखों से आँसू बह रहे थे और वह [illegible] हाथ को ऊपर उठा के भगवान् से मृतक की जीवन[illegible] माँग रहा था।

दौड़ कर उसके पास जाकर ग्लकास ने उ[illegible] धक्का देकर सावधान किया और करुण-भाव से क[illegible] भाई, तुम्हारे दुःख की बात समझ में आ गई, [illegible] यह समय शोक करने का नहीं है। भगवान् [illegible] क्रोधाग्नि आज दुनिया के ऊपर बरस पड़ी है। [illegible] उस आग में ध्वंस होने के पहले ही यहाँ से [illegible] चलो।

वृद्ध ने ग्लकास की बात पर कुछ भी ध्यान न देकर कहा—शायद मेरा लड़का अब तक ज़िन्दा है। मेरा यह लड़का कभी नहीं मर सकता। यह कह कर उसने बड़े ज़ोर से एक विकट हँसी हँसकर और ग्लकास की ओर देख कर कहा—आओ न। आकर देखो। इसकी छाती में हाथ लगा कर देखो, धकधक कर रही है या नहीं।

"भाई, तुम्हारा मस्तिष्क इस समय ठीक नहीं है। तुम शान्त होओ। वह मर गया है। भगवान् की चीज़ है, उन्होंने अपनी चीज़ ले ली, इसलिए दुःख मत करो। अब चलो यहां से। देर करने से तुम भी नहीं रहोगे। जो मर गया वह तो मिट्टी की गुड़िया है। मिट्टी की गुड़िया में कोई प्राण डाल सकता है ? आओ भाई, देखो वह दीवार टूट पड़ी है। वह सुनो आदमियों की चिल्लाहट। व्यर्थ में वक्त न बिताओ मेरे साथ चले आओ।

वृद्ध ने कांपते हुए कहा कि क्या कहते हो। मैं तो कुछ भी नहीं सुनता। अरे, मेरे बच्चा, मेरे लाल।

ग्लकास ने उसका हाथ पकड़ कर ज़ोर से झटका देकर कहा—अरे भाई, चले आओ, चले आओ। यह शोक करने का वक्त नहीं है, देर करोगे तो तुम भी न बचोगे।

वृद्ध ने ग्लकास के हाथ से अपना हाथ छुड़ा कर ज़ोर से कहा—क्या तुम मुझे यहाँ से हटाना चाहते हो ? अच्छा, देखूँ कि कौन मुझे मेरे लड़के के पास से हटाता है। यह कहते हुए वह वृद्ध बड़े यत्न से मृत पुत्र को गले से लगा कर बार बार उसके मुँह का चुम्बन करने लगा।

ग्लकास की आँखों में आँसू भर आये। उसने कहा—अहा। यह दृश्य देख कर पाषाण भी गल जा सकता है। वृद्ध की ओर करुणा-भरी दृष्टि से देख कर बोला—भाई, मृत्यु सब दिन के लिए आज तुम्हारे पुत्र को तुम्हारे पास से ले गई है।

ठीक उसी वक्त एक बड़ा खम्भा टूट कर वृद्ध के ऊपर आ गिरा। पल भर में उसकी जीर्ण-शीर्ण देह प्राण-शून्य होकर उसके मृत पुत्र की देह पर गिर पड़ी।

ग्लकास ने तुरन्त जा के उसको उठा कर देखा। वृद्ध की साँस बन्द हो गई थी, बेचारे को दारुण पुत्र-शोक से छुटकारा मिल गया। अन्तिम साँस के साथ वृद्ध के मुँह से यही निकला—बाप से पुत्र को छीन लेने में मृत्यु-देवता की आँखों में भी आँसू नहीं समाते हैं।

[ अपूर्ण

—चारुबाला

# मृत-प्रेम

( १ )

यौवन तुम्हारा क्यों धरा की धूल में जा मिला
रंग के उड़ान से कपूर थक हारा है।
वह कान्ति—वह कमनीयता—कहाँ को आज
कर गई रमणीयता को ले किनारा है।
एक आँख तेरी थी कि जिसको अनेकों घड़ी
होके अनिमेष मुझे बरसों निहारा है।
एक आँख मेरी है जो तेरी धराशायिता को
एक क्षण देखना न करती गँवारा है।

( २ )

एक मानवेन्द्र के कलंक-कालिमा सा रंग
लेकर हुआ था चन्द्रमा सा तेरा मुखड़ा।
हाय! हुआ काल के पयोधि में तिरोहित सो,
अब भी क्या प्रेयसि मिलेगा उसे सुखड़ा।
तेरे गुण-गान के गगन में निरंतर ही
गूँज तो रहा है मुझ बे-दिल का दुखड़ा।
फिर क्यों कहें न लोगबाग इस पागल का
बैठ गया दिल है इसी से चित्त उखड़ा।

( ३ )

वह शुभ दिन वह सोने की विभावरी थ,
बीते याम निज निज भाग्य को स
अब कौन वासर अनन्त हो पड़ा है ज
सारी रात बीतती है जागते ज
शीतल उशीर से लगे थे फूल लोचनों क
छूते जिस अङ्ग को उसी को अब
चाह चुके तुमको न चाह रही चाहने क
चाहे कुछ भी न, यह चाह हम

( ४ )

कामिनी-कुसुम को प्रफुल्लित विलोक कर,
आँखें वह म्लानता की लेखा चाहती
जिन लोचनों में लालिमा की थी लकीर
कैसे कहें कालिमा की रेखा चाहतीं
प्रेम-पंखड़ी को इस भाँति एक क्षण ही
हाय मुरझाते अब रेखा चाहती
नित्य जो निहारा सो विलोका चाहती
देखा आज जो है वह देखा चाहतीं

# स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध

[श्रीयुत ईश्वरचन्द्र ब्रह्मचारी जी से सरस्वती के पाठक भले प्रकार परिचित होंगे। आप सरस्वती में दर्शन-सम्बन्धी लेख लिखते रहते थे, जो अपनी कोटि के एक ही होते थे। आपका यह 'स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध' शीर्षक लेख भी बहुत रोचक और विचार-पूर्ण है। स्त्री-पुरुष के प्राकृतिक सम्बन्ध की विवेचना करते हुए आपने उसके वर्तमान पवित्र रूप का महत्त्व सिद्ध किया है और कहा है कि उसका वैवाहिक सम्बन्ध मनुष्यता का द्योतक है। लेख बहुत ही मनोरञ्जक है।]

प्रकृति को देखिए तो और पुरुषों को देखिए तो दोनों में कोई भी अपने आपको सदा एक ही नहीं रखना चाहता। प्रकृति का अणु अणु इस प्रकार प्रतीत होता है, मानो एक से अनेक होने के लिए छटपटा रहा है। अकेले रहने में उसका जी घबराता है। जब तक प्रकृति अकेली रहती है तब तक भार में दबी, मुरझाई सी रहती है। बीज जब तक बीज है तब तक उसका सौंदर्य नहीं चमकता। अङ्कुर के निकलते ही पल-पल पर कान्ति-कला बढ़ने लगती है। एक दशा में मौलसिरी नाम भर को होती है और दूसरी दशा में कलियों के खिलते न खिलते भौंरों की भीड़ आ पहुँचती है, वायु में सौरभ की लहरें उठती रहती हैं।

अंकुर में लावण्य का विकास तो है ही, बीज भी अमर होकर रहता है। बीज का विकास भी है और प्रलय भी। वट-बीज दूर दूर तक शाखाजाल फैलाकर वृक्ष बनता है, फिर जीर्ण-शीर्ण होकर गिरता है। यदि वृक्ष में बीज न रहे तो बीज-वृक्ष दोनों ही नष्ट हो जायँगे। जिसने किसी को जन्म नहीं दिया वह मृत्यु से नहीं बच सकता। जिस बीज से अंकुर नहीं निकला वह जल जायगा या चूर हो जायगा। वृक्ष को कोई डर नहीं। उसने अनेक बीजों को जन्म दिया है, जिनमें वह अपनी विशाल महिमा से स्थिर है। जो एक है उसकी शक्तियाँ परिमित हैं, उसे पद पद पर आशङ्का रहती है। जो अनेक है उसकी असीम शक्ति है, मृत्यु उसे नहीं मार सकती। प्रकृति की तरह जीव भी एक नहीं रहता। किसी भी जाति में जीव बिना सन्तान के नहीं रहना चाहता। रहना क्या नहीं चाहता, रह नहीं सकता। स्त्री पुरुष की ओर और पुरुष स्त्री की ओर खिंचता चला जाता है। दोनों मिलकर जब तक सन्तान नहीं उत्पन्न कर लेते तब तक व्याकुल रहते हैं। अपने रूप में स्त्री-पुरुष अपूर्ण हैं, पूर्ण होने के लिए वे दोनों मिलते हैं, दोनों मिलकर एक होते हैं। जिन प्राणियों का जीवन

कुछ ही समय तक होता है वे भी सन्तान उत्पन्न करके मरते हैं। अयोनिज जीव भी परस्पर मिलकर सन्तति उत्पन्न करते हैं। संतति उत्पन्न करना स्वभाव है। अपनी रक्षा के लिए जीव सन्तान नहीं उत्पन्न करता है, वह तो अपने आप हो जाती है। मूल कारण है परस्पर मिल-कर प्राप्त होनेवाले सुख की लालसा। सन्तान यदि न हो तो भी वे सुख-लालसा से मिलते रहेंगे। पर संसार में यह दशा हो नहीं सकती। प्रकृति-पुरुष जब मिलकर सन्तति न उत्पन्न करेंगे, चुप रहेंगे, तब संसार ही न रहेगा। वह एक ऐसी दशा होगी जिसे हम स्पष्ट रीति से नहीं जान सकते। सन्तति का विराम प्रलय है। न प्रकृति शून्य बन सकती है, न पुरुष। दोनों ही सदा रहेंगे। कुछ काल के लिए चेष्टाहीन होकर रह सकते हैं; अन्त में क्रिया करनी ही पड़ेगी। क्रिया होते ही दोनों की सन्तति चल पड़ेगी। प्रकृति में बीज से लेकर वृक्ष तक और पुरुष में कृमि-कीट से लेकर मनुष्य तक यह प्रवृत्ति समान रूप में है। सन्तति के कारण ही प्रकृति और पुरुष अनेक होकर एक हैं।

प्रकृति की सन्तति में कोई क्रम-भेद नहीं हुआ। पहले की तरह अब भी आम की गुठली यथासमय आम का वृक्ष और सरसों के दाने सरसों को उत्पन्न करते हैं। समय पर बो दो, पानी देते रहो, ऋतु पर अंकुर फूट निकलेगा। जीवों में भी पशु-पक्षी आदि की दशा पहले सी है। पहले की तरह स्त्री-पुरुष अब भी आकर्षण के होते ही परस्पर संबन्ध कर लेते हैं। पर मनुष्य में कुछ भेद है। मनुष्य भी अन्य जीवों के समान ही संतति उत्पन्न करता है, पर मर्यादा के साथ।

मनुष्य का पति-पत्नी-भाव क्या आरम्भ से मर्यादा-युक्त है या पीछे बना है? नित्य श्रुति और स्मृति के अनुसार तो वह अनादिकाल से है। अनादिकाल से ही सही, पर मर्यादा से दूर पशु-वृत्ति आग में शीत-स्पर्श के समान मनुष्य में असम्भव नहीं है। नहीं तो कभी कभी हो क्यों जाती है? जो संभव हो उसके पहले हो चुकने का अनुमान अयुक्त नहीं है। इस संभावना के अनुसार आदिम दशा में मनुष्य भी पशु था। उस समय मनुष्य भी गम्य-अगम्य का भेद न जानता। पशुओं के समान छीन-झपट कर जिसके हाथ में जो जाती वही उसे ग्रहण कर लेता था। इससे दुर्बलों को बलवान् का सामना करने में मार खानी पड़ती थी। वे संघ बनाकर रहने लगे। एक स्थान पर रहने से धीरे धीरे उन्हें घर बनाना पड़ा, जिससे स्त्रियों की आवश्यकता बढ़ गई। संघ बनाकर भी प्रत्येक की इच्छा यथेष्ट नहीं पूरी होती थी, इसलिए अन्त में एक स्त्री पर एक का अधिकार रक्खा गया। शरीर से दुर्बल स्त्री को पुरुष ने गाय, बैल, घोड़े आदि के समान मोल लेकर अपने अधीन कर लिया। दो स्त्री-पुरुषों के साथ रहने से संतान होने पर माता-पिता भाई-बहन आदि पवित्र संबन्ध प्रकट हुए। माता-पिता अपनी संतान का संबन्ध दूसरे की संतान से करने लगे। संतान अपना संबन्ध स्वयं कर लेती थी। भोग की इच्छा में ही आरम्भ में दो स्त्री-पुरुषों की मर्यादा बनाई गई। महाभारत की श्वेतकेतु-कथा के अनुसार भी [illegible] आदिम दशा में पशुओं के समान कामना को पूर्ण करते थे। महर्षि उद्दालक[1] का श्वेतकेतु नामक पुत्र था। एक बार उद्दालक के पास आकर किसी बूढ़े ब्राह्मण ने कहा—मैं बूढ़ा हो गया हूँ। स्त्री न होने से पुत्र उत्पन्न करके पितृऋण से मुक्त नहीं हुआ। तेरी पत्नी पुत्र से युक्त है। मैं इसे लिये जाता हूँ। मुझे पुत्र [illegible] यह कहकर बूढ़े ब्राह्मण ने स्त्री का हाथ पकड़ कर कहा—आओ चलें। श्वेतकेतु ने क्रोध से कहा—[illegible] माता को छोड़। तेरे लिए भी वह माता के समान है। बूढ़े ब्राह्मण ने कहा—श्वेतकेतु! मैं वृद्ध हूँ। युवती कन्या कौन देगा? तेरा पिता तुमसे [illegible] हो चुका है। मैं एक संतान से प्रसन्न होकर तेरी माता को लौटा दूँगा। इस वचन से श्वेतकेतु [illegible] लज्जा और क्रोध से भर गया। पिता ने को समझाया कि क्रोध मत करो, यह सनातन धर्म है। सब वर्णों की स्त्रियाँ गौओं के समान [illegible]

[1] महाभारत १२८ अध्याय, १२-४५ श्लोक।

तब ऋषि-पुत्र ने मनुष्यों के लिए मर्यादा बाँध दी। अब से जो नारी पति का त्याग करेगी उसे घोर पाप होगा।

विवाह चाहे पशु-सदृश काम-भोग का ही परिणाम हो, पर यह कथा विश्वासयोग्य नहीं है। यह कुछ कहती है और घटना कुछ समझाती है। अप्पय दीक्षित 'न्यायरत्नामणि' में लिखते हैं—'श्वेतकेतु[1] की आख्यायिका अर्थवाद है। पाण्डु किसी पुरुष का सम्बन्ध कराके कुन्ती से सन्तान उत्पन्न कराना चाहता था, इसके लिए उसने आख्यायिका की कल्पना कराके पति से भिन्न पुरुष के सम्बन्ध में पाप-बुद्धि दूर कर दी। पशु-वृत्ति का प्रचार होता तो श्वेतकेतु क्रोध क्यों करता?'

और बूढ़े ब्राह्मण को पितृ-ऋण की चिन्ता क्यों हुई? उसने उद्दालक की पत्नी को कुल-शील से युक्त कैसे समझा। पशु सी दशा में भोग-चिन्ता होती है, पुत्र की नहीं। कर्तव्य समझकर समाज की उपकारक संतान को वही उत्पन्न करते हैं जो विवाह की पवित्र मर्यादा में रहते हैं। कुल भी तभी बनते हैं जब विवाह-मर्यादा का पालन कई पीढ़ियों तक होता रहे। मर्यादा-लोप के डर से अर्जुन ने कृष्ण से कहा था—स्त्रियों के दूषित होने पर वर्ण-संकर उत्पन्न होते हैं, कुल-धर्म नष्ट हो जाते हैं, कोई पिंडोदक देनेवाला नहीं रहता। 'पिण्डोदक' का कुछ अर्थ समझिए, चाहे मृत-पितरों का तर्पण, चाहे जीवितों को अन्न-दान, पिता-पुत्र की भावना न रहने पर कोई किसी को अन्न-जल नहीं देगा। जीते-जी इस दशा के होने पर मरे हुए को कौन पूछेगा?

> कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः सनातनाः।
> धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नमधर्मोऽभिभवत्युत ॥४०॥
> अधर्माभिभवात्कृष्ण प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः।
> स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसङ्करः ॥४१॥
> संकरो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च।
> पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिण्डोदकक्रियाः ॥४२॥
>
> (भगवद्गीता १ अ०)

महाभारत में कल्पित उपाख्यान न हों सो बात भी नहीं है। धर्म में श्रद्धा और अधर्म में घृणा उत्पन्न करने के लिए उसमें नाना आख्यानों की रचना की गई है। भट्टपाद कुमारिल 'तन्त्रवार्तिक' में लिखते हैं[1]—'वेदों में विधिवाक्य शुभकर्म में प्रवृत्ति कराते हैं और निषेधवाक्य अशुभकर्म से निवृत्त करते हैं। अर्थवादवाक्य स्तुति-निन्दा करके उसी के लिए रुचि बढ़ाते हैं। महाभारत आदि में भी इस प्रकार के अर्थवादवाक्य हैं। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति और अधर्म, अनर्थ, दुःख का त्याग करने के लिए महाभारत का पढ़ना चारों वर्णों का कर्तव्य है। दान, राजधर्म, मोक्ष-धर्म आदि में कुछ विधिवाक्य हैं, कुछ अर्थवाद। अर्थवादों में कुछ तो परकृति-रूप होते हैं, जिनमें किसी पूर्ववर्ती के कर्म करने का निर्देश होता है और कुछ पशुकल्परूप जो इतिहास बतलाते हैं। सारे उपाख्यानों में तात्पर्य हो तो महाभारत के सुनाने की विधि 'श्रावयेच्चतुरो वर्णान्' व्यर्थ हो जाती है। उनका तात्पर्य स्तुति और निन्दा में होता है, इसलिए उन्हें सर्वथा सत्य नहीं समझना चाहिए। वेद की शैली का अभ्यास करके वाल्मीकि, कृष्ण-द्वैपायन आदि ने वाक्यों की रचना की है। लोगों की बुद्धि विभिन्न होती है, उनके लिए उपदेश भी विभिन्न प्रकार का ही उचित है। कई केवल विधिवाक्य से समझ जाते हैं, कुछ विधि-अर्थवाद दोनों से, कुछ अल्प, और कुछ प्रचुर अर्थवाद से? समझाना सभी को हुआ, सो एक ही ढङ्ग से नहीं हो सकता। कई विधि-निषेध श्रुति-मूलक हैं, कुछ अर्थ, सुख आदि के विषय में लोकमूलक हैं। अर्थवाद भी कुछ वैदिक हैं और कुछ लौकिक। कुछ एक काव्य की तरह कल्पित हैं। सब का प्रयोजन है विधिवाक्य के अर्थ की स्तुति, अतः सभी प्रमाण हैं'।

कुछ भी हो, आदिकाल में मनुष्य विवाह करते हों या न करते हों, स्वभाव से मनुष्य को गम्य-अगम्य का ज्ञान नहीं होता। माता-पिता के उपदेश, लोकव्यवहार और श्रुति-स्मृति के पढ़ने-सुनने से ये भावनायें प्रकट होती

1 न्या० म०—१ अध्याय ३ पाद ३१ सूत्र। पृ० २२५

1 तं० वा० पृ० १६-१७।

हैं। बीज से अङ्कुर, पत्र, शाखा, पुष्प आदि की तरह पशु-तुल्य काम-भोग का विवाह तक क्रमिक परिणाम ठीक-ठीक भारतीय संस्कृत-ग्रन्थों के अनुसार नहीं कहा जा सकता, कल्पना की जा सकती है। श्रुति-स्मृति में विवाह के पूर्वकाल की दशा नहीं मिलती।

पशु-तुल्य काम-भोग के समान विवाह-मर्यादा भी नैसर्गिक है। जब हम जड़ प्रकृति के स्वच्छन्द प्रवाह को बाढ़ की तरह उजड़ने-बसने के परिणाम की चिन्ता से रहित बढ़ते देखकर नैसर्गिक कहते हैं तब चेतन को न भूलना चाहिए। जड़-चेतन मूल से दो हैं, स्वभाव भी दो होंगे। पहले चाहे चेतन अपने आपको जड़प्रकृति से भिन्न स्वभाव का न समझे, पर अन्त में अवश्य समझता है। जो आरम्भ में हो वही प्राकृतिक है, इसे प्रकृति भी नहीं मानती। बीज, अङ्कुर, वृक्ष सब प्राकृतिक हैं। भूमि पर उगी हुई घास जितनी नैसर्गिक है, उतना ही गाय के पेट में जाकर स्तनों से दूध बनकर निकलना भी। प्रकृति के समान ही पुरुष के आदिम-अन्तिम कार्य रूप-रंग में विलक्षण होते हैं। प्रकृति क्रियाशील है, चेतन क्रिया के साथ ज्ञानशील भी है। पानी केले के पत्ते पर गिरकर मोती की तरह चमके या नींव के मूल में गिरकर कड़वा हो जाय या आम में मिलकर मीठा हो जाय। जो भी हो सकता हो हो जाय, प्रकृति कुछ नहीं कहेगी, पर चेतन जो हो सकता है वही नहीं होने देगा। उसे होता है अनुभव। जो अनुकूल प्रतीत होता है उसे होने देता है, जो प्रतिकूल प्रतीत होता है उसे नहीं होने देता। प्रकृति अपने स्वभाव पर चलती है। पुरुष जहाँ बाधा देखता है वहाँ रोकता है। बिना प्रतिबन्ध के पुरुष नहीं रह सकता। यदि कहीं प्रकृति के संपर्क से बच सकता तो पुरुष चुपचाप प्रकृति को चलने देता। पर प्रकृति पुरुष को छूटने नहीं देती। चेतन जीव जल, स्थल और व्योम का विहारी बनकर प्रकृति के विविध विकारों का उपभोग करता रहता है। प्रकृति के अक्षय कोष से नाना शरीर लेकर इन्द्रियों को तृप्त करता है। खाने-पीने के सुख की अपेक्षा काम-सुख में जीव की सदा से आसक्ति रही है। मनुष्य ने पशु-तुल्य काम-भोग में मारकाट देखकर उससे बचने के लिए उपाय निकाला। आवश्यकता होने पर मनुष्य आविष्कार कर लेता है। खुली चेष्टा की मर्यादा बनाई। कामवासना ... होगई और शान्ति भी छाई रही। प्रतिकूल प्रकृति अनुकूल हो गई। मर्यादा नई है, पर अनुकूल है। ... बढ़ने के साथ नवीनता भी बढ़ती है और ... साथ अनुकूलता बढ़ती है। खरादने पर मणि ... जायगी, उतनी लम्बी-चौड़ी न रहेगी, पर सुडौल ... चमकेगी पहले से कहीं बढ़कर। चेतना प्र... विकार को रोक नहीं सकती, मार्ग बदल देती है। ... जब उखाड़ती-डुबोती बढ़ती है तब स्थान स्थान ... बाँध कर उसकी दिशा को निश्चित कर देते हैं। ... लहरें डर नहीं आनन्द का संचार करती हैं। ... सना भी संहारकारिणी थी, विवाह में बँध ... मूल बन गई।

अन्य प्राणी चेतना के अत्यन्त मन्द होने ... की अनियंत्रित गति के अनुसार चलते रहे, ... पीछे प्रकृति को नहीं चला सके। मनुष्य ... के समान अभ्यास से चेतना को उज्ज्वल करता ... मनुष्यों में जिनकी मति अत्यन्त तीव्र है, ... संकेत पर चलती है। जिनकी चेतना कम है ... प्रकृति पर अधिकार भी कम है। यदि कहीं ... चेतन होती, उसे भी समझ-बूझ होती, तो वह ... कुछ हो सकता है वही न होने देती। वह भी ... उचित स्थान पर रख सजाती, हर एक शब्द को ... न पड़ने देती, मृदु और तीव्र की परख करती, ... अच्छा न लगता तो दूसरा देखती। रुचि ... कुछ कराती। वह न करती तो भी विवश ... करना पड़ता।

प्रकृति का विकार सुख-दुःख दोनों है ... अवस्था-भेद से कभी सुख की मात्रा बढ़ती है, ... की। अधिकाधिक आनन्द लेने के लिए प्र... का त्याग करना ही पड़ता है। पशु-वृत्ति में ... और दुख अधिक था। विवाह में इसके विप... सुख के स्वरूप में कोई अन्तर नहीं आया।

को भी काम-सुख पहले की तरह होता है। काम-भोग की चिर सहचर लालसा विवाह हो जाने पर प्रकृति के प्रतिकूल नहीं बन जाती। गतिशील प्रकृति कोई कराये तो उसके अनुसार गति करती है, नहीं तो अपने स्वभाव के अनुसार। पानी अपने आप मार्ग बना लेता है और किसान नाली बनाकर खेत में ले जाय तो वहाँ चला जाता है। खेत में जाना अप्राकृतिक नहीं है। विवाह भी इसी प्रकार प्राकृतिक है।

और अब तो मनुष्य विवाहमय है। न जाने कब वह पशु-दशा विलुप्त हो गई थी। उस अबोध शैशव से मनुष्य-समाज बुढ़ापे तक ही नहीं आया, उसके जन्म-जन्मान्तर बीत चुके हैं। तब से अब तक सब कुछ बदल चुका है। विवाह की शान्ति में रहकर शरीर के नहीं आत्मा के भी समग्र सुख पा लिये हैं। पशु-दशा में रहकर न अपना हित सोचा जा सकता था, न दूसरे का। उस दशा में हर एक अपना सुख देखता था, छीना-झपटी में कोई भी सुखी नहीं रह सकता था। विवाहित होकर अपनी संतान पर प्रेम होता है और उसे सुख देने की अभिलाषा होती है। संतान पर प्रेम करके मनुष्य-मात्र से प्रेम करने की शक्ति आने लगती है। शान्त जीवन में रहकर सुख के साधनों का विचार हो सकता है। उस आरम्भ दशा में विवाह के बिना शान्ति नहीं रह सकती थी। शान्त जीवन की उज्ज्वल आत्मा ने ही महान् ज्ञान को प्रकट किया है। काम-भोग की तीव्र लालसा को मिटाने के लिए ही विवाह की मर्यादा बनाई गई थी, पर फल उसके अनेक निकले। वे भी एक प्रकार के नहीं ऐसे अनेक प्रकार के जो सोचे भी नहीं गये थे। विवाहित होकर मनुष्य का ज्ञान ऐसा चमका कि नक्षत्र, चन्द्र, सूर्य सब मन्द हो गये। अतीत अनागत, वर्तमान प्रकाशमान हो गये। दिन-रात एक-सा मधुर आलोक बरसने लगा।

पशु स्त्री से प्रेम करते हैं, बहुत करते हैं। बरसाती नाले की तरह वह प्रेम वेग से गरजता हुआ बढ़ता है, पर कुछ देर में सूख जाता है। पति-पत्नी के जीवन में मधुर रागनी बजती रहती है। अपार प्रेम उनके मानस में लहराता रहता है; प्रतिक्षण नया उत्सव होता है। क्षणिक प्रेम में परिपाक नहीं हो सकता। यों तो मनुष्य के संग में या घटना-वश स्वयं ही एक स्थान में रहकर पशु भी चिर सहचर बन जाते हैं, वियोग में परस्पर अधीर हो उठते हैं, पर तभी तक जब तक कोई बीच में नहीं आ जाता। पूर्व-प्रेम भूल जाते हैं, न भूलने पर भी नई आसक्ति में रत्ती भर नहीं झिझकते। पूर्व-प्रेम के स्मरण होने पर भी वेदना से आहत होकर नई लालसा नहीं छोड़ते।

पावन वत्सलता तो है ही विवाह का फल। पशुओं में भी माता का स्नेह होता है, पर उसे विकृत होते देर नहीं लगती। गौ बछड़े का पल भर वियोग नहीं सहती। शरीर चाटते चाटते नहीं थकती। चिड़िया दाने चुन चुनकर बच्चे को खिलाती है। पूरी तरह पंख न निकलने पर साथ लिये फिरती है। मुर्ग़ी पंखों के नीचे रख कर बच्चों को सर्दी से बचाती है। मोहवश बँदरिया मरे बच्चे को घसीटती फिरती है। मा कहने में कितनी मिठास है, कितनी पवित्रता है? मा की स्निग्ध दृष्टि, स्तनों की निर्मल दुग्ध-धारा और बच्चे के अधर पर खेलती मुसकान एक अपूर्व त्रिवेणी है। कुमार हो, प्रौढ़ हो, मा के शीतल हस्त का स्पर्श चन्दन की तरह सकल संताप हर लेता है। भाई-बहन भी भाई-बहन ही होते हैं। परस्पर मिलकर हँसना-खेलना, धूल उड़ाना जीवन भर नहीं भूलता।

पशुओं का वात्सल्य माधुर्य के साथ क्रूरता से भी भरा है। चिड़िया कीड़े-मकोड़े मार कर बच्चे का पेट भरती है। बिल्ली अपने बच्चों को कोमल से कोमल स्थान पर लिटाती है और चूहों पर झपटते दया का नाम नहीं लेती? गाय अपने बच्चे के लिए किसी के बछड़े को मारती नहीं तो प्यार भी नहीं करती और दुःखी हो तो व्याकुल भी नहीं होती। वह हृदय क्या जो अपने बच्चे की तरह दूसरे बच्चे के रोने पर कातर न हो उठे, किसी भोले शिशु को मुसकराते देखकर खिल न उठे। माननीय मातायें दूसरे शिशु से प्रसन्न न हों तो पर-पीड़ा से विचलित अवश्य हो जाती हैं। किसी कठोर को

पराये बच्चे का विलाप न भी कम्पित करे, पर कोई भी दूसरे के बच्चे को यों ही बुरा-भला नहीं कहती ?

विवाह ने मनुष्य को पवित्र बना दिया है। पावन-प्रेम का शैल जितना ऊँचा उठता है, उतना ही कामना का प्रचण्ड अंधड़ मन्द होता जाता है। भारतीय आर्यजनों में मा-बहन के समान मामी, चाची, ताई, मौसी और उनकी पुत्रियाँ भी मा-बहन हैं। पवित्रता से आलोड़ित प्रेम-जल स्निग्ध बिजली को प्रकट करता है। वह आँखों से निकलकर जहाँ फैलती है, तम चीरती चली जाती है, फिर रज से दूषित नहीं होती। सगे बन्धुओं के तार तक ही न रहकर मनुष्य-मात्र में पिता-पुत्री मा-बेटी और भाई-बहन को प्रकाशित करती है। सीमा संकुचित हो तो पवित्रता तरु-शाखा की तरह फैलने नहीं पाती, फैले तो सीमा टूटने लगती है। सीमा का टूटना ही शुभ है, नहीं तो गढ़े के बन्द पानी की दोष से नहीं बच सकते। मामा, चाचा आदि की से विवाह हो सकता हो तो राम के उत्पात से बचने स्थान कम हो जाता है। पल भर में चिनगारी कर एकाएक अट्टालिका को विशाल ज्वाला से वाली आग की तरह अकस्मात् जहाँ उपद्रव बढ़ने आशङ्का हो वहाँ पहले से ही सावधान रहना चाहिए कौन जानता है, क्षण का आघात भूकम्प के समान आकर चूल चूल हिला दे। जो अपनी मा-बहन को देख शान्ति पाता है वह पराई बहू-बेटियों को मा-बहन मान सकता है सही, पर दूरदर्शी हो तब न। जो अपने की वस्तु को अच्छी तरह देख नहीं सकता वह दूर ही नहीं सकेगा।

—ईश्वरचन्द्र

# संसार की आर्थिक दुरवस्था

[ इस समय संसार की माली हालत ख़राब है। ग्रेटब्रिटेन, संयुक्त-राज्य, जर्मनी, जापान जैसे व्यवसाय-प्रधान देश तक व्यापार की मन्दगति तथा तज्जनित बेकारी की वृद्धि से आर्थिक सङ्कट में हैं। इस लेख के लेखक महोदय ने कतिपय देशों की माली हालत का सप्रमाण उल्लेख करके अपने कथन की पुष्टि की है। आशा है, पाठकों को यह लेख उपयोगी प्रतीत होगा। ]

पहली सितम्बर को योरप के हंगेरिया राज्य की राजधानी में जैसा भीषण दङ्गा हुआ, वैसा गत दस वर्षों में नहीं हुआ था। बुडापेस्ट की प्रधान सड़क पर साम्यवादी-प्रजातन्त्री नेताओं की अध्यक्षता में दस हज़ार मज़दूरों का एक बृहत् जुलूस 'रोटी और काम दो!' के नारे लगाते हुए निकला, उस जुलूस से पुलिस की मुठभेड़ होगई, जिसमें एक की मृत्यु हुई और ५० घायल होगये। इस घटना का अर्थ यह है कि हंगेरिया में बेकारी और दरिद्रता बेहद बढ़ गई है। साधारण लोगों को खाने को रोटी और पहनने को कपड़ा दुर्लभ हो गया है।

न्यूज़ीलेंड की आर्थिक अवस्था दिन प्रतिदिन गिरती ही जा रही है, अतएव वहाँ के प्रधान मन्त्री के निमन्त्रण पर अमरीका-संयुक्त-राज्य के अर्थशास्त्री सर ओटो नीमेयर वहाँ के बैंक, मुद्रा-चलन तथा विनिमय-दर की स्थिति का निरीक्षण करने तथा उसके सम्बन्ध में समुचित सलाह देने गये हैं।

'मैंचेस्टर गार्जियन' नामक प्रसिद्ध विलायती पत्र में प्रकाशित एक संवाद से मालूम होता है कि जापान में बेकारी तथा रोज़गार की बर्बादी इस क़दर बढ़ गई है कि वहाँ भी सरकार की सहायता से 'स्वदेशी वस्तुओं का उपयोग करो' के सिद्धान्त के प्रचार का प्रयास आरम्भ किया गया है और विदेशी माल के बहिष्कार की चेष्टा की जा रही है। इससे प्रमाणित होता है कि जापान की आर्थिक दशा बुरी है तथा उसका व्यापार गिर गया है।

लन्दन के 'टाइम्स' पत्र के विशेष संवाददाता का कथन है कि चीन में साम्यवादियों या वर्गवादियों की प्रभाव-वृद्धि का कारण चीन के किसानों की दिन प्रतिदिन बढ़ती हुई दरिद्रता तथा व्यवसाय-धन्धों का पूर्ण सत्यानाश है। यदि उसकी कुछ दिनों तक ऐसी ही दशा रही तो चीन एक-दम नष्ट हो जायगा।

अमरीका के संयुक्त-राज्य की सरकारी रिपोर्ट है कि गत जुलाई से वहाँ के बेकारों की संख्या बहुत बढ़ गई है और सरकार के लाख चेष्टा करने पर भी कोई ऐसा काम निगाह में नहीं आ रहा है जिसमें बेकार काम में लगाये जा सकें और उनकी रोटी का सवाल हल हो। यद्यपि निश्चित आँकड़े नहीं मालूम हैं तो भी वहाँ सरकार के कथनानुसार ५०,००,००० आदमी बेकार हैं। राष्ट्र-परिषद् की भाँति 'बेकारों की अन्तर्राष्ट्रीय परिषद्' की स्थापना का विचार किया जा रहा है। अमरीका की

'बेकार-परिषद्' के अनुसार वहाँ इस समय ६६,००,००० बेकार हैं।

३० अगस्त को शिमला में 'अखिल भारतीय अर्थ-मन्त्रियों' के सम्मेलन के अध्यक्ष-पद से भारत के अर्थ-मन्त्री सर जार्ज शुस्टर ने अपने महत्त्वपूर्ण व्याख्यान में बतलाया था कि 'दिन प्रतिदिन संसार की माली हालत गिरती जा रही है। सभी वस्तुओं का मूल्य गिर गया है और गत वर्ष के मूल्य में और इस समय के मूल्य में महान् अन्तर है। इँग्लेंड की स्थिति बहुत ख़राब है। संयुक्त-राज्य की उससे भी ज़्यादा बुरी है। जर्मनी में बेकारों की संख्या २७,००,००० पहुँच गई है। किन्तु सबसे अधिक बुरी दशा भारत की है। इसका कारण यह है कि योरप के गिरने से सबसे गहरा धक्का कृषि-प्रधान देशों को लगा है। कनाडा, ब्रैज़िल, आस्ट्रेलिया, सबकी हालत बहुत ख़राब है।'

शुस्टर साहब के कथन से यह प्रकट होता है कि इस समय न केवल भारत में, किन्तु संसार के प्रत्येक कोने में व्यापार की दशा बहुत ख़राब है। मिस्र, कनाडा, ब्रैज़िल तथा अमरीका का संयुक्त-राज्य आदि में वस्तुओं के मूल्य का नियन्त्रण करने के लिए संस्थायें क़ायम हैं, तो भी उनकी दशा ख़राब होती जा रही है। उन संस्थाओं से भी कुछ करते-धरते नहीं बन रहा है।

## ब्रिटेन में घोर अशान्ति

ब्रिटेन का जुलाई १९३० का प्रवास का व्यापार ही लीजिए। गत वर्ष के इसी मास से तुलना की जाय तो १,७०,७१,८७३ पौंड (एक पौंड साढ़े तेरह रुपया का) का निर्यात और ८३,१४,२३१ पौंड का आयात कम हो गया। सबसे अधिक कमी रुई के सूत और कपड़े के निर्यात में हुई है, अर्थात् ५६,१५,५३८ पौंड की।

यह तो एक मास की संख्या है। ब्रिटेन के दिन प्रतिदिन घटते व्यापार तथा बढ़ते दारिद्र्य की चिकित्सा करने के लिए वहाँ के बैङ्कवालों ने यह प्रस्ताव किया है कि चुंगी का कर बढ़ा दिया जाय। इससे बाहर का माल न आ सकेगा और गृह में उत्पन्न माल की खपत होगी। किन्तु सौदागरों और माल तैयार करने [...] की 'राष्ट्रीय सभा' ने एक आवेदन-पत्र प्रकाशित [...] इस निश्चय पर असन्तोष प्रकट किया है। [...] कथन है कि इस व्यर्थ के बन्धन से कच्चा माल तथा [...] से आनेवाला ग़ल्ला महँगा हो जायगा। अतः [...] ग़रीबी के ज़माने में और भी परेशानी होगी। इस आवेदन-पत्र पर फ़ैलोडन के वायकाउँट ग्रे साहब तथा [...] ब्रैडबरी सदृश प्रमुख व्यापारियों के हस्ताक्षर हैं।

अधिकांश लोगों का विश्वास है कि इँग्लेंड [...] मज़दूर-मन्त्रिमण्डल का शीघ्र पतन होगा। [...] विलायती पत्रों में यह संवाद प्रकाशित हुआ [...] दिन प्रतिदिन बेकारी की बढ़ती के कारण [...] लायड जार्ज तथा मज़दूर-मन्त्री मिस्टर मैकडोनल्ड [...] अनबन होगई है, यद्यपि कुछ दिनों के बाद एसो[...] एटेड प्रेस ने अधिकार-पूर्वक इस समाचार का [...] किया है। चाहे जो हो, यह तो व्यापार के अंग्रेज़ी [...] ही है कि चीन, भारत, जापान सरीखे बाज़ार [...] जाने के कारण इँग्लेंड को इतना घाटा हो रहा [...] उससे बढ़नेवाली बेकारी से वहाँ की साम्यवादी [...] विशेषरूप से चिन्तित है।

बेकारी की समस्या को हल करने के लिए ही [...] ब्रिटिश-मन्त्री जे० एच० टामस ने—जो अपने प्रयत्न [...] असफल हो जाने से दूसरे पद पर कर दिये गये हैं—[...] हाल में एक व्याख्यान में कहा है—'सम्पूर्ण देश [...] निराशा छा रही है। आदमी दिन प्रतिदिन [...] होते जा रहे हैं और उनका विश्वास छूट रहा है। [...] होशियार कर देना चाहता हूँ कि इस प्रकार की [...] बड़ी हानिकर होती है।' यह है चेतावनी मज़दूर [...] के एक स्तम्भ की जो बेकारी की समस्या हल करने [...] असफल हुए हैं। ब्रिटेन का यह समय उसके [...] गम्भीर चिन्ता का विषय है!

लन्दन के 'सन्डे-एक्सप्रेस' का कथन है कि [...] अगस्त को बेकारी की समस्या पर विचार करने [...] ब्रिटिश-मज़दूर-दल तथा लिबरल-दल के नेताओं की [...] भी पूर्ण असफल रही और बेकारी का इलाज न [...]

आ सका। इसी समय लन्दन के 'फ़िनान्सल टाइम्स' के मैंचेस्टर के संवाददाता ने एक संवाद प्रकाशित कराया है, जिससे पता चलता है कि मैंचेस्टर की मिलों की क़ीमत लगानेवाली प्रसिद्ध कम्पनी 'मेसर्स एयरे एन्ट्वीस्टल कम्पनी' का एक प्रमुख प्रतिनिधि बम्बई आ रहा है और लङ्काशायर की तरह यहाँ भी क़ीमत लगाकर कम से कम ५० मिलें एक साथ मिला दी जायँगी। इस समाचार से लङ्काशायर आदि के मिल-व्यवसायी बहुत परेशान हैं। उनका कहना है कि यह समाचार इस बात का सबूत है कि अब भारतीय डटकर विदेशी व्यवसाय की प्रतिस्पर्द्धा करेंगे।

## संसार की माली हालत

राष्ट्र-परिषद् के आर्थिक विभाग ने एक रिपोर्ट प्रकाशित की है, जिससे संसार की व्यापारिक स्थिति का पूर्ण अन्दाज़ लगता है। रिपोर्ट के अनुसार—

'१९२८ में संसार की जन-संख्या १९१३ की संख्या से दस प्रतिशत अधिक थी। खाद्य पदार्थ तथा कच्चे माल की उत्पत्ति २५ प्रतिशत और सांसारिक व्यापार २० प्रतिशत अधिक था। सन् १९२६ से १९२८ के बीच में ३,५०,००,००० जन-संख्या बढ़ गई, यानी प्रतिवर्ष एक प्रतिशत बढ़ती हुई। सबसे अधिक अनुपातिक वृद्धि दक्षिण-अमेरिका में हुई।

कच्चे माल की उत्पत्ति से अधिक उन्नति पक्के मालों में—तैयार माल में हुई। १९२५ से इस समय तक लोहा, फ़ौलाद, इञ्जीनियरिङ्ग, जहाज़ बनाने आदि में २५ प्रतिशत उन्नति हुई। प्राकृतिक तथा नक़ली रेशम की उत्पत्ति के कारण रुई की पैदावार तथा तैयार माल में कमी हो गई। १९२५-२८ के बीच में बिजली के सामानों की उत्पत्ति एक तिहाई बढ़ गई।

'यदि पूरी जाँच की जाय तो १९२६ से योरप का अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार बढ़ता ही आया है। रूस को शामिल कर लेने से योरप में संसार में सबसे अधिक खाद्य पदार्थ की उत्पत्ति होती है। कच्चे माल में भी, दक्षिण अमेरिका को छोड़कर यही सबसे आगे है। १९२८ में अमेरिका के संयुक्त-राज्य तथा कनाडा की उत्पत्ति भी बहुत अधिक हो गई थी, पर १९२९ के अन्त से लगातार घट रही है। उधर अफ़्रीका ने १९२७-२८ में पूर्वी तथा मध्य योरप की समता करना प्रारम्भ कर दिया था।'

अन्त में रिपोर्ट स्वीकार करती है—'१९१३ से तुलना करने पर यह पता चलता है कि कच्चे माल और खाद्य पदार्थों का विशेषकर और अन्य सभी पदार्थों का मूल अधिक रहा है—ख़ासकर योरप में।'

अर्थात् १९२९ की लिखी गई रिपोर्ट से यह अनुमान होता है कि उस वर्ष लोगों की माली हालत अच्छी रहनी चाहिए, क्योंकि पैदावार अधिक थी तथा वस्तुओं का मूल्य भी अधिक था। किन्तु यह साधारण अर्थ-शास्त्र की बात है कि अधिक पैदावार के साथ अधिक मूल्य का स्थायी रहना तभी संभव है जब अधिक खपत भी होती रहे। किन्तु साधारण घटनाओं से ही यह अनुमान लगाया जा सकता है कि खपत अधिक नहीं रह सकती! इसका भी कारण है।

ब्रिटेन का ही उदाहरण लीजिए। यार्कशायर में अपने एक सार्वजनिक व्याख्यान में अनुदार-दल के नेता मिस्टर बाल्डविन ने बतलाया था कि जब मैंने प्रधान मन्त्रित्व छोड़ा था उस समय यहाँ ११,००,००० बेकार थे। इस समय ८,३६,००० बेकार और बढ़ गये हैं। अकेले यार्कशायर में ९२ प्रतिशत वृद्धि हुई है! 'व्यापारी बोर्ड' का हवाला देते हुए आपने बतलाया था कि १९३० के प्रथम ६ मास में तथा १९२९ के विगत ६ मास में ४,२४० लाख से घट कर ब्रिटिश पैदावार का निर्यात ३,७३० लाख पौंड का हो गया है। उसके स्थान पर बाहर से आनेवाला माल ३½ प्रतिशत बढ़ गया है, अर्थात् १७८० लाख से १८३०½ लाख।

ब्रिटेन अथवा संसार की आर्थिक हानि का केवल यही कारण नहीं है। इसके कई कारण बतलाये जाते हैं, जिनमें से हम दो एक का उल्लेख यहाँ करेंगे।

## भारत की आर्थिक स्थिति

भारत की आर्थिक स्थिति के विषय में कुछ लिखने की आवश्यकता नहीं है। जो है वह प्रत्यक्ष है। अगले वर्ष के इसी मास से तथा इस मास के मूल्य में—उन्हीं वस्तुओं के मूल्य में ४० प्रतिशत तक की गिरती आ गई है। सर जार्ज शुस्टर के शिमलावाले व्याख्यान के अनुसार प्रत्येक प्रान्तीय सरकार की भयङ्कर हानि हो रही है। व्यापार बहुत मन्दा पड़ गया है। दरिद्रता बढ़ती जा रही है। बम्बई-सरकार के सूचनानुसार अकेले उस प्रान्तीय सरकार को १२५ लाख का घाटा हुआ है। मध्य-प्रान्त की सरकार भी कम से कम ७५ लाख के घाटे में है। यही दशा अन्यत्र भी है। कारण चाहे जो कुछ भी हो, पर घाटा और तबाही का साम्राज्य सर्वत्र है, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

कलकत्ता के प्रसिद्ध व्यवसायी पत्र 'कैपिटल' के सम्पादक मिस्टर आर० डबल्यू० ब्रुक ने लन्दन के टाइम्स में एक लम्बा पत्र छपाया है, जिसमें आपने यह स्पष्ट लिखा है कि भारत की मौजूदा परिस्थिति ही इँग्लैंड तथा इस देश की आर्थिक बर्बादी का कारण है। आप लिखते हैं—'बेकारी को घटाने तथा ब्रिटिश उद्योग-धन्धों के पनपाने के लिए जो क़ानून बनाये गये थे वे सभी असफल निकले। अब भारत के तथा ब्रिटेन के उद्योग-धन्धों के बचाने का एक-मात्र उपाय यह है कि उसे शासन-सुधा[र] दिया जय।' आपके अनुसार आर्थिक बर्बादी का [कारण] यह है कि अगले वर्ष जून मास में जो मूल्य वस्तुओं [का] था वह अब बहुत घट गया है! ये तो उन मिस्टर [ब्रुक] के विचार हैं जो अनुदार विचार के कहे जाते हैं।

## भारत का महत्त्व

इस सांसारिक व्याधि के विषय में सर जार्ज शु[स्टर] अपने व्याख्यान में कहते हैं—

'सांसारिक अवनति का कारण यह है कि चीन [और] भारत में अत्यन्त राजनैतिक उथल-पुथल मची हुई है। चूँकि संसार की आधी आबादी इन्हीं देशों में है, [इसलिए] उसका संसार पर प्रभाव पड़ रहा है। उदाहरणार्थ [इस] वर्ष पेरिस में अन्तर्राष्ट्रीय रुई-महासभा का अधि[वेशन] होनेवाला है। इसमें रुई के व्यवसाय में अवनति [के] कारणों पर विचार किया जायगा। इस सम्मेलन के [कार्य-]क्रम में विचारणीय विषयों में सबसे महत्त्व-पूर्ण स्थान चीन के गृह-युद्ध तथा भारतीय अशान्ति को दिया [गया] है। अतएव इसमें कोई सन्देह नहीं कि यदि भारत [में] पुनः साधारण स्थिति उत्पन्न हो जाय तो उससे रुई आदि पर पूरा प्रभाव पड़ेगा। संसार का [बड़ा] कल्याण होगा।'

—परिपूर्णानन्द वर्मा

# अनुरोध

( १ )

मुझे सुनाना हो तो प्रियतम,
गाओ ऐसा गान;
हो जाये अनुभूति जगत की,
मेरे तन का प्राण।

( २ )

आहत के व्रण-बन्धन से
—छटपटा उठे यह देह;
रोगी के क्रन्दन से छलछल,
तरल बह चले स्नेह।

( ३ )

दुखिया के दुख में कातर
मिल जाये जीवन-स्रोत,
निरवलम्ब का अवलम्बन हो,
इन स्वासों का पोत।

—शम्भुदयाल सक्सेना

# बदरी-केदार-यात्रा

**'संसारतापतप्तानां भेषजं तीर्थमुत्तमम्'**

अत्यन्त प्राचीन काल से ही भारतवासियों में तीर्थाटन करने की प्रथा प्रचलित है। प्राचीन संस्कृत-ग्रन्थ तीर्थों के महत्त्वपूर्ण वर्णनों से भरे पड़े हैं। इस सम्बन्ध में महाभारत में भीष्म और पुलस्त्य का एक सुन्दर संवाद है। तीर्थों का महत्त्व बतलाते हुए पुलस्त्य ने भीष्म से कहा—हे भरत-श्रेष्ठ, ऋषियों की परमगति तीर्थ-यात्रा ही है। दरिद्र पुरुष भी जिसको करके यज्ञों का पवित्र फल पा सकते हैं वह ऋषियों की परमगुप्त तीर्थयात्रा यज्ञों से भी बढ़कर मानी गई है।

शुद्धहृदय, आस्तिक, वेदज्ञ और शास्त्रदर्शी साधुपुरुष तीर्थयात्रा करते हैं। जिस व्यक्ति के हाथ, पैर, मन, विद्या, तप और कीर्ति सुसंयत है वही तीर्थयात्रा का फल पाता है। जो व्यक्ति दम्भ आदि से बचा रहता है, अधिक उद्योग नहीं करता, थोड़ा आहार करता है, जितेन्द्रिय होकर सब पातकों से बचा रहता है, क्रोध-रहित है, सत्यवादी और दृढ़प्रतिज्ञ होकर सब प्राणियों से वैसाही व्यवहार करता है जैसा कि वह अपने साथ औरों से चाहता है, वह तीर्थयात्रा का फल पा सकता है। सज्जन पुरुषों ने देह के साथ पैरों का होना तब ही सार्थक माना है जब उससे पवित्र तीर्थों का पर्यटन हो। इसी ध्येय को सामने रखकर हमारे पूर्वज सदैव पवित्र-हृदय होकर पुण्यतीर्थों की यात्रा करते रहे हैं और आज भी लाखों भारत-सन्तान भिन्न-भिन्न तीर्थों की यात्रा सदैव करते रहते हैं।

भारतवर्ष की चारों दिशाओं में चार-धाम (… स्थान) स्थापित हैं। जगद्गुरु शंकराचार्य … वैदिक धर्म की रक्षा और प्रचार के हेतु से … चारों दिशाओं में इन तीर्थों के निकट ही स्थापित कि…

उक्त चार धाम की यात्रा में से तीन (… श्रीजगन्नाथजी, पश्चिम में भगवान् श्रीकृष्ण की द्वारका … और दक्षिण में मर्यादापुरुषोत्तम रामचन्द्रजी … स्थापित रामेश्वरम् तक रेल का मार्ग होजाने से इन) यात्रायें तो सुगम होगई हैं, किन्तु उत्तर-दिशा … में श्रीबदरीकाश्रम जाने को अब भी चार सौ मील … चलना पड़ता है। तो भी पहले की अपेक्षा यह … मार्ग भी अब बहुत-कुछ सुगम होगया है। … यात्रियों को पहाड़ों पर चढ़ना-उतरना तथा … चलना अब भी पड़ता है, तथापि मार्ग में … प्रकार की सुविधायें होगई हैं। पहाड़ों के किनारे … कर बनाई हुई सड़कें संकीर्ण होने पर भी साफ़ … हैं और देखने में अत्यन्त रमणीक प्रतीत होती हैं।

सारे मार्ग में एक एक दो दो मील पर … (ठहरने की जगह) बनी हुई हैं। मुख्य मुख्य … पर धर्मशालायें बनी एवं क्षेत्र खुले हुए हैं। प्रत्येक … या बारह मील पर सरकारी डाक-बँगले बने हैं। … जगह जलप्रपात अथवा नल-द्वारा जल का प्रबन्ध है … पोस्टआफ़िस तो छोटी चट्टियों को छोड़कर सब …

* जहाँ जल दूर है वहाँ टंकी बनाकर … हज़ारों फ़ुट दूर तक जल पहुँचाने का प्रबन्ध … गया है।

हैं। ख़ास-ख़ास जगह तार-घर भी बने हुए हैं। कई जगह अस्पताल, पुलिस आदि का भी प्रबन्ध है।

सारा मार्ग पार्वतीय दृश्यों से पूर्ण अत्यन्त रमणीक एवं स्वास्थ्यप्रद है। एक ओर हज़ारों हाथ नीचे कल कल करती हुई गङ्गाजी बह रही हैं, दूसरी ओर अनेक औषधीय वनस्पतियों से परिपूर्ण गगनचुम्बी पर्वतमाला खड़ी है। जगह जगह पहाड़ों का उदर चीरकर बहनेवाले जल के झरने अत्यन्त मनोहर प्रतीत होते हैं। पर्वतों में ऊँचे-नीचे किनारे काटकर बनाई गई क्यारियों में बोई हुई खेती और उनके निकट ही बसे हुए पहाड़ी कृषकों के मकान बड़े सुन्दर लगते हैं। ऊँचे पर्वतों पर खड़े होकर देखने से नीचे बोई हुई चावल की खेती मनोहर हरे मखमल के गलीचे सी जान पड़ती है। आकाश को स्पर्श करने की कोशिश करते हुए ऊँचे ऊँचे चीड़, देवदार और बाँझ के वृक्ष अपनी भीनी भीनी सुगन्ध से यात्रियों के मन मोहित कर लेते हैं। अर्थात् सारा मार्ग स्वर्गीय दृश्यों से परिपूर्ण है। केदार-खंड में कहा भी है—

"गङ्गा-द्वारोत्तरं विप्र स्वर्गभूमिः स्मृता बुधैः"।

केदारखंड एवं बदरिकाश्रम की सम्पूर्ण यात्रा करनेवाले यात्री वहाँ के चारों तीर्थों (यमुनोत्तरी, गङ्गोत्तरी, केदारनाथ और बदरीनारायण) की यात्रा करते हैं। इस यात्रा में क़रीब छः सौ मील पैदल चलना पड़ता है। किन्तु यमुनोत्तरी-गङ्गोत्तरी का मार्ग अधिक कठिन होने से, अधिकांश यात्री सीधे केदारनाथ और बदरीनाथ ही जाते हैं। हम भी केदारनाथ-बदरीनाथ ही गये थे। इस यात्रा में क़रीब चार सौ मील चलना पड़ता है। हरिद्वार से केदारनाथ १०१ मील, केदारनाथ से बदरीनाथ १४९ मील और बदरीनाथ से रामनगर का रेल-स्टेशन १६४ मील, कुल ४१४ मील की यह यात्रा है, जिसमें हरिद्वार से हृषिकेश (चौदह मील) तक मोटर मिल जाता है। वापसी में यदि रानीखेत होकर आये तो १०१ + १४९ = २५० + १२९ (= ३७९) मील बदरीनाथ से रानीखेत तक ३७९ मील की यात्रा करनी पड़ती है और इसमें मोटर-यात्रा के १४ मील निकाल देने से यह ३६५ मील की पैदल-यात्रा रह जाती है। रानीखेत से काठगोदाम (५४ मील) तक मोटर मिलता है। यह मार्ग भी अत्यन्त रमणीक पहाड़ों के उतार-चढ़ाव का है।

केदारनाथ-बदरिकाश्रम के मार्ग में अनेक तीर्थ एवं पवित्र स्थान हैं। इनमें पञ्च-केदार, पञ्चबदरी, पञ्चशिला, पञ्चतीर्थ, पाँच-प्रयाग, त्रियुगीनारायण, वसुधारा आदि मुख्य हैं। उत्तरा-खण्ड की यात्रा वैशाख से प्रारम्भ होती है। अक्षय तृतीया से दीपावली तक छः महीने तक पट खुले रहते हैं। कार्तिक से वैशाख तक छः महीने (मन्दिर के बर्फ़ से ढँके रहने के कारण) केदारनाथजी की पूजा रावलजी के निवासस्थान उखी-मठ में और बदरीनाथजी की जोशीमठ (ज्योतिर्मठ) में होती रहती है।

उपर्युक्त दोनों मन्दिरों के पुजारी दक्षिणी होते हैं, इनको रावल कहते हैं। मन्दिर और पुरी पर इनका पूरा अधिकार रहता है। बदरीनाथ के रावल की आमदनी अँटका, भेट आदि द्वारा एक लाख रुपये वार्षिक से ज़्यादा है। मन्दिर का चढ़ावा इससे अलग है।

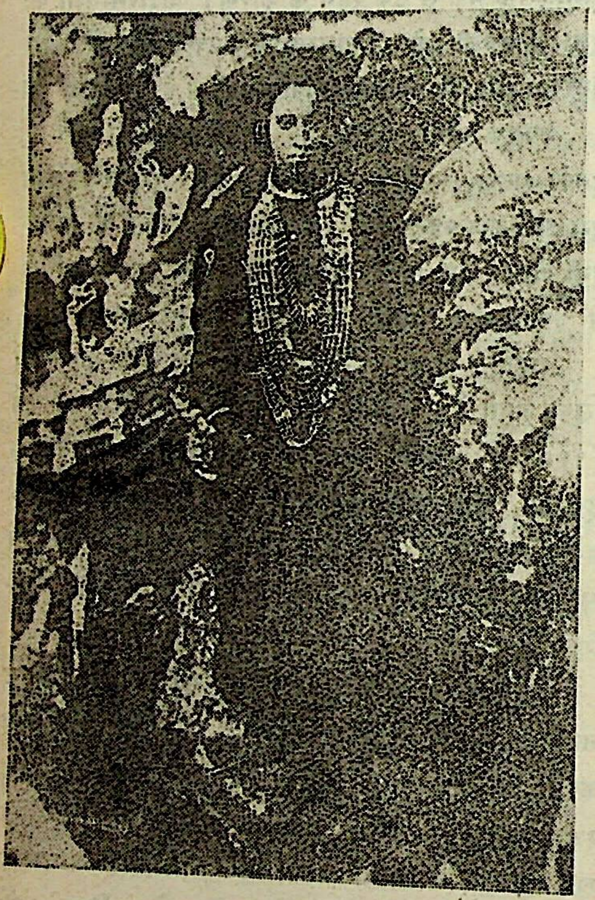
गढ़वाल-राज्य से होकर आनेवाले यात्रियों की सूची लिखी जाती है। इससे पता लगता है कि गत वर्ष (१९८६ में) पचास हज़ार से ज़्यादा यात्री आये थे। इस वर्ष इतने यात्री नहीं आये, कठिनाई से २५।३० हज़ार रहे होंगे। इस कमी का कारण पंडे लोग (जो सारे देश का भ्रमण करते हैं) देश की राजनैतिक परिस्थिति बताते हैं।

बदरिकाश्रम जानेवाले यात्रियों को विशेष सामान नहीं ले जाना चाहिए। पहनने को कुछ साधारण कपड़े, बिछौना और ओढ़ने को दो कम्बल या एक रज़ाई बस है। वैसे तो (केदारनाथ और बदरीनाथ की ख़ास पुरियों के सिवा) सारा मार्ग गर्म और साधारण (न ठंडा, न गर्म) है, फिर भी यदि ओढ़ने-बिछाने को कपड़ों की ज़रूरत पड़ती है तो यहाँ निःशुल्क कपड़े मिल जाते हैं।

केदारनाथ में ठंड अधिक पड़ती है। यहाँ यात्री एक रात्रि से ज़्यादा नहीं ठहरते। किन्तु बदरीनाथ में केदारनाथ की अपेक्षा कम सर्दी है और स्नान करने को

गरम जल का कुण्ड होने से यात्रियों को सुविधा भी रहती है। बदरीनाथ में यात्री तीन रात्रि अथवा इससे भी ज़्यादा समय तक ठहरते हैं। यहाँ खाने-पीने का सब सामान भी सुलभ है।

रास्ते में भी भोजन का सब सामान—आटा, दाल, घी, चावल, शक्कर, गुड़, आलू आदि सब जगह मिलता है। दूध तो सब जगह बहुतायत से और अच्छा



[ गढ़वाली पहाड़ी युवती—वस्त्राभूषण-सहित ]

मिलता है। भोजन बनाने के बर्तन भी दूकानदार दे देते हैं। अतः घर से यह सब कुछ लाद-लूद कर चलने की वैसी ज़रूरत नहीं है।

सामान उठाने को कुली और सवारी के लिए डंडी[1], झम्पान[2] और कंडी[3] मिलते हैं। इ प्रबन्ध हरिद्वार या हृषीकेश में कर लेना चाहिए।

यहाँ गढ़वाली और नैपाली दो प्रकार के कुली हैं। गढ़वाली कुली मैलचौरी तक और नै श्री-कोट या रानीखेत तक सामान आदि ले जाते हैं। लोग एक मन से डेढ़ मन तक का बोझा आसा ले जाते हैं, और ठहरने के स्थान पर पहुँच कर के लिए पानी भर देते हैं अथवा चौका-बर्तन क देते हैं। ये लोग बहुत ग़रीब और सीधे-सादे होते

इस वर्ष कुलियों की मज़दूरी हृषीकेश से ( यात्रा करके) श्रीकोट या रानीखेत तक चालीस रुपये के हिसाब से थी, अर्थात् हमको ४३ सेर वज़न के ४३ रुपये देने पड़े। यात्रियों के अधिक होने पर दूरी भी बढ़ जाती है। केवल खेती से निर्वा होने से बहुत से किसान भी मज़दूरी करने लग गये इस यात्रा में हरिद्वार से पैदल का पहाड़ी प्रारम्भ होता है।

हरिद्वार स्वयं एक प्रख्यात तीर्थ है। इसी 'मायापुरी' (सप्तपुरियों में से एक) भी कहते हैं। पुण्यतीर्थ में स्नान करने का बहुत महत्त्व है। रथी ने अपने वेग से पर्वत-राज हिमालय को फो सबसे पहले यहीं दर्शन दिये थे। इसी से इसको द्वार भी कहते हैं।

---

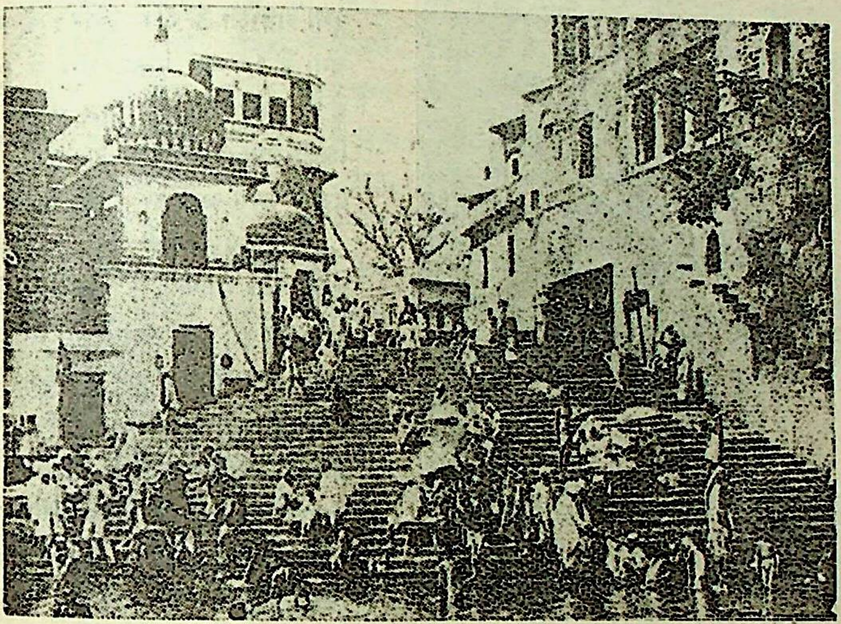
१ 'डंडी' एक लम्बी कुर्सीनुमा हलके वज़न की होती है। इसको चार आदमी लेकर चलते हैं। बैठनेवाला बड़े आराम से रहता है।

२ 'झम्पान' एक चौकोर पीढ़े सरीखा होता इसको भी चार आदमी लेकर चलते हैं। इसमें वाला पैर नहीं फैला सकता। इसकी मज़दूरी डं बराबर लगती है। इसका अब बहुत कम यात्री योग करते हैं।

३ 'कण्डी' एक टोकरा होता है। इसमें को बैठाकर एक आदमी पीठ पर लादकर ले है। इसमें सिर्फ़ एक आदमी की ज़रूरत पड़ती है।

गङ्गाद्वारे कुशावर्ते विल्वके नीलपर्वते।
स्नात्वा कनखले तीर्थे पुनर्जन्म न विद्यते॥

अर्थात् गंगाद्वार (ब्रह्मकुंड में हरि की पैड़ी पर) स्नान, कुशावर्त में श्राद्ध, विल्वकेश्वर के दर्शन और नील-धारा के संगम कनखल-तीर्थ में स्नान करनेवाले को पुनः जन्म नहीं लेना पड़ता।



[ हरिद्वार में ब्रह्मकुण्ड ( हरिजी की पैड़ी ) का चित्र ]

यहाँ शहर के बीच में श्रवणनाथ के शिव-मंदिर में चतुरानन मूर्त्ति का और कनखल में दक्षेश्वर का यात्री दर्शन करते हैं।

## भीमगोड़ा

हरिद्वार से क़रीब डेढ़ मील हृषिकेश के रास्ते में पहाड़ के किनारे पर भीमसेन का मन्दिर है। यहाँ गङ्गाजी के सदृश स्वच्छ ठंडे जल का एक कुंड भी है।

## सत्यनारायण

हरिद्वार से आठ मील सत्यनारायण-चट्टी है। यहाँ सघन मनोरम वन में भगवान् सत्यनारायण का एक मन्दिर और निर्मल जल का एक सुन्दर कुण्ड है। यह स्थान अत्यन्त रमणीक एवम् एकान्तवासियों के चित्त को शान्ति पहुँचानेवाला है। यहाँ बाबा काली कमली-वाले का क्षेत्र और औषधालय भी है।

## हृषीकेश

हरिद्वार से चौदह मील ऋषियों की प्राचीन तपो-भूमि हृषिकेश है। यहाँ गङ्गाजी एवं ऋषि-कुण्ड में स्नान करके यात्री रघुनाथजी और भरतजी के दर्शन करते हैं। यहाँ बाबा कालीकमलीवाले के क्षेत्रों का केन्द्र है। यहीं से सारे मार्ग पर की धर्मशालाओं में टिकने के लिए और सत्र में भोजन पाने के लिए चिट्ठियाँ दी जाती हैं। यहाँ एक और पञ्जाबी-सिन्धी सत्र की एक बहुत बड़ी धर्मशाला है। इसमें भी सब प्रकार का प्रबन्ध है। भरतजी के मन्दिर के निकट ही भरत-विद्यालय है। यहाँ दो वाचनालय और डाक-घर तथा तार-घर भी हैं।



[स्वामी विशुद्धानन्दजी]
(बाबा रामनाथजी)

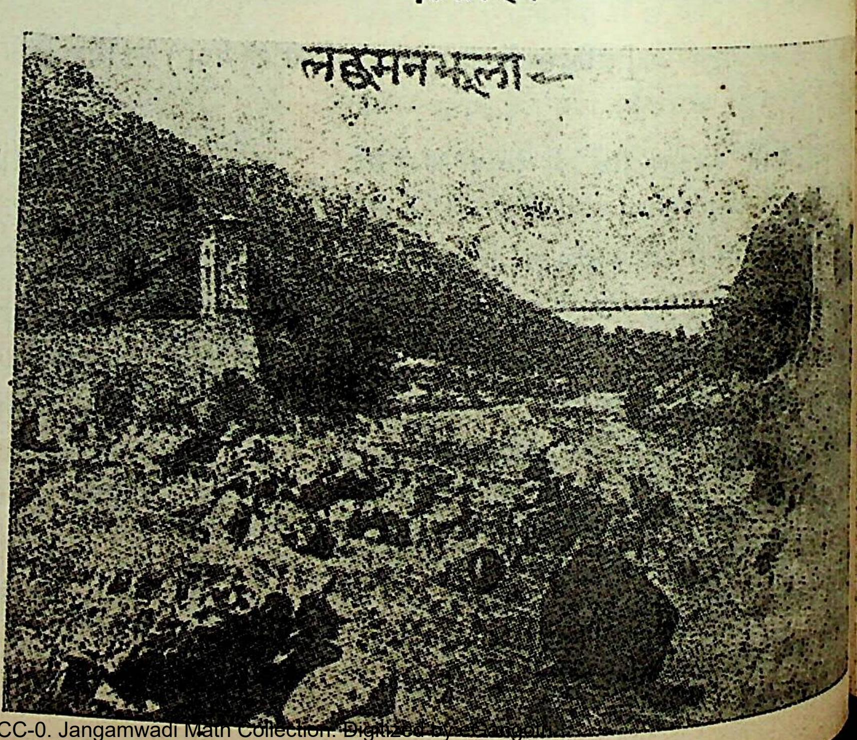
## मुनी की रेती

हृषीकेश से डेढ़ मील मुनी-रेती है। [illegible] गढ़वाल रियासत का कुली रजिस्ट्रेशन आफ़ि[illegible]

## लक्ष्मण-झूला

हृषीकेश से तीन मील लक्ष्मण-झूला है। [illegible] रथी गङ्गाजी के पार उतरने के लिए झूले [illegible] बना है। यह झूला तार के रस्सों पर बना [illegible] है। पुल पांच सौ फ़ुट लम्बा है। इसे [illegible] शिवप्रसाद सूरजमल ने अभी एक लाख [illegible] हज़ार रुपये लगाकर बनवाया है।

यहां लक्ष्मणजी का मन्दिर है। गङ्गा[illegible] दोनों ओर बस्ती है। यात्रियों के ठहरने को [illegible] शाला है। पोस्टआफ़िस भी है। एक [illegible] इन्स्पेक्शन बँगला पुल के निकट ही बना है। [illegible] सत्यसेवाश्रम, स्वर्गाश्रम आदि कई स्थान हैं। [illegible] बंगाली डाक्टर साहब संन्यास ग्रहण करके [illegible] निवास करते हैं। आप यात्रियों की चिकित्सा [illegible] निःशुल्क करते हैं। स्थान अत्यन्त रमणीय [illegible] दर्शनीय है।




[लछमन-झूला]

## गरुड़-चट्टी

लक्ष्मण-झूला से २ मील गरुड़-चट्टी है। यह स्थान बहुत सुन्दर, मार्ग सीधा अथवा मनोरञ्जक है। यहाँ गरुड़जी का मन्दिर है। यात्रा में सफलता मिलने के लिए प्रत्येक यात्री गरुड़जी को प्रणाम कर शक्ति की याचना करता है। एक सुन्दर निर्मल जल का गरुड़-कुण्ड भी मन्दिर के पास ही है। यहाँ सड़क के किनारे दोनों ओर क़रीब एक मील तक अति सुन्दर बाग़ लगा हुआ है। इसमें आम, आड़ू, केला, पपीता आदि के वृक्ष हैं। यात्रियों के ठहरने के लिए धर्मशाला अथवा सामान की दूकान भी है। यदि कोई यात्री अपनी ओर से वृक्ष लगवाना चाहे तो केले के लिए दो आना प्रति वृक्ष और बड़े वृक्ष के लिए पन्द्रह रुपये प्रति वृक्ष के हिसाब से यहाँ के प्रबन्ध-कर्ता को देने पड़ते हैं।

## व्यास-घाट

लक्ष्मण-झूला से बत्तीस मील व्यास-घाट है। यहाँ गंगाजी में नयार-नदी का सङ्गम हुआ है। इससे इसको इन्द्र-प्रयाग भी कहते हैं। यहाँ व्यासजी का एक छोटा सा मन्दिर है। कहते हैं, भगवान् व्यास ने यहाँ तपस्या की थी और यहीं बैठकर श्रीमद्भागवत को बनाया था। यहाँ गंगाजी पर एक और नयार-नदी पर दूसरा दो झूले के पुल बने हैं।

## देव-प्रयाग[1]

व्यास-घाट से नौ मील देव-प्रयाग है। यहाँ भागीरथी और अलकनन्दा का सङ्गम है। गृद्धाचल नामक त्रिकूट-पर्वत पर बसा हुआ यह नगर अत्यन्त शोभायमान प्रतीत होता है। इसके एक ओर से गंगाजी और दूसरी ओर से अलकनन्दा आकर यहाँ मिलती हैं। संगम के पास गंगा का पानी बहुत ज़्यादा उछलता है। यह बड़ा मनोहर दृश्य है। गंगा के उस पार दशरथाचल-पर्वत (जहाँ महाराज दशरथ ने ऋषि-कुमार श्रवण को बाण से मारा था) है। अलकनन्दा के इस ओर के पहाड़ को नृसिंहाचल कहते हैं। इधर भी बस्ती, बाज़ार, डाक-घर तथा तार-घर आदि हैं। अलकनन्दा के इस ओर (नृसिंहाचल पर बसा हुआ भाग) अँगरेज़ी अमलदारी में और अलकनन्दा के उस पार (गृद्धाचल पर बसा हुआ नगर) गढ़वाल-रियासत में है। यहाँ संगम में स्नान करके ब्रह्मशिला पर पिण्डदान करते हैं। यहाँ रघुनाथजी का एक विशाल मन्दिर है। कहते हैं कि इसे जगद्गुरु स्वामी शंकराचार्य ने बनवाया था। यहाँ से गङ्गोत्तरी-यमुनोत्तरी जानेवाले यात्री भागीरथी के किनारे से जाते हैं और बदरी-केदार जानेवाले अलकनन्दा के किनारे से। यात्रियों के साथ जानेवाले बदरीनाथजी के देव-प्रयागी पंडे यहीं रहते हैं। ये लोग यात्रियों से बही में लिखा-पढ़ी भी यहाँ करा लेते हैं।

## विल्व-केदार

देव-प्रयाग से पन्द्रह मील विल्व-केदार नामक स्थान में बिल्लेश्वर महादेव के दर्शन हैं। कहते हैं, किराताऽर्जुनीय-युद्ध यहीं हुआ था। अलकनन्दा के उस पार इंद्रकील-पर्वत पर अर्जुन के तप करने का स्थान बताया जाता है। इस ओर खाण्डव-पर्वत है। इसी खाण्डव-वन को अर्जुन ने दाह किया था। यहीं अर्जुन को भगवान् शंकर से पाशुपत-अस्त्र प्राप्त हुआ था।

यहाँ पूर्व से मार्कण्डेय-नदी और पश्चिम से खाण्डव-नदी आकर अलकनन्दा में मिली हैं। यह स्थान बहुत सुन्दर है।

## श्रीनगर

विल्व-केदार से तीन मील गढ़वाल-ज़िले का केन्द्र-स्थान श्रीनगर है। यहाँ का बाज़ार एक-दम लम्बा, बीच में गोल चौक को छोड़कर, अत्यन्त सुन्दर बसा हुआ है, किन्तु शहर में रौनक़ नहीं है। काली कमलीवाले की यहाँ की धर्मशाला बहुत बड़ी है। सत्यनारायण और लक्ष्मीनारायण के दो मन्दिर भी बहुत अच्छे बने हैं। इनमें भी ठहरने के लिए सुन्दर धर्मशालायें हैं।

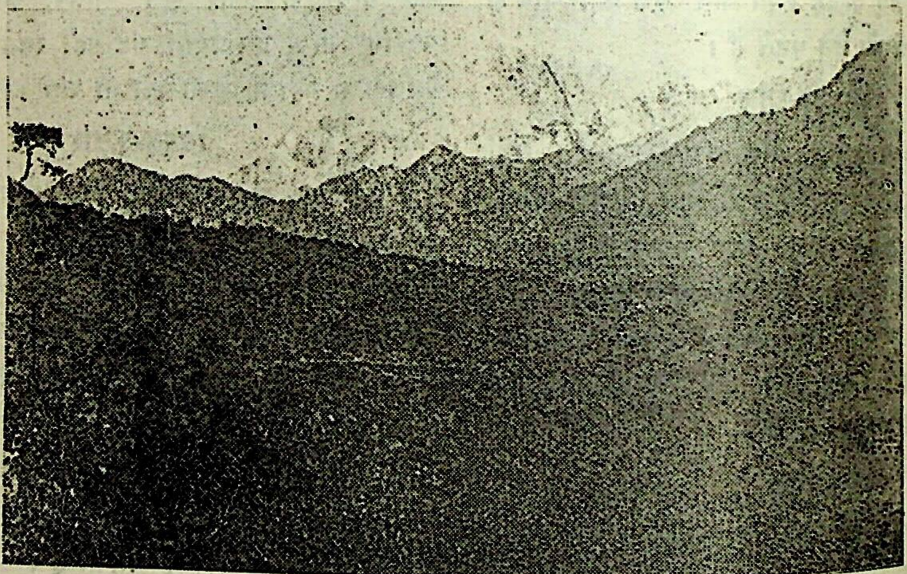
---

[1] पाँच-प्रयाग—देव-प्रयाग, रुद्र-प्रयाग, नन्द-प्रयाग, कर्ण-प्रयाग और विष्णु-प्रयाग हैं, जिनका वर्णन यथा-स्थान हो चुका है। इनके अतिरिक्त भी कई प्रयाग (दो नदियों का संगमस्थान) हैं।

यहाँ से थोड़ा पीछे को कमलेश्वर-महादेव का मन्दिर है। यह अत्यन्त रमणीक स्थान है। विष्णु ने नारद को मोहित करने के लिए शीलनिधि राजा का श्रीपुर नाम का जो नगर बनाया था, कहते हैं कि वह नगर यही है।

## रुद्र-प्रयाग

श्रीनगर से उन्नीस मील रुद्र-प्रयाग है। यहाँ अलकनन्दा में मन्दाकिनी-गंगा का सङ्गम हुआ है। अलकनन्दा बदरीनाथ से और मन्दाकिनी केदारनाथ से आई है। बदरीनाथ जानेवाले अलकनन्दा के किनारे और केदारनाथ जानेवाले मन्दाकिनी के किनारे से जाते हैं। अनुमानतः सभी यात्री पहले केदारनाथ जाते हैं, अतः मन्दाकिनी के किनारे से ही चलना पड़ता है। यहाँ सङ्गम में अलकनन्दा का पानी बहुत ही ज़ोर से उछलता है। स्नान करनेवाले ऊँची जगह से लोटे में पानी भर भरकर नहा लेते हैं। घाट के निकट ही रुद्रनाथजी का मन्दिर है। भगवान् शंकर का दर्शन-पूजन करके यात्रियों का चित्त प्रसन्न हो जाता है। यहाँ एक संस्कृत-पाठशाला भी है, जिसका संचालन एक प्रज्ञाचक्षु संन्यासी बड़ी योग्यता से कर रहे हैं। आपका कहना है कि यहाँ से परीक्षा में बैठनेवाले विद्यार्थी शत प्रति-शत पास होते हैं। यहाँ खाने-पीने का सामान अच्छा और मिलता है। ठहरने को बाबा काली कमलीवाले की धर्मशाला भी है।



[ केदारनाथ के मार्ग के हिमाच्छन्न पर्वत—गुप्त काशी के निकट से लिया हुआ चित्र ]

## अगस्त्य-मुनि

रुद्र-प्रयाग से क़रीब बारह मील 'अगस्त्यमुनि' है। यहाँ मन्दाकिनी के पूर्व-तट पर अगस्त्येश्वर महादेव का मन्दिर और अगस्त्य मुनि का स्थान है। थोड़ा मैदान होने से यह स्थान अत्यन्त मनोहर होता है।

## गुप्त-काशी*

अगस्त्य-मुनि से बारह मील गुप्त-काशी है। ऊँचे पर्वत के शिखर पर बसा हुआ अत्यन्त मनोहर

* पांडव लोग युद्ध के पाप से निवृत्त होने के लिए शिवजी के दर्शन करने आये तब दर्शन न देने के विचार से शिवजी यहाँ अन्तर्धान होगये। इसी से यह गुप्त-काशी के नाम से प्रख्यात हुआ।

क्षेत्र 'गुप्तवाराणसी' नाम से विख्यात है। यहाँ मणिकर्णिका-कुण्ड में गङ्गा-यमुना की दो धारायें गिरती हैं। यात्री इसी में स्नान करते हैं और भूतभावन शंकर विश्वनाथ के दर्शन करते हैं। यात्री यहाँ काँसे के पात्र में चावल, गोला, वस्त्र आदि रखकर गुप्त-दान करते हैं।

## नारायण-कोटी

गुप्त-काशी से तीन मील नारायण-चट्टी है। स्नान करने को निर्मल जल के कुण्ड और दर्शनों को नारायण के मन्दिर हैं। टिकने को यह चट्टी अच्छी है।

## महिषमर्दिनी देवी

उपर्युक्त चट्टी से तीन मील चढ़कर मैखंडा-चट्टी है। यहाँ महिष-मर्दिनी देवी का मन्दिर है। यहाँ यात्रियों के झूलने को एक झूला है। यहाँ पानी का नल भी है।

## त्रियुगीनारायण

मैखंडा से साढ़े सात मील रामपुर-चट्टी है। रामपुर से पाँच मील पर्वत पर चढ़कर त्रियुगीनारायण है। यहाँ तीन युग की धूनी है। इस स्थान पर गौरी और शंकर का शुभ विवाह होने से धनञ्जय नाम के अग्निदेव सदैव निवास करते हैं। यहाँ ब्रह्मकुण्ड एवं रुद्रकुण्ड में स्नान, सरस्वती-कुण्ड में तर्पण तथा धर्मशिला पर दान करते हैं। मन्दिर में भगवान् चतुर्भुज विष्णु के दर्शन करके धूनी में हवन करते हैं। गङ्गोत्तरी से केदारनाथ आनेवाले यात्री यहीं आकर मिलते हैं।

## सोन-प्रयाग

त्रियुगीनारायण से तीन मील नीचे उतर कर केदारनाथवाली सड़क पर सोनप्रयाग ( सोमद्वारा ) है। यहाँ मन्दाकिनी में त्रिविक्रमा ( वासुकी-गंगा ) का सङ्गम हुआ है। यहाँ घाट, मन्दिर या चट्टी नहीं हैं, सिर्फ़ एक दूकानदार दूध लिये बैठा रहता है। नदी के पार उतरने को झूले का पुल बना है। इसी के नीचे बहती हुई धार में स्नान होता है।

## विनायक-तीर्थ

सोमद्वारा से दो मील केदारक्षेत्र के द्वारदेश में स्थित वैनायक-तीर्थ ( मुण्ड कटे गणेश ) है। एक बार देवेशी पार्वती जल गर्म करके ऋतु-स्नान करने लगीं। अपने स्नान के रक्षार्थ शरीर से अपना अंगराग उतारा और गणेश-मूर्ति बनाकर द्वार पर बैठा दिया। इधर गोत्र-हत्या, ब्रह्म-हत्या से दूषित पाण्डवों को दर्शन देना अनुचित जानकर शिवजी केदार-क्षेत्र में प्रवेश करने लगे। किन्तु अपरिचित होने से गणेशजी ने शिवजी को रोक दिया। बस शंकर ने क्रुद्ध होकर उसका सिर काट डाला ( इसी से मुण्ड कटा गणेश नाम हुआ )। फिर पार्वतीजी से विदित होने पर शंकर ने प्रसन्न होकर हाथी का सिर लगा कर गणेशजी को जिला दिया। इसी से गणेशजी 'गजानन' नाम से प्रख्यात हुए।

## गौरीतीर्थ

उपर्युक्त स्थान से दो मील जहाँ महेशी गौरी ने ऋतु-स्नान किया था वह स्थान गौरी-तीर्थ के नाम से प्रसिद्ध है। यहाँ दो कुण्ड हैं। एक में समुद्र का सा खारी जल और गेरू के रंग की मिट्टी है और दूसरे में ख़ूब गरम जल है। स्नानार्थी पहले खारी कुण्ड में नहा कर उन्हीं गीले कपड़ों से गरम कुण्ड में स्नान करते हैं। गौरी-देवी और शिवजी के दर्शन हैं। स्थान अच्छा है। यहीं मन्दाकिनी के उस पार 'गोरक्षाश्रम' ( गोरख डिब्बी ) है।

## चीरवासा भैरूँ

गौरी-कुण्ड से डेढ़ मील चीरवटया भैरूँजी हैं। यहाँ भैरूँजी की प्रसन्नता के निमित्त यात्री लोग वृक्ष पर वस्त्र चढ़ाते हैं।

## केदारनाथ

महाऽद्रिपार्श्वे च तटे रमंतं
संपूज्य मानं सततं मुनीन्द्रैः।
सुरासुरैर्यक्ष-महोरगाद्यैः
केदारमीशं शिवमेकमीडे॥

गौरीकुण्ड से चार मील रामबाड़ा और रामबाड़ा से तीन मील कठिन चढ़ाई एवं बर्फ़ीला मार्ग पार करके 'हिमालये तु केदारं' केदारनाथ पहुँचते हैं। यह समुद्र की सतह से तेईस हज़ार फ़ुट ऊँचे हिमालय की बिलकुल तलहटी में अत्यन्त मनोहर स्थान है। यहाँ शीत बहुत

अधिक है, अर्थात् ज्येष्ठ-आषाढ़ के दिनों में भी यहाँ दिन भर खूब गरम वस्त्र पहने रहना पड़ता है। सारी भूमि में जल ही जल है।

यस्माज्जलमयी भूमिः पदन्यासप्रकम्पिता।
केदारक्षेत्रमाख्यातं तीर्थानां तीर्थमुत्तमम्॥

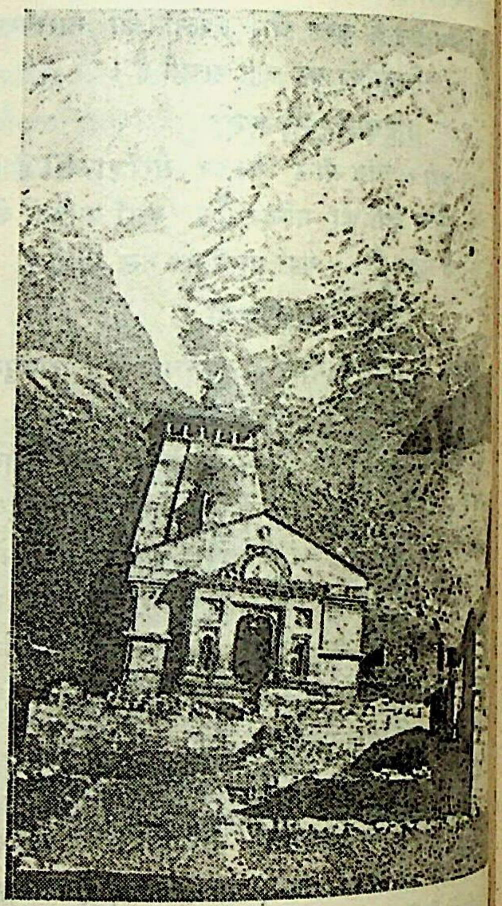
अर्थात् जहाँ की भूमि पाँव रखने से ही कम्पायमान होकर जल प्रकट करती है, उसे तीर्थों में उत्तम तीर्थ केदार-क्षेत्र कहते हैं।

चारों ओर ऊँचे ऊँचे हिमावृत्त पर्वतों के बीच में थोड़ी समभूमि पर यह एक बड़ा सुन्दर स्थान है। पुरी के एक ओर मन्दाकिनी और दूसरी ओर सरस्वती-नदी है। ये दोनों नदियाँ हिमालय से निकल कर आई हैं।

केदारनाथजी का मन्दिर पाण्डवों के समय का बना हुआ बताया जाता है। महाराज नैपाल और ग्वालियर ने इसकी मरम्मत कराई है। मुख्य द्वार पर पहले गणेशजी का पूजन होता है। तब यात्री मन्दिर के अन्दर जाते हैं। पहले दालान में मन्दिर के दाहनी ओर लक्ष्मण एवं जानकी के सहित रामचन्द्रजी के दर्शन होते हैं। बीच में नन्दीगण और गरुड़जी हैं। दीवार पर चारों ओर पाण्डवों की मूर्तियाँ बनी हुई हैं।

भीतर के भाग में एक ओर पार्वतीजी तथा दूसरी ओर लक्ष्मीजी के मन्दिर हैं। उसके आगे अर्थात् तीसरी कक्षा में भगवान् शंकर का मन्दिर है। भैंसे के रूप का कटि तट के भाग का दर्शन है। शरीर के अन्य भागों का भिन्न भिन्न पाँच स्थानों में दर्शन होता है*। यहाँ शिवजी पर पहले घृत मलकर फिर अपना शरीर [illegible] हैं। फिर जल एवं अन्य पूजा-द्रव्य चढ़ाते हैं।

मन्दिर के बाहर बाईं ओर उदक-कुण्ड है। [illegible] आचमन करते हैं। मन्दिर से नीचे [illegible] (बाज़ार में) एक और उदक-कुण्ड है। इसमें [illegible] आचमन करते हैं। अर्थात् तीन बार सीधे हाथ से, [illegible]



[श्री श्री केदारनाथ-मंदिर]

बार बाँयें हाथ से, तीन बार अञ्जलि से और तीन [illegible] गोमुख होकर।

सरस्वती के दक्षिण एक हंस-कुण्ड है। यहाँ [illegible] तर्पण भी करते हैं। इससे थोड़ा पश्चिम में एक [illegible] कुण्ड है। इसका जल अत्यन्त निर्मल है। इसमें [illegible] बुदबुदे उठा करते हैं। कहते हैं, इसमें पाता[illegible]

* पञ्चकेदार—(१) केदारनाथ, (२) मध्य-महेश्वर, (३) तुङ्गनाथ, (४) रुद्रनाथ और (५) कल्पेश्वर हैं।

इस विषय में पौराणिक कथा इस प्रकार है—केदारनाथ में महादेवजी का कटितट का भाग है। मध्य-महेश्वर में नाभि, तुङ्गनाथ में बाहु, रुद्रनाथ में मुख और कल्पेश्वर में जटा है। यही पञ्चकेदार कहलाते हैं।

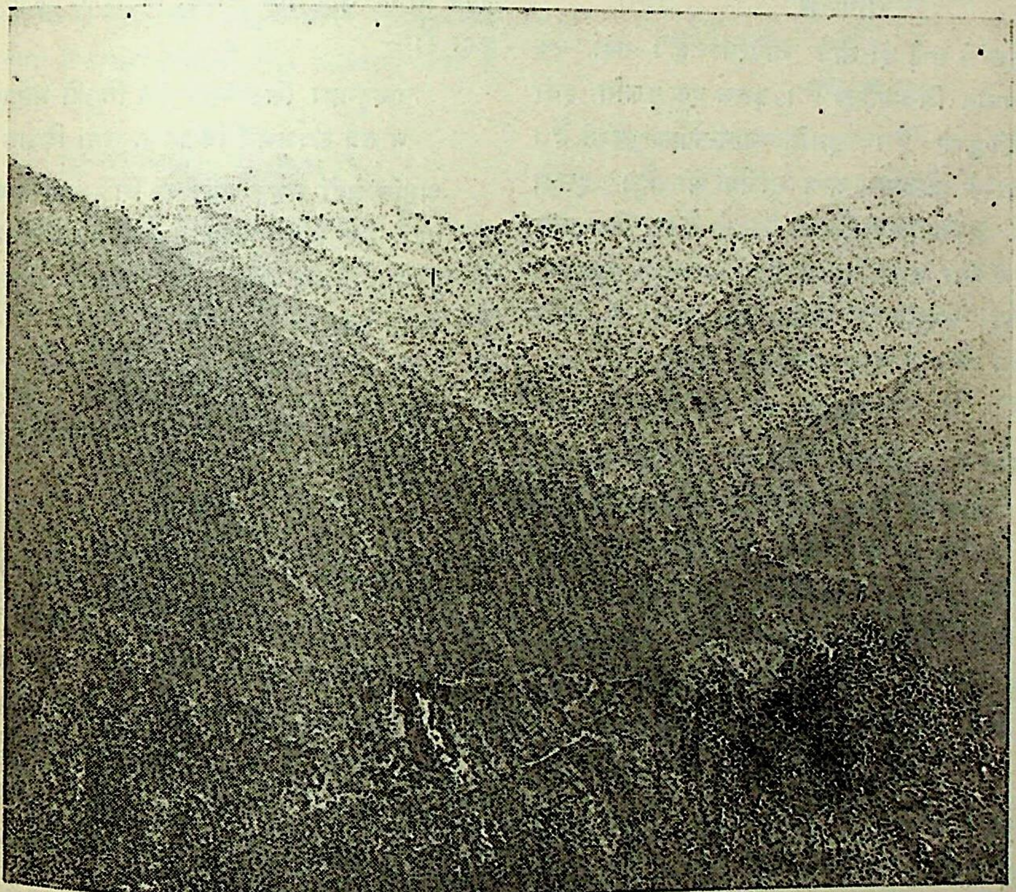
केदारनाथ और तुङ्गनाथ का वर्णन ऊपर हुआ है। मध्यमहेश्वर ऊखीमठ से १८ मील और रुद्रनाथ मण्डल-चट्टी से १९ मील है।

होकर आता है। इसमें भी उदक-कुण्ड की तरह बारह आचमन करते हैं।

## उखीमठ

श्रीकेदारनाथ से तेईस मील नाला-चट्टी तक उसी मार्ग पर वापस आकर वहाँ से ढाई मील मन्दाकिनी के बायें किनारे पर उखीमठ नामक स्थान है। कहा जाता है कि बाणासुर की कन्या उषा का अनिरुद्ध के साथ यहीं विवाह हुआ था। यहाँ केदारनाथजी के रावलजी की गद्दी है। केदारनाथ में पट बन्द होने पर छः महीना उनकी पूजा यहीं से होती है।

यहाँ मन्दिर में भगवान् शंकर ओंकारेश्वर, तपस्वी राजर्षि मान्धाता, वाराही तथा चण्डिकादेवी और उषा, अनिरुद्ध और उषा की सखी चित्रलेखा के दर्शन हैं। रावलजी की गद्दी का स्थान भी दर्शनीय है। स्थान मनोहर है। गुप्त-काशी मन्दाकिनी के उस पार इसके बिलकुल सामने है।



[ हिमाच्छन्न चौखंभा पर्वत का दूर से लिया हुआ चित्र ]

## तुङ्गनाथ

उखीमठ से सोलह मील चोपता-चट्टी है। यहाँ से तीन मील कठिन चढ़ाई चढ़कर ( तृतीय केदार ) तुङ्गनाथ हैं। यह स्थान बहुत ऊँचे पर्वत-शिखर पर अत्यन्त रमणीय एवं शान्तिप्रद है। यहाँ आकर मनुष्य सांसारिक चिन्ताओं से मुक्त हो जाता है। यहाँ सर्दी बहुत ज्यादा पड़ती है। स्नान करने को आकाश-गङ्गा नामक अति शीतल जल की धार पर्वत में से आकर कुण्ड में गिरती

है। यहाँ शिवजी का प्राचीन मन्दिर है। मन्दिर के चारों ओर छोटे छोटे कई मन्दिर और मढ़ियाँ बनी हुई हैं। पुरी में खाने-पीने का सब सामान मिलता है। वापसी मार्ग से उतरकर भुलकाना-चट्टी पर पहुँच जाते हैं।

## मण्डल

भुलकाना-चट्टी से ६ मील बान-गङ्गा के तट पर मण्डल-चट्टी है। यहाँ बाबा काली-कमलीवाले की धर्मशाला है। ठहरने को चट्टी बहुत अच्छी है।

## गोपेश्वर*

मण्डल से साढ़े छः मील गोपेश्वर हैं। यहाँ एक अत्यन्त प्राचीन शिव-मन्दिर है। इसके एक फ़र्लांग इधर ही त्रिवेणी-कुण्ड है। इसमें स्नान-तर्पण करते हैं। शिव-मन्दिर के आस-पास अन्य मूर्त्तियाँ भी हैं। इसको गो-स्थल* अथवा परवीश्वर भी कहते हैं। यहाँ एक बड़ा त्रिशूल और फरसा गड़ा है। स्थान बहुत सुहावना है। यहाँ केदारखण्ड समाप्त हो जाता है और बदरिकाश्रम की यात्रा शुरू होती है।

## चमोली

गोपेश्वर से ढाई मील चमोली (लाल साँगा) है। यह स्थान केदारनाथ, बदरीनाथ और वापसी मार्ग की सड़क का जङ्क्शन है। अलकनन्दा के तट पर अच्छी बस्ती है। धर्मशाला-औषधालय, डाकघर एवं तारघर भी हैं। यहाँ से बदरीनाथ ४८ मील है। अलकनन्दा पर झूले का पक्का पुल २२० फ़ुट लम्बा बना है। स्थान अच्छा है, किन्तु सफ़ाई नहीं है।

## मठ

चमोली से दो मील मठचट्टी है। यह स्थान चमोली से अधिक रमणीक है। यहाँ फूल-फल का बग़ीचा भी है। अधिकांश यात्री यहीं आकर टिकते हैं।

## पीपलकोटी

मठ से ७॥ मील पीपल-चट्टी है। यह स्थान ... एवं यहाँ की दूकानें अच्छी हैं, सब चीज़ें मिल... शिलाजीत, चँवर, कस्तूरी, बाघम्बर, मृगछाला ... सस्ते मिल जाते हैं।

## गरुड-गंगा

उपर्युक्त चट्टी से चार मील गरुड़-गङ्गा है। ... जल ख़ूब साफ़ कांच के सदृश निर्मल है। इसे ... करके यात्री छोटे छोटे पत्थर ले जाते हैं। ... कहा है:—

> गरुड़गङ्गा शिलाभंगो यत्र तिष्ठति मन्दिरे।
> न तत्र सर्पजभयं विद्यते न तथा विषात्॥

अर्थात् जहाँ गरुड-गङ्गा की शिला का टुकड़ा ... है, वहाँ सर्प और विष का भय नहीं होता। ... को टिकने के लिए बाबा काली-कमलीवाले की ध... है। स्थान रमणीक है।

## पाताल-गंगा

यहाँ से चार मील आगे पाताल-गङ्गा ... स्थान है।

## ध्यान-बदरी*

पाताल-गङ्गा से पाँच मील (हेलंग-चट्टी ... आगे) सड़क से क़रीब आधा मील नीचे कच्ची ... से उतर कर ध्यान-बदरी का प्राचीन (और ... मन्दिर है। भगवान् बदरीनारायण ध्यानावस्थि... स्नान करने को झरने का पानी गो-मुख में से ... यहाँ एक रामेश्वर की तरफ़ के दक्षिणी पुजारी ... मन्दिर के ख़र्च के लिए कुछ खेती है और एक ... वार्षिक बदरीविशाल से मिलते हैं।

---

* कहते हैं कि यहाँ एक गाय नित्य आकर दूध छोड़ जाती थी। जब घर जाकर दूध नहीं देती थी तब मालिक को भ्रम होता। एक दिन उसने गाय का पीछा करके जान लिया और उस स्थान पर ढूँढ़ने से शिवजी प्रकट हुए। इसी से गो-स्थल या गोपेश्वर नाम पड़ा।

*पञ्चबदरी—(१) आदि-बदरी, (२) विशाल... (श्रीबदरीनारायण) (३) भविष्य-बदरी, ... योगबदरी, (४) ध्यान-बदरी। इनमें से चार ... ऊपर यथास्थान हो चुका है, भविष्य बदरी ... आगे तपोवन में है। यहाँ दो दो मील के ... गरम जल के सोते भी हैं।

## जोशी-मठ

जगत्गुरु शङ्कराचार्यजी का उत्तर-दिशा का ज्योतिर्मठ तथा बदरीनाथजी के रावलजी का गद्दी-स्थान यहीं है। शीतकाल में भगवान् बदरीनारायणजी का पूजन यहीं होता है। यहाँ भगवान् विष्णु, नृसिंहजी, गरुड़जी, नवदुर्गा आदि के मन्दिर हैं।

## विष्णु-प्रयाग

जोशीमठ से दो मील अलकनन्दा और अत्यन्त उद्वेग से बहनेवाली धौली-गंगा का सङ्गमस्थान विष्णु-प्रयाग है। यहाँ संगम में स्नान होता है और भगवान् विष्णु के दर्शन किये जाते हैं।

## पाण्डूकेश्वर (योगबदरी)

विष्णु-प्रयाग से साढ़े छः मील पाण्डुकेश्वर है। मुनि-द्वारा शाप होने पर महाराज पाण्डु ने यहाँ तपस्या की थी और उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान् ने यहीं दर्शन दिया था। इसी से इसका नाम पाण्डुकेश्वर विख्यात हुआ। योगबदरी और पाण्डवों की मूर्तियों के दर्शन किये जाते हैं।

## शेषधारा

पाण्डुकेश्वर से थोड़ा आगे शेषधारा है। यहाँ भगवान् शेषजी ने तपस्या की थी।

## हनूमान्-चट्टी

पाण्डुकेश्वर से सात मील हनूमान-चट्टी है। यहाँ हनूमान्‌जी के दर्शन हैं। यहाँ अलकनंदा में क्षीर-गंगा का सङ्गम हुआ है। इसी के निकट वैखानस-तीर्थ है, जहाँ अब भी खोदने से यज्ञ की सामग्री मिलती है। यहाँ बाबा कालीकमलीवाले की धर्मशाला है। यहाँ से बदरीनाथ पाँच मील रह जाते हैं।

## कांचनगंगा

हनूमान-चट्टी से ३ मील कांचनगङ्गा नाम की नदी पर्व से आकर अलकनंदा में मिली है। इसको स्वर्ण-धारा भी कहते हैं। यहाँ स्नान का माहात्म्य है।

## कुबेरशिला ( देव-देखनी)

श्रीबदरीनाथ-पुरी से एक मील इधर कुबेरशिला* है। यहाँ गणेशजी का छोटा सा मंदिर है। यहाँ से भगवान् बदरी-विशाल के मन्दिर के दर्शन होते हैं। इससे इसको देव-देखनी भी कहते हैं।

## बदरीनाथ

यत्र साक्षात्सरिच्छ्रेष्ठा
गङ्गा पापौघनाशिनी।
विष्णोश्चाप्यत्र सान्निध्यं
सर्वपापप्रणाशनम्॥

हरिद्वार से केदारनाथ होकर आने से दो सौ पचास मील, यमुनोत्तरी-गङ्गोत्तरी होकर आने से चार सौ अट्ठासी मील और सीधे आने से केवल १८३ मील चलने पर भगवान् बदरी-विशाल की पुरी के दर्शन होते हैं। कहने को तो यह भी कहते हैं कि केदारनाथ से बदरिकाश्रम ढाई कोस है, किन्तु बीच में बर्फ़ का पहाड़ खड़ा हो जाने से वह मार्ग अगम्य हो गया। अब घूम कर आने में १०१ मील चलना पड़ता है और नौ दिन लगते हैं। 'नौ दिन में चले ढाई कोस' की मसल का जन्म सम्भवतः यहीं हुआ है।

यह परमपवित्र स्थान समुद्र की सतह से तेईस हज़ार फ़ुट की ऊँचाई पर है। अलकनन्दा के पश्चिम-तट पर बसी हुई यह पुरी अत्यन्त रमणीक है।

भगवान् बदरीविशाल का मन्दिर प्राचीन है, किन्तु पीछे से मरम्मत हुई है। मन्दिर में कई मूर्तियाँ हैं। बीच में ध्यानावस्था की भगवान् बदरीविशाल की मूर्ति है। बाँई ओर नर-नारायण ऋषि की, दाहनी ओर कुबेरजी एवं गणेशजी की और सामने उद्धवजी, नारदजी और गरुड़जी की मूर्तियाँ हैं।

---

*पञ्चशिला—कुबेर-शिला (ऊपर वर्णित), नारद-शिला, नृसिंह-शिला, वाराह-शिला और गरुड़-शिला, ये चारों शिलायें तप्तकुण्ड के पास ही नज़दीक नज़दीक हैं।

बाहर परिक्रमा में मन्दिर के दाहनी ओर भोगमंडी अथवा लक्ष्मीजी का मन्दिर है। बाईं ओर पुरी के रक्षपाल घण्टाकर्णजी की मूर्ति है। सामने हाथ जोड़े गरुड़जी विराजमान हैं। मन्दिर के द्वार के पास ही एक छोटी सी वेदी पर अग्नि जलती रहती है, जहाँ यात्री चाहे तो हवन भी कर सकते हैं।

भगवान् बदरीविशाल की मूर्ति खूब चमकदार काले पाषाण की है। इसके पत्थर को कोई कोई पारस बतलाते हैं। यहाँ मूर्ति के दर्शन दूर से होते हैं। भगवान् के दर्शन करके यात्री कृतकृत्य हो जाता है।




इस स्थान की पवित्रता, महत्त्व और मनोहरता का वर्णन करना लेखनी की शक्ति के बाहर है। यहाँ पाँच तीर्थ मुख्य हैं—(१) 'ऋषिगंगा' नारायण पर्वत में से आकर (पुरी में ही) अलकनन्दा में मिली है। इसे लक्ष्मीधारा भी कहते हैं। (२) 'कूर्मधारा' नारायण-पर्वत पर स्थित नारायण-कुण्ड से छोटी धारा आई है। (३) 'प्रह्लाद-धारा' पुरी में ही प्रकट होकर अलकनन्दा में मिली है। इसका जल कुएँ के ताज़े पानी से गर्म है। (४) 'अग्नितीर्थ' (तप्तकुण्ड) इसका खूब गर्म है। कहते हैं, यह भगवान् के चरणों से बहकर आता है। इसी कुण्ड में सब स्नान करते हैं। (५) 'नारदकुण्ड' अलकनन्दा के अन्दर बना है।

मंदिर के बाहर (निकट ही) रावलजी की गद्दी (कचहरी) है। यहाँ अँटका, भेंट वग़ैरह दिया जाता है, जिसकी रसीद मिल जाती है। अँटका चढ़ानेवालों को प्रसाद पाने की चिट्ठी भी यहीं से मिलती है। अँटका ... आने से कम का नहीं जमा किया जाता है। बदरीश और लक्ष्मीजी का अँटका अलग अलग होता है। गद्दी के ... ही शंकर का मंदिर भी है।

मंदिर से क़रीब एक फ़र्लाङ्ग उत्तर की ओर अलकनन्दा के किनारे ब्रह्मकपाली-चट्टान है। इस पर ... पिण्डदान देते हैं। इसके निकट ही अलकनन्दा ... तर्पण होता है। गयाश्राद्ध करने के बाद भी यहाँ ...

दान होता है। किन्तु यहाँ पिण्डदान करने के बाद और कहीं पिण्ड या श्राद्ध करने की आवश्यकता नहीं रहती।

पुरी में यात्रियों के ठहरने के लिए कई मकान और धर्मशालायें बनी हुई हैं। यात्रा के समय यहाँ हलवाइयों, बनियों, बजाज़ों, मूर्ति बनानेवालों और चित्र एवं पुस्तकें बेचनेवालों की कई दूकानें खुल जाती हैं। आटा पीसने की पनचक्कियाँ भी लगी हुई हैं। सारांश में, यहाँ सब प्रकार की सुविधा है।

## वसुधारा

बदरीनाथ से चार-पाँच मील वसुधारा है। यहाँ बहुत ऊँचे पर्वत पर जल की धारा गिरती है। मार्ग में बर्फ़ अधिक है, रास्ता भी पहाड़ी पगडंडी का है। मार्ग में इन्द्र-धार (पहाड़ से गिरती हुई जल की धारा) और उसके पास ही छोटी मढ़ी में माता-मूर्ति का दर्शन होता है। बदरीनाथ से दो मील पर माना-गाँव (मनिभद्र-पुरी) है। इसके निकट ही गणेश-गुफा और मुचकुंद-गुफा है। यहीं अलकनन्दा में सरस्वती का सङ्गम हुआ है, इससे इसे केशवप्रयाग भी कहते हैं। वसुधारा के नीचे खड़े होकर यात्री स्नान करते हैं। इधर से ही सत्य पन्थ को जाते हैं। यहाँ से सामने एक पर्वत पर घोड़े का-सा आकार बना है, जिसको श्यामकर्ण घोड़ा बताते हैं।

## नन्दप्रयाग

वापसी मार्ग में बदरीनाथ से ४८ मील चमोली और चमोली से सात मील नन्द-प्रयाग है। यहाँ अलकनन्दा में (नन्दादेवी-पर्वत से निकली हुई) नन्दाकिनी-नदी का सङ्गम हुआ है। लक्ष्मीनारायण का मंदिर है। बाज़ार अच्छा और स्थान मनोहर है।

## कर्ण-प्रयाग

नन्दप्रयाग से तेरह मील कर्ण-प्रयाग है। यहाँ अलकनन्दा में पिण्डर-नदी का सङ्गम हुआ है। यहाँ सङ्गम पर मन्दिर बने हुए हैं। स्थान रमणीक है। गङ्गोत्तरी का गंगाजल यहाँ मोल मिल जाता है। बाज़ार अच्छा है। डाक-घर, तार-घर और स्कूल भी हैं। यहाँ से आगे का मार्ग पिन्डर-नदी के किनारे से होकर सिसरौली तक जाता है। सिसरौली के आगे नारायण-गंगा के किनारे चलना होता है।

## आदि-बदरी

कर्ण-प्रयाग से बारह मील की दूरी पर आदि-बदरी हैं। यहाँ श्रीबद्रीनाथजी, गरुड़जी और अन्य देवताओं के छोटे छोटे अनेक प्राचीन मन्दिर हैं। नारायण-गंगा में स्नान करते हैं। एक छोटे नये मन्दिर में भगवान् सत्यनारायण की अत्यन्त मनोहर (मन को हर लेनेवाली मूर्ति है। हृषिकेश से चलकर इतनी यात्रा में भगवान् की इतनी सुन्दर छवि यहीं देखने में आती है।

## महल-चौरी

आदिबदरी से सत्रह मील चलकर महलचौरी आता है। यहाँ गढ़वाली कुली और डंडीवाले रह जाते हैं। दूसरे कुली करने पड़ते हैं। यहाँ से क़रीब एक मील ख़ूब ऊँची चढ़ाई चढ़ कर गढ़वाल-ज़िला ख़तम हो जाता है। पहाड़ की चोटी पर खड़े होकर एक ओर गढ़वाल और दूसरी ओर अलमोड़ा का सुहावना प्रान्त दिखाई देता है।

## गणाई

मैलचौरी से दस मील गणाई (चौखुँटिया) है। यह बदरीनाथ-हरिद्वार-रामनगर और रानीखेत के मार्गों का जङ्क्शन है। चारों ओर चार मार्ग जाते हैं इससे इसे चौखुँटिया भी कहते हैं। रामगङ्गा के दोनों ओर बस्ती है। नदी पर झूले का पुल है। डाकघर और तारघर भी हैं।

## द्वाराहाट

गणाई से साढ़े दस मील द्वारा-हाट है। यह स्थान बहुत ऊँचे पर्वत पर बसा हुआ अत्यन्त रमणीक है। यहाँ व्यापार अच्छा है! चीज़ें सस्ती हैं। सेब बहुतायत से मिलता है। यहाँ बदरीनाथ, केदारनाथ के तथा अन्य कई देवताओं के अत्यन्त प्राचीन मंदिर बने हुए हैं।

## रानीखेत

द्वाराहाट से तेरह मील (जिसमें अधिकांश) तक चढ़ाई का मार्ग तय करके रानीखेत मिलता है। यहाँ ऊँचे पर्वत के शिखर पर अँगरेज़ी छावनी है। यहाँ मोटर मिल जाता है। हृषीकेश छोड़ने के बाद इस यात्रा में इसी स्थान में फिर मोटर या गाड़ी वग़ैरह के दर्शन होते हैं। यह ख़ासा शहर है। सैकड़ों बड़ी-बड़ी दूकानें, सब्ज़ी का बाज़ार व कई बाज़ार हैं। मोटर बहुतायत से हैं और कम भाड़े पर मिल जाते हैं।

## अल्मोड़ा

रानीखेत से बाईस मील अल्मोड़ा है। रानीखेत से मोटर-द्वारा लोग यहीं आते हैं। यह अत्यन्त रमणीक और स्वास्थ्यप्रद स्थान है। कहते हैं, अल्मोड़ा के शहर में जानेवालों से आठ आना फ़ी आदमी प्रवेश-शुल्क लिया जाता है।

## काठगोदाम

रानीखेत से तिरपन मील बदरीनाथ सरीखा पहाड़ी उतार-चढ़ाव का संकीर्ण किन्तु सुहावना मार्ग तय करके (मोटर-द्वारा) मार्ग में गर्म पानी, भोवाली, नैनीताल आदि रमणीक स्थानों की सैर करते हुए यात्री काठगोदाम आते हैं। यहाँ पहाड़ ख़तम हो जाते हैं, और रेल मिलती है। गाड़ी में बैठ कर बासठ मील बरेली आ अपने अपने यहाँ को लोग चले जाते हैं। इस प्रकार पवित्र यात्रा बड़े आनन्द के साथ समाप्त हो जाती है।

—केसरीमल अग्रवाल

---

* नैनीताल वीरबहूटी नामक स्थान से [illegible] ऊपर रह जाता है। यात्री चाहें तो सैर कर सकते हैं। वहाँ एक रुपया प्रति आदमी प्रवेश-[illegible] (म्युनिसिपल टैक्स) लगता है।

गणाई से एक मार्ग रामनगर रेल्वे-स्टेशन को जाता है, जिसमें इक्कीस मील श्रीकोट तक पैदल [illegible] रामनगर को वहाँ से अड़तीस मील की यात्रा के [illegible] बैल-गाड़ी की सवारी मिल जाती है। थोड़े [illegible] पहले सरकार ने रानीखेत का मार्ग यात्रियों के [illegible] बंद कर दिया था। तब सब यात्री उसी मार्ग से [illegible] थे। अब दोनों ओर से जाते हैं।

# बालक का प्रेम

( १ )

आज बहुत वर्षों के बाद सरला की गोद हरी-भरी हुई थी। बहुत वर्षों का पूजा-पाठ आज सफल हुआ था। बहुत वर्षों के व्रत का आज उद्यापन हुआ था। देवकी के घर में बालगोपाल ने जन्म लिया था। वही चमचमाती आँखें, वही सांवला रङ्ग, वही उछलते हुए हाथ और वही चञ्चल अधर न जाने भविष्य में किस मुरली की प्रतीक्षा कर रहे थे। परन्तु नहीं, नहीं—न जाने नैपथ्य के किस कोने से बार बार अमङ्गल-सूचक ध्वनि आती थी।

घर में सन्ध्या-समय दीपावलि करके देवताओं की आराधना हुई। घर के बड़े-बूढ़ों ने नवजात बालक के सिर पर हाथ रख कर कहा, दीर्घायु होओ। हमारे घर की शोभा को सदा बढ़ाओ, सरला को पड़ोस की स्त्रियों ने बधाइयाँ दीं और नये बालक के लिए वस्त्राभूषण ला रक्खे। यहाँ तक कि बूढ़े रामदीन की माता जो खटिया से भी न उठ सकती थी, लाठी के सहारे सरला के पुत्र को देखने को आई और बोली—बेटी सरला, अब मैं और कुछ नहीं चाहती। आज तेरे पुत्र का मुँह परमात्मा की कृपा से देख लिया है। ईश्वर करे, यह चिरंजीवी हो।

चन्द्रमोहन की तो पूछो नहीं—बधाई के तारों और चिट्ठियों से उसका गले तक पेट भर गया। ठीक है, पुत्र ही तो जन्मा था, जो नरक में जाने से बचा लेगा—श्राद्ध-तर्पण किया करेगा।

कृष्णा तो आज फूली न समाती थी। भाई ने जन्म क्या लिया, उसे स्वर्ग सा मिल गया था। सच तो यह है कि इसी अवसर पर उसने अपनी गुड़िया का भी जन्मोत्सव किया, और उसे पूरा भरोसा था कि उसके पिताजी उसके लिए और उसकी गुड़िया के लिए एक एक साड़ी अवश्य लावेंगे। परन्तु नहीं—न जाने दीवार के किस छिद्र से नियति यह सब देख रही थी, और देख देखकर हँस रही थी, ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार चन्द्रमोहन कृष्णा की गुड़ियों के खेल को देखकर हँसा करते थे।

पुत्र क्या हुआ, सरला की तबीअत दिन प्रति दिन ख़राब होती गई। उसे प्रसूत-रोग ने आ घेरा। बदन दिन पर दिन मलिन होने लगा, और शरीर क्षीण। डाक्टर दवाइयों पर दवाइयाँ देते हुए कहते—मित्र चन्द्रमोहन, अब बहुत कम आशा है। यह सुनकर चन्द्रमोहन के कान झल्ला उठते और नियति के—ओह! उसी अमङ्गलमयी नियति के जो एक अदृश्य छिद्र से एकटक बाज़ की तरह सरला की ओर ताक रही थी—कान खिल उठते। अन्त में एक दिन उसने सरला को अपने साथ ले जाने के लिए अपना विकराल हाथ बढ़ा ही तो दिया। हाथ बढ़ाया नहीं कि सरला की मृत्यु हो गई।

चन्द्रमोहन व्याकुल हो गये। हाथ-पैर पीटने लगे। घर में कुहराम मच गया। स्वयं नियति भी अपने कृत्य पर घबराई हुई सी प्रतीत हुई। कृष्णा भी अपनी गुड़ियों को एक कोने में फेंककर रो रोकर पूछने लगी—'मा को क्या हो गया है?' परन्तु अभागे बालक! तुम चुप्पी क्यों साध गये? क्यों तुमने अपने भाग्य को नहीं कोसा? क्यों दयामय की दया का आसरा लेने के लिए दो बूँद आँसू नहीं गिरा दिये? क्या तुम सचमुच सर्वज्ञानी कृष्ण हो, जिनके लिए सुख-दुख समान हैं? नहीं, नहीं, कृष्ण भी तो मनुष्य का वेश धारण करने पर मनुष्य-लीला

ही किया करते हैं। अब तुम्हारा जीवन-पथ निराशा-पूर्ण है। परमेश्वर तुम्हारी सहायता करे।

( २ )

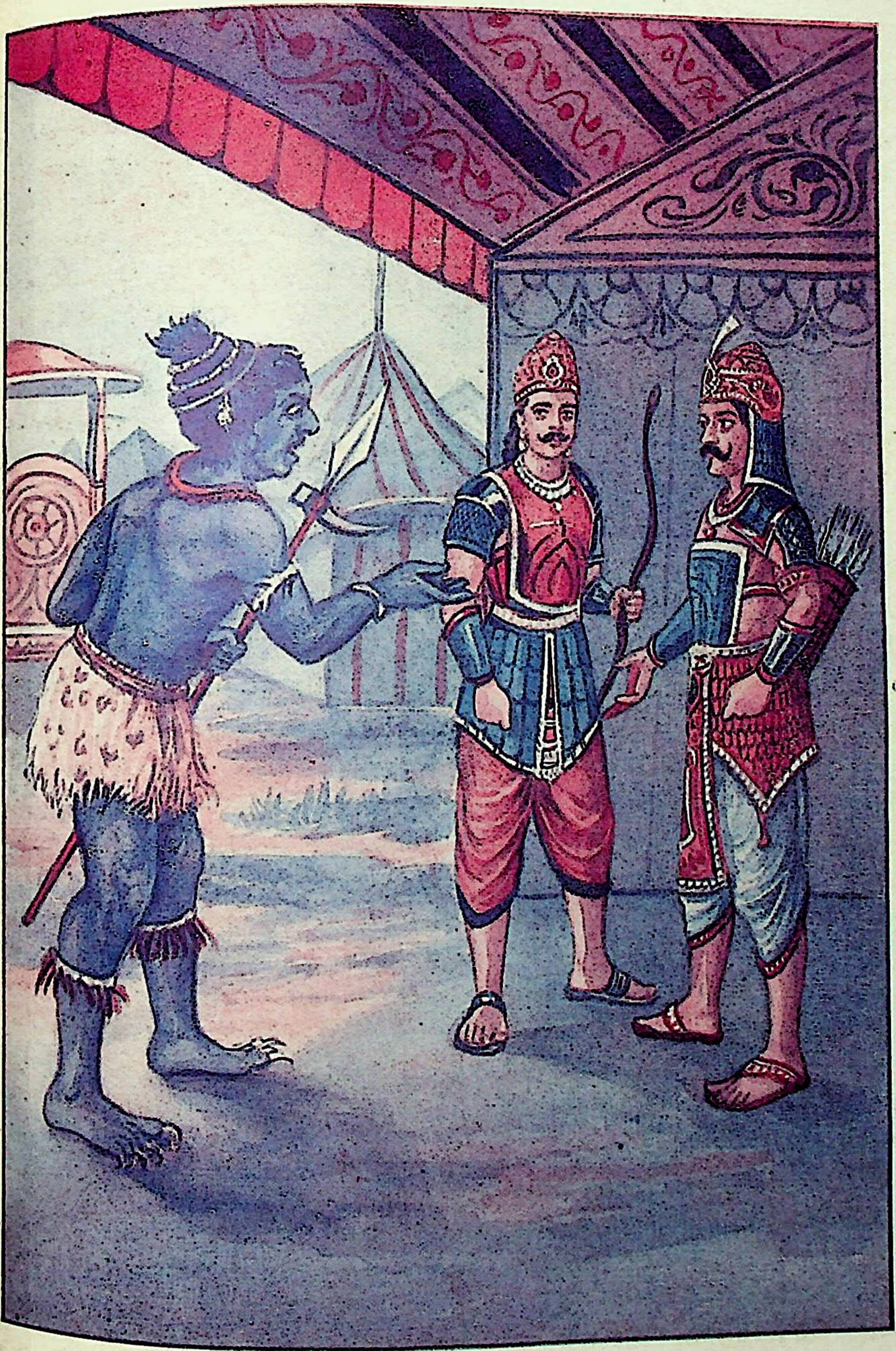
विधवा स्त्री और बिना मा का बच्चा ये दो जीव संसार में बड़े अभागे हैं। स्त्री की पति के बिना और बच्चे की माता के बिना स्थिति शोचनीय है। अभी नाम-कर्ण भी नहीं हुआ था कि बाल-गोपाल मातृ-हीन हो गया। नाम भी माताहीन न होकर मातादीन पड़ा।

माता की मृत्यु होने पर पिता के लिए स्थानान्तरों से संवेदना प्रकट करनेवाले तार आये, चिट्ठियाँ आईं। चन्द्रमोहन के भाई रामेश्वरीदत्त अपने बाल-बच्चों को लिये जमालपुर से रास्ता भूले हुए पागल की तरह आ पहुँचे। चाचा-चाची ने ख़ूब आँसू गिराये, मन के गुब्बार ख़ूब निकाले। मातादीन को उठा-उठाकर उसके मुँह को चूमकर अनेक बार उसकी माता के स्मरण में आहें भरीं। परन्तु वाह री दुनिया! तेरा ढङ्ग ही न्यारा है। थोड़े दिनों के बाद यह प्रतीत हो गया कि ये सब दुनिया के ढकोसले थे, सब दिखलाने की बातें थीं। मातादीन के लिए सरल प्रेम की धारा का अन्त उसकी माता के जीवन के साथ ही हो गया था। प्रेम का जल-प्रवाह सूख गया था और उसके स्थान पर रेती ही रेती दृष्टिगोचर होती थी।

अब प्रश्न उठा कि मातादीन का पालन-पोषण कौन करे। चाचा ने उसको अपने साथ जमालपुर ले चलने की बात छेड़ी। पिता राज़ी हो गये और मातादीन अपने चाचा-चाची के साथ जमालपुर चला गया।

रामेश्वरीदत्त के तीन लड़कियाँ और दो लड़के थे। सबसे बड़ी लड़की का नाम तारा था। वह १० बरस की थी, और सब बच्चे उससे छोटे थे। रामेश्वरीदत्त की स्त्री को बाल-गोपाल को साथ ले आना अखरने लगा। वह बेचारी आप ही पाँच प्राणियों के बोझ से दबी हुई थी। उस पर एक दुधमुहे बच्चे का पालन-पोषण और आ लगा। उस घर में नन्हें मातादीन को प्यार करने-वाली केवल रामेश्वरीदत्त के बड़े भाई की विधवा स्त्री विमला थी, बाक़ी सब लोग उससे ऊब गये थे। उसको दूध पिलाती, बड़े चाव से उसको अपनी ... नचाती, उसका मलमूत्र साफ़ करने में तनिक भी ... करती, और रात को उसे अपने गले से लगाकर सो...

तारा की माता प्रेमा का स्वभाव अच्छा नहीं ... मातादीन को जो थोड़ा दूध रोज़ मिलता उसमें ... आधा वह चाय आदि में ख़र्च कर देती थी। ... काम विमला को अच्छा नहीं लगता था। इसी बात ... दिन उसकी उससे तकरार और कहा-सुनी ... प्रेमा ने उसको दो-एक ऐसे अयोग्य वाक्य ... जिनका सहना उसके लिए अत्यन्त कठिन ... प्रेमा को इतने से ही सन्तोष नहीं हुआ, उसने राम... दत्त के भी कान भरे और वे भी अपनी बड़ी ... भाभी से नाराज़ हो गये। अब उसके लिए ... में एक छोटे बच्चे के सिवा और कोई नहीं ... उस विधवा ने उस छोटे से मातृहीन बालक को ... प्रेमपात्र बनाया—अपनी भावनाओं से उसे ... हृदय को हलका कर लिया। वह सन्ध्याकाल ... अपनी गोदी में बिठलाकर नदी के किनारे ले जा... वहाँ अपनी हृदयाग्नि को आँसुओं की ... से बुझाती थी। उस अबोध बालक से ... 'मातादीन, जब तुम हुए भी न थे तब ... माता ने मुझसे कहा था कि मेरा एक बालक ... लेना। तुमको बच्चों के पालन-पोषण का बड़ा ... पर हाय वह बेचारी चली गई, परन्तु उसकी ... नहीं हुई। बेटा, मैं क्या करूँ मेरे पास ... नहीं जो तुम्हें मन भर खिलाऊँ-पिलाऊँ, वही ... जो मुझे मिलता है उसीमें से बचाकर तुमको ... हूँ'। परन्तु वह अबोध बालक उसके करुण-... हँस दिया करता, मानो वह संसार के रहस्य को ... था। सात-आठ बरस इसी प्रकार बीत गये। ... मानसिक दुख से घुलती गई। उसने अपनी ... व्यथा किसी से नहीं कही। अवस्था भी ... ढलती हुई थी। फल यह हुआ कि उसे बीमारी ... पकड़ा, और दस बरस के मातादीन को छोड़...



अलम्बुष और दुर्योधन

रोती हुई संसार से चल बसी। मातादीन की आशाओं पर पानी फिर गया।

( ३ )

मातादीन तुम सचमुच अभागे हो, न केवल दुनिया ही की दृष्टि में, किन्तु परम दयामय परमात्मा की भी दृष्टि में। तुमने कभी माता के हाथ की प्रेमभरी थपकी का आस्वादन नहीं किया, तुम्हारा शरीर कभी माता के मधुर पुचकारों से नहीं सिञ्चित हुआ, तुम्हारे कोमल हृदय पर कभी माता की दयारूपी गङ्गा नहीं बहने पाई। किसने तुम्हें माता के अगाध प्रेमसागर में नहाने से वञ्चित्त रक्खा? ओह! तुम कभी अनुभव नहीं कर सकते हो कि मातारूपी वृक्ष के तले कैसा स्वर्गीय आनन्द है, कैसा अनुपम सुख है।

अब मातादीन का इस संसार में कोई न रहा। अब उस घर में कोई ऐसा व्यक्ति न था जिससे वह कहता कि 'भूख लगी है, माँ कुछ खाना दो'। अब कोई ऐसा पुरुष नहीं था जिसके पास वह बाहर के लड़कों से तङ्ग आकर बाल-गीता-ज्ञान सुना करता। चारों तरफ़ से उसे अँधेरा ही अँधेरा देख पड़ता था। वह उस कमल के समान था जो एक तालाब के बीच में खिला हुआ हो और भौंरों की भिनभिनाहट से तङ्ग आकर सुमधुर रात्रि की प्रतीक्षा करता हो।

दुनिया का यह रहस्य उसकी समझ में नहीं आता था। चाचाजी बाज़ार से मिठाई लेकर आते तब दूर ही से कहते कि जो पहले हमारे पास आयेगा उसको देंगे। परन्तु जब कभी मातादीन पहले पहुँच जाता तब उसको न तो प्रसन्न होकर गोद में ही उठाते थे और न उत्सुक दृष्टि से उसे देखते ही थे। चाचीजी तो पूरी पिशाचिनी बन गई थीं। जब मातादीन रोटी माँगता तब पटककर उसके पास फेंक दिया करती थीं। अगर कभी हँस देतीं तो मातादीन को स्वर्ग मिल जाता। पर यह उसके भाग्य में नहीं बदा था। भाई-बहन उसे मुँह कभी नहीं लगाते थे। घर में उसे नौकर से बोलने तक का साहस न होता था। मेरे लिए ये सब अनोखी बातें क्यों हैं—यह प्रश्न उसके मन में प्रायः उठा करता था। उसका उत्तर जानने के लिए एक दिन उसने अपनी सारी कथा अपनी मित्रमण्डली से कह सुनाई। उससे अधिक सयाने लड़कों में से एक ने अपनी भी कहानी उससे कही और कहा कि बिना मा के बच्चे की यही दशा होती है। आज मातादीन को पहली बार यह मालूम हुआ कि मनुष्य के एक माता और एक पिता होते हैं। माता तो मर गई है, परन्तु उसके पिता उसकी विमाता के साथ 'कनही' में रहते हैं।

अब डूबते हुए को तिनके का सहारा मिला। उसने सोचा कि जब चाचाजी अपने पुत्रों को इतना प्यार करते हैं तब मेरे पिताजी मुझे भी इसी प्रकार प्यार करेंगे। उसे अपनी विमाता को भी देखने की इच्छा हुई। अब वह कनही जाने की बात सोचने लगा।

इन दिनों मातादीन बिना स्वामी के कुत्ते की तरह इधर-उधर घूमता रहता। जब घर में जी न लगता तब मुहल्ले के उठल्लू लड़कों के साथ दिन भर गोली-कबड्डी खेला करता। शाम को खाने के समय धूलि-धूसरित होकर चाची की झिड़की खाने को घर पहुँच जाता।

एक दिन मातादीन ने मित्र-मण्डली में अपनी कनही जाने की इच्छा प्रकट की। उसके दोस्तों में से एक पूरा बदमाश था। उसके इस बात की ज़िक्र करने पर उसने कहा—वाह! यह ख़ूब कही। क्या कनही पहुँचना कोई पहाड़ है? टिकट के वास्ते दो रुपये लाओ। हम तुम्हें अपने एक साथी के साथ पहुँचा देंगे। आज-कल में वह वहाँ जायगा।

बारह बरस का बालक और दो रुपये! बेचारा पानी को तरस रहा था, रुपये कहाँ से लावे, बोला, मैं रुपये कहाँ से लाऊँ?

जिसने जाने की हिकमत बताई है, क्या वह रुपया लाने की हिकमत न बतलावेगा। धीरे से बोला, मातादीन, देखो तुम्हारी बहन तारा का विवाह होनेवाला है। तुम्हारे भाइयों के लिए बढ़िया बढ़िया पोशाकें बन रही हैं। क्या तुम दो रुपये भी न पा सकोगे? तुम्हारे

चाचाजी की जेब रुपयों से खनखनाती रहती है, जाओ दो-चार निकाल लाओ।

निकालने का नाम सुनते ही मातादीन काँप उठा, बोला, रुपये निकाल लाऊँ ? अगर चाची ने देख लिया तो। उसने कहा, कह देना कि चाचाजी ने मँगाये हैं, और चाचाजी को मालूम होने तक तुम कनहीं पहुँच जाओगे।

पिताजी को देखने की ऐसी प्रबल इच्छा थी कि मातादीन ने हिचकिचाते हिचकिचाते दूसरे दिन दो रुपये अपने चाचा की जेब से निकाल कर उस बदमाश लड़के के हवाले कर दिये और उसके साथ स्टेशन को गया। वह पक्का झूठा था, टिकट ले आने के बहाने से वह वहाँ से चुपचाप खिसक गया।

मातादीन को उसकी प्रतीक्षा करते घण्टों हो गये, पर वह न आया। यद्यपि रुपये निकालते हुए उसको किसी ने नहीं देखा था, पर उसका मन घर लौटने को अत्यन्त लज्जित हो रहा था। निर्मल आकाश कभी कभी घनाच्छादित होकर भी बरसा होने के बाद फिर निर्मल हो जाता है।

इधर रात में खाने के समय मातादीन को न आया देखकर चाची चिल्लाई—कहाँ गया मातादीन ? समय पर खाने को नहीं आता। मैं कहाँ तक उसके लिए इस तरह प्रतीक्षा किया करूँगी।

थोड़ी देर में यह मालूम हो गया कि आज वह दिन भर से ग़ायब है। चाचा ने ढूँढ़ने को आदमी भेजे, परन्तु मातादीन कहीं न मिला।

जब सन्ध्या होने लगी तब मातादीन बहुत डरा। वह घर का रास्ता नहीं जानता था, और अकेले जाता भी कैसे ? वहीं स्टेशन पर बिलख-बिलख कर रोने लगा। उसको रोते देख कर बहुतेरे भद्र पुरुषों ने तो उस तरफ़ से आँखें फेर लीं, बहुतों ने एक क्षणिक दृष्टि डाल कर मालूम कर लिया कि किसी का बिछुड़ा हुआ बालक है, परन्तु गाड़ी से जाती हुई माताओं की उसे देखकर आँखें भर आईं।

वहीं सेकण्ड क्लास वेटिङ्ग रूम में बैठे हुए कुछ सज्जनों को उसका करुण-क्रन्दन अच्छा नहीं लगा, उन्होंने चपरासी को उसे निकाल बाहर करने का [illegible] दे दिया।

हाय वह छोटा सा बालक इस दुनिया [illegible] को क्या जाने ? जिस किसी को वह वहाँ से जाते [illegible] उसी की तरफ़ अपना रोता हुआ मुँह बढ़ा देता [illegible] अन्त को एक गार्ड की ओर उसने आशापूर्ण दृष्टि [illegible] गार्ड साहब को हिन्दुस्तानियों से घिन थी। [illegible] पकड़ कर बाहर कर दिया। अज्ञान बालक [illegible] से चिल्लाने लगा। इस चिल्लाने की आवाज़ [illegible] कर वहीं सामने रहनेवाला चौकीदार दौड़ा आया [illegible] नम्र वाणी से उसे यह दिलासा देने लगा कि हम [illegible] तुम्हारे पिता के घर कल पहुँचा देंगे। आज रात [illegible] यहाँ रहो। यह कहकर उसका कोमल हाथ पकड़ [illegible] वह उसे अपनी टूटी-फूटी झोपड़ी में लिवा लाया।

ज्वर से मातादीन का शरीर तड़फ रहा था, [illegible] अग्नि की ज्वाला सी बरसाती हुई रक्तवर्ण [illegible] रही थीं, अङ्ग काँप रहे थे, पर हृदय फिर भी [illegible] मुँह का दर्शन करने को अत्यन्त लालायित हो रहा [illegible]

यह था असली प्रेम—एक आठ बरस के [illegible] का अपने पिता के लिए—ऐसे पिता के लिए [illegible] पुत्र के जन्मकाल से उसके मरण-जीवन की [illegible] नहीं जानी थी। स्वार्थ यहाँ छू भी नहीं गया [illegible] यह दुनिया का दिखावटी प्रेम नहीं था। यह [illegible] पिता के लिए प्रेम इसलिए नहीं था कि वह [illegible] दौलत दे, पठन-पाठन करावे, और उसके लिए [illegible] भारी सम्पत्ति छोड़ जाय, किन्तु वह एक अबोध [illegible] का पिता के लिए पवित्र और अदूषित प्रेम, [illegible] बाल-विज्ञान था। कैसी निर्मल आकाङ्क्षा थी, [illegible] अनोखी सूझ थी, कैसा सराहनीय मनोरथ था ! [illegible] कैसा अद्भुत है कि ज्यों ज्यों हम यौवनावस्था में [illegible] हैं, त्यों-त्यों हमारा प्रेम-पथ स्वार्थ-रूपी वृक्षों से [illegible] जाता है ?

उस रात भर मातादीन को नींद नहीं आई। [illegible] अपनी चिर-परिचित चारपाई की जगह ज़मीन [illegible] पर उसे बड़ा आश्चर्ययुक्त डर लगता था और [illegible]

में दिन की बातें याद आ जाती थीं। चौकीदार सुबह पता लगाकर मातादीन को रामेश्वरीदत्त के यहाँ पहुँचा आया।

रामेश्वरीदत्त ने सपत्नीक मातादीन को बहुत डराया-धमकाया और दिन भर ग़ायब होने का कारण पूछा। परन्तु मातादीन कान देकर चुपचाप सुनता रहा।

बालक की अवस्था ख़राब होती गई। उसे सन्निपात हो गया। उस पर दवाई-दारू कुछ विशेष नहीं हुई। जब बीमारी बहुत बढ़ गई तब चन्द्रमोहन को तार दे दिया गया और वे दूसरे दिन आ पहुँचे। रामेश्वरीदत्त ने कहा—मातादीन, तुम्हारे पिताजी आये हैं। बालक ने हुँ कहकर एक बार आँखें खोल कर सतृष्ण-भाव से उनको देखा, और फिर उन्हें धीरे-धीरे हमेशा के लिए बन्द कर लिया।

—हरीशचन्द्र जोशी

# वह

वह तो पूर्वजन्म का फल था,
इस जीवन का कहिए कर्म।
वह मेरी आशा का बल था,
मेरी जीवात्मा का धर्म॥
वहाँ, वहीं दो दिन उसके जो,
साथ बिताने मैं पाया।
तृतीय दिवस को देखा मैंने,
मैं तो था उसकी छाया॥
जहाँ चले वह वहीं चलूँ मैं,
नहीं मिले तो रो बैठूँ।
क्षण भर तनिक दूर होने से,
साहस अपना खो बैठूँ॥
नहीं जानता उसमें जादू,
भरा हुआ था क्या ऐसा।
यही जानता हूँ बस उसने,
किया हाल मेरा जैसा॥
उसे देखकर मेरे दिल में,
ऐसी मच जाती हलचल।
ऊपर जैसे चाँद देख के,
उछल पड़ें लहरें छलछल॥

एक अधखिला फूल सुकोमल,
नवल कमल का अलबेला।
जिसके झिलमिल पलकों का,
लगता मेरे दिल में मेला॥
पल पल में वह नये रूप से,
नये रङ्ग से सजता था।
उसके दो होठों के ऊपर,
एक मधुर सुर बजता था॥
मुग्ध, मनोहर मधुर मनोरम,
मोहमयी मोहिनी महान।
एक मेमने की मैं मैं,
या मुरलीवाले की ही तान॥
कहता हूँ तुझसे मैं प्यारे,
इसको तू सच मान न मान।
सो कर उठी हुई दो आँखों,
के समान खिलते यह कान॥
उसको वहाँ वहीं छोड़ा तो,
क्या अब देख न पाऊँगा।
अरे कहीं क्या उस पगली सा,
मैं पागल हो जाऊँगा?

—हरिश्चन्द्र जोशी

# कविवर तोष का हिन्दी-साहित्य में स्थान

हिन्दी-कविता के पूर्ण विकास का समय वास्तव में रीति-काल ही था। यह उसी समय का प्रसाद है कि अनेक उत्कृष्ट कवि हिन्दी-भाषा के साहित्य को दिव्य बना गये हैं। इस काल में श्रृङ्गार-रस की कविता ही हुई है। जिनका हृदय इतना सरस नहीं है कि वे श्रृंगार-रस की कविता का सच्चा स्वाद ले सकें वे भी विवश होकर यह मानते हैं कि वास्तव में इसी काल ने हिन्दी-भाषा की नाक ऊँची रक्खी। इस काल के कवियों में बिहारी, मतिराम, पद्माकर और देव का नाम बड़े गर्व से लिया जाता है। हमारे तोषजी भी इसी काल के एक रत्न थे।

अभाग्यवश अभी तक यह रत्न कसौटी पर नहीं कसा गया है। अतः तोषजी की जन्म-तिथि का ठीक ठीक पता नहीं लगता, परन्तु इनकी एक-दो पुस्तकों से, जो सौभाग्य से प्राप्त हुई हैं, यह पता चलता है कि ये प्रयाग के पास के रहनेवाले थे तथा इन्होंने अपना 'सुधानिधि' नाम का नायिका-भेद तथा रस-भेद का ग्रन्थ संवत् १७९१ में लिखा। इनके लिखे केवल दो और ग्रन्थों का पता चला है।

तोषजी एक भावुक कवि थे। उनके शरीर में एक सच्चे कवि-हृदय का वास था। उन्होंने काव्यांगों के बहुत ही सुन्दर और सरस उदाहरण दिये हैं। उठाई हुई कल्पना का बहुत ही उत्तम निर्वाह किया है। यद्यपि उनकी भाषा मतिराम के समान सरस नहीं है, तथापि भाव उनके इतने सुन्दर रीति से पिरोये गये हैं कि पाठक को स्तब्ध रह जाना पड़ता है। तोषजी मिथ्या अलंकारों के आडम्बर के प्रेमी न थे। इनकी कविता में अलंकारों की भरमार नहीं है। जहाँ कहीं अलंकार आये हैं, वहाँ भाव के सहायक होकर, भाव को दबा बैठने के लिए नहीं। तोषजी की कविता उस बालक की बोली के समान है जो बिना किसी छल-कपट के अपने सच्चे हृदय के भाव को प्रकट करता है। तोषजी स्वयं कहते हैं—

भूषण-भूषित दूषण-हीन प्रवीन महारस मैं छबि छाई।
पूरी अनेक पदारथ तें जेहि में परमारथ स्वारथ पाई।
औ उकतैं मुकतैं उलही कवि तोष अनोप-भरी चतुराई।
होत सबै सुख की जनिता बनि आवत जौ बनिता-कविताई।

इससे यह जान पड़ता है कि जैसे बालक जब अपने स्वाभाविक भावों को प्रकट कर पाता है तब उसे बहुत आनन्द मिलता है, उसी प्रकार जब तोषजी प्रकृति की प्रेरणा से उत्पन्न अपने भावों को कविता की श्रृंखला में बाँध पाते थे तब उन्हें अपार आनन्द होता था। कैसा सच्चा कवि-हृदय है! उनकी कविता में कहीं भी यह नहीं जान पड़ता कि यहाँ कवि ने तोड़-मरोड़ कर कुछ घटाया-बढ़ाया है! श्याम के स्वरूप के देखने का जी सबको चाहता है, परन्तु जितना ही वे देखे जाते हैं, उतनी ही तृष्णा अधिक बढ़ती है और तृप्ति नहीं होती। इस पर तोषजी की अन्तरात्मा की सच्ची उक्ति देखिए—

श्रीहरि की छबि देखिबे को
  अँखियाँ प्रतिरोमन में करि देतो।
बैनन के सुनिबे कँह श्रौन
  जितै-जित जो करतौ करि हेतो।
मो ढिग छोड़ि न काम कछू
  कवि तोष यहै लिखतो विधि ये तो।
तौ करतार इती करनी करिकै
  कलि में कल कीरति लेतो॥

हम ऊपर कह चुके हैं कि तोष अलंकार के प्रेमी न थे। उनकी भाषा अलंकारों के जाल से बेतरह जकड़ी नहीं है परन्तु इससे यह नहीं समझना चाहिए कि इनकी कविता में अलंकारों का उचित रूप से समावेश ही नहीं है। इनके अलंकार वास्तव में उनकी कविता-कामिनी के सच्चे अलंकार हैं। देखिए कितना सुन्दर रूपक है—

सेज के भाजन मैं धरिकै
अरु ऊरू अलूषन तोषन ही सों।
तैसी रई करि नैनन की अरु
प्रीति की दाम सुजान गही सों।
तक्र भले करि छोड्यौ भटू
रस रूप सबै नवनीत लही सों।
वेग बताओ हहा बलि तौनहि
जौन तुम्हें मथि लीनी दही सों।

शब्दालङ्कारों का कैसा सुन्दर व्यवहार इस सवैया में तोषजी ने किया है—

कौन कहै नर-नारिनि की सुनि चेत रहै न सुरी-असुरी में,
चैन गवावति बैन न आवति मैन के बान गड़ैं बँसुरी में,
ज्यों जलमीन बिना तलफै स्वर बेधि उठै न सुरी नसुरी में,
मारन मोहन चाट उचाट बसीकर मंत्र बसै बँसुरी में।

आज हमें इस बात पर विचार करना है कि हम रीति-काल के शृङ्गारी कवियों में तोष को कहाँ स्थान दे सकते हैं। हम ऊपर कह चुके हैं कि शृङ्गार-रस के कवियों में बिहारी, मतिराम, पद्माकर और देव का नाम बड़े आदर से लिया जाता है। महाकवि बिहारीलाल को शृङ्गारी कवियों में सर्वश्रेष्ठ मानना ही पड़ेगा। देवजी की आज हम चर्चा नहीं करेंगे, क्योंकि उन पर कुछ कहने से चाहे वह सत्य हो अथवा असत्य, कुछ विद्वान् भड़क उठते हैं। आज हमारा विचार केवल मतिराम और पद्माकर से ही सम्बन्ध रक्खेगा। हमें यह देखना है कि तोषजी इन दोनों कवियों की प्रतिभा के निकट तक पहुँच पाते हैं अथवा दूर ही अपनी उड़ान बाँध कर रह जाते हैं।

(१) तोष कवि का प्रधान ग्रन्थ सुधानिधि[illegible] उसमें वे स्वकीया नायिका के वर्णन में लिखते हैं—

पति से न करै तन बाहिर औ,
प्रिय जाहिर सूम करै न धनै।
गुण शील स्वभाव सनेह पतिव्रत,
वारिध को भयो मीन मनै।
कवि तोष कोऊ न कवौं वरते गुन,
द्वार की देहरी ना गमनै।
निज नैनन से जाति नन्दकिसोरहि
औरहि चौथि को चन्द गिनै।

कविवर मतिराम की स्वकीया इस प्रकार है—
सोचि विरंचि निकाई मनोहर लाजति मूरतिवन्त [illegible]
ता पर तो पर भाग बड़े मतिराम लखै पति-प्रीति [illegible]
तेरे पुनीत स्वभाव भटू कुल नारिन को कुल कानि [illegible]
तौही जनो पतिदेवन के गुनि गौरि सबै गुन गौर [illegible]

पद्माकरजी का वर्णन इस प्रकार है—

शोभित सुकीया गन गुन गनती में तही,
तेरे नाम ही की एक रेखा रेखियतु है।
कहै पद्माकर पगी यों पति प्रेम ही मैं,
पदमिनि तो सी तिया तूही देखियतु है।
सुवरन रूप जैसो तैसो सील सौरभ है,
याही ते तिहारो तन धन्य लेखियतु है।
सोने में सुगन्धि न सुगन्धि में सुन्यौ री सोन,
सोनो औ सुगन्धि तामें दोनों देखियतु है।

कहना न होगा कि तोष की 'औरहि चौथ [illegible] गनै' की उक्ति अन्य दोनों कवियों की उक्ति [illegible] अधिक अच्छी है; क्योंकि स्वकीया के सच्चे [illegible] आभास तोष की ही कविता में मिलता है। [illegible] तरह पानी में लज्जा से रहना, सूम के धन के सम[illegible] को प्रकट न करना इत्यादि कैसी चुभती हुई उप[illegible] पद्माकर की उक्ति भी सुन्दर है, परन्तु उसमें [illegible] के बाह्य गुणों का समावेश है, आन्तरिक [illegible] का नहीं।

(२) नायिका अज्ञातयौवना है। मतिरामजी कहते हैं—

खेलन चोर मिहीचनी आजु
गई हुती पाछिले धौंस की नाईं।
आली कहा कहैं एक भई
'मतिराम' नई यह बात तहाईं॥
एकहि भौन दुरे एक संग ही
अंग से अंग छुआयो कन्हाई।
कंप छुट्यो घन स्वेद बढ़यो
तन रोम उठ्यो अँखियाँ भरि आईं॥

तोष का विचार इस प्रकार है—

लोचन लोल लसैं अँसुआँ कन
जाइ सो धाइ से जाइ पुकारे।
या रतिया ते भई छतियाँ यह
पीर नहीं पै लगै अति भारे॥
उत्तर ताहि दियो कवि तोष
सो बाज उठ्यो मन मोद नगारे।
तू जनि नेकु डराइ इन्हें
बलि पीर सहेंगे विलोकन वारे॥

पद्माकर जी लिखते हैं—

खेद को भेद न कोऊ कहै
ग्रत आंखिन ह्वै अँसुआन को धारो।
त्यों पदमाकर देखती है तन कौ
तन कंप न जात सँभारो।
ह्वै धौं कहा को कहा गयो यों
दिन द्वै कहि तैं कछु ख्याल हमारो।
कानन में बसी बाँसुरी की धुनि
आनन में बस्यो बाँसुरीवारो॥

अन्य दोनों कवियों की सूक्ष्म हृदयग्राही है, परन्तु तोषजी का भाव और ही प्रकार का है। धाय कितना सुन्दर उत्तर देती है—"तेरे सीने में पीर होती है तो तू क्यों डरती है, पीर तो उन्हें होगी जो तुझे देखेंगे।" तोषजी का भाव क्या इन कवियों से नीचा है?

(३) नायिका स्वाधीनपतिका है।

पद्माकर—

मो मुख बीरी दई सु दई
सु रही रचि साधि सुगन्धि घनेरौ।
त्यों पदमाकर केसरि खौरि
करी तौ करी सो सुहाग है मेरौ।
बेनी गुही सो गुही मन भावते
मोतिन माँग सवाँरि सवेरौ।
और सिङ्गार सजे तो सजे इक
हार हहा हिय रे मति गेरौ॥

मतिराम—

आपने हाथ सों देत महावर
आप ही बार सँवारत नीके।
आपुन ही पहिरावत आनिकै
हार सँवारि कै मौलसिरी के।
हैं सखी लाजन जात मरी
मतिराम स्वभाव कहा कहैं पी के।
लोग मिलैं घर घैरु करै
अब ही ते ये चेरे भये दुलही के॥

तोष—

आपुन बार पसार सुधारि
इरें अन्हवाइ दियो सुखदानी।
नाइन के करते लै महावर
मेरो लियो पग आपनो पानी।
देन लगे कहि तोष सो प्रीतम
आग गई ननदी अभिमानी।
तैसी कछू कहि जात नहीं अलि
जैसी कछू हम आज लजानी॥

तीनों ने प्रसंग क़रीब क़रीब एक ही प्रकार का उठाया था, परन्तु अन्त तक पहुँचते पहुँचते तीनों भिन्न भिन्न हो गये। तीनों की उक्तियाँ अपने ढङ्ग की निराली हैं। एक दूसरे से ऊँची या नीची नहीं।

(४) नायिका आगतपतिका है। पति विदेश से आनेवाला है। पद्माकर की नायिका ने कितनी तैयारी की है—

आजु दिन कान्ह आगमन के बधाये सुनि
छाये मग फूलन सुहाये थल थल के।
कहै पदमाकर त्यों आरती उतारिबे को
थारन में दीप हीरा हारन के छल के।
कञ्चन के कलस भराये भूरि पन्नन के
ताने तुंग तोरन तहाँई झला झल के।
पौर के दुवार तैं लगाई केलि मन्दिर तक
पदमिनि पाँवड़े पसारे मखमल के॥

मतिराम—पिय आयो परदेस तै, हिय हुलसी अति वाम।
टूक टूक कंचुकि करी, करि कमनीती काम॥

परन्तु तोषजी को इतने से कहाँ संतोष—

पैजनी गढ़ाई चोंच सोने सो मढ़ाई दैहो
कर पर लाइ पर रुचि सों सुधरिहौं।
कहै कवि तोप छिन अटक न लैहौं कवौं
कंचन कटोरे आटा खीर भरि धरिहौं।
ऐ रे काग तेरे सगुन संजोग आज
मेरे पति आवैं तौ वचन ते न टरिहौं।
करती करार तौन पहिले करौंगी सब
अपने पिया को फिर पाछे अंक भरिहौं॥

इस बार तो तोषजी बहुत गहरी बाज़ी मार ले गये। अधिकतर स्त्रियाँ किसी के आने का सगुन कौवे से विचारती हैं। इस नायिका को कौवा यह सूचना दे रहा है कि कोई अतिथि आज तुम्हारे घर में आ रहा है। वह कहती है कि यदि मेरा पति ही आयेगा तो तेरी चोंच सोने से मढ़ना दूँगी तथा अन्य सत्कार करूँगी; यही नहीं, यह सब पहले करूँगी, फिर कहीं अपने प्रियतम से मिलूँगी। कितनी सुन्दर, सरस और स्वाभाविक भाव-व्यञ्जना है?

उपर्युक्त उदाहरण तोष के सुधानिधि, पद्माकर के जगत-विनोद तथा मतिराम के रसराज से लिये गये हैं। ये तीनों ग्रन्थ नायिका-भेद तथा र[स] के हैं। हमें कहीं भी यह न देख पड़ा कि [को]ई उक्ति मतिराम और पद्माकर के टक्कर की न हो।

रस का वर्णन तो प्रायः सभी कवियों ने कि[या] परन्तु अधिकतर औरों के उदाहरण अश्लील [हो गये] हैं। इस रस से मेरा केवल तात्पर्य्य शृंगार [के अन्तर्]गंत ही नवों रसों के वर्णन से है। मतिराम त[था तोष] यही दो ऐसे कवि हुए हैं जो उस अश्लीलता से [बचे] हैं। शृंगार के अन्तर्गत परिहास का उदाहरण [मतिराम]जी इस प्रकार देते हैं—

गौने के द्यौस सिंगारन को
मतिराम सहेलिन को गन आयो।
कंचन के बिछुआ पहिरावत
प्यारी सखी परिहास बढ़ायो।
पीतम स्रौन समीप सदा
बजैं यों कहिकै पहिले पहिरायो।
कामिनि कौल चलावनि को
कर ऊँचे कियो पै चल्यो न चलायो।

परन्तु पद्माकरजी को विवश होकर अश्लीलता[की] शरण लेनी पड़ी।

आई भले दुत चाल तू चातुर
आतुर मोहन के मन भाई।
सौतिन के सर को पदमाकर
पाई कहाँ धौं इती चतुराई।
मैन सिखाई सिखाई स मैनहि
यों कहि रैन की बात जताई।
ऊपर ग्वालि..................
......हँसि यों तसवीर दिखाई॥

कवि की कविता के लिए एक यह भी कसौटी है कि ऐसे नाज़ुक स्थलों का उसने कैसे निर्वा[ह किया] है। पद्माकर ने जो तसवीर में दिखाया वही [तोष ने] शब्दों में कह सुनाया, परन्तु तोष की कविता में [अश्ली]लता की बू भी न आई।

चौपि सो चौपरि खेलत हैं
कहि तोष दोऊ मिल प्यारे औ प्यारी।
कंज से पानि सो पाँसनि लै
हँसि प्यारी कही यह मारिहौं मारी।
प्यारे कह्यो री अरी जो परै
तौ बलाइ से हांयगी हार हमारी।
फेंकि दियो जी सों बाजी यहै
रति मेरी लगी विपरीत तिहारी॥

एक और गोपिका परिहास से कहती है—

एक कहै हँसि ऊधवजू
व्रज की बनिता तजि चन्द्रप्रभा सी।
जाय कियो कह तोष प्रभू
एक प्रान लियो लहिं कंस की दासी।
जो हुते कान्ह प्रवीन महा
सो हहा मथुरा में कहा मति नासी।
जीव नहीं उबियात जबै
ढिग पौढ़ति है कुबजा कछुआ सी॥

कितना विनोद-पूर्ण स्वाभाविक उपालम्भ है।

इन उदाहरणों से यह पता चल गया होगा कि तोष भी इन दोनों कवियों के समान ही सुन्दर कविता करते हैं। मतिराम तोष से पहले हुए तथा पद्माकर तोषजी के बाद हुए हैं। मतिराम के समय से पद्माकर के समय तक शृङ्गाररस के कवियों की कविता पढ़ जाने के बाद हृदय-पटल पर गङ्गा-यमुना के समान मतिराम और पद्माकर की कविताओं की सरस धारा बहने लगती है; परन्तु बीच में तोषजी की भी काव्य-धारा उसमें मिल कर अपूर्व छटा दिखाती है और पवित्र त्रिवेणी का संगम बनाती है। यद्यपि यह धारा छोटी है, परन्तु मान में गङ्गा-यमुना के तुल्य ही है।

मतिराम की भाषा मधुर और सरस है। कहीं कहीं भाव के न होते हुए भी केवल भाषा की कोमलता पर मुग्ध होना पड़ता है। कहीं कहीं मतिराम के भावों में जटिलता आ जाती है, परन्तु तोष की शृङ्खला सीधी और सरल है। भाव उनके सच्चे हैं और चेष्टायें कृत्रिम नहीं हैं। पद्माकर की भाषा का प्रवाह तोष के ही जैसा है, परन्तु उनके समान इनकी कविता कहीं भी अलंकारों के जाल में जकड़ी नहीं है। तोषजी तथा पद्माकरजी क़रीब क़रीब एक ही श्रेणी में आते हैं। किसी स्थान पर एक बढ़ जाता है तो दूसरे स्थान पर दूसरा। परन्तु दोनों की कविताओं में एक ही पुट-पाक का पृथक् पृथक् आनन्द आता है। अतः हम यह कह सकते हैं कि मतिराम, तोष और पद्माकर एक ही श्रेणी के कवि हैं तथा तोष को दोनों के साथ ही हिन्दी-भाषा के साहित्य में स्थान मिलना चाहिए। अभी तोष पर विशेष छान-बीन नहीं हुई है। उनका अधिकांश यश अभी अन्धकार में छिपा हुआ है, परन्तु पूर्ण आशा है कि ऐसे रत्न अब हिन्दी-भाषा में अधिक छिपे नहीं रहने पायेंगे।

आशा है, पाठकगण स्वयं तोष की कविता को पढ़ेंगे और कविता के सरस रस का आस्वादन करेंगे।

—देवशंकर त्रिवेदी

# धोखा-धड़ी

[ सरस्वती के गत अङ्क में पाठकों ने पढ़ा होगा कि देवी के साक्षात् दर्शन तथा उनके आविर्भाव आ बतला कर रामयदु ने जनता की श्रद्धा किस प्रकार आकर्षित की थी और अनायास ही देवी के नाम पर बहुत भी संग्रह कर लिया। परन्तु इस उन्नति से रामयदु को सन्तोष नहीं हुआ। प्राण बाबू की जड़ खोदने के से वे बार बार कृष्णकली की कुरूपता का उल्लेख करके थाकोहरि को भड़काने और साथ ही अवैध उपायों से जीवन को सुखमय बनाने के लिए उसे अप्रत्यक्ष रूप से उत्साहित भी करने लगे। उधर प्राण बाबू और साहब लोगों के हृदय में भी थाकोहरि के प्रति सन्देह का भाव उत्पन्न करने की चेष्टा करते रहे। अन्त में पर रामयदु की कुमन्त्रणा काम कर गई। कृष्णकली उसकी आँखों में काँटा सी गड़ने लगी। वह किसी का पाणिग्रहण करने की चिन्ता करने लगा। इसके परिणामस्वरूप प्राण बाबू के साथ उसने जो विश्वा किया है, इस अङ्क में उसका वर्णन किया गया है। ]

( २३ )

थाकोहरि की उदासी और कृष्णकली के प्रति उसकी विरक्ति कदाचित् प्राण बाबू तथा मातङ्गिनी की दृष्टि को आकर्षण करती, परन्तु एकाएक एक दिन हृदय की गति रुक जाने से अतिस्थूलाङ्गी मातङ्गिनी सुरधाम को चली गई, सारा परिवार शोकाकुल हो उठा। लोगों ने थाकोहरि की उदासी का भी कारण मलिकिन की आकस्मिक मृत्यु ही समझा।

प्राण बाबू पत्नी के वियोग से विह्वल हो उठे। कृष्णकली को लेकर उन्होंने तिमहले पर ही अपना अड्डा जमाया था, वहाँ से वे निकलते नहीं थे। दल के दल लोग आते समवेदना प्रकट करने, परन्तु प्राण बाबू किसी से मिलते नहीं थे, सब लोग हताश और क्षुब्ध होकर वापस चले जाते थे। उनके पास जा पाता था केवल थाकोहरि। वही समयानुसार स्नान और भोजन कराता परन्तु कृष्णकली को देखते ही थाकोहरि का उठता, साथ ही थाकोहरि के मुख पर विरक्ति देखकर कृष्णकली भी शान्ति का अनुभव सकती थी। बहुत ही आवश्यक कार्य थाकोहरि प्राण बाबू के पास जाता था। से वह जितनी देर तक प्राण बाबू के पास रहता, अधिक एक मिनट भी ठहरने का वे थाकोहरि अनुरोध नहीं करते थे। कृष्णकली अलबत्ता उनकी आँखों से ओट होती, वे चञ्चल और उठते। इसी लिए अपने चिड़ियाख़ाना के तिमहले के एक खूब लम्बे-चौड़े कमरे में पिता की रूपी चहारदीवारी में क़ैद होना पड़ा।

दफ़्र के ज़रूरी काग़ज़-पत्र जब कोई आता तब वह थाकोहरि को देता, थाकोहरि बाबू के पास ले जाकर जब उनका विवरण

लगाता तब वे कहते—मैं अभी यह सब कुछ देखना-सुनना नहीं चाहता हूँ, तुम और मुकुर्जी महाराज मिल कर जो कुछ हो, देखो-सुनो और जैसा चाहो, करो, मुझे जो कुछ करना हो वही मुझसे कहो। मैं दस्तख़त भर कर सकता हूँ, और मुझसे कुछ होने का नहीं।

हस्ताक्षर कराकर थाकोहरि कागज़-पत्र लौटा ले जाता, और दुश्चिन्ता के कारण मन ही मन घुलता रहता।

रामयदु को जब यह बात मालूम हुई कि बाबू साहब स्वयं कुछ देखते-सुनते नहीं, यों ही हस्ताक्षर कर दिया करते हैं, तब उन्होंने थाकोहरि से कहा—देखो भैया, तुम्हारे सामने प्रलोभन का एक बड़ा चौड़ा मार्ग खुला हुआ है, तुम्हें खूब सावधान रहना चाहिए। इस समय तुम जो चाहो वही बाबू साहब से करा सकते हो, उन्हें पता तक न चलेगा। परन्तु ऐसी मति हृदय के कोने तक में न टिकने पावे। यह माना कि कृष्णकली तुम्हें पसन्द नहीं है। परन्तु जीवन में ऐसी कितनी बातें पसन्द के अनुसार हो पाती हैं?

रामयदु की उपदेश-पूर्ण वक्तृता सुन कर थाकोहरि चुप रह जाता, किन्तु उसका हृदय जलता रहता।

एक दिन सवेरे प्राण बाबू प्रातःकृत्य से निवृत्त होकर प्रतीक्षा कर रहे थे कि प्रतिदिन की तरह आज भी थाको-हरि आकर मेरे लिए चाय तैयार कर देगा। परन्तु बहुत दिन चढ़ जाने पर भी थाकोहरि का चेहरा न दिखाई पड़ा। थाकोहरि के प्रतिदिन नियमित रूप से आने के कारण प्राण बाबू को उस समय चाय पीने का अभ्यास सा हो गया था। परन्तु आज उसमें व्यतिक्रम होने के कारण पत्नी की मृत्यु ने उनके जीवन में जिस महान् अभाव की सृष्टि की थी वह मानो आज अधिक उत्कट रूप धारण करके उनके समक्ष आ खड़ा हुआ है। उनकी पत्नी ने लगातार बत्तीस वर्ष तक नियमित रूप से उनकी सेवा की है, उन्होंने कभी ज़रा भी आलस्य नहीं किया, इधर उनकी मृत्यु को केवल सोलह दिन हुए, इतने ही में दूसरे लोग थक गये! जीवन के तो अब भी न जाने कितने दिन शेष हैं? माँगने से पहले पाने का आनन्द तो जाता रहा, अब हर एक चीज़ दूसरों से माँग माँग कर लेनी पड़ेगी। उन्होंने अन्त में सोचा—मेरा अपना जीवन तो मृत्यु के बहुत कुछ समीप आ चुका है, परन्तु कृष्णकली की संसार-यात्रा तो अभी अभी शुरू हुई है। प्राण बाबू के हृदय में इस प्रश्न के उदय होने के साथ ही साथ इसका उत्तर भी उदय हो आया।

कृष्णकली के जीवन के अभावों को दूर करेगा जो उसे सबसे अधिक चाहेगा—उसका स्वामी। जन्मपत्री में लिखा है कि कृष्णकली अपने पति के परम प्रिय और सौभाग्यवती होगी। प्राण बाबू ने सोती हुई कन्या के मस्तक पर अपना दाहना हाथ रख दिया। पिता के व्यथित अन्तःकरण का ऐकान्तिक आशीर्वाद मानो उन्होंने उसके मस्तक पर उड़ेल दिया हो। उनके दोनों नेत्रों में सन्ताप की अश्रुधारा डबडबा कर टपकने लगी।

कृष्णकली मस्तक पर पिता के हाथ का स्पर्श पाकर जाग पड़ी और आँख खोल कर हँसने ही जा रही थी कि देखा तो पिता के नेत्रों में आँसू डबडबाये थे। उससे अब हँसा न गया, तुरन्त ही उठकर दोनों हाथों से चिपट कर पिता की गर्दन पकड़ ली। प्राण बाबू बड़ी शीघ्रता के साथ आँखें पोंछ कर हँसने की चेष्टा करते हुए कहने लगे—निद्रा खुली माता अन्नपूर्णा की। तुम्हारे बच्चे प्रसाद पाने के लिए छटपटा रहे हैं, तुम्हारा प्रसाद पाने की आशा से व्यस्त हैं।

कृष्णकली ने स्नेहमयदृष्टि से काकातुआ और ख़रगोश आदि की ओर देखा।

पुराने नौकर बोंचा ने चाय, दूध, पावरोटी, जलेबी, सन्देश आदि एक थाल में सजाये कमरे में प्रवेश किया।

बोंचा को देखते ही प्राण बाबू ने पूछा—हरि बाबू कहाँ हैं?

बोंचा ने थाल उतार कर टेबिल पर रखते रखते थाल की चीज़ों पर दृष्टि रक्खे ही रक्खे कहने लगा—वे अपनी मा को लेकर कल रात को घर गये।

प्राण बाबू आश्चर्य में आकर बोल उठे—घर चले गये? क्यों?

इस बार प्राण बाबू के मुँह की ओर ताक कर बोंचा ने कहा—यह तो मैं नहीं जानता।

प्राण बाबू चिन्तित और दुःखित होकर चुपचाप रह गये। उनके हृदय के भीतर से एक लम्बी साँस निकल गई। उन्होंने अपने मन में कहा, थाकोहरि घर गया, परन्तु मुझसे ज़रा सा बताया भी नहीं। क्षण ही भर बाद उन्होंने यह चिन्ता अपने मन से निकाल दी। उन्हें दुखी होने का अवसर नहीं था, क्योंकि पिता की आकृति पर विषाद की रेखा देखकर कृष्णकली भी शोकाकुल हो उठती थी। उन्होंने ज़ोर देकर हँस कर कहा—आओ भगवती अन्नपूर्णा, अपने बच्चों को प्रसाद बाँटो।

पिता की गर्दन पकड़े झूलती हुई कृष्णकली चारपाई पर से उतर पड़ी और कहने लगी—मास्टर साहब घर चले गये, यह अच्छा हुआ बाबू, अब वे मुझे फूटी आँख भी नहीं सुहाते, मैंने जन्म भर के लिए उनसे छुट्टी कर ली है।

प्राण बाबू कन्या की इन बातों को मन ही मन भावी पति के प्रति अनुव्यञ्जक समझ कर सुख के आवेश से ओतप्रोत हो उठे। उनके मन में यह बात आई—गृहिणी यदि इन दोनों का मिलन देख गई होती तो मुझे इतना क्षोभ न होता। अब तो विवाह में एक वर्ष की रुकावट ही पड़ गई। मैं भी जीते-जी देख सका तो बड़े भाग्य हैं। किशोरावस्था से लेकर आज तक की जीवन-संगिनी सहधर्मिणी को त्याग कर क्या मैं अधिक समय तक जीवित रह सकूँगा?

मेरी अनुपस्थिति में कृष्णकली की देख-रेख कौन करेगा, यह चिन्ता प्राण बाबू के अन्तःकरण में उत्पन्न ही होने जा रही थी कि इतने में कृष्णकली ने कहा—तुम तब तक चाय पीओ, मैं हाथ-मुँह धोकर कपड़े बदल आऊँ।

माता के जैसे स्नेह से प्राण बाबू पुत्री के खाने की सामग्री ध्यानपूर्वक सजाने लगे।

ज़रा ही देर में कृष्णकली के चिड़ियाख़ाने में प्राण बाबू की सारी चिन्ता जहाँ की तहाँ हो गई। पुत्री के खेल में उनका चित्त रम गया।

दस बजने के समय बोंचा ने आकर कहा—[illegible] महाराज कुछ काग़ज़ों पर दस्तख़त कराने आये हैं।

यह सुनकर कृष्णकली ने कहा—जब तक तु[illegible] सब काम से निपटते हो तब तक मैं झट नहाये लेती[illegible] नहीं तो नल पर तुम नहाने बैठ जाओगे, तो मुझे[illegible] हो जायगी।

कृष्णकली कूदती हुई कमरे से निकल गई। [illegible] यदु एक तह काग़ज़-पत्र हाथ में लिये हुए कमरे में [illegible] उनका चेहरा बहुत ही उदास और मुरझाया हुआ [illegible] परन्तु छोटी छोटी आँखे तेज़ चाकू के फल की [illegible] समान भारी और उज्ज्वल होकर चमचमा रही थीं।

रामयदु ने घर में प्रवेश करते ही कहा—[illegible] भैया तो एकाएक घर चले गये हैं, और मुझे चिट्ठी [illegible] गये हैं कि दफ़्तर के काग़ज़ों पर आपसे दस्तख़त [illegible] लाऊँ। इसी लिए मैं जल्दी करके सवेरे ही [illegible] पहुँचा हूँ।

इन बातों से प्राण बाबू के शोकाकुल हृदय प[illegible] गहरी चोट पहुँची। थाकोहरि घर जाने की सूचना [illegible] यदु को तो दे गया, परन्तु उन्हें नहीं दे सका, इससे [illegible] मान की वेदना के मारे प्राण बाबू का हृदय धधकने [illegible] उन्होंने थाकोहरि का नाम तक न लेकर दस्तख़त [illegible] लिए फ़ाउंटेनपेन खोल लिया। रामयदु हर एक [illegible] का केवल दस्तख़त करनेवाला स्थान खोल खोल [illegible] बाबू के सामने रखने लगे और प्राण बाबू आँख मूँदे [illegible] अपना दस्तख़त बनाते गये। बहुत सी चिट्ठि[illegible] दस्तख़त करा चुकने पर जब रामयदु ने प्राण बा[illegible] सामने कुछ तह किये हुए काग़ज़ों का अन्तिम पृष्ठ [illegible] रक्खा तब उनके दोनों हाथ काँप उठे और आँ[illegible] संकुचित होकर चञ्चल हो उठीं। परन्तु प्रा[illegible] जब चुपचाप दस्तख़त करके और काग़ज़ों पर [illegible] आशा से क़लम लिये प्रतीक्षा ही करते रहे तब तक [illegible] का मुख उज्ज्वल हो उठा, उन्होंने तुरन्त ही [illegible] को हटा कर बहुत से बिल और इनवाइस प्राण [illegible] सामने रख दिये। उन पर दस्तख़त हो जाने [illegible] यदु ने पहले के ही समान तह किये हुए कुछ [illegible]

अन्तिम पृष्ठ उनके सामने खोल कर रख दिया। प्राण बाबू ने विना देखे ही उस पर भी दस्तख़त बना दिया। बाद को 'चेकों' पर दस्तख़त कराने की बारी आई। प्राण बाबू जब किसी चेक पर दस्तख़त करने लगते तब अपनी सफ़ाई के लिए रामयदु समझाते जाते कि यह कौन सा 'चेक' कितने रुपये का है और वह रुपया किसको देना है।

प्राण बाबू जैसे ही सब काग़ज़ों पर दस्तख़त कर चुके, रामयदु ने उन सबको समेट लिया और खड़े होकर कहने लगे—अच्छा तो अब आज्ञा दीजिए। आफ़िस जाना है।

प्राण बाबू ने उदास भाव से कहा—अच्छी बात है।

कमरे से निकलते ही रामयदु ने पक्के काग़ज़ पर लिखे हुए दोनों दस्तावेज़ अलग कर लिये और तहा कर कोट की नीचेवाली जेब में रख लिये। इसके बाद वे फिर प्राण बाबू के कमरे की ओर लौटे।

रामयदु को लौट कर आते देखकर प्राण बाबू जिज्ञासु दृष्टि से उनकी ओर ताकने लगे।

कमरे में पैर रखते ही रामयदु कहने लगे—थाकोहरि मुझे एक पत्र लिख गया है, वह पत्र पढ़ लेना आपके लिए आवश्यक है, किन्तु इस समय आपकी मानसिक अवस्था ऐसी है कि उसके कारण मानसिक उद्वेग और अशान्ति बढ़ने की आशङ्का से ऐसा विषय उपस्थित करने की इच्छा भी नहीं होती, साथ ही क्लेश भी होता है।

प्राण बाबू ने किसी प्रकार का उद्वेग न प्रकाशित करके धीर-भाव से ही कहा—हरी की चिट्ठी है? कहाँ है? देखें तो।

रामयदु एक फटा हुआ लिफ़ाफ़ा जेब से निकाल कर प्राण बाबू के हाथ पर रख दिया।

प्राण बाबू ने लिफ़ाफ़ा हाथ में लेकर देखा कि चिट्ठी डाक से भेजी गई है। लिफ़ाफ़े से चिट्ठी निकालते निकालते उन्होंने रामयदु से कहा—बैठिए।

रामयदु ज़रा सा सहमते हुए कहने लगे—बैठने की कोई ज़रूरत नहीं, मुझे तो अभी जाना है।

प्राण बाबू और कुछ न कह कर थाकोहरि की चिट्ठी पढ़ने लगे—

श्रीचरणकमले—

भक्तिकृतज्ञतापूर्ण असंख्यप्रणामपूर्वक निवेदन।

महात्मन्,

आपने मेरे जितने उपकार किये हैं उनकी गणना नहीं की जा सकती। मेरी जितनी कुछ उन्नति हुई है उसका सूत्रपात आपसे ही हुआ है। आप ही की बदौलत बाबू साहब का भी आश्रय पाकर इतना आनन्द कर सका हूँ। किन्तु बाबू साहब और मालिकिन अम्मा ने निरर्थक मुझसे स्नेह नहीं किया है। उनके स्वार्थभाव ने स्नेह को नीरस और किरकिरा कर दिया है। उनकी इच्छा थी अपनी भुतनी जैसी काली-कलूटी लड़की को मेरे गले बाँध कर स्वयं कन्यादान से मुक्त होने तथा मेरे जीवन को अभिशप्त करने की। वे समझते थे कि मेरी इस बेडौल और सौन्दर्य-विहीन कन्या को अपरिमित धन के लोभ से कोई भी विवाह करना न पसंद करेगा। लोभ में पड़कर यदि कोई विवाह कर भी लेगा तो उसका पति क्षण भर के लिए भी उससे स्नेह न कर सकेगा। इसलिए घर में पालकर यह जंजाल मेरे ही मत्थे मढ़ने का सङ्कल्प कर लिया था। उनकी धारणा थी कि अनेक समय तक साथ साथ रहने के कारण उनकी कन्या के बीभत्स रूप को अभ्यास-वश मैं सह लूँगा, और कन्या के माता-पिता के प्रति मेरे हृदय में जितनी कृतज्ञता और भक्ति होगी उसे आगे चल कर उसके प्रति प्रीति के रूप में परिणत कर दूँगा। परन्तु उनका यह उद्देश जब स्पष्ट रूप से मेरे सम्मुख झलकने लगा तब उनकी यह स्वार्थबुद्धि और कूटनीति मेरे हृदय को विरक्त और तिक्त करने लगी। मैं किसी प्रकार अपने मनोभावों का दमन करता रहा, यद्यपि आपकी तीक्ष्ण दृष्टि से उसे गुप्त नहीं रख सका। कदाचित् मेरा मनोभाव जान कर ही आप बार-बार कहते रहे हैं कि काली-कलूटी और कुरूपा होने पर भी कृष्णकली के साथ

विवाह करके तुम्हें उससे प्रेम करना चाहिए। बाद को बंगाल-नेशनल बैंक, बंगलक्ष्मी काटनमिल और मेडिकल कालेज की चोरियों का वृत्तान्त समाचार-पत्रों में पढ़कर जब मेरे दिमाग़ में तरह तरह के विचार एकत्र हो रहे थे तब भी आपने मुझे ऐसी दग़ाबाज़ी के साथ चोरी करने का सङ्कल्प त्याग देने के लिए तरह तरह के उपदेश और शास्त्रों की दोहाई दी थी। इसका परिणाम यह हुआ कि तब तक मेरा संकल्प और उद्देश जो कुछ अस्पष्ट और अनिश्चित था वह आपके उपदेशों से सुस्पष्ट और निश्चित होगया। मैंने स्थिर कर लिया कि जीवन के इस चिर अभिशाप से अपने को मुक्त करने का यह सुयोग मैं कदापि नहीं हाथ से जाने दूँगा। मैंने अपने आफ़िस के रुई के एक बिल का दो लाख सत्तावन हज़ार रुपयों का चेक बाबू साहब के नाम से बैंक से भुना लिया है और इसी बीच में परदेश जाने के लिए पासपोर्ट का भी प्रबन्ध कर लिया है। अब मैं जन्म भर के लिए भारत से बिदा हो चुका हूँ। परदेश में ही अपनी रुचि के अनुसार किसी सुन्दरी का पाणिग्रहण करके वहीं वास करूँगा। कहाँ जाऊँगा यह न बताऊँगा। अपने इस उद्देश के सम्बन्ध में मा से भी ज़रा सी साँस तक नहीं ली। उन्हें थोड़े से रुपये देकर गाँव भेज दिया है। बाबू साहब ने मेरा बड़ा उपकार किया है। उनकी शोकमय अवस्था में यह समाचार मैं एकाएक उन्हें नहीं दे सका। समय देखकर आप ही समझा कर उनसे यह सब कह दीजिएगा। वे तो अपने आप ही कन्या-सहित अपनी सारी सम्पत्ति मुझे देने को प्रस्तुत थे, उनकी कन्या उनके पास ही छोड़कर ज़रा सा राह ख़र्च भर लेकर चलता हो गया हूँ। बाबू साहब तो बड़े भारी दानी हैं ही, समझ लेंगे कि इतना रुपया मुझे दान ही कर दिया है। स्पेकुलेशन में भी रुपयों का ख़र्च पड़ता है, समझ लीजिएगा कि वर खोजने में ही इतना रुपया नष्ट होगया। उनसे यह भी कह दीजिएगा कि अब बिना देखे-सुने किसी कागज़ पर दस्तख़त भी न किया करें। आपके तथा बाबू साहब के चरणों में असंख्य प्रणाम समर्पित करके मैं अब बिदा हो रहा हूँ।

चिरकृतज्ञ थाकोहरि

पुनश्च—मेरे बैठने के कमरे के दाहनी तरफ़ दराज़ में दफ़्र के कुछ काग़ज़-पत्र रक्खे हैं। उन्हें [देख] कर उचित व्यवस्था कीजिएगा।

थाके[हरि]

इस पत्र को आद्योपान्त पढ़कर प्राण बाबू कुछ [देर] तक गम्भीरभाव से बैठे रहे और फिर पढ़ना आरम्भ [कर] दिया, मानो वे अपनी दृष्टि और बोधशक्ति पर वि[श्वास] ही नहीं कर पाते थे। दूसरी बार भी सारा पत्र [पढ़ने] पर उन्हें सन्देह होता रहा कि क्या सचमुच यह थाकोहरि का ही लिखा हुआ है? यह थाकोहरि के हाथ की लिखावट है या किसी ने जाल किया है, [इसका] निर्णय करने के लिए वे उस पत्र को एक निपुण परी[क्षक की] दृष्टि से देखने लगे। जीवन भर में परोपकार के [कारण] उन्हें कितनी ही बार धोखे खाने पड़े थे, कितनी ही [बार] कृतघ्नता के आघात उन पर हुए थे, परन्तु कोई ऐ[सा] कृतघ्न हो सकता है जो इस तरह धोखा दे, इस[की] की उन्होंने धारणा तक कभी नहीं की थी।

प्राण बाबू को गम्भीर होकर चुपचाप बैठे दे[खकर] रामयदु ने कहा—पुलिस में ख़बर देने से अब [भी वह] किसी बन्दरगाह में पकड़ा जा सकता है।

रामयदु की इस बात के आघात से प्राण बा[बू की] चेतना लौट सी आई। वे चौंक कर उठ बैठे और [कहने] लगे—काशी के ज्योतिषी ने गणना करके जो बतला[या था] वह ठीक ही उतरा। उसने कहा था कि थाको[हरि के] साथ कृष्णकली का विवाह नहीं हो सकेगा, [और] इसकी अपेक्षा कहीं अधिक योग्य वर मि[लेगा।] ख़ैर झंझट टूटा। रुपये के लोभ से विवाह कर[ने वाले] को यदि कृष्णकली की अवहेलना करता तो [और] ही बुरा होता। अब तो वह केवल रुपया ही ले ग[या,] कृष्णकली के जीवन का सुख तो नहीं अपहरण कर गया। इतने ही से मैं उस पर बहुत सन्तुष्ट हूँ। मुकुर्जी म[हाशय,] आप मनुष्य का चरित्र जान लेते हैं। मुझे आप[ने] ... आपको बहु[त] बार सावधान किया था, किन्तु मैंने आपको ...

सावधान तथा सन्देहशील समझा था। इसमें मेरा ही अपराध है। थाकोहरि ज़रा भी दोषी नहीं है।

कुछ क्षण तक अवाक् होकर रामयदु प्राण बाबू की ओर ताकते रहे। अन्त में कहने लगे—थाकोहरि दोषी नहीं है! इतना रुपया आप उसे यों हीं छोड़ देंगे? पुलिस को इत्तिला करने से—

प्राण बाबू ने एक लम्बी साँस लेकर कहा—जीवन में मैंने सबकी भलाई ही की है। सबकी सुख-सुविधा बढ़ाने का ही प्रयत्न किया है, किसी को किसी प्रकार का कष्ट देने की इच्छा तक नहीं की। जिसे मैंने पुत्र के समान प्यार किया है उसे जीवन के अन्तिम काल में क्लेश न दे सकूँगा। जाने दो, जहाँ वह रहे, सुखी रहे।

रामयदु प्राण बाबू के महत्त्व की प्रत्युच्चता तक न पहुँच सकने पर विस्मय और आश्चर्य से पूर्ण होकर कहने लगे—परन्तु आफ़िस के इतने रुपये?

क्षण भर चुप रह कर प्राण बाबू ने कहा—अभी आप यह बात किसी से कहिएगा नहीं। दो-तीन दिन में मैं रुपये अदा कर दूँगा। मेरे दो लाख रुपये बैंक में जमा हैं, इस मकान का दाम पचास हज़ार रुपये तक मिल जायगा। मैं आज ही दलाल लगा कर बेचने की व्यवस्था किये लेता हूँ। ज़रा आप भी प्रयत्न कीजिएगा। दस-पाँच हज़ार कम मिलने पर भी दे दूँगा। बाँसतलालेन-वाले मकान के भी तीस-बत्तीस हज़ार रुपये मिल जायँगे।

आश्चर्य में आकर रामयदु ने कहा—तब तो आपका सर्वस्व ही चला गया। रहा क्या?

म्लान हँसी हँस कर प्राण बाबू ने कहा—रह गया मान मुकुर्जी महाराज, रह गई इज़्ज़त।

प्राण बाबू की इस बात से रामयदु के हृदय में श्रद्धा का सञ्चार नहीं हुआ, बल्कि अवज्ञा का ही उदय हुआ। उन्होंने मन ही मन कहा पहले से नहीं मालूम था कि इस आदमी की व्यावहारिक बुद्धि इतनी कच्ची है। उन्होंने कहा—परन्तु दूसरे की चोरी की गुनहगारी आप क्यों देने जायँगे? साहब लोगों से कह दीजिए न कि थाकोहरि चोरी करके भाग गया है। उनके जी में जो आवे, वे करें।

प्राण बाबू ने कहा—मुकुर्जी महाराज, आप यह भूले जा रहे हैं कि मैंने ही थाकोहरि को नियुक्त करके उत्तरदायित्व का काम दिया था। मैं उसका ज़ामिन हूँ।

रामयदु ने कहा—परन्तु ज़मानतनामा तो कुछ लिखा-पढ़ा है नहीं।

प्राण बाबू ने हँसकर कहा—लिखा-पढ़ी की बात तो जाने दीजिए, ज़मानत के सम्बन्ध में मुँह से भी किसी से कुछ नहीं कहा।

रामयदु ने और भी अधिक आश्चर्य में आँखें विस्फारित करलीं और कहने लगे—किन्तु।

प्राण बाबू ने अपने म्लान मुख से ज़रा सा हँसकर कहा—किन्तु बिना कुछ कहे-सुने भी एक प्रकार का समझौता है कि अपने सब काम का मैं ही ज़िम्मेदार हूँ।

रामयदु प्राण बाबू के महत् चरित्र के चक्कर में पड़ कर कहने लगे—परन्तु इस तरह यदि सब कुछ नष्ट कर दोगे तो कृष्णकली के लिए क्या बचेगा?

प्राण बाबू कुछ क्षण गम्भीर भाव से सोचते रहे। अन्त में उन्होंने कहा—उसके लिए रहेगा पिता की सत्यरक्षा का पुण्य और आप दस महानुभावों का आशीर्वाद। रुपये के बल पर वर ख़रीदने का सङ्कल्प मैंने त्याग दिया था। धन के गर्व से मैंने सोचा था कि शायद सुख-सौभाग्य-प्रीति तथा भक्ति आदि भी रुपये के बल से ख़रीदी जा सकती है। मेरा यह भ्रम थाकोहरि ने तोड़ दिया। सन्तान-वत्सलता से मैं अन्धा था, इसलिए लड़की की कुरूपता स्पष्ट रूप से नहीं दिखाई पड़ी। थाकोहरि ने आज वह अन्धता भी दूर कर दी। लड़की को अब मैं पढ़ाऊँ-लिखाऊँगा। बड़ी होने पर वयोधर्म के अनुसार यदि वह किसी से प्रेम करके उसका प्रेम आकर्षित कर सकेगी और वह व्यक्ति भी कुरूपता की आड़ में सद्गुणों का परिचय पाकर इससे विवाह करने की इच्छा प्रकट करेगा तब तो विवाह होगा, अन्यथा लड़की आजन्म कुमारी ही रहेगी।

इन बातों का कोई उत्तर न सूझ पड़ने पर रामयदु अवाक् होकर खड़े रहे।

थोड़ी देर तक चुपचाप रहने के बाद प्राण बाबू ने कहा—मुकुर्जी महाराज, तो अब आप चलिए। इस समय मेरा प्रत्येक मुहूर्त बड़ा आवश्यक है।

रामयदु मुख पर ज़रा सा उदासी का भाव दिखलाते हुए कमरे से निकल गये। परन्तु प्राण बाबू की तरफ़ पीठ फेरते ही, उनका मुख उज्ज्वल और दृष्टि चन्चल हो उठी। दरवाज़े से बाहर पैर रखते ही उनके मन में आया—अब केवट का बच्चा फेर में पड़ गया है। अब मिट्टी के मोल दोनों मकान बिक जायँगे। देखूँ, मैं यदि कोई गोटी भिड़ा सकूँ। जो दो मकान इसने मुझे दिये हैं उन्हें रेहन करके भी एक मकान ख़रीदा जा सकता है। इसमें तो वही बात होगी कि मियाँ की जूती मियाँ का सिर।

सड़क पर आते ही एक टेक्सी करके बड़ी तेज़ी से भागे। समय बहुत थोड़ा था, जल्दी से जल्दी उन्हें सब काम कर लेने थे।

( २४ )

बड़ी तेज़ी से चल कर रामयदु की टैक्सी सबसे पहले पहुँची साहब लोगों के बँगले पर। उन्हें असमय में व्यस्त-भाव से आते देख कर साहबों ने पूछा—हेलो, रायबहादुर ऐसे असमय में कौन सा काम पड़ गया?

रामयदु ने बहुत ही व्यस्त और व्यग्र भाव से कहा—थाकोहरि फरार हो गया है।

साहब लोगों ने आश्चर्य से चकित होकर कहा—ऐं, किसने कहा?

थाकोहरि ने उनके पास जो पत्र भेजा था उसका उल्लेख न करके उन्होंने कहा—अभी मैं कुछ काग़ज़ों पर प्राण बाबू से दस्तख़त कराने गया था तब उन्हीं से सुना है।

साहबों ने उत्सुक-भाव से पूछा—प्राण बाबू क्या कह रहे थे?

"वे कहते थे कि यह बात अभी किसी से न कहना। थाकोहरि ने करमचन्द धरमचन्द ठाकरसी की रुई के चेक पर मुझसे दस्तख़त करा कर उसे भुना लिया है। मैं चुपके चुपके ये रुपये अदा कर दूँगा।"

"ठाकरसी का रुईवाला बिल तो बड़ा लम्बा [...] क्या इतने सब रुपये थाकोहरि उड़ा ले गया? प्राण बाबू से उसने दस्तख़त कैसे करवाया?"

"प्राण बाबू तो पत्नी के शोक से इतने व्याकुल [...] कोई काम-काज देखते ही नहीं। परन्तु थाको[...] वे विश्वास भी बहुत करते थे।"

"रायबहादुर आपने तो पहले ही थाकोहरि [...] रखने की सलाह दी थी, परन्तु हम लोगों ने [...] बात पर ध्यान तक नहीं दिया था। आपको [...] धन्यवाद देते हैं। आज भी सबसे पहले [...] आपही हम लोगों को सूचना देने आये हैं। [...] लिए भी हम आपके बड़े कृतज्ञ हैं। अच्छा, हम [...] अभी आफ़िस जा रहे हैं और देखते हैं कि [...] कितने रुपये लेकर भागा है। पुलिस को भी [...] देनी है! आप भी आज आफ़िस ज़रा सवेरे आ[...] रायबहादुर, आफ़िस का सारा हिसाब जाँचना [...] अपने आडीटरों को भी फ़ोन किया जा रहा है।

'जैसी आज्ञा हो' कह कर रामयदु ने [...] कर सलाम की और साहब लोगों से विदा होगये।

टैक्सी दौड़ाते हुए रामयदु नगर के सब[...] मारवाड़ी मूलजी सेठी के पास गये। इनके यहाँ [...] का काम होता था।

रामयदु को देखते ही मूलजी ने उनकी अभ्य[...] और हँस कर कहने लगे—आइए मुकुर्जी महाराज! [...] कैसे कृपा की? मेरे बड़े भाग्य थे जो सवेरे सवेरे [...] दर्शन मिला। आपकी कौन सी सेवा की जाय!

जूते खोल कर फ़र्श पर बैठते बैठते रामयदु [...] लगे—मुझे पचास-साठ हज़ार रुपये की ज़रूरत है [...] आज अभी ही चाहिए। प्राण बाबू अपना मकान [...] जा रहे हैं, मैं उसे ख़रीदूँगा।

मूलजी ने आश्चर्य में आकर पूछा—प्राण बाबू [...] बेच रहे हैं? क्यों?

रामयदु ने उत्तर दिया—बहूजी का तो अन्त [...] हो गया। अब वे रह गये और एक लड़की। [...] बड़ा मकान रख कर क्या करेंगे? शायद नौ[...]

वे न करें। जान पड़ता है कि किसी तीर्थ में जाकर वास करनेवाले हैं।

मूलजी ने कहा—हाँ, यह बात तो सम्भव है। तीर्थ में वास करना उत्तम है।

रामयदु ने मन ही मन कहा—तुम्हारी खोपड़ी। तीर्थ में वास करना उत्तम होता तो तुम लोग आबू पहाड़ छोड़ कर कलकत्ते में रुपयों के कुबेर होकर क्यों वास करते हो? बाद को प्रकट रूप से उन्होंने कहा कि इन रुपयों के लिए या तो मेरा फड़ियापुकुरवाला मकान और अन्न-पूर्णा-आश्रम रेहन करवा लीजिए या प्राण बाबूवाले मकान को ही बैनामा करवा कर रेहन कर लीजिए। रुपये इकट्ठा करके बाद को मैं छुड़ा लूँगा।

मूलजी ने उत्तर दिया—आप मुनासिब बात कह रहे हैं। हमको दोनों बातें मंज़ूर हैं। आपका हैंडनोट भी काफ़ी होगा। रुपया क्या इसी वक़्त चाहिए?

रामयदु के मस्तक हिला कर इशारा करते ही सेठजी ने कहा—अच्छा, तो गद्दी पर चलिए। आपके साथ कोई गाड़ी-वाड़ी है?

रामयदु ने उत्तर दिया—जी हाँ, टैक्सी ले आया हूँ, आप ज़रा सा कष्ट कीजिए।

"चलिए" कह कर सेठजी ने ज़ोर से पुकारा—ओ रे हरखराम, ज़रा मेरा कुर्ता, चादर और जूते तो ले आ।

दो ही मिनट के बाद एक नौकर ने इस्त्री किया हुआ धोबी का तुरन्त का चौपर्ता अद्धी का एक लम्बा कुर्ता, रेशमी और ज़री के किनारे का एक दुपट्टा और एक जोड़ा सलेमशाही जूता लाकर मूलजी को दिया। मूलजी के तैयार होते ही उन्हें लेकर रामयदु वहाँ से रवाना होगये।

मूलजी की गद्दी से रुपये लेकर उनको साथ में लिये हुए रामयदु टैक्सी दौड़ा कर प्राण बाबू के यहाँ पहुँचे।

प्राण बाबू के कमरे में जाकर रामयदु ने कहा—मूलजी सेठी के यहाँ जाकर आपके मकान के सम्बन्ध में जैसे ही बातचीत की कि वे ख़रीदने को तैयार होगये। रुपये लेकर वे आगये हैं, एटर्नी को भी फ़ोन कर दिया है, वे आते होंगे। अभी ही लिखा-पढ़ी हो जायगी और आज ही रजिस्ट्री भी हो जायगी।

प्राण बाबू ने आश्वस्त होकर कहा—आपने मुझे उबार लिया मुकुर्जी महाराज। आपके इस ऋण से मैं आजन्म मुक्त न हूँगा।

मुँह पर ज़रा सा उदासी का भाव व्यक्त करते हुए रामयदु ने कहा—इसके लिए आप क्यों इतने व्यस्त हो रहे हैं? यह तो मेरा कर्तव्य है। आपकी कृतज्ञता के ऋण से मैं बाल-बाल बँधा हूँ, उससे थोड़ा-बहुत मुक्त होने के ही लिए यह सब प्रयत्न कर रहा हूँ। सेठजी को नीचे बैठा आया हूँ।

प्राण बाबू व्यस्तभाव से उठकर खड़े होगये और धोती की ढीली लाँग को बटोर कर कस कर खोंसते खोंसते कहने लगे—चलिए, चलिए।

नीचे के कमरे में जाकर प्राण बाबू ने जैसे ही प्रवेश किया, मूलजी व्यस्तभाव से उठकर खड़े हो गये और सामने की ओर ज़रा सा मस्तक झुका कर कहा—आपकी स्त्री की मृत्यु का समाचार सुना है बाबू साहब, बड़ा शोक हुआ। भाग्य में जो कुछ लिखा है वह होकर रहता है। रामजी ने ललाट में यही लिखा था। ख़ैर, रायबहादुर साहब कहते थे कि मकान वग़ैरह बेंच कर आप तीर्थवास करने जा रहे हैं। आपका यह विचार तो बड़ा उत्तम है।

सेठ की बातें सुनते ही प्राण बाबू रामयदु पर प्रसन्न हो उठे। रामयदु ने उनके मकान बेचने का वास्तविक कारण न बता कर बुद्धिमानी के साथ उनकी प्रतिष्ठा बचा ली है, इससे उनका हृदय कृतज्ञता से पूर्ण हो उठा। साथ ही तीर्थवास की बात हृदय में उत्पन्न होते ही उन्होंने बड़े आग्रह के साथ कहा—हाँ सेठजी, मैं तीर्थ-वास ही करूँगा। बुढ़ाई में अब किसके लिए गृहस्थी में लिपटा रहूँ?

सेठजी ने एक लम्बी साँस लेकर कहा—आपकी लड़की की शादी हो गई?

प्राण बाबू ने कहा—अभी नहीं। इसकी शादी हो जाती तो मेरा यह बचा-खुचा बन्धन भी कट जाता।

ठीक उसी समय शिवप्रसाद दत्त एटर्नी ने अपने एक क्लर्क के साथ दस्तावेज़ लिखने के काग़ज़-पत्र लिये हुए कमरे में प्रवेश किया।

एटर्नी को देखते ही मूलजी ने कहा—देखिए, एटर्नी साहब आगये हैं। मैं प्राण बाबू के दोनों मकान ख़रीदूँगा, लेकिन रायबहादुर के नाम से ख़रीदूँगा।

प्राण बाबू ने रामयदु की ओर ज़रा सा दृष्टि फेर देख कर कहा—अच्छी बात है। उनका हृदय संशय और सन्देह से आन्दोलित हो उठा। वे सोचने लगे—सेठ रायबहादुर के नाम से क्यों मकान ख़रीद रहा है? निस्सन्देह इसमें रामयदु की कोई चाल है। वे यह मकान एकाएक मेरे हाथ से नहीं जाने देना चाहते, इसलिए अवश्य किसी गुप्त उपाय का अवलम्बन किया है। यह बात मन में आते ही प्राण बाबू का हृदय रामयदु के प्रति प्रीति और कृतज्ञता से उद्वेलित हो उठा। प्रसन्न और उज्ज्वल दृष्टि से वे रामयदु की ओर ताकने लगे।

रामयदु का मुख निष्प्रभ होकर सूख गया। उन्होंने तुरन्त ही मुँह नीचा कर लिया। उनके हृदय में आशङ्का होने लगी कि शायद यह केवट का बच्चा मेरी काट-छाँट और चालबाज़ी समझ गया है।

रामयदु को उदास-भाव से मुँह नीचा करते हुए देखकर प्राण बाबू और भी प्रसन्न हो गये। वे समझने लगे कि मुकुर्जी महाराज का चरित्र कैसा गम्भीर, आडम्बर-शून्य और निरहङ्कार है। वे विनय की साक्षात् मूर्ति हैं। दूसरों का कल्याण करके प्रशंसा तक नहीं प्राप्त करना चाहते। कृतज्ञता की दृष्टि तक नहीं सही जाती, सङ्कोच से सिमट जाते हैं।

मूलजी ने कहा—रायबहादुर ने जैसे ही आपका नाम लिया, मैं रुपये बाँध कर तुरन्त ही चल पड़ा। आपका ज़रूरी काम है, इससे मैंने दलाल-वलाल किसी को नहीं बुलाया और न इसकी ज़रूरत समझी। मुझे मोल-भाव तो कुछ करना नहीं है। मुनासिब समझ कर आप ही इसका दाम कह दीजिए बाबूजी।

प्राण बाबू ने कहा—आज दिन मेरे इस मकान और बाँसतल्लावाले मकान के एक लाख रुपये आसानी से मिल सकते हैं। परन्तु आप यदि इस समय साठ हज़ार रुपये भी दे देंगे तो मेरा काम चल जायगा।

सेठजी ने उत्तर दिया—अच्छा बाबू साहब, [illegible] भी बात रही और मेरी भी रही। मैं पचास [illegible] रुपया दूँगा।

प्राण बाबू ने कहा—अच्छा यही सही।

प्राण बाबू की यह बात सुनते ही रामयदु प्रसन्न [illegible] किन्तु चेहरे पर उदासी का भाव प्रकट कर [illegible] प्रसन्नता को भीतर ही भीतर दबा लिया और [illegible] लगे—अच्छा तो अब मैं आफ़िस जाता हूँ।

उनकी ओर देख कर प्राण बाबू ने कहा—अच्छी [illegible] है। लिखा-पढ़ी हो जाने पर दस्तावेज़ की रजिस्ट्री [illegible] कर जहाँ तक हो सकेगा, मैं भी शीघ्र ही आफ़िस [illegible] परन्तु यह बात अभी ?

रामयदु बोल उठे—यह सब आपको मुझसे [illegible] ज़रूरत नहीं है। अच्छा तो अब मैं चलता हूँ [illegible] शिव बाबू नमस्कार।

कमरे में बैठे हुए तीनों आदमियों से एक ही [illegible] में बिदा होकर रामयदु वहाँ से रवाना हो गये। [illegible] टैक्सी दौड़ती हुई चली बालीगंज के अन्नपूर्णा [illegible] की ओर।

स्त्री के पास पहुँचते ही प्रफुल्लित स्वर से [illegible] कहने लगे—क़िला फ़तेह हो गया रे पगली, क़िला [illegible] हो गया।

विस्मय और कौतूहल से अवाक् होकर [illegible] उत्सुक दृष्टि से पति की ओर ताकती रही। कोट [illegible] की ज़ेब से दो तख़्ते काग़ज़ निकाल कर रामयदु ने [illegible] इस बिल पर हस्ताक्षर करके प्राण बाबू ने अपनी सारी [illegible] और जंगम सम्पत्ति मुझे दान की है और इस [illegible] के अनुसार बैनामा किया है। अब इन दोनों में से [illegible] आसानी होगी उसे पेश करके सारी सम्पत्ति अपने [illegible] कार में कर लूँगा। परन्तु अन्त में दो मकान [illegible] देने पड़े, क्योंकि इस आदमी का बहुत कुछ [illegible] इससे एक-दम निर्धन नहीं कर सका। एक [illegible] में आया था कि इन दोनों मकानों को भी इस [illegible] मारवाड़ी को ख़रीदवा दूँ, पीछे अपना अधिकार [illegible] मिल करके सालो को धता बता दूँगा। परन्तु सोच[illegible]

कर जब देखा तब मालूम हुआ कि ऐसा करने में बदनाम हो जाने का भय है। इसी लिए दो मकानों का लोभ सँभालना पड़ा। अब केवट के बच्चे का दम निकलने भर की देर है। बाद को थोड़ा-बहुत देकर इस कलमुँही का विवाह कर दूँगा। तब इसके अलग होते ही रामयदु का अकण्टक राज्य हो जायगा रे पगली, रामयदु का अकण्टक राज्य हो जायगा। आफ़िस के बड़े बाबू भी होंगे यही रामयदु। साहब लोग भी साले रामयदु की मुट्ठी में आगये हैं। प्रश्न केवल यह है कि केवट साले को संसार की यन्त्रणा से मुक्त कैसे किया जाय। बुड्ढे को मारने पर भी तो .खून के अपराध से मुक्त नहीं हुआ जा सकता!

मनमोहिनी ने भयभीत होकर कहा—नहीं भाई नहीं, ऐसी पापवासना को हृदय के कोने तक में स्थान न देना। माता-अन्नपूर्णा यों ही मनोवाञ्छा पूर्ण कर देंगी। हम लोग निष्कपट भाव से सेवा करते हैं।

रामयदु ने विरक्त स्वर से कहा—देवता के भरोसे पर किसी काम के लिए बैठे रहने में बड़ी देर लगती है रे पगली। अपने हाथ से झटपट काम निकाला जा सकता है।

मनमोहिनी ने शङ्काकुल कण्ठ से कहा—नहीं, नहीं, तुम्हें अपने हाथ से कोई काम निकालने की ज़रूरत नहीं है। चार दिन सब्र ही कर जाओ, बुड्ढे पर जो विपत्ति पड़ी है उसके कारण वह बचेगा ही कितने दिन?

रामयदु ने कहा—तुम्हारा कहना भी बुरा नहीं है, परन्तु ऐसे भी तो बहुत से बूढ़े हैं जो ज़रा सी लड़की के साथ विवाह करके गृहस्थी जमा लेते हैं। सती होना तो अँगरेज़-सरकार ने बन्द ही कर दिया है।

मनमोहिनी ने कहा—ख़ैर चाहे जो कुछ करें, तुमने अपने बल पर बहुत यश प्राप्त किया है। अब इस अन्तिम कार्य को भगवान् के ही भरोसे पर छोड़ दो।

रामयदु ने लम्बी साँस लेकर कहा—लाचार होकर छोड़ना ही पड़ेगा। परन्तु तुम सुबह-शाम देवताओं से प्रार्थना करती रहो कि प्राण बाबू को जितनी जल्दी हो इस संसार से खींच ले जायँ।

विरक्ति का भाव प्रदर्शित करते हुए मनमोहिनी ने कहा—नहीं, यह सब अमङ्गल-कामना नहीं कर सकती।

रामयदु ने कहा—वाह, मुझे बिलकुल अवसर न मिल सकने के ही कारण तो मैं यह भार सहधर्मिणी को सौंपता हूँ। दूसरे का अमंगल किये बिना अपना मंगल कब होता है?

मनमोहिनी रामयदु की बातों का उत्तर देने ही जा रही थी कि उन्होंने कहा—अच्छा, अब बहस की ज़रूरत नहीं है। इस समय मुझे आफ़िस जाना है। मस्तक पर दो लोटा पानी डाले आता हूँ, तुम महराज को थाली परोसने को कह दो।

रामयदु और मनमोहिनी दो दरवाज़ों से दो ओर चले गये। [ क्रमशः

—ठाकुरदत्त मिश्र

# विचार-विमर्श

## १—रघुवर

लोग रामचरितमानस के द्वितीय सोपान को अयोध्याकांड कहते हैं। अयोध्याकांड साहित्य-संसार का तिलक समझा जाता है। उस पर कुछ कहना-सुनना उसके सौंदर्य को भ्रष्ट करना है। पर सत्य की जिज्ञासा के कारण कुछ विवेचन करना अनिवार्य सा प्रतीत होता है। अनिवार्य इसलिए कि कुछ लोग उस पर कुछ विचार कर चुके हैं, संदेह का बीज बो चुके हैं और कुछ समाधान की कामना को पनपा रहे हैं। प्रस्तुत कांड की सबसे बड़ी विवाद की बात यह है कि इस कांड में गुरु की वंदना फिर से क्यों की गई, उसकी कौन सी आवश्यकता थी ?

मैनपुरी-निवासी श्रीसुखदेवलालजी का कथन था कि तुलसीदासजी ने अयोध्या-कांड की रचना सबसे पहले स्वतंत्र रूप से की और बाद में उसको मानस का एक सोपान बना दिया। उनकी प्रतिज्ञायें कुछ विलक्षण हैं। अतः उनसे बचा रहना ही अच्छा है। उनके मानसरोवर के घाटों पर फिरने से हमारा काम नहीं बन सकता। यदि हम मान भी लें कि इस कांड की रचना पहले हुई थी तो भी यह प्रश्न यहीं रह जाता है, क्योंकि तुलसीदास ने तो इसको 'मानस' का द्वितीय सोपान कर ही दिया है। अब तो यह मानस का एक अंग ही है। इसका उचित समाधान मिलना चाहिए। जो लोग इसको तुलसीदास की भूल समझते हैं उनकी तो बात ही दूसरी है। उनके लिए यह प्रश्न ही क्या ?

स्वर्गीय लाला भगवानदीनजी का कथन प्रस्तुत दोहे में रामचन्द्रजी का यश वर्णन करते गुरु की वंदना नहीं की गई है। यहाँ पर 'गु तात्पर्य भरतजी का है। खेद है कि 'दीनजी' अपने मत का प्रतिपादन भलीभाँति पहले ही हिन्दी को दीन बनाकर स्वर्गवासी हो यदि उनकी धारणा ठीक हो तो प्रस्तुत प्रश्न जाता है।

इस कांड में एक और विशेष बात है। मानस के अध्ययन से स्पष्ट अवगत हो जाता 'मानस' में चार घाट हैं। इन घाटों के विष विद्वानों में मतभेद है। पर उस मतभेद विवेचन में कुछ अड़चन नहीं पड़ती। क्योंकि प्रायः सभी को मान्य है कि इन चार घाटों भिन्न कथा कहनेवाले हैं। लेखक की समझ घाटों की कथायें भिन्न-भिन्न ध्येय रखती हैं; जना तुक बैठाने के लिए नहीं हुई है। उन घाटों में से एक घाट तुलसी का भी बहुत से लोग तो यह सुन कर चकित हो जाते हैं कांड में तीन घाटों का नाम ही नहीं आता और बात ही क्या ? यहाँ पर यह प्रश्न स्वतः कि इसका कारण क्या है। क्या पार्वती, भरद्वाज गरुड़ इस कथा के जिज्ञासु नहीं हैं ? यदि क्यों ?

सुखदेवलालजी से विचारक इस बात पर संतुष्ट हो लें कि इस कांड की रचना पहले हुई भूल के कारण शेष घाटों की कथा का समावेश दास इसमें न कर सके। पर तुलसीदास

से परिचित लोग भूल कर, स्वप्न में भी, उनकी सामंजस्य बुद्धि की उपेक्षा नहीं कर सकते। वे लोग तो इस समाधान को हँसी समझते हैं। उनके विचार में इसका कुछ और ही रहस्य है।

रामचरितमानस के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि पार्वती, भरद्वाज एवं गरुड़ बुद्धि-जाल में फँस गये थे। उन लोगों की शंका वही थी जो आज-कल के नवशिक्षितों की बुद्धिवाद के कारण होती रहती है। वह संक्षेप में यही है—"राम सो अवध नृपति-सुत सोई ? की अज अगुन अलख गति कोई" ? सारांश यह कि ब्रह्म का अवतार राम के रूप में किस प्रकार से संभव है ? उनकी कथा से किस प्रकार इसका निदर्शन हो जाता है ? अतः इन तीनों श्रोताओं को एक ओर रखते हैं और दूसरी ओर उनको रखते हैं जो केवल राम-कथा के प्रेमी हैं, जो उनको दशरथ-सुत के साथ ब्रह्म भी समझते हैं। तुलसीदास तो 'स्वान्तःसुखाय' ही राम-कथा कहना चाहते हैं।

विलोम प्रायः सत्य ही होता है। हमारी समझ में यहाँ पर वह ठीक ही है। जब इस कांड में उक्त त्रयी की चर्चा नहीं है तब यह निष्कर्ष निकालना अनुचित नहीं कहा जा सकता कि इसमें उस राम की कथा नहीं है जिसके विषय में उन लोगों को संदेह है। इसमें तो यदि वर्णन है तो केवल दशरथ-सुत राम ही का जो ब्रह्म भी हैं। अतः इस कथा के अधिकारी तुलसीदास ही हैं, उक्त त्रयी नहीं।

रामचरित-मानस के प्रथम के दो सोपान वास्तविक विषय में प्रवेश कराते हैं। द्वितीय सोपान के अंत में गोस्वामीजी कहते हैं "कलिकाल तुलसी से सठन्ह हठि रामसनमुख करत को"। सचमुच ही भरत से परिचित होने के उपरांत राम का दास बनना ही पड़ता है। यही नहीं, ये तो यहाँ तक कहते हैं—

"भरत-चरित करि नेमु, तुलसी जे सादर सुनहिं"।
सीयराम-पद-प्रेम, अवसि होइ भव-रस-विरति"॥

तो क्या इस कांड में 'भरत-चरित' वर्णित है ? यदि नहीं तो उसको कहाँ पर किससे सुनें ?

कुछ समालोचकों का मत है कि इस कांड के उत्तरार्द्ध में ही 'भरत-चरित' का वर्णन है। अतः समग्र कांड में इसको प्रधानता नहीं मिल सकती। पर तुलसीदासजी अरण्यकांड की पहली चौपाई में यही कहते हैं कि "पुरनर-भरत-प्रीति मैं गाई"। निःसंदेह प्रस्तुतकांड में पुरनर और भरत की प्रीति वर्णित है। अतः हमारी समझ में अयोध्याकांड में 'भरत-चरित' ही प्रधान है। तुलसीदास तभी तो दूसरी ही चौपाई में कह देते हैं, "अब प्रभु चरित सुनहु अतिपावन"

गोस्वामीजी वंदना में कहते हैं—

"श्री गुरु-चरन-सरोज-रज निज मन मुकुरु सुधारि।
बरनौं रघुवर-विमल-जसु, जो दायकु फल चारि"॥

विमल-यश पर विशेष विचार करना चाहिए। रामचरित-मानस में जहाँ तक हमें स्मरण है एक भी स्थल ऐसा नहीं है जहाँ पर रामचन्द्रजी के यश का विशेषण विमल आता हो; यदि आया है तो गुण के लिए। वहाँ पर तो यश का विशेषण 'विशद' है। भूमिका ही में तुलसीदास लिखते हैं, "बरनउँ रघुवर विसद-जसु, सुनि कलिकलुष नसाइ"। 'विमल' विशेषण भरत तथा भक्तों के यश का आता है। "तात तुम्हार (भरत) विमल यश गाई, पाइहि लोकउ वेद बड़ाई"। हमारी इस प्रतिज्ञा में जिसे संदेह हो उसे 'मानस' से भिड़ना चाहिए। अब तो हम 'विमल' के बल पर कहने का साहस करते हैं कि यह भरत का यश वर्णित होने जा रहा है। विमल यश वर्णन करने के लिए 'मन-मुकुर' का विमल करना या सुधारना संगत ही है। गोस्वामीजी जानते थे कि "जो अपराध भरत कर करई, राम-रोष-पावक सो जरई" अतः गुरुजी की वंदना फिर से कर लेते हैं।

सब कुछ होते हुए भी 'रघुवर' का अर्थ 'भरत' करने में हमें संकोच होता है। कारण यही है कि अन्यत्र इसका प्रयोग नहीं मिलता। फिर भी 'राम से अधिक राम कर दासा' ललकारता है कि यही अर्थ कर दें। आशा है, हिन्दी के कर्णधार प्रस्तुत प्रश्न पर उचित

ध्यान देंगे। हमारी समझ में दोहे का रहस्य खुल गया है।

—चन्द्रबली पांड़े

## २—वीणा का अहल्यांक

इन्दौर से निकलनेवाली 'वीणा' का सितम्बर का अंक 'अहल्यांक' है। इसके सम्पादक हैं श्रीयुत पण्डित कालिकाप्रसादजी दीक्षित 'कुसुमाकर'। आपने इस अंक में 'अहिल्या' शब्द की खूब आलोचना की है। आपके मत में यह शब्द अशुद्ध है। उसके स्थान में आपके मतानुसार 'अहल्या' शब्द व्यवहृत होना चाहिए।

हमने आपके द्वारा सम्पादित इस अंक को आद्योपांत पढ़ा। आपके 'सम्पादकीय विचार' का भी काफ़ी मनन किया। तो भी हम इस बात का निश्चय न कर सके कि आपकी दलीलें आपका मत निश्चयात्मक रूप से प्रकट करने में पर्याप्त हैं।

कोई नाम शुद्ध है या अशुद्ध, इसका निर्णय कोष और व्याकरण से नहीं होता। संसार में जितने नाम हुए हैं उनका समर्थन व्याकरण से नहीं होता, और न किसी विद्वान् को ऐसा प्रयास करना ही चाहिए। मान लीजिए, किसी का नाम 'धूल्या' है। पर क्या हम उसका नाम केवल इस बात पर पलट सकते हैं कि वह व्याकरण से अशुद्ध है, या किसी कोष में नहीं है। इतिहास में आपको कई ऐसे नाम मिलेंगे जो व्याकरण की रीति से अशुद्ध हैं, पर प्रचलित होने से शुद्ध माने गये हैं। व्याकरण स्वयं इतना उदार है कि वह कभी व्यक्तिवाचक नामों में हस्तक्षेप नहीं करता।

आपने अपने पक्ष में जो प्रमाण दिये हैं उनसे आपका पक्ष सिद्ध नहीं होता। देवी के वास्तविक नाम की जाँच-पड़ताल के लिए न जान डॉसन की आवश्यकता है और न आक्सफ़ोर्ड-विश्वविद्यालय के किसी प्रोफ़ेसर की। हम भारत में रहते हैं, हम में भारतीय संस्कृति है, इसी कारण हमारे इतिहास की खोज वे लोग नहीं कर सकते जो भारतेतर देश में रहते हैं। आपने जैसे-तैसे करके यह अंक १५ दिन में निकाला है (यह बात हमें आपके 'सम्पादकीय विचार' से ही मालूम हुई) इतने अल्प समय में आप Classical Dictionary ढूँढ़ने क्यों गये? यह बात हमारी समझ में नहीं आती। क्या ही अच्छा होता यदि आप इसकी अपेक्षा अहिल्याबाई के समय का पुराना रिकार्ड देख लेते। ख़ैर, अब भी आप यदि थोड़ा कष्ट उठावेंगे तो आपको इसकी यथार्थता ज्ञात हो जायगी।

आपके द्वारा दिये गये प्रमाणों पर तो बहुत लिखा जा सकता है, परन्तु इस समय उन पर संक्षेप में विचार करूँगा।

आप लिखते हैं—"शिक्षित-समाज में 'अहल्या' ही प्राचीन काल में प्रचलित था। बीच में इसका बदल कर अहिल्या किस भांति हो गया इसका पता नहीं!" अहल्या और अहिल्या के उच्चारण में वही अन्तर है जो गत और गति में है। पर इससे क्या यह सिद्ध होता है कि 'गति' शब्द अशुद्ध है। यह कोई नियम नहीं है कि जो नाम प्राचीन काल में प्रचलित हो वही शुद्ध है और इतर नाम सब अशुद्ध। स्वयं आपका शुद्ध नाम देखिए। यद्यपि इसका उल्लेख किसी कोष में नहीं है, तथापि सब लोग और आप स्वयं (आपके पूरे नाम को) शुद्ध मानते हैं। अहिल्या प्राचीन काल में नहीं था, यह ठीक है। पर आपका यह कथन कोई प्रमाण है जिससे आप उस को अशुद्ध बतला दें।

आप लिखते हैं—"व्याकरण की दृष्टि से 'अहिल्या' शब्द नितान्त अशुद्ध है। व्याकरण से तनिक भी परिचय रखनेवाला मनुष्य इसके अशुद्ध होने का निर्णय कर सकता है।" ज़रा कृपा करके आप ही बतलाइए कि इस शब्द में क्या अशुद्धि है? वह आपका कौन सा व्याकरण है जो व्यक्तिवाचक नाम 'अहिल्या' को अशुद्ध बतलाता है।

आप काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा के शब्दसागर का प्रमाण पेश करते हैं। उसमें लिखा है:—

"अहल्या—जो (धरती) जोती न जा सके। संज्ञा स्त्री॰ गौतम ऋषि की पत्नी।"

आप इन्दौर की महारानी अहिल्याबाई के नाम पर विचार करने बैठे हैं या गौतम की पत्नी के नाम पर। ये दोनों एक-तो नहीं हैं। यह तो सभी मानते हैं। पुनः यहाँ गौतम की स्त्री का क्या सम्बन्ध ? क्या गौतम-पत्नी का नाम अहल्या होने से किसी भी व्यक्ति का नाम अहिल्या नहीं हो सकता। और यदि किसी ने रक्खा भी तो क्या वह अशुद्ध कहलायेगा ? बलिहारी है ऐसे तर्क की ! व्यक्तिवाचक नामों के लिए ऐसा आर्डिनेन्स किस व्याकरण में है ?

वाल्मीकि रामायण में 'अहल्या'-शब्द आया है। इससे आपने शायद यह कह दिया हो कि यही ठीक है और 'अहिल्या' अशुद्ध है। संस्कृत में प्रतिबोध है और प्रतीबोध भी, हिंस है और सिंह भी, दश है और दिशा भी, भूत है और भूति भी, तो क्या कोई कह सकता है कि एक स्वर के अन्तर से दूसरा शब्द अशुद्ध हो गया। जो लोग संस्कृत के व्याकरण से अनभिज्ञ हैं वे कहा करते हैं कि 'अहिल्या' शब्द अशुद्ध है। पर जो संस्कृत जानते हैं वे मानते हैं कि यह शब्द भी अहल्या के सदृश शुद्ध है। देखिए, अहिल्या शब्द कैसे शुद्ध है— 'अहिना लीयते या सा अहिल्या।' बहुत दूर जाने की आवश्यकता नहीं। साधारण संस्कृत जाननेवाला भी इस बात को अच्छी तरह समझ सकता है। अहि शब्द के अर्थ के लिए निरुक्त देखिए।

पर हम संस्कृत के व्याकरण का आश्रय नहीं लेते। हमें कोई अधिकार नहीं कि केवल व्याकरण के नाम पर हम एक वितंडा खड़ा कर लें। हमें तो यह देखना है कि देवी का वास्तविक नाम क्या था। उनके ज़माने में कौन सा नाम व्यवहृत होता था। हम तो उसे ही शुद्ध कहेंगे। क्योंकि नाम रखते समय संस्कृत के व्याकरण को लेके कोई नहीं बैठता। और न संस्कृत का व्याकरण इतना अनुदार है कि वह व्यक्तिवाचक नामों में भी अपना अड़ंगा लगाये।

हमने इस विषय में कुछ जाँच-पड़ताल की है। जो प्रमाण हमने संग्रह किये हैं उनमें से कुछ ये हैं—

(१) गौरीकुण्ड के तसकुंड पर एक शिलालेख है। वह संवत् १८१५ में लिखा गया है। यह कुंड देवी अहिल्याबाई और मल्हारराव होल्कर दोनों के नाम से बना है। उस समय दोनों जीवित थे। उसमें देवी का नाम अहिल्याबाई लिखा है।

(२) सूबेदार मल्हारराव होल्कर ने देवी को राज्य सँभालने के लिए कई पत्र लिखे थे। उनमें भी अहिल्याबाई ही लिखा मिलता है—

क—"चिरंजीव अहिल्याबाई यासि प्रति मल्हारजी होलकर आशीर्वाद" २ रमजान ६-१३ सन् ११७४ फाल्गुन।

ख—राजश्री—अहिल्याबाई होलकर गो यांस।

ता० ११ दिसम्बर शके १६८६

ग—सन् १८१७ में इन्दौर से निकलनेवाले 'मल्हारि मार्तंड नामक पत्र में मल्हारराव और अहिल्याबाई के कई पत्र छपे थे। उन सब पत्रों में अहिल्याबाई ही लिखा था।

(३) देवी के समय के कुछ पत्र 'महेश्वर दरबार चीं बातमी पत्रें' इस नाम से छपे हैं। उनमें पढ़िए—

(अ) बातमी पत्र १, ता० १० जून स० १७७६.

(आ) सन् १७८० के एक पत्र में लिखा है—

राजश्री शिवाजी विठ्ठल तृतीय प्रहरीं अहिल्याबाई च्या दर्शनास गेले होते।" ता० ७ एप्रिल।

(इ) केशो भिकाजी दातार ने एक पत्र राज श्रीपन्त प्रधान राव साहेब को ता० २ मई १७८४ के लिखा है। उसकी अंशप्रतिलिपि यह है—

"गङ्गाजल निर्मल अहिल्याबाई होलकर ही जमाव सुद्धां जां वेस तलावाचे उद्यापना करितां आली आहेत... लौकर महेश्वरीं अहिल्याबाई गेली।"

(लेखांक २६, भाग दूसरा)

(ई) लेखांक ६७ और २६३, भाग दूसरा, देखिए। उनमें भी 'अहिल्या' शब्द आया है।

(४) चन्द्रचूड देवी के मन्त्री थे। उनके कार्यालय के कुछ पत्र 'चन्द्रचूड-दफ़्तर' के नाम से प्रकाशित हुए

हैं। उसमें पत्र-संख्या १०८ में वह पत्र है जो देवी ने अपने पुत्र मालीराव को लिखा था। उसमें देवी ने खुद अपना नाम अहिल्याबाई लिखा है। एक दूसरा पत्र-संख्या १६५ भी है। उसमें यही नाम लिखा है। उसी पुस्तक के पृष्ठ ६१, १३४, १४२, और १४६ देखिए। उनसे पता लग जायगा कि देवी के दरबार में देवी का नाम क्या लिखा जाता था।

(५) अहिल्याबाई के पश्चात् खासगी की गद्दी पर कृष्णाबाई बैठी थीं। उनकी मुहर में लिखा हुआ है—

"सरकार अहिल्याबाई कारकीर्द कृष्णाबाई"

और भी हमने कई प्रमाण इकट्ठे किये हैं, जिनका उपयोग किसी अन्य समय किया जावेगा। यहाँ इतने ही पर्याप्त होंगे। इनसे यह स्पष्ट हो गया होगा कि देवी स्वयं अपना नाम अहिल्याबाई लिखती थीं, उनके समय में सब लोग उन्हें 'अहिल्या ही लिखते थे, उनके पश्चात् भी सरकारी कागज़ों में शब्द प्रयुक्त हुआ। हमने यह भी बतला दिया व्याकरण की रीति से 'अहिल्या' शब्द शुद्ध अब इस बात का निर्णय हम विद्वानों पर ही छोड़ हैं कि वास्तव में देवी का यथार्थ नाम क्या था।

हमने यह लेख सार्वजनिक दृष्टि से लिखा है, का दिल दुखाने की नीयत से नहीं। यह हमारी अभिलाषा है कि किसी नाम में परिवर्तन करने के ऐतिहासिक खोज की आवश्यकता है। जैसे चाहे नाम में परिवर्तन कर देना ठीक नहीं है। आशा सम्पादक महोदय हमारे इस निवेदन पर विचार करेंगे।

—उदयभानु

---




## १—कामना

( १ )

जीवन भर अपने को मैंने,
पाया हाथ पसारे ;
'यह' दे, 'वह' दे भीख माँगते,
देखा द्वार तुम्हारे ।

( २ )

किन्तु न हुई सीख माँग कर,
यह 'अपूर्णता' पूरी ;
'मैं' औ' 'तुम' की बनी हुई है,
हाय ! आज तक दूरी ।

( ३ )

अब इतना दो, जो न तुम्हारे,
द्वार भीख को आऊँ ;
'तुम' औ' 'मैं' यह दो न रहें बस,
मैं अनन्त हो जाऊँ !

—कालीप्रसाद 'विरही'

---

## २—अस्तेय-व्रत

[महात्मा गांधी 'यरवदा' जेल से—जिसे वे अपने पत्रों में 'आनन्द-भवन' लिखते हैं—अपने आश्रम-वासियों के नाम पत्र भेजते रहते हैं । इन पत्रों में राज-नीतिक विषयों पर तो वे कुछ नहीं लिख सकते, परन्तु इनमें आश्रमवासियों के लिए अमूल्य उपदेश रहते हैं। आज-कल महात्माजी आश्रम को एक एक नियम की व्याख्या लिख कर भेज रहे हैं । यरवदा मन्दिर से इस सप्ताह अस्तेय-व्रत का विवेचन करते हुए गांधी जी लिखते हैं ।]

अब हम अस्तेय का विचार करेंगे। यदि गम्भीर विचार करके देखें तो मालूम होगा कि सब व्रत सत्य और अहिंसा के अथवा सत्य के गर्भ में रहे हैं और वे इस तरह बताये जा सकते हैं—

सत्य
|
अहिंसा  अथवा सत्य—अहिंसा
|
ब्रह्मचर्य अस्वाद, अस्तेय, अपरिग्रह निर्भय आदि जितने बढ़ाये जायँ उतने

या तो सत्य में से अहिंसा को स्थापित करें या सत्य-अहिंसा को जोड़ी मानें। दोनों एक वस्तु हैं। तो भी मेरा मन पहले की ओर ही झुकता है। और अन्तिम स्थिति भी जोड़ी से—द्वन्द्व से अतीत है। परम सत्य अकेला खड़ा रहता है। सत्य साध्य है अहिंसा एक साधन। अहिंसा क्या है, जानते हैं। वैसे पालन कठिन है। सत्य को तो अंशतः ही जानते हैं, सम्पूर्णतया जानना देही के लिए कठिन है।

अस्तेय अर्थात् चोरी न करना। कोई यह न मानेगा कि चोरी करनेवाला सत्य को जानता और प्रेमधर्म का पालन करता है, तो भी चोरी का अपराध तो हम सब, कम या ज़्यादा मात्रा में, जाने या अनजाने करते ही हैं। दूसरे की वस्तु को उसकी अनुमति के बिना लेना तो चोरी है ही, परन्तु मनुष्य अपनी कही जानेवाली चीज़ भी चुराता है। उदाहरणार्थ किसी पिता का अपने बालकों

के जाने बिना उन्हें मालूम न होने देने की इच्छा से चुपचाप किसी चीज़ का खाना। यह कहा जा सकता है कि आश्रम का वस्तुभाण्डार हम सबका है, परन्तु उसमें से जो चुपचाप गुड़ की डली भी लेता है वह चोर है। एक बालक दूसरे बालक की क़लम लेकर चोरी करता है। किसी के जानते हुए भी उसकी चीज़ को उसकी आज्ञा के बिना लेना चोरी है। यह समझ कर कि वह किसी की भी नहीं है, किसी चीज़ को अपने पास रख लेने में भी चोरी है। अर्थात् राह में मिली हुई चीज़ के मालिक हम नहीं बल्कि उस प्रदेश का राजा या व्यवस्थापक है। आश्रम के नज़दीक मिली हुई कोई भी चीज़ आश्रम के मन्त्री को सौंपी जानी चाहिए। और यदि वह आश्रम की न हो तो मन्त्री उसे सिपाही को सौंप दे। इतने तक तो समझना साधारणतः सहल ही है। परन्तु अस्तेय इससे बहुत आगे जाता है। जिस चीज़ के लेने की हमें आवश्यकता नहीं उसे जिसके पास वह है उसकी आज्ञा लेकर भी लेना चोरी है। ऐसी एक भी चीज़ न लेनी चाहिए जिसकी ज़रूरत न हो। संसार में इस तरह की अधिक से अधिक चोरी खाद्य पदार्थों की होती है। मुझे अमुक फल की हाजत—आवश्यकता—नहीं है, तो भी यदि मैं उसे लेता हूँ तो वह चोरी है। मनुष्य हमेशा इस बात को नहीं जानता कि उसकी आवश्यकता कितनी है, और प्रायः हममें से सब अपनी आवश्यकताओं को जितनी होनी चाहिए उससे अधिक बढ़ा लेते हैं। विचार करने से हमें मालूम होगा कि हम अपनी बहुतेरी आवश्यकताओं को कम कर सकते हैं। अस्तेय-व्रत का पालन करनेवाला उत्तरोत्तर अपनी आवश्यकताओं को कम करेगा। इस दुनिया की अधिकांश कंगाली अस्तेय के भङ्ग के कारण पैदा हुई है।

उक्त समस्त चोरियों को बाह्य या शारीरिक चोरी कह सकते हैं। इससे सूक्ष्म और आत्मा को नीचे गिरानेवाली या पतित बनाये रखनेवाली चोरी मानसिक है। मन से किसी की चीज़ को पाने की इच्छा करना या उस पर झूठी नज़र डालना चोरी है। बड़े बूढ़े या बालक का किसी उम्दा चीज़ को देखकर ललचा जाना मान… चोरी है। उपवास करनेवाला शरीर से नहीं… परन्तु दूसरे को खाते देख यदि वह मन ही मन… करने लगता है तो चोरी करता है और उपवास… तोड़ता है। जो उपवासी उपवास छोड़ते समय… ही विचार किया करता है, कह सकते हैं कि वह… और उपवास दोनों का भङ्ग करता है। अस्तेय-व्रत… पालन भविष्य में प्राप्त होनेवाली चीज़ों के लिए… फ़िक्र नहीं बांधा करता। बहुतेरी चोरियों का मूल… आपको यह झूठी इच्छा ही मालूम होगी। आज… केवल विचार ही में है, कल उसे पाने के लिए हम… पूरे उपाय सोचने लग जायँगे। और जैसे चीज़ की… ही विचार की भी चोरी होती है। अमुक उत्तम वि… अपने मन में उत्पन्न न होने पर भी जो अहङ्कार… अपना बताता है वह विचार की चोरी करता है। दु… के इतिहास में बहुतेरे विद्वानों ने भी ऐसी चोरी… और आज भी होती रहती है। मान लीजिए कि… आन्ध्र-देश में एक नई क़िस्म का चर्खा देख आया… चर्खा मैंने आश्रम में बनवाया और उसे अपना आवि… कहना शुरू किया तो स्पष्ट है कि मैंने इस तरह… के आविष्कार की चोरी की है। असत्याचार… किया ही है।

अतएव अस्तेय-व्रत का पालन करनेवाले को… नम्र, बहुत विचारशील, बहुत सावधान और बहुत… से रहना पड़ता है।' (१८—८—३०)

महात्मा…

—

## ३—हम = सब कुछ ; तुम = कुछ नहीं!

मनुष्य मनुष्य को समझने की कोशिश क्यों… करता? मन के सुविस्तृत प्रदेश में अपने रहने… वह जिस विशाल राज-महल की सृष्टि करता है… परिमित सीमा से निकलकर वह संसार को… उसके अस्तित्व के रहस्य को जानने की चेष्टा… करता? अपने राज-महल के सीमा-प्रान्त में… मनुष्यों से केवल राजा के समान ही क्यों व्यवहार…

चाहता है ? यह बात वह क्यों नहीं जान पाता कि दूसरों के झोंपड़े उसके राज-महल से किसी प्रकार कम नहीं ? उनकी दृष्टि में वे ही राज-महल हैं ! किन्तु जिस मनोभाव से प्रेरित होकर वह दूसरों से इस तरह व्यवहार करता है उसका रहस्य दुर्भेद्य नहीं। मैं = सब कुछ ; तुम = कुछ नहीं—निस्सन्देह, यही वह रहस्य है ! हाँ, यथार्थ तो यही है कि उसके राज-महल का निर्माण होता है स्वार्थ-प्रेम की नींव पर। स्वार्थ का यही चक्र-व्यूह तो अपने सुनहरे जाल से निकल कर उसे कुछ देखने-समझने नहीं देता। इसी लिए तो आत्मा की स्वर्ण-गर्भा भूमि में अनंत समय से पड़ा हुआ उदारता का बीज पनपने ही नहीं पाता। अपने संकुचित दृष्टि-कोण से जिस चीज़ को देखकर वह जो राय क़ायम कर लेता है उसी को वह सत्य समझ बैठता है, और उसी राय से ही उसका व्यवहार प्रभावान्वित होता है। आज समस्त संसार में मनुष्य मनुष्य में, समाज समाज में जाति जाति में, राष्ट्र राष्ट्र में परस्पर जो कलह-द्वेष फैला हुआ है उसका मूल-कारण यही प्रतीत होता है। अँगरेज़ों और भारत-वासियों के पारस्परिक सम्बन्ध ही की बात ले लीजिए।

अँगरेज़-जाति १५० वर्षों से अधिक समय से भारतवर्ष में राज कर रही है। किन्तु अँगरेज़ भारतवासी को क्या ठीक ठीक समझता है ? नहीं, कदापि नहीं। सत्य तो यही है कि आज इतने वर्षों के बाद भी अँगरेज़ों की दृष्टि में भारतवर्ष एक रहस्यमय देश है—ऐसा देश जहाँ केवल असभ्य और जंगली जातियाँ बसती हैं, जहाँ जादू है, टोना है, प्रेतात्मायें हैं। हाँ, यहाँ की सभी बातें उनके लिए रहस्यमय हैं। इसका एक-मात्र कारण यही है कि अँगरेज़ों ने भारतवासियों को कभी ठीक ठीक समझने की चेष्टा नहीं की। अँगरेज़ यदि भारतवासी के साथ कभी व्यवहार करता है तो केवल शासक की भाँति। वह कभी एक क्षण के लिए भी भूलना नहीं चाहता कि भारत-वर्ष ब्रिटिश साम्राज्य के अधीनस्थ देश है और इसलिए उसकी समझ में प्रत्येक भारतवासी प्रत्येक अँगरेज़ का गुलाम है। राजा और प्रजा के मध्य में स्वामित्व की जो दीवार खड़ी रहती है उसे तोड़े बिना राजा अपनी प्रजा को कभी नहीं समझ सकता। अँगरेज़ स्वामित्व की इस दीवार को तोड़ना नहीं चाहता। इसी लिए वह भारत-वासियों को नहीं समझ पाता है। इसी लिए तो उसके विशाल राज-महल के परिमित सीमा-प्रान्त में अभी तक यदि भारतवासियों ने प्रवेश किया है तो वे हैं बैरे, ख़ानसामें, बावर्ची, चपरासी, उसके अन्य सेवक, उसके अधीन काम करनेवाले कर्मचारी या वे आश्चर्यजनक जन-साधारण जो पदों और ख़िताबों के लिए उसे डालियाँ पेश करते हैं, फ़र्शी सलाम करते हैं, उसके सामने नाक रगड़ते हैं। इसी प्रकार के लोगों को तो वह ठीक ठीक समझता है, शेष भारतीय जन-समुदाय उसकी समझ में कदाचित् जाननेयोग्य ही नहीं ! जिन भारतवासियों को वह असभ्य तथा जंगली समझे बैठा था और जिन्हें समझने और अपनाने की वह आवश्यकता ही न समझता था; शताब्दियों की प्रगाढ़ निद्रा से जागकर आज वे ही उसे बता रहे हैं कि वे सभ्य हैं, और सभ्य जातियों के स्वत्वों को भली भाँति समझते हैं। 'कुछ ले, कुछ दे' के न्यायपूर्ण सिद्धांत को अपनाकर अगर अँगरेज़ों ने भारतवासियों के साथ व्यवहार किया होता तो आज वे उन्हें भले प्रकार समझ गये होते। किन्तु वे तो स्वार्थ के सुनहरे जाल में फँसे हुए हैं, इस सिद्धान्त के सामने कैसे सिर झुका दें ? उनका सिद्धान्त तो है हम = सब कुछ ; तुम = कुछ नहीं।

—राजेश्वरप्रसादसिंह

---

## ४—हमारे पञ्चाङ्ग

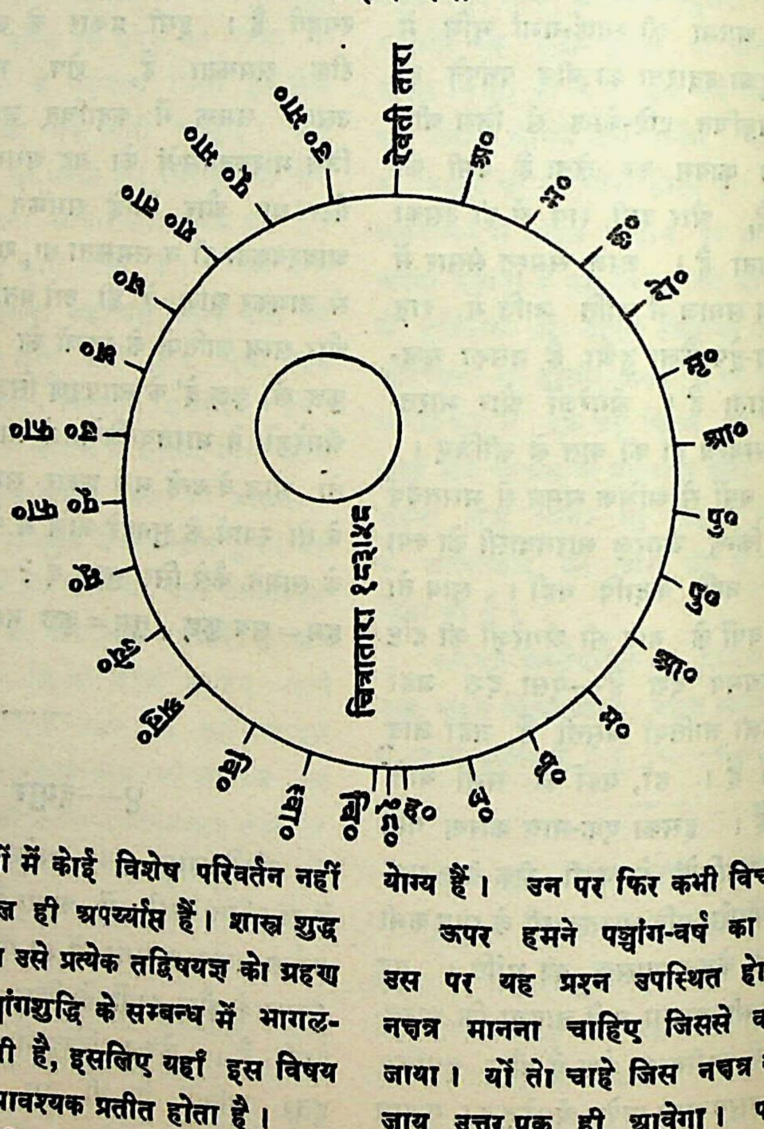
ज्योतिःशास्त्र का उपयोग हमारे नित्य जीवन में रात-दिन देखने में आता है। जन्म से लेकर अन्त-पर्यन्त प्रत्येक अवस्था में हर एक छोटे-मोटे संस्कार तथा संसार के और कार्यों के लिए इस शास्त्र की आवश्यकता होती है। केवल हिन्दुओं में ही नहीं, संसार की इतर जातियों में भी इस शास्त्र के प्रति श्रद्धा तथा विश्वास अधिक-कम रूप में देखा जाता है। साधारण जीवन में जो ज्योतिःशास्त्र का उपयोग किया जाता है वह

पञ्चाङ्ग के रूप में होता है। आज हम यहाँ इसी पञ्चाङ्ग पर विचार करेंगे।

पञ्चाङ्ग की शुद्धता पर हम जीवन में दृष्टादृष्ट फल पाते हैं, ऐसी हमारी भावना है। किन्तु पञ्चाङ्ग कहाँ तक शुद्ध होते हैं, यह बात विचारणीय है। हमारे यहाँ जो पञ्चाङ्ग बनते हैं वे प्राचीन ग्रंथाधार से। किन्तु प्राचीन काल में नव्याविष्कार ज्ञात न होने के कारण उस आधार से किया हुआ गणित दृक्प्रत्यय में सांतरित होता है। इस कारण मुहूर्त, पत्रिका, संस्कार आदि ये सब अशुद्ध काल से बनते हैं, यह स्पष्ट है। इस अशुद्धि को दूर करने के लिए पञ्चाङ्ग-गणित में सुधार की नितान्त आवश्यकता है और बिना इसमें सुधार किये ये त्रुटियाँ कदापि दूर नहीं हो सकतीं। इस सम्बन्ध में बम्बई, पूना, हरिद्वार आदि स्थानों में समय समय पर सभायें हुईं, परन्तु पञ्चांगों में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है और वे बिलकुल ही अपर्य्याप्त हैं। शास्त्र शुद्ध व गणित शुद्ध जो कुछ हो उसे प्रत्येक तद्विषयज्ञ को ग्रहण करना चाहिए। इसी पञ्चांगशुद्धि के सम्बन्ध में भागलपुर में एक सभा होनेवाली है, इसलिए यहाँ इस विषय में कुछ बातें बतलाना आवश्यक प्रतीत होता है।

किसी तौर से सूर्य निकल कर पुनः जब उस पर आता है, इतने काल में पञ्चांग-वर्ष यानी नक्षत्र-वर्ष पूरा होता है। इस काल का वास्तविक मान ३६५ दिन १५ घड़ी २२ पल और ५७ विपल है। परन्तु ग्रन्थों में वही ३६५ दिन १५ घड़ी ३१ पल और ३० विपल माना गया है। इससे प्रति वर्ष ८॥ पल की ग़लती होती है, यह बात सब तद्विषयज्ञ पण्डितों को मान्य है। यह थोड़ी थोड़ी ग़लती एकत्र होकर इस समय ४ दिन बढ़ गई है। इस ग़लती को सुधारना हमारा कर्तव्य है। एक हफ़्ते की पञ्चांग की ग़लती सुधारने के लिए पाश्चात्य देशों में एक [illegible] ११ दिन छोड़ गये थे, यह [illegible] विद्वान् जानते [illegible] इसके मुक़ाबले [illegible] ४ दिन छोड़ [illegible] कोई बहुत [illegible] समय नहीं [illegible] अपने ग्रन्थों [illegible] चन्द्र स्पष्ट [illegible] भी ४ या ५ [illegible] छूट गये हैं, [illegible] वजह से [illegible] काल में ग़ल[ती] आती है, [illegible] सुधार होना [आव]श्यक है। [illegible] शुद्धि में और [illegible] कई बातें [illegible] योग्य हैं। उन पर फिर कभी विचार करेंगे।

## नक्षत्र-चक्र




ऊपर हमने पञ्चांग-वर्ष का जो मान लिखा है उस पर यह प्रश्न उपस्थित होता है कि ऐसा कौन नक्षत्र मानना चाहिए जिससे वर्ष का आरम्भ [माना] जाया। यों तो चाहे जिस नक्षत्र से गणना प्रारम्भ [की] जाय उत्तर एक ही आवेगा। पर देखना चाहिए कि अपने ग्रन्थों में कौन सा नक्षत्र आरम्भ-स्थान [माना गया] है। अपने को भी इसी नक्षत्र से मानना आवश्यक [है]।

होगा। रेवती-नक्षत्र के ३२ तारे माने जाते हैं। उनमें सबसे दक्षिण की ओर क्रान्तिवृत्त के सामीप्य में जो तारा है उसको रेवतीयोगतारा कहते हैं। इस तारे से पूर्व दिशा में अश्विनी, भरणी, कृत्तिका इत्यादि २० सम विभाग किये हैं। हर एक विभाग में या उसके समीप ही उस नक्षत्र का योग तारा होता है। इस तरह चित्रा का अर्ध विभाग नक्षत्र चक्रारम्भ से १८० अंश पर है। परन्तु चित्रा तारा रेवती से वास्तव में १८३ अंश १८ कला की दूरी पर है। चित्रपट पर देखने से यह भली भाँति ज्ञात हो सकता है। चित्रा नक्षत्र का अनुरोध करनेवालों का कहना है कि चित्रा तारा पर ही १८० मान कर वहाँ से पीछे हटकर आरम्भ-स्थान मानो। किन्तु वहाँ किसी तारा के न होने से शास्त्र-शुद्ध-पक्ष-वाले इसे मान्य नहीं करते। इस विषय में चित्रा के पक्ष-वाले कहते हैं कि पहले चित्रा से १८० अंश पश्चिम स्थल पर तारा था, परन्तु अब वह गुप्त हो गया है! ऐसा कहनेवालों की बुद्धि को धन्य है। असल बात यह है कि पुराण-प्रियता छोड़े बिना सच्चा सुधार नहीं हो सकता। रेवती तारे से आरम्भ करने के लिए 'गोलानन्द' में साफ़ साफ़ लिखा है कि 'रेवतीयोग-तारा तु सदा मीनाऽजसंधिगा'। इससे भी अधिक स्पष्ट श्रीभास्कराचार्य अपने ग्रन्थ सिद्धान्त-शिरोमणि के ग्रहयुत्यधिकार में कहते हैं कि 'रात्रौ गोलगमध्य-चिह्नगतया दृष्टया रेवतीतारां विलोक्य क्रान्तिवृत्ते यो मीनान्तस्तं रेवतीतारायां निवेश्य मध्यगतमेव दृष्टयाऽ-श्विन्यादेर्नक्षत्रस्य योगतारां विलोक्य तस्योपरि वेध-वलयं निवेश्यम्।

सन् १८०४ के प्रारम्भ में बम्बई में जो अखिल भारतीय ज्योतिर्विद्-सभा इसी विषय की चर्चा के लिए श्रीशंकराचार्य की अध्यक्षता में हुई थी उसमें सब पण्डितों ने साधक-बाधक प्रमाणों पर विचार करके यह निर्णय किया था कि "मघाचित्रातारराभ्यामयनांशानयनं काल्पनिकं वाचनिकप्रमाणाभावात्"। अर्थात् चित्रा या मघा तारे से नक्षत्रारंभ स्थान-निर्णय करने के लिए कोई शास्त्राधार नहीं है। परन्तु चित्रा के पक्षवाले कई वचनों को खींच-तानकर अपने अनुकूल मत प्रतिपादन करने की चेष्टा करते हैं। यहाँ हम उन वचनों पर पारिभाषिक होने के कारण विचार न करेंगे। यदि कोई सज्जन उस विषय में जानना चाहें तो वे मुझ से पत्र-द्वारा जान सकते हैं। अन्त में इस विषय के पण्डितों से यही निवेदन है कि उपर्युक्त विषय पर भागलपुर में होनेवाली सभा में अवश्य विचार करें तथा आवश्यक परिवर्तन करने की चेष्टा करें।

गोविंद सदाशिव आपटे
सुपरिंटेंडंट, वेधशाला, उज्जयिनी, मध्यभारत

---

## ५—हमारी कचहरी !

वर्तमान भारतवर्ष में विचारधारा इस वेग से और इतने भिन्न-भिन्न मार्गों में प्रवाहित हो रही है कि कदाचित् ही कोई संस्था ऐसी हो जिस पर हमारे तीव्र आलोचकों की विवेचनात्मक दृष्टि प्रचंडरूप से न पड़ी हो। क्या धार्मिक, क्या सामाजिक, क्या नैतिक, क्या राजनैतिक और क्या आर्थिक सभी विषयों की ओर विचारकों ने क्रांतिकारी और प्रभावपूर्ण वचन-बाण छोड़े हैं। भारत के लिए यह परिवर्तन-काल है और प्रत्येक भारतवासी का यह उद्देश होना चाहिए कि इस सर्वव्यापक परिवर्तन में अनिवार्य दोषयुक्त संस्थाएँ समूल नष्ट कर दी जायँ, निवार्य दोष दूर किये जायँ और समाज ऐसे दृढ़ आधार पर स्थापित किया जाय जिसमें त्रुटि अथवा दोष की संभावना न्यूनतम रहे। यह तो कहा नहीं जा सकता कि कोई समाज बिलकुल पूर्ण और निर्दोष आधार पर स्थित है या इस संसार में हो सकता है, क्योंकि विश्व की रचना वृद्ध विधाता ने ऐसी कर रक्खी है कि दोषों का उत्पन्न हो जाना स्वाभाविक हो गया है। जिस प्रकार शरीर स्वास्थ्य के उच्च से उच्च शिखर पर रहते हुए भी जरा और मरण को प्राप्त होती जाता है, उसी प्रकार हमारी संस्थायें, हमारी सामाजिक विडम्बनायें तथा पूरा समाज समय आने पर दोषों से भर जाता है और उसके प्राचीन गुण तथा उसकी विशिष्ट

सफलतायें केवल स्वप्नग इतिहास-लीन अथवा स्वप्नमय या निरी कल्पना-शक्ति की रचना या कभी कभी उसकी शक्ति के भी परे दिखलाई देने लगती हैं। किन्तु वही विधाता फिर रचा भी करता है। जिन परिस्थितियों के कारण दोषों का प्रवेश और उनकी वृद्धि तथा पुष्टि होती है उन्हीं के द्वारा ऐसे कारण भी अंकुरित होते हैं जो अंत में फूलते-फलते दोषों को निर्मूल ही करके छोड़ते हैं। वर्तमान भारत ऐसे ही दृश्य दिखला रहा है।

इस लेख में केवल न्याय और न्यायालयों की ओर थोड़ा ध्यान दिया जायगा, क्योंकि इस विषय पर भारतीय तथा अन्य जाति के विचारकों ने अपने प्रबल विचार प्रकट किये हैं और समस्त संसार में इस विषय की विवेचना हो रही है, क्योंकि न्याय ही पर समाज तथा राष्ट्र स्थित है और न्याय-शासन ही पर जीवन निर्भर है। अँगरेज़ी साम्राज्य के प्रधान सचिव मिस्टर रैम्से मैकडॉनल्ड ने अपने एक प्रसिद्ध ग्रन्थ में लिखा है कि भारत के न्याय-शासन में विदेशी ढङ्ग प्रविष्ट कर देने से अरुचिकर प्रभाव पड़ा। वास्तव में इससे कितनी हानि हुई और किस प्रकार की हानि हुई यह निश्चय करना तो सरल नहीं है, किन्तु हमारे अनपढ़े भाई जो राजनीति तथा न्याय-शासन के सिद्धान्तों से अनभिज्ञ हैं क्या कहते हैं उसको जानना आवश्यक है। जिनको हम मूढ़ और निरक्षर समझते हैं उनकी साधारण अतर्कपुष्ट तथा अनुभव-जनित धारणाओं से हम बहुत कुछ सीख सकते हैं और उन पर विचार करने से उपयोगी सुधारों का निर्माण कर सकते हैं।

गाँववालों की एक-आध बातें सुनिए और स्वयं विचार कीजिए। किसी मुक़द्दमे में एक व्यक्ति पंच नियुक्त किया गया। उसने अपने घर पर गवाहों को बुलाकर उनसे पूछना शुरू किया। उधर एक गवाह से किसी ने कहा—'देखो भाई, झूठ मत बोलना'। उसने झट उत्तर दिया—वाह! यह भी क्या कचहरी है कि झूठ बोलूँगा। इस उत्तर पर थोड़ा ध्यान दीजिए। अपढ़ सीधे-सादे गाँववालों की यह धारणा कैसे होगई कि कचहरी में झूठ बोला जा सकता है, किन्तु किसी पंच के सम्मुख अथवा कचहरी के अतिरिक्त और किसी पर झूठ नहीं बोला जा सकता। भारतीय ज[illegible] का सर्वदा से तिरस्कार करती चली आई है और [illegible] करती है तब कचहरी में झूठ बोलने को वह क्या [illegible] है? कुछ लोग क्यों उसे सभ्य समझते हैं अथवा [illegible] को उसके लिए एक उचित स्थान समझ लिया है? [illegible] तो एक न्यायाधीश के सामने शपथ लेकर बोलना [illegible] है और इस आत्मिक उत्तरदायित्व के अतिरिक्त झूठी [illegible] के अपराध में दंड पाने का भी भय लगा रहता [illegible] तिस पर भी वहाँ के झूठ बोलने को उतना बुरा [illegible] क्यों नहीं समझते? यदि कोई अन्य देश का [illegible] भारत में भ्रमण करने आवे और केवल न्याया[illegible] अनुभव से अपने विचार निर्माण करे तो उसे [illegible] जनता महापतित और असत्यवादी प्रतीत होगी, [illegible] वास्तव में बात ऐसी नहीं है। फिर क्या कारण [illegible]

एक और अद्भुत कहानी सुन लीजिए। [illegible] एक ग्राम-निवासी जिसने किसी दूसरे के ऊपर [illegible] का दावा किया था, कहने लगा—'भाई क्या पूछो [illegible] कचहरी और क़ानून तो ऐसे बने हैं कि न्या[illegible] असम्भव-सा हो गया है। यदि किसी को रुपया [illegible] उस पर मुक़द्दमा चलावें तो वह ऋण अस्वीकार [illegible] और हमको उलटा उसे ख़र्च देना पड़ेगा। [illegible] उसकी अस्वीकृति रोकने के लिए कोई रुक्का लिखा [illegible] और उसकी बुनियाद पर नालिश की तो दो [illegible] उसकी ओर से खड़े होकर कह देंगे कि [illegible] लिखाया, लेकिन रुपया नहीं दिया। बस [illegible] परिणाम हुआ। अगर उससे भी बचे और [illegible] डिगरी होगई तो नई आफ़त आई। डिगरी [illegible] कराई, जायदाद .कुर्क कराई तो कोई [illegible] दारी करता है कि यह जायदाद तो हमारी है। [illegible] गया तो वाह वाह और नहीं तो किसी प्रकार कुछ [illegible] हुआ। उसमें भी बड़ी अड़चनें हैं। एक तो [illegible] बरस या अगर मुक़द्दमा किसी प्रकार हाईकोर्ट [illegible] तो चार-पाँच बरस में .फैसला हुआ और कुछ [illegible] तो उस समय जब उसके पाने का आधा रस [illegible]

दूसरे जायज़ और नाजायज़ इतने ख़र्चे करने पड़े कि जीतना और हारना आर्थिक दृष्टि से दोनों ही बराबर होगये, और परस्पर का विरोध गोया घलुवे में मिला। फिर तो यही कहना पड़ता है कि व्यर्थ में गये लड़ाई लड़ने, लाभ से अधिक हानि ही होगई। हारनेवाले की तो कुछ पूछिए ही नहीं। वह बेचारा तो बिलकुल बिक गया। और अगर रुपया लेनेवाला ज़रा होशियार निकला तो फिर क्या झट एक Insolvency petition (दिवालिया होने की दरख़्वास्त) दे दी। उसे मंज़ूर होते कितनी देर। बस घर जाके डींग हाँकता है, साफ़ बच गये! चले हैं रुपया देने!' यही तो हाल है। बेचारे गाँववालों की यही धारणा होगई है कि कचहरी बस एक लूटने का स्थान है। हाकिम लोग लम्बी-लम्बी तनख़्वाहें पाते हैं। सरकार दुनिया भर की कोर्टफ़ीस ले लेती है। वकील लोग बिना द्रव्यहीन किये अपनी कुर्सी पर से टस से मस नहीं होते और जो बचे-बचाये गाड़ी के ख़र्च के लिए पैसे थे उन्हें मुहर्रिर और पेशकार इत्यादि के हवाले किये बिना काम नहीं चलता। शाम को दिन भर के भूखे पैदल दस कोस घर पहुँचने के लिए चले जारहे हैं।

पढ़े-लिखे लोगों को यह विचार करना चाहिए कि हमारे गाँववालों की धारणा बिलकुल निर्मूल नहीं है। उनको वर्तमान शासन-पद्धति की ओर पूरा ध्यान देना चाहिए और उसके उचित सुधारों की पूरी चिन्ता करनी चाहिए।

—रमाशङ्करप्रसाद

---

## ६—टोपी

छत्र-धारियों की सेवा में उपस्थित होनेवाले सेवक-शुभचिन्तक या सभासद् लोगों में तद्देशीय शिष्टाचार और सम्मान-रक्षा के अनुरोध से साफ़ा, मुड़ासा-पगड़ी और टोपी आदि से मस्तक सुशोभित करने की परिपाटी प्राचीन काल से चली आ रही है। उनमें भी पगड़ी का आदर और उपयोग अधिक होता है।

हिन्दूशास्त्रों में पगड़ी का उष्णीश नाम निर्दिष्ट किया गया है। हमारा विचार है कि एक स्वतंत्र लेख में पगड़ी के भेद-भाव, मान-मर्यादा और विविध आकृतियों आदि का सचित्र उल्लेख किया जाय, जिससे मालूम हो सके कि किस देश में किस समय से किस प्रकार की पगड़ी प्रचलित हुई है और उनके द्वारा किस देश या राज्य का किस प्रकार उपकार या पराभव हुआ है। इस लेख में सिर्फ़ टोपी के विषय में लिखना है।

यह स्पष्ट रूप से प्रकट हो रहा है कि प्रतिष्ठित पुरुषों की पगड़ी एक महान् महत्त्व की वस्तु मानी जाती है। सिर उतर जाय, पर पगड़ी न उतरे, यह धारणा साहसी और सम्माननीय सत्पुरुषों की होती है। ऐसे सत्पुरुष प्राण रहते हुए अजेय शत्रुओं के सामने भी सिर नहीं झुकाते हैं। और सिर न झुकाना पगड़ी का सम्मान रखना ही है।

अधिक आपत्ति के अवसर पर भी यदि किसी आत्मीय के द्वारा अपमान होने या सम्मान बढ़ने की संभावना हो और उस पर आघात करने में संकोच होता हो तो ऐसे अवसर पर आत्मीय आदि से भी यह आग्रह अथवा अनुरोध किया जाता है कि 'इस पगड़ी की लाज रखना अब आपही के हाथ है।'

कई सज्जन पगड़ी की जगह 'धोलों की लाज' रखना कहकर भी उस प्रयोजन की सिद्धि करवाते हैं। क्योंकि 'धोलों की लाज रखानेवाले' बहुधा पगड़ी ही धारण करते हैं, और उनकी लाज में पगड़ी की लाज ही रह जाती है!

विचार करने की बात है कि जब ऐसी पगड़ी भी जिन सत्पुरुषों या संसार-त्यागी महात्माओं के चरणों में शरण लेने को श्रेयस्कर समझती है तब उन महात्माओं के शिरोवेष्टन का सम्मान कितना अधिक हो सकता है, इसका अनुमान विज्ञ पाठक स्वयं कर सकते हैं।

प्राचीन काल के ऋषि-महर्षियों, साधु-पुरुषों या महात्माओं को मस्तक पर मुडासा बाँधने, पगड़ी पहनने या टोपी रखने की विशेष आवश्यकता नहीं होती थी। उन का नंग-धड़ंग शरीर खुला मस्तक या जटा-जूट ही सब

को मनोहर मालूम होता था। किन्तु हज़ार बारह सौ वर्ष पहले ऐसे भी महात्मा हुए जिनको यदा-कदा वस्त्र-विशेष से मस्तक ढाँकने की आवश्यकता होती थी।

कारण यह था कि उनके साथ सांसारिकों का संपर्क बहुत रहता था। देश के धनी-मानी, राजा-महाराजा और सम्राट् लोग उनके महत्प्रभाव से आकर्षित होकर स्वतः उनकी सेवा में उपस्थित होते थे और सिर झुकाकर चरण-स्पर्श-प्रणाम करने में अपना सौभाग्य समझते थे। ऐसे ही लोगों का आतिथ्य-सत्कार करने के लिए महात्मा लोग एक विशेष प्रकार की टोपी पहनते थे।

इस प्रकार के जगद्वंद्य आचार्यों में निम्बार्क, रामानुज और वल्लभाचार्य विशेष विख्यात हुए हैं। इन पूज्य-चरण आचार्यों का संसार पर बड़ा प्रभाव पड़ा था। हज़ारों नर-नारी इनके भक्त और अनुयायी हुए थे। और उनके लोकांतरित हो जाने पर भी असंख्य शिष्य-प्रशिष्यों ने उनके शिरःपरिधान को सिर पर धारण करके उनका अतःपर सम्मान बढ़ाया था।

इतना ही नहीं, अधिकांश संप्रदायी अथवा अनेक संत-महंत अब भी अपने पूर्वाचार्यों की धारित और निर्द्धारित टोपी का आदर करते हैं और उसे सादर शिरोधार्य्य करके शिष्य-मण्डल में शोभित होते हैं। हमने पूर्वोक्त महात्माओं की निश्चित की हुई कोई १½ सौ २ सौ वर्ष पहले की पुरानी टोपियाँ देखी हैं। उचित प्रतीत होता है कि उनकी बनावट का यहाँ उल्लेख किया जाय।

**(१) निंबार्की टोपी**—वस्त्र के एक टुकड़े से बनाई जाती है। छः अंगुल चौड़े और २४ या २६ अंगुल लंबे वस्त्र के एक किनारे को तागे से सींकर खींच दिया जाता है। और दूसरे किनारे पर गोट लगा दी जाती है। ऐसा करने से वह छत्राकार गोल टोपी बन जाती है।

**(२) रामानुजी टोपी** में कुछ विशेषता होती है। यह दो टुकड़ों की बनाई जाती है। सिर की नाप का एक लम्बा टुकड़ा लिया जाता है। उसका ललाट पर आनेवाला अंश २½ या ३ अंगुल और शिखा पर आने-वाला अंश ४½ या ५ अंगुल चौड़ा होता है। इसे [illegible] कहते हैं। दूसरा टुकड़ा कपाल जैसा गोल होता है [illegible] चँदवा कहते हैं। चँदवे को परिधि से जोड़ देते हैं [illegible] गोट लगाकर तैयार कर लेते हैं। परिधि का [illegible] शिखा पर रखने से टोपी की विशेषता बढ़ जाती है।

**(३) वल्लभी टोपी** अर्ध चन्द्राकार के [illegible] से तैयार की जाती है। इस टोपी का मथुरा-[illegible] और गोकुल आदि में अधिक प्रचार पाया जाता है। इसकी बनावट में रूपान्तर न होने पर भी सिलाई [illegible] और जालीदार गोट में त्रिवेणी बहाकर खूबसूरत [illegible] जाती है। पहली और दूसरी की अपेक्षा तीसरी का निर्माण-काल चार सौ वर्ष इधर का है। [illegible] है कि लोगों में अभी इसका व्यवहार कम नहीं हु[illegible]

ऊपर की तीनों टोपियों का निर्माण-परि[illegible] शुद्धीकरण बड़े ही सरल-सुलभ और सुगम हैं। [illegible] का कपड़ा लेकर चन्द मिनटों में तैयार करली जा[illegible] चाहे जिस तरह उठाकर सिर पर धर ली जाती है [illegible] चुटकी भर खार या सफ़ेद राख से धोकर साफ़ [illegible] जाती हैं।

इनके धारण करने से अन्तःकरण में धर्म की [illegible] और सात्त्विकी भाव का उदय होता है, [illegible] उद्वेगवान् जनता में स्थायी शान्ति का संचार हो[illegible] धारण करने से सत्पुरुषों के सिर की शोभा बढ़[illegible] बढ़ती है। आचार्य चरणों से प्राप्त प्रसादी होने [illegible] धारण करनेवालों का आदर बढ़ता है। और इन्हें [illegible] करके कहीं जाने आने या काम करने में किसी [illegible] लज्जा, शङ्का, आक्षेप या अपमान नहीं होता है।

ये टोपियाँ पूज्यचरण आचार्यों की धारि[illegible] निर्द्धारित हैं। स्वास्थ्य-रक्षा के विचार से भी इ[illegible] दोष दिखाई नहीं देता है। सिर पर रखने [illegible] भारी मालूम होती हैं और न किसी प्रकार [illegible] करती हैं। पूर्वाचार्यों में इनका प्रचुरतर प्रचार [illegible] वे इनका आदर करते थे।

जिन दिनों इनका प्रचार हुआ उन दिनों [illegible] मनुष्यों में धार्मिक धारणा और सात्त्विकी भाव [illegible]

गये थे, जिसके कारण संसार में स्थायी शान्ति का सब जगह साम्राज्य हो गया था। यही कारण है कि इनके धारण करनेवालों को कोई भी आदमी सन्देह की दृष्टि से नहीं देखते थे, बल्कि उनको सच्चरित्र, सात्विकी और पूज्य मानते थे।

इनके सिवा दादूदयाल, गुरु नानक, ख़्वाजा साहब और बिशप आदि हिन्दू, मुसलमान और ईसाइयों में भी कई महात्मा ऐसे हो गये हैं जिनकी धारित और निर्द्धारित टोपियों ने संसार में आदर पाया है और वे यत्र-तत्र अभी तक दर्शन दे रही हैं।

**(४) गाँधी टोपी** अभी-अभी विख्यात हुई है। इन दिनों भारत में इसका प्रचार भी बहुत है। जिस व्यक्ति के नाम पर यह टोपी बनाई गई या विख्यात की गई है वे व्यक्ति भी वर्तमान समय के महात्मा हैं।

प्राचीन काल में जिस प्रकार वल्लभ, रामानुज, नानक निंबार्क या ख़्वाजा साहब आदि विख्यात हुए और उनकी सेवा में बड़े-बड़े राजा-महाराजा गये ही नहीं—बड़ी-बड़ी शक्तियों ने सिर झुकाया, उसी प्रकार गाँधी का महत्त्व और माहात्म्य भी अतःपर हो गया है। वे आधुनिक समय के जगन्मान्य महात्मा हैं। अतः उनकी टोपी का प्रचार होना किसी अंश में निन्द्य नहीं, स्तुत्य है।

परन्तु हम देखते हैं कि 'गाँधी टोपी' इस समय के अधिकांश मनुष्यों की दृष्टि में खटकती है। वे उसे एक महात्मा की टोपी नहीं मानते, अराजकता फैलानेवाली वस्तु मानते हैं। उसके धारण करनेवालों को राजभक्त नहीं, अशान्ति का फैलानेवाला समझते हैं।

ऐसा सन्देह क्यों किया जाता है? चाहे जो हो। इस टोपी का अपना महत्त्व स्थापित हो गया है और उसे अब सभी तरह के लोग धारण करते हैं। यह टोपी न गाँधीजी की निर्द्धारित है और न धारित है। गाँधी-भक्तों ने इसका प्रचार किया है। परन्तु एक बात है। वह यह कि इसकी बनाई, सिलाई और धुलाई आदि में ख़र्च पड़ता है। यह कम से कम छः आने में आती है और हर महीने एक आना धुलाई खाती है।

हमारा नम्र निवेदन है कि यदि उचित समझा जाय तो ऊपर बतलाई हुई किसी भी एक टोपी का प्रचार हो। उसके प्रचार में ख़र्च बहुत कम बैठेगा और किसी प्रकार की आपत्ति या नाराज़ी भी नहीं होगी।

—हनूमान शर्मा

---

## ७—उषा

निशा के गहन गर्भ में कहाँ—
छिपा था यह सुषमा का राज्य!
कालिमा का वह भीषण रूप
मनोहरता का यह साम्राज्य!
विश्व के प्राणों का स्वच्छन्द
सरल स्पन्दन यह अति कमनीय!
वायु का यह स्वतन्त्र उच्छ्वास
स्पर्श की मादकता रमणीय!
व्योम की यह मोहक मुसक्यान
भूमि-नभ में भर रही समान!
विश्व के अर्द्धोन्मीलित नेत्र
स्वास्थ्य-परिचायक-तुष्टि-निधान!
यंत्रणा की नीरवता-बीच
काल ने सहकर दारुण त्रास।
तपश्चर्य्या के फल-स्वरूप
अहा! पाया यह रूप-विलास।

—हरिदत्त दुबे

# विज्ञान की करामात

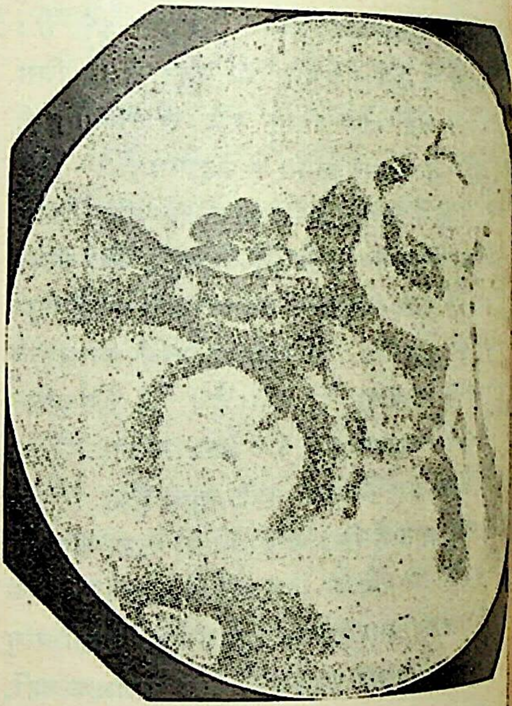
## १—मंगल-ग्रह को सन्देश

वैज्ञानिकों का अनुमान है कि मङ्गल-ग्रह में प्राणियों का निवास है। अतएव वे गत ५० वर्षों से मंगलग्रह को अपने पृथ्वी-ग्रह से सन्देश भेजने का इरादा कर रहे हैं। परन्तु उनके विचार वैज्ञानिक तुला-दण्ड में अभी तक चोखे नहीं निकले हैं। अब इस प्रश्न पर फिर गम्भीरता से विचार प्रारम्भ होगया है।

सबसे पहली कठिनाई तो यह है कि क्या हम यहाँ से कोई ऐसा सिगनेल भेज सकते हैं जिसे उस जगत् के लोग पहचान सकें? किसी भी प्रकार के यंत्र के द्वारा भेजे हुए सिगनेल को वे उसी हालत में प्राप्त कर सकेंगे जब उनके पास वैसा ही यंत्र हो। यदि हम दृष्टिगोचर होनेवाला सिगनेल भेजें तो यह बहुत सम्भव है कि मंगलग्रह के लोग प्रकाश के साथ भिन्न प्रकार का सम्बन्ध रखते हों। इसी तरह यदि कोई चित्र भेजा जाय तो वे उसका कोई अर्थ न निकाल सकेंगे।

इसके अतिरिक्त हमें स्मरण रखना चाहिए कि यहाँ का सिगनेल शून्य स्थान से होकर भेजना पड़ेगा और उस अवस्था में हम उक्त सिगनेल काम में नहीं ला सकते। हाँ, बेतार के तार की छोटी और शक्तिशाली लहरें भेजी जा सकती हैं।

मान लो, हमने किसी तरह सन्देश भेज भी दिया तो हम यह कैसे मान सकते हैं कि उस ग्रहवाले उसे प्राप्त ही कर लेंगे? कई लोगों का कहना है कि वहाँ बुद्धियुक्त जीवन का विस्तार है। भले ही हम इस बात को अस्वीकार न करें, परन्तु हमारे पास इसके के प्रमाण ही क्या हैं?



[ मंगलग्रह—काले काले धब्बे को वैज्ञानिक न
कहते हैं ]

काल्पनिक दृष्टि से कहा जा सकता है कि अ
जगत् के एक ग्रह में अर्थात् पृथ्वी में बुद्धियुक्त
है तब दूसरों में भी होगा ही। इस बात का
जीवन-मूलतत्त्व प्रोटोप्लाज़्म है। इसी से जी
विकास हमारे यहाँ हुआ है और इसी से दूसरे ग्रहों
हुआ होगा।

सबसे अधिक विचारणीय बात यह है कि क्या उस ग्रहवालों ने भी हमारे ही समान विज्ञान का विकास और अध्ययन कर लिया होगा ? पृथ्वी पर मनुष्यों का निवास अधिक काल से था। परन्तु उन्होंने वर्तमान प्रणालियों पर प्रकृति का कभी अध्ययन नहीं किया था। इसी तरह वहाँ के मनुष्यों की आवश्यकतायें आबहवा आदि के भिन्न होने से भिन्न हो सकती हैं। फिर हमारा सन्देश उस ग्रहवालों के लिए उसी तरह सिद्ध होगा जिस तरह कि एक भारतीय को चीनीभाषा की एक पंक्ति। अतएव हम इस बात की आशा बहुत ही कम करते हैं कि वे हमारी बातों को समझ सकेंगे।

हमारा पहला सन्देश क्या होना चाहिए ? कुछ का कहना है कि हमारा ग्रह सूर्य से तीसरे स्थान पर है, इसलिए हमें 'तीन' शब्द को भेजना चाहिए। यह हमारे विश्व-सन्देश का सिगनेल हो सकता है।

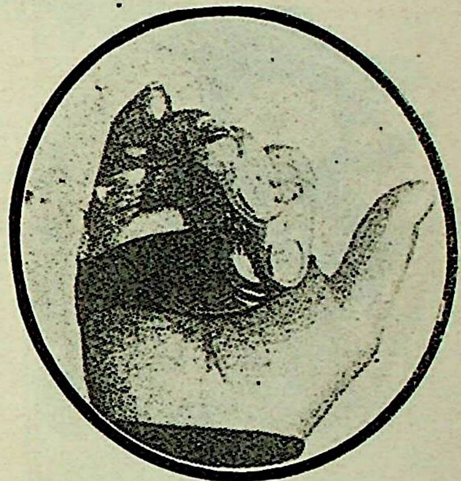
लोग भले ही कहें कि यह सन्देश तो बहुत ही सीधा और मनोरंजन-हीन है। परन्तु इसके सिवा उन्हें और क्या ख़बर भेजी जाय ? उनका जीवन, उनका शरीर, उनके विचार और उनकी सभ्यता, सम्भव है, हमारी सभ्यता से भिन्न हो।

हमारे मार्ग में ये कठिनाइयाँ अवश्य हैं, परन्तु वैज्ञानिक परीक्षा करने में लगे हुए हैं। वे सन्देश भेजेंगे, चाहे कोई समझे या न समझे। उसका भी तो कुछ परिणाम अवश्य ही निकलेगा।

---

## २—क्लार्कों का सहायक

प्रायः देखा जाता है कि क्लार्क लोगों को हर रोज़ बहुत से काग़ज़ों को उलटना पड़ता है। इसी तरह पाठकगण भी पुस्तकों के पन्ने उलटा करते हैं। परन्तु जब एक पन्ने के साथ दूसरा पन्ना जाने लगता है तब झट अँगुली उठाकर जीभ में लगा लेते हैं। इस गीली अँगुली से एक के बाद एक पृष्ठ कुछ समय तक उलटाया जा सकता है। यह क्रिया काम चलाने के लिए तो अच्छी है, परन्तु सफ़ाई और स्वास्थ्य की दृष्टि से बहुत ही ख़राब है। कभी कभी इसके द्वारा बीमारियाँ फैल जाती हैं। अतएव शीघ्रता और सुगमता के लिए एक आविष्कारक ने एक छोटी सी वस्तु का निर्माण किया है। यह हथेली



[क्लार्कों की पानी घड़ी]

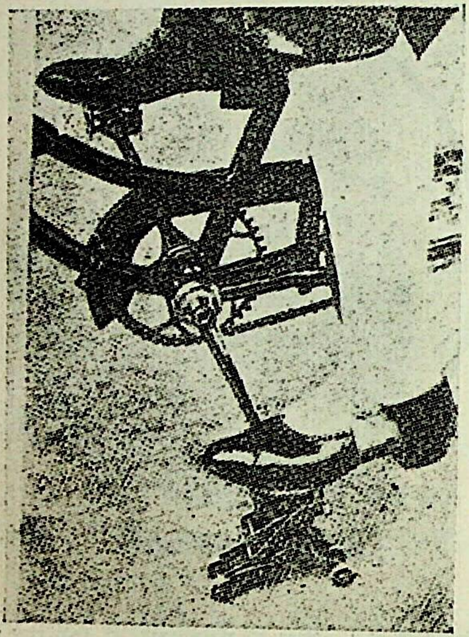
से बँधी रहती है। बीच के गोल भाग में एक पेड़ लगा-हुआ है जो पानी से गीला रक्खा जा सकता है। जल्दी जल्दी पन्ने उलटते समय जब कभी इच्छा हो अपनी मध्य अँगुली को भीतर की ओर झुकाकर गीला कर लीजिए और पन्ने या काग़ज़ उलटिए। देखने में भी यह सुन्दर है, घड़ी के समान ही हाथ का शृंगार है।

---

## ३—भीड़ में साइकिल खड़ी करने की युक्ति

साइकिल चलानेवाले ख़ूब अच्छी तरह जानते हैं कि कभी कभी सड़क पर भीड़ होने के कारण उन्हें उतरना पड़ता है तथा फिर चढ़ने में भी अड़चन होती है। अतएव एक जर्मन ने साइकिल को खड़ा करने की एक नई युक्ति निकाली है। यह पेडिल में लगी रहती है। जब गाड़ी खड़ी करना हो, ज़रा सा धक्का लगा दीजिए वह सड़क से जा लगेगी और साइकिल खड़ी हो जायगी। चलानेवाले को नीचे उतरने की कोई आवश्यकता नहीं है। चलाते समय भी वह आसानी से उठाई जा सकती

है। हाँ, एक कठिनाई अवश्य है। यदि बड़ी तेज़ी से जाते समय धोखे से वह खुल गई तो साइकिल चलाने-वाला मुँह की खाये बिना नहीं रहता। परन्तु यह



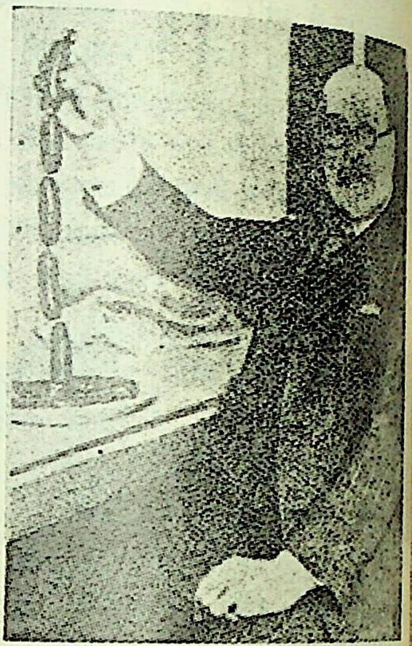
[ नया स्टैंड ]

युक्ति का दोष नहीं है। यह है चलानेवाले की असावधानी का परिणाम।

——

## ४—कपास या मांस

क्या कपास के बीज और मांस में कोई अन्तर नहीं है ? प्रसिद्ध वैज्ञानिक डाक्टर डेविड वेसिन निषेधात्मक उत्तर देते हैं। वे रसायनशास्त्र और तेल के विद्वान् हैं। उन्होंने कपास के बीजों को पीसकर,



[ वैज्ञानिक मांस ]

चर्बी और पानी से यथायोग संयोग कर मांस में परिणत कर दिया है। यह वैज्ञानिक मांस बहुत सस्ता है और उसमें मांस में पाये जानेवाले सभी तत्त्व पाये जाते हैं। हाँ, कुछ लोगों का कहना है कि इस मांस का स्वाद कुछ भिन्न है।

—नागूरा



# मातृ-मण्डल

प्रयाग-महिला-विद्यापीठ गत कई वर्ष के अनवरत प्रयत्न से हिन्दी-भाषी महिला-समाज में साहित्यिक रुचि उत्पन्न करने तथा महिलाओं में शिक्षा का प्रचार करने में बहुत कुछ सफलता प्राप्त कर सका है। उसकी परीक्षाओं का प्रचार उत्तरोत्तर बढ़ रहा है। इसकी परीक्षाओं के पाठ्य ग्रन्थ पढ़ कर छात्रायें भाषा तथा साहित्य-सम्बन्धी ज्ञान के उपलब्ध करने में तो समर्थ होती हैं, साथ ही वे व्यवहारकुशल भी हो सकती हैं। हर्ष का विषय है कि इसके जन्मदाता बाबू सङ्गमलाल अग्रवाल ने अभी हाल में महिला-सेवा-सदन नामक महिलाओं की एक संस्था भी स्थापित की है। जहाँ महिला-विद्यापीठ का उद्देश है परीक्षायें लेकर छात्राओं की योग्यता के अनुसार प्रमाण-पत्र तथा उपाधि-पत्र प्रदान करना और उनके लिए उपयोगी पाठ्य ग्रन्थ निर्दिष्ट करना, वहाँ इस सेवा-सदन का उद्देश है महिलाओं की शिक्षा का समुचित प्रबन्ध करना। यह संस्था छात्राओं को साहित्य, गणित, भूगोल आदि उपयोगी विषयों की शिक्षा तो देगी ही, साथ ही उन्हें समाज-सेवा के भी अनुकूल बनावेगी। इस प्रकार यहाँ से शिक्षा प्राप्त करके महिलायें देश का कार्य करने में भी बहुत कुछ समर्थ हो सकेंगी। यहाँ संगीत और सिलाई की भी शिक्षा का प्रबन्ध है, जिससे शिक्षा समाप्त करके महिलायें आवश्यकतानुसार अपनी जीविका का सम्पादन सुविधा-पूर्वक कर सकेंगी।



[ श्रीमती रमा देवी विदुषी ]

महिला-सेवा-सदन में कुमारी, विवाहिता तथा विधवा आदि सभी प्रकार की महिलायें शिक्षा ग्रहण कर सकेंगी, किन्तु पन्द्रह वर्ष से कम अवस्था की कन्यायें इसमें प्रविष्ट न की जा सकेंगी। प्रवेश से पहले प्रार्थिनी को नागरी-अक्षरों के लिखने-पढ़ने का साधारण ज्ञान आव-

स्यक है। जिन छात्राओं की योग्यता प्रारम्भिक अर्थात् चौथी कक्षा से न्यून होगी उन्हें पहले वहीं तक की शिक्षा दी जायगी। इस कक्षा में उत्तीर्ण होने पर क्रमशः प्रवेशिका और विद्या-विनोदिनी परीक्षाओं के लिए वे तैयार की जायँगी। परन्तु जिन छात्राओं की रुचि आगे न पढ़ कर



[ श्रीमती अमिया वन्द्योपाध्याय एम० ए० ]
( आप कलकत्ता-विश्वविद्यालय की परीक्षा में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुई हैं )

समाज-सेवा की ही योग्यता प्राप्त करने की होगी उन्हें दाई का काम सिखाया जायगा। कोई भी महिला सदन में जाकर केवल सङ्गीत या सिलाई का ही कार्य सीख सकती है। किसी भी छात्रा से किसी प्रकार का शुल्क न लिया जायगा।

सेवा-सदन की छात्राओं के रहने के लिए आचार्या के निरीक्षण में एक आश्रम भी खोला गया है। भोजन-व्यय के लिए ८) मासिक के अतिरिक्त इसमें भी छात्राओं से किसी प्रकार का शुल्क नहीं लिया जाता। वस्त्र आदि आवश्यक सामग्रियों के अतिरिक्त आभूषण या कोई अन्य वस्तु रखने की छात्राओं को आज्ञा नहीं है।

आश्रम में महिलाओं की रक्षा का पूर्ण प्रबन्ध है। आचार्या की आज्ञा तथा उपयुक्त सहायक के बिना वे कहीं बाहर नहीं जा पातीं। इस संस्था के संचालन के लिए धन की भी बड़ी आवश्यकता है। यदि जनता ने इस संस्था के साथ पूर्ण सहयोग किया और संचालक अपने उद्देश्य [...] दृढ़ता-पूर्वक कटिबद्ध रहे तो निस्सन्देह यह संस्था [...] समाज की उन्नति के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध होगी।

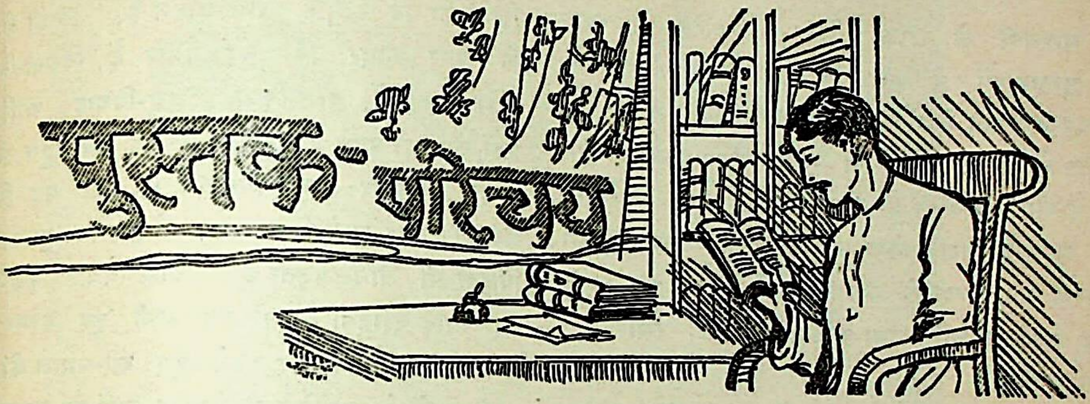
महिला-सेवा-सदन की आचार्या श्रीमती [...] विदुषी बड़ी ही कष्टसहिष्णु, परिश्रमशील तथा [...] महिला हैं। बड़ी अवस्था में केवल अपने परिश्रम [...] बल पर पढ़-लिख कर आपने अच्छी योग्यता [...] कर ली है। बालिकाओं की शिक्षा-सम्बन्धी कई [...] ष्ठित संस्थाओं में कार्य करके आपने शिक्षण-कला में [...] कुशलता प्राप्त कर ली है। बीकानेर के नोबुल्स [...] स्कूल में कार्य करते समय आपको जो वेतन मिलता [...]



[ श्रीमती धर्मशीला देवी एम० ए० ]
( आप पटना के सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक तथा पुरा[...] वेत्ता श्रीयुत काशीप्रसाद जायसवाल की पुत्री हैं। [...] विश्वविद्यालय की एम० ए० की परीक्षा में आप सर्व[...] आई हैं )

उसमें से बचा कर आपने १,०००) महिला विद्यार्थि[...] भवन के लिए दान किया है और नौकरी छोड़ कर [...] के सेवा-सदन में कार्य कर रही हैं। आप जीवन-निर्वाह के लिए नाम-मात्र का वेतन लेती हैं। आशा है, [...] परिश्रम से महिलाओं में सुशिक्षा का प्रचार होगा।

—गङ्गाप्रसाद [...]




१—पद्मपराग (प्रथम भाग)—लेखक, पण्डित पद्मसिंह शर्मा, सम्पादक बाबू पारसनाथसिंह, बी० ए०, एल-एल० बी० हैं। आकार डबल क्राउन १६ पेजी, पृष्ठ-संख्या ४३७ और मूल्य २॥।) है।

लेखक-धुरीण पण्डित पद्मसिंह शर्मा का विशेष परिचय देने की ज़रूरत नहीं। यद्यपि अब 'भारतोदय' नहीं निकलता है और न शर्म्माजी ही पत्रों में विशेष रूप से लिखते हैं, तो भी लोगों के लिए आप आज भी ताज बने हुए हैं। आप संस्कृत के पूर्ण विद्वान्, उर्दू और फ़ारसी के मार्मिक ज्ञाता तथा हिन्दी के कला-कोविद हैं। यही नहीं, अपने समय के ऊँचे से ऊँचे संस्कृत, उर्दू-फ़ारसी और हिन्दी के विद्वानों के बीच बैठे-उठे ही नहीं हैं, किन्तु आप भी उनमें से एक आदरणीय व्यक्ति रहे हैं। शर्मांजी ने संस्कृत आदि भिन्न भिन्न भाषाओं के ऊँचे काव्य-ग्रन्थों का अध्ययन करके ही नहीं, किन्तु उन भाषाओं के नामी नामी आचार्यों का सत्सङ्ग भी करके साहित्य के वास्तविक रस की वर्षों तक अनुभूति की है और यथासमय अपनी उस अनुभूति का प्रसाद हिन्दी को भी बराबर बांटते रहे हैं। वही प्रसाद आज एक ही स्थान में 'पद्मपराग' के रूप में प्रकट होते देख कर किस साहित्य-रसिक का हृदय-कमल न खिल उठेगा। इस 'पराग' में आपके संगृहीत लेखों में आपके हृदय की सहृदयता पङ्क्ति पङ्क्ति से नहीं, अक्षर अक्षर से टपकती दिखलाई देती है। यह संग्रह इतिहास की तरह सत्य, धर्मशास्त्र की तरह कल्याणकर और काव्य की तरह सुन्दर है—सत्यं शिवं सुन्दरम्। अस्तु छोटे-बड़े सब मिलाकर इसमें कुल २२ लेखों का संग्रह है। दो लेखों को छोड़ कर जो उर्दू से अनुवाद किये गये हैं, शेष सभी लेख शर्मांजी के लिखे हुए हैं। ये सभी लेख भिन्न-भिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। प्रारम्भ के चौदह लेख चरितात्मक हैं। शेष में दो सम्भाषण हैं और ६ फुटकर विषयों के हैं। इस संग्रह में आपके समालोचना-सम्बन्धी लेख नहीं हैं। ऐसे सब लेख पद्मपराग के दूसरे भाग में छपेंगे। प्रारम्भ में सम्पादक के सम्पादकीय वक्तव्य में इस पुस्तक के लेखों का परिचय सा दिया गया है। उसके बाद शर्मांजी की लिखी हुई भूमिका है, जिसमें आपने अपने स्वाभाविक ढङ्ग में पद्मपराग के प्रकाशन का इतिहास वर्णित किया है। पुस्तक में ६ चित्र भी हैं, जिनमें २ स्वयं शर्मांजी के हैं और ७ चित्र उन लोगों के हैं जिनके चरितात्मक लेख इसमें सग्रह किये गये हैं। इस संग्रह के सभी लेख नवयुवकों के लिए शिक्षा-प्रद, प्रौढ़ों के लिए ज्ञान-वर्द्धक और वृद्धों के लिए शान्तिप्रद हैं। आशा है, हिन्दी के प्रेमी पद्मपराग की सुरभि का समुचित उपभोग करके आनन्द ही लाभ करेंगे।

२—रामचरितचिन्तामणि—रचयिता, महाकवि पण्डित रामचरित उपाध्याय, प्रकाशक, ग्रन्थ-माला-कार्यालय, बांकीपुर हैं। आकार डबल क्राउन १६ पेजी, पृष्ठसंख्या २८४ और मूल्य २) है।

सरस्वती के पाठक पण्डित रामचरित उपाध्याय की सुरचनाओं से भले प्रकार परिचित हैं। आपकी रचनायें सरस्वती में बराबर प्रकाशित होती रहती हैं। उपर्युक्त महाकाव्य आपकी ही रचना है। इसमें पचीस सर्ग हैं और रामचरित का बोलचाल की भाषा में विशद रूप से सुन्दर वर्णन किया गया है। यह उसका दूसरा संस्करण है। हिन्दी के काव्य-प्रेमियों को इस रचना का संग्रह करके रामचरित तथा कविता दोनों का रसास्वादन करना चाहिए।

३—**पावक**—इस कविता-पुस्तक के प्रणेता श्रीयुत भगवतप्रसाद वनपती एक उदीयमान कवि हैं। प्रयाग के कवि-सम्मेलनों में लोग आपकी कविता आग्रह के साथ सुनते हैं। इसमें आपकी कुल २४ रचनायें संग्रह की गई हैं। सभी रचनायें सरस, प्रासादिक तथा भावपूर्ण हैं। ये रचनायें लेखक की मौज की चीज़ हैं। यद्यपि आपने अपना परिचय इस प्रकार दिया है—

> नहीं 'कवी' हूँ सत् कवियों के चरणों का (?) हूँ धूल।
> हूँ तुकबन्द छन्द क्या जानूँ पिँगल के मैं शूल॥

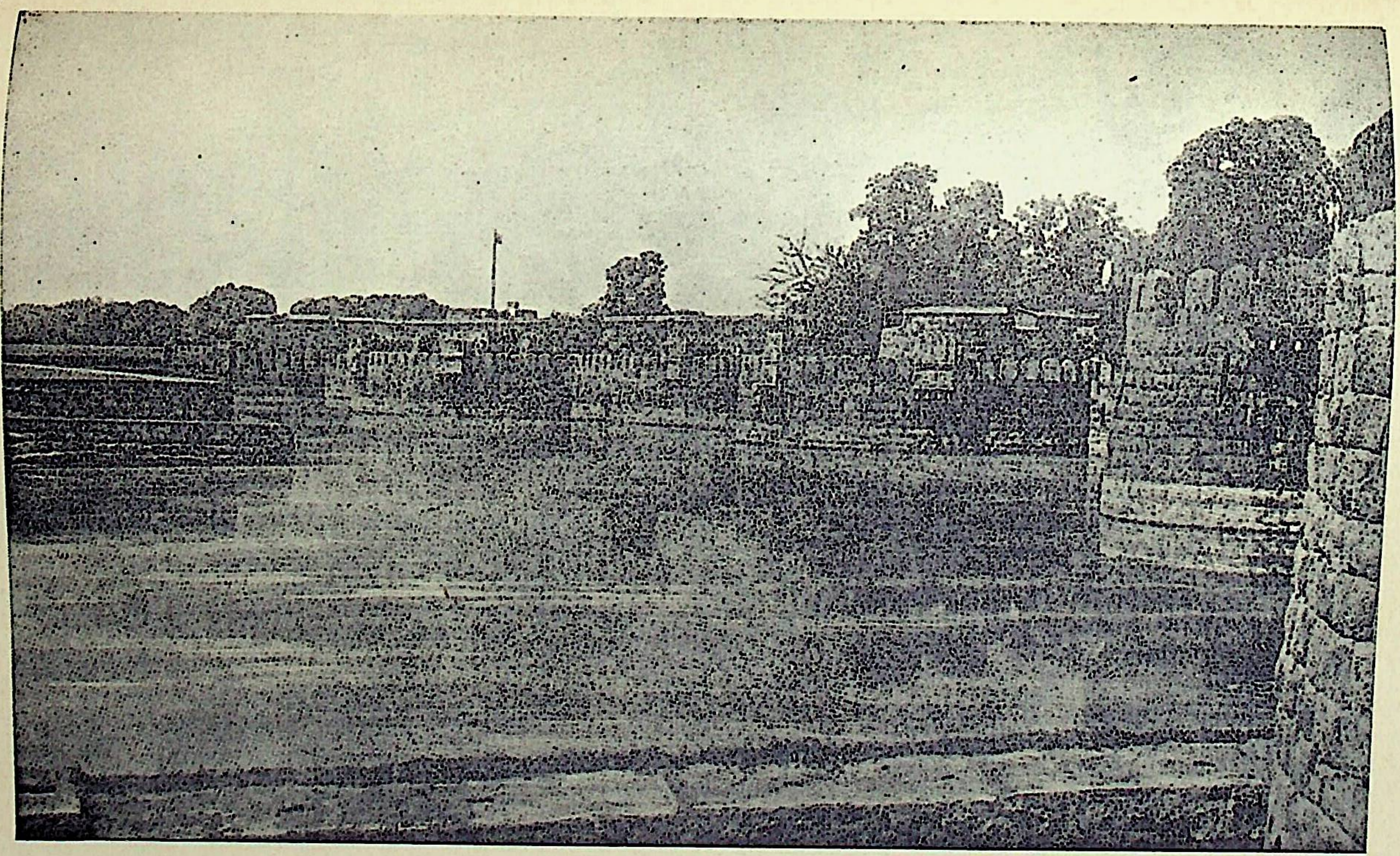
तो भी आपकी कोई कोई रचनायें हृदय पर चोट करनेवाली हैं। 'भिखारिन का गान' में आप लिखते हैं—

> तीस कोटि पुत्रों की जननी विश्व मुझे जब कहता था।
> मेरे स्तन से क्षीर नयन से नीर उमड़ तब पड़ता था॥
>
> × × ×
>
> आपस में लड़कर लड़कों ने मुझे भिखारिन कर डाला।
> जिसका था जग में मुख उज्ज्वल कहलाता है अब काला॥

इसके सिवा इसमें काश्मीर की प्राकृतिक वर्णन-सम्बन्धी जो दो रचनायें हैं वे भी हृदयहारिणी हैं। उसमें कवि की कल्पनाओं ने खूब विकसित रूप प्रकट किया है। पुस्तक सुन्दर रूप में छापी गई है। इसका मूल्य ॥) है। पता—साहित्य-कुञ्ज, ४१८ कटरा, प्रयाग।

४—**नारी-जीवन**—लेखक श्रीयुत सुरेन्द्र शर्म्मा, प्रकाशक, शारदा-सदन, कटरा, प्रयाग हैं। आकार डबल क्राउन सोलहपेजी, पृष्ठ-संख्या २१५, मूल्य १) है।

पुस्तक को पढ़ने से जान पड़ता है कि लेखक भारतीय नारी-जीवन में बहुत कुछ सुधार करना चाहते हैं। ये स्त्रियों को पर्दे से मुक्त करना चाहते हैं, लड़की को लड़के के बराबर आदर देने को तैयार हैं, विधवा-विवाह के विरोधी नहीं हैं, बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह आदि बुराइयों को नहीं रहने देना चाहते। यह सब बहुत ठीक है। परन्तु हमारा एक निवेदन है। वह यह कि ज़माना इतना आगे निकल गया है कि यह पुस्तक पिछड़ी सी जान पड़ती है। बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, पर्दा आदि बुराइयों को तो अब सभी दूर करना चाहते हैं। अब उन्नति की ओर बढ़ते हुए स्त्री-समाज को इन्हीं बातों को दूर होने से सन्तोष नहीं हो सकता। स्त्रियाँ पर्दे का त्याग करेंगी तब स्वाधीनता की इच्छा करेंगी। लेखक महोदय चाहते हैं कि स्त्रियाँ दिन के काम के बाद रामायण या महाभारत पढ़कर आनन्द-विनोद कर लिया करें। मित्रों से न तो हँसी-मज़ाक करें, सिनेमा वग़ैरह ही देखें। अपनी सारी शक्ति पति की सेवा में लगा दें, "एकै धर्म एक व्रत नेमा। काय वचन मन पति-पद-प्रेमा" में पगी रहें। पाश्चात्य सभ्यता से लेखक को बड़ा भय है। वे स्त्रियों के सामने भारतीय आदर्श ही रखना चाहते हैं। लेखक महोदय को यह सब कुछ उपदेश करने का पूरा अधिकार है, पर उन्हें यह भी देखना चाहिए कि योरपीय सभ्यता में बहुत सी बातें ऐसी हैं जिन्हें ग्रहण करने की हमें आवश्यकता है। संसार की स्त्रियाँ जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पुरुषों की बराबरी करना चाहती हैं। उन्हें आर्थिक परतन्त्रता पसन्द नहीं है। यह हो नहीं सकता कि स्वाधीनता की यह लहर भारतीय स्त्रियों के हृदय को न स्पर्श करे। ऐसी दशा में यदि लड़कियाँ मैली-कुचैली माता की अपेक्षा साफ़-सुथरी अध्यापिका आदि का जीवन पसन्द करें तो यह अस्वाभाविक नहीं है। लेखक महोदय ने अपनी पुस्तक में आधुनिक स्त्री का जो चित्र खींचा है उसमें और वर्तमान सामाजिक बुराइयों से जकड़ी स्त्री में केवल इतना ही अन्तर है कि लेखक का चित्र घूँघट और ... से बचा है। पर उन्नति के इस युग में इतना ही काफ़ी नहीं है। पुस्तक की भाषा दिलचस्प है और जो लोग स्त्रियों की वर्तमान सामाजिक अवस्था के सुधारने में ...



शिवगंगा-तालाब

उन्हें निस्सन्देह इसमें सोचने-समझने का बहुत कुछ मसाला मिलेगा।

—श्रीनाथसिंह

५—पत्रकार-कला—लेखक, श्रीविष्णुदत्त शुक्ल; प्रकाशक, शुक्लसदन बारा, उन्नाव है; आकार, डबल क्राउन सोलहपेजी, पृष्ठ-संख्या ३७२, मूल्य २) है।

हिन्दी में सम्पादन-कला पर यह पहली पुस्तक है। लेखक ने इस विषय पर अँगरेज़ी में बहुत सी पुस्तकें पढ़ी हैं, और इसके लिखने में उन्होंने उन सबसे सहायता ली है। हिन्दी में समाचार-पत्रों की अभी वैसी उन्नति नहीं हुई है, जैसी पाश्चात्य देशों में समाचार-पत्रों की है। इसका कारण यह है कि अभी हिन्दी-भाषा-भाषियों की संख्या बहुत न्यून है और जो है भी उसमें समाचार-पत्रों के पढ़ने की रुचि कम है। पहली बात सम्पादकों के वश की नहीं है, पर दूसरी बात यानी समाचार-पत्रों के पढ़ने की जनता में रुचि पैदा करना उनके हाथ में है। और यदि वे यह जान लें कि अपने पत्र की वे कैसे उन्नति कर सकते हैं, तो उनका कार्य बहुत-कुछ सरल हो जाय। प्रस्तुत पुस्तक को इस दिशा में एक प्रकाश-स्तम्भ समझना चाहिए। इसमें सम्पादकों के काम की प्रायः सभी आवश्यक बातें आ गई हैं और लेखक ने उन्हें रोचक ढङ्ग से लिखा है। समाचार-पत्रों का इतिहास, सम्पादकों का कर्त्तव्य, 'रिपोर्टिंग' 'इन्टरव्यू' 'पत्र-सम्पादन', 'प्रबन्ध,' 'विज्ञापन' आदि विषयों पर अलग अलग अध्याय हैं। परिशिष्ट में रोज़ के काम की बहुत-सी आवश्यक बातें दी हुई हैं। जो लोग पत्र-सम्पादन-कला को या लेखन-कला को अपनी जीविका का साधन बनाना चाहते हैं और नये नये इस मैदान में उतरते हैं उन्हें यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए।

—श्रीनाथसिंह

६—स्मृति (शोक काव्य)—लेखक श्रीयुत 'गिरीश', प्रकाशक लेखक-मण्डल, दारागञ्ज, प्रयाग हैं। मूल्य ।) है।

बचपन के साथी बहुत से होते हैं, लेकिन जिनके साथ जीवन एक सूत्र में गुथा हुआ हो ऐसे साथी कम, बहुत ही कम, होते हैं। यदि ऐसे ही किसी दुर्लभ मित्र का बिछोह हो जाय तो जो कुछ होना चाहिए वही इस छोटी सी; बग़ैर तड़क-भड़क की किताब के, शोकोच्छ्वसित पन्नों में है। पढ़िए, याद कीजिए और आँसू बहाइए।

—शम्भूदयाल सक्सेना

७—रसालवन (काव्य)—लेखक 'श्रीगिरीश', प्रकाशक लेखक-मण्डल, दारागञ्ज, प्रयाग हैं। मूल्य ॥) है।

इस पुस्तक में सामाजिक उलझनों को सुलझाने का यत्न किया गया है। पुस्तक सास, पतोहू, पति, गृहस्थ सभी के लिए है। कविता सुन्दर सरस और हृदयस्पर्शी है। काव्यानन्द के साथ-साथ गार्हस्थ्य कलह से मुक्ति पाने की इच्छा रखनेवाले पुस्तक-प्रेमी तो रसालवन पसन्द करेंगे ही।

—शम्भूदयाल सक्सेना

८—हिन्दी माघ—अनुवादक पण्डित गिरिधर शर्मा नवरत्न, काव्यालङ्कार, प्रकाशक श्रीयुत ईश्वरलाल विद्यार्थी, नवरत्न, सरस्वतीभवन, झालरापाटन (राजपूताना) हैं। पृष्ठ-संख्या ४२ और मूल्य ॥) है।

संस्कृत-साहित्य में महाकवि माघ-द्वारा रचित शिशुपाल-वध महाकाव्य का स्थान बहुत उच्च है। उसकी प्रशंसा में—"माघे सन्ति त्रयो गुणाः" आदि प्राचीन तथा अर्वाचीन आलोचकों की कितनी ही उक्तियाँ प्रसिद्ध हैं। प्रस्तुत पुस्तक में उक्त महाकाव्य के ही प्रथम और द्वितीय सर्ग का पद्यानुवाद किया गया है। आदि के २३ पृष्ठों में अनुवाद है और अन्त के १९ पृष्ठों में संस्कृत के—मूल श्लोक भी छाप दिये गये हैं। अतएव विद्यार्थियों को अनुवाद को मूल श्लोकों से मिलाकर पढ़ने में कठिनाई न पड़ेगी। शर्माजी हिन्दी के श्रेष्ठ कवियों में हैं। आपके अनुवाद के सम्बन्ध में तब क्या कहा जा सकता है? यह अनुवाद विश्वविद्यालयों के विद्यार्थियों के उपकार के लिए किया है। किन्तु इसके द्वारा केवल हिन्दी जाननेवाले भी माघ की रचना का थोड़ा बहुत रसास्वादन करने में समर्थ हो सकेंगे। अनुवाद अच्छा और उपयोगी है।

—ठाकुरदत्त मिश्र

# ग्रन्थ-पाठ

[ रायबहादुर महामहोपाध्याय पण्डित गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा ने मध्यकालीन भार संस्कृति के सम्बन्ध में 'हिन्दुस्तानी एकेडेमी' में तीन व्याख्यान पढ़े थे। उन्हीं को एकेडे 'मध्यकालीन भारतीय संस्कृति' के नाम से पुस्तकाकार प्रकाशित किया है। इस ग्रन्थ सन् ६०० से सन् १२०० के दीर्घ काल के भारत की धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक भिन्न-भिन्न अवस्थाओं का वर्णन हुआ है। उसी के तत्कालीन शासन-व्यवस्था-सम्ब विवरण का अंश यहाँ उद्धृत किया गया है ]

## मध्यकालीन भारतीय संस्कृति में शासन, शिल्प और कला

### शासन-पद्धति

प्राचीन भारत में राजनीति और शासन-पद्धति का पूर्ण विकास हो चुका था। हमारे देश में भी राजा के अधिकार किसी प्रकार नियंत्रित थे। यहाँ भी कई प्रजातन्त्र राज्य थे, जिनको गणराज्य भी कहते थे। कई राज्यों में राजा चुना भी जाता था। राजा प्रजा पर अत्याचार नहीं कर सकता था। प्रजा की आवाज़ सुनी जाती थी। शासन-प्रबन्ध बहुत उत्तम होता था।

हमारे काल में भी हम इस प्रकार का शासन देखते हैं। हर्ष के राज्य-काल के ताम्रलेखों, हर्षचरित और हुएन्त्संग के वर्णन से तात्कालिक शासन-पद्धति का कुछ पता लगता है। राजा उस समय सर्वेसर्वा नहीं था। उसकी मंत्रिपरिषद् होती थी, जिसके हाथ में वस्तुतः राज्य की प्रायः सारी शक्ति रहती थी। राज्यवर्धन का प्रधान सचिव भंडि था। राज्यवर्धन के मारे जाने पर भंडि ने त्रिपरिषद् की बैठक बुलाकर देश की स्थि झाई और कहा कि 'राजा का भाई हर्ष कर्तव्य प्रजाप्रिय तथा दयालु है। प्रजा उस पर विश्वास कर प्रस्ताव करता हूँ कि उसे राजा बनाया जाय। मंत्री इस पर अपनी सम्मति दें'। सब मंत्रियों ने सहमत होकर हर्ष से राजा बनने की प्रार्थना की। जान पड़ता है कि मंत्रि-परिषद् का शासन में बहुत कार था। भिन्न-भिन्न मंत्रियों का भी उल्लेख है, जिनमें सांधिविग्रहिक, रणभांडागारिक, विनय-स्थापक (न्याय का प्रबन्धकर्त्ता), अक्षपटलाधिपति( व्यय का हिसाब रखनेवाला) आदि मुख्य हैं। राजा का मुख्य कार्य शासन करना था। वह मंत्रि-परिषद् से स लिया करता था। राजा का कर्त्तव्य प्रजा में रखना और उसकी रक्षा करना था। हुएन्त्संग कह है कि राजा का शासन दयायुक्त नियमों पर था। प्रजा पर किसी प्रकार की ज़बर्दस्ती नहीं की थी। क्षत्रिय लोग बहुत पीढ़ियों से शासन कर परन्तु उनका उद्देश प्रजोपकार और दया है*।

* वाटर्स ऑन युवनच्वांग्स ट्रैवल्स; जि० १ १६८।

## राजा के कर्तव्य

एकतंत्र शासन होते हुए भी राजा परोपकारी और प्रजाहितैषी शासक था। उस समय ब्राह्मणों तथा धर्म-गुरुओं का प्रभाव राजा पर बहुत होता था। वह राज्य की सब प्रकार की क्रियाओं और चेष्टाओं का उत्तरदाता था। वह केवल प्रजा के आर्थिक और राजनैतिक प्रश्नों की ओर ही ध्यान नहीं देता था, किन्तु प्रजा की धार्मिक और शिक्षा-सम्बन्धी अवस्था पर भी लक्ष्य रखता था। बहुत से राजाओं ने धार्मिक उन्नति में विशेष भाग लिया, जिसका वर्णन ऊपर किया जा चुका है। राजाओं ने शिक्षा की उन्नति के लिए भी विशेष प्रयत्न किया। उनके दरबार में बड़े बड़े कवियों और विद्वानों को आश्रय दिया जाता था। जब कभी कोई कवि एक उत्कृष्ट ग्रन्थ तैयार करता, तो राजा दूसरे नरेशों के दरबारों से भी उसे सुनने के लिए विद्वान् प्रतिनिधि बुलाता था। काश्मीर के राजा जयसिंह के समय में मंख-रचित 'श्रीकंठचरित' सुनने के लिए कन्नौज के गोविंदचन्द्र के दरबार से सुहल और उत्तरी कोंकण के राजा अपरादित्य के दरबार से तेजकंठ आदि विद्वान् भेजे गये थे। प्रायः प्रत्येक दरबार में कुछ कवि तथा विद्वान् रहते थे, जिनका वहाँ पूर्ण सम्मान होता था। राजा लोग उन्हें नये नये ग्रन्थ लिखने के लिए भी उत्साहित करते थे।

## ग्राम-संस्था

शासन की सुविधा के लिए देश भिन्न-भिन्न भागों में बँटा हुआ था। मुख्य विभाग भुक्ति (प्रान्त), विषय (ज़िला) और ग्राम थे। सबसे मुख्य संस्था ग्राम-संस्था थी। बहुत प्राचीन काल से भारतवर्ष में ग्राम-संस्थाओं का प्रचार था। ग्राम के लिए वहाँ की पंचायत ही सब कुछ कार्य करती थी। केंद्रीय सरकार का उसी से संबंध रहता था। ये ग्राम-संस्थायें एक छोटा सा प्रजातंत्र थीं, इनमें प्रजा का अधिकार था। मुख्य सरकार के अधीन होते हुए भी ये एक प्रकार से स्वतंत्र थीं।

प्राचीन तामिल-इतिहास से उस समय की शासन-पद्धति का विस्तृत परिचय मिलता है, परन्तु हम स्थानाभाव से संक्षिप्त वर्णन ही देंगे। शासन-कार्य में राजा को सहायता देने के लिए पाँच समितियाँ होती थीं। इनके अतिरिक्त ज़िलों में तीन सभायें होती थीं। ब्राह्मण-सभा में सब ब्राह्मण सम्मिलित होते थे। व्यापारियों की सभा व्यापार आदि का प्रबन्ध करती थी। चोल राजराज (प्रथम) के शिलालेख से १२० गाँवों में ग्राम-सभाओं के होने का पता लगता है। इन सभाओं के अधिवेशन के लिए बड़े बड़े भवन होते थे, जैसे तंजोर आदि में बने हुए हैं। साधारण गाँवों में बड़े बड़े वट-वृक्षों के नीचे सभाओं के अधिवेशन होते थे। ग्राम-सभाओं के दो रूप—विचार-सभा और शासन-सभा—रहते थे। संपूर्ण सभा के सभ्य कई समितियों में विभक्त कर दिये जाते थे। कृषि और उद्यान, सिंचाई, व्यापार, मंदिर, दान आदि के लिए भिन्न-भिन्न समितियाँ थीं। एक समय एक तालाब में पानी अधिक आने के कारण ग्राम को हानि पहुँचने की संभावना होने पर ग्राम-सभा ने तालाब-समिति को उसका सुधार करने के लिए बिना सूद रुपया दिया और कहा कि इसका सूद मन्दिर-समिति को दिया जाय। यदि कोई किसान कुछ वर्ष तक कर न देता था, तो उससे भूमि छीन ली जाती थी। ऐसी ज़मीन फिर नीलाम कर दी जाती थी। भूमि बेचने या ख़रीदने पर ग्राम-सभा उसका पूरा विवरण तथा दस्तावेज़ अपने पास रखती थी। सारा हिसाब-किताब ताड़पत्रादि पर लिखा जाता था। सिंचाई की तरफ़ विशेष ध्यान दिया जाता था। जल का कोई भी स्रोत व्यर्थ नहीं जाने पाता था। नहरों, तालाबों और कुओं की मरम्मत समय समय पर होती थी। आय-व्यय के रजिस्टरों का निरीक्षण करने के लिए राज्य की ओर से अधिकारी नियुक्त किये जाते थे*।

चोल राजा परांतक के समय के शिलालेख से ग्राम-संस्थाओं की निर्माण-पद्धति पर बहुत प्रकाश पड़ता है। उसमें ग्राम-सभा के सभ्यों की योग्यता-अयोग्यता-सम्बन्धी नियम, सभाओं के अधिवेशन के नियम, सभ्यों के सार्व-

* विनयकुमार सरकार; दी पोलिटिकल इंस्टिट्यूशंस एंड थ्यूरीज़ आफ़ दी हिन्दूज़; पृ० २३-२६।

जनिक चुनाव के नियम, उपसमितियों का निर्माण, आय-व्यय के परीक्षकों की नियुक्ति आदि पर विचार किया गया है। चुनाव सार्वजनिक होता था, इसकी विधि यह होती थी कि लोग ठीकरियों पर उम्मीदवार का नाम लिखकर घड़े में डाल देते थे, सबके सामने वह घड़ा खोलकर उम्मीदवारों के मत गिने जाते थे और अधिक मत से कोई उम्मीदवार चुना जाता था*

इन संस्थाओं का भारत की जनता पर जो सबसे अधिक व्यापक प्रभाव पड़ा वह यह है कि वह ऊपर के राजकीय कार्यों से उदासीन रहने लगी। राज्य में चाहे कितने बड़े बड़े परिवर्तन हो जायँ, परन्तु पंचायतों के वैसे ही रहने से साधारण जनता में कोई परिवर्तन नहीं दीखता था। जन साधारण को परतंत्रता का कटु अनुभव कभी नहीं होता था। इतने विशाल देश के भिन्न-भिन्न राज्यों के लिए यह कठिन भी है कि वे गाँवों तक की सब बातों की तरफ़ ध्यान रख सकें। भारतवर्ष में इतने परिवर्तन हुए, परन्तु किसी ने पंचायतों को नष्ट करने का प्रयत्न नहीं किया।

शहरों में म्यूनिसिपैलिटियाँ या नगर-सभायें भी होती थीं, जो नगर का पूर्ण प्रबंध करती थीं।

## दंड

शासन और न्याय के नियम पर्याप्त कठोर थे। अंग-च्छेद, देशनिर्वासन, जुर्माना और कारागार आदि दंड प्रचलित थे†। हर्ष के जन्म पर क़ैदियों के छोड़े जाने का उल्लेख बाण ने किया है। याज्ञवल्क्य ने कई कठोर एवं क्रूर दंडों के देने का वर्णन किया है। ब्राह्मणों को विशेष कठोर दंड नहीं दिया जाता था। न्याय-विभाग के लिए एक विशेष अधिकारी रहता था, जिसके नीचे भिन्न-भिन्न प्रान्तों और स्थानों में अन्य अधिकारी रहते थे। याज्ञवल्क्य ने न्याय के बहुत से नियमों का वर्णन किया है, जिससे पता लगता है कि उस समय की ... व्यवस्था कितनी उन्नत और पूर्ण थी। अभियोगों ... लिखित और मौखिक साक्षियों की परीक्षा की ... थी। आश्चर्य की बात यह है कि सब बातों में ... उन्नति होते हुए भी दिव्यसाक्षी की क्रूर प्रथा ... अवश्य थी*, परन्तु बहुत ही कम उपयोग में आती ...

## स्त्रियों की राजनैतिक स्थिति

क़ानून में स्त्रियों की भी राजनैतिक स्थिति ... की जाती थी। उत्तराधिकार-सम्बन्धी नियमों में ... संपत्ति का भी अच्छा विवेचन किया गया है। ... न होने पर लड़की ही पिता की संपत्ति की अधिकारिणी होती थी। अपने पितृ-गृह की ओर से मिलनेवाली ... पर स्त्री का पूर्ण स्वत्व रहता था। मनु ने भी ... उल्लेख किया है†।

राज्य की ओर से व्यापार और व्यवसाय ... पर विशेष ध्यान दिया जाता था। कारीगरों ... के लिए विशेष नियम बने हुए थे। यदि कोई ... अनुचित उपायों-द्वारा वस्तुओं का मूल्य आदि ... या बाँट और नाप कम या अधिक रखता तो ... मिलता था।

## शासन-प्रबंध

उस समय के शासन का कुछ परिचय तत्कालीन ... चारियों के नामों से मिलता है। राजा या ... नीचे बहुत से छोटे छोटे राजा होते थे, जिन्हें ... महासामंत आदि उपाधियाँ मिलती थीं। ये राजा ... के दरबार में उपस्थित होते थे, जैसा कि बाण के ... विदित होता है। कभी जागीरदार भी ऊँचे ... पहुँच जाते थे। प्रांत के शासक को 'उपरिक ... कहते थे। कई शिलालेखों के प्रांतीय शासकों के ... भोगिक, भोगपति, राजस्थानीय आदि नाम भी मिलते ...

---

* आर्कियालाजिकल सर्वे आफ़ इंडिया; एन्युअल रिपोर्ट १६०४-५; पृ० १४२-४५।

† वाटर्स ऑन युवनच्वांग्स ट्रैवल्स; जिल्द १, पृ० १७२।

* वही; पृ० १७२; अलबेरूनीज़ इंडिया; ... पृ० १५८-६०।

† विनयकुमार सरकार; दी पोलिटिकल इंस्टिट्यूशंस एंड थ्यूरीज़ आफ़ दी हिन्दूज़; पृ० २७-३०।

प्रांतीय शासक विषय या ज़िले के शासक को नियुक्त करता था, जिसे विषयपति या आयुक्तक कहते थे। विषयपति अपने ज़िले के मुख्य स्थान में जिसे अधिष्ठान कहते थे, अपना अधिकरण या दफ़्तर रखता था।

प्रांतीय शासकों के पास राजा की लिखित आज्ञायें जाती थीं। एक ताम्रपत्र से पता लगता है कि ये आज्ञायें तभी ठीक मानी जाती थीं जब कि उन पर सरकारी मुहर हो, प्रान्तीय शासक की स्वीकृति हो, राजा का हस्ताक्षर और तत्संबंधी सब क्रियायें ठीक हों*। राजा की तरफ़ से दी गई तमाम सनदों पर राजमुद्रा की छाप होती थी, यहाँ तक कि दानपत्रों के साथ जुड़ी हुई और तांबे पर ढली हुई बड़ी बड़ी राजमुद्रायें मिलती हैं, जिनमें कहीं कहीं राजा के पूर्वजों की पूरी नामावली तक रहती थी। ऐसी मुद्राओं में कन्नौज के रघुवंशी प्रतिहार राजा भोजदेव तथा मौखरी शर्ववर्मा आदि की मुद्रायें उल्लेखनीय हैं।

स्थानीय सरकारों के भिन्न भिन्न कर्मचारियों के नाम भी शिलालेखों में मिलते हैं, जिनमें से हम कुछ यहाँ देते हैं, जैसे महत्तर ( ग्राम-सभा के सभ्य ), ग्रामिक ( ग्राम का मुख्य शासक ), शौल्किक ( कर लेनेवाला कर्मचारी ), गौल्मिक ( क़िलों का अध्यक्ष ), ध्रुवाधिकरण ( भूमि-कर लेनेवाला ), भांडागाराधिकृत ( कोषाध्यक्ष ), तलवाटक ( ग्राम का हिसाब रखनेवाला )। कुछ छोटे छोटे कर्मचारियों के नामों का उल्लेख भी मिलता है। वर्तमान क्लर्क के नाम 'दिविर' और 'लेखक' थे। 'करणिक' आजकल के रजिस्ट्रार का काम करता था। इन कर्मचारियों के अतिरिक्त दूसरे भी बड़े बड़े कर्मचारी रहते थे। दंडपाशिक, चौरोद्धरणिक आदि पुलिस के कर्मचारियों के नाम थे†।

* मुद्राशुद्धं क्रियाशुद्धं भुक्तिशुद्धं सचिह्नकम्।
राज्ञः स्वहस्तशुद्धं च शुद्धिमाप्नोति शासनम्॥
शिलारावंशी राजा रट्टराज का शक संवत् ९३० ( वि० सं० १०६५ ) का दानपत्र। एपिग्राफ़िया इंडिका; जिल्द ३, पृ० ३०२।

† चिंतामणि विनायक वैद्य; हिस्ट्री आफ़ मिडिएवल इंडिया; जि० १, पृ० १२८-४१; राधाकुमुद मुकर्जी; हर्ष; पृ० १०३-१२।

## आय-व्यय

राज्य की आय कई विभागों से होती थी। सबसे अधिक आय भूमि-कर से थी। भूमि-कर उपज का छठा हिस्सा होता था। किसानों पर भी एक आध और कर लगता था। ये कर अनाज के रूप में लिये जाते थे। मंडपिका ( चुंगी कर ) भी कई पदार्थों पर लगती थी। बंदरगाहों पर भी आनेवाले माल पर तथा दूसरे राज्य से अपनी सीमा में आनेवाले माल पर आयात-कर लगता था। द्यूत-भवनों पर भी बहुत कर लगता था। नमक तथा खानों पर भी कर लगाया जाता था*, परन्तु ये कर भारी नहीं थे जैसा कि हुएन्त्संग का कथन है। उसने राजकीय आय का चार भागों में व्यय किये जाने का वर्णन किया है। एक भाग सरकार तथा राष्ट्रीय कार्यों के लिए व्यय किया जाता था। दूसरा भाग सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओं के लिए ख़र्च होता था, तीसरा भाग शिक्षा-विभाग के लिए और चौथा भिन्न-भिन्न धार्मिक संप्रदायों को सहायता देने के लिए रहता था†।

खेती की उन्नति के लिए पर्याप्त प्रयत्न किया जाता था। सरकार की ओर से भूमि को नापा जाता था। कई शिलालेखों में मानदंड, 'निवर्तन', 'पदावर्त' आदि नापों का उल्लेख मिलता है। राज्य की तरफ़ से लंबाई का 'मापक' निश्चित था। पारमेश्वरीय हस्त भी एक परिमाण होता था। ग्रामों की सीमायें निश्चित की जाती थीं। ग्राम पर कर लगता था। ग्रामों के साथ गोचर-भूमि छोड़ी जाती थी। जागीर या इनाम में मिले हुए गाँवों पर कोई कर नहीं लगता था। राज्य की ओर से तोल के बाँटों का भी निरीक्षण किया जाता था‡।

## सार्वजनिक कार्य

राज्य की ओर से सार्वजनिक हित के कार्यों की तरफ़ भी बहुत ध्यान रहता था। नगरों में धर्मशालायें और

* राधाकुमुद मुखोपाध्याय; हर्ष; पृ० ११२-१३।

† वाटर्स ऑन युवनच्वांग्स ट्रैवल्स; जि० १, पृ० १७६-७७।

‡ चिंतामणि विनायक वैद्य; हिस्ट्री आफ़ मिडिएवल इंडिया; जि० १, पृ० १३३, जिल्द २, पृ० २४०।

कुएँ बनाये जाते थे। ग़रीब रोगियों के लिए औषधालय भी राज्य की ओर से स्थापित किये जाते थे। सड़कों पर भी यात्रियों के आराम के लिए वृक्ष, जलाशय आदि के प्रबंध किये जाते थे। राज्य की ओर से शिक्षणालयों को विशेष सहायता दी जाती थी।

### सैनिक प्रबन्ध

इस शासन-प्रबंध के अतिरिक्त भारत की सैनिक व्यवस्था भी कम उन्नत नहीं थी। सैनिक विभाग शासन-प्रबन्ध से बिलकुल पृथक् था। प्रांतीय शासकों का सेना पर कोई अधिकार नहीं था, उसके अधिकारी बिलकुल स्वतंत्र रहते थे। प्रायः हर समय युद्ध आदि की सम्भावना के कारण सेनायें काफ़ी बड़ी रहती थीं। हर्ष की सेना में ६०,००० हाथी और १,००,००० घोड़े थे। हुएन्त्संग ने हर्ष की सेना चार प्रकार की—हाथी, घोड़े, रथ और पदाति—बताई है*। घोड़े भिन्न-भिन्न देशों से मँगवाये जाते थे। बाण ने कांबोजज, वनायुज, सिंधुज, पारसीक आदि घोड़ों की जातियों के नाम दिये हैं। पीछे से शनैः शनैः रथों का प्रचार कम होता गया।

इन चार प्रचार की सेनाओं के अतिरिक्त जल-सेना भी बहुत सुसंगठित और व्यवस्थित थी। जिन राज्यों की सीमा पर बड़े बड़े दरिया होते थे वे नौ-सेना रखते थे। समुद्री तट के राज्यों को भी नौ-सेना रखने की आवश्यकता थी। हुएन्त्संग ने अपनी यात्रा के प्रसंग में जहाज़ों का वर्णन किया है। मलाया, जावा, बाली आदि द्वीपों में हिन्दुओं के राज्य विद्यमान थे, इससे भी जल-सेनाओं के सुव्यवस्थित होने का निश्चय होता है। चोल राजा बहुत शक्तिशाली जल-सेना रखते थे। राज-राज ने चेर-राज्य का जंगी बेड़ा नष्ट कर लंका को अपने राज्य में मिला लिया था। राजेन्द्र चोल का जंगी बेड़ा निकोबार और अंडमनद्वीपों (आज-कल का काला पानी) तक पहुँचा था। स्ट्रैबो ने भारतीय सेना में जल-सेना के होने का उल्लेख किया है। जल-सेना की विद्यमानता बहुत प्राचीन काल से थी। मैगस्थनीज़ ने चन्द्र[गुप्त की] सेना का वर्णन करते हुए जल-सेना का वृत्तान्त कि[या है।] भिन्न-भिन्न सेनाओं के लिए भिन्न-भिन्न अफ़सर [होते थे।] संपूर्ण सेना के अधिकारी को 'महासेनापति', 'महा[बलाध्]यक्ष' या 'महाबलाधिकृत' कहते थे। 'भटाश्व सं[...]' पैदल और घोड़ों की सेना के अध्यक्ष को कहते थे। [...] की सेना के अध्यक्ष को 'बृहदश्ववार' कहते थे। [...] विभाग के कोषाध्यक्ष को 'रणभांडागाराधिकारी' [कहते] थे। काश्मीर के इतिहास से एक 'महासाधनिक' [का] पता लगता है, जो युद्ध के लिए आवश्यक साम[ग्री की] व्यवस्था करता था*।

सेना के सिपाहियों को वेतन नक़द दिया जाता [था] पर प्रबन्ध के अन्य कर्मचारियों को अनाज के रूप में [दिया] जाता था। स्थिर सेना के अतिरिक्त कठिन अवस[र पर] अस्थायी सेना की भी व्यवस्था की जाती थी। [...] राज्यों में दूसरे राज्यों के लोग भी भरती किये जाते [थे।]

### राजनैतिक स्थिति तथा शासन-पद्धति में परिवर्तन

उपर्युक्त शासन-व्यवस्था और प्रबन्ध हमारे सारे [...] काल में एक सा ही नहीं रहा। इसमें बहुत प[रिवर्तन] हुए। हम संक्षेप में उन परिवर्तनों पर कुछ [विचार] करते हैं।

पिछले समय में भारतवर्ष की राजनैतिक [स्थिति] बहुत अधिक अच्छी नहीं रही। छोटे छोटे राज्य [बन] जा रहे थे। हर्ष और पुलकेशी के बाद तो इन[का] का राज्य कई भागों में विभक्त हो गया। सोलंकी, [...] सेन, प्रतिहार, यादव, गुहिल, राठोड़ आदि कई [...] अपनी अपनी उन्नति में लगे हुए थे। कहने का [...] यह है कि संपूर्ण भारत के बहुत से राज्यों में विभक्त [होने] से उनकी शक्तियाँ बिखर गई। भारत में एक रा[ष्ट्र] का भाव प्रबल रूप से नहीं था। इन राज्यों के [...] रिक युद्धों से देश की शान्ति नष्ट होती रही। [...]

* वाटर्स ऑन युवनच्वांग्स ट्रेवल्स; जि० १, पृ० १७०-७१।

* चिंतामणि विनायक वैद्य; हिस्ट्री आफ़ मिडि[एवल] इंडिया; जि० १, पृ० १४२-५५।

† राधाकुमुद मुकर्जी; हर्ष; पृ० ६७-६८।

स्वाभाविक परिणाम देश की शासन-पद्धति तथा अन्य राजकीय संस्थाओं पर पड़ा। सब राजा शनैः शनैः अधिक स्वतन्त्र और उच्छृंखल होते गये। देश के शासन की ओर उनका अधिक ध्यान न रहा। प्रजा की आवाज़ की सुनवाई कम होने लगी। राजाओं को सेना की विशेष आवश्यकता होने पर उन्होंने प्रजा पर अधिक कर लगाये। राजा स्वयं ही मंत्रियों की नियुक्ति करता था। कोई जनसभा या क्रमागत मंत्रि-परिषद् नहीं थी। इस समय तक राज्य के पुराने अधिकारी ही चले आते थे। ग्यारहवीं और बारहवीं सदी के शिलालेखों में राजामात्य, पुरोहित, महाधर्माध्य, महासांधिविग्रहिक, महासेनापति, महामुद्राधिकृत (राजमुद्रा का रक्षक), महाक्षपटलिक और महाभोगिक आदि अधिकारियों के नाम मिलते हैं, जिनसे विदित होता है कि शासन-प्रबन्ध में विशेष परिवर्तन नहीं हुआ था। इन अधिकारियों में 'महा' शब्द के प्रयोग से स्पष्ट है कि इनके अधीन भी बहुत से कर्मचारी रहते थे*। रानी और युवराज भी शासन में भाग लेते थे। कुछ राज्यों में छोटे छोटे कर बढ़ा दिये गये। पिछले राजाओं के समय के कई कर लगने का उल्लेख मिलता है। भूमि और कृषि आदि की भी व्यवस्था पूर्ववत् थी। क्षेत्रपाल और प्रांतपाल आदि कई अधिकारियों के नाम मिलते हैं। आय-व्यय विभाग भी पहले की तरह ही था। न्यायालयों की भी व्यवस्था अच्छी थी। राजा की अनुपस्थिति में प्राड-विवाक (न्यायाधीश) काम करता था। अलबेरूनी ने मुक़द्दमों के विषय में लिखा है—"अभियोग उपस्थित करते हुए वादी अपनी पुष्टि में प्रमाण देता था। यदि कोई लिखित प्रमाण न हो तो कम से कम चार गवाह चाहिए। उन्हें जिरह की आज्ञा नहीं दी जाती थी। ब्राह्मणों और क्षत्रियों को हत्या के अपराध में प्राणदंड नहीं दिया जाता था। उनकी संपत्ति लूटकर उन्हें देश-निर्वासित कर दिया जाता था। चोरी के अपराध में ब्राह्मण को अन्धा करके उसका बायाँ हाथ और दहना पैर काट दिया जाता था। क्षत्रिय अन्धा नहीं किया जाता था*। इससे जान पड़ता है कि उस समय तक भी क्रूर दंड देने की प्रथा विद्यमान थी।

सैनिक व्यवस्था में भी कुछ परिवर्तन हो रहा था। राजाओं के पास अपनी स्थिर सेना रखने का रवाज कम हो रहा था, परन्तु सरदारों और जागीरदारों के पास सेनायें रखने और युद्ध के समय पर उनसे सेनायें लेने की रीति का प्रचार बढ़ रहा था। भिन्न-भिन्न राज्यों की सेवा में दूसरे राज्यों के वीर सिपाही भरती किये जाते थे। पिछले ताम्रपत्र आदि से भी मालूम होता है कि इस समय भी महासेनापति और हाथियों, घोड़ों, ऊँटों, जल-सेना के भिन्न-भिन्न अफ़सर, प्रेपणीक, गमागमिक आदि अधिकारी रहते थे†।

भिन्न-भिन्न राज्यों के पारस्परिक द्वेष और शत्रुता के कारण सब राष्ट्र निर्बल हो गये थे। सिंध तो आठवीं सदी में ही मुसलमानों के अधिकार में चला गया था और ग्यारहवीं शताब्दी में लाहौर तक पंजाब उनके हाथ में जा चुका था। बारहवीं सदी के अन्त तक दिल्ली, अजमेर, कन्नौज आदि मुसलमानों के हाथ में चले गये और पीछे से युक्त प्रान्त, बंगाल, दक्षिण आदि पर भी क्रमशः उनका अधिकार हो गया और शनैः शनैः अधिकांश हिन्दू-राज्य नष्ट हो गये।

——

* चिन्तामणि विनायक वैद्य; हिस्ट्री आफ़ मिडिएवल इंडिया; जि० ३, पृ० ४५३-५३।

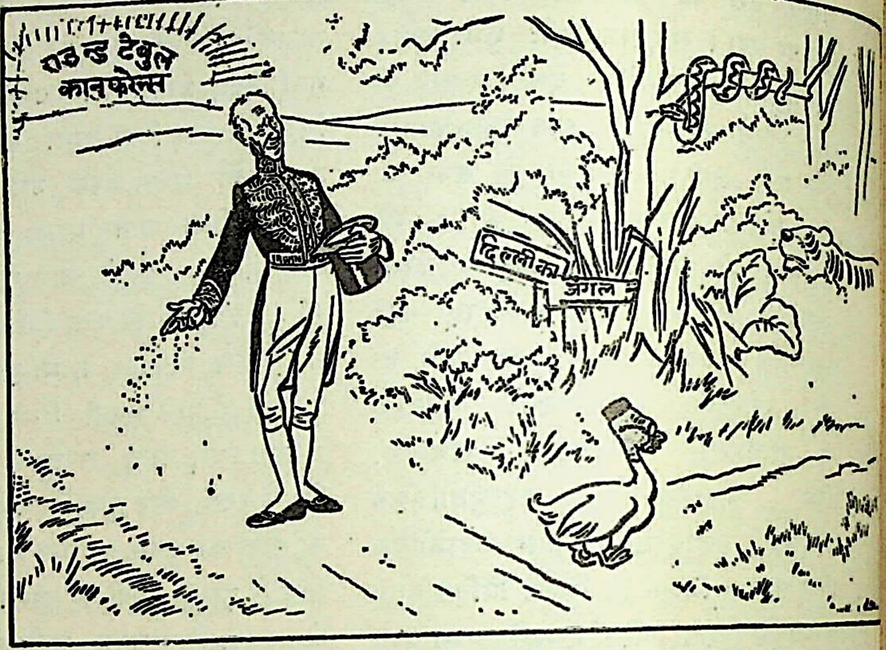
* अलबेरूनीज़ इंडिया; जि० २, पृ० १५८-६३।

† चिंतामणि विनायक वैद्य; हिस्ट्री आफ़ मिडिएवल इंडिया; जिल्द ३, पृ० ४७०।

# कुछ विदेशी हास्य चित्र

(१)

## हास्य और विनोद

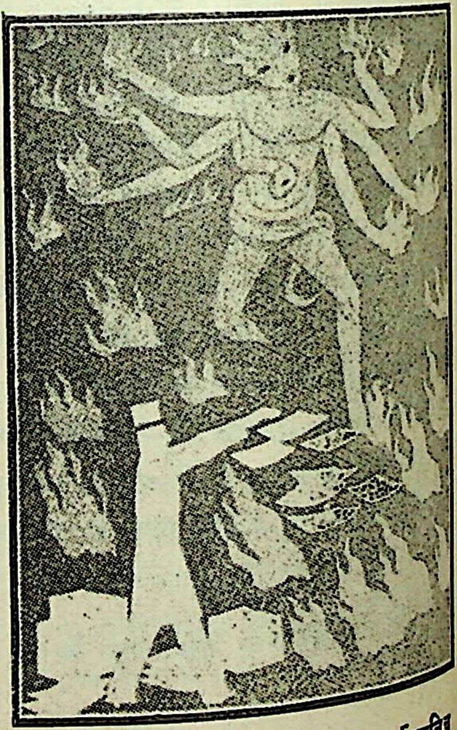



ईवनिंग स्टैंडर्ड] बत्तख ! बत्तख ! गान्धी, कहाँ तुम घूम रहे हो ? [लन्द

(२)



क्लैडराडश ] गान्धी [बर्लिन



सिम्प्लीसीसीयस] इँग्लैंड और भारत [म्यूनिच

[आश्चर्य ! सायमन-रिपोर्ट की हज़ारों प्रतियाँ, मालूम होता है, इस आग के बुझाने में कारगर नहीं हो रही हैं]

# अपनी बात

## १—मज़दूर-दल की सरकार का भविष्य

मालूम होता है कि विलायत के मज़दूर-दल की सरकार अब कुछ ही दिनों की मेहमान है। पार्लियामेंट में उसके दल का अल्पमत होने से वह अपने कार्यकाल में शासन-कार्य में असफल रही है। यदि समय समय पर उदार-दल की सहायता न मिलती रहती होती तो उसका जीवन-दीपक तभी बुझ गया होता। इसी निर्बलता के कारण वह अपने पिछले दिनों के शासन-काल में ऐसा कोई महत्त्वपूर्ण कार्य नहीं कर सकी है जिससे ब्रिटेन के नागरिक उसका महत्त्व स्वीकार करते। यही नहीं, अपनी अगर-मगर की कार्यवाही से वह अपने दल में भी फूट डाल बैठी है। 'स्वाधीन मज़दूर-दल' मज़दूर-दल का अंग होते हुए भी अपने ही दल के मन्त्रिमण्डल की जो कठोर टीका-टिप्पणी करता है उससे इसके सिवा और क्या प्रकट होता है। स्वतन्त्र मज़दूर-दल के नेता मिस्टर मैक्सटन तो बात बात में मन्त्रिमण्डल को आड़े हाथों लेते हैं और उस पर यह अभियोग लगाते हैं कि मज़दूर-दल का मन्त्रिमण्डल अपने दल की स्वीकृत साम्यवादी नीति के विरुद्ध आचरण कर रहा है और उसे प्रभुता का मद हो गया है। उधर जिस उदार-दल की सहायता से वह अधिकारारूढ़ है, मालूम होता है, वह भी विमुख हो जानेवाला है। कहा जाता है कि बेकारी की समस्या मज़दूर-दल की सरकार नहीं हल कर सकी, उलटा वह और जटिल हो गई है। इस अवस्था से उदार-दल भी लाभ उठाना चाहता है, वह अपनी प्रतिपत्ति फिर जमाना चाहता है। उसके चाचाच नेता मिस्टर लायड जार्ज प्रधान मन्त्री मिस्टर राम्से मैक्डानल्ड के अनुरोध से इस समय बेकारी की समस्या पर विशेष ध्यान दे भी रहे हैं। कहा जाता है कि इस मसले को हल करने के लिए वे गङ्गा-यमुनी मन्त्रिमण्डल की रचना के सम्बन्ध में प्रयत्न करना चाहते हैं। और इस समय ग्रेटब्रिटेन के कोई पचीस लाख बेकारों को खाने-पीने और शरीर की लज्जा ढाँकने का कारगर उपाय जो नेता उपस्थित करेगा उसी का अन्त में बल बढ़ेगा। अतएव मिस्टर लायड जार्ज को इस मसले से अधिक दिलचस्पी लेते देखकर लोग यही अनुमान कर रहे हैं कि अब वे एक बार फिर अपना जौहर दिखला कर प्रधानमन्त्री का आसन ग्रहण करना चाहते हैं। रहा अनुदार-दल, सो वह तो मज़दूर-दल की सरकार को पदच्युत करने को तुला ही हुआ है। लोगों का अनुमान है कि इंपीरियल कान्फ़रेन्स और राउँड टेबल कान्फ़रेन्स के हो जाने के बाद वह मज़दूर-दल की सरकार को हराने का प्रयत्न करेगा और इस बार इसके हार जाने की पूरी सम्भावना दिखाई दे रही है। चाहे जो हो, यह तो स्वीकार करना पड़ेगा कि मज़दूर-दल की सरकार ने अब तक क्या घर में, क्या बाहर—सर्वत्र समझौते का ही मनोभाव व्यक्त किया है; उसकी शान्ति और सदिच्छा की ही नीति रही है।

## २—योरप में युद्ध के बादल

योरप में युद्ध के बादल दिखने लगे हैं। मालूम होता है, पिछले महायुद्ध के नर-संहार से वहाँ की रण-चण्डी का खप्पर अभी नहीं भरा है। वहाँ के अख़बारों

में यह भविष्यवाणी की जाने लगी है कि जर्मनी और पोलेंड में युद्ध होगा। इस युद्ध का कारण पूर्वी प्रशिया का वह भूभाग है जो वर्से के सुलहनामे के अनुसार पोलेंड को दे दिया गया है। जर्मनों का कहना है कि उस भूभाग में निवास करनेवाले जर्मनों को पोलेंड की सरकार बहुत सताती है। उसने उनके नाकों दम कर रक्खा है। यही नहीं, ऐसी कूट-नीति की चालें उनके साथ की जाती हैं कि वे ऊब कर देश छोड़कर भाग जायँ और यदि न भागें तो उन्हें जीवन में समुन्नत होने की सुविधायें न प्राप्त होने दी जाय। उदाहरण के लिए शिक्षा को लीजिए। सन् १९२४ से सन् १९२९ तक उस भूभाग में जर्मन विद्यार्थियों की संख्या ३५ हज़ार से घटकर १७ हज़ार आ पहुँची है। जर्मन विद्यार्थियों को प्रारम्भिक शिक्षा तक दुर्लभ हो रही है। यही नहीं, वहाँ के जर्मनों से पोल लोग किसी तरह का सामाजिक सम्बन्ध भी नहीं रखते हैं। उनको वहाँ खेती करने की सुविधा नहीं मिल रही है। सरकार के यहाँ उनको नौकरी-चाकरी मिलना अलग रहा, वकालत और डाक्टरी के पेशे में भी उन्हें सफलता नहीं मिल रही है। वैमनस्य से वहाँ के जर्मनों का जीवन भार-स्वरूप हो रहा है और यह उन्हें असह्य हो रहा है। जर्मन-सरकार अपने पहले के प्रजाजनों की यह दशा अब तक चुपचाप देखती रही है। परन्तु हाल में जर्मन-नेता हर ट्रेवीरानस ने अपने एक भाषण में उस भूभाग के सम्बन्ध में कुछ स्पष्ट बातें कही हैं, जिनका विरोध पोल लोगों ने जुलूस निकाल कर किया है और कहा है कि उक्त भूभाग पोलेंड का है, क्योंकि उसमें पोलों की ही बहुसंख्या है। परन्तु जर्मनी पोलेंड के इस दावे को स्वीकार करने को तैयार नहीं है। वह लोकार्नो के समझौते के आधार पर अपनी पूर्वी सीमा के मसले को फिर उठा सकता है। अतएव यह मसला भविष्य में राष्ट्र-सङ्घ के समक्ष उपस्थित किया जायगा। यदि राष्ट्र-सङ्घ इसे हल करने में सफल होगा तो ख़ैर समझिए, नहीं तो इन दोनों राज्यों में युद्ध अनिवार्य है। राष्ट्र-सङ्घ की अगर-मगर और लीपापोती की नीति से जर्मनी के सिवा इटली, आस्ट्रिया, बल्गेरिया और हंगरी सन्तुष्ट नहीं हैं और ये राष्ट्र इस सम[illegible] से सङ्घबद्ध सा हो रहे हैं। उधर फ़ांस के साथ [illegible]यम, ज़ेचोस्लोवेकिया, जुगोस्लेविया और पोलेंड [illegible] वर्से की सन्धि में परिवर्तन नहीं होने देना चाहते हैं। इस विचार के सम्बन्ध में पूर्वोक्त राष्ट्रों की कैसी [illegible] है, इसका भी स्पष्टीकरण हाल में हो गया [illegible] अमरीका के बढ़ते हुए व्यापार से योरप की आ[illegible] भाव से फ़ांस के वैदेशिक मन्त्री मोशिये ब्रियांद ने [illegible] के राज्यों का आर्थिक संयुक्तीकरण करने के लिए [illegible] राष्ट्रों से एक प्रस्ताव किया है। इसके उत्तर में जर्मनी [illegible] इटली ने अपना असन्तोष प्रकट किया है। इटली इस[illegible] लिए असन्तुष्ट है कि जीत के बँटवारे में उसे कम [illegible] दिया गया है। जर्मनी इसलिए असन्तुष्ट है कि [illegible] देश दूसरों को दे दिया गया है जो [illegible] अत्याचार कर रहे हैं। ऐसी दशा में इनका [illegible] कि पहले ये उलझनें सुलझा दीजिए, तब कहीं [illegible] संयुक्त-राज्यों की स्थापना का प्रस्ताव करिए। [illegible] यह समस्या दिन दिन जटिलतर होती जा रही है, [illegible] के लक्षण नहीं दिखाई दे रहे हैं। ऐसी दशा में [illegible] सबकी एक न एक दिन टक्कर हो जानी अनिवार्य [illegible] और तब कौन कह सकता है कि उसमें योरप के [illegible] राष्ट्र नहीं शामिल होंगे? इस तरह संसार की [illegible] के भङ्ग होने की सम्भावना स्पष्ट देख पड़ती है।

## ३—पाश्चात्य देशों में स्त्री-शिक्षा का [illegible]

पाश्चात्य देशों में स्त्री-शिक्षा की बड़ी उन्नति हुई है। वहाँ के स्त्री-शिक्षालयों से हमें अपने देश [illegible] शिक्षा के प्रचार में बड़ी सहायता मिल सकती है। [illegible] के प्रसिद्ध स्त्री-विश्वविद्यालय के संस्थापक डाक्टर [illegible] ने इसी उद्देश से दुनिया के भिन्न-भिन्न देशों [illegible] में यात्रा की और योरप, अमरीका तथा [illegible] आदि में घूम घूम कर लड़कियों के स्कूलों और [illegible] को देखा। इसके अतिरिक्त आपने योरप [illegible] बड़ी अन्तर्राष्ट्रीय कान्फ़रेन्सों में भी भाग [illegible] अब आप भारतवर्ष वापस आगये हैं और [illegible]

अनुभवों से अपने कार्य को आगे बढ़ाना चाहते हैं। हाल ही में आपने अपनी यात्रा का संक्षिप्त वर्णन प्रकाशित कराया है और उसमें पाश्चात्य देशों की वर्तमान शिक्षा-प्रणाली का भी ज़िक्र किया है। लड़कियों की आधुनिक पाठशालाओं का वर्णन करते हुए आप लिखते हैं—

'मुझे यह देखकर हर्ष हुआ कि लड़कियों के वर्तमान स्कूलों और कालेजों में गृह-प्रबन्ध की ओर अधिकाधिक ध्यान दिया जा रहा है। गृह-विज्ञान और दस्तकारी की शिक्षा के लिए ख़ास तौर से नये नये स्कूल खुलते जा रहे हैं। इन स्कूलों में सर्वथा इन्हीं विषयों की शिक्षा दी जाती है। परन्तु साधारण स्कूलों में भी इसका समुचित प्रबन्ध रहता है। प्रत्येक बालिका को छोटे पैमाने पर घर का बन्दोबस्त करना सिखाया जाता है। उन्हें घर के साप्ताहिक आय-व्यय का ब्यौरा तैयार करने से लेकर बर्तन साफ़ करने और झाड़ू लगाने तक की व्यावहारिक शिक्षा दी जाती है। ज्यों ज्यों लड़कियाँ ऊँची कक्षाओं में जाती हैं, त्यों त्यों इन विषयों की शिक्षा का उच्च विकसित स्वरूप भी उनके सामने आता जाता है। बहुत से हाई स्कूलों में यह शिक्षा बिलकुल वैज्ञानिक ढंग से दी जाती है और अमरीका के कुछ विश्व-विद्यालय तो इन विषयों में भी एम० ए० और डाक्टर की डिग्रियाँ देते हैं। भारतवर्ष में इस विषय की ओर ध्यान देने की बहुत अधिक आवश्यकता है।'

इसके साथ ही साथ अब वहाँ शारीरिक उन्नति के लिए स्वास्थ्य और सौंदर्य्य-वर्द्धन के वैज्ञानिक तरीके भी क्रम से सिखाये जाते हैं। डाक्टर कर्वे लिखते हैं—

'इसी प्रकार शारीरिक शिक्षा की ओर भी खूब ध्यान दिया जाता है। शरीर के सब अंगों को विकसित करने के लिए सब प्रकार के व्यायामों का वैज्ञानिक अध्ययन कराया जाता है। नये नये ढङ्ग के व्यायाम भी ईजाद किये जा रहे हैं। स्कूल में पढ़ाई के साथ साथ तरह तरह के खेल भी खेलाये जाते हैं। बहुत से स्कूलों में तैरना आवश्यक है। इसके लिए बड़े बड़े पक्के तालाब बने हैं, जिनमें सब लड़कियों को तैरना सिखाया जाता है। सब स्कूलों में व्यायाम करने के लिए अप-टू-डेट यन्त्रों से सुसज्जित बड़े बड़े हाल बने हुए हैं। इस बात का बड़ा ध्यान रक्खा जाता है कि भावी सन्तान स्वस्थ और सुन्दर हो। बहुत से स्कूलों में बालिकाओं के स्वास्थ्य की अक्सर जाँच होती रहती है और आँखों तथा दाँत के डाक्टर विशेषरूप से नौकर रक्खे जाते हैं।'

इन शिक्षाओं के अतिरिक्त भिन्न-भिन्न भाषाओं का सीखना भी, बालक-बालिकाओं के लिए ज़रूरी समझा जा रहा है। कर्वे महोदय लिखते हैं—

'योरप के बहुत से देशों में भिन्न-भिन्न भाषाओं की शिक्षा को एक विशेष स्थान मिल रहा है। शिक्षा का माध्यम मातृ-भाषा होती है, पर मातृ-भाषा के अलावा कम से कम दो और भाषायें सिखाई जाती हैं। हाईस्कूल के विद्यार्थी अँगरेज़ी, जर्मन और फ्रेंच पढ़ते हैं। भारतवर्ष में तीन भाषायें सीखने की अत्यन्त आवश्यकता है। शिक्षा का माध्यम अपनी मातृ-भाषा होनी चाहिए और उसके अतिरिक्त अँगरेज़ी और हिन्दी सिखाई जानी चाहिए। जो अँगरेज़ी नहीं सीख सकतीं उन्हें भी हिन्दी सीखनी चाहिए, क्योंकि आगे चल कर यही देश की राष्ट्रभाषा होगी। इस प्रकार हर प्रान्त की लड़कियाँ हिन्दी सीख जायँगी।'

—श्रीनाथसिंह

## ४—राउंडटेबल कान्फ़रेंस

सायमन-कमीशन की रिपोर्ट निकल गई। उस पर लोगों के मतामत भी प्रकाशित हो गये। अब राउंडटेबल कान्फ़रेंस होने जा रही है। इसकी बैठकें पूर्व सूचना के अनुसार लन्दन में नवम्बर में होंगी। इसमें शामिल होनेवाले प्रतिनिधियों के नाम वायसराय महोदय ने प्रकाशित कर दिये हैं। इनमें कांग्रेस के सदस्य नहीं शामिल हैं। कांग्रेस ने पहले से ही उक्त सभा में भाग लेने से इनकार कर दिया है। ऐसी दशा में उसके सदस्य इस सभा की बैठक में शामिल होने के लिए नहीं चुने गये। जो प्रतिनिधि चुने गये हैं उनमें देशी रजवाड़ों के १६

प्रतिनिधि हैं। इनमें १० राजे हैं और ६ उनके अनुभवी राजकर्मचारी। अँगरेज़ी भारत के प्रतिनिधियों की संख्या ५० है। इनमें २४ हिन्दू, १४ मुसलमान, २ सिक्ख, ३ येरपीय, २ पारसी, २ ब्रह्मदेशी, ३ देशी ईसाई और एँग्लोइंडियन हैं। इन प्रतिनिधियों में कांग्रेस के प्रतिनिधियों का न होना लोगों को बहुत खटकता है। तथापि जो प्रतिनिधि चुने गये हैं उनमें कुछ प्रसिद्ध देशभक्त भी हैं। हिन्दू-प्रतिनिधियों में अधिक संख्या नरम-दल के नेताओं की है। हिन्दुओं के प्रतिनिधियों की संख्या मुसलमानों की अपेक्षा कम है। मुसलमानों के ठीक हिसाब से प्रतिनिधि लिये गये हैं। उनके सभी हितों के प्रतिनिधि हैं। पंजाब जैसे हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न के क्षेत्र का हिन्दुओं का एक ही प्रतिनिधि है। सिक्खों की भी शिकायत है कि उनका कोई लोकप्रिय नेता प्रतिनिधि नहीं बनाया गया है। व्यवसायियों के भी प्रतिनिधियों की संख्या कम बताई जाती है। इन प्रतिनिधियों में अधिक संख्या राजा-रईसों और धनीमानी जनों की है। निस्सन्देह इनमें से प्रायः सभी राजनैतिक आन्दोलनों से दूर रहते हैं, परन्तु देश के राजनैतिक प्रश्नों से वे पूर्णरूप से परिचित हैं। आशा है, देशकाल के अनुसार वे अपने कर्तव्य का यथाविधि पालन करेंगे।

## ५—मास्को में

बोल्शेविकों ने रूस में नये ढङ्ग की शासन-प्रणाली ही नहीं प्रचलित की है, किन्तु उन्होंने वहां सभी बातें नई कर दी हैं। राजनीति, समाज, धर्म में तो उन्होंने अपने सिद्धान्तों का आतङ्क पूर्णरूप से जमा ही लिया है, यहाँ तक कि वहाँ के जीवन के सभी क्षेत्रों में उनका बोलबाला हो गया है। रूसी प्रजाजन बोल्शेविकों को न मानते हुए भी उनकी शक्ति के आगे नतमस्तक हैं। विरोध क्या, बेचारे चूँ तक नहीं कर सकते। इस नई व्यवस्था के वहाँ स्थापित होने के बाद मारकाट तथा विद्रोहों का तांता बँध गया था। उसमें बोल्शेविक ही अन्त में विजयी हुए और विरोधी दल को उनका अनुशासन मानना पड़ा। रूस में कहाँ क्या हो र[हा है,] रूसी प्रजा अपनी वर्तमान नई सरकार से सन्तु[ष्ट है या] असन्तुष्ट है आदि बातों का दूसरे देशों के लोगों को [उ]चित ज्ञान नहीं है। तथापि समय समय पर जो [लोग] रूस आये-गये हैं उन्होंने वहाँ की स्थिति पर [कुछ] प्रकाश डाला है। बर्लिन के एक अनुदार साप्[ताहिक के] सम्पादक हर हेंज़ पोल ने अपने पत्र में मास्को [की वर्त]मान अवस्था पर एक लेख लिखा है। इस [से] प्रकट होता है कि वहाँ की सरकार ने नगर [के] व्यवसाय का यहां तक कि छोटी छोटी दूकानों [] तक का काम अपने हाथों में ले लिया है। [वे] लिखते हैं—

'सोवियट-राजधानी में सभी बातें बर्लिन [जैसी] हैं, परन्तु हैं बिलकुल भिन्न। उदाहरण के लि[ए व्यव]साय को ही लीजिए। सभी प्रकार का कारबा[र] है। वहाँ फ़ोटोग्राफ़, फूल, शराब की दूकानें, मिठाई आदि की बहुसंख्यक दूकानें हैं। सारांश [यह कि] वहाँ जिस चीज़ की ज़रूरत हो, दूकानों में मिल [जाती है।] नगर के बीच में बड़े-बड़े वस्तु-भाण्डारगृह हैं, [जिनके] द्वार पर अनेक लोग खड़े रहते हैं। हमारे [यहाँ के] भाण्डारगृह की तरह वहाँ भी माल दिखलाने [के लिए] बड़ी खिड़कियां हैं। यद्यपि ये हमारे यहां [की तरह] सुन्दर नहीं सजी हैं, तो भी उनकी सजावट [] प्रकट होती है। भीतर जाने पर तुम्हें वहां [एक] स्त्री खड़ी मिलेगी, जो तुमसे पूछेगी कि क्या चाहि[ए] और तुम्हारे चीज़ ख़रीद लेने पर उसका पैकेट [बना] वह तुम्हें सिपुर्द कर देगी।

'अगर तुम मास्को की हवा खाना चाहो [तो] टैक्सी गाड़ी मिल जायगी। वहाँ की सड़कें [] तरह नये से नये ढङ्ग की अमरीका की मोटरगा[ड़ियों से] पूर्ण हैं। परन्तु एक बात का बड़ा सुन्दर [] वह यह कि ये सारी दूकानें, भाण्डारगृह, टैक्[सी] किसी फ़र्म या व्यक्ति की नहीं हैं, किन्तु ये रूस-सर[कार की] हैं। मास्को के कारबार में से ६६ फ़ी सदी [] रूस-सरकार के हाथ में आ गया है। वहाँ [...]

छोटी-छोटी दूकानें हैं जिन्हें लोग इधर-उधर गलियों में खोले हुए हैं। इनमें अधिक संख्या जूते बनानेवाले, दर्ज़ी जैसे लोगों की है। वहाँ यह सारा कारबार ट्रस्टों-द्वारा होता है। मास्को के सारे भाण्डारगृहों और कोठियों में से कोई तीन-चौथाई के स्वामी तीन या चार बड़े बड़े ट्रस्ट हैं, जो माल ख़रीदने और बेचने का काम करते हैं। खेती की उपज बढ़ानेवाले ट्रस्ट के हाथ में शहर की कोई पाँच सौ दूकानें हैं। इनमें भोजन, मिठाई, रोटी, शराब, सिगरेट—और घर में काम में आनेवाली प्रत्येक प्रकार की वस्तु बेची जाती है। एक दूसरे ट्रस्ट के हाथ में लगभग उतने ही भाण्डारगृह हैं जिनमें तैयार कपड़े, जूते, टोपियाँ आदि बिकती हैं।'

इस प्रकार रूस-सरकार ने छोटे से लेकर बड़ा व्यापार सब अपने हाथों में ले लिया है तथा उसने चीज़ों का मूल्य आदि सब एक सीमा तक निर्द्धारित कर दिया है। इसका परिणाम यह हुआ है कि वहाँ न तो सस्ते-महँगे का प्रश्न है, न कहीं ठग लिये जाने का डर है। जो चीज़ मिलेगी सर्वत्र एक ही ढङ्ग की समान मूल्य में मिलेगी। इस नई व्यवस्था के कारण एक बात बड़े मारके की हुई है। वह है मद्य का वर्जन। उक्त लेखक महोदय लिखते हैं—

वहाँ एक अज्ञात गली में केवल एक ही ऐसी दूकान है जिसमें एक प्याला कहवा और रोटी का एक टुकड़ा मोल मिल सकेगा। इसके सिवा मास्को में कोई केफ़ या शराब की भट्टी नहीं है। मद्य-वर्जन वस्तुतः यहाँ कार्य में परिणत किया गया है, परन्तु है यह विशेष ढङ्ग का। केवल शराब पीने की दूकानें नहीं हैं, और शराब तो जो जितनी चाहे सरकारी दूकानों में बन्द बोतलों में ख़रीद सकता है। हाँ, यह निस्सन्देह वर्जित है कि कोई इन दूकानों में या सड़क पर या किसी भी सार्वजनिक स्थान में शराब नहीं पी सकता। अपने घर चाहे जो पिये।'

## ६—मातृ-भाषा का प्रेम

ब्रिटिश पार्लियामेंट के वर्तमान अधिवेशन में मातृ-भाषा-प्रेम का एक बहुत सुन्दर उदाहरण लोगों के सामने आ उपस्थित हुआ था। बात यह हो गई कि सरकारी तार-घर में वेल्स-भाषा में लिखा हुआ तार का फ़ार्म नहीं स्वीकार किया गया। इस बात की ख़बर जब वेल्स के प्रतिनिधियों को हुई तब उन्होंने हाउस आफ़ कामंस में सरकार से जवाब माँगा। उनके प्रतिनिधि डाक्टर मारिस जोंस ने सरकार से प्रश्न किया कि वेल्स-भाषा में लिखा हुआ तार का फ़ार्म तार-घर में क्यों नहीं लिया गया। सरकार की ओर से पोस्टमास्टर जनरल मिस्टर विग्रान्ट ने उत्तर देते हुए कहा कि इसका कारण अन्तर्राष्ट्रीय नियम है। उसमें वेल्स-भाषा को स्थान नहीं प्राप्त है। अँगरेज़ी में ही लिखे हुए फ़ार्म लिये जायँगे। परन्तु वेल्स के प्रतिनिधि बिगड़ पड़े। उन्होंने कहा कि वेल्स अँगरेज़ी-भाषा से सदियों पुरानी है। ऐसी दशा में यह बात कैसे न्यायसङ्गत हो सकती है कि वेल्स-भाषा का तिरस्कार किया जाय। अन्त में पोस्टमास्टर-जनरल को मजबूर होकर उनकी बात माननी पड़ी और उन्हें वादा करना पड़ा कि वेल्स-भाषा को भी उसका उपयुक्त स्थान दिलाने का प्रयत्न किया जायगा। यही नहीं, उन्होंने इस बात की घोषणा भी बाद को कर दी कि अब तार आदि वेल्स-भाषा में भी लिखे हुए लिये जाया करेंगे।

डाक्टर मोरिस-जोंस ने उस दिन रेक्सहम के अपने व्याख्यान में इस मसले का सारा इतिहास अपने श्रोताओं को बतलाया था। आपने इस बात पर प्रसन्नता प्रकट की है कि डाक के अधिकारियों ने उनकी दलील को स्वीकार करके वेल्स का जीवित-भाषा होना मान लिया है और अब वेल्स-भाषा में भी तार आदि करने में किसी तरह की रुकावट न डाली जायगी। इस प्रकार वेल्स-निवासियों ने अपनी मातृ-भाषा के मान की रक्षा में अपने मातृ-भाषा-प्रेम का बहुत सुन्दर उदाहरण लोगों के सामने उपस्थित किया है। इस समय सारे संसार में अँगरेज़ी-भाषा की प्रभुता है, उसके घर ग्रेटब्रिटेन में तो है ही। ग्रेटब्रिटेन में स्काच, वेल्स आदि प्रान्तिक भाषाओं या बोलियों के होते हुए भी अँगरेज़ी का ही सर्वत्र अखण्ड राज्य है। तो भी स्वयं उस अँगरेज़ी के ही उद्भव-स्थान में वेल्स की मृतप्राय-भाषा के मुट्ठी भर बोलनेवालों ने

उसकी मर्यादा की रक्षा करके अपने मातृ-भाषा-प्रेम का परिचय दिया है। वेल्स-निवासी एक स्वाधीन राष्ट्र के नागरिक हैं, भले ही उनकी उसमें अल्प संख्या हो। उनकी उचित माँगों की उनका राष्ट्र कभी नहीं उपेक्षा कर सकता। भारत की हिन्दी-भाषी जनता को इँग्लेंड की इस घटना से काफ़ी शिक्षा मिल सकती है।

## ७—समाचार-पत्रों का महत्त्व

वर्तमान युग समाचार-पत्रों का युग कहा जाता है। किसी बात के पक्ष में या उसके विरुद्ध लोक-मत तैयार करने में समाचार-पत्र सबसे अधिक सहायक होते हैं। अधिकांश लोगों का अब भी यह ख़याल है कि किसी देश की सरकार वहाँ के समाचार-पत्रों की टीका-टिप्पणी की परवा नहीं करती। पर यह ख़याल धीरे-धीरे बदलता जा रहा है। सच बात तो यह है कि सभी देशों की सरकारें समाचार-पत्रों को अपने स्पर्श में रखना चाहती हैं ताकि उनके सम्बन्ध में वे किसी असत्य बात का प्रचार न कर बैठें। अधिकांश सरकारें समाचार-पत्रों को अपने वश में रखना चाहती हैं। पर इसमें किसी को अभी तक पूरी सफलता नहीं मिली। हाँ; सेंसर या अन्य क़ानूनों के द्वारा वे उनमें ऐसी कड़ी बातों का प्रकाशन रोक देती हैं जिन्हें वे अपने अनुकूल नहीं समझतीं। हमारे देश के समाचार-पत्र सरकार की इस नीति के शिकार हैं। इटली में भी आजकल यही दशा है। स्पेन में ऐसा नहीं होता, पर वहाँ समाचार-पत्रों को सरकारी विज्ञप्तियाँ अनिवार्य्य रूप से छापनी पड़ती हैं। परन्तु सभी देशों के समाचार-पत्र स्वाधीन होना चाहते हैं और योरप और अमरीका के प्रायः सभी देशों में समाचार-पत्रों को पूर्ण या अर्द्ध-स्वतंत्रता प्राप्त भी है।

अब यह नहीं हो सकता कि किसी देश की सरकार वहाँ के समाचार-पत्रों से उदासीन रहे। प्रत्येक राज्य के वैदेशिक विभाग में समाचार-पत्रों से सम्बन्ध रखने-वाली बातों पर विचार करने के लिए एक अलग आफ़िस होता है। यह आफ़िस सम्पादकों को निमंत्रित करता है, वैदेशिक नीति पर उनसे वाद-विवाद करता है और उन्हें अपनी कारगुज़ारी के सम्बन्ध में जहाँ तक बता[illegible] है बताता है। यह आफ़िस समाचार-पत्रों पर [illegible] डालने का प्रयत्न करता रहता है। पर इस तरह [illegible] है कि किसी को इस पर सन्देह न हो। इंग्लैं[illegible] यही नीति बर्ती जा रही है। पर फ़्रांस में यह [illegible] खुल्लम-खुल्ला समाचार-पत्रों को प्रभाव डालने का [illegible] करता है। ब्रिटिश फ़ारेन आफ़िस अपनी स्थिति [illegible] सदा स्पष्ट रखना चाहता है। वह सम्पादकों को [illegible] तक बता सकता है, सत्य ही बताता है। इस [illegible] से शत्रु या मित्र किसी के सम्बन्ध में कोई ग़लत [illegible] नहीं प्रकाशित होने पाती।

अमरीका में शासन-विभाग सम्पादकों से बहु[illegible] अधिक घनिष्टता रखता है। वहाँ स्वयं प्रेसिडेंट [illegible] विदेशी सभी प्रकार के सम्पादकों से सप्ताह में [illegible] कम दो बार मिलते हैं और दिल खोलकर [illegible] विषयों पर बातें करते हैं। पर ये बातें बिना [illegible] राय के प्रकाशित नहीं होतीं और सम्पादक लोग [illegible] वादे को सदा पूरा करते हैं। राज्यों का और [illegible] का यह सम्बन्ध वहाँ दिन प्रति दिन घनिष्ट होता जा[illegible] है। और अधिकांश देशों में तो यह एक साधारण [illegible] हो गई है।

मिस्टर एच० हैरिस ने 'न्यू क्रोनिकल' नामक [illegible] में इस विषय पर लेख लिखते हुए भारत-सरकार [illegible] सलाह दी है कि वह भी भारतवर्ष के सम्पादकों से [illegible] प्रकार का सम्बन्ध स्थापित करे और अपना एक प्रका[illegible] विभाग खोले। क्योंकि भारत में झूठी ख़बरें बड़ी [illegible] फैलती हैं और उनका प्रतिवाद बहुत कम लोगों [illegible] पहुँचता है।

—श्रीवा[illegible]

## ८—सीलोन की भारतीय समस्या

सीलोन में भारतीयों की नागरिकता के अधिकारों [illegible] अपहरण करने के लिए जो कुछ किया गया है उसकी [illegible] भारतीय पत्रों में समय समय पर प्रकाशित होती रही [illegible] इस सम्बन्ध में प्रसिद्ध लेखक सेंट निहालसिंह ने [illegible]

लिखा-पढ़ी की है। परन्तु सब प्रयत्न व्यर्थ हुआ और भारतीयों के वोटाधिकार में पख लग ही गई। पहले सीलोन-प्रवासी भारतीय अन्य जातियों की भाँति समानरूप से वोट देने का अधिकार रखते थे। यही नहीं, अल्प संख्या में होने के कारण उनके लिए विशेष प्रतिनिधि का प्रबन्ध था। परन्तु वहाँ अब वही भारतीय वोट दे सकेगा जो इसी कार्य के लिए नियुक्त अधिकारी के समक्ष यह स्वीकार करेगा कि मैं द्वीप में हमेशा के लिए बस गया हूँ। विलायत की सरकार के औपनिवेशिक विभाग ने यही निर्णय किया है। उनके निर्णय के अनुसार सीलोन में उन भारतीयों के नाम लिखे जा रहे हैं जो अपने को वहाँ का सदा का निवासी कहते हैं। इसी १४ सितम्बर को नाम लिखने का काम ख़तम हो गया होगा। वहाँ का एक संवाद पत्रों में छपा था कि नाम लिखाने की भी समुचित सुविधा भारतीयों को नहीं दी गई। इससे अनेक ऐसे भारतीयों के नाम नहीं लिखे जा सके जो वहाँ सदा से बसे हुए हैं। अतएव वहाँ के भारतीयों ने वायसराय महोदय से इस मामले में हस्त-क्षेप करने के लिए एक अपील की है। आशा है, भारत-सरकार सीलोन-प्रवासी भारतीयों की हित-रक्षा की ओर समुचित ध्यान देगी।

## ९—चित्र-परिचय

**जामा मस्जिद**—दिल्ली की जामा मस्जिद हिन्दुस्तान की सुप्रसिद्ध और भव्य इमारतों में अपना एक विशिष्ट स्थान रखती है। इसका निर्माण मुग़ल-सम्राट् शाहजहाँ ने कराया था। यह मस्जिद २६१ फुट लम्बी-चौड़ी है। इसके सामने एक विस्तृत आँगन है, जिसका क्षेत्रफल ४५० फुट है। मस्जिद के भीतर का फ़र्श संगमरमर का है। इस चित्र में उस विशाल मस्जिद के एक कोने का दृश्य दिखाया गया है।

**अलम्बुष और दुर्योधन**—यह चित्र महाभारत के द्रोणपर्व की एक घटना के आधार पर चित्रित किया गया है। अलम्बुष जटासुर नामक किसी राक्षस का पुत्र था। पाण्डवों ने किसी अवसर पर जटासुर को मार डाला था, अतएव पिता की हत्या का बदला लेने के लिए वह भी कौरवों के पक्ष में युद्ध कर रहा था। अर्जुन की आज्ञा से राक्षसराज घटोत्कच जब कर्ण के मारने के लिए उनकी ओर वेग से दौड़ा जा रहा था तब दुर्योधन भयभीत होकर दुःशासन से कर्ण की रक्षा के लिए असंख्य सेना लेकर जाने का अनुरोध करने लगा। उस समय अलम्बुष ने उन्हें आश्वासन देते हुए कहा था कि आपकी आज्ञा से मैं अकेला ही समस्त पाण्डवों को मार सकता हूँ। इंडियन प्रेस के चित्रकार बाबू उपेन्द्र-नाथ मित्र ने इसी घटना के आधार पर इस चित्र की रचना की है।

**शिव-गंगा-तालाब**—तंजोर मदरास-प्रान्त के प्रसिद्ध नगरों में है। यह समय समय पर चोल, नायक और मरहठे राजाओं की राजधानी रह चुका है। इसके सुविशाल क़िले का एक भाग शिवगंगाफ़ोर्ट के नाम से प्रसिद्ध है। इससे मिला हुआ शिवगंगा नामक एक तालाब और बृहदीश्वर स्वामी का मन्दिर है, यही दोनों स्थान इस चित्र में दिखाये गये हैं।

# नव प्रकाशित पुस्तकें

## हिन्दी भाषा और इतिहास

( राय साहब श्यामसुन्दरदास, बी० ए० )

इस ग्रन्थ को लेखक ने अपने अनेक वर्षों के अनुभव, और परिश्रमपूर्वक एकत्र की हुई सामग्री की सहायता से बड़ी छान-बीन करके लिखा है। इसके पूर्वार्ध में हिन्दी-भाषा का और उत्तरार्ध में साहित्य का विशद रूप से विवेचन किया गया है। लेखक ने इसका उद्देश्य प्रत्येक युग की मुख्य मुख्य विशेषताओं का उल्लेख करना और यह बतलाना रक्खा है कि साहित्य की प्रगति किस समय में किस ढङ्ग की थी। इस दृष्टि से यह ग्रन्थ अन्य इतिहास-ग्रन्थों से पृथक् है। मूल्य ६) छः रुपये।

## हिन्दी-साहित्य का इतिहास

( पण्डित रामचन्द्र शुक्ल )

इस पुस्तक को आदिकाल, पूर्वमध्यकाल, उत्तर-मध्यकाल और आधुनिक काल—इन चार भागों में विभक्त करके इतिहास का निरूपण किया गया है। इसमें कवियों तथा लेखकों का परिचय और उनकी कृतियों के चुने हुए कुछ उदाहरण तो हैं ही, किन्तु लेखक ने विशेष महत्त्व दिया है समय की प्रवृत्ति का पता लगाकर विचारधारा के विकास को व्यक्त करने में। मूल्य ४॥) साढ़े चार रुपये।

## हिन्दी-रसगङ्गाधर

यह संस्कृत के उद्भट विद्वान् पण्डितराज जगन्नाथ के ग्रन्थ का हिन्दी-रूपान्तर है। इसमें उदाहरण के मूल श्लोक तो हैं ही, उनका रूपान्तर भी छन्दोबद्ध ही है। आरम्भ में, कोई १०६ पृष्ठों में, 'निवेदन', 'पण्डितराज का परिचय' और [illegible] विवेचन' आदि है। मूल्य ३॥) साढ़े तीन रुपये।

## लेन-देन

( श्रीशरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय )

यह शरद्-ग्रन्थावली की आठवीं संख्या [illegible] इसकी उत्तमता के सम्बन्ध में शरद् बाबू [illegible] ही पर्याप्त है। इस ग्रन्थावली से अभी तक [illegible] पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं, वे हाथों हाथ बिक [illegible] सजिल्द पुस्तक का मूल्य २॥) ढाई रुपये।

## शतदल कमल

( पण्डित श्रीनारायण चतुर्वेदी, एम० ए०, एल-टी० "श्रीवर" )

इसमें बालकों की रुचि का ध्यान रख [illegible] बिरंगे फूलों, भिन्न भिन्न रंगों और 'मार्च' [illegible] ताएँ लिखी गई हैं, जिन्हें बच्चे सामूहिक [illegible] गाकर खूब प्रसन्न होंगे। बालकों के लिए [illegible] सुन्दर, आकर्षक और मनोरञ्जक पुस्तक हिन्दी [illegible] तक एक भी नहीं प्रकाशित हुई है। मूल्य २) [illegible]

## चरित-चर्य्या

( पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी )

यह आचार्य द्विवेदीजी की कृति है। [illegible] जीवन के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में सफलतापूर्वक [illegible] करनेवाले बारह महापुरुषों की जीवनियाँ [illegible] है। पुस्तक उपयोगी और शिक्षाप्रद है। [illegible] ॥।=) चौदह आने है।

**मैनेजर (बुकडिपो), इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग**

*Printed and Published by K. Mittra at The Indian Press, Ltd., Allahabad.*

## चित्र-सूची



---



महर्षि वाल्मीकि

# सरस्वती

सचित्र

मासिक पत्रिका

वार्षिक मूल्य ६।।)
Yearly Subscription, Rs. 6-8

सम्पादक
देवीदत्त शुक्ल

प्रति संख्या ।।=)
As. 10 per copy.

भाग ३१, खण्ड २ ] नवम्बर १९३० — कार्तिक १९८७ [ सं० ५, पूर्ण-संख्या ३७१


## मन्थनामृत

( १ )

देवासुर-समर-घुटी सा पी गया हूँ नाथ !
अब महासागर के पान की तैयारी है।
यत्न के बिना ही रत्न उदर समाये सभी,
हेतु से इसीके सदा-सिन्धु-वृन्द खारी है।
और मुक्तिदायक 'अनूप' ढूँढ़ लेंगे, तुम
कमठ न होना यही विनती हमारी है।
चञ्चल बनेगा वासना के वासुकी से नहीं,
मेरा मनोरथ मन्दराचल से भारी है॥

( २ )

आप प्रलयङ्कर भले हों, मैं भयङ्कर हूँ,
शङ्कर नहीं हूँ विष किसको पिलाओगे।
जानके अभक्तों को अशक्त अवनीतल पै,
देते हो भुलावे स्वयमेव भूल जाओगे।
पूरुष पुराण पूर्व-पुरुष बताते तुम्हें,
वारि-रूप ! कैसे नारि-रूप में समाओगे।
अमृत-अघाये दानवों का देवता हूँ नाथ !
मोहिनी बनो न मोहिनी न डाल पाओगे॥

—अनूप

# आचार्य दीपंकर श्रीज्ञान

भोट (तिब्बत) देश की विद्वन्मण्डली में जिन दो भारतीय आचार्यों का अधिक सम्मान है वे शान्तरक्षित और दीपंकर श्रीज्ञान हैं। दीपंकर को तिब्बत में अधिकतर 'अतिशा', 'जोवो' (स्वामी) तथा 'जोवो-जे' (स्वामी भट्टारक) कहते हैं। शान्तरक्षित और अतिशा दोनों ही सहोर-प्रदेश के एक ही राजवंश में उत्पन्न हुए थे। वङ्गदेशीय विद्वान् अतिशा को वङ्गवासी बतलाते हैं। 'बौद्ध गान व दोहा' नामक पुस्तक की भूमिका में महामहोपाध्याय हरिप्रसाद शास्त्री ने बँगला-साहित्य को सातवीं-आठवीं शताब्दी में पहुँचाते हुए भूसुकु, जालं-धरी, कान्ह, सरह आदि सभी कवियों को बङ्गाली कहा है। यह कोई नवीन बात नहीं है। विद्यापति भी बहुत दिनों तक बङ्गाली ही बने रहे। कान्ह, सरह आदि चौरासी सिद्ध हिन्दी के आदि-कवि हैं। जिस प्रकार गोरखनाथ आदि एक-आध को छोड़ कर उन चौरासियों के नाम भी हमें नहीं मालूम हैं, उसी प्रकार हम उन कवियों को भी भूल गये हैं। चौरासी सिद्धों की बात दूसरे वक्त के लिए छोड़ता हूँ।

सहोर बङ्गाल में नहीं बिहार में है। सहोर वहीं हो सकता है, जहाँ विक्रमशिला है। अभी तक किसी ने विक्रमशिला को बङ्गाल में ले जाने का साहस नहीं किया, फिर उसके दक्षिण 'नाति दूर' बसा-नगर कैसे बङ्गाल में जा सकता है? श्रीयुत नन्दलाल दे ने, सबसे पूर्व, भागलपुर-ज़िले के पाथर-घाट* को विक्रमशिला निश्चित किया, जिसको महामहोपाध्याय सतीशचन्द्र विद्याभू[षण] भी मान लिया। एक प्रकार से यह मत सर्वश: हो चुका है।

मुसलमानों के आगमन से पूर्व विक्रमशिला प्रदेश (भागलपुर-ज़िले का दक्षिणी भाग) 'भागल' नाम से प्रसिद्ध था। सहोर मांडलिक रा[ज्य] जिसकी राजधानी वर्तमान कहल-गाँव या इसके [आस-पास] कहीं थी। दशवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में राजा क[ल्याणश्री] इसके शासक थे। उस समय बिहार-बङ्गाल पर [पाल-] वंश की विजयध्वजा फहरा रही थी। राजा क[ल्याणश्री] भी उन्हीं के अधीन थे। राजधानी विक्रमपुरी ([भाग]लपुरी या भागलपुर भी) के 'कांचनध्वज' रा[जप्रासाद] में रानी श्रीप्रभावती ने भोटिया जल-पुरुष-अश्व (मन्मथ, ९८२ ईसवी) में एक पुत्र-रत्न को जन्म दि[या] [जो] आगे चल कर अपने ऐतिहासिक दीपंकर श्रीज्ञान [नाम से] प्रसिद्ध हुआ। राजा कल्याणश्री के तीन लड़कों में [यह] मँझला था। राजा ने लड़कों के नाम क्रमशः प[द्मगर्भ,] चन्द्रगर्भ और श्रीगर्भ रक्खे थे। थोड़े दिनों [बाद] चन्द्रगर्भ को रथ में बैठा पाँच सौ रथों के साथ [उनके] पिता उन्हें 'उत्तर तरफ़' 'नातिदूर' विक्रमशिला-विहार [ले] गये। लक्षणज्ञों ने बालक को देख कर अनेक प्र[कार की] भविष्यद्वाणियाँ कीं। तीन वर्ष की आयु में [वे] पढ़ने के लिए बैठाये गये, ग्यारह वर्ष की [आयु तक] उन्होंने लेख, व्याकरण और गणित भली भाँ[ति सीख] लिया।

आरम्भिक अध्ययन समाप्त कर लेने पर [राजकुमार] चन्द्रगर्भ ने भिक्षु बनकर निश्चिन्तता-पूर्वक विद्या[ध्ययन] का संकल्प किया। वे एक दिन घूमते हुए [...]

---

* चम्पानगर (भागलपुर) से २४ मील पूर्व, कहलगाँव से चार मील उत्तर गङ्गा-तट पर।

एक पहाड़ के पास जा निकले। वहाँ उन्होंने सुना कि वहाँ एक कुटिया में महावैयाकरण महापण्डित जेतारि रहते हैं। राजकुमार उनके पास गये। उन्हें देखकर जेतारि ने पूछा—तुम कौन हो? उन्होंने उत्तर दिया—मैं इस देश के स्वामी का पुत्र हूँ। जेतारि को इस कथन में अभिमान-सा प्रतीत हुआ, और उन्होंने कहा—हमारा स्वामी नहीं, दास नहीं, रक्षक नहीं; तू धरणी-पति है, तो चला जा।' महावैरागी जेतारि के विषय में राजकुमार पहले ही सुन चुके थे, इसलिए उन्होंने बड़े विनयपूर्वक अपना अभिप्राय उन्हें बतलाया और गृह-त्यागी होने की इच्छा प्रकट की। इस पर जेतारि ने उन्हें नालंदा जाने का परामर्श दिया।

बौद्धधर्म में माता-पिता की आज्ञा के बिना कोई व्यक्ति साधु (श्रामणेर या भिक्षु) नहीं बन सकता। चन्द्रगर्भ को इस आज्ञा की प्राप्ति में कम कठिनाई नहीं हुई। आज्ञा मिल जाने पर वे अपने कुछ अनुचरों के साथ नालन्दा को गये। नालन्दा पहुँचने से पूर्व वे नालन्दा के राजा के पास (बिहार शरीफ़, पटना-ज़िला) गये। राजा ने सहोर के राजकुमार की बड़ी ख़ातिर की और पूछा—विक्रमशिला-विहार पास में छोड़ कर, यहाँ क्यों आये? कुमार ने इस पर नालन्दा की प्राचीनता और विशेषतायें बतलाईं। राजा ने नालन्दा-विहार में कुमार के रहने के लिए सुन्दर आवास का प्रबन्ध करा दिया। वहाँ से राजकुमार नालन्दा के स्थविर बोधिभद्र के पास पहुँचे। अभी वे बारह वर्ष से भी कम उम्र के थे। बौद्ध-नियमानुसार वे श्रामणेर ही बन सकते थे, भिक्षु होने के लिए २० वर्ष से ऊपर का होना अनिवार्य था। आचार्य बौद्धभद्र ने कुमार को श्रामणेर-दीक्षा दी, और पीले कपड़ों के साथ उनका नाम दीपंकर श्रीज्ञान पड़ा।

उस समय आचार्य बोधिभद्र के गुरु अवधूतीपाद (दूसरे नाम अद्वयवज्र, अवधूतीया, मैत्रीगुप्त और मैत्रीपा) राजगृह में कालशिला के दक्षिण ओर एकान्त वास करते थे। वे एक बड़े पण्डित तथा सिद्ध थे। बोधिभद्र दीपंकर को आचार्य अवधूतीया के पास ले गये, और उनकी स्वीकृति से उन्हें पढ़ने के लिए वहीं छोड़ आये। १२ से १८ वर्ष की अवस्था तक दीपङ्कर राजगृह में अवधूतीपाद के पास पढ़ते रहे। इस समय उन्होंने शास्त्रों का अच्छा अध्ययन किया।

१८ वर्ष की अवस्था हो जाने पर दीपङ्कर मन्त्र-शास्त्र के विशेष अध्ययन के लिए अपने समय के बड़े तान्त्रिक, चौरासी सिद्धों में एक सिद्ध, विक्रमशिला के उत्तर-द्वार के द्वार-पण्डित नारोपा (नाडपाद) के पास पहुँचे। तब से २१ वर्ष तक उन्हीं के पास पढ़ते रहे। दीपङ्कर के अतिरिक्त प्रज्ञारक्षित, कनकश्री तथा मनकश्री भी (माणिक्य) नारोपा के प्रधान शिष्य थे। तिब्बत के महासिद्ध महाकवि जेचुन् मिला-रे-पा के गुरु मर-वा लोचवा भी नारोपा के ही शिष्य थे।

उस समय बुद्धगया-महाविहार के प्रधान एक बड़े विद्वान् भिक्षु थे। इनका नाम तो और था, किन्तु वज्रासन (बुद्धगया) में वास के कारण यह वज्रासनीय (दोर्जे-दन्-पा) के नाम से प्रसिद्ध थे। नारोपा के पास अध्ययन समाप्त कर दीपङ्कर वज्रासन के 'मतिविहार'-निवासी महास्थविर महाविनयधर शीलरक्षित के समीप पहुँचे और उनको गुरु बना उपसदा (भिक्षु-दीक्षा) प्राप्त की।

३१ वर्ष की आयु में दीपङ्कर तीनों पिटकों तथा तन्त्र के पण्डित हो चुके थे, तो भी उनकी ज्ञानपिपासा शांत न हुई थी। उन्होंने सुवर्णद्वीप (बर्मा) के आचार्य धर्मपाल की प्रसिद्धि सुनी थी। महापंडित रत्नाकर शांति (शांतिपा, चौरासी सिद्धों में एक) ज्ञानश्रीमित्र, रत्नकीर्ति आदि उनके शिष्यों से वे मिले थे। अब उन्होंने स्वर्णद्वीपीय आचार्य के पास जाकर पढ़ने का निश्चय किया। तदनुसार बुद्धगया से विदा हो वे समुद्रतट पर पहुँचे और जहाज़ पर चढ़ अनेक विघ्न-बाधाओं के बाद १४ मास में सुवर्ण-द्वीप में पहुँचे।

सुवर्ण-द्वीप के आचार्य के पास किसी का शीघ्र पहुँच जाना सहज बात नहीं थी, इसलिए दीपङ्कर एक वर्ष तक एकांत जगह में वास करते रहे। बीच बीच में कोई कोई भिक्षु उनके पास आया-जाया करते थे।

इस प्रकार धीरे धीरे उनकी विद्वत्ता का पता लोगों को लग गया ; और अंत में बिना किसी रुकावट के वे



[ आचार्य सुवर्णद्वीपीय धर्मपाल ]

सुवर्णद्वीपीय आचार्य के शिष्यों में दाखिल हो गये। आचार्य धर्मपाल के पास उन्होंने १२ वर्ष तक विद्याध्ययन किया। यहाँ उन्होंने विशेष करके दर्शन-ग्रंथ पढ़े। 'अभिसमयालङ्कार', 'बोधिचर्यावतार' को समाप्त कर, उन्होंने दूसरे गम्भीर ग्रंथ पढ़े।

अध्ययन-समाप्ति पर रत्नद्वीप तथा दूसरे पास के देशों को देखते हुए दीपङ्कर फिर भारत लौट आये और विक्रमशिला-विहार में रहने लगे। विशेष योग्यता के कारण वे वहाँ ५१ पंडितों के ऊपर १०८ देवालयों के तत्त्वावधायक बना दिये गये। उनके आचार्यों में तन्त्र-रहस्य बतलानेवाले सिद्ध डोम्बी भी थे। भूतिकोटिपाद, प्रज्ञाभद्र तथा रत्नाकर शांति (शांतिपा) से भी उन्होंने पढ़ा था। उनके गुरु अवधूतिया सिद्धाचार्य डमरूपा के शिष्य थे, जो महान् सिद्ध तथा महाकवि कण्हया (कृष्णाचार्यपाद, सिद्धाचार्य जलंधरीया के शिष्य) के शिष्य थे। कण्हया तथा उनके गुरु जलंधरीया ८४ सिद्धों में अपना ख़ास स्थान रखते हैं। कण्हया [illegible] समय के हिन्दी के एक उच्च कोटि के छायावादी ([illegible] वादी) कवि थे।

गुप्तों में जो स्थान समुद्रगुप्त का है, पालों में [illegible] स्थान धर्मपाल का है। गंगातट पर एक छोटी सी [illegible] पहाड़ी को देखकर महाराज धर्मपाल ने उस पर वि[क्रम]शिला-विहार स्थापित किया। इतने बड़े रा[ज्य की] सहायता होने से यह विहार एक-दम विशाल [रूप में] लोगों के सामने आया। नालन्दा की भाँति धीरे धीरे उन्नति करने की ज़रूरत नहीं हुई। विक्रमशि[ला में] आठ महापण्डित तथा १०८ पण्डित रहते थे। [इनके] अतिरिक्त बहुत से देशी-विदेशी विद्यार्थी विद्याध्य[यन के] लिए आकर निवास करते थे। दीपङ्कर के सम[य विहार] के संघ-स्थविर रत्नाकर थे। शांतिभद्र, रत्नाकर [illegible] मैत्री (अवधूतीया), डोम्बीया, स्थविरभद्र, स्मृ[ति]सिद्ध (कश्मीरी) तथा अतिशा आदि आठ महापण्डि[त थे]। विहार के मध्य में अवलोकितेश्वर (बोधि-सत्त्व) [illegible] था। परिक्रमा में छोटे-बड़े ५३ तांत्रिक देवाल[य थे]। यद्यपि राज्य में नालन्दा, उडन्तपुरी (उडन्त=[illegible]) और वज्रासन (बुद्धगया) तीन और महाविहार थे, [तो भी] विक्रमशिला पालवंशियों का विशेष कृपा-भाजन [था]। उस घोर तांत्रिक युग में यह मन्त्र-तन्त्र का गढ़ [था]। चौरासी सिद्धों में प्रायः सभी पालों के ही राज्य[काल में] हुए हैं, उनमें अधिकांश का सम्बन्ध इसी विहार से [था]। अपने मन्त्र-तन्त्र, बलिप्रदान आदि हथियारों से [इन्होंने] आक्रमणकारी 'तुरुष्कों' के साथ भी अच्छा लोहा [लिया] था। तिब्बती लेखकों के अनुसार यहाँ के सिद्धों ने [illegible] देवताओं और यक्षों की सहायता से उन्हें अनेक बार भगाया था।

तिब्बत-सम्राट् स्रोङ्-चन्-गम्बो और ठि-स्रोङ्-[illegible] तथा उनके वंशजों ने तिब्बत में बौद्ध-धर्म फैलाने के [लिए] बहुत प्रयत्न किया था। अनुकूल परिस्थिति के न [होने] के कारण पीछे उन्हीं के वंशज ठि-क्यि-दे-जीम[illegible] ल्हासा छोड़कर ङरी प्रदेश (गूगे प्रदेश=मानसरोवर [illegible]) में [illegible] लदाख की सीमा तक का ङरी-कोर्-सुम् प्रदेश) [illegible]

गये। वहाँ उन्होंने अपना राज्य स्थापित किया। इन्हीं का पौत्र राजा ख्रि-दग्-खोरे हुआ, जो अपने भतीजे ल्ह-लामा येशे-ओ को राज्यभार सौंप, अपने दोनों पुत्रों—देवराज तथा नागराज—के साथ भिक्षु हो गया (दशम शताब्दी)।

राजा येशे-ओ (ज्ञानप्रभ) ने देखा कि तिब्बत में बौद्धधर्म शिथिल होता जा रहा है, लोग धर्मतत्त्व को भूलते जा रहे हैं। इन्होंने अनुभव किया कि अगर कोई सुधार न किया गया तो पूर्वजों-द्वारा प्रज्वलित यह सुखद प्रदीप बुझ जायगा। यह सोच रत्नभद्र (रिन्-छेन् सङ्-पो, पीछे लो-छेन्-रिम्पो-छे) प्रभृति २१ होनहार भोटिया बालकों को दस वर्ष तक देश में अच्छी शिक्षा दिलाकर विद्याध्ययन के लिए काश्मीर भेज दिया। वहाँ पहुँच कर वे सब पंडित रत्नवज्र के पास पढ़ते रहे। किन्तु जब इन २१ में से सिर्फ़ दो—रत्नभद्र तथा सुप्रज्ञ (लेग्-प-शे-रब्) जीते जी लौटकर आये तब राजा को बड़ा खेद और निराशा हुई। फिर भी राजा ने हिम्मत न हारी। उन्होंने सोचा, भारत जैसे गर्म देश में ठंढे देश के आदमियों का जीना मुश्किल है, इसलिए किसी अच्छे पंडित को ही भारत से यहाँ बुलाना चाहिए। उस वक्त उन्हें यह भी मालूम हुआ कि इस समय विक्रमशिला-महाविहार में दीपंकर श्रीज्ञान नामक एक महापंडित हैं, यदि वे भोट-देश में आ जाएँ तो सुधार हो सकता है। इस पर बहुत सा सोना देकर कुछ आदमियों को विक्रम-शिला भेजा। वे लोग वहाँ पहुँचकर दीपंकर की सेवा में उपस्थित हुए, किन्तु उन्होंने भोट जाना अस्वीकार कर दिया।

भोट-राज येशे-ओ फिर भी हताश न हुए। उन्होंने अब की बार बहुत सा सोना जमाकर किसी पंडित को भारत से लाने के लिए आदमियों को फिर भेजने का निश्चय किया। उस समय उनके ख़ज़ाने में पर्याप्त सोना न था, इसलिए सोना एकत्र करने के लिए वे आद-मियों-सहित सीमान्त-स्थान में गये। उस वक्त उनके पड़ोसी गरलोग् देश के राजा ने उन्हें पकड़ लिया।

पिता के पकड़े जाने का समाचार पा ल्हा-लामा चङ्-छुप्-ओ (बोधि-प्रभ) उनको छुड़ाने के लिए गर-लोग् गये। कहते हैं, गर-लोग् के राजा ने राजा को छोड़ने के लिए बहुत परिमाण में



[ ल्ह-लामा-चङ्-छुप्-ओ ]

सोना माँगा। चङ्-छुप्-ओ ने जो सोना जमा किया वह अपेक्षित परिमाण से थोड़ा कम निकला। इस पर और सोना ले आने से पूर्व वे कारागार में अपने पिता से मिलने गये और उनसे सारी कथा कह सुनाई। राजा येशे-ओ ने उन्हें सोना देने से मना किया। कहा—तुम जानते हो, मैं बूढ़ा हूँ। यदि तत्काल न मरा तो भी दश वर्ष से अधिक जीना मेरे लिए असंभव है। सोना दे देने पर हम भारत से पंडित न बुला सकेंगे और न धर्म के सुधार का काम कर सकेंगे। कितना अच्छा है, यदि धर्म के लिए मेरा अन्त यहीं हो, और तुम सारा सोना भारत भेजकर पंडित बुलाओ। राजा का भी क्या विश्वास है कि वह सोना पाकर मुझे छोड़ ही देगा। अतः पुत्र, मेरी चिंता छोड़ो और सोना देकर आदमियों को भारत में अतिशा के पास भेजो। भोट में धर्म-चिर-स्थिति तथा मेरी क़ैद से, आशा है, वे महापंडित हमारे देश पर कृपा करेंगे। यदि वे किसी प्रकार न आ सकें तो उनके नीचे के किसी दूसरे पंडित को ही बुलाना।

यह कह धर्मवीर येशे-ओ ने पुत्र के सिर पर हाथ फेर आशीर्वाद दिया। पुत्र ने भी उस महापुरुष से अंतिम बिदाई ली।

ल्हा-लामा चङ्-छुप्-ओ ने राज्य-भार सँभालने के साथ ही भारत भेजने को आदमी ठीक किये। उपासक गुङ्-थङ्-पा भारत में पहले भी दो वर्ष रह आये थे, उन्हीं को राजा ने यह भार सौंपा। गुङ्-थङ्-पा ने नग्-छो निवासी भिक्षु छुल-ठिम-ग्यल-वा ( शीलविजय ) को कुछ दूसरे अनुयायियों के साथ अपना सहयात्री बनाया। ये दस आदमी नयपाल के रास्ते से सीधा विक्रमशिला पहुँचे ( डोम्-तोन्-रचित 'गुरुगुण-धर्माकर' पृष्ठ ७७ )। जिस समय वे गंगा के घाट पर पहुँचे, सूर्यास्त हो चुका था। मल्लाह फिर आने की बात कह भरी नाव को दूसरे पार उतारने गया। यात्री गंगापार विक्रमशिला के ऊँचे 'गंधोला' को देखकर अपने मार्ग-कष्ट को भूल गये थे। परन्तु देर होने से उन्हें संदेह होने लगा कि मल्लाह नहीं लौटेगा। सुनसान नदी-तट पर बहुत सा सोना लिये उन्हें भय मालूम होने लगा। उन्होंने सोने को बालू में दबा दिया, और रात वहीं बिताने का प्रबंध करना शुरू कर दिया। थोड़ी देर में मल्लाह आ गया। यात्रियों ने कहा—हम तो तुम्हारी देरी से समझने लगे थे कि अब नहीं आओगे। मल्लाह ने कहा—तुम्हें घाट पर पड़ा छोड़ मैं कैसे राज-नियमों का उल्लंघन कर सकता हूँ। नाव आगे बढ़ाते हुए मल्लाह ने उन्हें बतलाया कि इस वक्त फाटक बंद हो गये हैं, आप लोग पश्चिम फाटक के बाहर की धर्मशाला में विश्राम करें, सवेरे द्वार के खुलने पर विहार में जायँ।

यात्री आख़िर पश्चिमी धर्मशाला में पहुँच गये। वे वहाँ अपने रात्रिवास का प्रबंध कर रहे थे कि उसी समय फाटक के ऊपरवाले कोठे से भिक्षु ग्य-चोन्-सेङ् ने उनकी बात-चीत सुनी। अपना स्वदेशी जान उसने उनसे बात-चीत करते हुए पूछा कि आप लोग किस अभिप्राय से यहाँ आये हैं। उन्होंने कहा—अतिशा को ले जाने के लिए आये हैं। ग्य-चोन ने उन्हें सलाह देते हुए कहा—आप लोग कहें कि पढ़ने के लिए आये हैं। नहीं तो यह बात और लोगों को मालूम हो जाने पर अतिशा को [illegible] जाना कठिन हो जायगा। मौक़ा पाकर मैं आप [illegible] को अतिशा के पास ले जाऊँगा, फिर जैसी उनकी [illegible] हो, वैसा करना।

आने के कुछ दिनों के बाद पंडितों की सभा होने [illegible] थी। ग्य-चोन् सबको पंडितों का दर्शन करा[ने के] लिए ले गया। वहाँ उन्होंने विक्रमशिला के महा[illegible] तथा अतिशा के नीचे के रत्नकीर्ति, तथागतरक्षित, [illegible] कीर्ति, वैरोचनरक्षित, कनकश्री आदि पंडितों [illegible] उसी समय उन्हें यह भी मालूम हो गया कि यहाँ पंडितमंडली में अतिशा का कितना सम्मान है।



[ आचार्य दीपंकर श्रीज्ञान ]

इसके कुछ दिन बाद एकांत पा ग्य-चोन् उन्हें [illegible] के निवास पर ले गया। उन्होंने अतिशा को [illegible] सारा सुवर्ण रख दिया, और भोट-राज येशे-ओ के [illegible] होने की बात तथा उनकी अंतिम कामना कह सुनाई। [illegible] कर इससे बहुत ही प्रभावित हुए। उन्होंने कहा—[illegible] भोट-राज येशे-ओ बोधिसत्त्व थे। मैं उनकी [illegible]

भंग नहीं कर सकता। किन्तु तुम जानते हो, मेरे ऊपर १०८ देवालयों के प्रबंध का भार तथा दूसरे बहुत से काम हैं। इनसे छुट्टी लेने में १८ मास लगेंगे, फिर मैं चल सकूँगा। अभी यह सोना अपने पास ही रक्खें।

इसके बाद भोट-यात्री पढ़ने का बहाना करके वहाँ रहने लगे। आचार्य दीपंकर भी अपने प्रबंध में लगे। समय पा उन्होंने संघस्थविर रत्नाकरपाद से सब बातें कहीं। रत्नाकर इसके लिए सहमत होने को तैयार न हो सकते थे। उन्होंने एक दिन भोट-सज्जनों से भी कहा—भोट आयुष्मन् आप लोग अपने को पढ़ने के लिए आया कहते हैं। क्या आप लोग अतिशा को ले जाने को तो नहीं आये हैं? इस समय अतिशा 'भारतीयों की आँख' हैं। देख नहीं रहे हो, पश्चिम-दिशा में 'तुरुष्कों' का उपद्रव हो रहा है। यदि इस समय अतिशा चले गये तो भगवान् का धर्मसूर्य भी यहाँ से अस्त हो जायगा।

बहुत कठिनताई से संघस्थविर से जाने की अनुमति मिली। अतिशा ने सोना मँगाया। उसमें से एक चौथाई पंडितों के लिए, दूसरी चौथाई वज्रासन (बुद्ध-गया) में पूजा के लिए, तीसरी रत्नाकरपाद के हाथ में विक्रमशिला-संघ के लिए और शेष चौथाई राजा को दूसरे धार्मिक कृत्यों के लिए बाँट दिया। फिर अपने आदमियों को कुछ भोट-जनों के साथ ही पुस्तकें तथा दूसरी आवश्यक चीज़ें दे नयपाल की ओर भेज दिया। और आप अपने सात तथा लोचवा के सात आदमियों के साथ—कुल बारह जन बुद्धगया की ओर चले।

वज्रासन तथा दूसरे तीर्थस्थानों का दर्शन कर पंडित क्षितिगर्भ आदि के साथ बीस आदमियों की मंडली ले आचार्य दीपंकर भारत-सीमा के पास एक छोटे से विहार में पहुँचे। दीपंकर का शिष्य डोम्-तोन् अपने ग्रंथ 'गुरु-गुणधर्माकर' में लिखता है—स्वामी के भोट-प्रस्थान के समय भारत का (बुद्ध)-शासन अस्त होनेवाला सा था। भारत की सीमा के पास अतिशा को किसी कुतिया के तीन अनाथ छोटे छोटे बच्चे पड़े दिखाई दिये। साठ वर्ष के बूढ़े संन्यासी ने किन्हीं अनिर्वचनीय भावों से प्रेरित हो, मातृभूमि के अंतिम चिह्न-स्वरूप इन्हें अपने चीवर (भिक्षुपरिधानवस्त्र) में उठा लिया। कहते हैं, आज भी उन कुत्तों की जाति डाङ् प्रदेश में वर्तमान है।

भारत-सीमा पार हो अतिशा की मंडली नयपाल राज्य में प्रविष्ट हुई। धीरे धीरे वह राजधानी में पहुँची। राजा ने बहुत सम्मान के साथ उसको अपना अतिथि बनाया। उसने अपने देश में रहने के लिए बहुत आग्रह किया। इसी आग्रह में अतिशा को एक वर्ष नयपाल में रह जाना पड़ा। उस वक्त और धार्मिक कार्यों के अतिरिक्त उन्होंने एक राजकुमार को भिक्षु बनाया, तथा वहीं से गौडेश्वर महाराज नयपाल को एक पत्र लिखा, जिसका अनुवाद आज भी 'तंजूर' में वर्तमान है।

नयपाल से प्रस्थान कर जिस वक्त दीपंकर अपने अनुचरोंसहित थुङ्-विहार में पहुँचे, भिक्षु ग्य-चोन्-सेङ की बीमारी से उन्हें वहाँ ठहरना पड़ा। बहुत उपाय करने पर भी ग्य-चोन् न बच सके। ग्य-चोन् जैसे विद्वान् बहुश्रुत दुभाषिया प्रिय शिष्य की मृत्यु से आचार्य को अपार दुःख हुआ। निराश होकर उन्होंने कहा—अब मेरा भोट जाना निष्फल है। बिना लोचवा (दुभाषिया पंडित) के मैं वहाँ जाकर क्या करूँगा। इस पर शीलविजय आदि दूसरे लोचवों ने उन्हें बहुत समझाया।

मार्ग में कष्ट न होने देने के लिए राजा चङ्-छुप्-ओ ने अपने राज्य में सब जगह प्रबंध कर दिया था। भोट-निवासी साधारण गृहस्थ भी इस भारतीय महापंडित के दर्शन के लिए लालायित थे। इस प्रकार भोट-जनों को धर्म-मार्ग बतलाते हुए आचार्य दीपंकर श्रीज्ञान जल-पुरुष-अश्ववर्ष (मन्मथ, १०४२ ई०) में ६१ वर्ष की अवस्था में ङरी (पश्चिमी तिब्बत) में पहुँचे। राजधानी थोलिङ् में पहुँचने से पूर्व ही राजा अगवानी के लिए आया। बड़ी स्तुति और सत्कार के साथ उन्हें वह थोलिङ्-विहार में ले गया। इसके बाद आचार्य दीपंकर ६ मास इसी विहार में रहे। इस वक्त उन्होंने धर्मोपदेश के अतिरिक्त कई ग्रंथों के अनुवाद तथा रचना

का काम किया। यहीं उन्होंने अपना प्रसिद्ध ग्रंथ 'बोधि-पथ-प्रदीप' लिखा था।

ङरी प्रदेश के तीन वर्ष के निवास-काल में दीपंकर ने कितने ही अन्य ग्रंथ लिखे और अनुवाद किये। द्रुम-पुरुष-वानर वर्ष (हेमलम्ब, १०४४ ई०) में वे पुरङ् पहुँचे।



[ डोम्-तोन्-पा ]

यहीं अतिशा का प्रिय गृहस्थ शिष्य डोम्-तोन् उनके पास पहुँचा। तब से मरणपर्यन्त छाया की भाँति वह अपने गुरु के साथ रहा, और मरने के बाद 'गुरु-गुण-धर्माकर' नामक अतिशा की जीवनी लिखी। भोट में बीच बीच में ठहरते हुए भी आचार्य बराबर विचरते ही रहे। उनका ग्रंथ-प्रणयन तथा अनुवाद का काम बराबर जारी रहा। अग्नि-पुरुष-शूकर वर्ष (शर्वरी, १०४७ ई०) में सम्-ये तथा लोह-पुरुष-व्याघ्र (शोभन, १०५० ई०) में वे येर्-वा गये। अपने चौदह वर्ष के भोट-निवास में प्रथम यात्रा के अतिरिक्त वे तीन वर्ष ङरी-प्रदेश, चार वर्ष वुइ और चाङ् प्रदेशों में, एवं ६ वर्ष ञे-थङ् में रहे। द्रुम-पुरुष-अश्ववर्ष (प्लवंग, १०५४ ई०) के भोटिया नवें मास की अठारहवीं तिथि (कार्तिक-अगहन-कृष्ण ३) ञे-थङ् के तारा-मंदिर में ७३ वर्ष की अवस्था महापुरुष ने अपना नश्वर शरीर छोड़ा। इस समय इनके पास था। ल्हासा से पिछले २५ अप्रेल को मैं इस पवित्र स्थान अतिशा के समय से अब तक बहुत ही कम हुआ परिवर्तन हुआ है। इस बात का साक्ष्य उसके जर्ज रक्तचंदन-स्तंभ ही दे रहे हैं। अब भी वहाँ दीपं भिक्षापात्र, धर्मकारक, तथा खदरदंड, राजगुरु एक पिंजड़े में सुरक्षित रक्खे हैं और बतला रहे हैं कल तक भारत की बूढ़ी हड्डियाँ कितना साहस रखती

भोट-देश के वर्तमान चारों बौद्ध-संप्रदाय दीपंकर को एक सा पूजनीय मानते हैं। उनकी तोन्-द्वारा चली हुई तांत्रिक परम्परा में ही चोङ्-शिष्य हुए थे। यह वही चोङ्-ख-पा हैं जिनके थायी पीली टोपीवाले लामा भोट-देश में धर्म और दोनों के प्रधान हैं। ये लोग अपने को अति अनुयायी मानते हैं और अतिशा की शिष्य-परम्परा दम्-पा लोगों का उत्तराधिकारी अपने को नवीन पा बतलाते हैं।

आचार्य दीपंकर की कृतियाँ मूल संस्कृत मातृ-भाषा में लुप्त हो चुकी हैं, यद्यपि उनके अब भी तिब्बती तन्जूरसंग्रह में सुरक्षित हैं। दर्शन पर उन्होंने ३५ से ऊपर ग्रन्थ लिखे हैं। तांत्रिक ग्रंथों की संख्या सत्तर से अधिक है, देवता-साधन के कितने ही बहुत छोटे छोटे बहुत से ग्रन्थों को तिब्बती-भाषा में उन्होंने अनुवा किया है। कंजूरसंग्रह में ही भिन्न-भिन्न लोचवों (दु की सहायता से उनके ६ ग्रंथ अनुवादित हैं। 'सूत्र'-विभाग में उनके अनुवाद किये हुए २१ और तन्त्र-विभाग में इनकी संख्या ३० से अ विस्तारभय तथा अनावश्यक होने से उनके लिखे अनुवाद किये ग्रंथों की पूरी सूची यहाँ नहीं दी गई

—(भिक्षु) राहुल सां

# चित्रादर्श

किसी के पूछने पर उसके समव्यवसायी कहा करते—यह आदमी अमेरिकन है। बड़ा ही दरिद्र है। स्वास्थ्य भी अच्छा नहीं है। आत्मीय स्वजन हैं, ऐसा भी नहीं जान पड़ता। यह अजीब प्रकृति का है!

पेरिस के एक गन्दे मुहल्ले के एक बड़े मकान में इन सबका निवासस्थान था। ये सभी शिल्पी थे, कोई चित्रकार, कोई चित्र का आदर्श चितेरा अथवा कोई शिल्प-विद्या का विद्यार्थी। ये सभी अपना अपना पेट भरना जानते थे और सभी पर लक्ष्मी की अकृपा थी।

लेकिन इन सबमें आपस में मित्रता और घनिष्ठता थी। सुख-दुख में, आपत्ति-विपत्ति में इनमें पारस्परिक सहानुभूति और समवेदना का भाव दिखलाई पड़ता था। शिल्प-विद्या के अनुशीलन की ओर इनका विशेष प्रेम न था। अपना निजी काम करके ये आमोद-प्रमोद, हँसी-मज़ाक में जीवन बिताना अच्छा समझते थे।

उक्त प्रवासी अमेरिकन यद्यपि उन लोगों के साथ रहता था, मगर कभी उनके दल में मिलता न था। इसी से उसके दलवाले उससे नाराज़ रहते थे। वह सबसे नीचे के तले के एक छोटे से कमरे में रहता था। दिन का बहुत सा समय वह भिन्न-भिन्न चित्रशालाओं के शिल्प-नैपुण्य के देखने में बिताता था। बाकी समय अपनी छोटी कोठरी में चित्र खींचने में बिताता।

उसकी अवस्था अधिक न थी, अभी यौवनावस्था में पदार्पण ही किया था। मँझले कद का उसका शरीर था, मुँह कोमल एवं शांत था, उसके दोनों काले नेत्र धँसे हुए, किन्तु उज्ज्वल थे।

उस मकान के अन्य शिल्पी गर्मी के दिनों में विभिन्न देशों में भ्रमण करने को चले जाते और जाड़ा के शुरू होने पर फिर लौट आते थे। किन्तु वह युवक कहीं नहीं जाता था। वह अपने छोटे से कमरे में अपने काम में जुटा रहता था। उसे देखने पर स्पष्ट जान पड़ता था कि अधिक परिश्रम करने के कारण उसका शरीर अवसन्न पड़ गया है।

उसके सभी साथी आपस में कहा करते—आश्चर्य है, यह आदमी किस तरह बचा हुआ है। आहार-विहार, वेश-विन्यास, आमोद-प्रमोद किसी में भी इसकी तबीयत नहीं लगती। सदा सिर पर चित्र बनाने का खब्त सवार रहता है। इसका खो खो करके खाँसना भी जब-तब सुनने में आता है। जान पड़ता है, इसे खाँसी का रोग हो गया है।

शरद्-ऋतु के प्रारम्भ में सभी शिल्पी वापस आये। वायु से उड़ी हुई कपास की तरह बर्फ़ पड़ रही थी। इसी समय उनके बीच कहीं से एक रमणी आ पहुँची। मकान में एक नई जान-सी पड़ गई। निवासियों में नवीन साहस का संचार हो गया।

एक दिन रात में युवक अपने कमरे को जा रहा था। उसने देखा कि नीचे के तले के एक कमरे में खूब रोशनी हो रही है और लोग ठहाका मार कर हँस रहे हैं। इसके पहले वह कमरा बिलकुल ख़ाली रहता था।

कुतूहल से वह दरवाज़े के पास गया। देखा कि कमरे के अन्दर उसके कई एक परिचित शिल्पी और एक नवागत रमणी है। वह रमणी युवती है। उसके अंग-प्रत्यंग में रूप उछला पड़ता है। उसे देखते ही वह उस पर मोहित हो गया। उसकी यौवन-सम्पन्न अपूर्व रूप-प्रभा

ने उसे कई क्षण तक मंत्र-मुग्ध की तरह निश्चल रक्खा।

इतने में एक युवक ने युवती को लक्ष्य करके कहा—तुम्हारे लौट आने का कारण जानने के लिए हम लोग विशेष उत्सुक नहीं हैं। तुम आगईं, यही हम लोगों के लिए परमानन्द की बात है।

"कारण बताऊँ ?—मुझे वहाँ अच्छा ही न लगा।" यह कह कर वह युवती आसन छोड़कर उठ खड़ी हुई। उसकी बड़ी बड़ी दोनों आँखों पर विषाद की चञ्चलता दिखलाई पड़ी। फिर एक मीठी हँसी हँस कर कहा—इसी से तुम लोगों के पास लौट आई हूँ। क्या तुम लोग मेरा चित्र खींचना चाहते हो ? पहले से मेरी सुन्दरता कुछ भी कम नहीं हुई है।

सहसा अमेरिकन युवक को जान पड़ा कि कमरे में से उसे कोई देख रहा है। वह धीरे-धीरे अपने कमरे में चला गया। टूटे-फूटे जँगले से ठंडी हवा उसके कमरे में प्रवेश कर रही थी। लेकिन वह ज़रा भी नहीं घबराया। सूने कमरे में जाकर वह न जाने किस गम्भीर चिन्ता में डूब गया ? उसे ऐसा जान पड़ता था, मानो उस रमणी की विषादपूर्ण चंचल आँखें उसके नेत्रों के सामने नाच रही हैं। इतने में एक प्रबल वासना से उसका अन्तस्तल मथित हो उठा। वह अपने मन ही मन कहने लगा—मेरी बड़ी भारी इच्छा है कि तुम्हारी यह मूर्ति चित्र में चित्रित करूँ।

दूसरे दिन गृह-स्वामी से पूछने पर पता चला कि युवती का नाम नेटाली है और वह कुमारी है। उसे यह भी पता चला कि नेटाली चित्रकारों के लिए चित्रादर्श है। इस तरह रुपये कमाना ही उसका व्यवसाय है। अन्यान्य आदर्शों की अपेक्षा नेटाली में विशेषता है। ऐसा सर्वाङ्ग-सुन्दर लावण्यमय 'आदर्श' सर्वत्र सुलभ नहीं हो सकता।

इस समय से लेकर प्रतिदिन उसकी व्यग्र दृष्टि नेटाली का अनुसंधान करती रहती। वह जितना ही नेटाली को देखने लगा, उतना ही उसका चित्र खींचने के लिए हृदय में अदम्य वासना की एक प्रबल उत्तेजना का अनुभव करने लगा।

एक दिन तीसरे पहर को नेटाली एक चित्र... कमरे से बाहर आ रही थी। बाहर आकर दे... मैले फटे वस्त्र पहने दुबले शरीर का वह अमेरिकन... प्रतीक्षा में खड़ा है। नेटाली को देखते ही युव... हृदय तेज़ी से धड़कने लगा। साहस करके धीरे-धीरे... बढ़कर वह नेटाली के सामने हुआ और बहुत... और कातर स्वर में कहा—आपके पास एक भिक्षा... के लिए आया हूँ। नेटाली युवक की ओर दे... बोली—कहिए। आप क्या चाहते हैं ?

नेटाली को मालूम हो गया कि यह युवक... प्रकृति का है। जैसी सीधी-सादी बातें हैं, वैसे ही... प्रकृति का है।

युवक बोला—मैंने सुना है कि आप चित्रकारों के... चित्रादर्श का काम करती हैं। बहुत से रुपये देकर वे... आदर्श के अनुरूप चित्र खींचते हैं। मेरी बड़ी इच्छा... एक बार आपका चित्र चित्रित करूँ। उस दिन... पहल आपको देखा और आज भी देख रहा हूँ... आपके मुँह पर एक दिव्य श्री है, उसी दिन से... आपका चित्र खींचने की इच्छा मुझे हैरान कर र... लेकिन मैं ग़रीब हूँ, दाम देने का मुझमें बिलकुल... नहीं है। मैं केवल आपके अनुग्रह पर निर्भर करता हूँ... आप कृपा करके मेरे घर आयें और अपनी इस मोहिनी... का आदर्श लेने का अवकाश दें तो आपका बड़ा... मानूँगा। मैं दरिद्र हूँ, आपकी कृपा का भिखारी... भीख छोड़ कर दरिद्र के लिए दूसरा उपाय ही क्या...

नेटाली मौन होकर युवक की यह कातर... सुन रही थी। उसकी समाप्ति होने पर पूछा... क्या इतना ग़रीब हैं ?

"हाँ, मैं बहुत ग़रीब हूँ। दरिद्र की ऐसी... जान पड़ता है, बिलकुल असंगत हुई है।"

"नहीं, मैं कल आपके घर आऊँगी। आप... घर में रहते हैं ?"

युवक ने अपना कमरा बतला दिया।

"कल आऊँगी," कह कर बिदा हो नेटाली... लगी। युवक ने रोककर कहा—आपने मुझ पर...

दिखलाई है। मैं आपके प्रति अत्यन्त कृतज्ञ हूँ। परन्तु कृतज्ञता प्रकट करने का कभी उपयुक्त अवसर आयेगा या नहीं, ईश्वर ही जानता है।

नेटाली ने मृदु स्वर में कहा—कृतज्ञता प्रकट करने की कोई आवश्यकता नहीं। आप जैसे प्रतिभाशाली चित्रकार के लिए एक दिन ऐसा अवसर मिलना भी कठिन नहीं है।

नेटाली नीचे की ओर चली गई। एक बार फिर कर देखा। वह नया चित्रकार एकाग्र दृष्टि से उसी की ओर देख रहा था।

दूसरे दिन प्रातःकाल नेटाली युवक के कमरे में आ उपस्थित हुई। कमरा सचमुच दरिद्रता का परिचायक था। एक कोने में एक छोटी सी मेज़ थी, दूसरे कोने में लोहे की छोटी चारपाई। छोटे से जँगले के सामने काठ की एक चौकी पर चित्र बनाने की सामग्री रक्खी हुई थी। नेटाली ने युवक के मुँह की ओर एक बार निहार कर देखा। उसे उसके चेहरे पर दारिद्र्य-जनित संकोच वा विषाद का चिह्न तक नहीं दिखाई पड़ा, वरन अत्यधिक आनन्द और उत्फुल्लता से वह और भी खिल उठा था।

बातचीत होने के बाद युवक ने नेटाली से कहा—दरवाज़े पर आघात सुनते ही मैंने समझ लिया कि आप आ गई हैं। नेटाली ने कहा—क्या आप निश्चय रूप से जानते थे कि मैं आऊँगी? युवक ने विनीत भाव से कहा—आपने तो आने के लिए कहा ही थां। इसके बाद युवक ने नेटाली को यथास्थान बैठाया और चित्र बनाने की सामग्री लेकर स्वयं बैठ गया। युवक बिलकुल मौन, ध्यानस्थ हो गया। नेटाली को जान पड़ा कि युवक केवल मौन ही नहीं है, किन्तु चित्र की चिन्ता के सिवा उसकी और सारी चिन्तायें मानो रुद्ध हो गई हैं। उसके दोनों गाल लाल लाल हो उठे, दोनों नेत्र विस्फारित थे, और नासिकारन्ध्र से कभी कभी साँस निकलती थी। ऐसी एकाग्रता, ऐसी तन्मयता उसे बिलकुल नवीन जान पड़ती थी। जितनी बार वह नेटाली को देखता था, उतनी बार नेटाली के हृदय में एक तरह के कम्पन का अनुभव करता था। कई बार उसने रंग में भरी हुई तूलिका उठाई, किन्तु एक लकीर तक न खींच सका। उसके निर्निमेष नेत्र नेटाली के मुँह पर गड़े हुए से थे।

इतने में नेटाली बोली—आप मेरे मुँह की ओर इस तरह से क्यों देख रहे हैं? आपकी दृष्टि को देखकर ऐसा जान पड़ता है, मानो—मानो। नेटाली इसके आगे और कुछ न कह सकी। एक विषाद-मिश्रित हँसी की रेखा उसके होठों पर बन गई।

युवक चौंक उठा। ललाट से हाथ उठाकर कुछ संकोच और नम्रतापूर्ण स्वर में कहा—मैंने जो भाव चित्रित करने का संकल्प किया है वह भाव सदा आपके मुँह पर नहीं देखता। एक बार देखता हूँ और दूसरे ही क्षण फिर वह लोप हो जाता है। इसलिए बाध्य होकर मुझे उस अवसर की प्रतीक्षा में ठहरना पड़ता है। आपकी यह असाधारण बाहरी सुन्दरता—यह अनुपम मुखश्री मेरे चित्र का विषय नहीं है। मैं आपको—आपकी आन्तरिक श्री को चित्रित करना चाहता हूँ।

नेटाली ने एक नीरस उपेक्षा की हँसी हँसने की चेष्टा की। किन्तु उसे हँसी न आई। वह बोली—मेरी अन्तरश्री। महोदय! ऐसा न करें। इससे आपका कोई उपकार नहीं हो सकता। यह देह, यह केश-जाल, ये नेत्र—जिनकी सभी प्रशंसा करते हैं, आप इन्हें ही चित्रित करने का प्रयत्न करें। मुझे चित्रित न करें।

युवक कुछ उदास हो उठा, बोला—जान पड़ता है, आपको मेरी बातें कुछ स्वार्थपरता से भरी ज्ञात हुई हैं। भाषा के अभाव से मैं अपने अभिप्राय को व्यक्त नहीं कर सकता। भाषा-द्वारा अपने मनोभाव को प्रकट करना मेरे लिए अत्यन्त कठिन है।

नेटाली बोली—मैं यह समझती हूँ। लेकिन आपको मना करती हूँ, आप ऐसी चेष्टा न करें।

अन्त में युवक ने चित्र खींचने में फिर चित्त लगाया। दोनों चुप थे। केवल एक बार युवक बोला—आपको जाड़ा तो नहीं लग रहा है? आज मैंने घर में आग रक्खी है।

नेटाली ने विस्मित होकर पूछा—क्या रोज़ आप घर में आग नहीं रखते हैं?

"नहीं, किन्तु आप जब आयेंगी तब घर में आग पायेंगी।"

"तब मैं रोज़ आऊँगी। ऐसा करके मैं आपको मौत के मुँह में जाने से बचाऊँगी।"

"आप अच्छी तरह नहीं समझ रही हैं। शीत का कष्ट भूल जाना मेरे लिए बिलकुल आसान है।"

"हाँ, यह हो सकता है। शीत का कष्ट भूल जाना जैसा आपके लिए आसान है, वैसे ही मृत्यु की भी परवा न करना दूसरे के लिए आसान हो सकता है।"

यह कह कर नेटाली आरम्भ किये हुए चित्र की ओर बढ़ी। युवक ने उसे रोक कर कहा—अभी पास न आयें, न देखें। अभी देखने योग्य नहीं हुआ है।

नेटाली ने कहा—और कभी पहले अपनी ओर देखने की मुझे चाह नहीं हुई थी। न जाने आज क्यों इतना आग्रह हो रहा है। आप मुझे किस रूप में चित्रित कर रहे हैं, यह देखना चाहती थी। यह कह कर वह मुस्कराई।

इसके बाद नेटाली नीचे के तले में अपने कमरे को चली गई। वहाँ वह बहुत देर तक शान्त न हो सकी। बैठ कर मन ही मन कहने लगी—अन्यान्य चित्रकारों से यह बिलकुल नहीं मिलता। दुनिया की इसे कुछ भी जानकारी नहीं है। यह बड़ा ही सज्जन एवं सरलप्रकृति है। शिल्प ही इसका सब कुछ है। सरलता, पवित्रता और कोमलता के साथ इसका अभिन्न सम्बन्ध है। इसका छोटा कमरा मानो साधु की कुटिया है! सहसा लम्बी साँस लेकर उसने आकाश की ओर देखा। आकाश मेघों से आच्छन्न था। मन ही मन वह कहने लगी—आज का दिन कैसा ख़राब है। सूर्य के ऊपर मानो एक प्रकार की म्लानता छाई हुई है।

कुछ दिनों के बाद एक दूसरा चित्रकार चित्र खींचने की इच्छा से नेटाली को अपने कमरे में ले गया। वह सारी घटना से अवगत था। उसने नेटाली को लक्ष्य करके कहा—तो तुम उस अमेरिकन चित्रकार के कमरे में गई थीं?

"हाँ"।

"अच्छा, तो उसे कैसा पाया?"

"कैसा पाया! बताऊँ कि कैसा पाया।"

"बताओ न। सुनकर प्रसन्न होऊँगा।"

"वह अत्यंत महान् है। तुम, मैं, और हम के अन्यान्य मित्र सभी जड़शरीर हैं। केवल वह जड़शरीर में प्राणरूप में स्थित है।"

चित्रकार चित्र खींचते खींचते कोशिश करके भरे स्वर में बोला—स्त्री के लिए प्राण लेकर करना बड़ा विपत्तिजनक है।

ईषत् घृणा-भरे स्वर में नेटाली ने कहा— ठीक ही है।

उस दिन फिर नेटाली उस अमेरिकन चित्र कमरे में गई। फिर उस प्रहर-व्यापी निस्तब्ध बीच उसे अविचलित भाव से रहना पड़ा। एकाग्रचित्त से चित्र खींचने में तन्मय था। कभी कभी उसकी अन्वेषिणी दृष्टि सामने के ऊपर पड़ती थी।

नेटाली बैठे बैठे सोचने लगी—दूसरे मुझे से देखते हैं उन नेत्रों से यह नहीं देखता! इसके सामने बैठी है, यह बात भूल कर भी नहीं पड़ती। इसका अखंड ध्यान केवल इसके चित्र पर ही है।

ज्यों ज्यों दिन बीतने लगे, त्यों त्यों नेटाली संस्कार बद्धमूल होने लगा। अंत में उसके ने उसके चित्त के ऊपर एक मोह-जाल फैला दिया खुले हुए जँगलेवाला, सर्द निस्तब्ध कमरा उसके एकांत स्थान जान पड़ने लगा। किसी प्रकार वा क्लेश नहीं जान पड़ता था। उसने में एक ऐसे अवकाश की सृष्टि कर ली थी कि बैठे हुए उस मनुष्य की चिन्ता में समय उसे बहुत प्रीतिकर जान पड़ता। पहले से ही चित्रकार के सूखे हुए चेहरे पर एक न जाने कैसी का आभास देखा था। इस समय उसकी रहित दुःख-पूर्ण संक्षिप्त जीवन-कथा ने उसके अपना अधिकार जमा लिया।

एक दिन बात ही बात में युवक ने कहा था—अमेरिका के किसी प्रान्त में मेरी जन्मभूमि है। मेरे वंश में कोई दीर्घजीवी नहीं। उसी अल्पायुवाले वंश का नाम रखने के लिए केवल मैं ही जीता बचा हुआ हूँ। माता-पिता युवावस्था में ही मुझे बिलकुल असहाय छोड़ कर चल बसे थे। दूसरे की दया पर अवलंबन करने को छोड़ कर मुझे दूसरा न सहारा था। लड़कपन से ही मैं एक आकांक्षा हृदय में पालता आ रहा हूँ। मैं जब लड़का था उस समय स्वप्न देखा करता था, मानो मैं यहाँ आया हूँ। उसके बाद ज्यों ज्यों उम्र बढ़ने लगी, त्यों त्यों मैं प्रयत्न करने लगा कि किस तरह इस लड़कपन के स्वप्न को कार्यरूप में परिणत करूँ। मुझे ध्रुव विश्वास था कि एक न एक दिन मेरी वासना फलवती होगी। इतने दिन पर मेरा वह शुभ समय आया है।

सारी बातें सुन कर नेटाली ने कहा—तो क्या यही अन्तिम कामना है? जीवन में आपको और कोई आकांक्षा नहीं है?

युवक ने नीची निगाह किये हुए उत्तर दिया—मेरा जो कुछ है सब यही है।

युवक ने नेटाली की जीवन-कथा के संबन्ध में जब कुछ नहीं पूछा तब उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने मन में कहा—हो सकता है, उसे मेरे सम्बन्ध में जानने के लिए कुछ भी कुतूहल न हो। वह कुछ खिन्न-सी हुई। फिर अपने मन में कहने लगी—हो सकता है, ये सब बातें जानता हो। इतने में उसके अतीत जीवन के सभी पाप एक विद्रूप हास्य में उसके होठों पर परिस्फुट हो उठे। जब युवक ने उसके मुँह की तरफ़ देखा, उस समय भी हँसी से उसके ओठ खुले हुए थे। लेकिन क्षण भर के लिए भी युवक के मनोभाव में विलक्षणता न आई। वह पूर्ववत् अपना काम करता रहा।

सीढ़ियों पर पैरों की आवाज़ सुनते ही नेटाली कान उठा कर देखने लगी। वह युवक के पैरों की आवाज़ को पहचान गई थी। किन्तु किसी तरह भी वह इस आकस्मिक परिचय का कारण नहीं समझ पाती थी। उसे केवल यही याद पड़ता था कि एक दिन आधी रात के समय उसकी नींद टूट गई। डरकर वह उठ बैठी और धड़कती हुई छाती को दोनों हाथों से दबाकर बोल उठी, कौन है? यह कंठस्वर कमरे के अन्धकार में मिल गया; दूसरे ही क्षण सीढ़ियों पर पैरों की आवाज़ सुनाई पड़ी। आवाज़ सीढ़ियों से ऊपर आकर शान्त हो गई। साथ ही दरवाज़ा खोलने और बन्द होने का शब्द सुनाई पड़ा। नेटाली ने बैठकर सब सुना, सब समझा, इसके बाद धीरे से सो गई।

धीरे धीरे यहाँ तक नौबत पहुँच गई कि युवक के दैनिक जीवन की अत्यन्त तुच्छ घटना भी नेटाली की दृष्टि में पड़े बिना नहीं रहती थी। उसने स्पष्ट देख लिया कि युवक दिन दिन क्षीण होता जाता है। अब वह रोज़ प्रातःकाल टहलने भी नहीं जाता, लेकिन रविवार को दो बार उसके साथ गिर्जा-घर को अवश्य जाता है।

एक दिन नेटाली ने युवक की चारपाई पर एक बाइबिल देखकर पूछा—क्या आप इसे पढ़ते हैं?

"हाँ"।

नेटाली ने विस्मय-भरे नेत्रों से उसकी ओर देखकर कहा—तो ईश्वर पर आपका विश्वास है?

"हाँ"।

अब चित्र क़रीब क़रीब पूरा हो चुका था। एक दिन नेटाली से युवक ने कहा—अपने चित्र को देखोगी?

नेटाली चित्र के सामने जाकर खड़ी हुई। जब तक वह चित्र को देखती रही वह उत्कंठित हो उसके मुँह की ओर देखता रहा। चित्र को देखते ही नेटाली के मुँह पर एक अपूर्व विस्मय का भाव दिखलाई पड़ा और दूसरे ही क्षण विचित्र आवेग से उसके ललाट और दोनों गाल लाल हो उठे! युवक की ओर फिर कर उसने उत्तेजित कंठस्वर में कहा—आप मेरा मज़ाक़ उड़ा रहे हैं। यह चित्र बिलकुल व्यर्थ हुआ।

सहसा चोट लगने पर आदमी जैसे काँप उठता है, वैसे ही युवक काँप उठा। कुछ क़दम पीछे हट कर आँखें

फाड़कर उसने कहा—मैं ? मैं आपका उपहास करता हूँ ? यह चित्र बिलकुल असफल हुआ है ?

नेटाली ने चित्र को देखकर कहा—यह मुँह तो ठीक बना है, लेकिन मेरे चेहरे पर जो भाव नहीं है उसे ही आपने दिखाने की कोशिश की है। यह तो किसी विशालहृदया रमणी की प्रतिकृति है। इस चित्र में देवीभाव लक्षित हो रहा है। मेरे लिए यह चित्र क्या उपहास-जनक नहीं है ?

स्वप्नाविष्ट की तरह युवक चित्र की तरफ़ देखता रहा। उसने मृदुस्वर में कहा—यह सच है, मैंने आपके मुँह पर यह भाव प्रकट होते देखा है।

नेटाली ने कहा—बड़े आश्चर्य की बात है कि आज तक और कोई चित्रकार यह भाव न देख सका! मैं सचमुच कहती हूँ, यह चित्र मुझे उपहास-जनक मालूम होता है।

युवक बोला—आप उपहास-जनक न समझें। यदि यह भाव आपमें न देख पाता तो ऐसा चित्र खींचना मेरे लिए सम्भव न होता। मैं सच सच कह रहा हूँ, यही आपका स्वरूप है—आपके हृदय का प्रतिबिम्ब है!

नेटाली ने कहा—मेरा स्वरूप! क्या आपको विश्वास है कि मेरे दूसरे चित्रकार इस चित्र को देख कर इसे मेरी तसवीर कह सकेंगे ? नेटाली ने यह कहकर चित्र की ओर फिर एक बार कटाक्षपात किया। इतने में एक कर्कश हास्य-ध्वनि से कमरा गूँज उठा। दूसरे ही क्षण एक और शब्द सुनाई पड़ा। नेटाली आसन त्याग कर घुटने के बल चित्र के सामने बैठ गई। उसकी दोनों कोमल भुजायें दोनों ओर बिखर गईं, अस्फुट रुदन से उसका गला भरा आ रहा था।

युवक उसके पास ही खड़ा था। नीचे निगाह किये हुए वह बोला—मैंने एकाग्रचित से चित्र खींचा है। चित्र के विषय को छोड़कर अन्य बात की ओर मेरा ध्यान बिलकुल नहीं गया है।

दूसरे दिन रविवार था। मेसन नामक एक चित्रकार नीचे को जा रहा था। सीढ़ी के ऊपर काली पोशाक पहने एक स्त्री से उसकी मुलाकात हुई। वह स्त्री उससे अपरिचित न थी। वह बोला—कौन, नेटाली ? जान पड़ता है, तुम गिर्जाघर से आ रही हो।

नेटाली ने कहा—हाँ, अमेरिकन गिर्जाघर से आ रही हूँ।

मेसन के चेहरे से घृणा का भाव प्रकट हुआ। वह बोला—कोई इष्ट-लाभ हुआ है ?

"नहीं।" संक्षेप में यही उत्तर देकर नेटाली फुर्ती से ऊपर चली गई। मेसन विस्मित हो उसकी ओर देखता रहा।

नेटाली ने अपने कमरे में जाकर किवाड़ बन्द कर लिये। एक एक करके कमरे के सभी लैम्प जला दिये। इतने प्रकाश के होते हुए भी उसके हृदय का अंधकार न दूर हुआ। तब उसने अपनी काली पोशाक उतार कर रख दी। अपवित्रता की एक दीप्तशिखा उसके शरीर को घेर कर मानो जला रही थी। हृदय में मर्मान्तक पीड़ा का अनुभव करती हुई वह कमरे में टहलने लगी और बहुमूल्य वस्त्र और आभूषणों को निकाल निकाल कर शरीर में पहनने लगी। उसके प्रत्येक पद-क्षेप से वह काली पोशाक पददलित हो रही थी। वह अंत में विकृत हँसी हँस कर बोल उठी—अब तुम्हें और कभी न पहनूँगी।

आध घंटे में शृङ्गार समाप्त कर नेटाली शीशे के सामने जाकर खड़ी हो गई। बहुमूल्य वस्त्राभूषण दर्पण में और भी चमकने लगे। एक बार नेटाली ने कहा—यही मेरा यथार्थ स्वरूप है।

दरवाज़ा खोलकर नेटाली फुर्ती से नीचे उतर रही थी। इतने में उसने सुना कि नीचे के एक कमरे से ज़ोरों से हँसने और बोलने की आवाज़ आ रही है। उनमें से एक ही आवाज़ वह अच्छी तरह पहचानती थी। एक दुराचारी धनी युवक उसके पीछे पागल हो रहा था। नेटाली ने पहचान लिया, यह उसी का कंठ-स्वर है।

सीढ़ी से उतर कर नेटाली उस कमरे के दरवाज़े पर जा खड़ी हुई। इतने में 'नेटाली! नेटाली! आओ आओ!' की आवाज़ से कमरा काँप उठा।

नेटाली ने दृढ़तापूर्वक उनके आह्वान की उपेक्षा करके कहा—न न—मैं न आऊँगी! वह वहाँ से उल्टे पाँव चली आई।

सीढ़ियों पर चढ़ते चढ़ते नेटाली का सर्वांग शिथिल-सा होने लगा। उसके थके हुए पाँव देह धारण करने में असमर्थ थे। वह सूनी सीढ़ियों पर अवसन्न देहभार को रखकर मानो उस अंधकार-राशि से कहने लगी—और कभी मैं इन लोगों से न मिलूँगी। यह केवल तुम्हारे ही लिए। तुम क्या इस बात को समझते हो?

दूसरे दिन प्रातःकाल जब नेटाली सुबह को उस अमेरिकन युवक के कमरे में गई तब पिछली रात की उत्तेजना या चंचलता का चिह्न-मात्र न था। किन्तु वह पहले की अपेक्षा अधिक स्थिर और गम्भीर थी।

युवक ने उसे बैठने के लिए कहा। वह बैठी नहीं, धीरे धीरे चित्र के सामने जाकर खड़ी हो गई और बोली—मैं समझ गई कि आपने कहाँ पर ग़लती की है। चित्र में आपने जो भाव दर्शाया है उसका मुझमें बिलकुल अभाव है, इसे आप अच्छी तरह जानते थे। आपने केवल कल्पना के बल पर इस भाव का अनुभव किया है। आपने यह समझा होगा कि हो सकता है कि मेरे अतीत जीवन में किसी समय में वह मुझमें विद्यमान रहा हो। यहीं पर आपने ग़लती की है। मुझमें यह भाव कभी न था। मुझे लड़कपन अथवा किशोरावस्था की याद नहीं। मेरा जीवन जैसा आरम्भ हुआ है, वैसे ही समाप्त भी होगा। यही मेरे भाग्य में लिखा है। इस शहर के एक जघन्य स्थान में मेरा जन्म हुआ है। दरिद्रता, पशुत्व और पाप को छोड़ कर मैं और कुछ नहीं जानती। मेरे इस सौन्दर्य ने ही मुझे सबसे ऊपर उठाया है। फिर आपने जो भाव प्रदर्शित किया है वह मुझमें क्यों कर आ सकता है?

युवक एक-टक उसकी ओर देख रहा था। कुछ देर बाद बोला—यह कह नहीं सकता। ईश्वर जानते हैं।

नेटाली कुछ विरक्ति के साथ हँसकर बोली—ईश्वर! हाँ ईश्वर! और कोई बात उसके मुँह से न निकली।

इस समय से वह प्रति रविवार को अमेरिकन गिर्जा-घर में जाने लगी। वहाँ वह धर्मोपदेश सुनती, किन्तु उस पर उसका विश्वास न था। विश्वास जमाने के लिए वह प्रयत्न भी न करती थी। हाँ, धर्मव्याख्या सुनकर उसके मुँह पर विद्रूप की हँसी दौड़ जाती थी।

गिर्जा-घर जाने पर उस युवक से उसकी भेंट होती। वह देखती कि वह शान्तचित्त से धर्मोपदेश सुन रहा है। चाहे और कुछ न हो वह स्थान नेटाली को बहुत शान्ति-पूर्ण जान पड़ता था।

दिन दिन नेटाली के शरीर और मन में द्रुत परिवर्तन होने लगा। उसके बंधु-बांधव सभी ने देखा कि उसके लावण्य-परिपूर्ण मुख पर पीलापन छा गया है। वह उनके आमोद-प्रमोद में योग न देती थी, उन लोगों से बात करने से भी जी चुराती थी। यही क्यों, कई कई दिन तक अपने कमरे का द्वार बन्द किये भीतर ही बैठी रहती थी, किसी से भेंट-मुलाकात तक नहीं करती थी।

इधर युवक अविश्रांत चित्त से चित्र बनाने में लगा था। क्रमशः उसके शरीर की दुर्बलता बढ़ती जाती थी। यही नहीं, स्थिर हाथ से तूलिका धरना भी उसके लिए असंभव हो गया। एक दिन नेटाली ने देखा कि उस चित्रकार की शिथिल अँगुलियों से तूलिका खिसक पड़ी।

युवक नेटाली की ओर देखकर बोला—मेरा शरीर दिन पर दिन मानो अवसन्न पड़ता जाता है। जान पड़ता है, मेरी जीवनी-शक्ति का ह्रास हो रहा है। ऐसा ज्ञात होता है कि चिरविश्राम लेने में अधिक विलम्ब नहीं है। परन्तु चित्र को पूरा कर लेने पर मेरी मनो-कामना पूरी हो जायगी। जिस तरह से हो, चित्र को पूरा करना ही पड़ेगा।

दूसरे दिन प्रातःकाल नेटाली ने जाकर देखा कि युवक अभी तक पड़ा सो रहा है। जगाने पर मालूम हुआ कि वह अस्वस्थ है। नेटाली जाने लगी। युवक उठकर द्वार तक उसके साथ आया, अपने हाथ में उसका हाथ लेकर बोला—रात भर मुझे नींद नहीं आई। कल रात को मैंने एक रोगी को रास्ते पर पड़े हुए देखा था।

वह बंधु-बांधव-रहित था। उसी समय मुझे ख़याल आया कि यदि किसी दिन बीमार हो कर कहीं रास्ते पर पड़ जाऊँगा तो मेरी भी यही दशा होगी और कोई मुझसे मेरे आत्मीय लोगों के सम्बन्ध में पूछताछ करेगा तो मैं क्या कहूँगा, किसे बतलाऊँगा कि कौन मेरा है ? यही चिंता मुझे और भी निर्बल बना रही है। इसके बाद आपका ख़याल आया। मैंने सोचा, ऐसी अवस्था में होने पर यदि आपका स्मरण करूँगा तो आप अवश्य ही कृपा करेंगी। नेटाली ने कहा—अवश्य। आप इस विषय में बिलकुल निश्चिन्त रहें। युवक फिर बोला—मैं तो अकेले ही रहता हूँ। किन्तु मरते समय किसी परिचित का मुँह देख कर मरना—

वाक्य पूरा भी न हो पाया कि नेटाली बोली—आपकी बात सुनकर ऐसा जान पड़ता है, माने मृत्यु आपके सिरहाने बैठी है।

"बात तो यही है !" यह कहकर युवक चुप हो गया। कुछ देर तक वह एक-टक नेटाली के हाथ को देखता रहा। फिर दीर्घ श्वास छोड़कर उसने उसका हाथ छोड़ दिया और कहा—तो आप यहाँ आयेंगी।

उसी दिन दोपहर के बाद नेटाली ने सुना कि चित्रकार की दशा ख़राब है। जीवन की आशा कम है। यह सुनकर उसका चेहरा और भी पीला पड़ गया। अपने कमरे में आकर उसने अपने गहने आदि जो मूल्यवान् वस्तुएँ थीं उन्हें एक रूमाल में बांधा। इसके बाद फ़ुर्ती से नीचे उतर एक गाड़ी पर चढ़कर चल पड़ी।

जब लौटकर आई तब देखा कि सामने मकान-मालिक खड़ा है। नेटाली को देखकर उसने कहा—आपको अमेरिकन युवक देखना चाहता है। मैंने उससे पूछा कि क्या वे आयेंगी ? उसने जवाब दिया कि वे अवश्य आयेंगी।

यंत्र से चालित पुतली की तरह नेटाली युवक के कमरे में जा उपस्थित हुई। देखा, कमरे में एक छोटी चारपाई पर दुबले शरीरवाला वह युवक आँखें बन्द किये हुए पड़ा हुआ है, कमरे में आग भी नहीं जल रही है।

कुछ ही क्षणों के बाद युवक ने आँखें खोलकर देखा कि नेटाली उसकी चारपाई के बग़ल में खड़ी है। उसके मुरझाये हुए होठों पर एक क्षीण हँसी की रेखा दौड़ गई। क्षीण कंठ-स्वर में उसने कहा—यदि इस समय मेरी मृत्यु हो जायगी तो फिर मौक़ा न मिलेगा, इसी से कहता हूँ, याद रखिएगा—भूल न जाइएगा, यह चित्र आपका ही है।

इतने में डाक्टर भी आ पहुँचा। नेटाली ने पहले से ही डाक्टर को बुला भेजा था। डाक्टर देख-सुनकर दवा और पथ्य का इन्तज़ाम कर चलने लगा। नेटाली ने उससे पूछा—क्या रोग असाध्य है ?

डाक्टर बोला—हाँ, ! आप क्या इनकी पत्नी हैं ?

"नहीं"।

"मैं भी ऐसा नहीं समझता था। जो हो, अन्त समय में आप ही इनके पास हैं।"

"हाँ।"

रात की आख़िरी में युवक ने एक बार फिर आँखें खोलीं। उसने देखा कि अब भी नेटाली उसके पास बैठी है। वह अत्यंत क्षीण स्वर में बोला—आप अभी तक यहाँ बैठी हैं। इस ग़रीब रोगी पर असीम कृपा दिखला रही हैं। लेकिन रात भर जागते रहने से आपको बड़ा कष्ट होगा।

नेटाली ने कहा—नहीं। इसके लिए आप ज़रा भी चिन्ता न करें।

दूसरा दिन भी इसी तरह बीता। रोगी में कोई विशेष परिवर्तन न दिखाई पड़ा।

इसी तरह कई सप्ताह बीत गये। डाक्टर हर रोज़ तीन-चार बार देख जाता। नेटाली ने संकल्प कर लिया था कि अपना सब कुछ ख़र्च करके युवक की चिकित्सा कराऊँगी। वह स्वयं जी-जान से युवक की शुश्रूषा करने लगी। इस बीच में उसने एक बार भी अपनी चारपाई का स्पर्श तक न किया।

एक दिन रात के अन्तिम पहर में युवक अत्यंत अस्थिर हो उठा। उसने नेटाली को अपने पास बुलाया। उसके पास आने पर उसने कहा—मैं आपका बहुत आभारी

हूँ। यह ऋण बिना चुकता किये ही जा रहा हूँ। हाय! यदि चित्र भी पूरा कर लेता।

साधारणतः युवक में बात-चीत करने की शक्ति न थी। किन्तु चित्र की बात कहते समय, मानो एक अस्वाभाविक तेज से उसका हृदय उत्तेजित हो उठता था। केवल चित्र की ही चिन्ता हरदम उसे सता रही थी।

युवक ने फिर क्षीण कातर स्वर में कहा—यदि विधाता मुझे एक क्षण के लिए भी उठकर बैठने की शक्ति देता तो दो-एक बार तूलिका चलाने से चित्र पूर्ण सौन्दर्य से खिल उठता। हाय, मुझे ऐसा सुयोग अब न मिलेगा। यह चित्र अधूरा रख कर मरने पर भी मुझे शान्ति न मिलेगी। और दो-एक बार कूँची चलाने और दो-एक—"

नेटाली युवक को बार बार इस प्रकार उत्तेजना प्रकट करने से रोकती थी। उसे अच्छी तरह समझा दिया कि शारीरिक अथवा मानसिक, साधारण उत्तेजना से भी उसकी ज़िन्दगी अत्यन्त ख़तरे में पड़ जायगी।

युवक ने उसकी बात को सुना तक नहीं। स्थिर दृष्टि से चित्र की ओर देखता रहा।

दूसरे दिन डाक्टर आया। रोगी की अच्छी तरह परीक्षा करके चलते समय उसने नेटाली से धीरे से कहा—आज रात को कुछ विशेष सावधानी की ज़रूरत है। आशंका है कि प्रातःकाल होते होते—" डाक्टर और कुछ न कहकर धीरे धीरे चला गया।

रात जितनी बीतती थी, उतना ही नेटाली की छाती अधिक धड़कने लगती थी। धड़कती और अवसन्न हो रही छाती को दोनों हाथों से दबा कर वह रह रह कर उठकर खड़ी होती और फिर आकर उस मुरझाये मुँह को अपलक नेत्रों से देखने लगती।

इस समय नेटाली को देखने पर कोई पहचान नहीं सकता था। उसकी दोनों बड़ी बड़ी आँखें बिलकुल धँस गई थीं, लावण्य से चमकते हुए उसके चेहरे की कान्ति बिलकुल फीकी हो गई थी, हँसी से खिले हुए होठ काले पड़ गये थे, उन्नत सुन्दर देह झुक गई थी। अब नेटाली पहले की नेटाली न थी—यह नेटाली की मानो प्रेत-मूर्ति थी।

एक दो तीन बज गये। रोगी में कोई विशेष परिवर्तन न दिखाई पड़ा। चार बजते बजते रोगी का ललाट पसीने से कुछ भीग उठा। नेटाली चारपाई के बग़ल में बैठकर उसका पसीना पोंछने लगी। युवक ने उसे ग़ौर से देखा। रुकते हुए गले से कहने लगा—अब मुझे मरने में भी सुख है। चित्र को पूरा कर लिया, यह मेरे लिए बहुत आनन्द की बात हुई। इसे अधूरा रखकर मरने पर मुझे स्वर्ग में जाने पर भी सुख न मिलता।

नेटाली चारपाई से उतर कर घुटने के बल नीचे बैठ गई। काँपते हुए स्वर में बोली—क्या कहा! चित्र पूरा हो गया है? कब? किवाड़ बन्द उस सूने कमरे में उसकी आवाज़ गूँज उठी। उसका उत्तर न मिला—किसी ने उत्तर न दिया।

नेटाली भयभीत होकर उठ खड़ी हुई, और अपना काँपता हुआ हाथ युवक के नाक के पास ले गई। देखा कि साँस रुक गई है; छाती पर हाथ रख कर देखा, उसका धड़कना बन्द है। अब उसे समझने में देर न लगी। वह पागल की तरह बकने लगी—इतने दिन तक मुँह खोल कर कुछ नहीं कहा था, इतने दिन तक हृदय खोल कर नहीं दिखा सकी थी। अब चिल्ला कर कहने पर भी तुम नहीं सुन सकोगे। इस समय मैं निस्संकोच कहूँगी, मैं तुम्हें बहुत प्यार करती हूँ—तुम्हें बहुत प्यार करती हूँ।

रोते रोते उसकी आवाज़ कमरे में गूँजने लगी। मरे हुए युवक के कानों में उस आवाज़ ने प्रवेश किया या नहीं, कौन कह सकता है?

सवेरे सबने सुना, अमेरिकन युवक की मृत्यु हो गई। सबने सहानुभूति प्रकट की। दो-चार आकर देख भी गये। और सब लोगों के चले जाने पर दो युवक चित्रकार आये। ये कुछ ही दिन से उस मकान में आये थे। वे नेटाली को नहीं पहचानते थे।

उन्होंने कमरे में प्रवेश करते ही देखा कि एक स्त्री मृत व्यक्ति के सिरहाने खड़ी है। वह काली पोशाक पहने है। वह उन्हें देखते ही दरवाज़े की आड़ में चली गई।

शव की ओर देखकर एक ने दूसरे से कहा—क्या ही सुन्दर मुख-श्री है मानो मृत्यु ने इसे स्पर्श तक नहीं किया। अहा, यह भरी जवानी!

कमरे की दूसरी तरफ़ देखा कि चित्राधार पर एक चित्र रक्खा हुआ है। पास जाकर वे प्रकाश में उसे देखने लगे। इसके बाद किसी के मुँह से कोई बात नहीं निकलती थी। दोनों आगन्तुक निर्वाक् निश्चल थे! बहुत देर के बाद एक ने कहा—क्या ही अपूर्व चित्र है, मानो जीती हुई प्रतिमा है! यह चित्र युवक की किसी प्रणयिनी का चित्र है। चित्रपट पर मानो चित्रादर्श तथा चित्रकार का हृदय तक परिस्फुटित हो उठा है।

दरवाज़े की आड़ में खड़ी रमणी चौंक उठी और सट कर किवाड़ों में मिल कर खड़ी रही।

दूसरे दिन मकान के सब लोग युवक के शव को समाधि देने के लिए ले गये। लाचार नेटाली अपने कमरे में बैठी आँसू गिरा रही थी।

वह दिन भर बिना खाये-पिये अपने कमरे में बैठी रही। सन्ध्या हुई। सान्ध्य तिमिर ने आकर कमरे में अँधेरा कर दिया। नेटाली उठी नहीं, चिराग़ तक नहीं जलाया।

बहुत रात बीतने पर जब सब लोग सो गये, नेटाली उठी। चिराग़ जलाकर दर्पण के सामने खड़ी हो बिखरे हुए बालों को सँवारा, अच्छे अच्छे कपड़ों में सुगंधि लगा कर उन्हें पहना। इसके बाद बहुत धीरे से उस मृत युवक के कमरे में जा पहुँची। देखा, कमरा सूना है, शय्या सूनी है। केवल चित्राधार पर रक्खा हुआ चित्र मानो स्थिर नेत्रों से उसे देख रहा है।

नेटाली की नाड़ियों में मानो एक बिजली दौड़ गई। चित्र की तरफ़ आँख गड़ाकर भय से काँपती हुई आवाज़ में बोली—मेरा अधिक तिरस्कार न करो! मेरे प्रति घृणा-भरी निगाह से न देखो। तुम शायद जानते नहीं हो, आज मैंने जन्म भर के कमाये हुए पापों का प्रायश्चित्त करने का संकल्प किया है!

क्षण भर तक उस अधंकार-भरे छोटे कमरे में भयानक निस्तब्धता छाई रही। इसके बाद नेटाली ने मंथर गति से चित्र के पास जाकर बैठकर सिर झुकाया। जब उठ कर खड़ी हुई तब देखा कि सफ़ेद चादर-रहित चारपाई पर चन्द्रमा की किरणें खेल रही हैं। नेटाली कमरे से निकली। दरवाज़े पर आकर एक बार उस सूनी शय्या को ध्यान से देखा। इसके बाद धीरे धीरे सीढ़ियों से उतर कर बाहर चली गई।

दूसरे दिन प्रातःकाल वे युवक चित्रकार जो इससे पहले दिन मृत चित्रकार की चित्रकारी को देख कर मुग्ध हो गये थे, एक साथ नदी के किनारे टहल रहे थे, उन्होंने देखा कि एक स्थान पर बहुत से स्त्री-पुरुष इकट्ठे होकर कुछ देख रहे हैं। पास जाकर पूछा—यहां पर क्या हुआ है? आप लोग क्या देखते हैं?

एक दिल्लगीबाज़ ने कहा—एक स्त्री है। ऐसे कड़ाके के जाड़े की रात में भी कोई डूब कर मर सकता है? अहा! ठंडक में बेचारी को न जाने कितना कष्ट हुआ होगा!

दोनों चित्रकार लोगों की भीड़ को चीरते हुए आगे बढ़े और मुर्दे को देखते ही बोल उठे—यह कैसा भयानक दृश्य है। यह क्या? निःश्वास रोक कर साथी की ओर देखते हुए एक ने कहा—अमेरिकन युवक के कमरे में जो चित्र देखा था, यह देखो, यह देखो वही मुँह! यही उस चित्र का आदर्श है!

अहा! नेटाली ने नारी-जीवन के जिस महत्त्व-पूर्ण छवि को इतने दिन तक ज़िन्दगी भर छिपाये रक्खा था, वह आज मृत्यु के स्पर्श-मात्र से कैसा खिल उठा है, कैसा उज्ज्वल हो गया है!*

—गणेश पाण्डेय

* एक अँगरेज़ी कहानी का रूपान्तर।

# मयंक

## चौपदे

टूटते रहते हो तो क्या।
क्या हुआ घटने बढ़ने से।
मान किसने इतना पाया।
किसी के सिर पर चढ़ने से ॥१॥

घूमते हो अँधियाले में।
तुम्हें रजनीचर कहते हैं।
पर बता दो यह, किसका मुँह।
लोग तकते ही रहते हैं ॥२॥

कलंकी तुम्हें लोग कह लें।
तुम्हीं आँखों में बसते हो।
भले ही हों तुम पर धब्बे।
किन्तु रस तुम्हीं बरसते हो ॥३॥

किसे वह मुग्ध नहीं करता।
पास जिसके मधुधारा हो।
सुधाकर तुम कहलाते हो।
क्यों न विष बंधु तुम्हारा हो ॥४॥

मोहता ही रहता है जो।
किस तरह मन उससे फेरें।
घूमते तुम हो आँखों में।
भले ही घन तुमको घेरें ॥५॥

सदा चक्कर में रहते हो।
दिवस में हो मलीन बनते।
पर तुम्हीं अवनी-मंडल पर।
ज्योति का हो वितान तनते ॥६॥

दिव्यता किसकी अवलोके।
तरंगित तोयधि दिखलाया।
राहु कवलित कर ले तो क्या।
कौन राकापति कहलाया ॥७॥

रचा किसने रविकिरणें ले।
चाँदनी का मंजुल-तम तन।
लोग दोषाकर बतलावें।
पर तुम्हीं हो रजनी-रंजन ॥८॥

—हरिऔध

# लंदन का रूप

आप एक बार मेरे साथ लन्दन का भ्रमण कीजिए। पथ और महल से परिचित होने के लिए नहीं, मनुष्यों से परिचित होने के लिए।

मान लीजिए, आप मेरे साथ स्ट्रेंड नामक स्थान में खड़े हैं। दोपहर का समय है। आकाश में सूर्य नहीं, न बादल ही हैं। फिर भी घना कुहरा छाया हुआ है। दिन का अन्धकार कुत्सित गृद्ध की भाँति शहर को ग्रसे हुए है। देखते ही देखते एक बजा। पाँच मिनट के भीतर ही सड़कों पर लोगों का झुण्ड रेस्तरां (भोजनालय) की ओर आगे बढ़ा। आप भी आगे बढ़े। रेस्तरां के भीतर आपने देखा, जगह नहीं है। दूसरों के साथ आप भी खड़े रहे। जगह ख़ाली हुई, और आपकी बारी आई। आप बैठे, और साधारण लन्दनवासी की तरह आपने परिचारिका को मछली और भुने हुए आलू ले आने को कहा। फिर कुछ हलवे की नाईं मिष्टान्न खाकर आपने काफ़ी पान किया। आपका लंच (दोपहर का भोजन) समाप्त हुआ। पर लंदन में एक से दो बजे तक कोई कुछ काम नहीं करता है। यह समय खाने-पीने का है। खा-पी लेने पर समय बचने पर सभी सिगरेट पीने, ताश खेलने, कभी कभी गपशप करने में व्यस्त रहते हैं। पर शायद आप सिगरेट नहीं पीते, न ताश ही खेलते हैं। अच्छा तो आप मनुष्यों का ही अध्ययन कीजिए।

आपके सामने एक बालिका बैठी हुई है। यदि आपने ध्यान से देखा है तो उसके सामने एक प्याला काफ़ी के सिवा और दूसरी चीज़ आपको न देख पड़ेगी। आपने अपनी स्मृति जगाई—आपके आने के पहले से ही वह बैठी हुई है। और आपके बैठने के समय भी उसके सामने एक प्याला काफ़ी ही था। क्रमशः आपको सभी बातें स्मरण हो रही हैं। जिस समय आपने भुनी हुई मछली में नमक मिरच और झोल डालकर तृप्ति की साँस ली थी, उस समय उस बालिका की आँखें आपके हिलते हुए ओठों पर गड़ी हुई थीं। आपने अपने को सराहा। दीवार पर लटकते हुए आइने में अपने मुख पर आपने दृष्टि डाली। शोक, आपके कालर मैले थे, टाई ढीली थी, केश बिखरे हुए थे। आपने अपने को धोखा दिया। आपके ओठों में कोई विशेष सौन्दर्य नहीं। फिर भी बालिका उनकी ओर ताक रही है! इस बार आपने समझा, इन ओठों के भीतर अन्न का प्रवेश हो रहा है। क्षुधित बालिका के लिए इससे बढ़कर दूसरा रहस्य, दूसरा सौंदर्य नहीं।

अब आप सँभलकर बैठे। इस बार आपने उसकी ओर देखा। वह सकुचाई। धीरे से उसने काफ़ी का प्याला उठाया। उसके भी ओठ हिले, पर काफ़ी प्राय शेष हो गया था, और जो कुछ था वह ठंडा हो पड़ा था। पर बालिका ने उसे ही पिया—क्षुधा-तृप्ति के लिए नहीं, मान-रक्षा के लिए। आपको दुःख हुआ। आपने याचना की दृष्टि से उसकी ओर देखा, मानो आप उसकी सहायता करना चाहते हों। वह डरी। उसकी आँखें नीचे गिरीं। आप उठे, और उसके सामने आपने एक शिलिंग रख दिया। तुरन्त आप द्वार की ओर

आगे बढ़े। वह चुपचाप बैठी रही। आपने पीछे दृष्टि डाली—वह आपकी ओर भय, कृतज्ञता, आश्चर्य, हर्ष से देख रही है। आप प्रायः द्वार के बाहर आ गये—उसने परिचारिका को पुकारा, और आर्डर दिया—फ़िश, चिप्स क्रिस्मस पुडिंग। सामने का ठंडा प्याला क्षुधा-रचा की साँस से गरम हो उठा। वह हँसी, उसका चेहरा दमक उठा, क्षुधा-तृप्ति के भावी हर्ष से नहीं—अन्न-दान के बदले शारीरिक माँग के अभाव से—एक शिलिङ्ग के परिवर्तन में से एक दबी हुई आह निकलती है। वह आह लन्दन के सभी महलों की ऊँचाई को लाँघकर मुक्त आकाश में सभ्यता के रूप पर एक बृहद् प्रश्न-चिह्न अंकित कर रही है। स्मरण रहे, मैं यहाँ लाइम-हाउस के (लन्दन का स्लम वा ग़रीबों का महल्ला) सम्बन्ध में नहीं लिख रहा हूँ। मैं लन्दन के एक सुन्दर केन्द्र स्ट्रैंड नामक स्थान के सम्बन्ध में लिख रहा हूँ। लाइन-हाउस के विषय में मेरा वक्तव्य केवल यह है।






[ स्ट्रैंड ]

अन्धकारमय सिनेमा-हाल के भीतर चुम्बन वा आलिंगन के विनिमय से रचा पाकर! क्षुधा की पीड़ा सभी क्लेशों को मात कर देती है। इसकी ज्वाला में पड़ कर नवागत बालिकायें, निस्सहाय, निरवलम्ब होने के कारण अपने को नवयुवकों के हाथ सौंप देती हैं। इसके उदाहरण लन्दन में ही नहीं, सभी बड़े शहरों में पाये जाते हैं। लन्दन अपने को अत्यन्त सभ्य समझता है। पर इन बालिकाओं—और अनेक निस्सहाय बालकों—के हृदय रात के समय मद-मत्त पिता घर लौटता है। भूखे रहने के कारण, प्रायः अज्ञानावस्था में, अपने बच्चे के हाथ से रोटी का टुकड़ा छीन लेता है फिर स्वयं खाता है! उस समय बच्चे के रुदन से घर भर जाता है। माता आकर बच्चे पर प्रहार करती है—क्रोध के आवेश में। बच्चा सिसक कर रोता है। एक बार मैंने ऐसा ही सिसकना स्वयं सुना था। मेरा हृदय दहल उठा था। मेरे लिए एक शिशु के आर्त्तनाद से बढ़कर करुण आवाज़

और नहीं ! लन्दन में ऐसी आवाज़ को सुनकर सभ्यता के उत्कर्ष पर क्या—भगवान् की सत्ता पर ही मेरा विश्वास हिल जाता है। पर मैं भटक रहा हूँ।

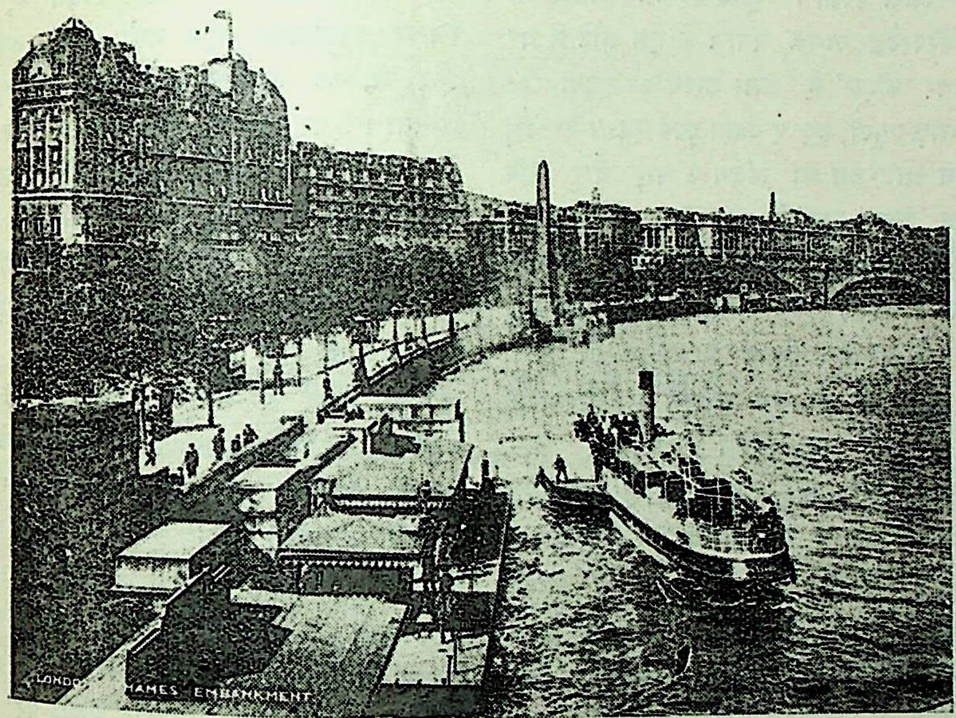
आप मेरे साथ स्ट्रैंड के एक कोने पर खड़े हैं। एक छोटी सी गली नदी की ओर चली गई है। आप उसी नदी की ओर देख रहे हैं। हठात् आपका ध्यान सड़क की ओर आकर्षित हुआ। लोगों को पुलिस हटा रही है—एक युवा पुरुष मोटर के नीचे दब कर मर गया। अभी तुरन्त ! कोई कुछ भी नहीं बोलता है ! सभी एक बार देख कर चले जाते हैं। एक पुलिसमैन लोगों को हटा रहा है। दूसरा मृतपुरुष के पाकेट की तलाशी ले रहा है। नाम-धाम मिल गया। पाकेट में और भी एक वस्तु मिली—एक बीमा का फ़ार्म। मृत व्यक्ति का जीवन ५,००० पाउण्ड के लिए इंश्योर्ड था। पुलिसमैन फ़ार्म देख कर मुस्कराया। एक स्त्री ने झाँककर उस फ़ार्म को देख लिया। उसके मुख पर हँसी और आश्चर्य्य की रेखा दीख पड़ी। अकस्मात् उसके मुख से ये शब्द निकल पड़े—लकी ओमैन ! (भाग्यवान् स्त्री !) क्यों न हो ! ५,००० पाउण्ड लन्दन के लिए भी साधारण रक़म नहीं ! एम्बुलेंस आ गया। एक पुलिसमैन मृत पुरुष को दूसरे पुलिसमैन की सहायता से उस गाड़ी पर रख ही रहा था कि फ़्लीट स्ट्रीट का एक निशाचर (रिपोर्टर) आ पहुँचा। उसने बीमा के फ़ार्म को देखा, मृत व्यक्ति का नाम-धाम लिख लिया, फिर हवा की तरह फ़्लीट स्ट्रीट की ओर दौड़ा। बस, एम्बुलेंस चला गया। दो-चार बे-कार लोग जो अब तक खड़े थे, पाइप (स्मोकिङ्ग पाइप) सँभालने लगे। पुलिसमैन फिर, सड़क के बीच, अपने काम पर नियुक्त हुआ। मोटर-बस फिर भी ज्यों का त्यों मृत्यु-दैत्य की तरह सड़क के वक्षःस्थल को चीरता हुआ इधर-उधर दौड़ने लगा। सभी चले गये। खड़े रहे सिर्फ़ आप लन्दन पर विचार करने के लिए। पर आप धक्का खा रहे हैं न ?

लन्दन की सड़क पर चुपचाप खड़ा रहना—एक कोने में भी—संभव नहीं है; और ऐसा करनेवाला असभ्य समझा जाता है। अब फ़्लीट स्ट्रीट की ओर आगे बढ़िए। आपके सामने तीर की भाँति वह बालक दौड़ता हुआ चला गया। सुना आपने—वह चिल्ला रहा है 'मैन किल्ड इन स्ट्रैंड' (स्ट्रैंड में आदमी मर गया) 'इंश्योर्ड फ़ार फ़ाइव थाउज़ेंड पाउंड्स' (पाँच हज़ार पौंड का ज़िन्दगी-बीमा है)। 'दिस्टार' 'दिस्टार' ! फिर भी 'फ़ैटल एक्सीडेंट सेंज़ेशन' (घातक घटना की सनसनी) 'फ़ुलेस्ट' डिटेल्स (पूरे ब्योरे के साथ)। 'दिस्टार' 'दिस्टार' ! सभी अख़बार ख़रीद रहे हैं और बड़े चाव से सेंज़ेशन (सनसनी) का थ्रिल (जोश) अनुभव कर रहे हैं। यही लन्दन है !

रात का समय है। आपने चार-पाँच घंटे इधर-उधर घूमने में ही व्यतीत किया। दस बजे आप किसी भी प्रसिद्ध अख़बार के आफ़िस में आ पहुँचे। आपने पत्र लिखकर पहले ही प्रवेश करने की आज्ञा मँगा ली थी, इसी से कोई रोक-टोक न हुई। आप संपादकीय विभाग की ओर आगे बढ़े। इस विशाल भवन की शृंखला देखकर आपके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। 'रिपोर्टर्स-रूम' में आपने देखा कि कोई आठ-नौ मनुष्य कान में तार, बे-तार, टेलीफ़ोन के यन्त्र लगाये सामने पेंसिल और नोट-बुक लिये बैठे हैं। इनकी तत्परता देखकर आपको हर्ष हुआ। वह देखिए बिजली की चिनगारियाँ चमक रही हैं। अटलांटिक समुद्र से एक जहाज़ कल के जलवायु के संबंध में समाचार भेज रहा है, और आपके ठीक सामने ही। वह पर्शिया का तार है। टेलीफ़ोन की घंटी बजी ! सुनिए, मैंचेस्टर में अभी अभी आग लगी। एक रिपोर्टर ('सब') (उप-सम्पादक) की ओर दौड़ा। पाँच मिनिट के अंदर 'सब' ने कुछ उलटफेर कर डाला। 'अमुक ब्लॉक का फ़ोटो हटा दो। आग के फ़ोटो की प्रतीक्षा करो !' प्रतीक्षा करनी न पड़ी—दस मिनिट के भीतर ही रेडियो के द्वारा आपके सामने तसवीर आ पहुँची। ब्लॉक के स्थान में आग बुझानेवाले सिपाहियों के फ़ोटो का ब्लॉक बिठाया गया ! फिर एक रिपोर्टर उठा और 'सब' के पास दौड़ा। लंदन से बीस मील की दूरी पर एक डिब्बा (ट्रेन का) उलट गया है ! इससे समूचे आफ़िस में खलबली मच गई। 'सब' ने कहा—'समय कम

हैं। एरोप्लेन के शब्द से आप घबराये। अखबार का ख़ास एरोप्लेन विहंगम की तरह ट्रेन डिजैस्टर (Train-disaster) का फ़ोटो लाने चला गया।

आप 'सब' महोदय के आफ़िस में गये। प्रधान 'सब' और और 'सबों' के साथ आलोचना कर रहे हैं। 'कल का संपादकीय विषय क्या होगा?' एक कहता है—दि माइनिंग सिचुएशन (खानों की स्थिति)। दूसरा कहता है—दि डिरेटिंग बिल। तीसरा कहता है—विंचर स्पोर्टस (जाड़े के खेल-तमाशे)। अन्त में तै हुआ कि डिरेटिंग बिल पर ही लिखा जाय! लीडर-राइटर स्मरण रहे यहाँ सम्पादकीय लेख संपादक नहीं लिखते—यह काम लीडर-राइटर का है। उसने शीघ्र ही लेख लिख डाला। आप जब सम्पादक के आफ़िस में गये तब देखा कि संपादक और लीडर-राइटर के बीच घोर तर्क हो रहा है। संपादक कह रहा है—'अनडरदि सर्कम्स्टैंसेज़' नहीं 'इन दि सर्कस्टैंसेज़' लिखो'। लीडर-राइटर ने वैसा ही किया। संपादक ने फिर कहा—'इस वाक्य को उलट डालो, और ऐसे अस्पष्ट भाव से लिखो जिससे हम लोगों का असल मनोभाव प्रकट न हो!' लीडर-राइटर हिचक रहा है। संपादक चिल्ला-कर कह रहा है—'तुम हमारी नीति नहीं समझते, नहीं समझते'। लीडर-राइटर ने समझा—सभी समझा। उसने उस वाक्य को बदल डाला। बहुत देर से खड़े रहने के कारण आप थक गये। आश्चर्य्य और कौतुक के भावों से पूर्ण हो आप वास-स्थान को लौटे। दूसरे दिन प्रातःकाल के समय उठने में आपने देरी की। दस बजे नीचे ड्राइंगरूम में आकर आपने देखा कि उसी अख़बार के सहारे आपकी लैंड-लेडी आग जला रही है। दो घंटे के भीतर इतने मनुष्यों, इतनी बड़ी श्रृंखला, इनका बृहत् आयोजन, इतने परिश्रम का फल तुच्छ होगया! आपने फ़ोटो देखने के ख़याल से काग़ज़ उठाया—फ़ोटो जल चुका था!




[ इम्बैंकमेंट ( टेम्स नदी का तट ) ]

साँझ के समय सड़क पर घूमते घूमते आपने एक वृद्ध, बेकार मनुष्य को उसी अख़बार को 'लिटर-बाक्स' में फेंकते हुए पाया—उस पर थूकने के बाद ! यह भी लंदन है !

मैं लंदन को सुंदर नहीं समझता। इसके बाहरी रूप में सौंदर्य्य का कहीं भी लेश नहीं। मैं जानता हूँ कि वेस्टमिन्स्टर-पुल पर खड़े होकर कविवर वर्ड्सवर्थ ने लंदन में ऐसी सुंदरता देखी कि उन्होंने उस पर एक सुंदर कविता लिख डाली। मुझे यह भी ज्ञात है कि यहीं लंदन के हैम्पस्टेड नामक स्थान के एक छोटे से घर में बैठकर कविवर 'कीट्स' ने अमर वाक्य की रचना की थी—'एथिंग आफ़ ब्यूटी, इज़ ए ज्वाय फ़ार एवर'। पर उस समय का लंदन आज-कल का लंदन न था; और कवि का सौंदर्य्य-बोध बाह्य वस्तुओं पर उतना निर्भर नहीं करता जितना कि आंतरिक भावों पर। फिर भी यदि आज वर्ड्सवर्थ महोदय वेस्टमिन्स्टर-पुल पर एक बार खड़े होते तो दो-तीन मिनट के भीतर ही उनके मुख से 'ओ' (O) टू बी इन लंडन न निकलकर 'ओ' (woe) टू बी इन लंडन निकलता। तीन मिनट से ज़्यादा वे खड़े नहीं रह सकते, पुलिस उन्हें वहाँ से हटा देती, मनुष्य के ट्रैफ़िक को रोकने के कारण यदि कीट्स महोदय आज लंदन में आते तो उनको महीनों सड़क पार करने के नियमों का अध्ययन करना होता। फिर उन नियमों की व्यावहारिक परीक्षा देनी पड़ती। यदि (कवि होने के कारण) असावधानता में दक्ष होते हुए भी वे दबने से बचते, तो फिर यहाँ के निरानंद में उस अमर पंक्ति की सृष्टि न कर सकते, जिसका उल्लेख मैंने ऊपर किया है।

कान्सटेबूल (Constable) नामक प्रसिद्ध अँगरेज़ चित्रकार लन्दन के चेलसी नामक विभाग में मृत्युशय्या पर पड़ा हुआ था। उसके पास सभी वस्तुएँ थीं, सभी स्वजन थे। पर उसका हृदय केवल एक वस्तु के लिए रो उठा था। सूर्य की रश्मि के लिए। मरते दम उसके वाक्य ये थे—भगवन् ! थोड़ा सा और भी आलोक। आह सूर्य का प्रकाश !

लन्दन में सभी कांसटेबूल की तरह मृत्युशय्या पर नहीं पड़े रहते। फिर भी प्राय: सब के हृदय से रह रह कर वही आवाज़ निकलती है। यहाँ सूर्य का दर्शन नहीं मिलता। जब कभी आकाश में एक गोलाकार, निष्प्रभ, निस्तेज वस्तु को देखकर मेरे मित्र सूर्य ! सूर्य ! कह कर चिल्ला उठते हैं तब मैं उनके कथन को अस्वीकार करता हूँ। मैं उस ज्योतिर्हीन वस्तु को सूर्य न कहूँगा। मैं उसे नहीं चाहता हूँ। मैं चाहता हूँ मार्त्तण्ड का दीप्त रूप, उसकी प्रखर किरणें। यहाँ, लन्दन में, भारतवर्ष का स्मरण करानेवाला सूर्य नहीं, नहीं, नहीं। आलोक और आकाश से स्वास्थ्य का क्या सम्बन्ध है, मैं नहीं जानता। पर मनुष्य की आत्मा से उसका जो सम्बन्ध है उसे मैं भली भाँति जानता हूँ। लन्दन में इन दो वस्तुओं के अभाव से आत्मा का पूर्ण विकास नहीं होने पाता। सब समय एक अभाव सा खटकता है। इसी लिए यहाँ के लोग सड़क पर, ट्रेन में, घर में भी, सहज ही एक दूसरे से नहीं बोलते। इसी से यहाँ के बच्चे ज़ोरों से—अबाध जलस्रोत की तरह—नहीं हँसते। दुर्द्दान्त जलवायु के कारण यहाँ के लोग योद्धा बन बैठे हैं; पर दूसरी ओर कसर रह गई है। एक वस्तु के उत्कर्ष का मूल्य दूसरी वस्तु के अभाव से देना पड़ा है। पराक्रम अर्ज्जन करने के साथ ही इन्होंने सरलता का वर्ज्जन किया है। इस द्वीप की भीषण प्रकृति ने इन्हें गम्भीर बनाया, पर साथ ही इनके मुखों से हास्य की दीप्ति छीन ली। इन्होंने संसार पर शासन करना सीखा, पर विधाता की लीला में शिशु की भाँति खेलना ये भूल गये। यह खेल खेलना—पराक्रम, शौर्य और सौन्दर्य्य के साथ—फ़रासीसियों ने सीखा है। यहाँ लन्दन हार मानता है। वहाँ पेरिस का रहस्यमय मस्तक ऊपर उठता है। लन्दन के संकीर्ण वायु से आप घबरा रहे हैं ! अच्छा तो अब पेरिस की बातें सुनिए।

परन्तु पेरिस के सम्बन्ध में लिखने के पूर्व मैं आपको लन्दन का वह रूप दिखाना चाहता हूँ जिसका अस्तित्व यहाँ के लोगों के मन में नहीं, पर दूर देशों के लोगों के मन में है। भारतवर्ष की माता जब लन्दन में रहनेवाले

पुत्र की बात सोचती है तब क्या वह अन्धकारमय, संकीर्ण, असुन्दर लन्दन का रूप देखती है ? नहीं ! जब एक मिस्र-देशी रमणी कैरो में बैठकर लन्दन में निवास करने-वाले अपने पति का ध्यान करती है तब किस लन्दन का रूप देखती है ? उस लन्दन का नहीं, जिसको मैं देखता हूँ, जिस लन्दन को मेरी तरह यहाँ के और और लोग देखते हैं। माता, पिता, भाई, बहन, स्त्री, बन्धु-बान्धव, आत्मीय स्वजनों के लिए लन्दन का रूप सौन्दर्य्य का जाल है। अपने मन के भीतर ही वे एक स्वप्न-साम्राज्य की सृष्टि करते हैं। अपने मन के भावों के अनुसार ही लन्दन का रूप उनकी दृष्टि में बदलता रहता है। लन्दन का अपना सौन्दर्य्य कुछ नहीं, पर वह दूसरों के सुन्दर मन का उपलक्ष्य अवश्य है। यह स्वयं मायापुरी नहीं, मायापुरी का आधार है।

—कृपानाथ मिश्र

# प्रकृति की ध्वंसलीला

[आक्टोबर की सरस्वती में प्रकृति की 'ध्वंसलीला' का जो अंश प्रकाशित हुआ है उसमें निडिया का ग्लकास के मित्र सलास्ट को अपनी तथा क्यालेनास की क़ैद की सूचना देना, सलास्ट-द्वारा उनके मुक्त होने तथा रङ्गशाला में पहुँच कर आरबेस पर हत्या का अभियोग लगाने तथा आरबेस के अपनी सफ़ाई देने के बाद ज्वालामुखी के विस्फोट से तथा भूकम्प से वहाँ तथा सारे नगर में हलचल मचजाने तथा लोगों के भाग खड़ा होने का वर्णन किया गया है। उसी का अवशिष्टांश यहाँ दिया गया है।]

( १० )

पिपाई की इस आकस्मिक दुर्घटना से जब हाकिम से प्रहरी तक अपने अपने प्राण बचाने के लिए भाग खड़े हुए तब क्यालेनास काँपता हुआ धीरे धीरे मन्दिर की राह से जाने लगा। चारों ओर इतना अँधेरा छा गया था कि राह देख कर चलना मुश्किल था। चलते चलते अचानक क्यालेनास टक्कर खाकर गिर पड़ा। गिरते ही नीचे से एक आदमी ने कहा—अरे! कौन है? फिर ग़ौर से मुँह देखकर बड़ी .खुशी के साथ वह बोला—अरे! क्यालेनास हो। आओ, आओ, यही तो है ठीक वक़्त।

"अरे! तुम कौन हो?"

"मुझे नहीं पहचानते? मैं बुर्बो हूँ।"

"ओहो! बुर्बो! देखो उस पहाड़ से कैसी भयानक आग निकल रही है। आज हम लोगों की मृत्यु निश्चित है।"

"अरे रहने दो यह सब चिन्ता। सहसा धनी बनने का आज ही तो बड़ा अच्छा मौक़ा है"

"कैसे?"

"सुनो, तुम जिस मन्दिर में रहते हो, बहुत से हीरा, मोती और सोना-चाँदी उसमें हैं। चलो, उसमें से जितना ले सकें उतना लेकर समुद्र के किनारे चलें, वहाँ जहाज़ में चढ़ कर और किसी देश को भाग जायँ। आज सब कोई अपनी अपनी जान बचाने में लगा हुआ है। मन्दिर की सम्पत्ति हथियाते समय कोई उधर देखेगा भी नहीं। हम दोनों मिलकर जितना चाहें उतना ले सकेंगे।"

इस बात पर क्यालेनास की .खुशी का ठिकाना न रहा। उसने कहा—बुर्बो, तुम ठीक कहते हो। अच्छा अब चलो। लेकिन यह याद रखना कि जो कुछ मिलेगा उसमें दोनों का हिस्सा बराबर होगा।

वे दोनों मन्दिर की ओर चले। वहाँ पहुँच कर देखा कि मन्दिर के और सब पुजारी मिल कर वेदी के सामने अपनी अन्तिम प्रार्थना कर रहे हैं। मन्दिर

था वह स्थान छोड़ कर उन दोनों ने जिसमें रुपया था उस कमरे में प्रवेश किया। क्यालेनास ने बत्ती जलाई। सामने ही खाने की बहुत सी सामग्री रक्खी थी। वह कई रोज़ का भूखा था, भोजन देखते ही तुरन्त खाने के बैठ गया।

बुर्वो ने कहा—अरे भाई, जल्दी खा लो। देखते नहीं कि पम्पियाई की हालत कैसी संगीन होती जा रही है?

क्यालेनास ने चौंक कर कहा—अरे! यह कैसी आवाज़ है? देखो, सामने की दीवार टूट गई! आकाश से आग बरस रही है! अरे अब फिर यह कैसी आवाज़ हुई? गिरी हुई दीवार के नीचे कोई रो रहा है।

ठीक इसी वक्त कुछ गरम पानी जैसी कोई चीज़ चारों ओर छिड़क सी दी गई। दो-तीन बार बड़े ज़ोर से भूकम्प हुआ। साथ ही बड़े बड़े मोटे मोटे खम्भे भीषण शब्द के साथ गिरने लगे। एक विकट चिल्लाहट मच गई। क्यालेनास ने डर से काँपते हुए कहा—मालूम होता है कि कमरे के गिर जाने से पुजारी लोग दब गये। विपत्ति इतनी नज़दीक आगई है, यह मैंने पहले नहीं समझा था।

वे दोनों शैतान तब एक दूसरे का मुँह ताकने लगे। दोनों की छातियाँ धड़कने लगीं। लेकिन बुर्वो बड़ा उस्ताद आदमी था। उसने अपने को सँभाल कर क्यालेनास को ढाढस देकर कहा—अरे कुछ नहीं है। चलो, अपना अपना काम करके यहाँ से जल्दी भाग चलें।

दोनों एक बरामदे से होकर सामने की एक कोठरी में घुसे। चारों तरफ़ देखकर कहा—वाह! कैसी अच्छी जगह मिल गई। कोई भी नहीं। आओ भाई जल्दी यहाँ के धनरत्नों को बाँध कर ले चलें।

कई एक बड़े बड़े बोरे लेकर दोनों सोना-चाँदी भरने लगे। इतने में अचानक कुछ आग सी गरम राख बुर्वो पर आ पड़ी, साथ ही उस घर का एकांश टूट कर उसके कन्धों पर आ गिरा। उसने मारे यन्त्रणा के चिल्ला कर सहायता माँगी। क्यालेनास अपना बोरा छोड़ कर उसकी सहायता करने को दौड़ा। परन्तु हाय! कौन किसकी सहायता करे! पल भर में एक बड़ा खम्भा टूट कर क्यालेनास के ऊपर आ गिरा और वहाँ उसकी सब आशाओं की भी समाधि हो गई।

आदमी जीवन के अन्तिम क्षण तक दीर्घजीवन की आशा, सुख भोगने की आशा रखता है, परन्तु वह यह नहीं सोचता कि भगवान् ने जन्म-काल में उसके भाग्य में जो लिख दिया है, उसका एक एक अक्षर अवश्य फलेगा।

( ११ )

शहर का जो रास्ता सीधा जाकर हारकिडलमे से जा मिला था, ठीक उसी रास्ते पर खड़ा हुआ ग्लकास का मित्र सलास्ट अपने भविष्य-भाग्य के बारे में सोच रहा था। उसने मन ही मन सोचा कि यदि मैं इस रास्ते से सीधा चलूँ तो अल्पकाल में हारकिडलमे नामक स्थान पर पहुँच सकूँगा। वहाँ गाड़ी मिल जायगी, और गाड़ी से जाने में निरापद स्थान पर पहुँचने में देर भी न लगेगी।

अचानक कम्पित स्वर में सुनाई दिया—'मैं मरा, मैं मरा, मुझे बचाओ, मैं पत्थर के नीचे पड़ा हूँ। मेरे हाथ की बत्ती बुझ गई है, मेरे नौकर सब भाग गये हैं।'

सलास्ट ने दौड़ कर वहाँ जाकर पूछा—तुम कौन हो? पत्थर के तले से जवाब मिला कि मैं धनी-श्रेष्ठ डायोमेड हूँ। जो कोई मुझे बचावेगा उसको मैं दस हज़ार रुपये इनाम में दूँगा।

सलास्ट ने सुनकर हँस दिया। उसने कहा—मृत्यु की गोद में बैठ कर भी आदमी सोचता है कि दुनिया में उससे चालाक और कोई नहीं है। लेकिन जहाँ देवता का हरदम वज्रपात होता है, वहाँ क्या ज्यादा चालाकी चल सकती है?

"भाई, मुझे बचाओ। तुम जो कहोगे सो दूँगा।"

सलास्ट ने हाथ बढ़ा कर उसे पकड़ कर कहा—उठो फिर डायोमेड की ओर देखकर कहा—तुम्हारी विपुल धन-सम्पत्ति तुमको अब नहीं बचा सकती

डायोमेड ने चौंककर कहा—कौन सलास्ट ? तुम्हारा स्वर सुनते ही मैंने तुम्हें पहचान लिया था। भाई, मैं बच जाऊँगा तो अपनी विपुल सम्पत्ति सब देश के काम में उत्सर्ग कर दूँगा। दरिद्रों की पूजा ही भगवान् की असल पूजा है। इतने दिन मैं यह समझता रहा था कि रुपये से कुछ नहीं तो जीवन के अन्तिम क्षण तक दुनिया के आदमियों की सहायता मोल मिल सकेगी। परन्तु आज मेरा वह भ्रम दूर हो गया। अच्छा, वह बात जाने दो। अब तुम कहाँ जा रहे हो ?

"हारकिडलमे।"

"भगवान् को धन्यवाद है कि हम दोनों की एक ही राह है। रास्ते में ही तो मेरा मकान मिलेगा। वहीं चलो न ! तुम तो जानते हो कि मेरी कोठी के अन्दर एक बड़ा सुन्दर तहख़ाना है। वहाँ रहने से भगवान् का भी सामर्थ्य नहीं कि हमें ढूँढ़ निकाले।"

सलास्ट ने हँस कर कहा—भगवान् की आँख में धूल झोंक सकोगे कि नहीं, यह मुझे नहीं मालूम है। पर उस कमरे में बहुत सी भोजन-सामग्री भरकर उनकी कृपा से कुछ दिन वहाँ रहकर इसका निश्चय कर सकते हो; ज़्यादा दिन न सही, इस विपत्ति-काल में ही रहकर देख लो। लेकिन मुझे तो हारकिडलमे को जाना ही पड़ेगा। तुम्हारे मकान पर मैं नहीं जाऊँगा। यह कहकर सलास्ट चला गया। कुछ देर के लिए हवा रुक गई। थोड़ी दूर रास्ते के दोनों किनारों पर गैस जल रही थी, भागनेवाले अभी तक अपनी अपनी जान बचाने के लिए इधर-उधर भाग रहे थे। अचानक एक पहरेवाले पर बिजली-सी चमक गई ! उसी क्षण वह ज़मीन पर गिर गया। रोम के प्रतापशाली बादशाह में भी उस असहाय पहरेवाले की रक्षा करने का सामर्थ्य न था। उस निर्जन स्थान पर पहरेवाले की देह पड़ी रही

डायोमेड ने वहाँ से दौड़ कर भागने की चेष्टा की। अचानक एक औरत ने आकर उसे रोक लिया। यह औरत थी डायोमेट की प्यारी कन्या जुलिया। वह लड़की रो रो कर कहने लगी—पिताजी, हम दोनों की रक्षा कीजिए। मुझे न सही, मेरे बच्चे को ही बचाइए। दाई के पास सो रहा था, दाई उसे छोड़ कर भाग गई, पलने से बच्चे को मैं उठा लाई हूँ। सिवा मा के कौन समझेगा बच्चे का दुःख ! पिताजी, मेरे बच्चे को बचाइए। डायोमेड की कन्या रोती हुई बड़े यत्न से पुत्र को छाती से लगाये हुए थी।

डायोमेड कन्या को देखकर बहुत ख़ुशी हुआ, उसने करुण-स्वर से कहा—यदि बचना चाहो तो देर न करो। तुरन्त मेरे साथ मेरे तहख़ाने में चली चलो।

आगे आगे डायोमेड और पीछे पीछे अपने बच्चे को गोद में लिये हुए जुलिया दौड़ती हुई जाने लगी। मकान में पहुँच कर जब वे बरामदे से एक कमरे में घुसने लगे, एक दीवार टूट कर बड़ी आवाज़ के साथ गिर पड़ी ! पिता-पुत्री दोनों मारे डर के चिल्ला उठे।

डायोमेड ने घर में पहुँचने के साथ ही घर में जितनी खाने की चीज़ें थीं सब कोठी के नीचे तहख़ाने में पहुँचा देने की नौकरों को आज्ञा की। चिराग़ जलाने के लिए तेल भी रख आने को कहा। लेकिन आज कौन किसका हुक्म माने, कौन किसकी सहायता करे ! आज मालिक और नौकर में कुछ भेद नहीं था। सबकी एक ही हालत थी। जब नौकरों की सहायता न मिली, डायोमेड और जुलिया जितना हो सका, खाने की चीज़ें ढो ढो कर कमरे के नीचे तहख़ाने में ख़ुद ले चले। उसके बाद उस चोर-कोठरी में जा घुसे।

डायोमेड और उसकी कन्या के तहख़ाने में घुसने के थोड़ी देर बाद देखा गया कि भूचाल में डायोमेड का सारा भवन फटकर मिट्टी में मिल गया।

( १२ )

समुद्र के किनारे जहाज़ बँधा था। ग्लकास निडिया को साथ लिये उसी ओर जा रहा था। सहसा मृत एपिसाइडिस की बहन आइयोन से भेट हो गई। ग्लकास को देखते ही आइयोन ने चिल्लाकर कहा—ग्लकास, ग्लकास, जीते हो ? आख़िर तुम्हीं ने मुझे ऐसा भीषण आघात—

आइयोन की बात पूरी न होते ही ग्लकास ने उसे दो-चार बातों में ही समझा दिया कि एपिसाइडिस का

तुम्हारा वह नहीं, किन्तु आरबेस है। मुझको सम्मान के साथ मुक्ति मिली है, और सो भी सिर्फ़ निडिया के अनुग्रह से।

आइयोन उत्साहित होकर कह उठीं—क्या तुम्हें मुक्ति मिली है? धन्य भगवान् धन्य, मैं मन ही मन जानती थी कि वह काम तुमसे कभी नहीं हुआ, क्योंकि मुझे अच्छी तरह मालूम है कि तुम्हारी भैया से घनिष्ठ मैत्री थी। ऐसा कुकर्म्म पापी आरबेस से ही सम्भव हो सकता है।

इसके बाद अन्धी निडिया की तरफ़ देखकर कहा—देखती हूँ कि भगवान् ने इनको आँखों से हीन किया है, तो भी परोपकार-वृत्ति से दिल को बहुत धनी बनाया है। यदि आज इस विपत्ति से हम सब बच सके तो इनके प्रति पूरी कृतज्ञता प्रकट करने का मौक़ा मिलेगा। अब चलो ग्लकास, हम सब यहाँ से भाग चलें।

ग्लकास, आइयोन और निडिया सीधी राह से दौड़ने लगे। परन्तु राह में हज़ारों आदमी बेटा-बेटी, स्त्री-पतोहू आदि साथ में लिये प्राण बचाने के लिए भाग रहे थे। इतनी भीड़ लग गई थी कि अँधियारे में कोई किसी को न देख सका। और थोड़ी देर में ग्लकास को मालूम हुआ कि निडिया भीड़ में कहीं छूट गई।

ग्लकास और आइयोन ने उसे बहुत ढूँढ़ा, लेकिन कहीं पता न मिला। ग्लकास निडिया का नाम ले लेकर ऊँचे स्वर से पुकारने लगा, परन्तु चारों ओर के रोने व चिल्लाहट के बीच कौन किसकी पुकार सुने? उधर निडिया ने जब समझा कि साथी छूट गये, उसे बड़ा डर लगा। वह चिन्ता में पड़ गई। वह इधर-उधर घूमने लगी कि कहीं ग्लकास व आइयोन मिल जाय। रह रहकर ग्लकास का नाम ले लेकर पुकारती जाती थी। परन्तु ग्लकास और आइयोन को कहीं किसी का पता न लगा।

बहुत ढूँढ़ने पर भी जब निडिया नहीं मिली तब ग्लकास ने समझा कि वह भीड़ में पड़ जाने से रास्ता भूल गई है। उसने कहा—हाय! मेरी जीवनदात्री व सच्चे मित्र निडिया का संग इस विपत्ति के दुर्दिन में इस तरह छूट गया! न जाने बेचारी का क्या हाल हो? ग्लकास को बहुत दुःख हुआ। वह आइयोन के साथ कुछ देर तक निडिया को ढूँढ़ता रहा। अन्त में लाचार होकर चारों तरफ़ की राख के ढेर के बीच से वे आगे बढ़े।

चलते चलते सहसा आइयोन रास्ते में बैठ गई, उसने कहा—मैं और नहीं चल सकती, आग की दँदक में मुझसे चला नहीं जाता है। आप मुझे छोड़कर चले जायँ। मेरी तक़दीर में जो है सो होगा।

ग्लकास ने कहा—तुमको इस विपत्ति के बीच में छोड़कर मैं भाग जाऊँगा? यह कभी नहीं हो सकता है।

आइयोन ने कहा—वह देखिए, सामनेवाली कोठी टूट कर रास्ते के ऊपर गिर पड़ी है। अब कैसे जा सकोगे? अचानक बिजली चमक उठी, उसके प्रकाश में उन्हें पास ही एक मन्दिर दिखाई दिया। ग्लकास ने कहा—आइयोन, यह देखो यहाँ एक देवमन्दिर है। चलो, उसी की किसी कोठरी की शरण लें। वहाँ जाने से शायद हम दोनों बच जायँ।

ग्लकास आइयोन का हाथ पकड़ कर मन्दिर की ओर ले चला। मन्दिर की सीढ़ी के ऊपर जैसे ही उन्होंने पैर रक्खे, किसी को कम्पित स्वर से कहते सुना—तुम कौन हो? क्या माँगते हो?

आवाज़ सुनते ही आइयोन ने उस तरफ़ देखा, लेकिन घने अँधेरे में कुछ भी न दिखाई दिया। उन्होंने समझा, न जाने कौन अभागा यहाँ अपने जीवन का अन्तिम प्रलाप बक रहा है।

ठीक उस वक्त ईसाई लोगों का एक दल हाथ में मशालें लिये हुए मन्दिर के सामने से चला गया। उन सबके मुँह पर दुश्चिन्ता की छाप नहीं थी, बल्कि सभी प्रसन्न से थे। उन लोगों का विश्वास था कि जगत् का अन्तिम दिन जल्दी आवेगा, इसलिए आज के दिन को वे वही अन्तिम दिन समझ कर भगवान् के चरणों में अपना अपना अन्तिम निवेदन कर रहे थे।

उन लोगों में उम्र में जो सबसे बड़ा था उसने धीरे धीरे कहा—दुःख क्या है? डरते क्यों हो? वह देखो,

भगवान् हम सबके जीवन का अन्तिम विचार करने के लिए स्वर्ग से उतर रहे हैं। जो अग्नि की ज्वालायें तितर-बितर दिखाई देती हैं, वह सिर्फ़ भगवान् के सम्मान के लिए उत्सव का आयोजन है। जो लोग मूर्त्ति पूजते हैं आज उन्हीं लोगों को सज़ा मिलेगी। इस नगर के ज्यादा लोग मूर्त्ति पूजते हैं, इसी लिए सबसे पहले इस नगर का ध्वंस हो रहा है। वे ईसाई लोग यह उपदेश करते हुए चले कि हे अविश्वासियों के दल, आज के दिन यदि कोई मरने से बच जायगा तो फिर वह मूर्त्ति का पूजन कभी न करेगा। अतएव यह सब देख-सुनकर सावधान हो जाओ।

इस समय कुछ देर के लिए विसूवियस से आग का निकलना बन्द हो गया। ग्लकास आइयोन का हाथ पकड़े हुए फिर चलने लगा। उन दोनों ने जैसे ही सीढ़ियाँ चढ़ कर बरामदे में घुसने के लिए पैर उठाये, वैसे ही देखा कि एक वृद्ध अपने हाथ में एक बड़ा थैला लिये हुए एक युवक से लड़ रहा है। युवक के हाथ में मशाल थी, उसकी रोशनी में ग्लकास ने उन दोनों को पहचान लिया। वृद्ध पिता था, और युवक पुत्र था। ग्लकास जानता था कि बाप जैसा कंजूस, लड़का वैसा ही शाह-ख़र्च है।

पुत्र ने पिता से कहा—तुम यदि इससे तेज़ नहीं चल सकोगे तो आख़िर में मुझे तुम्हें छोड़ कर अकेला ही जाना पड़ेगा, नहीं तो हम दोनों यहाँ मर जाएँगे।

पिता ने कहा—यही अच्छा है। तुम भाग जाओ। मैं अपनी चाल से आऊँगा।

"वाह! मैं यहाँ से भाग कर क्या उपवास करके रह सकूँगा। तुम मोहरोंवाला थैला मुझे दे दो। अब तुम अधिक समय तक जियोगे भी तो नहीं।"

यह कह कर युवक ने वृद्ध के हाथ से थैला छीन लिया।

बाप ने क्रोध के मारे धमकी देकर कहा—क्या बाप पर ही डाका डालोगे? इतना बड़ा अनर्थ करोगे?

पुत्र ने हँसते हुए कहा—इस विपत्ति के समय ऐसी बातों से क्या लाभ? सभी कंजूस इसी तरह दुख में मरते हैं।

वृद्ध क्रुद्ध सर्प की भाँति गरजता हुआ जैसे आगे बढ़ा, पुत्र उसे एक धक्के से ज़मीन पर गिरा कर मोहरों का थैला लेकर उल्टे रास्ते भाग गया।

ग्लकास ने चकित होकर चिल्ला कर कहा—हे भगवन्, यह तुम्हारी कैसी लीला है! जानता हूँ कि इस [illegible] की नित्य प्रति कितनी ही घटनायें होती रहती हैं [illegible] एक आदमी के पाप से दस आदमियों को प्रायश्चित्त [illegible] अग्नि से मरना होता है। आओ आइयोन, हम भी [illegible] ध्वंस-लीला के बीच में से अपने भाग निकलने की [illegible] ढूँढ़ें।

## ( १३ )

ग्लकास और आइयोन समुद्र-तट पर जाने के लिए आगे बढ़े, लेकिन अँधेरे में ठीक रास्ता नहीं पा सके, [illegible] इधर से उधर और उधर से इधर घूमते रहे। [illegible] में सहसा चारों ओर बिजली चमकी और उजाला हो [illegible] उस क्षण भर के उजियाले में ग्लकास व आइयोन ने चारों तरफ़ देखकर अपना मार्ग ठीक कर लिया। रास्ते [illegible] इधर-उधर राख के ढेर लगे थे, वे देखने में दूध के [illegible] से जान पड़ते थे। पर टूटी हुई दीवारों की ईंटों [illegible] पत्थरों की ढेरियों में पलायमान नगरवासियों के टूटे [illegible] पैर आदि अङ्ग विशेष बिखरे पड़े दिखाई दिये। मरते हुए लोगों के करुण-क्रन्दन की आवाज़ से आकाश [illegible] गया था। उस विराट् अँधेरे में वह क्रन्दन-ध्वनि जिसके कान में जा पड़ती थी उसकी अन्तरात्मा काँप उठती थी। दूर पहाड़ के भीतर से ध्वंस-देवता का भयङ्कर विनाश-कार्य अब तक बराबर जारी था।

आइयोन मारे डर के काँपती हुई ग्लकास के [illegible] निकट आकर कहने लगी—ग्लकास, मुझे बहुत डर लगता है। ऐसा मालूम होता है कि कोई मेरी छाती पर मुग्दर से ज़ोर ज़ोर से आघात कर रहा है और मेरा [illegible] अब आगे नहीं उठता है।

ग्लकास ने उसे ढाढस देकर कहा—डर किस बात का? देखो, वे सब कौन हाथ में मशालें लिये हुए इधर आ रहे हैं। ओह! हवा से लड़ते हुए [illegible]

तुम्हें से इधर आ रहे हैं। वे सब ज़रूर समुद्र की ओर आ रहे हैं। चलो, हम भी उन लोगों के साथ हो लें।

ठीक इसी वक़्त शायद इन दोनों की रक्षा के लिए प्रलय-देवता कई मिनटों तक शान्त रहें। उनके शान्त-भाव से कुछ देर के लिए सब तरफ़ शान्ति दिखाई देने लगी। जो लोग मशालें लिये हुए आ रहे थे, ख़ूब तेज़ चाल से आ रहे थे। उस दल का सरदार कह रहा था—हम लोग समुद्र-तट के प्रायः निकट आगये हैं। आज जो क्रीतदास बच जायँगे वे आज से सब दिन के लिए मुक्त हो जायँगे। भगवान् ने तुम लोगों को मुक्ति देने के लिए मुझे भेजा है।

क्रम क्रम से आलोकवाही दल ग्लकास व आइयोन के निकट आगया। उसे देख कर वे दोनों डर से सहम गये। इस दल के सब लोग सिर पर भारी भारी गठरियाँ लादे हुए थे। सबके आगे आगे हाथ में तलवार लिये उन लोगों का सरदार था। यह सरदार और दूसरा कोई नहीं, पुजारी आरबेस था।

सहसा ग्लकास और आइयोन को वहाँ देखते ही आरबेस ने क्रोध से चिल्ला कर कहा—इस दुर्योग में मेरा कुछ भी नुक़सान नहीं होगा, मेरा मन्त्रबल ही मेरी रक्षा करेगा। इस ध्वंस-लीला के बीच में मेरे हृदय का उल्लास सौगुना बढ़ गया है; क्योंकि इतने दिन के प्रति-हिंसा के ऋण का आज परिशोध होगा। हमारे हाथ की यह तलवार आज तेरा ख़ून पीकर तृप्त होगी।

ग्लकास ने भी क्रुद्ध होकर एक छुरा निकाल लिया। उसने कहा—सावधान। और एक क़दम आगे बढ़ोगे तो यह छुरा पल भर में तुम्हें ख़तम कर देगा।

ग्लकास की रुद्रमूर्त्ति देखकर आरबेस डर से थोड़ा पीछे हट गया। ग्लकास कहने लगा—नरपिशाच, तुम्हें ज़्यादा दूर नहीं जाना पड़ेगा; प्रतिहिंसा का देवता तेरा ही ख़ून पीकर प्रतिहिंसा-भाव दूर करेंगे।

आइयोन ने डर से ग्लकास को दोनों हाथों से पकड़ कर कहा—चलो ग्लकास, लड़ो मत, चलो। हम दोनों भाग चलें। ध्वंस का देवता उसको आप दण्ड देगा।

आरबेस ने ज्योंही ग्लकास को मारने के लिए तलवार उठाई, हवा के एक प्रबल झोंके से ढेर की ढेर गरम राख उसकी आँखें और सारे बदन पर आ पड़ी। उधर दूर पहाड़ पर से अग्नि की दो बड़ी बड़ी मूर्त्तियाँ भीषण दैत्य की भाँति मानो दुनिया को ध्वंस करने के लिए आती हुई दिखाई दीं। थोड़ी देर के बाद वे दोनों मूर्त्तियाँ टूट कर चूर चूर होकर सारे नगर पर आ गिरीं।

आरबेस के नौकर डर के मारे बड़े ज़ोर से चिल्ला उठे। उनमें से बहुत उस आग से जल कर मर गये। आरबेस निश्चल सा कुछ समय तक वहाँ खड़ा रहा। ज्वालामुखी की विराट् क्रोधाग्नि की रोशनी चारों ओर छाई हुई थी, उस उजियाले में आरबेस बहुत ही सुन्दर दिखाई देता था, उसके जवाहरात के ज़ेवरों के हीरे-पन्ने अग्नि की रोशनी में चमक कर उसके ऐश्वर्य का परिचय दे रहे थे।

आरबेस ने पहाड़ की ओर से आँखें घुमा लीं और ग्लकास की ओर देख कर कहा—अब मुझे क्या डर है? मेरे भाग्य में जो एक विपत्ति लिखी थी वह तो दूर हो गई। मेरी आत्मा भगवान् की रोष-वह्नि से नहीं डरती। हे मेरे क्रीतदासो, तुम सब मिलकर तुरन्त ग्लकास पर आक्रमण करो।

यह कह कर आरबेस फिर नये उत्साह से ग्लकास पर आक्रमण करने को बढ़ा, परन्तु कौन जानता था कि इस दुनिया में यही है उसका अन्तिम आस्फालन! आरबेस के तलवार उठाने के साथ ही पृथ्वी काँपने लगी। आरबेस के ठीक बग़ल में जो पत्थर की एक श्वेत मूर्त्ति थी, उस भूचाल से उस पर सहसा न मालूम कहाँ से कुछ आग आ गिरी, जिससे वह मूर्त्ति टूट कर आरबेस के ऊपर गिर पड़ी और वह ज़िन्दा ही उसके नीचे दब गया। वह श्वेत पत्थर की मूर्त्ति रोम-सम्राट् आगस्टस की मूर्त्ति थी। कुछ दिन पहले आरबेस को अपनी भविष्यत् विपत्ति का आभास मिला था, वही आज हर तरह से घटित हो गई।

ज्ञानी आरबेस की मृत्यु से मिसर-राजवंश के अन्तिम दीप का निर्वाण हो गया।

(१४)

आरबेस की इस अचानक मृत्यु से ग्लकास को बहुत दुःख हुआ। उसने उस हतभाग्य के लिए दो-दस बूँद आँसू भी ज़मीन पर गिराये। सहसा सामने की कोठी का एक कोना टूट पड़ा और वह ग्लकास और आइयोन के पैरों के निकट आ गिरा।

अब ग्लकास वहाँ और अधिक देर नहीं ठहरा। आइयोन को साथ लेकर सीधा रास्ता पकड़ कर भागा। पहाड़ की ओर देखा कि वहाँ से गरम राख निकल कर हवा के द्वारा चारों ओर फैलती जा रही है, धूँआ से आकाश छा गया है, घाट-बाट सब निर्जन हो गये हैं। इमारतों के ध्वंसावशेषों के भीतर से मरते हुए असहाय लोगों की रह रह कर रोने की आवाज़ें उसे सुनाई पड़ रही थीं।

अचानक ग्लकास के निर्भीक मन में भी भय का संचार हुआ, उसका हृदय काँपने लगा। हताश-भाव से आइयोन का हाथ पकड़ कर वह फिर चलने लगा।

ठीक यहीं निडिया आइयोन और ग्लकास को ढूँढ़ती हुई फिर रही थी। उन दोनों के नाम ले लेकर वह बारबार पुकार रही थी, लेकिन इस दुर्योग की रात में हर एक तरह की आवाज़ के भीतर कौन किसकी पुकार सुने और कौन जाय किसको ढूँढ़ने। बेचारी निडिया जहाँ से उसका साथ छुट गया था, वहाँ बारबार जा कर चिल्लाती थी, पर वहाँ के कोलाहल के बीच उसकी आवाज़ डूब जाती थी। जो कोई उसके पास से निकलता, वह अन्धी उसी से ग्लकास और आइयोन को पूछती, लेकिन उसकी बात पर कोई कान न देता। यह सच है कि सार्वजनिक विपत्ति के समय व्यक्तिगत स्वार्थ की ओर ध्यान देना सबसे बड़ी संकीर्णता है।

बाद को निडिया ने सोचा कि यहाँ खड़े खड़े पुकारने में कोई फ़ायदा नहीं, बल्कि समुद्र-तट पर जाने से शायद वे लोग मिल जायँ। यह सोचकर वह धुँए और आग के भीतर से बड़ी कठिनाई के साथ समुद्र के किनारे की ओर चली। थोड़ी देर में मशालें लिये हुए लोगों का एक दल उस राह में आया और अनजान में किसी का धक्का लगते ही निडिया ज़मीन पर गिर पड़ी। [illegible] के भीतर से किसी ने कहा—अरे। यह कौन! [illegible] निडिया है? क्या चोट लग गई है? हम लोग [illegible] डलमे को जा रहे हैं, हम लोगों के साथ चली आओ।

"तुम कौन हो? क्या सलास्ट हो! यह आवाज़ मैं पहचानती हूँ। धन्य भगवान्! सलास्ट, तुमने ग्लकास को देखा है?"

"नहीं ग्लकास से तो मुलाक़ात नहीं हुई है। पर यह निश्चय है कि वह शहर के बाहर चला गया है। जिस भगवान् ने उसकी सिंह से रक्षा की है वही इस अग्नि-देवता के रोष से भी रक्षा करेंगे।

सलास्ट निडिया को साथ लेकर चलने लगा। रास्ते में जाते जाते निडिया ग्लकास की खोज करती [illegible] नहीं गई।

अचानक पृथ्वी काँप उठी, चारों ओर फिर [illegible] देवता का नृत्य आरम्भ हो गया। कोठी पर कोठी गिरने लगी, हज़ारों लोग खुले मैदान में जमा होने लगे। नगरवासियों में से मृत्यु-भय से डरकर नगर छोड़कर मैदान-जङ्गल पार कर न जाने कहाँ कौन भाग गया। सबके मुँह पर आतङ्क की छाप, सबकी आँखों में आँसू, किसी का मन ठिकाने नहीं, कोई नहीं जानता कि [illegible] कहें और कहाँ जायँ। भागते हुए लोगों के बीच में [illegible] एक बूढ़े ने कहा—अब की बार पृथ्वी का विनाश [illegible] है। ज्ञानी लोग बहुत दिन पहले जिस दिन की [illegible] लिख गये हैं आज वही दिन आ गया है।

और एक आदमी ने बहुत उदास होकर कहा—[illegible] मालूम होता है वही दिन आया है।

सबके मुँह पर निराशा का भाव लक्षित [illegible]। ठीक इसी वक़्त एकाएक सामने आग जल उठी। उस रोशनी में आरबेस की मृत देह सबकी नज़र में आई। सब [illegible] लगे, यदि उचित दण्ड किसी को मिला है तो मिला है आरबेस को।

उस समय पहले गरम हवा का झोंका आया और कुछ देर के बाद आग लगातार बरसने लगी। ऐसी [illegible] में कौन कहाँ भागे, यह कोई नहीं समझ सका, [illegible]



जङ्गलवासी प्रताप

कोई निकट के दरिया में जाकर कूदा, किसी ने अग्नि के बीच में खड़े खड़े जान दे दी, कोई भगवान् की कृपा से आप ही बच गया। आग बरसने के साथ ही एक मुहूर्त्त के लिए फिर भूकम्प हुआ और सारी पृथ्वी हिल गई।

भगोड़ों का फिर एक नया दल वहाँ आ पहुँचा, आरवेस की मृत्यु के बाद उसके सब क्रीतदास उसकी सब सम्पत्ति लेकर जो जहाँ भाग सका भाग गया। इस नये दल के लोगों के साथ एक ही मशाल थी। वह मशाल सोसिया के हाथ में थी। उसकी रोशनी निडिया के मुँह पर पड़ते ही सोसिया ने उसे पहचान लिया। उसने कहा—निडिया हो, तुम क्यों यहाँ खड़ी हो? भागो जल्दी, नहीं तो मर जाओगी।

"तुम कौन हो? ग्लकास की ख़बर दे सकते हो?

"अभी थोड़ी ही देर पहले उनसे भेंट हुई थी।"

"कहाँ?"

"उस देव-मन्दिर के एक खम्भे के नीचे। अब क्या वह जीता है? मर गया होगा, नहीं तो मरने को होगा। थोड़ी देर हुई आरवेस भी मर गया।"

निडिया सलास्ट से बिना कुछ कहे वहाँ से हट गई, और धीरे-धीरे अन्दाज़ से मन्दिर के पास गई। वहाँ वह ग्लकास का नाम ले लेकर ज़ोर ज़ोर से पुकारने लगी।

बहुत धीमे स्वर से जवाब मिला—कौन मुझे बुलाता है? आप क्या मृत्यु के दूत हो? आओ, मैं तैयार हूँ।

आवाज़ की अन्दाज़ से नज़दीक जाकर कम्पित स्वर से निडिया बोली—उठो, मेरे साथ आओ। मेरा हाथ पकड़ लो ग्लकास, तुम्हें जीना ही होगा।

विस्मित होकर ग्लकास ने निडिया की सहायता से किसी प्रकार खम्भे के तले से उठ कर कहा—निडिया, फिर तुमने मुझे जीवन दिया! मैं तुम्हारा यह ऋण कैसे परिशोध करूँगा? निडिया अच्छी तो हो न?

"हाँ ग्लकास, भगवान् की कृपा से मैं अच्छी हूँ।"

आइयोन ग्लकास के जीवन की आशा छोड़ कर रो रही थी। उसकी भी जान में जान आ गई।

ग्लकास आइयोन और निडिया को साथ लेकर जहाज़-घाट पर आ पहुँचा। जहाज़ के नाविक पहले से तैयार थे। वे अपने प्रभु की प्रतीक्षा में थे। ग्लकास को आते देखकर भगवान् को हज़ारों धन्यवाद देते हुए उस विपत्ति-पूर्ण तट-भूमि को छोड़ कर जहाज़ को समुद्र में चला दिया।

जहाज़ के रेलिङ्ग से झुक कर ग्लकास समुद्र की लहर-लीला देखता हुआ पम्पिआई-नगर में प्रलय-देवता के ताण्डव नृत्य की बात सोच रहा था। सहसा उसे निडिया की याद आ गई। आइयोन से पूछा—निडिया को क्यों नहीं देखता हूँ? वह कहाँ गई?

जहाज़ के सब स्थान ख़ूब अच्छी तरह ढूँढ़े गये, लेकिन निडिया का कहीं कुछ पता न मिला।

दूर समुद्र के प्रखर कल्लोल पर ग्लकास ने देखा कि एक मृत देह बही जा रही है। देखते ही निडिया को ग्लकास ने पहचान लिया। क्या मालूम वह कैसे पानी में गिर पड़ी, किसी ने देखा भी नहीं। हो सकता है कि अन्धी बेचारी अनजान स्थान पर पैर रखने से फ़िसल कर गिर गई हो।

आँसुओं से भरी हुई आँखों से ग्लकास और आइयोन निडिया की मृतदेह की ओर देखते हुए जहाज़ के किनारे पर खड़े रहे। निडिया फूल बहुत पसन्द करती थी। ग्लकास कुछ फूल ले आया और उस अभागिन के उद्देश से उन्हें समुद्र की लहरों पर छोड़ दिया।

—चारुबाला

# इच्छा-पूर्ति

देते हो विविध दुख हमको सदैव तुम,
क्यों नहीं हमारा मुख सर्वदा रहे उदास।

देता है दिखाई वह फूल हँसता क्या कभी,
छीन लिया जिसका निदाघ-ताप ने विकास।

आती है हँसी जो तुम्हें आने दो न रोको उसे,
क्यों भला छिपाते तुम निज चित्त का हुलास।

क्यों न हो विनोद तुम्हें देखके हमारा नाश,
मन का तुम्हारे हो गया है पूर्ण अभिलाष॥

—गोपालशरणसिंह

# कालिदास और उनका विक्रमादित्य

[ कालिदास के समय के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। इस लेख में यह सिद्ध किया गया है कि कालिदास गुप्तों के समय में हुए और वे सम्राट् स्कन्दगुप्त तथा कुमारगुप्त के समय के कवि थे। लेख पाण्डित्यपूर्ण है। पुरातत्त्व-प्रेमियों का ध्यान इस लेख की ओर आकृष्ट होना चाहिए।]

कालिदास के विक्रमोर्वशीय नाटक से ज्ञात होता है कि विक्रम-संवत्वाले विक्रमादित्य के बाद कोई दूसरे भी विक्रमादित्य हुए हैं। ये चाहे पूर्व विक्रमादित्य से भिन्न वंश के हों अथवा अनेक अंशों में उन्हीं के वंशज हों, ये विक्रमादित्य अपने मूल-पूर्वजों से पाँचवें थे, जिनके प्रपितामह का नाम चन्द्र अथवा चन्द्र-अर्थ का द्योतक था, जैसा कि विक्रमोर्वशीय अङ्क ५ श्लोक २१ से प्रकट होता है। विक्रमोर्वशीय में विक्रम के पुत्र को युवराज का पद मिलना दिखलाया गया है। उस पुत्र को कुमार कहते हुए महासेन कार्तिकेय की भी उपमा दी गई है और—

'अतिशयिनि समाप्ता वंश एवाशिवस्ते'

लिखकर उनके वंश की प्रशंसा की गई है। विक्रम राजा के बाद 'कुलधुरंधर' नामक राजा हुआ है। इसी के युवराज्याभिषेक के प्रसंग को लक्ष्य करके कालिदास ने यह नाटक लिखा है। इससे ज्ञात होता है कि कालिदास विक्रमादित्य के पुत्र के आश्रित थे। विक्रमादित्य के पुत्र का नाम 'कुमार' अथवा 'कुमार' शब्दवाला कोई नाम था। कालिदास के 'कुमार-संभव' नामक काव्य के नाम से तो इस अनुमान की और भी अच्छी पुष्टि होती है। महाभारत में दुष्यन्त का राज्य बहुत दूर तक बड़े बड़े प्रदेशों तक विस्तृत नहीं बतलाया गया है, परन्तु कालिदास ने अपने 'अभिज्ञान-शाकुन्तल' में दुष्यन्त का राज्य बड़े बड़े नगरों में होना लिखा है। उन्होंने तो यहाँ तक लिखा है कि दुष्यन्त समुद्र तक फैली हुई समस्त पृथ्वी का संरक्षण करते थे। ( अङ्क २ श्लोक १५ ) यह राज्य-विस्तार कालिदास के आश्रयदाता राजा के समय का होना प्रतीत होता है। काव्य, नाटक आदि ग्रन्थ कितने ही पुराने प्रसंग पर क्यों न हों, तो भी उनमें ग्रन्थकार के समय की वस्तुस्थिति थोड़ी-बहुत मात्रा में रहती ही है। बहुधा वह ग्रन्थकार की जानकारी के बिना ही ग्रन्थ में प्रवेश कर जाती है और कभी कभी स्वयं ग्रन्थकार ही उसका उसमें प्रवेश कर देता है। अभिज्ञान-शाकुन्तल में दुष्यन्त के राज्य का विस्तार दूसरे ही प्रकार से वर्णन किया गया है। अब हमें सबसे पहले यह निश्चय करना है कि कालिदास के विक्रम-पुत्र 'कुमार' राजा कौन थे। इसके लिए हमें अनेक कितनी ही दूसरी बातों की ओर भी लक्ष्य देना चाहिए।

कालिदास ने जिस प्रकार के काव्य और नाटक-ग्रंथ लिखे हैं उस प्रकार के काव्य और नाटक लिखनेवाले कवि के लिए अशान्ति का समय कभी नहीं अनुकूल हो

# इच्छा-पूर्ति

देते हो विविध दुख हमको सदैव तुम,
क्यों नहीं हमारा मुख सर्वदा रहे उदास।

देता है दिखाई वह फूल हँसता क्या कभी,
छीन लिया जिसका निदाघ-ताप ने विकास।

आती है हँसी जो तुम्हें आने दो न रोको उसे,
क्यों भला छिपाते तुम निज चित्त का हुलास।

क्यों न हो विनोद तुम्हें देखके हमारा नाश,
मन का तुम्हारे हो गया है पूर्ण अभिलाष॥

—गोपालशरणसिंह

# कालिदास और उनका विक्रमादित्य

[ कालिदास के समय के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। इस लेख में यह सिद्ध किया गया है कि कालिदास गुप्तों के समय में हुए और वे सम्राट् स्कन्दगुप्त तथा कुमारगुप्त के समय के कवि थे। लेख पाण्डित्यपूर्ण है। पुरातत्त्व-प्रेमियों का ध्यान इस लेख की ओर आकृष्ट होना चाहिए। ]

कालिदास के विक्रमोर्वशीय नाटक से ज्ञात होता है कि विक्रम-संवत्वाले विक्रमादित्य के बाद कोई दूसरे भी विक्रमादित्य हुए हैं। ये चाहे पूर्व विक्रमादित्य से भिन्न वंश के हों अथवा अनेक अंशों में उन्हीं के वंशज हों, ये विक्रमादित्य अपने मूल-पूर्वजों से पाँचवें थे, जिनके प्रपितामह का नाम चन्द्र अथवा चन्द्र-अर्थ का द्योतक था, जैसा कि विक्रमोर्वशीय अङ्क ५ श्लोक २१ से प्रकट होता है। विक्रमोर्वशीय में विक्रम के पुत्र को युवराज का पद मिलना दिखलाया गया है। उस पुत्र को कुमार कहते हुए महासेन कार्तिकेय की भी उपमा दी गई है और—

'अतिशयिनि समाप्ता वंश एवाशिवस्ते'

लिखकर उनके वंश की प्रशंसा की गई है। विक्रम राजा के बाद 'कुलधुरंधर' नामक राजा हुआ है। इसी के युवराज्याभिषेक के प्रसंग को लक्ष्य करके कालिदास ने यह नाटक लिखा है। इससे ज्ञात होता है कि कालिदास विक्रमादित्य के पुत्र के आश्रित थे। विक्रमादित्य के पुत्र का नाम 'कुमार' अथवा 'कुमार' शब्दवाला कोई नाम था। कालिदास के 'कुमार-संभव' नामक काव्य के नाम से तो इस अनुमान की और भी अच्छी पुष्टि होती है। महाभारत में दुष्यन्त का राज्य बहुत दूर तक बड़े बड़े प्रदेशों तक विस्तृत नहीं बतलाया गया है, परन्तु कालिदास ने अपने 'अभिज्ञान-शाकुन्तल' में दुष्यन्त का राज्य बड़े बड़े नगरों में होना लिखा है। उन्होंने तो यहाँ तक लिखा है कि दुष्यन्त समुद्र तक फैली हुई समस्त पृथ्वी का संरक्षण करते थे। ( अङ्क २ श्लोक १५ ) यह राज्य-विस्तार कालिदास के आश्रयदाता राजा के समय का होना प्रतीत होता है। काव्य, नाटक आदि ग्रन्थ कितने ही पुराने प्रसंग पर क्यों न हों, तो भी उनमें ग्रन्थकार के समय की वस्तुस्थिति थोड़ी-बहुत मात्रा में रहती ही है। बहुधा वह ग्रन्थकार की जानकारी के बिना ही ग्रन्थ में प्रवेश कर जाती है और कभी कभी स्वयं ग्रन्थकार ही उनका उसमें प्रवेश कर देता है। अभिज्ञान-शाकुन्तल में दुष्यन्त के राज्य का विस्तार दूसरे ही प्रकार से वर्णन किया गया है। अब हमें सबसे पहले यह निश्चय करना है कि कालिदास के विक्रम-पुत्र 'कुमार' राजा कौन थे। इसके लिए हमें अनेक कितनी ही दूसरी बातों की ओर भी लक्ष्य देना चाहिए।

कालिदास ने जिस प्रकार के काव्य और नाटक-ग्रंथ लिखे हैं उस प्रकार के काव्य और नाटक लिखनेवाले कवि के लिए अशान्ति का समय कभी नहीं अनुकूल हो

सकता। उस कवि के लिए तो ऐसा समय होना चाहिए कि विघ्न-बाधाओं का लेश न हो और वातावरण स्वच्छ हो। शान्ति के साथ आमदनी करनेवाले दूसरे राजाओं के समय भी कालिदास-सरीखे कवि नहीं निर्माण कर सकते। ऐसे समय में "विज्ञातारस्तु दुर्लभाः" की कहावत चरितार्थ होती है। तब कालिदास जिस समय में हुए हैं वह समय दोनों प्रकार के समयों से भिन्न होना चाहिए। कालिदास के नाटक और काव्य-ग्रन्थों में उस समय की परिस्थिति का जो प्रतिबिम्ब पड़ा है उससे ज्ञात होता है कि उस समय सब प्रकार की हलचल बन्द थी, देश में शान्ति स्थापित थी और देश के एक बड़े भूभाग पर चक्रवर्ती राजा राज्य करता था। यद्यपि उस समय बौद्धों की संख्या विशेष थी, तो भी राजकीय कार्य में उनका हाथ न था। वैदिक धर्मानुयायी लोगों पर उस समय राजकीय लोगों की कृपा का सितारा बुलन्द हो रहा था और देश में शान्ति और सुख तथा सदाचार की दोहाई फिर रही थी। शिव, विष्णु, कार्तिकेय और काली की उपासना प्रचलित होते हुए भी बीच बीच में यज्ञ-याग भी होते जाते थे। दशरथ के पुत्र श्रीरामचन्द्रजी को लोग विष्णु का अवतार मानते थे। ज्योतिष और शिल्प-शास्त्रों की ओर से लोगों की रुचि कम हो गई थी उस समय काम-शास्त्र लोगों को विशेष पसन्द था। वसन्त-उत्सव अथवा कामदेव का उत्सव ही सब जातियों और सब श्रेणी के लोगों का सर्वप्रिय मुख्य उत्सव था। नाटकों में ताजमहल की सी सुन्दरता लोग आकर देखते थे। नाटक बहुधा गरमी के प्रारम्भ में खेले जाते थे। कदाचित् वे वसन्तोत्सव के समाप्त होनेवाले दिन पर ही खेल कर दिखाये जाते थे। संगीत, चित्रकला और ललित साहित्य उस समय उन्नतावस्था में पहुँच चुका था। लोग सुखी थे और विलासिता की मात्रा उनमें बढ़ती जा रही थी। कालिदास कवि और उनके विक्रम-पुत्र कुमार राजा उसी समय में हुए थे।

सबसे पहले-पहल कवि वाणभट्ट और सम्राट् सत्याश्रय पुलकेशी (दूसरा) ने ही कालिदास के नाम का स्पष्ट रूप से उल्लेख किया है। ये दोनों व्यक्ति एक दूसरे के समकालीन हुए हैं, अर्थात् इनका समय ईसवी सन् की सातवीं सदी का पूर्वार्द्ध माना जाता है। अतएव कालिदास और उनका कुमार राजा ये दोनों व्यक्ति सातवीं सदी के पूर्व ही हुए होंगे।

अब हमें यह देखना है कि कालिदास और कुमार राजा उस पूर्व-समय में कब हुए थे। परन्तु इन दोनों का यदि निश्चित समय निकालना है तो पहले हमें यह देखना होगा कि कौन किस समय के बाद हुआ है। इतिहास से जिन व्यक्तियों का ठीक ठीक पता लगता है उनका उल्लेख कालिदास ने भी अपने ग्रन्थों में किया है। ये नाम क्रमशः पुष्यमित्र, अग्निमित्र और वसुमित्र हैं। इनमें से अग्निमित्र कालिदास के मालविकाग्निमित्र नामक नाटक का नायक है। उसी नाटक में ही उसके बाप का नाम पुष्यमित्र और लड़के का नाम वसुमित्र निर्दिष्ट हुआ है। मौर्यों के पश्चात् शुङ्ग-घराने के जो राजा हुए हैं उन्हीं में से उपर्युक्त तीनों राजा हैं। इनका समय ईसवी सन् से दो सौ वर्ष पहले का है।

पुष्यमित्र शुङ्ग-वंश का पहला राजा था। यह अपने स्वामी मौर्य-वंश के राजा बृहद्रथ को मार कर स्वयं राजा बन बैठा था। यह वैदिक धर्म का अनुयायी था जैसा कि इसके किये हुए अश्वमेधयज्ञ से सिद्ध होता है। बुद्ध-धर्मावलम्बी लेखकों ने इसे बुद्ध-धर्म का विरोधी लिखा है। इतना ही नहीं, बरन यहाँ तक लिख डाला है कि पुष्यमित्र ने मगध से लेकर पञ्जाब के जलन्धर तक सभी बौद्ध-मठों को नष्ट कर बौद्ध-भिक्षुओं को मार डाला था। यद्यपि इस प्रकार का वर्णन अतिशयोक्ति माना जाता है, तो भी यह नहीं कहा जा सकता कि इस विषय में कुछ तथ्य ही नहीं है। पुष्यमित्र की भाँति ही उसके बाद होनेवाले गुप्त सम्राट् भी वैदिक धर्म के अनुयायी थे और यज्ञ-याग भी करते थे परन्तु इनके विषय में बौद्ध लेखकों ने शिकायत नहीं की, बरन यह लिखा है कि गुप्त-सम्राट् बौद्ध-धर्म के उपदेश बड़ी भक्ति से सुनते थे। इससे यही प्रकट होता है कि वैदिक धर्म के राजा की निन्दा करके बौद्ध-धर्म के लेखकों का उद्देश उन्हें अधोम ठहराने का न था। मालविकाग्निमित्र-नाटक में पुष्यमित्र

के अश्वमेध करने का उल्लेख है, परन्तु पुष्यमित्र ने जो अत्याचार बौद्धों पर किया था उसकी चर्चा उसमें नहीं है। कालिदास के समय में जो अश्वमेधयज्ञ हुए होंगे उसी समय अथवा उसके थोड़े दिन बाद ही ये नाटक लिखे गये होंगे। इन नाटकों में यद्यपि शुङ्ग-काल की कथाओं का वर्णन है, तो भी समस्त नाटक़ में आदि से अन्त तक शुङ्ग-काल की परिस्थिति का चित्र नहीं है। शुङ्ग-वंश के राजा और उनके शासन-काल का वर्णन पुराणों में निम्नलिखित भाँति पाया जाता है—

| राजा | | शासनकाल |
|---|---|---|
| १—पुष्यमित्र— | शुङ्ग-वंश की स्थापना करनेवाला था, वह मौर्य-राजा बृहद्रथ का सेनापति था। उसने राजा के साथ विश्वासघात किया और उसे मार कर ईसवी सन् से १८५ वर्ष पहले स्वयं राजा बन बैठा। | ३६ वर्ष |
| २—अग्निमित्र— | कालिदास के मालविकाग्निमित्र-नाटक का नायक था। नाटक से ज्ञात होता है कि यह अपने पिता के शासन-काल में मालवा का सूबेदार था। | ८ वर्ष |
| ३—वसुज्येष्ठ— | कालिदास ने अपने नाटक में इसका उल्लेख नहीं किया है। | ७ वर्ष |
| ४—वसुमित्र— | यह अग्निमित्र का पुत्र था, जो धारिणी नामक स्त्री से उत्पन्न हुआ था। कालिदास ने इसके विषय में लिखा है कि इसने अपने पितामह के यज्ञ करने पर अश्व की रक्षा की और यवनों को पराजित किया। | १० वर्ष |
| ५—अंध्रक | ... ... ... | २ वर्ष |
| ६—पुलिंदक | ... ... ... | ३ वर्ष |
| ७—घोष | ... ... ... | ३ वर्ष |
| ८—वज्रमित्र | ... ... ... | ९ वर्ष |
| ९—भागवत | ... ... ... | ३२ वर्ष |
| १०—देवभूमि | ... ... ... | १० वर्ष |
| कुल १० राजा | | योग १२० वर्ष |

इस घराने में पुष्यमित्र बहुत पराक्रमी और वैभवशाली राजा हुआ है। यदि यह विक्रम माना जाय तो अग्निमित्र को कुमार मानने में हिचकिचाहट होना आश्चर्य नहीं। क्योंकि कुमार ने कार्तिकेय के समान कहीं भी पराक्रम दिखला कर अपनी धाक नहीं जमाई। हाँ, यह हो सकता है कि किसी कुमार नाम के राजा ने यज्ञ किया हो और उसका नाम अग्निमित्र पड़ गया हो। परन्तु अग्निमित्र नामक राजा के अद्वितीय पराक्रम के अभाव में कुमार की उपमा बिलकुल ही शोभा नहीं देती। कालिदास के रघुवंश में राम विष्णु के अवतार माने गये हैं। परन्तु पुष्यमित्र के समय में लोग राम को अवतारी पुरुष नहीं मानते थे। यदि यह मान लिया जाय कि इसके बाद ही लोग मानने लग गये हों और बहुत तेज़ी के साथ प्रसार होगया होगा, तो भी केवल अग्निमित्र के शासन-काल का समय जो केवल ८ ही वर्ष था, पूरा नहीं होता और उसके बाद के दो राजाओं का समय भी पूरा होगा कि नहीं इसमें भी सन्देह ही है। शुङ्ग-वंश के पाँच और छः नम्बर के राजा अंध्रक और पुलिंदक को विक्रम और कुमार मानना बिलकुल ही हास्यास्पद दिखाई देगा। तब कालिदास और कुमार राजा शुङ्ग-घराने के समय में न होकर इसके बाद के किसी भी समय में हुए होंगे?

ईसवी सन् की पहली शताब्दी के उत्तरार्द्ध में और दूसरी शताब्दी के पूर्वार्द्ध में अश्वघोष नामक कवि हुआ है। यह ब्राह्मणकुल में उत्पन्न हुआ था, किन्तु पीछे से बौद्ध-धर्म का अनुयायी हो गया था। इसने अपने सब ग्रन्थ संस्कृत-भाषा में लिखे हैं। उनमें से 'बुद्ध-चरित' नामक ग्रन्थ वाल्मीकीय रामायण की शैली पर लिखा

गया है। यद्यपि कालिदास ने अपने काव्य-ग्रन्थ इस शैली पर नहीं लिखे हैं, तो भी अश्वघोष ने अपने बुद्धि-चरित में राजपुत्र गौतम बुद्ध के पर्यटन के लिए बाहर जाने और उसके दर्शनार्थ नगरवासी स्त्रियों की दौड़-धूप का जो वर्णन किया है उसका अनुकरण कालिदास ने अपने कुमार-सम्भव ( सर्ग ७ श्लोक ५७-६२ ) और रघुवंश ( सर्ग ७ श्लोक ५-१२ ) में किया है। बुद्धचरित से स्पष्ट ज्ञात होता है कि अश्वघोष में बुद्ध-भिक्षुत्व की अपेक्षा कवित्व-शक्ति ही विशेष थी। बुद्ध-चरित में शृङ्गार और वीररस को स्थान कहाँ मिल सकता है? परन्तु अश्वघोष ने अपने काव्य-ग्रन्थों में इन रसों के समावेश में कमी नहीं की। कालिदास और अश्वघोष की भाषा-शैली अनेक अंशों में एक ही सी है। इससे प्रतीत होता है कि कालिदास ने अश्व-घोष के काव्य-ग्रन्थों का भली भाँति अध्ययन कर अपनी भाषा उन्हीं के टक्कर की बना ली होगी। अतएव कालि-दास का अश्वघोष के बाद ईसवी सन् की पहली शताब्दी में होना पाया जाता है।

कालिदास का अश्वघोष के बुद्धचरित से जिस प्रकार परिचय होता है, उसी प्रकार वेद, उपनिषद्, रामा-यण और महाभारत-काव्य तथा विष्णु-पुराण आदि पुराणों से भी होता है। वर्तमान समय के विष्णु-पुराण की प्रति से रामचन्द्र से पूर्व चार पीढ़ियों में दीर्घबाहु, रघु, अज और दशरथ का पता लगता है। किन्तु दक्षिणावर्तनाथ और अरुणाचलनाथ ने अपने ग्रन्थों में पुराने समय के विष्णुपुराण की प्रति से जो उद्धरण* किया है उसमें पूर्व की पीढ़ियों में खट्वाङ्ग दिलीप, रघु, अज और दशरथ का उल्लेख पाया जाता है। कालि-दास ने अपने रघुवंश में दिलीप, रघु, अज और दशरथ को ही माना है। बहुत सम्भव है कि यह विष्णु-पुराण के ही आधार से माना हो। क्योंकि रामायण में ययाति, नाभाग, अज और दशरथ ये चार पीढ़ियाँ लिखी हैं। कालिदास को सांख्य, योग, वेदान्त, वैद्यक, ज्योतिष और नाट्यशास्त्र का भी ज्ञान था। ज्योतिष और नाट्य-शास्त्र का विकास उज्जैन में ही शक-नृप-च्छाया के आश्रय में हुआ है। कालिदास की जन्मभूमि भी मालवा ही मालूम होती है। परन्तु मालवा के शक राजाओं का यज्ञ-याग करने का कहीं पता नहीं लगता। इसके अतिरिक्त वे शैव थे। कालिदास का रघुवंश-काव्य तो किसी वैष्णव राजा के लिए लिखा जाना चाहिए। अतएव कालिदास का यदि मालवा में ही होना माना जाय तो वे शक-राजा के शासन-काल के बाद हुए होंगे। ईसवी-सन् ३८८ के लगभग मालवा में शक-शासन का अन्त हो गया था।

कालिदास ने अपने मालविकाग्निमित्र-नाटक में भास कवि को अपने समय से पहले होना लिखा है। भास कवि के इस समय जो १३ नाटक उपलब्ध हैं उनसे स्पष्ट ज्ञात होता है कि उनमें से प्रतिमा, अविमारक, अभि-षेक, बालचरित और स्वप्नवासवदत्त नाटक कालिदास के पूर्ण परिचित थे। भास कवि ईसवी सन् की चौथी शताब्दी में हुआ है। इसके बाद यदि कालिदास का होना माना जाय तो इन्हें पाँचवीं या छठी शताब्दी में होना चाहिए। परन्तु छठी शताब्दी में तो कालिदास नहीं हुए। क्योंकि ईसवी सन् ४७३ का लिखा हुआ मन्दसोर में जो शिला-लेख है उसमें कालिदास की कितनी ही कल्पनायें पाई जाती हैं, यद्यपि इससे यह नहीं कहा जा सकता कि वे उस समय थे या नहीं। हाँ, यह अवश्य जान पड़ता है कि वे अपनी कवित्व-शक्ति से काफ़ी विख्यात हो चुके थे, अतएव ईसवी सन् की पाँचवीं शताब्दी इनका निश्चित काल ठहराया जा सकता है।

ईसवी सन् की पाँचवीं शताब्दी में हिन्दुस्तान में सबसे बड़ा साम्राज्य गुप्तों का था। भास कवि ने गुप्त-साम्राज्य के वर्णन में लिखा है कि "हिमालय और विन्ध्याचल से सागरपर्यन्त राज्य था।" गुप्तों की वंशावली और विक्रमोर्वशीय वंशावली दोनों यहाँ दी गई हैं। अब देखना है कि गुप्तवंश में कालिदास का कुमार राजा मिलता है या नहीं।

* "मूलकाद् दशरथः तस्माद्दिलीपः ततश्च विश्व-सहः तस्माच्च खट्वाङ्गो दिलीपः खट्वाङ्गाद् रघुरभवत् रघोरजः अजाद् दशरथः।"

| गुप्त-वंशावली | विक्रमोर्वशीय-वंशावली |
|---|---|
| १ गुप्त | १ ब्रह्मा |
| २ घटोत्कच | २ अत्रि |
| ३ चन्द्रगुप्त | ३ चन्द्र |
| ४ समुद्रगुप्त | ४ बुध |
| ५ चन्द्रगुप्त, विक्रमादित्य | ५ पुरुरवस, विक्रम |
| ६ कुमारगुप्त, महेन्द्रादित्य | ६ आयुस, कुमार |
| ७ स्कन्दगुप्त, विक्रमादित्य | |
| ८ पुरगुप्त | |
| ९ नरसिंहगुप्त, बालादित्य | |
| १० कुमारगुप्त | |

दोनों वंशावलियों में पाँचवाँ पुरुष विक्रम है जिसका पितामह चन्द्र और लड़का कुमार है। तब कालिदास का आश्रयदाता विक्रमपुत्र कुमार राजा अर्थात् कुमारगुप्त महेन्द्रादित्य ही होना चाहिए। इनका राज्यकाल सन् ४१३ से ४५५ है। इनके समय में उनका जो सिक्का चलता था उसमें एक ओर राजा का चेहरा और दूसरी ओर पंख फैलाये हुए नाचता हुआ मोर का चित्र था। विक्रमोर्वशीय में कुमार के मुख से जो यह श्लोक

> "यः सुप्तवान्मदङ्के शिखण्डकण्डूयनोपलब्धसुखः।
> तं मे जातकलापं प्रेषय मणिकण्ठकं शिखिनम् ॥"
>
> (५. १३)

कहलाया गया है। इसमें क्या मधुरता है, यह कुमारगुप्त के सिक्के के मोर के चित्र से भली भाँति टपकती है। कुमारगुप्त के समय में गुप्त-साम्राज्य का वैभव सबसे उच्च शिखर पर पहुँच चुका था। कालिदास ने कुमार के कुल की जो यह प्रशंसा की है कि "अतिशयिनि समाप्ता वंश एवाशिवस्ते" सो कुमारगुप्त के कुल के लिए अक्षरशः सत्य होती है। कुमारगुप्त के प्रपितामह ने साम्राज्य की स्थापना के कार्य को प्रारम्भ किया और पितामह अपने बाहुबल से उद्योग कर उसे आगे चलाते हुए समस्त भारत में अपना राज्य स्थापित कर दिग्विजयी हुआ। अपने आस-पास के राज्य अपने राज्य में शामिल कर लिये और दूर दूर के राजाओं से केवल कर वसूल कर उन्हें अपने अधीन किया। दिग्विजय कर आने के बाद समुद्रगुप्त ने अश्वमेध-यज्ञ किया। पुष्यमित्र के समय के बाद होनेवाला यह पहला अश्वमेध-यज्ञ था। समुद्रगुप्त का पुत्र और कुमारगुप्त का पिता चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य था। इसका उद्देश समस्त भारत में एकच्छत्र राज्य करने का था। अतएव इसने उज्जैन, गुजरात और काठियावाड़ से शक-राजा के शासन को हटा कर उसके राज्य की जड़ उखाड़ कर फेंक दी। और उसे अपने राज्य में मिला लिया (ईसवी सन् ३८८-३९०)। गुप्त-सम्राट् विद्या और कला के संवर्द्धक थे। उज्जैन ज्योतिष और नाट्य-शास्त्र का उस समय केन्द्र था। यद्यपि शक राजा का उच्छेद हो गया था, तथापि उसके आश्रय में विकास पानेवाले शास्त्र और कला के नष्ट करने का कोई कारण न था। उज्जैन अधिकार में आने के पहले ही गुप्त-सम्राट् को नाट्य-शास्त्र में पारङ्गत भास कवि मिल गया था और सम्राट् की संगीत-शाला में इनके नाटकों का प्रयोग होने लगा था। भास कवि का उदय समुद्रगुप्त के ही समय में हुआ था और अनुमानतः सन् ३९५ ईसवी में चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के समय में इनकी मृत्यु हुई थी। भास कवि ने चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य को अपने उत्तरकालीन नाटकों में 'राजसिंह' कहा है। स्वयं चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने ही अपने को कुछ सिक्कों में 'श्रीसिंह विक्रम' वर्णन किया है। भास कवि के बाद उसका पुत्र 'कविपुत्र' विशाखदत्त नाटककार हुआ। यह भी चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के दरबार में था। इसने मुद्राराक्षस-नाटक लिखा और भास के अपूर्ण चारुदत्त-नाटक को पूर्ण करके उसका नाम 'दरिद्र-चारुदत्त' रक्खा। इन दो नाटकों के अतिरिक्त लोगों का कथन है कि रामचरित पर उसका एक तीसरा भी नाटक है। विशाखदत्त के बाद कालिदास का नम्बर आता है।

शक-साम्राज्य के उच्छेद करने पर गुप्त-सम्राटों के साम्राज्य का विस्तार-कार्य बहुत करके अन्तिम अवस्था को पहुँच गया था। आन्दोलन और उथल-पुथल का

समय समाप्त होकर शान्ति स्थापित हो रही थी। सीमावर्ती राजाओं की चढ़ाइयों का भय राजधानी तथा उसके निकटवर्ती प्रदेशों के लिए बिलकुल न था। गुप्त-सम्राटों की राजधानी पाटलि-पुत्र नाम-मात्र के लिए थी। समुद्रगुप्त तो अधिकतर अयोध्या में रहता था और चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने उज्जैन जीतने के बाद उसे अपनी राजधानी बनाया था। साम्राज्य पर यदि संकट आने की संभावना कहीं से थी तो वायव्य-दिशा से। इसी दिशा की ओर इनका साम्राज्य चिनाव-नदी तक फैला हुआ था, जिसके भीतर ही भीतर उज्जैन, अयोध्या, पाटलिपुत्र शहर सैकड़ों मील के अन्तर पर थे। भास कवि ने भी गुप्त-सम्राट् के साम्राज्य के विस्तार का वर्णन इसी प्रकार किया है। लिखा है कि 'इमामपि महीं कृत्स्नां राजसिंहः प्रशास्तु नः।' परन्तु इतना विस्तार होने पर भी वही लिखता है—

"इमां सागरपर्यन्तां हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम्।
महीमेकातपत्राङ्कां राजसिंहः प्रशास्तु नः॥"

साम्राज्य का इतना विस्तार प्राप्त होने पर गुप्त-सम्राटों ने शान्ति के साथ ८० अस्सी वर्ष तक राज्य किया। इनका राज्य-काल दो-एक अपवादों को छोड़कर सब प्रकार से अच्छा माना जाता है। इस साम्राज्य का ईसवी सन् ४७० तक टिकना सिद्ध होता है। इसमें से पूर्वार्द्ध ४० वर्ष का समय तो महाकवि कालिदास सरीखे कवि उत्पन्न करने में समझना चाहिए। शेष ४० वर्ष उत्तरार्द्ध में इन कवियों ने अपना चमत्कार दिखलाया होगा। कालिदास ने जिस प्रकार अश्वघोष के बुद्ध-चरित का अध्ययन किया था, उसी प्रकार कौटिल्य के अर्थशास्त्र और वात्स्यायन के कामसूत्रग्रन्थों का भी अध्ययन किया था। कौटिल्य का अर्थशास्त्र आज जिस स्वरूप में पाया जाता है यह स्वरूप इसे ईसवी सन् की तीसरी शताब्दी के अन्त अथवा चौथी शताब्दी के प्रारम्भ में प्राप्त किया होगा। कामशास्त्र में कामसूत्र के कर्ता वात्स्यायन भास कवि के समकालीन थे। जान पड़ता है कि भास कवि के अविमारक-नाटक लिखे जाने के बाद वात्स्यायन ने अपना कामसूत्र-ग्रन्थ पूरा किया था। कौटिल्य के अर्थशास्त्र से कामसूत्र-ग्रन्थ रचने में सहायता मिली है। शान्ति और समृद्धि के समय मनुष्य की प्रवृत्ति सहज ही विलासिता की ओर जाती है। अतएव विलासिता की पोषक कला और साहित्य की वृद्धि उस समय में झपाटे के साथ हो रही थी। कला और भाषा ये विषय ऐसे हैं कि यदि इनका शास्त्रीय ज्ञान किसी को न भी हो, तो भी प्रत्येक का सम्बन्ध इनसे रहता ही है। शान्ति और समृद्धि के समय में समाज में संस्कृति के अनुसार मोहक और अश्लील स्वरूप प्राप्त होता है। वात्स्यायन ने अपना ग्रन्थ धर्म, अर्थ और काम के उपयुक्त लिखा है, जिसकी भाषा बहुत ही रूक्ष है। इसने अपने ग्रन्थ में विषय के सच्चे महत्त्व को पहचान कर अपनी स्वतः की इच्छा दबा रखकर धर्म, अर्थ और काम तीनों को योग्य स्थान दिया है। यही कारण है कि इसके विषयों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए साधारण मनुष्यों से लेकर राजा-महाराजा तक यदि उत्सुक हो जायँ तो आश्चर्य की कौन सी बात है। वात्स्यायन के कामसूत्र-ग्रन्थ से ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो जाने पर शृङ्गार-रस के काव्यों का निर्माण न होना अशक्य था।

चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य, कुमारगुप्त महेन्द्रादित्य और स्कन्दगुप्त विक्रमादित्य ये तीनों सम्राट् एक दूसरे के बाद हुए हैं। ये विष्णु के उपासक परम भागवत थे। परन्तु कौटिल्य के अर्थशास्त्र के 'देशदैवतसमाजोत्सवविहारेषु च भक्तिमनुवर्तेत' वचनानुसार नवीन जीते हुए देशों में वहाँ के राष्ट्रीय, देवता-विषयक और सामाजिक उत्सव तथा खेलों में बिना किसी भेद-भाव व संकोच के ये शामिल होते थे। भास कवि भी इन सम्राटों की भाँति विष्णु का उपासक था। इसके प्रायः सभी नाटकों में प्रारम्भ के मङ्गल-श्लोक विष्णु की स्तुति में लिखे गये हैं। हाँ, इसके प्रतिज्ञायौगंधरायण-नाटक में जो गुप्त के उज्जैन जीतने पर वहीं तैयार कर खेला गया था, मंगल-श्लोक में विष्णु की प्रशंसा न करके कार्तिकेय की की गई है। गुप्तवंश के मूल-पुरुषों में 'गुप्त' शब्द विष्णु का वाचक

है। कुमारगुप्त से पहले किसी भी गुप्त-राजा का नाम शैव-सम्प्रदाय के किसी भी उपास्य देवता के नाम पर नहीं पाया जाता। यह स्पष्ट है कि उज्जैन में महाकाल प्रसिद्ध होने के कारण अवन्तिका में शिव की उपासना का दौर-दौरा था। कुमार-गुप्त का जन्म उज्जैन के गुप्तों के अधिकार में आने के बाद ही उज्जैन में ही हुआ होगा और वहाँ के लोगों को खुश करने के लिए राजपुत्र का नाम ख़ास कर 'कुमार' (अर्थात् शिवपुत्र कार्तिकेय) रक्खा गया होगा। इस अनुमान से देखा जाय तो कुमारगुप्त का जन्म-काल सन् ३८९ निश्चित होता है और राज्यारोहण के समय इसकी अवस्था २३। २४ वर्ष की मालूम होती है। कुमारगुप्त के ज्येष्ठ पुत्र स्कन्दगुप्त का नाम भी कार्तिकेय का ही वाचक है। कुमारगुप्त की तरह स्कन्दगुप्त के सिक्के पर भी पीछे की ओर मोर की आकृति बनी हुई है।

बहुत प्राचीन काल से सम्राट्-पद का गौरव प्रायः मगधदेश के ही राजा को प्राप्त होता था। महाभारत से भी प्रकट होता है कि पांडवों के राजसूय-यज्ञ करने से पहले मगधेश्वर जरासंध ही सम्राट् था। ईसवी सन् से पहले जो मौर्य-सम्राट् हुए हैं वे भी वास्तव में मगधदेश के ही राजा थे। यही क्रम गुप्त-सम्राटों का भी था। मौर्य-सम्राट् कदाचित् शूद्र-जाति के अथवा बौद्ध-धर्मानुयायी थे। यही कारण है कि उन्होंने कभी यज्ञ-याग नहीं किये। परन्तु इनके बाद शुङ्ग-वंश के पुष्यमित्र ने यज्ञकार्य को फिर प्रचालित किया। और गुप्त-सम्राटों ने तो इस यज्ञ-कार्य के करने में हद कर दी। कहते हैं कि कदाचित् गुप्तों की महत्वाकांक्षा—

"राजसूये नृपाञ्जित्वा जरासन्ध इवानय।" (भास)

इस प्रकार बतलाई गई है। तो भी यज्ञ-याग करने में उनकी भावना सरासर निम्नलिखित श्लोक से ध्वनित होती है—

"इक्ष्वाकुशर्यातिययातिराम-
मान्धातृनाभागनृगाम्बरीषाः।
एते सकोशाः पुरुषाः सराष्ट्रा
नष्टाः शरीरैः क्रतुभिर्धरन्ते॥" (भास)

इस भावना का "हुतं च दत्तं च तथैव तिष्ठति" (भास) यह पारमार्थिक और "मरावें परी कीर्ति रूपें उरावें" (रामदास) अर्थात् मर भी जायँ तो भी कीर्ति छोड़ जायँ, यह ऐहिक स्वरूप कहा जायगा।

कुमारगुप्त की विद्यार्थी-अवस्था मालवा में ही बीती। ये कालिदास के समवयस्क अथवा कालिदास से अवस्था में कुछ बड़े थे। संभव है कि इन दोनों की परस्पर पहचान विद्यार्थी-दशा में ही हुई हो। कालिदास के पिता-पितामह आदि भी सम्पत्तिवान् थे और बहुत संभव है कि यह कुमारगुप्त का सहपाठी भी रहा हो। क्योंकि इसका विद्याभ्यास संस्कृतवाले विद्यार्थियों की तरह एकांगी नहीं मालूम होता।

वेद पढ़ते समय जब कालिदास पाठशाला में था तब अपनी सारी शक्ति रटने में लगा देता था। यही कारण है कि उस समय मनोहर कविता करने में असमर्थ था। उस समय के राजकुल के बालकों का भी विद्याभ्यास यद्यपि एकांगी न था, तो भी उन्हें रट्टू बनाने की चाल न थी। धर्मशास्त्र, राजनीति, काव्य, नाटक, महाभारत आदि इतिहास, रामायण आदि पुराण, अनेक लिपियाँ, अनेक भाषायें, शिल्पशास्त्र, धनुर्विद्या, शस्त्रविद्या, गायन-वादन और चित्रकला, घोड़े और हाथी की सवारी और व्यायाम करना राजकुमारों की शिक्षा के प्रधान अङ्ग थे। कालिदास में अनेक विषयों का ज्ञान, ललित कलाओं के विषय का प्रेम, बहादुरी और खेलों की जानकारी आदि गुण सिद्ध करते हैं कि इनका विद्याभ्यास किसी राजकुमार के ही साथ हुआ होगा। अब हो सकता है कि इनके साथ पढ़नेवाला राजकुमार कदाचित् कुमारगुप्त ही हो अथवा उससे भी छोटे राजघराने का कोई दूसरा ही राजपुत्र क्यों न हो। विद्याभ्यास कैसे ही या किसी के ही साथ क्यों न हुआ हो, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि कालिदास का आश्रयदाता कुमारगुप्त ही था। विद्वान् और कवियों से श्रद्धापूर्वक परामर्श लेने की आदत तो कुमारगुप्त में

युवराज की दशा से ही बहुधा देखने में आती है। यही कारण है कि गद्दी पर बैठते ही—

"सोऽयं सम्प्रति चन्द्रगुप्ततनयश्चन्द्रप्रकाशो युवा।
जातो भूपतिराश्रयः कृतधियां दिष्ट्या कृतार्थश्रमः।"

इस भाँति के धन्यवाद-पूर्ण उद्गार निकल सके।

कुमारगुप्त ने अपने पितामह के समान स्वयं भी अश्वमेध यज्ञ किया। कालिदास का मालविकाग्निमित्र-नाटक इसी अश्वमेध के समय अथवा इसके कुछ ही दिन बाद लिखा गया होगा। इस नाटक में कालिदास ने अपने समय की घटनाओं का समावेश इस होशियारी के साथ किया है कि वे एकाएक नज़र नहीं आतीं। कालिदास ने अपने नाटक में सबसे पहली बात जो की है वह यह है कि कथायें तो प्राचीन काल की ली हैं और अपने समय के राजा के कृत्य पुष्यमित्र और अग्निमित्र इन दो व्यक्तियों में विभक्त कर दिये हैं। नाटक में पुष्यमित्र का अश्वमेध और अग्निमित्र की प्रणय-लीला ये दोनों प्रसंग कालिदास के ही समय में एक ही व्यक्ति कुमारगुप्त के ही जीवन में होना संभव है। अर्थात् उसने यज्ञ भी किया और उसी समय के लगभग अपना एक और विवाह किया। इस विवाह का रानियों ने विरोध किया था। रानियों का विरोध वास्तव में इसलिए न था कि राजा नवीन विवाह करता है, बरन नाटक से पता चलता है कि राजा जिस स्त्री से विवाह करता था वह राजकन्या न थी, वह रानियों के कुल की एक साधारण स्त्री थी। कुमारगुप्त के कुछ सिक्के गुप्त-संवत् ११९ के मिले हैं। वे उसके अश्वमेध के समय के माने जायँ तो सन् ४३८ ईसवी के लगभग अश्वमेध का होना प्रतीत होता है। उस समय कुमारगुप्त की अवस्था ४८ या ४९ वर्ष की थी और उसका पुत्र स्कंदगुप्त १९।२० वर्ष का था। तब नाटक में वसुमित्र की भाँति यज्ञ के अश्व की रक्षा का काम युवराज स्कन्दगुप्त को सौंपा जाना संभव जान पड़ता है। कुमारगुप्त के शासन-काल में पश्चिम की ओर सिन्धु-देश तक दिग्विजय होना मालूम होता है। क्योंकि नाटक में यज्ञ के अश्व को सिन्धुनद के दक्षिण किनारे पर फिरते हुए जिस यवन के हरण करने की बात लिखी है वह यवन शक था। गुप्तों ने इसी शक से मालवा, गुजरात और काठियावाड़-प्रान्तों को जीतकर इसे यहां से निकाल दिया था। यह शक-राजा सिन्धु-प्रान्त में जाकर रहने लगा था और गुप्तों का इसी शत्रुता के कारण उनके यज्ञ के घोड़े का हरण कर युद्ध के लिए आह्वान किया था। याद होता है कि नाटक में कथायें पुष्यमित्र के समय की होने के कारण कालिदास को अपने नाटक में उस समय के शक को यवन लिखना पड़ा है। मालविकाग्निमित्र-नाटक का रचना-काल यदि ईसवी सन् ४३९,४० माना जाय तो कुमारसंभव इससे भी पहले लिखा गया था। अतएव ईसवी सन् ४३० से ही कालिदास के उच्च कविता करने के काल का अनुमान होता है। इस काल से पहले भी कालिदास कविता करते थे, परन्तु वह उच्च कोटि की न होती थी। आज जिनके नाम पर अनेक काव्यग्रंथ पाये जाते हैं और जिन्हें लोग अनुमान करते हैं कि ये उनके लिखे न होंगे उनमें भी कुछ सचमुच ही कालिदास के लिखे होना संभव है। कवि में कवित्व-शक्ति का पूर्ण विकास होने के पूर्व ही वे काव्य रचे गये, अतएव वे कालिदास के लिखे हुए प्रतीत नहीं होते, इस बात की यदि परीक्षा ही करनी हो तो केवल कविता की रचना और कल्पना के विचार करने से ही काम न चलेगा। इसके लिए यह देखना आवश्यक है कि वे गुप्तकालीन हैं या नहीं। यदि वे गुप्तकालीन सिद्ध हो जायँ तो उनका रचयिता कालिदास को ही मानना पड़ेगा। कालिदास के काव्य-ग्रंथों की परीक्षा इसी दृष्टि से करनी चाहिए। इस कसौटी से जो कवितायें कालिदास की ठहरेंगी उनसे कालिदास की कवित्व-शक्ति का विकास किस किस प्रकार होता गया है, यह जानने में विशेष सुविधा होगी। साम्प्रत जो काव्य निःसंशय कालिदास के लिखे हुए माने जाते हैं उनमें से कोई भी काव्य उनकी कविता की बाल्यावस्था का परिचय नहीं देता। कालिदास-सरीखे महाकवि की कविता की बाल्यावस्था का होना संभव नहीं अथवा कविता लिखने के लिए कलम उठाते ही एक

बार ही "अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा" लिखने लग जाना समझ लेना बिलकुल ग़लत होगा।

कुमारगुप्त के शासन-काल में जो काव्य-ग्रंथ कालिदास ने लिखे हैं वे कुमारसंभव, मालविकाग्नि-मित्र, विक्रमोर्वशीय, मेघदूत और अभिज्ञानशाकुन्तल हैं। यद्यपि विक्रमोर्वशीय नाटक में कालिदास ने विक्रम को अपने मूलपुरुष से पाँचवाँ और उसी के पुत्र कुमार के समय की वस्तुस्थिति दिखलाई है, तो भी उस नाटक के लिए जो पुरूरवा की कथा उन्होंने पसन्द की उससे कुमारगुप्त के पिता चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के वीर बाने का चित्र खींचना असंभव हो गया। अतएव विक्रमो-र्वशीय में विक्रम का जैसा चित्र चाहिए न खींच कर उनके नाम के नीचे उनके पुत्र कुमारगुप्त महेन्द्रादित्य का सच्चा चित्र अंकित किया गया है।

'पुरः प्रतिहतं शैले स्रोतः स्रोतोवहो यथा' की भाँति बेचारा कुमारगुप्त भी कथाओं की अड़चन से कालि-दास के तीन नाटकों में से दो नाटकों में द्विविधा में पड़ गया है। हमें तो यह भी संशय होता है कि मेघदूत खण्डकाव्य उसी समय रचा गया होगा जब स्वयं कवि पर भी सम्राट् का कोप हुआ होगा और जिसके कारण कवि स्वयं नागपुर के निकट रामटेक पर्वत पर एक वर्ष तक जाकर रहा होगा। अथवा यह भी हो सकता है कि सम्राट् की नाराज़ी कवि पर न होते हुए किसी तरुण अधिकारी पर हुई हो और उस दशा का लक्ष्य करके कालिदास ने यह काव्य लिखा हो अथवा उपर्युक्त दोनों घटनायें न हुई हों और कवि ने अपनी कल्पना से ही इसे लिखा हो। अभिज्ञानशाकुन्तल में दुष्यन्त के रूप में कुमार-गुप्त का तृतीय बार चरित्र चित्रण किया गया है। इस नाटक में वह राजा महेन्द्र का मित्र दिखलाते हुए उसे महेन्द्र की उपमा भी दी गई है। कुमारगुप्त को महेन्द्रादित्य कहलाने का गौरव प्राप्त हुआ था और इसी लिए नाटक में उसे इन्द्र का मित्र और इन्द्र के समान ही पराक्रमी दिखलाया जाना स्वाभाविक था। कुमार-गुप्त के स्कन्दगुप्त और पुरगुप्त नामक दो पुत्र थे। स्कन्दगुप्त अपने आजा के समान ही सैनिक बाने का था। सिंहासन पर बैठने के बाद वह अपने आजा के समान 'विक्रमादित्य' कहलाने लगा। पुरगुप्त मुल्की इन्तज़ाम में दक्ष था। यह स्कन्दगुप्त के बाद गद्दी पर बैठा। स्कन्दगुप्त के शासन-काल में हूण लोगों के साथ युद्ध जारी रहने के कारण ख़ज़ाने में द्रव्य का अभाव होगया था और देश की स्थिति बिगड़ गई थी; किन्तु पुरगुप्त ने केवल पाँच वर्ष की ही अवधि में उसे सुधार लिया। अभिज्ञानशाकुन्तल में सर्वदमन नामक व्यक्ति स्कन्दगुप्त है या पुरगुप्त, इस विषय में शंका उत्पन्न होती है। नाटक में—

"ययातेरिव शर्मिष्ठा भर्तुर्बहुमता भव।
सुतं त्वमपि सम्राजं सेव पूरुमवाप्नुहि॥"

इस प्रकार काश्यपमुनि ने शकुन्तला को जो आशी-र्वाद दिया है उससे सर्वदमन के पुरुगुप्त का होना अनु-मान होता है। परन्तु सर्वदमन की लीलाओं से उसको स्कन्दगुप्त ही होना संभव है। नाटक लिखने के समय दोनों ही राजपुत्र तरुणावस्था को प्राप्त हो चुके थे और उन दोनों में से प्रत्येक की विशेषता कालिदास के ध्यान में भली भाँति आ सकती थी। अतएव सम्भव है कि सर्वदमन के रूप में इन दोनों राजपुत्रों के चरित्र का एकीकरण किया हो।

कुमारगुप्त के राज्यकाल में धन-धान्य की विपुलता और शान्तता के कारण कला-कौशल और साहित्य की अभिमानास्पद वृद्धि हुई थी, किन्तु साथ ही साथ जनता में विलासिता के बढ़ने के कारण राष्ट्रीय सामर्थ्य का ह्रास हो गया था। सम्राट् के दरबार में कितनी ही चहल-पहल क्यों न हो और बन्दी जन कितना ही यशोगान क्यों न करते हों, किन्तु समुद्रगुप्त और चन्द्रगुप्त विक्रमा-दित्य के समय की युद्ध-वीरता प्रजा में न थी। कुमार-गुप्त की धारणा थी कि चारों ओर सुख और शान्ति के होने पर ऐश और आराम में समय व्यतीत करना ही राजाओं के लिए गौरव की बात है। और यथा राजा तथा प्रजा के न्याय से प्रजा ने भी इसी बात का अनुकरण किया। सङ्कटावस्था से मुक्त होकर देश कितना ही

समृद्धिशाली क्यों न हो, राजा का कर्तव्य है कि वह सदैव 'राजगुणोपेत' रहे; क्योंकि भास कवि के कथनानुसार "प्रायेण हि नरेन्द्रश्रीः सोत्साहैरेव भुज्यते" ऐसी ही अवस्था रहती है। कुमारगुप्त ने इस बात की ओर लापरवाही की, जिसका परिणाम यह हुआ कि ईसवी सन् ४५० के लगभग पुष्यमित्र (सम्भवतः ईरानी थे) नामक लोगों से युद्ध छिड़ गया और गुप्तसम्राट् की विशाल सेना की हार हुई। यही कारण था कि इसी समय गुप्तसाम्राज्य के विनाश का काल आ पहुँचा था; परन्तु सौभाग्य से स्कन्दगुप्त सा पराक्रमी राजपुत्र होने के कारण यह विपत्ति टल गई। उस वीर ने अपने वंश का नाम उज्ज्वल रखने के लिए कठिन परिश्रम किया। समय पड़ने पर केवल पृथ्वी पर ही शयन कर भूख-प्यास की परवा न कर बड़ी वीरता के साथ पुष्यमित्रों को मार भगाया।

कुमारगुप्त ईसवी सन् ४५५ के प्रारम्भ में स्वर्गवासी हुआ और उसी साल के वसन्त-ऋतु में स्कन्दगुप्त गद्दी पर बैठा। सिंहासन पर बैठे कुछ ही समय बीता था कि गुप्तसाम्राज्य पर दूसरा सङ्कट आ पड़ा। हूण लोगों ने चढ़ाई की। स्कन्दगुप्त ने इनसे भी लोहा बजाया और हूण-सेना को परास्त किया। ज्ञात होता है कि कालिदास ने अपना अन्तिम काव्य (रघुवंश) स्कन्दगुप्त के समय में ही लिखना प्रारम्भ किया होगा। वह स्वयं शिवभक्त था; परन्तु विष्णुउपासक सम्राट् को प्रसन्न करने के लिए उसने रघुवंश की रचना की यह स्पष्ट है। इस काव्य में कालिदास ने सूर्यवंशी राजाओं के विषय में जो बातें विस्तारपूर्वक लिखी हैं उनका पता सूर्यवंशी राजाओं-सम्बन्धी अन्य ग्रन्थों से बिलकुल नहीं लगता। कालिदास ने ये बातें कहाँ से प्राप्त कीं इसका लोगों को बड़ा आश्चर्य मालूम होता है। उनके बहुत से अन्ध भक्त यहाँ तक कहते हैं कि ये सब भगवान् कालिदास की अद्भुत कल्पना-शक्ति का प्रताप था। उनकी राय में कालिदास साक्षात् ब्रह्मदेव ही हैं। साथ ही साथ वे समझते हैं कि अश्वघोष ने कालिदास की भाषा और कल्पना चुराई, कौटिल्य ने निःसन्तानों की सम्पत्ति सरकार में जमा करने का नियम शाकुन्तल-नाटक में से ही लिया, वात्स्यायन ने कुमारसम्भव के आधार पर अपना कामसूत्रग्रन्थ रचा और भास ने तो कालिदास के ग्रन्थों में से अच्छी अच्छी बातें अपहरण कर अपने नाटक रचे। ऋग्वेद का यह अहोभाग्य समझना चाहिए कि कालिदास के विक्रमोर्वशीय-नाटक को पढ़कर उसके दसवें मण्डल का पंचानवेवाँ सूक्त रचने का लांछन वैदिक ऋषियों पर नहीं लगाया जाता। इन अन्धभक्तों की इस प्रकार की समझ को 'श्रद्धा-' शब्द से गौरवान्वित कर यहीं छोड़ देना अच्छा होगा।

सूर्यवंशीय राजाओं की बहुत सी बातें जो अन्य ग्रंथों में नहीं दी हैं वे केवल रघुवंश में ही पाई जाती हैं। उन बातों को यदि सचाई से देखें तो सूर्यवंशीय राजाओं की नहीं हैं, वरन गुप्तघराने के राजाओं की हैं। गुप्तवंश छत्रपति शिवाजी के समान 'गोद्विजप्रतिपालक' था। इस वंश के सामंतों का जो सम्राट् हुआ वह पहला चन्द्रगुप्त था। यह पहले एक नगरी और उसके आसपास के ही प्रदेश का धनी था। इसकी रानी कुमारदेवी मगधराज की पुत्री थी, जो अपने बाप की सम्पत्ति की अधिकारिणी थी। इसका विवाह ज्यों ही इसके साथ हुआ कि कुमारदेवी के बाप का राज्य चन्द्रगुप्त को मिल गया, जिसके प्राप्त होने से यह सामंतों का राजा हो गया। इसके बाद इसने आस-पास के राजाओं से लड़ाई कर अपना राज्य बढ़ाना प्रारम्भ किया और यह राजा क्या महाराजाधिराज उर्फ़ सम्राट् बन गया। गुप्त-संवत् का चलानेवाला यही हुआ है। कालिदास ने अपने रघुवंश में दिलीप और सुदक्षिणा के चित्र अङ्कित करते समय चन्द्रगुप्त और कुमारदेवी के नमूने आगे रक्खे हुए दिखलाये हैं। समुद्रगुप्त के दिग्विजय में कुमारगुप्त का दिग्विजय और स्कन्दगुप्त की बड़ी बड़ी नामी लड़ाइयाँ मिलाकर तथा गुप्तों का जहाँ दूसरे राष्ट्रों से सम्बन्ध था वे भी देश उस दिग्विजय में शामिल किये। और इन सबका जो काव्यमय वर्णन तैयार हुआ वह मानो रघुराजा के दिग्विजय का वर्णन है। हाँ केवल

इन्दुमती की मृत्यु का प्रसंग कालिदास ने कहीं दूसरी जगह से लिया है। यह उनकी ख़ास कल्पना भी नहीं है, क्योंकि इस प्रसंग की एक झलक भास कवि ने भी अपने 'प्रतिमा' नाटक में दिखलाई है। गुप्तवंश का इतिहास जितना अधिक प्राप्त होगा, उतना ही रघुवंश की रचना पर अधिक प्रकाश पड़ेगा। हाँ, इतना हम अब ठीक ठीक कह सकते हैं कि गुप्तवंश में जो प्रसंग क्रम क्रम से आते गये उनका वर्णन कालिदास ने यथाक्रम नहीं किया। पहली पीढ़ी के प्रसंग पीछे और पीछे की पीढ़ी के प्रसंगों का समावेश पहले किया है। कालिदास ने स्कन्दगुप्त के राज्य-काल के प्रारम्भ में ही रघुवंश का लिखना प्रारम्भ कर दिया होगा और स्कन्दगुप्त के हूणों को परास्त करने के समय तक इस काव्य के तीन सर्ग तैयार हो गये होंगे। रघुवंश में कुल १२ सर्ग हैं उनके लिखने में कालिदास को बारह वर्ष से अधिक समय लगना असम्भव है। इस अनुमान से देखते हुए ईसवी सन् ४६७-६८ कालिदास का मृत्युकाल माना जायगा। मृत्यु के समय उनकी अवस्था लगभग पचहत्तर वर्ष की रही होगी।

कालिदास की आयु के अन्तिम वर्ष स्कन्दगुप्त विक्रमादित्य के शासनकाल में बीतने के कारण वह विक्रमादित्य के दरबार का कवि था। इस दन्त-कथा में ऐतिहासिक सत्यता पाई जाती है। सिर्फ़ उसका मुख्य आश्रयदाता विक्रमादित्य न होकर महेन्द्रादित्य था, यह बात ध्यान में रखनी चाहिए। गुप्तों के यहाँ कालिदास का दरबारी कवि की हैसियत से रहना ठीक नहीं जान पड़ता, क्योंकि यदि ऐसा ही होता तो समुद्रगुप्त के हरिषेण कवि के समान वह भी अपने स्वामी की स्तुति का स्तोत्र-पाठ करता। परन्तु वह ऐसी खुल्लम-खुल्ला प्रशंसा नहीं करता था। संसार में फैले हुए सौन्दर्य के उत्तमोत्तम कणों को एकत्र कर तिलोत्तमा के समान सौन्दर्य की पुतली निर्माण करनेवाले विश्वकर्मा का मार्ग कालिदास ने अनुसरण किया था। अतएव उसके लिखे हुए ग्रन्थ शुद्ध काव्यग्रन्थ हैं। इन काव्यग्रन्थों में उसने अपने आश्रयदाताओं की कृतियों का वर्णन किया है। परन्तु सब प्रसङ्गों का वर्णन न कर केवल काव्य के पोषक प्रसङ्गों को ही उसने स्थान दिया है। तात्पर्य यह कि गुप्तों के चरित्र को अपना काव्य अर्पण न कर उनके चरित्र के चुने हुए प्रसङ्ग अपने काव्य में भर दिये हैं। इस वृत्ति का यह कवि केवल दरबारी कवि रह कर अपना जीवन बिताता था, यह बात ठीक नहीं जान पड़ती। उसका विद्याभ्यास किसी राजवंश में अथवा किसी राजवंशीय पुरुष के साथ हुआ होगा, इसका वर्णन हम पहले कर चुके हैं। इस प्रकार शिक्षा-प्राप्त मनुष्य गुप्तों के यहाँ केवल आश्रित कवि रहने की अपेक्षा किसी एक बड़े अधिकार के स्थान पर रहा होगा। कालिदास उत्तर- हिन्दुस्तान के प्रदेशों से परिचित मालूम होता है, क्योंकि बहुत से प्रदेश गुप्त-राज्य में ही सम्मिलित थे। कालिदास ने रघुवंश में दक्षिण-भारत के प्रदेशों का भी वर्णन किया है; किन्तु उसका वहाँ स्वयं जाना प्रतीत नहीं होता। दरबारी काग़ज़-पत्रों से समुद्र-गुप्त के दिग्विजय का हाल जानकर उसने इन प्रदेशों का वर्णन किया होगा। उत्तर-भारत के भी प्रदेशों का वर्णन करते समय उसने बहुत सी जगह इसी मार्ग का अवलम्बन किया होगा। मालवा, हिमालय और उसके आस-पास के देश उसके प्रत्यक्ष परिचय के जान पड़ते हैं। मालवा उसकी जन्मभूमि ही थी; परन्तु हिमालय और उसके आस-पास के प्रदेश के बारे में यह नहीं कहा जा सकता। इन प्रदेशों में वह कुमारगुप्त के शासनकाल के प्रथम पन्द्रह-सोलह वर्षों में किसी उच्च अधिकारी की हैसियत से रहा होगा। साम्राज्य के निकट काश्मीर-सरीखे स्वतंत्र देश में गुप्तों के वकील की हैसियत से, नैपाल अथवा कामरूप-सरीखे मांडलिक संस्थानों में सार्वभौम राजा के प्रतिनिधि की हैसियत से अथवा गुप्तों के ही राज्य में सूबेदार की हैसियत से, इनमें से किसी अथवा प्रत्येक स्थान पर कालिदास ने काम किया होगा। यह बात अधिक संभव जान पड़ती है। इस अवधि में उसने सृष्टि-निरीक्षण भली भाँति किया होगा। ईसवी सन् ४३० के लगभग उसकी नियुक्ति दरबार में किसी अधिकारी के पद पर हुई होगी। यहाँ पर काम अधिक न होने के

कारण वह अपना अधिक समय काव्य की ओर लगा सका, और उत्तमोत्तम काव्य और नाटकों की रचना की। "मेघदूत" का यक्ष यदि कालिदास ही माना जाय तो ऐसा अनुमान होता है कि उसका निवासस्थान गुप्त-सम्राटों के राज्यभवन के उत्तर दिशा में होगा। और वह स्वयं गुप्तों के निकटवर्ती सरदारों में से एक सरदार रहा होगा। ऐसा कहना पड़ेगा कि हिन्दुस्तान में जितने राजवंश हुए हैं उनमें से गुप्तवंश अनेक दृष्टि से अद्वितीय था। इस वंश के राज्य-काल में कालिदास के समान अद्वितीय महाकवि का होना एक अद्भुत योग समझना चाहिए। कालिदास की अपने महेन्द्रमित्र (महेन्द्रादित्य) के मुख से प्रकट की हुई शुभेच्छा की पुनरावृत्ति कर हम प्रिय पाठकों से विदा होते हैं।

"प्रवर्ततां प्रकृतिहिताय पार्थिवः।
सरस्वती श्रुतमहतां महीयताम्।"*

अभिज्ञानशाकुन्तलम्

—सिद्धिनाथ दीक्षित

* मराठी 'रत्नाकर' से अनुवादित।

# परिणय

मथुरा
२५-३-२८

(१)

"मोहन बाबू,

हम लोग आज-कल एक विशेष संकट में पड़ गये हैं। आप यदि कृपा करके शीघ्र ही चले आते तो हमें बड़ा आश्वासन मिल जाता। विशेष लिखने का अवसर नहीं है। मेरा अनुरोध टालिएगा नहीं। आशा है, आप सकुशल और सानन्द होंगे।

लीला।"

इस पत्र को मैंने कई बार पढ़ा और ख़ूब ध्यान से पढ़ा, मुझे कोई नवीनता नहीं मालूम पड़ी। वही सुन्दर और टेढ़े टेढ़े अक्षर थे, और वही लिखावट थी।

लीला की लिखावट से मैं ख़ूब परिचित था। उसके पत्र भी पढ़ने का कई बार अवसर मिला था, किन्तु मेरे नाम उसका यह पहला पत्र था। इसके पहले उसके जो भी पत्र मैंने पढ़े थे वे उसके भाई विनय के नाम लिखे गये थे और विनय की आज्ञा से ही मैंने उन्हें पढ़ा भी था।

विनय का मकान था मथुरा में। उसके पिता वहाँ के एक सुप्रसिद्ध रईस थे। बड़ा ऊँचा और लम्बा-चौड़ा उसका मकान था, द्वार पर पहरा रहता, नौकर-चाकर, मोटर, गाड़ी-घोड़ा आदि किसी बात की कमी न थी।

जिस वर्ष मैंने इलाहाबाद-यूनीवर्सिटी में प्रवेश किया था, उसी साल वह भी थर्ड इयर में भर्ती हुआ था। मैं 'आर्ट' पढ़ता था और वह साइंस।

होस्टल के अन्य विद्यार्थियों की अपेक्षा हम दोनों में अधिक घनिष्ठता थी। साथ ही हम लोगों में सजातीयता भी थी, अतएव छुट्टियों में एक दूसरे के यहाँ आया-जाया करते थे। मेरी आर्थिक अवस्था विनय की-सी नहीं थी। मेरी जैसी स्थिति के कितने ही लोग उसके पिता के नौकर थे, परन्तु व्यवहार में उसने कभी ऐसा अवसर नहीं आने दिया कि निर्धनता के कारण मैं अपने को उससे हीन समझूँ। जब कभी मैं उसके यहाँ जाता, उसके साथ ही खाता और उसके साथ ही एक कमरे में सोता, घर में मुझसे किसी से परदा न था, सभी घर का-सा मेरे साथ वर्ताव करते। इस प्रकार लीला से मैं भली भाँति परिचित हो गया था। वह बड़ी ही सुशील तथा शान्त लड़की थी।

उन दिनों विनय घर गया था। इलाहाबाद से कानपुर तक हम दोनों साथ साथ आये थे। कानपुर में मैं अपने घर पर रह गया और विनय मथुरा चला गया। तब से उसका कोई पत्र नहीं मिला। परन्तु आज लीला को एकाएक पत्र लिखने की आवश्यकता कैसे पड़ी? तिस पर उसे विशेष क्लेश है। यदि कोई ऐसी बात थी तो विनय ने मुझे क्यों नहीं लिखा? कहीं वह बीमार तो नहीं है, बहुत सोच-विचार करने पर भी कुछ निर्णय नहीं कर सका।

मथुरा-एक्सप्रेस पर सवार होकर दूसरे ही दिन विनय के घर पर पहुँच गया। सदा की भाँति उस

दिन उसके द्वार पर रौनक़ नहीं थी। सिपाही लोग उदास बैठे थे। न तो कोई किसी से बातचीत करता था और न किसी के मुख पर प्रसन्नता की रेखा थी। सभी निस्तब्ध थे।

ताँगा खड़ा होते ही एक आदमी ने दौड़कर मेरा बिस्तर उतार लिया, और फिर दौड़कर ही मेरे आने की सूचना देने के लिए भीतर गया। कुछ ही क्षणों के बाद विनय के पिता बाबू रमानाथ द्वार पर आये और करुण नेत्रों से मेरी ओर देखने लगे। उन्हें प्रणाम करके मैंने उत्कंठित भाव से पूछा—घर का क्या हाल है?

आँखों में आँसू भरकर रुँधे स्वर से रमानाथ बाबू ने उत्तर दिया—हाल क्या है बेटा, जिस दिन से विनय घर से निकला है, उसकी मा मृत्यु-शय्या पर पड़ी है, घड़ी घड़ी की अब वह मेहमान हो रही है।

"विनय घर से निकला है!"

"हाँ, क्या तुम्हें नहीं मालूम है?"

"जी नहीं, मैंने तो कुछ भी नहीं सुना।"

"मैं तो समझता था कि वह तुम्हारा अन्तरङ्ग मित्र है, तुमसे बताये बिना वह कोई काम नहीं करता!"

"यही तो मेरी भी धारणा थी; किन्तु इस बार मेरी यह धारणा मिथ्या प्रमाणित हुई। ख़ैर, वे कब से निकले हैं?"

"आज दस-बारह दिन हुए।"

"इसका कोई कारण भी तो होगा?"

ज़रा देर सोचकर उन्होंने उत्तर दिया—मुझे तो मालूम नहीं।

मैंने गम्भीर भाव से कहा—विनय को किसी बात की चिन्ता तो थी नहीं। फिर उन्हें भागने की क्यों सूझी?

उन्होंने ज़रा सा अप्रसन्न भाव से कहा—मैं समझता था कि तुम्हें उसके सम्बन्ध की सारी बातें ठीक ठीक मालूम होंगी।

"जी नहीं, उन्होंने कभी ऐसी किसी बात की चर्चा तक नहीं की। ख़ैर, वे तो अब गये ही हैं, मा जी को कौन सी बीमारी है?"

"कोई ऐसी बीमारी नहीं है, परन्तु मालूम होता है कि अब उनके दिन पूरे हो चले।"

मैंने अधीर भाव से कहा—मुझे ज़रा उनके पास तक ले चलिए। मैं उन्हें देखना चाहता हूँ।

ज़रा सा हिचकिचाहट का भाव दिखलाते हुए उन्होंने कहा—अच्छा, चलो।

कमरे में प्रवेश करके देखा, शय्या पर पड़ी हुई माता की क्षीण मूर्ति उत्सुक-भाव से पुत्र के आने का मार्ग देख रही थी। मेरे कमरे में प्रवेश करते ही उन्माद के स्वर में वे बोल उठीं—आगया, आगया बेटा मेरा।

मैंने तुरन्त ही उत्तर दिया—हाँ मा, मैं आगया हूँ मा, तुम घबराती क्यों हो?

माता ने आँखें खोल दीं। उनके पीले कपोल पर सुख और शान्ति की रेखा झलकने लगी। उन्होंने कहा—आ बेटा, मेरे पास आ। मा को छोड़कर कहाँ चला गया था मेरे लाल?

शय्या के पास माता के चरणों के समीप मैं बैठ गया। मैंने कहा—अब कहीं न जाऊँगा मा।

रोगिणी को आश्वासन मिला। मैं उनकी सेवा करने लगा। उन्हें नींद आगई। बाबू रमानाथ कमरे से चले गये। मैं चुपचाप वहीं बैठा रहा। निद्रा भंग होते ही माता ने फिर पुत्र की खोज की। मैंने जब मा कहकर पुकारा तब फिर वे शान्त हो गईं।

दो-तीन दिन इसी तरह बीते। डाक्टरों ने कहा—अब कोई चिन्ता नहीं है। जितनी आशा थी, उससे कहीं अधिक लाभ हुआ है। मोहन बाबू पुत्र से भी बढ़कर निकले।

यह सुनकर बाबू रमानाथ की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा।

( २ )

शय्या के पास मैं बैठा था। रोगिणी ने पुकारा—विनय।

मैंने उत्तर दिया—हाँ मा।

क्षीण कण्ठ से काँख काँखकर वे फिर कहने लगीं—अब कहीं न जाना बेटा। तू ही तो मेरे जीवन का आधार है। जिससे तुझे सुख मिले उसी से मैं प्रसन्न हूँ। यदि तेरी यही इच्छा है तो मुझे कोई आपत्ति नहीं। चाहे कितना भी निर्धन हो, तेरे साथी की ही बहन मीना से तेरा विवाह करने के लिए मैं सहर्ष, तैयार हूँ। यदि तू उसे चाहता है तो उसी को लाओ। मैं उसको अपने घर की रानी बनाऊँगी।

मेरा दिमाग़ चक्कर में पड़ गया। बहुत ही मन्द स्वर में मैंने पुकारा—मा।

माता फिर कहने लगीं—मैं तुझसे सच कहती हूँ बेटा। यदि तू इस पर सहमत हो तो मैं इस वैशाख तक ही सब ठीक-ठाक करने की व्यवस्था कर दूँ। बता बेटा, मुझे छोड़कर अब तो कहीं न जायगा?

हृदय में एक अव्यक्त यातना का अनुभव कर रहा था। मन ही मन कहने लगा—मूर्ख विनय, तुम कहाँ हो? जरा एक बार आँख खोलकर देख तो जाओ, कितनी दयालु और स्नेहप्रवण हैं तुम्हारी माता, साक्षात् अन्नपूर्णा की अवतार हैं। उन्हें रुलाकर तुम कहाँ भाग गये? आओ भाई, लौट आओ।

माता ने फिर कहा—बता बेटा, अब तो न जायगा?

"नहीं मा। अब कहीं न जाऊँगा।"

"आह, अब मैं बच जाऊँगी बेटा।"

मैं बैठकर सोचने लगा—मीना कौन? क्या मेरी बहन मीनाक्षी से इनका तात्पर्य है या मीना कोई और है? शायद वही हो। हम लोग निर्धन भी तो हैं। विनय जब कानपुर गया था तब उसने मीना को देखा अवश्य था। परन्तु क्या वह उसे चाहता है? नहीं तो, मुझे तो कोई भी ऐसा लक्षण नहीं दिखाई पड़ा। शायद कोई दूसरी मीना होगी। ख़ैर कोई भी हो। मीना से विनय को प्रेम है। उससे वह विवाह करना चाहता है, परन्तु पिता इस पर सहमत नहीं हुए, माता को भी पसंद नहीं था। यही विनय के घर छोड़ने का कारण है। अब माताजी के विचार बदले हैं। किन्तु विनय है कहाँ? इतने क्लेश में भी मेरे हृदय में किसी आशा का क्षीण प्रकाश जगमगा कर क्षण भर में निराशा के रूप में परिणत होगया।

"मोहन बाबू"

किसी ने मानो कानों में अमृत की धारा बरसा दी। मैं शान्तभाव से बैठा रहा। फिर उसी स्वर ने कानों के परदों को आन्दोलित कर दिया।—मोहन बाबू।

दृष्टि फेरकर देखा तो लीला थी। वह मुस्करा रही थी। आँखें मूँदकर मैंने कहा—तुम मुझे बुलाती हो?

लीला की चञ्चल दृष्टि स्थिर होगई। उसने घूरकर कहा—जाओ, तुम्हें भी कैसी हँसी सूझती है। बैठे बैठे क्या सोच रहे हो मोहन बाबू?

मैंने त्रस्तभाव से कहा—तुम शायद केवल मेरा सोचना ही देख पाती हो।

"यदि तुम सोचने के लिए स्वतन्त्र हो तो उसे कहने में ही मेरा क्या अपराध है?"

"नहीं लीला, मैं विनय के सम्बन्ध में सोच रहा हूँ। इस समय यदि वह यहाँ होता तो कितना अच्छा था। इधर मा की तबीयत जरा सी सँभलते ही मुझे तो यहाँ से चला ही जाना पड़ेगा।

लीला गम्भीर हो गई। उसने कहा—क्यों?

मैंने उत्तर दिया—उस समय वे मुझे पहचान लेंगी। रोग की दशा में मैंने इन्हें जो धोखा दिया है वह मालूम हो जाने पर वे बहुत रुष्ट होंगी।

"मोहन बाबू, तुम मेरी मा के स्वभाव से अच्छी तरह से परिचित नहीं हो। नहीं तो ऐसा न कहते। वे तुम्हें बहुत ही प्यार करेंगी। भैया तो लौटकर आवेंगे ही, चाहे आज आवें या कल आवें या दो दिन बाद आवें। आने में सन्देह नहीं है। मेरा मन बोल रहा है। परन्तु मा को जब मालूम होगा कि दूसरे के लड़के होकर तुमने तन-मन से उनकी सेवा

की है तब वे तुम्हें बहुत प्यार करेंगी। पुत्र से भी अधिक तुम्हारा आदर करेंगी। और यदि कोई पुरस्कार चाहते हो तो पिताजी……… ।

मैंने लीला की बात काट दी। एक तीव्र हँसी का लोभ मैं न सँभाल सका। साहस करके कह ही डाला………… ।

मेरी बात सुनते ही लीला बोल उठी—दुर, अन्त में अँगूठा दिखाती हुई वह भाग गई।

( ३ )

विनय की माता पूर्णरूप से आरोग्य हो गई। विनय को न पाकर वे बहुत ही दुखी हुई थीं अवश्य, किन्तु पति के मुख से सारा हाल सुनकर मुझ पर बहुत प्रसन्न हुई थीं। एक दिन उनके पास बैठकर मैं कहानी की एक किताब पढ़ रहा था। उन्होंने धीरे से पूछा—मोहन, तो क्या अब विनय लौटेगा ही नहीं? यह कहते समय उनके ओंठ काँप उठे थे। दोनों नेत्रों में आँसू छलछला आये थे।

उनकी करुण मूर्ति देखकर मैं अपने को सँभाल न सका। रुँधे हुए कंठ से आँसू रोककर किसी तरह कहा—आवेंगे क्यों नहीं मा, ज़रूर आवेंगे। चार दिन की सनक है, घूम-घाम कर ठंडे हो जायँगे।

सामने ही कमरे में दुर्गा की एक प्रतिमा थी। उसकी ओर हाथ जोड़कर वे गद्गदभाव से कहने लगीं—इस बालक का वचन सत्य निकले भगवती, मेरे बच्चे को किसी तरह लौटाओ माता।

कई दिन बाद मैं बिदा माँगने लगा। उस समय सभी के नेत्र आँसुओं से पूर्ण थे। सभी का हृदय शोकाकुल हो रहा था। परन्तु उस समय दो सरल किन्तु विशाल नेत्रों की जो दशा थी उसका वर्णन करते समय आज भी हृदय को बड़ा क्लेश होता है। वे नेत्र थे लीला के। आह, कैसी करुण किन्तु मनोमुग्धकारी चितवन थी। आँसुओं से भीगी हुई उसकी वह दृष्टि आज भी मेरे हृदय पर पूर्ववत् खचित है।

कानपुर पहुँच कर मा से सारा हाल बताया। उन्होंने पूछा—उसका कुछ पता नहीं लगा सके?

"नहीं मा, अभी तक तो कोई पता नहीं चला।"

"आहा, बेचारी माता की क्यों न ऐसी दशा हो! वही तो उसकी आँखों का तारा था। दो लड़कियाँ और हैं। लड़का भी कोई ऐसा-वैसा नहीं था। देवता का-सा चेहरा था। किसे मालूम था कि उसके हृदय में ऐसी भी कुमति उत्पन्न हो सकती है! बेचारा जब आता, रात-दिन मां मा लगाये रहता। देखो मोहन, जान पड़ता है, वह किसी के फेर में पड़ गया है।

मा की इन बातों का मैंने कोई उत्तर नहीं दिया, चुपचाप खड़ा रह गया, परन्तु भाभी तुरन्त ही मीना का हाथ पकड़कर खींच लाईं और कहने लगीं—फेर में ही पड़े हैं मा, परन्तु वह फेर न किसी भूत का है और न किसी देव-दानव का है। वह फेर है तुम्हारी लाड़िली का। इन्हीं भौंरे के समान काली काली आँखों का। मीना की इस भोली-भाली चितवन और नागिन जैसी काली-काली लटों ने ही विनय पर जादू डाल रक्खा है। इन्हीं की बदौलत वे गली गली की धूल छान रहे हैं।

भाभी की बातें सुनकर हम लोग खिलखिला कर हँस पड़े। परन्तु मीना बहुत ही गम्भीर हो उठी। मा भाभी को मृदु भर्त्सना देते हुए कहने लगीं—दुर, पगली। मेरी भोली सी लड़की को तू क्या कहती है?

भाभी ने ज़ोर देकर कहा—नहीं मा, मैं जो कुछ कहती हूँ उसमें असत्य का लेश भी नहीं है। विनय बाबू जितने दिन रहे हैं, उनकी भावभङ्गी से स्पष्ट प्रतीत होता था कि मीना पर वे आसक्त हैं। उस दिन से मीना की भी भावभंगी में बड़ा परिवर्तन दिखाई पड़ रहा है। अभी अभी दरवाज़े की आड़ में छिप कर कैसी तन्मयता के साथ विनय की बातें सुन रही थीं।

भाभी की बातें समाप्त भी न हो पाई थीं कि मीना मुँह ढाँककर वहाँ से भागने का उपक्रम करने लगी। परन्तु भाभी ने उसे रोक कर पकड़ लिया।

वहाँ से हटकर मैं बैठक में चला गया। इतने में डाकिया ने आकर एक लिफ़ाफ़ा फेंक दिया। उसे खोलकर मैं पढ़ने ही जा रहा था कि भाभी वहाँ पहुँच गईं और पत्र झपट कर छीन लिया। उसे वे ज़ोर से चिल्ला चिल्लाकर पढ़ने लगीं—

"प्रिय मोहन बाबू"—

मैंने कुछ रोष के साथ कहा—तुम दूसरे की चिट्ठी क्यों पढ़ती हो ? भाभी ने मेरी इस बात पर ध्यान नहीं दिया। वे पूर्ववत् पढ़ती रहीं।

"तुम मा का रोग दूर करके गये हो, इसके लिए हम सदा के लिए कृतज्ञ हैं। परन्तु एक आदमी के हृदय में जो नया रोग पैदा कर गये हो उसके लिए मैं तुम्हें कैसा उलाहना दूँ। उसके नेत्रों में अब वह प्रफुल्लता नहीं है। दिन दिन वह मलीन होती जा रही है, किन्तु उसकी कवित्व-शक्ति बढ़ती जा रही है। सुबह-शाम एकान्त में छत पर बैठकर वह प्रेम और विरह की कविता लिखती है, किसी से बातचीत बहुत कम करती है। तुम्हारे बिदा होने के बाद से ही उत्तरोत्तर उसके शरीर और भावगङ्गी में घोर परिवर्तन होता जा रहा है। मेरा पूर्ण विश्वास है कि आप के ही कारण उसकी यह दशा हो रही है। इधर विनय के घर से भागने का दुख तो हम लोगों को था ही, तिस पर आपने लीला की दशा में विकार उत्पन्न करके आपने हमारी विपत्ति और भी बढ़ा दी। ख़ैर, आप टानिक के रूप में यदि सशरीर मथुरा चले आवें तो उसकी दशा अवश्य सुधर जायगी।

अपने भाई साहब, भाभी और अम्मा से मेरा यथायोग्य कहिएगा। आशा है, आप सकुशल और सानन्द होंगे। हमारे यहाँ और कोई विशेष बात नहीं है।

सुधा।"

सुधा लीला की बड़ी बहन थी।

पत्र पढ़कर भाभी थोड़ी देर तक ज़ोर से हँसती रहीं। परन्तु मैं मन ही मन सुधा के इस कृत्य पर कुढ़ता रहा। भाभी पर भी मुझे बड़ी चिढ़ आ रही थी। सबसे अधिक क्रोध आ रहा था स्त्री-शिक्षा की प्रवृत्ति पर। मन ही मन मैं सोचने लगा कि यदि सुधा में पत्र लिखने की शक्ति न होती और भाभी वह पत्र न पढ़ पातीं तो इस प्रकार मेरी खिल्लियाँ उड़ाने का उन्हें अवसर ही कहाँ से मिलता ?

भाभीजी जिस भाव-भङ्गी से ये बातें कह रही थीं उससे लज्जा के मारे मैं गड़ा जा रहा था। अन्त में वहाँ से हटकर दूसरे कमरे में चला जाना ही मैंने श्रेयस्कर समझा। परन्तु वहाँ भी उनकी खिल-खिलाहट का शब्द पहुँचकर मेरी शान्ति में बाधा डाल रहा था।

दो घंटे के बाद भाभी ने वह पत्र मुझे वापस दिया। व्यङ्ग्यमय स्वर से वे फिर कहने लगीं—भाई, लज्जा किस बात की है ? अदल-बदल का तो मामला है। लेकिन अपने साथी की खोज शीघ्र ही करना जरूरी है। नहीं तो सारा गुड़ मिट्टी हो जायगा।

मैंने झुँझलाकर कहा—अच्छा, अब आप यहाँ से कृपा कीजिए। फिर देखा जायगा।

भाभीजी हँसती हुई कमरे से निकलने लगीं। उनके सामने ही पत्र को टुकड़े टुकड़े करके मैंने फेंक दिया।

( ४ )

सवेरे से ही वर्षा हो रही थी। शाम को ही ज़रा सा पानी रुका। गीली हवा उस समय भी मानो थोड़ी-बहुत वर्षा अपने साथ में लिये बह रही थी। बीच बीच में काले काले बादलों पर बिजली चमक रही थी। अपने कमरे में लेटे लेटे मैं किसी गम्भीर चिन्ता में निमग्न था। सदर दरवाज़े के

बग़लवाले कमरे में बैठे मीना हारमोनियम बजा-बजाकर बहुत ही मधुर स्वर से गा रही थी।

एकाएक मीना के आर्तस्वर से मेरी चिन्ता भंग हुई। चकित होकर देखा तो उसके पास एक जटा-जूटधारी साधु खड़ा था। उसे देखते ही क्रोध से सारा शरीर थर्रा उठा। आँखें तरेरते हुए कुर्ते की आस्तीन सिकोड़ कर चपत जमाने ही जा रहा था कि अपनी कृत्रिम जटा फेंककर वह कहने लगा—हत्या कर डालोगे क्या भाई!

उसका रूप देखते ही मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा। वह साधु वास्तव में विनय था। उसका हाथ पकड़कर मैं अपने कमरे में ले गया। मीना ने लज्जा के मारे गड़ सी गई।

इतने दिनों के बाद विनय को देखकर मा जी बहुत प्रसन्न हुई। बड़े आदर से उसे भोजन कराया।

दूसरे ही दिन हम दोनों को लेकर मा मथुरा गई। विनय के घर में भी एकाएक आनन्द का स्रोत उमड़ पड़ा। कुछ ही दिनों के बाद शुभ मुहूर्त में चार जोड़े हाथ बड़े समारोह से मिलकर दो भागों में विभक्त होगये। दोनों घरों में मित्रों तथा सम्बन्धियों को बड़े समारोह से भोज दिया गया।

—रमानाथ भार्गव

---

# कामना

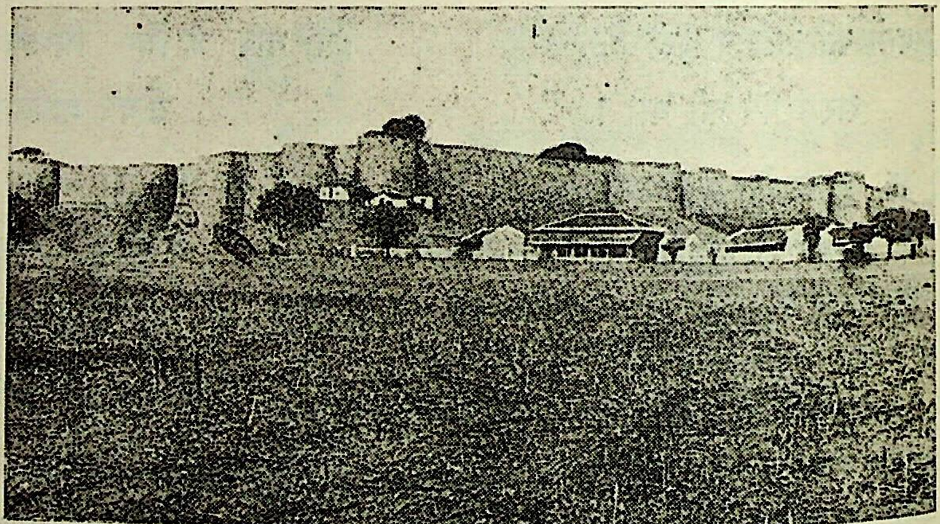
पलक बिछे हों प्रियतम-पथ में;
खुले हृदय के द्वार।
लाली बन कर, थिरक रहा हो;
अधरों में सब प्यार।
नेह-निशा की शरद चाँदनी;
सरवर के उस पार।
शुचि सुमनों की कलित कुटी में;
सरस प्रेम की धार।
मधुर, वह फूलमयी मुसकान;
फूलों-सी सुकुमार !
फूलों की हो फूल-वाटिका;
फूलों का श्रृंगार।
इत वासंती, उत वसंत हो;
वसंती बने बहार।
मधुर मिलन की रङ्ग-भूमि में;
मीठा-मीठा प्यार।

मुकुलित हों आशा की कलियाँ;
सौरभ-सनी बयार।
मूक प्रतीक्षा के अभिनय में;
लूटूँ प्रणय अपार।
कुछ तन से तन की चाह नहीं;
मन से मन का प्यार।
इसी भाव के चिर चिन्तन पर;
जीवन प्राणाधार।
अन्त न हो अब, इस आशा का;
कैसा मौन विहार ?
रँगित राग की रँगी रागिनी;
रँगे हुए स्वर तार—
"आसव का यह घूँट पिला दो;
भूल उठूँ संसार।
प्रेममयी सब दुनिया देखूँ;
बनूँ प्रेम-अवतार।"

—कुँवर व्रजेन्द्रसिंह

# भोज की धारा

भारत की देशी रियासतों में शायद धार सबमें प्राचीन है। इसके साथ-साथ राजा भोज तथा कविश्रेष्ठ कालिदास की जो स्मृतियाँ संलग्न हैं उनसे इसका महत्त्व और भी बढ़ जाता है। पड़ोस में ही उज्जैन है, जहाँ महाराज विक्रमादित्य की कीर्ति-पताका फहराती थी। भोज तथा विक्रमादित्य के बाद महाराज मुंज का नाम प्रख्यात है, जो भोज के चचा थे। अब तक धार के प्रसिद्ध तालाबों में मुंजताल का स्थान सर्वोच्च है और 'मुंज-तलाव' नाम का एक टूटा-फूटा तालाब माँडू में भी है। हिन्दू-काल का जब सूर्यास्त हुआ तब मुसलमानों ने मालवा-प्रांत विजय किया और धार भी उनके अधिकार में आ गया। १३०० ईसवी में अलाउद्दीन ने मालवा पर अपना प्रभुत्व जमाया और दस वर्ष के बाद उसके सेनापति मलिक काफ़ूर ने यहाँ अपना पड़ाव डाला। १३४४ ईसवी में अकाल पड़ने पर मुहम्मद तुग़लक धार में आकर ठहरा था। जो धारा-नगरी भोज और उनके पूर्वजों की राजधानी थी वही 'धार' बनकर मुसलमानों की बहुत दिन तक दारुस्सलतनत रही। १४०१ ईसवी में जब होशंगशाह ने मालवा पर अपना आधिपत्य कर लिया तब उसने अपनी राजधानी धार को छोड़कर माँडू को बनाया, जो यहाँ से लगभग ३० मील है। तब से फिर माँडू के भाग्य उदय हुए और धार में खँडहर ही खँडहर रह गये। परन्तु इतिहास में धार का उल्लेख

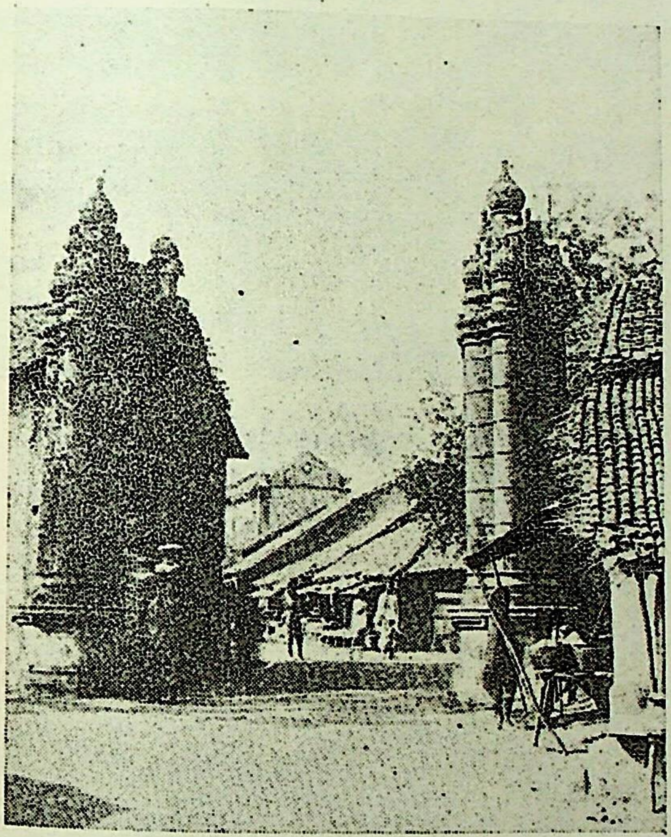


[ क़िले का बाहरी दृश्य ]

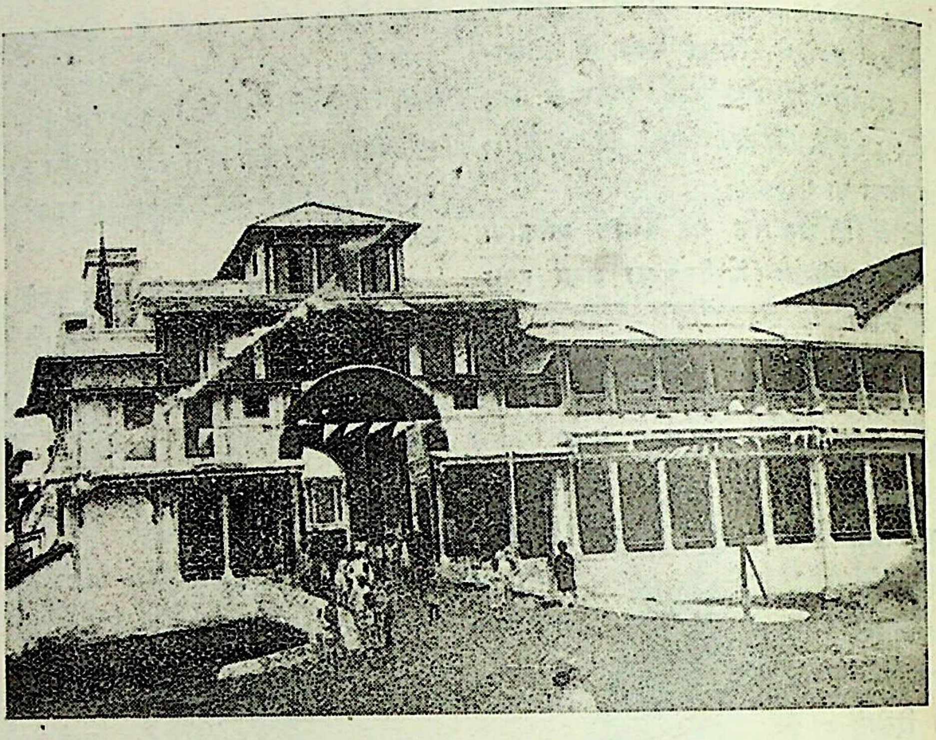
बराबर मिलता है। १५९८ ईसवी में बादशाह अकबर दिल्ली जाते हुए यहाँ ठहरे थे, जिसके संबंध में शिलालेख भी है। दारा शिकोह जब अपने पिता से लड़ रहा था तब १६५८ ईसवी में उसने धार के क़िले पर अपना अधिकार किया था।

धार के क़िले में ही अब तक वह स्थान बतलाया जाता है, जहाँ पेशवा बाजीराव (द्वितीय) का जन्म हुआ था। उन दिनों उसकी माता आनंदीबाई इसी क़िले में छिपी हुई थी। क़िले के भीतर ही बाजीराव के खेलने के लिए एक छोटा कुँवा था जो अब तक बना हुआ है। बाहर से आनेवालों को पहले पहल यह क़िला ही दिखाई देता है। इसे मुहम्मद तुग़लक ने बनवाया था और तब से इसमें अनेक परिवर्तन होते रहे। इसके दरवाज़े पर ही "बन्दी छोड़" जी की समाधि बनी हुई है। कहा जाता है कि इस क़िले में बहुत से क़ैदी रक्खे गये थे, जिनको हज़रत मकबूल नामक एक सिपाही ने अपनी माता के आज्ञानुसार छोड़ दिया था। पहरेवाले सिपाही से इसे लड़ना पड़ा और उसका सिर कटकर एक फर्लांग तक लोटता गया और धड़ बराबर लड़ता रहा। सिर तथा धड़ दोनों की अलग अलग समाधि बनी है और उनकी पूजा होती है। इस समय इस क़िले में रियासत के क़ैदी रहते हैं और फ़ौज भी। क़ैदियों के लिए अच्छा प्रबंध है और वे अच्छे अच्छे कपड़े, दरियाँ तथा नेवाड़ आदि बनाते हैं, जिनसे काफ़ी आय भी होती है। कहा जाता है कि क़िले के भीतर से माँडू तथा दिल्ली को जाने के लिए सुरंगें हैं। इसके भीतर एक ओर महाराज आनंदरावजी का बनवाया ख़रबूज़ा महल है, जिसके ऊपर ख़रबूज़े के आकार की दो गुम्बदें बनी हुई हैं।

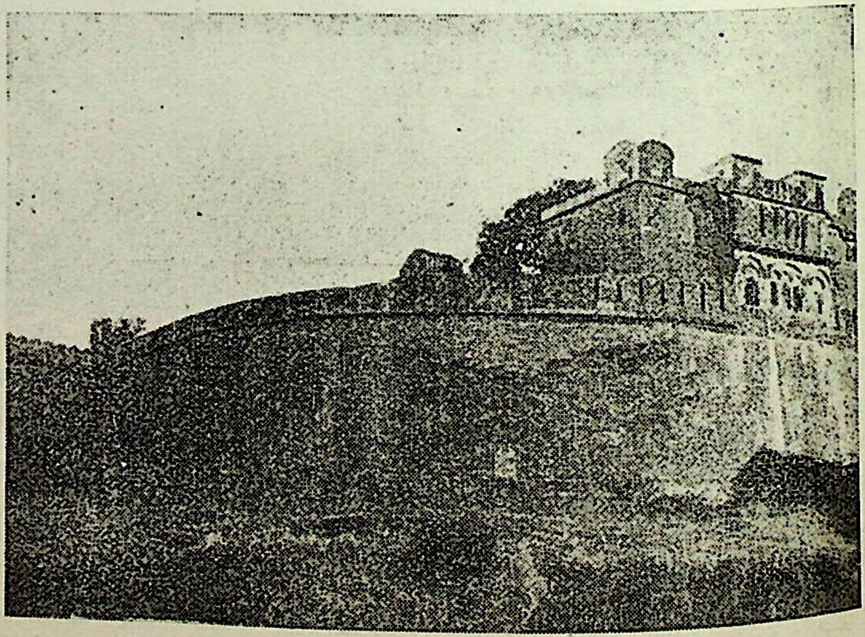
क़िले से होकर शहर में प्रवेश करते समय ऊँटावद-दरवाज़े से जाना पड़ता है। शहर के चार दरवाज़े हैं—ऊँटावद, हटवादा, पुन्या दरवाज़ा तथा नालछा गेट। जान पड़ता है कि जहाँ इस समय ऊँटावद दरवाज़ा है वहाँ किसी समय रियासत के ऊँट रक्खे जाते थे और "हटवादा" शब्द "हाथीवाड़ा" का अपभ्रंश-सा है, क्योंकि शायद दूसरी ओर हाथियों के रखने का स्थान था। इस समय तो धार-नगर छोटा ही है, पर किसी समय इसकी रौनक़ और ही रही होगी, क्योंकि अब तक यहाँ साढ़े बारह तालाब हैं जो प्राचीन काल में धारा-नगरी की परिधा के अंग-स्वरूप थे, जिनसे शत्रुओं से उसकी रक्षा होती थी। शहर के भीतर ही राजवाड़ा है। यह पुराना राजमहल है और इस समय इसमें दरबार की कचहरी तथा राज्य के अन्यान्य दफ़्तर हैं। सामने महारानी विक्टोरिया की एक मूर्ति बनी है और पास ही दरबार की ओर से एक मन्दिर बना है। राजवाड़े के भीतर गणपतिजी का श्रृंगार होता है, जो गणेश-चतुर्थी के दिन देखते ही



[ ऊँटावद-दरवाज़ा (धार-नगर का प्रवेश-द्वार) ]



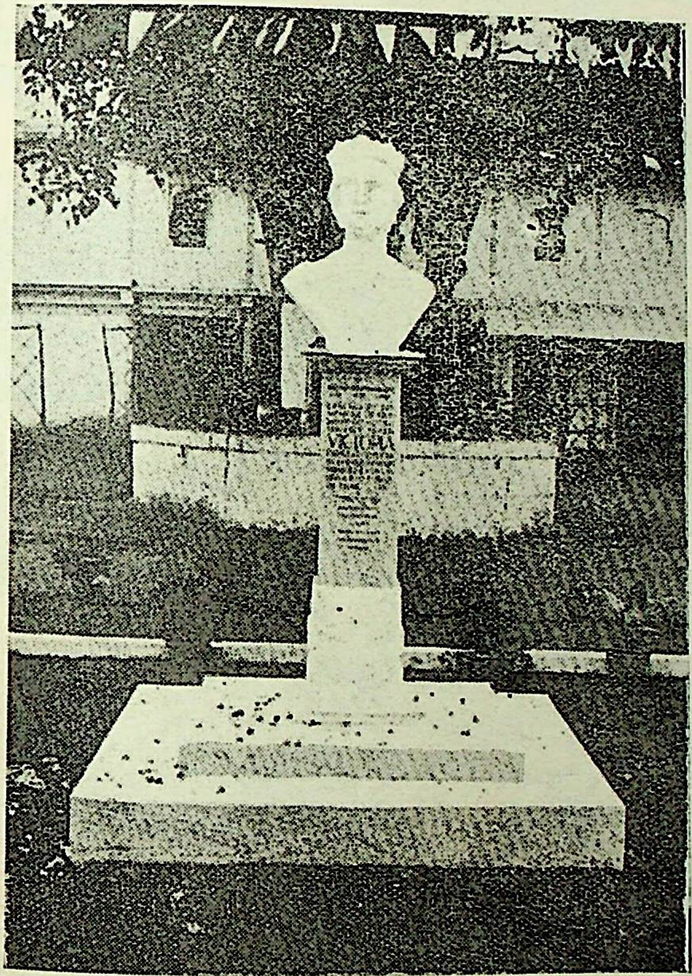
[ राजवाड़ा (राज्य के दफ़र आज-कल इसी में हैं) ]



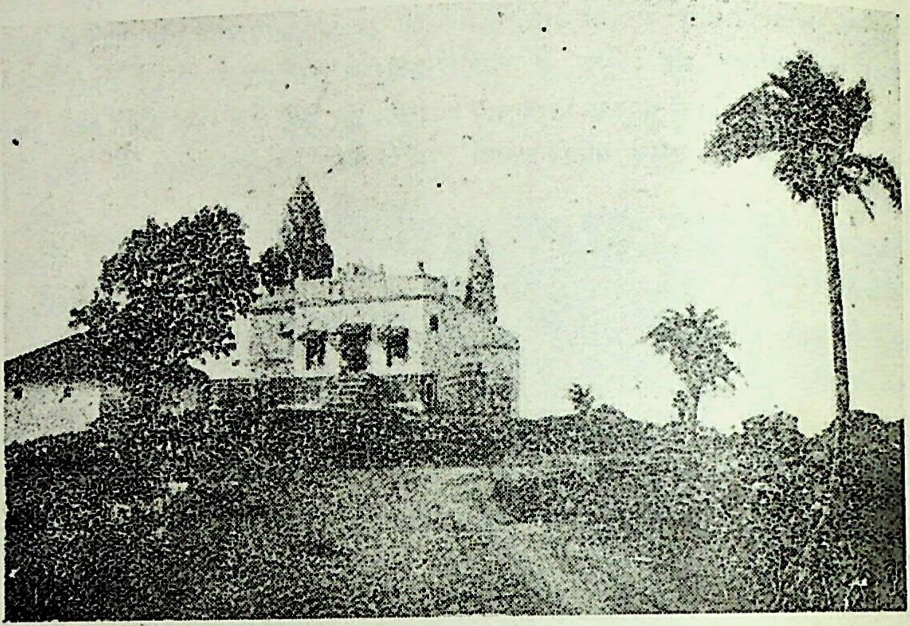
[ क़िले पर का ख़रबूज़ा-महल ]

बनता है। इस प्रान्त में गणेशजी की बड़ी प्रतिष्ठा है और लगभग दो सप्ताह तक गणपति-उत्सव मनाया जाता है। यों तो धारेश्वर महादेव का मन्दिर भी प्रसिद्ध है और श्रावण की पूर्णिमा को राज्य की ओर से यहाँ से "छबीना" नामक एक बड़ा जलूस निकलता है। इसके अतिरिक्त यहाँ एक-आध जैन-मन्दिर भी हैं, पर सबसे प्राचीन एवं प्रतिष्ठित मन्दिर श्रीकालिकाजी का है, जो शहर से बाहर एक बहुत बड़े तालाब के पास सुन्दर स्थान पर बना है। बरसात के दिनों में इस तालाब में कमलों की शोभा देखते ही बनती है। इसका नाम है कालिका-ताल और इसी में गणेशजी की मूर्ति गणपति-उत्सव के जलूस के बाद प्रवाहित कर दी जाती है। इस बड़े जलूस में राज्य के कर्मचारियों के अतिरिक्त स्वयं हिज़ हाईनेस महाराज साहब भी भाग लेते हैं। और यों तो यत्र तत्र मुसलमानी पीरों के भी स्थान हैं, जिन्हें "पीरान धार" कहते हैं और एक अलग स्थान भी "चालीस पीर" नाम का है।

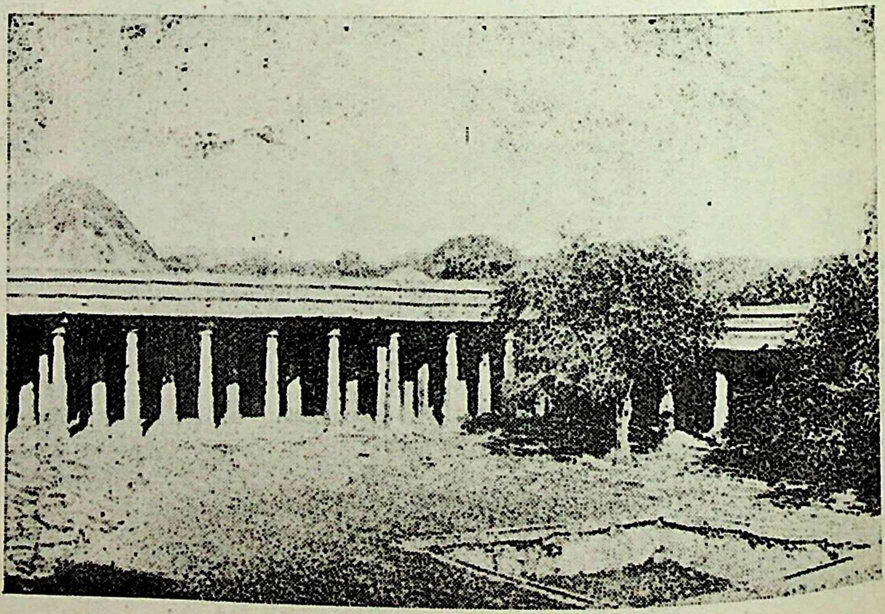
पर यहाँ सबसे प्राचीन वह मन्दिर है जिसे आज-कल भोजशाला कहते हैं। इस समय तो यह मसजिद-सा है, पर इसके भीतर कई शिलालेख हैं जिन पर प्राकृत तथा संस्कृत के प्राचीन लेख हैं। जान पड़ता है, यह राजा भोज का वही सरस्वती-मन्दिर था जिसका उल्लेख अर्जुनवर्मावाले एक संस्कृत नाटक में है। इस नाटक की एक प्रतिलिपि अभी तक यहीं भोजशाला में एक बड़े पत्थर के टुकड़े पर लिखी हुई रक्खी है। राजा भोज के लिखे हुए कुछ और स्मारक भी यहाँ रक्खे हैं, जो प्राकृत में हैं और जो स्वयं भोज के लिखे हुए कहे जाते हैं। जान पड़ता है, भोज के समय में दूर देश के पण्डितों का स्वागत तथा शास्त्रार्थ यहाँ हुआ करता था और यह शिलालेखों तथा इसी प्रकार की लिखी हुई पुस्तकों का एक संग्रह भी रहा होगा। मुसलमानों ने इन लेखों को नष्ट-भ्रष्ट करके इन्हें नीचे फ़र्श में लगवा दिया और आज दिन भी कई वैसे ही गड़े पड़े हैं। कहा जाता है कि जब लार्ड कर्ज़न इस स्थान को देख रहे थे तब उन्हें दीवार में एक छेद दिखाई दिया। उसमें जब उन्होंने उँगली डाल कर देखा तब पत्थर पर कुछ खुरदुरे अक्षर-से लिखे हुए जान पड़े। तुरन्त उसे खुदवा कर देखा तब एक बड़ा शिलालेख निकला! न जाने कितने शिलालेख इसी प्रकार दीवार के पत्थरों में इस समय भी छिपे पड़े होंगे। इसके भीतर दो खम्भों पर संस्कृत-धातुओं के कुछ रूप लिखे गये हैं, जो साँप की शकल के बना दिये हैं। प्राचीन व्याकरण-प्रियता तथा कला-कौशल का



[ राजवाड़े के सामने महारानी विक्टोरिया की मूर्ति ]



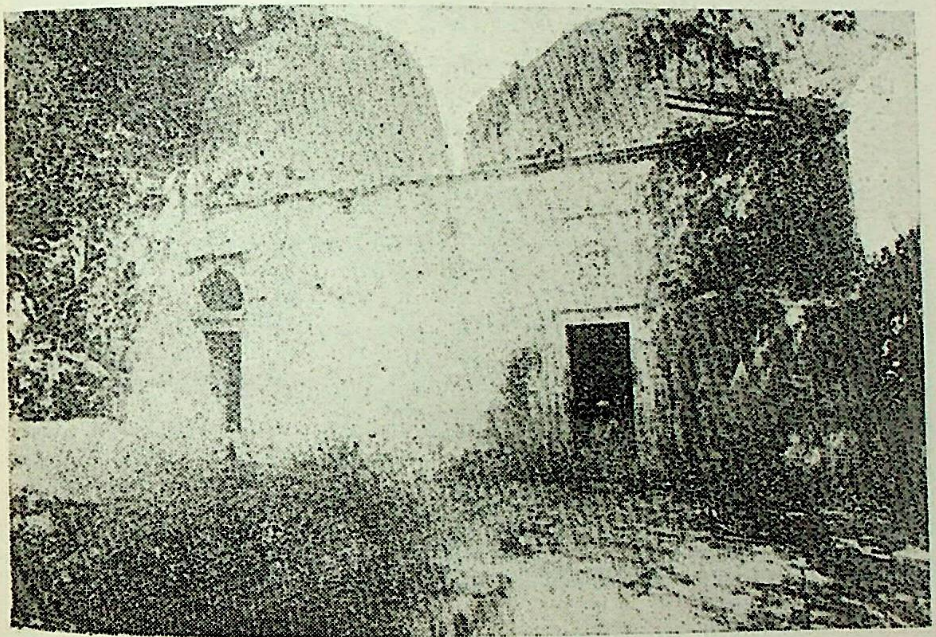
[ गणपतिजी का मन्दिर ]



[ भोजशाला का भीतरी दृश्य ]

यह एक उत्तम नमूना है। अब तो यहाँ साल में एक बार मुसलमानों की नमाज़ पढ़ी जाती है, अलबत्ता और शेष सब खँडहर पड़ा है।

इसके पास ही वह स्थान है जिसे आज-कल "कमाल मौला" कहते हैं। इसके भीतर तीन-चार क़ब्रें हैं, जिनमें से एक तो महमूद ख़िलजी की कही जाती है। दूसरी क़ब्र शेख़ कमाल मौला की है, जिनको कभी कभी मौला मालवी भी कहते हैं। ये कोई पहुँचे हुए साधु थे और मुहम्मदशाह के गवर्नर दिलावरख़ाँ ने भी



[ कमाल मौला का भीतरी दृश्य ]

इनकी क़ब्र पर सिजदा किया था। इसके दरवाज़े पर दो-तीन प्राचीन शिलालेख अरबी तथा क्यूफ़ी लिपि में हैं। पास ही एक छोटी सी कुइयाँ है, जिसे "अक्कल-कुइँ" कहते हैं। यह शायद काशीजी की ज्ञानवापी-सदृश अद्भुत शक्ति-सम्पन्न कोई कुआँ रहा होगा।

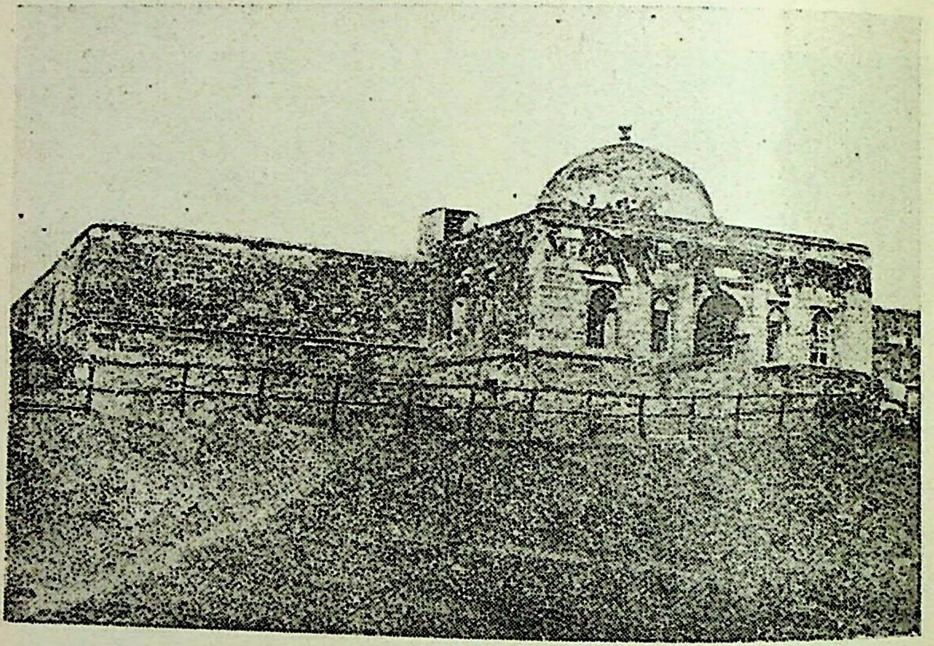
दिलावरख़ाँ ने कमाल मौला के पास ही एक मसजिद बनवाई थी, जिसको इस समय "लाट मसजिद" कहते हैं। यह मन्दिरों के पुराने खँडहरों के मसाले से बनी जान पड़ती है और इसका नाम लाट मसजिद इसलिए है कि पास ही दरवाज़े के बाहर एक लोहे का खम्भा पड़ा है। यहाँ दो शिलालेख हैं, जिनमें से एक में लिखा है कि यह मसजिद रज्जब सन् ८०७ हिजरी अर्थात् १४०५ ईसवी में बनवाई गई थी। पुरानी लोहे की लाट शायद कोई जयस्तम्भ है और संभवतः संवत् १०९९ में राजा भोज नाम के यहाँ के राजा ने तेलिंगाने के राजा गंगायादव को हराकर ही यह स्तम्भ यहाँ गड़ाया होगा। क्योंकि दन्तकथा प्रसिद्ध है कि यह खम्भा गाँगली तेलिन की तराज़ू का डंडा था। इसी लिए यहाँ यह कहावत भी प्रसिद्ध है कि—

"कहाँ राजा भोज, कहाँ गाँगली तेलिन ?"

पर वास्तव में गङ्गायादव नाम से गाँगली शब्द बना और तेलिंगाने से तेलिन शब्द गढ़ लिया गया है। क्योंकि इतिहास से पता चलता है कि तेलिंगाने के राजा गंगा-यादव की सेना यहाँ आकर हारी थी। तेलिंगाने का मार्ग भी यहीं से होकर जाता है और पास ही 'तेलिंगानेटेकरी'

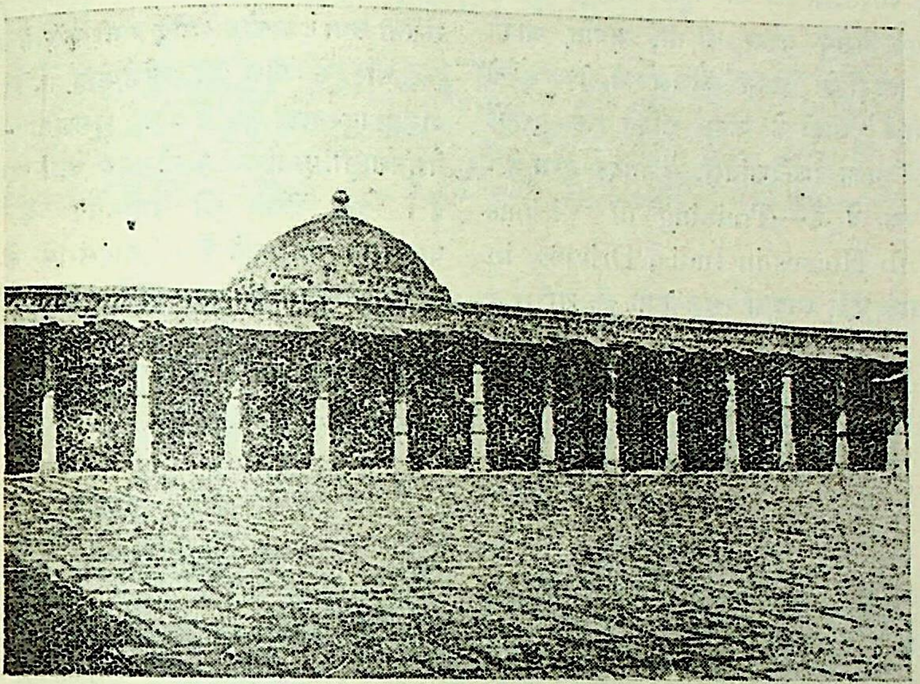
नामक एक छोटी पहाड़ी भी है, जहाँ शायद फ़ौज ने मोरचा लिया होगा। ग्वालियर-क़िले पर भी इसी प्रकार तेलिंगाना-मन्दिर का तेली-मन्दिर नाम होगया है। तेलिंगाना-टेकरी को तेलिन-टेकरी कहते हैं और जन-श्रुति है कि उसी तेलिन के लहँगे की धूल झड़कर यह पहाड़ी बन गई थी! जहाँगीर ने अपनी डायरी में लिखा है कि उस समय यह स्तम्भ खड़ा था और गुजरात के बहादुरशाह ने इसे उठवाना चाहा, पर बीच में ही यह टूट गया और तभी से टूटा पड़ा है। एक भाग २२ फ़ुट लम्बा है और दूसरा १३ फ़ुट। जहाँगीर ने एक टुकड़ा आगरे ले जाने की आज्ञा दी थी, पर शायद यह न जा सका।

आगे चलकर शाह चंगाल का मक़बरा है, जिसमें कहा जाता है कि अब्दुल्ला शाह चंगाल नाम के एक फ़क़ीर दफ़न किये गये थे। यह भी प्रसिद्ध है कि इन्हीं शाह चंगल ने राजा भोज (द्वितीय) को मुसलमान बनाया था। इस सम्बन्ध में मालवा के महमूद ख़िलजी ने सन् १४४९ में यहाँ एक शिला-लेख लगवा दिया है, जिसमें लिखा है कि हिन्दुओं ने इस स्थान पर मुसलमानों को मार कर कुएँ में डाल दिया। शाह चंगाल ने यह देखकर मंदिर की मूर्तियाँ तोड़ डालीं और मंदिर की मसजिद बना दिया और राजा भोज को मुसलमान कर लिया। महमूद ख़िलजी ने इस मसजिद की मरम्मत करवाई और उसी समय सन् १४५५ में यह शिला-लेख भी लगवाया।

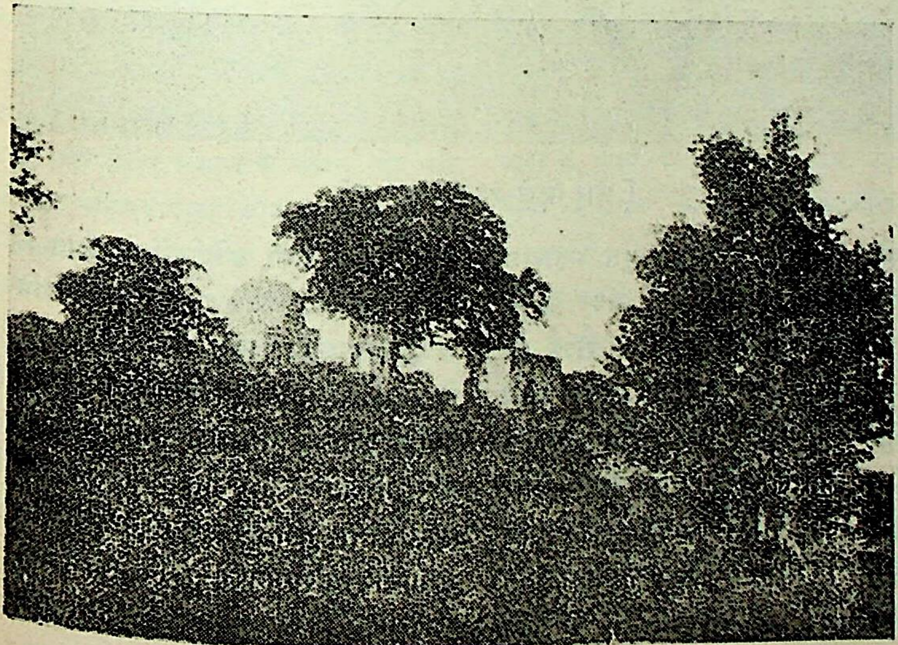


[ लाट मस्जिद का बाहरी दृश्य ]

मुसलमानों के अधिकार में बहुत दिनों तक रहने के बाद धार फिर अपने पुराने राजाओं के वंशज परमारों को मिला। महाराजा आनंदराव पँवार ने इसकी विशेष उन्नति की और उन्हीं के नाम पर यहाँ एक कालेज भी स्थापित हो गया है। यह पहले स्कूल था, जो उत्तर-भारत के बहुत प्राचीन स्कूलों में अपना स्थान रखता था। तदनन्तर महाराज उदाजीराव हुए, जो बड़े विद्याव्यसनी तथा अनेक कलाकुशल थे। आपको क्रिकेट तथा घुड़-सवारी का विशेष शौक़ था और लड़ाई के



[ लाट मस्जिद का भीतरी दृश्य ]

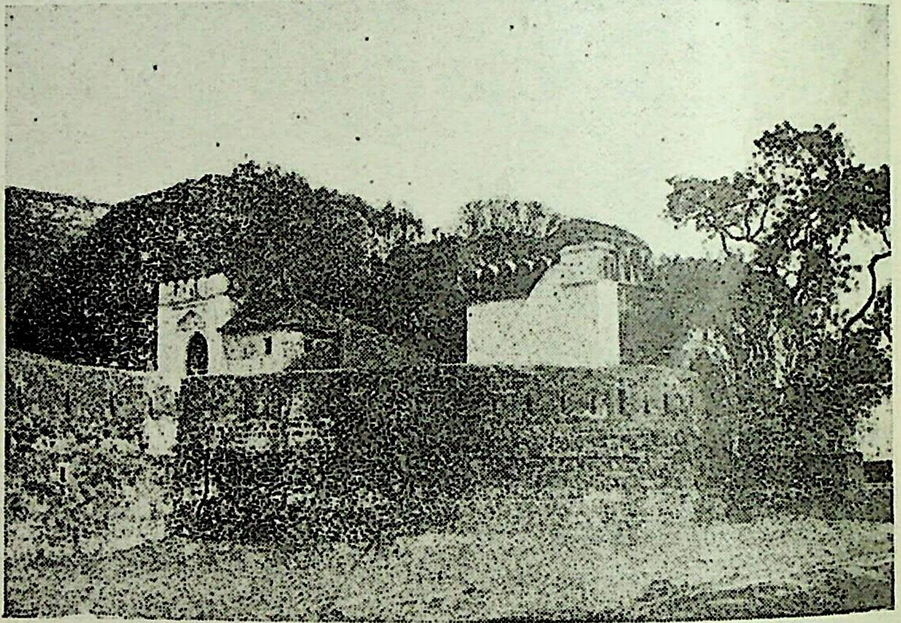


[ अब्दुल्लाशाह चंगाल का मक़बरा ]

दिनों में आपने भारत-सरकार की बहुत सहायता की। यह सहायता एक विशेष प्रकार की थी, अर्थात् आपने उनके बदमाश घोड़ों को अपने कौशल से ठीक करके उनसे काम लिया। घोड़ों के ऊपर आपने कई पुस्तकें भी लिखी हैं, जिनका देश-देशांतरों में आदर हुआ है। उनमें से दो एक ये हैं—Training of Vicious Horses, With Horses in India, Driving in India. कुछ वर्ष पूर्व आपका राजयक्ष्मा से शरीरान्त हो गया है और आज-कल आपके दत्तक पुत्र महाराज आनंदरावजी पँवार १२ वर्ष के हैं। आप डेली-कालेज, इन्दौर, में शिक्षा पा रहे हैं और राज्य का भार एक कौंसिल के अधिकार में है, जिसकी अध्यक्षा महारानी साहब हैं। राय बहादुर खण्डेरावजी नाडकर यहाँ के दीवान इस कौंसिल के उपसभापति हैं और आपके ही उत्साह तथा कार्यदक्षता का यह फल है कि महाराज की नाबालग़ी में भी धार-राज्य की दिन दिन उन्नति होती जा रही है। अब यहाँ सभी अर्वाचीन सुविधायें उपलब्ध हैं—सिनेमा-हाउस है, बिजली की रोशनी तथा टेलीफ़ोन आदि सभी कुछ है।

धार के पास ही मांडवगढ़ है। रूपमती तथा बाज़बहादुर वहीं हुए हैं और मुसलमान-काल की अनेक वैभवशाली इमारतों के खँडहर वहाँ अब तक विद्यमान हैं। इन्हें देखने को भारतवर्ष के लगभग सभी वाइसराय यहाँ आते हैं। वाइसराय के ठहरने के लिए यहाँ एक अलग राजप्रासाद है, जिसे झीरा-पैलेस कहते हैं। हिन्दुस्तानी अतिथियों के ठहरने के लिए खण्डेराव-टेकरी पर एक दूसरा उत्तम अतिथिभवन बना है। राज्य का अपना एक बढ़िया अस्पताल है और कृषि-विभाग का संगठन अच्छा है। बाहर के आस्ट्रेलिया आदि देशों से गाय-बैल मँगाये गये हैं और राज्य-प्रबंध के सभी अंगों की उन्नति होती जा रही है। परमात्मा करे, राजा भोज का समय शीघ्र ही लौट आये और हम में प्राचीन धारा-नगरी के विद्या-वैभव के दिन देखने को मिलें।

—श्रीरामाज्ञा द्विवेदी 'समीर'



[ धार क़िले का प्रवेश-द्वार ]

# भारतीय राष्ट्रनीति के मूलसूत्र

[ भारतीय राष्ट्रनीति का सच्चा स्वरूप क्या है, इसी की दार्शनिक विवेचना इस लेख में की गई है। इसके लेखक तपस्वी अरविन्द हैं। इसे आपने भारतीय संस्कृति पर योरपीय विद्वानों-द्वारा किये गये आक्षेपों के खण्डन-स्वरूप लिखा है। लेख मनन करने योग्य है। ]

भारतीय राष्ट्रनीति का सच्चा स्वरूप क्या है? इस बात को जानने के लिए इसको जाति की चिन्ताधारा और जीवन के अन्य अंश से पृथक् भाव से देखने से काम नहीं चलेगा। राष्ट्र को भी समाज-जीवन के एक अच्छेद्य अङ्ग के रूप में ही देखना होगा।

एक जाति एक महान् मानव-समष्ठि वस्तुतः एक सजीव देह की भाँति है। उसकी भी अपनी एक आत्मा है, मन है, शरीर है। जिस प्रकार व्यक्ति के दैहिक जीवन में होता है, उसी प्रकार समाज के जीवन को भी जन्म, वृद्धि, यौवन, परिणतावस्था और पतनावस्था से होकर गुज़रना पड़ता है। यदि यह अन्तिम अवस्था अधिक दूर तक अग्रसर हो जाय एवं पतन की गति न रोकी जाय तो जिस प्रकार मनुष्य बुढ़ापे के बाद मृत्यु के मुख में चला जाता है उसी प्रकार जाति को भी मृत्यु के मुख में जाना पड़ता है। इसी प्रकार संसार की और सब पुरातन जातियाँ ध्वंस हो गईं। केवल भारत और चीन जीवित हैं। परन्तु मानव-समष्टि में ऐसी भी शक्ति है कि वह अपने को पुनर्जीवित कर सके, अपने को ध्वंस-मुख से बचाकर नूतन जीवन आरम्भ कर सके। इस कारण प्रत्येक जाति का अपना एक मूलभाव और आदर्श होता है जो उसकी देह की भाँति सहज ही ध्वंस को नहीं प्राप्त होता है। यह भाव यदि यथेष्ट शक्तिशाली हो और यदि लोगों की प्रकृति में यथेष्ट शक्ति हो जिसके द्वारा वे रचना-शीलता के साथ सदा परिवर्तन और विकास का समन्वय कर सकें, जातीय भाव को नूतन अवस्था के अन्दर नूतन भाव से सजीव करके प्रकट कर सकें, तो फिर वह जाति चरम ध्वंस के पहुँचने के पूर्व बहुत बार अपने को पुनरुज्जीवित करके नूतन नूतन जीवन का विकास कर सकती है। इसके अतिरिक्त यह जो जातीय भाव है यह जाति की समष्टिगत सत्ता के आत्मप्रकाश की धारा है, और प्रत्येक समष्टिगत आत्मा एक महत्तर नित्य सनातन आत्मा की अभिव्यक्ति और प्रकाश का आधार है। वही सनातन आत्मा युग युग में अपने को प्रकाश करती है एवं मानव-जाति के पतन और अभ्युदय से होकर मानव-समाज के अन्दर अपने को पूर्णभाव से प्रकट करना चाहती है। अतएव जो जाति केवल बाहरी स्थूल जीवन के अन्दर ही वास करना नहीं चाहती, यहाँ तक कि जो जातीय मूलभाव उसके विकास को नियन्त्रित करता है एवं जाति को विशिष्टधारा और विशिष्ट प्रकृति प्रदान करता है केवल उसी को ग्रहण करके नहीं रहती है, किन्तु इनके पीछे जो आत्मा रहती है, जो अध्यात्मसत्ता रहती है, उसका सन्धान करती है और

सज्ञानता उस अध्यात्म सत्ता के अन्दर वास करना सीखती है, उस जाति को ध्वंस नहीं होना पड़ता है, दूसरों के साथ मिलकर अपने को खो नहीं देना पड़ता है अथवा किसी नूतन जाति के लिए स्थान छोड़ कर सम्पूर्ण भाव से नष्ट नहीं होना पड़ता है, परन्तु वही स्वयं बहुत से छोटे-छोटे लोक समाज को अन्तर्भुक्त करके अपने पूर्णतम स्वाभाविक विकास का साधन करने में समर्थ होती है एवं मृत्यु से बचकर पुनः पुनः नूतन जीवन प्राप्त करती है। यद्यपि किसी समय ऐसा भी मालूम होता है कि उसका पूर्णध्वंस आसन्न है, तथापि आत्मा की शक्ति से वह पुनरुज्जीवित होकर उठने में समर्थ होती है एवं एक अधिकतर गौरव के युग का आरम्भ कर सकती है। भारत का इतिहास इसी प्रकार की एक जाति का इतिहास है।

जिस प्रधान भाव ने भारतवासियों के जीवन, शिक्षा-दीक्षा और सामाजिक आदर्श को नियन्त्रित किया है वह यह है मनुष्य की प्रकृतिसत्ता आत्मा का सन्धान करना एवं जीवन को इस प्रकार से व्यवहृत करना जिसमें वह आत्मलाभ के लिए सहायक हो एवं मनुष्य अज्ञ प्राकृत जीवन से ऊपर उठ कर अध्यात्म-जीवन के अन्दर अपने को प्रतिष्ठित कर सके। हाँ, यह ठीक है कि पहले देह, प्राण और मन का नीचे के प्राकृत जीवन का विकास साधन करके ही इस प्रकार का अध्यात्म-जीवन लाभ करना मनुष्य के पक्ष में सम्भव है। यह जो अध्यात्म-आदर्श का सर्वव्यापी प्रभाव है, भारत ने कभी इसको सम्पूर्णभाव से विस्मरण नहीं किया, यद्यपि उसको बाह्य जीवन में अनेक संकटों में फँसना पड़ा है एवं राष्ट्र और समाज में बहुत बाहरी परिवर्तन करना पड़ा है। किन्तु समाज-जीवन को मनुष्य की सत्य आत्मा के रूप में गठित करना, मनुष्य के अन्दर जो अध्यात्म-सत्ता है उसी को समाज में विशेषभाव से प्रकट करना अतिशय कठिन है। धर्म, चिन्ता, शिल्प, साहित्य प्रभृति मन के कार्यों में अध्यात्मसत्ता का प्रकाश करना अपेक्षाकृत अधिक आसान है और उतना कठिन नहीं है एवं यद्यपि इन सब कार्यों में भारत अति उच्च सीमा पर पहुँच सका था, तथापि बाह्य सामाजिक जीवन में आत्मा का नितान्त आंशिक प्रकाश करने एवं नितान्त असम्पूर्ण परीक्षा करने के अतिरिक्त और कुछ अधिक करना सम्भव नहीं हुआ। रूपक के द्वारा आध्यात्मिकता का साधारण प्रभाव, जीवन के सभी स्तरों में अध्यात्मसाधना का स्पर्श, समाज जीवन का एक विशेष ढाँचा, अध्यात्म-आदर्श के अनुकूल संस्थाओं की सृष्टि—केवल इन्हीं को कार्य में परिणत करना सम्भव हुआ था। मनुष्य के जीवन और कर्म के जो दो प्रथम लक्ष्य—अर्थ और काम—भारतीय प्रथा में स्वीकृत हुए थे, राष्ट्रव्यवस्था, समाज-व्यवस्था, अर्थ-नैतिक व्यवस्था इन्हीं दोनों लक्ष्यों के स्वाभाविक क्षेत्र थे। जीवन के इस बाहरी अंग की ओर धर्म को केवल आंशिक भाव से लाने के सिवा और अधिक कुछ करना कहीं पर भी सम्भव नहीं हुआ। और राजनीति के क्षेत्र में धर्म का स्थान तो बहुत ही कम था; क्योंकि नीति-धर्म का अनुसरण करके राजनैतिक कार्य करने की चेष्टा साधारणतः एक प्रकार के छल के सिवा और कुछ नहीं था। समाज के समष्टिगत बाह्य जीवन के साथ मोक्ष वा अध्यात्म-जीवन का प्रकृत संयोग या समन्वय करना आदर्श रूप से भी कहीं पर अनुसृत हुआ था कि नहीं, इसमें सन्देह है। इस विषय में कृतकार्य होना तो दूर की बात है, मानव-जाति आज पर्यन्त इस प्रकार की परिणत अवस्था को नहीं पहुँची है। इसी लिए हम लोग यह देखते हैं कि भारत में मोक्षलाभ की साधना व्यक्तिगत जीवन की ही उच्चतम साधना गिनी गई है, किन्तु राष्ट्र, समाज और अर्थनैतिक व्यवस्था को केवल धर्म के द्वारा ही नियंत्रित करने की चेष्टा की गई है, अध्यात्म-जीवन का आदर्श छाया की भाँति केवल आड़ में रक्खा गया है। भारत का प्राचीन समाज इससे अधिक अग्रसर नहीं हो सका। किन्तु इस चेष्टा को उसने छोड़ा नहीं, धैर्य के साथ वह इसमें लगा रहा एवं इससे ही भारत की समाज-व्यवस्था ने एक विशेष प्रकार का रूप प्राप्त किया है। भारत का यह जो पुरातन आदर्श—आध्यात्मिकता के साथ जीवन का समन्वय करना, गम्भीरतर अध्यात्मसत्ता के ऊपर मनुष्य की समष्टिगत

सत्ता के जीवन और कर्म को प्रतिष्ठित करना, हम लोगों के जीवन की जो अध्यात्म सम्भावनायें अभी तक प्रकट नहीं हुई हैं उनके ऊपर समाज को प्रतिष्ठित करना एवं इस प्रकार जाति के जीवन को अध्यात्म-भाव में गठित करना जिससे वह समग्र मानव-जाति की महत्तर आत्मा की लीला हो जाय, विराट् पुरुष की एक सज्ञान समष्टिगत सत्ता और शरीर हो जाय—यह आदर्श और लक्ष्य शायद भविष्यत् में भारत को ही सफल होगा। लक्ष्य को और भी पूर्ण और प्रसारित करके, और भी पूर्णतर अभिज्ञता, और भी निश्चित ज्ञान प्राप्त करके भविष्यत् भारत ही इस प्रकार से अध्यात्मसत्ता के ऊपर समाज-जीवन को प्रतिष्ठित कर सकेगा।

और भी एक विषय लक्ष्य करने योग्य है, जिसके कारण भारत की प्राचीन राष्ट्र-व्यवस्था में और योरपीय राष्ट्र-व्यवस्था में पार्थक्य है एवं जिसके कारण पाश्चात्य आदर्श के अनुसार भारत के राष्ट्र-जीवन का विचार नहीं किया जा सकता है। मानव-समाज को पूर्णतम विकास की अवस्था में पहुँचने के लिए क्रमविकास के तीन स्तर से होकर जाना होता है। प्रथम वह अवस्था है जिस समय समष्टिगत जीवन के अनुष्ठान और कर्म-समूह उसके जीवन की शक्ति और धारा से स्वतः स्फूर्त्त होते हैं। इस समय उसकी सब वृद्धि, सब रूप और संस्था, रीति-नीति, आचार-व्यवहार जीवन की स्वाभाविक गति से विकसित होते हैं—इन सबकी प्रेरणा प्रधानतः उसके जीवन के मग्नचैतन्य के (sub-conscious) स्तर से आती है—बिना किसी इच्छा के किये जाने पर भी इन सबसे होकर उस जाति के समष्टिगत मनःस्वत्त्व, प्रकृति, शरीर और प्राण की आवश्यकतायें स्वयं ही प्रकाशित होती हैं; वे टिकती हैं अथवा परिवर्तित होती हैं—कुछ तो भीतर के दबाव से और कुछ समष्टिगत मन और प्रकृति के ऊपर पारिपार्श्विक अवस्था के दबाव से। इस अवस्था में लोग आत्मचेतन (self-conscious) होकर सज्ञानतः प्रवृत्ति को परिचालित करना नहीं जानते हैं, समष्टिगत भाव से विचार करना नहीं जानते हैं एवं वे समस्त समष्टि-जीवन को बुद्धि-विचार के द्वारा नियन्त्रित करने की चेष्टा नहीं करते हैं, परन्तु प्राण की अनुभूति के अनुसार जीवन-यापन करते हैं। अन्यान्य प्राचीन और मध्ययुग के जाति-सङ्घों की भाँति भारतीय समाज और राष्ट्र का प्रथम ढाँचा इसी प्रकार की अवस्था में बना था; किन्तु बाद में जब सामाजिक आत्म-चेतना जागृत हुई उस समय भी वही प्राथमिक ढाँचा वर्जित न होकर और भी गठित, वर्द्धित और सुनियंत्रित किया गया, अतएव वह कभी राजनीतिज्ञ स्मृतिकारों वा समाजकर्त्ताओं के द्वारा नहीं रचा गया, वह भारतवासी के प्रकृति के अनुकूल, सजीव और सुदृढ़ समाजतन्त्र था और उसके मन और प्राण की अनुभूति सहजात संस्कार के अनुरूप थी।

समाज-विकास का द्वितीय स्तर जब प्रारम्भ होता है उस समय जाति का समष्टि-गत मन क्रमशः अधिक मात्रा में बुद्धि में सचेतन होता है—प्रथमतः अपेक्षाकृत शिक्षित व्यक्तियों के अन्दर, बाद को और भी साधारण भाव से, प्रथमतः स्थूल भाव से, बाद को अधिक-अधिक सूक्ष्म-भाव से जीवन के सब क्षेत्रों में। उस समय जाति समष्टिगत भाव से अपने जीवन, ध्यान-धारणा, प्रयोजन और अनुष्ठान इन सबको विकसित चिन्ताशक्ति के आलोक से पर्य्यालोचना करती है एवं अन्त में विश्लेषणमूलक और गठनमूलक बुद्धि के द्वारा सब पर विचार करती है। इस अवस्था में बहुत कुछ सम्भावनायें रहती हैं, पर इस अवस्था की विपत्तियाँ भी कम नहीं हैं। परिष्कार बुद्धि एवं वैज्ञानिक ज्ञान की वृद्धि से जो सुविधायें सभी समय प्राप्त होती हैं, समाज की इस अवस्था में प्रथमतः वही सुविधायें प्राप्त की जाती हैं। इसकी चरमपरिणति सुनियंत्रित दक्षता है। विश्लेषणमूलक और गठनमूलक बुद्धि के, वैज्ञानिक बुद्धि के पूर्ण प्रयोग के फलस्वरूप यह दक्षता प्राप्त होती है। समाज-विकास के इस स्तर में एक और भी महत्तर फल उत्पन्न होता है। इस स्तर में महान् और उज्ज्वल भावों और आदर्शों का आविर्भाव होता है। ये सब आदर्श मनुष्य को प्राणों की क्रिया की सीमा के ऊपर ले जाना चाहते हैं—मनुष्य को उसकी आदिम, सामाजिक, अर्थ-सम्बन्धी, राजनैतिक आवश्यकताओं और

आकांक्षाओं से ऊपर ले जाना चाहते हैं, गतानुगतिक आचार-अनुष्ठान के ऊपर ले जाना चाहते हैं, समष्टिगत जीवन के सम्बन्ध में निर्भीक परीक्षा की प्रेरणा उपस्थित करते हैं एवं इस प्रकार से और भी उच्चतर समाज-जीवन की सम्भावना का पथ खोल देते हैं। जीवन के ऊपर इस प्रकार की वैज्ञानिक बुद्धि का प्रयोग एवं इसको उच्चतम फलस्वरूप शैथिल्यशून्य, सुसम्पन्न, सुशिक्षित और सुसज्जित दक्षता, इस प्रकार के महान् सामाजिक और अर्थसम्बन्धी आदर्श का सज्ञानतः अनुसरण एवं इस चेष्टा के निदर्शन-स्वरूप विशेष क्षेत्र में समाज-जीवन की उन्नति—योरप की सामाजिक और राजनैतिक चेष्टा के फलस्वरूप, सभी विशेष सुविधायें प्राप्त हुई हैं, उसमें अन्य चाहे जितनी असुविधा अथवा असम्पूर्णता हो।

किन्तु बुद्धि जब इस प्रकार जीवन के उपादानों के ऊपर एकमात्र नियन्ता होने का दावा करती है तब वह यह देखना नहीं चाहती है कि समाज एक सजीव वस्तु है और सजीव-भाव से इसका विकास हो रहा है, परन्तु वह समाज को इस प्रकार देखती है, मानो वह एक जड़-यन्त्र है जो इच्छानुसार परिचालित किया जा सकता है, ईंट, काठ या लोहे की भाँति प्राणहीन जड़ पदार्थ की तरह जो बुद्धि की झक के अनुसार गठित किया जा सकता है। बुद्धि बहुत ही अधिक कूट तर्क और मतवाद की रचना करके जाति के जीवन के सहज सूत्रों को खो बैठती है, जाति के जीवन के निगूढ़ मूल के साथ उसका जो योग-सूत्र है उसको छिन्न कर देती है। इसका फल यह होता है कि बाहरी संस्था और पद्धति, क़ानून और शासन-प्रणाली का अत्यधिक भाव से भरोसा किया जाता है और जीवित जाति के बदले एक यंत्रवत् राष्ट्रीय संस्था का गठन करने की ओर ही नाशक झुकाव होने लगता है। जो चीज़ समाज-जीवन के लिए एक प्रकार की सहायता है, यन्त्रमात्र है, वह समाज के जीवन का स्थान ग्रहण करने की चेष्टा करती है। इस प्रकार एक शक्तिशाली, किन्तु यन्त्रवत् और कृत्रिम संस्था की सृष्टि होती है। बाहर यह लाभ होता है कि उसके मूल्य-स्वरूप जाति के जीवन का विकास रुक जाता है। एक स्वाधीन और प्राणवान् जाति के शरीर में सजीव भाव से आत्मविकासशील समष्टि-आत्मा का जो जीवन रहता है वह नष्ट हो जाता है। वैज्ञानिक बुद्धि की यही भूल—यान्त्रिकपद्धति के सार्वानिक बोझ के मारे प्राण और आत्मा के सहजोपलब्धि की क्रिया का निग्रह करना—योरप की दुर्बलता है। इसी ने योरप की आशा को धोखा दिया है एवं योरप को इसने अपने उच्चतर आदर्शों की प्रकृत-सिद्धि नहीं प्राप्त करने दिया है।

समष्टिगत सामाजिक एवं व्यष्टिगत मानवजीवन के क्रमविकास के तृतीय स्तर में पहुँचने पर ही उन आदर्शों का प्रकृतमूल और सत्यस्वरूप जाना जा सकता है जिनको मनुष्य की चिन्ता-शक्ति ने प्रथम ग्रहण तथा अनुसरण किया था वे आदर्श किस प्रकार कार्य में परिणत किये जा सकते हैं वह उपाय और प्रतिज्ञा भी जानी जा सकती है। तब सर्वाङ्गसिद्ध समाज सुदूर कल्पना या स्वप्नमात्र नहीं रहता है। जितने दिनों तक समाज इस तृतीय स्तर तक नहीं पहुँच जाता है उतने दिन तक आदर्श समाज चमकीले मेघ की भाँति केवल दूर भागता जाता है। वह सर्वदा मनुष्य की आशा को वंचित करता रहेगा। मनुष्य उसको पकड़ नहीं पायेगा। यह तृतीय अवस्था तब आवेगी जब समाज में मनुष्य और भी गम्भीर भाव से जीवन यापन करना आरम्भ करेगा, जिस समय वह सामाजिक जीवन को मुख्यतः प्राण की आवश्यकता, प्रेरणा और सहजोपलब्धि के द्वारा एवं गौण विचार बुद्धि के सिद्धान्त के (theory, मतवाद) अनुसार भी नहीं परिचालित करेगा, वरन मनुष्य अपनी महत्तर सत्ता वा आत्मा का पता पावेगा। आत्मा के ऐक्य, सानुभूति, स्वतः स्फूर्त्त स्वाधीनता और सजीव विधि-व्यवस्था के अनुसार समष्टिगत जीवन को नियन्त्रित करेगा। स्वाधीन आत्मा में ही व्यष्टिगत और समष्टिगत जीवन, सिद्धि और ऐक्य की नीति पाते हैं। इस आदर्श के अनुसार प्रयत्न करने के लिए उपयुक्त अवस्था अभी तक कहीं पर नहीं मिली है, क्योंकि ऐसी अवस्था केवल

तभी आ सकती है जब अध्यात्म-जीवन में पहुँचने और प्रतिष्ठित होने की चेष्टा केवल व्यक्तियों के लिए असाधारण साधना नहीं रहेगी अथवा यह चेष्टा केवल लौकिक धर्मों के रूप में अवनत नहीं होगी, बरन यह मानव-जीवन की आवश्यकता समझी जाकर स्वीकृत और अनुसृत होगी एवं लोग समझेंगे कि अध्यात्म-जीवन को ठीक सच्चे ढंग से प्राप्त करके ही मानव-जाति क्रमविकास में और एक पद अग्रसर होगी।*

[ असमाप्त

—अनिलवरण राय

* श्रीयुत अरविन्द का एक लेख।

# कबीर

मानव-जीवन की रहस्यमय वीणा के तुम कोमल राग !
शान्त, स्निग्ध कविता-बाला के मुख-मण्डल के अरुण सुहाग !!
तुम आये उस विषम काल में, अन्धकार में ज्योति-समान
युग युग तक वह कीर्ति-कहानी करती रहे वसुन्धरा गान।
ज्ञान-प्रदीप जलाया मन में, भक्ति-मुक्ति का जो साधन;
बड़े प्रेम से हमें सिखाया करना प्रभु का आराधन।
कहा—'ईश कल्पनातीत हैं रूप अगोचर सर्वेश्वर
फिर क्यों बजती है रणभेरी, मन में राग द्वेष भर कर ?
माला एक फूल, हैं शत शत, तारे बहुत, एक आकाश
अपना अपना कार्य करें सब क्यों गायें वे राग-विनाश ?
मार्ग बहुत हैं लक्ष्य एक है, फिर आपस का यह दुर्भाव !
साईं के चरणों के सम्मुख किसी तरह का भेद न भाव।

भिन्न भिन्न धर्मों के तुम थे ऐक्य-विधायक, शक्ति-अनन्त,
जीवन की शासक विभूतियाँ प्रकटीं तुममें हो निर्द्वन्द।
भक्ति-भाव-सूने मानस में भर दो वह प्रभु का विस्मय !
मेरे अँधियारे जीवन में ज्योति जगा दो ज्योतिर्मय !!

—श्रीरत्नचन्द्र छत्रपति

# धोखा-धड़ी

[ सरस्वती के गत अङ्क में धोखा-धड़ी का जो अंश प्रकाशित हुआ है उसमें पाठकों ने प्राण बाबू की कारुणिक दशा का वर्णन पढ़ा होगा। पत्नी के आकस्मिक वियोग से अधीर होकर प्राण बाबू ने आफ़िस का सारा काम थाकोहरि और रामयदु के ऊपर छोड़ दिया था, स्वयं आँख मूँद कर दस्तख़त भर कर देते थे। उन्हीं दिनों में उपयुक्त अवसर पाकर थाकोहरि ने उनके नाम से आफ़िस की एक लम्बी रक़म का चेक कैश कराकर किसी दूर देश का रास्ता लिया। आफ़िस में अपना विश्वास सुरक्षित रखने के लिए प्राण बाबू मकान आदि बेचकर वे रुपये चुकाने का प्रबन्ध कर रहे थे कि रामयदु ने अपने कुचक्रों से उनका सारा सम्मान मिट्टी में मिला दिया। परिणाम-स्वरूप आत्महत्या के द्वारा उन्हें मृत्यु की ही शरण लेनी पड़ी। थाकोहरि के भागने पर रामयदु ने आफ़िस के साहब लोगों और प्राण बाबू के हृदय में किस प्रकार भ्रम फैलाने का प्रयत्न किया, अपमान तथा मानसिक यन्त्रणाओं को सहन करने में असमर्थ होकर प्राण बाबू ने किस प्रकार आत्महत्या की, अन्त में रामयदु ने उनकी सारी सम्पत्ति तथा पद पर किस प्रकार अपना अधिकार जमा लिया, इन बातों का विवरण इस अंक में दिया जा रहा है। ]

( २५ )

दोपहर के समय प्राण बाबू आफ़िस गये। वहाँ पहुँचते ही उन्होंने देखा कि दो आडीटर हिसाब के सारे रजिस्टर लेकर आडिट कर रहे हैं। यह देखते ही उनका मुँह सूख गया। उन्होंने सोचा कि थाकोहरि की चोरी खुले बिना रह ही नहीं सकती। साथ ही मेरा अपमान भी अनिवार्य है। उन्हें ऐसा मालूम पड़ रहा था, मानो सारा आफ़िस निस्तब्ध है और सब लोग मेरी ओर घूमती हुई निगाह से देख रहे हैं। प्राण बाबू सङ्कोच और लज्जा के मारे बहुत ही उदास भाव से चोर की तरह अपनी जगह पर बैठने जा रहे थे कि इतने में बड़ी उतावली के साथ रामयदु उनके पास गये और मुँह पर दुख का भाव प्रकट करके कहने लगे—

साहब लोगों को थाकोहरि की चोरी का पता न जाने कहाँ से चल गया। उन्होंने मुझे आपसे कहने को कहा है कि जब तक हिसाब की जाँच न हो जाय तब तक आप आफ़िस में न आइए।

प्राण बाबू का मुँह काला हो गया। एक बार रामयदु के मुख की ओर ताक कर वे दरवाज़े की ओर बढ़े। लज्जा और अपमान के मारे उनका मस्तक इतना नीचा हो गया था कि किसी की ओर देख तक नहीं सकते थे। जहाँ पर उन्होंने इतने दिन तक सिंह के-से पराक्रम से प्रभुत्व किया था, वहीं से अपमानित होकर निकल कर जाते समय उनके पैर मानो टूटे जा रहे थे। किसी तरह

आफ़िस से निकल कर गाड़ी पर जाकर वे सवार हुए, और अपमान के मारे व्याकुल होकर अचेत-से बैठे रहे।

रामयदु ने जैसे ही प्राण बाबू को लौट कर जाते देखा, साहबों के कमरे में जाकर उन्हें सलाम किया और कहने लगे कि प्राण बाबू आफ़िस में आये थे, हिसाब की जाँच होते देखकर चले गये। उन्होंने कहा है, साहब लोगों से कह दीजिए कि जब तक हिसाब की जाँच होती रहेगी मैं आफ़िस न आऊँगा।

साहबों ने कहा—अच्छी बात है। तो आप ही आज से आफ़िस का चार्ज ले लीजिए।

रामयदु ने मस्तक झुका कर और सलाम करने के बहाने से हाथ मस्तक से लगाकर अपनी सन्तोष की हँसी छिपाते हुए साहबों के पास से हट आये और आफ़िस में जाकर प्राण बाबू के आसन पर जम गये।

आफ़िस से लौटकर घर पहुँचने पर भी प्राण बाबू मानो अपराध प्रकट हो जाने के भय से सङ्कुचित होकर उतावली के साथ अपने कमरे में घुस गये। नौकर-चाकर की ओर भी सिर उठाकर देखने का साहस उन्हें नहीं हो रहा था। कमरे में जाकर जब उन्होंने देखा तब कृष्णकली सो रही थी। कन्या की ओर दृष्टि जाते ही, उनके हृदय को ठेलकर एक लम्बी साँस निकल पड़ी।

कमरे में बैठे ही बैठे प्राण बाबू ने एक पत्र लिखा। अपना विल निकाल कर उसमें कुछ परिवर्तन किया। तब टेलीफ़ोन हाथ में लेकर आफ़िस में रामयदु को बुलाया।

फ़ोन के पास रामयदु के पहुँचने का सङ्केत मिलते ही प्राण बाबू ने कहा—मुकुर्जी महाराज, आप ज़रा देर के लिए 'शीघ्र' ही आने की कृपा कीजिए। मैं दीर्घ काल के लिए किसी दूर देश की यात्रा कर रहा हूँ। आपको मुझे अपना कुछ भार सौंप जाना है।

यह समाचार पाते ही रामयदु का चेहरा प्रफुल्लित हो उठा। उन्होंने सोचा कि आफ़िस में प्राण बाबू की दीर्घकाल तक की अनुपस्थिति में मैं ही बड़ा बाबू बनकर रहा हूँ। मन में इस कल्पना का उदय होते ही आनन्द से गद्गद होकर उन्होंने कहा—मैं अभी आता हूँ। आपका सारा कार्य-भार सँभाल लूँगा। आप निश्चिन्त होकर कुछ दिन तक घूम आइए।

रामयदु ने यह बात किसी से नहीं बतलाई कि प्राण बाबू विदेश में घूमने जा रहे हैं। उसने सोचा कि यदि किसी तरह कुछ दिनों के लिए प्राण बाबू को निरुद्देश यात्रा के लिए भेज पाऊँ तो साहब लोगों को अनायास ही समझा दूँ कि ग़बन करके प्राण बाबू फ़रार हो गये हैं। रामयदु ने झटपट हाथ का काम निपटा कर साहब लोगों से छुट्टी ली और टैक्सी पर बैठकर प्राण बाबू के घर की ओर दौड़े।

रामयदु को टेलीफ़ोन से बुलाने के बाद ही प्राण बाबू ने बिस्तरे के पास आकर सोती हुई कृष्णकली का एक बार मुँह चूमा और फिर उसके मस्तक पर हाथ रक्खे हुए बड़ी देर तक उसे मन ही मन आशीर्वाद देते रहे। अन्त में कृष्णकली के बिस्तरे के पास ही एक दूसरी चारपाई पर लेटकर उन्होंने एक शीशी से थोड़ी-सी कोई चीज़ निकाल कर मुँह में डालकर निगल ली और हाथ जोड़ करके अशक्त भाव से पड़ रहे।

आफ़िस से आकर रामयदु ने जब उस कमरे में प्रवेश किया तब उन्होंने देखा कि प्राण बाबू निस्तब्ध होकर बिस्तरे पर पड़े थे और उनके हाथ में एक शीशी थी।

यह अवस्था देखते ही रामयदु का जी पहले धक् से हो उठा। मनुष्य की स्वाभाविक परोपकारशीलता ने उन्हें उद्विग्न कर दिया। वे सोचने लगे—प्राण बाबू ने क्या आत्म-हत्या कर ली है? यह क्या अनिष्ट हुआ! क्या इसी मतलब से उन्होंने कहा था कि मैं दूर देश की यात्रा करूँगा?

रामयदु इस सोच-विचार में पड़े ही थे कि इतने में ही उनके मन में यह बात भी उदय हो आई कि आत्मघातक के कमरे में मैं अकेला ही हूँ, कहीं हत्या का अपराध मेरे ही मत्थे न मढ़ दिया जाय। यह सोचकर वे चिल्ला-चिल्लाकर नौकरों को पुकारने लगे।

सारे नौकर-चाकर दौड़ते हुए आकर उस कमरे में इकट्ठा होगये। इन लोगों की आवाज़ से कृष्णकली की नींद टूट गई। कमरे में इतने आदमियों का समा-

और सबके चेहरे पर व्याकुलता का भाव देखते ही वह झटपट उठकर बैठ गई और अवाक् होकर इन लोगों की ओर चकित भाव से ताकने लगी।

रामयदु ने पहले ही एक नौकर से कृष्णकली को वहाँ से हटा ले जाने को कह दिया। उन्होंने कहा कि इसे गोद में लेकर थोड़ी देर तक टहलाओ।

कृष्णकली को कमरे से निकाल कर बाहर ले जाते ही रामयदु ने उतावली के साथ प्राण बाबू के पास जाकर देखा कि उनके हाथ की शीशी के लेबिल पर लिखा है—पोटाशियम सायनाइड।

ये दो शब्द पढ़ते ही रामयदु का कलेजा काँप उठा। उन्होंने सोचा—तब तो फिर कोई आशा ही नहीं रही। फिर भी उन्होंने तुरन्त ही प्राण बाबू के दो-तीन डाक्टरों को जो रामयदु के कृपा-पात्र थे, फ़ोन कर दिया, साथ ही पुलिस को भी इस घटना की सूचना दे दी।

नौकर-चाकर पानी के छींटे दे-देकर पंखा हाँकने लगे। उनकी ओर फिरकर म्लान मुख से प्राण बाबू ने कहा—अब यह सब व्यर्थ है, जो होना था वह तो हो चुका।

सबके सब नौकर वहीं बैठकर हाय-हाय करके चिल्लाने लगे।

क्षण भर के बाद ही रामयदु सँभल गये और उनकी स्वार्थ-बुद्धि सजग हो उठी। उन्होंने देखा तो प्राण बाबू के तकिया के नीचे एक लिफ़ाफ़ा पड़ा था, उस पर उन्हीं का नाम लिखा था। उस लिफ़ाफ़े के पास ही एक और काग़ज़ खुला पड़ा था। उन्होंने शीघ्रता के साथ अपने नाम की चिट्ठी उठाकर चुपके से जेब में रख ली और खुले हुए काग़ज़ पर ज़रा-सी दृष्टि डालकर पढ़ा तो उस पर प्राण बाबू लिखकर रख गये थे कि पत्नी के शोक और अपमान से रक्षा पाने के लिए मैंने आत्महत्या कर ली है।

अब रामयदु के मुख की मलीनता बहुत कुछ कम हो गई। वे तुरन्त ही पासवाले कमरे में जाकर अपने नाम का पत्र पढ़ने लगे। लिफ़ाफ़े को खोलते ही रामयदु उसकी एक एक पंक्ति पर बड़े वेग से दृष्टि दौड़ाने लगे। जैसे-जैसे वे पढ़ते जाते उनका मुख और भी विकसित और उज्ज्वल होता जाता था। प्राण बाबू का वह पत्र इस प्रकार था—

श्री श्रीचरणकमलेपु,

प्रणामान्ते निवेदनम्—

मुकुर्जी महाराज, मैं अनन्त धाम को चला। माता-पिता से हीन होकर कृष्णकली रह गई। इसे देखिएगा। उसकी माता के जो गहने रक्खे हैं वे पाँच हज़ार तक के होंगे। सारी स्थावर तथा जंगम सम्पत्ति बेचने पर पचास हज़ार रुपये मिल जायँगे। इसमें से कृष्णकली के भोजन-वस्त्र का व्यय निकालने पर जो कुछ बचे वह उसके विवाह में दहेज़ दे दीजिएगा। एक शिक्षित और सुयोग्य वर देखकर उसका विवाह कर दीजिएगा।

मेरा अन्तिम 'विल' आइरन चेस्ट में रक्खा है। उसमें मैंने आपको कृष्णकली का संरक्षक और वली नियत किया है। आपको छोड़कर मेरा और कोई भी हितैषी और आत्मीय नहीं है। कृष्णकली के मंगल के लिए सम्पत्ति को बेचने और रेहन करने का अधिकार आपको है।

मेरे ऊपर ऋण नहीं है। दूकानदारों का जो कुछ बाक़ी था मैंने सब चुका दिया है। यदि किसी का कुछ बाक़ी भी हो तो आइरन चेस्ट में जो दस हज़ार रुपये रक्खे हुए हैं उनमें से निकाल कर दे दीजिएगा। इन्हीं रुपयों से मेरा श्राद्ध कराइएगा। विशेष आयोजन की आवश्यकता नहीं। केवल कंगालों को भोजन कराने से ही मेरी सन्तप्त आत्मा तृप्त होगी।

आफ़िस का ऋण चुकाने के लिए मूलजी मारवाड़ी के हाथ मकान बेचकर डेढ़ लाख का चेक देने के लिए आफ़िस में गया था। किन्तु साहब लोगों को देने का अवसर नहीं मिला। वही चेक मैंने आपके नाम एंडोर्स करके दस्तख़त कर दिया है। आप उसे आफ़िस के हिसाब में जमा करा दीजिएगा।

आपके ऊपर बहुत सा भार डाले जा रहा हूँ। आप परोपकारशील, धार्मिक और उदार व्यक्ति हैं। मुझ पर कृपा करके यह भार स्वीकार करेंगे और इन कार्यों

का सम्पादन कर देंगे। इसी आशा से मैं यह यात्रा कर रहा हूँ। मैं मुँह से आपसे कुछ भी नहीं कहकर चल सका, केवल इस आशङ्का से कि मेरे महाप्रयाण का आभास पाकर आप मुझे रोकेंगे।

जो कुछ याद पड़ा, लिख दिया। जो नहीं लिख सका उसे आप अपनी बुद्धि, विवेक और धर्म के अनुसार कीजिएगा। यही मेरा अनुरोध है।

कृष्णकली यहीं रहती है, उसे देखिएगा।

परलोकयात्री प्रणत्
श्रीप्राणचन्द्र विश्वास

पत्र को पढ़ते ही रामयदु का मुख आनन्द और प्रसन्नता से विकसित हो उठा। सारा पत्र वे पढ़ भी न पाये थे, कि उन्हें दरवाज़े पर आकर एक मोटर के ठहरने की आहट मिली। रामयदु ने तुरन्त ही उतावली के साथ उस पत्र को तह कर जेब में डाल लिया और वे कमरे से निकल आये। तब उन्होंने मुँह मलीन करके जिस कमरे में प्राण बाबू का मृत शरीर पड़ा था, जाकर प्रवेश किया। ज़रा ही देर में डाक्टर भी आ पहुँचे और उत्कण्ठित स्वर से पूछने लगे—कहिए मुकुर्जी महाराज, क्या मामला है?

हाथ से मस्तक पीट कर रामयदु ने कहा—अब क्या मामला है? सर्वनाश हो गया! हाइड्रोसियानिक ऐसिड!

बड़ी शीघ्रता के साथ जाकर डाक्टर प्राण बाबू के शरीर की परीक्षा करने लगे। थोड़ी देर के बाद वे सीधे होकर खड़े हुए और लम्बी साँस लेकर कहा—होपलेस, डेड एंड गान (कोई आशा नहीं! मर गये)!

देखते ही देखते और भी तीन डाक्टर आये। थाने के दारोग़ा, पुलिस के डिप्टी कमिश्नर, डिप्टी कलक्टर, कारोनर आदि से सारा कमरा भर गया। सभी लोगों ने उन्हें देखकर तथा उनका समाचार सुन कर दुख की साँस ली और कहने लगे—ए क्लियर केस आफ़ स्वीसाइड (स्पष्ट आत्महत्या है)।

मुख पर विषाद की रेखा प्रकट करके रामयदु ने कहा—आप लोग कृपा करके एक सर्टीफ़िकेट देते जाइए, जिससे इतने प्रतिष्ठित व्यक्ति को पोस्टमार्टम के लिए न ले जाना पड़े।

सब लोग एक-स्वर से बोल उठे—अफ़कोर्स, (अवश्य)।

सर्टीफ़िकेट लेकर रामयदु शव को श्मशान में ले जाने की व्यवस्था करने में व्यस्त हो गये। परन्तु घर पर इतने आदमियों का इकट्ठा रहना उन्हें अच्छा नहीं लग रहा था।

( २६ )

प्राण बाबू का दाह-संस्कार करके रामयदु जब घर लौटे तब मनमोहिनी से कहने लगे—माता अन्नपूर्णा की कृपा से हमारा अन्न का भाण्डार पूर्ण हो उठा। प्राण ने तो प्राण ही त्याग दिया, अब यह कलूटी छोकड़ी रह गई है, इससे हम अनायास ही निश्चिन्त हो सकते हैं।

मनमोहिनी ने कहा—अभी यह निरा बच्ची है। जब से आई है, बेचारी बाबू बाबू करके रो रही है। क्या उसका अपना कोई नहीं है?

रामयदु ने कहा—उसकी मा के कहीं कोई नहीं था। लड़कपन में उसे अनाथ देखकर प्राण बाबू के पिता को दया आगई। उन्होंने अपने लड़के के साथ उसका विवाह कर दिया था। प्राण बाबू के कुटुम्ब में शायद कोई होगा। रुपयेवाले के बहुत से कुटुम्बी निकल आते हैं। इसलिए धन के लोभ से कुटुम्बी बनकर कोई न कोई कृष्णकली को लेने आवेगा ही। परन्तु उन्होंने जो विल लिखा है उसमें मुझे कृष्णकली की सम्पत्ति का संरक्षक बनाया है। यदि कोई आत्मीयता प्रमाणित करके लेने का प्रयत्न ही करेगा तो वह कृष्णकली को खुशी से ले जा सकेगा, परन्तु सम्पत्ति में तो वह हाथ न लगा पावेगा, क्योंकि सम्पत्ति दुनाली बन्दूक़ है। बैनामा का दस्तावेज़ भी है और विल भी। किसी न किसी के ज़रिये से मैं इसे बचा ही लूँगा।

मनमोहिनी ने गम्भीर भाव से कहा—परन्तु अधिक लोभ करने से कहीं झंझट में न पड़ना पड़े। जो कुछ हाथ में आगया है वही बहुत है।



शापोद्धार

'मुनि न होइ यह निसिचर घोरा।
मानहुँ सत्य वचन प्रभु मोरा॥'

रामयदु ने कहा—कोई भय नहीं है रे पगली। रामयदु सारा मनसूबा गाँठ कर किसी काम में हाथ लगाते हैं।

प्राण बाबू के घर की सारी जंगम सम्पत्ति उठाकर रामयदु ने अपने घर में रख ली, इसमें एक दिन की भी देरी न हुई। उन्होंने सोचा कि यदि पुराने नौकर-चाकर रह गये तो वे प्राण बाबू की सम्पत्ति के गवाह बने रहेंगे और बहुत सम्भव है, कृष्णकली से बता भी देंगे कि उसके पिता के पास कितना ऐश्वर्य था। यह सोचकर उन्होंने उन सबको अलग करने का निश्चय किया और सबसे कहने लगे—ऋण से बाल-बाल बँधकर बाबू साहब ने तो आत्महत्या कर ली, इससे उनकी लड़की का भार मेरे ही ऊपर पड़ा। मैंने उनका नमक खाया है। उसे तो खदेड़ सकता नहीं। जैसे मैं खाऊँ-पहनूँगा, वैसे ही कृष्णकली का भी प्रबन्ध करूँगा ही। इसके अतिरिक्त उसका विवाह भी तो मुझे ही करना पड़ेगा। बाबू साहब तो एक पैसा भी नहीं छोड़ गये। मेरा इतना सामर्थ्य नहीं है कि तुम लोगों को रख सकूँ, इससे तुम लोग अपना अपना कहीं और प्रबन्ध कर लो। बाद को ज़रूरत पड़ेगी तो ढूँढ़ कर बुलवा लूँगा। तुम लोग बहुत पुराने और विश्वासी नौकर हो, इसलिए तुम्हें यों ही हटा देना भी अच्छा नहीं लगता, इससे एक एक साल की तनख़्वाह भी देकर बिदा करूँगा। मेरे पास जब तक एक पैसा भी रहेगा, बाबू साहब की बदनामी न होने दूँगा।

नौकर लोग आँसू पोंछते पोंछते और रामयदु की उदारता तथा सदाशयता की प्रशंसा मुक्तकण्ठ से करते करते बिदा हो गये।

इसके बाद रामयदु गये मूलजी सेठ के पास। उनसे मिलकर उन्होंने कहा—सेठजी, प्राण बाबू तो पहले ही से अपने सारे मकान मेरे नाम बैनामा कर चुके थे। उन्हें जब और रुपये की ज़रूरत पड़ी तब कहने लगे—देखिए, मुखर्जी महाराज, पचास-साठ हज़ार रुपये की ज़रूरत है, आप यदि उधार दे सकते तो अच्छा था। परन्तु मेरे पास तो इतना रुपया था नहीं कि उठाकर उन्हें दे देता, इससे जो मकान ख़रीदा था वही रेहन करके प्राण बाबू के लिए रुपये का प्रबन्ध कर दिया। मेरा वह पचास हज़ार रुपया मारकर प्राण बाबू ने तो आत्महत्या कर ली। परन्तु बीच में पड़कर मैंने जो रुपया आप से दिलाया है उसका ज़िम्मेदार मैं ही हूँ, यद्यपि मैं चाहता तो आपको धोखा दे सकता था। आप अपने रुपये का हिसाब कर लीजिए, परन्तु कुछ कम लेना होगा। सेठजी, कुछ घाटा आपको पड़े और कुछ मुझे।

रामयदु की बातों के उत्तर में मूलजी कुछ कहने ही जा रहे थे, परन्तु उनकी बात काटकर उन्होंने कहा—अधिक छोड़ने को मैं नहीं कह रहा हूँ। केवल दस हज़ार की बात है। आख़िर मामले-मुक़द्दमे में भी तो इतने रुपये लग जायँगे।

मूलजी ने कहा—यह क्या बात है बाबू साहब? मैंने तो आपके विश्वास पर रुपया दे दिया था।

सेठजी की बात समाप्त भी न हो पाई थी कि रामयदु बोल उठे—यदि आपको आपत्ति है तो मैं अधिक आग्रह न करूँगा। अब तो बीच में पड़ ही गया हूँ, आपकी पाई-पाई का मैं ज़िम्मेदार हूँ। जब तक मेरे पास एक पैसा भी रह जायगा, मैं किसी को धोखा न दूँगा। आप अपने रुपये ले लीजिए, केवल सूद भर छोड़ दीजिए।

मूलजी ने सन्तुष्ट होकर कहा—अच्छी बात है। सूद मैं ख़ुशी से छोड़ दूँगा। पाँच सौ रुपये की तो बात है।

प्राण बाबू ने आफ़िस का ऋण चुकाने के लिए जो रुपया इकट्ठा कर रक्खा था उसमें से निकाल कर मूलजी का ऋण चुका दिया और सूद के पाँच सौ रुपये की बचत के कारण प्रसन्न प्रसन्न घर लौट आये।

रामयदु का भाग्य बहुत ज़ोर का था। उनकी कीर्ति शहर भर में फैल गई कि उन्होंने प्राण बाबू का ऋण अपने पास से चुकाया है। बाज़ार में उनकी साख भी बढ़ कर दुगुनी होगई। समाचार-पत्रों में रायबहादुर रामयदु मुखोपाध्याय का गुण-गान होने लगा।

दूसरे दिन आफ़िस में जाकर रामयदु साहब लोगों के पास गये। उन लोगों ने कहा कि बड़े दुख की बात है कि प्राण बाबू ने आत्महत्या कर ली। हम लोगों से यदि वे कहते तो ऋण चुकाने के लिए उन्हें बहुत सा समय दे

सकते थे। धीरे धीरे करके वे अदा कर देते। फिर वास्तव में वह ऋण उनका तो था नहीं, यद्यपि ज़मानत करने के कारण धर्म और न्याय के अनुसार वे उन रुपयों के लिए ज़िम्मेदार थे।

रामयदु मुख पर विषाद की रेखा प्रकट करके कहने लगे—उन्होंने मुझे यदि इशारा भी कर दिया होता तो अपनी सारी सम्पत्ति रेहन करके उनके लिए रुपये का प्रबन्ध कर देता।

साहब लोगों ने प्रसन्न होकर कहा—आप जैसा दुख का साथी पाना बड़े सौभाग्य की बात है रायबहादुर। हम लोगों ने अख़बार में पढ़ा है कि आपने अपने पास से प्राण बाबू का बहुत सा ऋण चुकाया है, नौकरों को इनाम दे-देकर बिदा किया है और अनाथ लड़की को आश्रय दिया है। आप धन्य हैं।

ये बातें सुनकर रामयदु ज़रा-सा सहम गये। उन्होंने कहा—प्रशंसा के योग्य मैंने कोई भी कार्य नहीं किया। मेरे पास जो कुछ है वह सब प्राण बाबू का है। आपकी यदि आज्ञा हो तो आफ़िस का भी रुपया चुकता कर दूँ।

साहब लोगों ने बहुत ही सन्तुष्ट होकर कहा—नहीं, नहीं, आपको रुपये देने की आवश्यकता नहीं है। प्राण बाबू की कार्यकुशलता के कारण हम लोगों ने बहुत लाभ उठाया है। उनके नाम डेढ़ लाख का ख़र्च डाल दिया। इसके अतिरिक्त उनका प्राविडेंट फण्ड का भी कुछ रुपया है। थाकोहरि यदि पकड़ा गया तो उससे भी कुछ रुपये वसूल हो जायँगे। ख़ैर, इन रुपयों के मिलने या न मिलने की कोई बात नहीं है, परन्तु आपने यह प्रस्ताव करके जिस सद्भावना का परिचय दिया है उसके लिए हम शतशः धन्यवाद देते हैं। रायबहादुर, आज से आपही आफ़िस के बड़े बाबू बनाये जाते हैं।

यह सुनते ही रामयदु का चेहरा खिल गया। उन्होंने झुककर सलाम किया और कहा कि मैं आपका असीम अनुग्रह का पात्र बनने की हृदय से चेष्टा करूँगा।

रामयदु के हृदय की अभिलाषा पूर्ण हुई। उनकी जीवनरूपी नौका अनुकूल वायु की सहायता से किसी भी लाभदायक व्यापार के बन्दरगाह में जाती वहाँ मिट्टी छूने पर भी सोना हो जाती।

कई दिन के बाद एक आदमी ने आकर रामयदु से कहा कि मैं प्राण बाबू का भतीजा हूँ, इससे उनकी सम्पत्ति का उत्तराधिकारी हूँ।

तीक्ष्ण दृष्टि से उनकी ओर ताक कर रामयदु ने कहा कि सम्पत्ति छोड़कर मरने पर बहुत से लोग भतीजे बन जाते हैं। बहुत अच्छा, भतीजे साहब, प्राण बाबू की सम्पत्ति में है एक नकचपटी सी काली-कलूटी लड़की। उसे आप ख़ुशी से ले जा सकते हैं और जोड़-बटोरकर ३ लाख रुपये तक का ऋण भी होगा जिसे मैंने अदा किया है। इसे भी आप ले जाते तो मुझे बड़ा सुख मिलता। जानते हैं साहब, आज-कल के-से समय में इतना रुपया—

उस व्यक्ति ने क्रुद्ध स्वर से कहा—आप धोखा दे रहे हैं।

रुष्ट न होकर हँसते हुए रामयदु ने कहा—अच्छी बात है। आप अपना रास्ता देखिए, जिससे मुझे दरबान को बुलाने की ज़रूरत न पड़े। अदालत का द्वार तो खुला ही हुआ है। कोर्ट-फ़ी वग़ैरह के लिए रुपये आपके बक्स में न हों तो मैं दे दूँ।

यह कहकर रामयदु ने मुट्ठी भर रुपये जेब से निकाल कर भतीजे साहब के सामने छितरा कर फेंक दिये।

प्राण बाबू का भतीजा बनने की कामना करनेवाले महाशय बिलकुल नरम पड़ गये और कहने लगे—आप रुष्ट क्यों होते हैं बाबू साहब। आप बड़े आदमी हैं। आपके साथ मुक़द्दमेबाज़ी करने का सामर्थ्य मुझमें कहाँ है? परन्तु न्याय के अनुसार मुझे भी कुछ मिलना चाहिए।

रामयदु ने ज़रा सा हँसकर कहा—न्याय के अनुसार आपको मिलना चाहिए प्राण बाबू का ऋण और वह लड़की, उसे आप शौक से ले जा सकते हैं, मुझे कोई आपत्ति नहीं है। परन्तु प्राण बाबू का विल, चिट्ठी, दस्तावेज़ वग़ैरह सब मेरे पास हैं, कृष्णकली का पल्ला पकड़कर भी आप मेरी दाल न गला सकेंगे।

यह बात सुनकर वह आदमी सूखा मुँह लेकर चला गया। जाते समय उसने इतना ही कहा—मैं कल फिर आऊँगा। आप ज़रा एक बार स्थिर होकर विचार कीजिएगा कि न्याय और धर्म के अनुसार मुझे कुछ मिलना चाहिए या नहीं।

रामयदु ने कहा—धर्म और न्याय यदि ज़रा भी आपके अनुकूल होता तो प्राण बाबू अपने विल में आपका उल्लेख करना न भूलते।

इसके बाद वह आदमी रामयदु को तंग करने के लिए फिर किसी दिन नहीं दिखाई पड़ा। रामयदु भी बड़ी शीघ्रता के साथ प्राण बाबू की सारी सम्पत्ति अनायास ही अपने क़ब्ज़े में करके निश्चिन्त हो गये।

परन्तु इसके बाद ही एक छोटा-सा उपद्रव और आकर उठ खड़ा हुआ, जिसने रामयदु की स्वच्छन्द जीवन-यात्रा में विघ्न डालने का आयोजन कर दिया। सत्यदास ने आकर कहा—क्या मैं प्राण बाबू के किसी बैनामे में गवाह हूँ।

रामयदु ने हँसकर उत्तर दिया—तुम्हारी स्मरण-शक्ति इतनी क्षीण है ? दस्तावेज़ पर दस्तख़त किया है और याद नहीं है।

सत्यदास ने कहा—उसके सम्बन्ध में तो आपने बतलाया था कि मेरी किसी पुस्तक की रॉयल्टी के सम्बन्ध में प्रकाशक के हाथ लिखा-पढ़ी होगी, इस-लिए तुम गवाही में अपना हस्ताक्षर कर दो। मैंने आपकी बातों पर विश्वास करके सादे स्टाम्प काग़ज़ पर दस्तख़त कर दिया था।

आश्चर्य के साथ घूरते हुए रामयदु ने कहा—किसी से कुछ रुपये खाकर उपद्रव खड़ा करने आये हो ?

सत्यदास ने कहा—रुपया मैंने आप का ही खाया है, किन्तु धर्म की हत्या नहीं कर सकूँगा। आवश्यकता पड़ने पर जो बात सच है, मैं वहीं कहूँगा, यह आपको पहले ही से बताये रखता हूँ।

नाक-भौं चढ़ाकर धमकाते हुए रामयदु ने कहा—मेरे साथ शत्रुता करने से क्या तुम्हारी भलाई होगी ?

नम्र शब्दों में सत्यदास ने उत्तर दिया—मैं आपसे शत्रुता नहीं कर रहा हूँ, परन्तु जो बात सच है उसे छिपाऊँगा नहीं। उसके लिए आप रुष्ट होंगे तो मेरा क्या बस है।

लाल लाल आँखें दिखाकर फिर रामयदु ने कहा—तुम्हें नौकरी और कविता का यश किसकी बदौलत मिला है ?

विनीत भाव से सत्यदास ने कहा—परन्तु इन सब बातों से सत्य कहीं बड़ा है। मेरे पिता ने मेरा नाम रक्खा है सत्यदास।

इसके उत्तर में रामयदु ने केवल इतना ही कहा—अच्छी बात है।

उसी दिन आफ़िस में जाकर रामयदु ने सत्यदास को एक महीने के नोटिस के बदले में तनख़्वाह दे दी और कहा कि तुम पर अब विश्वास नहीं है, तुम अपना रास्ता देखो, मेरे घर पर भी अब तुम्हारे लिए स्थान नहीं है।

सत्यदास ने विनीत-भाव से उन्हें नमस्कार करके कहा—जैसी आपकी आज्ञा हो।

सत्यदास जब आफ़िस से निकलकर चलने लगा तब उसके साथियों ने चुपके से पूछा, उसने कहा, मुझ पर अब उनका विश्वास नहीं रहा।

लोग एक दूसरे से कहने लगे, चोरी की अकेले थाकोहरि ने, विश्वास सब लोगों पर से उठ गया, उस पाजी ने तो सत्यानाश ही कर डाला।

दूसरे दिन रामयदु ने कई समाचार-पत्रों में विज्ञा-पन दिया—

चोरी ! चोरी !! चोरी !!!

सत्यदासदत्त नामक एक व्यक्ति मेरे घर पर रहता था। अपनी असत्यवादिता, असच्चरित्रता तथा विश्वास-घातकता के कारण वह नौकरी से अलग कर दिया गया है। जाते समय वह मेरी एक कापी चुरा ले गया है, जिसमें मैंने बहुत सी अप्रकाशित कवितायें लिख रक्खी थीं। सम्भव है, वह मेरे गुमनाम रामशर्मा का आश्रय लेकर या अपने ही नाम से उन कविताओं को कहीं प्रकाशित करवाने की चेष्टा करे। परन्तु जो लोग मेरी

रचनाओं से परिचित हैं वे मेरी कविताओं की शैली देखते ही पहचान लेंगे कि यह चोरी का माल है। यह व्यक्ति मेरे विरुद्ध और भी बहुत सी कार्यवाहियाँ कर सकता है, अतएव जनता को मैं पहले से ही इस बात की सूचना दिये देता हूँ।

श्री रामयदु मुखोपाध्याय

यह विज्ञापन पढ़ने के बाद सत्यदास ने निराशा की हँसी हँस कर कहा—कवि के रूप में परिचित होने का शौक़ था, जो कुछ लिखकर प्रकाशित करवाया उससे प्रसिद्धि प्राप्त की रामयदु ने, इधर अब कुछ प्रकाशित करवाने का भी रास्ता बंद हो गया। मेरी अपनी चीज़ अब चोरी की हो गई। धन्यवाद है रामयदु की महिमा को और मेरे भाग्य को।

प्राण बाबू की मृत्यु के बारह वर्ष बीत गये। राय-बहादुर रामयदु निर्विघ्नरूप से प्रतिष्ठा-प्राप्त करके समाज तथा आफ़िस में आधिपत्य करते रहे। उनके परिवार में अब तक थोड़ा-बहुत परिवर्तन भी हो चुका है। विवाह हो जाने पर उनकी पुत्रियाँ अपनी अपनी ससुराल चली गईं। उनका पुत्र वनमाली केवल रामयदु का पुत्र होने के ही कारण हर एक परीक्षा में बड़े सम्मान के साथ उच्च स्थान प्राप्त करते करते एम० ए० पास हो गया और लङ्का के महेन्द्र-कालेज का वह प्रोफ़ेसर नियुक्त किया गया। उसे यह पद मिला है रामयदु की ही प्रथम स्त्री के पुत्र प्रियतोष की सहायता से। वही महेन्द्र-कालेज का अध्यक्ष था। रामयदु ने श्वशुर से झगड़ा करके अपनी स्त्री को त्याग दिया था और उन्हें छकाने के लिए उन्होंने दुबारा मनमोहिनी के साथ विवाह कर लिया। परन्तु बाद को न तो रामयदु के श्वशुर ने जाकर उनसे अनुनय-विनय किया और न स्त्री ने ही शरण माँगने की आवश्यकता समझी। इसलिए रामयदु ने भी उनसे किसी प्रकार का सम्पर्क नहीं रक्खा। नाना के ही यहाँ प्रियतोष का पालन-पोषण हुआ और वहीं उसकी शिक्षा-दीक्षा भी हुई। रामयदु की स्वार्थपरायणता का प्रभाव उस पर नहीं पड़ सका, अतएव उसके हृदय को उदार, विस्तृत तथा न्यायनिष्ठ बनने का अवसर मिल गया। प्रियतोष के नाना तथा उसकी माता की मृत्यु हो गई, परन्तु रामयदु ने उसकी किसी तरह की खोज-ख़बर नहीं ली। प्रियतोष को भी जनश्रुति के आधार पर पिता का नाम भर मालूम था, इसके अतिरिक्त उसे और किसी तरह का भी परिचय नहीं मिला था। रामयदु तो उसके प्रति इतने उदासीन थे कि किसी को पता तक नहीं था कि इनके एक स्त्री और थी या उसके गर्भ से उत्पन्न एक पुत्र भी कहीं वर्तमान है। पूरी चौथाई शताब्दी के बाद रामयदु की पुत्र-स्मृति सञ्जीवित हो आई और पुत्रस्नेह उमड़ आया! एकाएक उस दिन जब उन्होंने समाचार-पत्र में देखा कि लङ्का के महेन्द्र कालेज के लिए आवश्यकता है इतिहास के एक अध्यापक की और प्रार्थना-पत्र भेजना होगा उसके अध्यक्ष प्रियतोष मुखोपाध्याय के पास। तब रामयदु ने वनमाली को बुला-कर वह विज्ञापन दिखाया और कहा कि तुम प्रार्थना-पत्र भेजो, मैं और सारा प्रयत्न कर लूँगा। पिता का प्रयत्न कैसा अमोघ है, इस बात की धारणा वनमाली को ख़ूब अच्छी तरह से थी। मन ही मन गद्गद होकर वनमाली ने प्रार्थना-पत्रं रवाना किया। साथ ही रामयदु का भी एक पत्र प्रियतोष के नाम रवाना हुआ। आदि से अन्त तक वह वात्सल्यरस से सराबोर था। पिता का प्रथम पत्र पाकर प्रियतोष को इतनी प्रसन्नता हुई कि कालेज के रिक्त स्थान पर उसने वनमाली को ही नियुक्त किया और मन ही मन उसकी यह भी आशा जाग्रत हो उठी कि कनिष्ठ भ्राता के परिचय-सूत्र से किसी न किसी दिन पिता से भी परिचय हो ही जायगा। कम से कम भाई से सुनकर पिता के सम्बन्ध की थोड़ी-बहुत बातें तो मालूम ही हो जायँगी। पिता से सर्वथा अपरिचित होने के कारण प्रियतोष बहुत लज्जित हुआ करता। उसे मन ही मन इस बात का बड़ा क्षोभ भी होता, अतएव वह प्रायः दुखी रहता। इस दुख से छुटकारा पाने की आशा मिलते ही उसका क्षोभ प्रबल हो उठा। और ऐसी अवस्था में वनमाली को अपने समीप पाकर उसे प्यार करने की कल्पना से मन ही मन कृतार्थ सा हो उठा।

वनमाली ने लङ्का के लिए प्रस्थान किया। रामयदु उसे गाड़ी पर चढ़ाने के लिए हावड़ा स्टेशन पर गये थे। गाड़ी छूटने ही को थी। तीसरी घण्टी बज चुकी थी। तब रामयदु ने वनमाली से कहा कि प्रियतोष वैमातृ-सम्बन्ध से तुम्हारा बड़ा भाई है। उसकी मा अब जीवित नहीं है। तुम उसे भैया कह कर पुकारना।

इतने दिन के बाद लङ्का के लिए प्रस्थान करते समय गाड़ी छूटते छूटते जब उसने पिता के मुख से सुना कि प्रियतोष तुम्हारा बड़ा भाई है तब वह आश्चर्य में पड़ गया और क्षण ही भर में वह समझ गया कि इतनी आसानी से मुझे यह नौकरी कैसे मिल गई। पिता के जीवन का जो रहस्य अब तक उससे छिपा था उसे जानने के लिए उसका कौतूहल जाग्रत हो उठा, परन्तु कुछ जानने का अवसर न देकर गाड़ी रवाना हो गई। वन-माली एक क्षीण आशा लेकर चल पड़ा कि कदाचित् भैया से जान-पहचान हो जाने पर ये सब बातें भी कुछ न कुछ मालूम ही हो जायँगी।

दूसरी जगह जा-जाकर रामयदु के परिवार के लोग कम हो गये थे, परन्तु एक आदमी उनके परिवार में सम्मिलित भी हुआ था। वह थी कृष्णकली। कृष्णकली की अवस्था उन्नीस वर्ष की होचुकी थी, किन्तु अब तक उसका विवाह नहीं हुआ था। उसके विवाह के लिए रामयदु ने कोई विशेष प्रयत्न भी नहीं किया। अकस्मात् माता-पिता से हीन होकर दूसरे के आश्रय में आने के कारण कृष्णकली लज्जा से इतनी सङ्कुचित, शान्त एवं धीर हो गई थी कि रामयदु प्रायः इस बात का अनुभव तक न कर पाते थे कि वह भी घर में है। इसके साथ ही बड़ी होने पर कृष्णकली को जब समझ आगई तब वह आश्रयदाता के गृहकर्म में इस तरह जी-जान से जुट गई थी कि विवाह करके उसे घर से अलग करने की रामयदु की ज़रा भी इच्छा नहीं होती थी।

अनाथालय की लड़के-लड़कियाँ रामयदु के पशुओं का गोबर उठातीं, उन्हें सानी-पानी देतीं, बग़ीचा निरातीं, वृक्षों से फल तोड़कर ला देतीं, साग-सब्ज़ी सींचतीं, गाड़ी पोंछकर साफ़ करतीं और घर की भी सफ़ाई करतीं। इस प्रकार वे सभी स्वावलम्बी थीं और अपनी अपनी कमाई के ही बल पर खा रही थीं। यह सब देखकर कृष्णकली भी उनके साथ काम करने जाती। परन्तु मनमोहिनी कहती—अहा, यह सब काम तुम्हारे बूते का है? तुम्हारे पिता के यहाँ यों ही कितने नौकर-चाकर लगे रहते थे। रहने दो, यह सब तुम्हें करने की ज़रूरत नहीं।

मनमोहिनी और रामयदु ने मानो 'अहा' शब्द से उसे घेर रक्खा था। वह चलते सुनती 'अहा', फिरते सुनती 'अहा'। इससे वह लज्जा और सङ्कोच तोड़कर इस घर को अपना सा घर किसी तरह भी नहीं समझ पाती थी। इस परिवार में वह अपना कोई स्वाभाविक स्थान नहीं बना पाती थी। दूसरे का कृपापात्र बनने तथा दूसरे के गले का भार होकर रहने की लज्जा एवं अप्रतिभ भाव ने कृष्णकली के शरीर, हृदय तथा आचरण को जकड़ कर उसे बहुत ही नम्र, धीर और गम्भीर कर रक्खा था, उसकी इस मृदुता ने शरीर की कुरूपता को ढँक कर उसे एक मधुरता और श्री प्रदान की थी। मनमोहिनी और रामयदु काम करने से कृष्णकली को जितना ही रोकते, उतना ही अधिक लज्जित होकर वह विशेषरूप से कार्य में अपने को लिप्त कर देती। बहुधा वह अपने आश्रयदाताओं से छिपा छिपाकर कार्य किया करती थी। इससे उसकी कार्यकुशलता, द्रुतकारिता तथा सौन्दर्यबोध असाधारण रूप से बढ़ रहा था। मनमोहिनी तथा रामयदु के सोकर उठने से पहले ही कृष्णकली शय्या त्याग देती और तत्पर होकर घर का सारा काम-काज कर लेती। मनमोहिनी स्नानागार में पैर रखते ही देखती कि उनके कपड़े वग़ैरह सजा कर खूँटी पर रक्खे हुए हैं। रामयदु थोड़ी देर के लिए भी कमरे से निकल कर कहीं जाते और फिर लौट कर देखते तो उनकी सारी चीज़ें खूब साफ़-सुथरी और सजाकर रक्खी हुई मिलतीं, कहीं से आकर रामयदु जूते खोल कर रख जाते, लौट कर जब उन्हें फिर पहनने लगते तब देखते कि जूतों की धूल झाड़ी हुई है और वे आइने की तरह चमक रहे हैं। स्नान करके आते ही रामयदु को पूजा की सारी सामग्री तैयार मिलती। पूजा समाप्त होते

ही जलपान की सामग्री भी उनके पास सजाई हुई रक्खी रहती। दफ़्र जाते समय रामयदु एक डिब्बा पान लगवाकर ले जाया करते थे। उनके कपड़े पहनने से पहले ही तुरन्त के लगे हुए पान, और चूना आदि उनके पास आ जाता। मनमोहिनी और रामयदु को कोई चीज़ माँगनी न पड़ती और कामधेनु के समान उनकी सारी कामनाओं को कौन पूर्ण करता है, यह बात वे अच्छी तरह जानते थे, यद्यपि कृष्णकली अपने इन कामों को प्रकट करने की चेष्टा नहीं करती थी।

एक दिन रामयदु रात्रि में भोजन करते करते कहने लगे, मेरा एक दाँत ज़रा ज़रा दर्द कर रहा है। इसे कीड़ों ने खा डाला है।

मनमोहिनी कुछ बोली नहीं। भोजन से उठने पर रामयदु जब हाथ धोने गये तब उन्होंने देखा कि एक लोटे में गरम जल रक्खा हुआ है।

मनमोहिनी ने बड़े स्नेहमय स्वर से कहा—देखो बेटी कली, तुमने तो हमें हैरान कर डाला। जिस दिन तू पराये घर चली जायगी, हम बिना लड़की की हो जायँगी। तब हमारी दुर्दशा का ठिकाना न रहेगा।

एक सुखमय लज्जा से मुँह नीचा करके कृष्णकली सकुचाती हुई वहाँ से चली गई।

एक दिन मनमोहिनी को सोती देखकर कृष्णकली चुपके से सारे लैम्पों की चिमनियाँ निकाल कर और साबुन लगा-लगाकर उन्हें धोने लगी। अपने काम में वह बड़े प्रेम से तन्मय थी, इससे ज़रा अन्यमनस्क-सी हो उठी थी। इतने में एकाएक पीछे से मनमोहिनी की स्नेह-मय तथा कोमल कण्ठ की भर्त्सना सुनकर वह चौंक कर खड़ी होगई। मनमोहिनी कहने लगी—तुमने सारे नौकर-चाकर मिट्टी कर डाले। सारा काम जब तुम्हीं कर लोगी तब क्या वे लोग बैठे बैठे तनख्वाह लेकर मौज उड़ावेंगे।

कृष्णकली को उस समय मनमोहिनी के आने की आशा नहीं थी, अतएव पीछे से उनकी आवाज़ सुनकर वह चौंक उठी, साथ ही इस गुप्त अपराध के पकड़े जाने के कारण ज़रा-सा व्यस्त भी हो गई। इससे साबुन से चिकने हाथ से सटक कर एक चिमनी [illegible] ज़मीन पर गिर गई और वह चूर चूर हो गई।

कृष्णकली और भी घबरा कर शीशे के वे सब टुकड़े उठाने लगी।

मनमोहिनी ने व्यस्त होकर कहा—फूटे हुए शीशे हाथ से मत छुओ। नहीं तो हाथ कट जायगा। [illegible] उन्हें यों ही पड़े रहने दो। मैं धीरा को बुला कर [illegible] देती हूँ, वह बटोर कर फेंक देगी।

मनमोहिनी की यह बात सुनने से पहले ही कृष्ण-कली का हाथ शीशे से कट चुका था। मनमोहिनी की आज्ञा के अनुसार जब वह उठ कर खड़ी हुई तब उसकी उँगली से टप टप रक्त की धारा बह रही थी। उसने उतावली के साथ अपनी वह उँगली धोती से छिपा ली, परन्तु ज़मीन पर रक्त की जो बूँदें पड़ी थीं, उन पर मन-मोहिनी की दृष्टि पड़ गई।

मनमोहिनी बोल उठीं—शायद हाथ काट लिया। लाओ देखें तो।

मनमोहिनी ने कृष्णकली का हाथ कपड़े के नीचे [illegible] ज़बरदस्ती खींच लिया और उसे देखकर कहने लगीं—ओ मा। शीशे से कटा हुआ हाथ छिपाकर भागने की चेष्टा करती हो। चलो, टिंचर आइडिन लगा [illegible] बाँध दें।

कृष्णकली को पकड़ कर मनमोहिनी अपने कमरे में ले गई और उसकी उँगली में टिंचर आइडिन लगा दी। अपनी धोती के अंचल से कपड़ा फाड़ कर उन्होंने उसकी उँगली में पट्टी भी बाँध दी।

कृष्णकली की उँगली में जो चोट लगी थी, उसकी अपेक्षा कहीं अधिक प्रभाव पड़ा मनमोहिनी की ममता का। मनमोहिनी की धोती जो फट-फुट कर पुरानी हो गई थी उस ओर उसका ध्यान तक नहीं गया, उसके मस्तिष्क में केवल यही बात चक्कर काट रही थी कि चाचीजी ने अपनी धोती का अंचल फाड़ कर मेरी उँगली में पट्टी बाँधी है।

रामयदु के छोटे छोटे लड़के और लड़कियों की देख-रेख का भी भार कृष्णकली ने अपने ही ऊपर ले लिया

वे भी अब छोटी दीदी को छोड़ कर और किसी से भी किसी बात के लिए नहीं मचलते थे।

कृष्णकली की बुद्धि बहुत ही तीव्र तथा स्मरण-शक्ति असाधारण थी। रामयदु के घर में आने के बाद उसे पढ़ने-लिखने का अवकाश नहीं मिला, परन्तु रामयदु के लड़के-लड़कियों का पढ़ना-लिखना तथा हिसाब आदि देख-सुनकर ही उसने बहुत-कुछ सीख लिया था। कोई भी पुस्तक उसके हाथ में लग जाती, रोचकता-अरोचकता पर ध्यान न देकर एकान्त में आद्योपान्त पढ़ जाती और किसी को पता तक न लगता। एक बार जो कुछ वह पढ़ लेती, उसके हृदय पर मानो वह लिख जाता। इसी तरह उसने इतिहास, भूगोल, स्वास्थ्य-रक्षा, वस्तुपाठ तथा बँगला, अँगरेज़ी और संस्कृत आदि का जो ज्ञान उपलब्ध कर लिया था वह उस घर में और किसी को नहीं था। परन्तु अपने ज्ञान को भी वह छिपा कर ही रखती, हर एक बात में लज्जा और सङ्कोच उसे घेरे रहता। भारतवर्ष के सभी पत्र रामयदु के पास यों ही आया करते थे। उन्हें उठाकर रखने तक का भी समय रामयदु को नहीं मिलता था। डाक आते ही कृष्णकली उन सारे पत्रों को सजाकर उनकी मेज़ पर रखती थी। रामयदु के आफ़िस चले जाने पर मन-मोहिनी जब सो जाती तब वह उन सब पत्रों को लेकर पढ़ती थी। थोड़े ही समय में बहुत-सा पढ़ लेने की इच्छा, आग्रह और प्रयत्न के कारण कृष्णकली को बहुत जल्दी जल्दी पढ़ने का अभ्यास हो गया। मासिक पत्रों की कहानियों तथा उपन्यासों से लेकर विज्ञान, जीव-विज्ञान तथा भौतिक एवं रासायनिक आदि किसी भी विषय के लेख नहीं छोड़ती थी। किस वर्ष के किस पत्र की किस संख्या में कौन सा लेख या कहानी छपी है, यह सब उसे सदा याद रहता, मानो वह एक सजीव सूची थी।

[ क्रमशः

—ठाकुरदत्त मिश्र

# विचार-विमर्श

## १—मतिराम का एक दोहा

रीतिकाल के कवियों, मुख्य कर देवजी, को आचार्य मानकर जिन लोगों ने साहित्य-समीक्षा का बीड़ा उठाया था उनकी पड़ताल हो चुकी। हम यह नहीं कहते कि इस जाँच-पड़ताल से हिन्दी-साहित्य का कुछ भी लाभ नहीं हुआ। खेद हमको तो यह देखकर होता है कि लोग अब भी अपनी उन्हीं पुरानी सम्मतियों को सच्ची समालोचना कहते फिरते हैं, और उनकी बातों को हिन्दी के लिए संजीवनी शक्ति समझते हैं। हम तो उस मोहनी भावना से बचकर रहने में ही कल्याण समझते हैं, जिसकी मधुर प्रेरणा से लोग प्रतिदिन कुछ न कुछ अपने गुरुजनों की गुण-गरिमा में नोचते-खरोचते रहते हैं। यदि गुरुजनों की श्रद्धा हमें अपने मार्ग से विचलित कर दे तो वह श्रद्धा नहीं, मोह है। मोह सी मानसिक दासता को साथ ले साहित्य-समीक्षा में हाथ लगाना उसको कलंकित करना ही नहीं, रसातल को भेजना है। अतः यदि हमारे विवेचन से किसी की गरिमा में कमी का भान हो तो उसका अपराध उसकी समीक्षा के सिर ही मढ़ना समीचीन है।

'देव और बिहारी' के अध्ययन के उपरान्त हमारी लालसा घोर निराशा की गोद में गिर पड़ी। उसमें इतनी भी शक्ति शेष न रही कि मिश्रजी से श्रद्धा के साथ किसी समीक्षा के लिए याचना करते। पर मतिराम-ग्रन्थावली की महिमा सुन एक बार वह फिर जागी और द्वार खटखटाने का साहस कर आगे बढ़ी। अब की बार उसकी दुर्गति होने लगी। जो कुछ मिला उसको रखने का स्थान नहीं। यदि अंजन से आँख फूटने का डर हो तो वह किसको दिया जाय?

यहाँ पर स्थल और समय के संकोच के कारण मतिराम-ग्रन्थावली पर कुछ न कहकर उसकी तुलनात्मक समालोचना के एक अंश पर विचार करना ही पर्याप्त होगा। लोग कहते हैं कि मतिराम और बिहारी हिन्दी के अच्छे कवि हैं; दोनों ने सतसई की रचना की है। मिश्रजी मतिराम के भक्त हैं। अतः यदि उनकी बुद्धि का झुकाव कुछ मतिराम की ओर अधिक हो तो क्षम्य है। पर अब तक तो हमारी समझ में यह बात नहीं आई कि मिश्रजी ने तुलनात्मक समालोचना का अर्थ क्या समझा है। हम उसका विवेचन क्या करें? आपका कथन है कि आपने "अपने मतिराम की कविता में दोष ढूँढ़ निकालने का प्रयत्न बहुत कम किया है" और आप "पाठकों को यह विश्वास दिला देना चाहते हैं कि आप मतिराम के दोष छिपाना नहीं चाहते"। मिश्रजी की बातों से हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि मिश्रजी मतिराम के वकील हैं, जो उनको हिन्दी-साहित्य में उच्च स्थान दिलाना चाहते हैं। इस विचार से मिश्रजी यदि शर्माजी का अनुकरण करते तो हिन्दी-साहित्य का अधिक उपकार होता। यह समालोचना नहीं, शुद्ध पक्षपात है। जब समालोचना का यह आदर्श है तब तुलना तो मन की मौज है। यदि मिश्रजी शेक्सपियर पर धावा न मारकर मतिराम के मानस

में निमग्न होते तो हिन्दी-साहित्य तथा मतिराम का अधिक लाभ होता।

ऊपर जो कुछ कहा गया है उससे यह तो स्पष्ट ही है कि मिश्रजी ने मतिराम के गुणों को ही ढूँढ़ निकाला है, उनका अध्ययन नहीं किया है। व्यर्थ की बकवाद पर समय नष्ट न कर कुछ उनकी आलोचना का भी दर्शन कर लेना उचित है। हमको तो आशा ही नहीं, दृढ़ विश्वास है कि मिश्रजी इस पर समुचित ध्यान दे हमारे भ्रम का निवारण करने का कष्ट करेंगे।

बिहारी एक मनोषी कवि थे। जब जिस झोंक में आ जाते थे तब उस झोंक की छाप छोड़ने के विचार से एक दोहा लिख बैठते थे। कभी कभी किसी के मन-बहलाव तथा पठन-पाठन के लिए भी कुछ गढ़ देते थे। इस प्रकार उनके दोहे कुछ गूढ़ और कठिन क्या, पहेली भी बन जाते थे। यही कारण है कि बिहारी के अध्ययन एवं समीक्षा के लिए व्यापक पांडित्य तथा साहित्य-शास्त्र का अनुशीलन अनिवार्य हो गया है। जो लोग कुछ लिख देना ही समालोचना समझते हैं उनकी तो बात ही दूसरी है। वे स्वयंभू आचार्य हैं।

विवेचन के लिए तुलना का यह दोहा लीजिए—

बेसरि मोती दुति झलक परी अधर पर आय;
चूनो होय न चतुर तिय क्यों पर पोछो जाय।

मिश्रजी ने यथानियम प्रस्तुत दोहे में वर्णित विषय का कुछ परिचय दिया है और 'कितना मार्मिकतामय वर्णन है!' कहकर मतिराम की वकालत की है। आपका कथन है कि मतिराम के दोहे में एक बड़ी बात तो यह है कि धोखा उनकी नायिका नहीं, सखी खाती है। दूसरे यह दोहा 'भ्रम' के उदाहरण में उद्धृत भी किया गया है। खेद है कि साहित्यशास्त्र बहुत ही कठिन है, नहीं तो इस नजीर पर डिगरी दे देता। मिश्रजी के कहने से जान पड़ता है कि मतिराम की नायिका बिहारी की नायिका से चतुर है। उनकी सखी उसको 'चतुर तिय' कहती भी है। मिश्रजी की बात हम मान लेते, पर करें क्या? बुद्धि बड़ी टेढ़ी बला है। वह कहती है कि मतिराम की 'चतुर तिय' बिहारी की चोरी है। 'चतुर तिय' ही नहीं, भाव भी बिहारी ही का है। विश्वास न हो तो दोनों दोहों पर कुछ विचार कीजिए। मतिराम कहते हैं—

प्रभा तर्योना लाल की परी कपोलनि आनि;
कहा छपावति चतुर तिय कंत दंतछत जानि।

इस 'चतुर तिय' ने टाट उलट दिया। अब देखना यह है कि बिहारी के भाव में मतिराम ने कुछ रमणीयता भर दी है या उसका भी पानी उतार लिया है।

बिहारी के दोहे के विषय में हमको जो कुछ निवेदन करना है उसको अन्त में करेंगे। कारण यही है कि उस पर कुछ विशेष रूप से कहना है। मतिराम-ग्रन्थावली में मतिराम ही को परखना है, अतः उनके दोहे पर उचित ध्यान देना अधिक समीचीन है। और मतिराम के दोहे के साथ ही बिहारी के दोहे का परदा खुलता जायगा और उसके रंगढंग की थाह भी लग जायगी।

यह तो स्पष्ट ही है कि बिहारी के दोहे में 'चतुर तिय' का प्रयोग लाक्षणिक है, जिसका अर्थ भोली स्त्री है। मतिराम के दोहे में भी उसका अर्थ भोली ही जान पड़ता है, चाहे प्रयोग करनेवाली मूढ़ ही क्यों न हो। बिहारी का काम 'चूनों' से चल जाता है, पर मतिराम को 'दंतछत' की ओट लेनी पड़ती है। मतिराम के दोहे में यदि कुछ विशेषता या परिवर्तन है तो यही। दोनों कपोलों पर कंत के 'दंतछत' कहाँ तक समीचीन हैं, उनमें कहाँ तक रमणीयता है? यह अनुभव की बात है। हम उसके फेर में पड़ना नहीं चाहते। हम तो केवल यह देखना चाहते हैं कि नायिका को इसका पता पहले से था या अभी अभी हो रहा है। कुछ लोग इस प्रश्न को निराधार समझ कर कह सकते हैं कि 'दंतछत' का पता तो सबसे अधिक उसी को होगा। ठीक है, पर अब तक तो

देखने से यही अवगत होता है कि वह उसके छिपाने के प्रयत्न से विमुख ही रही है। छिपाने का नाट्य तो उस समय करती है जब सखी कंत के 'दंतछत' का नाम लेती है। यदि यह वस्तुतः दंतछत है तो क्या सखी के कहने से वह मान जायगी कि यह लाल तर्यौना की आभा है? यदि नहीं तो इस कथन का उस पर क्या प्रभाव पड़ेगा? मिश्रजी उसमें वास्तविक 'भ्रम' भी मानते हैं। यदि सचमुच सखी धोखा खाती है तो एक तो इसमें भ्रम-अलंकार नहीं सिद्ध होता, दूसरे नायिका और सखी दोनों ही फूहड़ बन जाती हैं। अतः इसमें धोखा यदि होता है तो मिश्रजी को। सखी अच्छी तरह जानती है कि यह 'दन्तछत' ही है। नायिका भी भलीभाँति उस 'दन्तछत' के इतिहास से परिचित है। पर करे क्या, उसका गोपन उसको आवश्यक जान पड़ता है। सखी कह देती है कि यह तो कन्त का 'दन्तछत' है, इसको क्यों छिपाती हो। कभी कभी ऐसा भी हो जाता है। मैं किसी अन्य का नहीं समझती हूँ। पर प्रकट में कहती है कि यह 'दन्तछत' नहीं है तर्योना की प्रभा है। तर्योना भी लाल ही का है। अतः अब निश्चिन्त रहो। कन्त शब्द से कुछ इसी अर्थ का भान होता है। अर्थ का पचड़ा यहीं छोड़ कर नायिका की मुद्रा पर ध्यान दीजिए। उसके दोनों कपोलों पर 'दन्तछत' विराज रहे हैं। उनको वह छिपा रही है। प्रश्न यह उठता है कि वह इनको सखी के देखने के पहले ही से छिपा रही थी कि दर्शन कराकर छिपाने का स्वाँग रच रही थी। कितनी चतुर नायिका है कि 'दन्तछत' भी न छिपा सकी। फिर छिपाती है कैसे? यह दृश्य बड़ा ही बेढब है। सम्भवतः नायिका बैठी होगी और उसकी सखी कहीं से आ धमकी होगी। उसका चटपट आना देखकर वह झट 'दन्तछत' के छिपाने में दत्तचित्त होती होगी। उसके दोनों सुन्दर कपोलों पर उसके दोनों कर-कमल कितने भले लगते होंगे? इसकी कल्पना चपतबाज ही भलीभाँति कर सकते हैं। विरहा के उपासक भी इस मुद्रा पर मुग्ध होते होंगे।

मतिराम की नायिका अपनी सखी की बातों में आ जाती है। अब वह गोपन-कार्य से विरत हो जाती है। पर यदि फिर किसी दूसरी सखी का आगमन हो तो उसकी क्या दशा होगी? वह उनको 'दन्तछत' जानकर छिपाने का प्रयत्न करेगी या लाल तर्यौना की प्रभा समझ कर चुपचाप पड़ी रहेगी? ऐसे तर्यौना से लाभ ही क्या जिसको पहनने से मुँह दिखाने में आफ़त आये? प्रश्नों की भरमार हमको भी अच्छी नहीं लगती। केवल हम यही कह कर छुटकारा लेते हैं कि नायिका के गुलाबी गालों पर लाल प्रभा कुछ विशेष रमणीय नहीं हो सकती। वैसे तो अपनी अपनी रुचि है।

भाषा के विचार से मतिराम के दोहे को बिहारी के दोहे से बढ़कर कहना आँख मूँदकर आसान है। 'प्रभा-तर्यौना लाल की' स्वयं पुकारकर कह रहा है कि मतिरामजी हमको छिन्न-भिन्न कर इधर उधर घसीट रहे हैं। अतः वाक्य-विन्यास पर कुछ अधिक विचार न करके कतिपय शब्दों ही पर कुछ प्रकाश डाल लेना उपयुक्त जान पड़ता है। बिहारी की दुतिझलक में कुछ पुनरुक्ति का भान होता है। अतः मतिरामजी उसके स्थान पर प्रभा शब्द रख देते हैं। पर प्रभा शब्द उतना सुघर या फिट नहीं है जितना दुति या झलक। प्रभा में द्युति का स्पष्ट [illegible] है। 'कपोलन' के कारण दोहे में जो घपला हो रहा है उसका दिग्दर्शन ऊपर हो चुका है। मतिराम के किसी शब्द में विशेष बल नहीं है। उनके अधिकांश शब्द बिहारी के हैं। जिनका प्रयोग कुछ परिवर्तन के साथ किया गया है। भाव-विधान तो बिहारी की प्रतिकृति-मात्र है।

मतिराम की नायिका के कलित कपोल 'दन्तछत' से पीड़ित हैं। उन पर उसकी मुहर लगा दी गई है। अतः उसका अधिक समय तक दर्शन करना अनु[illegible]चित ही नहीं, हेय भी है। जब तक हम उनके

सम्मुख अड़े रहेंगे तब तक उसका हृदय लज्जा की साँसत में पड़ा रहेगा। अतः उसको यहीं छोड़ कर बिहारी की नायिका का भी कुछ परिचय प्राप्त करना अपेक्षित हो रहा है।

संध्या का समय है। साँझ फूलने को ललक रही है। बिहारी की नायिका भी बन-सँवर कर अपनी सखी की प्रतीक्षा में मग्न है। शायद पास के उपवन में पयान करना है। आज-कल के विचार से किसी सभा-समाज में हाथ बँटाना है। उसके मुँह में पान का बीड़ा मचल रहा है। एक बार उसके मानस में तरङ्ग उठती है। वह दर्पण को हाथ में लेकर अपने सौन्दर्य तथा सिंगार की आलोचना करती है। सब कुछ तो ठीक ही है। पर उसके अधर पर कुछ अनिष्ट आभा पड़ गई है। वह उसको चूना समझ कर बार बार अपने रूमाल से पोंछती है पर वह हटती ही नहीं। इसी बीच में उसकी प्यारी सखी भी आ जाती है और बात को ताड़ कर यह मधुर परिहास करती है। रत्नाकरजी उसका परिचय इस प्रकार देते हैं—"(अवतरण)—नायिका के शरीर में नवयौवनागमन से ऐसी कांति तथा अमलता बढ़ गई है कि उसके ओठ पर बेसर के मोती का प्रतिबिम्ब पड़ा है, जिसको वह, दर्पण में देख कर, अज्ञात होने के कारण, चूना लगा समझ कर पोंछना चाहती है। सखी उससे परिहास करती हुई कहती है "( अर्थ )—[ तेरे ] ओठ पर [ यह ] बेसर के मोती की चमक की झलक आकर पड़ी है। हे चतुर ( भोली ) स्त्री, [ यह ] चूना नहीं है, [ अतएव ] वस्त्र से पोंछने से क्योंकर जा सकता है।" बिहारी की मूर्ति-विधायिनी शक्ति का परिचय तो स्वयं मिल जाता है, चित्र आँखों के सामने ही नाच रहा है। उस पर कुछ कहकर उसके सौंदर्य को भ्रष्ट करना हमें अभीष्ट नहीं है।

रत्नाकरजी का अर्थ ही यदि बिहारी-प्रतिपादित अर्थ है तो उसमें हमको दो त्रुटियाँ स्पष्ट अवगत हो जाती हैं। यदि नायिका के ओठ को आदर्श मान लें तो उसमें मोती का प्रतिबिम्ब पड़ेगा, जैसा अवतरण से स्पष्ट ही है। फिर 'दुति-झलक' शब्द व्यर्थ के भरे जान पड़ते हैं। यही नहीं, अर्थ में भी 'मोती की चमक की झलक' का दर्शन होता है। 'चमक की झलक' को समझना कुछ टेढ़ी खीर है। दूसरी बात यह है कि यह झलक यदि बराबर उसके ओठ पर पड़ी रही तो उसका सौन्दर्य भ्रष्ट हो जायगा। यह तो एक प्रकार का कोढ़ बन जायगा। फिर उस बेसर तथा उसके मोती की उपयोगिता ही क्या रह जायगी? हमारी समझ में बिहारी का कथन कुछ और ही है।

यह हम मानते हैं कि बिहारी नायिका के अंगों की उपमा दर्पण से दिया करते हैं। पर यह नहीं मानते कि यहाँ पर भी ओठ दर्पण ही बनाया गया है। हमारी समझ में तो बिहारी यहाँ एक और बहुत सूक्ष्म तथ्य का परिचय देना चाहते हैं। दर्पण में बिम्ब-ग्रहण का गुण तो होता ही है, उसमें एक और विशेष बात होती है। वह प्रकाश को ग्रहण कर उसी अंश का कोण बनाता हुआ उसको दूसरी ओर फेंक देता है। बिहारी के दोहे में भी यही बात है। मोती का प्रतिबिम्ब दर्पण में पड़ता है। साथ ही मोती की द्युति भी दर्पण में पड़ती है, जो फिर पलट कर नायिका के अधर या ओंठ पर आ पड़ती है। अतः बिहारी इसको मोती की द्युति की झलक कहते हैं। सखी इसी तथ्य को ताड़कर कहती है कि तुम व्यर्थ के भ्रम में क्यों पड़ी हो? यह चूना नहीं है। बार बार पोंछने पर भी यह यों ही बना रहेगा। पोंछती ही जा रही हो। बड़ी चतुर जान पड़ती हो। देखो, यह बेसर के मोती की द्युति की झलक है, जो दर्पण के कारण अधर पर आ ( आकर नहीं ) पड़ी है। दर्पण के हटते आप ही हट जायगी। हमारी धारणा में बिहारी के दोहे का अर्थ निखरता जा रहा है। हमें खेद है कि 'कोढ़' की बाधा हट जाने पर भी 'दन्तछत' की बाधा बनी ही रह जाती है। आशा है कि मिश्रजी उसका निवारण करेंगे।

—चन्द्रबली पाण्डेय

## २—वाजपेयीजी की बौखलाहट

आजकल हिन्दी-साहित्य के क्षेत्र में अहम्मन्य समालोचकों की बाढ़-सी आ गई है और वे समय समय पर लोगों पर अपना अस्तित्व प्रकट करने की चेष्टा किया करते हैं। इसी श्रेणी में हमारे समालोचक श्रीयुत किशोरीदासजी वाजपेयी भी हैं। आपने हमारे माधुरी में प्रकाशित राव चन्द्रसेन और महाराणा प्रताप के तुलनात्मक लेख पर लिखते हुए हमें 'गुलाम' इतिहासकार तक की उपाधि से भूषित करने में संकोच नहीं किया और बड़े गर्व के साथ 'भारत में अँगरेजी राज्य' और 'तुलसीकृत रामायण' के निष्पक्षपातपूर्ण होने का फ़तवा दे डाला। परन्तु जब हमने आपसे अपने प्रमाणों का खण्डन करने की प्रार्थना की और आपके उपर्युक्त फ़तवे के विरुद्ध अन्य सज्जनों के लेखों के अवतरण उद्धृत किये तब आपकी मनोवृत्ति और भी बौखला गई। परन्तु इस बौखलाहट में वाजपेयीजी की क़लम से ( सितम्बर १९३० की सरस्वती में ) कुछ ऐसी बातें निकल गई हैं जिन पर विचार करने से आपकी मनोवृत्ति का रहस्य प्रकट हो जाता है। सबसे पहले आपने देश में छिड़े संग्राम का हवाला देकर लिखा है कि इस समय इस प्रकार के उत्तरप्रत्युत्तर के लिए न तो अवसर ही है और न वे पाठकों को रुचिकर ही हो सकते हैं। क्या हम वाजपेयीजी से पूछ सकते हैं कि इस विवाद का प्रारम्भ किसकी तरफ़ से हुआ है? और क्या आपने सरस्वती के पृष्ठों को निरर्थक काला करने के सिवा अपने मत की पुष्टि में कोई प्रमाण भी दिया है? आप लिखते हैं कि रेउजी मेरे लेख को ईर्ष्यावश लिखा गया समझते हैं। 'परन्तु मेरा उनका न तो विषय ही एक है और न व्यवसाय ही इत्यादि......ऐसी दशा में भला ईर्ष्या कैसे और क्यों होगी?'

इस विषय में इतना लिखना ही काफ़ी होगा कि जब आपका विषय इतिहास नहीं है और आप उससे कोरे ही हैं तब आपको इस प्रकार अनधिकार लिखने और किसी को '.ग़ुलाम' तक कहने का क्या अधि- कार था। रही ईर्ष्या की बात, सो यदि ऐसा न हो तो आप एक सत्समालोचक की तरह मेरे लिखे उपर्युक्त तुलनात्मक लेख को युक्ति और प्रमाणों-द्वारा अप्रामा- णिक सिद्ध कर सकते थे। परन्तु ऐसा न क[र] अबलाओं की 'राँड' 'निपूती' की गालियों की तर[ह] लेखक को .ग़ुलाम आदि लिखकर अपमानित [न] करते।

आगे आप लिखते हैं कि 'रावजी के सम्बन्ध में जो कुछ आपने ( रेउजी ने ) लिखा है वह प्रामाणि[क] भले ही हो; परन्तु आपकी भावना अवश्य दूषित कही जायगी। रावजी की तुलना जो आपने महारा[णा] के साथ की है वह आपकी मानसिक पराधीनता का जीता-जागता नमूना है। और मैं ही क्यों, मेरे बीसों साहित्यिक मित्र आपके लेखों को, विशेषतः प्रकृ[त] लेख को, पढ़कर इसी नतीजे पर पहुँचे हैं। आ[प] प्रमाण देकर मनोवृत्ति को निर्दोष नहीं साबित क[र] सकते।'

धन्य है आपकी और आपके बीसों साहित्यि[क] मित्रों की बुद्धि को और दूर से ही प्रणाम है आप[की] तर्क-प्रणाली को, जो आप अपने 'बाबावाक्यं प्रमाणं' के सिद्धान्त के ख़िलाफ़ नई शोध और उसके सम[र्थन] में उद्धृत किये गये प्रमाणों के विषय में इ[स] प्रकार की अनर्गल सम्मति प्रकट करते हुए भी नहीं सकुचाते।

अन्त में आपने ऐतिहासिक को पक्षपातहीन होने का उपदेश दिया है। इस सम्बन्ध में हमारा भी न[म्र] नम्र निवेदन है कि समालोचक बनने की इच्छावा[लों] को कोरी टर्र से ही काम न लेना चाहिए।❀

—विश्वेश्वरनाथ रे[उ]

❀ इस विवाद का इसी लेख से अन्त समझ[ना] चाहिए।—सम्पादक

## ३—कुमारदास का श्लोक

श्रीमान् सेन्ट निहालसिंहजी का "लङ्का में रामायण की प्रतिध्वनियाँ" शीर्षक जो लेख सरस्वती में सितम्बर के अङ्क में प्रकाशित हुआ है उसमें कुमारदास व कालिदास के सम्बन्ध में भी लिखा गया है। उस प्रसङ्ग में राजा कुमारदास का अर्द्ध श्लोक भी दिया गया है। पर कालिदास ने उसकी जो पूर्ति की थी उसका उसमें उल्लेख नहीं हुआ है। राजा कुमारदास ने वेश्या के घर की दीवार पर लिखा था—

पद्मात् पद्मं समुद्भूतम्।
श्रूयते न च दृश्यते ॥

अर्थात् यह सुनने में आया है, परन्तु देखने में नहीं आया है कि एक पद्म के फूल से दूसरा पद्म का फूल उत्पन्न होता है।

इसके नीचे प्रसिद्ध कवि कालिदास ने जो लिखा था वह इस प्रकार है—

बाले तव मुखाम्भोजात्।
त्वन्नेत्रेन्दीवरद्वयम् ॥

अर्थात् ऐ बाले, तेरे मुखरूपी कमल से दो नेत्ररूपी कमल उत्पन्न हुए हैं।

यह श्लोक लङ्का में जैसा कि ऊपर लिखा है, प्रसिद्ध है। परन्तु यही श्लोक कालिदास के नाम से भारत में इस प्रकार प्रसिद्ध है।

कुसुमे कुसुमोत्पत्तिः श्रूयते न च दृश्यते।
बाले तव मुखाम्भोजे कथमिन्दीवरद्वयम् ॥

राजा कुमारदास का 'जानकीहरण' पूर्णरूप से नहीं प्राप्त है। उसका खोज करना आवश्यक है। नवें काण्ड के १० श्लोक और प्रथम के ४२ श्लोक मेरे पास हैं। सुना जाता है कि सीलोन के विद्यालङ्कार ओरियंटल कालेज के प्रिंसपल स्वर्गीय भिक्षु धरमरामजी ने इसको पूर्ण न पाकर इसके बहुत कुछ खण्ड जमा किये थे। नहीं मालूम, किसी ने इसको पूर्ण किया या नहीं। १५ वीं शताब्दी तक यह पुस्तक सुलभ थी।

—शिवप्रसाद [illegible]

## ४—क्या कार्ल मार्क्स रूसी था?

सितम्बर की सरस्वती में 'ब्रिटिश-मजदूर-दल' शीर्षक एक सुन्दर लेख प्रकाशित हुआ है, जिसमें विद्वान् लेखक श्रीयुत परिपूर्णानन्दजी वर्मा ने कार्ल-मार्क्स को रूसी बतलाया है। सम्भव हो, वह रूसी हो, परन्तु जहाँ तक हमको उस प्रसिद्ध साम्यवादी की जीवनी का ज्ञान है, वह जर्मन था। उसका जन्म ५ मई सन् १८१८ को जर्मनी के दक्षिण-पूर्वी भाग में ट्रीवीस नामक स्थान में हुआ था। उसका पिता जर्मनी में वकालत करता था और प्रपितामह भी जर्मनी में ही रहता था। उसकी माता हालेंड की थी। कार्ल मार्क्स की प्रारम्भिक शिक्षा अपने जन्म-स्थान में ही हुई थी और उच्च शिक्षा जर्मनी की वोन-यूनीवर्सिटी में। जेना (जर्मनी) के विश्वविद्यालय से उसने डाक्टर आफ़ फ़िलासफ़ी (दर्शनाचार्य) की उपाधि प्राप्त की थी। सन् १८४२-४३ में उसने एक जर्मन-पत्र का सम्पादन किया था। उसका विवाह भी जर्मन-महिला से ही हुआ था। प्रसिद्ध अराजक बेकुनिन जो रूसी था, कार्ल मार्क्स पर यह दोषारोपण किया करता था कि वह साम्यवादी तो है, पर अपनी मातृभूमि जर्मनी का पक्षपात किया करता है। कार्ल मार्क्स जर्मनी, फ़्रांस और हॉलेंड में भटकता रहता था, पर उसके अन्तिम दिन इँग्लेंड में बीते थे। रूस में वह शायद कभी गया भी नहीं। उसको दो बार जर्मनी से, दो बार फ़्रांस से तथा एक बार हालेंड से देश-निर्वासन का दण्ड दिया गया था। उसने अपने ग्रन्थ प्रायः जर्मन-भाषा में लिखे हैं।❀

—मथुरालाल शर्मा, एम० ए०

❀Beer—The Life & Teaching of Karl Mark 1924.

Spargo—Karl Mark; His Life & Work 1910.




## १—खोज

( १ )

दिन, दिनकर का दीप जलाकर,
खोज थका, जल में, थल में;
नभ में, उदयाचल में खोजा,
मिला न तू अस्ताचल में !

( २ )

लाख लाख आँखों को खोले,
खोज चुकी रजनी जग कर;
किन्तु कहीं भी, पता न तेरा—
पाया उसने करुणाकर !

( ३ )

अरुण उषा ने खोजा तुझको,
औ संध्या की लाली ने;
झंझा ने, पत्ते पत्ते में—
खोजा, डाली डाली में !

( ४ )

शीत, शीत ने, अग्नि, ग्रीष्म ने
वर्षा ने जलधारों में;
घन में गर्जन ने, विद्युत् ने—
ओलों की बौछारों में !

( ५ )

झरनों की झरझर में खोजा,
सरिताओं के कलकल में;
अरे खिलाड़ी ! तुझे हृदय की—
खोजा धड़कन धड़कन में !

( ६ )

किन्तु कहीं भी तुझे न पाया,
दुनिया ने हे लीलाधर !
अरे मिले तो अन्तस्तल में,
खूब मिले हो नटनागर !!

—कालीप्रसाद 'विरही'

## २—जीवन का उद्देश

यदि आप अपनी आँख उठाकर चारों ओर देखें तो आपको यह ज्ञात होगा कि संसार में प्रत्येक मनुष्य केवल एक वस्तु की खोज में है। साथ-ही-साथ यह भी विदित होगा कि उस वस्तु की प्राप्ति बहुत ही थोड़े व्यक्तियों को हो सकी है और अधिकांश लोग उसके अभाव से अत्यन्त दुःखी हैं। वह वस्तु मृगतृष्णा की भाँति दूर ही दिखलाई पड़ती है और मनुष्य-मात्र भ्रम में पड़ कर इधर-उधर भागता-फिरता है। वह वस्तु है 'आनन्द'।

संसार में कितने मनुष्य हैं जो अक्षय आनन्द एवं स्थायी शान्ति को प्राप्त कर चुके हैं? कितने लोगों ने अपनी जीवन-नौका को इस विस्तृत भव-सागर के पार लगाकर अपना लक्ष्य वेध लिया है? आनन्द एवं शान्ति की प्राप्ति की चेष्टा तो सभी सदैव करते रहते हैं, किन्तु यथार्थ में अधिकांश मनुष्य दुःख और चिन्ता के फन्दे में जकड़े पड़े हैं। इसका कारण क्या है? यह जटिल समस्या प्रत्येक व्यक्ति को हल करनी है, क्योंकि इसी में मनुष्यमात्र का कल्याण है।

यदि हम इस प्रश्न पर यथोचित विचार करें तो हमको मालूम होगा कि आनन्द की प्राप्ति करने का हमारा ढंग ठीक नहीं है। कुछ लोग यह समझते हैं कि धन-संग्रह ही से आनन्द मिल सकता है। वे तो दिन भर केवल धन बटोरने में तल्लीन रहते हैं और आशा करते हैं कि ऐसा करने से उनको अन्त में शान्ति मिल जायगी। इस प्रकार के मनुष्य अपने शरीर को ही सर्वस्व समझते हैं और उसी को सुशोभित करने का सदैव उद्योग करते रहते हैं। अन्य लोगों का यह विचार है कि अक्षय आनन्द की प्राप्ति शरीर-सुख का त्याग कर देने से ही होती है। ऐसे मनुष्य लँगोटी लगाकर जङ्गलों में चले जाते हैं और गुफाओं में बैठकर योग-साधन किया करते हैं।

जब हम इस जीवन-समस्या को हल करने का प्रयत्न करते हैं तब हमारे मन में भिन्न भिन्न प्रश्न उठते हैं। क्या शरीर को सुशोभित करके एवं धन-संग्रह में तल्लीन रहकर हम सुखी रह सकते हैं? क्या संसार को त्याग-कर और जङ्गल में कठिन तपस्या करके हम अपना अन्तिम ध्येय प्राप्त कर लेंगे? अथवा क्या हम मन्दिरों, गिर्जों, और मस्जिदों में पूजन करके, पवित्र नदियों में स्नान करके और तीर्थ स्थानों में भ्रमण के द्वारा अपने अभीष्ट को सिद्ध कर लेंगे?

किसी मन्दिर में एक मनुष्य मिठाई बाँट रहा था। भारतवर्ष में यह प्रथा है कि जब कोई अत्यन्त हर्ष का अवसर होता है तब निर्धनों को मिष्टान्न इत्यादि बाँटे जाते हैं। अतः कुछ लोगों ने उस मनुष्य से हर्ष का कारण पूछा। उसने प्रसन्नता-पूर्वक उत्तर दिया—कल रात को मेरा घोड़ा खो गया। सब लोग बड़ा आश्चर्य करने लगे। उनमें से एक ने बढ़कर उससे पूछा—भाई, यह कैसी बात? तुम अपने घोड़े के खो जाने पर इतने प्रसन्न क्यों हो? उत्तर मिला—कल रात कुछ चोर मेरा घोड़ा चुरा ले गये। मैं ईश्वर को हार्दिक धन्यवाद देता हूँ कि उस समय मैं घोड़े पर सवार न था। नहीं तो मैं भी आज चोरों के चंगुल में होता। सब लोग हँस पड़े और आपस में कहने लगे, भाई, यह कैसा मूर्ख है!

इस कहानी को सुनकर बहुत से लोग हँसेंगे, किन्तु यदि हम ज़रा ध्यानपूर्वक उसके सार को समझें तो ज्ञात होगा कि हममें से बहुत से लोग उस मिठाई बाँटनेवाले व्यक्ति से भी मूर्खता में बाज़ी मार ले गये हैं। वह तो केवल अपना घोड़ा ही खो बैठा था, किन्तु हम तो सवार से भी हाथ धो बैठे। हम संसार की नश्वर वस्तुओं के फन्दे में इतने फँस गये कि आत्म-स्वरूप को भी भूल बैठे। हम अपने शरीर-रूपी घोड़े को तो ख़ूब खिलाते-पिलाते हैं, किन्तु आत्मारूपी सवार की ओर ध्यान भी नहीं देते। इसीलिए हम सब दुःख से ग्रसित हैं। इससे मेरे कहने का यह आशय नहीं है कि हम अपने घोड़े को खो दें। घोड़ा और सवार दोनों ही सच्ची उन्नति के लिए अनिवार्य हैं। घोड़े के बिना सवार कुछ न कर सकेगा और सवार के बिना घोड़ा इधर-उधर भाग-फिरकर दुःख को प्राप्त होगा। घोड़ा और सवार दोनों को सुन्दर, हृष्ट-पुष्ट एवं शान्त बनाकर आनन्द की प्राप्ति होती है।

मेरे विचार में शरीर, भावों एवं विचारों की स्वच्छता के बराबर कोई धर्म नहीं है। यदि हम पक्षपात इत्यादि

का त्याग कर संसार के सब धर्मों का अध्ययन करें तो जानेंगे कि घोड़े और सवार अर्थात् शरीर, भावों और विचारों को शुद्ध रखना शान्ति का सीधा मार्ग है। यही संसार की सर्व धर्म-पुस्तकों का सार है। कोई व्यक्ति किसी धर्म का हो, किसी देश में वास करता हो, किसी जाति का हो, यदि वह अपने शरीर, विचारों एवं भावों को पवित्र रक्खे तो अवश्य मोक्ष को प्राप्त होगा। सब धर्मों का यही सन्देश है।

शरीर की शुद्धता से क्या तात्पर्य है? इससे यह आशय नहीं कि हम शरीर को अच्छे रेशमी वस्त्र पहनावें, पाउडर और क्रीम लगाकर उसको गोरे रंग का बनावें। हाँ, शरीर को शुद्ध भोजन खिला कर, हृष्ट-पुष्ट बनावें और उसको सुन्दर रखनें का प्रयत्न अवश्य करें, लेकिन यह सदैव ध्यान में रक्खें कि सुन्दर भावों और विचारों के बिना शरीर केवल एक पोले खिलौने के सदृश है।

हमारे भाव भी पवित्र होने चाहिए। मनुष्य-मात्र के प्रति बिना किसी प्रकार के भेद-भाव के सच्चा प्रेम होना ही हमारे भावों की सर्वोत्तम स्वच्छता है। एक ही विश्व-व्यापी आत्मा को सब प्राणियों में देखकर सबसे प्रेम करना ही अपने भावों को शुद्ध रखना है, क्योंकि ऐसा करने से ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध, काम, लोभ इत्यादि सब नष्ट होकर प्रेम-भाव में डूब जाते हैं।

अपने विचारों को भी शुद्ध रखना अति आवश्यक है। भाव और विचारों का घनिष्ट सम्बन्ध है। अतः शुद्ध भावों को रखने से हमारे विचार भी पवित्र बन जाते हैं। हम यह समझते हैं कि शरीर ही सर्वस्व है। इसी कारण हमारे भाव एवं विचार अशुद्ध रहते हैं। परन्तु यदि हम यह भली भांति समझ लें कि हम तो 'सवार' हैं, घोड़ा नहीं, तो संसार में जितनी बुराइयाँ तथा अवगुण हैं वे सब नष्ट हो जायँ। इसी लिए अपने शरीर, भावों और विचारों को शुद्ध रखने के लिए आत्म-ज्ञान अति आवश्यक है।

यदि हम सदैव इस बात का ध्यान रक्खें कि शरीर हमारा वाहन है और 'हम' विश्व-व्यापी आत्मा के एक अंश हैं तो हमारे तीनों शरीर—स्थूल-शरीर, विचार-शरीर और भाव-शरीर—शुद्ध हो जायँ और हम अवश्य अक्षय एवं [illegible] आनन्द को प्राप्त कर लें। यदि हम सब प्रकार अपने आपको शुद्ध बनाने का यथोचित उद्योग करें तो हम धन्य हैं; क्योंकि हम विश्व-व्यापी परमात्मा से एकमय होकर आनन्द के सागर में किलोलें करेंगे। परमात्मा से एकमय होना ही जीवन का उद्देश है।

—श्रीमन्नारायण अग्रवाल

---

## ३—तारघर की लड़की

डाकगाड़ी से उतरकर मैं बम्बई स्टेशन के प्लेटफ़ार्म पर टहलने लगा। बाहर मेरा मित्र राधे अपनी मोटर के साथ मेरा इन्तज़ार कर रहा था। परन्तु बाहर निकलने से पहले मैं दिल्ली को एक तार दे देना चाहता था। जब मैं गाड़ी में था तभी मेरे दिल में यह बात आ गई थी। बात यह थी कि दिल्ली में मेरे बहुत से काम अधूरे पड़े थे और उनकी ओर ध्यान देना अत्यन्त आवश्यक था।

इसलिए बाहर न जाकर मैं सीधा स्टेशन के तारघर की ओर चला गया। परन्तु जितनी मुझे जल्दी थी उतनी ही अधिक अड़चनों का सामना करना पड़ा। सुनता था कि बम्बई का स्टेशन हिन्दुस्तान के सब स्टेशनों से बढ़िया है। जब तक गाड़ी से बाहर नहीं निकला था तब तक कुछ कुछ ऐसा ही सोच भी रहा था। परन्तु प्लेटफ़ार्म पर आते ही मुझे यह निश्चय होगया कि इस स्टेशन में और ख़ूबियां हों या न हों, इतनी ख़ूबी तो अवश्य है कि यहाँ लिखने-पढ़ने का कोई सामान नहीं मिल सकता।

बहुत दौड़-धूप के पश्चात् मुझे एक घिसा हुआ टूटा और पुराना क़लम मिला, और जो दावात मिली वह अपने ढङ्ग की एक ही थी। उसमें कोई रङ्ग भी था या नहीं, यह मैं नहीं कह सकता। बड़ी मुश्किल से उसी टूटी क़लम और फीकी दावात की सहायता से मैंने अपने तार के कुछ शब्द लिखे। एक अधेड़ स्त्री तारघर की खिड़की के पास बैठी थी। उसने बड़ी देर में तार

के शब्दों को गिना और जो मांगा तुरन्त दे दिया। मुझे बहुत जल्दी थी।

कोई भारी काम कर चुकने पर जो शान्ति मिलती है उसी का अनुभव करता हुआ मैं स्टेशन के बाहर जाने को ही था कि तारघर के भीतर एक मेज़ की ओर मेरा ध्यान आकर्षित हो गया। एक परम सुन्दरी नव-वयस्क लड़की तार का यंत्र खटखटा रही थी। उसकी पतली और कोमल अँगुलियां परियों की भांति तार-यन्त्र पर नाच रही थीं। मैं यह दृश्य देखने के लिए ज़रा खड़ा हो गया। पर उसने कुछ अभिमान और उपेक्षा-भाव से अपना मुँह दूसरी ओर फेर लिया।

क्या वह नवयुवती थी? सम्भवतः। उसके केश के छोरों में भूरापन मौजूद था। क्या वह सुन्दर थी? क्यों नहीं? उसकी पोशाक सादी थी, पर उसके सुकुमार शरीर के सर्वथा अनुकूल थी। उसके बाल पीठ पर लोट रहे थे। वे काले थे और घने भी। पर उसकी गर्दन का गोरापन छिपाने में वे सर्वथा असमर्थ थे। इस सुकुमार केश-राशि पर एक चुम्बन अङ्कित कर देने की मुझे इतनी इच्छा हुई कि मैं कह नहीं सकता। मैं पागल हो उठा। इस आशा से कि यह सुन्दरी बाला मेरी ओर देखेगी मैं खिड़की के ज़रा नज़दीक चला गया और उस अधेड़ स्त्री से तार-सम्बन्धी कुछ प्रश्न करने लगा। पर वह टस से मस न हुई और मुझे जो उत्तर मिले वे भी सहानुभूति से सर्वथा वञ्चित थे।

यदि कोई यह सोचे कि दूसरे दिन सवेरा होते ही मैं उस तारघर की ओर नहीं गया तो मैं कहूँगा कि वह मुझे नहीं पहचानता।

मेरे भाग्य से इस बार वह सुन्दरी बाला तारघर में अकेली थी।

अब तो उसे अपना मुँह दिखाना पड़ा। मेरी बातों का जवाब देने के लिए वह तारघर की खिड़की के पास आने को विवश हुई। मैंने तार देने के कुछ फ़ार्म मांगे। कुछ तार दिये भी। और भी बहुत सी बे-सिर-पैर की बातें मैंने पूछीं। उस समय संयम-शीलता में शायद मैं गधे से कुछ ही आगे था।

उसने शान्ति, धैर्य और चतुरता के साथ मेरी बातों का उत्तर दिया। उस छोटी स्त्री की यह दृढ़ता देखकर मैं चकित रह गया।

इस घटना के बाद मैं प्रति दिन तारघर को जाने लगा। कभी कभी दिन में दो बार जाता। अब मुझे मालूम हो गया था कि वह किस समय अकेली रहती है।

तारघर के सामने इस तरह बार बार जाकर खड़े होने का कुछ कारण भी तो चाहिए। इसलिए मैं अपने तमाम मित्रों और परिचितों के नाम तार भेजने लगा। किसी को कुछ लिखता, किसी को कुछ। यहाँ तक कि मेरे दिल्ली के मित्रों में यह चर्चा होने लगी कि मैं सनक गया हूँ।

प्रति दिन मैं अपने आपसे कहता—"राजेन्द्र बाबू! आज! आज, तुम उससे अपने मन की बात ज़रूर कह दो।" मेरे होंठ तक ये शब्द बार बार आते—'मैडम, मैं तुमको प्यार करता हूँ,' पर उसके रूखे बर्ताव के कारण इन शब्दों में कुछ आवाज़ न पैदा हो पाती। ये मूक शब्द फिर दिल के भीतर की कन्दराओं में भटके हिरन की भांति मँडराने लगते।

कभी कभी मेरे मुँह से यह वाक्य निकल भी जाता, पर वह मुझे इस प्रकार सुनाई देता—'मैडम, कृपा करके कुछ तार के फ़ार्म दे दो।'

धीरे धीरे परिस्थिति असह्य होगई।

जब दिल्ली वापस जाने का समय आया तब मैंने निश्चय किया कि अब एक बार अन्तिम पासा फेंक लेना चाहिए।

मैंने तारघर की खिड़की के पास जाकर निम्न-लिखित तार उसके हवाले किया—

"इन्द्रजीत, १७ नई दिल्ली, बम्बई स्टेशन के तारघर की सुन्दर लड़की के प्रेम ने मुझे पागल कर दिया है। राजेन्द्र।"

जब मैंने उसे यह तार दिया था तब मेरे हाथ काँप रहे थे। मुझे आशा थी कि इसका कुछ प्रभाव अवश्य पड़ेगा। कम से कम उसके चेहरे के गौर वर्ण में कुछ लालिमा दिखेगी या मस्तक पर कुछ रेखायें खिँच आयेंगी।

परन्तु नहीं !

उसकी आँखों की पलकें भी नहीं गिरीं। अत्यन्त शान्ति और अपने उसी उपेक्षापूर्ण रूखे स्वभाव के साथ उसने कहा—"एक रुपया तीन आना।"

मैं अवाक् हो गया। अपनी जेबें टटोलने लगा। एक पैसा भी नहीं था। तब मैंने अपना रोज़नामचा निकाला। उसके पन्नों में से एक हज़ार रुपये का एक नोट निकालकर उसे दिया।

उसने नोट को ले लिया, ग़ौर से उसकी परीक्षा की।

उसकी कसौटी में नोट खरा उतरा क्योंकि मैंने देखा कि मन्दहास्य की रेखाओं से उसका चेहरा ढँक गया है। मेरे कानों में उसका मन्द हास्य गूँज उठा। वह बोली—क्या आप इस नोट को भुनाना चाहते हैं ?*

—श्रीनाथसिंह

---

## ४—आज़मगढ़ का संस्कृत-कालेज



[ पण्डित गोविन्दचन्द्र त्रिपाठी ]

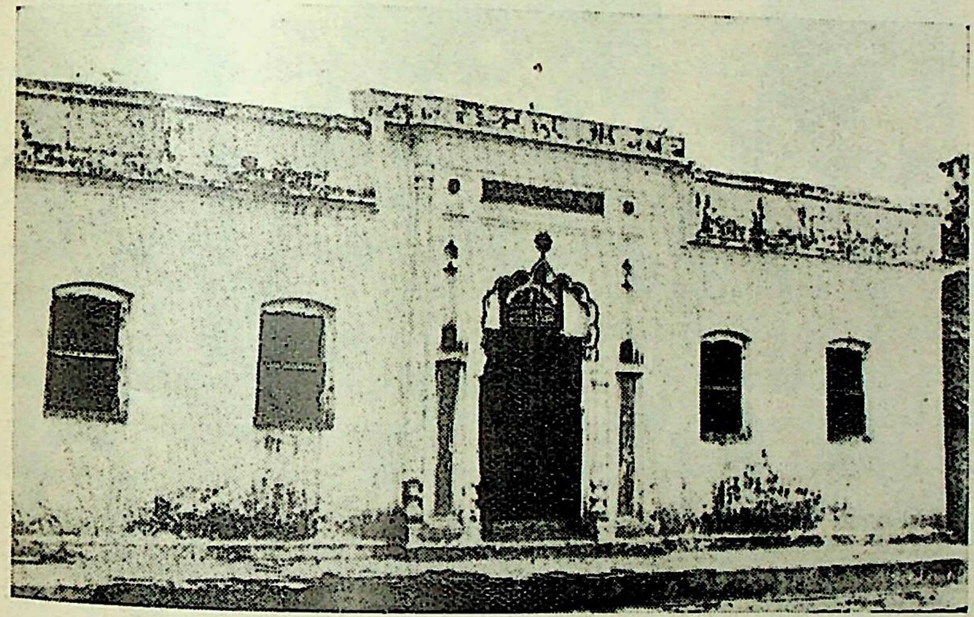
सन्तोष की बात है कि देश में संस्कृत के पठन-पाठन की सुविधा दिन प्रति दिन बढ़ती जा रही है। विद्याप्रेमी देश के धर्मवान् नागरिक इस ओर प्रयत्न-शील हैं ही, हमारी सरकार भी इस दिशा में अपने कर्तव्य का पालन करने से विमुख नहीं है। संस्कृत का पठन-पाठन इस देश की प्राचीन संस्कृति की रक्षा के लिए अत्यन्त आवश्यक है और जिन महानुभावों ने इस सम्बन्ध में वास्तविक कार्य किया है वे सर्वथा धन्य हैं। यहाँ हम एक ऐसी ही संस्था तथा उसके संस्थापक का थोड़े में परिचय देते हैं। संस्था है आज़मगढ़ का श्रीसरस्वती-संस्कृत-कालेज और संस्थापक हैं स्वनामधन्य पण्डित गोविन्दचन्द्र त्रिपाठी। पहले इन संस्थापक महोदय का ही उल्लेख करेंगे।

रायबरेली-ज़िले में मुरारिमऊ नाम की एक रियासत है। इसी रियासत में चिन्ताखेर नाम का एक ग्राम है। इसमें [illegible] कान्यकुब्ज ब्राह्मणों की बस्ती है। प्रयागराज में [illegible] राखन पाठशाला' नाम का जो अँगरेज़ी स्कूल था और जिसका नाम अब 'सिटी ऐंग्लो-वर्नाक्यूलर स्कूल' हो [illegible] है उसके संस्थापक पण्डित शिवराखनलाल शुक्ल इसी ग्राम के निवासी थे। जिन पण्डित वंशीधरजी वाजपेयी ने भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के समय में हिन्दी का प्रशंस[illegible]

---

* एक फ्रेंच-कहानी के आधार पर।

काम किया था और बाद को आगरा-कालेज में प्रोफ़ेसर हो गये थे वे भी इसी ग्राम के थे। ऐसे ही चिन्ताखेर में श्रीमान् पण्डित गजराजजी तिवारी एक परम विख्यात पुरुष हुए। आपके यहाँ रुई और सोने-चाँदी का व्यापार होता था। धनवान् होने के साथ आप धर्मवान् भी थे। अपने जीवन-काल में आपने १०१ ब्राह्मण-कन्याओं का विवाह कराया था। तिवारीजी मनस्वी व्यक्ति थे। अपने प्रियपुत्र गयाप्रसाद के हाथी पर चढ़ने का हठ करने से, आपने एक साथ ही सात हाथी ख़रीद



[ श्री सनातनधर्म-संस्कृत-कालेज ]

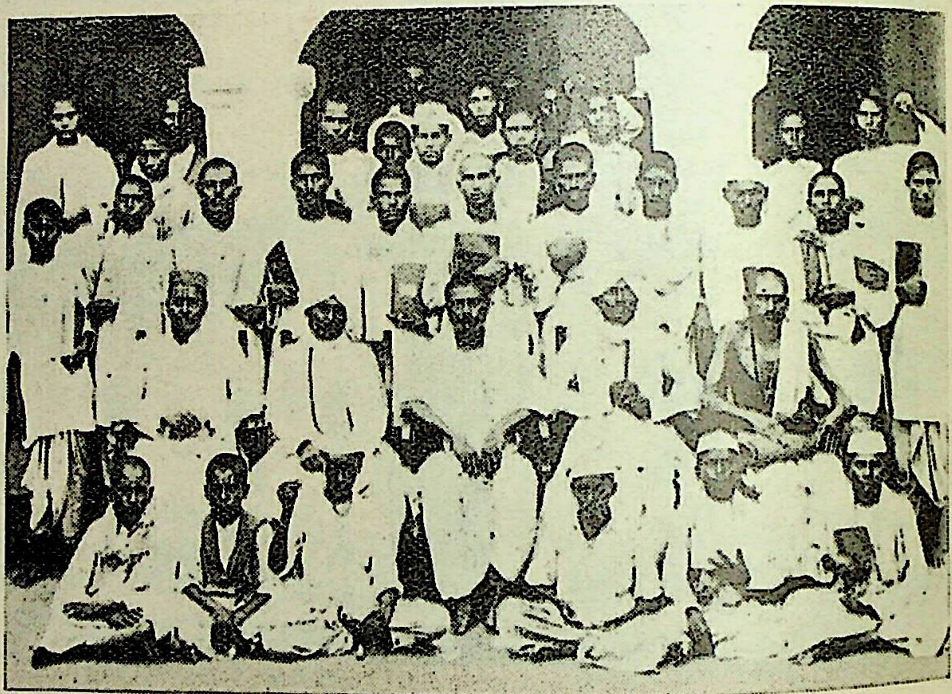
लिये थे। जिनमें छः तो मर गये, परन्तु एक हाथी (मोहना) जो सबमें श्रेष्ठ था, बच गया। उसको आपने मुरारिमऊ के राजा को भेंट कर दिया। राजा साहब के यहाँ आप की विशेष प्रतिष्ठा थी। राजा साहब ने बहुत सी भूमि देकर आपको सम्मानित किया था। आप धन को तृण-समान समझते थे, जिसको आपने दिया उससे माँगा नहीं, और जिसका स्वयं लिया उसे लुटा भी दिया। अन्त समय में आप पर ऋण हो गया। परन्तु आपके सुपुत्र पण्डित शिवसेवक तिवारी ने पितृ-ऋण को डंका बजवा कर तीन दिवस के अन्दर कौड़ी कौड़ी बेबाक़ करके चौथे दिन अन्न-जल ग्रहण किया। ऐसे ही प्रसिद्ध वंश में पण्डित गोविन्दचन्द्रजी त्रिपाठी का जन्म हुआ है। आज़मगढ़ में उक्त कालेज खोल कर आपने कुलोचित ही कार्य किया है।

पण्डित गोविन्दचन्द्रजी सन् १९०१ से आज़मगढ़ में हैं। आप यहाँ बँटवारे के काम के सरकारी मुलाज़िम हैं। परन्तु जो मुलाज़िमत आपने इस ज़िले के सनातन-धर्मावलम्बियों की की है उसके लिए यहाँ की जनता आप का सदैव कृतज्ञ रहेगी। आज़मगढ़ की सनातनी जनता सनातनधर्मोपदेश से वंचित रहा करती थी। आपने ही उद्योग करके यहाँ १९६१ विक्रमी में सनातनधर्म-सभा स्थापित की, जो आज भी अपना धर्म-प्रचार का काम बराबर कर रही है। इस पुनीत कार्य के कर चुकने पर संस्कृत के पठन-पाठन का अभाव दूर करने के विचार से आपने १९६५ विक्रमी में एक संस्कृत-पाठशाला खोली। प्रारम्भ में इसे अनेक कठिनाइयाँ झेलनी पड़ीं, परन्तु त्रिपाठीजी अपने निश्चय पर दृढ़ रहे। १९६९ विक्रमी में

श्री सरस्वती-भवन नाम की उसके लिए एक भव्य इमारत बनवा दी और इस तरह उसे स्थायी रूप प्रदान कर दिया। यही नहीं, आपने अपने अनवरत परिश्रम से अपनी उस पाठशाला को अब श्रीसनातनधर्म-संस्कृत-कालेज के रूप में परिणत किया है। इसमें व्याकरण, साहित्य, और ज्योतिष तथा हिन्दी का पठन-पाठन होता है।

कालेज-भवन में श्रीसरस्वतीजी का एक मन्दिर भी है। अध्यापक व छात्र ईश-वन्दना के बाद पठन-पाठन

पहले पाठशाला का कार्य-संचालन केवल चन्दे-द्वारा ही होता था, परन्तु जैसे जैसे इस संस्था की उन्नति होती गई, आय भी बढ़ती गई। गवर्नमेंट, डिस्ट्रिक्टबोर्ड और म्यूनीसिपल बोर्ड से भी अब इसे आर्थिक सहायता स्थायी रूप से मिलती है। परन्तु चन्दे के द्वारा आज भी विद्यार्थियों के भोजन, पुस्तक आदि का कार्य चलाया जाता है। इसके संस्थापक त्रिपाठीजी कोरे सात्त्विक विचार के आस्तिक ब्राह्मण ही नहीं हैं, किन्तु कर्तव्य-



[ श्री सनातनधर्म-संस्कृत कालेज के अध्यापक और कुछ छात्र ]

शुरू करते हैं। इस कालेज में पाँच अध्यापक हैं। प्रधानाध्यापक पण्डित जगन्नाथजी पाण्डेय व्याकरणाचार्य और काव्यतीर्थ हैं, दूसरे अध्यापक पण्डित देवतादीनजी व्याकरणाचार्य हैं, तीसरे अध्यापक पण्डित चन्द्रबलीजी पाठक व्याकरण-शास्त्री हैं, चौथे अध्यापक पण्डित श्रीधरजी ज्योतिपाध्यापक हैं और पाँचवें पण्डित भगवान्जी हैं। इस कालेज में 'शास्त्री' और 'आचार्य' तक की पढ़ाई होती है। यहाँ से अनेक छात्र अपना अध्ययन समाप्त कर साहित्य और देश की सेवा करते हुए अपना जीवन-यापन कर रहे हैं।

परायण कार्यकर्ता भी हैं। आज भी आप अपने कालेज की सारी व्यवस्था का सञ्चालन ख़ूबी के साथ कर रहे हैं। आशा है, आज़मगढ़ के विद्याप्रेमी नागरिक इस श्रीसनातनधर्म-संस्कृत-कालेज की समुचित रक्षा के लिए सदा यत्नवान् रहेंगे। हमें पूर्ण विश्वास है कि भविष्य में इस कालेज को और भी उन्नत अवस्था में देखने का सुअवसर आ वेगा।

—दामोदर उपाध्याय

## ५—भ्रमर

भ्रमर ! सुना करते हैं कि भगवान् मुरली-मनोहर कृष्ण, अपनी मुरली के मधुर राग-द्वारा व्रज की भोली-भाली गोपिकाओं के हृदयों को हर लिया करते थे। यह नहीं कहा जा सकता कि निर्जीव पदार्थों पर भी उस ध्वनि का कुछ प्रभाव पड़ता था अथवा नहीं, परन्तु तुमने उन्हें भी हरा दिया है। मधुकर ! तुम अपनी मधुर गूँज से, प्राणधारियों का क्या कहना, बेचारे निर्जीव पुष्पों को भी वशीभूत कर लेते हो। वे अपने भाण्डारों को खोल कर तुम्हारी बाट जोहते रहते हैं। बस, तुम आते हो और रस-पान करते हो—निर्द्वन्द्वता से, निडरता से। यह अधिकार तुम्हें किसने दिया? तुम्हारे ही भाई-बन्धु बर्रं और ततैये, बेचारे घोर परिश्रम करते हैं, ग्रीष्म में मारे मारे फिरते हैं, और तुम सरल पुष्पों के कोमल गात पर शयन करते हो। तुम कहोगे 'अपने-अपने भाग्य'; किन्तु मधुप मैं तुम्हारी पोल से विज्ञ हूँ। तुम छलिया हो, धूर्त हो, कपटी और स्वार्थी हो। अभाग्यवश आज इस संसार में सत्य मकरंद के पान करनेवाले मानव-भ्रमरों की न्यूनता है। फिर तुम्हारी इस पोल को कौन खोले। मैं व्यर्थ में झूँठ नहीं बोलूँगा। तुम भगवान् कृष्ण का रूप धारण कर सरल-हृदय पुष्पों के साथ विश्वासघात करते हो। क्या तुम कृष्ण हो अथवा उनके अवतार हो, जैसा कि तुम बने फिरते हो। विश्वास-घाती भौंरे ! तू केवल एक क्षुद्र कीट है। तुझसे दीन और दुखियों को उतना सुख कहाँ, जितना कि मुरलीधर नन्दकिशोर पहुँचाते थे। उतने का क्या कहना? क्या उसका सहस्रांश भी तू किसी का उपकार करता है? तब भी श्याम वर्ण धारण कर, कटि में पीली रेखा-रूपी पीताम्बर पहन, तुम अभय हो चाहे जहाँ विचरते हो। भला भगवान् को रोकनेवाला कौन है। अस्तु, भगवान् के रूप में तुम संसार के जीवों को धोखा देते हो। कहो भ्रमर ! सत्य है न। मानव-जीव भी धोखा खाते हैं। उनके हृदयों में तुम्हारे प्रति श्रद्धा है, और अपने हृदय-में वे तुम्हारी उपासना करते हैं।

क्रोधित क्यों होते हो, भृंगदेव? ठहरो, तनिक ठहरो। यह तो सबका ही ढंग है, पोल खुलने पर सभी भागते हैं। आओ ! मैं भी संसार के अन्य व्यक्तियों की भाँति चाटुवाद-द्वारा तुम्हारे श्लाघालोलुप कर्णों को मिथ्या प्रशंसा-रूपी अमृत का पान कराऊँ। अलि ! मधुर वचन सुनते सुनते ऐसी लत पड़ जाती है कि कटु एवं सत्यपूर्ण शब्दों के सहन करने की शक्ति स्वयं ही कूँच कर जाती है। इसके प्रमाण के लिए दूर नहीं जाना है। खरी खरी बातें सुनते ही तुम चल दिये। तुम्हें कौन काम पर जाना है? किसी पुष्प का रसपान करने के लिए तुम्हारी जिह्वा आतुर हो रही होगी, रस-पान करने की प्रबल इच्छा तुम्हें यहाँ से चलने के लिए बाध्य कर रही होगी। मैं भी अब प्रशंसायुक्त शब्दों-द्वारा तुम्हें प्रसन्न करूँगा। सुनो, मैं क्या कहता हूँ।

भ्रमर ! तुम धन्य हो ! तुम्हें देखते ही योगीश्वर कृष्ण का स्मरण हो आता है। कदाचित् भगवान् ने इसी हेतु संसार में छोड़ा है। गीता का प्रचार ही तुम्हारा मुख्य ध्येय है, और वही गीता-नाद ही तुम विश्व के कोने कोने में करते फिरते हो। अस्तु, तुम सुधारक हो, तुम योगी हो, तुम गीता के वास्तविक रहस्य को समझनेवाले वास्तविक रहस्यमय पण्डित हो। तभी तो जीव तथा निर्जीव, बुद्धिमान् तथा मूर्ख, सभी तुम्हारा स्वागत करते हैं। अन्यथा इस संसार में कौन किसे पूछता है? इसी कारण श्याम होने पर तुम सुन्दर हो। कीट होने पर पूजनीय हो, कवियों के हृदय में निवास करते हो, रसिकों के हृदय में चंचलता उत्पन्न करते हो। देवतुल्य भृंग ! और तुम्हारी क्या प्रशंसा की जाय? संसार में सभी तो तुम्हें प्यार करते हैं।

प्रेमी भौंरे तुम आदर्श प्रेमी हो। तुम्हें तुम्हारे प्रेमपात्रों से कौन बिलग कर सकता है? तुम पुष्पों का ही प्रेम करते हो। तुम्हें कौन रोक सकता है? रोकने पर तुम कब माननेवाले हो। लम्बे लम्बे काँटे और अन्य बाधायें तुम्हारे सम्मुख मुँह की खाती हैं।

वास्तविक प्रेमी बस तुम्हीं हो, तभी तो किसी कवि ने कहा है—

"भ्रमर चण चण भ्रमण कर क्यों भूल फूलों पर रहा।
सोचिए! 'गुण गुण' अनुचण शब्द क्या है कर रहा॥
मित्र! आश्चर्य्यित न हो, यह और कुछ करता नहीं।
प्रेम के गुण-गान में है, धीर बस धरता नहीं॥"

—मुकुटधर

तुम भी हमारे गुरु ही निकले। अपने प्रेम के गुण-गान-द्वारा प्रेम का पाठ तुम्हीं पढ़ाते हो! गुरुवर! हमारे लिए यह सन्देश तुम्हीं लाये हो कि सन्तोषपूर्वक जीव से, अजीव से, चर से, अचर से, वास्तविक प्रेम ही ईश्वर-प्राप्ति का सरल मार्ग है। प्रेम निःस्वार्थ, सत्य 'सौन्दर्य्य' एवं सुख में सना हुआ होना चाहिए। इसी प्रकार के प्रेम के रसपान से मानसिक रोग आदि का अन्त ही हो जाता है। ऐसे प्रेम से बाहर-भीतर सर्वत्र प्रकाश होता है और मनुष्य देव-तुल्य हो जाता है। प्रेम-विहीन समाज रूखा और सौन्दर्य्य-विहीन है। संसार की वास्तविक सुन्दरता प्रेम ने ही प्रदान की है। विविध धर्म्मों में प्रेम को सर्वोच्च स्थान दिया गया है, क्योंकि प्रेम-रस का स्वाद जाने बिना उस सात्विक स्वरूप का सम्यक् ज्ञान नहीं प्राप्त हो सकता।

अलबेले अलि! यह भी सम्भव है कि तुम कृष्ण भगवान् के अनन्य भक्त हो। उनके रूप के परमोपासक हो। अस्तु, उन्हीं का रूप धारण कर उन्हीं की खोज में कृष्ण कृष्ण भजते फिरते हो। क्या कहीं मिले कृष्ण भगवान्? यदि नहीं तो फिर क्यों इतनी आपत्ति में पड़ते हो! अरे! मैं भूल रहा हूँ। आपत्ति कैसी? भगवान् मिलेंगे, अवश्य मिलेंगे। आवश्यकता है निष्कपट भक्ति-पूर्वक यत्न की। यत्न करना हमारा कार्य्य है। उन्हें खोजना ही हमारा कर्त्तव्य है। षट्पद, तुम सब प्रकार मनुष्य के गुरु ही हो। धन्य है तुम्हारी विद्वत्ता को, तुम्हारी गम्भीरता को, तुम्हारी एक-ध्येयता को। इन्हीं गुणों की प्राप्ति से मानव-समाज का कल्याण हो सकता है। तुम यही शिक्षा देते हो।

अच्छा गुरुवर भृंग, क्या अब विलम्ब नहीं होता। अब आप जाइए। अपने श्रम को दूर कीजिए। प्रेम-भाव सदा बनाये रखना। लो, तुम्हें छोड़ता हूँ। जाओ, वे श्यामल स्निग्ध सुवासित वृक्षों की लतायें तुम्हारी बाट जोह रही हैं। और क्या चाहिए?

—बालेश्वरनाथ गुप्त

—

## ६—भयंकर बदला

बदला बहुत बुरी बला है। इसकी आग बड़ी भयङ्कर होती है। वह जिस अभागे या अभागिन के हृदय में प्रज्वलित हो उठती है उसका सारा ज्ञान हर लेती है और उसे एक प्रकार बिलकुल पागल बना कर उससे ऐसे ऐसे देश, जाति और कुलनाशक कुकृत्य करा दिखाती है जो न भूतो न भविष्यति।

पञ्जाबी कवि स्वर्गीय मियाँशाह मुहम्मद ने, जिन्होंने सिक्ख-राज्य के बुरे दिन अपनी आँखों से देखे थे, पञ्जाबी में 'लड़ाई सिंघां दी' नामक एक पद्यात्मक पुस्तक लिखी है, जिसमें उन्होंने सिक्ख-राज्य के नाश का सविस्तर वर्णन किया है। उससे ज्ञात होता है कि ऐसी ही सर्वस्व स्वाहा करनेवाली भयङ्कर बदले की आग एक बार पञ्जाब-केसरी महाराज रणजीतसिंह की विधवा पत्नी महारानी जिन्दाँ के हृदय में भी दहक उठी थी और बड़ी प्रबल दहक उठी थी। यह शोचनीय बात उस कुसमय की है जब बेचारे पञ्जाब के दुर्भाग्य से महाराज रणजीतसिंह स्वर्ग सिधार चुके थे और उनके कितने ही अमात्य, सरदार और अहलकार भी आपस में ही लड़-लड़कर यम-सदन जा चुके थे, तथा बाक़ी बचे-खुचे भी नित्य ही जा रहे थे। पञ्जाब की हालत बड़ी ही दयनीय थी। जो उठता था वही अपने आपको पञ्जाब का शासक घोषित कर देता था और फिर तरह-तरह के अत्याचार और अनाचार पञ्जाब पर करने लगता था। फ़ौजें भी बिना लगाम के घोड़े की तरह इधर-उधर उत्पात मचा रही थीं। वे बार बार आकर असहाय, अबला रानी जिन्दाँ को ख़ूब सता सताकर उससे तरह

तरह के इनाम माँगती थीं और उसके न देने पर—क्योंकि रोज़ ही इनाम और तरक्क़ियों के लिए धन कहाँ से आवे?—उसे बे-हद तङ्ग करती थीं। लिखा है कि एक बार बहुत से अत्याचारी इकट्ठे होकर रानी जिन्दां के भाई जवाहिरसिंह पर चढ़ आये। बेचारा जवाहिरसिंह मारे भय के आगे ही से उनका स्वागत करने के लिए अपने बालक भांजे महाराज दलीपसिंह के सहित हाथी पर चढ़कर उनके सामने आ गया। उन दुष्टों ने न कुछ सोचा और न समझा, फ़ौरन जवाहिरसिंह पर टूट पड़े और नेज़ों पर चढ़ाकर उसे नीचे गिरा लिया तथा उसके हज़ार अनुनय-विनय करने पर भी बड़ी निर्दयता से उसका सिर काट कर धड़ से जुदा कर दिया। उधर रानी जिन्दां को भी एक कनात में क़ैद कर लिया। जब वह अपने भाई के लिए रोने-पीटने लगी तब नीच सैनिक उसे डाँटते हुए कहने लगे—रोती क्यों है? क्या हुआ है? कौन सा हमने राजकुमार मार दिया है, जिसके लिए तू इस प्रकार विलाप कर रही है? हमें धन्यवाद और इनाम दे, जिनके बल पर तू राज्य कर रही है! इस घटना पर शाह मुहम्मद लिखता है—

पई कूरदीए रानी जिन्द कौरां,
किथों कढ्ढां मैं कल्गीआं नित्त तोड़े?
मेरे साम्हने कोहिआ वीर मेरा,
जिस दी ताबिआ लक्ख हजार घोड़े।
किथों कढ्ढां हैं देस फरंगियाँ दा,
कोई मिले जो इन्हाँ दा गर्व तोड़े।
शाह मुहम्मदा ओस तों जान वारां,
ज्वाहरसिंघ दा खून जो कोई मोड़े।
मैनूं आण घुफेरिओं धूरदे नी,
लैंदे मुफ़्त इनाम रुपै बारां।
"जट्टी होवां तां करां पञ्जाब रंडी,
सारे देस दे विच्च चा तुरन वारां।
धड़ां नहीं लाहौर विच वरन जोगे,
सणे वड्डिआं अफसरां जमादारां।
परा रुलयगे विच्च परदेस मुर्दे,
शाह मुहम्मदा मारनी रास मारां।
जिन्हां मारिआ, कोहिआ वीर मेरा,
मैं तां करांगी उहां दियां जंड्डीआं नी।
धुम्मा पैण विलैती पेश जाना,
पावां बकरे वांग च वंड्डीआं नी।
चूहें लहिणगे कई सुहागनां दे,
नत्थ चौक ते वाल्लीआं डंडीआं नी।
शाह मुहम्मदा पैणगे वैण डूंघे,
जदों लहिण पञ्जाबनां रंड्डीआं नी।"

अर्थात्—रानी जिन्दां बार बार शोच करती है कि (इन अत्याचारियों को देने के लिए) मैं नित्य ही कहाँ से कल्गीरां और रुपयों की थैलियां निकालूं!

हाय, मेरे सामने ही इन दुष्टों ने मेरे भाई को जिसके अधीन हज़ारों और लाखों घुड़सवार थे, (अकारण ही) मार दिया है।

हाय, कहाँ से मैं अँगरेज़ों का राज्य लाऊँ, (जो सब बात में समर्थ हैं)

हाय, कोई मिले जो इन (पामरों) का गर्व चूर करे। मैं उस पर बलिहार जाऊँगी, जो जवाहरसिंह के ख़ून का बदला चुकायेगा।

ये मुझे हर प्रकार से डाँटते-डपटते और तङ्ग करते हैं! तथा मुफ़्त में ही बारा रुपया इनाम (अर्थात्, १२ रुपया मासिक वेतन) पाते हैं।

यदि मैं जट्टी होऊँगी तो (निश्चय ही) पञ्जाब भूमि को विधवा करके छोड़ूँगी और सारे देश में हाहाकार मचा दूँगी तथा बड़े बड़े अफ़सरों और जमादारों के सहित इन्हें लाहौर में घुसने लायक़ न रहने दूँगी। और इन्हें ऐसी मार मारूँगी कि इनके मुर्दे तक भी परदेशों में पड़े ख़्वार होंगे।

मैं इनकी—जिन्होंने मेरे भाई को मारा तथा बुरी तरह क़त्ल किया है—अच्छी तरह ख़बर लूँगी। ऐसी ख़बर लूँगी, ऐसी इनकी जान पर बनाऊँगी, ऐसी इन पर आफ़त लाऊँगी कि जिसकी धूम विलायत तक में जा पड़ेगी। मैं बकरे की तरह इनके टुकड़े टुकड़े करवा कर जहाँ-तहाँ बँटवा दूँगी। फल क्या होगा कि कितनी

ही सौभाग्यवतियों के 'चूड़े नत्थ चौक' और 'डंडिये'' (सौभाग्यवती के ख़ास ज़ेवर) उतर जायँगी और उस समय पंजाब में बड़ा ही भीषण चीत्कार मचेगा, जब ये पंजाब में विधवा हो बैठेंगी।

शाह मुहम्मद कहता है कि इस प्रकार मन में धार कर रानी जिन्दाँ ने—

अर्जी लिखी फरंगी नू कुज गोशे,
पहले आपणा सुक्ख आनन्द वारी।
तेरी वल्ल मैं फौज नू भेजदी हां,
खट्टे करीं तू इन्हां दे दंद वारी!
जेहड़ा जोर तू आपणा सभ लाईं,
पिच्छे खर्च मैं करांगी बन्द वारी।
शाह मुहम्मदा, फेर न औण मुड़के,
मैनू एतनी बात पसन्द वारी।
पहले पार दा मुल्ख तू मल्ल साडा,
आपे खा गुस्सा तैथीं आवणीगे।
सोई लड़नगे होण बे-खबर जेहड़े,
मत्था कदी सरदार न डाहवणीगे।
एसे वास्ते फौज मैं पाड़ छड्डी,
कई भांफ अचानकी पावणीगे।
शाह मुहम्मदा, लाटजी! कटक तेरे,
मेरे गलों तगादड़ा लाहवणीगे।

अर्थात् एक चिट्ठी बना-सँवार कर अँगरेज़ों को लिखी। उसमें पहले तो अपना कुशल-समाचार लिखा और फिर लिखा कि—

'मैं अपनी फ़ौज को आपकी ओर भेजती हूँ। आप इनके ख़ूब अच्छी तरह से दाँत खट्टे करें। आप अपनी तमाम शक्ति इन्हें नष्ट करने में लगा दें और इधर मैं भी इनका सारा ख़र्च बन्द कर दूँगी।

ये लौट कर न आयें—बस, यही बात मुझे पसन्द है। (अर्थात् तुम्हारे हाथों तहस-नहस हो जायँ)

आप हमारे पार के मुल्क पर क़ब्ज़ा कर लीजिए—बस, ये (अर्थात्, मेरी फ़ौज) स्वयं ही क्रुद्ध होकर आप पर आक्रमण कर देंगे। पर लड़ेंगे वही जो बेख़बर होंगे। जो ख़बरदार होंगे वे सरदार कदापि तुम्हारा मुक़ाबला नहीं करेंगे। मैंने इसी लिए अपनी फ़ौज को फोड़ रक्खा है (कि वह कामयाब न हो सके)। आप देखेंगे कि कई अकस्मात् ही पीछे को भाग आवेंगे।

प्रिय लार्ड! (मुझे विश्वास है कि) तेरी फ़ौजें निश्चय ही मेरे गले से सारा तक़ाज़ा उतार फेकेंगी।

कैसा भीषण कोप है! कैसी बदले की भड़कती आग है। कवि ने सत्य ही कहा है—

कहा न पावक जरि सकै, का न समुद्र सुखाय।
का न करै अबला प्रबल, कहि जग काल न खाय।

इसलिए विशेष कुछ कहने की ज़रूरत नहीं।

—गुरांदित्त खन्ना

# विज्ञान की करामात

## १—४० वर्ष तक सबसे ऊँची

अधिक दिनों की बात नहीं है कि फ़्रांस में एक साधारण पत्थर की मूर्ति की स्थापना हुई। उसके नीचे "गुसटव ईफल, १८३२-१९२३" लिखा हुआ है। वर्षों के बाद राष्ट्र ने अपने एक वैज्ञानिक का सत्कार किया। न भी करता तो क्या ईफल का नाम लोग भूल जाते। जब तक पेरिस के वक्षःस्थल पर ९८४ .फुट ऊँचे फौलाद की मीनार शोभित रहेगी तब तक ईफल का नाम संसार नहीं भूलेगा।

पेरिस-यात्री इस संसार के अचम्भे को, एक बार जाकर अवश्य ही देखते हैं। ३० वर्ष तक वह संसार में अपनी शानी नहीं रखती थी। अब तो अमेरिका की गगनचुम्बी इमारतों ने उसके गौरव को कुछ कम कर दिया।

वैज्ञानिक सभ्यता भले ही १२ सौ या १३ सौ .फुट ऊँची इमारतों का गर्व आज करे परन्तु हमें तो उस समय का विचार करना है जब विज्ञान की इतनी उन्नति नहीं हुई थी। वैसे समय में किये हुए ईफल के कार्य की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है।

जीवन के इस महान् कार्य को प्रारम्भ करने के पहले ईफल ने बहुत से कार्य किये थे। उसने फ़्रांस की नदियों पर लोहे के बड़े बड़े पुल बाँधे थे, न्यूयार्क में स्वतन्त्रता की मूर्ति का बाहरी ढाँचा बनाया था, पुर्तगाल में ५२० .फुट लम्बा पुल बनाया था। इस तरह से उसने संसार में अपनी ख्याति फैला ली थी।

सन् १८७४ में अमेरिकन इंजीनियरों ने एक १००० .फुट ऊँची इमारत फिलाडेलफिया में बनाना निश्चित किया; परन्तु वे असफल हुए। इसके बाद १८८१ में एक फ़्रांसीसी ने ईंट-गारे की इमारत बनाने का प्रस्ताव किया परन्तु वह स्वीकृत न हुआ। अन्त में सन् १८८६ में ईफल का नक़शा मंजूर हो गया और उसने लोहे की मीनार खड़ी करने का कार्य प्रारम्भ किया।

ईफल इस महान् और कठिन कार्य से तनिक भी न घबराया और ३१ मार्च १८७९ में यह मीनार तैयार हो गई। इसके शिखर पर फ़्रांस की राष्ट्रीय पताका फहरा कर गगनमंडल में फ़्रांस के चमत्कार की कीर्ति संसार में फैलने लगी।

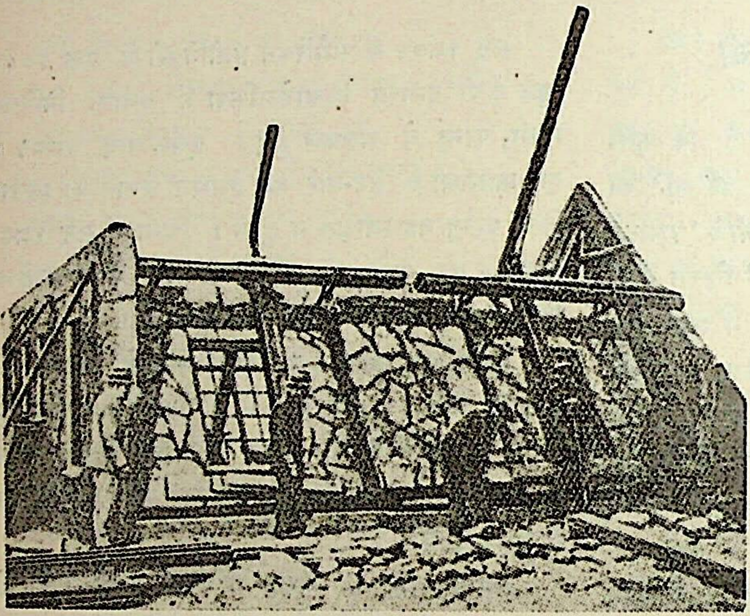
जनता लाखों की संख्या में रोज़ उसके दर्शन को जाने लगी। वैज्ञानिक लोग भी दौड़ पड़े। उन्होंने आब-हवा ज़ानने के यंत्रों को उसके ऊपर लगाया। गगन-मंडल के खोजी अपनी दूरबीनों को लेकर वहाँ बैठने लगे। आज भी वह पुरानी दुनिया की एक आश्चर्य-मयी वस्तु है।

---

## २—तैयार मकान

रहने के लिए एक झोपड़ी बनाने में अनेकों दिक़्तें उठानी पड़ती हैं। तरह तरह की वस्तुओं को इकट्ठा करना पड़ता है। एक स्थान से चूना तय किया जाता है तो दूसरे स्थान से ईंट का प्रबन्ध करना पड़ता है। फिर बहोरे की दूकान से कीलें आती हैं तो रस्सी के लिए किसी अन्य दरवाज़े को खटखटाना पड़ता है। इस तरह सैकड़ों समस्यायें हल करनी पड़ती हैं। पाश्चात्य

जगत् ने इनको दूर करने की नई विधि ढूँढ़ निकाली है। अमेरिका में अब तैयार मकान मिलते हैं। इन्हें आप देख लीजिए, अपनी इच्छा के अनुसार परिवर्तन कर लीजिए और जिस स्थान में आप चाहते हों ले आइए।



[बने मकान की पक्की दीवालों को जमा रहे हैं।]

इस तरह के मकान एक मंज़िल से लेकर कई मंज़िलों तक के रहा करते हैं। ये मकान दो प्रकार के होते हैं। एक प्रकार के मकान केवल लोहे के ही रहा करते हैं। आपको केवल बुलट कीलें आदि लगाकर जमा लेना पड़ता है। दूसरे प्रकार के मकान कंकरीट और लोहे के रहते हैं। इन मकानों की पक्की दीवालें टुकड़े टुकड़े के रूप में रहा करती हैं। उन दीवालों को वर्तमान गाड़ियों के द्वारा कहीं भी लाद कर ले जा सकते हैं। दीवालों में उपयुक्त स्थानों पर खिड़कियाँ और दरवाज़े रहते हैं।

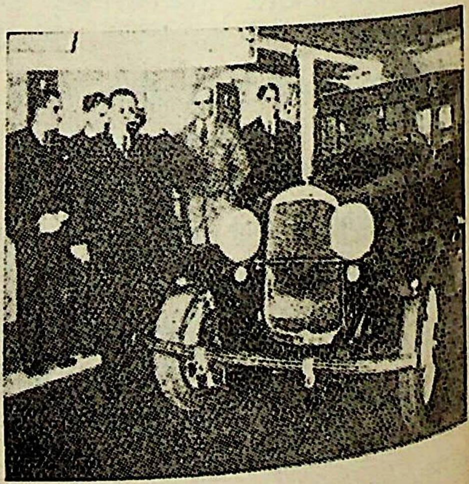
इस तरह के मकानों में एक सुविधा रहती है कि आप तैयार मकान में कभी भी इच्छित परिवर्त्तन आसानी से कर सकते हैं। किसी एक भाग के ख़राब हो जाने पर केवल उसे ही बदल सकते हैं और सबसे उत्तम बात तो यह है कि आप बनाने के पहले अपने तैयार मकान को दूकान में ही देख सकते हैं तथा अनेक प्रकार की आपत्तियों से छुटकारा पा सकते हैं।

---

## ३—आज्ञा माननेवाली मोटर

एक नवीन मोटर का आविष्कार हुआ है। जिस समय यह न्यूयार्क नगर में प्रथम अवसर पर अपने चमत्कारों को बतलाने के लिए लाई गई उस समय उसमें कोई बैठा नहीं था। पास ही एक झाड़ था। उसमें विद्युत् के प्रकाश का कुछ प्रबन्ध था। जिस समय आविष्कारक ने टेलीफ़ोन से हुक्म दिया "चलो"। उसी समय मोटर चल दी। फिर कहा, "पीछे आओ," "खड़ा हो जाओ" आदि मोटर ने तत्काल आज्ञा का पालन किया।

इस विचित्रता की कुञ्जी टेलीफ़ोन के प्रचलित होनेवाला झाड़वाला प्रकाश था जो अपना असर मोटर के संचालन-यंत्रों



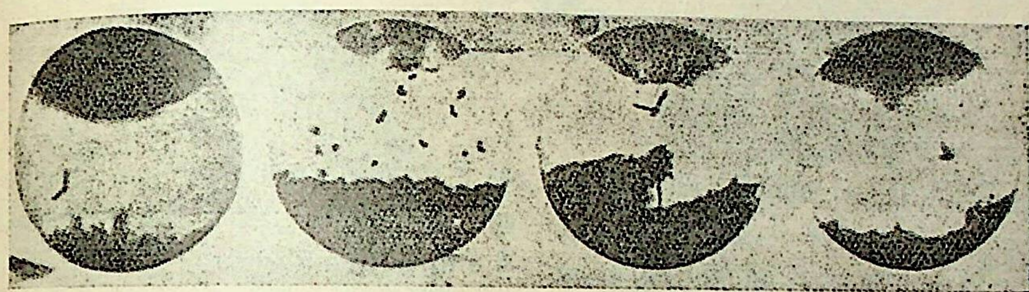
[आज्ञाकारी मोटर]

पर डालता था और उसके कारण मोटर आज्ञा मानती थी।

## ४—केमरा-बन्दूक़

शिकारी निशान लगाते हैं। फल के लिए बड़े ही उत्सुक रहा करते हैं परन्तु जब उन्हें मालूम होता है कि निशाना चूक गया तब तो वे निराश हो जाते हैं। कभी अपने मित्रों से कहते हैं—"जनाब, मैंने हाथ मार ही की बात में हो जाता है। इसके बाद आप अपने चित्रों को ठीक तैयार करके अपने निशाने की जाँच कर लीजिए।

चित्र अ से पता चलता है कि निशान दाहनी ओर को अधिक था तथा चित्र ड बतलाता है कि निशान बाईं ओर अधिक था। अतएव इन दोनों परिस्थितियोंमें



अ ब स ड

[बन्दूक़ केमरा से लिया हुआ फ़ोटो]

दिया था, बस ज़रा सी कसर रह गई।" उनके सच और झूठ कथन का निर्णय अब बन्दूक़ ही कर दिया करेगी। नवीन बन्दूक़ में नली के नीचे एक स्थान में चार "केमरा-कारटेज" रहती है। घोड़ा दबाते ही गोली छूटती है साथ ही केमरा-कारटेज छूटती है और ने निशाने का चित्र उतार लेती हैं। यह सब काम बात पक्षी के मारे जाने की सम्भावना नहीं। चित्र ब से ज्ञात होता है कि पक्षी सम्भव है मर जावे तथा चित्र स से तो स्पष्ट ही मालूम होता है कि निशान अचूक है। इस तरह से यह नवीन बन्दूक़ एक साथ दो काम करती है।

—नाथूराम शुक्ल



# मातृ-मण्डल

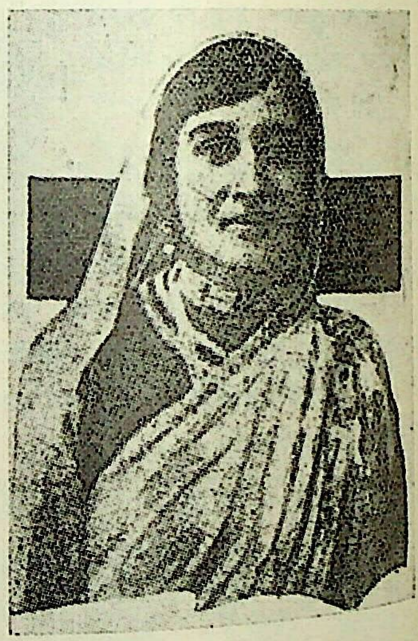
महिलाओं की उन्नति के सम्बन्ध में जो तरह तरह के आन्दोलन हो रहे हैं, उनका समाज पर बड़ा प्रभाव पड़ रहा है। जनता की रुचि स्त्रियों की शिक्षा-दीक्षा की ओर अधिक वेग से अग्रसर हो रही है। स्त्रियाँ भी अब अपने जन्म-सिद्ध अधिकारों का अनुभव करने लगी



[श्रीमती अन्नचण्डी]

[ आप ट्रावन्कोर-राज्य की निवासिनी हैं। वहाँ के हाईकोर्ट की आप एडवोकेट हैं। आप वहाँ की प्रथम महिला वकील हैं ]

हैं। अब वे पुरुषों की सेवा-सुश्रूषा करने तथा उनकी अनुगामिनी बन कर रहने में ही सन्तुष्ट नहीं हैं, बल्कि अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व स्थापित करने की ओर आगे आ गई हैं। उनकी इस प्रवृत्ति से जाति की जागृति में सच-मुच बड़ी सहायता मिलेगी। किन्तु अधिकांश महिलाओं में न तो अभी इतनी दूरदर्शिता है और न उन्हें समुचित



[ बेगम शाहनवाज़ ]

[राउंडटेबल कान्फ़रेंस के भारतीय महिला-प्रतिनिधियों में एक आप हैं। आप प्रसिद्ध मुसलमान-नेता सर मुहम्मद शफ़ी की पुत्री हैं। आप योग्य पिता की योग्य सन्तान हैं]

शिक्षा ही दी गई है। अतएव उनकी स्वतन्त्रता की अधिकार-लिप्सा की इस प्रवृत्ति के कारण केवल वि... सिता और निष्क्रियता की ही वृद्धि हो रही है। सभ्य... के आडम्बर में पड़कर कितनी ही महिलायें गृहस्थी...

काम-काज की अवहेलना करने लगती हैं। अधिकांश अर्द्धशिक्षित तथा नाममात्र की शिक्षा पाई हुई महिलायें चौके के साथ सम्बन्ध रखना अपनी मर्यादा के विरुद्ध समझती हैं। बच्चों के पालन-पोषण से भी वे उत्तरोत्तर उवती जा रही हैं। परिणाम यह हो रहा है कि साधा-



[श्रीयुक्ता अशोकलता दास]



[श्रीमती शान्तिदास, एम० ए०]

[ श्रीयुक्ता अशोकलता दास और उनकी कन्या श्रीमती शान्तिदास एम० ए०—इन दोनों महिलारत्नों को वर्तमान सत्याग्रह-आन्दोलन में भाग लेने से ४ मास के जेल का दण्ड हुआ है ]

रण स्थिति के पति के ऊपर रसोइया और दाई-नौकर आदि का भी भार लादने में वे सङ्कोच नहीं करतीं। इधर रसोईदारों की असावधानी से गृहस्वामी को समुचित रूप से भोजन भी नहीं मिलता, साथ ही आवश्यकता से अधिक व्यय भी बढ़ता जाता है। बीच-बीच में सरकस, थियेटर और सिनेमा आदि का भो व्यय उसे लादना पड़ता है। दाइयां बच्चों की सुख-सुविधा की ओर यथेष्ट ध्यान नहीं देतीं, जिससे न तो उनका स्वास्थ्य ठीक रहता है और न वे अपना पूर्ण विकास ही कर पाते हैं। दाइयों और नौकरों के संसर्ग से उनमें बहुत-सी बुरी आदतें भी अनायास ही आती जाती हैं। सारे घर का भार नौकरों पर छोड़ कर रात-दिन आलस्य-निद्रा में ही समय व्यतीत करने और अनियमित आहार-विहार के कारण स्त्रियाँ स्वयं कितने ही रोगों की शिकार बन बैठती हैं। इन सब कारणों से वर्त्तमान सभ्यता की गोद में पली हुई कितनी ही स्त्रियाँ आजकल मध्यवित्त गृहस्थों के लिए निरर्थक ही नहीं किन्तु उनके लिए एक अनावश्यक भार हो रही हैं और छोटे-छोटे बच्चों से घर भर कर गृहस्वामी का शरीर रात-दिन दुश्चिन्ता की ज्वाला से जलाती रहती हैं।

महिलाओं का एक वह भी दल है, और वह दल बड़ा प्रबल है, जिसका पढ़ने-लिखने से कोई सम्बन्ध नहीं है। वह दल केवल रूढ़ियों का उपासक है और जाति-पाँति तथा रीति-रस्म के झंझटों में ही रात दिन पड़ा रहता है। इस दल की अशिक्षिता नवयुवतियों के साथ

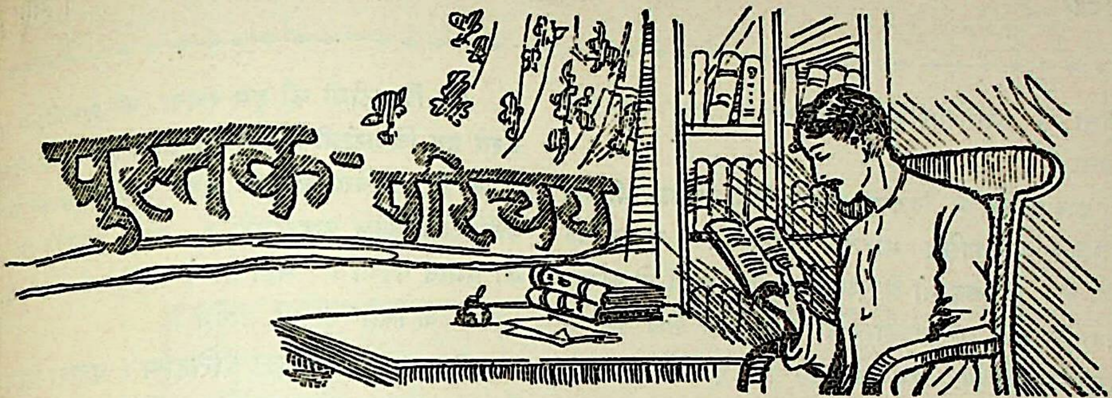
जब उन्नत विचार के शिक्षित युवक विवाह के बन्धन में पड़ जाते हैं, तब रहन-सहन और विचारों में घोर अन्तर होने के कारण उन्हें बात बात में कठिनाई पड़ती है। पति के मस्तिष्क में जो विचार आते हैं, और देश तथा समाज के उत्थान के सम्बन्ध में वह जो कुछ सोचता है, पत्नी की दृष्टि में वह सब निरर्थक तथा जञ्जाल सा मालूम पड़ता है। ऐसी स्त्री पाकर वे न तो गृहस्थी के ही सुखों का समुचित उपभोग कर पाते हैं और न देश के ही प्रति अपने कर्तव्य का पालन करने में समर्थ होते हैं। जीवन की भिन्न-भिन्न समस्याओं को सुलझाने के लिए पुरुष को पत्नी से जिस सहायता की आवश्यकता पड़ती है, उससे वे वञ्चित तो रहते ही हैं, साथ ही मूर्ख पत्नी पद-पद पर उनकी उन्नति के मार्ग में बाधायें भी पहुँचाती रहती है।

समाज में विवाह तथा अन्यान्य उत्सवों पर कुछ ऐसे अपव्यय होते हैं जो वर्तमान युग के अनुसार अनावश्यक एवं त्याज्य हैं। किन्तु निर्धन गृहस्थ को बाध्य होकर उनका भार स्वीकार करना पड़ता है, चाहे वह ऋण से बाल-बाल क्यों न बँध जाय। इन सब अपव्ययों की पोषक स्त्रियाँ ही हैं। किसी भी उत्सव के समय घर पर बैठे-बैठे वे समारोह और सज-धज का ख़ाका तैयार करती रहती हैं और स्कीम में ज़रा भी हेर-फेर होते ही महाभारत मचाने को तैयार हो जाती हैं।

महिलाओं में आर्थिक-दृष्टि से हर एक बात पर विचार करने की शक्ति यदि आ जाय तो ये कठिनाइयाँ अनायास ही दूर हो सकती हैं। शिक्षा के साथ-ही-साथ उनमें क्रियाशीलता का भी प्रचार करना विशेष आवश्यक है। शिक्षा का अर्थ आलस्य और निद्रा की उपासना से नहीं चरितार्थ होता। जहाँ हमारी शिक्षित युवतियाँ शिक्षा तथा समाज-सुधार के अन्यान्य क्षेत्रों में भाग लेने के लिए व्यग्र हो रही हैं, वहाँ उन्हें गृहस्थी के छोटे-से छोटे काम भी बड़े प्रेम से करने चाहिए। कुछ शिक्षित महिलायें गाँव गाँव में घूमकर महिलाओं में शिक्षा-प्रचार का व्रत ग्रहण कर लें और चिकित्सा-शास्त्र का समुचित अध्ययन करके उसका प्रचार करने में तन्मय हो जायँ तो देश-वासियों के स्वास्थ्य-सुधार में बड़ी सहायता मिले। विशेषतः ओषधि-विज्ञान के अध्ययन से स्त्रियाँ उपार्जनशील भी बन सकती हैं और जन-साधारण का भी इससे बड़ा हित होगा।

—गङ्गाप्रसाद वर्मा

---




**१—बोलचाल**—प्रसन्नता की बात है, हिन्दी में बोलचाल की भाषा में ख़ूब कविता होने लगी है। इस सम्बन्ध में पण्डित अयोध्यासिंह उपाध्याय, 'हरिऔध', ने बहुत अधिक काम किया है। उपर्युक्त पुस्तकरचना हमारे कथन का प्रमाण है। इसके रचयिता पण्डित अयोध्यासिंह उपाध्याय का परिचय देने की ज़रूरत नहीं है। आप हिन्दी के पुराने भक्तों में हैं। आपने अपनी सुघर अनूठी रचनाओं से उसके साहित्य-भण्डार की ख़ूब पूर्ति की है। गद्य-पद्य दोनों के लिखने में आपने यश का अर्जन किया है। परन्तु प्रसिद्ध आप सुकवि के ही रूप में हैं। आपका 'प्रिय-प्रवास' आपकी एक ऊँचे दर्जे की रचना है। आपका यह दूसरा काव्य-ग्रन्थ 'बोल-चाल' की हिन्दी में लिखा गया है।

यह 'बोलचाल' भी 'प्रियप्रवास' की तरह एक अनूठा ग्रन्थ है। यह काव्य ही नहीं, कोष भी है। हरिऔधजी ने इसे बड़े परिश्रम से तैयार किया है। इसमें एक ओर आपकी कविता का—आपकी खरी उक्तियों का मज़ा है, दूसरी ओर भाषा के मुहाविरों की बहार है। इस ग्रन्थ से आपकी गम्भीर विद्वत्ता का ही परिचय नहीं होता है, किन्तु हिन्दी का सिर ऊँचा होने की आपकी सद्भावना का भी। आपने अपनी खोजपूर्ण २४९ पृष्ठ की लम्बी भूमिका में हिन्दी के सम्बन्ध में अनेक ज्ञातव्य बातों का उल्लेख किया है। हिन्दी के भिन्न भिन्न रूपों का उल्लेख करके आपने उनका रूप बहुत सुन्दर ढङ्ग से स्पष्ट किया है। आँख मूँद कर लिखनेवाले हमारे अहम्मन्य सुलेखक आपकी भूमिका का यह स्थल पढ़ेंगे तो उनके कान खड़े हो जायँगे और आँखें खुल जायँगी। परन्तु सबसे बढ़कर आदर्श कार्य जो आपने किया है वह है उर्दू-छन्दों का अपनाना। इन छन्दों के उपयोग से हिन्दी की हितहानि नहीं हुई है। 'बोलचाल' के इस काव्य से उसकी श्रीवृद्धि ही हुई है। हिन्दी के प्रेमियों को इस काव्य का रसास्वादन करना चाहिए। हरिऔधजी हिन्दी के वयोवृद्ध कवियों में हैं। यह आपकी वृद्धावस्था का प्रसाद है। पुस्तक पर मूल्य नहीं लिखा है। खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, से प्रकाशित हुई है।

**२—स्वप्नों के चित्र**—लेखक, पण्डित रामनरेश त्रिपाठी, प्रकाशक, हिन्दी-मंदिर, प्रयाग हैं। आकार डबल क्राउन सोलहपेजी, पृष्ठ-संख्या १५६ और मूल्य ॥।) है।

यह आश्चर्य की बात है कि इस उन्नति के युग में भी हिन्दी में अभी ऐसे कवियों का एक दल मौजूद है जो आँख मूँद कर पुरानी लकीर पर चला जा रहा है। और व्रजभाषा तथा उसके शृंगार-रस, नख-शिख-वर्णन और नायिका-भेद आदि में उलझा हुआ है। इसी दल को सुमार्ग पर लाने के उद्देश से त्रिपाठीजी ने समय समय पर कुछ विनोदपूर्ण लेख लिखे थे। प्रस्तुत पुस्तक उन्हीं लेखों का संग्रह है। प्राचीन शृंगारी कविता के दोषों के विरुद्ध जो कुछ भी लिखा जा सकता है वह सब इसमें त्रिपाठीजी ने बड़े अच्छे और मनोरञ्जक ढङ्ग से लिखा है। इस पुस्तक में आपने यह सिद्ध किया है कि नख-शिख-वर्णन में किसी स्त्री या पुरुष का वास्तविक चित्र नहीं खिंच सकता, नायिका-भेद से स्त्रियों के प्रति व्यर्थ में अविश्वास पैदा होता है, प्राचीन ढङ्ग की कविता करनेवाले कवि समाज का कोई हित नहीं कर सकते और शृंगारी

कविता से व्यभिचार और चरित्रहीनता को प्रोत्साहन मिलता है।

इस पुस्तक में विनोदपूर्ण लेख और एक कहानी है। कहानी में एक प्रसिद्ध भारतीय ऐतिहासिक घटना का वर्णन है। इस कहानी से पुस्तक के अन्य लेखों के वर्णित विषयों का कोई सम्बन्ध नहीं है। शेष सब लेख समाज-सुधार-सम्बन्धी बातों और दलीलों से पूर्ण हैं। सभी लेख सुपाठ्य हैं।

कविता के सम्बन्ध में त्रिपाठीजी के ऐसे क्रान्ति-मूलक विचार पढ़कर जहाँ हमें प्रसन्नता हुई, वहीं स्त्रियों के सम्बन्ध में आपके पिछड़े हुए विचार देखकर हमें दुःख भी हुआ। आपने नायिका-भेदवाले लेख में यह दिखलाने का प्रयत्न किया है कि पढ़लिख कर स्त्रियाँ दुश्चरित्र हो जाती हैं और 'स्त्रियों की कौंसिल' वाले प्रहसन में तो आपने यहाँ तक दिखलाने की चेष्टा की है कि स्त्रियाँ बातूनी आलसी, कलहप्रिया, कटुवादिनी और डरपोक होती हैं। शासन-सम्बन्धी कार्य्यों के संचालन की योग्यता उनमें नहीं होती। उनकी देश-सेवा यही है कि वे अच्छे बच्चे पैदा करें। परन्तु यदि वे स्वयं अच्छी न होंगी तो अच्छे बच्चे कहाँ से पैदा करेंगी? ख़ैर।

इस पुस्तक की रचना कुरुचि और चरित्रहीनता उत्पन्न करनेवाले साहित्य का विरोध करने के लिए हुई है। यह उद्देश जितना सुन्दर है उतना ही पवित्र भी है। परन्तु हमें दुःख के साथ कहना पड़ता है कि स्वयं त्रिपाठीजी अपनी रचनाओं में इस पवित्र उद्देश की रक्षा नहीं कर सके हैं। उदाहरणार्थ उनके हाल में ही प्रकाशित 'स्वप्न' नामक काव्य का एक पद्य यहाँ दिया जाता है—

> मुझे ध्यान में निरत देखकर,
> वह गुलाब का फूल तोड़कर।
> मुँह पर मार खिलखिला उठती,
> मैं तत्काल भुजाओं में भर
> बार बार चुम्बन करता हूँ।

ऐसे कुरुचिव्यञ्जक पद्यों की आपके 'स्वप्न' में कमी नहीं है। इसके अतिरिक्त आपकी कविता-कौमुदी में भी 'रसीले' पद्यों का काफ़ी संग्रह किया गया है।

हम त्रिपाठीजी की इस रचना की मुक्तकंठ से प्रशंसा करते हुए त्रिपाठीजी से निवेदन करेंगे कि अगले संस्करण में अपनी 'कविता-कौमुदी' तथा 'स्वप्न' से भी अश्लील पद्यों को निकाल बाहर करें। तभी आपकी इस रचना का प्रभाव पड़ेगा। नहीं तो ये 'स्वप्नों के चित्र' सचमुच 'स्वप्नों के चित्र' ही रह जायँगे।

३—बुँदेलखंड का इतिहास (पहला भाग)—लेखक, श्रीयुत दीवान प्रतिपालसिंह, प्रकाशक, कुँवर पृथ्वीसिंह, छतरपुर (सी० आई०), हैं। आकार, डबल क्राउन सोलहपेजी, पृष्ठ-संख्या ३८० और मूल्य ३) है।

बुँदेलखण्ड भारत का एक ऐतिहासिक देश है। यह वीरभूमि रहा है। वहाँ के वन, पहाड़, घाटियाँ, नदियाँ और मरुस्थल लोगों को परिश्रमी और साहसी बनाने के साधन हैं। इसी लिए इस देश का इतिहास प्राचीन काल के वीरों की गाथाओं से परिपूर्ण है। किसी ओर भी निकल जाइए, पुराने क़िले, गुफायें और टूटी-फूटी हवेलियाँ अवश्य मिलेंगी। कोल, गोंड और द्राविड़ आदि प्राचीन जातियाँ यहाँ अब तक अपनी उसी पुरानी सभ्यता के साथ पाई जाती हैं। इनके अतिरिक्त यहाँ अब तक राजपूतों की अनेक वीर जातियाँ अपना आधिपत्य जमाये हुए हैं। इन सब जातियों में पहले ख़ूब युद्ध हुए हैं और पुराने खँडहरों के रूप में उन युद्धों के चिह्न अब तक मौजूद हैं। ऐसे देश का इतिहास कितना करुण, कितना सुखद, कितना उपयोगी और कितना प्रिय हो सकता है, यह पाठक स्वयं ही अनुमान कर सकते हैं। प्रस्तुत पुस्तक के वयो-वृद्ध लेखक दीवान प्रतिपालसिंहजी को इस प्रान्त के इतिहास का अभाव सन् १८९८ ईसवी में ही खटका था और तभी से आप इस अभाव को दूर करने के प्रयत्न में लगे हैं। इस प्रकार तीस वर्ष के परिश्रम के पश्चात् आपने इस इतिहास को तैयार कर डाला है। आपकी यह लगन एक सच्चे बुँदेलखण्ड-वासी के लिए सर्वथा उपयुक्त है।

पुस्तक १२ भागों में समाप्त हुई है, जिनमें अभी केवल पहला ही भाग प्रकाशित हुआ है। शेष भाग छप रहे हैं। इस भाग में बुँदेलखण्ड का सुन्दर और



महाराना प्रतापसिंह और शक्तिसिंह

विस्तृत भौगोलिक वर्णन है। कहाँ कैसे लोग बसे हैं, कहाँ कैसी खेती-बारी होती है, कहाँ कैसे वन-पहाड़ और नदी-नाले हैं और कहाँ कैसे पालतू और बनैले पशु पाये जाते हैं, आदि बातें बड़े अच्छे ढङ्ग से और बड़े विस्तार के साथ पृथक् पृथक् अध्यायों में वर्णन की गई हैं। इस भाग को बुँदेलखण्ड का गज़ेटियर कहें तो अनुचित नहीं। लेखक महोदय का कहना है कि उन्होंने इस देश के विशुद्ध इतिहास के साथ इसकी दन्त-कथाओं और इसके क़िस्सों तक की बातों को भी संग्रह कर दिया है। यह सब बहुत मनोरञ्जक होगा। पर यह सब पढ़ने के लिए हमें अभी आगे के भागों की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी, पुस्तक सचित्र है और इस भाग को देखने से यह निश्चय के साथ कहा जा सकता है कि इसके लेखक के उस विशाल उद्देश की पूर्ति हो जायगी जिससे प्रेरित होकर बत्तीस वर्ष पहले उन्होंने इस कार्य में हाथ लगाया था।

इस ग्रन्थ के सम्पादन का भार श्रीयुत लाला भगवान-दीनजी ने अपने ऊपर ले लिया था। पुस्तक के इस खण्ड का सम्पादन उन्होंने किया था। परन्तु दुःख की बात है कि हाल में ही उनका स्वर्गवास हो गया और यह पुस्तक जिसके रचे जाने का उन्हें बड़ा आग्रह था, उनके जीवन-काल में न प्रकाशित हो सकी। आशा है, इसके रचयिता दीवान साहब इसके प्रकाशन-कार्य में शीघ्रता से काम लेंगे। इतिहास-प्रेमियों को इसका अवलोकन करना चाहिए।

४—सफ़र की कुंजी—लेखक, श्रीयुत गंगाप्रसाद अग्रवाल, प्रकाशक, गोपालप्रसाद गोविन्दप्रसाद अग्रवाल, दौंड, ज़िला पूना, हैं। आकार डबलक्राउन सोलहपेजी, पृष्ठ-संख्या १०६ और मूल्य ॥=) है।

रेलवे के यात्रियों को ख़ासकर तीसरे दर्जे के मुसाफ़िरों को बड़ी तकलीफ़ें झेलनी पड़ती हैं। इनमें से बहुत सी तो रेलवे-यात्रा के साधारण नियमों के न जानने के कारण झेलनी पड़ती हैं। लेखक महोदय को यात्रा का काफ़ी अनुभव है। कलकत्ता, बम्बई, मदरास, कराची, दिल्ली आदि शहरों को आप प्रायः आते-जाते रहते हैं। इससे आप उन समस्त कठिनाइयों से परिचित हैं जो रेलवे यात्रियों के सामने आ सकती हैं। अतएव आपकी यह पुस्तक रेलवे के यात्रियों के बड़े काम की है। इसे आपने अपने अनुभव से दूसरे यात्रियों को लाभ पहुँचाने के उद्देश से प्रेरित होकर ही लिखा है।

लेखक महोदय ने इस बात पर विशेष ज़ोर दिया है कि यात्रा के समय मनुष्य का स्वस्थ होना अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि बीमार हो जाने से पराये देश में बड़ी मुसीबतें उपस्थित हो सकती हैं। इसलिए आपने पुस्तक में यात्रा के समय पालन करने के लिए स्वास्थ्य के कुछ नियम भी लिख दिये हैं और साधारण रोगों के छोटे-मोटे नुसखे भी दे दिये हैं। इसके अतिरिक्त कब यात्रा करनी चाहिए, साथ में सफ़र के लिए क्या क्या सामान रखना चाहिए, भोजन आदि का कैसा प्रबन्ध करना चाहिए, स्त्री-बच्चों को आराम से कैसे रखना चाहिए, चोरों-ठगों से कैसे बचना चाहिए और रेलवे कर्म्मचारियों से रेल के नियम के अनुसार क्या और कैसे सहायता लेनी चाहिए आदि बातें बड़े सरल, संक्षेप और रोचक ढङ्ग से लिखी हैं। भारत-वर्ष के प्रसिद्ध तीर्थस्थानों के वर्णन और लेखक की आप-बीती घटनाओं के उल्लेख से पुस्तक की उपयोगिता भी बढ़ गई है। यह कहने की ज़रूरत नहीं कि रेलवे-यात्रा में इस पुस्तक को साथ रखने से बड़ी सहायता मिल सकती है।

५—रेणु—लेखक, श्रीयुत रामचन्द्र टंडन, प्रकाशक साहित्य-सदन, चिरगाँव, (झाँसी) हैं। आकार, डबल-क्राउन सोलहपेजी, पृष्ठ-संख्या ४२ और मूल्य ।-) है।

इसमें २२९ फुटकर विचार सरल और साहित्यिक भाषा में संग्रहीत हैं। लेखक ने यह नहीं लिखा कि ये विचार स्वयं उनके हैं या उन्होंने कहीं से लिये हैं। जिन मस्तिष्कों से प्रथम बार ये विचार निकले हैं उनका उल्लेख हो जाता तो पुस्तक का महत्त्व और भी बढ़ जाता। जो भी हो, ये विचार अच्छे हैं और बार बार मनन करने योग्य हैं। नीचे तीन नमूने उपस्थित हैं—

( १ )

बड़े लोगों का संचय मधुमक्खियों के संचय की भाँति है, वह केवल दूसरों के निमित्त होता है।

( २ )

पिञ्जरबद्ध पत्ती कहता है—"पिंजड़े में बन्द रह कर मैं उड़ना भूल गया हूँ। यदि मैं गीत गाता हूँ तो वह केवल इसलिए है कि मैं अपनी वाणी भी न भूल जाऊँ, अपने पकड़नेवालों को प्रसन्न करने के लिए नहीं।"

( ३ )

मध्याह्न का सूर्य अपने ताप की सीमा को छू लेता है। उसी समय उसके पतन का आरम्भ हो जाता है।

६—**स्वदेशाभिमान**—अनुवादक, पण्डित लक्ष्मीधर वाजपेयी, प्रकाशक, गांधी हिन्दी-पुस्तक-भण्डार, प्रयाग हैं। आकार डबलक्राउन सोलहपेजी, पृष्ठ-संख्या ४० और मूल्य ।=) है।

इस पुस्तक में अपनी मातृभूमि की स्वाधीनता के लिए अपना सर्वस्व बलिदान करनेवाले विदेशी देशभक्तों की २६ छोटी छोटी कहानियाँ संग्रहीत हैं। यह मराठी-पुस्तक का अनुवाद है। मूल-पुस्तक के लेखक हैं पंडित विनायक कोंडदेव ओक। पुस्तक सामयिक और उपयोगी है। इससे स्वदेश-प्रेम की शिक्षा मिलती है।

—श्रीनाथसिंह

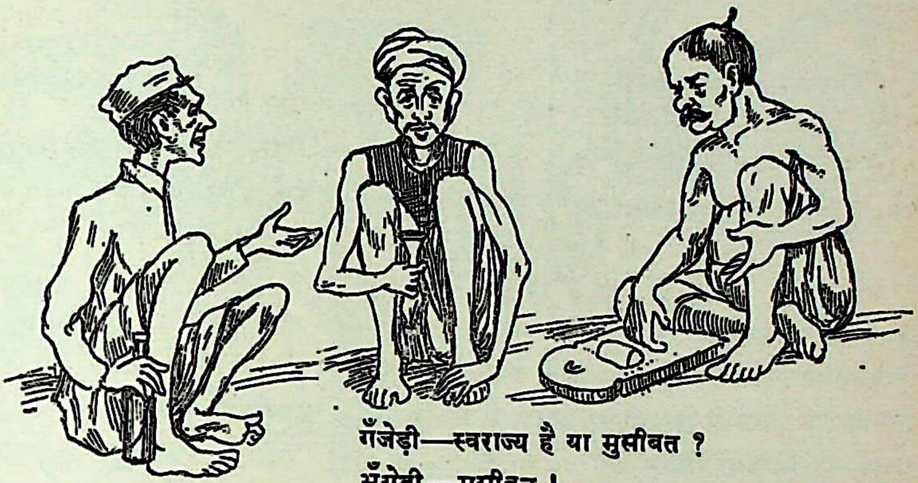
९—**A History of Kayasthas (First Part)**—लेखक श्री गोपीनाथसिंह वर्मा, बी० ए०, एल० टी०, प्रकाशक, वर्मन कम्पनी, बरेली हैं। पृष्ठ-संख्या २६२, मूल्य २॥) है।

लेखक ने इस अँगरेज़ी पुस्तक की भूमिका में इसे 'इस प्रकार की पहली पुस्तक' लिखा है और यद्यपि कायस्थों पर कायस्थ-पाठशाला (प्रयाग) से तथा अन्य कई स्थानों से कई पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं, पर उनका यह दावा ठीक है। इसमें एक विशेष ढङ्ग से कुल बातें क्रमबद्ध दी गई हैं। पुस्तक में [illegible] परिच्छेद हैं। उनमें 'कायस्थ' शब्द का अर्थ, कायस्थों की इस समय के समाज में स्थिति आदि पर यथेष्ट खोज के साथ लिखा गया है। कायस्थों को इसमें क्षत्रिय माना गया और सिद्ध किया गया है। पर शायद लेखक ने शास्त्री मिट्ठूलाल श्रीवास्तव एम० ए० की खोज से कुछ लाभ नहीं उठाया। शास्त्रीजी ने यह सिद्ध किया है या सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि 'ऐतिहासिक जाँच' से कायस्थ लोग क्षत्रिय नहीं बल्कि ब्राह्मण हैं! उन्होंने इस सम्बन्ध में की गई शङ्काओं का समाधान भी कायस्थों की पत्रिका 'उषा' में कई बार किया है। इस पुस्तक का दूसरा भाग भी है और सम्भव है कि अभी लेखक महाशय इस विषय में बहुत कुछ लिखें, अतः उन्हें चाहिए कि वे शास्त्रीजी की विद्वत्ता-पूर्ण बातों से भी लाभ उठावें। पुस्तक पठनीय है। अन्य जातियों के लोगों को भी इससे बहुत सी काम की बातें मालूम हो सकती हैं, यद्यपि श्री जियारामजी सक्सेना का इस पुस्तक के बारे में यह कहना सर्वथा सत्य है कि इस समय तो अपनी योग्यता और त्याग की शक्ति के द्वारा ही प्रत्येक को सम्मान मिल सकता है और किसी प्रकार नहीं।

—विजय वर्मा

# हास्य और विनोद

## (१) स्वराज है या मुसीबत



गँजेड़ी—स्वराज्य है या मुसीबत ?

भँगेड़ी—मुसीबत !

शराबी—वाह दादा वाह ! तुमने खूब कही !

## (२) कौंसिल का एक दृश्य




एक मेहतर—दादा तुम तो कौंसिल के मंबर होगये। अब क्यों उदास हो ?

बूढ़ा मेहतर—इसलिए कि अगर मैं मेहतर न होता तो यहाँ न भेजा जाता। क्या इसमें हमारी जाति का अपमान नहीं है ?



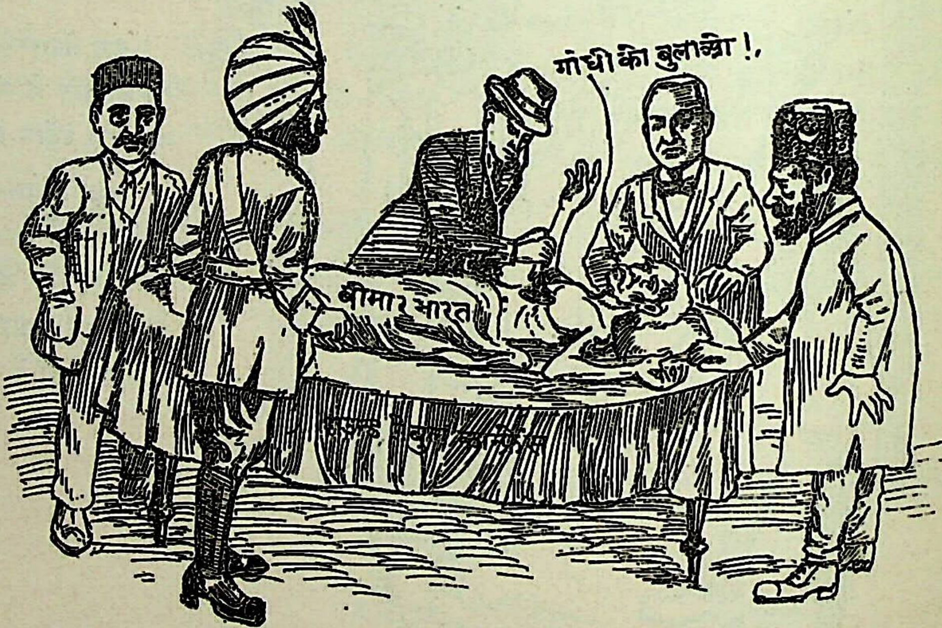

( ३ )

**क्रान्ति की लीला**

पंडित—जब औरतें ही पर्दे में नहीं रहेंगी तब स्वराज्य लेकर क्या होगा ?
मौलवी—बेशक ! अब तो यह देश हमारे और आपके रहने लायक़ नहीं रह गया !

( ४ )

**अनोखे डाक्टर**




बीमार भारत—गाँधी को बुलाओ, मेरा इलाज वे ही कर सकते हैं ?
गोलमेजी नेता—ख़ामोश !

# अपनी बात

## १—योरप का भविष्य

पिछले दश वर्षों में विश्वव्यापी शान्ति को अस्तित्व में लाने के लिए घोर प्रयत्न किया गया है। राष्ट्र-संघ के द्वारा इस सम्बन्ध में तरह तरह के व्यावहारिक प्रयत्न किये गये हैं। इसके सिवा संसार की महाशक्तियों ने अमरीका के संयुक्त राज्यों के प्रस्ताव पर युद्ध का बहिष्कार करने की घोषणा भी कर दी है। यही नहीं, आवश्यकता से अधिक युद्ध-सामग्री का संग्रह न करने के लिए भी वे वर्षों से परस्पर समझौता करने का प्रयत्न कर रही हैं। परन्तु एक ओर जहाँ यह हो रहा है, दूसरी ओर अनेक राष्ट्र अपना असन्तोष प्रकट कर रहे हैं और युद्ध की समाप्ति पर उनके साथ जो व्यवहार किया गया है उसे वे अब अन्याय बता रहे हैं। इस सम्बन्ध में जर्मनी, हंगरी, बलगेरिया आदि तो अपनी शिकायतें कर ही रहे हैं, इटली भी अपना असन्तोष प्रकट कर रहा है। जहाँ उपर्युक्त पराजित राष्ट्र यह कह रहे हैं कि उनके देश के जो भूभाग उनसे छीन कर दूसरों को दे दिये गये हैं उनके निवासियों पर उनके नये शासकों-द्वारा अत्याचार हो रहे हैं जो अत्यन्त अपमानजनक और असहनीय हैं, वहाँ इटली यह कह रहा है कि जीत में जितना हिस्सा उसे मिलना चाहिए उतना नहीं मिला है। इन सबका यह असन्तोष वर्षों से भीतर ही भीतर सुलगता रहा है। परन्तु जब उसने अपना उग्र रूप प्रकट किया तब योरपीय राजनीतिज्ञ चौकन्ने हुए और वस्तुस्थिति का निरीक्षण करके इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि योरप में युद्ध के छिड़ने की सम्भावना दिन दिन स्पष्टतर होती जा रही है। सरस्वती के पिछले अङ्क में हमने अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के दो संसार-प्रसिद्ध विद्वानों के मतों का उल्लेख किया था। इस बार हम एक नामी समाचार-पत्र-लेखक की सम्मति यहाँ देते हैं। आप मिस्टर मार्खम हैं। योरपीय युद्ध की अनिवार्यता पर आपने जो लेख लिखा है उसका संक्षिप्त रूप इस प्रकार है—

युद्ध की धीरे धीरे तैयारी हो रही है। यह युद्ध योरप में ही छिड़ेगा। योरप ही संसार का इस समय महत्त्वपूर्ण स्थल है। वहाँ के राष्ट्र दो दलों में विभक्त हैं। इनमें एक दल के राष्ट्र अधिक वैभवशाली और शक्तिमान् हैं। पिछले महायुद्ध में इसी दल की जीत हुई थी। ये जो चाहते थे वह इन्हें मिल गया। अब यह चाहते हैं कि वह इनके हाथ में बना रहे। ऐसी दशा में ये मेल-जोल की बातें करेंगे ही। इस शान्तिकामी दल का प्रधान फ़्रांस है। इँग्लेंड फ़्रांस के साथ है। ज़ेचोस्लोवेकिया, जुगोस्लेविया और रूमानिया भी शान्तिकामी दल में हैं। युद्ध के फल-स्वरूप इनमें एक का नव जन्म हुआ है और शेष दो के राज्य वृद्धि को प्राप्त हुए हैं। पोलेंड की भी रचना युद्ध के बाद ही हुई है। वह भी शान्ति चाहता है।

दूसरे दल के सम्बन्ध में मिस्टर मार्खम लिखते हैं—

परन्तु योरप में दूसरे देश हैं, जो युद्ध में अपना लाभ समझते हैं। उनमें पहला हंगरी है। युद्ध की समाप्ति पर उसका ७२ फ़ी सदी भूभाग ६४ फ़ी सदी जन-संख्या उसके हाथ से निकल गई। इसके साथ ३० लाख हंगरीवालों का अपनी मातृभूमि से सम्बन्ध भङ्ग हो गया और उन्हें शत्रुओं का प्रजाजन बनना पड़ा है।

हंगरी इस अवस्था का विरोध करता है और वह सन्धि में परिवर्तन कराना चाहता है। वहाँ की प्रत्येक सामाजिक संस्था युद्ध की तैयारी कर रही है। हंगरी के लोग अपने भाइयों को बचाना तथा उन्हें स्वाधीन करना अपना कर्तव्य समझते हैं।

इसी प्रकार मिस्टर मार्खम ने उन मेसीडोनिया के लोगों का भी उल्लेख किया है जिनका देश यूनान, यूगोस्लेविया और बल्गेरिया को बाँट दिया गया है। इनके सम्बन्ध में आपने लिखा है कि इन लोगों ने अपना स्वतन्त्र संगठन किया है और स्वाधीन हो जाने के लिए प्रयत्न कर रहे हैं। उधर इटली अलग असन्तुष्ट है, क्योंकि जो भूभाग वह चाहता था वह यूगोस्लेविया को दे दिया गया है। जर्मनी अलग दिन दिन बलवान् पड़ता जा रहा है। उसके ३,३५,००० जर्मन ज़ेचों की और ग्यारह लाख पोलों की अधीनता में हैं। बलवान् जर्मन अपने बन्धुओं को किसी के अधीन रहने देना कभी नहीं सहन कर सकते। रूस अलग पूँजीवादी राज्यों में उथल-पथल मचवा देने की घात में लगा रहता ही है। ऐसी परिस्थिति में केलाग पैक्ट जैसे समझौते शान्ति बनाये रखने में कहाँ तक कारगर हो सकते हैं, इस पर मिस्टर मार्खम ने सन्देह किया है और कहा है कि योरप का भविष्य अच्छा नहीं है। योरप में युद्ध छिड़ जाने की सम्भावना दिन दिन निकट आती जा रही है। तो भी राष्ट्र-संघ की दृष्टि में यह सारी परिस्थिति क़ाबू में है और वह अपने भरसक अब संसार की शान्ति नहीं भङ्ग होने देगा।

## २—इंपीरियल कान्फ़रेंस की महत्त्वपूर्ण बैठक

लन्दन में इस समय बड़ी राजनैतिक चहल-पहल है। एक ओर इंपीरियल कान्फ़रेंस के महत्त्व-पूर्ण अधिवेशन हो रहे हैं, दूसरी ओर राउंडटेबल कान्फ़रेंस के होने की तैयारी हो रही है। इंपीरियल कान्फ़रेंस की पहली बैठक वैदेशिक विभाग के भवन में हुई। इसमें ग्रेट ब्रिटेन के प्रधान मन्त्री तथा उनके मन्त्रि-मण्डल के कुछ चुने हुए व्यक्ति, छहों डोमीनियनों के प्रधान मन्त्री तथा अन्य प्रमुख व्यक्ति और भारत के प्रतिनिधि भाग ले रहे हैं। भारत के प्रतिनिधि भारत-मन्त्री और बीकानेर के महाराज हैं। सभापति का आसन प्रधान मन्त्री राम्से मैकडानोल्ड ने ग्रहण किया है। इसकी यह बैठक बड़ी महत्त्वपूर्ण मानी जाती है। मिस्टर राम्से मैकडानोल्ड ने घोषित किया है कि इस सभा के इस अधिवेशन के फल-स्वरूप अधिक स्वाधीनता प्राप्त होगी। इस सभा की बैठकें सार्वजनिक नहीं हैं। इस सभा में तीन महत्त्वपूर्ण बातों पर विचार होगा। पहली बात है ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत राज्यों का एक दूसरे के साथ राजनैतिक सम्बन्ध, दूसरी बात है विदेशी राज्यों से उनका राजनैतिक सम्बन्ध, विशेषकर शान्ति और निःशस्त्रीकरण के मामले में। तीसरी बात है आर्थिक समस्यायें हल करने के लिए सहयोग-प्राप्ति के व्यावहारिक उपाय। और इन तीनों बातों में आर्थिक समस्या सबसे अधिक जटिल है। यूनाइटेड स्टेट्स की व्यापार-सम्बन्धी प्रतिद्वन्द्विता के कारण ब्रिटेन का व्यापार गिर गया है। इससे वह बहुत अधिक चिन्तित है। और अपने व्यापार को दृढ़ता देने के लिए वह साम्राज्यान्तर्गत अन्य राज्यों के सहयोग का इच्छुक है। उधर साम्राज्य के स्वाधीनता-प्राप्त राज्य अधिकाधिक स्वाधीनता चाहते हैं। वे विदेशी राज्यों से स्वतन्त्र रूप से अपनी अपनी हित-दृष्टि से राजनैतिक सम्बन्ध स्थापित करना चाहते हैं और चाहते हैं इच्छानुसार ब्रिटिश साम्राज्य से सम्बन्ध भङ्ग कर लेने की स्वाधीनता। सभा के आगे यही विकट मसले हैं। पर जिस सहानुभूति के साथ इस सभा का कार्य शुरू हुआ है, आशा है, उसके कारण वह सफलमनोरथ होगी, क्योंकि इन मसलों के हल करने में जो महानुभाव लगे हुए हैं वे सबके सब निपुण राजनीतिज्ञ ही नहीं हैं, किन्तु देश-भक्त भी हैं। अधिवेशन के आरम्भ होने पर प्रधान-मन्त्री मिस्टर राम्से मैकडानोल्ड के भाषण के बाद डोमीनियनों के प्रधान मन्त्रियों तथा प्रतिनिधियों ने जो भाषण किये हैं उनमें सबने सभा की कार्यवाही सफलतापूर्वक समाप्त करने की आशा प्रकट की है।

इस अवसर पर बीकानेर के महाराज ने भारत की ओर से सभा की सफलतापूर्वक समाप्ति के

सम्बन्ध में जो शुभ-कामना प्रकट की उसमें आपने कहा—सन् १९१७ की इंपीरियल वार कान्फ़रेंस में मैंने भारतीय नरेशों की ओर से शुभ-कामना का सन्देश दिया था और कहा था कि हम लोग ब्रिटिश राजसिंहासन के आज्ञावर्ती हैं, ब्रिटिश साम्राज्य के दूसरे राष्ट्रों से मैत्री रखते हैं और साम्राज्य के पक्ष में पूर्णरूप से सहयोग करने को तैयार हैं। वही बात यहाँ आज मैं फिर दोहराता हूँ और सभा को इस बात का आश्वासन देता हूँ कि भारतीय प्रतिनिधि हल होनेवाले महत्त्वपूर्ण मसलों के निर्णय में उसके साथ हैं।

भारतीय सुधार-सम्बन्धी मसले की चर्चा करते हुए महाराज साहब ने कहा—मैं सबको इस बात की याद दिलाना चाहता हूँ कि साम्राज्य के लिए वह बात अत्यन्त आवश्यक है कि जहाँ तक जल्दी हो सके यह मसला साहस और राजनीतिज्ञता के साथ सन्तोषजनक रीति से हल किया जाय। उसका यहाँ उल्लेख तक न करना सम्राट् तथा साम्राज्य के प्रति कर्तव्य-च्युति होगी। डोमीनियनों के प्रतिनिधियों को सम्बोधन करते हुए कहा कि भारत में इस समय जो कुछ हो रहा है उसके होते हुए भी वह अँगरेज़ी साम्राज्य के भीतर ही रहेगा।

वास्तव में इंपीरियल कान्फ़रेंस का यह अधिवेशन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होगा। इसकी सफलता से अँगरेज़ी साम्राज्य का विशेषरूप से हित होगा। उसका वर्तमान आर्थिक सङ्कट कुछ कम ही न पड़ जायगा, किन्तु साम्राज्य में अधिक दृढ़ता भी आ जायगी।

## २—'आर १०१' का विनाश

इँग्लेंड को जिस 'आर १०१' नम्बर के हवाई जहाज़ का बड़ा गर्व था, जिसके निर्माण में लाखों रुपये व्यय हुए थे और जिसके द्वारा हवाई दुनिया में एक नया युग उपस्थित होने की बात सोची जा रही थी, दुःख की बात है कि वही प्रसिद्ध वायुयान गत ५ वीं अक्टोबर को फ्रांस में एक गाँव के पास एक पहाड़ी से टकराकर नष्ट हो गया। इतना ही नहीं, उसके साथ ही इँग्लेंड के ४७ वायुयान-विद्या के उच्च कोटि के निपुण व्यक्ति भी नष्ट हो गये, जिनमें लार्ड टामसन, सर सिफ़्टन ब्रेकर, कर्नल रिचमांड और मेजर स्काट जैसे लोग थे। इससे इँग्लेंड की बहुत बड़ी क्षति हुई है। हवाई जहाज़ों के इतिहास में ऐसी भीषण दुर्घटना पहले कभी नहीं हुई।

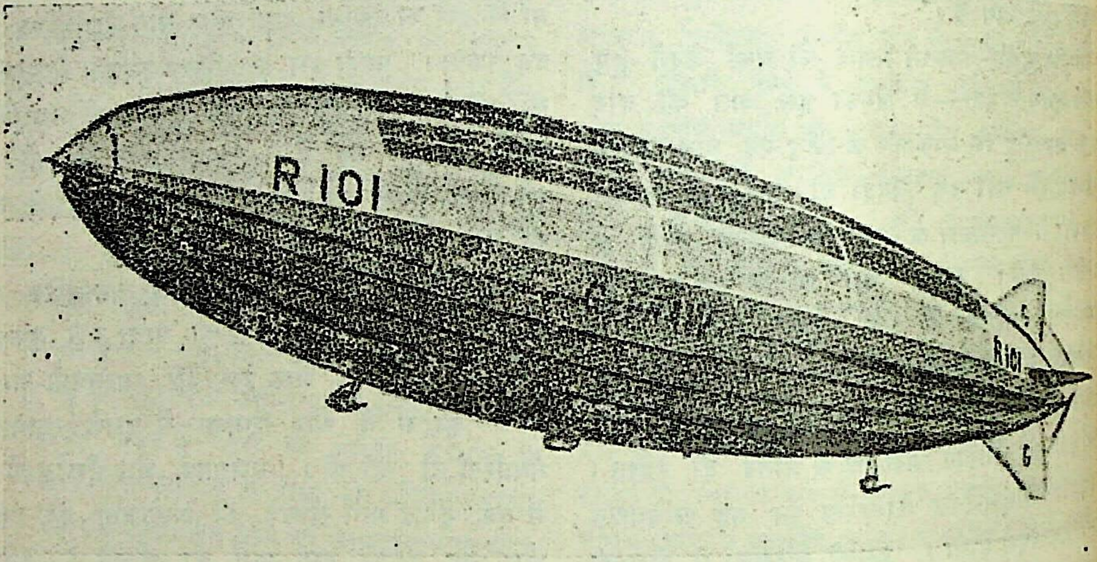
यह हवाई जहाज़ बड़े ख़र्च से तैयार हुआ था। इसके बनाने में इँग्लेंड के बड़े ऊँचे दर्जे के इञ्जीनियर लगे थे और संसार में यह सबसे बड़ा और ज़बरदस्त हवाई जहाज़ समझा जाता था। इसके बनानेवालों का यह दावा था कि इस पर आँधी, पानी और आग का प्रभाव नहीं पड़ सकता। परन्तु इस आकस्मिक दुर्घटना से इंजीनियरों की आशा पर पानी फिर गया और हवाई जहाज़ों की उन्नति रुक सी गई है। बहुत से लोगों का तो यहाँ तक कहना है कि इस दुर्घटना ने हवाई जहाज़ों के कार्य को ५-६ वर्ष पीछे ढकेल दिया।

कुछ समय पूर्व यह हवाई जहाज़ अटलांटिक महासागर के ऊपर उड़ कर कनाडा की यात्रा बड़ी सफलतापूर्वक कर आया था और इस बार भारतवर्ष आ रहा था। करांची में और शिमला में इसके स्वागत की तैयारियाँ हो रही थीं। भारतवर्ष और इँग्लेंड के बीच में एक हवाई मार्ग खोलने की आयोजना हो रही थी और यह जहाज़ उसी मार्ग को खोलने के उद्देश से भारतवर्ष के लिए रवाना हुआ था।

कार्डिंगटन से पेरिस के उत्तर क़रीब ४० मील तक इस जहाज़ की यात्रा निर्विघ्न रही। उसके पश्चात् रुकावट के कुछ लक्षण प्रकट होने लगे। आँधी और पानी दोनों का ज़ोर था। जहाज़ तूफ़ान को चीरता हुआ आगे बढ़ रहा था। ड्राइवर को इसकी शक्ति पर भरोसा था। पर ड्राइवर यह न जान सका कि भीगकर भारी हो जाने से जहाज़ नीचाई पर चल रहा है और कदाचित् यही जहाज़ के एक ऊँची पहाड़ी से टकरा जाने का कारण हुआ। कहते हैं कि जब यह जहाज़ पहाड़ी से टकराया तब बड़े ज़ोर का धड़ाका हुआ और ४-५ मील की दूरी तक के गाँव हिल उठे। धड़ाके के साथ ही जहाज़ जल उठा और ५-६ मिनट में जल कर

राख हो गया। जहाज़ में कुल ५४ मनुष्य सवार थे, जिनमें ४६ उसी समय मर गये। शेष आठ में से भी एक मर गया। सात के जीवित बचने की बात कही जाती है।

इस दुःखान्त और अपूर्ण यात्रा के यात्रियों की लाशें इतनी जल गईं थीं कि पहचानी नहीं गईं। अँगूठियाँ घड़ियाँ और दाँत आदि के सहारे केवल ५ व्यक्ति पहचाने जा सके। इसलिए इन सैंतालिसों व्यक्तियों को एक ही स्थान पर अर्थात् जहाँ से ये उड़े थे, दफ़नाने का निश्चय हुआ है। सैनिकों के योग्य सम्मान के साथ इनकी लाशें फ़्रांस से इँग्लेंड ले जाई गई हैं और कहते हैं इनका अन्तिम दर्शन करने के लिए लंदन के विक्टोरिया स्टेशन पर जितने मनुष्य जमा हुए थे उतने पहले कभी नहीं हुए।



[ 'आर १०१' नाम का वायुयान ]

## ४—इँग्लेंड में भिक्षावृत्ति

इँग्लेंड में भीख माँगना जुर्म माना गया है। वहाँ की सरकार भीख माँगनेवाले को जेल की सज़ा देती है। परन्तु इस व्यवस्था से भी वहाँ से भिक्षावृत्ति का उन्मूलन नहीं हुआ है। इस सम्बन्ध में हाल में एक भेद का उद्घाटन हुआ है, जिससे वहाँ की भिक्षावृत्ति पर प्रकाश पड़ता है। घटना इस प्रकार है—

लिवरपूल में गिल्बर्ट हैन्सम नाम का एक पैर का आदमी रहता था। वह अपने को नौसेना का पेंशनयाफ़्ता सैनिक बतलाता था। कहता था कि मेरी टाँग महायुद्ध में तोप के गोले से उड़ गई थी। तीन महीने हुए, उसने अपनी शादी की थी। वह ३६ वर्ष का था। प्रति सप्ताह दो पौंड, कभी कभी कुछ अधिक अपनी स्त्री को घर के ख़र्च के लिए दिया करता था। हफ़्ते में तीन बार वह मैंचेस्टर जाता था। इधर कुछ हफ़्ते से वह बहुत दुःखी दिखाई दिया, यहाँ तक कि उसने आत्महत्या तक कर डालने की बात कही। एक रात को सचमुच उसने ज़हर खा लिया। वह एक चिट्ठी लिखकर अपने पीछे छोड़ गया है, उस चिट्ठी में उसने अपना कच्चा चिट्ठा लिख दिया है। वह लिखता है—

मैं दस वर्ष से भीख माँग कर अपना जीवन-यापन करता रहा। अब तो मैं एक प्रसिद्ध व्यक्ति हो गया था। जो कुछ मैंने देखा या स्वयं अनुभव किया उससे मुझे इस बात का पूर्ण विश्वास है कि भीख माँगने

देश नहीं बन्द हो सकता। हममें से अधिकांश पब्लिक हाउस में एकत्र होते हैं। हममें से एक अपने को फ्रान्स-युद्ध-क्षेत्र का आहत योद्धा बताता है। कोई काम नहीं करता और हफ़्ते के किसी भी दिन एक पौंड ख़र्च करने को निकाल सकता है। इसी प्रकार एक और है। उसके एक ही हाथ है। वह कहता है कि शनिवार को किसी पब्लिक हाउस में सात से दस बजे तक १० शिलिंग ही माँग पाना कुछ न मिलने के समान है। एक अन्धे भिखारी के लिए तो हिप्पोड्रोम क्यू में किसी भी रात को एक पौंड टीप देना बायें हाथ का खेल है। और जो बिना पैर का भिखारी है उसने तो वारिंग्टन में अपनी जायदाद कर ली है। वह हर साल पेरिस सैर-सपाटे को जाता है। मैं ऐसी स्त्रियों को भी जानता हूँ जो दूसरी स्त्रियों से तीन-चार शिलिंग पर बच्चे किराये पर ले आती हैं। इन्हें लेकर वे गाती हुई चलती हैं। जब कोई पास से निकलता है तब वे उस बच्चे को चुटकी काट लेती हैं और बच्चा रोने लगता है। वे यह इसलिए करती हैं कि पास से जानेवाला बच्चे को भूखा समझ कर दयावश कुछ दे दे। लिवरपूल की कुछ जवारें तो भिखारियों के लिए कल्प-वृक्ष हैं। आशा है, पुलिस भिक्षा-वृत्ति बन्द करने के लिए कड़े उपायों का अवलम्बन करेगी। जनता को भी भिखारियों को प्रोत्साहन देने से विरत होना चाहिए, क्योंकि गये-बीते भिखारी तक की दशा एक हट्टे कट्टे श्रमजीवी से अच्छी होती है। अपने बेईमानी और धूर्तता के जीवन से मैं ऊब गया था। यह जान कर कि एक बार में मैं ४ या ५ पौंड फटकार देता हूँ, एक स्त्री मेरे पीछे पड़ गई। वह धमकाने लगी कि अगर तुम मुझे रुपया नहीं दोगे तो मैं तुम्हारा भण्डाफोड़ कर दूँगी।

उक्त पत्र के इस सारांश से ग्रेट ब्रिटेन की वर्तमान भिक्षा-वृत्ति का परिचय मिल जाता है। साथ ही यह भी ज्ञात होता है कि जब इसका उन्मूलन ब्रिटेन जैसे वैभवशाली देश से नहीं हो सका तो भारत जैसे दरिद्र देशों के सम्बन्ध में क्या कहा जाय।

## ५—ढाका के उपद्रव के सम्बन्ध में सरकारी रिपोर्ट

गत बकरीद के अवसर पर ढाका में जो साम्प्रदायिक उपद्रव हुआ था उसके कारण सारे नगर में लगातार कई दिनों तक लूट-मार और अराजकता का ही साम्राज्य रहा, कितने ही प्रतिष्ठित तथा निरपेक्ष हिन्दू-परिवारों को अत्याचारियों की नृशंस एवं क्रूर वासनाओं का शिकार बनना पड़ा। अधिकारी वर्ग परिस्थिति को नहीं सँभाल सके। अस्तु, उपद्रव का सूत्रपात किस प्रकार हुआ, उसके एकाएक इतना प्रचण्ड रूप धारण करने का क्या कारण तथा उसके दबाने और नगर में शांति स्थापित करने के लिए अधिकारियों ने कहाँ तक प्रयत्न किया, आदि बातों की जाँच के लिए बंगाल-सरकार ने दो उच्च पदाधिकारियों की एक कमेटी नियत की थी। उस कमेटी ने अपनी रिपोर्ट प्रकाशित की है।

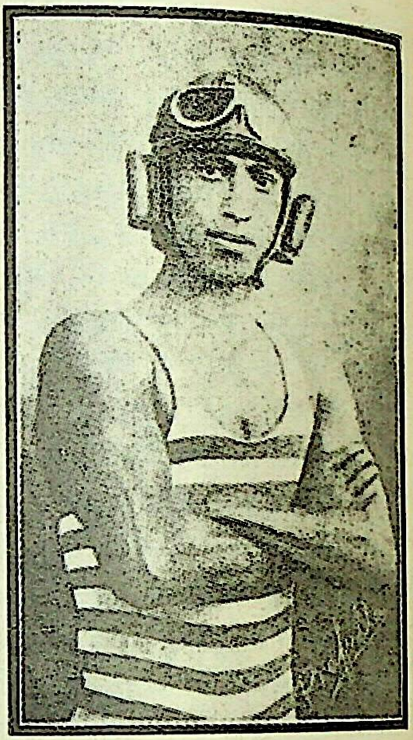
उस उपद्रव के सम्बन्ध में जो कुछ विवरण उपलब्ध हुए हैं उनसे प्रकट होता है कि आततायियों को दबाने में पुलिस ने अपने कर्तव्य का पालन भलीभाँति नहीं किया। ऐसी भी घटनायें सुनने में आई हैं कि असहाय एवं निरपराध व्यक्तियों पर लोमहर्षण अत्याचार होते देखकर भी पुलिस-कर्मचारियों ने प्रतीकार की चेष्टा नहीं की। पर पुलिस के विरुद्ध जितने भी अभियोग जनता ने लगाये हैं उक्त कमेटी के विचारशील तथा न्यायपरायण सभ्यों ने उन सबको मिथ्या तथा पुलिस को निर्दोष प्रमाणित करने में कुछ उठा नहीं रक्खा। इस कमेटी के सामने भी ऐसी गवाहियों का अभाव नहीं था जिनमें कहा गया था कि पुलिस के सामने बराबर लूटमार होती रही और वह प्रतीकार की चेष्टा न करके खड़ी तमाशा देखती रही। जाँच-कमेटी के सभ्यों ने इन गवाहियों की सत्यता स्वीकार की है, साथ ही एक विचित्र व्याख्या भी कर दी है। आप लोगों ने लिखा है हमें ऐसा जान पड़ा है कि पुलिस अपनी परिमित शक्ति के कारण जहाँ-जहाँ लूटमार रोकने में अपने को असमर्थ समझती थी, वहाँ शायद अनुनय-विनय से ही काम लेना श्रेयस्कर

समझती थी, ताकि आततायी जनता को अधिक हानि न पहुँचावें।

उपद्रव के समय आत्मरक्षा के लिए हिन्दुओं के पास जो थोड़ी-बहुत बन्दूकें वग़ैरह थीं भी, पुलिस ने तलाशी लेकर छीन लीं। उनकी इस प्रवृत्ति का समर्थन करते हुए कमेटी के सभ्यों ने लिखा है कि मुसलमानों को दबाने में पुलिस अपने को असमर्थ समझती थी और उसे यह भी मालूम था कि हिन्दुओं की शक्ति और भी कम है, इसलिए उसने इनके अस्त्र छीन लेना अधिक श्रेयस्कर समझा, जिससे इनके पास मुसलमानों को अधिक उत्तेजित करने का कोई साधन न रहे।

इस प्रकार ढाके के उक्त भीषण दङ्गे की जाँच ख़तम की गई है, उत्पीड़ित हिन्दुओं के आँसू पुछें चाहे न पुछें।

## ६—भारत का एक सुप्रसिद्ध तैराक



[ श्रीयुत प्रफुल्लकुमार घोष ]

श्रीयुत प्रफुल्लकुमार घोष भारत के सर्वश्रेष्ठ तैराक हैं। गत ३० अगस्त शनिवार को प्रातःकाल ६ बज कर ८ मिनट पर आपने कलकत्ते में हेदुआ के तालाब में प्रवेश किया था और लगातार सोमवार की रात्रि के १ बज कर १८ मिनट तक बराबर तैरते रहे। इस प्रकार ६७ घण्टा १० मिनट के बाद आप तालाब से निकले थे। पहले जब आपने तालाब में प्रवेश किया था तब आपका विचार था लगातार ५० घंटे तक तैर कर भारत के अन्य तैराकों को पीछे छोड़ जाने का। इसी उद्देश से आपने तैरना आरम्भ किया था। किन्तु सोमवार को आठ बजे प्रातःकाल तक जब पचास घंटे पूरे होगये और उन्हें विशेष क्लान्ति न मालूम हुई तब संसार के अन्य देशों के तैराकों से मुक़ाबला करने के लिए वे बराबर तैरते ही रहे और ६७ घण्टा १० मिनट पूरा करके बाहर निकले। इस प्रकार संसार की सर्वश्रेष्ठ तैरने-वाली श्रीमती लोरि मूर स्कोयेम्मेल (न्यूयार्क) से ४ घंटा ५२ मिनट और ४७ सेकंड पीछे रहे, क्योंकि आप ७२ घण्टा २ मिनट ४० सेकण्ड तक बराबर तैर चुकी हैं। आशा है, आगामी बार घोष महोदय आपको पीछे छोड़ जायँगे और तैरकर इँग्लिश चैनल पार कर जायँगे। आप संसार के सर्वश्रेष्ठ तैराक बन बैठेंगे।

सितम्बर १६२३ ईसवी में कलकत्ते की स्वीमिंग क्लब के प्रयत्न से खड़दह से आहारी-टोला तक तेरह मील की तैराकी की जो प्रतियोगिता हुई थी श्रीयुत प्रफुल्लकुमार घोष सर्वप्रथम आये थे। आपकी गति उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है।

गत वर्ष भी १४ सितम्बर को घोष बाबू ने की प्रतियोगिता के लिए हेंदुआ के तालाब में प्रवेश था। उस बार आप २८ घण्टे तक तैरते रहे और समय में तालाब की उत्तर-दक्षिण की लम्बाई को बार तय किया था। इस तालाब की लम्बाई १६० है, अतएव २७८ बार के आने-जाने में उन्हें कुल मील से अधिक तैरना पड़ा होगा।

घोष बाबू जब से तैरना आरम्भ करते हैं जल से निकलने के पहले क्षण भर भी विश्राम

करते। जल के भीतर से ही लोगों से बराबर बातचीत करते रहते हैं, शहनाई बजा-बजाकर मधुर राग से गाते हैं, भूख लगने पर जल में ही भोजन करते हैं, परन्तु इन कार्यों के कारण उनके तैरने में रुकावट नहीं होती। वे तैरते ही तैरते अपना सारा काम करते रहते हैं। अस्तु, घोष बाबू जिस वेग से उन्नति कर रहे हैं उससे यह पूर्ण विश्वास होता है कि वे अपने संकल्प में अवश्य सिद्ध होंगे और निकट भविष्य में संसार के समस्त तैराकों को पीछे छोड़ कर भारत का मुख उज्ज्वल करेंगे।

## ७—हिन्दी का अभ्युदय

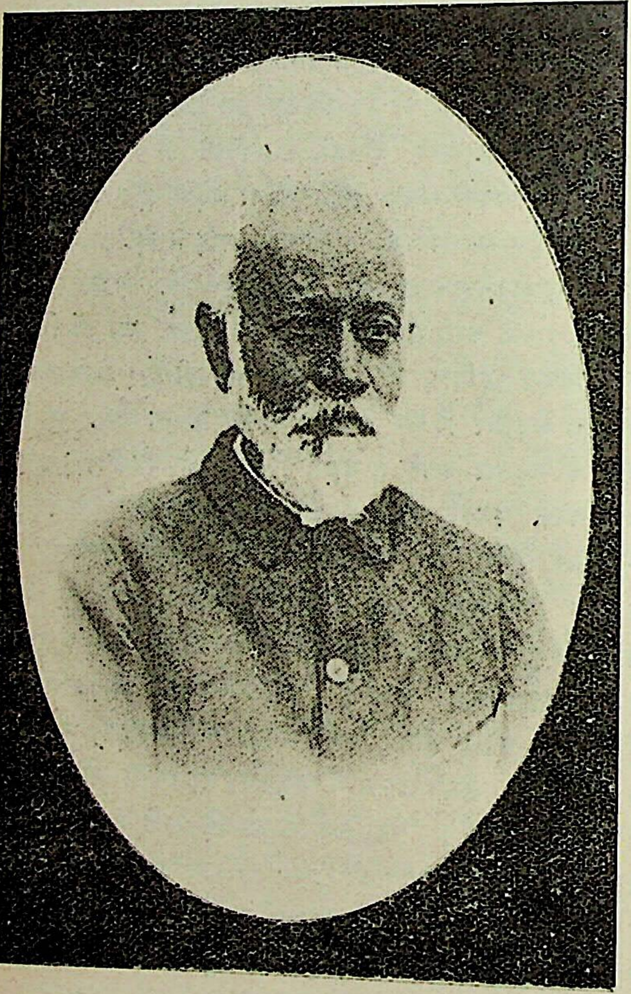
हिन्दी उन्नति के पथ पर है। अब उसका पाया दृढ़ हो चुका है। उसका सामयिक साहित्य ऐसा ही भाव प्रकट करता है। उपयोगी विषयों की उच्च कोटि की पुस्तकें तो निकलती ही हैं, साथ ही उसका सामयिक साहित्य अर्थात् पत्र-पत्रिकायें भी गौरव-पूर्ण स्थिति प्राप्त कर चुकी हैं, अन्य प्रान्तिक भाषाओं की ऊँची से ऊँची पत्र-पत्रिकाओं के मुक़ाबिले में वे उपस्थित की जा सकती हैं। परन्तु यह बात उतने महत्त्व की नहीं है। महत्त्व की बात तो यह है कि उन्होंने हिन्दी भाषियों में पढ़ने-लिखने की अभिरुचि पैदा कर दी है। प्रायः कहा जाता है कि देशी भाषाओं के पत्र ग़ैर ज़िम्मेदार होते हैं। यह कथन कुछ अंशों में ठीक हो सकता है। परन्तु यह बात सभी पत्रों के सम्बन्ध में नहीं कही जा सकती है। और हैं नहीं किस भाषा में ग़ैरज़िम्मेदार पत्र। तब अकेली भारतीय देशी भाषाओं पर ही यह आरोप क्यों किया जाता है कि वे ग़ैरज़िम्मेदार होते हैं। होंगे। पर यह तो मानना ही पड़ेगा कि उन्होंने देश को जगाया है। हमारी हिन्दी ने भी इस सम्बन्ध में काम करके जनता के बीच अपने लिए स्थान कर लिया है। कई एक ऐसी पत्र-पत्रिकायें हिन्दी में भी हो सकी हैं जिनके नये अङ्कों के मिलने की बाट जोही जाती है। और यह हिन्दी-पत्रकारों के लिए गौरव की बात है। पत्र-सञ्चालन-कला का वास्तविक ज्ञान न होने पर भी उन्होंने पद पद पर भूलें करके हिन्दी के पत्रों को आज जिस स्थान पर लाकर खड़ा कर दिया है उसके लिए हम हिन्दीवालों को अपने पुराने पत्रकारों का कृतज्ञ होना चाहिए। आज देशी भाषाओं के पत्रों को जो 'देशी' रूप प्राप्त हुआ है उसकी बुनियाद इन्हीं पुराने पत्रकारों ने ही रक्खी थी। अपनी उसी परम्परा की रक्षा करते हुए देशी भाषाओं की पत्र-पत्रिकायें आज फूल-फल रही हैं। सन्तोष की बात है कि इस मामले में हिन्दी का दूसरी भाषाओं के बीच अपना ख़ास स्थान है। 'आज', 'विश्वमित्र' आदि जैसे दैनिक; प्रताप, कर्मवीर आदि जैसे साप्ताहिक; माधुरी, सुधा आदि जैसी मासिक पत्रिकाओं से किसी भी देशी भाषा की श्री और शोभा दोनों की वृद्धि हो सकती है।

अब हिन्दी की पत्र-पत्रिकायें इस अवस्था को पहुँच गई हैं, जहाँ से उसके दैनिकों, साप्ताहिकों और मासिकों को अपनी अपनी अलग राह पकड़नी पड़ती है। उदाहरण के लिए मासिकों को लीजिए। कुछ साहित्यिक हैं तो कुछ राजनैतिक तो कुछ ऐतिहासिक या दर्शन-सम्बन्धी हैं। ये सभी अपने अपने क्षेत्र में उत्कृष्ट रूप में निकल निकल कर हिन्दी की गौरव-वृद्धि कर रही हैं। आवश्यकता के अनुसार ये सब अपनी अपनी क्षमता तथा सुविधा के अनुसार अपने अनुकूल विषय की विशेषता ग्रहण करके पत्रकार-कला का जो आदर्श उपस्थित कर रही हैं वह हिन्दी के अभ्युदय-काल के सर्वथा अनुरूप है।

परन्तु अपने इस अभ्युदय को देख कर हम क्षुद्र नदी की तरह इतरा नहीं रहे हैं। हम हिन्दी को और भी समुन्नत करना चाहते हैं। इसके लिए हमें उसका व्यापक प्रचार करना होगा, हमें अपनी कार्य-प्रणाली बदलनी होगी। हमने जनता में अख़बार पढ़ने का शौक़ पैदा कर दिया है। यहाँ तक कि जो पढ़े-लिखे नहीं हैं वे भी दूसरों से उन्हें पढ़वाकर संसार की बातें जानने की इच्छा रखते हैं। कहने का मतलब यह कि अब प्रत्येक ज़िले से कम से कम एक साप्ताहिक पत्र बड़ी धूमधाम से निकल सकता है और सो भी केवल अपने ज़िले के ही ग्राहकों के भरोसे पर। हिन्दी-प्रेमी चाहें तो इस ओर ध्यान देकर अपना और देश दोनों का हित-साधन कर सकते हैं।

अब हमें कुछ आगे बढ़ना चाहिए। अपने इस परिश्रम को सार्थक करने के लिए हमें अपनी पत्र-पत्रिकाओं की खपत के क्षेत्र की ओर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। आशा है, हिन्दी के प्रेमियों का ध्यान इस ओर आकृष्ट होगा। अपने सामयिक साहित्य का प्रत्येक साक्षर के घर पहुँचाने के लिए हमें यत्नवान् होना चाहिए। और यह तभी सम्भव होगा जब हम अपनी निगाह देहातों में डालेंगे।

## ८—स्वर्गीय मेजर वामनदास वसु



[ स्वर्गीय मेजर वामनदास वसु ]

गत २३ सितम्बर को भारत के सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक मेजर वामनदास वसु का प्रयाग में उनके निवासस्थान भुवनेश्वरी-आश्रम में स्वर्गवास हो गया। मृत्यु के समय आपकी अवस्था लगभग साठ वर्ष की थी। सरकार के यहाँ उच्च पद पर सफलता-पूर्वक कार्य करके मेजर साहब ने नाम कमाया था। पेंशन लेकर आप अपना समय इतिहास-सम्बन्धी अनुसन्धान और धार्मिक तथा वैज्ञानिक साहित्य के प्रचार में ही व्यतीत करते थे।

पाणिनि-आफ़िस की स्थापना तथा उसका संचालन मेजर साहब की अक्षय्य एवं अनुपम कृति है। यद्यपि उसकी स्थापना का श्रेय प्रधान रूप से आपके बड़े भाई स्वर्गीय श्रीशचन्द्र वसु को ही प्राप्त है तो भी उसकी सफलता तथा लोकप्रियता का मुख्य कारण मेजर साहब की अपरिमित क्रियाशीलता और दृढ़ अध्यवसाय ही रहा है। इस कार्यालय के द्वारा प्रकाशित पुस्तकों में सर्वप्रथम पाणिनि के अष्टाध्यायी के अँगरेज़ी-अनुवाद में आप अपने भाई साहब को बराबर सहायता देते रहे हैं और उसके प्रकाशन तथा प्रचार का भार तो पूर्णरूप से अपने ही ऊपर स्वीकार किया था। आपके उद्योग से इस कार्यालय के द्वारा संस्कृत की कितनी ही गम्भीर प्रामाणिक तथा धार्मिक पुस्तकों के अँगरेज़ी अनुवाद प्रकाशित हुए हैं, जिनका योरप तथा अमेरिका में अच्छा प्रचार है।

परन्तु मेजर वसु की सबसे अच्छी और चिरस्थायी कृति है आपकी ऐतिहासिक पुस्तक 'राइज़ आफ़ क्रिश्चियन पावर इन इंडिया' (भारत में अँगरेज़ी शक्ति का उत्थान)। यह अँगरेज़ों के समय का भारत का एक बहुत प्रामाणिक और राष्ट्रीय ढंग का इतिहास है। मेजर साहब ने 'इंडियन मेडिकल प्लैंट्स' नामक चिकित्सा-शास्त्र की भी एक बहुत प्रामाणिक पुस्तक लिखी है, जिसका वनौषधि-विज्ञान के ज्ञाताओं में बड़ा सम्मान है।

मेजर साहब ने अपनी स्वर्गीय बहन श्रीमती जगन्मोहिनी देवी तथा बहनोई तारणचरण दास की स्मृति में अपने पाणिनि-कार्यालय से बँगला की एक जगत-तारण ग्रन्थमाला निकाली थी और जगत-तारण गर्ल्स हाई स्कूल नामक कन्याओं का एक स्कूल भी स्थापित किया

था। यह स्कूल बड़ी सफलता के साथ चल रहा है और इसके द्वारा प्रयाग में स्त्री-शिक्षा का बड़ा प्रचार हो रहा है।

मेजर वसु की गणना भारत के कुछ सर्वोत्तम विद्वानों में रही है। आप बड़े ही सरल, सदाचारनिष्ठ तथा अध्यवसायी थे। देशी पोशाक आपको बहुत प्रिय थी। आप प्रायः सादे कुरते की ही पोशाक में रहते थे। आडम्बर का तो आप में लेश तक नहीं था। आप जैसे कृती व्यक्ति की मृत्यु से भारत की वास्तव में बड़ी हानि हुई है।

## ९—आगामी मनुष्य-गणना

सिन्ध के सक्खर में श्रीसाधुबेला-तीर्थ नामक 'उदासी' साधुओं का एक प्रसिद्ध स्थान है। यहाँ के महन्त स्वामी हरिनामदासजी सार्वजनिक कार्यों में भी भाग लेते हैं, भगवद्भजन तो करते ही हैं। अगली मनुष्य-गणना के सम्बन्ध में हिन्दुओं के नाम आपने एक अपील छापने को भेजी है। आपने इस अपील में जो विचार प्रकट किये हैं वे यथार्थ हैं। आशा है, स्वामीजी महाराज की इस अपील की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट होगा। आप लिखते हैं—

आज जाग्रति और उन्नति के समय में हर एक क़ौम अपनी अपनी संख्या बढ़ाने की कोशिश में कटिबद्ध होकर लगी हुई है, और परिश्रम के अनुसार सफलता भी बहुत कुछ प्राप्त की है, परन्तु यह हमारी हिन्दू-क़ौम दिन प्रतिदिन घटने के सिवा बढ़ने का पाठ ही पढ़ना नहीं जानती। सन् १९११ से १९२१ की मनुष्य-गणना का हिसाब देखने से साफ़ पता चलता है कि १९११ में जितनी हिन्दू-संख्या थी वह १९२१ में क्यों घट गई। इस का साफ़ कारण हिन्दुओं के आलस्यवश अपने भाइयों को न सँभालने का है। जो हर एक फ़िर्क़ा उठता है वह हिन्दुओं से ही निकल कर अपना निराला ही मत सिद्ध करता है। जैन, सिख, आर्य-समाजी आदि आदि सब हिन्दू-सन्तान होते हुए भी अपने आपको हिन्दुओं से अलग मानने लग गये हैं। यह नहीं समझते कि जुदा जुदा होने से कितनी कमज़ोरी आगई है। इसी फूट के कारण आज हिन्दू-क़ौम विपद् का शिकार बन गई है। सो सज्जनो, अभी मौक़ा है, आपस में सभी हिन्दू भाइयों को मिल कर आगामी मनुष्य-गणना में अपने आपको 'हिन्दू' लिखाना चाहिए। हिन्दू-शब्द शास्त्र-प्रतिपादित, पवित्र और उत्तम शब्द है। किसी के समझाने-बुझाने से हमको अपनी प्यारी क़ौमियत से जवाब न दे बैठना चाहिए। भले ही हमारे मत (धर्म) पृथक् पृथक् हैं और रहें, पर क़ौम सब की 'हिन्दू' है। जैसे मुसलमानों में फ़िर्क़े बहुत हैं, पर क़ौम एक ही अपनी मुसलिम लिखाते हैं। मतों के अलग होने से क़ौम अलग नहीं हुआ करती। हम सनातनी जैन, सिख, आर्य-समाजी, सब एक हिन्दू भाई हैं। इस पर ध्यान देते हुए आशा है, आगामी मनुष्य-गणना में कोई भी हिन्दू अपने आपको ग़ैर हिन्दू लिखाने की ग़लती करके भारत को दुर्बल बताने का पातक अपने सिर पर न उठावेगा।

## १०—काशी में अखिल एशियाई शिक्षा-सम्मेलन का प्रथम महत्त्व-पूर्ण अधिवेशन

समस्त पृथ्वी-मंडल में विद्या-प्रचार तथा निरक्षरता-निवारण के लिए एक अखिल विश्व-शिक्षा-संघ है। उसका केन्द्र-स्थान इस समय अमेरिका है। सन् १९२३ से १९२९ तक उसके चार अधिवेशन हो चुके हैं। पहला अधिवेशन अमेरिका में हुआ था, दूसरा स्काटलेंड में, तीसरा कैनाडा में और चौथा गत वर्ष स्विट्ज़लेंड में। इसके अधिवेशन प्रति दूसरे वर्ष होते हैं। इसकी संरक्षकता में प्रादेशिक महासभायें भी (Regional conferences) होती हैं। एशिया-प्रदेश की अब तक कोई महासभा नहीं हुई थी। गत वर्ष जिनेवा के सम्मेलन में अखिल भारतवर्षीय शिक्षा महासभा के जो प्रतिनिधि जिनेवा गये थे उन्होंने एशियाई सम्मेलन को काशी में निमंत्रित किया था। उसी का बृहत् अधिवेशन २६ से लेकर ३० दिसम्बर तक इस वर्ष हिन्दू-विश्वविद्यालय में होगा। इसकी स्वागतकारिणी समिति के सभापति पण्डित मदनमोहन मालवीय हैं। इसके साथ साथ काशी ही में अखिल भारतवर्षीय शिक्षा-

सम्मेलन, संयुक्त प्रान्तीय शिक्षा-सम्मेलन, अखिल भारतवर्षीय अध्यापक-सम्मेलन, तथा अखिल भारतवर्षीय मुस्लिम-शिक्षा-सम्मेलन भी होंगे। सब मिल कर एक बृहत् शिक्षा-प्रदर्शनी का भी आयोजन करेंगे। प्रदर्शनी-समिति के संयोजक श्री एच० एन० वांचू हैं, जो कि बनारस में स्कूलों के इन्सपेक्टर हैं। प्रदर्शनी के लिए जो सज्जन अथवा जो संस्थायें कुछ वस्तुएँ भेजना चाहें वे वांचू महोदय के पास भेजने की कृपा करें। इस महासभा का कार्य्य १४ विभागों में होगा—१ स्वस्थ्य तथा शारीरिक व्यायाम, २ निरक्षरता, ३ प्रौढ़ शिक्षा, ४ पुस्तकालय-संघटन, ५ किंडरगार्टन तथा मांटेसोरी, ६ ग्राम-शिक्षा, ७ सदाचार तथा धार्मिक शिक्षा, ८ अभिभावक-सहयोग, ९ अध्यापक-समितियाँ, १० अध्यापकों की शिक्षा, ११ प्रारम्भिक शिक्षा, १२ सेकण्डरी शिक्षा, १३ विश्वविद्यालय की शिक्षा। १४ स्त्री-शिक्षा।

जिन सज्जनों को जिस विभाग से अनुराग हो वे सम्मेलन-कार्य्यालय से पत्र-व्यवहार करें। जो सज्जन चाहें शिक्षा-सम्बन्धी किसी विषय पर इन विभागों में व्याख्यान दे सकते हैं। व्याख्यान लिखे हुए होंगे और उसकी एक प्रतिलिपि पहली दिसम्बर तक कार्य्यालय में पहुँच जानी चाहिए। स्वागतकारिणी समिति ने प्रतिनिधियों को काशी के ऐतिहासिक और महत्त्वपूर्ण स्थानों को भी दिखलाने का प्रबन्ध किया है। इस कार्य्य का भार सेवा-समिति-बालचर-संस्था के अध्यक्ष पंडित श्रीराम वाजपेयी ने कृपापूर्वक अपने ऊपर लिया है।

विशेष विशेष प्रकार के भारतीय व्यायाम जैसे, कुश्ती, मलखम, गदका, पटा आदि के दिखलाने का भी प्रबन्ध रहेगा।

भारतवासी मात्र २) रुपया शुल्क देकर स्वागतकारिणी समिति के सदस्य हो सकते हैं। इस सम्बन्ध में पत्र-व्यवहार मंत्री-स्वागतकारिणी समिति आल एशिया-शिक्षा-सम्मेलन काशी से करना चाहिए।

रामनारायण मिश्र मंत्री स्वागत-
कारिणी समिति आल एशिया-
शिक्षा-सम्मेलन, बनारस

## ११—हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन पर सङ्कट

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की आर्थिक दशा बहुत ख़राब होगई है। धनाभाव के कारण उसका प्रायः सारा कार्य शिथिल हो गया है। उसकी इस दयनीय अवस्था का दायित्व उसके कर्मचारियों पर है। प्रोफ़ेसर अज्ञात के मन्त्रिमण्डल के समय जिस दलबन्दी की इस पवित्र संस्था में सृष्टि हुई थी वह अन्त में इसे मालूम होता है लेही डूबी। सरस्वती के गत अङ्क में हम इस संस्था के सम्बन्ध में इसके मन्त्रिमण्डल की एक अपील प्रकाशित कर चुके हैं। आशा है, हिन्दी के प्रेमियों का ध्यान उसकी ओर आकृष्ट होगा और वे अपनी इस प्रधान संस्था को सँभालने के लिए अग्रसर होंगे। प्रसन्नता की बात है कि काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा का ध्यान सम्मेलन की ओर गया है और वह उसका भार ग्रहण करने को तैयार हो गई है। अपनी कार्यकारिणी समिति की हाल की एक बैठक में उसने एक प्रस्ताव पास किया है, जो इस प्रकार है—

'निश्चय हुआ कि (क) सभा को हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की चिन्ताजनक आर्थिक स्थिति को जानकर अत्यन्त दुःख हुआ है और यह उक्त सम्मेलन के कार्यकर्ताओं को विश्वास दिलाती है कि यदि वे किसी समय सम्मेलन के संचालन में किसी कारण से विशेष कठिनाई देखें तो यह सभा उसके कार्य का भार अपने ऊपर लेने और उसे सँभालने के लिए प्रयत्न कर सकती है। (ख) सभा हिन्दी-प्रेमी जनता तथा हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभासदों पर यह प्रकट कर देना आवश्यक समझती है कि वह उक्त सम्मेलन की जन्मदातृ होने के कारण और हिन्दी-भाषा-भाषियों की सहायता के भरोसे पर ही सम्मेलन की स्थिति तथा नाम को बनाये रखने में पूर्ण उद्योग करने के लिए उद्यत है।'

सम्मेलन को जन्मदाता यही सभा है। सभा ने अपने जीवन-काल में जो उन्नति की है और उससे हिन्दी का जो हित हुआ है उसका उल्लेख करने की ज़रूरत नहीं है। उसके अब तक के सफल जीवन में

यह बात अच्छी तरह प्रकट है कि सम्मेलन का सञ्चालन-सूत्र उसके हाथ में चले जाने से सम्मेलन के अभ्युदय की ही आशा है। ऐसी दशा में अपीलें निकालने या धन-संग्रह करने के लिए डेपुटेशन ले जाने के स्थान में उसके वर्तमान कार्यकर्ताओं के लिए यही सरल मार्ग है कि वे सम्मेलन को सभा के हवाले कर दें। भगवान् सम्मेलन के कार्यकर्ताओं को सुबुद्धि दे जिससे हिन्दी की इस एक श्रेष्ठ संस्था की रक्षा हो।

## १२—चित्र-परिचय

( १ )

**शापोद्धार**—रामचरितमानस की एक विशेष घटना पर इस चित्र का चित्रण किया गया है। लक्ष्मणजी के 'शक्ति' लगने पर जब सुषेण वैद्य के कहने से हनूमान्जी 'सञ्जीविनी बूटी' लेने जा रहे थे तब उनको मार्ग में ही मार डालने के लिए रावण ने कालनेमि को भेजा था। इसने मार्ग में हनूमान्जी को ठगने के लिए माया रची। साधु तपस्वी के भेष में वह हनूमान्जी से मिला और उनको अपने फेर में फाँसना चाहा। हनूमान्जी ने उसे साधु समझ कर उसका सम्मान किया। परन्तु जब वे उसकी अनुमति से तालाब में पानी पीने गये तब वहाँ एक मगरिन ने उनका पैर पकड़ लिया। इस पर हनूमान्जी ने उसे मार डाला। वह मगरिन पहले की अप्सरा थी। शापवश मगरिन हो गई थी। हनूमान्-द्वारा मारे जाने से उसका शापोद्धार हो गया। अपने असली रूप में प्रकट हो कर उसने उस साधु का भेद हनूमान्जी से खोल दिया। घटना के इसी अंश को चित्रकार ने इस चित्र में चित्रित किया है।

( २ )

बँगला के प्रसिद्ध साहित्यकार स्वर्गीय रमेशचन्द्र दत्त ने भी राजपूत-कुल-केसरी महाराणा प्रतापसिंह का भव्य चरित एक उपन्यास में बहुत ही हृदय-ग्राही ढङ्ग से अङ्कित किया है। आपकी वह पुस्तक हिन्दी में 'राजपूत-जीवन-सन्ध्या' के नाम से प्रकाशित हुई है। उसी में वर्णित घटनाओं पर कुशल चित्रकार ने जो चित्र बनाये हैं उनमें से दो सरस्वती के इस अङ्क में छापे गये हैं।

एक चित्र की घटना है प्रतापसिंह और शक्तिसिंह के पुनर्मिलन की। इन दोनों भाइयों में पहले परस्पर बड़ा स्नेह था, पर बाद को शक्तिसिंह मुग़लों से मिल गये और प्रतापसिंह के जानी दुश्मन हो गये। हल्दी-घाटी के संग्राम के पश्चात् जब प्रतापसिंह घायल होकर निर्जन स्थान को चल पड़े तब मार डालने के लिए २ मुग़ल सरदारों ने उनका पीछा किया। इस बात के जानने पर शक्तिसिंह का भ्रातृभाव जाग्रत हुआ और ठीक समय पर पहुँच कर उन मुग़लों को मार कर उन्होंने महाराणा की रक्षा की। 'महाराना प्रताप और शक्तिसिंह' नामक चित्र में यही दृश्य दिखाया गया है।

दूसरे चित्र की घटना है महाराना के विपिन-निवास-काल की। युद्ध में सर्वस्व गँवाकर जब वे वनवासी हो गये थे और उनको भोजन तक के लाले पड़ रहे थे तब इस काल में एक दिन उनके भूखे बच्चे का भोजन एक वनबिलाव छीनकर ले भागा। इसी अवस्था का चित्रण 'जंगलवासी प्रताप' नामक चित्र में किया गया है।

# नव प्रकाशित पुस्तकें

## हिन्दी भाषा और इतिहास

( राय साहब श्यामसुन्दरदास, बी० ए० )

इस ग्रन्थ को लेखक ने अपने अनेक वर्षों के अनुभव, और परिश्रमपूर्वक एकत्र की हुई सामग्री की सहायता से बड़ी छान-बीन करके लिखा है। इसके पूर्वार्ध में हिन्दी-भाषा का और उत्तरार्ध में साहित्य का विशद रूप से विवेचन किया गया है। लेखक ने इसका उद्देश्य प्रत्येक युग की मुख्य मुख्य विशेषताओं का उल्लेख करना और यह बतलाना रक्खा है कि साहित्य की प्रगति किस समय में किस ढङ्ग की थी। इस दृष्टि से यह ग्रन्थ अन्य इतिहास-ग्रन्थों से पृथक् है। मूल्य ६) छः रुपये।

## हिन्दी-साहित्य का इतिहास

( पण्डित रामचन्द्र शुक्ल )

इस पुस्तक को आदिकाल, पूर्वमध्यकाल, उत्तर-मध्यकाल और आधुनिक काल—इन चार भागों में विभक्त करके इतिहास का निरूपण किया गया है। इसमें कवियों तथा लेखकों का परिचय और उनकी कृतियों के चुने हुए कुछ उदाहरण तो हैं ही, किन्तु लेखक ने विशेष महत्त्व दिया है समय की प्रवृत्ति का पता लगाकर विचारधारा के विकास को व्यक्त करने में। मूल्य ४॥) साढ़े चार रुपये।

## हिन्दी-रसगङ्गाधर

यह संस्कृत के उद्‌भट विद्वान् पण्डितराज जगन्नाथ के ग्रन्थ का हिन्दी-रूपान्तर है। इसमें उदाहरण के मूल श्लोक तो हैं ही, उनका रूपान्तर भी छन्दोबद्ध ही है। आरम्भ में, कोई १०६ पृष्ठों में, 'निवेदन', 'पण्डितराज का परिचय' और 'विषय-विवेचन' आदि है। मूल्य ३॥) साढ़े तीन रुपये।

## लेन-देन

( श्रीशरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय )

यह शरद्-ग्रन्थावली की आठवीं संख्या है। इसकी उत्तमता के सम्बन्ध में शरद् बाबू का नाम ही पर्य्याप्त है। इस ग्रन्थावली से अभी तक जितनी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं, वे हाथों हाथ बिक रही हैं। सजिल्द पुस्तक का मूल्य २॥) ढाई रुपये।

## शतदल कमल

( पण्डित श्रीनारायण चतुर्वेदी, एम० ए०, एल-टी० "श्रीवर" )

इसमें बालकों की रुचि का ध्यान रखकर रंग-बिरंगे फूलों, भिन्न भिन्न रंगों और 'मार्च' पर कविताएँ लिखी गई हैं, जिन्हें बच्चे सामूहिक रूप से गा-गाकर ख़ूब प्रसन्न होंगे। बालकों के लिए ऐसी सुन्दर, आकर्षक और मनोरञ्जक पुस्तक हिन्दी में आज तक एक भी नहीं प्रकाशित हुई है। मूल्य २) दो रु०।

## चरित-चर्य्या

( पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी )

यह आचार्य द्विवेदीजी की कृति है। इसमें जीवन के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में सफलतापूर्वक कार्य करनेवाले बारह महापुरुषों की जीवनियों का संग्रह है। पुस्तक उपयोगी और शिक्षाप्रद है। मूल्य ॥।=) चौदह आने है।

**मैनेजर (बुकडिपो), इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग**

*Printed and Published by K. Mittra at The Indian Press, Ltd., Allahabad.*

# लेख-सूची

## चित्र-सूची

# सरस्वती के नियम

१—सरस्वती प्रतिमास प्रकाशित होती है।

२—डाकव्यय सहित इसका वार्षिक मूल्य ६॥) है। इसका वर्ष जनवरी से दिसम्बर तक वा जुलाई से जून तक समझा जाता है। बीच में ग्राहक होनेवालों को पूरे वर्ष की संख्यायें दी जाती हैं। प्रतिसंख्या का मूल्य ॥=) है। भारत के बाहर सर्वत्र वार्षिक मूल्य ८), छः महीने का ४) और प्रतिसंख्या का ॥=) है। बिना अग्रिम मूल्य के पत्रिका नहीं भेजी जाती। पुरानी प्रतियाँ सब नहीं मिलतीं। जो मिलती भी हैं उनका मूल्य १) प्रति से कम नहीं लिया जाता।

३—अपना नाम और पूरा पता साफ़ साफ़ लिख कर भेजना चाहिए, जिसमें पत्रिका के पहुँचने में गड़बड़ी न हो।

४—जिन सज्जनों को किसी मास की सरस्वती न मिले उन्हें पहले अपने डाकघर से पूछना चाहिए। अगर पता न लगे तो डाकघर से जो उत्तर आवे उसे हमारे पास—जिस महीने की संख्या न मिली हो उसके—अगले महीने की १५ तारीख़ तक भेजें। जिन पत्रों के साथ डाकघर का उत्तर न होगा उन पर ध्यान न दिया जायगा; चाहे वे अगले महीने की १५ ता० के भीतर ही आवें। उन्हें संख्या मूल्य ही पर मिलेगी। सरस्वती यहाँ से दो बार अच्छी तरह जाँच कर रवाना की जाती है। अतएव इस विषय में पहले डाकघर से ही पूछताछ करना अच्छा होगा।

५—यदि एक ही दो मास के लिए पता बदलवाना हो तो डाकख़ाने से उसका प्रबन्ध करा लेना चाहिए और यदि सदा अथवा अधिक काल के लिए बदलवाना हो तो उसकी सूचना हमें अवश्य देनी चाहिए।

६—लेख, कविता, समालोचना के लिए पुस्तकें और बदले के पत्र सम्पादक 'सरस्वती', इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग," के पते से भेजने चाहिए। मूल्य तथा प्रबन्ध-सम्बन्धी पत्र "मनेजर सरस्वती, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, इलाहाबाद", के पते से आने चाहिए।

७—किसी लेख अथवा कविता के प्रकाशित करने वा न करने का तथा उसे लौटाने वा न लौटाने का भी अधिकार सम्पादक को है। लेखों के घटाने-बढ़ाने का भी अधिकार सम्पादक को है। जो लेख सम्पादक लौटाना मंज़ूर करें उनका डाक और रजिस्टरी ख़र्च लेखक के ज़िम्मे होगा। बिना उसे भेजे लेख न लौटाया जायगा।

८—अधूरे लेख नहीं छापे जाते। स्थान के अनुसार लेख एक वा अधिक संख्याओं में प्रकाशित होते हैं।

९—जिन लेखों में चित्र रहेंगे, उन चित्रों के मिलने का जब तक लेखक प्रबन्ध न कर देगा, तब तक वे लेख

१०—पुरस्कार के योग्य लेखों पर लेखकों को यदि वे स्वीकार करेंगे, तो नियमानुसार पुरस्कार भी दिया जायगा।

---

# सदैव लाल इमली के कपड़े ख़रीदिये।

यह आपकी जाड़े की पोशाकों को और भी सुन्दर वना देंगे।

इसमें धोखा खाने का कोई कारण नहीं है। लाल इमली के कपड़ों को आप ही के देश में आपके देशी ऊन से आप ही के देशी भाई तैयार करते हैं। और इसलिए यह असली स्वदेशी हैं।

## नये नये नमूने की

| | |
|---|---|
| लोइयाँ | फुलओवर |
| टुइड | नीचे पहिनने के कपड़े |
| फ्लालैन | मोज़े |
| कोट स्वेटर | स्टाकिंग्ज़ |

ख़रीदिये। इनके मूल्य में भी कमी कर दी गई है।

इसका ज़िम्मा लिया जाता है कि लाल इमली के सारे वस्त्र केवल शुद्ध ऊन से बनाये जाते हैं।



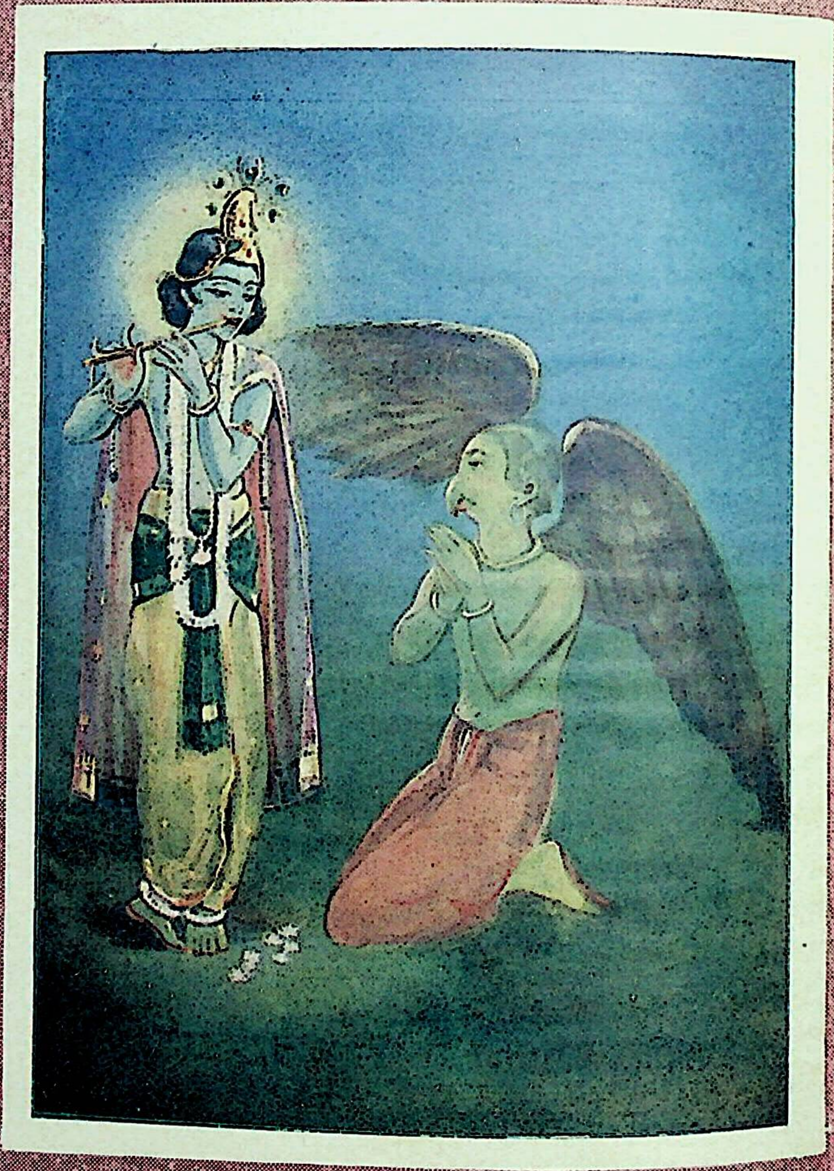
# LAL-IMLI
## PURE WOOL

### लाल इमली की एजेन्सियाँ

| | |
|---|---|
| इलाहाबाद ... ... ... ... | चौक |
| कानपुर ... ... ... ... | मेस्टन रोड |
| आगरा ... ... ... ... | सेउका बाज़ार |
| लखनऊ ... ... ... ... | अमीनाबाद |

अपने स्थानीय एजेन्ट के पास जाइये और देखिये। और या फिर सीधे हमको लिखिये हम मुफ़्त नमूने भेज देंगे।

## दि कानपुर



श्रीरामचन्द्र और श्रीगरुड़

# सरस्वती

सचित्र
मासिक पत्रिका

वार्षिक मूल्य ६।।)
Yearly Subscription, Rs. 6-8

सम्पादक
देवीदत्त शुक्ल

प्रति संख्या ।।=)
As. 10 per copy.

भाग ३१, खण्ड २ ] दिसम्बर १९३०—मार्गशीर्ष १९८७ [ सं० ६, पूर्ण-संख्या ३७२


## मोह

किसने कैसा जादू डाला ।
लोचन-हीन बन गया कैसे
युगल-विलोचनवाला ।
कैसे लगा वचन-रचना-पटु-
मानव-मुख पर ताला ।
क्यों कल-कथन कान करते
कानों को हुआ कसाला ।
कैसे हरित-भूत-खेती पर
पड़ा अचानक पाला ।
छिन्न हुई क्यों सुमति-कंठगत
सुरुचि-सुमन की माला ।।१।।

बना क्यों मन इतना मतवाला ।
टपक रहा है बार बार क्यों
छिले हृदय का छाला ।
पीते रहे कभी पुलकित बन
सरस-सुधा का प्याला ।
आज कंठ हैं सींच न पाते
पड़ा सलिल का लाला ।
क्यों अँधियाला बढ़ा छिना क्यों
छिति-तल का उजियाला ।
किसने पेय मधुर-तम-पय में
गरल-तरल-तर डाला ।।२।।

—"हरिऔध"

# विक्रमादित्य की अनेकता

[संवत्-प्रवर्तक महाराज विक्रमादित्य का अस्तित्व अनेक इतिहासकारों को नहीं स्वीकार है। इस लेख में श्रीयुत गोपीकृष्ण शास्त्री ने विक्रमादित्य का अस्तित्व प्रमाणित करते हुए यह बतलाया है कि जिन दो-एक भारतीय सम्राटों को इतिहासकार विक्रमादित्य सिद्ध करते हैं वे केवल उपाधिधारी विक्रमादित्य हैं। असली विक्रमादित्य इनसे पृथक् हैं और वे दो हज़ार वर्ष पूर्व उज्जयिनी के शासक थे।]

भारतवर्ष में जिन महापुरुष के नाम से विक्रमी संवत् का प्रचार है, खेद है कि उनके विषय में शिलालेख आदि दृढ़ प्रमाणों के अभाव से उनके अस्तित्व का एवं उनके काल का निर्णय करना असंभव-सा हो गया है। यद्यपि कतिपय जैन-ग्रन्थों में विक्रम-संवत् का उल्लेख मिलता है, तथापि वह उल्लेख ग्यारहवीं शताब्दी के बाद का है। उदाहरणार्थ हम उसे यहाँ उद्धृत करते हैं—

"शशिमुनिपशुपतिसङ्ख्ये वर्षे विक्रमनृपादतिक्रान्ते।
चैत्रे सितसप्तम्यां समर्थितेयं गुरोर्वारे॥"

—धनेश्वराचार्यकृत सा० श० वृत्ति।

इस श्लोक में विक्रम-संवत् ११७१ का उल्लेख किया गया है। इसी प्रकार—

दिक्करिकुलदिनकरपरिमितविक्रमनरेश्वरसमायाम्।
द्वाविंशति शतमानं शास्त्रमिदं निर्मितं जयतु॥

इस श्लोक में १२७८ विक्रम-संवत् का उल्लेख है। जिनपालगणि सूरि-विरचित 'चर्चरीवृत्ति' में और उदयसिंह सूरि-कृत 'पिण्डविशुद्धिदीपिका' में तथा सुमतिगणि-प्रणीत 'गणधर सार्धशतक बृहद्वृत्ति' में विक्रम-संवत् १२९४ तथा १२९५ का उल्लेख मिलता है। तथा प्राकृत द्व्याश्रयवृत्ति और संस्कृतद्व्याश्रयवृत्ति एवं अभयकुमारचरित आदि अनेक ग्रन्थों में विक्रम-संवत् की ग्यारहवीं शताब्दी से सत्रहवीं शताब्दी तक का ज़िक्र आ चुका है। परन्तु इसके पूर्व का कहीं भी कोई प्रसिद्ध प्रमाण नहीं मिलता है। ऐसी अनेक आपत्तियों के कारण कतिपय ऐतिहासिक विद्वानों ने संवत्-प्रवर्तक विक्रमादित्य का ऐतिहासिक अस्तित्व ही स्वीकार नहीं किया है। क्या कहा जाय? विक्रम की निवास-भूमि मालव-देश में अति प्राचीन काल से मालव-संवत् का प्रचार था। जैसे—"मालवानां गणस्थित्या याते शतचतुष्टये"—इत्यादि। इस कारण को लेकर बहुत से इतिहासज्ञों ने गुप्त-वंशोत्पन्न परमप्रतापशाली द्वितीय चन्द्रगुप्त को ही असली विक्रमादित्य मान लिया है। उनका कहना है कि इसी ने सौराष्ट्र के शकों को पराजित किया तथा प्रचलित मालव-संवत् के साथ अपनी 'विक्रम' उपाधि जोड़कर विक्रम-संवत् चलाया। इसके पूर्व

कोई भी विक्रमादित्य नहीं था, यह कहकर संवत्-प्रचारक प्राचीन विक्रमादित्य के अस्तित्व को ही उन्होंने उच्छिन्न कर डाला। परन्तु यह मत विवेचकता की दृष्टि से आपातरमणीय प्रतीत होता है। क्योंकि चन्द्रगुप्त (द्वितीय) का नाम तो चन्द्रगुप्त ही था। उसने सौराष्ट्र के शकों को पराजित किया था, इसलिए उसने अपने नाम के पीछे 'विक्रमादित्य' की उपाधि जोड़ ली थी। इससे यह तात्पर्य निकलता है कि जो विक्रमादित्य उपाधिधारी होता था उसे शकारि होना अत्यावश्यक था, क्योंकि विक्रमादित्य नामक संवत्-प्रचारक महापुरुष शकारि थे। परन्तु उस उपाधिधारी के लिए 'विक्रमादित्य' नाम उपाधि मानी जा सकती है न कि उसका वह असली नाम कहा जा सकता है। उसका असली नाम तो भिन्न ही हो सकता है। इसलिए हम चन्द्रगुप्त (द्वितीय) को असली विक्रमादित्य नहीं मान सकते।

### संवत्-प्रवर्तक 'प्रथम विक्रमादित्य'।

गुप्तवंशी चन्द्रगुप्त के पूर्व एक विक्रमादित्य और हुए हैं। उनका उल्लेख हमारे प्राचीन लेखों में मिलता है। श्रीपाल नामक कवि ने 'हाल भूपति' के नाम से 'गाथासप्तशती' नाम से प्राचीन प्राकृत-गाथाओं का संग्रह किया है। हाल की राजधानी प्रतिष्ठानपुर अर्थात् पैठन थी। इसका शासन-काल ईसवी सन् की प्रथम शताब्दी माना गया है। और श्रीपालित कवि 'हाल भूपति' का आश्रित था। यह बात अभिनन्द कवि के 'रामचरित' काव्य में इस प्रकार उल्लेख की गई है—

"हालेनोत्तमपूजया कविवृषः श्रीपालितो लालितः।
ख्यातिं कामपि कालिदासकवयो नीताः शकारातिना॥

—अभिनंदकृत रामचरित

इस कवि की बनाई हुई गाथासप्तशती के पाँचवें शतक में एक गाथा मिलती है जो इस प्रकार है—

'संवाहण सुहरस्स तोसिएण देन्तेह तुह करे लक्खम्।
चलणेण विक्रमादित्त चरित्रं अणुसिक्खि अंतिस्सा॥

इस गाथा से यह बात स्पष्ट प्रमाणित होती है कि ईसा के पूर्व प्रथम शताब्दी में एक विक्रमादित्य हुए हैं। और जैन-ग्रन्थों की कालिकाचार्य की कथा में उज्जयिनी के राजा विक्रमादित्य ने शकों का पराजय किया, ऐसा स्पष्ट उल्लेख भी मिलता है। भारतीय पारंपरिक कथाओं में भी 'विक्रमादित्य' गंधर्वसेन का पुत्र था, ऐसी ख्याति है। 'प्रबन्ध-कोष' में महावीर स्वामी के मोक्ष पाने के बाद ४७० वर्ष व्यतीत होने पर विक्रमादित्य का होना लिखा है। 'टाड' ने राजस्थान के इतिहास में भी पाण्डव-वंश की शाखा तुवर-वंश में संवत्-प्रचारक 'विक्रमादित्य' का जन्म होना लिखा है। प्राचीन ऐतिहासिक ग्रंथ 'राजावली' में भी दिल्ली के राजाओं का वर्णन करते हुए लिखा गया है कि दिल्ली के राजा राजपाल का राज्य शुक्रवंत नामक पर्वतीय राजा ने छीन लिया था। तब उसे विक्रमादित्य ने मारकर दिल्ली का उद्धार किया। प्रसिद्ध इतिहास-लेखक स्मिथ ने भी ईसा के पूर्व दूसरी शताब्दी में शकों का उत्थान तथा उनका भारतवर्ष में प्रवेश लिखा है। भारत पर चढ़ाई करनेवाले शकों को विक्रम ने ईसा के पूर्व प्रथम शताब्दी में परास्त किया होगा, यह अनुमान किया जा सकता है। गजनीपति गज का पुत्र शालिवाहन मध्य-एशिया की क्रान्ति से भयभीत होकर भारतवर्ष में चला आया और वह पंजाब में रहने लगा। उसने विक्रम-द्वारा पराजित शकजाति में पुनः जागृति उत्पन्न कर दी और विक्रमादित्य के पौत्र का राज्य अपहरण किया। इस सम्बन्ध में भविष्य-पुराण में भी उल्लेख मिलता है—

एतस्मिन्नन्तरे तत्र शालिवाहनभूपतिः।
विक्रमादित्यपौत्रस्य पितृराज्यं गृहीतवान्॥

शालिवाहन का समय ईसवी सन् की प्रथम शताब्दी है। उक्त पुराण-वचन से भी ईसा के पूर्व प्रथम शताब्दी में विक्रम का अस्तित्व प्रमाणित होता है। यह शालिवाहन विदेशी था, संभवतः यही शक-संवत का प्रवर्तक हो सकता है। परन्तु इस संवत् का प्रचार नर्मदा-नदी के दक्षिण-तीर के देशों में ही हो

सका, और यह नवीन मालव (दक्षिण-मालव) शालिवाहन की अधीनता से पुनः शीघ्र स्वतन्त्र हो जाने के कारण मालव-संवत् अर्थात् विक्रम-संवत् से ही व्यवहार करता रहा। इससे यह भी मानना पड़ेगा कि कोई दूसरा ही देश प्राचीन मालव था, और इस प्राचीन मालव की सीमा पंजाब तक थी। ईसा के पूर्व प्रथम शताब्दी में शकों ने पाणिनि-व्याकरण में उल्लेख किये गये मालव-गणों को त्रस्त कर पंजाब में अपना अधिकार जमाना शुरू कर दिया था और कई असुविधाओं के कारण मालव लोगों को घबरा कर दक्षिण की ओर हटना पड़ा था। उन्होंने युद्ध में शकजाति से त्रस्त होकर दक्षिण-मालव अर्थात् नवीन मालव में उज्जयिनी को अपनी राजधानी बनाया। सम्भवतः मालव-गणों के आगमन से ही इस देश का नाम मालव हो गया हो, क्योंकि इस देश का प्राचीन प्रसिद्ध नाम अवन्ति-देश है। इन मालव-गणों का अधिनायक विक्रम था। इसने अपने नाम को चिरस्थायी बनाने के लिए संवत् का प्रचार किया*। उस समय गण-शासन की प्रणाली थी। इससे विदित होता है कि यह विक्रमादित्य गणनायक था (न कि कोई राजा या सम्राट्)। कई इतिहास-वेत्ताओं का मत है कि यह परमार-वंश में उत्पन्न हुआ और बहुत से विद्वानों का मत है कि यह तुवरवंशी था। राजतरंगिणी के द्वितीय तरंग में उल्लिखित प्रतापादित्य (बालादित्य) विक्रमादित्य का बान्धव कहा गया है—

> अथ प्रतापादित्याख्यस्तैरानीय दिगन्तरात्।
> विक्रमादित्यभूभर्तुर्ज्ञातिरत्राभ्यषिच्यत ॥
>
> राजतरं० २ तरंग।

परन्तु राजतरंगिणीकार कल्हण कवि इस विक्रमादित्य को 'शकारि' नहीं मानते हैं जैसा कि उन्होंने कुछ आगे चल कर लिखा है—

> शकारिर्विक्रमादित्य इति स भ्रममाश्रितैः।
> अन्यैरत्रान्यथालेखि विसंवादि कदर्थितम् ॥
>
> राजत० २ तरंग।

उनकी यह उक्ति भ्रम-पूर्ण है, क्योंकि उन्होंने दो विक्रम की जगह एक ही विक्रम मान लिया है। परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। क्योंकि प्रतापादित्य (बालादित्य) का बान्धव वह विक्रमादित्य नहीं हो सकता जो मालव-गण का प्रधान नायक तथा संवत्-प्रवर्तक था।

इस प्रकार अनेक प्रमाणों से संवत्-प्रवर्तक विक्रमादित्य का ऐतिहासिक अस्तित्व सिद्ध होता है। लेख के विस्तृत हो जाने के भय से अब हम यहाँ केवल उन व्यक्तियों का थोड़े में उल्लेख करते हैं जिन्होंने अपने नाम के साथ विक्रमादित्य-उपाधि धारण की। पहले हम विक्रमादित्य उपाधिधारी सम्राट् समुद्रगुप्त के पुत्र (द्वितीय) चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य से ही इनका उल्लेख करेंगे।

## द्वितीय चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य

चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का राज्य-काल ईसवी सन् ३८५ से ईसवी सन् ४१३ तक माना जाता है। इस गुप्तवंशी सम्राट् द्वितीय चन्द्रगुप्त ने विक्रमादित्य की उपाधि से अपने को भूषित किया था। इसने सौराष्ट्र में गई हुई शक-शाखा का पराभव किया था, ऐसा बहुत से ऐतिहासिक विद्वानों का कथन है। परन्तु यह बात वास्तविक नहीं प्रतीत होती है। क्योंकि इसके राज्य-शासन के पूर्व ही जब इसके पिता सम्राट् समुद्रगुप्त जीवित थे तभी उनके द्वारा क्षत्रपों का प्रताप-भानु अस्त हो चुका था। इसमें यही प्रमाण पर्याप्त है कि ईसवी सन् ३८२ तक के शक-सिक्के मिलते हैं। बाद के सिक्कों में शक-संवत् नहीं है। इससे यही तात्पर्य निकला कि

---

* कुछ लोगों का मत है कि श्रीहर्ष 'विक्रमादित्य' दूसरे विक्रमादित्यों से पृथक् रखने के लिए 'शकारि विक्रमादित्य' कहलाते थे, इन्हीं 'श्रीहर्ष विक्रमादित्य' ने ईसा से ४५७ वर्ष पूर्व अपना 'हर्ष-संवत्' चलाया था, इन्हीं 'हर्ष विक्रमादित्य' के आश्रित महाकवि कालिदास भी थे।—लेखक

सम्राट् समुद्रगुप्त के शासन-काल (की चरमावधि ईसवी सन् ३८५) के पूर्व ही सौराष्ट्र की शक-शाखा का ह्रास हो चुका था। और उदयगिरि के शिला-लेख से अनुमान किया जा सकता है कि द्वितीय चन्द्रगुप्त का राज्यारोहण-समय ईसवी सन् ४०० के लगभग है। परन्तु चन्द्रगुप्त को जबर्दस्ती शकारि प्रमाणित करने के लिए कई इतिहास-लेखक उसका राज्यारोहण-काल ईसवी सन् ३८५ अथवा ३८० सिद्ध करते लगते हैं, जिससे उसे शक-विजय का श्रेय भी मिल सके। परन्तु उनकी यह बात सर्वथा निर्मूल है। हाँ, यह कह सकते हैं कि उसने अपने पिता सम्राट् समुद्रगुप्त का अनुकरण करते हुए दिग्विजय-यात्रा अवश्य की थी। इस हमारे अनुमान का उदयगिरि का शिलालेख भी पोषक हो सकता है। उसके शासन-काल में मालव-देश स्वतन्त्र था, क्योंकि उस समय नरवर्मा तथा उसके बाद उसका पुत्र विश्ववर्मा ये मालव के स्वतन्त्र शासक थे। यह बात मन्दसोर तथा गंगधार के शिलालेखों से स्पष्ट प्रमाणित होती है। उसके समय में सौराष्ट्र भी स्वतन्त्र गिना जाता था। उसकी शक-विजय का उल्लेख महाकवि बाणभट्ट ने भी किया है। यह विजय शायद आन्ध्रदेश पर अपना अधिकार जमाकर रहने-वाले शकों पर हुई होगी। इस विषय का कथासरित्सा-गर में भी उल्लेख हुआ है। इस चन्द्रगुप्त ने स्त्री-वेष धारण कर शकनरेश का वध किया था। इस विषय में हम यहाँ बाण का वचन उद्धृत करते हैं—

"अरिपुरे परकलत्रकामुकं कामिनीवेशश्चन्द्रगुप्तः शकनरपतिमशातयत्।"

इसकी राजधानी पाटलिपुत्र अथवा पुष्पपुर (पटना) थी। यह बड़ा प्रतापशाली सम्राट् था। इसके विषय में कथा-सरित्सागर में उल्लेख किया गया है—

"विक्रमादित्य इत्यासीद्राजा पाटलिपुत्रके ॥"

इस पद्य में उल्लेख किया गया विक्रमादित्य पदवीधारी यह द्वितीय चन्द्रगुप्त ही है। अब हम इसके विषय में इतना ही कहना पर्याप्त समझ कर विक्रमा-दित्य-पदवी-विभूषित कुमारगुप्त महेंद्रादित्य के पुत्र श्रीस्कन्दगुप्त विक्रमादित्य के विषय में कुछ विवेचना करना चाहते हैं।

## स्कन्दगुप्त विक्रमादित्य

यह मालव-विजेता सम्राट् कुमारगुप्त महेन्द्रादित्य का पुत्र था। इसका शासन-काल ईसवी सन् ४५५ से ४६७ तक माना गया है। यह महान् वीर था। इसके शासन-काल में साम्राज्य में अनेक भीतरी षड्यन्त्र उठ खड़े हुए थे, साथ ही आक्रमणकारी हूणों का आतंक देश भर में छा रहा था। गुप्त-साम्राज्य का सिंहासन डाँवाँडोल हो रहा था। ऐसी दुरवस्था में प्रजा के सच्चे सेवक, मातृभूमि के अनन्य भक्त, इस साहसी वीर ने अनेक आपत्तियाँ सहन करते हुए, गुप्त-साम्राज्य की रक्षा की। इसकी सापत्न माता अनंतदेवी तथा उसका पुत्र पुरगुप्त प्रकाशादित्य दोनों राज्यसिंहासन-प्राप्ति के लोभ से इसके विरुद्ध षड्यंत्र में शामिल थे। ऐसे अनेक कारणों से इसको बहुत से दुःख उठाने पड़े। ऐसी स्थिति में भी इसने अपने सत्साहस से कर्तव्य का पालन किया। विक्रमादित्य के नाम से बेतालपंचविंशति (अर्थात बेतालपच्चीसी), द्वात्रिंशत्पुत्तलिका (अर्थात् सिंहासनबत्तीसी) आदि जितनी आख्यायिकायें भारतवर्ष में प्रचलित हैं वे सब इस स्कन्दगुप्त विक्रमादित्य को लेकर लिखी गई हैं। राजतरंगिणी के तृतीय तरंग में लिखा गया है—

तस्मिन् क्षणे हिरण्योऽपि शान्तिं निस्सन्ततिर्ययौ।
तत्रानेहस्युज्जयिन्यां श्रीमान् हर्षापराभिधः।
एकच्छत्रश्चक्रवर्ती विक्रमादित्य इत्यभूत्॥

राजतरं० ३ तरंग।

कुछ आगे चलकर इसके विषय में राजतरंगिणी-कार लिखते हैं कि म्लेच्छों का नाश करने के लिए

उत्पन्न होनेवाले भगवान् कल्की के कार्य-भार को इसने शकों का नाश करके कुछ हल्का कर दिया था—

म्लेच्छोच्छेदाय वसुधां हरेरवतरिष्यतः।
शकान्विनाश्य येनादौ कार्यभारो लघूकृतः॥

राज० ३ तरंग।

श्रीमहामहोपाध्याय काशीप्रसाद जायसवाल ने अपने विद्वत्तापूर्ण लेख में यशोधर्मदेव को ही कल्की माना है और इस बात की पुष्टि के लिए कल्कि-पुराण के प्रमाण भी दिये हैं।

"प्रसीद जगतां नाथ धर्म वर्मन् रमापते।" ३ अध्याय
"मुने किमत्र कथनं कल्किना धर्म-वर्मणा।" ४ अध्याय

शक-नाश-द्वारा भावी कल्कि के कार्य-भार को लंघु करनेवाले विक्रमादित्य यशोधर्म के ६० वर्ष पूर्ण हुए। वे यही हो सकते हैं जिनका कि स्कन्दगुप्त विक्रमादित्य नाम था। इसलिए राजतरंगिणी के उस भ्रान्त पाठ को बदल कर 'श्रीमान् स्कन्दापराभिधः' ऐसा शुद्ध पाठ रखना चाहिए, क्योंकि यशोधर्मदेव के समय में एक-दो शताब्दियों में कोई भी हर्ष नाम-वाला राजा नहीं हुआ। तब राजतरंगिणी की तृतीय तरंग का विक्रम यही स्कन्दगुप्त हो सकता है। राज-तरंगिणीकार ने इसे अत्यंत विद्वान्, दानशूर तथा गुणग्राही दिखलाया है। इसके यहाँ मातृगुप्त नाम का महाकवि अपनी विद्वत्ता गुप्त रखकर अधिक समय तक नौकर रहा था।

"नानादिगन्तराख्यातं गुणवत्सुलभं नृपम्।
तं कविर्मातृगुप्ताख्यः सर्वास्थानस्थमासदत्॥"

राजतरंगिणी ३ तरंग।

मातृगुप्त को अपनी विद्वता के प्रकाशित करने का योग्य अवसर प्राप्त करने के लिए बहुत समय व्यतीत करना पड़ा। बिना वेतन के सेवा करते हुए उसको अनेक कष्ट उठाने पड़े। दुर्बल शरीर एवं जीर्ण वस्त्र-धारी उस मातृगुप्त को देखकर राजा के अंतःकरण में भी बहुत से विचारों का प्रादुर्भाव होने लगा। एक दिन राजा ने आधी रात के समय मातृगुप्त को अपने शयनागार के द्वार पर पहरा देते देखकर पूछा कि तुम्हें निद्रा क्यों नहीं आती है। तब मातृगुप्त ने अपनी योग्यता दिखलाने का अवसर पाकर सुललित पद्य में उत्तर दिया। उसने कहा—

शीतेनोद्धूषितस्य माषशिमिवच्चिन्तार्णवे मज्जतः।
शान्ताग्निं स्फुटिताधरस्य धमतः क्षुत्क्षामकण्ठस्य मे॥
निद्रा क्वाप्यवमानितेव दयिता सन्त्यज्य दूरं गता।
सत्पात्रप्रतिपादितेव वसुधा न क्षीयते शर्वरी॥

राजतरंगिणी ३ तरंग

इस पद्य को सुनकर राजा उसके पाण्डित्य पर मुग्ध हो गया और उसे काश्मीर का राज्य दे दिया। इस वृत्तान्त को राजतरंगिणीकार ने बड़े विस्तार से लिखा है। बहुत से इतिहास-वेत्ताओं का मत है कि यह मातृगुप्त ही (द्वितीय) कालिदास है। क्योंकि मातृगुप्त तथा कालिदास इन दोनों का अर्थ एक ही है। अस्तु। कथासरित्सागर के विषमशील-लम्बक का चरित्रनायक महेन्द्रादित्य का पुत्र विक्रमादित्य भी यही स्कन्दगुप्त विक्रमादित्य है। विषमशील लम्बक में इसका सुविस्तृत वर्णन मिलता है। और इस विक्रमादित्य ने मध्यदेश, सौराष्ट्र, वंग, अंग, काश्मीर आदि देशों पर अपनी सत्ता स्थापन की थी। इस विषय में कथासरित्सागरकार लिखते हैं—

मध्यदेशः स सौराष्ट्रः स वङ्गाङ्गाच पूर्वदिक्।
सकाश्मीरान् सकौवेरी काष्ठा च करदीकृता।
म्लेच्छसंघाश्च निहता शेषाश्च स्थापिता वशे॥

इतिहास में भी स्कन्दगुप्त के पिता सम्राट् कुमार-गुप्त की उपाधि महेन्द्रादित्य है। अतः कथासरित्सागर में उल्लिखित महेन्द्रादित्य के पुत्र विक्रमादित्य को और स्कन्दगुप्त विक्रमादित्य को एक ही मानने में कोई हानि नहीं है। स्कन्दगुप्त के तथा इसके पिता कुमारगुप्त महेन्द्रादित्य के चाँदी के सिक्कों पर 'परम भागवत महाराजाधिराज श्रीकुमारगुप्त महेन्द्रादित्य

तथा 'परम भागवत श्रीविक्रमादित्य स्कन्दगुप्तः' के नाम से उल्लेख मिलता है। इसके शिलालेख से प्रकट है कि कुललक्ष्मी विचलित हो रही थी, म्लेच्छों से तथा हूणों से यह पवित्र आर्यावर्त आक्रान्त था। ऐसे भयंकर आपत्ति के समय में अपनी सत्ता बनाये रखने के लिए इसने पृथ्वी पर सो कर रातें बिताईं, हूणों के युद्ध में जिसके विकट पराक्रम से धरा विकम्पित हुई, जिसने सौराष्ट्र के शकों का मूलोच्छेद करके पर्णदत्त को वहाँ का शासक नियत किया। जूनागढ़वाले लेख में इस विषय का स्पष्ट उल्लेख है कि वह स्कन्दगुप्त ही था। स्कन्दगुप्त की प्रशंसा में उस लेख में लिखा है—

"अपिच जिनमिव तेन प्रथयन्ति यशांसि यस्य।
रिपवोऽप्यामूलभग्नदर्पा निर्वचना म्लेच्छदेशेषु ॥"

पर्णदत्त के पुत्र चक्रपालित ने 'सुदर्शन'-झील का संस्कार कराया था। इससे अनुमान होता है कि अन्तिम शक क्षत्रप रुद्रसिंह की पराजयवाली घटना ईसवी ४५७ के क़रीब हुई थी और स्कन्दगुप्त को सौराष्ट्र के शकों से और तोरमाण के पूर्ववर्ती हूणों से लगातार युद्ध करना पड़ा था। इधर वैमात्रिक भाई पुरगुप्त से आंतरिक द्वन्द्व भी चल रहा था। उस समय की विचलित राजनीति को पुनः सुव्यवस्थित करने के लिए प्राचीन राजधानी पाटलिपुत्र या अयोध्या से दूर एक केन्द्रस्थल में अपनी राजधानी बनाना आवश्यक था। इसलिए वर्तमान मालव के मौर्य-काल की अवन्ती-नगरी को ही स्कन्दगुप्त ने अपने साम्राज्य का केन्द्र बनाया और शक तथा हूणों को परास्त करके उत्तरी भारत से हूणों तथा शकों का राज्य निर्मूल कर स्कन्दगुप्त ने विक्रमादित्य की उपाधि धारण की। कई ऐतिहासिक यशोधर्मदेव को तृतीय विक्रमादित्य मानते हैं। परन्तु उनका यह मन्तव्य केवल भ्रमपूर्ण है। यशोधर्म के समय में शकों का राज्य कहीं नहीं था। यह बात राजतरंगिणी के 'शकान्विनाश्य येनादौ कार्यभारो लघूकृतः' से भी स्पष्टतया ध्वनित होती है। और मन्दसोरवाले जयस्तम्भ में भी यशोधर्म का शकों के विजय करने का उल्लेख नहीं है, किन्तु हूणों के विजय करने का है। इसलिए हम यशोधर्मदेव को विक्रमादित्य नहीं कह सकते, क्योंकि विक्रमादित्य उपाधि के लिए शकों का नाश करना एक आवश्यक कार्य माना गया है। हाँ, यह अवश्य कहेंगे कि स्कन्दगुप्त विक्रमादित्य ने शकों का पराजय करके हूणों का भी पराजय किया था। संभवतः स्कन्दगुप्त के द्वारा हूणों से काश्मीर-राज्य निकल जाने पर मातृगुप्त वहाँ का शासक बनाया गया हो? पिटारी के स्तम्भ में भी इसके विषय में शिलालेख मिलता है। उसमें लिखा है—

जयति भुजबलाढ्यो गुप्तवंशैकवीरः।
प्रथितविपुलधामा नामतः स्कन्दगुप्तः ॥

इससे स्पष्ट होता है कि स्कन्दगुप्त विक्रमादित्य ही तृतीय विक्रम है। अब हम इनके विषय में विशेष कुछ न कह कर और भी जो बहुत से विक्रमादित्य हो गये हैं उनका सामान्यतया संक्षिप्त परिचय देकर अपना लेख समाप्त करेंगे।

## गोनन्दवंशी विक्रमादित्य

राजा रणादित्य का पुत्र काश्मीर-देश का शासक चतुर्थ विक्रमादित्य है। इसके विषय में राजतरंगिणीकार ने लिखा है—

विक्रमाक्रान्तविश्वस्य विक्रमेश्वरकृत्सुतः।
तस्यासीद्विक्रमादित्यस्त्रिविक्रमपराक्रमः ॥

इसने ४२ वर्ष पर्यन्त पृथ्वी पर राज्य किया। इसके ब्रह्म, तथा गलून नामवाले दो प्रधान मन्त्री थे। यह परम शैव था। इसने विक्रमेश्वर महादेव की मूर्ति स्थापित की। इसका चरित्र केवल राजतरंगिणी तथा क्षेमेन्द्रकृत नृपावली में ही मिलता है।

## अन्य विक्रमादित्य

इसी प्रकार दाक्षिणात्य सोलंकी-राजवंश में बहुत से विक्रमादित्य हुए हैं। इतना ही क्यों? अभी

मुग़ल-सम्राट् अकबर के शासन-काल में हेमू ने भी अपने को विक्रमादित्य घोषित किया था। यह बात मिश्रबन्धु के भारतवर्ष के इतिहास में विस्तार-पूर्वक लिखी गई है। जहाँगीर ने भी अपने एक आश्रित को विक्रमादित्य की उपाधि दी थी। इतिहास लिखने की प्राचीन काल में प्रणाली न होने से आज हमको विक्रमादित्य के समान अपने प्रतापशाली संवत्प्रवर्तक सम्राट् के कालनिर्णय के लिए ऐतिहासिक प्रमाण खोजने पड़ते हैं। कितना आश्चर्य! अस्तु हमको इतना तो अवश्य मानना पड़ेगा कि विक्रमादित्य नाम के परमप्रतापी सम्राट् आज से २,००० वर्ष के पूर्व हो चुके हैं, जिनका संवत् आज तक भारत भर में माना जाता है। गुप्त-वंश में बहुत से प्रतापी नरेश हो गये हैं, परन्तु उनका गुप्त-संवत् भी इस विक्रम-संवत् के आगे गुप्त हो गया। इससे यह स्पष्ट प्रमाणित होता है कि कोई महापुरुष इस मालव-देश में अवश्य हो गया है।

—गोपीकृष्ण शास्त्री

# उपकार

एक दिन प्रातःकाल सिलसेड से मुलाक़ात करने गया। मैंने कहा—अगर आज चैम्पिउ होटल में मेरी दावत करो तो मैं 'एपिक्यूरस' की शिष्यता ग्रहण करने को तैयार हूँ।

उसने कहा—यह बिलकुल असम्भव है।

"क्यों, जेब में रुपये कम हैं ?"

"सो बात नहीं, रुपये काफ़ी हैं।"

यह कहकर उसने चमकती हुई छः स्वर्णमुद्रायें दिखलाईं।

"तब क्यों ?"

मेरे कंधे पर हाथ रख कर चलते चलते सिलसेड ने कहा—"बुल्वार्द दु-टेम्पुल" तक मेरे साथ चलो। रास्ते में सारा क़िस्सा सुनाऊँगा। मेरी एक घड़ी है, लेकिन एक सौ फ़्रांक के विना उसे फिर प्राप्त करना कठिन है। प्रायः तेरह महीने से चचा के यहाँ बन्धक है। कल मैंने उनसे निवेदन किया था कि कुछ दिन और ठहरिए और घड़ी रक्खे रहिए। परन्तु उन्होंने मेरी प्रार्थना न मानी। उनके क्लर्क ने मुझे बतलाया कि घड़ी नीलामघर में जमा कर दी गई है, तो भी एक उपाय है। सम्भव है, वह अभी तक नीलाम पर न चढ़ी हो, प्रयत्न करने पर मिल जाय। और यदि नीलाम पर चढ़ गई हो तो भी दाम देकर ली जा सकती है। चचा की दूकान से सन्तुष्ट हो कृतज्ञता प्रकट करते हुए बाहर आया। कल इसे न पा सका। आज इसी से नीलाम-घर जा रहा हूँ।

सिलसेड की बात के समाप्त होने पर मैंने कहा—जब मेरी तक़दीर ही ख़राब है तब क्या करूँ। आज चैम्पिउ होटल में भोजन करने की बड़ी इच्छा थी!

"चाहता तो मैं भी यही था! लेकिन नीलाम-घर ठीक समय पर पहुँच गया और घड़ी मिल गई तो चार बजे तक लौट आऊँगा। तब होटल में चल कर मौज करना।"

इस अनिश्चित आश्वासन की बात जानकर दीर्घ निःश्वास के साथ मैं बोला—अच्छा, यही सही। भगवान् से प्रार्थना करता हूँ कि घड़ी तुम्हें मिल जाय।

'धन्यवाद' कहकर सिलसेड ने अपना रास्ता लिया।

× × × × ×

पशुशाला के पशु लोहे के सीकचों से बन्द घर में जैसे स्वतन्त्र निवास करते हैं, वैसे ही बन्धकी का कार करनेवाले कर्मचारी भी होते हैं। सिलसेड एक ऐसे ही व्यक्ति के सम्मुख जाकर बोला—मेरी घड़ी क्या वापस कर सकते हैं ? सारा पावना चुकाने को तैयार हूँ।

"बड़ी देर करके आये। अब तो नहीं हो सकता। पर आप झटपट नीलाम-घर जायँ। जहाँ तक मेरा अनुमान है, वह अभी तक नीलाम पर नहीं चढ़ी है।"

सिलसेड ने दीर्घ-निःश्वास छोड़ते हुए कहा—अच्छा, घड़ी तो यहाँ से चली गई है न ?

एक ठिगने क़द का बुड्ढा कातर स्वर में बोला—महोदय, मेरी घड़ी ?"

उसने बहुत दिनों का एक पीला टिकट कर्मचारी को दिखलाया।

"बहुत विलम्ब हुआ। आप भी नीलाम-घर जायँ।"

"हा, भगवान्!"

वृद्ध फुर्ती से चला गया।

सिलसेड ने नीलाम-घर में प्रवेश कर अपने साथी को अच्छी तरह से देखा। बुड्ढे का चेहरा पीला था, सिर के बाल सफ़ेद थे, आँखों से स्नेह टपकता था। बहुत दुबला-पतला था, समय की पोशाक पहने था। अस्सी वर्ष से अधिक उम्र का होने पर भी सीधा चलता था।

कमरे में काफ़ी भीड़ थी। उस भीड़ के बीच में से उचक कर उसने देखने की कोशिश की। उसने मीठे स्वर में कहा—हाय! मेरी बहुत दिनों से साथ देनेवाली प्यारी घड़ी इसी मेज़ पर रक्खी है। हे परमात्मा! अभी वह बिकी नहीं है! ठीक समय पर आगया हूँ!

यह कहते कहते ख़ुशी के मारे उसकी देह काँपने लगी। दीवार का सहारा लेकर उसने अपने को गिरने से बचाया। आनन्दातिरेक से उसके दोनों छोटे छोटे पाँव लड़खड़ा रहे थे, हाथ थर थर काँप रहे थे। नेत्रों से टपटप आँसू गिरने लगे, मुख-मण्डल पर हँसी की रेखा दौड़ गई थी। उससे एक शब्द भी उच्चारण नहीं किया जाता था। किन्तु उसके आँसुओं से भरे दोनों नेत्रों ने छन्दबद्ध कविता की भाँति सिलसेड के हृदय में वृद्ध के हृदय के भावों को स्पष्ट कर दिया।

सिलसेड यह भी भूल गया कि किस काम से वहाँ आया है। वह अपने को भूलकर वृद्ध के मुख पर के भाव-वैचित्र्य को देख रहा था। वृद्ध के चेहरे से सरलता टपकने पर भी बुद्धिमत्ता और शालीनता स्पष्ट देख पड़ती थी। उसने तत्काल समझ लिया कि वृद्ध के हृदय का भाव उसके चेहरे पर झलक रहा है। किसी ने किसी से बात-चीत न की, तो भी युवक को ऐसा मालूम हुआ कि वह उसके मित्रता के बन्धन में बँध गया है। जब बुड्ढे में बोलने की शक्ति आई तब उसने सिलसेड की ओर ताक कर भग्न स्वर में कहा—मैं आपसे अपनी घड़ी की कहानी सुनाता हूँ। आप मेज़ पर रक्खी हुई जो घड़ी देख रहे हैं वह मेरी है। मुझे आशा हो गई है कि मैं फिर इसे वापस पा जाऊँगा। किसी हृदय-वाले श्रोता से बात-चीत करने से मेरी अधीरता दूर हो जायगी, और इसके विरह की तीव्रता भी बहुत कुछ कम हो जायगी।

सिलसेड वृद्ध की बात ध्यान देकर सुन रहा था। वृद्ध ने कहा—

"यह सोने की घड़ी बड़ी विचित्र है। जिस समय मेरा जन्म हुआ, उस समय यह पिताजी के पाकेट में रहती थी।

"मेरे पिता अक्सर कहा करते थे कि जब तुम पन्द्रह वर्ष के होगे तब यह घड़ी तुम्हें दूँगा। लेकिन शर्त यह है कि तुम एक अच्छे लड़के बनो।

"ओह, वह कैसी अधीरता थी। अब जान पड़ता है कि वे दिन फिर लौट कर न आयेंगे। पन्द्रह वर्ष, आह वह कितने समय बाद होगा। प्रायः मन में कहा करता कि घड़ी का पाना मेरे भाग्य में बदा नहीं है। मैं पिताजी की आँखों की पुतली था। पिताजी प्रति रविवार को उसे मेरे हाथ में दिया करते थे।

"आप स्वयं समझ सकते हैं कि जब-तब घड़ी के मिलने से मुझे तृप्ति नहीं होती थी। उसे सदा के लिए अपने अधिकार में करने के लिए मैं अधीर हो रहा था। पन्द्रहवाँ वर्ष जल्दी न आया। इसके पहले ही वह घड़ी मेरे हाथ में आगई। पिताजी के देने से नहीं, किन्तु उनका उत्तराधिकारी होने से।

"जिस समय की बात कह रहा हूँ, उस समय देश में क्रान्ति हो रही थी। सर्वत्र बिलकुल अराजकता फैली हुई थी, घोर अत्याचार हो रहा था। एक दिन कुछ भीमकाय लोगों ने आकर मेरे पिता को गिरफ़्तार किया। दूसरे दिन कुछ नीचों ने एक निरपराध की हत्या कर डाली। प्राण-दंड के पहले मुझे और मेरी माता को केवल थोड़ी देर के लिए उनसे भेंट करने की आज्ञा मिली थी। उतनी ही देर में आँसुओं की धारा बह चली। विदा होने के समय पिताजी ने इस घड़ी को मेरे सामने रक्खा, उन्होंने मुँह से कुछ कहा नहीं, केवल मुस्करा भर दिया। अब भी वह हँसी की रेखा मेरी आँखों के सामने नाच रही है।

"उनको ले जानेवाली गाड़ी चली गई। मैं भी जेल से बाहर निकल कर उनके पीछे पीछे चला और वध-भूमि के पास जाकर खड़ा हो गया। पिता के मस्तक को धड़ से अलग होते इन्हीं आँखों से देखा। उस दृश्य से अपने आप ही आँखें बन्द हो गईं। शरीर भर का ख़ून मानो एक जगह हृदय में जमा हो गया। मेरा सारा शरीर सिहर उठा। मैं शक्ति भर घड़ी को दबाये रहा। उसी समय मेरे चित्त में एक विचित्र भाव पैदा हुआ। आँखें खोलकर उसी क्षण मैंने घड़ी की ओर निहारा और पिता की तरह हँसने की चेष्टा करके मैंने समय देखा। उस समय बारह बजने में दस मिनट बाक़ी थे—

इसी समय नीलाम करनेवाला एक दूसरी चीज़ नीलाम पर चढ़ाकर दाम बोलने लगा। वृद्ध ने चौंक कर देखा कि वह उसकी घड़ी नहीं है। तब फिर वह कहने लगा—

'कुछ दिन के बाद शोक से मेरी माता ने इहलोक को छोड़ दिया। उस समय इस दुनिया में मैं अकेला ही रह गया। न कोई अपना कहनेवाला था और न सम्बन्धी ही था। पहले के सभी सुख के चिह्न एक एक करके लुप्त हो गये। केवल पिता की दी हुई बाल्य-काल की सहचरी वह घड़ी भर रह गई। वह सदा मेरे पास रहती थी। एक क्षण के लिए भी घड़ी को हाथ से न अलग करता था। न जाने किस वियोगान्त दृश्य की स्मृति लेकर वह मेरे हाथ में आई थी! उसे छोड़ कर एक घड़ी भर भी मुझसे नहीं रहा जाता था! वह मेरे प्रत्येक दुःख-सुख के समय मेरे पास रहती थी!

"अन्त में हम लोग तीन साथी हुए। एक और साथी की वृद्धि हुई। वह भी क्या ही आनन्द की घड़ी थी! गार्टैंड ने मुझे ग़रीब जानकर भी मेरी उपेक्षा न की। मैं उस समय भी दरिद्र था, आज भी दरिद्र ही हूँ। फिर भी किसी तरह गुज़र हो जाती थी। मैं उसका अंतःकरण से प्रेम करता था, श्रद्धा करता था। यह छोड़ कर मुझमें और कोई गुण न था। मुझे दुःखी और बिना साथी के देखकर उसका स्त्री-हृदय सहानुभूति से भर कर विचलित हो उठा था। आज चालीस वर्ष से वह इसी बात का प्रयत्न करती रहती है कि मैं किस तरह सुखी होऊँ। वह अपने प्रयत्न में सफल हुई है। मैं सदा सुखी रहा हूँ। युवावस्था की सुन्दरी गार्टैंड इस समय वृद्धा है, तो भी उसका हृदय कोमल है, प्रेम से भरा है!

"हम लोगों के विवाह में किसी तरह का प्रदर्शन नहीं हुआ था। 'बाल डान्स', दावत अथवा किसी तरह के आमोद-प्रमोद का कोई कार्यक्रम नहीं रक्खा गया था। दो मित्रों के साथ मैं और गार्टैंड टाउन-हाल गये, वहाँ से गिरजा-घर। विवाह की विधि के सम्पन्न होने पर पत्नी-सहित घर लौटा। किसी ने हम लोगों को उपहार अथवा यौतुक नहीं दिया। किन्तु दरिद्र होने पर भी हम लोगों जैसी कोई दम्पति सुखी न थे। कुटिया में प्रवेश करने पर गार्टैंड ने मुझे समय देखने के लिए कहा। मैंने उसकी बात को मानो ईश्वरीय प्रेरणा समझा। मैंने उससे कहा—गार्टैंड, यह घड़ी मैं तुमको उपहार देता हूँ। मेरे पास और कुछ धन-दौलत नहीं है। मैं इस घड़ी को कितना प्यार करता हूँ और यह मुझे क्यों प्यारी है, यह बात शायद तुमसे छिपी नहीं है। आज की शुभ रात को यह मेरा उपहार है। अपने को तो तुम्हें पहले ही से समर्पित कर चुका हूँ! गार्टैंड अपनी कोमल हथेली पसार कर बोली—प्यारे, धन्यवाद! मैंने उसे घड़ी दे दी। उस समय रात के बारह बजने में दस मिनट बाक़ी थे।

नीलाम करनेवाले की तरफ़ सहसा चौंक कर उसने देखा और कहा—यह क्या? नहीं, अभी मेरी घड़ी की बारी नहीं आई है! अब अपनी कहानी का आख़िरी हिस्सा भी ख़तम किये देता हूँ। उसने कहा—

"एक महीने के बाद मेरे जन्म-तिथि के दिन गार्टैंड मुस्कराती हुई कोमल स्वर में बोली—प्राणवल्लभ, मेरे पास और कुछ नहीं है। यह घड़ी तुम्हें मैं उपहार में देती हूँ। तीन महीने के बाद उसकी जन्म-तिथि आई। मैंने फिर उसे घड़ी उपहार में दी। कुछ दिन के बाद मेरी

जन्म-तिथि के उपलक्ष्य में उसने फिर वह घड़ी मुझे दी। इस प्रकार पच्चीस वर्ष तक जब कभी उपहार देने का अवसर आता, एक दूसरे को घड़ी उपहार में दिया करते। प्रत्येक बार दोनों घड़ी पाकर अनुपम आनन्द का उपभोग करते। मुझे जान पड़ता है कि कोई बहुमूल्य उपहार पाने पर भी इतना आनन्द और तृप्ति न होती। हम लोग जानते कि यह घड़ी हम दोनों की है।

"महोदय, मैं यह जानता हूँ कि आप यह जानने के लिए व्यग्र होते होंगे कि फिर यह घड़ी यहाँ आई कैसे? लेकिन कारण सुन लेने पर आपकी व्यग्रता न रहेगी। एक बार गार्टेंड बीमार हुई, बहुत ख़राब बीमारी थी। हमारे पास जो कुछ था वह चिकित्सा में समाप्त हो गया। लेकिन रोग ने पिंड न छोड़ा। मैं हताश हो आँसू गिराते हुए गार्टेंड की रोगशय्या के पास बैठा हुआ था। औषधि या पथ्य के जुटाने के लिए मेरे पास एक पैसा भी न था।

"मेरे सामने रक्खी हुई घड़ी टिक टिक कर रही थी। तुरन्त ही मेरे दिल में यह बात आई कि इसे बन्धक रखने से दवा और पथ्य का प्रबन्ध हो सकता है। मैंने अधिक सोच-विचार करना ठीक न समझा। उस समय घड़ी गार्टेंड के अधिकार में थी। लेकिन दूसरा उपाय न था। मैं उसे लेकर दूकान के पास तीन बार जाकर ठहर गया। दूकान में प्रवेश करने की मुझमें हिम्मत न होती थी। सचमुच मेरी छाती फटी जाती थी। अन्त में चालीस फ़्रांक लेकर घड़ी बंधक रख दी। मेरी स्त्री की तबीयत सँभल चली। इसके बाद जब उसे इस घटना की ख़बर लगी, उस समय का दृश्य मैं भूल नहीं सकता। क्रोध से अधीर होकर उसने कहा—बल्कि मैं मर गई होती। उसे छाती से लगा कर मैंने कहा—तुम्हीं बताओ, मेरी दशा क्या होती? उसने कुछ देर तक आँसू गिराये। मैं भी आँसू न रोक सका। मेरे पिता ने जिस प्रकार कोमल स्वर में कहा था, वैसे मैंने नरम स्वर में कहा—प्रिये, कोई चिन्ता की बात नहीं। अब तुम अच्छी हो चलीं। मैं दिन-रात परिश्रम करके तुम्हारी घड़ी एक दिन ला दूँगा। उसने पूछा—कितने पर बंधक रक्खा है? मैंने कहा—चालीस फ़्रांक पर! रुपये की संख्या सुनकर वह सहम गई। वह जानती थी कि इतने रुपयों का इकट्ठा होना कठिन है। तो भी मैंने दृढ़ स्वर में कहा—चाहे जो हो, मैं प्राणपण से परिश्रम करके घड़ी ला दूँगा।

"मैंने प्रतिज्ञानुसार दिन-रात परिश्रम किया है किन्तु अभी तक घड़ी बंधक से न छुड़ा सका। १५ वर्ष हुए, मैंने जो रुपया लिया था, उससे पाँचगुना सूद था है। सूदख़ोर ग़रीबों का रक्त किस तरह चूसते हैं, इसका मुझे अच्छी तरह अनुभव हो गया है। कहीं घड़ी बेच न दी जाय, इसके लिए मैंने अपनी वार्षिक आय का बहुत सा अंश महाजन को दिया है, तो भी उसका कर्ज़ न चुका सका। आज भी पचास फ़्रांक दिये बिना घड़ी न पा सकूँगा।

"बहुत कम ख़र्च करके मितव्ययिता की हद करने पर मैं कुछ न कर सका। कभी रोग में रुपया ख़र्च हो जाता था और कभी कभी बैठे रह कर खाना पड़ता था। कभी तो महँगी के कारण समय समय पर अधिक ख़र्च पड़ जाता था। इसके अतिरिक्त पड़ोसी जब-तब रुपये उधार ले लिया करते थे, किन्तु वे रुपये आज तक मुझे न मिले। आज से तीन महीने पहले मैंने गिनकर देखा कि पाँच फ़्रांक और होने पर घड़ी वापस ला सकूँगा। गार्टेंड ने तो आशा ही छोड़ दी थी। इतने में भगवान् की नज़र हुई। एक चीज़ नक़ल करने को मिली। पिछली तीन रातें जाग कर मैंने वह काम किया है। आज सवेरे गार्टेंड ने पचास फ़्रांक गिनकर मेरे हाथ में दिये।

"इतने रुपये पाने पर भी मेरे मन में आशङ्का हो रही थी कि समय पर पहुँच सकूँगा या नहीं। लेकिन भगवान् की असीम दया है कि अब भी समय है। पन्द्रह वर्षों से मैं घड़ी के बिना हूँ। आप समझ गये होंगे कि वह मुझे इतनी प्रिय क्यों है। लड़कपन में जिसके मधुर शब्द पर मुग्ध रहता था, बहुत दिन के बाद उसके मधुर शब्द को सुनकर अपने जीवन को सार्थक करूँगा!

"गार्टेंड जिस समय यह शुभ संवाद सुनेगी, उस समय उसे क्या ही आनन्द मिलेगा। वह मेरे साथ आई है।

मगर वह यहाँ अन्दर नहीं आने पाई है। कितनी उत्सुकता से वह बाहर इन्तज़ार कर रही है, यह मैं ही जानता हूँ।

"यदि घड़ी बिक गई होती तो संभवतः मैं इस कष्ट को सहन न कर सकता। लेकिन वह डर अब न रहा। अब घड़ी छुड़ा कर गार्टेंड के हाथ में दूँगा।"

वृद्ध ने अँगुली के इशारे से बतलाया, यही वह घड़ी है! सिलसेड ने देखा कि नीलाम करनेवाले ने सोने की एक पुरानी घड़ी हाथ में ली; उसने हाँक लगाई—"पैंतालिस फ़्रांक पर एक सोने की घड़ी! पैंतालिस फ़्रांक!"

वृद्ध बोला—छियालिस फ़्रांक!

कई क्षण बीत गये, कोई अधिक दाम न बोला। नीलाम करनेवाला हाथ बढ़ा कर वृद्ध को घड़ी देने लगा। बुड्ढे ने हाथ पसार दिया। लेकिन बीच में एक दूसरा आदमी नीलाम करनेवाले के हाथ से घड़ी लेकर देखने-भालने लगा। वह एक सूदख़ोर यहूदी था। वह बोला, ख़ैर; कुछ ख़राब नहीं है। ऐसी चीज़ लोग ख़रीदते ही हैं। मैं सैंतालिस फ़्रांक दूँगा।

यहूदी ने नीलाम करनेवाले के हाथ में फिर घड़ी दे दी।

नवागत के प्रति क्रोधभरी दृष्टि डाल कर वृद्ध ने शान्त स्वर में कहा—अड़तालिस फ़्रांक।

यहूदी बोला—उञ्चास फ़्रांक!

हाथ बढ़ाकर बुड्ढा बोला—पचास फ़्रांक!

क्षण भर तक सन्नाटा रहा।

फिर यहूदी गरज कर बोला—मूर्ख, मैं इसे छोड़ूँगा नहीं। मैं इक्यावन फ़्रांक दूँगा।

अभागे बुड्ढे का चेहरा कैसा विवर्ण हो गया, वर्णन नहीं किया जा सकता। उसकी आँखों के देखने से यह पता नहीं चलता था कि उसके शरीर में प्राण हैं।

दीर्घ निःश्वास छोड़ कर उसने भग्न स्वर में कहा—मेरे पास पचास फ़्रांक हैं ही।

नीलाम करनेवाले ने चिल्ला कर कहा—इक्यावन फ़्रांक, सोने की घड़ी इक्यावन फ़्रांक पर जा रही है।

यहूदी ने घबराहट के साथ कहा—और कोई न बोलेगा जल्दी मुझे दीजिए। अब यह मेरी हो गई।

वृद्ध को तब मानों होश आया। उसने उन्मत्त की तरह कहा—बावन फ़्रांक।

यहूदी ने झट से कहा—तिरपन फ़्रांक।

दृढ़ कण्ठ से वृद्ध बोला—चौवन फ़्रांक।

मीठे स्वर में उसने सिलसेड से कहा कि मेरे पास इतने रुपये नहीं हैं।

यहूदी कुछ रुक कर बोला—पचपन फ़्रांक।

सिलसेड के कान के पास मुँह ले जाकर वृद्ध ने कातर स्वर में कहा—तो बिदा होता हूँ! नेत्रों के आँसू छिपाने की गरज़ से वह कमरे से बाहर जाने को हुआ।

अकस्मात् उस स्थान में एक नये कंठ-स्वर की आवाज़ हुई—साठ फ़्रांक।

यह कण्ठ-स्वर सिलसेड का था। वैसे ही दृढ़ स्वर में उस युवक ने कहा—मैं साठ फ़्रांक दूँगा।

विस्मित होकर वृद्ध रुक कर खड़ा हो गया। यहूदी विचित्र तरह से मुँह बनाकर बोला, "पैंसठ"।

सिलसेड ने कहा,—"सत्तर"।

कुछ इधर-उधर करके यहूदी ने कहा—पचहत्तर।

सिलसेड ने उसका मुँह बिलकुल बंद करने के अभिप्राय से कहा—नब्बे।

उसका उद्देश सफल हुआ। यहूदी की और बोलने की हिम्मत न हुई। घड़ी उसके हाथ आई।

उत्तेजित हो तिरस्कारपूर्ण स्वर में वृद्ध बोला—यह आपका ही काम है! आपको भला जानकर मैंने घड़ी की कहानी कही और आपने ही अन्त में मेरी घड़ी ले ली। मैंने स्वप्न में भी यह नहीं सोचा था कि आप ऐसा काम करेंगे।

इसके उत्तर में वृद्ध के क्षीण हाथ में घड़ी देकर सिलसेड भीड़ में मिल गया। वृद्ध भौचक्का सा हो उसकी तरफ़ अभी आँख फेरने भी न पाया था कि वह ग़ायब हो गया।

सड़क पर आते समय सिलसेड ने एक बुढ़िया को देखा, जिसे उसने कभी नहीं देखा था। किन्तु उसने अनुमान

किया कि यही गार्टेंड है। पास में एक दरवाज़े की आड़ में छिपकर दम्पति के मिलन-दृश्य को देखने के अभिप्राय से वह खड़ा रहा। उसकी निजी घड़ी उसके हाथ से जाती रही, इसकी उसे चिन्ता न थी।

थोड़ी ही देर के बाद वृद्ध हाथ में घड़ी लिये हुए रमणी के सामने आया। स्त्री ने दौड़ते हुए जाकर उसे ले लिया। आँसुओं से घड़ी भीग गई। वृद्ध उत्साह से भर कर उसे नीलाम-घर की कहानी सुनाने लगा।

दम्पति के आनन्द को देखकर सिलसेड को संकोच मालूम हुआ। वृद्ध और वृद्धा ने कई बार अपने साथ उपकार करनेवाले को ढूँढ़ते हुए इधर-उधर चारों तरफ़ देखा; किन्तु सिलसेड को न देखने पर एक दूसरे को बाहुपाश से बद्ध कर ख़ुशी ख़ुशी चलते बने।

सन्तोष और आनन्द से भर कर सिलसेड मुझसे भेंट करने के लिए आया।

मैंने उससे पूछा—तुम्हारी घड़ी क्या हुई?

"मैंने उसे सदा के लिए तिलाञ्जलि दे दी।"

"तो तुम इतने प्रसन्नचित्त क्यों दिखलाई पड़ते हो?"

"आज अपनी निजी घड़ी वापस पाकर भी मुझे इतना आनन्द न होता।"

"रुपये क्या किये?"

"आज मैंने एक बहुत बढ़िया चीज़ ख़रीदी है।"

"तो मेरी दावत का क्या होगा? तुम बड़े मतलबी हो।"

"अब भी मेरे पास ३० फ़्रांक हैं। चलो, होटल में चलें।"

होटल में आकर सिलसेड ने संक्षेप में सारी घटना कह सुनाई। उसकी बात सुनकर मुझे भी बड़ा आनन्द हुआ। बोतलवासिनी देवी को गिलास में ढाल कर दोनों गद्गद कण्ठ से बोले, गार्टेंड और उनके स्वामी का स्वास्थ्य पान किया जाय*।

—गणेश पाण्डेय

* चार्ल्स डेरली लिखित फ़्रेंच कहानी का रूपान्तर।

# भारतीय राष्ट्रनीति के मूलसूत्र

[ भारतीय राष्ट्रनीति का सच्चा स्वरूप क्या है, इसी की दार्शनिक विवेचना इस लेख में की गई है। इसके लेखक तपस्वी अरविन्द हैं। इसे आपने भारतीय संस्कृति पर योरपीय विद्वानों-द्वारा किये गये आक्षेपों के खण्डन-स्वरूप लिखा है। लेख मननकरने योग्य है। ]

अन्यान्य देशों की भाँति भारत के आदिम क्षुद्र जनसंघ स्वतः स्फूर्त प्राणशक्ति के प्रथम स्तर में विकसित हुए थे। उन्होंने स्वाभाविक स्वच्छन्दभाव से प्राणशक्ति के विकास और आदर्श को ठीक किया था, प्राण की सहजोपलब्धि और स्वभाव के अनुसार समष्टिगत जीवन को गठित किया था, सामाजिक और राजनैतिक संस्थाओं का विकास किया था। आपस के मेलजोल से उनमें संस्कृतिमूलक और सामाजिक ऐक्य ज्यों ज्यों क्रमशः बढ़ता गया और वे बृहत्तर होते गये, त्यों त्यों उन्होंने सार्वजनिक भाव, सार्वजनिक आधार और साधारण गठन-प्रणाली विकसित की। छोटी छोटी बातों में उनको स्वाधीन भाव और वैचित्र्य विकास के लिए यथेष्ट स्थान था। किसी प्रकार की कड़ी एकरूपता की कोई आवश्यकता नहीं थी; उनके अन्दर जो समभाव और समप्राण-प्रेरणा थी वह एक साधारण ऐक्यनीति स्थापित करने के लिए यथेष्ट थे। और उस समय भी जब बृहत् राज्य और साम्राज्य गठित हुए थे, ये क्षुद्र राज्य, गणतन्त्र और जातियों की विशिष्ट संस्थायें यथासम्भव क़ायम रखकर अंगीभूत कर ली गई थीं, विनष्ट नहीं की गईं और न नूतन सामाजिक-राजनैतिक संगठन का द्वार उनके लिए बन्द किया गया। जाति के स्वाभाविक क्रमविकास में जो नहीं टिक सकीं अथवा जिनकी आवश्यकता नहीं रही वे संस्थायें स्वयं गिर पड़ीं और अव्यवहार्य हो गईं। जो कोई देशकाल के अनुकूल नूतन व्यवस्था बनाकर अपने को क़ायम रख सका वह टिकने पाया, भारतीय जाति की विशिष्ट सत्ता और प्रकृति की मनोगत और प्राणगत नीति के साथ जिन चीज़ों का निबिड़ सामञ्जस्य था उनको भारत के स्थायी समाज और राष्ट्र-तन्त्र में स्थान दिया गया।

उन्नतिशील क्रमविकास के युग में भी जीवन की स्वतः स्फूर्त नीति सम्मानित रही। समाजनीति, अर्थनीति और राजनीति—धर्मशास्त्र और अर्थशास्त्र के विषय में भारत के चिन्ताशील व्यक्तियों ने अव्यावहारिक तर्कबुद्धि के द्वारा समाज और राष्ट्र के सम्बन्ध में विभिन्न आदर्शों और प्रणालियों की रचना करने में, विभिन्न सिद्धान्तों के गढ़ने में अपने को लिप्त नहीं किया था, बरन समष्टिगत मन और प्राणों के द्वारा समष्टिगत जीवन की जो संस्थायें और धारा पहले विकसित हुई थीं उन सबको व्यावहारिक बुद्धि के द्वारा समझना और नियन्त्रित करना चाहते

थे; वे उनके प्रारम्भिक अवयवों को नष्ट नहीं करते थे, बरन उनके विकास, दृढ़ता और सामञ्जस्य के लिए प्रयत्न करते थे। जिस किसी नूतन अवयव, नूतन-भाव वा आदर्श के ग्रहण करने की आवश्यकता होती थी वह परिवर्तन या परिवर्द्धन के रूप में ग्रहण किया जाता था, किन्तु ध्वंसात्मक अथवा विप्लवकारिणी नीति का अनुसरण नहीं किया जाता था। इसी भाव से पूर्वावस्था का परिवर्तन करके पूर्ण विकसित राज्यतन्त्र का आविर्भाव हुआ था। राजा या सम्राट् की अधीनता में विद्यमान संस्थाओं को अंगीभूत करके यह परिवर्तन किया गया था। राजतन्त्र अथवा साम्राज्य के अधीन होने से बहुतों की मर्य्यादा और स्वरूप का परिवर्तन हुआ था, किन्तु यथासम्भव वे लोप नहीं होने पाये। फलस्वरूप हम लोग भारत में योरप की भाँति बुद्धि-रचित आदर्शों के अनुसार राजनैतिक प्रगति अथवा विप्लव के द्वारा परीक्षण नहीं देख पाते हैं। इस प्रकार की प्रगति और वैप्लविक परीक्षण प्राचीन और आधुनिक योरप का विशेष लक्षण है। भारतीय मन और प्राणों के स्वाभाविक अभिव्यक्ति-स्वरूप, स्वधर्म के सुष्ठु प्रकाश-स्वरूप, प्राचीन सृष्टियों के प्रति गम्भीर श्रद्धा भारतीय मनोभाव में अत्यंत शक्तिशाली अंश था; यह रक्षणशील प्रवृत्ति अत्युच्च बुद्धिविकास के युग में भी विचलित नहीं हुई, बरन अधिक दृढ़ता के साथ प्रतिष्ठित हुई। प्रतिष्ठित व्यवस्था की मूलनीति की रक्षा करके, समाज और राष्ट्र के पूर्ववर्त्ती आदर्शों का अनुसरण करके, धीरे धीरे आचार-व्यवहार और संस्थाओं का क्रम-विकास—यही प्रगति का एक-मात्र स्वीकारयोग्य और सम्भव पथ था। पक्षान्तर में जातीय जीवन की स्वाभाविक गति के बदले में यान्त्रिक रीति को स्थापित करना—जो योरपीय सभ्यता का एक रोग है—भारत की राष्ट्रनीति कभी इस अशुभकर अवस्था को नहीं पहुँची। योरप की इस यांत्रिक रीति की चरम परिणति विकटाकार कृत्रिम नौकरशाही और धापारशाही राष्ट्र में है। आदर्श-रचयित्री बुद्धि भारत की राष्ट्रनीति में नहीं पाई जाती है, किन्तु यौक्तिक बुद्धि जिस कृत्रिम यांत्रिकता की सृष्टि करती है उसकी भी असुविधायें भारतीय राष्ट्र में नहीं थीं।

अन्तर्दृष्टि के द्वारा साक्षात् ज्ञान प्राप्त करना यह सर्वदा भारतीय मन का गंभीर स्वभाव रहा है, यहाँ तक कि जिस समय भारत यौक्तिक बुद्धि के अनुशीलन में अतिमात्रा में व्यस्त था उस समय भी भारतीय मन का यह स्वभाव अक्षुण्ण रहा। भारत की राजनैतिक और सामाजिक चिन्ताधारा में आत्मा और प्राणों की साक्षात् उपलब्धियों को मिलाने की चेष्टा की गई थी; केवल इनके बीच में सामञ्जस्य स्थापित करने के लिए बुद्धि की सहायता ली गई थी। भारतीय मन ने जीवन के निश्चित स्थायी वास्तव तथ्यों के ऊपर अपने को दृढ़ भाव से प्रतिष्ठित करना चाहा है एवं आदर्शवाद के लिए बुद्धि के ऊपर निर्भर न करके आत्मा की आलोक-प्रेरणा, उच्च अनुभूति और उपलब्धि के ऊपर निर्भर किया है; बुद्धि ने प्राणों और आत्मा के स्थान को ग्रहण नहीं किया था, बरन उनको सहायता की थी—प्रकृत और दोषहीन सृष्टि केवल आत्मा और प्राण के द्वारा ही हो सकती है। भारत के आध्यात्मिक मन ने जीवन को आत्मा की अभिव्यक्ति समझा था; समाज सृष्टिकर्त्ता ब्रह्म का शरीर था, जनता समष्टिगत ब्रह्म का प्राणशरीर था, समष्टि-नारायण था, जिस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति व्यष्टिगत ब्रह्म, पृथक् जीव व्यष्टि नारायण था। राजा भगवान् का सजीवन प्रतिनिधि था और समाज की अन्य अन्य श्रेणियाँ समष्टिगत आत्मा की विभिन्न स्वाभाविक शक्तियाँ "प्रकृतयः" थीं। अतएव लोग स्वीकृत रीतिनीति, संस्था, आचार-व्यवहार समाज-शरीर और राष्ट्रशरीर के प्रति अंश की गठनप्रणाली इन सबको लोक-पालनीय समझ कर केवल अनुसरण ही नहीं करते थे, बरन इन सबको पवित्रता की दृष्टि से देखते थे।

प्राचीन भारतीय लोगों ने समझ रक्खा था कि यदि प्रत्येक व्यक्ति यथार्थभाव से स्वधर्म का

अनुष्ठान करे, अपनी प्रकृति और अपनी श्रेणी वा जाति की प्रकृति की सत्यधारा वा आदर्श का अनुसरण करे एवं उसी तौर पर यदि प्रत्येक श्रेणी प्रत्येक संघबद्ध समष्टि-जीवन भी अपने धर्म्म और अपनी प्रकृति का अनुसरण करे तो विश्वजगत् की सुश्रृङ्खला की जैसी रक्षा होगी, मानवजीवन की शृङ्खला की भी वैसी ही रक्षा होगी। परिवार, कुल, जाति, श्रेणी, सामाजिक, आध्यात्मिक, श्रमिक वा अन्यविध सङ्घ, जन-समूह यही सब जीवित समष्टिसत्ता हैं, यही सब अपने अपने धर्म्म का विकास करते हैं और उसी धर्म्म का अनुसरण करने पर ही उनकी रक्षा है, सुस्थ-भाव से टिके रहना और सुचारु-भाव से कर्म्म करना उनके लिए सम्भव है। इसके सिवा पद-मर्य्यादा के द्वारा और अन्य के सम्बन्ध के द्वारा सृष्ट कर्त्तव्य धर्म्म है, देश-काल की अवस्था के अनुकूल युग-धर्म्म है, सार्वजनिक धर्म नैतिक धर्म्म है। प्राचीन धारणा यह थी कि व्यक्ति-गतभाव से और समष्टिगत-भाव से मनुष्य की अवस्था जव सम्पूर्ण अविकृत और निर्दोष होती है ( यही काल्पनिक सत्ययुग वा स्वर्णयुग है) तब और कोई राजनैतिक शासनतन्त्र वा समाज के कृत्रिम अनुष्ठान का प्रयोजन नहीं होता; क्योंकि उस समय सभी अपनी अपनी प्रबुद्ध आत्मा और भागवत-अधिष्ठित सत्ता के सत्य के अनुसार स्वच्छन्द-भाव से जीवन-यापन करते हैं और इसी कारण आप ही आप आभ्यन्तरीय दिव्य धर्म्म का अनुसरण करते हैं। अतएव आत्मनियन्त्रणशील व्यक्ति एवं आत्मनियन्त्रणशील समाज अपनी अपनी सत्ता के यथार्थ और स्वच्छन्द धर्म्म के अनुसार जीवन यापन करें, यही आदर्श है। किन्तु वास्तव में मनुष्य की जो अवस्था है उसमें उसकी प्रकृति व्यक्तिगत और सामाजिक धर्म्म की विकृति और विच्युति के अधीन है, अज्ञान और व्यभिचारी है। इस अवस्था में समाज के स्वाभाविक जीवन के ऊपर राज्य, राज-शक्ति, राजा वा शासनतन्त्र का दबाव डालने का प्रयोजन है। यह राजशक्ति समाज के जीवन में अनुचित हस्तक्षेप नहीं करेगी, समाज जीवन को प्रधानतः स्वाभाविक नियम और रीति-नीति के अनुसार विकसित होने देना होगा। राजशक्ति केवल यह देखेगी कि समाज ठीक पथ पर चल रहा है या नहीं, धर्म सतेज है और पालित हो रहा है या नहीं। राज-शक्ति धर्म्म के विरुद्ध आचरण के लिए शास्ति करेगी, दमन करेगी, यथासम्भव अधर्म्माचरण निवारण करेगी और इसी भाव से समाज को अपने ही पथ पर ठीक ठीक चलने में सहायता करेगी। धर्म्म जब और भी अधिक विकृत अवस्था में आकर उपस्थित होता है तब समग्र समाज-जीवन को बाह्य वा लिखित विधि-निषेध के शास्त्र-द्वारा नियन्त्रित करने का प्रयोजन होता है, शास्त्रकर्त्ता का प्रयोजन होता है। किन्तु क़ानून वा शास्त्र का प्रणयन करना राजा वा राज-शक्ति का काम नहीं था, राजशक्ति का काम केवल शास्त्र और क़ानून का प्रयोग करना था। समाज और धर्म्म के सम्बन्ध में विधि-विधान निर्द्धारण करनेवाले ऋषि थे और उन सबकी रक्षा और व्याख्या करनेवाले ब्राह्मण थे। वे विधिविधान (लिखित वा अलिखित जो हों) राजशक्ति वा व्यवस्थापक के द्वारा सृष्ट वा उद्भावित होनेवाली चीजें नहीं थीं। वे पूर्व ही से हैं। केवल उनके स्वरूप का वर्णन और उनकी व्याख्या की जाती थी, अथवा समाज के जीवन और चेतना के अन्दर प्रतिष्ठित रीति-नीति से स्वभावतः उनकी उत्पत्ति कैसे हुई, यही दिखला दिया जाता था। इस प्रकार कृत्रिमता और गतानुगतिकता की वृद्धि तो होगी ही और अन्त में ऐसी अधम अवस्था आवेगी कि समाज द्वन्द्व, अनाचार और विश्रृङ्खला से पूर्ण हो जायगा और धर्म्म लयप्राप्त होगा ( इसी को कलियुग कहते हैं )। इस प्रकार चरम ग्लानि की अवस्था जब उपस्थित होती है तब विप्लव की रक्त-रेखा के अन्दर गुजर कर मानवात्मा अपने को फिर से लाभ करती है और नई रीति से आत्म-प्रकाश करने के लिए अग्रसर होती है।

अतएव राजशक्ति का, राजा, राजपरिषद् और राष्ट्र के अन्य अन्य शासक विभागों का प्रधान काम था समाज जीवन के स्वाभाविक विकास को अक्षुण्ण रखने में सहायता करना; राजशक्ति धर्म्म का पालक और प्रयोगकर्त्ता थी। मनुष्य के जीवनधारण और विकास के सकल प्रयोजन को सिद्ध करना, भोग-सुख पर मनुष्य का जो स्वाभाविक दावा है उसे यथार्थ भाव से पूर्ण करना—यह समाज के कार्य्य में ही अन्तर्भुक्त था। परन्तु ये सब प्रयोजन और भोग नियमित मात्रा में थे, ये सब नैतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक धर्म्म के अनुवर्ती थे। समाज-राष्ट्र-शरीर के सकल अवयवों और सकल अङ्गों के अपने अपने धर्म्म थे, और वे सब धर्म्म उनके स्वभाव, उनके स्थान और समग्र समाज-शरीर के साथ उनके सम्बन्ध के द्वारा निर्णीत होते थे, जिससे प्रत्येक स्वाधीन और यथार्थ भाव से अपना अपना धर्म्म अनुसरण कर सके और इसके लिए सुयोग और सुविधा कर देना पड़ता था, अपनी सीमा के अन्दर अपने अपने स्वभाव के अनुसार कर्म्म करने के लिए सबको स्वाधीनता देनी पड़ती थी। किन्तु साथ साथ यह भी देखना पड़ता था कि वे सब अपनी सीमा अतिक्रम न करें, दूसरे की सीमा में अनधिकार प्रवेश न करें, अपने अपने सत्य पथ से विच्युत न हों, यथोचित मात्रा को छोड़ न जायँ। सर्वोच्च राजशक्ति का, सपरिषद् राजा का, यही कार्य्य था। जाति, धर्म्मसम्प्रदाय, श्रमिकसङ्घ, ग्राम, नगर प्रभति की स्वाधीन क्रिया में हस्तक्षेप करना वा देश के जीवन के साथ निगूढ़ रूप से संश्लिष्ट आचार-व्यवहार का व्यतिक्रम करना वा उनके अधिकारों को नष्ट करना राजशक्ति का कार्य्य नहीं था। क्योंकि यथार्थभाव से समाज-धर्म्म का पालन करने के निमित्त ये अपरिहार्य्य समझे जाते थे और इसी कारण इन सभी का जन्मगत अधिकार स्वीकार किया जाता था। राजशक्ति को केवल यह करना पड़ता था—सबमें सामञ्जस्य स्थापना करना होता था, सब पर साधारण भाव से शासन रखना होता था, बाहर के आक्रमण वा भीतर के विप्लव से समाज-जीवन की रक्षा करनी पड़ती थी, दुष्कर्म और अशान्ति का दमन करना पड़ता था, समाज के और शिल्पविषयक कल्याण का पथ खुला रखने के लिए साधारण भाव से मदद देना और इन्तिजाम करना पड़ता था। सब बातों की सुविधा है या नहीं, यह देखना पड़ता था, और यह सब करने के लिए राजा को उन सब शक्तियों का व्यवहार करना पड़ता था जो दूसरों में नहीं थीं।

अतएव हम लोग देखते हैं कि भारत की राष्ट्र-व्यवस्था साम्प्रदायिक स्वतन्त्रता और स्वाधीनता के वाला एक जटिल अनुष्ठान था। प्रत्येक सङ्घ वा सम्प्रदाय का अपना स्वाभाविक जीवन समाज के अन्तर्गत था, प्रत्येक अपने जीवन और कर्म्म का परिचालन ख़ुद ही करता था, अपने अपने क्षेत्र में स्वाभाविक सीमा के द्वारा प्रत्येक दूसरे से पृथक् था, किन्तु समग्र के साथ सभी सुपरिज्ञात सम्बन्ध में आबद्ध थे। साधारण समाज जीवन के कर्त्तव्य और अधिकार समूह में सभी भागीदार थे। प्रत्येक अपने नियम-क़ानून प्रयोग करते थे, अपने क्षेत्र में अपना कार्य ख़ुद ही परिचालित करते थे, किन्तु सर्वसाधारण के स्वार्थ की बातों पर दूसरों के साथ मिलकर विचार करते थे। राजा वा सम्राट् की साधारण सभा में अपनी अपनी योग्यता वा प्रयोजनीयता के अनुसार सभी के प्रतिनिधि रहते थे। राज्य, राजा वा सर्वोच्च राजशक्ति का सामञ्जस्य-साधन, साधारण नियन्त्रण और दक्षता-साधन का यन्त्र था। उसका प्रभुत्व सब पर था, किन्तु वही एकमात्र सर्वेसर्वा नहीं थी, क्योंकि उसके सब अधिकार और क्षमता धर्म और क़ानून से सीमित थीं और जनगण की इच्छा के अधीन थीं; और भीतर के समस्त व्यापार के परिचालन के लिए वह समाज—राष्ट्र—शरीर के और और अंशों के सहित एक भागीदार मात्र थी।

भारतीय राष्ट्र-व्यवस्था का सिद्धान्त एवं मूल-नीति थी साम्प्रदायिक स्वाधीनता और स्वातन्त्र्य का जटिल अनुष्ठान; सबके ऊपर सामञ्जस्य-साधन के लिए एक कर्त्ता, राजपुरुष और राज-शक्ति; उसकी यथेष्ट कार्यकर (किन्तु यथा-योग्य व्यवहार में सीमाबद्ध) क्षमता, पद-मर्य्यादा; राज-शक्ति दूसरों के ऊपर शासन करती थी और साथ ही साथ दूसरों के द्वारा शासित होती थी, सब विभागों में उन्हें क्रिया-रूप में भागीदार स्वीकार करती थी, समाज-जीवन के नियन्त्रण और परि-चालन में उन्हें भी भाग देती थीं; एवं राजा, जन-साधारण और उसके अन्तर्गत समुदाय, सम्प्रदाय और सङ्घ सभी समानभाव से धर्म्म की रक्षा करने के लिए वाध्य थे, धर्म्म की शृङ्खला के द्वारा नियन्त्रित होते थे। इसके अतिरिक्त समाज-जीवन के अर्थ-सम्बन्धी और राष्ट्र-सम्बन्धी कार्य धर्म्म के केवल एक अंश-मात्र थे—उसके ये अंश अन्य अन्य अंशों के सहित समाज की उच्चतर शिक्षा-दीक्षा के परिचायक लक्ष्य के साथ अच्छेद्य भाव से अंकित थे। राजनीति और अर्थ-नीति के नैतिक आदर्श का प्रभाव था। राजा और उसके मन्त्रियों, मन्त्रणा-परिषद् और साधारण राजसभा, प्रत्येक व्यक्ति, समाज के अन्तर्गत प्रत्येक स्वतन्त्र सङ्घ—सभी को नीति का विधान मानकर चलना पड़ता था। प्रतिनिधि-निर्वाचन में किसको वोट देना होगा, कौन व्यक्ति मन्त्री वा राजकर्म्मचारी होने के योग्य है, इन सबका विचार करते समय नैतिक चरित्र और उच्च शिक्षा-दीक्षा की बात ध्यान में रक्खी जाती थी; आर्य्यजाति के कार्य्यपरिचालन में जो लोग प्रभुत्व करेंगे उन्हें चरित्रवान् और शिक्षा-दीक्षा में पूर्ण होना चाहिए। राजा और जनसाधारण के समग्र जीवन के पीछे भी धर्म्मभाव और धर्म्म प्रचा-रकों का साहाय्य प्राप्त था। यद्यपि समाज के प्रत्येक अङ्ग और अंश के विशिष्ट विकास के लिए अपने प्रयोजन की परवा नहीं की जाती थी, तथापि समाज-जीवन ही चरम लक्ष्य नहीं माना जाता था; किन्तु सब अंशों के सहित समग्र समाज-प्रतिष्ठान ही मनुष्य के मन और आत्मा की शिक्षा और विकास का महान् क्षेत्र समझा जाता था—इसी क्षेत्र में प्राकृत जीवन का विकास करके मनुष्य क्रमशः अध्यात्म जीवन को प्राप्त होगा।

—अनिलवरण राय

---

# सन्देश

( १ )

सुमन ! तुम, सुन लो सुख-सन्देश ।
विश्व-वन्द्य यह वर वक्षस्थल,—
है तव सिंहासन सुख-संबल ।
प्रतिपल प्रसरित किये दृगञ्चल,
लखता नभ अनिमेष ॥

( २ )

भव्य भविष्य भरे भव-भूधर,
निर्झर के नयनों में सत्वर ।
अंबर के अप्रतिम शुभाक्षर,
लिखते हैं सविशेष ॥

( ३ )

अलि-कुल-शोभित सर, सुर-संकुल,
मन्द सुरभि मलयानिल, मंजुल—
वीचि-विचुम्बित जल श्रद्धाञ्जलि—
ले लखते हृदयेश ॥

( ४ )

शैशव शिशिर समाकुल शुक पिक,
ऋतुपति के गुणगान अलौकिक ।
करते सुनते प्रिय प्राणाधिक,
पावन परम परेश ॥

( ५ )

रवि शशि तारे गगन दिशायें,
वन उपवन सागर सरितायें ।
हरित पल्लवित तरु-शाखायें,
प्रिय, तव हैं परिवेष ॥

( ६ )

स्वागत-हेतु विभोर मोद भर,
वनदेवियाँ लिये माला कर ।
दिनमणि ज्योति-मुकुटमणि सिर धर,
प्रस्तुत हैं सर्वेश

( ७ )

कृपया सत्वर ध्यान इधर दो,
अधिक नहीं, बस इतना कर दो।
सुखसमृद्धि सबमें यों भर दो,
जग-जल यथा जलेश॥

( ८ )

किन्तु कंटकाकीर्ण कठिन पथ,
लख मत होना शिथिलमनोरथ।
शान्ति-सिरोही लिये यथातथ,
पग रखना प्राणेश॥

( ९ )

प्रकृति प्रपंची प्रचुर प्रलोभन,—
देकर डालेगी मन-उलझन।
तदपि विचलना नहीं मनोधन,
रखना उर-उद्देश॥

( १० )

क्रूर काल का कलुषित कर्तन,
दुख-सुख-निधन नियति-परिवर्तन।
दृग्गोचर होगा यह नर्तन,
किन्तु न हो भय-लेश॥

( ११ )

पावन-प्रेम-पयोधि-परिधि में,
नयन-निमेष निहित नय-निधि में।
विव्रत विजय-विलोकन-विधि में,
ब्रह्मा विष्णु महेश॥

—रामचरित उपाध्याय

# कंजूस का धन

दीनबन्धु शाह ने खूब धन एकत्रित कर लिया था। कोई यह नहीं कह सकता था कि उसके पास कितना धन है। क्योंकि वह किसी से कुछ बताता नहीं था। पर अपना अपना अनुमान सभी करते थे। कुछ लोग उसे लखपती समझते थे और कुछ यह कहते थे कि उस बुड्ढे कंजूस के लिए एक लाख रुपया कोई। चीज़ ही नहीं, वह बीसों गाँव ख़रीद सकता है।

दीनबन्धु के घर में उसकी स्त्री और बेटी के अतिरिक्त और कोई न था। पर वह कंजूस बुड्ढा उन पर भी कुछ ख़र्च करना बुरा समझता था। घर के व्यय के लिए उन्हें वह प्रतिमास कुछ चावल दे देता था और बाज़ार से रोज़ सौदा लाने के लिए दो-तीन पैसे और अपने ऊपर तो वह एक पाई भी ख़र्च करने को तैयार न होता था। सवेरे वह थोड़ा सा चिवड़ा और गुड़ खाकर पानी पी लेता था। शाम को गाँव के मन्दिर के प्रसाद से काम चल जाता था। उसे इस बात का बड़ा दुःख था कि उसकी स्त्री और बेटी में उसके जैसे गुण न थे।

आख़िरकार एक दिन ईश्वर ने उसके ऊपर दया की। उसकी स्त्री का देहान्त हो गया। यह हाल देख कर लड़की को ननिहालवाले लिवा ले गये। दीनबन्धु को स्त्री और पुत्री के वियोग से दुःख तो बहुत हुआ, पर उसने यह सोचकर संतोष किया कि इससे उसका ख़र्च ही कम हो गया। उसने हिसाब लगाया कि ये मा-बेटी साल भर और घर में रहतीं तो कितना खा जातीं? ओह कुछ ठिकाना था।

इस प्रकार कुछ वर्ष बीत गये। पर उसकी बेटी सत्यव्रती घर वापस न आई। प्रतिवर्ष दुर्गा-पूजा के अवसर पर बारह-चौदह आने की एक धोती ख़रीद कर वह उसके भेज देता था। इतना काफ़ी था। वह अपने नाना के यहां रहती थी उसका ब्याह भी उसके नाना के ही घर में हुआ। उन दिनों दीनबन्धु एक मुक़द्दमे में फँसा था, इससे वह बेटी के ब्याह में कोई भाग नहीं ले सका। उसने कोई उपहार आदि भी नहीं भेजा। वर्ष पर वर्ष बीतते गये और दीनबन्धु धन पर धन जोड़ता गया। जब लड़की अपनी ससुराल चली गई तब दीनबन्धु ने पूजा के अवसर पर उसे एक धोती भेजना भी बन्द कर दिया। क्योंकि ख़ाली धोती वहाँ कैसे भेजता? धोती के साथ कुछ फल, कुछ मिठाई ज़रूर चाहिए? परन्तु जिसके घर में स्त्री न हो वह इन सब झंझटों में कैसे पड़ सकता है। इसलिए दीनबन्धु ने यह सब कुछ करना बन्द कर दिया

देखनेवालों को दीनबन्धु का घर करुण दृश्य उपस्थित करने लगा। दीवारों के ऊपर का पलस्तर पहले ही गिर चुका था, अब ईंटें भी एक एक करके गिरने लगीं। घर के आस-पास घास उग आई, छोटी छोटी झाड़ियाँ दिखाई देने लगीं। साँप या बिच्छू पर पैर पड़जाने के भय से लोगों ने दिन डूबने के बाद से उस ओर से निकलना बन्द कर दिया। पर दीनबन्धु को भय नहीं लगता था। वह रात में इस प्रकार घूमता था, मानो अन्धकार का कोई कीड़ा घूम रहा हो। चिराग़ जलाने में बिना कुछ ख़र्च हुए कैसे रहता, इसलिए वह बिना रोशनी के सब काम करता था। उसके रहने के कमरे में कभी कभी

एक धुँधला चिराग़ जला करता था, पर उसका प्रकाश उस स्थान की भयानकता को ही बढ़ाता था। वहाँ जाते हुए चोर भी डरते थे। इस तरह दीनबन्धु को इस खँडहर में अपनी अपार सम्पत्ति के साथ रहने में कोई कठिनाई नहीं मालूम पड़ती थी।

परन्तु प्रारब्ध में जो होता है उससे किसी का पीछा कैसे छूट सकता है। दीनबन्धु को बुरे दिन भी देखने बदे थे। उसकी लड़की सत्यवती विधवा हो गई और उसके नाना-नानी मर चुके थे, इसलिए वह अपने बाप के पास आगई। वह भी अकेली नहीं, अपने साथ आठ वर्ष के बालक बलई को भी ले आई।

इस बालक को देखते ही दीनबन्धु के होश उड़ गये। उसकी शान्ति भङ्ग करने के लिए यह शैतान का बच्चा कहाँ से आगया? सत्यवती उसकी बेटी थी और किसी समय उसके ऊपर रुपया ख़र्च करने का वह आदी भी था। इसलिए सत्यवती से उसे उतनी घबराहट नहीं हुई। उसने सोचा कि अब पहले की अपेक्षा उसके लिए कम ख़र्च करना पड़ेगा। क्योंकि वह विधवा थी और विधवायें एक ही बार खाना खाती हैं, वह भी बिना मांस और मछली का। इसके अतिरिक्त दीनबन्धु बहुत बुड्ढा हो गया था और उसे गठिया आदि रोग घेरे रहते थे। कभी कभी तो वह सारी रात दर्द से चिल्लाता रहता था। प्यास लगने पर वह उठकर पानी भी नहीं ले सकता था। लोगों ने उसे एक नौकर रखने की सलाह दी थी और गाँव में सस्ते नौकर मिल भी सकते थे। पर दीनबन्धु किसी को अपने घर में घुसने नहीं देना चाहता था। किसका विश्वास करे और किसका न करे। यदि वह नौकर उसकी जन्म भर की कमाई लेकर चम्पत हो जाय तो? ऐसे नौकर रखने की अपेक्षा प्यासों मर जाना उसे क़बूल था। पर अपनी बेटी का विश्वास वह कर सकता था। नौकर की अपेक्षा उसकी देखभाल भी वह अच्छी तरह कर सकती थी। और फिर सबसे बड़ी बात तो यह थी कि वह नौकर की अपेक्षा खाना भी कम खायगी। इस दशा में लड़की को वापस आई जानकर उसे ख़ुशी हुई।

घर के आस-पास की कटीली झाड़ियों को पार करके दीनबन्धु अपनी बेटी का स्वागत करने के लिए आगे बढ़ा और बोला—आओ बेटी! ये बुरे दिन देखने के लिए मैं अब तक ज़िन्दा हूँ।

सत्यवती ने कुछ उदासभाव से कहा—पिताजी, आप अच्छी तरह हैं न? जल्दी में मैं अपने आने से पहले आपको चिट्ठी लिखना भूल गई थी।

दीनबन्धु आँसुओं की एक झड़ी का इन्तज़ार कर रहा था और अपनी आँखों को भी गीली करने का प्रयत्न कर रहा था। परन्तु अपनी लड़की का भाव देखकर उसे कुछ आश्चर्य्य हुआ। सत्यवती बिलकुल नहीं रोई। पति की मृत्यु के रंज की अपेक्षा ऐसे बाप के द्वार पर आने की शर्म उसे मारे डालती थी।

दीनबन्धु बोला—बेटी, सड़क पर कब तक खड़ी रहोगी। अन्दर आओ। उस आदमी का हिसाब चुका दो। क्यों? तुम्हारे पास काफ़ी पैसे हैं न?

लड़की ने कहा—हाँ, हैं। बलई, बाहर निकल! गाड़ी के भीतर तू क्या कर रहा है?

बलई एक पोटली लेकर गाड़ी से उतरा। एक टीन का सन्दूक़ और बिस्तर गाड़ीवान ने उठा लिया। लड़के को देखकर दीनबन्धु क्रोध से जला जा रहा था। भैंसे की तरह खायगा, कपड़े फाड़ेगा और ऊधम मचायेगा! अब दीनबन्धु को अपने दामाद की असामयिक मृत्यु पर दुःख हुआ। यदि वह शैतान जीता होता तो उसे इन मुसीबतों का सामना न करना पड़ता।

बलई अपने भविष्य के भयानक निवास-स्थान को देखकर कुछ भयभीत सा खड़ा रहा। सत्यवती ने अपने पिता से कहा—सामान कहाँ रखवा दूँ। इसे जल्दी बिदा कर देना है।

दीनबन्धु उन सबको ही जल्दी बिदा कर देना चाहता था, पर वैसा होना ज़रा कठिन था। इसलिए उसने अपने सन्ताप को दबाकर कहा—सामनेवाली कोठरी में रखवा दो। बचाकर जाना। यहाँ चारों तरफ़ साँप-बिच्छू भरे हैं। मैं बहुत बुड्ढा हो गया। अब मुझसे इस जङ्गल की सफ़ाई नहीं होती। तुम्हारा

लड़का मज़बूत जान पड़ता है। क्या वह यह सब काम सँभाल लेगा ?

सत्यवती का मुखमंडल और भी उदास हो गया। इस बात का बिना कोई उत्तर दिये हुए वह अपने असबाब और बेटे के साथ उस उजड़े मकान के भीतर चली गई।

मकान की अधिकांश छतें गिर गई थीं। केवल एक कमरा मनुष्य के रहने योग्य बचा था। उसी में बुड्ढा दीनबन्धु अपने लोहे के सन्दूक के साथ रहता था। रसोई-घर भी उजड़ा पड़ा था। दीनबन्धु को खाना पकाने की ज़रूरत भी तो नहीं थी। वह अपने रहने के कमरे में किसी को घुसने नहीं देना चाहता था। पर लड़की और नाती को बाहर रखना मुश्किल था। इसलिए जब तक कोई और इन्तज़ाम न हो जाय, उसे मजबूर होकर उन्हें अपने कमरे में रखना पड़ा।

गाड़ीवान के विदा होते ही सत्यवती बोली—मेरे बेटे को सवेरे से कुछ खाने को नहीं मिला है। शायद आपने भी कुछ पकाया न होगा। रसोई-घर कहाँ है ? मैं कुछ खाना बनाना चाहती हूँ।

दीनबन्धु ने कुछ कष्ट के साथ कहा—खाना पकाने के लिए घर में कोई प्रबन्ध नहीं है। रसोई-घर की छत गिर पड़ी है। तुम कैसे खाना पकाओगी ?

सत्यवती कुछ देर तक चुप रही। फिर बोली—कुछ प्रबन्ध तो करना ही पड़ेगा। बेटे को भूखों नहीं मार सकती।

दीनबन्धु बैठ गया और सिर नीचा करके कुछ सोचने लगा। सत्यवती रसोई-घर की सफ़ाई में जुटी। सारा कूड़ा-करकट उसने हटाकर बाहर किया। तब कुछ ईंटें रखकर उसने चूल्हा बनाया। आस-पास जलाने की लकड़ी की कमी नहीं थी। शीघ्र ही रसोई-घर में धुँवा होने लगा। सत्यवती अपने खाने-पकाने के सब बर्तन साथ लेती आई थी और बिस्तर में कुछ चावल और साग भी बँधा था। शीघ्र ही भोजन बनकर तैयार हो गया। सत्यवती के बुलाने पर दीनबन्धु भी भोजन करने के लिए डट गया। यदि कुछ ख़र्च न करना पड़े तो दीनबन्धु जितना मिले सब खा सकता था। दीनबन्धु और बलई दोनों ने मिल कर बटलोई साफ़ कर दी। सत्यवती ने कुछ न खाया। अभी उसने स्नान नहीं किया था। उनके खाना खा चुकने पर वह जूठे बर्तन लेकर गाँव के तालाब पर धोने चली गई। जब बर्तन धोकर और नहाकर लौटी तब सूरज डूब रहा था। शाम को खाना पकाना सम्भव नहीं था। इसलिए उसे भूखी ही सोना पड़ा और उसके बेटे को गाँव के मन्दिर के प्रसाद पर सन्तोष करना पड़ा।

दूसरे दिन प्रातःकाल दीनबन्धु को पूरा पूरा अनुभव होने लगा कि अब बुरे दिन आगये। जब उसने रोज़ के ख़र्च का ख़याल किया तब उसके सिर में दर्द होने लगा। लड़की के रहने के लिए कम से कम एक कोठरी की मरम्मत करानी होगी। रसोई-घर भी ठीक कराना होगा। फिर उसे चावल ख़रीदना होगा और बाज़ार से सौदा लाने के लिए कुछ पैसे अलग देने होंगे। इतने ही से पिंड न छूटेगा। उस शैतान बच्चे के लिए कपड़े भी बनवाना होगा। और लड़की के लिए भी। उसका बाप उसे अपने साथ क्यों नहीं लेता गया ? क्या इस लड़के का जन्म दीनबन्धु की छाती पर दाल दलने के लिए हुआ है ?

चाहे जो कुछ हो दीनबन्धु को रुपया तो ख़र्च करना ही पड़ेगा। एक कोठरी और रसोई-घर की मरम्मत की गई। सत्यवती ने अपने बेटे की सहायता से आँगन का जंगल और बाहर जाने-आने का रास्ता साफ़ किया। घर में दो-तीन चिराग़ भी जलने लगे। खाना रोज़ पकने लगा। दीनबन्धु भी भोजन करने लगा। जब उसे नाक के बल ख़र्च चुकाना ही पड़ता है तब वह भी खाने-पीने में शामिल क्यों न हो ? परन्तु एक बात पर उसने ख़ूब ज़ोर दिया। लाख कोशिश करने पर भी उसने सत्यवती को एक बार से अधिक खाना पकाने की आज्ञा नहीं दी। शाम को लड़का मन्दिर से प्रसाद लेकर क्यों न गुज़र करे। उसने तो इसी तरह उम्र गुज़ार दी है ? सत्यवती असमर्थ थी। परन्तु वह लड़के को रात को भूखा नहीं सुलाना चाहती थी।

वह सवेरे के भोजन में से कुछ चावल और कढ़ी छिपा-कर रख देती थी। उसे शाम को लड़का खाकर सन्तुष्ट हो जाता था।

अब बुड्ढे की ख़ूब अच्छी तरह देख-रेख हो रही थी। उसे रोज़ सवेरे ताज़ा भोजन मिलता था। रात को प्यास लगने पर वह माँगते ही पानी पा जाता था। घुटनों में दर्द होने पर सत्यवती तुरन्त गरम तेल लेकर मालिश करने लगती थी। कपड़ों की कमी के कारण जाड़े में उसे बहुत कष्ट होता था। पर सत्यवती ने उसे अपना पुराना कम्बल दे दिया था। इससे रात में उसे मज़े में नींद आती थी। उधर बलई उसके और भी बहुत से काम कर देता था।

परन्तु यह सब होते हुए भी बुड्ढे को शान्ति नहीं थी। जब उसकी स्त्री जीवित थी तब भी उसे इतना ख़र्च नहीं करना पड़ता था। यदि उसकी जेब से एक पाई निकलती थी तो उसे ऐसा मालूम होता था, मानो उसके शरीर से एक हड्डी निकली जा रही है। ये लोग उसका नाश करने आये थे। परन्तु अपनी लड़की के चेहरे की ओर देखते ही वह कुछ ऐसा डर जाता था कि मुँह से विरोध का एक शब्द भी न निकाल सकता था। इस घर में वह जब से आई थी तब से न तो वह कभी हँसी थी और न कभी रोई थी। वह पत्थर की मूर्ति सी बन गई थी। उस पर कुछ असर ही नहीं होता था। दीनबन्धु उसको देखकर भयभीत हो उठता था। ऐसा कोई व्यक्ति वहाँ नहीं था जिसके पास बैठकर वह बेचारा अपना दुखड़ा रोता। वह अन्दर ही अन्दर घुला जा रहा था।

एक दिन सत्यवती ने एकाएक कहा—लड़का बिगड़ा जा रहा है। उसे गाँव की पाठशाला में क्यों नहीं भर्ती करा देते हो?

दीनबन्धु क्रोधित हो उठा। उसे स्कूल में भर्ती करा देना चाहिए ज़रूर! वह नवाब का बेटा है न? परन्तु उसकी फ़ीस कौन देगा? किताब, काग़ज़ और स्लेट के लिए पैसा कहाँ से आयेगा? यह सब काम दीनबन्धु का नहीं है।

परन्तु सदा की भाँति उसे अपनी लड़की से कुछ भय मालूम हुआ। उसने मुँह खोला, पर इसके सिवा और कुछ न कह सका—फ़ीस कौन देगा?

सत्यवती कुछ देर चुप रहने के बाद बोली—मैं फ़ीस दे लूँगी।

दीनबन्धु ने पूछा—और काग़ज़! किताब!! क़लम!!!

सत्यवती बिना कुछ उत्तर दिये हुए कमरे से बाहर चली गई।

पाठशाला का पूर्ण उत्तरदायित्व बुड्ढे निवर्ण मुकर्जी पर था। वह दिन का काम समाप्त करके अपने द्वार पर बैठा हाथ-पाँव धो रहा था कि इतने में ही किसी ने झुक कर उसे प्रणाम किया।

आँखें फाड़कर देखने का प्रयत्न करते हुए उसने पूछा—कौन है? मुझे शाम को कम दिखाई पड़ता है।

सत्यवती ने अपना परिचय देते हुए कहा—मुझे यहाँ आये बहुत दिन हो गये। परन्तु खेद है कि अब तक आपको प्रणाम करने के लिए भी न आ सकी। कृपा करके मेरे बेटे को अपनी पाठशाला में भर्ती कर लीजिए। वह बिगड़ा जा रहा है।

बुड्ढे निवर्ण से परोपकार बहुत दूर था। पर तो भी सत्यवती गाँव की लड़की थी और विधवा थी, इसलिए उसको तत्काल कोई रूखा जवाब नहीं दिया जा सकता था। उसने कहा—बेटी, यह पाठशाला मेरी नहीं है। मैं केवल एक नौकर हूँ। यदि तुम पढ़ाई की फ़ीस दे सको तो मैं तुम्हारे लड़के को तुरन्त भर्ती कर लूँगा। हाँ, यह हो सकता है कि मैं कहीं से माँग कर पुरानी किताबें और स्लेट उसे दे दूँ। तुम स्वयं जानती हो कि मेरी आर्थिक स्थिति कैसी है? औरों की सहायता करने के बजाय मुझे स्वयं सहायता की बड़ी आवश्यकता है।

सत्यवती ने कहा—बहुत अच्छा। यदि बिना फ़ीस दिये काम न चलेगा तो मैं उसे दे लूँगी। आप काग़ज़-किताब का ख़याल रखिएगा।

दूसरे दिन नहा-धोकर और साफ़ कपड़े पहन कर बलई स्कूल-मास्टर के घर पर हाज़िर हुआ। सत्यवती

ने निवर्ण को प्रणाम करने के पश्चात् छः रुपये उसके चरणों के पास रखकर कहा—मैं आपको साल भर की फ़ीस पेशगी दे रही हूँ। बाद को सम्भव है, मुझे पैसा न मिल सके। आप किताबों का ध्यान रखिएगा।

बुड्ढा ब्राह्मण घबरा गया। उसे यह आशा नहीं थी कि कंजूस की लड़की स्कूल की फ़ीस दे सकेगी। इसी लिए उसने किताबें आदि देने का वादा कर दिया था। वह पुरानी किताबें और स्लेट एकत्र करके उन्हें बेचा करता था। पर अब वह वादे के ख़िलाफ़ नहीं जा सकता था। उसने सोचा कि अब एक फटी किताब और एक टूटी स्लेट से अलग होना ही पड़ेगा। एक ज़बरदस्ती की हंसी हँस कर उसने कहा—कोई डर की बात नहीं। मैं अपना वादा पूरा करूँगा। परन्तु तुम्हें ये रुपये इतनी जल्दी कैसे मिल गये? तुम्हारे बाप तो प्राण रहते पैसा ख़र्च नहीं कर सकते।

सत्यवती ने जवाब दिया—मैंने अपनी थाली और बटलोई बेचकर ये रुपये प्राप्त किये हैं।

इस प्रकार बलई स्कूल गया और उसकी मा लौट कर घर आई। अब यह खडहर उसे और भी भयानक जान पड़ा। जब तक लड़का साथ में था तब तक इसकी भयानकता का अनुभव उसे नहीं हुआ था।

दूसरे दिन दीनबन्धु ने देखा कि उसकी लड़की मिट्टी की एक हाँड़ी में खाना पका रही है। उसने पूछा—बटलोई क्या हुई?

सत्यवती ने शान्तिपूर्वक उत्तर दिया—मैंने उसे बेचकर बलई की फ़ीस दे दी।

"किसके हाथ बेचा? कितने में बेचा?

"लोहार के हाथ। ६ रुपये में।"

दीनबन्धु अपना सिर ठोंककर ज़मीन पर बैठ गया और दुःख से कहने लगा—सत्यानाश कर दिया। तुम पर जो विपत्ति पड़ी है, सचमुच तुम उसी के पात्र हो। ये चीज़ें बारह रुपये से कम में न बिकतीं। स्कूल की फ़ीस आठ आना महीना है। बाक़ी रुपये कहाँ हैं?

"मैंने पूरे एक साल की फ़ीस जमा कर दी।"

दीनबन्धु ज़ोर ज़ोर चिल्लाने लगा। उसके [illegible] से सत्यवती का भय निकल गया। किसे मालूम था कि एक स्त्री इतनी मूर्खता कर सकती है? उसने कैसे जा[illegible] कि लड़का साल भर स्कूल में रहेगा? यदि वह बीच में मर जाय तो? वह बुड्ढे निवर्ण को जानता था। उसके हाथ में पैसा पहुँच चुकने पर वापस नहीं [illegible] सकता। जो लड़की अपने रुपयों की परवा नहीं कर[illegible] वह अपने बाप के रुपयों की कैसे सँभाल कर सकती है? यदि वह कहती तो दीनबन्धु स्वयं उसके बर्तन बिक[illegible] देता। यदि वह रुपये उसके पास जमा करती तो [illegible] उसे अच्छे सूद पर उठा सकता था। यह कुछ न कर[illegible] मूर्ख स्त्री ने एक नालायक़ लड़के की पढ़ाई में [illegible] बर्बाद कर दिया। मानो पढ़कर वह हाईकोर्ट का [illegible] ही बनेगा।

बुड्ढा स्वयं अपने रुपये के विषय में चिन्तित [illegible] उठा। उसकी मृत्यु के पचात् उसकी लड़की ही [illegible] सम्पत्ति की अधिकारिणी होगी। परन्तु वह तो सब [illegible] को एक ही दिन में उड़ा देगी। वह मरने के क़रीब [illegible] गया है। अपने धन को किसकी देख-रेख में छोड़ जा[illegible] वह पागल सा हो गया। रात में सोते सोते अब [illegible] चौंकने लगा। वह स्वप्न में देखता कि डाकू उसका [illegible] लूटे लिये जा रहे हैं। सत्यवती को उसे इस मुसी[illegible] से बचने के लिए रोज़ जगाना पड़ता।

इधर बलई का स्कूल जाना जारी था। और दीन[illegible] की चिन्तायें बढ़ रही थीं, क्योंकि बलई के सब कपड़े [illegible] चुके थे। वह सोचता था कि किसी न किसी दिन [illegible] के लिए सत्यवती नये कपड़े ज़रूर माँग बैठेगी। [illegible] की नाक में दम था।

ज्यों-त्यों करके जाड़ा बीत गया। गर्मी आते ही [illegible] तरह की बीमारियाँ गाँव में फूट पड़ीं। बोख़ार तो [illegible] के लिए कोई बात ही नहीं थी, पर इस बार शीतला [illegible] भी बहुत ज़ोर रहा।

दीनबन्धु सूद इकट्ठा करने के लिए सबेरे निक[illegible] था और तीसरे पहर खाना खाने घर लौटता था। [illegible] दिन घर वापस आने पर उसने कहा—हमें रोज़ [illegible]

हवा खानी चाहिए, जिससे बोखार न हो। शीतला से गाँव में कई मौतें हो गई हैं।

सत्यवती ने बीच में टोककर कहा—लड़के को टीका लगवा देना चाहिए।

दीनबन्धु बिगड़ कर बोला—ओफ़! यह सब व्यर्थ है। टीका किसी को मरने से नहीं रोक सकता। यह केवल मूर्खों से पैसा ठगने के लिए निकला है।

सत्यवती चुप हो गई। परन्तु उसका हृदय भावी आशङ्का का ख़याल करके भारी हो गया।

एक दिन बलई बोख़ार लेकर घर लौटा। दूसरे दिन उसके शरीर पर शीतला के चिह्न दिखाई देने लगे। सत्यवती ने अपने पुत्र की मृत्यु को सामने खड़ी देखा। इस बालक के अतिरिक्त और जो कुछ भी प्रिय वस्तु उसके पास थी वह सब विधाता ने उसके हाथ से छीन ली थी। अपने हृदय के समस्त स्नेह को उसने इसी बच्चे पर लगा दिया था। अब वह भी उसके हाथ से निकला जा रहा था। परन्तु विपत्ति का पहाड़ उठाने की उसे आदत पड़ गई थी और इस विपत्ति का भी उसने उसी ख़ामोशी के साथ सामना किया। वह अपने बच्चे के पास बैठकर रात-दिन उसकी सेवा करने लगी। उस दिन से उसने खाना पकाना बिलकुल बन्द कर दिया।

दीनबन्धु भय से घबरा उठा। वह अपने धन के लिए चिन्तित हो उठा। यदि यह भयानक रोग उसे पकड़ लेगा तो वह अवश्य मर जायगा। और तब सत्यवती उसके धन का सत्यानाश कर देगी। यदि वह कहीं जाकर बच सकता तो अपना ख़ज़ाना लेकर वहाँ चला जाता। परन्तु इतनी बड़ी दुनिया में उसका कहीं कोई मित्र भी तो नहीं था। इतना धन लेकर वह बाहर निकल भी तो नहीं सकता। डाकू तुरन्त उसका गला घोंट देंगे और उसके धन पर क़ब्ज़ा कर लेंगे। इसलिए वह अपने कमरे में बैठकर ईश्वर से सहायता की पुकार करने लगा। उसे भोजन नहीं मिला। पर भोजन की उसने कभी परवा ही नहीं की। उसने थोड़ा सा चिउड़ा ख़रीद लिया। वह उसके लिए यथेष्ट था।

बलई की हालत बहुत ख़राब हो गई। वह रोने और कराहने लगा। सत्यवती उसके पास बैठकर कभी पंखा झलती, कभी उसके जलते हुए मस्तक पर हाथ फेरती।

पहले सत्यवती को यह आशा थी कि लड़का अच्छा हो जायगा। गाँव में शीतला की बीमारी कोई नई बात नहीं थी। उसने लोगों को अच्छा होते हुए देखा था। परन्तु ज्यों ज्यों समय व्यतीत हुआ, त्यों त्यों उसकी निराशा बढ़ती गई। उसका हृदय दुख से फटने के क़रीब आ गया। हाय! असमर्थ माता का प्रेम! वह अपने बच्चे के लिए कुछ नहीं कर सकती।

सत्यवती अपने कंजूस पिता से कोई सहायता माँगने की अपेक्षा अपना सिर काट डालना अच्छा समझती थी। परन्तु अब उसने आत्म-सम्मान के समस्त भावों को दूर कर दिया था। वह आँखों में आँसू भरकर अपने पिता के पास दौड़ी और बोली—बेटा मरना चाहता है, कोई वैद्य बुलाओ।

दीनबन्धु अपना सूद जोड़ने में लगा था। लड़की की आवाज़ सुनकर उसने अपना सिर उठाया, फिर कहा—वैद्य! वैद्य मैं कहाँ से लाऊँ? इस बस्ती में कोई वैद्य नहीं है। सम्भव है। दूसरे गाँव में कोई मिल जाय। पर उसकी फ़ीस, गाड़ी का भाड़ा, उसके लिए चाय-पानी का प्रबन्ध! कहाँ से पैसा मिलेगा। बड़ी मुश्किल है।

सत्यवती के मस्तिष्क में आग लग गई। यह मनुष्य है या राक्षस! उसने उत्तेजित होकर कहा—आपने इतना धन जोड़ रक्खा है, वह किस काम आयेगा। क्या आप मर जाने पर उस धन को अपने साथ ले जा सकेंगे। मेरा बच्चा मर रहा है। उसके लिए आप दो-चार रुपये भी नहीं ख़र्च कर सकते।

दीनबन्धु उठा और बोला—रुपया! मेरे पास एक कौड़ी भी नहीं है। तुम देखती नहीं हो कि मैं चीथड़े पहनता हूँ और रूखा-सूखा खाता हूँ। क्या धनी मनुष्य के यही लक्षण हैं?

सत्यवती ने कहा—आपकी ये मिथ्या बातें मैं नहीं सुनना चाहती। आपने पिता के कर्तव्य का पालन कभी

नहीं किया। एक बार तो उसके करने की कोशिश करें। आप अपने इस धन को अपने साथ दूसरे लोक में नहीं ले जा सकोगे। ईश्वर को क्या जवाब दोगे? अपने ही रक्त-मांस को इतना पीड़ित न करें।

दीनबन्धु ने डपट कर कहा—ख़ामोश रह! शैतान लड़की! मैंने कह दिया कि मेरे पास एक कौड़ी नहीं है। मेरा रास्ता ख़ाली कर, दूकान पर जाना है।

इसके बाद दीनबन्धु अपनी कोठरी में ताला लगा कर दूकान पर चला गया। वह जानता था कि शीतला का प्रवेश हो जाने से अब चोर-बदमाश भी इस घर में आने से डरेंगे। इसलिए उसने दूकान पर ही रहने का निश्चय किया।

सत्यवती को चारों ओर अन्धकार दिखाई देने लगा। इस भयानक खँडहर में जहाँ मृत्यु उतर रही है वह अकेली कैसे रहेगी। उसे निश्चय हो गया कि अब उसका लड़का नहीं बचेगा।

घर में कोई भी व्यक्ति नहीं था जो उसकी सहायता करता। गाँव में सहायता प्राप्त करने के लिए वह बेहोश बच्चे को घर में अकेला नहीं छोड़ सकती थी। यदि बच्चे को प्यास लगे तो? यदि वह बिस्तर से नीचे गिर पड़े तो? दयालु ईश्वर! असहाय मानवों की तुम इस प्रकार परीक्षा क्यों लेते हो? अब वह जान गई थी कि उसका बेटा नहीं बचेगा। पर सबसे बड़ा दुःख उसे इस बात का था कि बच्चे की पीड़ा कम करने के लिए भी वह कुछ न कर सकी।

अन्त में ईश्वर ने उसके ऊपर थोड़ी सी दया की। उसे अपने बेटे का मरते समय का कष्ट नहीं देखना पड़ा। रात्रि के अन्धकार में जब उसे ज़रा झपकी लग गई थी, उसका लड़का उसे अकेली छोड़ कर चला गया।

दूसरे दिन गाँववालों ने एक स्त्री को पागल की भाँति इधर-उधर दौड़ते और चिल्लाते देखा। उसका बेटा मर गया था और उसका बाप घर छोड़ कर चला गया था।

उसकी सहायता करने कोई नहीं गया। पहले तो वह नीची जाति की थी, दूसरे उसका लड़का छूत की बीमारी में मरा था। जिसके पास वह सहायता के लिए जाती वही उससे भागता और कहता—दूर! दूर! तेरा लड़का मर गया है तो तू सारे गाँव को नष्ट करना चाहती है?

सत्यवती घर लौट आई। उसका प्यारा बच्चा! उसकी आँखों का तारा! कोई उसे छूना भी नहीं चाहता? परन्तु उसकी मा तो जीवित है। वह बेटे को नहीं बचा सकी न सही, पर वह उसके साथ जा तो सकती है। वह अपनी व्यवस्था कर चुकने पर आग-गरनी की भाँति हँसने लगी। उसके दानवीय अट्टहास से उस खँडहर की दीवारें हिल उठीं। लकड़ी की कोई कमी नहीं थी। उसने एक चिता बनाई और उसे जलाने के लिए उस पर थोड़ा सा पुआल रख दिया। फिर अपने मृतक पुत्र को गोद में लेकर वह चिता पर बैठ गई।

पुआल में आग लगाते हुए उसने चिल्लाकर कहा—अब आपका धन ताकने के लिए मनुष्यों की कमी नहीं रहेगी। हम दोनों, मा और बेटा आपके धन पर पहरा देंगे।

जब ऊँची लपटें उठने लगीं तब गाँववालों ने जाना कि कोई असाधारण बात हो रही है। बड़ा शोर-गुल शुरू हो गया। हर एक दौड़ने और चिल्लाने लगा। पर कोई यह न समझ सका कि क्या करना चाहिए? आग के निकट जाने का किसी को साहस न हुआ।

दीनबन्धु चिउड़ा चबाने जा रहा था कि इसी बीच में एक लड़का हाँफता हुआ आया और कहने लगा—तुम्हारे घर में आग लग गई है, दीनबन्धु!

दीनबन्धु खड़ा हो गया और बोला—क्या? तुमने क्या कहा? वह सिर के बल अपने घर की ओर दौड़ा। आग मकान के चारों तरफ़ फैल चुकी थी। गाँववाले चकित हो खड़े तमाशा देख रहे थे।

भीड़ में से एक स्त्री ने कहा—बुड्ढे! शैतान! तू कहाँ था? तेरी लड़की जलकर भस्म हो गई।

दीनबन्धु चिल्ला कर बोला—मेरा सत्यानाश हो गया। हा! ईश्वर !!

उसी प्रकार दौड़ता हुआ वह आग के उस समुद्र में कूद पड़ा।

इस घटना के पश्चात् गाँव वालों ने उस गाँव के उस हिस्से को छोड़ दिया। कोई उस रास्ते से निकलता भी नहीं। दो-एक ने एक-आध बार उधर से जाने का साहस किया, पर वे सड़क पर बेहोश पाये गये। कहा जाता है कि वह बुड्ढा कंजूस, उसकी लड़की और उसका नाती, तीनों उस जले खँडहर में रहते हैं और उसमें गड़े ख़ज़ाने पर पहरा देते हैं *।

—लेखक श्रीनाथसिंह

* श्रीमती सीतादेवी की एक कहानी।

# पेरिस*

इंग्लैंड की जल-प्रणाली (English channel) पार कर आप जिस समय फ़्रांस के तट पर पहुँचते हैं, उसी समय आपका मन सूर्य्य के आलोक से प्रसन्न हो उठता है। फ़्रांस की मिट्टी प्रकाश के आवरण से सदा सजी रहती है। यहाँ के दृश्य कोमल होते हैं। यहाँ का हरित-पल्लव, यहाँ का स्निग्ध श्यामल रूप बंगाल का स्मरण कराता है। कहीं रेलवे-लाइन के समीप स्थित घरों से मा अपने बच्चों को रेलगाड़ी दिखा रही हैं तो कहीं खेत की हरियाली के बीच खड़ा होकर एक हृष्ट-पुष्ट कृषक यात्रियों की ओर देखकर हँस रहा है।

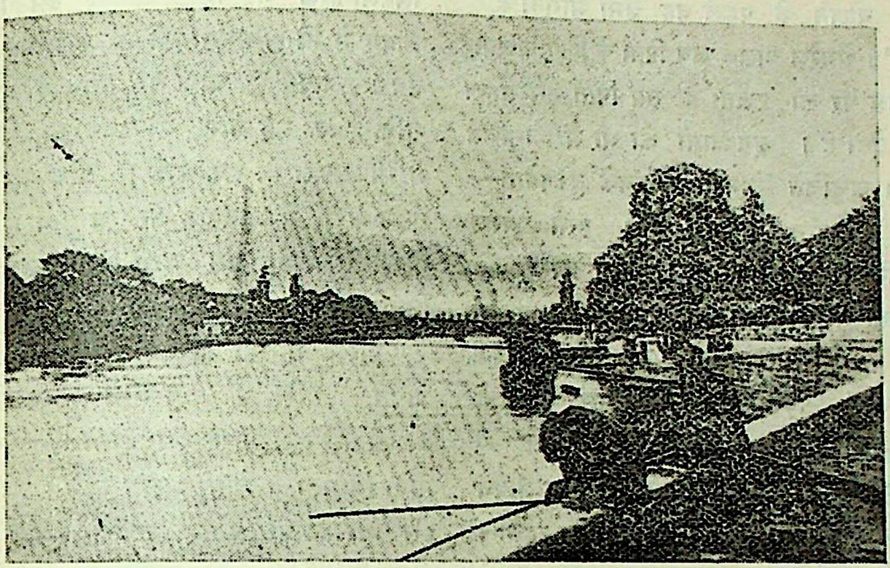
मेरे डिब्बे में दो अँगरेज़ और तीन फ़्रेंच थे। अँगरेज़ दोनों मित्र थे; सैर करने को पेरिस जा रहे थे। पति-पत्नी और उनका एक-दो वर्ष का सुडौल शिशु—यही तीन फ़्रेंच थे। फ़्रेंच युवक ज़ोर ज़ोर से अपनी तरुण स्त्री से प्रेम निवेदन कर रहा था। तरुणी सलज्ज नेत्रों से अपने बच्चे की ओर देखती और उसे चूमती थी। अँगरेज़ इन तीनों पर मुस्करा रहे थे; मैं इन दोनों पर मुस्करा रहा था; शायद मुझ पर मुस्कराते हों वे सभी!

दोनों अँगरेज़ चुपचाप अपनी अपनी किताब पढ़ रहे थे। एक के हाथ में प्रसिद्ध एडगर वालेस का 'दी स्क्वीकर' नाम का उपन्यास था। एडगर वालेस तीन सेक्रेटरी रखते हैं। प्रतिदिन कोई अस्सी हज़ार शब्द, लिखना नहीं, लिखाना उनका प्रण है। उपन्यासों की उत्पत्ति उनके दिमाग़ से उसी प्रकार होती है, जिस प्रकार फ़ोर्ड कारख़ाने से मोटरकार। दूसरे अँगरेज़ के हाथ में 'ए गाइड टू पेरिस प्लेज़र्स—फ़ुली इलस्ट्रेटेड' नाम की पुस्तक थी। इसे आप बड़े चाव से पढ़ रहे थे; रह रहकर अपने मित्र से सुसंवाद सुनाते कि आज की रात अमुक नर्त्तकी का नृत्य देखना ही होगा। मित्र महोदय जो एक रोमाञ्चकारी हत्या के वर्णन में तन्मय हो रहे थे, कुछ न बोलते थे।

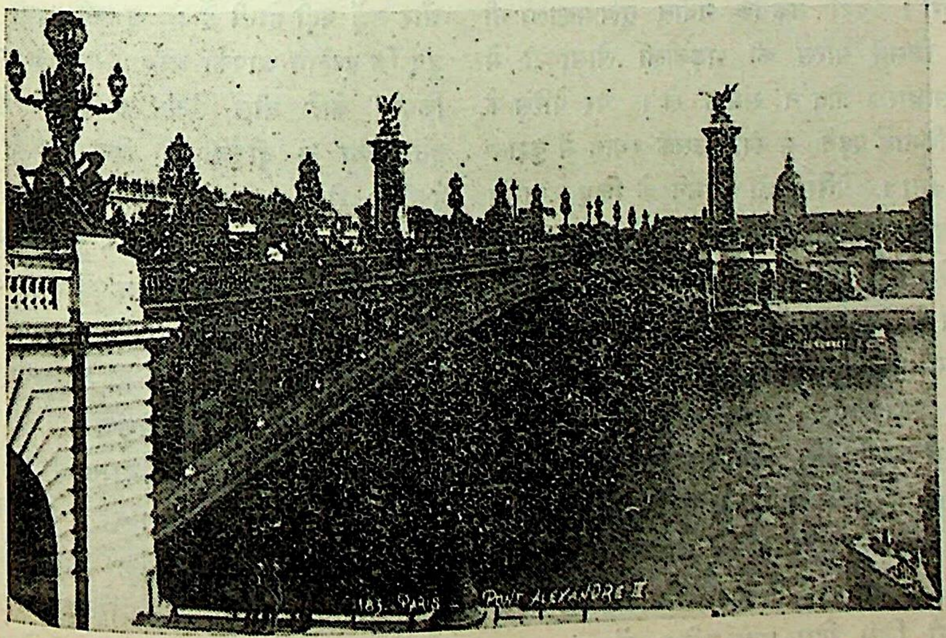
अँगरेज़ों के चरित्र पर मेरी बड़ी श्रद्धा है। पर उस चरित्र की आंशिक कृत्रिमता से मुझे बड़ा दुःख होता है। लंदन में इतने दिन हो गये, मैंने किसी अँगरेज़ को दूसरे अँगरेज़ से (विदेशियों की बात जाने दीजिए) दिल खोलकर बोलते नहीं सुना है। ट्रेन, ट्राम, आमनिबस, सब जगह मौनावलम्बन किये कोई अख़बार (जो यहाँ का विष है) पढ़ता है तो कोई निकृष्ट श्रेणी का उपन्यास पढ़ने में मग्न है। सभी मानो अपनी प्रतिष्ठा की एक गठरी को छाती से लगाये हैं। यदि वे बोलें तो उनकी मान-हानि होगी! एक मनुष्य के दूसरे मनुष्य के प्रति इस कृत्रिम मौन का अर्थ शक्ति या बल नहीं, दुर्बलता है। और ऐसी दुर्बलता और शारीरिक वा मानसिक नहीं—हार्दिक होती है, स्वाभाविकता का शत्रु है। अँगरेज़ पति जब अपनी स्त्री के

---

*पेरिस का फ़्रेंच उच्चारण "पारि" है। मैं इसे पेरिस ही लिखूँगा। अन्यान्य फ़्रेंच शब्दों के लिखने में भी मैंने किसी नियम का पालन नहीं किया है। भारत-वर्ष में फ़्रेंच जाननेवाले कम हैं।



[ सेन-नदी का एक दृश्य—दूर में बूरा फ़ेय ]



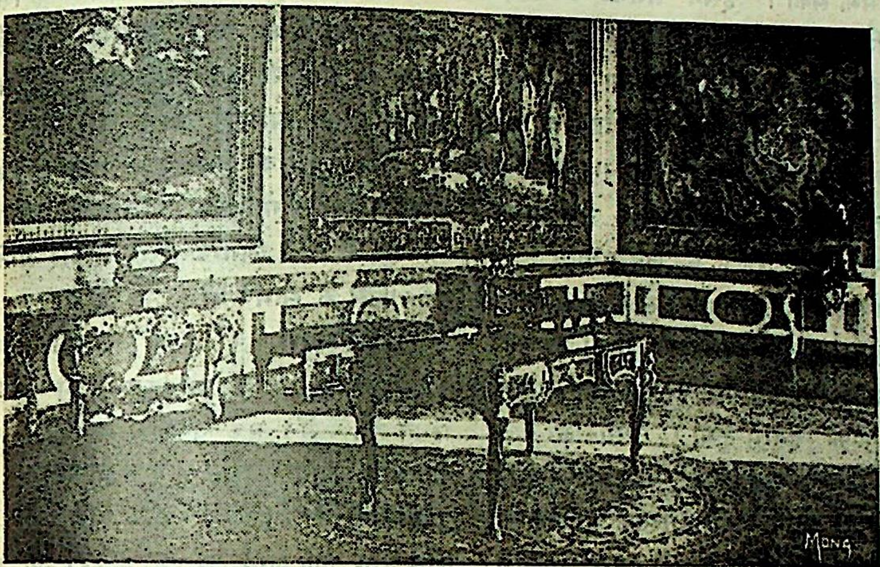


[ सुन्दर पेरिस का एक सुन्दर पुल ]

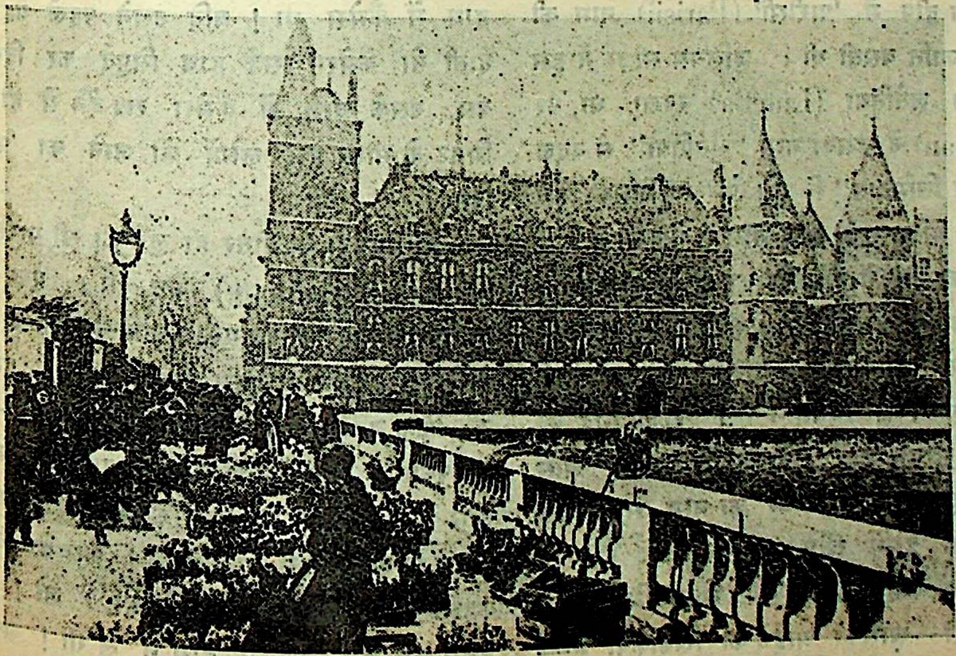
बोलता है तब बोलने के पहले वह क्षमा माँगता है—'एक्सक्यूज़ मी'। अँगरेज़ बालक जब पिता के लिए अख़बार द्वार पर से टेबिल पर ला रखता है तब पिता उसे सहस्र बार धन्यवाद देता है। इन बातों को भी मैं अनुचित नहीं समझता। अनुचित समझता हूँ इनके दुरुपयोग—इनके कृत्रिम, भावहीन उपयोग को। इसी कारण इँग्लेंड में पारिवारिक सुख कम है। इसी कारण पति का विश्वास पत्नी में कम है; पत्नी का विश्वास पति में बिलकुल नहीं। विवाह के पूर्व पुरुष 'हाउ टु मेक मैरिज ए सक्सेस' पढ़ता है और नारी पढ़ती है 'हाउ टु मेक ए गुड वाइफ़'। किताबों से यदि इन बातों की शिक्षा मिलती होती, तो फिर जीवन का प्रयोजन ही न होता; अनुभव का मूल्य ही न रहता। सच तो यह है कि अँगरेज़ लोग बराबर अपने को ठगते चले आ रहे हैं। कुशल होना ही इनका मूल मन्त्र है। ठीक है। पर कुशल होने के पूर्व विचार करना तो चाहिए कि मैं जिस बात के विषय में कुशल होना चाहता हूँ वह बात अच्छी है या बुरी। अँगरेज़ यह विचार नहीं करते। पेरिस जाना है तो पेरिस-सम्बन्धी बीसों पुस्तकें पढ़ डालेंगे; फ़्रेंच-धातुरूप कंठस्थ करना शुरू कर देंगे। यहाँ तक कि नवीन नृत्य-प्रणाली भी सीख लेंगे, जिसमें पेरिस की भड़कीली सोसायटी में इन्हें कोई साधारण जीव न समझ ले। पर पेरिस के सम्बन्ध में किताबें पढ़ने से कोई उसके स्थान में कुशल नहीं हो सकता। पेरिस को जानने के लिए अनुभव की आवश्यकता है और आवश्यकता है विशुद्ध मन की। अँगरेज़ यह नहीं समझता। कुशलता के उपासक अँगरेज़ों में यह भारी भूल है। इसी विचाराभाव के कारण अँगरेज़ अपने आपको नहीं समझ सकता है। उसका ध्येय सफलता है; अच्छे कामों में उतना ही जितना कि बुरे कामों में। यहाँ तक कि वह सफलता की रीति (method) पर भी विचार नहीं करता। हृदय के भाव जब सूख जाते हैं तब वह भावुक होने के लिए सिनेमा-हाल की यात्रा करता है। प्रेम का पाठ फ़्रेंच या भारतवासी जिस दिन हृदय-मन्दिर में न पढ़कर सिनेमा-हाल में पढ़ने लगेगा उस दिन भारतीयों के जीवन में भी कृत्रिमता की मात्रा अधिक हो जायगी और तब उन्हें जीवन एक बोझ सा प्रतीत होगा। अँगरेज़ में वह शक्ति है कि वह बोझ भी वहन कर सकता है; बुरे काम में भी सफल हो सकता है। फ़्रेंच या भारतवासी बोझ वहन करने में जानबूझ कर असमर्थ है। बुरे काम को वह नहीं करेगा; उस काम की सफलता का मूल्य चाहे जितना हो।

पेरिस आते ही आप प्राणों की लहर से चकित हो जायँगे। पेरिस में सदा सभी प्रसन्न रहते हैं। हँसी का फ़ौवारा कभी नहीं बन्द होता। ऐसा ज्ञात होता है माने विधाता ने किसी नवीन सृष्टि के जन्मोत्सव के लिए इस नगर को प्रस्तुत कर रक्खा है। यहाँ मृत्यु नहीं; जरा भी नहीं; तारुण्य की साधना सर्वत्र विद्यमान है। जिन्होंने मरकर जीना सीखा है वे पेरिस के मर्म को सहज ही जान सकते हैं। जो जी कर भी सदा मरते हैं रहते हैं, पेरिस के प्रसाद से वे वञ्चित रहेंगे।

स्टेशन से बाहर आते ही टैक्सीवालों ने मुझे घेर लिया। पेरिस के टैक्सीवालों के प्रति मेरे भाव भयमुक्त आनन्द के हैं। इनके तन मोटे, क़द छोटे, पेट तने और मूछें बड़ी होती हैं। इनकी गाड़ी पर आप सवार हुए कि इन्होंने आपको आकाश-पाताल पहुँचाना आरम्भ किया! कोई तीस सेकंड के भीतर ही इनकी गाड़ी इतने वेग से दौड़ती है कि आपका सिर टकराता है हुड से, आपका सूटकेस टकराता है आपके पैरों से और आपके मित्र टकराते हैं आप से। इन्हें न तो अपने जीवन की चिन्ता है और न आपके जीवन की। जब आप मोटर पर बैठे ही तब हवा की तरह उड़िए! जब पेरिस आप आये ही तब युवा होना सीखिए। गति यौवन का एक प्रधान लक्षण ही तो है! पेरिस के इन टैक्सीवालों का यही सिद्धान्त है। इनके सम्बन्ध की एक छोटी कथा सुनिए। एक बार किसी अँगरेज़ ने टैक्सीवाले से कहा (Allez un peen tard) अर्थात् देरी करके चलो; धीरे धीरे चलो। एक तो फ़्रेंच लोग इस तरह नहीं बोलते, दूसरे अँगरेज़ का उच्चारण




[ वर्सेलिस के राजप्रासाद में वह टेबुल जिस पर १९१८ में सन्धिपत्र पर राष्ट्र-नेताओं ने हस्ताक्षर किये थे ]



[ न्यायालय और उसके निकट ही फूल बेचनेवाली बालिकायें ]

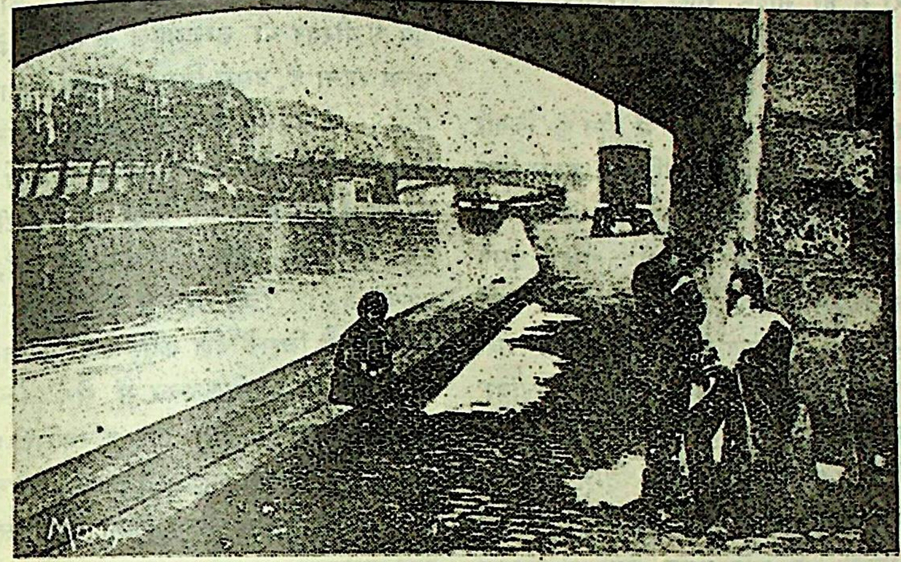
टैक्सीवाला न समझ सका। इसने समझा केवल एक शब्द—"tard" जिसका अर्थ होता है "देर"। बस, फिर क्या था? ज्यों ही अँगरेज़ महोदय भीतर जा बैठे, टैक्सी-वाले ने ऐसा मोटर दौड़ाया कि अँगरेज़ महोदय के होश उड़ गये। वे जितना ही चिल्लाते, टैक्सीवाला उतनी ही तेज़ी से मोटर दौड़ाता। वह तो समझ रहा था कि साहब 'देरी', 'देरी' चिल्ला रहे हैं। जब गन्तव्य स्थान में साहब पहुँचे तब उन्होंने टैक्सीवाले से कहा—देखो! मैं घोर नास्तिक हूँ। पर मैं तुम्हारी गाड़ी से यहाँ सकुशल पहुँचा, यह ईश्वर की सत्ता का एक क्षीण प्रमाण है। लो! तुम्हें काफ़ी इनाम दूँगा! टैक्सीवाला बड़ा ही रसिक था। उसने मीठे शब्दों में कहा—भाई अँगरेज़, मेरी गाड़ी पर चढ़ने से जो नास्तिक आस्तिक हो जाता है, मैं उससे कुछ भी नहीं लेता। इनाम तो रहने दीजिए—आप का किराया भी माफ़। पेरिस की आँख वहाँ का एक छोटा सा द्वीप है, जिसे लोग सिते (Cité) कहते हैं। पेरिस का इतिहास यहीं से आरम्भ होता है। लंदन पर धावा करने के पूर्व ही प्रसिद्ध रोमन योद्धा जुलियस सीज़र ने पेरिस पर अधिकार जमाया था। उस समय इस द्वीप में 'पारीसी' (Parisii) नाम की एक छोटी सी जाति बसती थी। जुलियस सीज़र ने इस द्वीप का नाम लुतेतिया (Lutetia) रक्खा था, पर जुलियन (Julian) ने इसका नाम "लुतेतिया" से बदल कर "पारीसिया सिमिटास" किया। पेरिस (जिसका फ्रेंच उच्चारण 'पारी' या पास् है) इसी नाम से निकला है।

सिते नामक द्वीप में ही फ़्रांस का प्राचीन राजप्रासाद है। आज-कल इस प्रासाद में एक ओर न्यायालय है और दूसरी ओर कॉसिएर्ज़ेरी—जिसमें क्रांति-सम्बन्धी कितने ही स्मृति-चिह्न विद्यमान हैं। राजप्रासाद का भवन इतना सुन्दर नहीं जितना कि उसका ख़ास गिरजाघर। इस ख़ास गिरजाघर का नाम सेंट चैपेल है। आज-कल इसमें ख़ीष्ट की मूर्ति नहीं है; लुई (Louis) का यहीं निजी प्रार्थना-मन्दिर था। इसकी चित्रकारी—ख़ासकर आईने की खिड़कियों में—सुन्दर है।

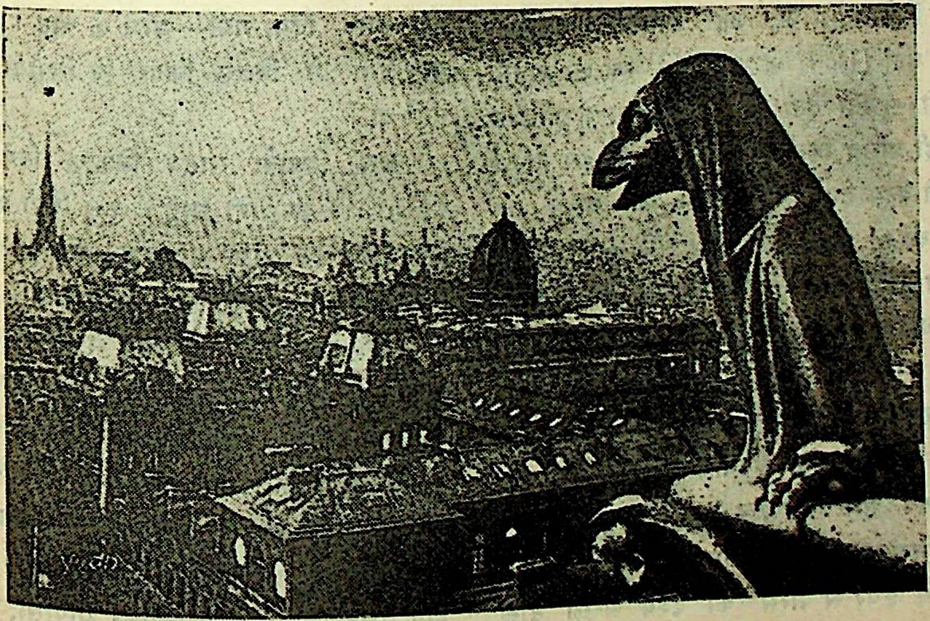
यहाँ का न्यायालय भारतवर्ष के किसी छोटे शहर के मुख़्तारख़ाने की तरह कोलाहलपूर्ण है। लंदन के न्यायालय में ऐसी शान्ति रहती है, मानो वह किसी महापुरुष की समाधि हो। पर पेरिस के न्यायालय में बराबर किसी का जन्मोत्सव-सा हुआ करता है। जगह जगह नोटिस टँगे हुए हैं; 'तम्बाकू पीना मना है' फिर भी मज़े में सभी सिगरेट और सिगार पीते रहते हैं; इसे तो नोटिस के सामने ही।

कॉसिएर्ज़ेरी का पता लगाना टेढ़ी खीर है। न्यायालय से सौ दो सौ क़दम की दूरी पर ही वह स्थित है। मैंने एक वकील से पूछा, उन्होंने सामने की ओर जाने को कहा। मैं सामने आया। एक पुलिसमैन ने कहा—"बस—थोड़ा सा पीछे हटकर सीधे उत्तर चले जायँ, अमुक कोठरी के अफ़सर आपको ठीक बता देंगे। उस 'अमुक अफ़सर' ने ठीक वहाँ बताया। उसने कहा, पुलिस सुपरिंटेंडेंट की आज्ञा चाहिए। मैं तो घबराया। पेरिस के सम्बन्ध में मुझे बहुत से नियम मालूम थे। बहस करने पर (आध घण्टे के बाद) इस अफ़सर ने मुझे कारण बताया—मेरे मित्र के हाथ में कैमेरा था! यदि उसने पहले यह बात कही होती तो कैमेरा उसके हाथ सिपुर्द कर दिया जाता। बस, उसके चार्ज में कैमेरा रख देने से ही उसने दो मिनट के भीतर हम लोगों को जाने का 'परमिट' दे दिया।

कोंसिएर्ज़ेरी के भीतर ही लुई की स्त्री मारी आंन्वानेत (Marie Antoinette) क़ैद थी। एक दिन इसके पहरेदार ने बाहर जाकर एक फल बेचनेवाली स्त्री से कहा—देखो, मुझे सबसे अच्छा फल दे दो। दाम के लिए कुछ फ़िक्र नहीं! फल बेचनेवाली स्त्री ने कहा—तो किस महापुरुष के लिए तुम फल ख़रीद रहे हो? पहरेदार ने उत्तर दिया—किसी महापुरुष के लिए नहीं, एक साधारण स्त्री के लिए जो कभी सम्राज्ञी थी! फल बेचनेवाली स्त्री ने कहा—अहा, बेचारी मारी के लिए? लो! यही सबसे उत्तम फल है। पर मैं दाम न लूँगी! जब पहरेदार ने मारी से ये बातें कहीं तब मारी की आँखें सूखी न थीं।



[ नोत्रदाम के निकट का एक मज़ेदार दृश्य । नाई और एक पुरुष । लन्दन में इस तरह के दृश्य देखने को हज़ारों लोग जम जायँगे ]



[ नोत्रदाम के ऊपर से पेरिस का दृश्य—पश्चिम की ओर । सामने शैतान बैठा है

कौंसिएर्ज़री में ही मादम रोलां, रौबेसपिए आदि प्रसिद्ध व्यक्ति क़ैद थे। स्टेट कौंसिल की एक बैठक भी यहीं हुई थी।

इस स्थान से बाहर निकलकर मैं सेन के किनारे फूलों की दूकान की ओर गया। बालिकायें कतार बाँधे फूल बेच रही थीं। इनमें से एक, लच्छेदार शब्दों में, अपने फूलों का गुण-गान कर रही थी। पहले इसने फ्रेंच में मुझ से कहा—'अहा, देखिए तो ज़रा इन फूलों को। मानो,—। पर मैं आगे बढ़ चुका था। उसने मेरा पीछा किया और निकट आकर बोली—'ब्यूटीफुल फ़्लावर' अँगरेज़ी का वह उच्चारण उसके मुँह से बुरा नहीं सुनाई देता था। मैंने टेढ़ी अँगरेज़ी में पूछा—"दाम क्या ?" बेचारी की समझ में मेरी जटिल भाषा न आई। पास की एक दूसरी बालिका की ओर करुण नेत्रों से देखकर वह लौटने लगी, फूल मैंने ख़रीद लिया।

सेन-नदी की दूसरी ओर नोत्रदाम नामक पेरिस का प्रसिद्ध मन्दिर है। जिन लोगों ने यूगो (Victor Hugo) का 'हंचबैक आफ़ नोत्रदाम' नाम का उपन्यास पढ़ा है उन्हें स्मरण होगा कि उपन्यास का कथानक न्यायालय (प्राचीन राजप्रासाद) से आरम्भ होता है और उसका विकास होता है नोत्रदाम में, जहाँ क़ासिमोदो (Quasimodo) 'घंटे' (Bell) के बल झूल झूल कर प्रार्थना के समय की सूचना देता था। नोत्रदाम के इतिहास को यूगो ने ही प्रसिद्ध किया है। बहुत पहले इस मन्दिर में बेवक़ूफ़ों की बैठक होती थी, शराब की बोतलें तक ख़ाली होती थीं। पीछे, यहाँ ख़ीष्ट और उनकी मा की मूर्ति स्थापित हुई। क्रान्ति के समय जब लोगों में बुद्धिवाद का प्रचार हुआ तब उन्होंने ख़ीष्ट की मूर्ति फेंक दी और उसकी जगह वाल्टेयर की मूर्ति स्थापित की। वेदी पर उस समय वहाँ की एक नर्त्तकी का नाच होने लगा। क्रान्ति के बाद ख़ीष्ट अपनी मा के साथ फिर वहाँ स्थापित किये गये और आज-कल बहुतेरे देव-देवियों के साथ वे वहाँ निरापद भाव से विद्यमान हैं।

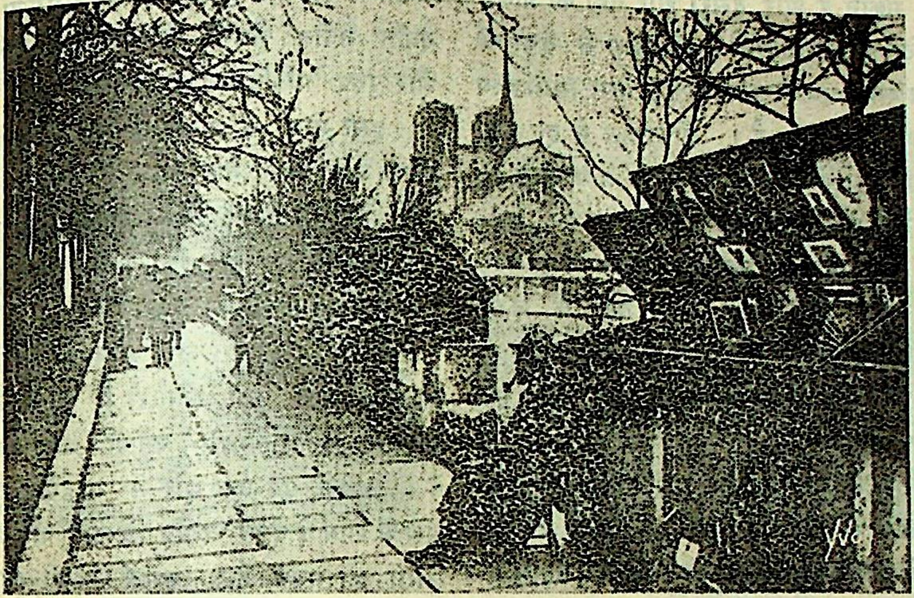
नोत्रदाम के ऊपर से पेरिस का दृश्य अच्छा दीख पड़ता है। ऊपर चढ़ने के लिए कोई लिफ़्ट नहीं है—सीढ़ियाँ बहुत हैं; पथ संकुचित है। काशी के वेणीमाधव के धौरहरे या ताजमहल के स्तम्भ में जैसा अंधकार छाया रहता है, उससे द्विगुण अंधकार नोत्रदाम की सीढ़ी में है। नोत्रदाम के ऊपर बहुत से पत्थर के 'शैतान' बैठे हैं। ये जीभ निकाले पेरिस के ऐश्वर्य्य पर व्यङ्ग्य-बाण कर रहे हैं। इनके निकट ही एक छोटी-सी कोठरी में एक छोटा-सा फ्रेंच-परिवार रहता है, जिसका काम दर्शकों के हाथ चित्र बेंचना है। पास ही नोत्रदाम का वह घंटा है जिसके बल क़ासिमोदो झूलता था।

नोत्रदाम से निकलकर मैं सेन (Seine) के तट की ओर गया। इसी ओर युनिवर्सिटी आदि भवन हैं। सेन-नदी के किनारे बहुत-सी दूकानें पुरानी पुस्तकों की हैं। इनके सामने वृद्धा स्त्रियों को पुस्तकें पढ़ते देख मुझे आश्चर्य्य हुआ।

सामने की एक गली से मैं पांथेयँ (Pantheon) की ओर गया। इसी गली के एक मकान में, मध्य युग के समय, महाकवि दांते रहते थे। पांथेयँ के भीतर ईसाई-धर्म्म के कई धर्माचार्यों के चित्र हैं। नीचे उन लोगों की क़ब्रें हैं जिन्होंने देश के हित बहुत-कुछ किया है। मज़े की बात यह है कि यहाँ सबसे पहले मिराबो (Mirabeau) को स्थान दिया गया—मरने के बाद! कुछ दिन बीतने पर लोगों ने निश्चय किया कि मिराबो देश का हितैषी नहीं था।

बस, मिराबो साहब निकाल दिये गये। मारा (Marat) की बारी आई। कुछ दिनों के बाद लोगों ने स्थिर किया कि मारा भी देशद्रोही था। मारा साहब निकाले गये! तब वाल्टेयर साहब आये। आप अभी तक हैं, शायद रह जायँगे। पांथेयँ में ही पास्का (Pascal), ज़ोला (Zola), रासीन (Racine) आदि साहित्यिकों की समाधियाँ हैं। यूगो भी यहीं विश्राम कर रहे हैं।

पांथेयँ के निकट ही युनिवर्सिटी, ललित-कला-विद्यालय, लक्सम्बर्ग का बाग़ आदि दर्शनीय स्थान हैं। ललित-कला-विद्यालय जगत्प्रसिद्ध है। लक्सम्बर्ग का बाग़ भी ख़ूब मशहूर है। इसके भीतर मोपांसां, फ़्लोबर्त आदि लेखकों की सुन्दर मूर्त्तियाँ हैं। इसकी एक ओर फ्रेंच



[ सेन के तट पर पुरानी पुस्तकों की दूकान—दूर में नोत्रदाम का मन्दिर ]



[ सेन के किनारे वृद्धा स्त्री पुस्तक पढ़ रही है ]

गवर्नमेंट के मकान हैं और दूसरी ओर यहाँ का प्रसिद्ध थियेटर ओदियँ (Odeon) है। इस बाग़ में वृक्षों की श्रेणी में जैसा सामञ्जस्य दीख पड़ता है, वैसा सामञ्जस्य मैंने और कहीं नहीं देखा है। ग्रीष्मकाल में इन वृक्षों की छाया में ही यहाँ के विद्यार्थी साहित्य-सभा करते हैं।

लक्सम्बर्ग से थोड़ी ही दूर पर लैटिन क्वार्टर है—इसी विभाग में यहाँ के चित्रकार, लेखक, कलाविद्, अध्यापक और गुणी लोग रहते हैं। यहाँ के किसी काफ़े (अर्थात् काफ़ी पीने के स्थान) में आप संसार की सभी भाषाओं को सुन सकते हैं। यह जगत् की संस्कृति का केन्द्र है।

यहाँ से मैं मेत्रो (Metro) के द्वारा माडलेन नामक गिरजाघर देखने गया। यह गिरजाघर पेरिस के अति आधुनिक लोगों का विवाह-मण्डप है। यहीं इन व्यक्तियों की प्रेमलीला आरम्भ (या शेष?) होती है।

माडलेन का नाम सभी विदेशियों को मालूम है, इसलिए नहीं कि यहाँ इस नाम का अति प्राचीन गिरजाघर है, पर इसलिए कि यहाँ जगत् के विख्यात पण्डे टामस कुक का कार्य्यालय है। यहीं आप संसार के लोगों से मिल सकते हैं। संसार के समाचार-पत्र यहाँ आसानी से मिलते हैं—भारतवर्ष के समाचार-पत्रों को छोड़ कर। अँगरेज़ों का तो यह मिलन-मन्दिर ही है; यहीं वे एक दूसरे से मिलते हैं। पेरिस के बीच भी इन लोगों ने एक छोटा-सा सुन्दर इँगलेंड बना रक्खा है। इससे मुझे इन लोगों के प्रति श्रद्धा होती है।

माडलेन से कुछ दूर पर ओपेरा (Opera) है। मैं इसे देख आया। विशाल भवन है। लंदन में सरकार-द्वारा परिचालित नाट्य-कला के लिए इतना बड़ा क्या कोई भी भवन नहीं; बर्लिन, वायना में भी नहीं। सुना है कि यही जगत् का सबसे बड़ा नाट्य-मन्दिर है। इसकी सीढ़ियाँ बहुत मनोहर हैं।

ओपेरा से लौटते समय मैंने उस मार्ग को भी देखा जिसमें फ़ैशन की चीज़ों की दूकानें हैं। इस मार्ग का नाम 'रू द ला पे' (Rue de la paix) अर्थात् शान्ति का मार्ग या सड़क है! मैं तो इसे आधुनिक योरप की अशान्ति का एक मुख्य कारण समझता हूँ। क्योंकि नवीन नवीन फ़ैशनों से चकराकर यहाँ के मनुष्य स्त्री और पुरुष प्रतिदिन हाय हाय कर रहे हैं!

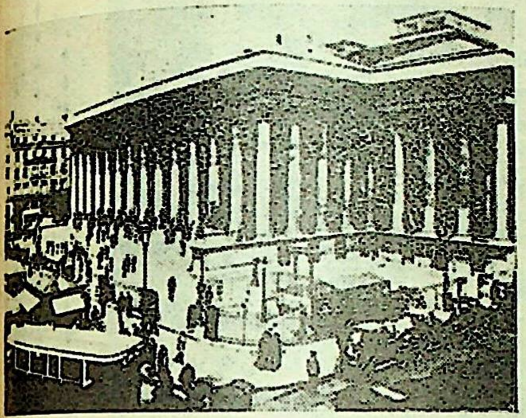
इसी मार्ग के अन्त में 'भांदो' नामक स्तम्भ है। इसके ऊपर कभी नेपोलियन विराजमान था, आज-कल कोई और ही हैं। निकट की एक दूकान में बाहर की अलमारी में एक हीरे का कंठहार था। इसका मूल्य लिखा था—अस्सी लाख रुपये!

फिर मैं माडलेन लौट आया। माडलेन जिस मार्ग के अन्त में है उसी मार्ग से मैं प्लास (Place) कोंकर्ड या कंकर्ड (Concorde) पहुँचा। यह पेरिस का एक केन्द्र है। इसके पूर्व एक छोर में माडलेन है; पश्चिम दूसरे छोर में शांब्र दे देपुते अर्थात् डिप्टी (पार्लिमेंट के सदस्य) लोगों का भवन है। इसमें डिप्टी लोग रहते नहीं, इनकी बैठक यहीं हुआ करती है। अभी हाल में इसी भवन में केलोग पैक्ट (Kellog Pact) पर राष्ट्रों ने हस्ताक्षर किये थे। इस मकान के निकट का मार्ग के दो से' (Quai d'orsay) संसार के राजनैतिक क्षेत्र में खूब प्रसिद्ध है। योरप की राजनीति का यह एक मुख्य केन्द्र है। यहीं प्रसिद्ध प्रसिद्ध संवाददाता (Journalists) और राजनैतिक नेता रहते हैं।

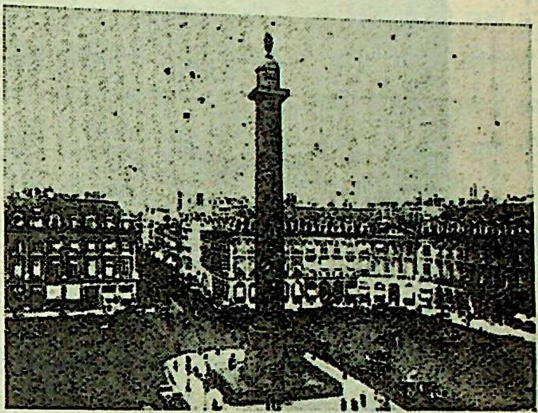
कंकर्ड (Concorde) के उत्तर एक छोर में नेपोलियन का विजय-स्तम्भ है (Arc de triomphe—आर्क द त्रिओंफ) है। दूसरे छोर में दक्षिण की ओर विश्व का सर्वोत्कृष्ट कला-भवन—लूव्र (Louvre)। कंकर्ड जिस उत्तर-दक्षिण पथ का मध्य भाग या केन्द्र है उस पथ का नाम (Champs Elysees) शँज़े लिज़े है। संसार में ऐसा सुन्दर, ऐसा मनोहर, ऐसा चित्ताकर्षक राज-पथ दूसरा नहीं। लोगों की ऐसी ही धारणा है। इसे देख कर मुझे इनकी धारणा में विश्वास हुआ।

कंकर्ड नामक स्थान का नाम पहले प्लास लुई था। क्रान्ति के समय लोगों ने लुई की मूर्त्ति (जो यहाँ थी) तोड़ डाली और इसका नाम क्रान्ति का स्थान (प्लास द ला रिवोल्युशियँ) रक्खा। फिर कुछ दिनों के बाद इसका नाम कंकर्ड हो गया। इसी जगह क्रान्ति के समय

गिलोटिन-(गिलोतॉ) नामक मारक यंत्र था। इसी यंत्र के नीचे पेरिस के कितने लोगों की—सम्राट् लुई की भी हत्या



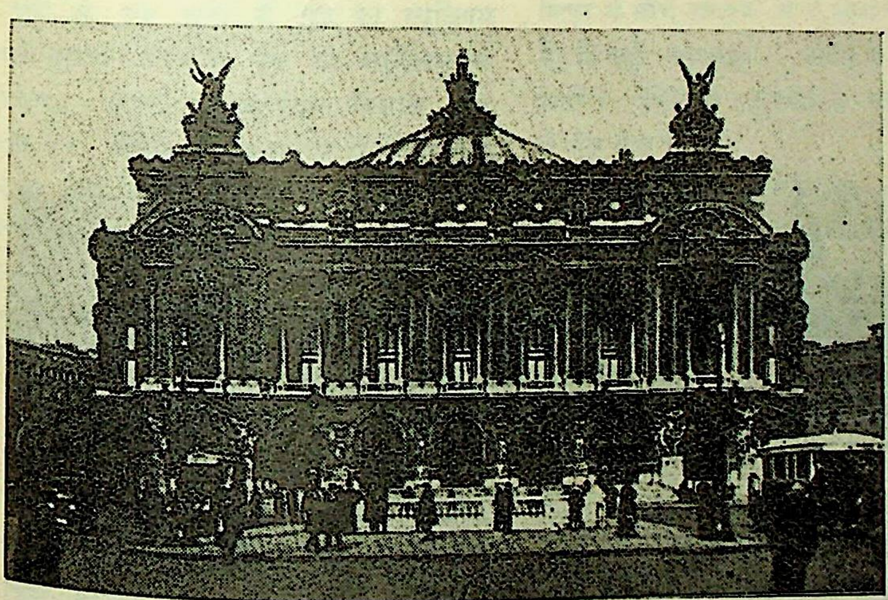
[ माडलेन ( एक ओर से ) ]



[ भांदों नामक स्तम्भ सामने की गली ही रू डि ला पे है ]

की गई थी। इस स्थान का वर्णन कार्लाइल ने ( अपनी पुस्तक फ्रेंच रिवोल्युशन में ) बहुत अच्छा किया है।

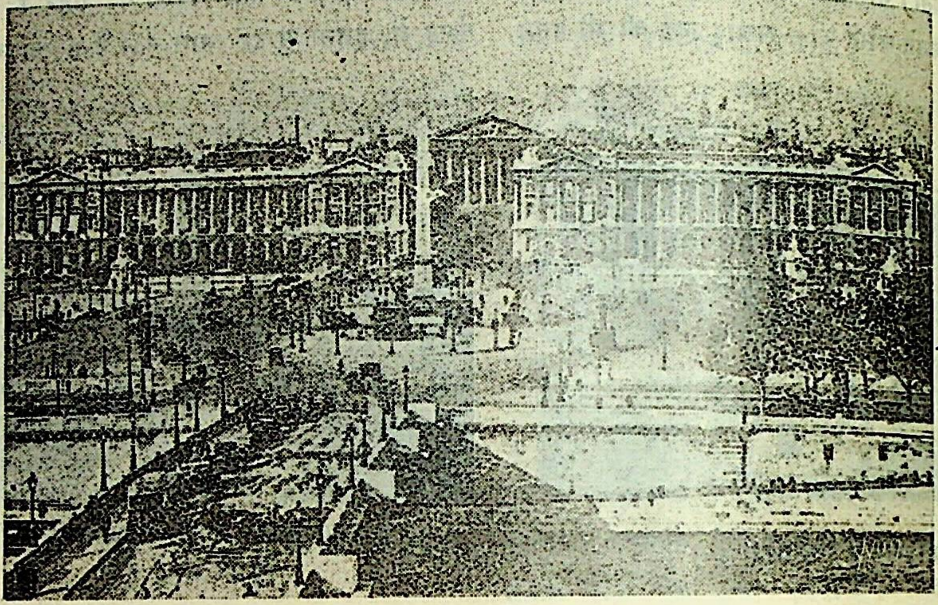
पेरिस को छोड़ कर और किसी बड़े शहर के भीतर, ठीक केन्द्र में, इतना सुन्दर बाग़ नहीं है। लंदन का हाइड पार्क शहर से दूर है; और बर्लिन में ऐसा कोई बाग़ है ही नहीं।



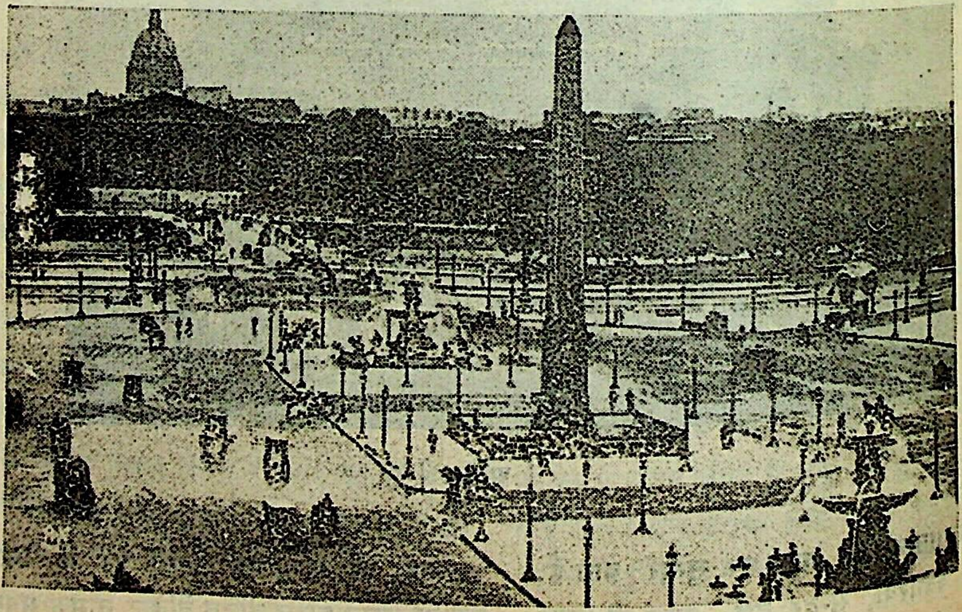
[ ओपेरा ]

कंकर्ड से लगातार लूव्र तक एक सुन्दर बाग़ है, जिसमें फूलों की क्यारियाँ, सुन्दर वृक्ष, पत्थर की देखने लायक मूर्त्तियाँ और एक छोटी सी कृत्रिम झील है।

यहाँ से फिर एक टैक्सी पर मैं नेपोलियन की समाधि देखने होटल डेज़िन वैलिड नामक भवन के भीतर गया। नेपोलियन की समाधि समतल से नीचे एक



[ प्लास कोंकुर, दूर में माडलेन चर्च ]



[ कोंकार, दूर में शांग दु देपुते ]

छोटे कूप के भीतर है। इस मृत योद्धा की समाधि के चारों ओर विजय के झंडे रक्खे हुए हैं। इनमें से कई फटे हैं, कई इतने मैले हो गये हैं कि उनके चिह्न मिट गये हैं। पर इससे क्या? नेपोलियन की कीर्त्ति अक्षुण्ण है; उसका यश उज्ज्वल है और रहेगा।

मैं देख ही रहा था कि एक चोबदार नीचे जाकर समाधि की धूलि साधारण झाड़ू से साफ़ करने लगा। न जाने क्यों, मुझे यह दृश्य करुण जान पड़ा।

समाधि के पीछे की ओर खीष्ट की मूर्त्ति है। इस मूर्त्ति के पीछे ऊँचे स्तम्भ पर नेपोलियन का एक वाक्य खुदा हुआ है; जिसका हिन्दी-रूपान्तर यह है—"मैं चाहता हूँ कि मेरी चिता-भस्म सेन के किनारे उन फ़रासीसियों के बीच रक्खी जाय जिन्हें मैंने ख़ूब प्यार किया!"

इस एक वाक्य से प्रत्येक फ़रासीसी के हृदय में गर्व का भाव उछलने लगता है और अपने पराक्रमी योद्धा की मृत्यु के लिए उनकी आँखें छलछला आती हैं।

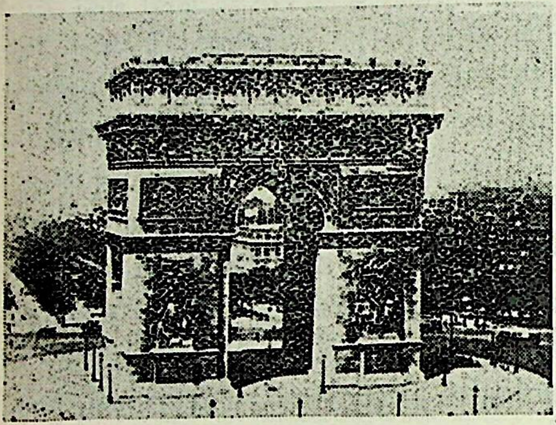
इन्वैलिड्स के भवन में युद्ध-विभाग का कार्य्यालय है। इसी के एक भाग में युद्ध का म्यूज़ियम भी है, जिसकी तुलना लंदन के ऐसे ही म्यूज़ियम से नहीं हो सकती। लंदन का म्यूज़ियम विशाल और अधिक व्यापक है। पेरिस के युद्ध-मन्दिर में भी सरस्वती की उपासना का चिह्न देखा—जगह जगह ऐसे सुन्दर चित्र खिंचे थे कि देखकर मैं चकित हुआ।

इस भवन से मैं एफ़ेल साहब की कीर्त्ति, उनका ऊँचा लोहे का स्तम्भ, देखने गया। यह संसार का सर्वोच्च स्तम्भ है। इसके ऊपर से फ़्रांस के सुदूरस्थित दृश्य चित्र की भाँति मनोहर दीखते हैं। सामने पेरिस का त्रोकादिरो (Trocadero) नामक महल बहुत अच्छा दीख पड़ता है; दूर से पेरिस का प्रसिद्ध गिरजाघर साक्रे कर (Sacre Coeur) आगरे के क़िले से ताजमहल की भाँति ज्ञात होता है।

शृङ्खला (discipline या order) का दास होना बुरा है, पर इसको तोड़ देना भी श्रेयस्कर नहीं। शृङ्खला लंदन में अत्यधिक है—पेरिस में इतनी कम कि नहीं के बराबर। इस स्तम्भ पर चढ़ने के समय मैं लिफ़्ट से ऊपर गया। टिकट चढ़ने और उतरने का था। पर जब मैं सब देख चुका और नीचे आने के लिए लिफ़्ट की अपेक्षा करने लगा तब एक चोबदार ने लम्बी सीढ़ी की ओर संकेत कर मुझसे कहा—अहा, देखिए तो सही! कितनी भड़कीली है वह सीढ़ी! मेरी इच्छा तो यह होती है कि मैं सदा चौबीस घंटे इसी से नीचे उतरा करूँ। मैंने बाधा देकर कहा—भाई साहब, तुम्हारी इस सदिच्छा में आपत्ति डालने की निष्ठुरता मैं न करूँगा! ख़ुशी से तुम नीचे जाओ। मैं यहीं से तुम्हारा कौशल देखकर प्रसन्न होऊँगा! चोबदार ने जब देखा कि मैं सीढ़ी से नहीं उतरूँगा तब उसने कहा—लिफ़्ट के आने में एक घंटा लगेगा! मैंने कहा—दस घंटे लग जायँ, मैं जाऊँगा लिफ़्ट से ही। मुझे असाधारण समझ कर चोबदार अन्यान्य यात्रियों को सीढ़ी से उतरने का सदुपदेश देने लगा। बहुतेरे लोग सीढ़ी से ही उतरने लगे। दस मिनिट में ही लिफ़्ट आया और 'भड़कीली सीढ़ी' से न उतर कर साधारण लिफ़्ट से ही उतरा। पैसे लेकर भी लिफ़्ट से नीचे उतारने में ये लोग क्यों आनाकानी करते हैं, मैं नहीं समझता। लंदन में ऐसी बातें कभी नहीं होतीं। पेरिस में शृङ्खला के अभाव का एक उदाहरण मैं और देता हूँ।

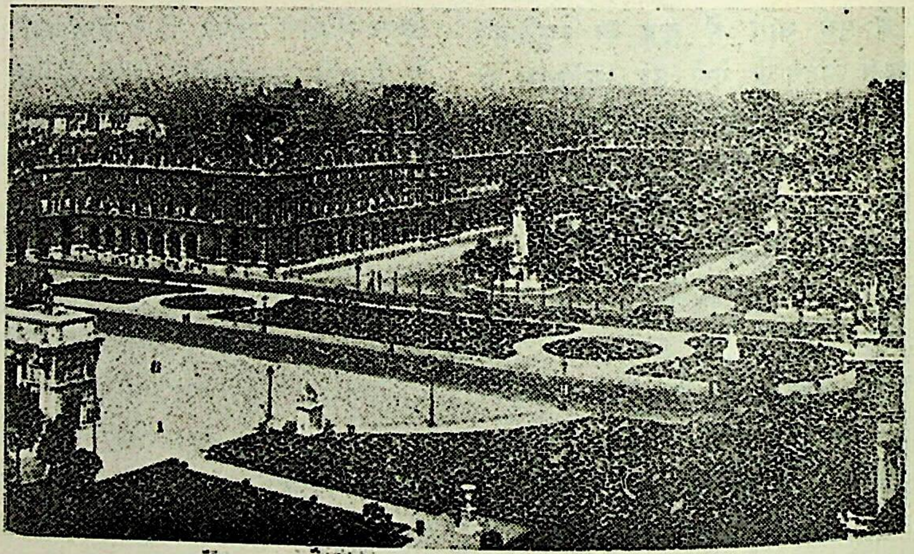
एक पुलिसमैन से मैंने पूछा—अमुक मार्ग किस ओर है। पुलिसमैन शौक़ीन आदमी था। तीन मिनिट तक वह अपने चार पाकिटों में न मालूम क्या ढूँढ़ता रहा। जब एक पुस्तक मिली तब मुझसे उसने कहा—साधुवाद! पुस्तक मिल गई! पर लाख चेष्टा करने पर भी आपको मार्ग का परिचय न मिला तब आपने फ़र्माया—देखिए साहब इन किताबवालों की मूर्खता! एक मार्ग का नाम तक नहीं देते। सो, आपको वहाँ जाने की विशेष आवश्यकता है क्या? मैंने कहा—हाँ! तब आपने उत्तर की ओर संकेत करके कहा—वह देखिए। एक लाल मकान है न? वही जिसके नीचे वह मोटा पुरुष कसरत कर रहा है। अहा, कैसा गठीला शरीर है! हाँ, तो उस मकान से आप सीधे पूरब की ओर चले जायँ और तब अमुक मार्ग

पर पहुँचे तब—"। हरे कृष्ण! यदि मैं अमुक मार्ग जानता ही तो इससे पूछता हीं क्यों! लंदन में आप



[ नेपोलियन का विजय-स्तम्भ ]

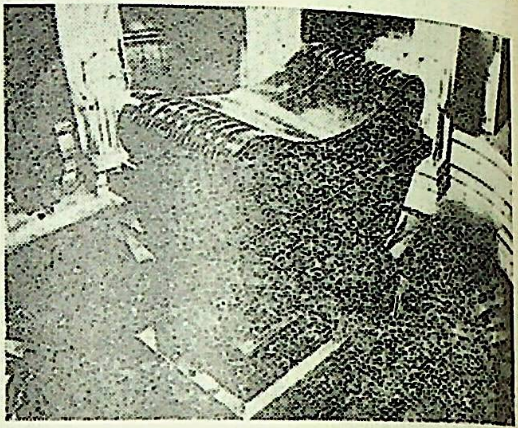
किसी जगह किसी पुलिसमैन से पूछिए—अमुक रास्ता किधर है? यदि वह मार्ग दूर होगा तो वह कहेगा,



[ लूव्र नामक कलाभवन ]

अमुक नम्बर बस से चले जाइए और अमुक स्थान पर उतर जाइए। यदि वह स्थान या मार्ग समीप हुआ तो वह कहेगा, 'फ़र्स्ट लेफ़्ट सेकंड राइट; देयर यू आर।' बस!

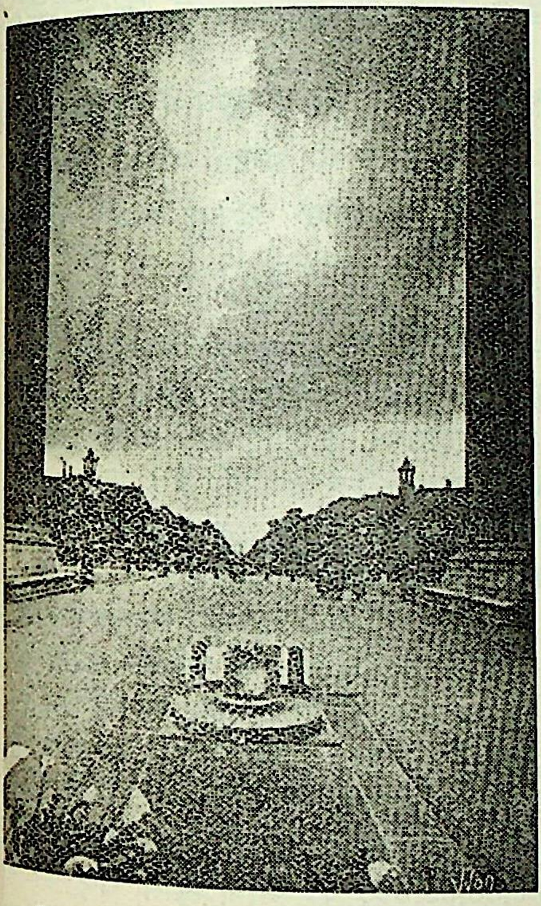
पर एक बात मैं अवश्य कहूँगा। लंदन का पुलिसमैन साहित्यिकों के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं



[ नेपोलियन की समाधि ]

जानता। हैम्पस्टेड में पुलिसमैन से पूछिए, कीट्स (Keats) का घर किधर है। वह पूछेगा, कौन सी सड़क जनाब? पेरिस में एक पुलिसमैन से मैंने पूछा—हाइन (Heine) की समाधि किस ओर है। वह आध मील तक मेरे साथ समाधि तक आया। फिर बड़े संकोच से उसने पूछा—आपने इसकी वह कविता पढ़ी

है क्या जो इसने आपके स्वदेश की एक नदी के सम्बन्ध में लिखी है? मैं इसके साहित्यिक परिचय से चकित हुआ। प्रश्न करने पर ज्ञात हुआ कि डूमा के सम्बन्ध में इसने अपने ग्राम में साहित्यिक व्याख्यान दिया है! इसी ने मुझे गोंकूर डूमा आदि की समाधियाँ दिखाईं।



[ रात के समय अज्ञात योद्धा की समाधि ]

एफ़ेल साहब के सर्वोच्च स्तम्भ से लौटकर मैं फिर सेन-नदी के किनारे कंकर्ड के पास आ गया। पास ही पेरिस का ख़ास कला-भवन था; भीतर जाने की इच्छा थी, पर वह बन्द हो चुका था। साँझ के समय लूव्र के निकट के आलोक मनोहर प्रतीत हो रहे थे। दूर नेपोलियन का विजयस्तम्भ और भी रहस्यपूर्ण दीखता था। घूमते घूमते मैं फिर इस स्तम्भ की ओर गया। इसी के नीचे फ्रांस का अनजान योद्धा ('unknown soldier या 'soldat inconnu') सो रहा है। यह समाधि क्या, चिता है! पृथ्वी के समतल में ही चतुष्कोण जगह घिरी हुई है। न तो कोई सजावट है, न एक व्यर्थ शब्द। मस्तक की ओर बराबर एक दीप-शिखा जलती रहती है, चिता की क्षीण जिह्वा की तरह लाल और करुण। चरणों की ओर फ़रासीसी में जो वाक्य लिखा है उसका अर्थ है 'स्वदेश के लिए मृत एक फ़रासीसी योद्धा यहाँ विश्राम कर रहा है!' लंदन के वेस्टमिनिस्टर में अनजान वीर की समाधि के ऊपर बहुत से वाक्य लिखे हैं, जिससे उसमें सादगी न रह सकी है!

मैं जा ही रहा था कि एक स्त्री अपने बच्चे को गोद में लिये वहाँ आ पहुँची। वह चिता की ओर एकाग्र-चित्त से देखने लगी। बच्चा मा के केशपाश से खेल रहा था; मा चुपचाप खड़ी थी। हवा के झकोरे से दीप-शिखा हिल रही थी। आंशिक अन्धकार में होने के कारण मैं उस स्त्री को स्पष्ट न देख सका। शायद उसकी आँखें डबडबा आईं; शायद उसके ओठ भी हिले। मृत-पति की स्मृति में मग्न इस नारी-मूर्त्ति की नीरवता में शब्दों से अधिक शक्ति थी। उसके मुख से वाक्य न निकले, पर जिन मर्मस्पर्शी अकथित शब्दों से यहाँ का वायुमण्डल थिरक उठा वे ये थे! देखते नहीं! मैं फिर आई; फिर आऊँगी—प्रति दिन, इसी समय, जब तक मैं जीऊँगी। और मैं जीती क्यों? तुम्हारे, अपने, हम लोगों के इस प्यारे शिशु के लिए!"

बच्चे ने एक कोमल थपकी से मा का स्वप्न दूर किया। मा चकराई; बच्चा हँसा। फिर मा भी हँसी, पर हँसी के भीतर आँसू की बूँदें छलक रही थीं। मैं आगे बढ़ा। विस्तृत पथ की छाती ट्रैफ़िक से फूल रही थी। दूर, सुदूर प्रान्त में, लूव्र के आलोक माया-पुरी के नक्षत्र की तरह चमक रहे थे। मैं चुपचाप, अकेला, उस ओर जाने लगा।

—कृपानाथ मिश्र

# संसार क्यों दरिद्र हो रहा है ?

[संसार की आर्थिक अवस्था इस समय बहुत ख़राब है। इस सम्बन्ध में जो लेखक अपने विचार प्रकट कर रहे हैं उनका जानना ज़रूरी है। इस लेख के लेखक श्रीयुत वर्मा जी ने आर्थिक दृष्टि से विचार किया है और इँग्लेंड के प्रसिद्ध अर्थशास्त्री श्रीयुत चामर्स के आधार पर यह लिखा है कि इस अवस्था का मूल-कारण सुवर्ण का अकाल है।]

‘सरस्वती’ के आक्टोबर के अङ्क में ‘संसार की आर्थिक दुरवस्था’ का किञ्चित् दिग्दर्शन कराने का हमने प्रयास किया था। उस मास से इस मास तक स्थिति बहुत बदल गई है। अवस्था दिन पर दिन ख़राब होती जा रही है। बड़ी गम्भीर परिस्थिति हो गई है। कोई भी देश सुखी नहीं है। संसार के प्रायः सभी देश विकट दरिद्रता का शिकार हो रहे हैं।

संसार की इस बढ़ती हुई ग़रीबी के कई कारण बतलाये गये हैं। कोई राजनैतिक परिस्थिति बताता है, कोई योरपीय देशों के पारस्परिक अविश्वास की दलील देता है और कोई सबसे प्रधान कारण भावी महासमर की तैयारी में करोड़ों रुपया ख़र्च करने की राष्ट्रों की होड़ बतलाता है। अन्तिम दलीलवाले कहते हैं कि भिन्न भिन्न देशों की सरकार सब रुपया बाज़ार से खींच कर यथासमय अपने अपने उपयोग में लाने के लिए एकत्र कर रही हैं—और उसे मशीन, बम, जहाज़ तथा रेल-तार आदि के बनाने में लगा रही हैं। कुछ अंशों तक ये कारण सत्य भी हो सकते हैं। किन्तु अर्थशास्त्र का साधारण ज्ञान रखनेवाला भी इन बातों को विशेष महत्त्व न देगा। इन कारणों का संसार के बाज़ार पर इतना अधिक प्रभाव नहीं पड़ेगा। सन् १९१४-१८ के महासमर के समय में भी बाज़ार इतने मन्दे न थे जितने अब हो गये हैं। संसार की इस आर्थिक दुरवस्था का मूल-कारण जानने के लिए बड़े बड़े अर्थशास्त्री प्रयत्न कर रहे हैं।

जर्मन-राजनैतिकों ने बड़ी योग्यता के साथ यह साबित कर दिया है कि यह अवस्था जर्मनी के प्रति किये गये राष्ट्रों के घोर अन्याय का परिणाम है। वे लिखते हैं—‘१९१९ में वार्सेले की सन्धि में जर्मनी के ऊपर आवश्यकता से अधिक तथा स्थिति के प्रतिकूल हर्जाना लादकर संसार के साम्राज्यवादी राष्ट्रों ने ६,००,००,००० की आबादीवाले राष्ट्र को नेस्त-नाबूद कर डालने की कोशिश की थी। रूर की घाटी पर क़ब्ज़ा कर लिया गया और जर्मनी के ऊपर एक बहुत बड़ी रक़म हर्जाने के रूप में बाँध दी गई। इसी बदनीयती ने आज यह गहरा रंग ला उपस्थित कर दिया है।’

जर्मनी पर एकाएक हर्जाने की भारी रक़म लद जाने से और रूर के हाथ से निकल जाने से देश के मुद्रा-चलन में गड़बड़ हो गया। ‘मुद्रादर’ गिर गई। देश की साख जाती रही और व्यापार एकदम नष्ट हो गया। यह हाल देख कर विजयी राष्ट्रों ने जर्मनी



दुर्जयसिंह का आखेट

से हर्जाना वसूल करने के लिए प्रसिद्ध 'डाये स्नान' की सृष्टि की गई। इस व्यवस्था के अनुसार बिना रुपया लगाये मुफ़्त में ही इँग्लेंड, फ़्रांस, बेल्जि-यम आदि के बाज़ारों में जर्मनी का बना लाखों रुपये का माल हर्जाने की अदायगी में आने लगा। जर्मनी का माल एक तो यों ही सस्ता होता है, दूसरे सस्ता होने के साथ ही घटिया भी होता है। इस कारण बाज़ारों में वह अन्य देशों के माल के मुक़ाबिले में घटिया उतरता था। पर जर्मन-सरकार अपने माल का दाम बढ़ाकर हर्जाने की रक़म में बढ़ाने के लालच से उसकी ज्यादा क़ीमत लगाकर भेजती थी। जिस सरकार के पास माल आता वह अपने काम भर का सामान लेकर बाक़ी बाज़ार में बेचकर रुपया उगाहने की चेष्टा करती। एक प्रकार से बाज़ार में ज़बर्दस्ती माल ठूँसने का प्रयास किया जाता। किन्तु महँगा और घटिया माल—और फिर एक शत्रु-देश का बना हुआ—कौन पूछे। सरकार भी अपनी चेष्टा से बाज़ न आती। परिणाम यह हुआ कि इँगलेंड, फ़्रान्स आदि की सरकारों ने स्वयं अपना बाज़ार बिगाड़ना शुरू किया। जर्मन-माल हरेक प्रकार के होते थे। कपड़े से लेकर सूई तक! इस प्रकार हरेक व्यवसाय को धक्का पहुँचने लगा। उधर अन्य देशों ने भी अपना प्रभाव डाला, जिससे सारे व्यवसाय चैापट हो गये।

यह कारण साधारण नहीं है। दूर तक विचार करने पर इसकी असाधारणता प्रकट हो जायगी। यह सोचने पर कि संसार के सबसे बड़े व्यापारिक क्षेत्र इँग्लेंड और फ़्रांस तथा अमरीका के बाज़ार चैापट बना कितनी बड़ी बात है, हम इस कारण की गुरुता समझ जायँगे।

अपने उपर्युक्त कथन की पुष्टि के लिए हम हाल में ही प्रकाशित बिजली के अँगरेज़ व्यापारियों के संघ* की रिपोर्ट की ओर पाठकों का ध्यान आक-र्षित करते हैं। साफ़ शब्दों में इस संघ ने सरकार से प्रार्थना की है कि 'जर्मनी से हर्जाना वसूल करने का ढङ्ग बदल दिया जाय। ब्रिटिश बिजली के सामान पर जर्मनी-द्वारा भेजे गये बिजली के सामान के लादने से व्यापार को धक्का पहुँच रहा है।' ब्रिटेन के बहुत से कारख़ानेवालों ने सरकार के पास भेजे गये अपने आवेदन-पत्रों में जर्मन-वस्तुओं के बेचने के सम्बन्ध में विरोध प्रकट किया है। उनका कहना है कि हानि के अलावा जर्मन-वस्तुओं का विज्ञापन भी ब्रिटिश-सरकार-द्वारा हो रहा है।

कुछ लोगों का ऐसा विचार हो सकता कि ऊपर लिखी बातें केवल जर्मन हर्जाने के विरोध के अलावा और कुछ नहीं व्यक्त करतीं, तो भी बात ठीक यही है कि इस बाज़ार के गड़बड़ तथा तैयार माल की बिक्री में विलम्ब तथा प्रतिस्पर्द्धा के कारण ही कच्चे माल का भाव इतना गिर गया है।

इसके सिवा सभी राष्ट्रों के हृदय में यह शङ्का जमती जा रही है कि भावी महासमर बहुत निकट है। अतएव सभी अपने पास रुपये का काफ़ी कोष रख छोड़ना चाहते हैं। फ़्रांस इस विषय में सबसे आगे है। मुद्रा-चलन में बिना धातु के सोने या चाँदी के नोट का कोई भी मूल्य नहीं है। चाँदी भी सोने के बल पर खड़ी होती है। अतः सोना सभी चाहते हैं। दुर्भाग्यवश सोने की उत्पत्ति भी इस वर्ष कम हुई है। अतः माँग अधिक होने के कारण सोना महँगा हो गया है। चाँदी का भाव गिर गया है। जहाँ जिनके पास चाँदी है वे उसे निकाल देना चाहते हैं। कम दाम पर चाँदी बेची जा रही है। फ़्रांस का 'बैंके दी फ़्रांस' चाँदी को पूछता भी नहीं है। सोने की इस खींचातानी में मुद्रा का लचकीला-पन भी जाता रहा है। विदेशी राज्यों को क़र्ज़ देने में भी हिचकिचाहट होती है। जर्मनी ने फ़्रांस में क़र्ज़ उगाहना चाहा था, पर फ़्रांस की सरकार ने ऐसा नहीं करने दिया। चाँदी के रूप में क़र्ज़ मिल सकता है। पर मन्दी चाँदी लेगा कौन?

*Association of the Electrical Trades.

किन्तु हमारे इस कथन के विरोध में भारत-सरकार का ताज़ा उदाहरण दिया जा सकता है। भारत की डाँवाँडोल परिस्थिति में अपने बजट की क्षतिपूर्त्ति के लिए १९३० का जो नया 'स्टर्लिंग लोन' ( क़र्ज़ ) लन्दन के बाज़ार में उगाहा गया है उसके विषय में लन्दन का संवाद है कि 'बैंक आफ़ इँग्लेंड' ने ज्योंही इस क़र्ज़ की सूचना दी, आध घण्टे के भीतर ही आवश्यकता से सातगुनी अधिक रक़म इकट्ठी हो गई और बैंक को हज़ारों उम्मीदवारों को नाउम्मेद करना पड़ा।'

बड़े मज़े का समाचार है। अर्थात् रुपये का—धन का लन्दन के बाज़ार में कोई टोटा ही नहीं है। किन्तु थोड़ा विचार करने से इस 'जल्दबाज़ी' का कारण साफ़ मालूम हो जायगा। आज-कल उद्योग-धन्धे पट पड़े हैं। रुपया लगाने के लिए कोई साधन-क्षेत्र नहीं है। रुपया बेकार पड़ा हुआ है। बैंक आफ़ इँग्लेंड की सूद की दर केवल ३ प्रतिशत बहुत समय से है। बैंक ने दर बढ़ाना नामञ्ज़ूर कर दिया है। ऐसी स्थिति में भारत-सरकार १९३६ में पूरी अदायगी का वादा करके क़र्ज़ लेती है। थोड़े समय के लिए अपना रुपया सभी अच्छे काम में लगाना चाहते हैं—और बड़ी उदारता के साथ भारत-सरकार 'एक हज़ार पौंड की दरख़्वास्त देनेवालों को १५ प्रतिशत और सौ पौंड की दरख़्वास्तवालों को ५० प्रतिशत सूद देने का वादा कर देती है!' क़र्ज़ लेनेवाला राष्ट्र इतना अधिक सूद दे सकता है, यह एक अभूतपूर्व घटना है। अभी फ़रवरी से मई (१९३०) के बीच में स्वयं ब्रिटिश-सरकार ने लन्दन के बाज़ार में क़र्ज़ उगाहा है—वह केवल ५ प्रतिशत सूद पर उगाहा गया है। दक्षिण अफ़्रीका, न्यूज़ीलेंड—यहाँ तक कि लन्दन के निकट के नगरों ने तथा बेलफ़ास्ट और बर्मिंघम के म्यूनिसिपल बोर्डों ने क़र्ज़ उगाहे हैं और कोई ४-४ तथा ५ प्रतिशत से नहीं बढ़ा है। वहीं १५ तथा ५० प्रतिशत की बात हो रही है। रह गई साख की बात! उसकी क्या चिन्ता है? भारत की सम्पूर्ण साख तो इँग्लेंड में ही है। भारत का सम्पूर्ण मुद्रा कोष अरबों का सामान तो 'बैंक आफ़ इँग्लेंड' के ही पास है।

अस्तु, यह दलील की बेकारी दूर करने के लि कृषि तथा अन्य अवस्था सुधारने के लिए क़र्ज़ लि सकता है, सरासर ग़लत है। इसका स्पष्ट अ यह हुआ कि मुद्रा-चलन लचकीला नहीं रह गया है संसार का सारा काम साख और क़र्ज़ पर होता है जब साख और क़र्ज़ दो में से एक भी न रहा त कैसे काम चलेगा?

ऊपर हम सोने की खींचातानी का उल्लेख कर आ हैं। अर्थ-शास्त्रियों का बहुमत यह स्वीकार क है कि संसार का सारा आर्थिक गड़बड़ इसी सोने के कारण है।

लन्दन के 'आइडियाज़' पत्र में मिस्टर ए चामर्स ने एक गवेषणापूर्ण लेख लिखा है। उ आप लिखते हैं—'उद्योग तथा व्यवसाय में जो विश्व व्यापी बर्बादी आ रही है उसका कारण सोने का अकाल है। संसार की सोने की बड़ी बड़ी ख ख़ाली हो गई हैं। सोना मिलने का कोई नया साध नहीं है। संसार के बड़े बड़े बैंक सोने के लिए ल रहे हैं। इसी कारण उद्योग-धन्धों को गहरा ध पहुँच रहा है।'

संसार में इस वर्ष केवल ९,००,००,००० पौंड का ही सोना निकाला जा सका है। यह हर स से बहुत कम है। इतने से संसार की ज़रूरत र नहीं हो सकती। इधर संसार के सभी देश सोने ही 'मुद्रा' बनाना चाहते हैं। चलन को स्थिर र देना चाहते हैं। अतएव सोने की ज़रूरत बेहद ब गई है। सन् १९२२ में जेनेवा में जो 'आर्थि सम्मेलन हुआ था उसमें स्पष्ट शब्दों में 'सोने अकाल' की चेतावनी दी गई थी। इसी चेताव के आधार पर ब्रिटिश बैंकों ने संसार के सभी

*एक पौंड साढ़े तेरह रुपये का होगा।

बैंकों के पास यह निवेदन-पत्र भेजा था कि मिलकर सुवर्ण-चलन का नियमन किया जाय। किन्तु पारस्परिक विश्वास के अभाव के कारण ऐसा न हो सका।

संसार के प्रमुख बैंकों ने अपने आवश्यकतानुसार सोना रखकर बाक़ी को संसार के लिए जहाँ सोना नहीं है वहाँ के उपयोग के लिए छोड़ देने के स्थान पर सारे प्राप्य सोने को दाब लेना चाहा, जिसका परिणाम यह हुआ कि छोटे छोटे राष्ट्र तबाह हो गये। किसी को भी अपनी ज़रूरत पूरी करने का अवसर न मिला। आगे के विवरण से पता चलेगा कि जिनको मौक़ा मिल गया उन्होंने कितना सोना अपने हाथ में कर लिया है।

फ़्रांस के पास ३५,००,००,००० पौंड का सोना है। इसमें से कम से कम २०,००,००,००० पौण्ड का सोना उसके पास बेकार पड़ा हुआ है। यदि इतना सोना संसार को मिल जाय तो कितना अधिक कल्याण हो। जहाँ भी कहीं से फ़्रांस को लेना-देना पावना था, सब उसने सोने में ही लिया-दिया है, और इस प्रकार गत १२ मास में उसने ७,००,००,००० पौंड का सोना संसार से खींच लिया है।

भारत का स्वर्ण-कोष अपने यहाँ रखने के अलावा इँग्लैंड के पास काफ़ी सोना है। यद्यपि वहाँ के अर्थशास्त्री तथा स्वयं मिस्टर चामर्स ठीक आँकड़े नहीं बतलाते हैं, तो भी कम से कम २५,००,००,००० पौंड का सोना उसके पास अवश्य है। इँग्लेंड को बहुत ग़रीब लिखते समय मिस्टर चामर्स केवल १५,००,००,००० पौंड ही बतलाते हैं। बैंक आफ़ इँग्लेण्ड भी अपना स्वर्ण-कोष फ़्रांस के समान करना चाहता है। अतः वह गुप्त रूप से अपने आदमी भेजकर साम्राज्य में प्राप्त होनेवाले सोने का प्रत्येक कण बटोर लेना चाहता है। 'बैंक आफ़ इँग्लेंड' के गवर्नर मिस्टर नार्मन दक्षिण-अफ़्रीका इसी लिए अभी गये थे। यद्यपि आपकी यात्रा का उद्देश गुप्त रक्खा गया था, तथापि बात खुल ही गई।

जब फ़्रांस तथा इँग्लेंड सोने के पीछे पागल हो रहे हैं तब अमरीका का संयुक्तराज्य कब पीछे रह सकता है। वहाँ की भी सरकार ने अपने सभी योरपीय क़र्ज़दारों को कड़ी हिदायत दे दी है कि उनको अपनी पाई पाई सोने में चुकानी होगी। इस प्रकार अकेले इँग्लेंड से ही ३,००,००,००० पौंड का सोना प्रतिवर्ष उसे मिलता है। फ़्रांस तो इससे भी ज़्यादा क़र्ज़दार है।

संसार के साथ यह कितना बड़ा अन्याय है, यह दूसरा प्रश्न है। संसार किस बुरी दशा को पहुँच रहा है, यह तो प्रत्यक्ष है, पर सोने के लोभी राष्ट्र अपना लोभ नहीं छोड़ सकते, यह उससे भी बढ़कर प्रत्यक्ष है।

मिस्टर चामर्स का कथन है कि संसार में जब कभी आर्थिक बर्बादी आई है, उसका कारण सोना ही रहा है। आपका कथन है कि ऐसे सङ्कट तीन बार आ चुके हैं। आज से तीन शताब्दियों के पहले एक बड़ा भयंकर स्वर्ण-अकाल पड़ा था और संसार का सारा कारोबार नष्ट हुआ चाहता था। उस समय ईश्वर ने स्पेननिवासियों में स्फूर्त्ति भर दी और उन्होंने 'नई दुनिया' को ढूँढ़ निकाला और वहाँ के सोने की खानों ने संसार का उद्धार किया। दूसरा सोने का अकाल क्रिपल क्रीक और क्लोनडाइक की खानों के पता लगाने से दूर हो गया। किन्तु तीसरा अकाल सबसे बुरा था। इँग्लेंड की तथा अमरीका की दशा उस समय बहुत ख़राब हो गई थी। किन्तु आर्थिक दुरवस्था का वास्तविक कारण किसी की समझ में नहीं आ रहा था। इसी समय अमरीका में नवीन राष्ट्रपति के चुनाव का आन्दोलन चल रहा था। एक सभा के सभामञ्च पर खड़े होकर ब्रियान नामक एक साधारण पत्र-रिपोर्टर ने संसार की दुरवस्था का कारण बतलाकर अपना नाम अमर कर लिया। उसने कहा था कि—

'तुम सोने के 'क्रास' पर मनुष्य-जाति का बलिदान करना चाहते हो।'

इसी के बाद दक्षिण-अमरीका में सोने की कई अच्छी अच्छी नई खानें मिल गईं और 'मनुष्य-जाति का बलिदान' रुक गया।

अब वही अकाल पुनः आ गया है, उन्नति का विशाल क्षेत्र पड़ा है। विज्ञान तथा कला ये अपनी चातुरी दिखलाने के लिए आतुर हो रहे हैं। पर पैसा नहीं है अब क्या होगा। इस बार उद्धार कैसे होगा। इसका उत्तर ईश्वर ही दे सकता है।

हम यह नहीं कहते हैं कि इस संसारव्यापी आर्थिक कष्ट का कारण राजनैतिक परिस्थिति, अन्तर्राष्ट्रीय कलह, पारस्परिक अविश्वास नहीं है—ये सब तो हैं ही, पर इनसे भी गूढ़ कारण तह में छिपे पड़े हैं। वे क्या हैं, यह हम यथाशक्ति लिख चुके हैं।

—परिपूर्णानन्द वर्मा

# महापुरुष कौन है?

छन्द मन्दाक्रान्ता

( १ )

श्री काशीजी, पहुँच कर मैं, रोज़ संध्या-सवेरे;
लेने जाता, प्रभु-भजन का, स्वाद गंगा-किनारे;
था मेले का, दिन बहुत से, लोग स्नानार्थ आये;
सोचा देखूँ, छबि मधुर मैं, आज ग्रामों-वनों की।

( २ )

खाना खाया, निज चिरसखा, रामजी को बुलाके—
दोनों साथी, ख़ुश ख़ुश चले, घूमने जंगलों में।
क्या शोभा थी! उस समय की, सूर्य प्यारा सुहाता;
जैसे घूमो, उस रविप्रभा से न था जी अघाता।

( ३ )

दो मस्ताने, पथधर चले, देखते ग्राम्य लीला;
फूले खेतों पर चुलबुले पक्षियों का रसीला—
गाना प्यारा, मगन मधुपों की छबीली ढिठाई,
देती शिक्षा, यदि धुन लगे तो सके हो कमाई।

× × ×

दोहा

हँसकर तब मैंने कहा, सुनो रामजी तात!
ये तरुवर देते हमें, शिक्षा क्या अवदात॥



शिखरिणी

मिला जो सन्देशा, वह तुम सुनो कान धरके;
चलें जल्दी काशी, पथ सुगम हो बात करते।
यहाँ पाते पूजा, जन बन महा भेद उनका;
बताता है प्यारे, तरुवर हमें मंत्र गुण का।

सोरठा

यान महाजन लोग, इस भवसागर गहन के।
वही तरन के जोग, सच्चा लक्षण जो गहे॥

मनहरण दण्डक

ताड़ के समान हैं महान लोग वे अनेक,
जो खड़े मनुष्य-कुंज पै ध्वजा उड़ाते हैं।
जाइए समीप आप देखिए अजीब बात,
अन्धभक्त ख्याति गातें डुग्गियाँ बजाते हैं।
देख ले उठाय आँख जो कहीं इन्हें महान,
अपने को धन्य मान सिर वे झुकाते हैं।
नीचता, अछूत, लाघवीयता का भाव भरें,
ऐसे नर रामजी महा नहीं कहाते हैं।

शिखरिणी

चले आगे आगे, मुदित मन आलाप करते;
कहीं भोले-भाले गृहपशु लखे घास चरते।

लगा भीना भीना, मृदु पवन सानन्द बहने;
तभी साथी बोला—"वह तरु अहा ताज पहने!"

× ×

भुजंगी

फिरा नेत्र जो सामने दृष्टि डाली;
दिखाई पड़ी वृक्ष-दीवार काली।
उसी में गड़ा एक झण्डा डराता—
सभी पास के पादपों को दबाता।

सरसी

जब आये हम रम्य कुञ्ज में, देखा दृश्य अजीब।
हैं सब वृक्ष ताड़ के सम्मुख, सिर नत किये ग़रीब।
निज लघुता का ज्ञान सभी में, रमा हुआ बलवान।
उपजाता मन में दर्शक के, करुणामय कम्पान॥

उन्नत मुख नभ में फैलाकर, दर्प भरा यह ताड़।
मानो कहे द्रुमों को तुम हो, अनुचर मैं सरदार॥
साथी बोला चकित नेत्र से—"देखा चित्र विचित्र!
क्या रहस्य इसका है मुझको, बतलाओ हे मित्र!"

× × ×

कुण्डलिया

वे नरपुंगव हैं महा, वही शाह सिरताज।
जो निज विमल चरित्र से, उन्नत करें समाज॥
उन्नत करें समाज, यथा चन्दन करता है;
चारों ओर सुगन्धि सदा रहता भरता है।
कहे 'देव' उत्थान, हो जिनके सत्संग से।
जी भर दें समभाव, महापुरुष हैं सत्य वे॥

—सत्यदेव परिव्राजक

# प्रतीकार

ठाकुर गजराजसिंह मुँह से सीटी बजाते हुए चले आ रहे थे। उनके घोड़े के पीछे पीछे दो लट्ठबंद सिपाही भी थे। अहीर के खेत से निकलते ही एक सिपाही ने कहा—"भैया, मेड़ मेड़ चलने से तो चक्कर पड़ेगा।"

ठाकुर साहब—"फिर?"

सिपाही—"यह सब आप के ही तो खेत हैं, बीच से चलो न।"

ठाकुर साहब ने अपना घोड़ा खेत में उतार दिया। दूसरे खेत की मेड़ पर मैकू अहीर बैठा चिलम पी रहा था। ठाकुर साहब को आते देखकर वह उठ खड़ा हुआ और हाथ जोड़ कर कहने लगा—"सरकार खेत में होकर न जायँ नहीं तो खेती का नाश हो जायगा। गेहूँ के पेड़ अभी छोटे हैं।"

ठाकुर साहब—"हम तो इधर ही से जायँगे। दूसरी तरफ़ से बड़ा चक्कर पड़ेगा।"

मैकू—"सरकार मैं मर जाऊँगा। सारा खेत चौपट हो जायगा।"

ठाकुर साहब ने बिगड़ कर कहा—"जो हो, मैं तो इधर ही से जाऊँगा।"

मैकू—"हुजूर, मैं ग़रीब हूँ मेरे ऊपर दया करो। यह खेत मेरी साल भर की रोज़ी है।"

एक सिपाही ने बीच ही में कहा—"अबे जिसकी ज़मीन बोता है उसी से ज़बान लड़ाता है।"

मैकू—"भाई, मैं क्या ज़बान लड़ाऊँगा। मैं तो बिनती करता हूँ। सरकार ही तो मेरे अन्नदाता हैं। इनसे ज़बान लड़ा कर कहाँ रहूँगा।"

ठाकुर साहब—"अच्छा, हट सामने से, देर हो रही है।"

मैकू—"सरकार, इधर से न जाओ, नहीं तो......"

ठाकुर साहब ने बीच में ही बात काट कर कहा—"नहीं तो, नहीं तो क्या? अबे साले क्या कुछ शामत आई है, जो मुझे धमकाता है। अभी यहीं खोद कर ज़िन्दा गड़वा दूँगा।"

दूसरा सिपाही—"साले, तेरी इतनी हिम्मत बढ़ गई है कि मालिक को धमकाता है। क्या करेगा, बोल साले क्या करेगा, हम तो इधर ही से जायँगे।"

मैकू—"भैया और सब करो, मगर गाली न दो। हमने खेत लेकर अपनी इज़्ज़त नहीं बेची है।"

गजराजसिंह ने अपने सिपाहियों से कहा—"मारो साले को, बड़ा इज़्ज़तवाला बना है।"

सिपाहियों ने उस ग़रीब को ख़ूब पीटा। चलते समय ठाकुर साहब ने कहा—"तुम सालों की जब तक जूतों से ख़बर नहीं ली जाती, अपने बराबर किसी को समझते ही नहीं। अब कहाँ गई वह सारी टर और इज़्ज़त।"

मैकू—"भैया भगवान् देखनेवाला है, वही सबकी इज़्ज़त रखता है।"

ठाकुर साहब चल दिये। घोड़े की टापों ने और सिपाहियों के जूतों और लाठियों ने बहुत सा खेत नष्ट कर दिया। घोड़े ने जो हरे हरे पौदे देखे तो जी ललचा आया और उसने भी मुँह चलाना शुरू किया। बेचारा मैकू किनारे बैठा बैठा अपने भावी सुख और आशाओं को इस प्रकार नाश होते देख रहा था। जब अत्याचारी उसकी दृष्टि से ओझल हो गये तब उस ग़रीब ने एक ठंडी

साँस ली और हाथ जोड़ कर कहा—"भगवान् इनको दया करना सिखा दो, जिसमें ये ग़रीबों को न सतावें।" इतना कहते कहते उसकी आँखों से आँसू बह चले और वह वहीं ज़मीन पर लेट गया।"

× × × ×

उस साल मैकू के खेत में कुछ न पैदा हुआ। दस बीघा ज़मीन में केवल आठ मन गेहूँ, चैत के लगान देने का भी सुभीता न था। उतने गेहुओं के बेंचने से लगान का भुगतान होता नहीं था। ठाकुर साहब का तक़ाज़ा बढ़ने लगा। रोज़ ही सिपाही दरवाज़े खड़ा रहता। एक दिन ठाकुर साहब ने उसे बुला भेजा और पूछा—"क्यों लगान देगा या नहीं।"

मैकू—"सरकार लगान न दूँगा तो जाऊँगा कहाँ।"

ठाकुर साहब—"तो फिर जमा कर।"

मैकू—"सरकार कुछ दिन की मोहलत दें।"

ठाकुर साहब—"अच्छा जा आज ही के दिन जमा कर जाना, नहीं तो फिर ख़ैरियत नहीं।"

मैकू सलाम करके चला गया। उसे बराबर इस बात की चिन्ता लगी रही कि किसी प्रकार लगान अदा किया जाय। उसने रुपया उधार लेने की कोशिश की, मगर किसी ने उसे उधार न दिया। आख़िर इसी उलझन में आठ दिन बीत गये और ठाकुर साहब का सिपाही फिर दरवाज़े पर आ खड़ा हुआ। मुर्झाये हुए दिल से वह उसके साथ चल दिया। ठाकुर साहब ने उसे आया हुआ देख कर कहा—'ला, रुपया दाख़िल कर।"

मैकू—"सरकार अभी तो रुपया जमा नहीं हुआ। कई जगह क़र्ज़ लेने गया, मगर कहीं भी न मिला।"

ठाकुर साहब ने कड़क कर कहा—"मैं कुछ नहीं जानता। आज मैं तुमसे रुपया लेकर ही छोड़ूँगा।"

मैकू—"तो अन्नदाता ही मुझसे रुक्क़ा लिखा लें, दूसरी फ़सिल में अदा कर दूँगा।"

गजराजसिंह—"मैं कोई महाजन तो हूँ नहीं जो रुक्क़ा लिखाऊँ। मैं तो रुपया लूँगा।"

मैकू—"अभी तो मेरे पास पूरे रुपये नहीं हैं।"

गजराज—"देख अभी यहीं रुपये निकलवाता हूँ।" इतना कह कर उन्होंने अपने सिपाही से कहा—"मारो साले को।" बेचारे मैकू पर मार पड़ने लगी, परन्तु मार से कहीं रुपये तो पैदा हो नहीं जाते। अन्त में थक कर गजराजसिंह ने उसे छोड़ दिया और अपने सिपाहियों को आज्ञा दी कि जाकर इसके घर में जितना गेहूँ हो उठा लाओ। मैकू के विनय पर रत्ती भर ध्यान न दिया गया। थोड़ी देर में सारा गेहूँ उठ आया। और १३) पर बेच दिया गया। जब मैकू घर जाने लगा तब ठाकुर साहब ने कहा—"देख कल बाक़ी १३) भी आ जायँ, नहीं तो ठीक न होगा।"

एक सिपाही ने व्यंग्यपूर्वक पूछा—"और अब तुम्हारी वह इज़्ज़त कहाँ है जिस पर तुम्हें इतना गर्व है।" मैकू ने धीमे स्वर में कहा—"भैया, वह इज़्ज़त अब भी मेरे दिल में है।"

इतना कहकर मैकू घर चला गया। घर पर बच्चे और बीबी सभी रो रहे थे। अब उसका धैर्य भी टूट गया और वह फूट फूट कर रोने लगा। उसकी स्त्री ने कहा—"भगवान्, ऐसों का नाश हो! इनके वंश में कोई पानी देनेवाला न रहे!"

मैकू—"हाँ हाँ यह क्या, कोस क्यों रही है? जिसका इतने दिन नमक खाया है उसी को कोसती है। दुनिया क्या कहेगी?"

स्त्री—"दुनिया उसका अत्याचार भी तो देखती है।"

मैकू—"वे मालिक हैं। दुख भी देते हैं और पालते भी हैं। भगवान् चाहेंगे तो फिर अपने दिन फिरेंगे"।

स्त्री चुप हो रही। मैकू ने कहा—"अब बताओ कि अब बाक़ी १३) कैसे अदा होंगे। उन्होंने कल ही जमा करने को कहा है और अगर जमा न हुए तो बड़ी मुसीबत आयेगी।"

स्त्री—"नाज तो रहा नहीं, अगर चाहो तो मेरे कड़े गिरवी रख दो, फिर छुड़ा लेना।"

मैकू ने सिर झुका लिया और फिर अश्रुपूर्ण नेत्रों से अपनी स्त्री की ओर देखा। उन आँसुओं की ओट में गर्व था और प्रेम था। उस अशिक्षिता स्त्री ने बात में

अपने नेत्र झुका लिये और फिर धीरे धीरे अपने पैर से खड़ुये उतार कर मैकू के सामने रख दिये। मैकू उनको लेकर बाज़ार चला गया और उन्हें २५) पर गिरवी रख कर ठाकुर साहब का लगान उसी दिन चुका दिया। जब वह रुपये देकर चलने लगा तब ठाकुर साहब ने कहा—"देखा अगर जूते से पूजा न की जाती तो क्या ये रुपये वसूल होते।"

मैकू बिना कुछ कहे चला आया, परन्तु उसकी मुसीबतों का अभी अन्त न होना था। दो दिन के बाद ही उसके पास कचेहरी में हाज़िर होने को सम्मन आया। ठाकुर साहब उसे बेदख़ल करना चाहते थे। बेचारा मैकू सहम उठा। हृदय ने कहा—"अब कैसे निर्वाह होगा?" परन्तु शीघ्र ही जी में आया, "जिस ईश्वर ने पैदा किया है वही खाने को देगा।" दो दिन बाद वह कचेहरी गया। बहुत विनती करने पर भी डिप्टी साहब ने बेदख़ली की अर्ज़ी स्वीकार कर ली। शाम को जब वह घर आया तब उसका मुँह उतरा हुआ था। स्त्री उसे उदास देखकर ही सारा मर्म जान गई। उसने धैर्य बँधाते हुए कहा—"तो सोच काहे का है, अगर खेत निकल गये तो कुछ भूखे थोड़े ही मर जायँगे। यहाँ न सही और ही कहीं चल कर पेट पालेंगे।"

मैकू की आँखों में आँसू भर आये। उसने कुछ समय बाद कहा—"सोच खाने-पीने का थोड़े ही है। मुझे तो इस बात का दुख है कि जिन खेतों को दो पुश्तों से हमारे ही ख़ानदानवाले जोतते-बोते थे वे अब हमारे हाथ से निकल गये। जिस मालिक का इतने दिनों तक नमक खाया उसी ने हमें निकाल दिया है।"

स्त्री—"होगा, जो मालिक बिना अपराध के दुख दे वह मालिक नहीं।"

मैकू—"मैंने उसका नमक खाया है। मैं तो कभी उसके लिए ऐसा नहीं कह सकता।"

स्त्री—"तुम न कहो, मैं तो कहूँगी। वही इनके बाप भी तो थे। कभी बेजा बात न कहते थे। तुमको कितनी बार मदद दी। तुम्हीं को क्या, अपने सभी पुराने खेत जोतनेवालों को मानते थे और एक ये हैं जो उनको ढूँढ़-ढूँढ़ कर निकालते हैं।"

मैकू ने कुछ उत्तर न दिया। उसकी आँखों से आँसू बह रहे थे।"

परन्तु मुसीबतें एक साथ ही आती हैं। मरते हुए को मारना ही संसार का नियम है। बली और धनाढ्य से कोई नहीं बोलता। अत्याचार का चक्र चलता है तो ग़रीब पर। मैकू भी इस अत्याचार का केंद्र हो रहा था। दूसरे दिन आधी रात को किसी ने उसके घर में आग लगा दी। बेचारा बड़ी कठिनाई से अपने बच्चों और कुछ आवश्यक चीज़ों को लेकर बाहर निकल सका। सारा घर जल कर राख हो गया। ग़रीब मैकू हताश होकर एक किनारे बैठा रो रहा था। स्त्री और बच्चे अलग विलख रहे थे। एक दयावान् पड़ोसी ने उन्हें अपने घर में शरण दी। खेत भी गया, घर भी गया।

अकेले में उस पड़ोसी ने कहा—"भाई मैकू, तुमने ठाकुर से क्यों लड़ाई मोल ली? क्या जानते नहीं थे कि वह कैसा नीच है?"

मैकू—"भाई, मैंने जान-बूझ कर लड़ाई तो मोल नहीं ली। मैं तो उनको अपना मालिक ही समझता हूँ।"

पड़ोसी—"भाई, ऐसा मालिक किस काम का जो घर में आग लगवा दे।"

मैकू—"इसमें उनका दोष नहीं, यह मेरे भाग्य का फल है।"

दूसरे दिन लोगों ने देखा कि मैकू जा रहा है। पूछने पर विदित हुआ कि वह गाँव ही छोड़ रहा है। बहुतों ने समझाया और उसे रोकना चाहा, पर उसने किसी की न सुनी। उसके मित्र रो रहे थे।

गाँव के बाहर गजराजसिंह मिले। मैकू ने हाथ जोड़कर कहा—"भैया, जाता हूँ राम राम।" इतना कहते कहते उसकी आँखों से आँसू निकल आये। उसने सिर झुका लिया और आगे बढ़ा। गजराजसिंह ने कहा—"मैकू, अब कभी किसी ठाकुर से न भिड़ना।" मैकू ने कुछ उत्तर न दिया। उसने अन्तिम बार ठाकुर साहब और अपने गाँव की ओर देखा और चल दिया।

× × ×

मैकू को लखनऊ आये दो वर्ष बीत गये थे। गाँव से आकर वह एक सज्जन की कृपा से पेपरमिल्स में दस आने रोज़ पर नौकर हो गया था। उसकी स्त्री भी एक जगह काम करने लगी। उनके दिन अब शान्तिपूर्वक बीतने लगे। दोनों ने धीरे धीरे एक भैंस भी मोल ली, जिसके दूध आदि से वे कुछ न कुछ पैदा कर लेते थे। दोनों लड़के दिनभर उस भैंस की देख-भाल करते थे और उसे चराने को ले जाते थे। दूसरे साल के अन्त तक एक और भैंस मोल ली गई।

पेपरमिल्स के पास ही मैकू का छोटा सा झोपड़ा था। सामने ही गोमती बहती थी। झोपड़े के चारों ओर फूलों के वृक्ष थे। काम से छुट्टी पाकर मैकू और उसके लड़के अपने छोटे से बग़ीचे में काम करते थे। या कभी कभी पड़ोसियों से बात-चीत करने में अपना समय बिताते थे। मैकू की सचाई और उसके प्रेमभाव ने सबको अपना लिया था। छोटे-बड़े, अमीर-ग़रीब, सभी मैकू से प्रसन्न थे; सभी उसकी सहायता करने को तैयार रहते थे।

एतवार का दिन था। वह अपने झोपड़े के सामने ही गोमती के किनारे बैठा हाथ-मुँह धो रहा था कि उसके लड़के ने चिल्ला कर कहा—"बापू, देख वह कोई आदमी बहा जा रहा है।"

मैकू ने देखा। सच ही कोई मनुष्य था। वह बिना सोचे-समझे ही पानी में कूद पड़ा। तेज़ लहरों को काटता हुआ वह शीघ्र ही उसके पास जा पहुँचा और बड़ी कठिनाई से खींचकर झोपड़े की ओर ले आया। पानी से निकाल कर उसने शीघ्र ही उसे उल्टा कर दिया। बहुत सा पानी निकला। फिर वह उसे भीतर ले गया और गरम गरम रुई के पहलों से उसके पेट को सेंकने लगा।

युवक किसी बड़े घर का था। उसके कपड़े बहुमूल्य थे और मुख सुन्दर और निर्मल। मैकू ने अपनी स्त्री से कहा—"मुझे तो ये नीरू बाबू से लगते हैं।"

स्त्री ने कहा—"पर वे यहाँ कैसे आयेंगे?"

मैकू—"यही तो मैं भी सोचता हूँ। वे तो वहीं सीतापुर में पढ़ते थे।"

स्त्री—"ईश्वर न करे ये नीरू बाबू हों, क्योंकि मैं उस खानदान के किसी भी मनुष्य को सहायता देना नहीं चाहती।"

मैकू—"तू बड़ी खोटी है, तेरे हृदय में कपट है। भला उस खानदान ने तेरा क्या बिगाड़ा है? तुझे तो दुःख दिया है ठाकुर साहब ने न कि उनके खानदानवालों ने। फिर तू पूरे खानदान से क्यों रुष्ट है?"

स्त्री—"वह कुटुम्ब तुम्हीं को प्यारा होगा। मुझे तो फूटी आँखों नहीं भाता! तुम तो अब भी ठाकुर साहब के पैर चाटने को तैयार हो।"

मैकू—"मेरी तो हड्डी हड्डी उसी वंश के नमक से बनी है।"

मैकू की स्त्री ने मुँह फेर लिया। मैकू धीरे धीरे उस युवक को सेंकने लगा। उसकी आँखें उसी के मुख पर थीं, परन्तु उसका मन कहीं और भ्रमण कर रहा था। इसी समय युवक ने आँखें खोलीं। चारों ओर देखकर उसने अपने बड़े बड़े नेत्र मैकू पर जमा दिये। वह कुछ पूछना चाहता था, परन्तु मुख से एक शब्द भी न निकलता था। मैकू उसके भावों को समझ गया। उसने धीमे स्वर में कहा—"बाबू, अभी तुम बोलो-चालो न।"

युवक ने आँखें बन्द कर लीं। धीरे धीरे उसे ज्वर चढ़ने लगा। मैकू उसकी बिगड़ती दशा देखकर चिंतित होने लगा। उसकी स्त्री ने कहा—"देखो, किसी और को दिखा कर सलाह लो कि क्या करना चाहिए। किसी तरह इनके घर भी ख़बर भेजना चाहिए, जिससे अपने ऊपर कोई बात न आये।"

मैकू चला गया। पास ही एक दफ़्तर के बाबू रहते थे। मैकू ने जाकर उनसे सारा हाल बतलाया और पूछा कि अब क्या करना चाहिए। बाबू ने आकर देखा, बुख़ार बहुत था। उन्होंने कहा—"भाई, अब तो किसी डाक्टर को दिखाना चाहिए। ईश्वर जाने कैसी चटऔचट पड़े।"

मैकू और वह बाबू पास ही रहनेवाले एक परिचित डाक्टर के घर गये और उनको बुला लाये। डाक्टर भी

सज्जन थे, एक अजनबी युवक को इस प्रकार बीमार देखकर उन्होंने बिना फ़ीस आदि लिये काम करना स्वीकार किया। उन्होंने जाकर रोगी की परीक्षा की और तब कहा—"मैकू, तुम्हारे कारण इनकी जान तो बच गई, परन्तु अधिक पानी पी जाने के कारण बुख़ार हो आया है।"

मैकू—"डाक्टर साहब कोई डर तो नहीं है।"

डाक्टर—"नहीं, दो-चार दिन में ठीक हो जायँगे। यदि तुम चाहो तो इन्हें बड़े अस्पताल भेज दो। तुम्हारे ऊपर ख़र्च पड़ेगा।

मैकू—"सरकार, आप ही लोगों का दिया हुआ तो खाता हूँ, फिर मुझ पर क्या ख़र्च पड़ेगा। ख़र्च तो आप सब पर पड़ेगा। मेरे पास जो कुछ है, हाज़िर है। इधर-उधर भेजने में इन्हें कष्ट होगा।"

डाक्टर साहब मैकू की सहृदयता देखकर चकित हो गये। उन्होंने दवा भेज दी और स्वयम् पुलिस-चौकी पर जाकर थानेदार से उस युवक के विषय में पता लगाने को कहा। थानेदार ने पूछा—"क्या वह बोल नहीं सकता ?"

डाक्टर—"नहीं, उसमें इतनी शक्ति नहीं और ज्वर के कारण कुछ कुछ बेहोश भी है।"

थानेदार ने जाकर युवक की तलाशी ली कि कदाचित् कोई काग़ज़ आदि मिल जाय जिससे उसका पता लगाने में सहायता मिले, पर कुछ हाथ न आया। मैकू ने अंत में थानेदार साहब से कहा—"हुज़ूर, मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि यह भीखमपुर के ज़मींदार ठाकुर गजराजसिंह के लड़के हैं। दो साल पहले सीतापुर में पढ़ते थे। अब मैं नहीं जानता कि यहाँ कहाँ हैं।"

थानेदार—"तब तो यहाँ किसी कालेज के बोर्डिङ्ग में रहते होंगे।"

इतना कहकर थानेदार साहब चले गये। शाम को वे एक अँगरेज़ को साथ लेकर फिर आये। उस अँगरेज़ ने युवक को देखकर अँगरेज़ी में कहा—"हाँ, यह हमारे ही कालेज में पढ़ता है और मेरे होस्टल में रहता भी है।" फिर मैकू की तरफ़ देख कर पूछा—"क्या तुम्हीं ने इसे नदी से निकाला है ?"

मैकू—"हाँ हुज़ूर।"

साहब—"वेल, हम तुमसे बहुत ख़ुश है, लो।" इतना कह कर उन्होंने मैकू के हाथ में दस रुपये का नोट रख दिया। मैकू ने उसे लौटाते हुए कहा—"हुज़ूर, मैं किसी तरह का इनाम नहीं चाहता। मैंने तो वही किया जो हर एक आदमी को करना चाहिए।"

साहब उसकी उदारता देखकर बहुत प्रसन्न हुए। मैकू ने फिर पूछा—"हुज़ूर, इनका क्या नाम है और कहाँ के रहनेवाले हैं।"

थानेदार साहब—"तुमने जो कुछ कहा था, ठीक ही है। ये ठाकुर गजराजसिंह के लड़के हैं और यहाँ क्रिश्चियन कालेज में पढ़ते हैं।"

इसी समय साहब ने कहा—"इन्हें ले चलना चाहिए। यहाँ ठीक प्रकार से दवा का प्रबन्ध नहीं हो सकता और यह जगह शहर से दूर है, सहज में आना भी कठिन है।"

मैकू—"हुज़ूर, इन्हीं का नमक खाकर पला हूँ। इनके लिए मेरी जान तक हाज़िर है। यहाँ इन्हें किसी प्रकार का कष्ट न होने पायेगा। यदि आप उचित समझिए तो यहीं रहने दीजिए, नहीं तो जैसी आपकी मर्ज़ी हो।"

साहब—"नहीं इनका ले जाना ही अच्छा होगा।"

मैकू—"जैसी हुज़ूर की ख़ुशी हो कीजिए, मगर मेरी एक विनती स्वीकार हो।"

साहब—"बोलो बोलो, तुम क्या चाहता है ?"

मैकू—"हुज़ूर, यदि इनके पिता आयें तो मेरा नाम उनको न बतलायें।"

साहब—"क्यों ?"

मैकू—"हुज़ूर, वे मुझसे नाख़ुश हैं ! इसलिए मैं उनके सामने जाते डरता हूँ।"

साहब की आँखें मैकू के मुख पर थीं। उनमें विस्मय था और प्रशंसा।

नीरू को गये कई दिन बीत गये थे। मैकू नित्य ही उनका हाल लेने जाता था। बुख़ार अभी तक नहीं उतरा था। उनके पिता भी आ गये थे। मैकू कभी

ठाकुर साहब के सामने नहीं गया। बाहर ही बाहर जाता और चला आता। एक दिन ठाकुर साहब ने वार्डन से पूछा—"क्या आप जानते हैं कि किस मनुष्य ने मेरे लड़के के प्राण बचाये हैं?"

वार्डन—"हाँ जानते तो हैं, परन्तु हम उससे प्रतिज्ञा कर चुके हैं कि उसका नाम न बतलायेंगे, इसलिए आशा है, आप क्षमा करेंगे।"

ठाकुर साहब—"उसने आपसे ऐसी प्रतिज्ञा क्यों ली?"

वार्डन—"यह तो वही जाने।"

ठाकुर साहब—"वह कैसा आदमी है।"

वार्डन—"बहुत ग़रीब, पर अति उच्च विचार का।"

ठाकुर साहब—"इससे तो उसी की हानि हुई। यदि मैं उसे पाता तो कुछ इनाम देता।"

वार्डन (हँसकर)—"वह इनाम का भूखा नहीं। वह दरिद्र है? तो भी लालची नहीं। उसके हृदय में मनुष्यत्व है। वही यथार्थ में मनुष्य है।"

ठाकुर साहब—"आप कैसे जानते हैं कि वह इनाम का भूखा नहीं?"

वार्डन—"मैंने उसे दस रुपये दिये, परन्तु उसने वापस कर दिये।"

ठाकुर साहब—"दरिद्रों में ऐसे विचार! आश्चर्य है।"

वार्डन साहब चले गये। ठाकुर साहब सोचने लगे कि कैसा विचित्र आदमी है। उपकार का बदला नहीं चाहता। ऐसे विचित्र मनुष्य को तो देखना ही होगा। नीरू अच्छा हो ले तो फिर मैं उसका पता लगा ही कर छोड़ूँगा।

मगर नीरू शीघ्र अच्छा न हुआ। दो सप्ताह बीत गये थे, परन्तु ज्वर अब भी रहता था। डाक्टर पर डाक्टर आते थे। आख़िर तीन सप्ताह पश्चात् नीरू का ज्वर छूटा, मगर दुर्बल इतना हो गया था कि चलना-फिरना कठिन था। डाक्टरों ने कुछ दिन आराम करने की सलाह दी थी। ठाकुर साहब को इसी कारण रुकना पड़ा। मैकू को भी ये सब हाल मिलते रहे।

जब नीरू कुछ चलने-फिरने लगा तब एक दिन ठाकुर साहब ने पूछा—"नीरू, बता तू कैसे नदी में गिरा और किसने तुझे बचाया?"

नीरू—"पिताजी, मैं वायु-सेवन के लिए बाँध की ओर गया था। बाँध के किनारे खड़ा मैं पानी की शोभा देख रहा था। इसमें मैं इतना लीन होगया कि मुझे अपने तन की सुध न रही और मैंने पैर आगे बढ़ा दिया। पैर बढ़ाते ही मैं गहरे पानी में जा रहा और डुबकियाँ खाने लगा, अन्त में बेहोश हो गया। जब मुझे फिर होश आया तब मैंने अपने को एक दरिद्र, परन्तु अति सज्जन मनुष्य के पास पाया, वह मेरे पास बैठा मेरी सेवा कर रहा था।"

ठाकुर साहब—"क्या तुम उस मनुष्य को पहचान सकते हो?"

नीरू—"हाँ, वह मुझे परिचित सा जान पड़ता था। क्या आप अभी तक उससे मिले नहीं?"

ठाकुर साहब—"मिलता कैसे? वार्डन साहब से पूछा, मालूम हुआ कि उसने उनसे प्रतिज्ञा ली है कि उसका नाम किसी को न बतावेंगे।"

नीरू—"यह क्यों?"

ठाकुर साहब—"कुछ पता नहीं, कोई बात तो अवश्य ही होगी।"

नीरू—"जो कुछ भी हो, मैं तो उसे ढूँढ़ ही निकालूँगा।"

ठाकुर साहब—"अवश्य, उसे इस उपकार के बदले में कुछ देना चाहिए।"

नीरू—"उसने मेरी जान ही नहीं बचाई, वह मुझे अपने घर से यहाँ न भेजना चाहता था। वार्डन साहब मुझसे कहते थे कि वह मुझे अच्छी तरह जानता है और इसी से मेरी सेवा करना चाहता था।"

ठाकुर साहब—"बड़े आश्चर्य की बात है। अच्छा तो किस दिन चलोगे?"

नीरू—"दो-चार दिन बाद।"

× × ×

चार दिन बाद सुबह को नीरू और उसके पिता मैकू को ढूँढ़ने निकले। यह वही मैकू था जिसको ठाकुर

सिंह ने जूतों से पिटवाया था, जिसके खेत छिनवा लिये थे और जिसके घर में आग लगवा दी थी और आज अपने पुत्र का रक्षक समझ कर उसी को ढूँढ़ने निकले थे। वे न जानते थे कि उनके पुत्र को जीवनदान देनेवाला और उसके अत्याचारों से पीड़ित होकर गाँव छोड़नेवाला मैकू दोनों एक ही हैं।

नीरू ने बहुत खोज की। कई एक झोंपड़ों में झाँकने और पता लगाने के पश्चात् उसे मैकू के झोपड़े का पता लगा। उसके पिता का हृदय आश्चर्य और चिन्ता से व्यथित हो रहा था। वह जानना चाहता था कि वह कौन मनुष्य है जो परिचित होते हुए भी अपने को छिपाना चाहता था। उसने नीरू से बार बार पूछना शुरू किया—"अभी कितनी दूर है?"

नीरू हर बार उत्तर देता—"अब निकट ही है।"

अन्त में नीरू ने दूर पर एक झोपड़े की ओर संकेत करके कहा—"वही मेरे जीवनदाता का निवास-स्थान है। वह दरिद्र होते हुए भी कितने उच्च विचार का है। यदि संसार में सब ही ऐसे होते तो सुख ही सुख था।"

गजराजसिंह—"नीरू, यह असम्भव है।"

नीरू—"इसी से तो संसार में सुख और शान्ति भी नहीं है।"

अब वे झोपड़े के और निकट आ गये। और आगे बढ़ते ही नीरू ने कहा—"यह क्या, यहाँ तो रोना हो रहा है।"

गजराजसिंह—"मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि इस घर में कोई मर गया है।"

नीरू दौड़ कर झोपड़े में घुस गया। उसको देखते ही मैकू की स्त्री ने कहा—"बाबू बहुत देर कर दी। जिसकी खोज में अब आये हो वह हम सबको छोड़ कर सदा के लिए चल दिया। नित्य ही तुम्हारी याद किया करते थे।" इतना कहकर वह फूट फूट कर रोने लगी। नीरू भी रो पड़ा। रोते रोते उसने पूछा—"क्या बीमार हुए थे?"

मैकू की स्त्री ने उत्तर दिया—"बाबू, बीमार क्या हुए। कल रात को खाकर लेटे। सुबह इस दशा में मिले। पैर के अँगूठे में घाव है, जिससे प्रतीत होता है कि किसी विषैले साँप ने काट लिया है।"

नीरू ने कहा—"भगवान्, संसार में क्या यही भलाई का बदला है? क्या तुम्हारा यही नियम है कि धर्मात्मा दुख पावें और पापी सुख करें?"

इतने में नीरू के पिता ने नीरू को पुकारा। नीरू ने कहा—"आइए, जिसको ढूँढ़ने आप इतनी दूर आये वह अब ऐसी जगह चला गया है, जहाँ कोई भी सांसारिक जीव नहीं जा सकता।"

ठाकुर साहब ने आकर देखा एक लाश सफ़ेद चादर से ढकी पड़ी है और एक स्त्री और दो लड़के बैठे रो रहे हैं। वे चुपचाप खड़े रहे। नीरू ने सारा हाल बतलाया। उनके नेत्रों में आँसू भर आये और उन्होंने दर्दभरी आवाज़ में कहा—"मुझे मेरे उपकारकर्त्ता का मुख तो दिखा दो।"

नीरू ने मुख पर से चादर हटा दी। मुँह देखकर ठाकुर साहब दो क़दम पीछे हट गये और फिर ज़ोर से रो पड़े। रोते रोते उन्होंने कहा—"मैकू, तुम यथार्थ में मनुष्य हो, मनुष्य ही नहीं देवता हो। आज मेरी आँखें खुलीं, आज मुझे तुम्हारी इज़्ज़त का, तुम्हारे बड़प्पन का पता लगा।" इतना कह कर वे मैकू के चरणों पर गिर पड़े। नीरू को ऐसा मालूम हुआ, जैसे मैकू की मृतक देह एक बार काँप उठी हो, मानो वह मरने के बाद भी मालिक का अपने पैरों पड़ना सहन नहीं कर सकता है।

कुछ क्षण पश्चात् ठाकुर साहब उठे और उन्होंने हाथ जोड़ कर मैकू की स्त्री से कहा—"बहन चलो, मेरे साथ चलो। मैं अपने पिछले कुकर्मों का प्रायश्चित्त करूँगा। तुम्हें सुख देकर मैकू की आत्मा को सुखी करूँगा।"

× × × ×

इसके कुछ दिन बाद सीतापुर की कचहरी में ठाकुर साहब ने मैकू के पुराने चार खेत और उनके अतिरिक्त चार और खेत जीवन भर के लिए मैकू के लड़कों के नाम माफ़ी के तौर पर लिख दिये।

—रामेश्वरप्रसाद श्रीवास्तव

# गया की सैर

'गयातीर्थं सर्वदेशे तीर्थेभ्योऽप्यधिकं शृणु ।'

गया भारतवर्ष का एक प्राचीन तीर्थ-स्थान है। यहाँ प्रतिवर्ष अनेक आस्तिक हिन्दू आते हैं और अपने पूर्वजों के मोक्ष के हेतु श्राद्ध करके पितृ-ऋण से मुक्त हो पुण्य के भागी होते हैं।

गया-तीर्थ प्राचीन मगध और आज-कल के विहार प्रान्त में है। इस प्रान्त में पटना (पाटलिपुत्र) के बाद दूसरा बड़ा नगर गया ही है।

गया फल्गू-नदी के पश्चिम-तट पर बसा हुआ है। इसके उत्तर-ओर पटना-बाँकीपुर एवं राजगृह है। दक्षिण में हज़ारीबाग़ का ज़िला, पूर्व में मुंगेर और पश्चिम में बहुत चौड़े-पाटवाली शोन-नदी है। यहाँ की भाषा बिहारी हिन्दी है।

गया-शहर के चारों ओर पर्वत-माला फैली हुई है, जिससे नगर की शोभा बहुत बढ़ गई है। यहाँ जल की विपुलता है। अन्तःसलिला फल्गू-नदी गया-तीर्थ के चरण धोती हुई दक्षिण से उत्तर को बहती है। चारों ओर से अनेक नदियाँ और झरने आकर फल्गू में मिले हैं। नगर के चारों तरफ़ सौ से अधिक कुंड, सरोवर आदि जलाशय हैं। शहर में बहुत से कुएँ एवं जगह जगह जल-कल लगे हैं।

स्टेशन का नाम गया-जङ्क्शन है। यहाँ आनेवालों के लिए कलकत्ता, काशी, पटना, किउल और गोमो से सीधी गाड़ियाँ आती हैं। स्टेशन पर गाड़ी, मोटर, बग्गी, ताँगे आदि सब प्रकार की सवारियाँ साधारण किराये पर मिलती हैं। स्टेशन के पास ही यात्रियों के ठहरने को अच्छी धर्मशाला बनी है। किन्तु यात्री लोग अधिकांश में शहर (पुरानी बस्ती) में ही ठहरते हैं। यहाँ कई बड़ी बड़ी धर्मशालायें हैं, एक बहुत बड़ी सुन्दर धर्मशाला रायबहादुर सूरजमल शिवप्रसाद झुन्झुनूवाले की है। इसमें ठहरनेवालों को सेठजी की कलकत्ता-कोठी से आज्ञा प्राप्त करना पड़ता है।

स्टेशन के पास के शहर को 'साहबगंज' कहते हैं। यह बस्ती नई और चौड़ी सड़क पर बसी हुई है। बाज़ार बड़े चौड़े और रौनक़दार हैं। अनाज का बाज़ार (जिसे गोदाम कहते हैं) बहुत बड़ा है। यहाँ व्यापार भी खूब होता है। पुरानी बस्ती यहाँ से क़रीब एक मील दूर है। बीच में मार्केट, कचहरियाँ, पोस्टऑफ़िस, अस्पताल, बैंकें और रईसों के बँगले बने हैं।

फल्गू-नदी, तीर्थ-स्थान, पंडों के मकान आदि सब पुरानी बस्ती में हैं। यह भी बहुत बड़ा शहर है। गलियाँ सकरी लेकिन सड़कें चूने की बनी हुई पक्की हैं। सफ़ाई का इन्तज़ाम अच्छा है। बिजली की रोशनी भी लग रही है। धर्मशालाओं के अतिरिक्त पण्डों के भी बड़े बड़े मकान यात्रियों को ठहराने के लिए बने हैं। पंडे लोग यात्रियों को अपने मकानों में ही ठहराते हैं।

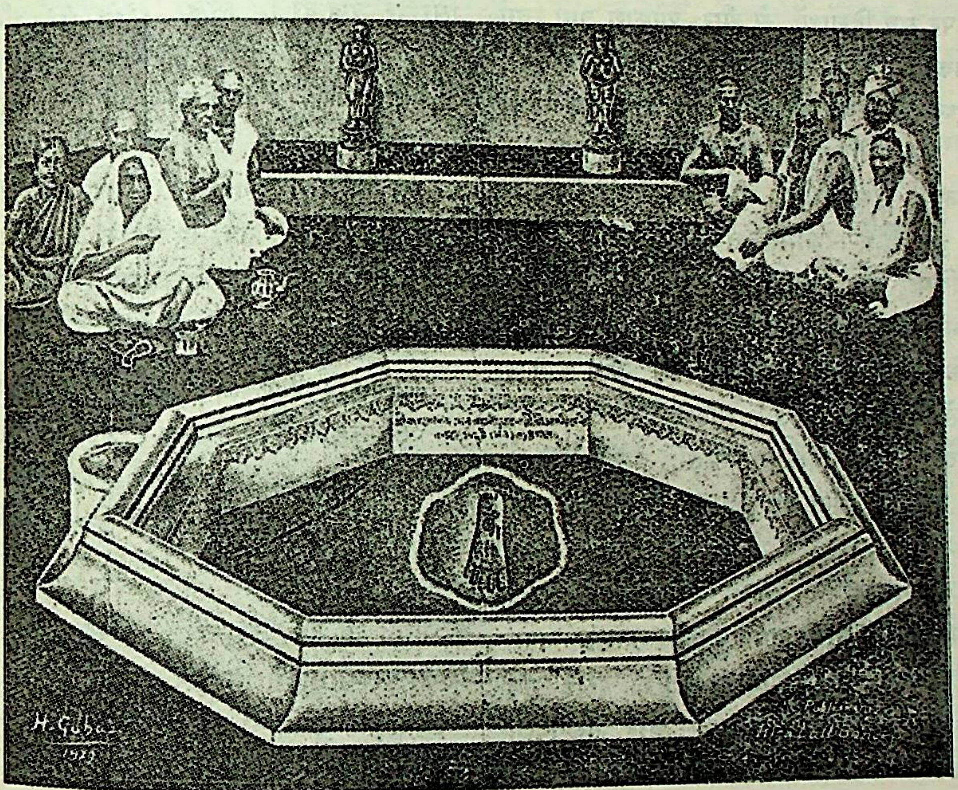
गया में सब प्रकार का सामान खाद्य-सामग्री दूध, दही, घी, शाक-सब्ज़ी, अन्न आदि साधारणतया सस्ते भाव में (अधिकता से) मिल जाता है। पूजा की सामग्री फूल, पान, यज्ञोपवीत आदि भी अच्छे और सस्ते मिलते हैं। कपड़े-बर्तन आदि की दूकानें भी काफ़ी हैं। कहते हैं, आश्विन (पितृपक्ष) में यहाँ ५ से १० लाख तक यात्री आ जाते हैं। इस साल भी डेढ़ लाख से कम यात्री न

आये होंगे, जिसके लिए पंडे और दूकानदार सब कहते हैं कि चतुर्थांश भी मेला नहीं लगा।

गया को मगध-तीर्थ एवं महीधर-तीर्थ भी कहते हैं। महाभारत में इस तीर्थ का वर्णन इस प्रकार है—

"पुष्कर में तपस्या, महालय में दान, मलय में हवन, और मगध-तीर्थ (गया) में केवल स्नान ही कर लेने से चौदह पीढ़ियाँ तर जाती हैं।"

नीले रङ्ग का साँड़ छोड़ कर अपने पहले की दस और पीछे की दस पीढ़ियों का उद्धार कर सकता है। इस स्थान पर महानदी, गयाशिरस्थान और अक्षयवट है। शास्त्र का कहना है कि गया में पितरों का श्राद्ध करने या उनके निमित्त अन्नदान करने से वह अक्षय होता है। इस स्थान पर पवित्र जलवाली महानदी फल्गू और बहु-फल-मूल-शालिनी कौशिकी-नदी



[ श्रीविष्णुपद ]

बहती है। यहीं तपोधन विश्वामित्र को ब्राह्मणत्व मिला था।"

महाराज युधिष्ठिर से बृहस्पति-तुल्य धौम्य ने पूर्व-दिशा के तीर्थों का वर्णन करते हुए कहा है—

"इसी पूर्व-दिशा में 'गय' नाम का राजर्षि-पूजित पवित्र पर्वत-राज देख पड़ता है। उसमें देवों और ऋषियों से सेवित मङ्गलमय ब्रह्मसर है। हे पुरुषसिंह, प्राचीन लोगों ने उस गय-पर्वत के सम्बन्ध में कहा है कि मनुष्य को बहुत पुत्रों की इच्छा करनी चाहिए। उनमें से कोई न कोई गया में जाकर अश्वमेध-यज्ञ करके अथवा

अब देखना यह है कि इस तीर्थ-राज को इतना महत्त्व प्राप्त कैसे हुआ? कुमार-व्रत-परायण महर्षि शमठ ने कहा है—

"हे भरतश्रेष्ठ, राजर्षि गय अमूर्तरया के पुत्र थे। मैं उनकी पवित्र कीर्ति का वर्णन करता हूँ, सुनिए। उन्होंने इस स्थान पर अन्न से भरपूर और बहुत दक्षिणावाले

यज्ञ का अनुष्ठान किया था। उस यज्ञ में सैकड़ों-हज़ारों अन्न के पहाड़, घी और दही-दूध की सैकड़ों नदियाँ, हज़ारों बढ़िया व्यञ्जनों के प्रवाह नित्यप्रति याचकों को देने के लिए तैयार रहते थे। ब्राह्मणों के सिवा अन्य अनेक लोग भी सुन्दर स्वादिष्ट भोजन करते थे। दक्षिणा के समय आकाश तक गूँजती हुई वेदध्वनि के आगे और कुछ नहीं सुन पड़ता था। वह वेद-ध्वनि इधर-उधर फैलती हुई पृथ्वी पर सब दिशाओं में और आकाश तथा स्वर्ग में पूर्ण होकर अत्यन्त अद्भुत भाव धारण किये हुए थी। मनुष्यों ने पवित्र भोजन से तृप्त होकर यह गाथा गाई थी कि 'जिसे भोजन की इच्छा हो वह राजर्षि गय के यज्ञ में जाय, इस समय भी वहाँ पचीस अन्न के पहाड़ बचे हुए हैं।' अमित तेजस्वी राजर्षि गय ने जैसा यज्ञ किया वैसा यज्ञ पहले किसी ने नहीं किया और आगे भी कोई नहीं करेगा। गय के यज्ञ में हवि-भोजन करके देवता जैसे तृप्त हुए, वैसे फिर कभी न होंगे। जैसे पृथ्वी की बालू, आकाश के तारे और वर्षा की बूँदें गिनी नहीं जा सकतीं, वैसे ही गय के यज्ञ में जो दक्षिणा बाँटी गई उसकी गिनती भी असम्भव है।"

परन्तु वायु-पुराण में लिखा है कि गयासुर के नाम पर ही इसका नाम गया रक्खा गया। गयासुर बड़ा बलवान् और दीर्घकाय था। इसने गुरु शुक्राचार्य्य से वेद-वेदांग, धर्मशास्त्र और शस्त्र-विद्या सीख कर कठोर तपस्या करना आरम्भ कर दिया। भगवान् विष्णु ने इसकी तपस्या से प्रसन्न होकर वर दिया कि जो इसका दर्शन या स्पर्श करेंगे वे सीधे वैकुण्ठ जायँगे। इसके फल-स्वरूप यम-लोक और मृत्यु-लोक शून्य होने लगे। तब यमराज ने ब्रह्मा और सब देवताओं को साथ लेकर भगवान् विष्णु की सेवा में उपस्थित हो स्तुति करके सब वृत्तान्त कह सुनाया। भगवान् विष्णु ने ब्रह्माजी से कहा कि आप गयासुर के पास जाकर यज्ञार्थ उसकी देह माँगें और उसी पर यज्ञ का अनुष्ठान करें। भगवान् विष्णु के आदेशानुसार ब्रह्माजी ने गयासुर के पास जाकर उसकी देह माँगी। ब्रह्माजी ने गयासुर से प्रार्थना की कि इस पवित्र विशाल देह के बिना उनके यज्ञ की पूर्ति न होगी। ब्रह्माजी की प्रार्थना पर परम धार्मिक गयासुर दक्षिण की ओर पैर करके सो गया। तब ब्रह्माजी ने उसकी देह पर यज्ञ आरम्भ कर दिया। यज्ञ की समाप्ति पर गयासुर उठना चाहा तब सब लोक काँप गये। इस पर ब्रह्माजी ने धर्मराज से एक बड़ी शिला (धर्मशिला)* मँगा कर उसके सिर पर रख दी। शिला रखने पर भी गयासुर का शरीर डोलने लगा। तब सब देवता पुनः भगवान् विष्णु के समीप गये। अनेक प्रार्थनायें करने पर विष्णु भगवान् गदा हाथ में लेकर सब देवताओं सहित शिला पर आ विराजे। गयासुर बोला—भगवान्, जब आप लोग शिला पर बैठ गये हैं तब मैं न उठूँगा। भगवान् ने उससे वर माँगने को कहा। गयासुर बोला—भगवान्! यदि आप मुझ पर प्रसन्न ही हैं तो वर दीजिए कि—

> यावत् पृथ्वीपर्व्वताश्च यावत् चन्द्रार्कतारकाः।
> तावच्छिलायां तिष्ठन्तु ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः॥
> गदाधरः स्वयं लोकान् पूजनादघनाशनः।
> श्राद्धं सपिंडकं येषां ब्रह्मलोकं प्रयान्तु ते॥

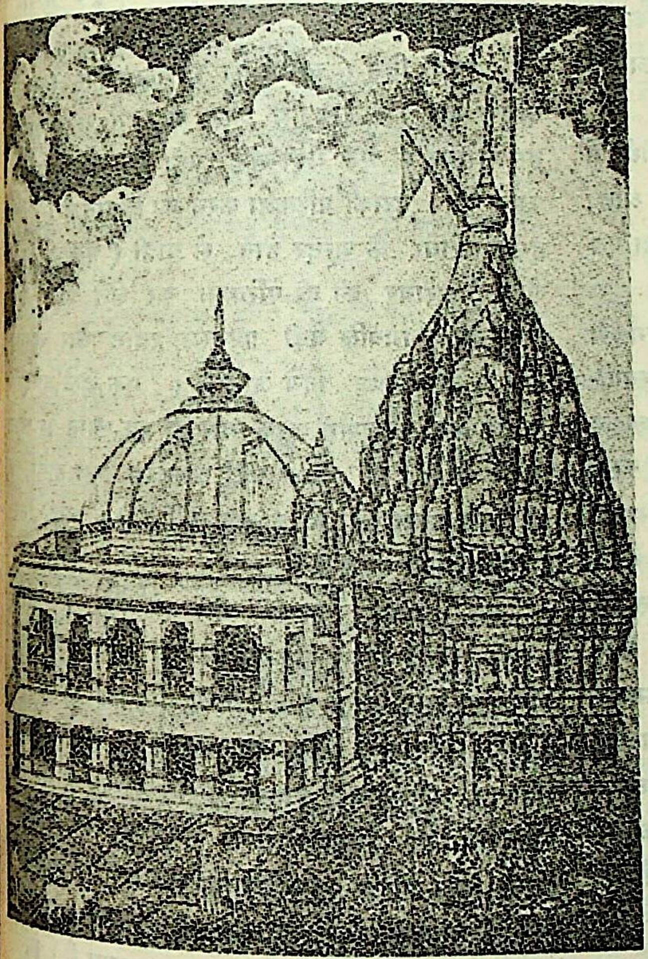
अर्थात् जब तक चन्द्रमा, सूर्य और तारे इस पृथ्वी पर विद्यमान रहें तब तक ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर इस शिला पर अधिष्ठान करें। भगवान् गदाधर का पूजन करने से सब पापों का नाश हो और जो कोई इस शिला

---

*कथा यह है कि ऋषि मारीच की पत्नी धर्मव्रता बड़ी पतिव्रता स्त्री थी। एक दिन वह अपने पति के पाँव दाब रही थी। इसी अवसर पर ऋषि के पिता ब्रह्माजी आकर वहाँ आ गये। धर्मव्रता ने श्वसुर को आया जान पति की सेवा छोड़ कर श्वसुर की सेवा में लग गई। ऋषि मारीच की निद्रा भंग होने पर उन्होंने देखा कि स्त्री ने पाँव दबाना छोड़ दिया है, इसलिए क्रुद्ध होकर शाप दे दिया कि तू पत्थर हो जा। शाप सुनते ही वह परमात्मा का स्मरण करती हुई पत्थर हो गई। यही धर्म-शिला है। इसको ब्रह्माजी ने वरदान दिया था कि तू अति पवित्र शिला मानी जायगी और इस पर किया हुआ पुण्य अक्षय होगा।

पर पिंडदान, श्राद्ध करे उसके पितृगण सब पापों से मुक्त हो स्वर्ग में निवास करें।

भगवान् के तथास्तु कहते ही परार्थपरायण राजर्षि गय (जिनकी कठिन तपस्या के फल से ही इस तीर्थ का महत्त्व आज तक इतना बना हुआ है) सदैव के लिए शांत हो गये।



[ विष्णुपाद मन्दिर, गया ]

गया में प्रतिवर्ष लाखों मनुष्य श्राद्ध एवं पिण्डदान करने को आते हैं। यों तो यहाँ बारहों मास यात्री आते रहते हैं, किन्तु पितृ-पक्ष और चैत्र-कृष्ण-पक्ष में बहुत भीड़ हो जाती है। गया में तीन पक्ष रहने का विधान है, किन्तु लोग भाद्रपद-शुक्ल-पक्ष का एक दिन (पूर्णिमा), आश्विन कृष्ण के पन्द्रह दिन एवं शुक्ल-पक्ष का एक दिन (प्रतिपदा) ऐसे सत्रह दिन को तीन पक्ष मान लेते हैं। इसके अतिरिक्त कई जल्दबाज़ सात पाँच, तीन दिन और कोई तो एक ही दिन की गया करके चल देते हैं।

यहाँ पैंतालीस वेदियों में श्राद्ध होता है। एक दिन गदाधर भगवान् को पञ्चामृत स्नान, कई वार दूध-तर्पण, अन्नदान, गोदान आदि होते हैं। गया पहुँचने से पहले यात्रियों को पुनपुनः नामक नदी पर उतर कर श्राद्ध-तर्पण करना पड़ता है। काशी से जाने पर 'पामरगञ्ज' स्टेशन और पटना की ओर से जाने पर पुनपुन-स्टेशन पर उतरना चाहिए। यहाँ ही पण्डा (गयावाल) की प्रथम पाद-पूजा होती है और ये अपने अपने यजमान को उनके पूर्वजों के नाम आदि (जो उनके पास लिखे रहते हैं) बता कर अपने गुमाश्ता के साथ गया भेज देते हैं। पूर्णिमा से गया में श्राद्ध आरम्भ हो जाता है।

प्रथम दिन (पूर्णिमा को) फल्गू-नदी में श्राद्ध-तर्पण और खीर का पिंडदान होता है। यहाँ दूसरी बार पण्डाजी की पादपूजा होती है। (पादपूजा में पंडा को श्रीफल और एक रुपया भेंट देना होता है।)

दूसरे दिन (प्रतिपदा को) प्रेतशिला और राम-शिला पर पिण्डदान एवं ब्रह्मकुण्ड में तर्पण होता है। प्रेतशिला गया-शहर से सात मील है। यहाँ पहाड़ की तलहटी में एक पक्का तालाब (ब्रह्मकुंड) बना है और किनारे पर एक छोटी धर्मशाला भी है, जिसकी मरम्मत राय सूरजमल बहादुर ने संवत् १९६५ में करा दी है। इस तालाब में स्नान करके यहाँ पिण्डदान करते हैं। फिर प्रेत-शिला-पर्वत पर जाने के लिए क़रीब चार सौ सीढ़ियाँ चढ़नी पड़ती हैं। यहाँ भी श्राद्ध एवं पिण्ड-दान होता है। कहते हैं कि यहाँ पिण्ड देने से

मृतक का प्रेत-योनि से उद्धार हो जाता है। प्रेतशिला जाते समय रामशिला रास्ते में रह जाता है, अतः लौटते वक़्त यहाँ ठहर कर श्राद्ध करते हैं। यहाँ तीन स्थान हैं—रामकुण्ड, रामशिला एवं काकबलि। रामकुण्ड सड़क के किनारे पर है। यहाँ श्राद्ध होता है। यहाँ से क़रीब ३२५ सीढ़ियाँ चढ़ कर पर्वत पर रामशिला-तीर्थ है। यहाँ भी श्राद्ध-पिण्ड-दान होता है। रामशिला पर से शहर बहुत सुन्दर देख पड़ता है। इसके निकट ही काकबलि-स्थान बना है। यहाँ यम, श्वान और काग के नाम से पिण्डदान होता है।

तीसरे दिन ( द्वितीया को ) उत्तर-मानस-तीर्थ में श्राद्ध-पिण्डदान, वहाँ से मौन होके उदीचि में श्राद्ध, कनखल दक्षिणमानस में श्राद्ध, जिह्वालोल-परिक्रमा एवं भगवान् गदाधरजी को पंचामृतस्नान कराते हैं।

चतुर्थ दिन ( तृतीया को ) बौद्ध-गया के मार्ग में सरस्वती-नदी में स्नान-तर्पण-पंचरत्न-दान एवं सरस्वती-देवी के दर्शन करके मतंग-वापी में श्राद्ध, धर्मारण्यकूप में पिण्डदान करके बोधगया* में अश्वत्थ के दर्शन करते हैं। यहाँ ए. अत्यन्त प्राचीन, बहुत बड़ा, सुन्दर एवं भव्य मन्दिर बना है, जिसमें भगवान् बुद्ध की मूर्त्ति स्थापित है। मन्दिर के अहाते में और भी बहुत सी खंडित मूर्तियाँ पड़ी हैं। मन्दिर के बाहर एक कुण्ड बना है। लोग इस मन्दिर और मूर्ति को गौतम बुद्ध का मानते हैं; किन्तु यहाँ बोधगया में श्रीमत् जगद्गुरु शंकराचार्य के ज्योतिर्मठ का एक मठ है, जिसके महन्त एक अत्यन्त सज्जन, उच्च कोटि के विद्वान् संन्यासी हैं। आपका कहना है कि यह मन्दिर और प्रतिमा सनातन-धर्मावलंबियों के नवम अवतार भगवान् बौद्ध की हैं। आपका यह भी कहना है कि मन्दिर को राजा विक्रमादित्य के मंत्री राजा अमरसिंह ( जिन्होंने अमरकोष की रचना की है ) ने बनवाया था। इसको बने अनुमानतः दो हज़ार वर्ष से अधिक समय हो गया। क़रीब पचास वर्ष हुए [illegible] सरकार ने मन्दिर की मरम्मत करा दी है। [illegible] नित्य बहुत सा भोजन ग़रीबों को बाँटा करते हैं। [illegible] बिजौरा निंबू में कुछ ओषधियाँ भरकर उदर-रोग की [illegible] भी बनाते हैं, जो एक रुपया प्रति निंबू के हिसाब से सबको देते हैं।

पाँचवें दिन ( चतुर्थी को ) ब्रह्मसरोवर ( [illegible] दक्षिण ओर ) तालाब में श्राद्ध और तर्पण होता है। इस सरोवर में एक गदा-खंड पड़ा है, जिसे गदालोल कहते हैं। इसकी परिक्रमा करने का विधान है। किन्तु इसके सरोवर के अन्दर होने से यात्री ( पंचरत्न हाथ में लेकर ) सरोवर की ही परिक्रमा कर लेते हैं। इसके निकट ही कागबलि वेदी पर यम, श्वान और काग के नाम से तीन पिण्ड दिये जाते हैं। एक छोटे मन्दिर में 'तारक ब्रह्म' का दर्शन करके पास ही एक स्थान पर [illegible] सिंचन होता है। पहले यहाँ आम्रवृक्ष रहा होगा, [illegible] तो केवल थाला बना है ( वृक्ष नहीं है )। इसके निकट ही मंगलागौरी पर्वत है।

छठे, सातवें, आठवें और नवें दिन ( पंचमी से अष्टमी तक ) विष्णु-पाद-मन्दिर में बनी हुई [illegible] वेदियों में श्राद्ध होता है। विष्णु-पाद का मन्दिर [illegible] ( कसौटी सरीखे ) पत्थर का बना है। इसको [illegible] महारानी अहिल्याबाई होल्कर ने सन् १७६६ में नौ [illegible] रुपये लगा कर बनवाया था। कहते हैं, ऐसे पत्थर [illegible] इतना बड़ा मन्दिर दूसरी जगह नहीं है। मन्दिर के मध्य में भगवान् विष्णु का तेरह इंच लम्बा एक [illegible] बना है। चारों ओर चाँदी का कटघरा लगा है। मन्दिर के बाहर बहुत बड़ा सभा-मंडप है। दो बड़ी [illegible] वेदियाँ ( बारहदरियाँ ) बनी हैं, जिनमें बैठकर [illegible] श्राद्ध करते हैं।

दसवें दिन ( अर्थात् नौमी जो मातृनौमी कहलाती है ) फल्गू के उस पार ( पूर्वी तट पर ) रामगया [illegible] श्राद्ध-पिण्ड-दान होता है और नदी में बालू का [illegible]

---

* धर्मारण्य-यूप-कूप की मरम्मत राय सूरजमल बहादुर ने करा दी है। धर्मारण्य से बोधगया जाते समय मार्ग में नदी पार करना पड़ता है, धूप हो जाने से नदी की बालू बहुत गर्म हो जाती है, अतः यात्रियों को या तो धूप ज़्यादा होने के पहले ही जाना चाहिए, अन्यथा कपड़े के जूते पहन कर जाना अच्छा है।

दिया जाता है। यहाँ सौभाग्यवती स्त्रियाँ सौभाग्य-पिटारी का दान करती हैं। यहाँ चौथी बार पंडाजी की पाद-पूजा होती है।

ग्यारहवें दिन ( दशमी को ) गयाकूप, गयाशिर एवं मुण्डपृष्ठा पर श्राद्ध-पिण्ड-दान होता है।

बारहवें दिन ( एकादशी को ) आदिगया, धौतपद में श्राद्ध होता है। आज एकादशी होने से खोवा अथवा अन्य निरान्न पदार्थ के पिण्ड होते हैं।

तेरहवें दिन ( द्वादशी को ) भीमगया एवं गो-प्रचार में श्राद्ध, गदालोल-दर्शन और स्वर्ण का दान होता है।

चौदहवें दिन ( तेरस को ) फल्गू-नदी में दूध का तर्पण और सायंकाल विष्णु-पाद-मन्दिर में बनी वेदियों में दीप-दान होता है।

पन्द्रहवें दिन ( चतुर्दशी को ) वैतरणी-तीर्थ में गो-दान एवं पंडाजी की पादपूजा होती है।

सोलहवें दिन ( अमावस्या को ) अक्षय-वट पर खीर का श्राद्ध, शय्यादान आदि पंडाजी की पूजा ( गयादंड ) होकर सुफल होता है।

सत्रहवें दिन ( प्रतिपदा को ) फल्गू-नदी में दही-चावल का पिण्डदान, श्राद्ध-तर्पण होकर आचार्यदक्षिणा एवं विदा होती है।

इस प्रकार तीन पक्ष ( सत्रह दिन ) का संक्षिप्त विवरण है। इसके अतिरिक्त गया में बहुत से दर्शनीय स्थान हैं, जिनमें से रामशिला, प्रेत-शिला, विष्णुपादमन्दिर और बुद्धगया का वर्णन यथास्थान ऊपर हो चुका है।

## गयेश्वरीदेवी

विष्णु-पाद-मन्दिर से सटा हुआ ही भगवान् गदाधर का विशाल प्राचीन मन्दिर है। इससे लगा हुआ गयेश्वरीदेवी का मन्दिर है। देवी की प्रतिमा अति सुन्दर है।

## मङ्गलागौरी

शहर के दक्षिण ओर ब्रह्म-सरोवर के निकट आदिमाया मङ्गलागौरी का स्थान है। क़रीब १२५ सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपर जाना पड़ता है। पहाड़ पर यहाँ मङ्गला-गौरी ( स्तन ) का दर्शन होता है। यह स्थान अत्यन्त रमणीक है। यहाँ जल के वास्ते नल भी लगा है।

मङ्गलागौरी-मन्दिर से थोड़ा और ऊपर चढ़कर एक अति प्राचीन मन्दिर में अभि-मुक्तेश्वर ( जनार्दन भगवान् की चतुर्भुज मूर्ति ) का दर्शन होता है। कहावत है कि जिसके कोई उत्तराधिकारी या श्राद्ध करनेवाला न हो, यदि वह स्वयं यहाँ अपने निमित्त श्राद्ध करके भगवान् जनार्दन के हाथ में पिण्ड प्रदान कर दे तो मुक्त हो जाता है।

## ब्रह्म-योनि-पर्वत

शहर से क़रीब दो मील ब्रह्म-योनि-पर्वत है। चार सौ चौंसठ सीढ़ियाँ ऊपर चढ़कर पर्वत-शिखर पर ब्रह्मा का मन्दिर है। इस पर्वत पर से शहर और जंगल का दृश्य अति मनोहर दिखता है। इस पर्वत पर दो शिला-खंड गुफा-रूप में पड़े हैं, जिन्हें ब्रह्म-योनि और मातृ-योनि कहते हैं। कई लोग कहते हैं कि इनके अन्दर से पार निकल जाने से मनुष्य आवागमन से मुक्त हो जाता है। पर्वतशिखर के थोड़ा नीचे एक पक्का कुण्ड बना है, जिसे ब्रह्म-कुण्ड कहते हैं।

## सरस्वती-सावित्री-कुण्ड

ब्रह्म-योनि-पर्वत की तलहटी में दो पक्के अत्यन्त मनोहर कुण्ड बने हैं। एक को सरस्वती-कुण्ड एवं दूसरे को सावित्री-कुण्ड कहते हैं। सरस्वती-कुण्ड का जल निर्मल और साफ़ काँच के सदृश चमकता है। सावित्री-कुण्ड का जल बरसाती जल के सदृश दिखता है। यह ब्रह्म-योनि-पर्वत में से नीचे ही नीचे आता है, कुण्ड के निकट आकर प्रकट रूप से कुण्ड में गिरता है, यह जल पीने में अत्यन्त स्वादिष्ठ और विशेष मीठा है। यहाँ सावित्री-देवी का एक मन्दिर भी है। ये दोनों स्थान ख़ूब सुहावने हैं। इन दोनों कुण्डों के निकट ही कर्मनाशा तालाब है। इसका जल कोई नहीं स्पर्श करता।

## आकाश-गंगा

मङ्गलागौरी के निकट ही एक दूसरे पर्वत पर महावीर का स्थान है। यहाँ एक कुण्ड है, जिसे आकाश-गङ्गा कहते हैं। इससे थोड़ा नीचे एक कुण्ड और है, जिसे पाताल-गङ्गा कहते हैं। इस पर्वत पर अगस्त्य ऋषि ने तपस्या की थी। इसी के पश्चिम ओर तलहटी में कपिल-धारा है।

## मधुश्रवा

एक पवित्र जल की नदी पश्चिम से आकर फल्गू में मिली है। इसी पर्वत के नीचे शहर की ओर घृतकुल्या, दधिकुल्या एवं मधुकुल्या कुण्ड हैं। अब इन कुण्डों में जल नहीं है। शहर से पश्चिम ओर कॉलरा-अस्पताल के पास (गृद्धकूट) ऋणमोचन, पापमोचन महादेव के मन्दिर हैं। ये अत्यन्त प्राचीन स्थान भी रमणीक हैं।

अक्षय-वट के मार्ग में वैतरणी-झील के किनारे मार्कण्डेयश्वर-महादेव का प्राचीन मन्दिर है।

तेरहवें दिन में वर्णित भीमगया को भीमघुट्टा कहते हैं। अमितपराक्रमी भीमसेन ने जरासंध से युद्ध करते समय यहाँ पाँव टेक दिया था, जिससे इसका नाम भीमघुट्टा हो गया।

## सीताकुण्ड

विष्णु-पाद-मन्दिर के ठीक सामने फल्गू-नदी के उस पार एक मन्दिर में काले पत्थर का हाथ बना हुआ है। यह महाराज दशरथ का हाथ है। कहते हैं कि महाराज रामचन्द्रजी पिण्ड का सामान लेने गये थे, पीछे से महाराज दशरथ ने हाथ निकाल कर सीताजी से कहा कि हमें क्षुधा लगी है, तुम पिण्डा देओ। दूसरा सामान न होने से सीताजी ने फल्गू-तट की वालू का पिण्डा बना कर महाराज को दे दिया। अतः अब भी नौमी को लोग बालू का पिण्ड-दान करते हैं। इसके अतिरिक्त और भी अनेक उत्तम स्थान गया में अथवा गया के आस-पास विद्यमान हैं।

—केसरीमल अग्रवाल

# प्रतीक्षा

आँखें खुली हुई हैं कब से, प्रेम-आरती लेकर।
कब से हैं जल रहीं अर्घ्य वे, अश्रु-कणों का देकर॥
आ बैठा है इन आँखों में, हृदय सिमट कर कब से।
थकित हुआ रस-रूप-प्यास को, वह रट रट कर कब से॥
कान चाहते थे सुनना वह, सुन्दरता का गाना।
समझा उनने उचित शक्ति निज, आँखों में पहुँचाना॥
जिह्वा और नासिका ने भी अपनी शक्ति पठाई।
जिससे वह लावण्य चखे, सूँघे शुभ गन्ध निकाई॥
अङ्ग अङ्ग ने आलिङ्गन की, अपनी अभिलाषायें।
दे देकर निज शक्ति भेज दी, जो पूरण हो जायें॥
आँखें केन्द्र बनी इन सबकी, कब से विलप रही हैं।
बाट देखती हैं कब से वे, कब से कलप रही हैं॥
जीवन की सन्ध्या आ पहुँची, प्रियतम! कब आओगे।
आँखें बन्द हो गईं तो फिर, आकर पछताओगे॥

—देवीप्रसाद गुप्त 'कुसुमाकर'

# धोखा-धड़ी

[ रामयदु ने प्राण बाबू को धोखा देकर किस तरह उनका पद और उनकी सारी सम्पत्ति अपने हाथ में कर ली तथा उन्हें अन्त में आत्म-हत्या करनी पड़ी और सब प्रकार अपनी धूर्तता में सफल होकर वे बड़े आदमी बन बैठे, इन सब बातों का वर्णन सरस्वती के पिछले अङ्कों में हो चुका है। अब इस अङ्क में रामयदु की धूर्त-लीला का अवसान होता है। इस उपन्यास के लेखक चारु बाबू अपनी इस रचना में एक धूर्त ब्राह्मण के नारकीय चरित का चित्रण करने में जिस प्रकार सफल हुए हैं, वैसे ही परमशूद्र प्राण बाबू की मनस्विता का भी उन्होंने खूबी से चित्रण किया है। चारु बाबू की दुर्जन-सुजन की इस चरितावलि के परिचय से हमारे कृपालु पाठकों का, हमें पूरा विश्वास है, भले प्रकार मनोविनोद हुआ होगा। ]

रामयदु बहुत ही पुराने पत्रों में प्रकाशित कई लेखकों के एक विषय के लेख संगृहीत कर लेते और उन सबका थोड़ा थोड़ा अंश लेकर एक लेख लिख लेते। इसी की सहायता से उनकी विद्वत्ता और ज्ञान का यश चारों ओर विघोषित हुआ करता। इसी तरह रामयदु एक मौलिक खोज के भी काम में लगे थे। प्राचीन भारत में महिलाओं के सामाजिक अधिकार के सम्बन्ध में उन्हें एक लेख लिखना था। पुराने पत्रों में इस विषय के लेख खोजने में वे बहुत ही व्यस्त थे, किन्तु सारी चालाकी खुल जाने के भय से इस सम्बन्ध में वे किसी से सहायता भी नहीं ले सकते थे।

रामयदु को याद पड़ रहा था कि बौद्ध-युग में महिलाओं की अवस्था के शीर्षक का कोई लेख पढ़ा था, परन्तु किस वर्ष के किस पत्र में पढ़ा था यह दिमाग़ में नहीं आता था। अलमारी भर के काग़ज़ अधीरता से उलट पुलट रहे थे।

उसी समय सदा सङ्कुचित रहनेवाली स्वल्प-भाषिणी कृष्णकली लज्जा से मस्तक झुकाये हुए वहाँ आकर खड़ी हो गई। रामयदु का व्यस्त भाव देखते ही कृष्णकली के नेत्रों में प्रश्न-सूचक एक कातर दृष्टि उदित हो आई। रामयदु ने जैसे ही कृष्णकली को आकर खड़े होते देखा, उसकी ओर ताक कर हँस कर कहने लगे, तुम तो मुझे दुख से उबारनेवाली हो। लिखने-पढ़ने के काम में भी यदि मेरी सहायता कर सकतीं!

अपनी असमर्थता से लज्जित होकर कृष्णकली लाजवन्ती की तरह सहम गई। वह मन ही मन कहने लगी—हाय, मैं कैसी दुर्बुद्धि हूँ। क्यों नहीं मैंने अच्छी तरह से पढ़ना-लिखना सीखा? उसके हृदय में यह बात ज़रा भी न आई कि उसके इस अज्ञान का उत्तरदायित्व रामयदु पर ही है, क्योंकि उसे पढ़ाने-लिखाने में उन्होंने बिलकुल ही अवहेलना की थी।

कृष्णकली को न पढ़ाने-लिखाने में भी रामयदु की स्वार्थबुद्धि की ही करामात थी। उन्होंने सोचा था कि पढ़-लिख कर बुद्धिमती और चतुर हो जाने पर कृष्णकली

कहीं मेरी सारी चाल न समझ जाय, तब वह कहीं अपना पैतृक अधिकार न माँगने लगे। इसी भय से रामयदु ने कृष्णकली के पढ़ने-लिखने का कोई प्रबन्ध ही नहीं किया। यही भय उसके विवाह में भी बाधा डाल रहा था। वे सोचते थे कि कृष्णकली का विवाह हो जाने पर कहीं उसके ससुराल के ही लोग उसके पिता का धन वसूल करने का प्रयत्न करके मुझे उद्विग्न न करने लगें। साथ ही वे इस ओर भी सचेष्ट रहते थे, जिससे किसी को दबी ज़बान से भी कहने का साहस न हो कि उसी के धन से धनवान् होकर रामयदु कृष्णकली का अनादर तथा उसके प्रति अवहेलना करते हैं। इसी भय से रामयदु तथा मनमोहिनी दोनों मिल कर रात-दिन तरह तरह से खुशामद करके उसे पिघला कर मोहित कर रखने के लिए सदा सचेष्ट रहते।

कृष्णकली रामयदु को अपना उपकारक और आश्रय-दाता ही समझा करती थी। वह समझती थी कि मैं बिलकुल निर्धन और अनाथिनी हूँ, मेरे कोई आश्रय नहीं है। रामयदु यदि मुझे अपने अनाथालय में रख लेते तो भी अच्छा ही था, परन्तु ऐसा न करके उन्होंने मुझे अपने परिवार में सम्मिलित कर लिया है और कन्या से भी बढ़ कर मेरा आदर करते हैं। इस कृतज्ञता के भार से कृष्णकली का हृदय संकोच और लज्जा के भार से दबा जा रहा था। रामयदु के मुख से स्नेहविद्ध मृदु भर्त्सना सुनकर कृष्णकली सहम उठी। परन्तु उसके दोनों नेत्रों में एक आकुलतामय जिज्ञासा का भाव भर आया। मानो वह पूछना चाहती थी कि कहाँ किस असुविधा के कारण तुम्हारा काम अटक रहा है, यदि यह मुझे बता दो तो मैं उसे निबाहने के लिए प्रयत्न कर सकती हूँ।

कृष्णकली की दृष्टि में जिज्ञासा का यह व्याकुल भाव देख कर रामयदु कहने लगे कि मैं 'प्राचीन भारत में महिलाओं की अवस्था' के शीर्षक का एक लेख लिख रहा हूँ, उसके लिए कुछ मसाला इकट्ठा करना चाहता हूँ।

कृष्णकली का व्याकुल मुख प्रसन्न हो उठा। लज्जा-पूर्ण मुस्कराहट के साथ उसने रामयदु की पुस्तकों में से १३२७ सन् का 'प्रवासी' और १३२८ का 'नव्य भारत' लाकर रामयदु के सामने रख दिया और वह किताबों की अलमारी की ओर फिर बढ़ी। रामयदु प्राण बाबू का विशाल पुस्तकालय अपने यहाँ उठवा लाये थे।

कृष्णकली ने अलमारी से सर आशुतोष मुकुर्जी सिलवर जुब्ली कम्मेमोरेशन जिल्द नं० ३, द्वारकानाथ मित्र लिखित दि पोज़ीशन आफ़ वीमन इन हिन्दू ला (हिन्दू क़ानून में महिलाओं की स्थिति), श्रीमती क्लेरिंग्शी-प्रणीत वीमेन इन ऐंशेंट इंडिया (प्राचीन भारत में स्त्रियाँ), महाभारत (शान्ति और अनुशासनपर्व) तथा स्कन्दपुराण का नागर-खण्ड लाकर रामयदु के सामने रख दिया। रामयदु की दृष्टि में जो आश्चर्यमय प्रशंसा विकसित हो रही थी उसकी चोट से कृष्णकली का मस्तक झुका जा रहा था। इच्छा रहने पर भी वह पुस्तकें खोल कर यह न दिखा सकी कि किस लेख और पृष्ठ में महिलाओं की दशा पर विचार किया गया है।

रामयदु ने कहा—क्या इन पुस्तकों में इस विषय के लेख हैं?

कृष्णकली की लज्जा-पूर्ण दृष्टि रामयदु की ओर एक ही बार उठकर फिर नीची हो गई। मुँह नीचा करके उसने ज़रा सा मन्द स्वर से हँस दिया। पुस्तकें खोल कर उनकी सूची पर दृष्टि दौड़ाते दौड़ाते रामयदु हँस कर कहने लगे—तू मेरे घर की लक्ष्मी ही नहीं, बल्कि सरस्वती भी है। तेरा दाम लाख रुपया है।

रामयदु की यह बात कितनी सच थी या सच से भी बढ़ कर थी, यह न समझ कर कृष्णकली ने उसे स्नेहमय अत्युक्ति ही समझा और बहुत ही लज्जित होकर धीरे से कमरे से निकल गई, मुँह से वह एक भी शब्द न कह सकी। रह रह कर यही बात उसके हृदय को आन्दोलित करती थी कि चाचाजी और चाचीजी मुझे कितना चाहते हैं। मुझ जैसी अभागी को भी वे लक्ष्मी कहते हैं और कहते हैं कि तेरा दाम लाख रुपया है।

कृष्णकली यदि जानती होती कि रामयदु के लिए उसका दाम सचमुच चार लाख के लगभग है और सत्य को छिपा कर उसका दाम कम कह रहे हैं, तो भी उसके

हृदय का भाव उनके प्रति श्रद्धापूर्ण कृतज्ञता से ओतप्रोत हो पाता या नहीं, यह कहना कठिन है।

कृष्णकली जैसे ही रामयदु के पुस्तक रखनेवाले कमरे से निकल कर बाहर आई, वे अस्पष्ट स्वर से कहने लगे—यह कलूटी तो मेरे लिए काला साँप हो गई है। मैं जो भी लिखूँगा उसी को पढ़कर यह समझ लेगी कि मैंने कहाँ से सामग्री ली है। इसके कारण तो साँप-छछूँदर की सी ही मेरी दशा हुई, न निगलते बनता है और न उगलते बनता है। इसे न तो घर में रख सकता हूँ और न दूसरे के ही घर भेज सकता हूँ।

घर में जाकर कृष्णकली ने जब देखा तब क्षणमात्र पहले ही नींद से उठकर मनमोहिनी जँभाई ले रही थी। कृष्णकली ने तुरन्त ही पानदान, लोटे में जल और अँगौछा लाकर उनके सामने रख दिया।

आलस और नींद के मारे लड़खड़ाती हुई आँखों से कृष्णकली की ओर ताक कर मनमोहिनी हँसकर कहने लगी—क्या तुम मुझे हाथ-पैर हिलाने तक का अवसर न दोगी? देखो तो बैठे बैठे मुझमें कितना मोटापन आता जा रहा है!

कृष्णकली ने मुस्करा कर मनमोहिनी के सामने पानदान रख दिया और उनके हाथ पर जल डालने के लिए लोटा लिये झुककर खड़ी हो गई।

मनमोहिनी मुँह धोकर अँगौछे से पोंछने लगी, इतने में ही पानदान और लोटा अलग रखकर कृष्णकली ने एक बीड़ा पान दे पीकदान लाकर मनमोहिनी के सामने रख दिया।

मनमोहिनी का मुँह पोंछना समाप्त होते ही कृष्णकली ने अँगौछा लेने के लिए हाथ बढ़ाया, परन्तु मनमोहिनी ने अँगौछा उसे न देकर ज़मीन पर रख दिया और एक साथ ही दो बीड़ा पान मुँह में भरते भरते स्थानहीन एवं भरे हुए मुख-विवर से किसी तरह अस्पष्ट एवं गम्भीर शब्द निकाल कर कहा—अँगौछा रहने दो, मुँड-बँधना ला। ज़रा तेरे बाल तो बाँध दूँ, सिर एकदम चिड़िया की झोंझ बन गया है। आज हमारे बग़लवाले मकान में नये किरायेदार झिकड़कोटा की रानी आवेंगी। वे यहाँ घूमने आ रही हैं।

कृष्णकली का काला मुख लज्जा के मारे बैंगनी रंग का हो गया। वह विशेष रूप से जानती थी कि मैं काली-कलूटी और कुरूपा हूँ, इसीलिए अपने को और लोगों की दृष्टि से लुप्त और गुप्त कर रखना चाहती थी, यहाँ तक कि वह कभी आइने में अपना मुँह तक नहीं देखती थी। वह बहुत ही दीन-हीन और सादा वेश में रहती थी, सोचती थी कि कहीं बनाव-सिंगार देखकर कोई कह न बैठे—अहा! ऐसा सुन्दर रूप, तिस पर यह गुमान!

मनमोहिनी का आदेश सुनकर कृष्णकली ने भय तथा सङ्कोच के मारे कातर होकर कहा—बच्चे का कुर्ता अन-सिला पड़ा है।

मनमोहिनी ने कहा—उसे कल सी लेना। आज बाहर के आदमी आवेंगे। उनके सामने ऐसी सूरत लेकर जाना चाहिए? वे लोग देखेंगे तो कहेंगे कि इस लोग तेरा अनादर करते हैं।

इसके बाद कृष्णकली और आपत्ति न कर सकी। उसके मन में आया कि जिस तरह शरच्चन्द्र की 'अरक्षणीया' अपना शृङ्गार करने का प्रयत्न करके और भी कुरूप बन बैठी थी, कदाचित् वही दुर्दशा मेरी भी होगी। परन्तु वह मृत्यु से अधिक लज्जा का आघात सह कर भी दूसरों को यह सोचने का अवसर नहीं दे सकती थी कि इस घर में कृष्णकली का अनादर है। मुँड़बँधना लाकर वह मनमोहिनी के सामने बैठ गई। लज्जा और सङ्कोच के मारे वह गड़ी जा रही थी, तो भी मनमोहिनी उसके शृङ्गार का जो आयोजन कर रही थी उसे चुपचाप सहन करती।

कृष्णकली के बहुत लम्बे लम्बे बालों का गूँथना उस समय तक भी समाप्त नहीं हो पाया था, इतने में गौरवर्णा की सुन्दरी प्रौढ़ा विधवा और एक रूपवती किशोरी बालिका वहाँ आकर उपस्थित हुईं। उन्हें आती देख मनमोहिनी ने कृष्णकली का बालों का गूँथना छोड़ दिया और वे बड़ी उतावली के साथ उठकर खड़ी हो गईं। मोटा शरीर लेकर खड़ी होने में जितना समय लगा था उसके बीच में ही वे दोनों

उठीं—आइए रानी दीदी, आज मेरे बड़े भाग्य थे। मेरे घर में आपकी पदधूलि क्या पड़ी मानो ग़रीब के द्वार पर हाथी झूम गया।

रानी ने कहा—जब से आई हूँ तभी से सोच रही थी कि चलकर अन्नपूर्णा के दर्शन कर आऊँ, परन्तु अवसर ही न मिला। आज आ पाई हूँ।

मनमोहिनी ने ज़ोर से कहा—लछिया, ओ लछिया। जल्दी एक दरी लाकर यहाँ बिछा तो जा।

रानी के आने का समाचार सारे घर में फैल गया था। नौकरानियाँ चाकरानियाँ और लड़के बच्चे सभी उत्सुकभाव से रानी को देखने के लिए दौड़ पड़े थे। मनमोहिनी की आज्ञा सुनते ही एक नौकरानी ने दौड़ कर दरी लाकर रानी के सामने बिछा दी।

कृष्णकली चाहती थी कि भागकर लोगों की दृष्टि की आड़ में कहीं जाकर छिप जाऊँ, किन्तु आधी गुंथी हुई वेणी लेकर वहाँ से हटने में भी उसे लज्जा आ रही थी, इसलिए उसे वहीं रुका रहना पड़ा।

आसन पर बैठते बैठते रानी ने पूछा—यह लड़की आपकी कन्या है?

इस प्रश्न के आघात से कृष्णकली का मस्तक नीचे की ओर झुक पड़ा। उसकी पीठ के पास बैठ कर मनमोहिनी ने उसकी अधगुँथी वेणी हाथ में ले ली और एक लम्बी साँस लेकर कहने लगी—जी हाँ, मेरी ही कन्या है, यद्यपि इसे मैंने गर्भ में नहीं धारण किया। ज़रा सी थी तभी से पाल-पोस कर इतनी बड़ी की है। इसके मा-बाप कोई नहीं हैं, हमीं लोग अब इसके मा-बाप हैं।

रानी ने पूछा—तो शायद आपके अनाथालय में आई थी।

मनमोहिनी ने व्यस्तभाव से कहा—जी नहीं, यह बात नहीं है। यह एक बहुत बड़े आदमी की कन्या है, किन्तु बाप एक पैसा भी नहीं छोड़कर जा सका, इसके बाप ने ही उनकी नौकरी लगवा दी थी। हमारी जो कुछ विभूति है वह सब इसके बाप की ही बदौलत है। ऐसे मित्र की कन्या का हम परित्याग कैसे कर सकते हैं।

रानी ने फिर पूछा—इसका विवाह कहाँ हुआ है?

मनमोहिनी ने उत्तर दिया—विवाह अभी तक नहीं हो सका। इसके पिता तो एक पैसा भी नहीं छोड़ गये, ये अपने व्यय से इसका विवाह करने को तैयार हैं, किन्तु कहीं अच्छा लड़का नहीं मिल रहा है। इधर ऐसे-वैसे के हाथ में सौंपते भी नहीं बनता।

मनमोहिनी की बातों में किन्तु शब्द का क्या तात्पर्य था, यह कृष्णकली ख़ूब अच्छी तरह से समझ सकी थी। वह कितनी ही बार सुन चुकी थी कि उसकी कुरूपता से ही डर कर अच्छे वर भाग जाते हैं। लज्जा के मारे उसका मस्तक कटा जा रहा था, इधर उसके भागने का भी रास्ता बन्द था, क्योंकि उसकी वेणी मनमोहिनी के हाथ में थी। वह सोच रही थी कि लगाम से बँध कर घोड़े इसी तरह चाबुक की मार सहते हैं।

मनमोहिनी की बातों के उत्तर में रानी ने कहा—अपनी कन्या के लिए एक वर खोजने के विचार से मैं भी कलकत्ते आई हूँ। बहन, तुम भी ज़रा अपने मालिक से कहना। शायद उनकी जान में कोई अच्छा वर हो। लड़का चरित्रवान् हो, साथ ही पढ़ा-लिखा भी हो, और हमें क्या करना है।

मनमोहिनी ने उत्तर दिया—अच्छा, उनसे पूछ कर बताऊँगी। मेरी जान में भी एक बहुत अच्छा वर है, परन्तु उसके माता-पिता इतने बड़े आदमी नहीं हैं। इसी लिए कहने का साहस नहीं होता। बामन होकर हाथ से चन्द्रमा को छूने का प्रयत्न करने के ही समान यह बात उपहासास्पद होगी।

रानी ने मुस्करा कर कहा—तो शायद वह आप ही का लड़का है समधिन। मेरी लड़की के ऐसे भाग्य कहाँ हैं कि वह इतने उच्च कुल में पड़े? आप लोगों का नाम और यश तो बङ्गाल भर में व्याप्त है।

मनमोहिनी ने कहा—आपने यदि समधिन कह कर मेरी बात स्वीकार कर ली तो अब मैं बताती हूँ। वह मेरा ही लड़का है समधिन। उनसे कह दूँगी कि आज ही तार देकर उसे बुला लें।

रानी ने पूछा—वह लड़का कहाँ है?

मनमोहिनी ने उत्तर दिया—लङ्का के किसी कालेज में प्रोफ़ेसर है।

इतनी देर के बाद छुटकारा मिलने पर कृष्णकली उठी और धीरे धीरे वहाँ से चली गई। जाते समय देखती गई कि विवाह की बात से किशोरी बालिका के मुखमण्डल पर गुलाबी दौड़ गई, इससे वह सुन्दर मालूम पड़ रही है।

रामयदु के घर का वैभव, अन्नपूर्णा की मूर्ति और अनाथालय देख कर रानी विदा हो गईं। जाते समय उन्होंने पाँच सौ रुपये अनाथालय को दान किया और एक गिनी अन्नपूर्णा पर चढ़ाई।

रानी के चले जाने पर वे सब रुपये लेकर मनमोहिनी पति का दर्शन करने गईं। उसके हाथ में रुपये देख कर रामयदु ने पूछा—ये रुपये कहाँ से मिले? मनमोहिनी ने उत्तर दिया—पड़ोसवाले मकान में कहीं की रानी आई हैं। आज वे घूमने आई थीं। एक गिनी चढ़ा कर उन्होंने अन्नपूर्णा को दण्डवत् प्रणाम किया और पाँच सौ रुपये अनाथालय के लिए दान किया है।

रामयदु ने हँस कर कहा—यह अच्छा ही हुआ। अब मुझे बैंक से रुपये न निकालने पड़ेंगे। तुम ब्रेसलेट गढ़ाने के लिए रुपये माँगती रही थीं, इससे ये रुपये अपने ही पास रख लो।

मनमोहिनी प्रसन्न हो गई। परन्तु गहना गढ़ाने के सम्बन्ध में और कोई बात न कह कर वह कहने लगी—रानी के चौदह-पन्द्रह वर्ष की एक बहुत सुन्दर कन्या है। उसके लिए एक वर खोजने को वे कह रही थीं। हमारे वनमाली का यदि विवाह न हो गया होता और इस रानी की लड़की के साथ उसका विवाह कर पाती तो उसकी सारी सम्पत्ति हमारे हाथ में आ जाती।

ज़रा सा सोच कर रामयदु ने कहा—देश से अब कुलीनों के विवाह का व्यापार उठ गया है, इस विषय में सोचने-विचारने से अब क्या लाभ है?

मनमोहिनी ने कहा—मैंने प्रियतोष के सम्बन्ध में उनसे बात-चीत की थी। उन्होंने तो ख़ुशी के मारे समधिन का नाता भी मुझसे जोड़ दिया है। इसलिए प्रियतोष को आने के लिए तार दे दो, उसके साथ [illegible] विवाह हो जाने पर इसकी सारी धन-सम्पत्ति हमारे [illegible] के ही एक आदमी के हाथ में रहेगी।

रामयदु उछल पड़े। आठ बच्चों की मा प्रौढ़ा [illegible] का मुँह चूम कर वे कहने लगे, कौन कहता है कि तुम्हें बुद्धि नहीं है। तुम मेरी प्रेयसी सहधर्मिणी हो।

ख़ुशी के मारे मुस्करा कर मनमोहिनी कहने लगी—रहने दो तुम अपनी चुहलबाज़ी। बुढ़ाई में अब [illegible] का सा ढङ्ग दिखाने की ज़रूरत नहीं है। तार [illegible] प्रियतोष को बुला लो।

तार का फ़ार्म खींच कर रामयदु ने कहा—अभी [illegible] किये देता हूँ।

( २७ )

पिता का पहला बुलावा पाकर प्रियतोष पुलकित हो उठा। वनमाली जब से उसके पास पहुँचा था [illegible] से उससे बार बार पूछ कर उसने माता-पिता तथा [illegible] बहनों के सम्बन्ध की छोटी-बड़ी सब बातें मालूम [illegible] ली थीं। उसके पिता के परिवार में कितने नौकर-नौकरानियाँ हैं, उनके क्या क्या नाम हैं और किसकी [illegible] प्रकृति है, ये सब बातें भी उससे छिपी नहीं [illegible] कृष्णकली का भी सारा इतिहास उसे मालूम [illegible] वनमाली के पास परिवार भर का एक सम्मिलित [illegible] था, उसे देख देख कर पिता के परिवार के सब लोगों [illegible] पहचान भी लिया था, अपनी आँखों से उसने कभी [illegible] को नहीं देखा था, तो भी किसी के पहचानने में [illegible] कोई कठिनाई नहीं होती थी।

प्रियतोष को जब पिता का तार मिला, उसके [illegible] ही दिन बाद कविगुरु रवीन्द्रनाथ के कोलम्बो [illegible] विलायत जाने की बात थी। वह रवीन्द्रनाथ का [illegible] भक्त था। उनके दर्शन का अवसर पाने की आशा [illegible] आह्लादित होकर मुग्ध हृदय की पुष्पाञ्जलि सजाये [illegible] शुभ क्षण की प्रतीक्षा में दिन गिन रहा था। [illegible] में जब उसे तार के द्वारा पिता का बुलावा मिला तब [illegible] ज़रा द्विविधा में पड़ गया। परन्तु पिता के [illegible]

आह्वान की वह अवहेलना न कर सका, कालेज से छुट्टी लेकर कलकत्ते के लिए रवाना होगया।

आगे बढ़कर पुत्र से मिलने और उसे लाने के लिए रामयदु स्टेशन गये थे। वे तो उसे पहचानते नहीं थे, सोचते थे कि शायद माता के चेहरे के कुछ कुछ लक्षण पुत्र के भी मुख-मण्डल पर होंगे। परन्तु परित्यक्ता पत्नी की मूर्ति रामयदु के हृदय पर खचित तो थी नहीं। उन्हें यह भी नहीं मालूम था कि प्रियतोष किस क्लास की गाड़ी में आ रहा है। इसी लिए गाड़ी आकर स्टेशन पर खड़ी होते ही वे भौचक्के से चारों ओर ताकने लगे। ज़रा ही देर के बाद एक बहुत ही रूपवान् पतला और लम्बा सा युवक आकर रामयदु के चरणों पर गिर पड़ा और दण्डवत् प्रणाम करके उसने उनकी पद-धूलि मस्तक से लगाई, बाद को युवक उठकर खड़ा हो गया।

युवक के मुख पर ज़रा सी लज्जा और मुस्कराहट की रेखा देखकर रामयदु क्षण भर उसकी ओर ताकते रहे और फिर उन्होंने पूछा—क्या तुम्हारा नाम प्रियतोष है? अपनी कुण्ठित दृष्टि नीची करके प्रियतोष ने उत्तर दिया, जी हाँ।

रामयदु बोल उठे—आओ बेटा आओ। तुम्हारा सामान कहाँ है।

प्रियतोष ने उत्तर दिया कि साथ में अधिक सामान नहीं ले आया, जो थोड़ा सा था, वह कुली लिये है।

कुली अपने सिर पर एक सूट केस और हाथ में एक बैग लिये खड़ा था। उसकी ओर एक बार दृष्टि डालते ही रामयदु ने कहा—चलो भैया चलो। इस तरफ़ हमारा मोटरकार लगा है।

पिता के घर पर आकर प्रियतोष ने सबसे जान-पहचान कर ली। सबसे अधिक उसकी दृष्टि तथा ध्यान आकर्षित कर सकी कृष्णकली। कृष्णकली का काला-कलूटा और भद्दा चेहरा ही उसकी दृष्टि और ध्यान आकर्षित करने के लिए काफ़ी था, तिस पर भी जब उसने उसके दुर्भाग्य का इतिहास सुना था तभी से उसके प्रति करुणा का उद्रेक हुआ था। अब यहाँ आने पर उसने देखा कि कृष्णकली जैसी सेवा में निपुण तथा अपने कर्तव्य में तत्पर है, वैसी ही लज्जाशील तथा नम्र एवं कोमल भी है। उसके ये भाव प्रियतोष को बार बार कृष्णकली के सम्बन्ध में सावधान करने लगे।

युवतियों में जो एक स्वाभाविक अनुभवशक्ति होती है उसके द्वारा कृष्णकली ने भी भाँप लिया कि अब मैं आठों पहर एक सुकुमार एवं तरुण पुरुष के लक्ष्य का विषय हो रही हूँ। इससे उसकी स्वाभाविक लज्जा चौगुनी बढ़कर उसकी कुरूपता को ढँकने तथा व्रीडा की मधुरता से उसे सराबोर करने लगी।

एक दिन रानी अपनी कन्या को लेकर घूमने आईं। मनमोहिनी ने प्रियतोष को बुला भेजा। कमरे में एक अपरिचित बड़े घर की महिला को देखकर प्रियतोष ठमक कर खड़ा हो गया।

प्रियतोष की ओर ताक कर मनमोहिनी ने हँसकर रानी से कहा—यही हमारा बड़ा लड़का प्रियतोष है। ये हमारी समधिनि हैं बेटा, इन्हें प्रणाम करो।

प्रियतोष ने सोचा कि यह महिला शायद मेरी माता की कोई आत्मीया होगी, इसलिए उनकी आज्ञा पाते ही उसने रानी को प्रणाम किया।

रानी ने कहा—जीते रहो भैया, राजराजेश्वर होओ।

इसके बाद मनमोहिनी की ओर मुँह फेर कर वे कहने लगीं—कैसा सुन्दर लड़का है, मानो किसी राजा का लड़का हो।

मनमोहिनी ने हँसकर प्रियतोष से कहा—अच्छा बेटा, अब तुम जाओ।

प्रियतोष चला गया। जाते समय लोगों की दृष्टि बचा कर वह एक बार उस किशोरी बालिका की ओर ताकता गया।

प्रियतोष को देखकर सन्तोष प्रकट करती हुई रानी ने कहा—हमारी माधुरी को स्वीकार करके हमें निश्चिन्त कर दो समधिन।

मनमोहिनी ने कहा—अच्छा समधिन, ज़रा सा तुम बैठ जाओ, मैं एक बार लड़के की भी राय लिये लेती हूँ।

प्रियतोष के कमरे में मनमोहिनी ने जैसे ही पैर रक्खा, वह कुर्सी से उठ कर खड़ा हो गया।

मनमोहिनी ने हँसकर कहा रानी की इस लड़की को तो तुमने देखा है बेटा, तुम्हें पसन्द है ?

एकाएक यह प्रश्न सुनकर प्रियतोष लज्जित हो गया, वह कोई भी उत्तर न दे सका, वह अपना मुँह नीचा किये रहा।

मनमोहिनी कहने लगी—हम लोगों की बड़ी इच्छा है कि इस लड़की के साथ तुम्हारा विवाह कर दें। बड़ी सुन्दर लड़की है। कितनी नम्र और धीर है। देखने-सुनने में जैसी है, वह तो तुमने स्वयं देखा है। इसके साथ ही मा की वह अकेली लड़की है, सारी सम्पत्ति लड़की-दामाद की ही होगी। लड़की के साथ तुम्हारा विवाह करने की रानी की भी बड़ी इच्छा है। तुम्हें देखकर वे बहुत प्रसन्न हुई हैं। लड़की भी हम लोगों को बहुत पसन्द है। अब तुम भी सहमत हो जाओ तो हम लोग इस शुभ कार्य का आयोजन करें। इसी लिए तार देकर तुम्हें इतनी शीघ्रता से बुलवाया है।

प्रियतोष ने कहा—जो कुछ आप लोग आज्ञा देंगे मैं वही करूँगा।

मनमोहिनी ने प्रसन्न होकर कहा—बहुत अच्छा बेटा, बहुत अच्छा, जीते-जागते रहो, राजराजेश्वर होओ। मैं समधिन को यह शुभ संवाद दिये आती हूँ।

प्रियतोष के पास से चलकर रानी के पास जाती जाती मनमोहिनी फूली नहीं समाती थी। जिस कमरे में रानी बैठी थीं उसमें पैर रखते ही हँस कर कहने लगी—समधिन रानी, बहू को मेरे बेटे ने पसन्द कर लिया है। ऐसी मूर्ति जैसी लड़की पसंद क्यों न होती ? अब सबसे पहले जो शुभ मुहूर्त आवे उसी दिन दोनों हाथ एक कर देने चाहिए।

अनुपम आभा से दगदगाता हुआ राजकन्या का मुख लज्जा की लालिमा से और भी सुन्दर हो गया।

जिस कमरे में बैठकर ये लोग बातचीत कर रहे थे उसके पासवाले कमरे में ही बैठी हुई कृष्णकली कुछ काम कर रही थी। मनमोहिनी की बात सुनकर उसका काला मुख और भी काला होकर मलिन हो गया। न जाने क्यों इस सुन्दर बालिका के प्रति ईर्ष्या से उसका हृदय ओतप्रोत हो गया, और उसके अन्तस्तल को [illegible] कर रुलाई का वेग ऐसी तीव्रता से उठ रहा था कि [illegible] रोक रखना उसकी शक्ति से परे था। बड़ी उतावली के साथ वह पुस्तकालय की ओर बढ़ी। ये ही कमरे [illegible] थे। पुस्तकों की अलमारियों के वन में अपने को छिपा कर वह हृदय की वेदना को गुप्त करना चाहती थी।

पुस्तकालय की ओर जाते समय कृष्णकली की [illegible] के सामने पड़ा प्रियतोष। उसे देखते ही उसकी [illegible] और दुखरूपी अग्नि में आहुति सी पड़ गई, मुँह फेर [illegible] वह तुरन्त ही चली गई।

विवाह के बहुत थोड़े दिन शेष रह गये थे। घर [illegible] नौकरानियाँ घंटे, घड़ियाल, शङ्ख आदि बजा कर उत्सव [illegible] घोषणा करने लगीं, समय समय पर मंगल के गीत [illegible] भी होने लगे। यह सब सुनकर और म्लान[illegible] कृष्णकली को देखकर प्रियतोष के मन में यह बात [illegible] लगी कि मैं पिता से कहकर भिन्न भिन्न पत्रों में विज्ञा[illegible] दूँगा और एक योग्य वर मिलते ही कृष्णकली के [illegible] विवाह का प्रयत्न करूँगा। लड़की काली है तो [illegible] स्वभाव की बड़ी अच्छी है। इसे मैं जितना देखता [illegible] उतनी ही यह अच्छी लगती है।

लाइब्रेरी के एकान्त में जाकर पकड़े जाने की आश[illegible] से मुक्त होते ही कृष्णकली की आँखों से टप टप [illegible] गिरने लगे। पुस्तकों के एक ढेर पर बैठ कर उसने [illegible] से आँखें मूँद लीं। कुछ देर तक नेत्रों से जल [illegible] रहने पर जब उसका हृदय कुछ हल्का हुआ तब [illegible] परिस्थिति पर विचार करने का उसे अवसर मिला। [illegible] विवाह हो रहा था प्रियतोष का, इसमें उसके रोने [illegible] क्या कारण था ? राजकन्या का सा रूप और विभव [illegible] उसके पास था नहीं। तब वह उसके सौभाग्य पर ईर्ष्या [illegible] करती थी ?

कृष्णकली को अपनी इस स्वार्थपरायणता तथा हृ[illegible] की क्षुद्रता के लिए बड़ी लज्जा आई। साथ ही मन [illegible] मन वह बहुत दुखी भी हुई। वह सोचने लगी कि [illegible]



अधर में

एस० सी० सेन महोदय की कृपा से प्राप्त ] [ इंडियन प्रेस, लि०, प्रयाग

दिव की ही देखादेखी में प्रियतोष के प्रति अनुरक्त होकर मैंने अपराध किया है। इससे अपने को व्यभिचारिणी समझ कर वह बहुत ही सन्तप्त हुई। वह सोचती कि जिसे पाने की लेशमात्र भी आशा नहीं है उसके प्रति अनुरक्त होना व्यभिचार नहीं तो और क्या है? परन्तु कृष्णकली के लज्जा तथा सन्ताप से व्याकुल हृदय में भी बार बार यही बात गुञ्जायमान होती कि हे विधाता, यदि हृदय में प्रेम दिया है तो सुन्दरता क्यों नहीं दी। जिसकी उपासना के लिए हृदय बार बार व्याकुल हो रहा है उसके चरणों पर कौन-सी वस्तु समर्पित करके मैं उसकी पूजा करूँ।

कुछ ही क्षण के बाद कृष्णकली ने सुना, मनमोहिनी किसी नौकरानी से पूछ रही थी, क्यों रे क्षेमी, कली कहाँ गई है? उसे बुला तो दे। प्रियतोष के शरीर में तेल-हल्दी चढ़ाने का आयोजन करना है। अब अधिक दिन तो हैं नहीं, केवल दो दिन का अन्तर और है।

मनमोहिनी की यह बात सुनते ही कृष्णकली चकित हो उठी। इससे पहले तो उसे खोजने की कभी आवश्यकता पड़ती नहीं थी। आज फिर उसके कर्तव्य में क्यों त्रुटि हो रही थी। कारण चाहे कुछ भी रहा हो, अपनी इस त्रुटि के लिए वह लज्जित हुई, साथ ही उसे दुख भी हुआ। उसने बड़ी उतावली के साथ अञ्चल से आँख-मुँह पोंछ डाले और उठ कर खड़ी हो गई, परन्तु प्रियतोष के शरीर पर हल्दी-तेल चढ़ाने का आयोजन करने जाने के लिए उसका पैर ही नहीं उठता था।

कृष्णकली व्याकुलभाव से वहाँ से चली गई। इससे वह यह न देख सकी कि पुस्तकों की अलमारी की आड़ में खड़ा होकर प्रियतोष उसका रोना देख रहा था। कृष्णकली को रोती देखकर प्रियतोष अवाक् और निस्तब्ध हो गया था। वह चिन्ता में पड़ गया कि कृष्णकली रोती क्यों है। इस घर में तो सभी उसका आदर करते हैं। इतने दिन में कभी किसी को कृष्णकली को आधी बात कहते भी प्रियतोष ने नहीं सुना था। इसके विपरीत सब लोग उसका जो इतना आदर करते थे इससे आश्चर्य होने पर भी उसे प्रसन्नता ही हुई थी। तब कृष्णकली को दुख किस बात का है? माता-पिता से वह बिछुड़ी है बहुत छुटपन में। उनकी स्मृति या अभाव आज इतने दिन के बाद उसके हृदय को क्लेश पहुँचा रहा हो, सो भी सम्भव नहीं जान पड़ता। तो क्या किसी साथी से हीन होने के कारण यौवन उसे यह पीड़ा दे रहा है? प्रियतोष मन ही मन चिन्तित होकर टहलते टहलते घर से निकल पड़ा और सड़क की पटरी पर जाकर खड़ा हो गया।

कुछ ही क्षण के बाद एक पथिक सड़क से जाते जाते रामयदु के मकान की ओर दृष्टि फेरते बोल उठा—अरे प्रियतोष हो क्या?

साथ ही साथ प्रियतोष भी प्रसन्न मुख से बोल उठा—अरे सत्य दादा? बहुत दिन के बाद मुलाक़ात हुई। क्या कर रहे हो आज-कल?

सत्यदास ने कहा—पैर के शनीचर उतार रहा हूँ। मैंने तो सुना था कि तुम कोलम्बो में रहते हो। यहाँ कैसे आये हो?

प्रियतोष ने हँसकर कहा—पिताजी के यहाँ आया हूँ।

आश्चर्य में आकर सत्यदास ने पूछा—रामयदु बाबू तुम्हारे पिता हैं?

मस्तक हिला कर प्रियतोष ने अपनी स्वीकृति प्रकट की।

तब सत्यदास ने कहा—भाई, यदि तुम ज़रा सा मेरे साथ चलो तो तुम्हें एक बात बताऊँ। यहाँ तुम्हारे पिता के द्वार पर खड़े होकर बातचीत करने का साहस मुझे नहीं होता।

प्रियतोष आश्चर्य में आगया। उसने कहा—चलो, मैं तुम्हारे साथ साथ चलता हूँ।

प्रियतोष सत्यदास के साथ साथ चला। ये दोनों ही परस्पर एक दूसरे के पूर्वपरिचित थे। प्रियतोष के नाना जब कृष्णनगर में प्रोफ़ेसर थे तब सत्यदास उनका विद्यार्थी था। प्रियतोष के नाना अपने इस विद्यार्थी को बहुत चाहते थे। उस समय प्रियतोष छोटा सा बालक था। अवस्था की विषमता होने पर भी सत्यदास से उसकी गहरी मित्रता हो गई थी। अन्त में प्रियतोष के नाना जब बदल कर राजशाही चले गये तब सत्य-

दास और प्रियतोष एक दूसरे से दूर हो गये। बहुत दिन के आज इन भिन्न अवस्था के मित्रों की मुलाक़ात हुई।

कुछ ही दूर आगे बढ़ने पर प्रियतोष अपनी उत्सुकता और न रोक सका। उसने कहा—कौन-सी बात है सत्य दादा?

प्रियतोष की ओर मुँह फेरकर सत्यदास गम्भीर भाव से कहने लगा—तुमसे मेरी एक फ़रियाद है भाई। तुम्हारे समीप मैं न्याय के लिए प्रार्थी हूँ।

यह सुनकर प्रियतोष को और भी आश्चर्य हुआ। उसने बड़ी उत्सुकता के साथ कहा—मुझसे फ़रियाद! न्याय किसका कराना है?

पहले की ही तरह गम्भीरता के साथ सत्यदास कहने लगा—सुनो, मैं सारी कथा सुनाता हूँ। कुछ दिन तक मैं तुम्हारे पिता के पास उनका आश्रित होकर रह चुका हूँ। मैं उनका प्राइवेट सेक्रेटरी का काम करता था। लेख आदि जो कुछ लिखने को कहते या बोलते वह भी लिखता, हाट-बाज़ार कर दिया करता और लड़कों-लड़कियों को पढ़ाया-लिखाया भी करता था। इस तरह उनके कई तरह के काम मेरे सुपुर्द थे। छुटपन से ही मैं कविता लिखता हूँ। यह तुम्हें भी मालूम है। पुस्तक छपाने का मुझे शौक़ था, परन्तु पैसे का ठिकाना था नहीं। तुम्हारे पिता ने पत्रों में विज्ञापन छपाया था कि ग़रीब लेखकों की रचनायें वे प्रकाशित कर देंगे, यदि वे रचनायें साहित्यिक दृष्टि से वास्तव में मूल्यवान् प्रमाणित होंगी। लोभ में पड़ कर मैंने प्रार्थना-पत्र तथा अपनी रचना भेज दी थी। शायद आई हुई रचनाओं में से मेरी ही रचना सबसे उत्तम निकली थी, जिससे तुम्हारे पिता ने मुझे बुलाकर अपने घर में रहने को कहा। बाद को पुस्तक प्रकाशित हुई रामशर्मा के नाम से, सामयिक पत्रों में कवितायें प्रकाशित होने लगीं रामशर्मा के नाम से, उन्हें पढ़ कर सभी लोगों ने समझा कि ये सुप्रसिद्ध लेखक रामयदु मुखोपाध्याय की ही रचनायें हैं। मेरे यश का जो अपहरण किया गया उसको तो मैंने सहन कर ही लिया, परन्तु परम पुण्यवान् एवं हितैषी मित्र प्राण बाबू को धोखा देकर जब उन्होंने जाली लि[खा] तथा दस्तावेज़ बनाया और उनकी कन्या कृष्णकली को पिता की सम्पत्ति से वञ्चित कियां तब यह अधर्म मुझसे न सहा गया। मैंने विरोध किया। इसका परिणाम यह हुआ कि मेरी नौकरी गई, साथ ही विज्ञप्ति प्रकाशित हुई कि मैं उनकी कविताओं की कापी चुरा लाया हूँ, मेरी रचनायें कहीं प्रकाशित न हो जायँ। अपनी रचनाओं के लिए भी मैं चोर बनाया गया। कृष्णकली को तुमने देखा होगा। बाद को विवाह हो जाने पर कृष्णकली की ससुरालवाले कहीं उसके पिता की सम्पत्ति लेने का प्रयत्न न करें, इस भय से उसके विवाह तक का प्रयत्न नहीं करते। लोगों को या उसे सम[झा] देते हैं कि काली-कलूटी सूरत देख कर उसके साथ कोई विवाह ही नहीं करना चाहता। कृष्णकली के साथ जैसी प्रतारणा की गई है उसका हाल केवल मैं ही जानता हूँ, परन्तु किसी से कह नहीं सकता। लोग कहेंगे कि नौकरी से अलग कर दिया है, इसलिए शत्रुभाव से इतने बड़े प्रतिष्ठित व्यक्ति की निन्दा कर रहा है। जहाँ कहीं भी अन्याय या अत्याचार हो, उसका प्रतिवाद और प्रतीकार करना हर एक सत्पुरुष का काम है। परन्तु मेरा कर्तव्य इससे भी अधिक है, क्योंकि उस जाली लि[खा] और दस्तावेज़ पर गवाही लिखा कर मैं भी पाप-भागी बना लिया गया हूँ। इसी बात पर विचार करके और इस अन्याय का प्रतीकार करने के लिए मैं प्रार्थी हूँ।

प्रियतोष भी चिन्तित और गम्भीर हो उठा। उसने कहा—ज़रा सारी बातें और विस्तार के साथ स्पष्ट रूप से मुझसे बता दो सत्य दादा।

सत्यदास को जो जो बातें मालूम थीं और जिस बात का उसे सन्देह था वह सब उसने प्रियतोष से विस्तार-पूर्वक बतला दिया। प्रियतोष का मुख मलिन और कातर हो उठा। उसने सत्यदास से कहा—तुम निश्चिन्त हो जाओ सत्य दादा, पिता के पाप का प्रायश्चित्त मैं अवश्य करूँगा।

सत्यदास प्रसन्न होकर चला गया। प्रियतोष चिन्तित होकर घर लौट आया।

कृष्णकली दूर से छिपकर प्रियतोष को जितनी बार देख पाती थी, देखती-फिरती थी। प्रियतोष के पैरों की आहट पाते ही वह चञ्चल होकर इस विचार से चली कि इधर से चलने पर मैं उन्हें ज़रा सा देख पाऊँगी। चलते ही चलते चण में देखकर उसने समझ लिया कि प्रियतोष के मनोहर और प्रफुल्लित मुख की आभा चिन्ता के कारण क्लान्त और मलिन हो गई है।

प्रियतोष इसी चिन्ता में निमग्न होकर इधर-उधर घूम रहा था कि किस तरह से वास्तविक स्थिति का अनुसन्धान किया जाय। वह मानो सरकारी गुप्तचर था, किसी रहस्य का उद्घाटन करने के लिए नियुक्त किया गया था। कभी वह सोचता कि कृष्णकली से पूछूँ, उसे कुछ मालूम है या नहीं, फिर सोचता कि यदि वह कुछ भी न जानती हो तो उसकी चिन्ता-रहित शान्ति भंग करने से लाभ ही क्या होगा? कभी कभी उसके जी में आता कि पिता के ही पास जाकर यह बात पूछी जाय, परन्तु फिर सोचता कि इतनी बड़ी लज्जाजनक बात पुत्र के समक्ष भला वे कैसे प्रकट करेंगे? तब क्या छिप कर पिता के बक्स की तलाशी ली जाय? परन्तु इसका भी अवसर कैसे मिलेगा? किंकर्तव्य-विमूढ़ होकर वह उत्तरोत्तर अधिक चिन्तित होता जा रहा था।

प्रियतोष का मलिन मुख देखते ही कृष्णकली को न जाने कितनी रुलाई आती थी। वह भाग कर किसी एकान्त और निर्जन स्थान में छिप जाती। घर-भर में एकान्त-स्थान थे लाइब्रेरी के कमरे। वह बीच बीच में भाग कर पुस्तकों से भरी हुई अलमारियों की क़तारों के बीच जा बैठती और उमड़े हुए आँसुओं के रोकने की चेष्टा करती।

एक दिन दोपहर के समय लाइब्रेरी में जाकर कृष्णकली अकेली बैठी थी। इतने में उसका अत्यन्त परिचित प्रियतोष के स्लीपरों का शब्द सुनाई पड़ा। इससे वह चौंक उठी और बहुत ही चुपके से उठकर अलमारी से चिपट कर खड़ी हो गई। प्रियतोष उसके सामने से होकर निकल गया। कृष्णकली ने आराम की साँस ली। उसने शान्त होकर मन ही मन कहा—यह अच्छा हुआ जो वे मुझे नहीं देख पाये, परन्तु प्रियतोष उसे देखकर भी इस भाव से चला गया था, मानो उसने उसे देखा ही नहीं। प्रियतोष को यह मालूम हो गया था कि कृष्णकली मुझसे छिपने का प्रयत्न करती है, अतएव उसकी लज्जा बढ़ाना उसने उचित नहीं समझा।

प्रियतोष चला जा रहा था। इतने में उसने देखा तो उसके सामने से कई एक चिट्ठियाँ हवा के झकोरे से फरफरा कर उड़ती चली जा रही थीं। साथ ही पासवाले कमरे से पिता का व्यस्त कण्ठस्वर भी सुनाई पड़ा—क्यों रे, अरे पचा, छेदिया, तुम सबके सब कहाँ चले गये? दौड़ो, सब काग़ज़-पत्र उड़े जा रहे हैं।

प्रियतोष ने चिट्ठियाँ उठा लीं। हाथ में लेते ही एकाएक एक चिट्ठी पर उसकी दृष्टि पड़ी तब कृष्णकली का नाम दिखाई पड़ा। उतावली के साथ उलट कर उसने देखा तो दस्तख़त था प्राण बाबू का। तारीख़ लिखी थी उनके मृत्यु-दिन की। इसे देख कर प्रियतोष ने अनायास ही समझ लिया कि सम्भवतः यह प्राण बाबू का मृत्यु से पहले लिखा हुआ अन्तिम पत्र होगा। उसे चुपके से जेब में रख कर वह पिता के कमरे में गया और वायु के झकोरे से उड़कर कमरे भर में बिखरे हुए काग़ज़ों को एकत्र करने में संलग्न पिता की सहायता करने लगा।

सारा काग़ज़-पत्र इकट्ठा करके प्रियतोष अपने कमरे में चला गया और द्वार की साँकल बन्द करके वह चुराया हुआ पत्र पढ़ने लगा।

उस पत्र को उसने तीन बार पढ़ा। अन्त में लम्बी साँस लेकर उसे बक्स में बन्द कर दिया और जाकर बिस्तरे पर बैठ गया। यही पिता का चरित्र है? उसकी माता के साथ अन्याय करनेवाले, उसके प्रति उदासीन तथा दूसरों को धोखा देकर ठगनेवाले पिता के प्रति अश्रद्धा से उसका हृदय ओतप्रोत हो गया। देवी चौधरानी के व्रजेश्वर के समान वह पिता धर्मः पिता स्वर्गः की आवृत्ति करके अपने हृदय को संयत करने का प्रयत्न करने लगा। वह इसी चिन्ता में निमग्न हुआ कि पिता के इस पाप का प्रायश्चित्त किस प्रकार किया जा सकता है।

दूसरे दिन बड़े सवेरे उठकर प्रियतोष प्रतिदिन के नियमानुसार घूमने गया था। उसी बीच में अवसर पाकर कृष्णकली उसका कमरा झाड़ने और सारी चीज़ें यथास्थान रखने के लिए आई थी। सारी चीज़ें झाड़ कर वह प्रियतोष के स्लीपरों को प्रणाम करने के बाद वह मस्तक उठा ही रही थी, इतने में देखा कि दरवाज़े के पास प्रियतोष खड़ा है। उसके नेत्रों से स्नेह के आँसू बह रहे थे। ठीक उसी समय उसके तथा रानी के द्वार पर नगाड़ा और सहनाई बज रही थी। कल ही माधुरी का अधिवास था, उसके शरीर पर तेल-हल्दी चढ़नेवाला था और कल ही विवाह भी था।

इतनी शीघ्रता से प्रियतोष को लौट कर आया हुआ देखकर कृष्णकली लज्जित हो गई। वह कमरे से निकलकर जाना ही चाहती थी कि प्रियतोष द्वार रोक कर खड़ा हो गया और स्निग्ध एवं मृदु स्वर से कहने लगा—तुम जाओ मत कृष्णकली, तुमसे मुझे एक बात कहनी है।

कृष्णकली एक किनारे हो गई और मस्तक नीचा करके खड़ी रही।

प्रियतोष कहने लगा—अधिक बातचीत करने का समय नहीं है। तुम्हारी मुझे विशेष आवश्यकता है। मेरे लिए एक राजकन्या और आधा राज्य निश्चित हो चुका है, यह तुम्हें स्वयं मालूम है। परन्तु मेरी दृष्टि में उससे भी तुम्हारा मूल्य अधिक है। क्या तुम मेरे साथ चलोगी? परन्तु मेरा अनुमान है कि इस घर से सारा सम्बन्ध तोड़ कर चलना होगा। तुम्हारी यह क्षति मैं अपने स्नेह और आदर से पूर्ण करूँगा और आगे चलकर कदाचित् प्रेम भी प्रदान कर सकूँ। आज तुम अच्छी तरह से सोच-समझ कर देख लो, कल हल्दी-तेल चढ़ेगा और कल ही विवाह भी हो जायगा, इससे पहले तुम्हारी सम्मति मिल जानी चाहिए।

द्वार छोड़ कर प्रियतोष एक बग़ल खड़ा हो गया। कृष्णकली धीरे-धीरे कम्पित चरणों से कमरे से निकल कर अन्धकारमय लाइब्रेरी के पुस्तकरूपी वन में जाकर छिप गई। यह कैसी अनहोनी बात हो रही है! यह तो दुराशा से भी बढ़कर कहीं अधिक दुराशा है! इतना बड़ा सौभाग्य विधाता ने निर्दिष्ट कर रक्खा था! परन्तु ऐसा करने पर चाचाजी और चाचीजी रुष्ट होंगे। वे लोग मुझे विश्वासघातक और नमकहराम समझेंगे। यह मुझसे न सहा जायगा। ऐसा करना बहुत ही बुरा है। इसमें अन्याय तो होगा ही, साथ ही कृतघ्नता भी होगी। परन्तु वे जो मुझे चाह रहे हैं, इधर-उधर की [illegible] पढ़ा कर उन्होंने मुझे कोई प्रलोभन तो दिया नहीं। [illegible] मुझसे प्रेम नहीं करते, क्योंकि कुरूपा से प्रेम करना [illegible] कठिन काम है। यह बात तो उन्होंने छिपाई नहीं, [illegible] भी उन्होंने कहा है कि मुझे तुम्हारी आवश्यकता है। उनकी यह आज्ञा ही मैं कैसे टाल दूँ?

परस्पर-विरुद्ध चिन्ताओं से उत्तेजित होकर कृष्णकली रो पड़ी। वह सारा दिन एकान्त मिलते ही आँसू बहा बहा कर उसने बिता दिया।

(२८)

आज प्रियतोष के शरीर पर हल्दी-तेल चढ़नेवाला था। सवेरे से ही दोनों घरों में नगाड़े बज रहे थे।

प्रातः काल उठने पर मनमोहिनी ने देखा कि कृष्णकली सदा की भाँति आज उनकी सेवा के लिए उपस्थित नहीं है। उन्होंने सोचा कि आज मैं समय से पहले उठ गई हूँ, शायद इसी लिए कृष्णकली अभी तक यहाँ आई नहीं। शय्या से उठ कर वह कृष्णकली के कमरे में गई। जब वह वहाँ भी न मिली तब उसे खोजने के लिए स्नानागार में गई। परन्तु कृष्णकली का वहाँ भी पता न चला। तब उसने दासियों को बुला कर कहा कि ज़रा देखो तो कली कहाँ है, उसे बुला कर सारा प्रबन्ध करने को कह दो, मैं झटपट दो लोटा पानी सिर पर डाल कर आती हूँ।

घर भर में खोज कर भी दासियाँ कृष्णकली का पता न लगा सकीं।

मनमोहिनी जब लौट कर आई तब उन लोगों ने कहा कि कृष्णकली तो कहीं दिखाई ही नहीं पड़तीं।

मनमोहिनी कुछ क्षण तक चुपचाप सोचती रही, अन्त में उसने कहा कि शायद अनाथालय में गई होगी, ज़रा वहाँ जाकर तो देख आओ।

किसी दासी ने कहा—वहाँ भी देख लिया है, वे वहाँ नहीं हैं।

"अन्नपूर्णा के मन्दिर में ?"

"मन्दिर में भी नहीं हैं।"

मनमोहिनी चिन्ता में पड़ गई। उसने कहा—ज़रा जाकर देख तो आओ कि तुम्हारे बड़े दादा बाबू घूम कर आये या नहीं ?

एक दासी दौड़ कर देख आई। उसने कहा कि दादा बाबू अभी नहीं लौटे हैं।

कृष्णकली की खोज में सारा घर चञ्चल और उद्विग्न हो उठा था। प्रियतोष के सम्बन्ध में किसी को किसी प्रकार की चिन्ता नहीं थी। लोगों की धारणा थी कि वह घूमने गया है, अभी ही आता होगा।

दिन अधिक चढ़ आया। कृष्णकली और प्रियतोष इन दोनों में से एक भी न दिखाई पड़ा। तब एक साथ ही गुप्त होने के कारण धीरे धीरे करके सभी का हृदय एक ही सूत्र में ग्रथित होने लगा। पहले सन्देह हुआ, फिर ज्यों-ज्यों समय अधिक बीतता गया, वह सन्देह विश्वास के रूप में परिणत होता गया।

मनमोहिनी ने नाक सिकोड़ कर रामयदु से कहा—शाबाश भाई शाबाश, बलिहारी है इस प्रवृत्ति की। अन्त में कलूटी प्रेतिन से ही मन रम गया। मैं समझती थी कि यह लौंडिया बड़ी सीधी है।

निष्फल क्रोध से गर्ज कर रामयदु कहने लगे—झाड़ू मारो नीच जाति के सिर पर। नीच जाति में जन्म लेकर आदमी अच्छा कितना हो सकता है और यह लड़का तो कुल का कलंक है। ऐसी माता की गोद में उसने जन्म ही लिया है।

परन्तु रामयदु के मन में तुरन्त ही यह बात आई कि काशी के ज्योतिषी ने प्राण बाबू से जो कहा था कि कृष्णकली का विवाह थाकोहरि से भी अधिक योग्य वर के साथ होगा तो क्या वह योग्य वर मेरा पुत्र प्रियतोष ही है।

मनमोहिनी अपने मातृगर्व से फूल उठी। उसने कहा कि मेरा वनमाली, पचा, नेदो आदि तो लड़के क्या हैं हीरा के टुकड़े हैं। परन्तु रानी समधिन को अब हम लोग मुँह तक न दिखा सकेंगे।

रामयदु ने कहा—टीका चढ़ने से पहले चला गया, यही अच्छा हुआ।

प्रियतोष और कृष्णकली के निकल भागने का समाचार शीघ्र ही शहर भर में फैल गया। लज्जा और अपमान के मारे दोनों घरों में नगाड़ों की ध्वनि बन्द हो गई।

दूसरे दिन सवेरे हर एक पत्र में यह समाचार प्रकाशित हुआ कि राय बहादुर रामयदु मुखोपाध्याय ने अपने ज्येष्ठ पुत्र प्रियतोष का असवर्ण विवाह किया है। अपने हितैषी प्राण बाबू के ऋण का अपने इस सदनुष्ठान से प्रतिशोध किया है। जो पत्र समाज-सुधार के पक्षपाती थे उन्होंने रामयदु बाबू के इस कृत्य की प्रशंसा में कालम के कालम रँग डाले और जो रूढ़ियों के पक्षपाती थे उन्होंने भरपेट निन्दा भी की।

आफ़िस में रामयदु के पहुँचते ही साहब लोगों ने आकर उनसे हाथ मिलाया और कहने लगे—

आपके इस साहसपूर्ण और उदार कार्य के लिए हम आपको बधाई देते हैं राय बहादुर साहब। यह सदनुष्ठान आपके सर्वथा अनुकूल था। हमारी यह हार्दिक कामना है कि यह जोड़ी सदा सानन्द और सुखी रहे।

रामयदु ऐसा भाव दिखलाते हुए मानो अपने सत्कार्य की प्रशंसा से प्रसन्न और अप्रतिभ हुए हैं, ज़रा सा हँस कर रह गये।

दूसरे वक्त आफ़िस से लौटकर जब रामयदु घर गये, उन्होंने देखा कि ब्राह्म, ईसाई तथा सुधारवादी हिन्दुओं का उनके यहाँ जमघट लगा था। उन्हें देखते ही लोगों ने प्रशंसा का पुल बाँध दिया। किसी ब्राह्म ने कहा—आपने असाधारण साहस और न्यायपरायणता प्रदर्शित की है राय बहादुर। परन्तु यह विवाह यदि समाज को दिखा कर अपने घर में किया होता तो यह कार्य सर्वथा आपके अनुकूल होता।

एक अपरिपक्व विचार के हिन्दू ने जो न पूर्ण रूप से ब्राह्म थे और न पक्के हिन्दू ही थे, कहने लगे—यह

भी अच्छा ही हुआ। साँप भी मर गया, लाठी भी न टूटी। विवाह भी हो गया और कट्टर सनातनियों को कुछ कहने-सुनने का भी अवसर न मिला, साथ ही न तो राय बहादुर साहब के घर में विवाह हुआ और न इन्हें उनके साथ खाना-पीना पड़ा।

किसी ब्राह्मण ने कहा—यह सब अच्छा हुआ, केवल हमीं लोग मुँह मीठा करने से वञ्चित रह गये।

रामयदु ने हँस कर कहा—वञ्चित क्यों होंगे, कृपा करके ज़रा सा बैठ जाइए, मुँह मीठा करने का भी प्रबन्ध किये देता हूँ। ओरे जगा, दौड़कर सरकार बाबू से कह तो दे कि भीमनाग की दूकान से पचास रुपये में रसगुल्ला और एक हज़ार लँगड़ा-बम्बई आम जल्दी से ख़रीद लावें, बल्कि मोटर लेते जायँ।

किसी आगन्तुक ने हँसकर कहा—ज़रा सा रसगुल्ला और आम खिला देने से ही न छुट्टी मिलेगी राय बहादुर। एक दिन पूड़ी-कचौड़ी की भी दावत करनी पड़ेगी। ज्येष्ठ पुत्र का शुभ विवाह है। हम लोग इस तरह फुसलाने से न जी छुड़ाने देंगे।

रामयदु ने हँस कर कहा—यह तो मेरा बड़ा सौभाग्य है। आगामी शनिवार को ही पूड़ी-कचौड़ी का भी निमन्त्रण रहा।

उस दिन इँग्लेंड के बादशाह का जन्मदिन था। उस दिन राजभक्ति प्रदर्शित करने के लिए रामयदु अनाथालय में उत्सव किया करते और उसी उपलक्ष्य में लोगों की दावत भी करते। इस तरह नीति-कुशल रामयदु ने एक ही ढेले में दो पक्षी मारने का उपक्रम कर रक्खा था।

छत पर लोग खाने के लिए बैठे थे। रामयदु सब लोगों के पत्तल के पास घूम घूम कर पूछ पूछ कर खिला रहे थे। इतने में नौकर ने आकर सूचना दी कि एटर्नी साहब आये हैं।

अतिथियों से रामयदु ने कहा—आप लोग ख़ूब शान्ति से भोजन कीजिए, मैं ज़रा देर में आता हूँ। आशा है, आप लोग इतने समय के लिए क्षमा करेंगे।

स्वयं माँग माँग कर निमन्त्रण खानेवालों ने आम चाटते चाटते कहा—बहुत अच्छा, आप चिन्ता न कीजिए, पेट-भरे बिना उठनेवाले हम लोग नहीं हैं। वाह, कैसे आनन्द का भोजन है।

नीचे जाकर रामयदु ने एटर्नी से मुलाक़ात की और कहा—देखिए एटर्नी बाबू, मेरा ज्येष्ठ पुत्र प्रियतोष त्याज्य पुत्र है। वह मेरी सम्पत्ति से एक पैसा भी न पायेगा। इस विषय का एक बिल तैयार करना है। आज तो मैं ज़रा व्यस्त हूँ, हो सकेगा तो कल आपके आफ़िस में आऊँगा। अभी आप बैठिए, ज़रा सा जलपान करके जाइएगा।

इसी समय प्रियतोष और कृष्णकली जहाज़ पर सवार होकर अगाध जलराशि पर से होकर लङ्का की ओर चले जा रहे थे। अपना लज्जित मुख नीचा करके बहुत ही मृदु स्वर से कृष्णकली ने कहा—हँसते किस बात पर हो?

प्रियतोष ने हँसकर कहा—शरच्चन्द्र के श्रीकान्त में ठीक ही कहा है कि काले के हृदय में भी प्रकाश होता है। काले समुद्र के ही वक्षःस्थल से लक्ष्मी और अमृत की उत्पत्ति हुई थी।

कृष्णकली ने गद्गद होकर कहा—किन्तु विष भी तो उत्पन्न हुआ था, यह बात भी न भूलनी चाहिए।

प्रियतोष ने उत्तर दिया—हाँ, जो शिवशङ्कर हैं वही विष को पचा कर संसार की रक्षा करते हैं।

लज्जा और सङ्कोच से अभिभूत होकर कृष्णकली ने कहा—तुम जो मेरा इतना आदर करते हो, इससे मैं लज्जा के मारे गड़ी जाती हूँ। कहाँ मैं एक अनाथ और दरिद्र बालिका और कहाँ तुम—

कृष्णकली का हाथ बड़े ज़ोर से पकड़ कर प्रियतोष ने उच्च स्वर से कहा—इयं गेहे लक्ष्मीरमृतवर्तिर्नयनयोः।

कृष्णकली एक सुखमय लज्जा से अभिभूत हो गई। उसने कहा—मैं कलूटी और कुरूपा हूँ।

कृष्णकली का हाथ ज़रा सा दबाकर प्रियतोष ने कहा—तुम्हें संसार चाहे कितनी ही काली-कलूटी क्यों न कहे, कृष्णकली, मैं तो तुम्हारी मृगी की सी चितवन पर ही मुग्ध हूँ।

॥ इति ॥

—ठाकुरदत्त मिश्र

# विचार-विमर्श

## १—'हमारे पंचांग' और पक्षभेदों का झगड़ा।

सरस्वती के गतांक में "हमारे पंचांग" शीर्षक एक लेख प्रकाशित हुआ है, जिसे उज्जैन की वेधशाला के सुपरिंटेंडेंट श्रीयुत आपटे महोदय ने लिखा है। उसमें उन्होंने बतलाया है कि 'प्रतिवर्ष ८३ का पलान्तर हो जाने से इस समय सूर्य में ४ दिन का अंतर हो गया है।' अतएव वे ४ दिन छोड़ देने की सिफ़ारिश करते हुए एक प्रमाण उपस्थित किया है कि 'पाश्चात्य देशों में एकदम ११ दिन छोड़ दिये गये थे (!)। यह सभी विद्वान् जानते हैं, इसके मुक़ाबले में ४ दिन छोड़ देना कोई बहुत अधिक समय नहीं है।' परन्तु इसके साथ ही वे कहते हैं कि 'किन्तु यहाँ के पुरातन ज्योतिषी इस बात को मान लेने के लिए तैयार नहीं हैं।' मान कैसे लें? आपटे साहब का यह कथन यद्यपि सत्य है कि प्राचीन द्रक्प्रत्यय में अंतर आगया है, वह शिथिल हो गया है, नवीन ग्रहण करना चाहिए, किन्तु उस नवीन पक्ष में भी मतैक्य कहाँ है? उसमें भी तो 'रेवत' और 'चैत्र' नामक दो पक्ष मौजूद हैं! और इन दोनों के द्रक्प्रत्यय प्राचीन की अपेक्षा ठीक हैं। इन पक्षों के कारण धर्मकार्य में फ़र्क़ आ जाता है। एक पक्ष अधिक मास चैत्र बतलाता है तो दूसरा फाल्गुन और तीसरा श्रावण! फिर पुराना ही क्यों सदोष है? कम से कम पुराने लोग गणित की शिथिलता को स्वीकार भी करते हैं और अपने मार्ग पर क़ायम रहकर कहते हैं कि वेध से निर्णय की आवश्यकता है। वे इनकार नहीं करते। परन्तु कुछ लोग अपने अपने मत की अलग खिचड़ी पका लोगों में भ्रम उत्पन्न कर रहे हैं! ख़ुद केरोपन्त छत्रे ने अपने ग्रन्थ में अधिमास का कोष्ठक प्राचीन के साथ मिला कर रक्खा है और उन्हीं के मतानुयायी मनमानी करते हैं। विगत अधिक मास छत्रे के निर्णयानुसार 'श्रावण' था, किन्तु उनके पक्षपातियों ने पंचांगों में 'वैशाख' लिख डाला! ऐसी अवस्था में जनता किस बात को ठीक समझे? आश्चर्य तो यह है कि स्वयं पक्ष-प्रवर्तक को ही अपने पक्ष पर विश्वास नहीं है! प्राचीन निर्णय में अंतर है, पर ४ अंश का होना तो असंभव है!

एक तमाशा और देखिए। सूर्यसिद्धान्त की रचना होने के कई सौ साल के बाद सूर्यसिद्धान्त के अनुसार ही 'ग्रहलाघव'-ग्रन्थ के प्रणेता गणेश दैवज्ञ ने सूर्य को 'द्रक्-तुल्य' देखा था, और चंद्र को नव कला कम। और आज ग्रह-लाघव के ४०० वर्ष बीत जाने पर ही ४ दिन (४ अंश) का अन्तर पड़ गया! अर्थात् थोड़े समय में अधिक अंतर हो गया, और अधिक समय बीत जाने पर भी कम रहा! अथवा यों कहिए कि ग्रहलाघव के निर्माण-काल में भी अंतर अधिक रहा होगा, किंतु ग्रहलाघव-कर्ता ने समझा ही नहीं! अस्तु, पुराने पक्ष को छोड़िए।

'नाटिकल' में सायनग्रह शुद्ध होते हैं, वे वेध-विहित हैं, इसलिए निर्विवाद हैं। वाद यदि है तो 'निरयण' से है। प्रत्येक पक्ष के अकेनांश भिन्न भिन्न हैं। अतः हर एक के 'निरयण' भी स्वतन्त्र रहेंगे। (ग्रहलाघव

के अयनांश २३।, सूर्य-सिद्धान्त से २१।, चैत्रपक्ष से २२। और रैवत से १८॥। हैं।)

तब आपटे साहब का ४ दिन का अंतर ही क्यों माना जाय ? उपलब्ध वर्षमान और सूर्य-सिद्धान्त के वर्षमान में ८३⁄४ पल अंतर है। सिद्धान्त-शिरोमणि का और लल्लाचार्य का वर्षमान भी भिन्न भिन्न है। वर्षमानों के अलग-अलग होने के कारण ८३⁄४ पल के स्थान पर कुछ और ही होगा। सिर्फ़ ८३⁄४ पल के कारण ही ४ दिन का अंतर सिद्ध हो सकता है, विभिन्न वर्षमानों से दिन का भी अंतर आ जायगा। अतएव सर्वथा सबके लिए चार दिन का अंतर भी सिद्ध नहीं हो सकता! एक मत का दूसरे मत के व्यक्ति को ४ दिन लेने को बाध्य नहीं कर सकेगा!

बंबई की पंचांग-संशोधन-सभा में ("मघा-चित्राभ्यामयनांशा नयनं काल्पनिकं वाचनिकप्रमाणाभावात्!") मघा और चित्रा से अयनांश साधन करने का खण्डन किया गया है।

रेवती के अंत में और चित्रार्द्ध में मेष एवं तुला-राशि का आरंभ होता है। इन दोनों दिनों में दिन-रात का साम्य होता है। अतः इस दिन की 'विषुवद्दिन' संज्ञा है। विषुवद्दिन के रोज़ क्रांति का अभाव होता है, इसलिए इस दिन का वेधद्वारा साधित सूर्य १२ और ६ राशि में घटा देने से अयनांश सिद्ध होता है।

सूर्य-सिद्धान्तकार लिखते हैं—

"स्फुटं द्रक्तुल्यतां गच्छेदयने विषुवद्द्वये"।

शिरोमणि में कहा है—

"क्रियतुलाधरसंक्रमपूर्वतोऽयनलवोत्थदिनैर्विषुवद्दिनम्।"

केशवी (प्रौढ़ मनोरमा) में—

"क्रान्त्यभावे यावान् ग्रहश्चक्रशुद्धः संक्रातिमानः स्यात्।"

उपर्युक्त प्रमाणों से सिद्ध होता है कि रेवती और चित्रा दोनों ही अयनांश साधन में ग्रहीत है। 'मघा' नक्षत्र के लिए सूर्य-सिद्धान्त-कर्ता ने अयनांश साधन में (स्फुटं द्रक्तुल्यतां गच्छेदयने) अयन-शब्द से मघा का भी ग्रहण कर लिया है। किंतु 'मघा' और 'चित्रा' की अपेक्षा 'रेवती' का नाम ही अयनांश-साधन के लिए विशेषतः स्वीकृत है। प्राचीन ग्रन्थों में रेवती के लिए अधिक प्रमाण है। जैसे—

"पौष्णान्ते भगणः स्मृतः"—सूर्यसिद्धान्त।

"रेवतीयोगतारा तु सदामीनाजसंधिगा"।—गोलानन्द

भगणोपपत्ति का वर्णन करते हुए भास्कराचार्य ने लिखा है—

"गोलमध्यचिह्नगतया दृष्ट्या रेवतीयोगतारां विलोक्य, क्रांतिवृत्ते यो मीनान्तस्तं रेवती (सर्वतः महती) तारायां निवेश्य"।

इसी प्रकार अनेक प्रमाणों से रैवत पक्ष के आधार पर रेवती-नक्षत्र से ही अयनांश लेना बहुमत है। प्राचीन आचार्यों ने भी इसी नक्षत्र-द्वारा अयनांश साधित किये हैं। फिर अब अंतर क्यों होना चाहिए ? इस समय अवश्य ही गत्यन्तरवश पुरातन ग्रन्थों के अयनांश में अंतर है, पर उस समय अंतर थोड़े ही रहा है!

प्रस्तुत रैवत-पक्ष के अनुसार इस समय अयनांश १८°।५० के लगभग है। इन्हीं अयनांश को ४१० वर्ष पूर्व (ग्रहलाघवरचनाकाल) ५० कति के अनुसार बनाया जाय तो १३°।८ होंगे। ग्रहलाघवानुसार १६।३८ दोनों का अंतर ३°।३० होगा! इससे यह विदित हुआ कि जिस समय ग्रहलाघव का निर्माण हुआ वह द्रक्तुल्य माना गया था, तो भी आपटे साहब के वर्षमान 'रैवत' पक्ष के अनुसार ३ रोज़ की प्रत्येक मास में (तिथियों में) अशुद्धि रही होगी!

अब ग्रहलाघव को छोड़कर दूसरी ओर भी देखिए। रैवत पक्षानुसार इस समय के १८°।५० अयनांश (पूर्वोक्त गति से) को लेकर ३३१ वर्ष पूर्व के अयनांश साधन किये तो १४°।२४ होंगे। परंतु ३३१ वर्ष पूर्व तो (शक १५२१ में) अयनांश १६।३० थे! इतना अंतर क्यों ?

'प्रौढ़ मनोरमा' में लिखा है—

"भूनेत्रतिथ्युन्मिते शालिवाहनशकमानवर्षगमे, ते च साम्प्रतं सार्द्धषोडशायनांशाः।"

इससे ज्ञात होता है कि इस समय (शके १५२१) भी २ दिन का अंतर रहा है !*

इस विवाद से यही निश्चित होता है कि प्रारंभ से भी अयनांश का परस्पर भेद रहा है। या तो प्रारंभ से प्राचीनों की भूल है या फिर नये 'पक्ष-' प्रवर्तकों की ! आधुनिकों को शिकायत है कि पुराने ज़मानेवाले यंत्रसामग्री से रहित थे। इसलिए उन्हें मोटी मोटी बातें मालूम हो जाती थीं, सूक्ष्म बातों का पता वे लोग नहीं पा सकते थे। किन्तु इसके विपरीत हम एक प्रमाण उपस्थित करते हैं। यह प्रमाण कितना पुराना है, निम्नलिखित 'आर्या' से ज्ञात होगा—

"सकलवसुधाधिनाथश्रीमद्वल्लालसेनदेवेन।
अयनद्वयं यथावत्परीक्ष्य संलिख्यते सवितुः॥
इदानीं तद्विसंवादादयनं दक्षिणं रवेः।
भवेत् पुनर्वसोरादौ विश्वादावुत्तरायणम्॥

सारांश यह कि आपटे साहब के मत से प्राचीन ग्रन्थकर्ताओं को वास्तविक अयनांश का ज्ञान नहीं था, न वे द्रक्तुल्य ग्रह ही साधन कर सके। अतएव इन्होंने अपने पक्षानुसार जो एकाङ्गी मत देकर निर्णय उपस्थित कर दिया कि "४ दिन का अंतर पड़ गया है" मान लो। परन्तु पाठक, समझ गये होंगे कि ये अपने पक्ष की भले ही खींचातानी करें, किन्तु ऊपर इन्हीं के मतानुसार बतलाया गया है कि इन्हीं के बाँस और उसी से बाँसुरी बनी, पर उसने जहाँ जैसा रंग देखा, अलग अलग सुर अलापना शुरू कर दिया है।

असल में चैत्र, रैवत, ग्रहलाघव आदि पक्षों की नींव पड़ी, वाद-विवाद आरंभ हुआ, तभी से लोगों को शंका उत्पन्न हो गई कि आख़िर सत्य क्या है। इन पक्षों के कारण पुराने अपने नियमानुसार एकादशी व्रत करते हैं, दशहरा मानते हैं और जनता भी अधिकांश में उसी की अनुयायी है, पर इन 'पक्ष-भेद' के अनुयायियों की डेढ़ चावल की खिचड़ी अलग ही पकती है। इनकी एकादशी, दशहरा आदि दिन २-४ दिन पहले ही हो जाया करते हैं। कोई माने या न माने, ये तो अपना 'दशहरा' अलग ही मनाते हैं ! इस तरह जनता बहुत ही भुलावे में डाली जा रही है। जब तक कोई निर्णय सभी पक्ष के विद्वान् मिलकर एक न कर दें, एक पक्ष के पंडितों की सभा का निर्णय सर्वसम्मति का नहीं है। प्रायः पूना आदि में जो पंचांग-शोधनार्थ सभायें की गई हैं वे अपने अपने पक्षों की हुई हैं, और निर्णय उनके मन जैसा ही होता रहा है। हर एक पक्ष के विद्वान् केवल तत्त्वान्वेषण की दृष्टि से निर्णय न कर दें, यहाँ तक जो जिस मार्ग पर जा रहा है चला जाय ! अपने अपने पन्थ सबके लिए नहीं अपने अपने लिए भले हैं। बड़ौदा के ज्योतिर्मार्तण्ड पंडित अमृतराम शास्त्री ने लिखा है—

"केरोपन्तीयग्रहलाघवीयपंचांगयोर्निरयणगत्याश्रितगणनाङ्गीकारात्ते उभे निरयणे, उभयोरपि निरयणमानयोर्मध्येऽयनांशभेदाद्भेदः। गतिभेदाच्चायनांशभेद इत्युक्तं प्राक्। ग्रहलाघवकारेण यो निर्मितोऽयनांशाभावस्तस्माद् द्विपंचाशद्वर्षानन्तरं केरोपन्तमतेऽयनाशाभावकालः। ग्रहलाघवोक्तायनांशा भावकालः सर्वग्रन्थकृदविरोधीत्यतः सर्वसम्मतस्तदुक्तो निरयणमेषादिरिति सर्वैरङ्गीक्रियते। केरोपन्तमतं साम्प्रतं प्रवृत्तं विसंवादोति बहूनामभिजातानामनादरविषयमित्यलम्"—

—उज्जैन का एक ज्योतिर्विद्

*'कर्णकुतूहल' ग्रंथ का निर्माण शके ११०५ में हुआ है, उस समय अयनांश ११ थे। उस समय के लिए 'रैवत' पक्ष के अयनांश को ७४७ वर्ष पूर्व ले जायँ तो अयनांश ८।३० होगें। इन दोनों में भी अंतर है।

## २—कुमारदास का 'जानकीहरण'।

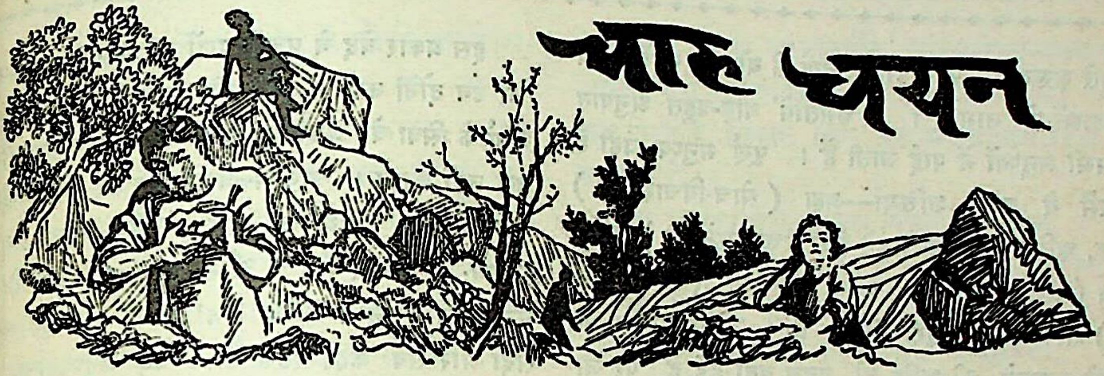
नवम्बर की 'सरस्वती' में श्रीशिवप्रसाद खरे ने उपर्युक्त विषय पर एक नोट लिखा है। विद्यालंकार-कालेज के प्रिंसपल स्वर्गीय श्री धर्माराम नायक स्थविर-पाद ने 'जानकीहरण' को प्रायः ३० वर्ष हुए सिंहली-अक्षरों में छपवाया था। भारत में भी उसका नागराक्षर में मुद्रण हो चुका है।

सिंहल में कुमारदास के लिए एक ग़लत धारणा है। यहाँ कहते हैं कि कालिदास के घनिष्ठ मित्र कुमारदास सिंहल के राजा थे। लेकिन महावंश में किसी सिंहल-राज का नाम कुमारदास नहीं पाया जाता। न यहाँ के पुराने इतिहास-ग्रन्थों में जानकी-हरण ऐसे प्रौढ़ ग्रन्थ के रचयिता किसी महा-कवि राजा का नाम आता है। सिंहल के राजा सभी बौद्ध थे। इसलिए भी जानकीहरण पर काव्य लिखना संदिग्ध समझा जाता है। यहाँ यह भी कहा जाता है कि कालिदास ने स्वयं इस काव्य को लिखकर कुमारदास के नाम से प्रसिद्ध कराया। वास्तविक बात यह जान पड़ती है—कालिदास और राजा कुमार-दास दोनों घनिष्ठ मित्र थे। यह राजा और कविता-प्रेमी भी था। किन्तु राजा के नाम में अनुप्रास के ही लिए 'दास' जोड़ा गया है। वस्तुतः यह कुमार सिंहल का राजा कुमार धातुसेन (५१५-२४ ई०) न होकर 'गुप्त-सम्राट्' कुमारगुप्त महेन्द्रादित्य (४१३-५५ ई०) था। नाम की समानता से ऐसी भ्रांति स्वाभाविक है।

'जानकीहरण' को सिंहली-टीका की सहायता से जिसमें मूल-संस्कृत की प्रतीकें काफ़ी थीं, महा-स्थविर श्रीधर्माराम ने १८९० में प्रकाशित कराया था। इसमें १५ सर्ग हैं, बीच बीच में कुछ खंडित श्लोक भी हैं, और पन्द्रहवें सर्ग में तो सिर्फ़ दो ही श्लोक हैं। १९०७ में पूना के श्रीगोपाल रघुनाथ नन्दर्गीकर ने अँगरेज़ी टीका-टिप्पणी आदि के साथ इसके दश सर्ग नागराक्षरों में भी छपवाये हैं।

—राहुल सांकृत्यायन

(विद्यालङ्कार कालेज, सीलोन)



# भाव चयन

## १—आकर्षण

स्वप्नों की सेज बिछाकर,
चाँदनी शुभ्र थी सोई।
फूलों से अकथ कहानी,
पर कहता था यह कोई;
लेकर वीणा बैठी थी,
पाषाणखण्ड पर बाला;
नीरधि पूजा करता था,
लहरों की अञ्जलि ला-ला।
मलयानिल के झोंके में,
उसने तारों को छेड़ा;
पड़ गया अधर भँवरों में,
खुल कर नाविक का बेड़ा।
जब कुसुम-कली सी कोमल,
फिरती थीं चपल उँगलियाँ;
चञ्चल नावें करती थीं,
तब लहरों से रँगरलियाँ।
मूर्च्छनालोक में सहसा,
जब गान होगया निश्चल,
तब अर्ध भाग नौका का
उदरस्थ कर चुका था जल;
पर दृष्टि भ्रान्त नाविक की,
उलझी थी जाकर तट पर,
वह डूबा ! लो वह डूबा !
वह डूब गया हा ! तट पर !!

—शम्भूदयाल सक्सेना

## २—वर्ण-व्यवस्था

वर्ण-व्यवस्था दो प्रकार की है—एक वैदिक और दूसरी स्मार्त। प्रायः लोग इन दोनों में भेद नहीं करते। वे स्मार्त वर्ण-व्यवस्था को ही वैदिक कह देते हैं। इन दोनों में भेद यह है कि वेद केवल दो वर्ण मानता है। वह ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य को वर्ण नहीं कहता। चारों वेदों को छान डालिए। आपको किसी जगह भी 'ब्राह्मण-वर्ण' या 'क्षत्रिय-वर्ण' पाठ नहीं मिलेगा। अर्थात् वेद में वर्ण-शब्द का प्रयोग ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के साथ कहीं भी नहीं मिलता। हाँ, स्मृतियों ने ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य को वर्ण ज़रूर बना दिया है। वेद में ये शब्द

मिलते ज़रूर हैं, पर वहाँ वे वर्ण के बोधक नहीं। वे क्षमताओं के नाम हैं। ये क्षमतायें थोड़े-बहुत अनुपात में सभी मनुष्यों में पाई जाती हैं। पूर्ण मनुष्य वही है जिसमें ये चारों शक्तियाँ—ब्रह्म ( सोच-विचार की ) शक्ति, क्षत्रिय ( लड़ने-भिड़ने और रक्षा करने की ) शक्ति, वैश्य ( धन कमाने की ) शक्ति और शूद्र ( सेवा करने की ) शक्ति—पूरी पूरी मौजूद हों। जिस मनुष्य में सोचने-समझने की शक्ति तो बहुत बढ़ी हुई है, पर जो इतना दुर्बल है कि अपनी रक्षा आप नहीं कर सकता, वह पूर्ण मनुष्य नहीं कहला सकता। स्मृतियों ने इन चारों शक्तियों को वर्ण का नाम देकर जात-पाँत की नींव डाल दी।

वेद केवल दो वर्ण मानता है—एक आर्य और दूसरा दास। दास के लिए दूसरा नाम दस्यु और शूद्र भी है। यह बात केवल अनुमान ही नहीं, वेद स्वयं दो वर्ण कहता है। चातुर्वर्ण्य-शब्द वेद में कहीं भी नहीं मिलता। वेद के अपने शब्द सुनिए। ऋग्वेद कहता है—

"उभौ वर्णावृषिरुग्रः पुपोष" ऋ० १ $\frac{१७९}{६}$

अर्थात् उग्र-ऋषि ( अगस्त्य ) ने दोनों वर्णों की वृद्धि की।

देखिए वेद साफ़ शब्दों में दो वर्ण कहता है। यदि वेद चार वर्ण मानता होता तो यहाँ दो की जगह चार वर्ण लिखा होता। दो वर्ण कौन कौन हैं? इसका उत्तर भी वेद आप ही देता है—

"यो दासं वर्णमधरं गुहाकः।" ऋ० २ $\frac{१२}{४}$

अर्थ—जिस ( इन्द्र ) ने 'दास' वर्ण को नीचे दबा दिया ( गुफा में कर दिया )।

देखिए, मंत्र में दास-शब्द के साथ 'वर्ण' शब्द साफ़ पड़ा है। यह तो हुआ एक वर्ण, अब दूसरा वर्ण कौन है? वेद कहता है—

हत्वी दस्यून् प्रार्यं वर्णावत्।" ऋ० ३ $\frac{३४}{९}$

अर्थ—( इन्द्र ने ) दस्युओं को मार 'आर्य-वर्ण' की खूब रक्षा की।

इस प्रकार वेद ने पहले वर्णों की संख्या बता दी और फिर उन दोनों वर्णों के नाम भी बता दिये। दास और आर्य के सिवा वेद ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य को कहीं भी वर्ण नहीं करता। मनुष्य-जाति का यह विभाग है भी स्वाभाविक। आर्य का अर्थ है श्रेष्ठ मनुष्य; अच्छा मनुष्य; 'मास्टर मैन' और दास का अर्थ है बुरा मनुष्य; बुरा मनुष्य 'स्लेव मैन' अच्छे और बुरे मनुष्य सदा और सब कहीं रहते हैं। वेद मनुष्य-समाज का इससे अधिक विभाग नहीं करता। वह झूठे और कृत्रिम भेद-भाव का पक्ष-पोषक नहीं।

—सन्तराम

## ३—पूने का 'चरित्र-कोश-मण्डल'

हिन्दुस्तान में अँगरेज़ी शासन स्थापित होने के समय से इस देश में एक नवीन युग का पदार्पण हुआ है। पाश्चात्य विद्या और सभ्यता का हमारे समाज पर गहरा प्रभाव पड़ा है। फल-स्वरूप जीवन के प्रत्येक पहलू में अनेक परिवर्तन हो गये हैं और हो रहे हैं। हिन्दुस्तान की भिन्न भिन्न भाषायें और उनके साहित्य भी इस प्रभाव के पड़ने से नहीं बचे हैं। उनमें भी कतिपय परिवर्तन और सुधार हुए हैं। पाश्चात्य विद्या और साहित्य का परिचय होने के पूर्व इस देश की भिन्न भिन्न भाषाओं के साहित्य विशेषकर भक्ति-परक काव्यों से ही भरे हुए थे। उनमें विविधता बहुत कम थी। किन्तु अब उनका कायापलट होना शुरू हुआ है। अब इन भाषाओं की साहित्य-सरिता गल्प, निबन्ध, इतिहास, चरित्र, नाटक, उपन्यास, गल्प, विनोद, परिहास, आलोचना, कोश, समाचार-पत्र, मासिक पत्र आदि विविध विषयों से विभूषित होकर बड़ी तेज़ी से बहने लगी है। सभी भाषायें उन्नति की ओर अग्रसर हो रही हैं। अब तो उनमें अनेक विद्वानों के सम्मिलित परिश्रम और सहयोग से बड़े बृहत् ग्रंथ भी प्रकाशित होने लगे हैं और भाषाओं की शोभा बढ़ा रहे हैं। काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा ने 'हिन्दी-शब्दसागर' जैसे बृहत् कोश

की रचना की तो हमारे महाराष्ट्र में पूने के ज्ञानकोश-मण्डल ने 'मराठी ज्ञानकोश' नामक एक प्रकाण्ड ज्ञानकोश २२ खण्डों में प्रकाशित कराया। इस सफलता से प्रोत्साहित होकर हमारे महाराष्ट्र में कुछ मण्डल और निकले हैं और वे अपने कार्यों में बड़ी लगन से जुटे हुए हैं। उदाहरणार्थ ज्ञानकोश-मण्डल के कुछ विद्वानों ने एक 'महाराष्ट्र-शब्द-कोश-मण्डल' स्थापित किया है और वे मराठी-भाषा का एक बृहत् 'महाराष्ट्र-शब्द-कोश' निकालने में संलग्न हुए हैं। इसी प्रकार पूने में 'भारतवर्षीय चरित्र-कोश-मण्डल' नामक एक दूसरा मण्डल स्थापित हुआ है और वह भारतवर्ष के प्रसिद्ध प्रसिद्ध व्यक्तियों का एक बृहत् चरित्र-कोश बना रहा है। इस लेख में हम पाठकों को महाराष्ट्र-चरित्र-कोश-मण्डल के इस महत्त्वपूर्ण अनुष्ठान का कुछ परिचय करा देने की चेष्टा करते हैं।

भारतवर्ष में वैदिक काल से आज तक अनेक प्रसिद्ध स्त्री और पुरुष हुए हैं। इन सब व्यक्तियों के सम्बन्ध में आवश्यक जानकारी प्राप्त करा देनेवाला ग्रंथ मराठी में क्या, बल्कि भारत की किसी दूसरी भाषा में नहीं है। ऐसे ग्रंथ की कितनी आवश्यकता है, यह किसी से छिपा नहीं है। दिन प्रतिदिन मनुष्य के ज्ञान की वृद्धि हो रही है और उसका ज्ञान-क्षेत्र अधिकाधिक विस्तृत होता जा रहा है। साथ ही वर्तमान युग में 'जीवनार्थ कलह' भी तीव्रतर हो रहा है। ऐसी परिस्थिति में किसी साधारण मनुष्य की कौन कहे, अच्छे अच्छे विद्वानों को भी अपने जीवनकाल में किसी विशिष्ट शास्त्र के तमाम ग्रंथ पढ़कर उसका संपूर्ण ज्ञान प्राप्त करना असम्भव-सा हो गया है। भारतवर्ष के प्रसिद्ध व्यक्तियों के चरितों की भी ठीक यही बात है। इन व्यक्तियों के चरित जानने के लिए कम से कम सब प्रकाशित ग्रंथ पढ़ना भी प्रत्येक के लिए सम्भव नहीं है, फिर भिन्न भिन्न प्रकाशित और अप्रकाशित ग्रंथों से तथा अन्य जगहों से उनके सम्बन्ध में ज्ञातव्य बातें एकत्र करना तो दूर ही रहा। इन अड़चनों को दूर करने के लिए ही पूने के भारतवर्षीय चरित्र-कोश-मण्डल ने 'भारतवर्षीय चरित्र-कोश' की सृष्टि करने का अनुष्ठान किया है, जिसके लिए वह सर्वथा हमारी बधाई का पात्र है।

यह चरित्र-कोश-मण्डल पिछले वर्ष सन् १९२९ के जून में स्थापित हुआ है। मण्डल का स्वरूप प्राइवेट लिमिटेड कम्पनी का है और उसके मंत्री तथा प्रमुख कार्यकर्ता हैं 'विद्यानिधि' सिद्धेश्वर शास्त्री चित्राव और श्रीयुत बा० वा० अतितकर। इस चरित्र-कोश में लगभग २० हजार रुपये का व्यय अनुमान किया गया है, जो ५०० रुपया एक मुश्त या एक वर्ष के अन्दर पाँच किश्तों में देनेवाले ४० हिस्सेदारों से एकत्र किया जायगा। चरित्र-कोश का काम तीन साल में पूरा होने का अन्दाज़ किया गया है। इस चरित्र-कोश में भारत के वैदिक, पौराणिक, ऐतिहासिक और वर्तमान काल के तथा सांप्रदायिक साहित्य में के सभी महत्त्व के और प्रसिद्ध स्त्री-पुरुषों के चरित और उनके जीवन-कार्य सुसम्बद्ध रूप में वर्णित होंगे। साथ ही, भारतवर्ष से जिन ख्यातनामा विदेशियों का विशेष सम्बन्ध रहा है उनके भी चरितों का उसमें समावेश किया जायगा। अर्थात् यह चरित्र-कोश विद्यार्थियों, साधारण पाठकों तथा भिन्न-भिन्न शास्त्र-कलाओं के अभ्यासियों को 'संदर्भ-ग्रंथ' के तौर पर उपयोगी होगा, यह कहने की आवश्यकता नहीं। इस कोश से कोई भी प्रसिद्ध व्यक्ति की जानकारी शीघ्र ही और बहुत आसानी से प्राप्त हो सकेगी। और आधुनिक संशोधनों के द्वारा इन व्यक्तियों के तथा इनकी रचनाओं और कार्यों के सम्बन्ध में जो नई बातें प्रकट हुई हैं वे भी संकलित रूप में पढ़ने को मिलेंगी।

यह चरित्र-कोश निम्नलिखित तीन खंडों में विभाजित होगा—

(१) प्राचीन खंड (वैदिक और पौराणिक काल)।

(२) मध्ययुगीन खंड (पौराणिक काल से सन् १८१८ तक)।

(३) अर्वाचीन खंड ( सन् १८१९ से १९३० तक )।

तीनों खंड मिलकर रायल साइज़ और पाइका टाइप के लगभग दो हज़ार पृष्ठ होंगे। संपूर्ण चरित्र-कोश का अग्रिम मूल्य २० रुपया रक्खा गया है और सम्भवतः प्रतिवर्ष एक ही खंड प्रकाशित होगा। प्रथम खंड में वेद, स्मृति, सूत्र, वेदाङ्ग तथा पुराण आदि ग्रंथों में के व्यक्तियों के चरित रहेंगे। दूसरे खंड में शिला-लेख, ताम्रपत्र आदि ऐतिहासिक साधनों में तथा विश्वास-योग्य ऐतिहासिक ग्रंथों में जिन व्यक्तियों के नामोल्लेख होंगे उनका हाल दिया जायगा। तीसरे खंड में अर्वाचीन काल के प्रसिद्ध स्त्री-पुरुषों की संक्षिप्त जीवनियाँ रहेंगी। इन चरितों में स्थल, काल आदि के साथ उन व्यक्तियों के जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनायें, उनकी रचनायें तथा उनके अन्य लोकोपयोगी कार्यों का वर्णन रहेगा और यथा-सम्भव उन चरितों की विशेषताओं पर भी प्रकाश डाला जायगा। जहाँ आवश्यक होगा वहाँ आधार-ग्रंथों का भी नामोल्लेख किया जायगा। चरित्र-कोश के सम्पादकों ने सिर्फ़ मृत व्यक्तियों के ही चरित्र देने का निश्चय किया है।

इस चरित्र-कोश के निर्माण में महाराष्ट्र के भिन्न-भिन्न विद्वान् अपना योग दे रहे हैं। कोश का काम सुचारु रूप से तथा योग्यता के साथ होने के लिए उसके भिन्न भिन्न काल-विभाग किये गये हैं और उनका सम्पादन उन विभागों के विशेषज्ञों और अभ्यासियों के हाथ सौंपा गया है। इस प्रबन्ध के अनुसार निम्नलिखित विद्वान् अपने अपने काल-विभागों का सम्पादन कर रहे हैं। सम्भव है, इस अनुष्ठान में कुछ और विद्वान् भी अपना योग देंगे।

(१)—श्रीयुत द० वि० आपटे, बी० ए० (मराठों का काल)

(२)—श्रीयुत वि० ना० कुंभारे, एम० ए० (मुसलमानों का काल)

(३)—श्रीयुत प० म० लिमये, एम० ए० (अँग्रेज़ों का काल)

(४)—श्रीयुत रा० वि० ओतुरकर, एम० ए० (पेशवों का काल)

(५)—श्रीयुत रा० दा० देसाई, बी० ए० (मराठी-साहित्य)

(६)—श्रीयुत श्री० रा० पारसनीस, एम० ए० (मराठी-साहित्य)

(७)—विद्यानिधि सिद्धेश्वर शास्त्री चित्राव (श्रुति और पुराण)

(८)—श्रीयुत वा० वा० अतीतकर, बी० ए० (आधुनिक ब्रिटिश काल)

(९)—श्रीयुत द० रा० येरवडेकर, एम० ए०, एल-एल० बी० (स्मृति-ग्रंथ)

इनके अलावा अन्य विद्वानों और विशेषज्ञों से विचार-विनिमय किया जायगा और विवादग्रस्त प्रश्नों के सम्बन्ध में उनसे चर्चा की जायगी। सारांश, कोश का सम्पादन बड़ी सावधानी से और योग्यता-पूर्वक होगा।

चरित्र-कोश के साथ ही साथ निम्नलिखित कोश भी तैयार हो रहे हैं। इन कोशों से चरित्र-कोश को खूब सहायता पहुँचेगी और उसका काम सर्वांग परि-पूर्ण हो जायगा, इसमें सन्देह नहीं।

(१) ग्रंथकोश—इस कोश में श्रुति, स्मृति, पुराण, सूत्र और वेदांग के सभी उपलब्ध और अनुपलब्ध ग्रंथों का संक्षेप में परिचय दिया जायगा। यह अपने ढंग का एक अनूठा कोश होगा। यदि हमारा अनुमान ठीक है तो इस ढंग का कोश भारत की किसी भी भाषा में नहीं है। इस कोश के रायल साइज़ और पाइका टाइप के लगभग ७०० पृष्ठ होंगे।

(२) स्थलकोश—इस कोश में उपर्युक्त ग्रंथों में जिन स्थानों का नामोल्लेख होगा उनके सम्बन्ध की सभी ज्ञातव्य बातों का समावेश किया जायगा। यह कोश बहुत बड़ा होगा। इसके रायल

साइज़ और पाइका टाइप के लगभग ५०० पृष्ठ होंगे।

(३) कालगणना-कोश—इस कोश में उपर्युक्त ग्रंथों में काल-गणना के लिए व्यवहृत होनेवाले शब्दों का तथा उनके सम्बन्ध में जो भिन्न भिन्न मत प्रकट किये गये हैं उनका समावेश होगा।

(४) वंशावली—इसमें सूर्य और चंद्र-वंशों की तथा उनके अंतर्गत भिन्न भिन्न वंशों की वंशावलियाँ भागवत, विष्णुपुराण, वायुपुराण, मत्स्यपुराण और भविष्यपुराण की तुलना के साथ दी जायँगी। साथ ही इन वंशावलियों की सूची भी रहेगी।

(५) संकेत-कोश—इसमें सांकेतिक शब्द संकलित किये जायँगे।

इस मण्डल के स्थापित होने के समय से अनेक सज्जनों ने इसे प्रकट या गुप्त रीति से साहाय्य किया है। मराठी के सभी प्रमुख समाचार-पत्रों के सम्पादकों ने मण्डल के पत्र, पैम्फलेट, सूचनायें आदि प्रकाशित कर उसके अनुष्ठान की काफ़ी प्रसिद्धि की है। 'ज्ञानप्रकाश' के सम्पादक ने तो इस चरित्र-कोश के विषय में एक अग्रलेख लिख कर उसकी उपयोगिता और आवश्यकता की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट किया है। मड़गाँव (गोवा) के पंचदश मराठी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति श्री वामन मल्हार जोशी ने अपने भाषण में मण्डल के इस सदनुष्ठान का गौरवपूर्वक नामोल्लेख किया है। सुप्रसिद्ध विद्वान् श्रीयुत ना० गो० चापेकर ने 'साहित्य-पत्रिका' में कुछ महत्त्वपूर्ण सूचनायें प्रकाशित की हैं। श्रीमान् सरदार आंग्रे (ग्वालियर), श्रीमान् वामनराव नाईक (हैदराबाद, दक्षिण), प्रोफ़ेसर पांडुरंग वामन काणे (बम्बई), भारताचार्य श्री चिंतामणि विनायक वैद्य आदि महानुभावों ने मण्डल के कार्यालय को भेंट देकर उसके सम्बन्ध में अपना समाधान प्रकट किया है। इनके अलावा श्रीयुत ज० स० करन्दीकर (उपसम्पादक-केसरी), श्रीयुत श्री० ना० ताडपत्रीकर, श्रीयुत बा० दा० तलवलकर और श्रीयुत कृ० पां० कुलकर्णी चरित्र-कोश की हस्त-लिपियाँ पढ़कर उनमें कुछ आवश्यक परिवर्तन करते हैं और कुछ सूचनायें आदि भी देते हैं। अस्तु।

विगत ३१ मई १९३० को मण्डल का एक वर्ष पूरा हो गया। इस अवधि में पूर्व-संकल्प के अनुसार चरित-कोश का प्रथम खंड तैयार होकर प्रेस में छपने को दे दिया गया है। सम्भवतः इस खंड के लगभग ८०० पृष्ठ होंगे और यह इसी दिसम्बर में प्रकाशित हो जायगा। इसमें, श्रुति, स्मृति, पुराण, सूत्र और वेदाङ्ग के सभी ग्रन्थों में मिलनेवाले व्यक्तियों के चरित वर्णक्रमानुसार दिये गये हैं। अब इन चरितों के लिए संहिता, ब्राह्मण या पुराणादि ग्रन्थ ढूँढ़ने की कोई आवश्यकता न रहेगी। निस्सन्देह यह कोश बहुत उपयोगी होगा और यह मराठी-साहित्य की एक स्थायी और अनूठी चीज़ होगी। उक्त-मण्डल के कार्यकर्ता इस महत्कार्य के लिए सर्वथा धन्यवाद के पात्र हैं।

—आनन्दराव जोशी

## ४—विक्रय के पथ में

आज-कल के जन-साधारण की यह कितनी निर्मूल धारणा है कि व्यापार धार्मिक दृष्टि से त्याज्य है। व्यापार-व्यवसाय और धर्म दोनों साथ साथ नहीं चलते। पर ऐसे लोग यह नहीं जानते कि यह क्षेत्र उस कर्म-मार्ग का है जिसमें सांसारिक अभ्युदय अर्थात् जनता जनार्दन की सेवा और ईश्वर-प्राप्ति दोनों संभव है। व्यवसाय-हीन देश बुभुक्षित और पराजित होता है, उसमें व्यक्तिगत ईश्वर-प्राप्ति की सेवा करना राष्ट्र-सेवा नहीं, बल्कि स्वार्थ-साधना है। ऐसे दलित देश में व्यवसाय त्याग कर ईश्वराराधन में लग जाने से कुछ मनुष्यों को ईश्वर-प्राप्ति होकर उनका स्वार्थ भले ही सधता हो, किन्तु उससे देश का कल्याण नहीं होता। इसलिए व्यापार-व्यवसाय राष्ट्र-सेवा का पवित्र मार्ग है। इसके हाथ में ही देश के उत्थान और पतन की बागडोर है। मगर बिना

व्यापार-शास्त्र का अध्ययन किये व्यावसायिक अभ्युदय नहीं होता। इसके अध्ययन करने पर ही सच्चा अनुभव मिलता है। और यह ज्ञान हर एक अवस्था और हर-एक श्रेणी के लोग प्राप्त कर सकते हैं। जो लोग इस शास्त्र का अध्ययन किसी प्रमादवश नहीं करते हैं वे बालू की भीत पर चलते हैं। उनका व्यवसाय कितना भी उन्नतिशील प्रकट होता हो; किन्तु वह किसी भी दिन नष्ट हो सकता है।

व्यापार-शास्त्र का महत्त्व-पूर्ण अंग विक्रय-कला है। आज-कल के वैज्ञानिक विक्रेता इस कला को सीखने के लिए आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करते हैं। वे वस्तुतः अध्यात्म-शास्त्र के विद्यार्थी होते हैं। ऐसे ज्ञानवान् विक्रेता देश की आर्थिक उन्नति करने में समर्थ होते हैं।

इस प्रकार प्रत्येक विक्रेता लोगों से मिलकर अभ्यास-द्वारा प्रकृति के उन नियमों को सीखता है जिनसे मन में विचार बनते हैं और जिनके द्वारा वह अपने प्रस्तावों की रूप-रेखा निर्माण करने में समर्थ होता है।

वह यह भली भाँति जानता है कि प्रत्येक ख़रीददार से कोई भी वस्तु ख़रीदने को कहने के पहले उसे चार बातें नहीं भूलना चाहिए।

पहली बात ध्यान बनाये रखने की है। वह जिस वस्तु को ग्राहक को बता रहा है उसकी आशा-जनक दृष्टि उस पर एकाग्र होनी चाहिए। ग्राहक यह सोचे कि वह उस वस्तु को बड़े ध्यान से दे रहा है। दूसरी बात अनुराग बढ़ाने की है। यही वह वस्तु है जो उपयोगी साबित हो सकती है। और इन दोनों के आधार पर तीसरी बात अपनी इच्छा प्रकट करने की है। और उसके उचित रूप में प्रकट होने पर चौथी बात ग्राहक को वस्तु ख़रीदने के लिए निश्चय कराने की है। इस समय विक्रेता इस योग्य हो जाता है कि ग्राहक बिना माल ख़रीदे उसके यहाँ से नहीं जा पायेगा। हमारे इस कथन का यह तात्पर्य कदापि नहीं है कि वह ग्राहक के पीछे पड़ जायेगा और माल ख़रीदने के लिए अपनी सारी कमज़ोरी प्रकट कर देगा या उसे बातचीत से हैरान कर देगा। पर ऐसा नहीं होता, उपर्युक्त चार उपायों के व्यवहार से प्रत्येक ग्राहक पर नैतिक प्रभाव पड़ता है। जो विक्रेता इन बातों को ध्यान में रखता है उससे ऐसी ग़लती नहीं होती। वह अपने तात्पर्य के बाहर नहीं बोलता है। जिस प्रकार अध्यात्मज्ञानी महापुरुष प्रश्नकर्ता से तत्त्व की चर्चा करते हैं उसी प्रकार चतुर विक्रेता भी अधिक नहीं बोलते हैं। वे यह जानते हैं कि अधिक बोलने का अर्थ अपनी बिक्री नष्ट करना है।

निपुण विक्रेता को अपनी योग्यता का पूर्ण विश्वास होता है। वह अपने साधनों का अनुमान करने में दूरदर्शी होता है। मान लीजिए कि बाज़ार में एक वस्तु की माँग आई है, और विक्रेता माँग करनेवाले व्यवसायी के यहाँ अपना तात्पर्य प्रकट करने जाता है।

पर इसके पहले विक्रेता यह ख़ूब सोच लेता है कि वह वस्तु कहाँ तक अच्छी है और कितना उसकी उपयोगिता के सम्बन्ध में कहा जा सकता है। इस सम्बन्ध में सब विचारों का वह ऊहापोह कर ग्राहक से बातचीत आरम्भ करता है।

वह ख़रीददार को इस बात का विश्वास कराता है कि जिस वस्तु की उसे आवश्यकता है वह यही वस्तु के लिए है। वह उस वस्तु के उपयुक्त गुण प्रकट करता है, जो ग्राहक के काम की होगी। वह यह कहता है कि इस वस्तु के ख़रीदने से ख़रीददार का नया व्यापार चमकेगा या मौजूदा व्यवसाय में तरक़्क़ी होगी या अमुक प्रकार से धन, समय और श्रम की बचत होगी। वह ऐसा वातावरण उत्पन्न कर देता है जिससे यह प्रकट होता है कि ग्राहक जो चाहता है उसकी इच्छापूर्ति इसी वस्तु के ख़रीदने से होगी।

इसके साथ वह ख़रीददार को उस वस्तु की सब क़िस्में बतलाता है। वह यह प्रकट करता है कि यह वस्तु बाज़ार में कैसी चलती है, दूसरों के मुक़ाबले में कितनी अच्छी है और उसकी कितनी अधिक माँग है। इस प्रकार की बातचीत में विक्रेता को दूसरे व्यवसायियों के माल की .क़द्र कम नहीं करनी चाहिए, बल्कि उसे अपने माल की सर्वश्रेष्ठता प्रकट करनी चाहिए। दूसरों के माल की निन्दा करने व हीनता प्रकट करने में

उसकी तुच्छता प्रकट होगी। और तब सम्भव है कि ख़रीददार उसके माल के सम्बन्ध में भी सन्देह करने लगे। इस सम्बन्ध में बात-चीत करते समय ख़ास बात यह ध्यान में रखने की है कि जहाँ तक सम्भव हो, वहाँ तक वस्तु का वर्णन बड़ी सुगमता से किया जाय। कोई बात ऐसी न कही जाय जो शंका उत्पन्न कर दे या समझ में न आये। कोई नई बात भी तब तक न कही जाय जब तक कि जिस बात पर विचार हो रहा है उसका ख़रीददार पर असर न हुआ हो और उसका निश्चित फल न हुआ हो।

जैसे बात-चीत का प्रारम्भ करना महत्त्व-पूर्ण है, वैसे ही उसका समाप्त करना भी। पर इस बीच में विक्रेता को अपने ग्राहक को भी अवसर देना चाहिए कि वह भी कोई प्रश्न कर सके। कारण उससे विक्रेता को यह मौक़ा मिलता है कि उस वस्तु के सम्बन्ध में जो शंकायें हो सकती हों, उनका वह निराकरण कर दे।

इस प्रकार जब ख़रीददार बात-चीत में पूर्ण अनुराग लेना आरम्भ करता है तब विक्रेता उस पर बड़ी तीक्ष्ण दृष्टि रखता है। और वह इस बात का प्रयत्न करता है कि बिक्री का क्रम आरम्भ हो जाय। मगर वह सौदा करते समय हर एक ख़रीददार की अवस्था और बाज़ार की हालत पर भी ध्यान रखता है। वह जब यह देखता है कि ख़रीददार माल ख़रीदने के सम्बन्ध में कोई निश्चय करने वाला ही है तब उसके पहले ही वह आर्डर लिखना आरम्भ कर देता है और बात-चीत का सिलसिला ख़तम हो, इसके पूर्व ही वह आर्डर ख़रीददार के आगे दस्तख़त करने के लिए रख देता है।

सबसे महत्त्व-पूर्ण कार्य आर्डर पर दस्तख़त करा लेना है। चतुर विक्रेता बड़ी बुद्धिमानी से स्वीकृति ले लेते हैं। आम तौर पर ग्राहकगण आर्डर को वापस नहीं करते और जिस आर्डर को स्वीकार कर लिया है उसका माल लेने से इनकार नहीं करते। जब ग्राहक को माल पसन्द आ जाय, पर वह ख़रीदने के लिए कोई हीला-हवाला करे कि अभी रुक जाओ या और कोई बात हो जाने दो, तब विक्रेता का यह कौशल-पूर्ण कार्य होता है कि वह हर एक सम्भवनीय उपाय से ऐसा प्रयत्न करे जिससे सौदा उसी समय हो जाय और ग्राहक आर्डर पर दस्तख़त कर दे। योग्य विक्रेता ग्राहकों को ख़ाली नहीं लौटने देते हैं या वे बिना आर्डर लाये वापस नहीं आते हैं। इसलिए बिक्री के सम्बन्ध में छः बातों को क्रम-पूर्वक सदैव ध्यान में रखना चाहिए—

(१) बिक्री की आशा रखना।

(२) ग्राहक से मिलने के पहले माल के सम्बन्ध में पूरी जानकारी कर लेना।

(३) इस ढंग से मिलना कि ग्राहक का ध्यान उसकी ओर आकर्षित हो।

(४) प्रदर्शन—माल का परिचय और वर्णन इतने अच्छे ढंग से विक्रेता करे कि ग्राहक को दिलचस्पी पैदा हो जाय।

(५) बात-चीत—माल की उपयोगिता के सम्बन्ध की सब बातें, अन्य अनेक लाभ, और अन्त में सब वार्तालाप को यथायोग्य अनुकूल रूप में कहना।

(६) अनुकूल वातावरण में सौदा तय कर आर्डर ले लेना।

हर एक बिक्री में इन छः बातों का उपयोग होता है। पर यह बात नहीं है कि प्रत्येक बिक्री में एक सा समय लगे और एक ही ढंग से बात-चीत हो। कोई बिक्री बात ही बात में हो जाती है, और किसी के होने में घण्टों लग जाते हैं। पर यह सब विक्रेता के व्यवहार, माल की क़िस्म और माँग आदि पर निर्भर है। विक्रेता अपनी कुशलता से एक-दो बातों से ही सौदा कर सकता है और बाक़ी के शेष या कुछ उपायों की ज़रूरत ही नहीं पड़ती। विक्रेता का व्यवहार हर एक ग्राहक से अच्छा रहना चाहिए। प्रत्येक ग्राहक से बात-चीत करे, माल बतलावे और ग्राहक की उसमें दिलचस्पी पैदा कर सौदा करे। पर जब प्रथम बार विक्रेता को कई नई जगहों पर माल बेचने की आवश्यकता होती है तब उसे अपना सम्बन्ध स्थापित करने में महीनों लग जाते हैं। दूसरे लोग उसके व्यवसाय के सम्बन्ध में सब बातें जानना चाहते हैं। कैसा माल उसके यहाँ तैयार होता है, या

किन किन क़िस्मों का व्यवसाय होता है, उसका व्यवसाय कितना बड़ा है ? वह तैयार माल या कच्चा माल कहाँ से मँगाता है और उसके माल की बाज़ार में कैसी माँग है ? इस प्रकार की और भी बातें ग्राहक पूछते हैं। उसके व्यवहार और अन्य बातों पर भी लोग नज़र डालते हैं। यदि बाहर के ग्राहक हैं तो महीनों पत्र-व्यवहार और तार दौड़ाने में लग जाते हैं। मगर कुशल विक्रेता इस उद्योग में निराश नहीं होता है। वह किसी न किसी के परिचय-द्वारा या अन्य किसी प्रयत्न से कोई अवसर पा जाता है कि उसे सौदा मिल जाता है।

जी० एस० पथिक

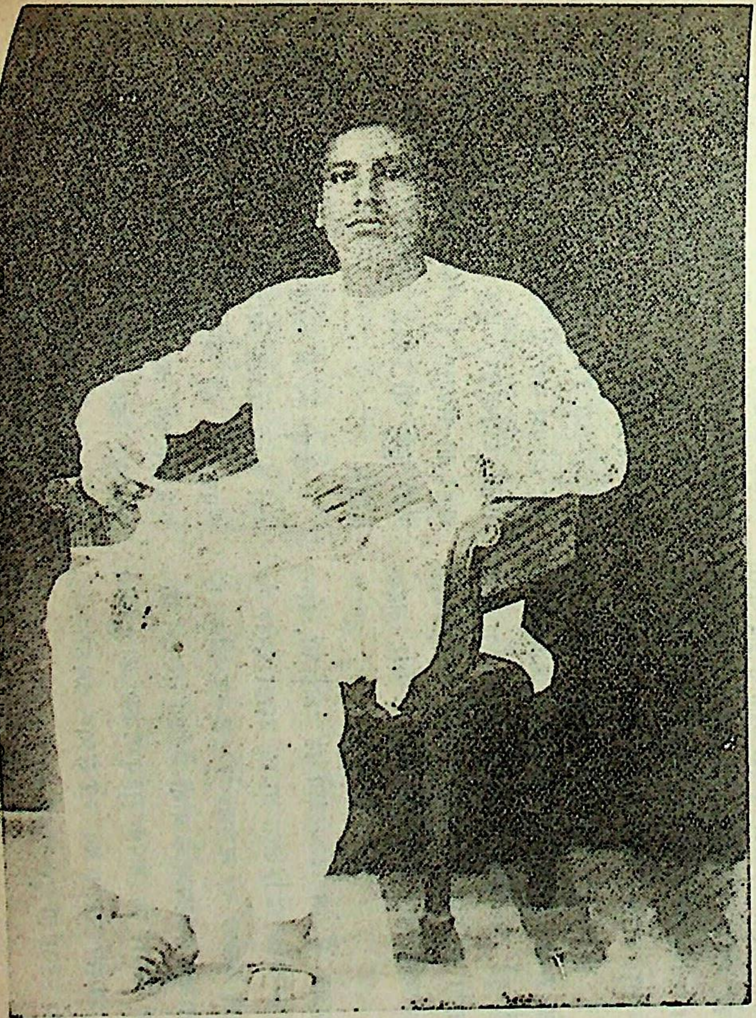
## ५—संयुक्त-प्रान्त और मारवाड़ी-समाज

मारवाड़ी लोग यों तो बिहार, बंगाल और आसाम तक फैले हुए हैं, परन्तु संयुक्त-प्रान्त के कुछ नगरों में वे कसरत से बसे हुए हैं। राजपूताना के इस प्रान्त के समीप होने के कारण दिल्ली, आगरा, हाथरस, कानपुर इत्यादि स्थानों में वे आ बसे हैं और व्यापार में लगे हुए हैं। वे लोग अपने साथ अपने आचार-विचार तथा रहन-सहन के ढंग को भी लाये हैं। उनके रहन-सहन के कुछ चित्र प्रत्येक संयुक्त-प्रान्त के निवासी के दृष्टिगोचर हुआ करते हैं। यह समाज मुख्यतया रुपया पैदा करने की उधेड़-बुन में लगा रहता है और अपनी स्त्रियों में शिक्षा फैलाने का उद्योग प्रायः नहीं करता, इसलिए इस समाज की रूढ़ियों ने लोगों पर बुरी छाप डाल दी है। दुर्भाग्य से पुरानी रस्मों को माननेवाले इस समाज की स्त्रियों पर अपने "देश" की आबहवा, परम्परागत प्रणाली ने ऐसा प्रभाव डाल रक्खा है कि पुरानी सुन्दर प्रथाओं से फ़ायदा उठाने के बजाय उल्टा नुक़सान उठा रहा है।

परन्तु आज मारवाड़ी-समाज सुषुप्तावस्था में नहीं है वह जाग उठा है और उसके कुछ वीर नवयुवकों के हृदयों में समाज-सुधार की हिलोर उठी है और वे सच्चे भाव से प्रेरित होकर अपने उत्थान में कटिबद्ध होकर पदार्पण कर चुके हैं।

यों तो श्रीयुत घनश्यामदासजी बिड़ला का नाम प्रसिद्ध ही है, परन्तु अब तो मारवाड़ी-समाज के सुधार व उन्नति के निमित्त कुछ ऐसे चरित्रवान्, गंभीर एवं जाति-प्रेमी व्यक्तियों ने बीड़ा उठाया है जिनके साहस, उत्साह और लगन को देखकर आशा का संचार हुए बिना नहीं रह सकता और इस समाज के लिए यह शुभ लक्षण है। इस प्रान्त के भ्रमण में जो कि गत जुलाई मास में मैंने अध्यक्ष पटेल साहब के मंत्री व अनुवादक की हैसियत से किया था, मारवाड़ी-समाज में जाग्रति के कई चिह्न देखे और एकआध ठोस कार्यकर्त्ताओं से मुलाक़ात करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। जैसे दिल्ली की पार्वतीदेवी, हाथरस के मारवाड़ी युवक और कानपुर के श्रीगजानन्दजी खेमका। श्रीखेमकाजी के सौजन्य, दृढ़ता, लगन और समाज-सुधार-प्रेम को देखकर मैं दंग रह गया और प्रफुल्लता का प्रादुर्भाव हुआ। उनके विचार समाज को साथ साथ लेते चलने परन्तु उसकी कुरीतियों को मिटाने का सतत प्रयत्न करने में हैं। वे साहसी हैं, पर्दे की अनावश्यकता, आभूषणत्याग, नशे की चीज़ों का पूर्ण बहिष्कार, सरल जीवन की प्रतिमा और दिल की सच्चाई के उत्कृष्ट नमूना हैं—वे इस ओर झुके हैं और स्वार्थ-त्याग का परिचय दे रहे हैं, और अपना समय मारवाड़ी-समाज को उन्नत करने में लगाते हैं, यह कम संतोष की बात नहीं है। वे शांत स्वभाववाले नम्र और शिष्ट होनहार युवक हैं; उनमें अभिमान नहीं, वे किसी को दुर्वचन नहीं सुनाते; परिश्रमी और मृदुभाषी हैं। ऐसे व्यक्तियों के द्वारा समाज का कल्याण अवश्यंभावी है और यदि खेमकाजी इस काम में सपत्नीक लग गये तो संयुक्त-प्रान्त का मारवाड़ी-समाज थोड़े ही समय में जाग्रत हो उठेगा। जाग्रति का ही यह युग है और बिना इसके स्वराज्य भोगने की क्षमता मारवाड़ी-समाज में कैसे आ सकती है ? उनके इस पुण्य संकल्प की हम हृदय से प्रशंसा करते हैं और ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि वे अपने प्रयास में सफल हों।

—परशुराम मेहरोत्रा



[ कानपुर के मारवाड़ी-समाज के युवक-रत्न समाज-सुधारक श्रीगजानन्दजी खेमका ]



[ आभूषणों के मोह को त्यागनेवाली, पति के साथ दिक्कतों का सामना करनेवाली, वीर बाला श्रीमती गजानन्द खेमका ]

## ६—विछोह

( १ )

केवल इस संसार में अकेला था। जैसे फूलों के साथ पत्तियाँ लगी रहती हैं, चन्द्रमा के साथ तारे लगे रहते हैं, सागर के साथ नदियाँ, और नदियों के साथ नाले जुड़े रहते हैं, वैसे केवल के साथ कोई नहीं था। इस संसार में जहाँ पिता को पुत्र की, पति को पत्नी की आवश्यकता होती है, वहाँ उसके दुख में समवेदना प्रकट करनेवाला कोई नहीं था। उससे कोई नहीं पूछता था, केवल, तुमने खाया है या नहीं। उसे कोई प्रेम नहीं करता था। उसकी न कोई इच्छा थी, न अनिच्छा। न आशा थी, न निराशा। उसको न कोई दुख था, न सुख। न कोई पुण्य था, न पाप। मा-बाप से छुटपन से ही छुड़ा हुआ अनाथ अज्ञान बालक युवावस्था को उसी तरह प्राप्त हो रहा था जैसे कि नदी के प्रवाह को रोकनेवाला मज़बूत बाँध बरसात के आते ही टूट जाता है या एक तरफ़ से दबी हुई लता का अङ्कुर बरजोरी दूसरी तरफ़ से फूट आता है। उसका शरीर निर्धन था, परन्तु मन धनी था; उसकी चेष्टा स्थिर थी, परन्तु हृदय चञ्चल था; उसकी देह मैली थी, परन्तु उसकी वाणी और नयन निर्मल थे। वह पृथ्वी से उखाड़े हुए नदी की धार में बहते हुए एक वृक्ष के समान अशक्त था, दिन में आकाश के एक कोने में पड़ी हुई चन्द्रकला के समान दुर्बल और क्षीण था, और तागा टूट जाने के कारण अनन्त गगनस्थल में तैरती हुई पतङ्ग के समान अनभिप्राय और लक्ष्य-रहित था।

उसके हृदय में प्रेम की लतायें उठ आई थीं, परन्तु उनको कोई आश्रय नहीं मिलता था। उसका शरीर एक वृक्ष के समान वसन्त की झलक में फूल कर ग्रीष्म की तपन में तपता हुआ बरसात के पानी के लिए तरसता था।

यदि वह संसार को अपने सुहृद्भावना की दुरबीन से बहुत ही समीप देखता था तो संसार उसको उसकी उल्टी तरफ़ से उतना ही दूर देखता था।

आह ! संसार में भी कैसा अन्याय है, कैसी निर्दयता है, कैसी कठोरता है ! ऐसी अविरल प्रेम की धारा को कैसे कसैले घृणा के सागर में आश्रय दिया जाता है ! एक प्रेम करता है तो दूसरा पूछता तक नहीं, एक प्रार्थना करता है तो दूसरा सुनता ही नहीं, एक आँसू गिराता है तो दूसरा पोछ भी नहीं देता, एक आहें भरता है तो दूसरा कान फेर लेता है।

इस प्रकार केवल संसार-सरिता के प्रचण्ड प्रवाह में बहता जाता था। यदि इस जलप्रवाह की प्रवाहित वस्तुओं में विडम्बनावाला धनिक एक बड़ा पत्थर था तो केवल एक छोटा सा घास का तिनका था। जहाँ बड़ा पत्थर चट्टान से टकरा कर भारी आवाज़ के साथ टूट-फूट कर चकनाचूर हो जाता था, वहाँ छोटा सा तिनका किनारे से सट कर अनायास ही आगे बढ़ जाता था।

( २ )

जाड़ों के एक प्रभात को केवल साढ़े नौ बजे एक सड़क के बग़ल में धूप लेता हुआ कुछ सोच रहा था। उसकी आँखें बहुत देर से किसी एक चीज़ को ताक रही थीं, मानो वे उसका सब रस एक बार ही में चूस लेना चाहती थीं। इतने में एक दफ़्तर के बाबू और उनके पीछे उनके काग़ज़-पत्रों को लादे हुए चपरासी उस तरफ़ से आ गुज़रे। यह मालूम नहीं है कि वे दोनों आदमी केवल को अच्छी तरह दृष्टिगोचर हुए या नहीं, परन्तु यह अवश्य कहा जा सकता है कि केवल की आँखें टस से मस नहीं हुई थीं। वह एकटक एक ओर को बैठा ताकता रहा।

थोड़ी देर में जिस प्रकार एक योगी माला के जप को पूरा करके अपनी निश्चिन्त दृष्टि फेरता है, उसी प्रकार केवल ने भी आँखें फेरीं। देखता क्या है कि सामने एक काग़ज़ों का पुलिन्दा पड़ा है। सोचने लगा—यह पुलिन्दा कहाँ से आया होगा। फिर सोचा कि अभी एक बाबू गये थे हो न हो यह उन्हीं का है। उसने उठाकर उसको ज़मीन से उठा लिया।

केवल को दफ़रों का अनुभव नहीं था, तो भी वह इतना जानता था कि बाबू लोगों के प्राण इन्हीं पर निर्भर रहते हैं। उस बाबू को गये दस-पाँच मिनट हो गये थे। झट पुलिन्दा हाथ में लेकर उसी तरफ़ को दौड़ पड़ा जिधर बाबू गया था। बात की बात में उसने बाबू को पकड़ लिया और पुलिन्दा उसके हाथों में रख दिया। बाबूजी की समझ में नहीं आया कि यह क्या बात है। देखते ही रह गये। केवल नीची आँखें करके बोला—क्या बाबूजी अपनी ही चीज़ को ख़ुद नहीं पहचानते हैं ?

बाबू ने ज़रा भौंह सिकोड़ कर देखा तो सचमुच उन्हीं की फ़ाइल थी। बोले—बच्चा ! तुमने इसको कहाँ पाया ?

"वहीं चौराहेवाले गिरजे के बग़ल में पड़ा था।"

"वाह बचा ! तुम बहुत होशियार हो। चपरासी, देख अपनी ग़लती। फिर लौट कर केवल की तरफ़ कृपादृष्टि फेर कर कहा—अच्छा तुम क्या इनाम चाहते हो ?"

"बस बाबूजी, मुझे आपकी प्रसन्नता का इनाम चाहिए।" इस वाक्य ने उस बाबू के हृदय में अमृत की वर्षा कर दी। वे सोचने लगे, इतने उन्नत भाववाला बालक इस दशा में रहे। आज पहली बार उनके हृदय में दया-भाव उत्पन्न हुआ था, और आज ही उन्हें संसार की विषमता का ज्ञान हुआ था। प्यार से बोले—क्यों बचा, तुम क्या करते हो ?

केवल ने एक तीक्ष्ण दृष्टि फेर कर क.ा—बाबूजी कुछ नहीं। जीवन के इने-गिने दिन जैसे-तैसे काटता हूँ। इन शब्दों ने बाबूजी के सामने समस्त दुखों का पिटारा रख दिया। उनके कानों में एकाएक दीन-दुखियों की, असहाय अबलाओं की आवाज़ गूँजने लगी। वे बोले—क्या तुम नौकरी चाहते हो ?

केवल ने प्रेम के साथ उत्तर दिया—नहीं बाबूजी, नौकरी क्या ! आपको देखकर तो यह तबीयत होती है कि जन्म भर आपकी ग़ुलामी करूँ।

बाबूजी अचरज से बोले—तुम्हारा क्या नाम है ? अच्छा यह तो कहो तुम्हारे मा-बाप कहाँ हैं और क्या करते हैं ?

"क्या कहूँ बाबूजी, मेरे मा-बाप ! आप ही अपने को समझ लीजिए।"

"क्या मर गये ?"

"जी हाँ। मैं लुटपन से ही अकेला हूँ। मेरा, नाम केवल है।"

"अच्छा हमारे साथ आओ।"

यह कहकर बाबूजी चलने लगे। उन्होंने सोचा, आज कैसे यह विलक्षण बालक मेरे सौभाग्य से मुझे मिल गया है। अच्छा मेरे पास नौकर नहीं है। इसे ही अपना नौकर बना लूँगा। घर में भी इसे देखकर सब प्रसन्न होंगे। दफ़्र में पहुँच कर उन्होंने कहा—केवल, आज से तुम हमारे नौकर हुए। जाओ, बरामदे में बैठे रहो।

बहुत अच्छा बाबूजी कह कर केवल ने आज्ञा शिरोधार्य की। थोड़ी देर में लौट कर बोला—बाबूजी, क्या कोई काम मिलेगा ? बाबूजी बोले—नहीं, बैठे रहो। यहाँ अकेले तुमको अभी बुरा लगेगा। लेकिन शाम को घर पहुँचने पर बच्चों के साथ मन बहल जायगा। दिन भर केवल बच्चों की कल्पना करता रहा।

( ३ )

क़िस्मत के फेर से बाबूजी के घर में उनकी पत्नी के सिवा और कोई नहीं था। उसी घर में रहनेवाले अपने एक पड़ोसी सज्जन के दो बच्चों का मुँह देखकर वे अपना जी बहलाया करते थे। इनका नाम जया और गिरीश था। दोनों भाई-बहन थे। जहाँ जया थोड़ी-बहुत शांत थी, वहाँ गिरीश ज़िद्दी और उद्धत था। दोनों में समय समय पर बाल-युद्ध हुआ करते थे और जया के रोकर हार स्वीकार करने पर गिरीश भी लड़ना छोड़ देता था। शिष्टाचार के हिसाब से होना भी ऐसा ही चाहिए था, क्योंकि गिरीश बड़ा था।

जब केवल ने उस घर में पैर रक्खा तब शांति और उल्लास ने भी पैर बढ़ाये। बाबूजी चिल्लाये—देखो, हम

एक नौकर लाये हैं। यह सुनते ही जया और गिरीश दौड़ आये। सबने उसको इस प्रकार देखा, जैसे एक नई बहू को देखते हैं। उसको देखकर सबकी आँखें तृप्त हो गईं।

घर में आते ही केवल ने जान लिया कि यहाँ उसके दिन मज़े में कटेंगे। घर की मालकिन की आँखों से ज़ाहिर होता था, मानो उनको उसका जवाहिर मिल गया हो। बच्चों को देखकर तो उसकी ख़ुशी का ठिकाना नहीं था। फिर और क्या चाहिए था?

केवल में सङ्कोच की मात्रा तब ही तक थी जब तक उसने देहली के अन्दर पैर नहीं रक्खा था। जब बाबूजी ने उसे घर की मालकिन को सौंप दिया तब एक सुयोग्य पुत्र की तरह बोला—माजी, कोई काम है?

"कोई काम नहीं केवल, आज आराम करो। पहले-पहल आये हो। लो ये रोटियाँ खा लो और बैठे रहो। केवल ने रोटियाँ खा लीं। फिर बच्चों ने उसे आ घेरा। जया ने पूछा—केवल तुम क्या जानते हो?

केवल ने हँस कर उत्तर दिया—हमें क्या नहीं आता बहन? जो कहोगी सो कर देंगे। गिरीश बोल उठा—क्या तुम्हें पतङ्ग उड़ाना भी आता है केवल?

केवल ने विश्वास के साथ कहा—आता क्यों नहीं है। जब राजशेखरी बाबू के यहाँ थे तब चन्द्रस्वरूप के लिए रोज़ पतङ्गें लूटता था।

गिरीश—क्या हमारे लिए भी लूटोगे केवल?

केवल—लूटेंगे क्यों नहीं भैया? क्या तुम्हें हम प्यार नहीं करते?

इतने में जया बोल उठी—नहीं, नहीं केवल इनके लिए पतङ्ग न लूटना। नाना नाराज़ होते हैं। फिर बोली—अच्छा, हमारे लिए क्या करोगे?

केवल—हम तुम्हारे लिए बाड़ी से फूल लावेंगे, देवताओं की पूजा करना, माला बनाना। तुम्हारे लिए गुड़िया और उनके कपड़े बना देंगे। गुड़ियों के लिए मोती की माला बना देंगे। तुम्हारी गुड़ियों की बारात करा देंगे। तुम्हारे छोटे छोटे बर्तनों में तुम्हें खाना पकाना सिखा देंगे। हम आटा गूँद देंगे और तुम रोटियाँ पकाओगी। और क्या चाहती हो बहन?

जया—एक बात और भी है। तुम हमारी बाड़ी में हमारे लिए एक छोटा सा बाग़ीचा बनाओगे। वह मेरा होगा। उसके फूल मैं अपने ठाकुरद्वारे में सजाऊँगी।

गिरीश—वाह जया वाह! अपने सिवा तुम्हें क्या कुछ और भी सूझता है? रामलीला अभी होने वाली है। केवल, मैं भी बाग़ीचे के उन फूलों की माला राम-चन्द्र के गले में डालूँगा।

केवल—अच्छा भैया यही सही। बाग़ीचा जया का होगा और फूल तुम भी लेते रहना।

गिरीश ने उसके बालों को देखकर निराश होकर कहा—क्यों केवल तुम्हारे बाल इतने लम्बे क्यों हैं?

केवल—लम्बे क्यों नहीं होंगे भैया? अभी हमारा जनेऊ कहाँ हुआ है!

"तो कब होगा?"

"जब परमात्मा की कृपा से दो-चार आने पास हो जायँगे।"

"तो क्या दो-चार ही आने में हो जायगा?"

जया—यह क्या केवल? जब भैया का जनेऊ हुआ था तब नाना ने तो २,०००) का हिसाब निकाला था। सारे मकान में दीवाली हुई थी। बन्दनवार लगाये गये थे। पकवान पके थे। तुम्हारा जनेऊ दो ही आने में किस तरह होगा?

केवल—हमारा जनेऊ इसी तरह होता है बहन। गङ्गाजी के किनारे जाकर बाल कटवा देंगे, बस।

यह कहा ही था कि गिरीश भीतर जाके दो-चार आने लड़-झगड़ कर ले आया और कहने लगा—लो केवल, आज ही अपना जनेऊ कर लो।

इस तरह इन तीनों की दोस्ती एक ही दिन में अपने शिखर पर पहुँच गई, मानो बिना बादल के पानी बरस गया, बिना फूल के फल लग गये।

दूसरे दिन से सब काम केवल करने लगा। सौदा बाज़ार से किफ़ायत में आने लगा। वह सारा घर आधे घण्टे में झाड़बुहार लेता था। बर्तन बड़े साफ़ मलकर रखता था। धोतियों को काग़ज़ के मानिन्द साफ़ कर देता था। प्रत्येक कमरे में फूलों के गुलदस्ते सजा कर रख

देता था। इधर-उधर फेंके हुए कपड़ों को तह करके यथास्थान रख देता था। बूटों में पालिश कर लेता था, छोटे-मोटे कपड़े भी सी देता था। यहाँ तक कि अपनी माजी को पान लगाने के लिए भी न उठने देता था।

उसने राजगद्दी पर बैठे हुए एक नये शक्तिशाली राजकुमार की तरह थोड़े ही समय में घर की हर एक वस्तु पर अपना अधिकार जमा लिया।

इस तरह केवल की हृदयोत्पन्ना नवाङ्कुरिता प्रेमलता उस गृहरूपी आम्रकुञ्ज से लिपट गई। इस नवकुञ्ज के चारों ओर वसन्त का सुवास उच्छ्वसित हो रहा था। नई नई आशाओं से यह स्थान परिप्लावित होने लगा था। नये खिले फूलों का यौवन और लावण्य, उनका माधुर्य, उनकी मस्त सुगन्ध, समय की सरसता, वायु का मतवालापन और नभमण्डल की निर्मलता—ये सब बहुत दूर से उसको चूमने के लिए लपकते हुए आते मालूम पड़ते थे।

भविष्य सहज में ही सुन्दर और सुखद प्रतीत होता था। आशा की सखियों ने परस्पर गले में हाथ डाल कर उस नवकुञ्ज को घेर लिया।

( ४ )

कोई कली खिलती है और कोई खिलने के पहले ही मुरझा जाती है, किसी को भ्रमर-चुम्बन का सौभाग्य प्राप्त होता है और किसी को अपने हृदय में कीट को स्थान देना पड़ता है, कोई मधुमय होती है और कोई नीरस, कोई खिलकर राजा के मुकुट में चढ़ती है और कोई किसी अधम से पद-दलित होती है। इसी तरह किसी डाली में फूल खिलते हैं और किसी में फूल की जगह पत्ते ही पत्ते नज़र आते हैं। यह सब—ईश्वर का अन्याय कहें या प्रकृति का अटल नियम—होता अवश्य है।

थोड़े दिनों के बाद केवल उस घर में सबका प्यारा बन गया। जब उसे घर के कामों से फ़ुरसत होती थी तब उसे अया और गिरीश घेर लेते थे। यहाँ तक कि कभी कभी तो उसे घर का काम करने का भी अवकाश नहीं देते थे। गिरीश ने तो उसके कारण सिनेमा जाना भी छोड़ दिया था। उन दोनों के स्कूल से लौटने पर वह हाथ में चबैना लिये खड़ा रहता था और वे अपनी अपनी किताबें ज़मीन में फेंक कर उसके हाथों को नोच डालते थे। तब वह उन्हें सारी दुनिया की कहानियाँ सुनाता और दोनों बच्चे प्रसन्न होकर उसे भी कुछ खाने को देते थे। उसके बाद फिर सब लोग पतङ्ग उड़ाते या बाग़ीचे में घूमने को जाते।

परन्तु केवल के भाग्य में शान्ति नहीं लिखी थी। फूलों में फल लगने वाले ही थे कि आँधी और वारिश ने सब सफ़ाचट कर दिया। निर्मल शरद् का पूर्ण विकास होने न पाया था कि निठुर हेमन्त ने पदार्पण कर दिया।

केवल के शरीर पर धीरे धीरे सफ़ेद धब्बे पड़ने लगे। ज्यों ज्यों बीमारी बढ़ती गई, त्यों त्यों सबको उसकी फ़िक्र होने लगी। कुछ दिनों तक तो यह मामूली बात समझी गई, परन्तु भावी क्या कभी होने से रुक सकती है? दिन पर दिन उसका शरीर सफ़ेद धब्बों से बदसूरत होने लगा। बाबूजी एक दिन एक डाक्टर को बुला लाये। डाक्टर साहब जब आये तब केवल बच्चों के साथ खेल रहा था। डाक्टर साहब देखते ही ताड़ गये कि रोग फैलनेवाला है। बाबूजी को बग़ल में करके बोले—क्योंजी तुम बच्चों का इससे परहेज़ क्यों नहीं करते हो? इसको श्वेत कुष्ठ है।

यह सुना नहीं कि बाबूजी भौंचक्के रह गये, बदन में पसीना हो आया, बोलना बन्द हो गया, पैरों तले ज़मीन खिसक गई।

बहुत देर बाद सँभल कर बोले—तो अब इसका क्या होगा?

"होगा क्या? नौकरी से अलग करना होगा।"

बाबूजी पर दूसरा वज्राघात हुआ। अभी औरों ने यह सुना ही नहीं।

ख़ैर, किसी तरह डाक्टर साहब बिदा हुए। अब बाबूजी पर बड़ी मुसीबत पड़ी। भीतर क्या कहें और केवल से क्या कहें?

भीतर आये तब सब लोगों ने बाबूजी पर हमला सा किया। एकाएक सब लोगों ने एक ही तरह के सैकड़ों प्रश्न उसी दम पूछे। इस गड़बड़-सड़बड़ और छीना-झपटी के बीच बाबूजी जो कुछ जानते थे वह भी भूल गये।

बड़ी कठिन समस्या थी। किस तरह बच्चों को समझायें। वे तो कभी केवल को नहीं छोड़ सकते थे। किस तरह केवल से सिर पर पत्थर सा मारके कहते कि तुम चले जाओ? किस तरह अपने मन की तसल्ली होती?

इन सब सवालों का कुछ जवाब न दे बाबूजी सीधे अपने कमरे को गये और केवल की माताजी से बोले—अब हमें केवल को छोड़ना पड़ेगा।

माताजी के हाथों से पान गिर पड़ा। वे चौंक कर बोलीं—क्यों, क्या? किस तरह?

"जानती नहीं हो डाक्टर ने कहा है रोग ख़राब है। इससे परहेज़ करना पड़ेगा।"

"यह तुम क्या कह रहे हो?"

"जो डाक्टर ने कहा।"

"नहीं, नहीं उसकी कहीं यहीं दवा-दारू की जायगी।"

"इसका कोई इलाज नहीं।"

फिर दिन में बाबूजी ने अपने दिल को कड़ा करके केवल को बुलाया और उससे कहा—केवल, हम तुम्हें अपने जीवन का साथी बनाना चाहते थे। पर इतना कहते ही गला रुँध गया।

केवल कुछ घबरा के और कुछ निडर होके बोला—हाँ, मैं समझ गया। मेरा भी यही विचार था। पर—आगे कहा नहीं था कि केवल की आँखें ... धोखा दे बैठीं। शर्म के मारे हो या कठोर वेदना से। वह एकदम मुड़ा और सीढ़ी की तरफ़ लपका। पतिपत्नी ने उधर को कान उठाये। मालूम पड़ा कि वह सीढ़ियों से उतर कर बाहर चला गया। वे ... दूसरे को ताकते रहे। न मालूम कब तक।

शाम को जब जया-गिरीश स्कूल से लौट के आये तब उनकी नानी उनके लिए रोटी लिये खड़ी थी। दोनों एक साथ चिल्ला उठे—क्यों, केवल को क्या हुआ है?

"केवल कहीं गया है।" नानी ने मुँह छिपा के कहा। बच्चों ने जान लिया कि दाल में काला है। ... सोचने लगे, आज तक कभी केवल शाम को रोटी खाने के वक़्त आँखों की ओट नहीं हुआ था। आज क्या ऐसी नई बात थी?

बच्चे हठी तो होते ही हैं। जया-गिरीश ... अपनी बात के पक्के थे। खाना नहीं ही खाया।

× × × ×

रात को घर के एक अँधेरे कोने की तरफ़ बाबूजी की पत्नी और जया की नानी में बातें होती थीं। यह कहते हुए सुना गया—

"अगर जया-गिरीश ही नहीं खाते तो हमारे खाने से क्या होता है?"

उस रात चूल्हा नहीं जला।

—हरीशचन्द्र ओर...

# विज्ञान की करामात

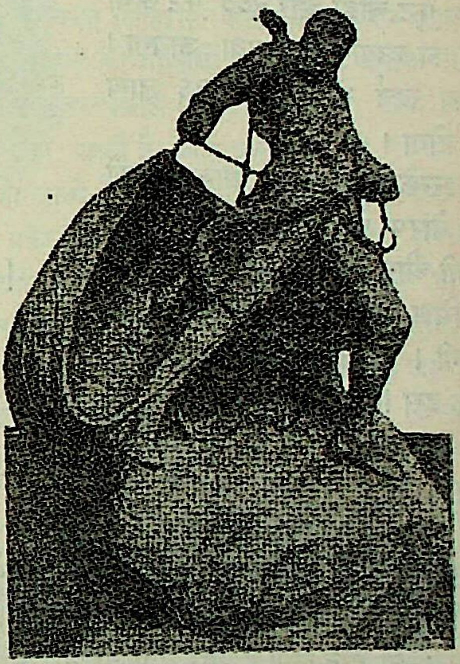
## [१] जर्मनी का नया शौक़

इस समय ज़ेपलीन बनाने की ओर सब देशों का ध्यान लगा हुआ है। प्रत्येक देश चाहता है कि मेरा ज़ेपलीन ही सबसे अच्छा और बड़ा हो। ग्रेटब्रिटेन ने R 100 और R 101 को बनाया तथा अमेरिका ZRS 3 और ZRS 4 बनाने के प्रयत्न में लगा हुआ है।

ज़ेपलीन का जन्म-स्थान और गृह जर्मनी है। वह भला कब चुप रह सकता था। उसके ज़ेपलीनों ने बड़े बड़े तूफ़ानों का सामना किया, अटलांटिक महासागर की यात्रा की और संसार का चक्कर सरलता से लगाया था। उसे अपने इन कार्यों पर अभिमान है।

इसी लिए वह शीघ्र ही एक अद्वितीय ज़ेपलीन तैयार करने में लगा हुआ है। उसका आकार, गति और आराम की सामग्रियाँ सभी अद्वितीय होंगी। इस प्रकार का प्रथम ज़ेपलीन LZ 123 कहलावेगा। वह १२० मुसाफ़िरों को, ४६ नौकरों को और १० टन वज़न की डाक ले जा सकेगा। अटलांटिक महासागर की यात्रा करने में उसे केवल ३ दिन लगेंगे। वह ५१, ८७, ५०० घन .फ़ुट हवा हटावेगा और ७५ मील प्रति घंटे की गति से चलेगा। लम्बाई का भी क्या कहना! ८१३ .फ़ुट होगी और चौड़ाई १३५ फ़ुट। संसार-प्रसिद्ध ग्राफ़ ज़ेपलीन केवल ७७८ .फ़ुट लम्बा और ९८ .फ़ुट व्यास का है।





[ बरलिन में—धातु का २५ .फ़ुट ऊँचा वायुयान। युग के वीरों का स्मारक ]

इस हवाई जहाज में सुन्दर से सुन्दर विशाल जहाजों के समान ऐश-आराम की समस्त सामग्रियाँ होंगी। इसके सजे कमरों में गायन-गृह होंगे, बड़े बड़े भोजनालय होंगे और विश्राम के लिए कमरे होंगे। सबसे ऊपरी स्थान के सूर्य-स्नान के लिए कमरा होगा जो रात्रि के समय में क्लब का भी काम दे सकेगा। बे-तार के तार, विद्युत्, टेलीफ़ोन आदि की भी कमी न होगी।

इस हवाई जहाज के बनाने में लगभग ३,५०,००० पौंड ख़र्च होंगे। उसकी आयु दो वर्ष आँकी जाती है।

इतने समय में वह ६,००,००० मील से अधिक की यात्रा कर सकेगा। कम से कम एक सप्ताह में वह एक बार अटलांटिक की यात्रा अवश्य करेगा।

इस हवाई जहाज़ के ठहरने के स्थान भी आकाश को छूने की कोशिश करेंगे। एक १,००० फ़ुट लम्बा, ३०० फ़ुट चौड़ा और २०० फ़ुट ऊँचा लोहे का छाया-गृह बनाया जायगा। इसका ख़र्च भी लगभग ३६ लाख पौंड होगा।

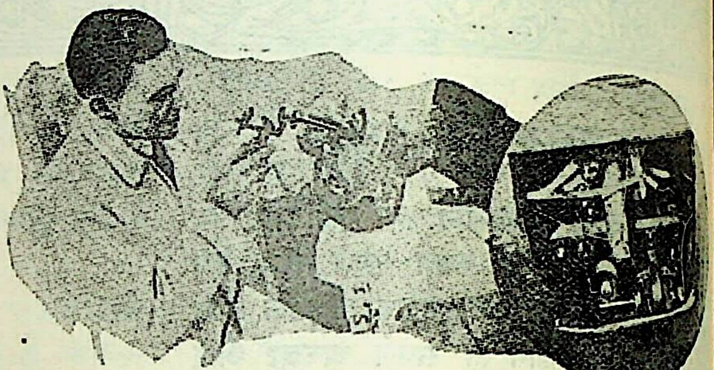
इसके द्वारा जापान और चीन की डाक योरप को बड़ी शीघ्रता से आ सकेगी और फिर वायुयानों के द्वारा वह भिन्न भिन्न स्थानों में वितरित की जावेगी। अनुभवी लोगों का कहना है कि इस विशाल उड़ते हुए 'अंडे' का उपयोग डाक और सामान ढोने में ही विशेष रूप से होगा। इसी में लाभ भी है। सुना जाता है, अमेरिका इसके भी कान काटने की कोशिश में है।

इस तरह की प्रतिद्वन्द्विता देखकर महासागरों पर किलोलें करनेवाले जहाज़ों को अपने जीवन-सुख पर संदेह-सा होने लगा है और वे भी अपनी उन्नति की ओर तेज़ी से बढ़ रहे हैं।

—०—

## [२] वैज्ञानिक मनुष्य

चीर-फाड़ की शिक्षा पानेवाले विद्यार्थियों को अभी तक मुर्दों या चित्रों-द्वारा शरीर के भीतरी भागों के विषय में पढ़ाया जाता था, परन्तु उनके ज्ञान की कोई सच्ची परीक्षा नहीं थी। वियेना के एक डाक्टर ने "वैज्ञानिक मनुष्य"—"राबट"—तैयार किया है। वह साँस लेता है और मनुष्य के समान ही उसका हृत्कंपन भी होता है। उसके नाक और गले के सब अवयव हैं। इन अवयवों का जब कोई विद्यार्थी अध्ययन करता है और अपने यंत्रों के द्वारा किसी स्थान की चीर-फाड़ करता है तब "राबट" चीरफाड़ में ग़लती होने पर घंटी बजाता है। हाँ, यदि विद्यार्थी का कार्य संतोष-



[ विद्यार्थी का वैज्ञानिक रोगी, दाहिनी ओर गले के भीतर की कारीगरी ]

जनक है तो क्षण भर के लिए 'प्रकाश' सा चमक जाता है। यह गले के भीतरी अवयवों की शिक्षा देने की बड़ी सरल और सच्ची प्रणाली है।

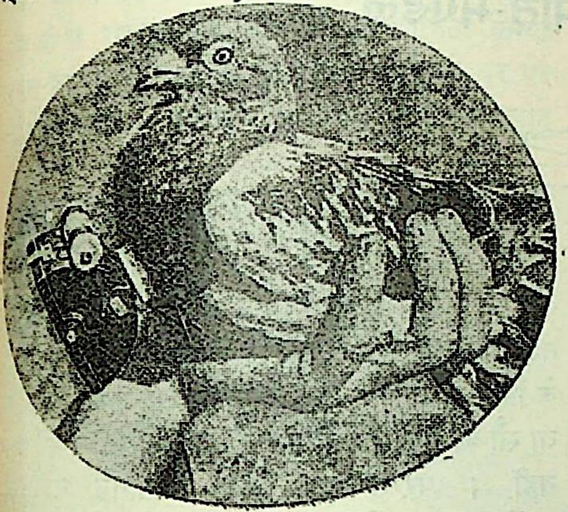
---

## [३] फ़ोटो लेनेवाले कबूतर

अभी तक हम सुना करते थे कि कबूतरों के द्वारा दूर दूर तक संदेश भेजे जा सकते हैं। योरपीय महाभारत में भी कबूतरों की सेना ने बड़े बड़े आश्चर्यजनक कार्य करके दिखाये थे। उनकी पूँछ में एक छोटी सी गोली बाँध दी जाती थी। इसके अन्दर बारीक काग़ज़ या फ़िल्म के ऊपर संदेश लिखा रहता था। यहाँ तक ज्ञात हुआ है कि एक कबूतर ने अपना संदेश १०४० मील की दूरी पर पहुँचाया था। साधारणतः एक वर्ष की आयु के कबूतर से १०० मील तक की दूरी तक का संदेश पहुँचाने की आशा की जाती है। ये पक्षी लगभग ३० मील प्रति घंटे के हिसाब से उड़ते हैं।

अब तो इन्होंने एक नया ही कार्य शुरू कर दिया है। ये कबूतर फ़ोटोग्राफर हो चले हैं। एक छोटा

सा केमरा लेकर ये वायुमंडल में उड़ जाते हैं। केमरा एक मिनट में ६ बार खुलता और बन्द होता है। इस तरह ये ज़मीन पर स्थित इमारतों, सड़कों, पहाड़ियों तथा बग़ीचों आदि का चित्र खींच लेते हैं।



[ केमरा लेकर उड़ने के लिए तैयार है ]

बाद में कबूतर लौटकर अपने स्थान में आ जाते हैं। इस तरह ये फ़िल्म-द्वारा शत्रु के देश का नक़शा खींच लाते हैं। इस नक़शे की सहायता से आक्रमण सफलता-पूर्वक किये जा सकते हैं तथा अन्य सैकड़ों प्रकार के कार्य साधित हो सकते हैं।

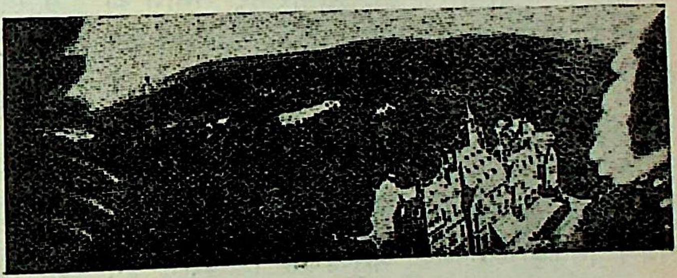
---

## [४] पौधों की दवा

हकीमों तथा वैद्यों के भाण्डारों में गोलियों से भरी शीशियाँ की कमी नहीं रहती। इनके द्वारा वे मनुष्य-शरीर के रोगों को दूर करते हैं और कभी कभी नवीन शक्ति का संचार भी करते हैं। इसी तरह केलीफ़ोर-निया-विश्व-विद्यालय के एक डाक्टर का कहना है कि पौधों में भी गोलियों की सहायता से नवीन जीवन का संचार किया जा सकता है। उन्होंने अपने इस सिद्धान्त की परीक्षा की है और उसमें उन्हें पूर्णतः सफलता भी प्राप्त हुई है।

मनुष्य के शरीर के समान ही पौधों की वृद्धि के लिए कुछ तत्त्वों की आवश्यकता हुआ करती है और ये तत्त्व उन्हें गोलियों की सहायता से प्राप्त हो सकते हैं। प्रत्येक गोली में कम से कम सात तत्त्व पाये जाते हैं—नाइट्रोजन (नेत्रजन), फ़ासफ़रस, मेगनी-शिया, आयरन (लोहा), पोटेशियम, और सलफ़र (गंधक)। इन की गोलियों को पानी में घोलकर सींच देने से पौधे अल्पकाल में बढ़ जाते हैं। उनमें अनेक शाखायें हो जाती हैं और फलों की भी संख्या कई गुनी हो जाती है। इनके द्वारा गन्ना, गेहूँ, वीट तथा अन्य प्रकार के पौधों में भी आश्चर्य-जनक परिवर्तन हो जाता है। गेहूँ हमारे साधारण गेहूँ की अपेक्षा अधिक स्वादिष्ठ और फ़ासफ़रसयुक्त पैदा होता है। गन्ना भी ख़ूब मोटा, ऊँचा और रसयुक्त हो जाता है।

इन की गोलियों की सहायता से आप किसी भी प्रकार की भूमि में अच्छी फ़सल पैदा कर सकते हैं।



[ कबूतर की फ़ोटोग्राफ़ी का नमूना ]

रेतीली और मरुस्थल की भूमि तक में बग़ीचा लगा सकते हैं। अमेरिका में इनकी सहायता से सैकड़ों एकड़ ज़मीन में खेती की जाने लगी है, परन्तु अभी इन गोलियों का उपयोग सीमाबद्ध है। क्योंकि ये अभी बाज़ारू चीज़ें नहीं हुई हैं और सम्भव है, इस कार्य के लिए लगभग एक वर्ष और लग जायगा। फिर तो कृषि-संसार में गज़ब की उन्नति दीखने लगेगी।

—नाथूराम शुक्ल



# मातृ-मण्डल

अधिकांश असभ्य तथा अर्द्ध सभ्य समाजों में ही महिलाओं की पराधीनता दृष्टिगोचर होती है। कितने ही नाम-मात्र के सभ्य समाजों में भी यह प्रथा पूर्ण मात्रा में प्रचलित है। बहुत से विद्वानों का मत है कि महिलाओं की सामाजिक अवस्था के ही आधार पर समाज की उन्नति या सभ्यता कूती जाती है। यह बात कुछ अंशों में सत्य भी है। परन्तु बहुत से निम्न जाति के समाजों में इसका व्यतिक्रम होते भी देखा गया है। जाति-विज्ञान के वेत्ताओं के मतानुसार एंडमन-द्वीप के आदिम निवासी तथा दक्षिण अफ़्रीका के बुशमैन सबसे निकृष्ट श्रेणी के मनुष्य हैं। परन्तु इन जातियों में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की अवस्था हीन नहीं है। अस्तु। महिलाओं के प्रति समाज में जो अनादर, अत्याचार तथा निष्ठुरता प्रदर्शित की जाती है उसके कारणों का यहाँ संक्षेप में दिग्दर्शन किया गया है।

मानव-समाज में महिलाओं की अवस्था चिरकाल से ही हीन नहीं थी। वर्तमान समय में प्रायः प्रत्येक समाज में पिता का ही अधिकार दिखाई पड़ता है। परिवार का सबसे अधिक अवस्थावाला पुरुष गृहस्वामी होता है, उसकी आज्ञा के अनुसार घर के लोगों को चलना पड़ता है। स्त्री-पुत्र, पुत्री तथा पुत्रवधू आदि उसकी आज्ञा का पालन करने के लिए बाध्य होते हैं। चाहे वह एक को सौ कहे या सौ को एक, किसी को चूँ तक करने का अधिकार नहीं। परन्तु यह प्रथा सनातन नहीं है। आदिम समाज में माता का ही अधिकार विशेष रूप से प्रचलित था, अर्थात् घर की वयोवृद्धा महिला गृहस्वामिनी होती थी, उसी के हाथ गृह-प्रबन्ध की बागडोर रहती थी। उत्तराधिकारसूत्र से भी कन्या की ही सन्तान उन दिनों में सम्पत्ति की अधिकारिणी होती थी। संसार की कुछ जातियों में यह प्रथा आज भी अल्पाधिक मात्रा में प्रचलित है। दक्षिण भारत की नेयर-जाति इसका एक ज्वलन्त उदाहरण है। समय के फेर से माता यानी परिवार की सर्वश्रेष्ठ महिला के हाथ से निकल कर जब यह अधिकार पिता अर्थात् सर्वश्रेष्ठ पुरुष के हाथ में आया तभी से महिलाओं के सामाजिक अधिकारों का उत्तरोत्तर ह्रास होने लगा। पुरुष-जाति ने घर-गृहस्थी का सारा प्रबन्ध अपने हाथ में ले लिया और स्त्रियाँ उनकी आज्ञाकारिणी भर रह गईं और धीरे-धीरे उनके प्रति अवज्ञा का भाव बढ़ने लगा।

पुरुष जाति के हाथ में अधिकार आ जाने से पिता का अपनी सन्तानों पर एकाधिपत्य हो गया, यहाँ तक कि वह अपने इच्छानुसार उनका वध कर सकता था। पुत्रों तथा कन्याओं का वि

पूर्णरूप से पिता की ही इच्छा पर निर्भर हो गया। इस सम्बन्ध में उनकी व्यक्तिगत इच्छा या रुचि की ओर ध्यान देने की जरा भी आवश्यकता नहीं समझी गई। कन्या का विवाह करते समय पिता वर से शुल्क भी ले सकता था, अतएव अविवाहिता कन्या पर जो अधिकार पिता का था वही बाप का वर पर भी होने लगा। परन्तु पिता का पुत्री पर चाहे कितना ही अधिकार होता, अपत्य-स्नेह के कारण उन अधिकारों का प्रयोग करने की प्रायः आवश्यकता ही नहीं पड़ती थी। परन्तु पति की ओर से यह बात नहीं थी। असभ्य समाज में स्त्री के प्रति पुरुष का प्रेम या स्नेह प्रायः काम-वासना की प्रेरणा से ही हुआ करता है, अतएव यह चिरस्थायी नहीं होता। कितने ही समाजों में पुरुष इच्छानुसार कई स्त्रियों के साथ विवाह करने के लिए स्वतन्त्र हैं। ऐसे समाज के पुरुष यौवन ढलते ही पत्नी के प्रति सर्वथा अवहेलना करने लगते हैं और उस



[ श्रीमती कान्तिदेवी अवस्थी ]
[ आप युक्तप्रान्त की एक उत्साही महिला हैं। सरकारी क़ानून तोड़ने के अपराध में आप दण्ड पा चुकी हैं]



[ श्रीमती अहमदशाह ]
[ आप यू० पी० कौंसिल की प्रथम महिला-सदस्य हैं ]

बेचारी को एक क्रीतदासी से भी अधिक क्लेशमय जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य होना पड़ता है। ऐसी दशा में पति तथा उसके कृपापात्रों को सेवा-सुश्रूषा तथा गृहस्थी के कठिन से कठिन काम किये बिना उसे जीविका तक चलानी कठिन हो जाती है।

जिन जिन देशों तथा समाजों में वर की ओर से कन्या के पिता को धन देकर विवाह करने की प्रथा प्रचलित है, वहाँ पति को पत्नी के विक्रय तक का अधिकार प्राप्त है। इस प्रकार भिन्न भिन्न देशों में स्त्रियाँ गाय-भैंस की तरह विक्रय की वस्तु समझी जाने लगीं। प्राचीन यहूदी समाज में कन्यायें दासी के रूप में भी बेची जाती थीं। उत्तर-अमेरिका



[ श्रीमती के० डी० रुक्मानी बी० ए० ]

[ आप महारानी कालेज मैसूर की सुपरिंटेंडेंट हैं। वहाँ की सरकार ने आपको हिन्दू क़ानून और उत्तराधिकार-कमेटी की सदस्या निर्वाचित किया है ]

के रेड इंडियन स्त्रियों को बोझा ढोने के काम में नियुक्त किया करते हैं। जब वे एक स्थान से हट कर दूसरे स्थान पर जाने लगते हैं तब सारी वस्तुएँ ढो ढो कर स्त्रियाँ ही ले जाती हैं। पुरुष निश्चिन्त रूप से उनके आगे आगे चलते भर जाते हैं। सभ्य समाज के जो लोग उस देश में भ्रमण के निमित्त जाते हैं उन्हें यह प्रथा बहुत ही बेढङ्गी सी जान पड़ती है। इस प्रथा की उत्पत्ति का कारण सम्भवतः यह है कि आदिम युग के निवासियों को पद पद पर शत्रु की आशंका रहती थी, अतएव जब वे एक स्थान से हट कर दूसरे स्थान पर अपना डेरा ले जाने लगते



[ श्रीमती एल० डी० सूज़ा ]

[ आप वाणी-विलास इंस्टीट्यूट बंगलोर की प्रधानाध्यापिका हैं ]

थे तब पुरुषों को धनुष-बाण या बर्छी लेकर सदा सावधान रहना पड़ता था। ऐसी दशा में बच्चों तथा दैनिक व्यवहार की आवश्यक सामग्रियों के ढोने ले जाने का भार सम्भवतः स्त्रियों पर पड़ता था। उस युग में स्त्रियों तथा पुरुषों में इस प्रकार का श्रम-विभाग नितान्त आवश्यक था, और उसी प्रथा का चिह्न आज-कल के समाज में दृष्टिगोचर होता है।

कुछ विशेष परिस्थितियों में मानव-समाज में स्त्रियों का अपहरण करके विवाह करने की प्रथा प्रचलित थी। हिन्दूशास्त्रकारों ने इस प्रकार के विवाह को पैशाचिक विवाह बतलाया है। युद्ध में परास्त करने पर शत्रु की कन्या, भगिनी या पत्नी को बन्दी करके उसके साथ बलपूर्वक विवाह करने की प्रथा कितने ही समाजों में प्रचलित थी। युद्ध में परास्त होकर बन्दी होने पर पुरुष को आजन्म अपने विजेता की दासता करनी पड़ती थी और बन्दिनी स्त्री को प्रायः उसकी पत्नी बनना पड़ता—ऐसी दशा में स्वभावतः इन पत्नियों तथा क्रीतदासियों में कोई अन्तर नहीं रहता था। इस प्रकार बहुविवाह की प्रथा होने पर पुरुष किसी भी पत्नी का इच्छानुसार परित्याग कर सकता था, किन्तु स्त्रियों को पति के त्यागने का अधिकार नहीं था।

स्त्रियों तथा पुरुषों में जो प्राकृतिक अन्तर है वह भी कुछ अंशों में स्त्रियों की अधीनता का एक कारण है। शारीरिक बल में स्त्रियाँ पुरुषों के समकक्ष नहीं होतीं। प्राचीन समाज के नियमानुसार बल की ही प्रधानता मुख्य समझी जाती है। मृगया, पशु-पालन या कृषि के द्वारा जीविका चलाने के लिए शारीरिक शक्ति विशेषरूप से आवश्यक है। असभ्य समाज में तो जो जितना ही अधिक परिश्रम करता था, उतनी ही उसकी प्रतिष्ठा होती थी। नारी-जाति की प्रकृति स्वभावतः कोमल होती है, अतः अधिक श्रम करने में वह सदा ही असमर्थ रहती है। यह असामर्थ्य भी स्त्री-जाति के प्रति पुरुषों की अवज्ञा का एक बहुत बड़ा कारण है।

समाज में जब सभ्यता का विकास नहीं हुआ था तब दुर्बल होने के कारण स्त्रियाँ पुरुषों की अपेक्षा बहुत ही हीन और गर्हित समझी जाती थीं। सभ्यता का अङ्कुर उत्पन्न होते ही स्त्रियों तथा पुरुषों का यह पार्थक्य और भी स्पष्ट हो गया। गृह-प्रबन्ध का सारा अधिकार चला आया पुरुषों के हाथ में, अतः स्त्रियों की शिक्षा-दीक्षा की भी आवश्यकता न रही। शारीरिक बल में तो वे हीन थीं ही, अब बुद्धि में भी हीन समझी जाने लगीं।

स्त्रियों की मानमर्यादा बहुत कुछ समाज की आर्थिक अवस्था पर भी निर्भर रहती है। जो समाज समृद्ध होता है उसमें स्त्रियों का आदर भी निर्धन समाज की स्त्रियों की अपेक्षा अधिक होता है। दरिद्रता के कारण उनकी पराधीनता की शृङ्खला दृढ़ हो जाती है। इसका कारण यह है कि दरिद्रता के आघात सहते सहते मानव-हृदय की सुकुमार भावनायें लुप्तप्राय हो जाती हैं, अतएव दरिद्र समाज में दुर्बल के प्रति बलवान् का अत्याचार स्वाभाविक सा हो जाता है। परिवार में जब किसी प्रकार का संकट उपस्थित होता है तब दुर्बलप्रकृति महिलाओं पर ही उसका आघात अधिक मात्रा में पड़ता है।

आश्चर्य का विषय है कि धर्म-प्रवर्तकों ने भी महिलाओं को दबा रखने में भरसक उठा नहीं रक्खा। जितने भी धर्म-प्रचारक हुए हैं, स्त्रियों की अधीनता का ही समर्थन करते आये हैं और कितनों ने तो धर्म-प्रवण व्यक्तियों के लिए इन्हें विषवत् त्याज्य तथा समस्त पापों की खान बतलाया है। इस कारण भी वर्तमान समाज में स्त्रियों की अवस्था उचित मात्रा में उन्नत नहीं हो पाई। संसार की अन्यान्य बातों में समुचित उदारता प्रकट करके भी धर्म-प्रचारकों को स्त्रियों तथा पुरुषों में समानता के भावों का प्रचार करने की आवश्यकता नहीं प्रतीत हुई। ईसाई, मुसलमान, अग्निपूजक, चीनी तथा हिन्दू आदि सभी के धर्मशास्त्रों में स्त्रियाँ पुरुषों से हीन मानी गई हैं। केवल वैष्णव तथा शाक्त धर्म में ही स्त्रियों के निन्दापरक वाक्य नहीं मिलते।

ग्रीस की सभ्यता अन्य देशों की अपेक्षा अधिक प्राचीन मानी जाती है। वहाँ के सुप्रसिद्ध दार्शनिक प्लेटो ने भी स्त्रियों को पुरुषों से हीन बतलाया है। बौद्ध-धर्म में ये पुरुषों को मार्गभ्रष्ट करने के लिए मुख्य प्रलोभन समझी गई हैं और स्वामी शङ्कराचार्य ने तो इन्हें नरक का द्वार ही कहा है। चीन

देश के धर्मशास्त्र का मत है कि उच्च कोटि की भी स्त्री निकृष्ट श्रेणी के पुरुष से अधम है। इस्लाम तो प्रधान रूप से पुरुष का धर्म है, स्त्रियों को इसमें स्थान ही नहीं है। इस धर्म में नारी-जाति का अस्तित्व तक नहीं स्वीकार किया गया। हज़रत मुहम्मद साहब ने स्वयं कहा है कि स्त्रियाँ नैतिक ज्ञान में पुरुषों से हीन और दुश्चरित्र होती हैं। बाइ-बिल में भी स्त्रियाँ ईश्वरोपासना से वञ्चित की गई हैं।

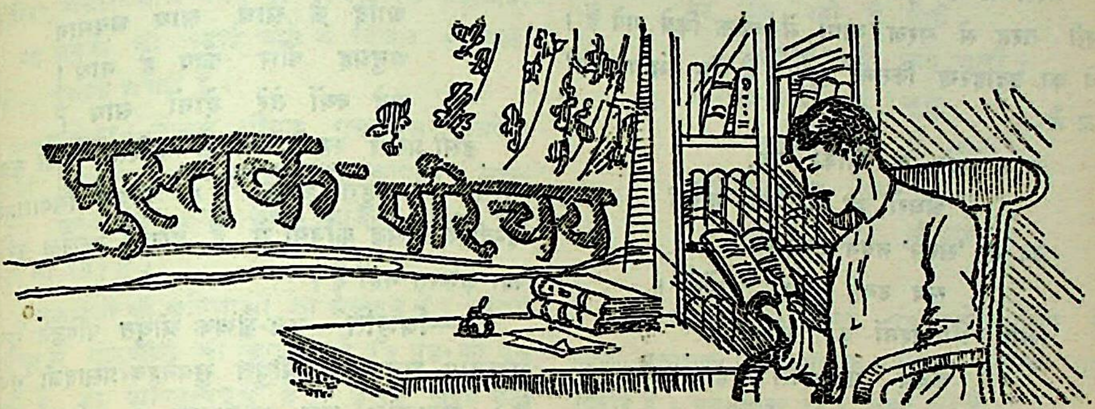
वैदिक युग में भारत में स्त्रियों की दशा कुछ अच्छी थी, किन्तु वेद में कुछ ही देवियों के नाम दिखाई पड़ते हैं। इससे भी पुरुषों की ही प्रधानता का पता चलता है।

अस्तु, इन बातों से स्पष्ट प्रमाणित होता है कि पुरुष-समाज सदा से ही महिलाओं को दबाता चला आ रहा है और वह इन्हें अपनी अनुगामिनी बना कर रखने में ही अपना तथा समाज का हित समझता है किन्तु वर्त्तमान समय में महिलायें जिस वेग से उन्नति की ओर अग्रसर हो रही हैं, उससे पता चलता है कि अपना न्यायस्थान प्राप्त किये बिना वे न रहेंगी।

—गङ्गाप्रसाद वर्मा



महाराना प्रताप और शाहज़ादा सलीम




१—गोपालन—लेखक, श्रीयुत भगवानदास वर्मा, मैनेजर, गवर्नमेंट मिलिटरी डेरीफ़ार्म डिपार्टमेंट, लाहौर छावनी हैं। आकार छोटा, पृष्ठ-संख्या लगभग ३६०, और सजिल्द ३० चित्रों-सहित है। मूल्य १॥) है।

यह पुस्तक तीसरी बार छपी है। इसमें पाँच खण्ड हैं। दूध, मलाई, मक्खन, घी इत्यादि की बनावट में रासायनिक पदार्थों का मेल, उनकी जाँच-पड़ताल की नई नई रीतियाँ, गौ-भैंसों के बाबत जानने योग्य अनेक बातें, दूध के पशुओं को अधिक दुधारू बनाने की सहज रीति, भले-बुरे पशुओं की जाँच-प्रक्रिया, अच्छे दूध के पशु कहाँ मिलते हैं आदि का हवाला, गोचर-भूमि के उपयोगी बनाने के उपाय, चारा, दाना, पानी इत्यादि पशु-उपयोगी वस्तुओं में रासायनिक पदार्थों का निर्णय, और उनका दूध पर प्रभाव, छोटे बालकों को दूध देने की प्रणाली आदि अनेक ज्ञातव्य बातों का इसमें अलग अलग ब्योरेवार वर्णन किया गया है। पशुओं की रोगावस्था में चिकित्सा-प्रक्रिया और कौन कौन ओषधियाँ गोशाला में रखनी चाहिए आदि बातों का भी इस पुस्तक में उल्लेख है। वेदों में गो-महिमा तथा वेदानुसार पशु-शाला बनाने का विधान भी यथास्थान दिया गया है। दूध और उसका व्यापार, डेरी फ़ारम किस प्रकार सफलतापूर्वक चल सकता है, धार्मिक गोशालाओं से यथोचित लाभ उठाने की विधि, सरकारी डेरियाँ कहाँ कहाँ हैं, संसार की सभ्यता केवल गो और गो-दूध के ऊपर ही निर्भर है, इस प्रकार की और बहुत सी अत्यन्त उपयोगी और अनूठी बातें इस पुस्तक में दी गई हैं। इसके रचयिता इस विषय के विशेषज्ञ हैं। पुस्तक लेखक को भगवानदास स्ट्रीट, लाहौर छावनी के पते पर लिखने से मिलती है।

२—सरस-संकलन—लेखक, श्रीयुत रामचन्द्र शुक्ल 'सरस', प्रकाशक, अग्रवाल प्रेस, प्रयाग, हैं। पृष्ठ-संख्या ६६, मूल्य ॥), छपाई और काग़ज़ सुन्दर है।

यह 'सरस' जी की सरस कविताओं का सुन्दर संग्रह है। इस पुस्तक की कवितायें भावमय और सरस हैं। इसमें कवि-कल्पना की अच्छी झलक है। आज-कल के कवि प्रायः अपना ही दुःख रोया करते हैं, प्रेम की पीड़ा से ही तङ्ग रहते हैं। परन्तु इसमें सरसजी ने प्रेम के आनन्द का भी वर्णन किया है। इससे इस पुस्तक का महत्त्व बहुत ही अधिक बढ़ जाता है। इसकी कुछ कवितायें विशेष सुन्दर हैं। एक स्थान पर सरसजी ने लिखा है—

> जीवन के नाटक में तव,
> अनुरागों का अभिनव होगा!
> मान-गुमान दिखाने में कुछ,
> नया प्रेम परिणय होगा॥
> संकोची-लोचन चरणों पर,
> लज्जा से विरमे होंगे।
> हाँ उनकी रसना-रचना के॥
> रस में कान जमे होंगे॥

'सरस'जी के ऐसे पद्यों में विकसित भाव बहुत अच्छी तरह से सरल भाषा में व्यक्त किये गये हैं। नीचे का उदाहरण कितना सुन्दर है और भाषा कैसी सरल है—

भाव हृदय के आकर जब,
अधरों ही पर रह जावेंगे।
उठ कर 'सरस' नयन चुपके से,
सब उनसे कह आवेंगे॥
सभी प्रेम-प्रश्नों का उत्तर,
केवल मन्द-हास होगा।
रूठ रूठ कर आने-जाने,
में ही रस-विलास होगा।

कविता-प्रेमियों को सरसजी की रचनाओं का रसास्वादन करना चाहिए।

**३—मीठी कहानियाँ**—लेखक, अध्यापक ज़हूरबख़्शजी 'हिन्दी-कोविद'; प्रकाशक, शिशुकार्यालय, प्रयाग हैं। पृष्ठ-संख्या ९१, मूल्य ।≡), छपाई और काग़ज़ सुन्दर है।

यह छोटी छोटी २३ कहानियों का संग्रह है और लड़कों के लिए लिखी गई है। ज़हूरबख़्शजी ने बाल-साहित्य के निर्माण करने में अच्छा काम किया है। बाल-साहित्य के आप एक सिद्धहस्त लेखक हैं। कहानियाँ छोटी छोटी, मनोहर तथा शिक्षाप्रद हैं।

**४—विषाद**—लेखक, श्रीयुत सियारामशरण गुप्त; प्रकाशक, साहित्य-सदन, चिरगाँव, झाँसी हैं। पृष्ठ-संख्या ४५, मूल्य ।-), छपाई और काग़ज़ सुन्दर है।

यह श्रीयुत सियारामशरणजी की कविताओं का संग्रह है। इसकी कुछ कवितायें बहुत ही अधिक मनोहर हैं। इस कथन का यह तात्पर्य नहीं कि इसके कुछ अंश अच्छे नहीं हैं, किन्तु केवल यह कि कुछ अंश वास्तव में हृदय को स्पर्श करनेवाले हैं। 'चमक' नामक कविता बहुत ही अधिक सुन्दर है। उसका एक पद्य यहाँ दिया जाता है—

ज्योति वह कहाँ गई हा हन्त!
हुआ क्यों उसका ऐसा अन्त?
विधे! यह कैसा नया विधान
आदि के साथ साथ अवसान
अनुग्रह और कोप हे नाथ!
जुड़े क्यों तेरे दोनों साथ?

इसी प्रकार स्मृति नामक कविता के भी कुछ पद्य वास्तव में बहुत अच्छे हैं। श्रीयुत सियारामशरण हिन्दी के प्रसिद्ध कवियों में हैं, इसका उल्लेख करने की यहाँ ज़रूरत नहीं है।

**५—विभूति**—मूल-लेखक श्रीयुत पण्डित भूतनाथ भट्टाचार्य; अनुवादक, श्रीयुत भुवनेश्वरप्रसादजी 'भुवनेश' हैं। यूनाइटेड प्रेस, भागलपुर में मुद्रित हुई है। मूल्य ।-), पृष्ठ-संख्या ६४ है।

यह एक धर्म-सम्बन्धी पुस्तक है। बँगला में मूल-ग्रंथ का बड़ा आदर है। इसमें धार्मिक बातों का उल्लेख है। आध्यात्मिक तत्त्वों के गहन विषयों के स्पष्टीकरण का प्रयत्न किया गया है। पुस्तक के लेखक की योग्यता वास्तव में बहुत अच्छी थी। वे उपनिषद् तथा अन्य शास्त्रों के प्रकाण्ड पण्डित जान पड़ते हैं। परन्तु इसमें सुव्यवस्था की बड़ी कमी जान पड़ती है। यदि यह पुस्तक अधिक क्रमबद्ध होती तो इसका महत्त्व बहुत कुछ बढ़ जाता। अनुवाद अच्छा हुआ है।

**६ वीर मातायें**—लेखक, श्रीयुत ललताप्रसाद शर्मा, प्रकाशक, श्रीयुत श्यामलाल वर्मा आर्य, बुकसेलर, बरेली हैं। पृष्ठ-संख्या १६२, मूल्य ॥।) है।

इस पुस्तक में २१ प्रसिद्ध स्त्रियों के जीवन-चरित्र हैं। इसका महत्त्व इसी से प्रकट है कि यह पुस्तक सातवीं बार सन् १९२६ ई० में छापी गई है।

**७—हमारे इतिहास के निर्माता**—लेखक, श्रीयुत अवधबिहारीलाल विशारद; प्रकाशक, साहित्य-भवन लिमिटेड, प्रयाग हैं। पृष्ठ-संख्या २५४, मूल्य १) है।

इसमें रामायण की कथा, महाभारत की कथा, श्रीकृष्णचन्द्रजी, महारानी दमयन्ती, हर्षवर्द्धन, सुलतान महमूद, महाराणा प्रतापसिंह, अकबर, नूरजहाँ बेगम, छत्रपति शिवाजी, गुरुगोविन्दसिंह, राजा राममोहन राय, सर सैयद अहमदख़ाँ, दादाभाई नौरोजी, महादेव

विक्टोरिया, सम्राट् जार्ज आदि की चरितात्मक कहानियाँ हैं। यह लड़कों को पढ़ाई जाने के विचार से लिखी गई है। पुस्तक अच्छी है।

८—लतिका—लेखक, श्रीयुत गुलाबरत्न वाजपेयी "गुलाब", प्रकाशक, गङ्गा-पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ हैं। पृष्ठ-संख्या १२६, मूल्य अजिल्द का १) है। सजिल्द का १॥) है।

यह गुलाबजी की कविताओं का संकलन है। पुस्तक के प्रारम्भ में गुलाबजी की लिखी हुई १४ पृष्ठ की एक भूमिका है, जो पाण्डित्यपूर्ण है। इसमें संदेह नहीं कि भूमिका के सब अंशों से मैं सहमत नहीं हूँ, तथापि वह वर्तमान कवियों का एक 'सिंहनाद' है। इस संग्रह में गुलाबजी की तपस्वी नामक कविता बहुत अच्छी है उसके दो पद्य यहाँ उद्धृत किये जाते हैं—

इस सुन्दर तप-कानन में,
　　है ऋषि हे वल्कलधारी!
यह फैल रही है कैसी
　　आनन्द-ज्योति अति प्यारी?
आश्चर्य-भाव में भूले,
　　अनुराग-बाग के माली।
क्यों ध्यानमग्न तुम बैठे,
　　भरकर फूलों से डाली।

×　　×　　×

९—पद्य-प्रसून—लेखक पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय, प्रकाशक हिन्दी-पुस्तक-भण्डार, लहेरिया सराय, बिहार हैं। पृष्ठ-संख्या २६७, मूल्य १।) है।

श्रद्धेय श्री अयोध्यासिंहजी उपाध्याय को भला हिन्दी-संसार में कौन नहीं जानता। इस पुस्तक के संबन्ध में मैं केवल इतना ही लिखना पर्याप्त समझता हूँ कि यह पुस्तक उन्हीं की लिखी हुई है। इसमें हिन्दुओं के संबन्ध की अधिक कवितायें हैं। सब कवितायें सरल, मनोहर तथा शिक्षाप्रद हैं।

—अवध उपाध्याय

---

# अपनी बात

## १—योरप और एशिया

योरप और एशिया में ख़ासा संघर्ष चल रहा है। योरप की शक्तिशाली जातियाँ एशिया पर अपना व्यापारिक और राजनैतिक प्रभुत्व जमाने के प्रयत्न में लगी हैं और एशिया की जातियाँ जिनमें स्वाधीनता का भाव जाग्रत हो गया है, उनके चंगुल से निकल भागने का। इस प्रकार दोनों के बीच में वैमनस्य और पारस्परिक अविश्वास की वृद्धि हो रही है।

इसमें सन्देह नहीं कि अपने को सभ्य कहनेवाली योरप की जातियाँ अपने स्वार्थ-साधन के आगे किसी प्रकार के ऊँचे आदर्श या नैतिक कर्तव्य की परवा नहीं करतीं। एशिया में उनका पदार्पण ही स्व-स्वार्थ-साधन पर अवलम्बित है। उनका सारा प्रयत्न सदैव इसी ओर रहता है कि उन्हें व्यापार करने की अधिक से अधिक सुविधायें प्राप्त हों जिससे उनकी आर्थिक उन्नति होती रहे। इसका परिणाम अच्छा नहीं हुआ। यदि किसी प्रकार योरप और एशिया की जातियों का अविश्वास दूर हो सके तो दोनों महाद्वीपों के लोग सुख और शान्ति से रह सकते हैं। परन्तु क्या यह सम्भव हो सकता है? यह कथन है अध्यापक-प्रवर मिस्टर एन० डी० हेरिस का जिन्हों ने हाल ही में योरप और एशिया के सम्बन्ध में एक पुस्तक लिखी है। उसमें उन्होंने यह दिखलाया है कि ज्यों ज्यों आधुनिक सभ्यता का विस्तार होगा, कला और विज्ञान की उन्नति होगी, त्यों त्यों एशिया और योरप दोनों एक दूसरे के निकट आते जायँगे, और एक न एक दिन वह समय अवश्य आयेगा जब जातीय द्वेषभाव और व्यापारिक तथा राजनैतिक प्रतिद्वन्द्विता का संसार में कहीं पता न चलेगा।

हेरिस साहब लिखते हैं—

यदि योरप की जातियाँ, जो सब प्रकार के कार्यों के लिए साधन-सम्पन्न हैं, चाहें तो ऐसे दिन को बहुत निकट ला सकती हैं। परन्तु व्यापारिक और राजनैतिक अधिकार प्राप्त करने के लिए उनमें आपस में ही इतनी अधिक प्रतिद्वन्द्विता है कि एशिया की जातियों की उन्नति में सहायता देने के लिए वे किसी एक मार्ग पर साथ साथ चल ही नहीं सकती हैं। उनमें स्वयं आपस में मेल होना अभी बड़ा असम्भव सा दिख रहा है। उनमें से हर एक का सिद्धान्त यही है कि क्या मिले जिसे हम हड़प कर लें और दूसरे न पावें। फ़्रांस, जर्मनी, इँग्लैंड, अमरीका आदि जितने राष्ट्र हैं सबके दिलों में यही साम्राज्य-विस्तार का भाव काम कर रहा है। और इधर एशिया में अभी आत्म-रक्षा की भी शक्ति नहीं उत्पन्न हुई है। यही कारण है कि एशिया की जातियाँ अभी सिर उठाने में भी समर्थ नहीं हैं।

'परन्तु योरप की जातियों में जो पारस्परिक मेल नहीं है वह एशिया के हक़ में एक प्रकार से अच्छा ही है। यदि उनके कार्य्यों की दिशा एक होती तो उससे एशिया की वर्तमान जागृति को बिना भारी क्षति पहुँचे न रहती। ईरान का हाल का दुःखद इतिहास इसका एक उदाहरण है। रूस और ग्रेटब्रिटेन का स्वार्थ एक हो जाने के कारण ईरान की सरकार को पंगु हो जाना पड़ा। इसके विपरीत तुर्की की वर्तमान उन्नति इस बात का उदाहरण है कि योरप के राज्यों के स्वार्थों में भेद पड़ने

पर एशिया के राष्ट्र कितनी शीघ्रतापूर्वक उन्नति कर सकते हैं।

'अब रही लीग आफ़ नेशन्स की बात। सो इससे यह आशा रखना कि एशिया की राजनैतिक उन्नति से इससे सहायता पहुँचेगी, अभी व्यर्थ है। परन्तु इससे सामाजिक उन्नति में मदद मिल सकती है। और आगे चलकर यह भी हो सकता है कि लीग आफ़ नेशन्स प्रयत्न करके योरप की बड़ी बड़ी शक्तियों के बीच का भेद-भाव मिटा दे और एशिया के प्रति उनके व्यवहार का धीरे-धीरे एक ऐसा मार्ग निश्चित कर ले जो एशियावालों के भी अनुकूल हो।'

पर अभी तो ये बातें बहुत दूर जान पड़ती हैं।

## २—१९३० का नवाँ आर्डिनेन्स

वायसराय महोदय को सत्याग्रह-आन्दोलन का उन्मूलन करने के लिए एक और आर्डिनेन्स निकालना पड़ा है। अब तक इस तरह के ८ आर्डिनेन्स पिछले छः महीने के भीतर निकल चुके हैं। यह अपने ढङ्ग का नवाँ है। इस नये आर्डिनेन्स के जारी करने का कारण बतलाते हुए वायसराय महोदय ने लिखा है—

'भद्रअवज्ञा का आन्दोलन क़रीब क़रीब छः महीने से चल रहा है। इस समय में इसके प्रवर्तकों और समर्थकों ने क़ानून-द्वारा स्थापित सरकार के उलटने तथा सरकार की अवज्ञा करने के भाव के प्रचलित करने में अपने भरसक पूरा प्रयत्न किया है।

'उन्होंने अज्ञ और भोले-भाले लोगों को क़ानून भङ्ग करने को भड़काया है तथा वैसा करने को अपना सङ्गठन किया है और सरकारी कर न देने को उन्हें उत्साहित किया है। सेना और पुलिस को भी सरकार के भक्त न होने का प्रयत्न किया है। और जो अनेक दंगे हुए हैं, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रीति से वे ही उनके कारण रहे हैं। इसके नेताओं ने विधानात्मक प्रतिनिधित्व के मार्ग का जानबूझ कर तिरस्कार किया है और अपनी शक्ति भर अपनी अराजकता के कार्य करते रहने का निश्चय प्रकट किया है।'

इस तरह वायसराय महोदय ने अपने कार्य की न्यायता सिद्ध करते हुए कहा है कि 'सन् १९०८ का क्रिमनल ला अमेंडमेंट एक्ट में इस बात की त्रुटि है कि उसके बल से उन इमारतों तथा दूसरे माल पर अधिकार नहीं किया जा सकता जिनका वह संस्था उपयोग करती है जो ग़ैर क़ानूनी क़रार दी जाती हैं। देश के कुछ भागों में विशेष कर गुजरात के ज़िलों में ऐसी संस्थाओं के क़स्बों और गाँवों में सदर क़ायम हैं, जहाँ से भद्र-अवज्ञा के आन्दोलन के समर्थक अपनी घृणित कार्रवाई जारी किये हैं और अज्ञ लोगों पर क़ानून की अवहेलना करने तथा सरकारी कर न देने का दबाव डाल रहे हैं।'

वायसराय महोदय ने इस प्रकार आवश्यकता बतलाते हुए अपना यह नया आर्डिनेन्स जारी किया है। इसके अनुसार प्रान्तीय सरकारों को इस बात का विशेष अधिकार दिया गया है कि इसके जारी होने पर वे उन संस्थाओं के स्थानों तथा उसकी स्थिर सम्पत्ति को ज़ब्त कर लें जो ग़ैर क़ानूनी घोषित की गई हैं या की जायँ। इस नये आर्डिनेन्स की चोट से निर्दोष प्रजाजनों की रक्षा की पूरी व्यवस्था करते हुए अन्त में वायसराय महोदय ने साधारण लोगों से भद्रअवज्ञा-आन्दोलन का उन्मूलन करने के लिए अपील की है। निर्दोष प्रजाजनों पर इसका वार न हो जाय, इसका वायसराय महोदय ने पूरा ध्यान रक्खा है और उनकी बचत की पूरी सुविधा रक्खी गई है।

## ३—राष्ट्र-सङ्घ का अधिवेशन

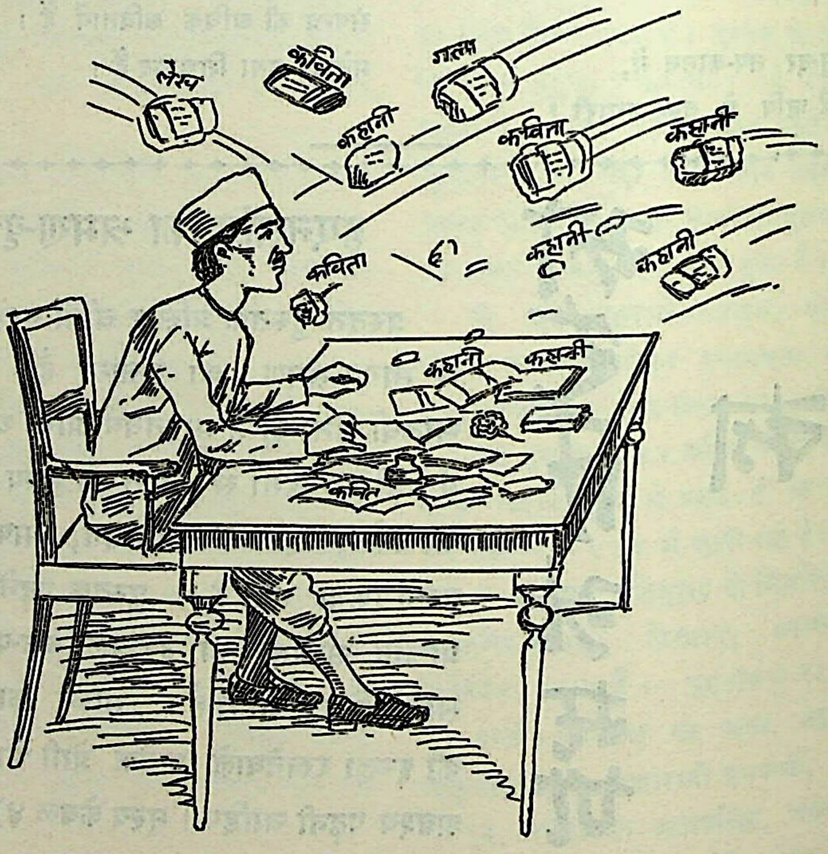
राष्ट्र-सङ्घ के इस वर्ष के अधिवेशन से राजनीतिज्ञों को बड़ी आशायें थीं। वे समझते थे कि इस वर्ष के अधिवेशन में संसार में सर्वकालीन शान्ति की व्यवस्था पर मुहर लग जायगी। परन्तु ऐसा नहीं हो सका, उलटा जो कुछ शान्ति इस समय है उसको भी ख़तरा जान पड़ता है। राष्ट्र-सङ्घ का नेतृत्व फ़्रांस और ग्रेटब्रिटेन के ही हाथ में रहा है।

परन्तु मिस्टर स्टेड का कहना है कि इस बार के अधिवेशन में उनका नेतृत्व नहीं था। फ़्रांस के

# हास्य और विनोद

( १ )

## सम्पादक की विपत्ति




[ हिन्दी के सम्पादक कवियों और कहानी-लेखकों की भरमार से हैरान हैं। बेचारों का अन्य आवश्यक विषयों के लेख लिखते लिखते कचूमर निकला जा रहा है। ]

नवयुग का दृश्य



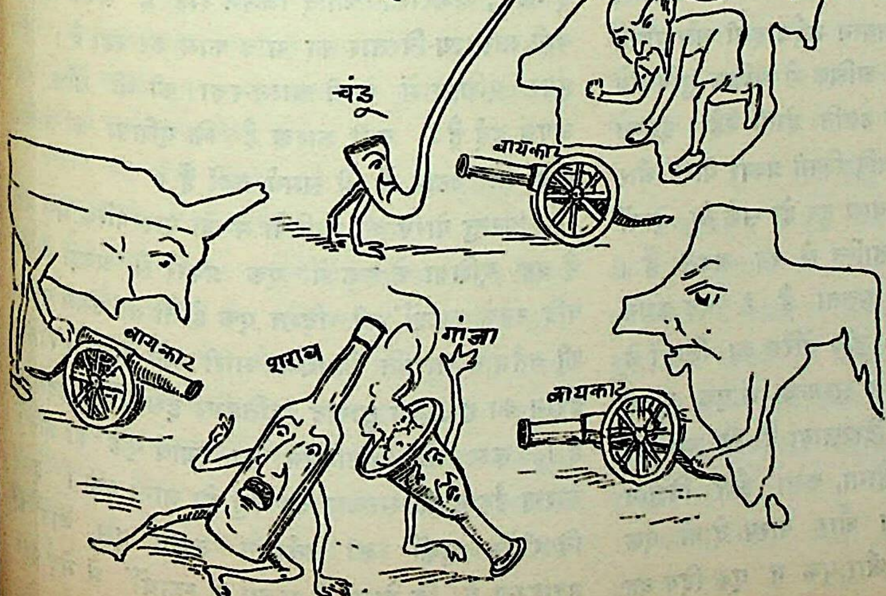
वधू

( २ )

बहू—मैं समाज-मन्दिर जा रही हूँ। आठ बजे लौटूँगी।

सास—तो क्या बहुएँ अब इस तरह बाहर निकला करेंगी?

नशे की हलचल




( ३ )

मादक द्रव्यों के वर्जन का भिन्न भिन्न देशों में कैसा आयोजन हो रहा है!

# अपनी बात

## १—योरप और एशिया

योरप और एशिया में ख़ासा संघर्ष चल रहा है। योरप की शक्तिशाली जातियाँ एशिया पर अपना व्यापारिक और राजनैतिक प्रभुत्व जमाने के प्रयत्न में लगी हैं और एशिया की जातियाँ जिनमें स्वाधीनता का भाव जाग्रत हो गया है, उनके चंगुल से निकल भागने का। इस प्रकार दोनों के बीच में वैमनस्य और पारस्परिक अविश्वास की वृद्धि हो रही है।

इसमें सन्देह नहीं कि अपने को सभ्य कहनेवाली योरप की जातियाँ अपने स्वार्थ-साधन के आगे किसी प्रकार के ऊँचे आदर्श या नैतिक कर्तव्य की परवा नहीं करतीं। एशिया में उनका पदार्पण ही स्व-स्वार्थ-साधन पर अवलम्बित है। उनका सारा प्रयत्न सदैव इसी ओर रहता है कि उन्हें व्यापार करने की अधिक से अधिक सुविधायें प्राप्त हों जिससे उनकी आर्थिक उन्नति होती रहे। इसका परिणाम अच्छा नहीं हुआ। यदि किसी प्रकार योरप और एशिया की जातियों का अविश्वास दूर हो सके तो दोनों महाद्वीपों के लोग सुख और शान्ति से रह सकते हैं। परन्तु क्या यह सम्भव हो सकता है? यह कथन है अध्यापक-प्रवर मिस्टर एन० डी० हेरिस का जिन्होंने हाल ही में योरप और एशिया के सम्बन्ध में एक पुस्तक लिखी है। उसमें उन्होंने यह दिखलाया है कि ज्यों ज्यों आधुनिक सभ्यता का विस्तार होगा, कला और विज्ञान की उन्नति होगी, त्यों त्यों एशिया और योरप दोनों एक दूसरे के निकट आते जायँगे, और एक न एक दिन वह समय अवश्य आयेगा जब जातीय द्वेषभाव और व्यापारिक तथा राजनैतिक प्रतिद्वन्द्विता का संसार में कहीं पता न चलेगा।

हेरिस साहब लिखते हैं—

यदि योरप की जातियाँ, जो सब प्रकार के कार्यों के लिए साधन-सम्पन्न हैं, चाहें तो ऐसे दिन को बहुत निकट ला सकती हैं। परन्तु व्यापारिक और राजनैतिक अधिकार प्राप्त करने के लिए उनमें आपस में ही इतनी अधिक प्रतिद्वन्द्विता है कि एशिया की जातियों की उन्नति में सहायता देने के लिए वे किसी एक मार्ग पर साथ साथ चल ही नहीं सकती हैं। उनमें स्वयं आपस में मेल होना अभी बड़ा असम्भव सा दिख रहा है। उनमें से हर एक का सिद्धान्त यही है कि क्या मिले जिसे हम हड़प कर लें और दूसरे न पावें। फ्रांस, जर्मनी, इँग्लैंड, अमरीका आदि जितने राष्ट्र हैं सबके दिलों में यही साम्राज्य-विस्तार का भाव काम कर रहा है। और इधर एशिया में अभी आत्म-रक्षा की भी शक्ति नहीं उत्पन्न हुई है। यही कारण है कि एशिया की जातियाँ अभी सिर उठाने में भी समर्थ नहीं हैं।

'परन्तु योरप की जातियों में जो पारस्परिक मेल नहीं है वह एशिया के हक़ में एक प्रकार से अच्छा ही है। यदि उनके कार्य्यों की दिशा एक होती तो उससे एशिया की वर्तमान जागृति को बिना भारी क्षति पहुँचे न रहती। ईरान का हाल का दुःखद इतिहास इसका एक उदाहरण है। रूस और ग्रेटब्रिटेन का स्वार्थ एक हो जाने के कारण ईरान की सरकार को पंगु हो जाना पड़ा। इसके विपरीति तुर्की की वर्तमान उन्नति इस बात का उदाहरण है कि योरप के राज्यों के स्वार्थों में भेद पड़ने

पर एशिया के राष्ट्र कितनी शीघ्रतापूर्वक उन्नति कर सकते हैं।

'अब रही लीग आफ़ नेशन्स की बात। सो इससे यह आशा रखना कि एशिया की राजनैतिक उन्नति से इससे सहायता पहुँचेगी, अभी व्यर्थ है। परन्तु इससे सामाजिक उन्नति में मदद मिल सकती है। और आगे चलकर यह भी हो सकता है कि लीग आफ़ नेशन्स प्रयत्न करके योरप की बड़ी बड़ी शक्तियों के बीच का भेद-भाव मिटा दे और एशिया के प्रति उनके व्यवहार का धीरे-धीरे एक ऐसा मार्ग निश्चित कर ले जो एशियावालों के भी अनुकूल हो।'

पर अभी तो ये बातें बहुत दूर जान पड़ती हैं।

## २—१९३० का नवाँ आर्डिनेन्स

वायसराय महोदय को सत्याग्रह-आन्दोलन का उन्मूलन करने के लिए एक और आर्डिनेन्स निकालना पड़ा है। अब तक इस तरह के ८ आर्डिनेन्स पिछले छः महीने के भीतर निकल चुके हैं। यह अपने ढङ्ग का नवाँ है। इस नये आर्डिनेन्स के जारी करने का कारण बतलाते हुए वायसराय महोदय ने लिखा है—

'भद्रअवज्ञा का आन्दोलन क़रीब क़रीब छः महीने से चल रहा है। इस समय में इसके प्रवर्तकों और समर्थकों ने क़ानून-द्वारा स्थापित सरकार के उलटने तथा सरकार की अवज्ञा करने के भाव के प्रचलित करने में अपने भरसक पूरा प्रयत्न किया है।

'उन्होंने अज्ञ और भोले-भाले लोगों को क़ानून भङ्ग करने को भड़काया है तथा वैसा करने को अपना सङ्गठन किया है और सरकारी कर न देने को उन्हें उत्साहित किया है। सेना और पुलिस को भी सरकार के भक्त न होने का प्रयत्न किया है। और जो अनेक दंगे हुए हैं, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रीति से वे ही उनके कारण रहे हैं। इसके नेताओं ने विधानात्मक प्रतिनिधित्व के मार्ग का जानबूझ कर तिरस्कार किया है और अपनी शक्ति भर अपनी अराजकता के कार्य करते रहने का निश्चय प्रकट किया है।'

इस तरह वायसराय महोदय ने अपने कार्य की न्यायता सिद्ध करते हुए कहा है कि 'सन् १९०८ का क्रिमनल ला अमेंडमेंट एक्ट में इस बात की त्रुटि है कि उसके बल से उन इमारतों तथा दूसरे माल पर अधिकार नहीं किया जा सकता जिनका वह संस्था उपयोग करती है जो ग़ैर क़ानूनी क़रार दी जाती हैं। देश के कुछ भागों में विशेष कर गुजरात के ज़िलों में ऐसी संस्थाओं के क़स्बों और गाँवों में सदर क़ायम हैं, जहाँ से भद्र-अवज्ञा के आन्दोलन के समर्थक अपनी घृणित कार्रवाई जारी किये हैं और अज्ञ लोगों पर क़ानून की अवहेलना करने तथा सरकारी कर न देने का दबाव डाल रहे हैं।'

वायसराय महोदय ने इस प्रकार आवश्यकता बतलाते हुए अपना यह नया आर्डिनेन्स जारी किया है। इसके अनुसार प्रान्तीय सरकारों को इस बात का विशेष अधिकार दिया गया है कि इसके जारी होने पर वे उन संस्थाओं के स्थानों तथा उसकी स्थविर सम्पत्ति को ज़ब्त कर लें जो ग़ैर क़ानूनी घोषित की गई हैं या की जायँ। इस नये आर्डिनेन्स की चोट से निर्दोष प्रजा-जनों की रक्षा की पूरी व्यवस्था करते हुए अन्त में वायसराय महोदय ने साधारण लोगों से भद्रअवज्ञा-आन्दोलन का उन्मूलन करने के लिए अपील की है। निर्दोष प्रजाजनों पर इसका वार न हो जाय, इसका वायसराय महोदय ने पूरा ध्यान रक्खा है और उनकी बचत की पूरी सुविधा रक्खी गई है।

## ३—राष्ट्र-सङ्घ का अधिवेशन

राष्ट्र-सङ्घ के इस वर्ष के अधिवेशन से राजनीतिज्ञों को बड़ी आशायें थीं। वे समझते थे कि इस वर्ष के अधिवेशन में संसार में सर्वकालीन शान्ति की व्यवस्था पर मुहर लग जायगी। परन्तु ऐसा नहीं हो सका, उल्टा जो कुछ शान्ति इस समय है उसको भी ख़तरा जान पड़ता है। राष्ट्र-सङ्घ का नेतृत्व फ़्रांस और ग्रेटब्रिटेन के ही हाथ में रहा है।

परन्तु मिस्टर स्टेड का कहना है कि इस बार के अधिवेशन में उनका नेतृत्व नहीं था। फ़्रांस के

वैदेशिक मन्त्री ब्रियाँद साहब चूक गये। योरपीय राज्यों के आर्थिक सङ्घटनवाली उनकी योजना कारगर न हो सकी। उधर अँगरेज़ों के प्रधान प्रतिनिधि हेंडर्सन साहब ने यह बात साफ़ कर दी कि ग्रेटब्रिटेन युद्ध-नीति के त्याग के किसी समझौते में तब तक शामिल न होगा जब तक युद्धोपकरणों के घटाने की सच्ची व्यवस्था नहीं होती है। उधर फ़्रांस और उसके मित्र अपना सैन्य-बल तब तक कम करने को तैयार नहीं होते जब तक उन्हें इस बात का वचन नहीं मिलता है कि शत्रु-द्वारा आक्रान्त होने पर उसकी और उसके मित्रों की रक्षा की जायगी। फ़्रांस के पास बड़ी भारी स्थल-सेना है। वह अपना नौबल बढ़ा रहा है। उसके साथी यूगो-स्लेविया, ज़ेचो-स्लोवेकिया, रूमानिया और पोलेंड भी युद्धोपकरणों से भले प्रकार सज्जित हैं। इधर इटली के पास दोहरी सेना है। राज्य की मुख्य सेना के सिवा मुसोलिनी के दल का सैनिक सङ्गठन भी है। जर्मनी भी छिपे छिपे युद्धोपकरणों का सङ्ग्रह कर रहा है। उसकी सेना के प्रमुख व्यक्तियों की रूस की लाल सेना से बड़ी घनिष्ठता है। ये लोग उसे तैयार होने में पूरी मदद कर रहे हैं। और बोल्शेविक लोग अपनी इस सेना का उपयोग दूसरे देशों में क्रान्ति कराने में करेंगे। जर्मनी की सरकार यह सब जानती है। इसके सिवा हाल में वहाँ हिटलर के दल का बल बढ़ा है। ये हज़रत हरजाना तो देना ही नहीं चाहते, साथ ही पोलेंड से अपने देश का वह अंश भी बलपूर्वक ले लेना चाहते हैं जो युद्ध की समाप्ति पर पोलेंड को दे दिया गया था। हाल के निर्वाचन में इस दल का बल बढ़ जाने से जर्मनी के वैदेशिक मन्त्री ने राष्ट्र-सङ्घ के अधिवेशन में वैसा सहयोग का भाव भी नहीं प्रकट किया, उलटा इस बात की शिकायत की कि भिन्न-भिन्न राष्ट्र अपने युद्धोपकरण कम नहीं कर रहे हैं और अल्प मतवालों के साथ न्याय नहीं हो रहा है। उन्होंने इस अवसर पर राइनलेंड ख़ाली कर देने के सम्बन्ध में ज़रा भी कृतज्ञता नहीं प्रकट की। जर्मनी का यह रुख़ देखकर ग्रेटब्रिटेन के हेंडर्सन साहब ने स्पष्ट कह दिया कि ब्रिटेन ब्रियाँद साहब की नीति का एवं कार्य-पद्धति का समर्थन करता है और मतभेद होते हुए भी दोनों का लक्ष्य एक है। उन्होंने कहा कि ब्रियाँद साहब ने अपने वचन के अनुसार राइनलेंड ख़ाली कर दिया है, इसके लिए वे सर्वथा प्रशंसा के पात्र हैं। परन्तु इँग्लेंड और फ़्रांस के इस रुख़ का प्रभाव जर्मनों पर कैसा पड़ा, यह नहीं कहा जा सकता। ऐसी अवस्था में राष्ट्रसङ्घ इन जटिल समस्याओं को कैसे हल कर सकता है। उसके सूत्रधारों ने उसका सारा काम छः कमिटियों के सिपुर्द करके अपने घरों की राह ली।

फ़्रांस जर्मनी, इटली और रूस से सजग है। फ़्रांस के साथी पोलेंड रूस से और यूगोस्लेविया इटली से डरते हैं। अतएव फ़्रांस का अपने इन भयत्रस्त साथियों की ओर ध्यान देना सर्वथा स्वाभाविक है। इधर फ़्रांस से इटली का भी मनमुटाव है। अँगरेज़ भी कभी जर्मनी की ओर झुक जाते हैं। योरप का ऐसा रङ्ग-ढङ्ग होने से बेचारा राष्ट्र-सङ्घ क्या कर सकता है। इसी से आज ग्यारह वर्ष बाद भी शान्ति के सम्बन्ध में उसके सारे प्रयत्न व्यर्थ हुए हैं। इसके विपरीत योरप में महायुद्ध छिड़ जाने की सम्भावना दिन दिन बढ़ती जा रही है। तो भी फ़्रांस के वैदेशिक सचिव ब्रियाँद साहब का दावा है कि जब तक मैं अपने पद पर विराजमान हूँ तब तक योरप में युद्ध नहीं छिड़ सकता। आपको इँग्लेंड की सहायता का बड़ा भरोसा है। परन्तु इसकी कोई गारंटी नहीं है कि आप अपने पद पर आरूढ़ ही रहेंगे। चाहे जो हो। इस बार भी राष्ट्र-सङ्घ विश्वव्यापी शान्ति की सुरक्षा के सम्बन्ध में कोई ठोस कार्य नहीं कर सका है, जो वास्तव में बड़ी चिन्ता की बात है।

## ४—फ़िलीपाइन द्वीप-समूहों का भाग्योदय

फ़िलीपाइन-द्वीप-समूह सन् १८९८ से अमरीका के संयुक्त-राज्यों के अधीन हैं। पिछले तीस वर्ष से वहाँ के निवासियों को नागरिकता के अधिकार प्रदान करने के वचन बराबर दिये गये, परन्तु वे आज तक पूरे नहीं

किये गये। अन्त में वहाँ के निवासियों ने इतना विकट आन्दोलन किया कि आज वहाँ के निवासी एक-स्वर से स्वाधीनता की माँग का समर्थन कर रहे हैं। कुछ ही महीने हुए, मनीला नगर में उन्होंने अपनी राष्ट्रीय महा-सभा की थी, जिसमें ३ हज़ार प्रतिनिधि एकत्र हुए थे। इस सभा में वहाँ के मुसलमान निवासियों ने भी भाग लिया था। और स्वाधीनता का प्रस्ताव सर्व-सम्मति से स्वीकृत हुआ था। इस समय उन द्वीपों में मुश्किल से कोई व्यक्ति मिलेगा जो स्वाधीनता की माँग का विरोधी हो। उन द्वीपों के एक करोड़ तीस लाख निवासी बिना मतभेद के स्वाधीनता की माँग कर रहे हैं। उनके इस आग्रह का ही फल है कि संयुक्त-राज्य उन द्वीपों की इस माँग का समाधान करने को बाध्य हुए हैं। इसी से वहाँ की कांग्रेस में इन द्वीपों के सम्बन्ध में अब तक छः बिल पेश हो चुके हैं, जिनमें सीनेट की वैदेशिक मामलों की कमिटी ने सिनेटर हेरी हवास के बिल को स्वीकार किया है। इस बिल में उन द्वीपों को पाँच वर्ष के बाद स्वाधीन कर देने की व्यवस्था की गई है। इन पाँच वर्षों में संयुक्त राज्य उन द्वीपों की सरकार को शासन-सम्बन्धी पूरे अधिकार देकर देखेंगे कि द्वीपवासी अपना शासन किस तरह करते हैं। पाँच वर्ष बाद इस बात का बहुमत से निश्चय किया जायगा कि द्वीपवासी संयुक्त-राज्यों की अधीनता में रहना चाहते हैं या नहीं। यदि मत संयुक्त-राज्य के पक्ष में न होगा तो सन्धिपत्र-द्वारा अपने स्वत्वों की रक्षा करके तथा अपने जहाज़ों के वहाँ ठहरने आदि की पूरी व्यवस्था करके संयुक्त-राज्य उन द्वीपों के शासन-सम्बन्धी उत्तरदायित्व को वहाँ के अधि-वासियों को दे देगा।

इस प्रकार वर्षों के सतत प्रयत्न के बाद उन द्वीपों के अधिवासियों की इच्छा-पूर्ति के लक्षण दिखाई देते हैं। इसके लिए वहाँ के आन्दोलनकारियों की जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है। यह उन्हीं का प्रयत्न है कि इस समय वहाँ का सारा प्रेस, सभी श्रेणियों के अधिवासी, शिक्षक, व्यापारी, कालेजों और स्कूलों के विद्यार्थी, व्यापारी सङ्घ, राष्ट्रीय सभायें, सभी राजनैतिक दलों के प्रतिनिधि, यहाँ तक कि सरकारी नौकर भी स्वधीनता की माँग में एक साथ ह। तब संयुक्त-राज्य ऐसे आग्रह की कैसे उपेक्षा कर सकता है? अपने उद्देश-सिद्धि के लिए द्वीप-निवासी बधाई के पात्र हैं।

## ५—ग़ाज़ीमुस्तफ़ा कमालपाशा

तुर्की प्रजातन्त्र की पार्लियामेंट में अभी तक विरोधी-दल नहीं था। वह एक ही दल की सभा रही है और ग़ाज़ी मुस्तफ़ा कमाल पाशा तथा उनके प्रधान मन्त्री अपनी इच्छा के अनुसार राज्य-शासन करते थे। परन्तु अब वहाँ एक विरोधी दल का जन्म हुआ है। इसका नेतृत्व ग्रहण किया है फ़ेथी बे ने। आप अभी तक फ़्रांस में तुर्की के राजदूत थे। कहा जाता है कि वहाँ की राज-नीति में यह परिवर्तन ग़ाज़ी मुस्तफ़ा कमाल पाशा की प्रेरणा से हुआ है। ग़ाज़ी के इस महत्त्वपूर्ण कार्य से प्रसन्न होकर एक अँगरेज़-लेखक ने आपकी बड़ी प्रशंसा की है। वे लिखते हैं—

'निस्सदेह ग़ाज़ी मुस्तफ़ा कमाल पाशा संसार में सबसे अधिक विचित्र तानाशाह हैं। जब से उन्होंने मित्र-शक्तियों को उनकी पूरी जीत के समय चुनौती दी, सेवर्स के सन्धि-पत्र को फाड़ फेंका, यूनानी सेनाओं को पराजित किया और नव्य तुर्की की वास्तविक स्वाधीनता का दावा किया तब से वही उसके अतर्क्य तानाशाह हैं।

'उन्होंने 'ख़िलाफ़त' तोड़ दी; फ़ेज़ और बुर्का उठा दिया; पुरानी वर्णमाला भी उड़ा दी। जो आज्ञा दी वह किया गया।

'अब वे कह रहे हैं कि तुर्की में दो राजनैतिक दल होने चाहिए। सन् १९२७ के गत निर्वाचन के समय एक दल था—लोकप्रिय दल जिसके सभापति ख़ुद ग़ाज़ी हैं। सब स्थान इसी दल के प्रतिनिधियों को मिले। केवल एक विरोधी उम्मेदवार खड़ा हुआ था। उसे एक वोट मिला था और वह भी उसी का।

'परन्तु अब ग़ाज़ी ने निश्चय किया है कि एक विरोधी-दल होना चाहिए। इस दल का नेतृत्व करने के लिए फ़ेथी बे पेरिस से बुलाये गये हैं। पार्लियामेंट के १५ प्रति-निधि इस दल में शामिल हुए हैं।

'बुरी आर्थिक अवस्था के कारण जैसे सब जगह अशान्ति है, वैसे ही तुर्की में भी है। अतएव बचत का कोई उपाय होना चाहिए। विरोध की आवाज़ उठती रहनी चाहिए।

'परन्तु नीति में परिवर्तन नहीं होगा। ग़ाज़ी का आदेश क़ानून समझा जायगा।

'व्यक्तिगत रूप से वे एक अद्भुत मनुष्य हैं, शरीर लोहे का बना हुआ है। जिस प्रकार का जीवन वे व्यतीत करते हैं उससे तो उन्हें कहीं पहले इस लोक से विदा हो जाना चाहिए था। वे सारा दिन काम कर सकते हैं, सारी रात शराब पी सकते हैं और बिना सोये कई दिनों तक लगातार काम कर सकते हैं।

'उनको एक दिल्लगी बहुत पसन्द है। अधिक लोगों को बुला कर पार्टी करते हैं। उसमें वे प्रत्येक से अपनी बारी में एक दूसरे के स्वास्थ्य का प्याला पिलाते हैं। यहाँ तक कि सब मेहमान बदमस्त हो जाते हैं। परन्तु उनका मस्तिष्क उस अवस्था में भी अजेय रहता है। उनकी दूसरी मौज की बातों का न कहना ही अच्छा है।

'एक दिन यह महान् पुरुष परिश्रम से क्लान्त होकर एकाएक बैठ जायगा। उस दिन तुर्की फिर संसार के लिए एक प्रश्न हो जायगा।'

सन्तोष की बात है कि ग़ाज़ी से लेखक महोदय की यह बात छिपी नहीं है। तुर्की में दो दलों की सृष्टि का मूल-कारण यही भविष्य अवस्था बतलाई जाती है। ग़ाज़ी ने जिस स्वाधीन तुर्की का निर्माण किया है उसकी भविष्य की चिन्ता से ही वे उसे राजनैतिक दृढ़ता प्रदान करने का भी प्रयत्न कर रहे हैं।

## ६—बम्बई से लन्दन जाने का एक नया मार्ग

पिछले महायुद्ध के फल-स्वरूप जहाँ और तरह तरह की बातें हुईं, वहाँ सीधा लन्दन जाने के लिए भारत से एक और नया स्थल-मार्ग खुल गया है। तुर्क-साम्राज्य के भङ्ग हो जाने से ही इस नये मार्ग के खुलने की सम्भावना हुई है। ईराक़ और सीरिया के इँग्लैंड और फ्रांस के सिपुर्द हो जाने से आवागमन की यह नई सुविधा अस्तित्व में आई है। बम्बई या कराँची से बसरा तक जहाज़ से जाना पड़ता है। बसरा से बग़दाद तक रेलगाड़ी जाती है। बग़दाद से मोसल होकर आगे के मार्ग का प्रबन्ध ईराक की सरकार ने किया है। इसके लिए उसने इन्टरनेशनल वेगन्स लिट्स कम्पनी और टामस कुक एंडसन्स से सहयोग किया है। फलतः बग़दाद से लन्दन को हफ़्ते में दो बार डाक जाने लगी है। बग़दाद से फिरकूक तक रेलगाड़ी गई है। फिरकूक से सीमान्त पर निसीबिन नामक स्थान तक मोटरगाड़ी की डाक का प्रबन्ध किया गया है। निसिबन से अलेपो और कान्स्टेंटिनोपल होकर सोफ़िया, बेलग्रेड, ट्रीस्ट, मिलन, लासेन, पेरिस और कैले तक रेल-गाड़ी का सफ़र है। इस मार्ग में केवल कान्स्टेंटिनोपल में गाड़ी बदलनी पड़ती है। क्योंकि वहाँ बासफ़ोरस के जलडमरूमध्य को स्टीमरद्वारा पार करके फिर गाड़ी पकड़नी होती है।

बग़दाद से लन्दन जाने का यह अच्छा मार्ग खुल गया है। इससे बग़दाद से लन्दन जाने में सिर्फ़ आठ दिन लगते हैं। भारतवर्ष के यात्रियों को यह मार्ग विशेष सुविधाजनक प्रतीत होगा। क्योंकि बम्बई से कराची होते हुए बी० आई० एस० एन० कम्पनी का जहाज़ प्रतिसप्ताह बसरा जाता है और वह बृहस्पतिवार को ठीक सातवें दिन बसरा पहुँचता है। कराची में यह जहाज़ रविवार को प्रातःकाल पहुँचता है और उसी दिन दोपहर से कुछ पहले फिर रवाना हो जाता है। बसरा में जहाज़ बृहस्पतिवार को दोपदर के क़रीब पहुँचता है। वहाँ से बग़दाद-मेल साढ़े नौ बजे रात को छूटता है, आराम आदि करने के लिए यथेष्ट समय मिल जाता है। बसरा से बग़दाद जाने में अर्थात् ३४५ मील का सफ़र तय करने में सिर्फ़ २१ घंटे लगते हैं।

योरप जानेवाले भारतीयों के लिए यह स्थलमार्ग अधिक सुविधाजनक प्रतीत होगा। और भारतीय मुसलमान यात्रियों के लिए तो और भी अधिक रुचिकर होगा क्योंकि इसके द्वारा वे प्राचीन मुस्लिम साम्राज्य की भग्न स्मृतियों और अपने तीर्थों को आसानी से देखते हुए जा सकेंगे।

## ७—वायुयान और ब्रिटेन

आर १०१ नाम के वायुयान की दुर्घटना से ग्रेट-ब्रिटेन की बहुत भारी क्षति हुई है। वहाँ के लोगों ने इस हानि को बड़े दुःख के साथ सहन किया है। इस यान पर वे दो महापुरुष भी सवार थे जिनकी बदौलत ब्रिटेन में वायुयान-कला में इतनी उन्नति हुई है। इस दुर्घटना का ऐसा प्रभाव लोगों पर पड़ा है कि अब इस श्रेणी के वायुयानों से वहाँ के अनेक लोगों को अरुचि हो गई है।

आश्चर्य की बात है कि आर श्रेणी के प्रायः सभी यान असफल रहे। आर ३३ तोड़ डाला गया, आर ३४ इतना टूट-फूट गया कि मरम्मत ही नहीं हो सकती, आर ३६ तूफ़ान में बेकार हो गया, आर ३७ आज तक पूरा न बन पाया, आर ३८ हवा में टूट-फूट गया, आर ३९ अपूर्ण ही रहा, आर ४० का प्रस्ताव भर हुआ, आर ८० फट गया और १०१ तो बिलकुल ही असफल रहा।

तो भी ब्रिटेन के आशावादी इस दुर्घटना से निराश नहीं हुए हैं। उनका विश्वास है कि अन्त में उनकी जीत होगी और वे एक दिन ऐसा यान बनाने में सफल होंगे जिसे न तूफ़ान नष्ट-भ्रष्ट कर सकेंगे और न आर १०१ की तरह उसमें आग ही लग सकेगी। निस्सन्देह वर्तमान मज़दूरदल की सरकार के समय यान-निर्माण एक प्रकार से स्थगित रहेगा। परन्तु इससे ब्रिटेन वायुयानों की उन्नति करने से विमुख नहीं होगा।

## ८—मनुष्य-गणना के सम्बन्ध में

अगली मनुष्य-गणना के दिन समीप आ गये हैं। इस बार की गणना में कई एक नई बातों का समावेश किया गया है। एक अलग फ़ार्म होगा जिसमें उन शिक्षितों की गणना की जायगी जो बेकार हैं। यह जाँच करने के लिए कि बंगालियों के सम्पर्क में रहने से उनकी संस्कृति का मूल-निवासियों पर कैसा प्रभाव पड़ा, उपयुक्त सामग्री एकत्र की जायगी। बंगाली शिक्षित उन सभी भाषाओं को लिखायेंगे जो वे जानते होंगे। उन लोगों की संख्या जानने का प्रयत्न किया जायगा जिन्होंने पाँचवें दर्जे तक ही शिक्षा पाई है। इन गणनाओं का उपयोग भविष्य के परिवर्तित मताधिकार में किया जायगा।

मनुष्य-गणना के लिए सारा भारत कतिपय विभागों में विभक्त कर दिया गया है। इन विभागों में से सबसे छोटा विभाग यहाँ तक बनाया गया है कि गणक उसका परिभ्रमण कोई पाँच घण्टे के भीतर मज़े में कर सके। गणक लोगों ने अपना काम प्रारम्भ कर दिया है और मकानों में नंबर लगना शुरू हो गया है। मनुष्य-गणना का सबसे महत्त्व का कार्य यही है। अतएव इस काम में बड़ी सावधानी से काम लिया जाता है। नवम्बर और दिसम्बर के महीनों में मकानों में नम्बर लगाने का ही काम होगा। जनवरी में प्रारम्भिक गणना होगी और २६ फ़रवरी के ७ बजे सन्ध्या-समय से बारह बजे रात तक उस गणना की पड़ताल करके गणना का काम समाप्त होगा।

सन् १९२१ की गणना में उद्योग-धन्धों का विवरण प्राप्त करने का प्रयत्न किया गया था, परन्तु इस बार इस मद में अधिक ब्योरा न लिखा जायगा। केवल एक ऐसा स्तम्भ रक्खा गया है जिसमें सङ्गठित कारबारियों के धन्धे का उल्लेख रहेगा। इस स्तम्भ के रखने से यह पता लगेगा कि समग्र भारत में कितने सङ्गठित कारबार जारी हैं। इस बार की गणना से एक और बात का भी पता लगाया जायगा। वह यह कि भारतीय कहाँ तक एक भाषा से अधिक भाषाओं के उपयोग के अभ्यस्त हैं।

## ९—डाक्टर रवीन्द्रनाथ ठाकुर और रूस

रूस के बोल्शेविक पिछले दस वर्ष से अपने देश में एक अभिनव परीक्षण कर रहे हैं। राजवंश का तथा उसके भक्त रईसों एवं महाजनों का उन्मूलन करके उन्होंने अपने बाहुबल से सैनिकों और कृषकों का राज्य क़ायम किया है। परन्तु संसार के शक्तिशाली राष्ट्र रूस की इस क्रान्ति के विरोधी हैं और उसके विरुद्ध तथा समर्थन में पाश्चात्य देशों के समाचार-पत्रों में ख़ूब लिखा-पढ़ी होती रहती है। यही नहीं, बड़े बड़े विचारवान लोग तक रूस के इस नव-निर्माण का दर्शन करने प्रायः

आते-जाते रहते हैं। उनमें से लौट कर कितने ही रूस की वर्तमान व्यवस्था की निन्दा करते हैं, कितने ही प्रशंसा भी करते हैं। इस बार की अपनी योरप-यात्रा में कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने रूस की भी यात्रा की है। वहाँ के अर्द्ध-सरकारी 'इज़वेस्ता' में आपकी बातचीत छपी है। आपने वहाँ के शिक्षा-प्रचार के सम्बन्ध में कहा है—

कृषक-जनता में शिक्षा का प्रचार करने में आपने जो आश्चर्यजनक प्रबल प्रयत्न किया है, इस कार्य में आपने जो अद्भुत बुद्धिमत्ता दिखाई है, तथा उनके मन, शरीर और अवयवों को सुधारने के जो तरह तरह के मार्ग खोल दिये हैं, इन सबका मेरे चित्त पर बड़ा गहरा असर हुआ है। मैं इस उद्योग का महत्त्व और भी अधिक परिमाण में समझता हूँ, क्योंकि मैं उस देश का रहनेवाला हूँ जहाँ हमारे करोड़ों भाइयों तक विद्या का प्रकाश पहुँच ही नहीं पाता।'

कहा जाता है कि रूस अन्य देशों में भी अपने यहाँ की-सी क्रान्ति कराने का षड्यन्त्र रच रहा है। इस अभियोग में बहुत कुछ सत्यांश है। रविन्द्र बाबू ने कहा है—

'जो महान् कार्य आपने आरम्भ किया है उसके कतिपय विरोधी लक्षण भी मुझे यहाँ दिखाई दिये हैं। कुछ ऐसी मनोवृत्ति पैदा की जा रही है जो आमूल सामाजिक सुधार के आपके आदर्श के विरुद्ध है। मैं पूछता हूँ— क्या आप अपने आदर्श की रक्षा करते हैं जब उन लोगों के प्रति जिन्हें आप अपने शत्रु समझते हैं, अपने छात्रों के मन में क्रोध, वर्गगत घृणा और प्रतिहिंसा के भाव उत्पन्न करते हैं? × × × आपका यत्न तो केवल अपने ही राष्ट्र और अपने ही वर्ग के लिए नहीं है, वरन अपने विचारानुसार मनुष्यमात्र की दशा सुधारने के लिए है। तो क्या मनुष्यों में वे नहीं हैं जो आपके उद्देशों को अच्छा नहीं समझते? धर्म, अर्थ और समाज-जीवन के संबंध में जिनके मत आपके विचारों से नहीं मिलते ऐसे स्वदेशी किसानों को आप जिस तरह धैर्य, प्रेम और सहिष्णुता के साथ धीरे धीरे शिक्षा देकर सुधारने का यत्न कर रहे हैं, न कि क्रोध में आकर उनकी हत्या करते हैं, क्या उसी रीति से आप अन्य राष्ट्रों के साथ भी व्यवहार नहीं कर सकते, जिनके विचार आपके विचारों से नहीं मिलते?'

अन्त में कविवर ने बोल्शेविकों के शासन-प्रबन्ध की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करते हुए उनसे हिंसा का मार्ग छोड़ने को कहा है। इससे मालूम होता है कि जहाँ रूस में किसानों और मज़दूरों की दशा सुधारी जा रही है, वहाँ सैनिक तैयारी भी हो रही है। इसी से आप कहते हैं—

'जो गुलामी के बंधन में बँधे थे उन्हें छुड़ाने के लिए, जो पददलित और पीड़ित किये गये थे उन्हें उठाने के लिए, जो बिलकुल असहाय थे उन्हें दिलासा देने के लिए, तथा उन्हें इस बात की याद दिलाने के लिए कि उनका उद्धार सुशिक्षा से और परस्पर सहयोग से ही हो सकता है, आप जो कुछ प्रयत्न कर रहे हैं उन्हें देखकर मेरा हृदय आपकी प्रशंसा के भाव से भर गया है। मनुष्यत्व के ही हित के लिए मैं आशा करता हूँ कि आप हिंसा का पाप-चक्र न बनावेंगे, क्योंकि यह सदा फिरता रहता है और उससे हिंसा और क्रूरता ही निकलती रहती है। उत्तराधिकार के रूप में ज़ारशाही राज आपके लिए हिंसा छोड़ गया है। इससे बुरा दाय-भाग और कुछ हो ही नहीं सकता। आप उस राज की बहुत सी बुराइयों का नाश कर रहे हैं, फिर इस हिंसा का भी क्यों नहीं अन्त कर डालते?'

## १०—राउंटेबल कान्फ़रेंस का प्रारम्भ

बहुश्रुत राउंटेबल कान्फ़रेंस का कार्यारम्भ बड़ी धूम धाम के साथ सम्राट् जार्ज ने अपने सम्भाषण-द्वारा कर दिया। यह शानदार शाही समारोह हाउस आफ़ लार्ड्स के सभा-भवन में १० नवम्बर को बड़े धूम-धाम से हुआ था। लगभग डेढ़ सदी से भारत में अँगरेज़ी शासन प्रचलित है। इस सुदीर्घ काल में यह पहला ही अवसर है जब भारत के कतिपय देशी नरेशों तथा लोकनेताओं को साम्राज्य सरकार ने आमन्त्रित करके भारत की शासन-व्यवस्था के सम्बन्ध में उनसे परामर्श किया हो। यह बात दोनों देशों

के लिए गौरववर्द्धक है। इस अवसर पर सम्राट् महोदय ने जो भाषण किया वह उनके गौरव-पूर्ण पद के लिए सर्वथा उपयुक्त है। भारतीय सत्याग्रह-आन्दोलन ने जो राजनैतिक विकट अवस्था उत्पन्न कर दी है उसका वारण करने के लिए सम्राट् महोदय का यह सहयोग उनके भारतीय प्रजा के प्रति विशेष अनुराग ही प्रकट करता है। सम्राट् महोदय ने अपने श्रीमुख से कहा है—

"इसके पहले एकाधिक वार सम्राट् के आवाहन से भारत में प्रसिद्ध सभायें हुई हैं, पर भारत के भावी शासन पर विचार करने और उसका मूलाधार मेरी पार्लमेंट को वताने के लिए इसके पहले कभी ब्रिटिश और भारतीय राजनीतिज्ञ तथा देशी राज्यों के शासक एकत्र नहीं हुए थे। क़रीब दस साल हुए; मैंने भारतीय व्यवस्थापक सभा को जो संदेश भेजा था उसमें उसकी स्थापना का महत्त्व भारत की भावी राजनैतिक उन्नति की दृष्टि से वताया था। राष्ट्र के जीवन में दस साल बहुत थोड़ा समय है, पर इस दशक में केवल भारत में ही नहीं, वरंच ब्रिटिश-राष्ट्र-समूह के प्रत्येक भाग में विचारों और राष्ट्रीय भावनाओं को इतना उत्तेजन मिला है कि समय का नाप अब पुराने गज़ से किया ही नहीं जा सकता। अतः यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि केवल दस साल पहले जो काम प्रारम्भ किया गया था उस पर इतने समय में पुनः विचार करना आवश्यक हो गया है।

"इस प्रकार का विचार उस कमीशन ने किया है जो मैंने इसी काम के लिए नियुक्त किया था और उसके परिश्रम का फल आप लोगों के सामने है। इसी महत्त्व के प्रश्न के संबन्ध में अन्य लोगों के विचार भी आप लोगों को मालूम हो चुके हैं। आप जो काम प्रारम्भ करनेवाले हैं उसका महत्त्व समझाने के लिए मेरे कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। मेरे समान आप सब भी अनुभव कर रहे होंगे कि आप लोगों के विचार के फल पर ब्रिटिश-राष्ट्र-समूह का भविष्य निर्भर है। स्वार्थ की इस समानता को देखते हुए मैं इस बात को शुभ लक्षण समझता हूँ कि इस राष्ट्र-समूह की अन्य सरकारों के प्रतिनिधि भी आज यहाँ उपस्थित हैं। आप लोगों के कार्य पर मेरी सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि रहेगी। मैं चिंतित तो ज़रूर रहूँगा पर सुफल की आशा भी वनी रहेगी।

"मेरी भारतीय प्रजा की आर्थिक दशा का मुझे सदा स्मरण रहता है और भावी विचारों के समय सदा आप लोगों को भी उसका स्मरण रहेगा। बहु-संख्यक और अल्पसंख्यक, स्त्री और पुरुष, नगरवासी और किसान, ज़मींदार और रैयत, बलवान् और निर्बल, अमीर और ग़रीब, सव जातियों और धर्मों के लोगों के उचित हक़ों का मुझे सदा स्मरण रहता है और इनका सदा विचार किया करता हूँ।

"इन सब भिन्न भिन्न प्रकार की माँगों का सामान्य कर्तव्य में मिल जाना और उनका स्वीकृत तथा सफल होना ही स्वराज्य का मूल आधार है। मुझे आशा है कि इस आधार पर स्थापित भारत का भावी शासन भारत की उच्चाभिलाषाओं को पूर्ण कर सकेगा।"

सभा के इस शाही कार्यारम्भ के समय लार्ड्स-भवन अनेक गण्य मान्य दर्शकों से पूर्ण था। इस दरबार में सम्राट् के दाहनी ओर प्रधान मन्त्री, देशी नरेश तथा उनके मन्त्रियों के लिए स्थान दिया गया था। सिंहासन के बाईं ओर पार्लियामेंट के १५ प्रतिनिधि बैठाये गये थे और सामने अँगरेज़ी भारत के ५५ प्रतिनिधि बैठे थे।

सम्राट् महोदय के भाषण के बाद प्रधान मन्त्री के सभापतित्व में राउंटेबल कान्फ़रेंस की पहली बैठक हुई। प्रधान मन्त्री, पटियाला-नरेश, बड़ौदा-नरेश, कश्मीर-नरेश, हैदराबाद के प्रतिनिधि मिस्टर हैदरी, शास्त्रीजी, मिस्टर जिन्ना और बर्मी प्रतिनिधि के भाषण हुए। सभी ने भारतीय समस्या के हल करने में पूर्ण सहयोग करने का मनोभाव प्रकट किया। अन्त में १७ नवम्बर के अधिवेशन में सभा का कार्यक्रम उपस्थित करने के लिए एक कमिटी की नियुक्ति कर उसकी सर्वप्रथम बैठक समाप्त हुई। १७ नवम्बर से इस सभा की बैठकें हो रही हैं और सभी सदस्य इस सभा के सफल होने का यत्न कर रहे हैं। भगवान् करे सभा का उद्देश सफल हो।

## ११—हिन्दी और पञ्जाब का डाक-विभाग

मालूम होता है, पंजाब का डाक-विभाग उन चिट्ठियों या पार्सलों के वितरण में विलम्ब करता है जिनका पता हिन्दी में लिखा होता है। इसका अनुभव हमें भी थोड़ा बहुत है। अभी हाल में ही लाहौर के हमारे एक मित्र ने हमें हिदायत की है कि हम उनकी चिट्ठियों पर हिन्दी के स्थान में अँगरेज़ी में पता लिखा करें, क्योंकि हमने उन्हें जो एक चिट्ठी हाल में लिखी थी वह उन्हें देरी से 'डेड लेटर आफ़िस' का चक्कर खाकर मिली थी। हमारा पत्र-व्यवहार पंजाब से अन्य प्रान्तों की अपेक्षा अधिक रहता है। पंजाब के हिन्दुओं में हिन्दी के प्रति विशेष अनुराग है। वहाँ के सुलेखकों से हमारा हिन्दी में ही पत्र-व्यवहार होता है, और प्रायः हमने पत्र पर हिन्दी में पता भी लिखा है। पर पत्र के देर में पहुँचने की शिकायतों का प्रारम्भ अभी हाल में ही हुआ है। इस सम्बन्ध में लाहौर के १३ नवम्बर के दैनिक हिन्दी-मिलाप के सम्पादकीय स्तम्भ में यह शिकायत सर्वसाधारण के सामने लाई गई है। वह सम्पादकीय विचार इस प्रकार है—

'डाकख़ानों में उन पत्रों की जिन पर दुर्भाग्य से हिन्दी में पता लिखा हो, जो दुर्दशा होती है उसका एक ताज़ा उदाहरण हमारे सामने है। मैनेजर दैनिक मिलाप को आज अबोहर ज़िला फ़िरोज़पुर का एक पत्र पूरे पाँच दिन बाद प्राप्त हुआ है। साधारणरूप में यह पत्र दूसरे दिन मिल जाना चाहिए, लेकिन इस पत्र में दोष यह था कि पता हिन्दी भाषा में लिखा था। डाकवालों ने जिनमें सम्भवतः उर्दू और फ़ारसी जाननेवालों की संख्या अधिक होती है, पता पढ़ने का कष्ट न किया और सीधा उसे डाक के मुर्दाख़ाना अर्थात् डेड लेटर-आफ़िस में भेज दिया। भेजा तो इस उद्देश्य से गया होगा कि वह वहाँ मुर्दा समझ कर जला दिया जायगा, मगर पता इतना स्पष्ट और साफ़ था कि आँखें रखनेवालों ने इस "तक" पत्र को फिर से जीवित करना ही उपयुक्त समझा और उसे मिलाप-कार्यालय में भेज दिया। यह पहला अवसर नहीं कि ऐसी घटना हुई है, अनगिनत पत्र केवल इस दोष से कि उन पर देवनागरी अक्षरों में पता लिखा होता है, निर्दोष मौत के घाट उतार दिये जाते हैं। यदि हिन्दी पढ़े-लिखे लोग भी भारत की प्रजा का एक भाग समझे जाते हैं तो उनके साथ इस प्रकार का अन्याय क्यों होता है—समझ में नहीं आता।'

यह अन्याय उस दिन अन्याय न रहेगा जिस दिन पंजाब के हिन्दू अपना सारा पत्र-व्यवहार हिन्दी-अक्षरों में करने लगेंगे। डाक-विभाग अधिकाधिक हिन्दी से अभ्यस्त होते रहने से आप ही ऐसी भूलें न करेगा। इस रोग की यही महौषधि है।

## १२—इलाहाबाद के म्युनिसिपलबोर्ड का एक सत्कार्य

इसी नवम्बर में लगातार तीन दिन की बैठकों में इलाहाबाद के म्युनिसिपलबोर्ड ने एक उपयोगी प्रस्ताव स्वीकार किया है। इस प्रस्ताव के कार्य में आने से बोर्ड अपने एक अन्याय का ही परिशोध नहीं करेगा, किन्तु उससे अनेक ग़रीब नगरवासियों का उपकार भी होगा। छः रुपये मासिक किराये पर उठ जा सकने वाले और बम्बे से रहित मकान के मालिक को घर का और बम्बे का दोनों का कर देना पड़ता था। अन्धेर इसी को कहते हैं। ख़ैर, बोर्ड ने आख़िर में काम की बात की।

इस बात की शिकायत रही है कि इलाहाबाद-म्युनिसिपैलिटी कर बढ़ाने में बहुत प्रवीण है। सन् १९२[illegible] में उसने मकानों का मूल्य मनमाने ढङ्ग से कूत कर उनका हाउस टैक्स पर्याप्त मात्रा में बढ़ा दिया था। प्रसन्नता की बात है कि बोर्ड के कतिपय सदस्यों ने ग़रीब नगरवासियों की शिकायतों की ओर ध्यान दिया और उनके कष्टों को दूर करने के लिए हाउस-टैक्स में कमी करने के लिए प्रस्ताव पास कराया। इस सम्बन्ध का प्रस्ताव मौलाना मुहम्मद शफ़ी उल्लाख़ाँ ने उपस्थित किया था। इस प्रस्ताव के अनुसार जिन घरों की ७२) रुपये वार्षिक किराये की आय कूती गई है और जिनमें जल का नल

नहीं लगा है उन मकानों से मकान और पानी का कर नहीं लिया जायगा।

जिसका बोर्ड के सीनियर वायस चेयरमैन सैयद नूरुल-हसन तथा श्रीयुत बेनीप्रसाद ने उपयोगी संशोधन किया। इन दोनों महानुभावों के संशोधन बोर्ड ने बहुमत से स्वीकार किया। इन संशोधनों के अनुसार—

(१) जिन मकानों की आय ७२) वार्षिक से ज़्यादा नहीं है उनसे हाउस टैक्स और वाटर टैक्स नहीं लिये जायँगे; जिन मकानों की आय ९६) वार्षिक से अधिक नहीं है उनसे हाउस टैक्स नहीं लिया जायगा, जिन मकानों की आय २४०) वार्षिक तक है उनके हाउस टैक्स और वाटर टैक्स में दस फ़ी सदी की कमी की जायगी, और इससे बोर्ड की आय में जो कमी होगी उसकी पूर्ति के लिए बोर्ड अपने कर्मचारियों को भत्ते तथा सवारियाँ देने की प्रथा बन्द कर देगा।

बोर्ड की यह कार्यवाही वास्तव में उपयोगी हुई है। जिन सदस्य महानुभावों ने इस कार्य को किया है वे प्रशंसा के पात्र हैं। आशा है, कमिश्नर महोदय भी इस प्रस्ताव को स्वीकार करके ग़रीब नगरवासियों से धन्यवाद प्राप्त करेंगे।

## १३—एक प्रस्ताव

मैंने कलकत्ता के "लोकमान्य" साप्ताहिक पत्र के कार्तिककृष्णा ३० मंगलवार ता० २१ आक्टोबर १९३० की दिवाली के विशेषांक में श्रीमुकुन्दमोहन सान्याल एम० ए०, बी० एल० का "हिन्दी में लिंग-समस्या" शीर्षक लेख पढ़ा। इस विषय में मैं भी बड़ी उलझन में हूँ। मैं देखता हूँ कि पञ्जाबी बोलते हैं तार आई है। मैं बोलता हूँ तार आया है। कोई कहता है बूरा अच्छी है। मैं बोलता हूँ, बूरा अच्छा है। कोई कहता है, दही मीठा है। मैं कहता हूँ, दही मीठी है इसके सिवा मैं ही अपनी हिन्दी में मठा को मीठा और उसी के दूसरे नाम को मीठी छाछ बोलता हूँ। इस विषय में मेरी सम्मति है कि यदि क्रियाओं के चिह्न पुलिङ्ग-स्त्रीलिङ्ग दोनों के लिए एक समान ही नियत कर दिये जायँ तो यह समस्या हल हो सकती है जैसा कि बँगला भाषा में पुरुष भी अमि जाचिते छि बोलता है और स्त्री भी ऐसा ही बोलती है। अँगरेज़ी में भी हीगोज़ शीगोज़ का ही व्यवहार होता है। मेरे अनुमान से संस्कृत में भी ऐसा ही होता है। आशा है, हिन्दी के विद्वान् इस प्रश्न पर विचार करेंगे—

—कृष्णलाल शर्म्मा

## १४—एक प्रतिवाद

नवम्बर की सरस्वती में श्रीयुत श्रीनाथसिंह ने मेरी पुस्तक 'रेणु' की समालोचना की है। उससे यह ध्वनि निकलती है कि मैंने अन्य मस्तिष्कों के विचार चुरा लिये हैं। मैं इस धारणा का विरोध करता हूँ। उक्त पुस्तक में प्रकाशित विचार मौलिक हैं।

—रामचन्द्र टंडन

## १५—चित्र-परिचय

**श्रीरामचन्द्र और श्रीगरुड़**—श्रीगरुड़ विष्णु भगवान् के वाहन हैं। एक बार रामावतार में जब वे रामचन्द्रजी से मिलने आये उन्होंने कृष्ण के रूप में उनका दर्शन करने की इच्छा प्रकट की। तब मर्य्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजी ने कृष्ण का रूप धारण किया और गरुड़जी को दर्शन देकर उनकी मनोवाञ्छा पूर्ण की। चित्रकार ने इस चित्र में इसी सुन्दर दृश्य का चित्रण किया है।

**दुर्जयसिंह का आखेट**—दुर्जयसिंह राजपूताना के चन्दावत-वंश का एक विख्यात वीर था। उसने अपने बाहुबल से सीसोदिया-वंश के तिलकसिंह को पराजित करके उनका सूर्यमहल नामक क़िला हस्तगत कर लिया था। इस चित्र में उसी के एक शिकार का दृश्य दिखलाया गया है। इस अवसर पर जब शूकर ने उस पर आक्रमण किया था तब छद्मवेशधारी तिलकसिंह के पुत्र तेजसिंह ने उसकी प्राण-रक्षा की थी।

**महाराणा प्रताप और शाहज़ादा सलीम**—यह चित्र हल्दीघाटी के युद्ध की घटना के अंश का चित्रण है। इस युद्ध में एक ओर महाराणा प्रताप की अधीनता में मेवाड़ के राजपूत थे और दूसरी ओर अकबर के पुत्र शाहज़ादा सलीम की अध्यक्षता में अगणित मुग़ल सेना थी। इस अवसर पर महाराणा ने सलीम पर भाले से वार किया था। यह मुख्य बात चित्र में दिखलाई गई है।

# नव प्रकाशित पुस्तकें

## हिन्दी भाषा और साहित्य

( राय साहब श्यामसुन्दरदास, बी० ए० )

इस ग्रन्थ को लेखक ने अपने अनेक वर्षों के अनुभव, और परिश्रमपूर्वक एकत्र की हुई सामग्री की सहायता सं बड़ी छान-बीन करके लिखा है। इसके पूर्वार्ध में हिन्दी-भाषा का और उत्तरार्ध में साहित्य का विशद रूप से विवेचन किया गया है। लेखक ने इसका उद्देश्य प्रत्येक युग की मुख्य मुख्य विशेषताओं का उल्लेख करना और यह बतलाना रक्खा है कि साहित्य की प्रगति किस समय में किस ढङ्ग की थी। इस दृष्टि से यह ग्रन्थ अन्य इतिहास-ग्रन्थों से पृथक् है। मूल्य ६) छः रुपये।

## हिन्दी-साहित्य का इतिहास

( पण्डित रामचन्द्र शुक्ल )

इस पुस्तक को आदिकाल, पूर्वमध्यकाल, उत्तर-मध्यकाल और आधुनिक काल—इन चार भागों में विभक्त करके इतिहास का निरूपण किया गया है। इसमें कवियों तथा लेखकों का परिचय और उनकी कृतियों के चुने हुए कुछ उदाहरण तो हैं ही, किन्तु लेखक ने विशेष महत्त्व दिया है समय की प्रवृत्ति का पता लगाकर विचारधारा के विकास को व्यक्त करने में। मूल्य ४॥) साढ़े चार रुपये।

## हिन्दी-रसगङ्गाधर

यह संस्कृत के उद्भट विद्वान् पण्डितराज जगन्नाथ के ग्रन्थ का हिन्दी-रूपान्तर है। इसमें उदाहरण के मूल श्लोक तो हैं ही, उनका रूपान्तर भी छन्दोबद्ध ही है। आरम्भ में, कोई १०६ पृष्ठों में 'निवेदन', 'पण्डितराज का परिचय' और 'विषय-विवेचन' आदि है। मूल्य ३॥) साढ़े तीन रुपये।

## लेन-देन

( श्रीशरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय )

यह शरद्-ग्रन्थावली की आठवीं संख्या है। इसकी उत्तमता के सम्बन्ध में शरद् बाबू का नाम ही पर्य्याप्त है। इस ग्रन्थावली से अभी तक जितनी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं, वे हाथों हाथ बिक रही हैं। सजिल्द पुस्तक का मूल्य २॥) ढाई रुपये।

## शतदल कमल

( पण्डित श्रीनारायण चतुर्वेदी, एम० ए०, एल-टी० "श्रीवर" )

इसमें बालकों की रुचि का ध्यान रखकर रंग-बिरंगे फूलों, भिन्न भिन्न रंगों और 'मार्च' पर कविताएँ लिखी गई हैं, जिन्हें बच्चे सामूहिक रूप से गाकर खूब प्रसन्न होंगे। बालकों के लिए ऐसी सुन्दर, आकर्षक और मनोरञ्जक पुस्तक हिन्दी में अब तक एक भी नहीं प्रकाशित हुई है। मूल्य २) दो रुपये।

## स्वप्न-वासवदत्ता

( श्रीयुत सत्यजीवन वर्मा, एम० ए० )

यह महाकवि भास के संस्कृत-नाटक का अनुवाद है। उसकी उत्तमता के सम्बन्ध में रचयिता का नाम ही पर्याप्त है। मूल्य ॥=) दस आने।

**मैनेजर (बुकडिपो), इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग**

# सरस्वती ३२ वें वर्ष में

सन् १९३० के वर्षान्त से सरस्वती अपने वय के ३२ वें वर्ष में प्रवेश करेगी। अपने जीवन के गत ३१ वर्षों में हिन्दी के क्षेत्र में उसने जो काम किया है उसका उल्लेख करना हमारा काम नहीं है। हमारा तो काम यही रहा है कि हम सरस्वती को देशकाल के अनुसार चलाये चलें—उससे लोकहित हो, साहित्य की वृद्धि हो।

सन्तोष की बात है, आज हिन्दी फल-फूल रही है। उसके इस स्थिति के प्राप्त करने में सरस्वती का किसी से कम हाथ नहीं रहा है। सरस्वती की यह उपयोगिता उसके सञ्चालकों की निगाह में बराबर रही है और इसी से उसमें समयानुसार बराबर परिवर्तन होते आये हैं। सरस्वती की पुरानी फ़ाइलें हमारे इस कथन का प्रमाण हैं। आज जिस भव्य रूप में सरस्वती का प्रकाशन हो रहा है, इसका अधिकांश श्रेय उसके ग्राहक महानुभावों को ही है। उन्हीं का प्रेमपूर्ण आश्रय पाकर सरस्वती अपने वर्तमान नये रूप में निकल सकी है। वास्तव में उसके ग्राहकों की सरस्वती पर प्रारम्भ से ही अनुकम्पा रही है, और हमें यह लिखते प्रसन्नता होती है कि आज भी उसका हिन्दी के क्षेत्र में पहले जैसा ही आदर बना हुआ है।

इधर कई वर्ष से सरस्वती का नये वर्ष का प्रथमाङ्क प्रतिवर्ष विशेष आयोजन के साथ निकाला गया है। उसके पिछले 'स्वराज्याङ्क' का तो हिन्दी के प्रेमियों ने विशेष रूप से आदर किया था। इस वर्ष नये वर्ष का पहला अङ्क 'नववर्षाङ्क' के रूप में निकलेगा। ... उत्तमोत्तम देशकालोपयोगी रोचक लेखों, कहानियों, कविताओं आदि का तो सङ्कलन किया जायगा ही, कई एक रंगीन चित्रों के सिवा अन्य बहु-संख्यक नेत्र-रञ्जक चित्रों का भी समावेश किया जायगा। कार्टूनों और विज्ञान-सम्बन्धी उपयोगी चित्रों की विशेषता रहेगी। गत वर्ष की तरह इस वर्ष भी हम एक नया उपन्यास धारावाहिक रूप से निकालेंगे। यह उपन्यास भी 'धोखा-धड़ी' की ही भाँति मनोरञ्जक होगा। इस बार के अङ्क से हम एक लेखमाला भी धारावाहिक रूप से शुरू करेंगे। इस लेखमाला के लेखक 'सरस्वती' के सुलेखक भिक्षु राहुल सांकृत्यायन हैं। आपने जापान के प्रसिद्ध यात्री कावागूची की भाँति हाल में तिब्बत-यात्रा की है। उस यात्रा के अनुभवों का वर्णन आपने इसमें किया है। इस नववर्षाङ्क की पृष्ठ-संख्या २०० से ऊपर तथा चित्र-संख्या भी काफ़ी अधिक होगी। यह अङ्क भी गत वर्ष के 'स्वराज्याङ्क' की तरह अपने ढङ्ग का एक ही होगा। आशा है, हमारे कृपालु पाठकों को सरस्वती का यह 'नववर्षाङ्क' विशेष रूप से सन्तोषप्रद होगा।

अन्त में हमारा अपने कृपालु पाठकों से निवेदन है कि आप लोग सरस्वती की ग्राहक-संख्या बढ़ाने में हमारी सहायता करें। उस दशा में हम सरस्वती को और भी अधिक उन्नत रूप में निकाल सकेंगे।

व्यवस्थापक



# सरस्वती

सचित्र

मासिक पत्रिका

भाग ३१, खण्ड २

जुलाई-दिसम्बर

१९३०

सम्पादक—देवीदत्त शुक्ल

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

वार्षिक मूल्य साढ़े छः रुपये

# लेख-सूची

# चित्र-सूची

## (रङ्गीन चित्र)



## [सादे चित्र]

# लेख-सूची

---

## चित्र-सूची



मन्दोदरी और सीता

# सरस्वती

सचित्र

मासिक पत्रिका

वार्षिक मूल्य ६।।)
Yearly Subscription, Rs. 6-8

सम्पादक
देवीदत्त शुक्ल

प्रति संख्या ।।=)
As. 10 per copy.

भाग ३२, खण्ड १ ] फ़रवरी १९३१—माघ १९८७ [ सं० २, पूर्ण-संख्या ३७४


## खोज

( १ )

घन की घटा को देख होती कामना है यही,
बन के मयूर मैं तुम्हारी देख माया लूँ ।
वारण-सुधा के बदले है चाह होती यही,
चातक-समान जल-विन्दु बरसाया लूँ ।।
देख सविता की छटा करता यही है मन,
बसके सरोज में तुम्हारी देख छाया लूँ ।
क्यों मैं वसुधा में तुम्हें घूम घूम खोजूँ कहीं,
क्यों न निज प्रेम को तुम्हारी मान काया लूँ ।।

( २ )

जाते ही दिवा के जब आती है निशा तो तुम,
कुसुम-समान नभ-बीच खिल जाते हो ।
मोद-भरी मंजु छबि में हो मिल जाते तुम,
बन के पयोद जल तुम बरसाते हो ।।
कोमल किशोर कलिका में दिखलाते कान्ति,
कंज की कली में छिपे तुम मुसुकाते हो ।
आँखें हैं घुमाते तुमको जो देखने के लिए,
भूतल के बीच बस तुम्हीं तो दिखाते हो ।।

—श्री श्यामनारायण पाण्डेय

# एक संस्कृतज्ञ मुसलमान

हिन्दुओं में अनेक अरबी-फ़ारसी के विद्वान् हुए हैं और हैं, किन्तु मुसलमानों में संस्कृत के विद्वान् बहुत कम हुए हैं। फ़ैज़ी आदि के विषय में भी उनके समकालीन मुसलमान इतिहास-लेखकों ने लिखा है कि वे स्वयं संस्कृतज्ञ न थे, संस्कृत और फ़ारसी के विद्वान् हिन्दुओं से ही उन्होंने ग्रन्थ-रचना कराई थी। आज हम सरस्वती के पाठकों का एक संस्कृतज्ञ मुसलमान विद्वान् से परिचय कराते हैं। आपका नाम श्रीयुत मुईनुद्दीन अहमद है। रहनेवाले मेरठ के हैं, किन्तु अब लगभग ३० वर्ष से बम्बई में ही रहते हैं। आपने प्रयाग और कलकत्ता-विश्वविद्यालयों से उच्च परीक्षायें पास करके योरप का भ्रमण किया। ४ वर्ष तक मिस्र में अरबी, फ्रेंच और जर्मन-भाषा का अध्ययन किया, वहाँ से लौट कर इन्दौर-कालेज में कुछ समय तक फ़ारसी-भाषा के प्रोफ़ेसर रहे। योरप जाने से पहले ही आपने संस्कृत-भाषा का अध्ययन साधारण रीति से आरम्भ कर दिया था, किन्तु वहाँ से लौट कर आप उसमें विशेष मनोयोग के साथ परिश्रम करने लगे। लगभग ३० वर्ष से आप संस्कृत-भाषा के सुविशाल साहित्य का अनुशीलन कर रहे हैं। रचना की दृष्टि से महर्षि वाल्मीकिकृत रामायण के आप परम भक्त हैं। उसके अनेक पारायण आप कर चुके हैं, संस्कृत-भाषा का जो कोई पण्डित आपको मिलता है और जब वह यह बताता है कि मैंने कालिदास, भवभूति, माघ और श्रीहर्ष के काव्य पढ़े हैं, किन्तु रामायण का पारायण नहीं किया तब आपको बहुत दुःख होता है और उसे रामायण पढ़ने के लिए आग्रहपूर्वक उत्तेजना देते हैं। आपकी सम्मति में प्राकृतिक सौन्दर्य और प्राचीन संस्कृति का जैसा अलौकिक और पूर्ण वर्णन आदि-कवि ने किया है वैसा और किसी ने नहीं किया। अनेक कामों में लगे रहने पर भी जब कभी आपको अवसर मिलता है, रामायण का स्वाध्याय करते हैं।

आज-कल आप बम्बई के सुप्रसिद्ध विल्सन-कालेज में फ़ारसी के प्रोफ़ेसर हैं। यद्यपि इस समय आपकी अवस्था ६० से ऊपर है, शरीर भी बहुत दुर्बल है, किन्तु पढ़ने और पढ़ाने की शक्ति आपमें नवयुवकों से कहीं अधिक है। इसका कारण आपका निर्व्यसन और सरल जीवन-निर्वाह है। जवानी में ही आपकी पत्नी का स्वर्गवास हो गया था, फिर आपने दूसरा विवाह नहीं किया और उस समय से अब तक बड़े संयम और शान्तभाव से भगवती सरस्वती की आराधना कर रहे हैं। कालेज में विद्यार्थियों को पढ़ाना, स्वयं पढ़ना और साहित्यानुशीलन करना ही आपका एक मात्र कार्य है। जब देखो, प्रोफ़ेसर साहब अपने छोटे से कमरे में पुस्तकों के ढेर में छिपे स्वाध्याय में मग्न हैं।

अध्यवसाय के कारण आप अनेक भाषाओं के अच्छे ज्ञाता हो गये हैं। संस्कृत-भाषा में तो आपकी ख़ासी गति है, बड़ा सुन्दर बोलते हैं और बड़ा अच्छा

लिखते हैं। कई वर्ष हुए आपने एक फ़ारसी-पुस्तक का संस्कृत में अनुवाद 'दुःखोत्तरं सुखम्' के नाम से किया था। उन दिनों आप किसी कार्य से मुरादाबाद पधारे थे। पहली बार वहीं आपका दर्शन हुआ था। संयोग से उन्हीं दिनों काशी के सुप्रसिद्ध विद्वान् पण्डित काशीनाथजी भी मुरादाबाद में ही थे। इन पङ्क्तियों के लेखक ने 'दुःखोत्तरं सुखम्' की एक कहानी गुरुजी को सुनाई। उसकी सुन्दर और ललित और साथ ही प्रौढ़ संस्कृत-भाषा को सुनकर गुरुजी बहुत प्रसन्न हुए और उसी समय एक श्लोक अपने कर-कमल से लिख कर आशीर्वादरूप में प्रोफ़ेसर महोदय के लिए दिया। 'दुःखोत्तरं सुखम्' की कहानियाँ बड़ी सुन्दर हैं, पढ़ते ही चित्त पर प्रभाव पड़ता है और प्रत्येक कहानी से कोई न कोई शिक्षा प्राप्त होती है। नवयुवकों को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए। नीचे दिये हुए उसके कुछ शीर्षकों से ही पुस्तक की उपादेयता का पता लग सकता है—

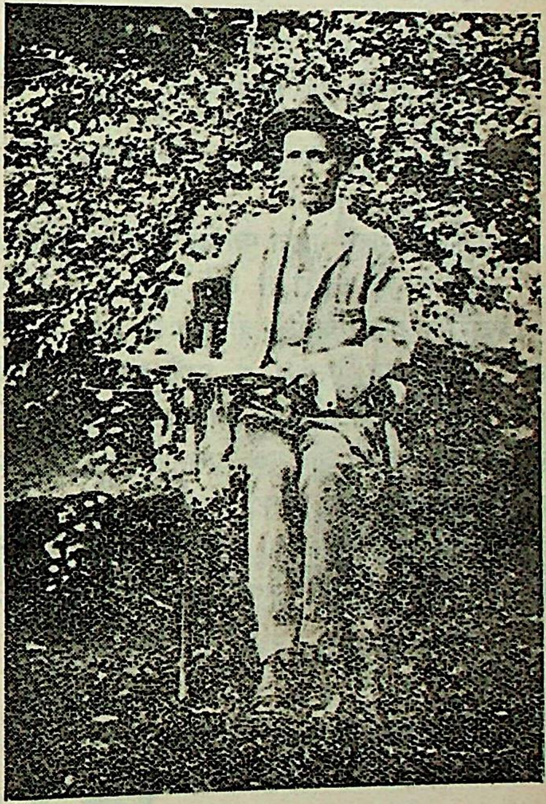
१ अपि वाणिज्यं विद्याया गरीयः।
२ आकारो न सदा लोके वर्त्तते तत्त्वदर्शकः।
३ विद्यैव परमा गतिः।
४ आशाभङ्गं न कुर्वन्ति भक्तस्यार्याः कथंचन।
५ आत्मा कदापि नावमन्तव्यः।
६ तथ्यद्रष्टारः सर्वथा सत्कारार्हाः।
७ दैवायत्तः सदा लोके विभवश्च पराभवः।

इन शीर्षकों के नीचे बड़ी अच्छी कहानियाँ लिखी गई हैं, जिन्हें पढ़कर चित्त बिना प्रभावित हुए नहीं रहता। प्रत्येक कहानी के अन्त में सुयोग्य प्रोफ़ेसर महोदय ने उससे मिलनेवाली शिक्षा अपने शब्दों में बड़े सुन्दर ढङ्ग से लिख दी है। अन्त में अपने कुछ शिक्षानुकूल पद्य भी लिख दिये हैं। अपि वाणिज्यं विद्याया गरीयः के अन्त में एक श्लोक लिखा है—

जन्यादभ्यासकाले तु विद्या ते मूर्ध्नि वेदनाम्।
संस्थापयेत्ततः सैव सर्वेषां मूर्ध्नि ते पदम् ॥१॥

जो विद्यारसिक विद्याप्राप्ति के लिए रातों को दिन कर देते हैं, दिनों को रात से जोड़ देते हैं, उनके परिश्रम का फल उन्हें प्राप्त होता है, इस बात को किस अच्छे ढङ्ग से और कितनी परिमार्जित भाषा में प्रोफ़ेसर साहब लिखते हैं—

"ये रसिका दीर्घरात्रीरभ्यासवादविवादैरादिनं यापयन्ति लम्बानि दिनानि चाल्पमध्ययनेन नयन्ति अरसिका क्षेपवेदनां वहन्ति ध्रुवं तेऽभ्यासपरायणे उद्योग्युद्यमगुणग्राहिणि विधातरि विराजति सति



[ श्रीयुत मुईनुद्दीन अहमद ]

अध्ययनदुःखफलं सुखविग्रहमत्रामुत्र चास्मत्कथा-पुरुषवत्प्राप्नुवन्ति।"

अभी हाल में प्रोफ़ेसर साहब ने शेख़सादी की सुप्रसिद्ध नीतिपुस्तिका 'करीमा' का संस्कृत-पद्यानुवाद प्रकाशित किया है। इस अनुवाद में भी आपको बहुत सफलता प्राप्त हुई है। उसके पहले सुप्रसिद्ध

शेर 'करीमा बबख़्शाये बर हाले मा'—का अनुवाद कितना सुन्दर किया है—

प्रसादः क्रियतां शम्भो दयनीया हि नो दशा।
वासनापाशपर्यस्ता वयं मोहमुपागताः ॥
त्वया विना न नस्त्राता हन्ता त्वं पापकर्मणाम्।
जिह्माद्वारय नो मार्गात् क्षमस्वार्जवमादिश ॥

मूर्खजन-परित्याग-सम्बन्ध में 'ज़ जाहिल गुरे जिन्दा चूँ तीरबाश'—का अनुवाद तो मूल से भी बढ़ गया है—

सङ्गतिं त्यज मूर्खाणां क्षिप्रं बाणो यथा धनुः।
प्रकृत्या सरलो वक्रं बाणस्त्यजति वै धनुः ॥

सरल बाण और वक्र धनु की उपमा कितनी सुन्दर है।

प्रोफ़ेसर साहब ने इन पुस्तकों का प्रकाशन किसी आर्थिक लाभ के उद्देश से नहीं किया है। केवल सद्विचारों के प्रचार के लिए ही आपका यह परिश्रम है। जिन्हें इन पुस्तकों के पढ़ने की इच्छा हो वे आठ आने के टिकट भेजकर इन पुस्तकों को काज़ी नासिरुद्दीन अहमद बी० ए०, एल-एल० बी०, वकील हाईकोर्ट, अन्दर कोट, मेरठ, शहर से मँगा सकते हैं।

अभी कुछ दिन हुए आपने अपनी गाढ़ी कमाई के साठ हज़ार रुपये दान करके अलीगढ़-यूनिवर्सिटी में एक सुन्दर चित्रशाला बनवा दी है। इस दान के अतिरिक्त आपने अपने संगृहीत लगभग एक लाख रुपये के चित्र भी शाला को भेंट दिये हैं।

प्रोफ़ेसर साहब केवल विद्वान् ही नहीं हैं, विद्या का जो सात्त्विक फल सरलता, विवेक और विनय है उसकी भी आप मूर्त्ति हैं। जिन्हें आपसे मिलने का कभी अवसर हुआ है—यद्यपि आप बड़े विविक्तसेवी हैं—उन्हें इसका पहली भेंट में ही परिचय हो जाता है।

आज-कल आप अरबी, फ़ारसी और संस्कृत के समभावपूर्ण पद्यों का एक सुन्दर संग्रह कर रहे हैं, पूर्ण होने पर यह संग्रह भी अपने ढङ्ग का निराला होगा।

आपका रहने का ढङ्ग बड़ा सादा है। एक छोटे से स्थान में अकेले रहते हैं, न कोई साथी—पुस्तकों को छोड़ कर—न कोई नौकर। अपना सब काम अपने हाथ से करते हैं। इसी संयम और मितव्ययिता के कारण एक बड़ी रक़म आप दान कर सके हैं। अपना एक क्षण भी आप यथासम्भव ख़राब नहीं करते।

ईश्वर से प्रार्थना है कि ऐसे विद्याप्रेमी वयोवृद्ध किन्तु विचारतरुण और अनेक भाषावित् विद्वान् को वह चिरजीवी करे।

—ज्वालादत्त शर्मा

# खूँटी बाबू का अपराध

( १ )

किसी ने एक दिन मज़ाक में उन्हें खूँटी बाबू कह दिया था। यह नाम लोगों को इतना पसन्द आया कि उस दिन से सब उन्हें खूँटी बाबू कहने लगे। बात यह थी कि उनमें और एक खूँटी में बहुत अर्थों में समानता थी। दिन भर वे अपनी कुर्सी से टस से मस नहीं होते थे। और जैसे वे कुर्सी से टस से मस नहीं होते थे, वैसे ही जीवन भर उस दफ़्तर से टस से मस नहीं हुए थे जिसमें वे काम करते थे। किसी ने कभी उन्हें बिगड़ते नहीं देखा था। अगर उनके मातहतों से कोई भारी भूल हो जाती थी तो वे बहुत करते थे तो उनकी ओर देखकर थोड़ा मुस्करा देते थे। उनका यह क्लर्क का जीवन जितना मनहूस था, उतने ही वे सीधे भी थे। लोग अकसर कह दिया करते थे—खूँटी बाबू बड़े सीधे हैं, ये किसी को कभी कोई हानि नहीं पहुँचा सकते।

उनको अटलराम नरायनदास के कारख़ाने में आये कितना समय हुआ, यह कोई नहीं बतला सकता था। नये नये क्लर्क रोज़ भर्ती होते थे और चले जाते थे, परन्तु खूँटी बाबू अपने स्थान पर ज्यों के त्यों जमे थे। अटलराम बुड्ढे आदमी थे। उनके ख़याल भी पुराने थे। नये ज़माने के साथ उन्होंने बढ़ना नहीं सीखा था। आधुनिक कार्य्य-व्यवस्था को अपने कारख़ाने में न घुसने देने के लिए उन्होंने अपनी शक्ति भर कुछ बाक़ी नहीं रक्खा था। युवक हृदय में उठनेवाली आकांक्षाओं और उमङ्गों के लिए यह स्थान मरुभूमि के समान था। इसमें सन्देह नहीं कि कारख़ाने की आय पर इसका बड़ा प्रभाव पड़ता था, परन्तु अटलराम को इसकी परवा नहीं थी। वेतन पर काम करनेवाले निरन्तर बदलते रहते थे। केवल खूँटी बाबू इसके अपवाद थे। उनके सिवा उस कारख़ाने में कोई पुराना आदमी न था।

चञ्चलकुमार उत्साही तथा बहुत परिश्रमी युवक था। परन्तु वह भी उस दफ़्तर में बहुत दिन नहीं ठहर सका। वहाँ से निकल कर दूसरी जगह नौकरी कर लेने पर वह प्रायः कहा करता था—अच्छा हुआ जो मैं उस आफ़िस से निकल भागा, नहीं तो मेरा भी खूँटी बाबू की भाँति जीवन बर्बाद होता।

यह चञ्चलकुमार जब उस दफ़्तर में था तब भी खूँटी बाबू के बारे में प्रायः बातें किया करता था। कभी कभी कहता था—खूँटी बाबू बिलकुल खूँटी ही हैं। बेवकूफ़ जब जवान था तब उस दफ़्तर से जान बचा सकता था। पर अब तो उसी में मरेगा। बेचारे की मिट्टी ख़राब है। सचमुच मुझे इस बुड्ढे पर बड़ी दया आती है। इसने किसी को कभी कोई हानि नहीं पहुँचाई और न अपने को बहुत लाभ ही पहुँचाया।

एक दिन खूँटी बाबू ने यह बात सुनली। अपने सम्बन्ध में वे इसी प्रकार की और भी अजीब अजीब बातें सुना करते थे। कभी कभी उस पुराने ढङ्ग के कार्य्यालय के सञ्चालक भी खूँटी बाबू के सम्बन्ध में इसी प्रकार की बातें करते थे। इन बातों का खूँटी बाबू पर बहुत प्रभाव न पड़ता था। पर चञ्चलकुमार की उस दिन की बात से वे न जाने क्यों चौंक-से पड़े। वे अपनी ज़रा सी सफ़ेद दाढ़ी पर हाथ फेर कर मन ही मन न जाने क्या क्या सोचने लगे। उस दिन एक प्रकार के गुप्त आनन्द में स्नान-सा किये वे दिन भर अपनी कुर्सी पर झुके बैठे रहे। उन्होंने मन-ही-मन प्रसन्न होते हुए कहा—चञ्चलकुमार बेवकूफ़ लड़का है—बिलकुल बेवकूफ़। मनुष्य-स्वभाव की गहराइयों का उसे क्या पता? उसे क्या मालूम कि कौन अपने हृदय में क्या छिपाये बैठा है। उसने क्या कहा था? शायद यह कि खूँटी बाबू ने किसी को कोई हानि नहीं पहुँचाई। शायद इस बात पर उसको पूरा विश्वास है। परन्तु यदि उसे एकाएक सत्य बात का पता चल जाय तो क्या हो? बेवकूफ़ युवक चौंक उठेगा। कहेगा, ऐं खूँटी बाबू और ऐसा कार्य्य!

खूँटी बाबू ने कल्पना की कि चञ्चलकुमार को असलियत मालूम हो गई है। उसका चेहरा आश्चर्य्य में छिप गया है। वह कह रहा है—ओह, खूँटी बाबू से मैं स्वप्न में भी ऐसी आशा नहीं करता था।

एक रजिस्टर के पृष्ठों को उलटते हुए खूँटी बाबू ने कहा—बेचारा कोरा जवान है। ऐसी बातों की वह कल्पना भी नहीं कर सकता। दूरदर्शिता का तो उसमें सर्वथा अभाव है।

जब खूँटी बाबू ने यह अनुभव किया कि उन्हें कोई भारी ज़िम्मेदारी के कार्य्यों के योग्य नहीं समझता तब उन्हें एक प्रकार का भीतर ही भीतर क्लेश होने लगा। कभी कभी वे ज़ोर से कह उठते—ओह! दुनिया में कैसे कैसे पापी छिपे हुए हैं।

( २ )

उस रात खूँटी बाबू को नींद नहीं आई। उसके बाद भी कई रातें उन्होंने जागकर काटीं। बिस्तर पर लेटे लेटे वे सोचते—ओह! यह काम कितनी सरलता से मैंने कर डाला! किसी को पता तक न चला! और मज़ा यह कि इस काम के करने में कोई तैयारी भी नहीं करनी पड़ी। सालों से मेरी उसकी दोस्ती थी। वह कितना हँसमुख और उत्साही युवक था। और जब एक दिन सवेरे वह अपने बिस्तर पर मरा हुआ पाया गया तब किसी ने मुझ पर शक तक नहीं किया! ओह! उदयप्रताप मैंने तुम्हें क्यों मार डाला? तुमने तो मेरा कुछ बिगाड़ा भी नहीं था।

खूँटी बाबू ने कष्ट के साथ करवटें बदलते हुए फिर सोचना आरम्भ किया—मैंने उसकी हत्या कैसे की? शायद मेरे हाथ में एक क़लम—लोहे का क़लम—था। उसी से! बस, एक क़लम से मैंने उसे मार डाला और किसी ने मुझे सन्देह की दृष्टि से देखा भी नहीं। और कोई देखता कैसे? उदयप्रताप का मैं घनिष्ठ मित्र जो था। मित्र पर ऐसा सन्देह कोई कर ही कैसे सकता है?

खूँटी बाबू यह सोचते सोचते ज़ोर से हँस पड़े। एकाएक फिर चुप हो गये। उस समय वे एक विचित्र प्रकार की बेचैनी से छटपटा रहे थे। सबसे बड़ा दुःख उन्हें एक बात का था। वह यह कि यह हत्या का अपराध उनके दिल में अब भी ताज़ा था। इतने वर्ष हो जाने पर भी यह घटना उन्हें सविस्तर याद थी। उदयप्रताप का वह हँसोड़ चेहरा भी उन्हें नहीं भूला था। जान पड़ता था, मानो उसे उन्होंने कल ही देखा हो और वह लोहे का क़लम जिससे उन्होंने उदयप्रताप की हत्या की थी, उन्हें भूलता ही न था। वे चारों तरफ़ अपना ख़याल दौड़ाते, परन्तु उनकी समझ में कुछ न आता? कभी कभी वे ज़ोर से कह उठते, "मैंने उदयप्रताप की हत्या क्यों की?"

तर्क की सारी उँगलियाँ खूँटी बाबू की यह उलझन सुलझाने में बेकार हो गईं। अब रात दिन उनके ध्यान में यही बात रहने लगी—हाय ! मैंने उदयप्रताप को क्यों मार डाला ? कभी कभी वे यही बात रसीदों की पीठ पर भी लिख बैठते। कभी कभी वे सोचते—उँह, जो होना था सो हो चुका। अब पछताने से क्या ? जैसे आज तक इस हत्या का भेद नहीं खुला, वैसे आगे भी न खुलना चाहिए। इस बात को अब गुप्त ही रखना अच्छा है। ओह ! वह कितना बड़ा पापी है और लोग उसे कितना सीधा समझते हैं।

परन्तु किसी प्रकार खूँटी बाबू को चैन न आता। उदयप्रताप की याद उन्हें बनी ही रहती। वे मन ही मन कहते रहते—मेरी उसकी कोई दुश्मनी भी तो नहीं थी। कोई लड़ाई नहीं थी। फिर मैंने उसे क्यों मारा ? अच्छा उसकी मौत हुए कितने साल हुए ? बहुत ! बहुत समय बीता और मैंने मारा किससे ? क़लम से ! उँह होगा। परन्तु क्या क़लम ही था ? कोई औज़ार नहीं था ? होगा ! अब इसकी चिन्ता व्यर्थ है। पर स्मृति को क्या करूँ ? नालायक़ मेरा पिण्ड ही नहीं छोड़ती ? जान पड़ता है, उदयप्रताप की हत्या का बिना बदला लिये यह न रहेगी।

खूँटी बाबू काँप उठे। ओह ! उनसे कितना भयानक कार्य्य हो गया। और इतने पर भी लोग कहते हैं कि वे किसी को कोई हानि नहीं पहुँचा सकते। किसी को क्या मालूम कि उन्होंने उदयप्रताप जैसे युवक को सदा के लिए सुला दिया, उसकी महत्त्वाकांक्षाओं पर पानी फेर दिया। जिन्दा रहता तो वह न जाने क्या होता। पर शायद वह जिन्दा हो। जीव तो कभी मरता नहीं। पर इससे क्या अपने जीवन में तो वह नहीं है।

एकाएक खूँटी बाबू को एक ख़याल आया। परन्तु यदि मैं उदयप्रताप को मार न डालता तो शायद वही मुझे मार डालता। दो में एक का मरना ज़रूरी था। मैं न सही, वह सही।

अब वे पागलों की भाँति कभी कभी बड़बड़ा उठते—क़लम से ! हाँ, क़लम से !! क्यों ? कब ? कैसे ? वह क़लम कैसा था ? कहाँ से आया था ? उदयप्रताप ! क़लम !! उदयप्रताप ! क़लम !! हाँ, समझा, यह बात थी ! अहा हा ! यह बात थी। ऐं क्या बात ? क़लम !

( ३ )

इस प्रकार सोचते सोचते कई सप्ताह बीत गये। परन्तु खूँटी बाबू अपने हृदय की उलझन को न सुलझा सके। अब वे दफ़्तर का काम भी चित्त लगा कर न करते। अटलराम ने देखा कि खूँटी बाबू उनके कारख़ाने के लायक़ अब नहीं रह गये। वे उन्हें कुछ पेंशन दे-दिलाकर अलग कर देने की बात सोचने लगे। परन्तु खूँटी बाबू अपनी ही समस्या सुलझाने में इतने निमग्न थे कि इस ओर उन्होंने कुछ सोचा ही नहीं।

चौबीस घंटे अब खूँटी बाबू के दिल में यही बात रहने लगी कि मैंने उदयप्रताप को मार डाला है। पर मारा क्यों ? कारण तो समझ में आना चाहिए ? क्यों ? उसकी हत्या का क्या कारण था ? यह बात मस्तिष्क के कोने में ज़रूर कहीं छिपी होगी। परन्तु वह भागती है।

खूँटी बाबू कुछ उत्तेजित हो उठे—इस हत्या का कारण डरपोकपन है। भागता है। कहीं छिपा है। पर बच्चू तुम छिप नहीं सकते। तुम्हें मैं पकडूँगा। पुलिस से पकड़ाऊँगा। आख़िर पुलिस-वालों का काम क्या है ?

हत्या का पता लगाना उसके कारण को खोजना आदि बातों के लिए वह तनख़्वाह पाती है। मैं थाने में जाकर इस कारण के भागने की इत्तिला करूँगा। सब बातें समझ में आती हैं। केवल कारण समझ में नहीं आता। पर मुझे

विश्वास है कि सब बातें बता देने पर पुलिसवाले इस कारण को जरूर खोज निकालेंगे। पर इसका अर्थ यह है कि मैं हत्या के अपराध को स्वीकार करूँगा। उँह देखा जायगा। कारण तो मालूम हो जायगा।

दूसरे दिन सवेरा होते ही खूँटी बाबू थाने में जा पहुँचे। वहाँ काँपते हुए बोले—मैंने उदयप्रताप का ख़ून किया है। मुझे गिरफ़्तार करो और बताओ कि मैंने यह ख़ून क्यों किया है?

खूँटी बाबू एक मेज के पास खड़े थे। उसकी दूसरी तरफ़ एक अफ़सर बैठा था। अफ़सर ने पूछा—कब किया है?

"कोई तीस वर्ष हुए?"

"किस चीज से मारा?"

"क़लम से।"

"कहाँ?"

"अटलराम नरायणदास के दफ़्र के पास।"

अफ़सर के कहने से एक मुंशी ने खूँटी बाबू का बयान लिखा और उनके अँगूठे का निशान लिया। इसी बीच में अफ़सर ने एक सिपाही अटलराम के कार्य्यालय में कुछ पूछ-ताछ करने के लिए दौड़ाया। खूँटी बाबू मन ही मन कहने लगे—मिस्टर 'क्यों', अब कहाँ जाओगे? बहुत सोचा, समझ में आते ही नहीं थे।

सिपाही ने लौट कर अफ़सर से कहा—हुज़ूर! मैंने अटलराम से भेंट की। वे कहते हैं कि यह मुमकिन हो सकता है। इधर कई सप्ताह से यह आदमी दफ़्र में घबराया सा रहता था। वे पेंशन देकर इसे हटाना चाहते थे। इसी मार्च में इसकी नौकरी के तीस वर्ष पूरे हो जायँगे।

अफ़सर ने खूँटी बाबू को ध्यान से देखा और और उनसे फिर पूछा—उदयप्रताप को मारे तुम्हें कितना समय हुआ?

"तीस वर्ष।"

अफ़सर ने मुस्करा कर कहा—ओह! तब से तुम उस दफ़्र में इस तरह छिपे रहे, जैसे कोई क़ब्र में सोया हो। क्यों?

खूँटी बाबू अब अत्यन्त शान्त थे। उनकी उलझन सुलझनेवाली थी। उन्होंने मुस्करा कर कहा—जी हाँ।

अफ़सर ने सिपाही से फिर पूछा—अटलराम ने इसका नाम क्या बताया था?

सिपाही ने कहा—लोग इसको खूँटी बाबू कहते हैं। परन्तु इसका असली नाम उदयप्रताप है।*

—श्रीनाथसिंह

*दी 'कुइन' नामक पत्रिका में प्रकाशित अलेक्ज़ेंडर बारबर की एक कहानी के आधार पर।

---

# हिन्दू-शब्द

[ हिन्दू-संस्कृति की संरक्षा के लिए भाई परमानन्द ने अब तक जो परिश्रम किया है तथा कर रहे हैं उससे आप हिन्दुओं के एक प्रसिद्ध नेता हो गये हैं। इस लेख में आपने हिन्दू-शब्द की समयोचित एवं उपयुक्त व्याख्या की है।]

आरम्भ में ही बड़ी कठिनाई हमारे सामने यह आती है कि 'हिन्दू' किसे कहा जाय। बहुत से लोगों ने हिन्दू का लक्षण करने का यत्न किया है। मुझे याद है कि सन् १९०१ में कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन पर लोकमान्य तिलक लाहौर पधारे। उन दिनों पंजाब में आर्यसमाज और सनातनधर्म-सभा की बहुत चर्चा था। लोकमान्य ने सनातन-धर्म-सभा की ओर से एक विद्वत्तापूर्ण व्याख्यान दिया। उसमें उन्होंने हिन्दू के लक्षण करने की कठिनाई का ज़िक्र करते हुए कहा कि मैं हिन्दू उसे समझता हूँ जिसका वेद पर विश्वास हो। लोकमान्य के चित्त में यह विचार था कि जैसे मुसलमान और ईसाई अपने अपने विशेष धर्म-ग्रन्थ को मानते हैं, वैसे ही वेद को हिन्दुओं के लिए धर्म-ग्रन्थ समझा जाना चाहिए।

जिन दिनों भारत में हिन्दू-मुस्लिम फ़सादों का चक्र जारी हुआ और कई स्थानों के हिन्दुओं पर बड़े बड़े अत्याचार हुए तब पण्डित मदनमोहन मालवीयजी ने बनारस में हिन्दू नेताओं को एकत्र किया और हिन्दू-संगठन के आन्दोलन की नींव रक्खी। इस अवसर पर हिन्दू-शब्द का लक्षण करना आवश्यक था, इसलिए निर्णय किया गया कि हिन्दू वह है जो हिन्दुस्तान में उत्पन्न हुए किसी मजहब का माननेवाला हो। इसका अभिप्राय यह था कि न केवल भारतवर्ष के प्रत्युत बर्मा, स्याम आदि देशों के बौद्ध और जैन भी हिन्दू ही समझे जायँ।

इन दोनों लक्षणों में मजहब का अधिक आश्रय लिया गया है। मैं समझता हूँ कि हिन्दू-शब्द जाति-वाचक है। इसका मजहब से कोई सम्बन्ध नहीं है। इसलिए इसका उत्तम लक्षण वह है जो श्रीयुत विनायक दामोदर सावरकर ने अपनी पुस्तक 'हिन्दूत्व' में किया है। उनका कहना है कि हिन्दू

वह है जो भारतवर्ष को अपनी पितृ-भूमि तथा पुण्य-भूमि मानता है। यदि हम इस शब्द की उत्पत्ति और पिछले इतिहास पर एक दृष्टि डालें तो मालूम होगा कि केवल यही लक्षण हिन्दू-शब्द पर ठीक घट सकता है।

इस शब्द की उत्पत्ति के संबन्ध में लोगों के अन्दर कई प्रकार के सन्देह पाये जाते हैं। कहा जाता है कि हिन्दू-शब्द किसी संस्कृत-ग्रन्थ में नहीं आता। इस शब्द के अर्थ चोर, क़ाफ़िर, भीरु आदि हैं, इसलिए जब मुसलमानों ने इस देश को जीता तब लोगों को घृणित समझ कर उनको ईस अपशब्द से बुलाना आरम्भ किया। इस ख़याल को मैं बिलकुल ग़लत समझता हूँ। मुसलमानों के आने से पूर्व चीनी यात्री इस देश में आये। उनसे भी एक हज़ार बरस पहले यूनानी आये और यूनानियों से भी चिर काल पहले इस देश का ईरानियों से गहरा मेल-जोल था। ईरानियों के धर्म-ग्रन्थ ज़ंद अवस्ता में यहाँ के लोगों के लिए हिन्दू-शब्द आता है। कारण यह है कि सिन्धु-नद से, जो एक समय इस देश को ईरान से जुदा करता था, इस पार के रहनेवालों का नाम 'सिन्धु' पड़ गया। ईरानी-भाषा में संस्कृत का 'स' 'ह' से बदल कर 'सिन्धु' 'हिन्दु' बन गया। यूनानियों ने 'ह' को छोड़ दिया। इससे 'हिन्दु' 'इन्दु' बन गया। इसी 'इन्दु'-शब्द से इन्द (Ind), इंडिया, इंडियन आदि शब्द निकले हैं। इटली का प्रसिद्ध कवि वर्जिल इस देश का वर्णन इन्द (Ind) नाम से करता है। इसी लिए यह कहना कि मुसलमानों ने हमको हिन्दू-नाम दिया, बड़ी भारी भूल है। पहला मुसलमान आक्रमणकारी महमूद अपने साथ अल्बरूनी-नाम के एक बड़े विद्वान् को लाया। अल्बरूनी ने हिन्द पर अरबी-भाषा में एक बड़ी पुस्तक लिखी। इस किताब में अल्बरूनी बार बार लोगों की हिन्दू-नाम से प्रशंसा करता है। इसमें हिन्दुओं के लिए लेशमात्र भी घृणा का भाव नहीं पाया जाता।

उत्पत्ति को छोड़ कर यदि हम इस शब्द के इतिहास को देखें तब भी यही प्रतीत होगा कि न केवल विदेशियों ने प्रत्युत देशवासियों ने भी हिन्दू-नाम का प्रयोग बड़े अभिमान के साथ किया है। चीनी यात्री ह्वेनसांग जो सातवें शतक में भारत में आया, इस शब्द पर टीका करते हुए एक जगह लिखता है कि हिन्दू-शब्द वास्तव में इन्दु है, जो चीनी-भाषा में इन्तु कहा जाता है और जिसका अर्थ चाँद है। जब सारी पृथ्वी पर अन्धकार छाया हुआ था, आकाश के तारों की मध्यम-सी झलक इस अन्धकार को न हटा सकती थी, तब इस देश ने पृथ्वी पर चाँद के समान प्रकाश फैला दिया। इसी लिए यहाँ के रहनेवालों को इन्दु (हिन्दु) कहते हैं और इस देश का नाम हिन्दुस्तान है। अपने देशवासियों में चन्दबरदाई ने अपनी पुस्तक पृथ्वीराजरासो में हिन्दू-शब्द का उल्लेख किया है। उसमें पृथ्वीराज 'हिन्दू-अधिपति' से संबोधित किये गये हैं। इसी प्रकार हम महाराना प्रताप के जीवन में क़मज़ोरी की एक घड़ी देखते हैं, जब महाराना ने अकबर को सुलह के लिए चिट्ठी लिख भेजी। बीकानेर का राजकुमार पृथ्वीराज अकबर के दरबार में रहता था। इस चिट्ठी को देखकर वह अकबर से कहने लगा कि यह पत्र प्रताप का

नहीं है। मैं प्रताप को एक पत्र लिख कर इसका पता लेना चाहता हूँ। यह पृथ्वीराज कवि था। उसने मारवाड़ी बोली में एक कविता-द्वारा महाराना से अपील की कि तुम अकेले हिन्दुओं की नाक हो। सारे देश के हिन्दुओं की आँखें तुम्हारी ओर लगी हैं। इस म्लेच्छ के तेज के सामने शेष सब मात पड़ गये हैं। केवल एक महाराना प्रताप है जो सूर्य्य के समान चमक रहा है। हिन्दू-जाति की लाज प्रताप के हाथ में है। क्या यह आश्चर्य नहीं है कि प्रताप भी जाति की लाज खो देने पर तैयार हो रहा है। इसी प्रकार जब औरंगज़ेब ने हिन्दुओं पर अत्याचार करना शुरू किया तब कहा जाता है कि उदयपुर के ही महाराना राजसिंह ने औरंगज़ेब को एक चिट्ठी लिख कर कहा कि ख़ुदा हिन्दू और मुसलमानों का एक ही है। हिन्दू मन्दिरों में उसे याद करते हैं, मुसलमान मस्जिदों में। साधु और ब्राह्मणों को, जो चिउंटियों के समान हैं, क्यों तंग करते हो? मैं हिन्दू-जाति का सरदार हूँ, इसलिए तुम्हारा कर्तव्य है कि पहले मुझ पर जज़िया लगाओ। राजपूतों के इतिहास में ये दृष्टान्त स्पष्ट बताते हैं कि समस्त जाति अपने आपको हिन्दू कहने में बड़ा अभिमान समझती थी।

इस नवीन युग में हिन्दू-शब्द पर दो ओर से आक्षेप किये जाते हैं। एक ओर तो कांग्रेस-वादी हैं जो कहते हैं कि हिन्दू एक फ़िरक़ा है, इसलिए इस शब्द को छोड़ कर एक नई जाति इंडियन या हिन्दुस्तानी बनानी चाहिए ताकि मुसलमान, ईसाई आदि भी इस जाति में सम्मिलित हो सकें। प्रथम तो मैं इस कथन को इसलिए व्यर्थ समझता हूँ कि बाईस-तेईस करोड़ संख्यावाली और एक बड़ा ऊँचे दर्जे का बूत रखने-वाली जाति को फ़िरक़ा या कॉम्युनिटी (Community) कहना निपट मूर्खता है। और, यह नीति बिलकुल ग़लत है कि मुसलमानों या ईसाइयों को जाति के अन्दर सम्मिलित करने के लिए हम एक महान् जाति के नाम और उसके अन्दर से जातीयता के भाव को नष्ट कर दें। इसके सम्बन्ध में दूसरी बात मैं यह कहना चाहता हूँ कि हिन्दुस्तानी या इंडियन नाम रखना फ़िज़ूल है, क्योंकि हिन्दुस्तान का अर्थ हिन्दुओं के रहने का स्थान है। 'हिन्दुस्तानी' का अर्थ हिन्दुओं के निवास-स्थान में रहनेवाले के हो जाते हैं और यह एक निरर्थक बात बन जाती है। वास्तव में हिन्दू और हिन्दुस्तानी का एक ही अर्थ है। जो मुसलमान हिन्दू या ईसाई कहलवाना नहीं पसन्द करते वे मुसलमान नाम छोड़ कर हिन्दुस्तानी कहलवाना भी न पसन्द करेंगे। इँग्लेंड के लोग अपनी जाति इँग्लिश बताते हैं, जर्मनी के जर्मन। यदि मुसलमान अपना पृथक् मज़हब रखते हुए अपनी जाति हिन्दू बताने लगें तो इसमें कोई हर्ज नहीं मालूम होता। लेकिन वे ऐसा तब करेंगे जब अपनी क़ौमियत या जातीयता को मज़हब से पृथक् करना सीखेंगे। जब तक उनकी क़ौमियत उनके मज़हब में है तब तक वे न हिन्दू-नाम स्वीकार करेंगे, न हिन्दुस्तानी। मैं यह बात कई अवसरों पर बता चुका हूँ कि अन्य देश, जैसे अमरीका आदि के रहनेवाले, 'हिन्दू' जाति का नाम समझते हैं। मैं जब अमरीका में था तब मुझसे एक अमरीकन सज्जन ने पूछा—क्या सभी हिन्दू मुसलमान होते हैं? कारण यह था कि वह पहले एक-दो हिन्दुस्तानी मुसलमानों से मिल चुका था जिन्होंने उसे बताया था कि वे

हिन्दुस्तान के रहनेवाले हैं और वह, जैसा कि अमरीका में नियम है, उन्हें हिन्दू समझता था।

दूसरा आक्षेप उन लोगों की ओर से किया जाता है जो यह कहते हैं कि 'हिन्दू' संस्कृत का शब्द नहीं है; हमारा वास्तविक नाम 'आर्य' है। इसके विषय में मैं यह कहना चाहता हूँ कि 'आर्य' जाति का नाम नहीं है, किन्तु उस नस्ल का नाम है जिसमें ईरानी, यूनानी, स्कैंडेनेवियन, जर्मन, अँगरेज़ आदि सम्मिलित हैं। इसी लिए हम भारतवासी इंडो-आर्यन अर्थात् हिन्दू-आर्य कहे जाते हैं। केवल आर्य कह कर हम अपनी जाति को अन्य जातियों से भेद नहीं कर सकते, इसके अतिरिक्त आर्य-शब्द वेदों तथा शास्त्रों में जहाँ कहीं आया वहाँ इसका अर्थ श्रेष्ठ मनुष्य है। वे मनुष्य को आर्य और दस्यु, अर्थात् अच्छे और बुरे दो भागों में बाँटते हैं। कल्पना-स्वरूप यदि हम जाति का नाम हिन्दू की जगह आर्य ही मान लें तो इसका फल यह होगा कि दक्षिणी भारत के समस्त द्रविड़ जो अपने आपको हिन्दू मानने पर तैयार हैं, आर्य-जाति से बाहर हो जायँगे। और, क्योंकि आर्य-समाज के प्रचार के कारण 'आर्य'-शब्द आर्यसमाजियों का-सा बन गया है इसलिए आर्यसमाजियों को छोड़ कर अन्य हिन्दू इस शब्द को ग्रहण करने पर तैयार न होंगे, मुसलमानों का तो कहना ही क्या जो अनापत्तिजनक 'हिन्दू'-शब्द से घबराते हैं।

—भाई परमानन्द

---

# सूक्ति-सुमन

( १ )

कल अलंकृति की कमनीयता,
विरल हो ध्वनि की कवि-चातुरी।
तदपि वांछित है वह विज्ञ को,
मधुर-साधु-रसा वचनावली ॥

( २ )

विविध भूपति-वंशज भूख से,
तिरमिरा मरते पर-दास हो।
फिर नहीं यह बात नई यहाँ,
श्वपच का पचका यदि पेट हो ॥

( ३ )

विचलता नर कायर युद्ध से,
सतत जीवन वांछित है जिसे।
सुभट है मन में यह चाहता,
मरण हो रण होकरके कभी ॥

( ४ )

गृह रहे जन से धन से भरा,
पर बिना शिशु के छवि-हीन है।
सलिल-पूरित भी मन मोहती,
न सरसी सरसीरुह के बिना ॥

( ५ )

नियम है पर-पीड़न के बिना,
न मिटती प्रभुता नरनाथ की।
प्रथम कारण है तब कार्य है,
न रजनी रजनीमुख के बिना ॥

( ६ )

पठित हैं निगमागम भी नहीं,
न हठयोग-क्रिया गुरु से मिली।
तदपि क्यों न निजेन्द्रिय-संघ का,
दमन हो मन हो यदि हाथ में ॥

( ७ )

सतत है यदि वांछित मित्रता,
न रिपुता जग में यदि चाहते।
प्रबल यत्न किया करिए सदा,
सुमन-सा मन साधु बना रहे ॥

( ८ )

यह नहीं महिमा कलिकाल की,
सफलता यह पौरुष की नहीं।
हृदय में अपने सच मानिए,
नियति से पति-सेवित है रमा ॥

( ९ )

परम पावन भारत-भूमि के,
अजित आर्य्य-कुलोद्भव वीर हो।
कपि-मुखाकृति दानव देख के,
शरभ-सा रभसा मत भागिए ॥

( १० )

दनुज के दल से दलिता हुई,
पर-अधीन हुई अति दीन है।
तदपि निद्रित होकर है पड़ी,
न जगती जगती गत लज्ज हो ॥

( ११ )

सुघर भी रचना यदि हो गई,
न तब भी मिलता फल काव्य का।
सुकवि की यदि निश्चल सात्त्विकी,
प्रकृति हो कृति हो तब कीर्तिदा ॥

—रामचरित उपाध्याय

# ब्रेज़िल के बोरोबोरो लोग

[ संसार के प्रायः सभी देशों में कुछ न कुछ जंगली जातियाँ अवश्य पाई जाती हैं। हमारे भारत में भी इनका अस्तित्व है। परन्तु अफ़्रीका और अमरीका के देश में बहु-संख्या में निवास करती हैं। इस लेख में ब्रेज़िल की एक ऐसी ही जाति का परिचय दिया गया है। आशा है, यह पाठकों को रुचिकर प्रतीत होगा। ]

जंगली मनुष्यों की जातियाँ संसार के प्रायः सभी देशों में पाई जाती हैं, परन्तु अफ़्रीका, अमरीका तथा प्रशान्त महासागर के टापुओं में उनके जो विशाल समूह निवास करते हैं वे ही वास्तव में जङ्गली जातियाँ हैं। अमरीका के ब्रेज़िल-राज्य में जो जङ्गली जातियाँ निवास करती हैं उनमें से कुछ उत्तरी मैटोग्रोसो में निवास करती हैं। इस अञ्चल की असभ्य जातियों में से जो अभी स्वाधीन हैं और स्वच्छन्दता के साथ मनमाने ढङ्ग से अपने निवास के भू-भागों में विचरण करती हैं उनमें एक जाति को वहाँवाले 'बोरोबोरो इंडियन' कहते हैं। मैटोग्रोसो नाम के जङ्गली प्रदेश की यात्रा करके साहसी खोजी फ्रैंसिस गो स्मिथ ने इन लोगों के शील-स्वभाव और रहन-सहन का ज्ञान प्राप्त किया है। उनके सम्बन्ध में उन्होंने एक लेख लिखा है जो मनोरञ्जक है। वे लिखते हैं—

जब बोरोबोरो गाँव में जा पहुँचा था तब वहाँ मुझे एक भारी सङ्कट से सामना करना पड़ा था। उस दिन दोपहर के बाद मालूम हुआ कि मेरे साथ के लोग बोरोबोरो कल से पहले न पहुँच सकेंगे। अभी वह तीन-चार लीग आगे था। हम लोग १७ दिन से यात्रा में थे। लगभग ३०० मील की यात्रा कर चुके थे। कुछ समय तक एक डाकू-दल का साथ रहा। वह हीरे की खानों में रहनेवाले मेरे एक मित्र के लूटने की घात में था। बाद को वह दक्षिण ओर बस्तियों में डाका डालने को मुड़ गया। इधर कई दिन से हम अकेले यात्रा कर रहे थे। मैं एक जन-शून्य देश में यात्रा कर रहा था। अन्त में हमने उस अञ्चल में प्रवेश किया जहाँ ज़ङ्गली जातियाँ निवास करती हैं। मैंने अपने साथी और इंडियन पथ-दर्शक को नौकरों और माल-असबाब के साथ आने को कहकर बोरोबोरो लोगों के देश में अकेले ही जाने का निश्चय किया। घोड़े के लिए मार्ग कष्टकर था। उच्च समभूमि की चढ़ाई थी, दोपहर का समय और चारों ओर सुनसान। उच्च समभूमि के ऊपर जाने को मार्ग का जो चिह्न सा जान पड़ता था वह लम्बी घास और झाड़ियों के बीच से गया था। यह पहाड़ी झरनों के ऊपर से टेढ़ा-मेढ़ा होकर गया था। चारों ओर अपार जङ्गल था। चलते चलते मुझे राह भूल जाने का सन्देह हुआ। तब यह विचार मन में उठा कि ऐसी दशा में

रात में कहीं अकेले ठहरना पड़ेगा। दिन भर से कुछ नहीं खाया था। शिकार करने की घात में लगा। इसी समय मेरे आगे से एक हिरन चौकड़ी भरता हुआ आ निकला। मैंने बन्दूक़ सँभाली और घोड़े पर से ही दाग़ दी। निशाना ख़ाली गया। हिरन बन्दूक़ की आवाज़ से चौंक कर खड़ा हो गया। इतने में मैंने घोड़े पर से उतर कर दूसरी बार गोली चलाई। हिरन गिर गया। उसे उठा कर अपने पीछे घोड़े पर बाँध दिया। इसके बाद रवाना हुआ। मैंने समझा, शायद आधी रात तक कहीं कोई गाँव मिल जाय।

घण्टे भर में सूर्यास्त हो गया। अन्धकार होने पर आकाश तारों से जगमगाने लगा। अब मुझे दिशा का ज्ञान नहीं रहा। अन्त में मुझे कुत्ते का भूँकना सुनाई दिया। मेरे घोड़े ने अपने कान ताने और वह चल पड़ा। थोड़ी ही देर में भूँकना अधिक स्पष्ट सुनाई देने लगा, इससे अन्धकार में चलने में सुविधा हो गई। इस समय मुझे एक दूसरी आवाज़ सुनाई दी। वह आवाज़ ऐसी थी, मानो जङ्गल का भूत इंजन की सीटी की नक़ल कर रहा हो। थोड़ी देर के लिए मैंने लगाम खींच ली। थका तो था ही, उस अलौकिक आवाज़ को सुनकर मैं चकित हो गया। इसके बाद मुझे वह आवाज़ मनुष्य की आवाज़ मालूम हुई। इसके साथ ही मुझे लकड़ी के धुएँ की बू का भी ज्ञान हुआ। कुछ दूर और आगे जाने पर मुझे वृक्षों के बीच से आग की दमक दिखाई पड़ी। यह देखकर मैं घोड़े से उतर पड़ा और घोड़े को लिये चुपचाप उस खुली हुई जगह के किनारे की ओर चला।

यद्यपि मैं सतर्कता से बहुत धीरे-धीरे वहाँ गया था, पर मैं छिपा नहीं रहा। ज्यों ही मैंने सघन वृक्षों की डालियों को चीर कर उस खुली जगह में पैर रक्खा, कुत्तों का एक झुण्ड गुर्राता हुआ मेरी ओर दौड़ पड़ा, साथ ही आग के प्रकाश में चमकती हुई सैकड़ों आँखें भी मुझ पर आ पड़ीं। वह दृश्य कभी नहीं भूल सकता। उस छोटी सी खुली जगह में वृत्त के रूप में इंडियन लोगों के तम्बू तने थे। इस वृत्त के बीच में एक बड़ा-सा खुला बँगला था। यह ताड़ के पत्तों से छाया हुआ था। यहाँ इंडियन योद्धा बैठे थे, जो अपना अपना मुँह मेरी ओर किये देख रहे थे। तम्बुओं के आगे आग के पास उनके स्त्री-बच्चे बैठे थे। योद्धाओं के एक किनारे उनका सरदार चुप बैठा था। स्त्रियाँ कपड़े पहने थीं। इससे मुझे मालूम हो गया कि ये बोरोबोरो लोग हैं, जो लड़ाकू नहीं हैं। अतएव मैं मैदान में आगे बढ़ा। मैंने अपना हाथ बढ़ा दिया था, जिससे वे मुझे अपना मित्र समझें।

योद्धा मेरे चारों ओर आकर खड़े हो गये और मित्र-भाव से रुक-रुककर बातें करने लगे। कई एक युवकों ने मेरा घोड़ा भी थाम लिया। उनके इस प्रकार के शान्ति-पूर्ण व्यवहार से मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। इतने में ही एकाएक मैंने क्रोध की चिल्लाहट, कुछ भयङ्कर बुदबुदाहटें और उनके बाद 'पोबोगो' की आवाज़ सुनी। सभी ने बारी बारी से 'पोबोगो' की प्रतिध्वनि की। मेरे पास जो लोग मित्रभाव से खड़े थे वे एकाएक क्रुद्ध हो उठे। धमकाते हुए उन्होंने मुझे पकड़ लिया और क्रोध से मेरी ओर घूरने लगे। लोगों के क्रोध से चिल्ला उठने पर हो-हल्ला मच गया। इस परिवर्तन को देखकर मैं स्तब्ध-सा होकर एक एक के चेहरे को देखने लगा, पर किसी के चेहरे से उनके इस व्यवहार का कारण नहीं व्यक्त होता था।

इसी समय उन इंडियनों की भीड़ को चीर कर एक कैथोलिक पादड़ी बलपूर्वक बीच में घुस आया। वह नंगे सिर और नंगे पैर था। जो काली पोशाक वह पहने था उसे मानो वह जल्दी में पहन कर आया था। उसने कहा—स्वागत है। चुप रहो। ये सब चेले हैं। मैं उन्हें ठीक किये लेता हूँ। इस सबका कारण हिरन है।

मैं और भी अधिक चक्कर में पड़ गया। परन्तु मैं चुपचाप भेड़ की तरह खड़ा रहा। और वह पादड़ी बोरोबोरो भाषा में सरदार और उसके अनुयायियों से बातें करने लगा। पादड़ी के समझाने से वे धीरे धीरे शान्त हो गये। उसने कहा कि मैं बड़ा आदमी हूँ और मित्रभाव से दूर से आया हूँ। मुझे उनके रीति-

उस नहीं मालूम हैं, अतएव हिरन मार डालने का अपराध क्षमा के योग्य है। इसके बाद उसने उन्हें अपने अपने ख़ेमे में चले जाने को कहा। उसने कहा कि सवेरे इस मसले पर विचार होगा। धीरे धीरे वे लोग चले गये। दो इंडियनों ने मेरे घोड़े की ज़िम्मेदारी अपने ऊपर ले ली। इसके बाद वह मुझे अपने ख़ेमे में लिवा ले गया। उसने भीतर जाकर कहा—इन सबकी निगाहों में आज तुम नर-भक्षी के सिवा और कुछ नहीं थे। हिरन को ये लोग पवित्र मानते हैं। ये अपने को उसका वंशज मानते हैं। तुमने खाने के लिए उन्हीं की जाति के जीव को मार डाला है, इससे ये बहुत क्रुद्ध हो गये हैं। इनके ये मिथ्या विचार मुश्किल से दूर होते हैं। मैं इनको सत्य-धर्म का उपदेश करता हूँ और ये उसका पालन भी करते हैं। परन्तु ऐसी घटना के समय पुराने संस्कारों का जाग्रत हो उठना बहुत सम्भव है। ठंडा दाल-चावल खाकर मैं पड़ रहा। पादड़ी ने बोरोबोरो लोगों की उत्पत्ति-कथा का वर्णन किया। उसने कहा कि ये लोग विश्वास करते हैं कि किसी समय जब प्रलय हुआ तब एक इंडियन और एक हिरन पहाड़ पर जा चढ़ने से बच सके थे। उन्हीं दो से ये अपनी उत्पत्ति मानते हैं। वे कहते हैं कि कई पीढ़ियों तक उनके पूर्वजों के सींग और देह में बाल होते थे। इससे ये लोग हिरन का मारना बड़ा भारी पाप समझते हैं। यदि इनका कुत्ता हिरन को मार डालता है तो पहली बार ये उसकी दुम काट डालते हैं। दूसरी बार उसके वैसा करने पर उसके कान काट लिये जाते हैं। परन्तु यदि तीसरी बार फिर हिरन मारता है तो उसके पैर काट डाले जाते हैं और वह मर जाता है। ये हिरन को खाना नर-मांस-भक्षण के तुल्य समझते हैं।

दूसरे दिन मैंने अपने अपराध का प्रायश्चित्त किया। मैंने उनके सरदार को अपने गले का लाल रङ्ग का कपड़ा नज़र कर दिया। बोरोबोरो लोगों को लाल रङ्ग बहुत पसन्द है। अगर लाल रङ्ग के कपड़े उन्हें दिये जावें तो शायद वे लोग भी कपड़े पहनना पसन्द कर लें। परन्तु वे कपड़े सिर्फ़ पादड़ियों के ही सामने पहनते हैं। इन लोगों ने उन पर अपना प्रभाव-सा जमा लिया है। उनके उपर्युक्त पादड़ी महोदय उनके साथ बड़ी नर्मी का व्यवहार करते थे। ब्रेज़िल में इन पादड़ी महोदय को अपने काम में बड़ी सफलता मिली है। ये उन्हें खेती करना सिखाते हैं, पर खेतों में काम करने को उन्हें बाध्य नहीं करते हैं। प्रत्येक रात को सभा-गृह में सरदार दूसरे दिन के लिए प्रत्येक को काम बाँटता है। शिकार करना, मछली मारना, गोली चलाने का अभ्यास करना, हथियारों को साफ़ करना, खेतों में काम करना आदि उनके काम हैं। योद्धा हफ़्ते भर में सिर्फ़ एक दिन खेतों में काम करता है। परन्तु स्त्रियाँ नित्य खेतों में काम करती हैं। वे अपने बच्चे अपनी पीठ पर ताड़ के पत्तों की झोली में लिये रहती हैं और अपना काम करती रहती हैं। बच्चा मा के कन्धों पर हाथ रक्खे उससे चिपटा रहता है।

बोरोबोरो योद्धा को हफ़्ते में छः घण्टे काम करने पर पादड़ी महोदय काग़ज़ का एक पुर्ज़ा दे देते हैं। जितने अनाज, चावल, दाल, शक्कर या आटे की उसे ज़रूरत होती है वह उसे उस काग़ज़ के दिखलाने पर मिल जाता है। पादड़ी लोग स्वयं भी इंडियनों के साथ खेतों पर काम करते हैं। परन्तु कभी कभी योद्धा महीनों के लिए शिकार खेलने को चले जाते हैं। उस समय वे कपड़े उतार कर वृक्षों पर टाँग देते हैं और लौटने तक बिलकुल नङ्गे रहते हैं।

तीस वर्ष पहले ये बोरोबोरो लोग युद्ध-प्रिय और बड़े धोखेबाज़ थे। उस समय संख्या में ये बीस हज़ार रहे होंगे। ये तब बस्तियों पर धावा करते थे और पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों को मार डालते थे। ये मारे हुए लोगों के जबड़े की हड्डियाँ अपने साथ उठा ले जाते थे। इनको स्त्रियाँ अपनी कण्ठियों में पहनती थीं।

बोरोबोरो लोग पाँच फ़ुट आठ इंच से लेकर छः फ़ुट तक ऊँचे होते हैं। इनके काले बाल सीधे होते हैं और काली आँखें तिरछी, दाँत पूरे और मंगोलों जैसी चिपटी नाक होती है। ये बड़े भयङ्कर होते हैं। प्रवासियों में तो इन लोगों ने तहलका मचा दिया होगा। यद्यपि

ये अब कुछ कपड़ा पहनने लगे हैं, तो भी दूसरी जङ्गली जातियों की भाँति उरूकू रस से अपनी देह को अब तक रँगते हैं।

पचीस वर्ष पहले इन लड़ाकू लोगों के बीच पादड़ी लोग पहुँचे थे। उनकी निर्भीकता और काली भड़कीली पोशाक का इन पर बड़ा प्रभाव पड़ा। बोरोबोरो लोगों ने उनको किसी तरह की क्षति नहीं पहुँचाई। और अब तो ये लोग उनके भक्त हो गये हैं। गत २५-३०वर्ष के भीतर कई एक ब्रेज़िल-निवासियों को इन लोगों ने मार डाला है, पर अब तक एक भी पादड़ी नहीं मारा गया है।

एक्सइंगू और रिओडास मोर्टीस नामक नदियों के बीच के भू-भाग में उत्तर ओर इंडियन लोगों की एक बड़ी भयङ्कर जाति निवास करती है। शायद ही किसी ने इस जाति के इंडियन को कभी देखा हो। वर्षों से बोरोबोरो के पादड़ी उनसे परिचय प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहे हैं। उनके देश की सीमा में घुसकर ये उनके लिए भेंट-स्वरूप चाकू, मालायें और शक्कर रख आये हैं। दूसरे दिन वहाँ देखने पर चीज़ें तो ग़ायब मिलीं, पर कोई व्यक्ति धन्यवाद देने को उपस्थित नहीं मिला। इस जाति के इंडियन अब तक भी बोरोबोरो लोगों का निर्दयता से वध करते हैं। मेरे बोरोबोरो लोगों के गाँव में पहुँचने के पहले बोरोबोरो लोग शिकार को गये हुए थे। उस समय उनकी जाति की दो कन्यायें ज़हरीले तीर चला कर मार डाली गई थीं। वे जंगल में फल-फूल लाने गई थीं।

मैटोग्रोसो प्रदेश में जिस सभ्यता का प्रचार है उससे बोरोबोरो लोगों का अहित हो रहा है। उनमें बाल-वध का प्रचार है। पिछले पचीस-तीस वर्षों के भीतर उनकी बीस हज़ार की संख्या घटकर लगभग एक हज़ार आ पहुँची है। बोरोबोरो स्त्रियाँ प्रसव के समय जङ्गल में एकान्त-स्थान की खोज करती हैं। पर इन्हीं के समान करज-जाति के इंडियनों में सन्तान-प्रसव सर्वसाधारण के तमाशे की बात है। सौभाग्य से यदि नवजात शिशु जीने दिया गया तो पहले उसे नदी में धोते हैं। इसके बाद उसकी देह में गोंद का लेप कर उस पर तरह तरह के रंगों के पर चिपका देते हैं। यह क्रिया कर चुकने पर मा बच्चे को अपने पति को प्रदान करती है।

अब पादड़ियों ने बोरोबोरो लोगों के लड़कों-लड़कियों के पढ़ाने-लिखाने की व्यवस्था की है। वे इनकी निगरानी में पढ़ना-लिखना और सीना-पिरोना सीखने लगे हैं। इनके प्रयत्नों से उनमें अच्छी अच्छी आदतें आने लगी हैं और वे सभ्यता की बातें जानने लगे हैं। परन्तु उनमें बड़े लोग मूर्ख ही हैं। यद्यपि वे प्रार्थना के समय उपस्थित होते हैं, पर वह उनके लिए उसी प्रकार व्यर्थ है जैसे हमारे लिए उनका नृत्य व्यर्थ है। उनका शब्द-ज्ञान भी परिमित है। कुछ ही कोड़ी शब्दों का वे प्रयोग करते हैं। वे बीस तक ही गिन पाते हैं। गिनती करते समय वे अँगुलियों की सहायता लेते हैं। बीस से अधिक संख्या के लिए वे 'मकामरागा' अर्थात् अनेक का प्रयोग करते हैं और उसके लिए सिर के बालों में अँगुली डालकर सङ्केत करते हैं। अपनी मूँछों, भौंहों और पलकों के बाल उखाड़ने के लिए वे चिमटी का उपयोग करते हैं तथा हाथों और छाती के बाल सीप की धार से कष्ट के साथ काट कर बनाते हैं। पति के मरने पर स्त्रियाँ अपने सिर के बाल कटवाती हैं। बच्चों के भी बाल सीप की धार से ही काटे जाते हैं।

बोरोबोरो लोगों में मृतक-संस्कार की विचित्र प्रथा है। वे मृतक का मांस काट कर जला देते हैं और कंकाल पर पर चिपका कर उसे नदी में छोड़ देते हैं। उनका विश्वास है कि जीव हड्डियों में रहता है। ये लोग अपनी जाति का नाम 'ओटरी-युगू-डोगे' बतलाते हैं। इस शब्द का अर्थ है 'वे लोग जो चित्तेदार मछलीवाली नदी के किनारे पर रहते हैं।' विवाह की उम्र आने के पहले ही इस जाति के युवक को शिकार में अपनी शक्ति का परिचय देना पड़ता है। शक्ति का परिचय देने से इस बात का प्रमाण मिल जाता है कि वह अपनी स्त्री का निर्वाह कर सकेगा। जगुआर का शिकार करने में ही उनकी शक्ति की परीक्षा होती है। जिस स्त्री के जगुआर के दाँतों की कण्ठी होती है

अपने पति के बल का गर्व करती है। जगुआर का शिकार करना उनमें बड़ी वीरता की बात समझी जाती है। इसके शिकार में जब कोई युवक अपनी शक्ति का परिचय देता है तब उसके माता-पिता उसके लिए पत्नी चुनते हैं। यदि वह कन्या नहीं राज़ी होती तो कन्या के माता-पिता उसे यहाँ तक तंग करते हैं कि अन्त में वह उसके साथ विवाह करने को राज़ी हो जाती है। उसके अपनी रज़ामन्दी सूचित करने का ढङ्ग बड़ा विचित्र है। इसके लिए जो ख़ीमा नियत कर दिया जाता है उसमें वह अपने भविष्य पति की कुछ चीज़ें लेकर चली जाती है। इसके बाद उसका पति उस ख़ीमें में चला जाता है, और वे दोनों पति-पत्नी-रूप से रहने लगते हैं। प्रायः सुख के साथ उनका जीवन व्यतीत होता है। परन्तु जब कोई सन्तान होती है तब पति अपनी पत्नी का बड़ा आदर करने लगता है और लड़ाई-झगड़े सदा के लिए बन्द हो जाते हैं।

नव-वधू भोजन बनाती है। परिश्रम-साध्य सारे काम उसी को करने पड़ते हैं। यात्रा के समय उसे अपने पति की सारी चीज़ें और घर के कुछ बर्तन लाद कर ले चलने पड़ते हैं। उसको अपने पति के लिए सदा भोजन तैयार रखना पड़ता है। भूखा होने पर उसे भोजन सदा तैयार मिलना चाहिए। बोरोबोरो लोग नियत समय पर भोजन नहीं करते। अतएव स्त्री को अपने पति के लिए दिन या रात में किसी भी समय खाने के लिए कुछ गरम चीज़ें तैयार रखना ज़रूरी है। साथ ही उसे घर में काफ़ी मात्रा में नशीले पेय भी प्रस्तुत रखना पड़ता है। स्त्रियाँ अनाज की शराब बना लेती हैं। पर बोरोबोरो लोगों को ताड़ी से बड़ा प्रेम है। वे खजूर के वृक्षों पर चढ़ जाते हैं और वहाँ पत्तियों पर बैठकर मौज के साथ उसका रस तिनके से पीते हैं। इसके लिए सवेरे वृक्ष पर चढ़कर उसकी पत्तियाँ झुका दी जाती हैं और उसके सिरे में सीप से एक छोटा सा गड्ढा खोद दिया जाता है। इसमें रस अपने आप जमा होकर तप्त होता रहता है। नृत्य के समय वे ताड़ी ख़ूब पीते हैं।

बोरोबोरो लोगों का नृत्य उन्हीं की-सी दूसरी जातियों के नृत्यों की अपेक्षा अधिक अच्छा होता है। वे रात में अपना प्रसिद्ध नाच नाचते हैं। यह नाच मण्डल बनाकर नाचा जाता है। उस समय वे कभी कभी चेहरे भी पहनते हैं तथा अपने ख़ूब रंगे हुए शरीर पर जुगुआर की खाल भी पहनते हैं? वे नाचते समय ख़ुद ही ताल भी दे लेते हैं। इसके लिए प्रत्येक नाचनेवाला कंकड़ों से भरा हुआ एक तोंबा लिये रहता है, जिसे वह लय के साथ हिलाता रहता है। कभी कभी वे नाचते समय चक्र लेकर भी नाचते हैं। इसका व्यास तीन फ़ुट से पाँच फ़ुट तक होता है। यह खजूर की पत्तियों से बुनकर बनाया जाता है। इसमें भी कंकड़-पत्थर भरे रहते हैं। सौ पौंड से भी अधिक वज़न का यह होता है। इसे वे सिर पर रख कर नाचते हैं। इस नाच में इन लोगों को बड़ा श्रम करना पड़ता है।

बोरोबोरो लोगों की आदतें लड़कों की-सी होती हैं। उनके धार्मिक विश्वास भी सीधे-सादे हैं। पादड़ी लोग इनको सभ्यता की दीक्षा देने में बड़ा परिश्रम कर रहे हैं। उन्हें अपने प्रयत्न में काफ़ी सफलता भी मिली है।

—शिवनारायणलाल

# सुख की खोज

( १ )

वह थी अनिन्द्य सुन्दरी। परन्तु उसकी तक़दीर थी बिलकुल फूटी, क्योंकि उसका पति था घोर शराबी। वह लखनऊ में किसी दफ़्तर में नौकरी करता था। स्वामि-सुख से चिरवञ्चिता दुःखी नारी अपना दुःख-दर्द क्षुद्र छाती के अंदर यथासाध्य दवा कर घर के कामों में अपने को डुबाये रख सकती थी। पर काम भी तो अधिक नहीं था। इसलिए उसकी सुप्त-कामना पति-सेवा के लिए सहस्र अभिलाषाओं के साथ हृदय के गुप्तस्थान से निकल पड़ती, इसके साथ ही उसके छोटे से उर को रौंद डालती। पति की एक मधुर मुसकान देखने के लिए, उनके अधरों के एक सुमिष्ट शब्द सुनने के लिए, उनके मुखारविंद की एक तृप्तिकर झलक से गौरवान्वित होने के लिए उसका प्यासा हृदय व्याकुल हो उठता। परंतु थी तो वह नारी—अबला, इसी लिए किसी बात में उसका जोर या हठ नहीं चलता था। अतएव मुँह पर मुहर लगा कर उसको सब कुछ सहन करना पड़ता।

× × × ×

लखनऊ की एक छोटी सी गली के अंदर एक होटल था। कम तनख़्वाहवाले क्लार्क उस होटल में आश्रय पाते थे। होटल में एक छोटी-सी कोठरी थी। उसमें एक गोल मेज़ के उपर धूमायमान चाय का एक प्याला रक्खा हुआ था और उसके सामने एक टूटी सी कुर्सी पर एक युवक बैठा था। चाय ठंडी हो रही थी, किन्तु युवक हाथ पर सिर रक्खे गंभीर चिंता में मग्न था।

'क्यों, भई, किस उधेड़बुन में पड़े हो?'—कहता हुआ और एक विलासी नवयुवक उस कोठरी में दाख़िल हुआ।

प्रथमोक्त युवक ने अपना चिंताक्लिष्ट मुँह उठा कर विषण्णभाव से जवाब दिया—किसी में नहीं।

"तब उदास बैठे कैसे हो? कोई कारण तो अवश्य होगा।"

"नहीं, कारण कुछ भी नहीं है। आज मेरी मानसिक दशा अच्छी नहीं है।"

"फिर क्या नहीं चलोगे?"

"नहीं।"

"गुलबदन बीबी तो बाट—"

"अरे यार, बस रहने दो। हाथ जोड़ कर कहता चाहता हूँ; और कुछ न कहना—उन सब बातों की चर्चा आज मेरे सामने न करना। समझे हो न?—आज मेरी मानसिक दशा एकदम ख़राब है।"

"मैं फिर अकेला ही जाता हूँ।" यह कह कर वह विलासी युवक उसकी ओर एक तीखी चितवन से देखकर बाहर चला गया।

यह युवक चुप-चाप बैठा ही रहा।

( २ )

स्टेशन के प्लेटफ़ार्म के पास जब लखनऊ से आनेवाली 'एक्सप्रेस' लम्बी यात्रा की थकान के कारण एक भीषण गर्जन कर खड़ी हुई, उस समय भी संध्यादेवी अवनीतल पर अवतीर्ण नहीं हुई थीं। एक युवक ने गाड़ी से उतर कर एक बार चारों तरफ़ निगाह दौड़ाई कि कहीं किसी ने उसे देख तो नहीं लिया है; फिर तुरन्त ही स्टेशन के बाहर आकर खड़ा हो गया।

सूर्य भगवान् अपनी मरीचिमाला खींच कर अस्ताचल के पीछे छिप रहे थे; परंतु उस समय भी उनकी सेंदुर-सी अनंत लाल किरणें वृक्षों के श्रृंगों पर 'आँखमिचौनी' खेल रही थीं। युवक कुछ दूर जाकर एक छोटी-सी झाड़ी में छिप कर बैठ गया। अपने को आज महा अपराधी समझ कर वह लोक-चक्षु की आड़ में रहना चाहता था। वह मद्यसेवी है, वेश्यासक्त है, उसने इस संसार के एक निरपराधी प्राणी के जीवन को निष्फल कर दिया है, यही विचार रह-रह कर उसके कलेजे को मसोस रहे थे और वह आत्मग्लानि तथा पश्चात्ताप से गड़ा जा रहा था। इसी लिए संसार के सामने वह अपने को दंडित अपराधी-सा समझता था—वह चाहता था आत्म-गोपन।

× × × ×

वह जिस समय अपने निभृत स्थान से निकल आया, उस समय पहर रात हो गई थी; चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार था। ग्राम्य-पथ सम्पूर्ण जनशून्य था। किन्तु कहीं कुछ शब्द होने से ही वह फिर जल्दी से अपने को पथ के बग़ल में छिपा रखता। ज्यों ज्यों वह अपने मकान के समीप पहुँचता जाता था, त्यों त्यों उसकी छाती ज़ोर ज़ोर से धड़कने लगती थी।

"किन्तु वह—वह रोशनी है न?" बहुत दूर पर एक धुँधला-सा दीपक टिमटिमा रहा था।

"भगवन्, क्या तुम—?"

युवक की हिम्मत ने अब जवाब दे दिया। उससे आगे बढ़ना कठिन हो गया। वह चार क़दम आगे बढ़ता था, फिर हाँफ कर बैठ जाता था। बहुत मुश्किल से दरवाज़े के पास पहुँच कर वह धम से गिर पड़ा। मुँह से सिर्फ़ ये शब्द निकले—

"गंगा—ओफ़्।"

गंगा अपनी निराशा-मथित छाती को तकिये से दबाये सोच रही थी अपने उपेक्षित जीवन की एक अतीत घटना को। जिस दिन उसके पति ने आदरपूर्वक दाम्पत्य-प्रेम से विह्वल होकर उसको अपनी छाती से लगा कर कहा था—"गंगा, तुम बहुत ही सुंदर हो। तुम्हारा स्थान चिर काल के लिए ऐसे ही मेरे वक्षःस्थल पर विराजमान रहेगा।"

इसी सुषमामय स्वप्न की मधुर स्मृति ने गंगा के शून्य हृदय को परिपूर्ण कर रक्खा था।

ऐसे समय में उसका चिर परिचित-सा पुराना 'गंगा' सम्बोधन उसके कानों में बज उठा। उसने सोचा, कदाचित् यह स्वप्न है। परंतु दरवाज़े के पास एक भारी वस्तु के गिरने की ध्वनि से चौंक कर उसने रोशनी लेकर दरवाज़ा खोलकर देखा।

दीपक का प्रकाश युवक के मुख पर गिरा। आश्चर्यचकित लावण्यमयी ललना दीपक को और भी नीचा करके युवक के मुख के पास ले आई—"यह क्या देख रही हूँ, भगवन्!"

गंगा की आँखें आनंद से सजल हो गईं, उसका कंठ गद्गद हो गया, उसकी ज़बान शिथिल हो गई, उसका बाह्यज्ञान लुप्त हो गया, और वह दो-तीन मिनट तक पत्थर की मूर्ति की नाईं खड़ी रही।

( ३ )

"गंगा।"

"जी।"

आगे वार्तालाप नहीं हो पाया—दोनों प्राणियों के मुँह से शब्द ही नहीं निकला। आज भाषा को भी हार माननी पड़ी; हृदय की बात मुख से निकल नहीं सकी, दृष्टिविनिमय तो हो गया। युवती अपने लज्जापूर्ण चेहरे को पृथ्वी पर गड़ाये खड़ी रही। और युवक अपनी आकुल प्यासी दृष्टि के सहारे अपनी प्रेममयी स्त्री की सौन्दर्य-सुधा आकंठ आस्वादन करता रहा। उसने देखा, यह अर्द्ध-प्रस्फुटित पवित्र कमल-कली की भाँति क्षुद्र मनोहर छबि कैसी अनुपम सौन्दर्य-मण्डित है। सत्यदेव उसकी सुंदरता पर पहले भी मुग्ध था, परंतु गंगा में जो इतनी विचित्र विशेषता थी उसे सत्यदेव ने स्वप्न में भी कभी नहीं सोचा था। इसी लिए उसकी तरफ़ उसकी टकटकी लगी रही।

× × ×

"गंगा, बहुत ही सुंदर हो तुम।"

गंगा का सिर नीचे की तरफ़ और भी झुक गया, और वह जवाकुसुम से लाल ओठों का एकांश दाँत से दबा कर पैरों के नखाग्र से धरती कुरेदने लगी। पुनः अस्फुट स्वर से बाधा देकर वह बोली—"नहीं, नहीं, ऐसा न कहना। मैं तो आपके नाख़ून के भी योग्य नहीं हूँ।"

दूर से आये हुए गीत के अस्पष्ट शब्द-सा गंगा का वाक्य कानों में पहुँचने से सत्यदेव चौंक पड़ा। उसने सोचा, 'सुख की टोह में मैंने इतने दिन नरक में ही गँवा दिये।'

"गंगा, मुझे क्षमा करो।"

'ऐ मेरे साधन के धन, मेरे सर्वस्व, मेरे सर्वाधार! आप आज यह क्या कह रहे हैं? मैं तो आपकी दासी होने के भी अयोग्य हूँ। मैं क्या आपको क्षमा कर सकती हूँ? आप जो आज दूर शहर से मेरे पास लौट आये हैं, यही मेरा परम सौभाग्य है।' मन ही मन यह सोच कर गंगा ने संकोच के साथ कहा—"ऐसा न कहिए।"

फिर सजल नयनों से युवक के चरणों पर लोटती हुई उसने कहा—"मेरा स्थान तो यहाँ है।"

युवक तुरंत उसको उठा कर गाढ़ आलिंगन में बद्ध करके स्नेहपूर्ण, आनन्दातिशय गद्गद कंठ से बोला—"बहुत ही रमणीय तुम, गंगा, बहुत ही रमणीय हो! तुम्हारा स्थान वहाँ नहीं—मेरे इस वक्षःस्थल के ऊपर है। मोह से—भ्रम से—असमर्थ के समान इतने दिन तक मृग-तृष्णा के पीछे पीछे दौड़ा था, किन्तु अब उसका पता लग गया है। केवल पता ही नहीं लगा है, बरन ऐसे निविड़भाव से लगा है कि अब तुमको मुझसे छीन कर ले जाना मानो मेरी छाती फाड़ कर हृत्-पिंड को ज़बरदस्ती उखाड़ लेना है। जानती हो, मैं अचानक क्यों आज ऐसी

रात में आया हूँ ? तुमको ताज्जुब में डालने के लिए नहीं। बहुत ही बुरी ख़बर पाकर आया हूँ। सोहन ने मुझसे कहा कि तुमने आत्महत्या की है। तिवारीजी के लड़के रामेश्वर से उस दिन उसकी सहसा मुलाक़ात हुई थी। वह जल्दी जल्दी कहीं जा रहा था। वह सिर्फ़ इतना ही कह पाया था कि 'सत्यदेव की स्त्री गले में रस्सी का फंदा डाल कर मर गई है।' यह ख़बर सुनते ही दुनिया मेरी आँखों से अँधेरी हो गई, ग्लानि और क्षोभ से मेरा चित्त भर गया। मैं उसी दिन चल खड़ा हुआ। सोचा—और क्यों? मकान पर रह कर खेती-बारी करूँगा और वहीं पड़ा रहूँगा। शायद किसी दिन अकस्मात् तुम्हारी प्रेतात्मा से ही भेंट हो जाय।

"मैं नहीं मरी हूँ सही, परंतु आपके ही नाम के मिश्राने के ठाकुर साहब के लड़के की स्त्री ने कल आत्महत्या की है।"

सत्यदेव ने आश्वासन की साँस भर कर गंगा का एक हाथ अपने हाथ में दबा कर, दूसरा हाथ उसके कंधे पर रख कर, उसे अपनी छाती से लिपटा लिया। गंगा के कपोल लाल हो गये।

पति के वक्षःस्थल पर सिर रख कर छोटी-सी बालिका के समान गंगा ने कहा—मैं जानती थी कि आप अवश्य आने की कृपा करेंगे, इसी लिए मैं आपको देखकर तनिक भी विचलित नहीं हुई थी।

उस समय नक्षत्र-खचित श्याम नभो-मंडल में शुक्ल-पक्ष की द्वादशी के सहृदय निशानाथ हँस रहे थे।

—कालीचरण चटर्जी

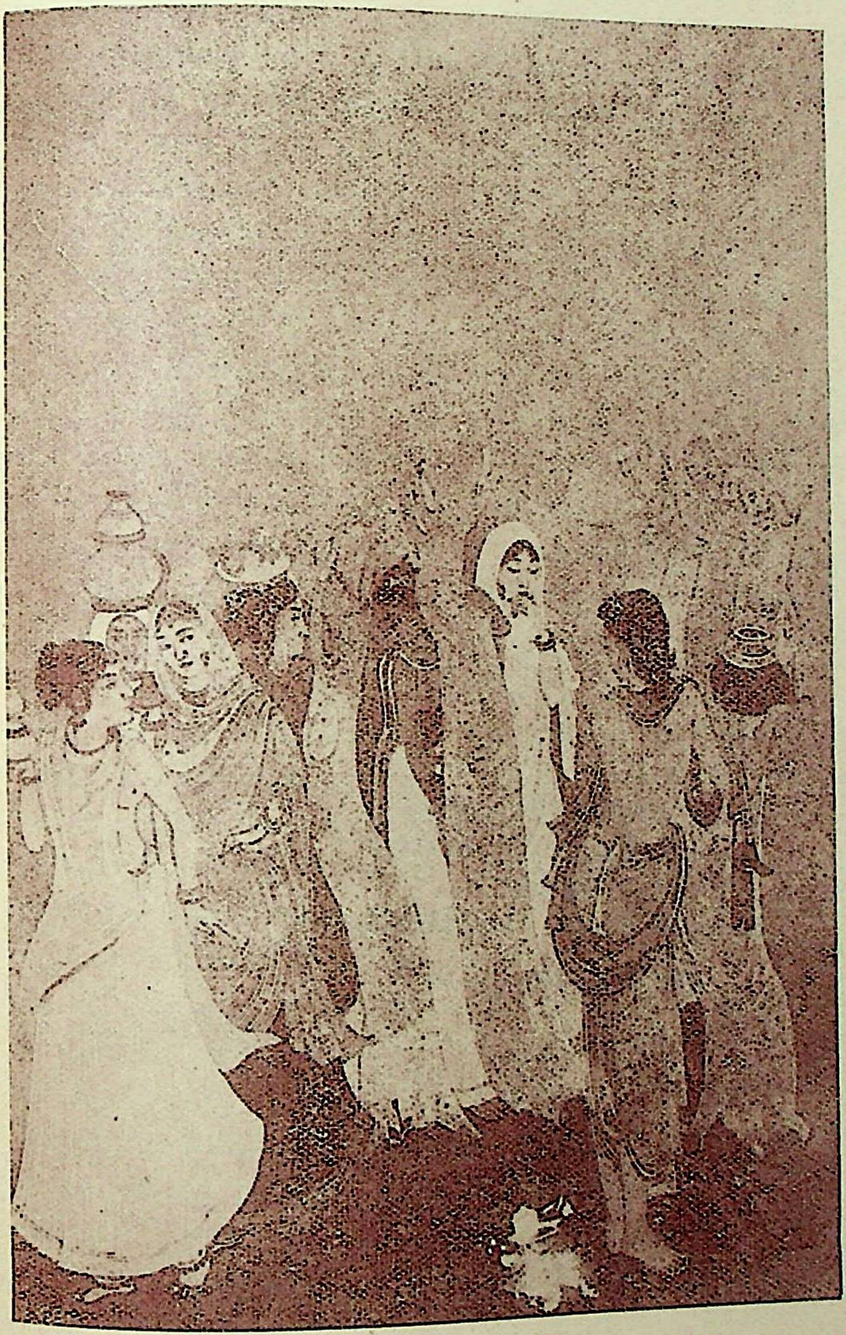
---

# रूस की अग्नि-परीक्षा

[ रूस की वास्तविक अवस्था का पूरा परिचय सुलभ नहीं है। तो भी इतना प्रकट है कि वहाँ की बोल्शेविक सरकार उसकी समुन्नति के लिए विशेष रूप से यत्नवान् है। वहाँ उद्योग-धन्धों को प्रचलित करके सरकार ने उसे व्यवसाय-प्रधान देश में परिणत करने के लिए एक नया कार्यक्रम जारी किया है। इसके अनुसार २ वर्ष काम किया जा चुका है और ३ वर्ष अभी और होगा। इस कार्य-क्रम के कारण वहाँ इस समय कैसी दशा है, इसी का दिग्दर्शन इस लेख में कराया गया है। ]

यद्यपि संसार के साम्राज्यवादी देशों ने रूस को बदनाम करने में कोई भी कोशिश बाक़ी नहीं रक्खी और न उन्होंने उसकी सफलता के मार्ग में रोड़े बिछाने में ही कोर-कसर की, फिर भी वह जिस अदम्य उत्साह एवं दृढ़ संकल्प के साथ अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए निरवरत प्रयत्न करता रहा है और अनेक विघ्न-बाधाओं के होते हुए भी जिस तरह बराबर उन्नति के मार्ग में अग्रसर हो रहा है, उसे देखकर आश्चर्य होता है। जब से वहाँ बोलशेविक शासन-प्रणाली स्थापित हुई तब से क्या राजनीति, क्या व्यवसाय, और क्या समाज—सभी क्षेत्रों में रूस का कायापलट हो गया है। यद्यपि यह सत्य है कि पूँजीवाद तथा साम्राज्यवाद के विरुद्ध इतने व्यापक प्रचार का यह प्रयत्न बिलकुल अश्रुतपूर्व होने के कारण बोलशेविकों को अपने सिद्धान्तों में बहुत कुछ संशोधन भी करना पड़ा है और परिस्थिति के सामने लाचार होकर कभी कभी उनके प्रयोग के सम्बन्ध में ढिलाई भी करनी पड़ी है, किन्तु इससे वे निराश नहीं हुए हैं। वे अब भी उसी तत्परता के साथ रूस की उन्नति के महान् प्रयत्न में जुटे हुए हैं, क्योंकि उन्हें सफलता की पूरी आशा है।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि रूस भारतवर्ष की ही तरह कृषिप्रधान देश है, किन्तु जब से वहाँ नूतन शासन-प्रणाली की प्रतिष्ठा हुई और आरंभिक काल के गड़बड़ के बाद पुनः शान्ति की स्थापना हुई है तब से वहाँ के उद्योग-व्यवसायों को भी समुन्नत बनाने की चेष्टा की जा रही है। सन् १९२८ में पाँच वर्षों के लिए जो कार्यक्रम सामने रक्खा गया था, उसका उद्देश सोवियट रूस को आर्थिक दृष्टि से पूर्णतया स्वावलम्बी बनाना है। पिछले दो वर्षों में इसमें जो सफलता प्राप्त हुई है उससे इस बात की पूरी आशा हो रही है कि यदि कोई विघ्न-बाधा उपस्थित न हुई तो पाँच वर्ष का



दानलीला

[ चित्रकार—श्रीयुत असितकुमार हल्दार

कार्यक्रम सन्तोष-जनक रीति से पूरा किया जा सकेगा।

रूस में जब से नूतन आर्थिक नीति जारी की गई है तब से बड़ी शीघ्रतापूर्वक वहाँ के उद्योग-व्यवसायों की उन्नति हो रही है, किन्तु फ़िलहाल इससे सर्वसाधारण के कष्ट घटने के बजाय और बढ़ गये हैं। नित्य काम में आनेवाली अत्यावश्यक वस्तुओं में से शायद ही कोई ऐसी हो जिसका वितरण मर्यादित न कर दिया गया हो। रोटी पाने के लिए लोगों को कार्ड दिये जाते हैं और अन्य भोजन-सामग्री का नियंत्रण किया जाता है। कपड़े भी एक निर्दिष्ट सीमा के भीतर ही ख़रीदे जा सकते हैं। मांस-वितरण के लिए कार्ड तो जारी किये जाते हैं, पर वह बहुत कम परिमाण में ही दिया जाता है। दूध, सिगरेट, जूते तथा दवाओं इत्यादि का भी यही हाल है। भोजन-सामग्री का वितरण यद्यपि मर्यादित कर दिया गया है, फिर भी वह काफ़ी मात्रा में मिल जाती है। अन्न वहाँ अधिक मात्रा में पैदा हुआ है और इस वर्ष कोई १६ प्रतिशत अधिक ज़मीन जोती जा रही है, अतः अगले वर्ष उसके और भी अधिक परिमाण में उत्पन्न होने की आशा है। इस स्थिति में भी खाद्य वस्तुओं का वितरण मर्यादित रखने का कारण रूस-सरकार की यह अभिलाषा है कि जितना अधिक अन्न बच सके उतना सब, यंत्रादि का मूल्य चुकाने के लिए, बाहर भेज दिया जाय। मांस की कमी का कारण कृषि की सामूहिक व्यवस्था का प्रचलित किया जाना और छीन लिये जाने के भय से किसानों का अपने बहुसंख्यक पशुओं का वध कर डालना है। अब तो वहाँ राज्य की ओर से बड़ी बड़ी पशुशालायें स्थापित हो गई हैं, अतः चार-पाँच वर्षों में ही पशुओं की संख्या पुनः यथेष्ट हो जायगी। अन्न के सिवा अन्य वस्तुओं के सम्बन्ध में भी सोवियट-सरकार की यही प्रवृत्ति है कि उनमें से जिन जिनका बाहर भेजना संभव हो वे सब विदेशों को भेज दी जायँ और उनके बदले में वहाँ से बड़ी बड़ी मशीनें, भारी बोझ उठाने के काँटे तथा और भी कई तरह के औज़ार इत्यादि मँगाये जायँ जो उसे अपने व्यवसायों की उन्नति के लिए आवश्यक हैं। मछलियों, कपड़ों, साबुन इत्यादि की कमी का संभवतः यही कारण है। इस नीति का परिणाम यह हो रहा है कि रूस के प्रत्येक नागरिक को अपने देश की व्यावसायिक उन्नति के लिए बड़ा आत्मत्याग करना पड़ रहा है। आवश्यक वस्तुओं का कम से कम प्रयोग कर सकने के कारण उसके दिन बड़े कष्ट से बीत रहे हैं। किन्तु वह इस आशा से प्रसन्नतापूर्वक सब कुछ बरदाश्त कर रहा है कि पाँच वर्ष बीत जाने पर देश में सुवर्णयुग आ ही जायगा और हमारे सब दुःख दूर हो जायँगे।

आवश्यक वस्तुओं की कमी के कारण रूस में कैसी विलक्षण परिस्थिति उत्पन्न हो गई है, इसका थोड़ा-बहुत अनुमान वहाँ के दो-एक नगरों की हालत जान कर किया जा सकता है। लेनिनग्रेड पहुँचने पर दर्शक का पहला ख़याल शायद यही होगा कि इतने ऊँचे ऊँचे मकानों, सुन्दर गुम्बजों तथा बड़ी बड़ी दूकानों के होते हुए भी वह एक दरिद्र नगर में पहुँच गया है। वर्षों से सफ़ेदी न होने के कारण दीवारों पर गर्द बैठ गई है और वे धूमिल वर्ण की देख पड़ती हैं। दूकानों के तख्ते इत्यादि भी बड़े भद्दे मालूम पड़ते हैं, क्योंकि उन पर चिरकाल से रंग नहीं चढ़ाया गया है। सड़कों पर बाइसिकिल तो शायद ही कभी कोई देख पड़ती हो। हाँ, इनी-गिनी मोटरगाड़ियाँ तथा थोड़ी सी सवारी की अन्य गाड़ियाँ अवश्य देख पड़ती हैं। जिन बड़ी बड़ी सड़कों पर ट्राम चलती है उनकी दशा तो कुछ ठीक है, किन्तु अन्य सड़कें बहुत ख़राब हालत में हैं। उन पर चलते हुए जो स्त्री-पुरुष नज़र आते हैं वे प्रायः फटे-पुराने कपड़े पहने रहते हैं। पुरुष प्रायः रुई की बंडी और घटिया ऊन के पायजामे पहनते हैं। बीच में एक कमरपट्टा पड़ा रहता है। बहुतों

आवश्यक मशीनों तथा औज़ारों के मूल्य के बदले में विदेशों को भेज दी जायँ। दूसरे, स्वयं रूस में ही व्यावसायिक उन्नति का आरम्भ हो जाने के कारण अब वहाँ व्यावसायिक वस्तुओं की खपत भी बढ़ गई है। जो लोग पहले थोड़ी सी वस्तुओं से काम चला लेते थे उन्हें अब क्रमशः अधिक वस्तुओं की आवश्यकता प्रतीत होने लगी है। तुर्किस्तान-साइबेरियन रेलवे के खुल जाने से किरघिज इत्यादि के निवासी भी जो पहले शायद ही कभी किसी कारखाने में तैयार की गई वस्तु का प्रयोग करते थे, अब इन वस्तुओं के आदी होते जा रहे हैं। इसके सिवा विविध व्यवसायों को प्रोत्साहन मिलने के कारण प्रति-वर्ष कोइ सात लाख मनुष्य गाँव छोड़ छोड़ कर शहरों में बसते जा रहे हैं। गाँवों की अपेक्षा यहाँ उनकी आवश्यकतायें अधिक बढ़ गई हैं और अब वे अपने नित्य के कामों में अधिक वस्तुओं का प्रयोग करने लगे हैं। तात्पर्य यह है कि रूस के कारखानों में जो चीज़ें तैयार हो रही हैं वे वहाँ के लोगों की बढ़ती हुई माँग को पूरा करने के लिए पर्याप्त नहीं हैं, खास कर ऐसी हालत में जब कि उनका एक अंश मशीनों इत्यादि के मूल्य के बदले विदेशों को भेज दिया जाता है। इसी से रूसवालों को इतनी तंगी हो रही है।

अब प्रश्न यह होता है कि आख़िर यह हालत कब तक रहेगी ? क्या पाँच वर्ष का कार्यक्रम समाप्त होने के बाद ही रूस के क्लेशों का अन्त हो जायगा और वहाँ के लोग जिस सुवर्णयुग की आशा से धैर्य-पूर्वक अपने दिन बिता रहे हैं उसकी स्थापना हो जायगी ? इसका उत्तर देना कठिन है। वहाँ की परिस्थिति के सम्बन्ध में आज-कल समाचार-पत्रों में जो लेख निकल रहे हैं उनसे प्रतीत होता है कि यद्यपि पंचवर्षीय कार्यक्रम के पर्याप्त रूप से सफल हो सकने के सम्बन्ध में विशेष शंका करने के लिए स्थान नहीं है, फिर भी उसके समाप्त होते ही रूस की हालत सुधर जायगी, इसमें सन्देह है। संभव है, इसके बाद सरकार को अपनी नीति में कुछ परिवर्तन करना पड़े अथवा ऐसा ही एक और कार्यक्रम निर्धारित करना पड़े, क्योंकि व्यावसायिक उन्नति के मार्ग में एक बार अग्रसर होकर पीछे लौटना रूस के लिए संभव नहीं दिखाई देता। यदि व्यावसायिक नीति में ज़रा भी शिथिलता हुई और मज़दूरों को थोड़े समय के लिए भी बेकार रहना पड़ा तो समझिए कि बोलशेविक सरकार के पतन में अब देर नहीं है। बेकारी की समस्या अन्य देशों की अपेक्षा सोवियट रूस के लिए अधिक भयानक है, क्योंकि मज़दूरों की भलाई और सुखशान्ति पर ही वहाँ की सरकार का अस्तित्व निर्भर है जैसा कि एक लेखक का कहना है, "रूस ने स्वयं ही एक ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर दी है जिसमें व्यवसाय की नकेल सरकार के हाथ में नहीं है, बरन सरकार की ही नकेल व्यवसाय के हाथ में है।" अतः यह स्पष्ट है कि अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिए बोलशेविक सरकार को, जहाँ तक संभव होगा वहाँ तक, ज़ोरों से व्यवसाय की उन्नति का निरन्तर प्रयत्न करते रहना पड़ेगा। देखें, रूस किस तरह इस समस्या को हल करता है और कब उसकी अग्नि-परीक्षा समाप्त होती है।

—मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव

# ज्योत्स्नामयी

( १ )

छिपा जगत् से सान्ध्य मलिनता
उतर चन्द्र-किरणों से रानी—
ज्योत्स्ना कहती थी रो-रोकर
मूक-व्यथा की करुण कहानी ॥
नाच रहा था तरुण चन्द्रमा
ख़ुश होकर जल की छाती पर ।
कहीं तुंग शैलों से निकले
हर-हर करते थे शुचि निर्झर ॥

( २ )

छोड़ गई थी स्मृति की अस्फुट
रेखा जगतीतल पर सन्ध्या ।
सिसक रही थी दूर विजन में
कहीं विरहिणी रजनी वन्ध्या ॥
किन्तु दीखते थे झिलमिल-से
अगणित बच्चे गोद गगन की ।
झूल रही सूने में वारिद—
वाला रस्सी डाल पवन की ॥

( ३ )

लुढ़का देता था स्वभाव से
शैल भूमि पर पृथुल शिलायें ।
बड़ी दूर तक फैली थी
हँसती हरियाली दायें-बायें ॥
तरु-पत्रों के मर्मर में था
फैला भग्न-हृदय का गाना ।
शुष्क भूमि पर बिखर पड़ा था
ज्योत्स्ना की किरणों का ख़ज़ाना ॥

( ४ )

कितने निर्झर पृथुल शिलाओं
से टकराकर गाते गाते ।
झर झर झरते थे शैलों से
वक्र पथों से आते-जाते ॥
तरु-पत्रों के अन्तराल से
ज्योत्स्ना की छिप करके छाया ।
श्वेत तूलिका से रँग देती
थी धरती की काली काया ॥

—श्रीप्रफुल्लचन्द्र ओझा

# दादूपन्थी और उसका महाविद्यालय

भारतीय सन्त-सम्प्रदायों में दादूपन्थियों का अपना विशेष स्थान है। यहाँ हम उन्हीं के सम्बन्ध में लिख रहे हैं। परन्तु इसका विवरण देने के पहले हम महात्मा दादूजी का जीवन-वृत्तान्त देना चाहते हैं।

## दादूजी का जन्म या उपलब्धि

भारत के साधुओं में दादूजी एक आदर्श साधु थे। जनता पर उनका प्रभाव था। लोग उनको देवता के तुल्य मानते थे। तत्कालीन सम्राट् भी पूजते थे। उनकी बनाई वानी 'गीता' के समान थी। उनकी जन्म-कथा विलक्षण है।

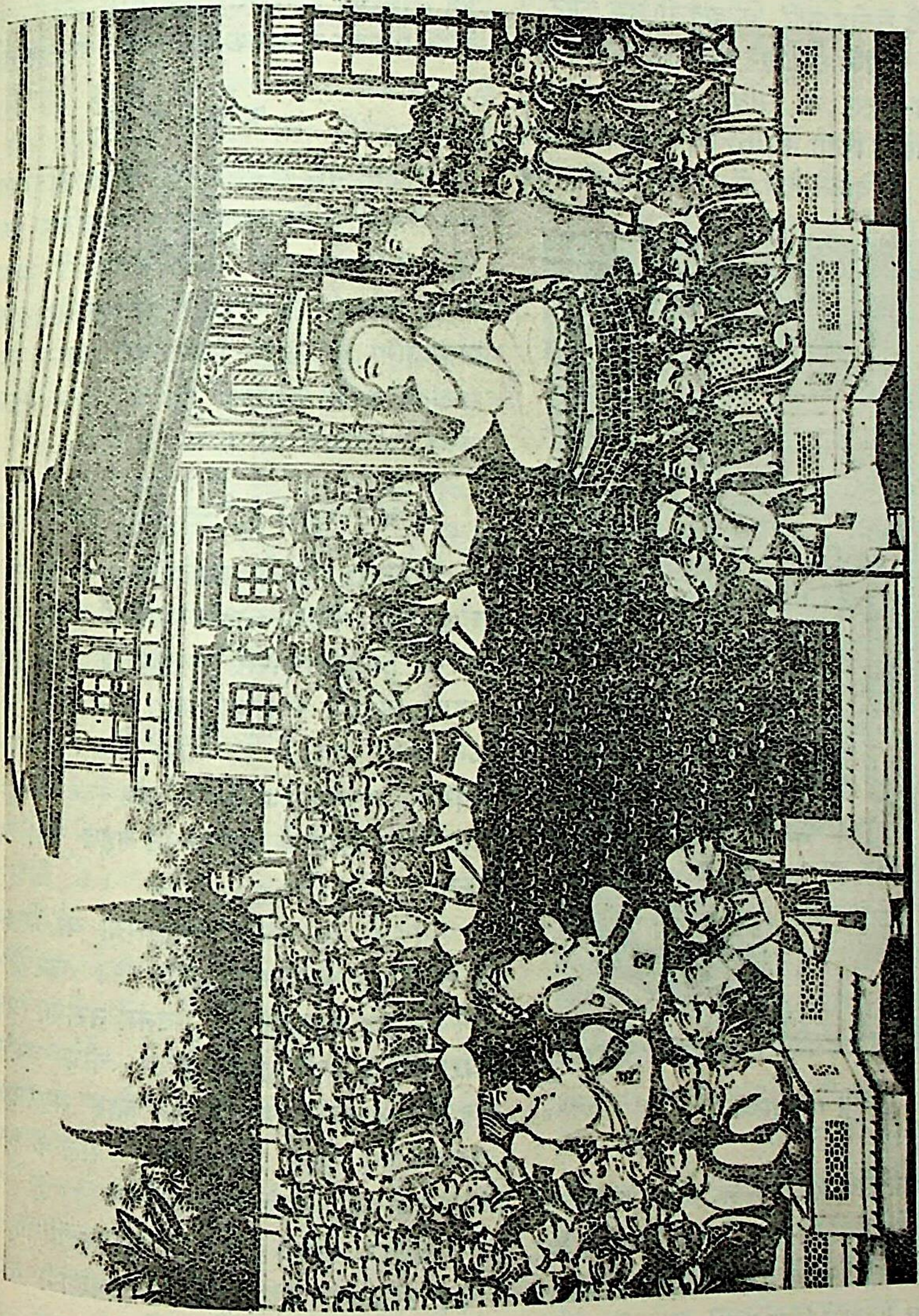
कुछ कहते हैं कि दादूजी 'गृहजात' थे, कुछ का यह मत है कि वे 'संप्राप्त' थे। जो कुछ हो, यहाँ दोनों बातों का उल्लेख किया जाता है। (१) वयःप्राप्त अवस्था में दादूजी साँभर या आमेर में अधिक रहे थे। यवनों या यवन-संसर्गियों के संपर्क से उनको उर्दू-फ़ारसी और अरबी के बहुत से शब्द अभ्यस्त हो गये थे, अतः कुछ लोग उनको यहीं के मानते हैं। परन्तु (२) उनका प्राकट्य अहमदाबाद में हुआ था। वे संवत् १६०१ के फाल्गुन शुक्ल अष्टमी को अरुणोदय के समय साबरमती के सलिल से नवजात शिशु के रूप में उदय हुए थे।

कहा जाता है कि अहमदाबाद में लोधीराम एक नागर ब्राह्मण थे। वे धनी और विख्यात व्यापारी थे। दान-पुण्य, उपासना, पूजा-पाठ में उनका मन लगा रहता था। उनको पुत्रलाभ की कामना थी। वे साबरमती में स्नान किया करते थे। एक दिन उनके पास एक साधु आये। उन्होंने लोधीराम की सेवा-पूजा और अभ्यर्थना से सन्तोष प्रकट किया और यह वर दिया कि 'तुम इसी साबरमती से पुत्र लाभ कर सकोगे'। लोधीराम ने महात्मा के वाक्यों पर विश्वास किया और यथापूर्व आचरण करते रहे। एक दिन उनको साबरमती के शान्त प्रवाह में बहकर आती हुई एक डलिया नज़र आई। समीप आने पर मालूम हुआ कि उसमें एक सद्योजात शिशु मुस्करा सो रहा है। उसे देखकर उन्होंने समझा कि पूर्वोक्त साधु का वरदान इसी रूप में सत्य हुआ है। अतएव उन्होंने उसे जल से निकाल लिया और अपनी स्त्री को देकर उसे पुत्ररूप में परिणत किया। और एक जननी के उदर से जन्म और दूसरी के स्तनपान से दुग्ध ग्रहण कर पोषित हुआ। आगे वही संप्राप्त शिशु दादू नाम से विख्यात हुआ।

उक्त दम्पति ने दादूजी का सस्नेह पालन किया किन्तु ग्यारह वर्ष की अवस्था में वे साधु हो गये। एक वृद्ध महात्मा से उपदेश ग्रहण कर उन्होंने ग्राम त्याग दिया।

## दादूजी की भजन-भावना और भ्रमण

अहमदाबाद छोड़ कर दादूजी आबू होते हुए बरडाले गये और वहाँ बहुत वर्षों तक भजन किया। पीछे उन्होंने राजपूताने की यात्रा की, जिसमें



[ सिकरी का शाही दरबार ]

( १ ) महात्मा दादूदयाल, ( २ ) सम्राट् अकबर, ( ३ ) महाराज मानसिंह, ( ४ ) अन्य दरबारी राजा लोग।

साँभर, आमेर, दौसा और नराणे आदि में यथाक्रम रहते हुए नराणे में आयुष्य का निःशेष किया।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि दादूजी उच्च कोटि के महात्मा थे। उनको निर्गुण उपासना अभीष्ट थी। उन्होंने नाम-स्मरण के साथ निर्गुण उपासना का सिद्धान्त स्थिर किया था। उनके मनोगत भाव उनकी 'बानी' से विदित होते हैं। दादूजी व्यवहार



[ बाबू रनीरामजी ]

में भेदभाव वर्जित सब प्राणियों में भ्रातृभाव स्थापन करनेवाले थे! वे खण्डन-मण्डन या वैरभाव को अनुचित समझते थे। उनके हृदय में दया का संचार विशेष रूप से था। इसी लिए उनके नाम में दादू के साथ दयाल की योजना हुई थी। उन्होंने जो कुछ लिखा, निर्पेक्ष होकर लिखा और अपने स्थिर सिद्धान्तों पर आरूढ़ रहे। "आपा मैं है हरि भजै, तन-मन तजै विकार। निर्वैरी सब जीवसूँ, दादू यह मनसार।" कैसा हृदयंगम करने का वाक्य है। एक ही में अनेक समस्यायें हल हो गई हैं।

### अकबर से भेंट

दादूजी वड़े प्रभावशाली और प्रतिभावान् पुरुष थे। आमेर-नरेश महाराज मानसिंह उनकी भक्ति करते थे। महाराज के अनुरोध से अकबर ने भी अपने सीकरी के दरबार में उनको बुलाया था। ख़ानख़ाना के द्वारा किये हुए कल्मा या नमाज़ सम्बन्धी प्रश्नों का उनसे यथार्थ उत्तर पाकर अकबर उनसे प्रसन्न हुआ था।

### दादूजी का देहान्त और उनकी गद्दी

महात्मा दादूजी का देहावसान संवत् १६६० के ज्येष्ठ शुक्ल अष्टमी को नराणे में हुआ था। और उनका निर्जीव शरीर नराणे के समीप भैराणे के पहाड़ी खोल में स्थापित किया गया था। दादूपन्थी उन दोनों स्थानों को तीर्थ समान मानते हैं और साँभर तथा आमेर को पूज्य दृष्टि से देखते हैं। क्योंकि इन दोनों स्थानों में दादूजी ने बहुत वर्षों तक भजन किया था।

दादूजी के अनेक अनुयायी या शिष्य-प्रशिष्य थे। उनमें ५२ शिष्य विशिष्ट थे। उनके ५२ स्थान ५२ दादूद्वारे कहलाते हैं। उनमें नराणा 'प्रधान गुरु-द्वारा है'। वहाँ राज्य से ५२ बीघे ज़मीन मिली हुई है, जिसमें नागे, विरक्त और मकानधारियों के बनवाये हुए बहुत मकान हैं। मेले के अवसर पर आये हुए साधु उन्हीं में रहते हैं।

फाल्गुन शुक्ल चतुर्थी से एकादशी तक नराणे में "दादू-सम्मेलन" (दादूजी का मेला) होता है। पहले देश-देशान्तरों में विचरती हुई सब जमातें उस अवसर पर नराणे में आ जाती थीं। अब कोई ३ हज़ार साधु इकट्ठे होते हैं। वहीं "दादूजी की प्रधान

गद्दी" है। उस पर दादूजी से पीछे १५ महात्मा आरूढ़ हो चुके हैं।

(१) गरीबदासजी संवत् १६६० से १६९३ पौष कृष्ण १३ तक, (२) महाकिशनदासजी संवत् १६९३ से १७०५ वैशाख शुक्ल ८ तक, (३) फकीरदासजी १७५० भाद्र कृष्ण ८ तक, (४) जैतरामदासजी १७८९ मार्ग कृष्ण ८ तक, (५) किशनदेवजी १८१० माघ कृष्ण १३ तक, (६) चैनरामजी १८३७ चैत्र वदी ८ तक (७) निर्भयरामजी १८७१ आसोज वदी ८ तक, (८) जीवनदासजी १८७७ मार्ग शुक्ल ८ तक, (९) दूलैरामजी १८९७ फाल्गुन कृष्ण २ तक, (१०) प्रेमदासजी १९०१ ज्येष्ठ वदी २ तक, (११) नारायणदासजी १९१२ कार्तिक कृष्ण १३ तक, (१२) उदयरामजी १९३१ आश्विन कृष्ण १० तक, (१३) गुलाबदासजी १९४८ मार्ग शुक्ल १४ तक, (१४) हरजीरामजी संवत् १९५५ वैशाख शुक्ल १० तक और—(१५) दयारामजी संवत् १९५५ वैशाख में उक्त गद्दी के अधिकारी हुए जो इस समय वर्तमान हैं।

## सुप्रसिद्ध शिष्य

दादूजी के ५२ शिष्यों में सबसे बड़े प्रथम सुन्दरदासजी थे। इसी प्रकार सबसे छोटे द्वितीय सुन्दरदासजी थे। बड़े सुन्दरदासजी शस्त्रधारी थे और छोटे शास्त्रधारी। बड़ों का निवास घाटड़े में रहा, छोटे फ़तेहपुर में विराजे। 'घाटड़ा' अलवर-राज्य में साधुओं का बसाया हुआ गाँव है। ५ सौ रुपये वार्षिक आय की भूमि राज्य से उदकदत्त है। घाटड़े के महन्तों को नागा साधु अब भी गुरुभाव से मानते हैं।

छोटे सुन्दरदासजी दौसा में जन्मे थे। जाति के धूसर थे। उनकी गद्दी फ़तेहपुर में है। वहाँ वे बहुत रहे थे। दादूजी के देहान्त-समय में सुन्दर जी ७ वर्ष के थे। प्रारम्भिक शिक्षा रज्जबजी से मिली थी। पीछे काशी गये थे। मृत्यु साँगानेर में हुई थी। वे संस्कृत के उत्कृष्ट पण्डित और अष्टांगयोग के निपुण योगी थे। हिन्दी से उनका विशेष अनुराग था। 'सुन्दरविलास' उन्हीं की रचना है। 'सुन्दरकाव्य' उनका दूसरा ग्रन्थ है। दोनों छप गये हैं। इनके सिवा बीसों ग्रन्थ और हैं जो अमुद्रित हैं, पर सुरक्षित हैं।

सुन्दरदास के ग्रन्थों में 'ज्ञान-समुद्र' अनुपम है। उसमें जितने प्रकार के छन्द हैं, उतने शायद ही अन्य में हों। वे संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित, योगाभ्यास के उत्कृष्ट अनुभवी, और छन्द-रचना में विशेष निपुण थे। रज्जबजी आध्यात्मिक विद्या के प्रगाढ़ पण्डित थे, साथ ही वयोवृद्ध, ज्ञानवृद्ध, अनुभव और बहुश्रुत थे। उन्होंने अपनी 'बानी' में आध्यात्मिक और व्यावहारिक विषयों का मर्मस्पर्शी वर्णन किया है। खेद है कि उनकी बानो का अर्थ अति गहन होने के कारण जन-साधारण की समझ में नहीं आता। विद्वान् ही काम चला सकते हैं।

निश्छलदासजी वेदांत विषय के मर्मज्ञ पण्डित थे। उनके 'विचारसागर' और 'वृत्तिप्रभाकर' दोनों ग्रंथ अनमोल हैं। उनकी लाखों प्रतियाँ बीसों बार छप चुकी हैं। निश्छलदासजी का स्थान रोहतक में था, जो अब भी मौजूद है।

आत्मारामजी वैद्यक-विषय के अनुभवी ज्ञाता थे। उनके बनाये हुए 'आत्मप्रकाश' से हिन्दी जाननेवाला अच्छा वैद्य बन सकता है और आतुरभेषज की व्यवस्था कर सकता है।

दादूजी की शिष्य-परम्परा में सुन्दरदासजी जैसे शस्त्रधारी, रूपरामजी जैसे अभ्यस्त योगी, सरूपदास, लालदास, आत्मबिहारी, मोतीराम और निगमराम जैसे सत्कवि तथा हरिदासजी और गोवर्धनदासजी जैसे विख्यात वीणा-वादक कई शिष्य हो चुके हैं। और वर्तमानकाल में भगवान्दासजी जैसे विद्वान्, महानंदजी जैसे व्याकरण-महारथी, हरजीरामजी जैसे संत तथा सूतलीदासजी जैसे सिद्ध पुरुष मौजूद हैं। ये अपने स्वार्थत्याग और लोकोपकार से उपकृत लोगों के हृदयंगम हो रहे हैं।

### महात्माओं का महत्त्व

किसी दिन दादूसंप्रदाय के साधुओं का सर्वत्र आदर था। उनकी चरण-रज लेने को राजा-रंक, रईस सब राज़ी थे। ऐसा क्यों था? इसलिए कि वे विद्यावान् थे, दयावान् थे, सदाचारी थे, और थे स्वार्थ-शून्य सच्चे साधु। उनकी बानी में सत्य की धारा थी। हृदय में दया का समुद्र था। हाथों में अभय के अस्त्र थे और अंतःकरण में परदुखहारी थे। उनकी ज्ञान-सत्ता के प्रवाह में जनसमुदाय का जीवन-स्रोत पल भर में पलट जाता था और उनके उपदेश से पाप-पुंज छिप जाते थे।

### बानी

इस पन्थ के प्रत्येक महात्मा ने अपने मनोगत भाव अपनी बनाई हुई बानियों में व्यक्त किया है। उनके अनुयायी उन बानियों का बड़ा आदर करते हैं। वास्तव में वे आदरणीय ही हैं। दर्शनशास्त्र जैसे जटिल विषयों को हिंदी के सीधे-सादे पद्यों में आवद्ध करके मामूली गुदड़ी में मूल्यवान् रत्न भर दिये हैं। आध्यात्मिक और व्यावहारिक विषयों पर उनमें भली भाँति प्रकाश डाला है। विशेषकर आत्म-विवेचन पर अधिक ज़ोर दिया है। जिस प्रकार गीता, दुर्गा और रामायण आदि पर प्रजा का प्रेम है, उसी प्रकार साधु-समाज उन बानियों से प्रेम रखते हैं और उनको देव-दुर्लभ धन की तरह प्राणप्रिय मानते और देव-तुल्य पूजते हैं। यही कारण है कि उनके हस्तलिखित सुन्दर, सुनहरे और सचित्र आदि घटिया-बढ़िया कई संस्करण हुए हैं।

### (५)

### नागे और उनकी जमातें

इस पन्थ के नागे साधु बड़े सुन्दरदासजी के शिष्य हैं। गुरु-परंपरा के अनुरोध से पाँच शस्त्र और एक वस्त्र रखते हैं। शस्त्रों में ढाल, तलवार, सेल, बंदूक और कटारा या धनुष हैं, और वस्त्रों में एकमात्र लँगोटी है। इसी से इनका नाम 'नागा' हुआ है।

आरंभ में सब साधुओं की एक जमात थी। वे मण्डली बनाकर देश-भ्रमण करते थे। लूट-खसोट और मार-काट से उन दिनों उदर-पोषण होता था। एक मात्र मंडलीश्वर या महन्त सब साधुओं के शिक्षण, रक्षण, संचालन और उत्तरदायित्व के अधिकारी होते



जयपुर के प्रसिद्ध वैद्य
[स्वामी लक्ष्मीरामजी आचार्य]

थे। जयपुर-राज्य में इस समय इनकी सात जमातें हैं। (१) उदयपुर (सेखावाटी), (२) चानसेन (काठैड़ा), (३) मोरड़ी, (४) लालगोट, (५) सवाई माधवपुर, (६) निवाई और (७) महावीर ये उनके

मुकाम हैं। उदयपुर की जमात और निवाई तथा घाटड़ा के महंत मुख्य हैं।

(१) नागे, (२) विरक्त और (३) मकानधारी ये तीन श्रेणियाँ इनमें आरंभ से ही बनी हुई हैं। अधिक संख्या नागों की है। उनसे कम मकानधारी हैं और विरक्त या आश्रयहीन सिर्फ दो सौ हैं। इनकी पूर्ण संख्या क्रम से ५,०००, १,०००, २०० या छः से सात हज़ार के भीतर है।

इनके पूर्व-पुरुष सुन्दरदासजी और प्रह्लाददासजी घाटड़े रहे थे। उनके पीछे प्रह्लाददासजी के शिष्यों में एक शिष्य घाटड़े और एक जयपुर रहे। जिस समय जमातें अलग अलग हुईं उस समय ये निवाई के महंत कहलाये।

### जयपुर-राज्य का आश्रय

यह ऊपर लिख चुके हैं कि आरंभ में ये जमातें इतस्ततः घूमती रहती थीं। इनके साथ में सामान लादने के लिए घोड़े और ऊँट तथा मदद के लिए २४ सौ शस्त्रधारी साधु रहते थे। उन दिनों की लूट-खसोट से भी इनका नाम नागा हुआ था। अवसर आने पर जयपुर-राज्य युद्ध आदि में इनकी सहायता लेता था। उन दिनों जोधपुर में भी जयपुर की जमात थी। इनको ऐसी सेवाओं का फुटकर हाथ-खर्च मिलता था।

संवत् १८३६ में 'भडूँच' नाम का एक उपद्रवी मनुष्य देश में उपद्रव करता हुआ जयपुर-राज्य में आया। खाटू के समीप राज्य की सेना ने उसका मार्गावरोध किया। नागे साधुओं के निवाईवाले महंत मंगलदासजी अपनी फ़ौज को लेकर उस युद्ध में अग्रसर हुए थे। उन्होंने अपना सिर कट जाने पर भी घोर युद्ध किया था। अंत में भडूँचा के सैनिकों ने नील के छींटे देकर उनको धराशायी किया। इस युद्ध में नागों के प्रायः सभी साधु मारे गये। केवल छोटे बच्चे और बूढ़े पुरुष बचे थे। जयपुर-राज्य ने उनको माजी के बाग़ में रख कर सात-वर्ष तक पालन किया। और निवाईवालों को २॥ गाँव तथा जमातों को सवा लाख रुपये प्रति वर्ष मिलते रहने का पट्टा कर दिया। बाद को महाराज माधवसिंह (द्वितीय) ने उसको द्विगुणित करके अढ़ाई लाख कर दिया, जो अब तक मिलता है। और २॥ गाँव निवाईवाले अलग भोगते हैं।

( ६ )

### नागों के युद्ध-कौशल

जिन दिनों नागे लोग युद्ध-भूमि में खड़े होकर सब प्रकार के शस्त्र-संचालन के कौतुककारी खेल दिखाते थे, उन दिनों उनके आतंक की धाक जमी हुई थी। उनके वानरी कृत्यों से सुभट-सेना भी सहम जाती थी। वे लोग नल, नील, अंगद, हनूमान और सुग्रीव जैसे स्वरूप बनाकर शस्त्र-प्रहार के साथ शत्रुओं पर टट पड़ते थे और उछल-कूद के कौशल से हाथी पर बैठे हुए शत्रु का सिर काट लाते थे। युद्धोद्धत नागे इतनी शीघ्रता से काम करते थे, मानो बिजली का आदमी कर रहा हो। उनकी युद्ध-क्रीड़ा अँगरेज़ों ने भी देखी थी।

### एक अद्भुत अस्त्र

नागों ने एक अद्भुत प्रकार के अस्त्र का भी आविष्कार किया था। वह लोहे की ३ अंगुल मोटी और ३६ अंगुल लम्बी पोली नली में बारूद के मिश्रण का मसाला भर कर बनाया जाता था। और उसके अग्र-भाग में छुरी-कटारी और तलवार आदि जोड़ कर कर्णरन्ध्र में आग लगा कर शत्रु-सेना पर उसे फेंक देते थे। वह वीर-करनिर्गत 'विलक्षण अस्त्र' तीर की तरह सनसनाता हुआ सेना-समूह में जाकर उछलता-कूदता और शत्रुओं को नीचे-ऊपर तथा आगे-पीछे से काटता-पीटता और हताहत करता हुआ देर में शान्त होता था। उसका नाम बाण था और बनाने आदि की क्रिया प्रच्छन्न थी। उन दिनों ऐसे बाण बहुत बनते थे। किन्तु ५० वर्ष से राज्य ने उनके

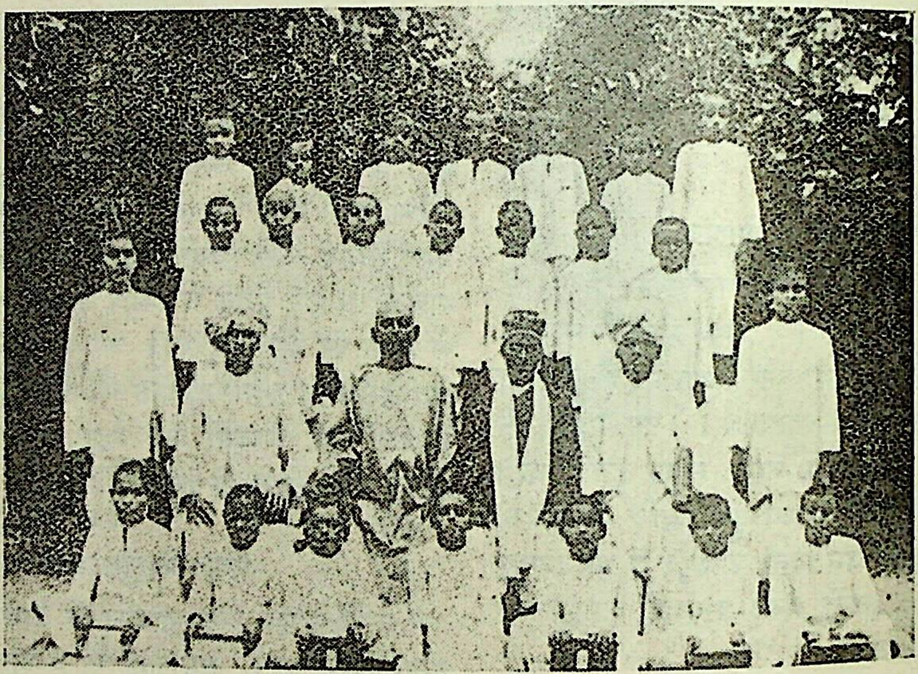
निर्माण का निषेध कर दिया है। अब वे देखने-मात्र के लिए उदयपुर की जमात में हैं, किन्तु उनका प्रभाव हीन हो गया है।

## नागों की वर्तमान अवस्था

पूर्व-काल में नागों ने जो कुछ किया उसका दिग्-दर्शन ऊपर करा दिया गया। अब न वह समय है और न सामर्थ्य, और न सामर्थ्य-प्रकाशन का प्रयोजन है। इस त्रिधा विरक्ति से साधु भी शस्त्र और शास्त्र दोनों के अनुभव और अभ्यास से हीन हो गये हैं। यही कारण है कि जयपुर-राज्य ने भी अब इनकी नियुक्ति तालुक़ों और तहसीलों में कर दी है। वहाँ ये हासिल-उगाही, कर-वसूली, और तहसील-संग्रह का काम करते हैं। कभी किसी गृहस्थ नागे की नागाई मिटाने की ज़रूरत होती है तब नागों की दस्तग भी भेज दी जाती है। दस्तग में १०-२० या सौ-पचास साधु होते हैं।

## जमातों की हाज़िरी

प्रत्येक जमात में जितने साधु होते हैं वे सब जमातों में जमा नहीं रहते। आस-पास की बस्तियों में भी बसते हैं और जब कभी प्रयोजन पड़ता है, आजाते हैं। कदाचित् अकस्मात् आवश्यकता आजाय तो अन्य आदमियों से भी काम निकाल लेते हैं।



[ दादू महाविद्यालय के कार्यकर्ता तथा कुछ छात्र ]

वर्ष भर में जमातों की दो बार गणना होती है। उसका समय चैत्र और आश्विन का दशहरा है। उस समय जितने आदमी अन्यत्र होते हैं, जमातों में आकर जमा हो जाते हैं। और हाज़िरी की संख्या-पूर्ति करा के चले जाते हैं।

## जमातों का क़ायदा

पूर्वोक्त खाटू-युद्ध के अवसर पर राज्य की ओर से जमातों के नागे साधुओं को हाथी, निशान और

नौबत मिली थी। चढ़ाई के अवसर पर या स्वागत-सम्मान के समय उनका ये अब भी उपयोग करते हैं और राजप्रासादों या महाराज के महलों तक संप्राप्त राजचिह्नों को ले जाते हैं। प्रधान द्वार तक इनके बाजे आदि की अब भी मनाही नहीं है।

## दादू पंथियों के स्थान

राजस्थान के दादूपंथी मुख्यतया जयपुर, जोधपुर, बीकानेर और उदयपुर में रहते हैं। इसके सिवा पंजाब के बाँगर और हरियाना ज़िलों में, नाभा, पटियाला, फ़िरोज़पुर और कसूर में तथा गुजरात के अहमदाबाद और सूरत में इनके स्थान हैं। किन्तु अब अधिकांश स्थान स्वामी और संपत्ति से सर्वत्र ही सूने पड़े हैं। विरले मकान ही ऐसे होंगे जहाँ ५-७ साधु एकत्र मिल सकें। साम्पत्तिक स्थिति भी अब इनकी सामान्य है। क्योंकि राज्य से जो कुछ मिलता है उसको ये बराबर बाँट लेते हैं। कुछ ऐसे भी हैं जो कृषि-वाणिज्य से धन बढ़ाते हैं।

## विद्या-वृद्धि के आयोजन

उपर्युक्त विवरण से विज्ञ पाठक जान सकते हैं कि दादूपंथियों ने अपनी बढ़ी हुई विद्वत्ता, लोकोत्तर भ्रातृभाव, उत्कृष्ट ग्रंथ-रचना और अद्भुत युद्ध-कौशल आदि के द्वारा गत ३॥ सौ वर्षों में भारत का कितना हित किया है, वात्सल्य-भाव से कितनी शांति फैलाई है और युद्धोद्यत होकर आगत शत्रुओं का कितना संहार किया है। किन्तु जो समय विद्वानों की वृद्धि चाहता है, जिसमें विद्या-विहीन साधु भी साधु नहीं माने जाते, और जिसने विद्या के बल से ही सबको सबल बनाया है उस समय में दादूपंथी साधुओं में विद्या की न्यूनता नितांत अखरती है। इस त्रुटि का मिटाना नागे साधुओं के लिए निःसंदेह श्रेयस्कर और आवश्यक है।

## दादू महाविद्यालय

भगवान् संस्थापकों का भला करे, उपर्युक्त त्रुटि मिटाने के लिए इस समय जयपुर का "दादू-महाविद्यालय"—सात्विक रूप की शिक्षा देकर शतशः साधुओं को सुयोग्य बनाने में आदर्श और अग्रसर होरहा है और वह इसी निमित्त या उद्देश से स्थापित किया गया है।

## विद्यालय का बीजारोपण

सर्वप्रथम दादू-संप्रदाय के सात्विकी साधु स्वामी मंगलदास ने आचार्यवर स्वामी लक्ष्मीरामजी की आज्ञा पाकर संवत् १९७६ के नराणे के 'दादू सम्मेलन' में अपने मर्मस्पर्शी चित्ताकर्षक भाषण में 'दादू-विद्यालय' के स्थापन का प्रस्ताव किया था। भगवत्-प्रेरणा से वह पास हो गया और तत्काल ही ३३ हज़ार रुपये का चन्दा लिखा गया।

## विद्यालय की स्थापना और उसका फल

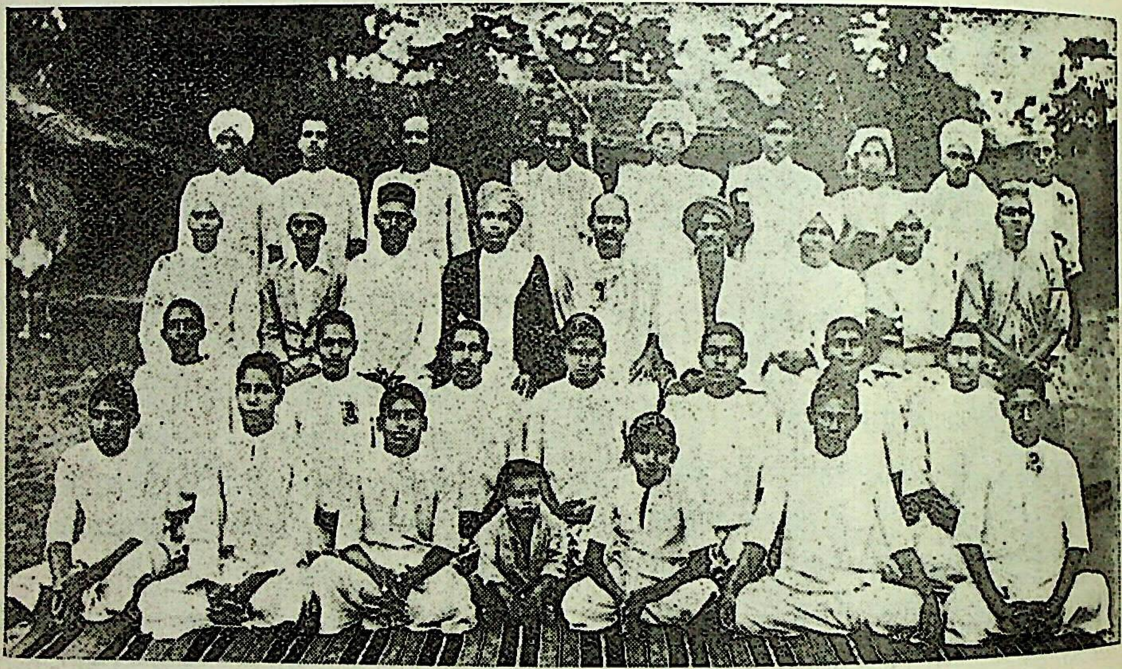
उसके पीछे डाक्टर दलगंजनसिंह एम० बी० की प्रबल प्रेरणा से संवत् १९७७ ज्येष्ठ शुक्ल गंगा-दशमी को जयपुर के स्वर्गीय स्वामी रतीरामजी के बाग़ में विद्यालय की स्थापना हुई। १३ छात्र और १४ हज़ार की पूँजी से इस विद्यालय का आरम्भ हुआ। डेढ़ वर्ष तक मासिक सहायताओं से काम चला था। कुछ रुपये भी हो गये। नवजात विद्यालय बाल्यकाल के कष्टों से बच निकला।

स्वामी सेवारामजी की प्रबल प्रेरणा से बहुत से सज्जनों ने आर्थिक सहायता दी और बिड़ला-बांधव दो सौ रुपये देने लगे। इसके तीसरे ही वर्ष ३० छात्र होगये और शिक्षा का कार्य सुचारु रूप से चल निकला। शिक्षा, शिक्षक, सहायता और परिणाम सभी सन्तोष-जनक प्रतीत हुए और जनता का ध्यान भी इधर हुआ।

चौथे वर्ष के अंत में इस विद्यालय के आठ विद्यार्थी 'गवर्नमेंट संस्कृत कालेज काशी' में व्याकरण की प्रथमा परीक्षा में सम्मिलित हुए, जो सबके सब पास हो गये। तब से कई छात्र काशी की परीक्षा में प्रतिवर्ष प्रविष्ट होते हैं। और प्रतिशत ८० से ९० तक पास होते हैं।

आरम्भ से अब तक बहुत से छात्र शास्त्री-परीक्षा में पास हुए हैं। बहुत से व्याकरण, वेदान्त, साहित्य और आयुर्वेद के उपाध्याय और शास्त्री हुए हैं। वर्तमान वर्ष में २ छात्र अँगरेज़ी की प्रवेशिका में भी पास हुए हैं।

विद्यालय में झींद, रोहतक, दिल्ली, जोधपुर और बीकानेर तक के विद्यार्थी हैं। पढ़ाने के लिए ४ संस्कृत के अध्यापक हैं, एक हिन्दी का और एक अंगरेज़ी का



[ दादू महाविद्यालय के अध्यापक तथा छात्र ]
(१) प्रधानाध्यापक पंडित रामचन्द्र शास्त्री (२) श्री सुरजनदास तथा (३) श्री मोतीराम विद्यार्थी

भी अध्यापक है। उनमें २ अवैतनिक और ४ वैतनिक हैं। पूर्वापेक्षा छात्रों की संख्या अब अर्धशत से अधिक होगई है। सेवा के लिए ६-७ आदमी अलग नियुक्त हैं।

### सेवक-सहायक-संरक्षक

(१) मेरठ के विद्याभूषण पंडित रामचन्द्र शास्त्री 'दादूविद्यालय' के प्रधानाध्यापक हैं। आप अनेक शास्त्रों के ज्ञाता और व्याकरण के निष्णात हैं। यहाँ व्याकरण, वेदान्त और साहित्य की शिक्षा आप ही देते हैं।

(२) सेवा-कार्य में स्वामी सेवारामजी अग्रगण्य हैं। आप विरक्त महात्मा हैं। आपकी प्रेरणा से विद्यालय को ३३ हज़ार रुपये की सहायता मिली थी। शारीरिक सहायता में भी आप सर्वोपरि हैं।

(३) जिस स्थान में विद्यालय स्थापित हुआ वह स्थान जयपुर के स्वर्गीय स्वामी रतीरामजी का है। स्वामीजी जाति के वैश्य थे। उनकी व्यवसाय-बुद्धि प्रदीप्त थी। जवाहरात के काम में वे प्रवीण थे। उसी से उनकी सम्पत्ति बढ़ी थी। उनके बाद ४ पीढ़ी चली गई। वर्तमान मोतीरामजी पाँचवें हैं।

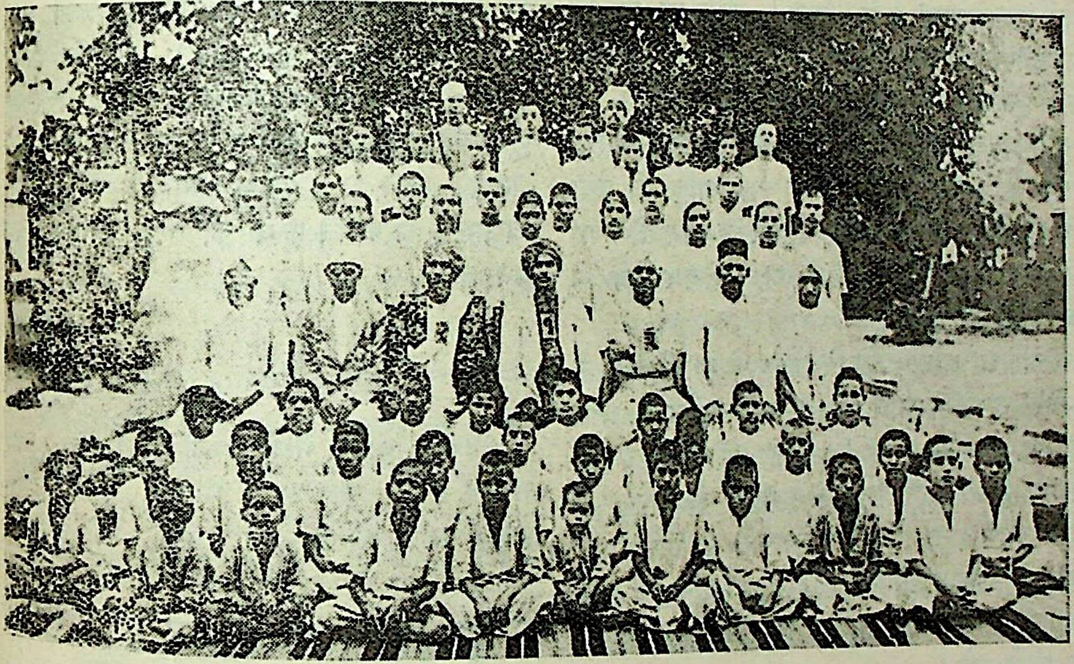
(४) स्वनामधन्य वैद्यरत्न स्वामी लक्ष्मीरामजी विद्यालय के प्राण हैं। आपके उद्योग से ही विद्यालय स्थापित हुआ है। उसके कोश में लक्षार्ध की सम्पत्ति आप ही से हुई है। ३ हज़ार देकर अर्थसंग्रह का

आप ही ने श्रीगणेश किया था। सौ रुपये वार्षिक सदा से देते ही हैं और १० हज़ार देने का अभी वचन दिया है।

(५) स्वामी मंगलदास इस क्षेत्र के परिश्रमी कृषक कहे जा सकते हैं। नराणे के प्रस्ताव-फल से आपने इसका बीजारोपण करवाया, अंकुरावस्था में इसकी सँभाल की, पल्लवित होने पर इसका सेवासलिल से सिंचन किया, और अब देवधान्य देखकर निष्काम (अवैतनिक) उपासना कर रहे हैं। यहाँ में चल सकती है। और विद्या-प्रचार के साथ ही संस्थापकों की यश-विस्तृति तथा लोकोपकार कर सकती हैं।

### एक विशेषोत्सव

थोड़े दिन पहले विद्यालय का 'विशेषोत्सव' हुआ था। उस अवसर पर जमातों के साधु-महात्माओं के मुखिया, जयपुर के धनीमानी विद्वान् तथा सरदार लोग आये थे। उत्सव २ दिन हुआ था।



[ दादू महाविद्यालय के कार्यकर्ता तथा छात्र ]

(१) स्वामी मंगलदास, (२) श्री बालकरामजी, (३) श्री कृपारामजी, (४) श्री हनूमानदास ( ६ वर्ष उम्र )

तक कि आपके भोजन आदि का ख़र्च भी दूसरे ही देते हैं।

(६) वैद्य कृपारामजी ने ३ वर्ष और महंत चैनसुखजी ने ७ वर्ष सेवा करके विद्यालय को आभारी किया था। अब वे यहाँ नहीं, किन्तु उनकी सेवा-स्मृति मौजूद है। ऐसे सत्पुरुषों के सहयोग से ही दादू-विद्यालय जैसी पारमार्थिक संस्था सुचारु-रूप

प्रथम दिन के सभापति जोबनेर के अधिपति ठाकुर महेंद्रसिंहजी थे और दूसरे दिन के सभाध्यक्ष चौमूँ-नरेश श्रीमान् ठाकुरां देवीसिंहजी थे।

इस उत्सव में गत दश वर्षों के कार्य-विवरण से विदित हुआ कि अब तक का अध्ययन-फल अच्छा रहा। किसी एक विषय में २२ छात्रों का प्रविष्ट होना और उनमें २१ का पास होना कम महत्त्व का नहीं।

पढ़ाई का विधान, छात्रों की योग्यता और उनकी संख्या-वृद्धि से रक्षकों, दर्शकों और समीक्षकों सभी को संतोष हुआ। विशेषकर तीन छात्र अधिक उत्कृष्ट माने गये।

सत्रह वर्ष का सुरजनदास मेधावो छात्र है। वह साहित्य में शास्त्री, अँगरेज़ी में मिडिल, और व्याकरण का भविष्य शास्त्री है। उसको 'लक्ष्मीराम' स्वर्णपदक प्राप्त हुआ था। मोतीराम १८ वर्ष का विद्यार्थी है। वह साहित्य का शास्त्री, व्याकरण का भविष्य शास्त्री और आयुर्वेद का उपाध्याय है। इसको 'रजतपदक' प्राप्त हुआ। और नौ वर्ष का हनूमानदास व्याकरण की प्रथमा में प्रथम उत्तीर्ण हुआ। उसको 'सधन्यवाद रजतपदक' मिला।

परन्तु इस संस्था की आर्थिक स्थिति ठीक नहीं है। बालकों के भोजन, वस्त्र और पुस्तकादि में तथा कार्यकर्ताओं के वेतन आदि में क़रीब सात सौ रुपये मासिक ख़र्च होते हैं। और आय ३ वर्ष पूर्व के बराबर नहीं है।

संचालक चाहते हैं कि विद्यालय के स्थायी कोश में एक लाख रुपये हो जायँ और भवन-निर्माण के लिए २० हज़ार रुपये मिल जायँ। इसी कामना से उन्होंने यह विशेपोत्सव किया जिसमें जमातों के साधु भी आये थे और दोनों दिन के सभापति महोदयों तथा महामहोपाध्याय पंडित गिरधर शर्मा आदि ने ओजस्वी भाषणों में अपील की थी। उसके फलस्वरूप २७ हज़ार लिखे गये।

क्या ही अच्छा होता कि इस अवसर पर आये हुए सातों जमातों के साधु अपनी दो दो महीने की आय दे देते। उन्होंने इस बात का विचार नहीं किया कि विद्यालय हमारी पैत्रिक संपत्ति है। इसमें पढ़े हुए साधु आगे जाकर आदर पा सकेंगे और वर्तमान के धरना पाशी त्याग देंगे।

स्थायी कोश में लगभग ५० हज़ार रुपये हैं। उक्त २७ हज़ार रुपये चन्दे के लिए स्वामी लक्ष्मीरामजी जयपुर १०,०००), चानसेन जमात ४,०००), लालसोट जमात ३,०००), महंत मनीरामजी कलानोर २,१००); लालदास जी बीकानेर २,०००) और चौमूं-नरेश श्रीमान् ठाकुरां देवीसिंहजी ने २,०००) के वचन दिये हैं। शेष के लिए जमातों से विशेष आशा थी कि वे उसको निःशेष पूर्ण कर देंगे।❋

हमारा निवेदन है कि नागे साधु अपनी पूर्व प्रतिष्ठा और वर्तमान परिस्थिति पर फिर विचार करें और दादू-विद्यालय के अर्थसंकोच को अति शीघ्र मिटा दें। संचालकों से भी हमारा अनुरोध है कि वे साधुओं की सेवा में सुयोग्य सज्जनों का डेपूटेशन भेजकर एक वार फिर प्रार्थना करें और उनको विद्याहीनता के अवगुण और विद्या-वृद्धि के गुण बतलावें। आशा है, ऐसा करने से साधु लोग धनदान करने का संकोच नहीं करेंगे। और इस विद्यालय को अपने पन्थ का एक आदर्श विद्यालय बना देंगे।

—हनूमान शर्मा

---

❋उपर्युक्त चंदे में भोलारामजी वद्दू ने ५५१) चेतरामजी रामगढ़ ५०१) कृपारामजी भिवानी ५०१) दयारामजी अलेवा २५१) ख्यालीरामजी फतेपुर २५१) ओंकारदासजी लालसोट २०१) हरदेवदासजी चानसेन २०१) गिर्धारीदासजी तपसी १०५) बलरामजी वेरी १०१) गोवर्धनदासजी नराणा १०१) धर्मदासजी दतिया १०१) देवादासजी बीकानेर १०१) बालूरामजी मंडलीश्वर १०१) सहजरामजी कानोड़ १०१) शिवकरणदासजी चिड़ावा १०१) जुगलरामजी नराणा १०१) वैद्य श्यामलालजी जयपुर १०१) पु० रामनिवासजी चौमूं १०१) अमरदासजी सीकर १०१) पारांवाई विसाक १००) भगवानदासजी लछमनगढ़ ५१) पं० अर्जुनलालजी चौमूं ५१) हरिनन्दजी सांभर ५१) और भानाबाई ने ५०) दिये थे।

(वि० द० वि०)

# अत्याचार का परिणाम

पूर्ण सन्नाटा था। एक शब्द भी न सुनाई देता था। मन्दिर का वह विशाल सोने का घंटा आज गम्भीर स्वर में नहीं बज रहा था और नर्त्तकियाँ ही आज सोमनाथ बाबा को प्रसन्न करने के हेतु अपनी अपनी कला दिखला रही थीं। दर्शकगण आते थे और चुपचाप चले जाते थे। पहले की भाँति कोई किसी से हँसता-बोलता न था, कोई मन्त्रोच्चारण न करता था, कोई बम बम न करता था।

मन्दिर की विशाल बारादरी के एक कोने में बैठे पुजारी देवता कुछ और आदमियों से परामर्श कर रहे थे। सब बड़े गम्भीरभाव से बैठे किसी गूढ़ विषय पर विचार कर रहे थे। कुछ समय पश्चात् पुजारी ने पूछा—"कहिए सरदार साहब, उद्धार का कोई मार्ग दृष्टि में आया।

सरदार—"महाराज, अपनी परस्थिति इतनी गिरी हुई है कि कोई बात समझ में नहीं आती। भगवान् ही रक्षा करें तो हो सकती है, नहीं तो कोई आशा नहीं।

दूसरा मनुष्य—"सत्य है, जब सुराष्ट्र के सब राजाओं की सम्मिलित सेनायें महमूद को न रोक सकीं तब फिर हम लोग क्या कर सकते हैं ?"

पुजारी—"फिर क्या आप लोग सोमनाथ के इस प्राचीन मन्दिर को भी भारत के अन्य मन्दिरों की भाँति भ्रष्ट होने देंगे ?"

सरदार—"नहीं, जान रहते ऐसा सम्भव नहीं।"

पुजारी—"धन्य है, धन्य है।"

तीसरा मनुष्य—"परन्तु महाराज ! यह तो विचारिए कि ऐसे भक्त कितने हैं जो सोमनाथ को म्लेच्छों के हाथों से बचाने के लिए अपने प्राण विसर्जन करने को तैयार हैं ?"

चौथा—"और यदि हों भी तो जब महमूद ने लड़ैते जवानों के छक्के छुड़ा दिये तब हम लोग किस गिनती में हैं।"

पुजारी—"मेरी समझ में एक बात आती है जिससे सम्भव है कि हम लोग अपने इस प्राचीन देवस्थान की रक्षा कर सकें।"

सरदार—"कहिए महाराज, वह कौन-सा उपाय आपकी समझ में आया है।"

पुजारी—"यह तो आप जानते ही हैं कि महमूद कुछ अपना राज्य स्थापित करना नहीं चाहता। उसका ध्येय है धन। मेरी समझ में यदि उसे हम लोग बहुत-सा धन देने का वचन देंगे तो वह मन्दिर पर आक्रमण न करेगा।"

सरदार—"बहुत उत्तम विचार है, किन्तु यदि वह इस पर राज़ी न हुआ।"

पुजारी—"फिर हम अपने अपने प्राणों को सोमनाथ के चरणों पर निछावर कर देंगे।"

सब—"ठीक है, ठीक है। इससे बढ़कर निस्तार का और कोई मार्ग नहीं दिखलाता।"

इसके दूसरे ही दिन महमूद की सेना ने मन्दिर का घेरा डाल दिया और पुजारी से यह कहला भेजा कि यदि वह बिना लड़े हुए मन्दिर ख़ाली कर देगा तो उसके प्राण बच जायँगे, नहीं तो उसकी और उसके साथियों की दुर्दशा ही होगी।

पुजारी ने दूत से कहा—"तुम जाकर अपने मालिक से कहो कि हम अपने एक आदमी को उनसे बातचीत करने को शीघ्र ही भेजते हैं।"

महमूद का दूत चला गया और कुछ ही क्षण पश्चात् पुजारी ने एक मनुष्य को महमूद के पास भेजा।

महमूद ने उससे पूछा—"कहो, तुम्हारे सरदार ने क्या तय किया है।"

पुजारी का दूत—"पुजारीजी ने कहा है कि यदि आप वापस चले जाने का वचन दें तो वे पचास लाख रुपया देने को तैयार हैं।"

महमूद—"ग़ैर मुमकिन।"

दूत—"अच्छा एक करोड़ दिये जायेंगे।"

महमूद—"नहीं, नहीं, हरगिज़ नहीं।"

दूत ने दो करोड़ देने को कहा, परन्तु महमूद ने वह भी स्वीकार न किया। धीरे धीरे पाँच करोड़ तक कहे गये परन्तु हर बार महमूद ने वही उत्तर दिया—"मैं किसी प्रकार मन्दिर को नहीं छोड़ सकता।"

अन्त में दूत ने कहा—"अच्छा आपके जितने ऊँट हैं सब सोने और चाँदी के सिक्कों से लाद दिये जायँगे और इसके अतिरिक्त ऐसे अमूल्य हीरे और मोती दिये जायँगे जिनके वास्तविक मूल्य का कोई भी अन्दाज़ा नहीं लगा सकता।"

महमूद ने बड़े क्रोध में कहा—"जाकर अपने पुजारी से कह दो कि मैं मूर्ति तोड़नेवाला हूँ, बेचनेवाला नहीं।"

दूत वापस चला गया। पुजारी महमूद का यह उत्तर पाकर हताश हो गया। उसने समस्त मनुष्यों को एकत्र करके कहा—"भ्राताओ, अब प्राण देने का समय आ गया है। बोलो कौन सोमनाथ बाबा के लिए प्राण देने को तैयार है।" सैकड़ों हाथ उठ गये। सरदार उन सब मनुष्यों और अपनी सेना को लेकर युद्ध करने को बाहर निकल आया।

महमूद भी आगे बढ़ा। घमासान युद्ध हुआ। परन्तु हार अन्त में हिन्दुओं की ही हुई। महमूद, विजयी महमूद मन्दिर में घुस गया। जिस सोमनाथ के मन्दिर में मनुष्य नङ्गे पैर जाते थे, वहाँ आज यवन-सैनिक जूते पहने हुए घुस गये और सोमनाथ की विशाल मूर्ति टुकड़े टुकड़े कर दी गई।

महमूद मूर्ति तोड़ कर खड़ा ही हुआ था कि एक यवन सरदार ने आकर कहा—"हुज़ूर, पुजारी भाग गया और मुझे शक है कि उसके पास बहुत से क़ीमती जवाहर हैं।"

महमूद—"अच्छा उसके घर की तलाशी लो।"

सरदार चला गया। शीघ्र ही यवन-सेना ने पुजारी के घर को घेर लिया। यद्यपि नौकरों ने यवन-सरदार को विश्वास दिलाया कि पुजारी घर में नहीं है, परन्तु वह कब माननेवाला था। सैनिकों को आज्ञा दी कि घर में घुस जाओ। तत्काल ही दरवाज़े तोड़ दिये गये और सरदार अपने कुछ विश्वासी सैनिकों को लेकर भीतर गया। घर भर छान डाला गया, परन्तु कुछ हाथ न आया। केवल पुजारी की षोडशवर्षीया कन्या उनके हाथ आई। यवन-सरदार ने उससे पूछा—"बता तेरे वालिद कहाँ हैं?"

उस कन्या ने हँस कर कहा—"क्या आप समझते हैं कि यदि मैं जानती भी होऊँगी कि वे कहाँ हैं तो तुमको बता दूँगी।"

सरदार—"अगर न बतायेगी तो मारी जायगी।"

कन्या—"इसकी मुझे चिन्ता नहीं।"

सरदार ने अपने सहकारी ग़फ़ूर को आज्ञा दी कि इसको नग्न करके कोड़े लगाये जायँ। यह आज्ञा पाते ही कुछ सैनिक आगे बढ़े। उनको बढ़ते देखकर कन्या ने डाँट कर कहा—"ख़बरदार जो हाथ लगाया।" इतना कह कर उसने अपनी कुरती से एक छूरा निकाल लिया। सैनिक ठहर गये। सरदार उनको रुकते देखकर क्रोध से लाल होकर कहने लगा—"नामर्दो एक औरत से डर कर पीछे क़दम रखते तुम्हें शर्म नहीं आती।" इतना कह कर वह आगे बढ़ा। कन्या का हाथ पकड़ने ही वाला था कि उसने समूचा छुरा उसकी छाती में घुसेड़ दिया। यवन-सरदार 'मार डाला' कह कर गिर पड़ा। उसको गिरते देख कर ग़फ़ूर और उसके साथियों ने उस अबला पर एक साथ आक्रमण किया और एक क्षण में उसके टुकड़े टुकड़े कर दिये गये। तत्पश्चात् वे अपने सरदार का मृतक शरीर लेकर चले गये।

इनके जाने के कुछ ही क्षण पश्चात् एक सुन्दर युवक आकर पुजारीजी के द्वार पर खड़ा हो गया। उसकी भव्य मूर्ति देखकर पुजारी के परिचारकों को कुछ धैर्य

हुआ, फिर भी वे यवनों के इस अत्याचार के दुख को अपने हृदय में न दबा सके। अश्रु की धार उनके नेत्रों से बह चली।

युवक ने कहा—"यह समय रोने का नहीं है। शीघ्र मृणालिनी को लेकर चलो। उसको यहाँ रखना उचित नहीं है।" परिचारक और रो पड़े। उनको अधिक रोता देख कर युवक ने अधीर होकर कहा—"मेरी मदद करो। रोने का समय बाद को भी है।"

एक वृद्ध ने सिसकते हुए कहा—"शिशुपाल मृणालिनी अब कहाँ! उसको तो यवनों ने मार डाला।"

युवक का मुख सुर्ख़ हो गया। उसने एक हाथ की ओर अपनी तलवार निकाल कर महमूद की सेना की ओर चला। उसके मुख का तेज द्विगुणित हो गया। उसके क्रोध और दुख को देख कर सब लोग समझ गये कि यह भी अपने प्राण देने जा रहा है। उस वृद्ध ने आकर युवक का हाथ पकड़ लिया और कहा, "शिशु! बदला मूर्खता से नहीं लिया जाता। वहाँ जाकर केवल दो-एक मनुष्यों को मार डालने से कहीं बदला चुक सकता है। बदला ऐसा लो कि ये हृदय-रहित यवन भी तो कुछ शिक्षा पायें।"

युवक ठहर गया। उसने अपनी तलवार म्यान में कर ली और धीरे धीरे घर में चला गया। भीतर जाकर उसने मृणालिनी का रक्तरंजित मस्तक उठाकर हृदय से लगा लिया और कहा—"मृणालिनी, मैं तेरी और सोमनाथ की शपथ खाकर प्रण करता हूँ कि इन यवनों को इस अत्याचार के बदले ऐसा कष्ट दूँगा कि इनको भी याद रहेगी। महमूद ही नहीं, उसके साथी भी मेरी धधकती हुई कोपाग्नि में भस्म होंगे।"

इतना कह कर शिशुपाल न जाने किधर चला गया।

× × × ×

महमूद ग़ज़नी लौटने के विचार में था। ख़ास दरबार में यह प्रश्न उठा कि किस मार्ग से जाना उचित है। महमूद ने कहा—"ग़ज़नी जल्द से जल्द पहुँचना ज़रूरी है, क्योंकि बलवाई अगर जल्द ही न दबाये जायँगे तो बहुत मुमकिन है कि वे ग़ज़नी पर भी हमला करें।"

एक सरदार—"ठीक है। मगर सिन्ध के रास्ते से तो दो महीने से ज़्यादा ही लग जायगा।"

दूसरा सरदार—"हुज़ूर, मैंने सुना है कि राजपूताना होकर जाने से बहुत कम वक्त लगता है। मगर रास्ता बहुत ख़राब है।"

महमूद—"अगर रास्ते की मुसीबतों का सामना कर भी लिया जाय तो रास्ता दिखलानेवाला कहाँ मिलेगा।"

पहला सरदार—"हुज़ूर इस रास्ते का ख़याल छोड़ दीजिए। वहाँ की मुसीबतों का सामना करना नामुमकिन है। अगर कहीं एक दिन भी पानी न मिला तो सैकड़ों आदमी प्यासों मर जायँगे।"

महमूद—"एक अच्छा राहबर इन सारी मुसीबतों को दूर कर सकता है।"

दरबार में सन्नाटा था। इतने में ग़फ़ूर जो अब तक चुप था, कहने लगा—"हुज़ूर मैं एक ऐसे हिन्दू को जानता हूँ जो राजपूताना के रेगिस्तान से ऐसा ही वाक़िफ़ है जैसा हम लोग ग़ज़नी की सड़कों से। बड़े बड़े मुस्लिम सय्याहों और कारवान सरदारों ने उसकी वफ़ादारी और सचाई की तारीफ़ की है। उसका कहना है कि मैं राजपूताना के रेगिस्तान से आँखों पर पट्टी बाँध कर निकल सकता हूँ। उसके एक एक चप्पे से वह वाक़िफ़ है। वह जानता है कि पानी कहाँ मिल सकता है। अगर हुज़ूर उसको रुपये का लालच देकर रास्ता दिखलाने को राज़ी कर लें तो सारी परेशानी दूर हो सकती है।"

महमूद सरदार की बात सुनकर हर्ष से फूल गया। उसकी दृष्टि के सामने ग़ज़नी का सुन्दर दृश्य नाचने लगा। उसने सरदार से कहा—"ग़फ़ूर जाओ, उस हिन्दू को तलाश करके ले आओ।"

ग़फ़ूर चला गया। लगभग दो घण्टे के पश्चात् वह एक सुन्दर युवक को अपने साथ ले आया। उसकी विशाल सौम्य मूर्ति को देखकर सारा दरबार सन्नाटे में आ गया। उसकी चाल में गर्व था, उसकी आवाज़ में

स्वाभिमान की प्रतिध्वनि थी और उसके नेत्रों में अनुपम ज्योति।

महमूद ने कहा—"नौ जवान हिन्दू! क्या तेरी बातों पर यक़ीन किया जाय।"

युवक—"यवन-सरदार! हिन्दू झूठ बोलना जानते ही नहीं।"

इतना कह कर युवक ने अपनी जेब से काग़ज़ का एक पुलिन्दा निकाल कर महमूद के आगे रख दिया। वे बड़े बड़े मुसलमान यात्रियों के प्रशंसा-पत्र थे। उनको देख कर महमूद बोला—"युवक, तुम्हारी वफ़ादारी और सचाई की तारीफ़ तो सभों ने की है। अच्छा अगर तुम मुझे आराम के साथ और जल्द से जल्द रेगिस्तान के बाहर कर दोगे तो इतनी दौलत दूँगा कि मालामाल हो जाओगे।"

युवक—"मैं वही करूँगा जो मेरा कर्तव्य है।"

दूसरे दिन प्रातःकाल मदमूद ग़ज़नी की ओर चल दिया। सबसे आगे वही युवक था। सारी सेना उसके पीछे पीछे जा रही थी। उस दिन कोई विशेष बात न हुई। सारा दिन अत्यन्त हर्ष-पूर्वक बीता। हर एक सैनिक अपने अपने राग में मस्त था। हर एक ग़ज़नी पहुँचने की आशा में मग्न था। शाम को एक अतिरमणीक स्थान में सभों ने डेरा डाला। अब वे रेगिस्तान के किनारे पहुँच गये थे।

प्रातःकाल सारी सेना रेगिस्तान में होकर आगे बढ़ने लगी। विचित्र परिवर्तन था। हरे हरे खेत और सुन्दर सुन्दर वृक्ष और लतायें सब विलीन हो गये। उनके स्थान पर दूर तक, दृष्टि की अन्तिम सीमा तक, एक ही दृश्य था और वह था अथाह, अपरिमित बालू का। ऐसा प्रतीत होता था मानो बालू का समुद्र है। कहीं भी हरियाली न थी, कहीं भी पानी न था। सूर्य की प्रखर किरणें बालुका-राशि को ऐसा चमका रही थीं कि उनकी ओर देखना असम्भव था।

परन्तु दिन भर का दुख शाम को दूर हो गया। युवक उनको ऐसे मनोहर स्थान पर ले गया जहाँ पानी का सुन्दर झरना था और हरी हरी घास और वृक्ष भी थे। सभों ने प्रसन्न होकर युवक को धन्यवाद दिया और फिर तम्बू लगा कर अपने अपने काम में लग गये। कोई तो घास पर लोट रहा था, कोई स्नान कर रहा था और कोई पड़े पड़े गा ही रहा था।

महमूद ने युवक को बुला भेजा। वह जाकर सामने खड़ा हो गया। महमूद ने कहा—"हम तुम्हारी इस वफ़ादारी से बहुत ख़ुश हैं। जैसी राहबरी तुमने इन दो दिनों की अगर ऐसा ही करते रहे तो हम तुम्हें और भी ज़्यादा दौलत देंगे और अगर चाहोगे तो कोई उमदा ओहदा भी दिया जायगा।"

युवक का मुँह एक क्षण के लिए लाल हो गया। फिर उसने गम्भीर स्वर में कहा—"मैं तो पहले ही कह चुका हूँ कि मैं वही करूँगा जो मेरा कर्तव्य है।"

महमूद—"क्या इसी तरह हर शाम को पानी मिलता रहेगा।"

युवक—"आशा तो ऐसी ही है।"

महमूद—"तो ज़्यादा पानी भर कर ले चलने की कोई ज़रूरत नहीं।"

युवक—"जैसा आप उचित समझें, कर सकते हैं।"

दो-तीन दिन तक ऐसा ही रहा। महमूद और उसके साथी प्रातःकाल चलते और दिन भर की दुस्तर यात्रा के पश्चात् सायंकाल किसी न किसी सुन्दर रमणीक स्थान पर जा पहुँचते, जहाँ जानवरों के लिए हरी घास और पानी बहुतायत से मिलता था और सैनिक सारे दिवस की थकावट दूर करते थे। सभों को यह आशा थी कि कुछ दिनों की ऐसी ही यात्रा के पश्चात् वे पंजाब जा पहुँचेंगे। किन्तु दूसरे ही दिन उनकी आशा पर पानी फिर गया। उस दिन रास्ता ऐसा ख़राब था कि जानवरों के पैर बालू में धँस जाते थे। हवा ऐसी गरम और तेज़ चल रही थी कि सैनिकों का शरीर झुलसा जाता था। वे अपने नेत्र तक न खोल सकते थे, क्योंकि पलकें उठाते ही बारीक बालू वायु के तेज़ झोंके के साथ आँखों में भर जाती थी और असहनीय वेदना होती थी, किन्तु आशा-मरीचिका उनको हतोत्साह नहीं होने देती थी। सायंकाल को किसी सुन्दर स्थान में पहुँचने की आशा उनके हृदय

को हरा किये हुए थी। वे दिल खोल कर पानी पी रहे थे, क्योंकि उनको यह शङ्का तो थी ही नहीं कि शाम को पानी न मिलेगा। हर एक यही सोचता था कि यह दुख दो-चार घड़ी का है।

शाम हो गई, किन्तु उनकी आशालता न फूली। कहीं पानी और घास न दिखलाई पड़ी। सभों की दृष्टि उस युवक की ओर थी। अन्त में महमूद ने उससे पूछा—"नौ जवान! क्या आज पानी नहीं मिलेगा?"

युवक—"जी नहीं, पानी यहाँ से अभी बहुत दूर है। मुझे यह आशा थी कि हम लोग उस स्थान तक पहुँच जायँगे, परन्तु ईश्वरीय कोप के कारण न पहुँच सके। यदि वायु इतनी तेज़ न होती तो कदाचित् हम लोग अपने मनोरथ में सफल हो जाते।"

सभों के मुँह मुर्झा गये। सारी आशायें निराशा में परिणत हो गईं। दिन भर के थके सैनिक बेदम होकर गिर पड़े। गरम हवा अब भी चल रही थी। पहले की भाँति आज वे उमंगें न थीं, वह हर्ष न था, वह चहल-पहल न थी। चारों ओर सन्नाटा था। सब अपना अपना काम कर रहे थे, परन्तु उचाट मन से। खाना पक रहा था, परन्तु यह चिन्ता लगी थी कि कल के दिन पानी कहाँ से आयेगा।

दूसरे दिन प्रातःकाल सेना आगे बढ़ी। सभी मुर्झाये हुए थे, परन्तु वह युवक आज भी पिछले दिनों की तरह गा रहा था। उसकी राग-लहरी चारों दिशाओं में गूँज कर वायु में विलीन होने लगी। सैनिक कहते थे—"यह भी अजीब आदमी है। मुसीबत में भी गाने की सूझती है।" कुछ इस पर कहते—"अजी यह तो ऐसी तकलीफ़ों का आदी है।

युवक के सुन्दर मुख पर मन्द मुसकान की रेखा थी, आँखों में असीम हर्ष की चमक। वह सदा की भाँति निर्भीकता-पूर्वक चला जा रहा था। उसकी चाल में औरों के समान डगमगाहट न थी।

आज पिछले दिन से भी अधिक कष्ट का सामना था। उनके पैर घुटनों तक धँस धँस जाते थे और वे बड़ी कठिनाई से बढ़ रहे थे। वायु धीरे धीरे इतनी गरम होने लगी कि सैनिकगण विह्वल हो उठे। उनका सारा शरीर पसीने से तर था, उनकी ज़बान सूख रही थी, उनकी आँखें बाहर निकली पड़ती थीं। उनके मुख से निकल रहा था "पानी, पानी।" परन्तु पानी का वहाँ कहीं पता ही न था।

इसी समय घोर तूफ़ान आया। रेगिस्तान का तूफ़ान कितना प्रलयकारी होता है सो कौन नहीं जानता। बालू का बादल चारों ओर छा गया। किसी को हाथों हाथ न सूझता था। आँखें, कान और नाक सब बालू से भर गये थे। दाँतों के तले बालू पड़ जाने से रोंगटे खड़े हो जाते थे। साँस लेना दुर्लभ था। बहुत से थके हुए सैनिक तो अधमरे होकर भूमि पर गिर पड़े और ऐसे गिरे कि फिर न स्वयम् उठे और न कोई उठानेवाला ही मिला। भला ऐसे विपत्-काल में कौन किसका होता है। सबको अपनी अपनी पड़ी थी।

तिस पर भी युवक ठहरा नहीं। उसने महमूद से कहा—"ठहरने में मौत के सिवा और कुछ भी नहीं है। यही उचित है कि हम लोग जितना शीघ्र हो सके यहाँ से निकल चलें, क्योंकि यह तूफ़ान शाम के पहले रुकने-वाला नहीं।"

सब एक-दूसरे के पीछे चले जा रहे थे। कुछ दूर जाने के पश्चात् युवक सहसा दाहनी ओर घूम गया। आगे के सैनिक तो उसके पीछे चले, परन्तु पीछे वाले चक्कर बचाने की नीयत से सीधे युवक की ओर चल पड़े। कुछ दूर आगे जाने पर वे सहस्रों मनुष्य जो सबसे आगे थे, बालू में धँस गये। केवल उनका धड़ बाहर रह गया और धीरे धीरे वह भी बालू में समाने लगा। ऐसा प्रतीत होता था कि कुछ ही क्षण में वे पूर्णरूप से बालू में धँस कर अपने प्राण त्याग करेंगे।

बहुतों ने उनके बचाने का प्रयत्न किया, परन्तु जो जिसको बचाने गया उसके साथ स्वयम् भी बालू के उस अगाध दलदल में घुस गया। युवक ने यह देखकर चिल्ला कर कहा—"इधर से घूम कर आओ। इस ओर अगाध बालू का दलदल है, जिसमें पड़कर कोई मनुष्य कभी जीवित निकल नहीं सकता।" उसके वचन समाप्त

भी न हुए थे कि वे सब मनुष्य पूर्णरूप से बालू में अन्तर्हित हो गये।

महमूद ने एक गहरी साँस ली और आगे बढ़ गया। अब सारी सेना युवक के पीछे पीछे चलने लगी। कोई एक पग भी इधर-उधर न हटता था। कुछ क्षण पश्चात् आँधी तो दूर हुई, परन्तु फिर भी किसी को शान्ति न मिली। मारे गरमी और प्यास के सभों का बुरा हाल था। सैकड़ों सैनिक पानी-पानी चिल्ला चिल्ला कर अपने प्राण त्याग रहे थे।

साँझ हुई, परन्तु फिर भी पानी का कहीं चिह्न न था। जानवर और मनुष्य सभी बेदम हो रहे थे, परन्तु वह युवक अब भी अपनी मस्तानी तान आलाप रहा था। ऐसा प्रतीत होता था, मानो उसे कोई भय ही नहीं, कुछ दुख ही नहीं, मानो वह लोहे का बना था। उसका मुख कुन्दन सा दमक रहा था, माथे पर बल तक न था।

आज महमूद अपने साथियों की दुर्दशा देखकर विचलित हो उठा। उसने युवक से पूछा—"क्या बात है, जो आज भी हम लोग पानी तक न पहुँच सके।"

युवक ने उत्तर दिया—"आपने तो देखा ही था कि कैसा भयानक तूफ़ान चल रहा था और फिर सैनिकों के दलदल में फँस जाने के कारण भी बड़ा समय नष्ट हुआ। ऐसी दशा में कैसे सम्भव था कि वहाँ तक पहुँच जाते।"

महमूद—"अगर कल भी कहीं ऐसा ही हुआ तो हम लोग बे मौत मरेंगे।"

युवक—"मरना-जीना तो ईश्वराधीन है। मनुष्य का तो कर्तव्य है केवल अपना काम करना।"

सूर्योदय के पश्चात् सैनिक फिर आगे बढ़े। वही दुख फिर सामने आया—वही तूफ़ान, वही गरमी, वही अग्नि-वर्षा। एक क्षण के लिए भी सूरज बादलों की ओट में न होता था। पानी की त्राहि त्राहि चारों ओर मच रही थी। मरा मरा की हृदय-विदारक चीख़ रह रह कर सुनाई दे जाती थी।

मगर युवक आज और दिनों से अधिक प्रसन्न प्रतीत होता था। उसका गान आज अधिक मनोहर था, उसकी चाल अधिक मस्तानी थी। उसके मुँह का तेज बढ़ रहा था। महमूद और उसके साथियों को बड़ा आश्चर्य था कि यह कैसा विचित्र मनुष्य है जो जीवन-मरण के समय भी अपनी तान नहीं बन्द करता। क्या इसको इन आपदाओं की चिन्ता नहीं!

दोपहर के समय महमूद का सबसे बड़ा सरदार और ग़फ़ूर दोनों अपने अपने ऊँटों से गिर पड़े। अत्यन्त गरमी से उनके प्राण निकल रहे थे। महमूद और वह युवक दोनों उनके पास ही खड़े थे।

दोनों ने महमूद की ओर देख कर कहा—"रहमत" महमूद के नेत्र भर आये। दोनों ने फिर कहा—"रह-मत"। इतना कहते कहते उनकी आँखें चढ़ गईं। युवक ने ग़फ़ूर का सिर अपनी जाँघों पर रख लिया और पंखा झलने लगा। ग़फ़ूर ने आँखों से अपनी कृतज्ञता प्रकट की। युवक ने झुक कर मन्द स्वर में कहा—"यवन-सरदार, यह तुझे सोमनाथ के मन्दिर में एक असहाय अबला की हत्या करने का परिणाम मिल रहा है।"

ग़फ़ूर उछल पड़ा और कुछ कहना चाहता था, परन्तु मृत्यु ने इतना समय न दिया।

शाम हो गई, किन्तु पानी फिर भी कहीं दिखाई न दिया। सारी सेना में हलचल मच गई। सैनिकों के सामने मृत्यु का भीषण दृश्य नाचने लगा। वे अपने सहस्रों साथियों को प्यास से तड़फ-तड़फ कर मरता देख चुके थे और अब उन्हें विश्वास था कि उनका भी अन्तकाल अधिक दूर नहीं है।

परन्तु वह युवक अब भी गा रहा था। उसकी आवाज़ में कम्पन न था, उसके मुख पर विषाद के चिह्न न थे। उसके नेत्र मन्द न थे वे हर्ष से चमक रहे थे, उनमें दैवी प्रकाश था।

महमूद ने बड़े क्रोध में युवक को बुला भेजा। युवक निडर रूप से जाकर सामने खड़ा हो गया। महमूद ने कहा—"क्यों, तूने तो कहा था कि आज शाम तक हम लोग ज़रूर ही पानी तक पहुँच जायँगे, मगर उसके ख़िलाफ़ यहाँ तो कोसों तक पानी की बू भी नहीं।"

युवक हँस पड़ा। उसकी हँसी भीषण थी। उसमें पाशविकता की झलक थी। महमूद के क्रोध का ठिका-

न था। उसने कहा—"बोल सच सच बतला कि तू हम लोगों के साथ फ़रेब तो नहीं कर रहा है।"

युवक फिर हँसा और तत्पश्चात् कहने लगा—महमूद, तू समझता था कि तेरे इस पाशविक अत्याचार का, पवित्र मन्दिरों को इस प्रकार भ्रष्ट करने का बदला तुझसे लेनेवाला कोई है ही नहीं, परन्तु ईश्वर हर एक के अच्छे-बुरे कर्मों का फल तत्काल ही देता है। तूने जो सोमनाथ का मन्दिर भ्रष्ट किया और एक अनाथ अबला को मरवा डाला, यह उसी पाप का परिणाम तुझे मिल रहा है। जिस पुजारी की लड़की मृणालिनी के तेरे अत्याचारी सरदार ग़फ़ूर ने टुकड़े टुकड़े कर दिये थे, देख ले मैं उसी मृणालिनी का भावी पति था। तूने मेरे प्रेम की हरी-भरी लता का नाश किया था, आज मैंने उसका बदला चुका लिया। जिन प्रशंसा-पत्रों को देखकर तूने मुझे अपना रास्ता दिखानेवाला बनाया था वे सब झूठे थे। उस बीहड़ रास्ते से जहाँ सदा तूफ़ान ही चलता रहता है और जहाँ कोसों पानी नहीं, मैंने तुझे लाकर तेरे पापों का तुझे दंड दिया है।"

युवक ने अपनी बात समाप्त भी न की थी कि सैकड़ों तलवारें उसके शरीर में घुस गईं। वह भूमि पर गिर पड़ा, परन्तु उसके मुँह का तेज घटने की जगह और द्विगुणित हो गया। मरते मरते उसके मुख से निकला "सोमनाथ, मृणालिनी" और फिर वह पवित्र आत्मा अनन्त में विलीन हो गई।

—रामेश्वरप्रसाद श्रीवास्तव

---

# भारत का भविष्य

भारत की वर्तमान समस्या के तीन प्रधान स्वरूप हैं—राजनैतिक, धार्मिक तथा सामाजिक। यह सत्य है कि ये भारतीय प्रश्न कुछ नये नहीं हैं, सैकड़ों वर्षों के पुराने हैं। तथापि यह भी कम तथ्यात्मक नहीं है कि आज प्रायः प्रत्येक भारतीय इन्हें जिस व्यग्रता से देखता है और सुलझाना चाहता है वह आज से लगभग सौ वर्ष पूर्व के लोगों में नहीं थी। सम्प्रति सभी की यह उत्कट अभिलाषा है कि राजनैतिक क्षेत्र में भारत स्वाधीनता का अनुभव करे, धार्मिक क्षेत्र में आडंबरहीन पावनता हो तथा समाज में अनावश्यक बाध्य-बंधन न हों ताकि लोग एक दूसरे को भाई-भाई समझें तथा भारतमाता के अभ्युदय के हेतु मिल-जुल कर सहयोग-पूर्वक सतत प्रयत्न करते रहें।

भारत की राजनैतिक स्थिति का भविष्य रूप क्या होगा। यह सबके जानने की बात है। अँगरेज़ी भारत में लोग वर्षों से स्वराज्याधिकारों के लिए आन्दोलन कर रहे थे। फलतः पहले-पहल १९०९ में मारलेमिंटो की योजना के अनुसार भारतीयों को कुछ अधिकार दिये गये। इसके ग्यारह वर्ष पश्चात् फिर १९२० में मांटेगू-चेम्सफ़ोर्ड-सुधार-योजना कार्य में परिणत की गई। पहली योजना से प्रतिनिधि-पूर्ण शासन-प्रणाली का भारतीयों को ज्ञान कराया गया और दूसरी ने उसके ढंग का भी कुछ अंग दिखाया। परन्तु इन योजनाओं से कोई राजनैतिक दल पूर्ण-रूप से संतुष्ट नहीं हुआ। अँगरेज़ी सरकार ने समय समय पर लोगों को आश्वासन दिया है कि ब्रिटिश-नीति का ध्येय भारतीयों को उत्तरदायित्व-पूर्ण शासन देना ही है, किंतु जब मुडीमैन कमिटी की "अल्पमतवालों की रिपोर्ट" में कुछ अधिक राजनैतिक सुविधाओं के लिए माँग पेश की गई तब वह ठुकरा दी गई, तथा दो वर्ष बाद अपनी अवधि से साल भर पहले ही सायमन-कमीशन नियुक्त हुआ, जिसमें एक भी हिन्दुस्तानी सदस्य नहीं रक्खा गया। यह देखकर कुछ लोगों की रही-सही आशा भी जाती रही और सभी को यह शंका होने लगी की अँगरेज-जाति भारत पर सदा अपना अधिकार बनाये रखने का प्रयत्न कर रही है। अतएव गरमदलवालों के साथ नरमदलवालों ने भी सायमन-कमीशन का बहिष्कार किया। अब अँगरेज़ी सरकार कुछ चकराई, और सोच-विचार कर भारतीयों को सूचित किया कि भविष्य में दूसरी सुधार-योजना निश्चित

करते समय केवल सायमन-कमीशन की ही रिपोर्ट का ध्यान नहीं रक्खा जायगा, अपितु भारत के सम्मानित प्रतिनिधि आमंत्रित किये जायँगे, जो ब्रिटिश सरकार के प्रतिनिधियों से स्वतंत्र रूप से परामर्श करेंगे और उनकी सम्मिलित सिफ़ारिश पर पूरा ध्यान दिया जायगा। इस सूचना से नरमदल-वालों का आश्वासन हो गया और फलस्वरूप वे आज इँग्लेंड में परामर्श कर रहे हैं। पहले ब्रिटिश भारतीयों को स्वराज्य की प्राप्ति में देशी नरेशों से सहयोग पाने की आशा न थी। किंतु उनके भी प्रतिनिधि इँग्लेंड में उपस्थित हैं और ब्रिटिश-भारत के प्रतिनिधियों की माँग का पूर्णरूप से समर्थन कर रहे हैं। इस प्रकार यह पहला अवसर है, जब भारतीय प्रतिनिधि मिल-जुलकर अपने देश में स्वतंत्र रहने के लिए अँगरेज़ सरकार के समक्ष अपनी माँग पेश कर रहे हैं। इस माँग में इतना न्याय, इतना सहयोग तथा इतना बल है कि ब्रिटिश सरकार उसे निस्सन्देह पूरा करेगी। अब तक जो कार्यवाही हुई है वह संतोषजनक है। सेना तथा परराष्ट्र-विभाग तथा कर का कुछ अंश अँगरेज़ों के अधिकार में कुछ दिनों के लिए भले ही रह जाय, किंतु और सभी विषयों का दायित्व हिन्दुस्तानियों को दिया जायगा। शेषांश के लिए कोई अवधि नियत होगी और उस अवधि के बाद भारत को पूर्ण औपनिवेशिक स्वतंत्रता प्राप्त हो जायगी।

अब रही भारतीय सरकार के स्वरूप की बात। उसका निपटारा इस प्रकार होने जा रहा है कि भारत के सभी प्रांत तथा देशी राज्य आंतरिक मामलों में पूर्ण स्वतंत्र रहें और केवल अखिल भारतीय प्रश्नों के संबंध में एक परिषद् के अधीन रहें, जिसमें सभी प्रांतों तथा राज्यों तथा ब्रिटिश सरकार के प्रतिनिधि रहें। उस परिषद् का निर्णय सबको मान्य होगा।

इस राजनैतिक भविष्य का धार्मिक भविष्य से भी गहरा संबंध रहेगा। भारत के प्रधान धर्म हिन्दू-धर्म में युग-युगांतर से सुधार होता आ रहा है। उपनिषदों के द्रष्टा ऋषियों से लेकर आधुनिक काल के राजा राममोहन राय, स्वामी दयानन्द आदि संत और आचार्यों ने यही प्रयत्न किया है कि भारतीय एक आदर्श धर्म के उपासक रहें, जिसमें विश्व के सभी धर्मों का समुच्चय हो। उन सभी के प्रयत्नों का फल यह दीख रहा है कि जो लोग सुशिक्षित हैं वे समझते हैं कि धर्म नाम की वस्तु हृदय की वस्तु है, बौद्धिक खंडन-मंडन अथवा भौतिक यज्ञ-जाप से वह बहुत दूर रहती है। किन्तु ऐसे सुशिक्षितों की संख्या बहुत कम है। शेष हिन्दू-जनता धर्म से कुछ उदासीन-सी दीखती है। कदाचित् इसका प्रधान कारण यह है कि सामान्य शिक्षा-दीक्षावालों के लिए एक सर्वप्रामाणिक सुबोध धर्म की पोथी नहीं है। यदि समय पाकर हिन्दू-विचारक उसका निर्माण करें तो धर्म का बड़ा प्रसार हो। किसी धर्म को जीवित रखने के लिए यह अत्यंत आवश्यक है कि उसके अनुयायी नित्य अपने शास्त्रों का पाठ करें तथा किसी उपासना-पद्धति की साधना करें। इसी को लक्ष्य में रख कर हमारे ऋषियों ने ज्ञानयज्ञ तथा संध्योपासन को नित्य का अत्यंत आवश्यक कर्म कहा है। इस अभ्यास की इस समय बड़ी कमी है। यह दुःख और सन्ताप का विषय है। इस दिशा में अपने अपने विचार-विश्वास के अनुसार

ही महर्षि मालवीय, विश्ववन्द्य टैगोर तथा स्वर्गीय श्रद्धानन्द ने क्रमशः हिन्दू-विश्वविद्यालय, शांतिनिकेतन, विश्वभारती तथा गुरुकुल की स्थापना करके बड़ा ठोस कार्य किया है। ऐसे शिक्षा-केन्द्रों से हिन्दुओं में धार्मिक जीवन की पुनर्जागृति होगी।

पूर्व-काल में मुसलमानों का दृढ़ विश्वास था कि सभी हिन्दू एक दिन मुसलमान बन जायँगे। किन्तु अब वह विश्वास ढीला पड़ रहा है। उनके राजनैतिक आधिपत्य तथा हिन्दुओं की कुछ सामाजिक कुरीतियों ने मुसलमानों की संख्या पहले बढ़ा दी थी। किन्तु अब एक ओर उनका आधिपत्य जाता रहा और दूसरी ओर हिन्दू अपनी ख़बर लेने लग गये हैं; और इसलिए मुसलिम-संख्या की बाढ़ कुछ रुक गई है। यही हाल ईसाई-धर्म का भी है। उसका भी पहले यहाँ अच्छा प्रचार हुआ, किन्तु अब वह प्रगति नहीं रही। जब भारत में भारतीय सरकार की स्थापना हो जायगी तब सभी धर्मवालों को अपने अनुचित प्रयोगों को त्याग करना पड़ेगा और सभी से सहिष्णुता का व्यवहार करना पड़ेगा। इससे जो धर्म जिस संख्या में आज हैं, कदाचित् उसी के आस-पास बने रहेंगे। किसी एक का अधिक आधिपत्य न हो सकेगा। राजनैतिक सुख के उल्लास में लोग कदाचित् उसकी विशेष चिंता भी न करेंगे।

किन्तु सामाजिक क्षेत्र में यह साम्यावस्था कदाचित् न रहेगी। उसमें बड़े बड़े परिवर्तन होंगे। हिन्दुओं का प्रधान वर्ण-भेद स्वाभाविक है और वह न मिट सकेगा। किन्तु अनेक उपवर्ण अवश्य ही मिट जायँगे। पाश्चात्य शिक्षा के प्रचार तथा मिलजुल कर राजनैतिक आन्दोलन करने, नाना यातनायें सहने के कारण लोगों में सामाजिक भेदोपभेद शिथिल पड़ते जा रहे हैं। ऊँच-नीच का भेदभाव मिट रहा है तथा सामान्य बंधुत्व की भावना ज़ोर पकड़ती जा रही है। भविष्य में यह अधिकाधिक बढ़ेगी। उस समय बहुत से विषय जो आज धर्म के अंतर्गत समझे जाते हैं, सामाजिक समझे जाने लगेंगे और धर्म का वृत्त जीवन में न्यून होता जायगा। विवाह-बंधन तथा भोजन के नियम धर्म की अधीनता में न रह सकेंगे।

स्त्री-जाति की अवस्था पूर्ण सामाजिक स्वतंत्रता की अवस्था हो जायगी। उसका कारण उनकी शिक्षा की वर्तमान प्रगति है। स्त्री-शिक्षा का दिन दिन प्रचार होता जा रहा है और शिक्षाप्राप्त स्त्री न परदे में रहेगी, न पुरुष की चेरी बन कर। शिक्षा तथा दासता में बड़ा विरोध है। दोनों साथ नहीं रह सकते।

अंत में यह कहा जा सकता है कि भविष्य का भारत सुखी भारत होगा। जीवन के प्रत्येक विभाग में शांत और सुख होगा। हमारा भविष्य बड़ा उज्ज्वल है। शायद हम एक बार फिर जगत् के लिए आदर्श जाति बन जायँ।

—रामप्रसाद पाण्डेय

# निराशा

( १ )

आशा की झलक बची थी
मैं भी था पलक बिछाये
उस समय अचानक चुपके
तुम मन-मन्दिर में आये

( २ )

मैंने भी तुमको उस क्षण
ऊँचे आसन बैठाया
सब कुछ अर्पण कर डाला
तुमने हँस हँस अपनाया

( ३ )

अगणित अवसर पर तुमने
थी मदिरा आकर ढाली
अब चले गये क्यों चुपके
ख़ाली रक्खी है प्याली

( ४ )

यद्यपि था विकट असम्भव
नाता दोनों के तन का
पर आशा विहँस रही थी
था मेल आँख का मन का

( ५ )

चुन चुन कर कलियाँ तोड़ीं
ख़ाली कर डाली डाली
क्यों व्यर्थ बने थे आकर
इस हृदय बाग़ के माली

( ६ )

चिन्ता, करुणा, क्रन्दन, से
है शान्ति दूर भग जाती
आशा भी करवट लेकर
सोई वेदना जगाती

( ७ )

मैं पिरो रहा हूँ बैठा
अपनी आँसू की लड़ियाँ
है व्यर्थ अनिल में जलती
इच्छाओं की फुलझड़ियाँ

( ८ )

जब लगन लगेगी सच्ची
जब सच्चा ठाठ ठनेगा
पाषाण हृदय वह तेरा
गल करके सदय बनेगा

( ९ )

तब तक समझूँगा मैं भी
जीवन अपना है सपना
बस ध्येय यही स्मृति की
सूखी मालायें जपना

—देवशंकर त्रिवेदी

---

# मैं ल्हासा कैसे पहुँचा ?

## तृतीय परिच्छेद

१७ दिसम्बर को हम फर्दापुर से जलगाँव के लिए बैलगाड़ी पर पाडुर तक १० मील आये, फिर २४ मील जलगाँव तक बस में। जलगाँव से मैं तो उसी दिन साँची के लिए रवाना हो गया, किन्तु सूथर साहब ने दूसरे दिन आने का निश्चय किया। सवेरे मैं साँची पहुँच कर उसे देखने गया। कभी ख़याल आता था कि यही स्थान है, जहाँ अशोक के पुत्र महेन्द्र सिंहल में धर्म-प्रचारार्थ हमेशा के लिए प्रस्थान करने से पूर्व कितनेही समय तक रहे थे। यही स्थान है, जहाँ मगध छोड़, बुद्ध का शुद्ध-तम धर्म (स्थविर-वाद) शताब्दियों तक रहा। उसी समय तथागत के दो प्रधान शिष्य महान् सारिपुत्र और मौद्गल्यायन की शरीर-अस्थि विशाल सुन्दर स्तूपों में रक्खी गई थी, जो अभी तक यहीं रही थी, और अब ब्रिटिश म्यूज़ियम की शोभा बढ़ा रही है।

चैत्यगिरि के स्तूपों को गद्गद हो देखा। भूपाल राज्य के पुरातत्त्वविभाग के सुन्दर प्रबन्ध को भी देखकर अत्यन्त सन्तोष हुआ। लौटकर स्टेशन आया तो सूथर साहब भी आ गये थे, इसलिए एक बार उन्हें दिखाने के लिए भी जाना पड़ा।

१९ से २६ तारीख़ तक कोंच में अपने एक पुराने मित्र के यहाँ रहना हुआ। दाशार्णों का देश सूखा होने पर भी कितना मधुर है।

अब मुझे शिवरात्रि से पूर्व मध्यदेश के बुद्ध के चरण से परिपूत कितने ही प्रधान स्थानों को देख लेना था। २७ से मैंने फिर बाबा रामउदार की काली कँमली पहनी, एक छोटा सा झोरा और आनन्द की सिंहल पहुँचाई बाल्टी को साथ लिया। २७ को कन्नौज पहुँच गया। बे-घर को घर की क्या फ़िक्र! एक्केवाले से कहा, शहर से बहुत दूर न हो ऐसी बग़ीची में पहुँचा दो। एक छोटी सी बग़ीची मिल भी गई। पुजारीजी ने अकिंचन साधु को उसके लायक़ ही स्थान बतला दिया। खुली जगह थी, दो वर्ष बाद जाड़े से भेंट हुई थी, इसलिए मधुर तो नहीं लगा।

कन्नौज ? नया कन्नौज तो अब भी बिना गुलाल का छिड़काव किये ही सुगन्धित हो रहा है। लेकिन मैं तो मुर्दों का भक्त ठहरा। २८ को थोड़ा जलपान कर चला टीलों की ख़ाक छानने। ऐसे तो सारा ही देश असह्य दरिद्रता से पीड़ित हो रहा है, लेकिन प्राचीन नगरों का तो इसमें और भी अभाग्य है। शताब्दियों से उनका पतन आरम्भ हुआ, अब भी नहीं मालूम होता कहाँ तक गिरना है। विशेषकर श्रमजीवियों की दशा अकथनीय है। मैंने चमारों के यहाँ जाकर एक जानकार आदमी को साथ लिया। एक दिन के लिए चार आना उसने काफ़ी समझा, मैंने जो देना है, यह तो पहले ही निश्चय कर लिया था, कहीं वह कुछ और न समझ जाय, इसलिए उसको उसकी ही माँगी मजदूरी पर तब तक छोड़ दिया।

कन्नौज क्या एक दिन में देखने लायक है ? और उसका भी पूरा वर्णन क्या इस लेख में लिखना शक्य है, जिसका मुख्य सम्बन्ध एक दूसरे ही सुदीर्घ वर्णन

शिकोहाबाद में रात की ट्रेन कुछ देर से मिलती है। सवेरे ही भरवारी पहुँच गया। उतरते ही हाथ-मुँह धो पहले पेट-पूजा करनी शुरू की। मैंने पभूसा जाकर कौशाम्बी आने का निश्चय किया। मालूम हुआ, करारी तक सड़क है। वहाँ तक को एक्का मिलेगा, उसके बाद पैदल जाना होगा। एक्का किया। खाते ही सवार हुआ। तेज़ एक्के को कच्ची सड़क पर भी ९ मील जाने में कितनी देर लगती है। करारी में जाकर मैंने किसी आदमी को साथ लेने का विचार किया। गाँव में अधिकतर मुसलमान निवास करते हैं। बहुत कहने-सुनने से दो मुसलमान लड़के चलने को तैयार हुए। मैंने उनके लिए भी अमरूद ख़रीद दिये। गाँव से बाहर निकलते ही एक मध्य वयस्क पतली-दुबली मूर्ति जिसके चेहरे से ही मुहब्बत टपक रही थी, मिली। ये इस गाँव के पुराने मुसलमान अमीर ख़ानदानों में से एक थे। देखते ही—

"शाह साहब! इस वक़्त कहाँ जा रहे हैं? आज मेरे ग़रीब-ख़ाने पर तशरीफ़ रखिए।" "भई! आज पभूसा पहुँचना है।"

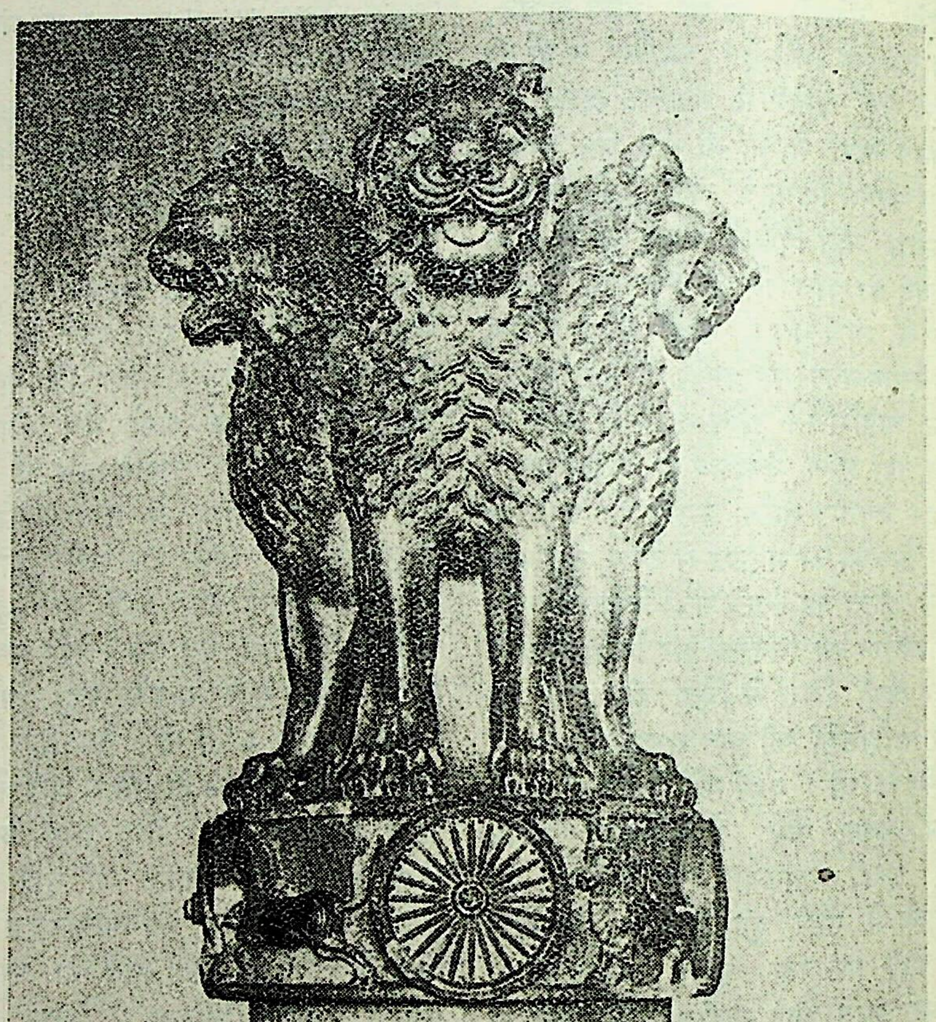
"फ़क़ीरों को आज-कल में क्या फ़र्क़? आज मेरे ग़रीब-ख़ाने को पाक कीजिए। हम बद्-क़िस्मतों को कहाँ ऐसी हस्तियाँ नसीब होती हैं?"

जान-बूझकर तमप् प्रत्यय में नहीं बोल रहे थे। ऐसे प्रेम के बन्धनों से छूटना बहुत मुश्किल है ही, बड़ी मुश्किल से वहाँ से जान बचा पाये। अभी उनके गाँव के खेतों में ही थे। तब तक एक लड़का पाख़ाने का बहाना कर नौ-दो ग्यारह हुआ। दूसरे को भी मैंने इधर-उधर झाँकते देखा। कुछ पैसे दे लौटा दिया। बेचारों ने लौटकर शाह साहब की तारीफ़ का पुल ज़रूर बाँध दिया होगा।

करारी से पभूसा पाँच कोस बतलाते हैं। दिसम्बर का दिन था, एक से अधिक बज चुका था, रास्ता भी अनदेखा, इसलिए जल्दी जल्दी क़दम रखना ही अच्छा मालूम हो रहा था। खेत वैसे चारों ओर हरे-भरे थे, तो भी ताज़ी वर्षा ने उनकी शोभा और बढ़ा दी थी। आगे बबूल के दरख़्तों के नीचे इनी-गिनी भेड़-बकरियाँ लिये कुछ कुमार-कुमारियाँ उन्हें चरा रहे थे। यद्यपि एक एक अंगुल जोड़ भूमि में भेड़ों के चरने का युग चला गया है, तो भी वे शताब्दियों पुराने गीत कान में अँगुली लगाकर आज भी गा रहे थे। मैं खेतों में रास्ता भूल गया था, इसलिए रास्ता पूछने के लिए उनके पास जाना पड़ा। वहाँ एक और साथी कुछ दूर आगे जानेवाला मिल गया। उसका मकान गंगा की नहर के किनारे बसे आगे के बड़े गाँव में था। ग़रीब मालिक के लिए गाँजा ख़रीदने गया था। हमको तो उस गाँव से कोई काम न था, आज ही पभूसा पहुँचना था। उसने कहा, यदि मालिक ने छुट्टी दे दी तो मैं आपको पभूसा तक पहुँचा दूँगा। आगे नहर पर मैंने थोड़ी देर इन्तिज़ार किया। फिर जान लिया कि मालिक की मर्ज़ी न हुई होगी। मैंने रास्ता पूछा और यह भी कि रास्ते में कहीं कोई पंडित है। मुझे नहर की पटरी पर ही एक पंडितजी का घर बतला दिया गया। जल्दी जल्दी में वहाँ पहुँचा। अब दिन बहुत नहीं रह गया था। पभूसा पहुँचने का लोभ अबभी दिल से न हटा था। पंडितजी के बारे मैं पूछा। वे घर में थे, निकल आये। पीछे एक अपरिचित ग़रीब साधु को देखकर उनके चित्त में भी वही हुआ जो एक अभागे देश के साधन-हीन गृहस्थ के हृदय में हो सकता है। उन्होंने आगे एक बहुत सुन्दर टिकाव बतलाया। मेरी भी तो अन्तरात्मा पभूसा में थी। आगे चलकर नहर छोड़नी पड़ी। रास्ता खेतों में से होकर था। भूलने पर कहीं कहीं ऊख के कोल्हू के पास जाना पड़ता था। जाते जाते नालों के आरम्भ होने से पूर्व ही सूर्य ने अपनी लाल किरणों को भी हटा लिया। अब रास्ता कुछ अधिक स्पष्ट था, तो भी पोसों नीचे, पोसों ऊपर आनेवाले रास्ते में, जिसमें जहाँ-तहाँ और रास्ते आते जाते दिखाई पड़ते थे, रास्ते का क्या विश्वास था! जल्दी कोई गाँव भी नहीं आता था। ख़याल था, कि

तो यमुना के उत्तर वत्सों का समतल देश है। परन्तु यहाँ तो चेदियों (बुंदेलों) की-सी ऊवड़-खावड़, अनेक नालों से परिपूर्ण भूमि है। आख़िर पानी की यमुना ही तो इसे चेदी बनाने में रुकावट डालती है। अब भी आगे बढ़ते जारहे थे, तो भी धीरे धीरे आशा ने साथ छोड़ना आरंभ किया। कहीं दूर भी कोई चिराग़ टिमटिमाता नहीं दिखाई पड़ता था। उसी समय एक तालाव का बाँध दिखलाई पड़ा। पहले पीपल के दरख़्त के नीचे गये। पीछे पास में एक छोटा सा शून्य देवालय दिखाई पड़ा। विचार किया, इतनी रात को अपरिचित गाँव में ऐसी सूरत से जाने की अपेक्षा यहीं शून्य देवालय में विहार करना अच्छा है। वाहर चबूतरा वहुत पुराना हो जाने से बिगड़ गया था। बिजली की मशाल से देखा, टूटी-फूटी अनेक मूर्तियों से जटित वह छोटी मढ़ी दिखाई पड़ी। हमने रात वहाँ विताने का निश्चय कर लिया। आगे बढ़ने का विचार अभी चित्त से बिदा ही हुआ था कि कुछ दूर पर आदमियों की वात सुनाई दी।

वरगद के पेड़ के नीचे वहाँ दो गाड़ियाँ खड़ी देखीं। मालूम हुआ, कुछ जैन-परिवार दर्शन करने के लिए इन्हीं गाड़ियों पर आये हैं, जो पास ही धर्मशाला में ठहरे हुए हैं। पभूसा पहुँच गये सुनकर बड़ी प्रसन्नता हुई। धर्मशाला के कुएँ से पानी भर लाये और गाड़ीवानों के बग़ल में आसन लगा दिया। बेचारों ने धूनी भी लगा दी। सवेरे गाँव से होकर यमुना स्नान को गया। गाँव में कुछ ब्राह्मण-देवालय भी दिखाई पड़े। स्नान से लौट कर पहले विचार हुआ, पहाड़ देखना चाहिए, जिसके लिए इतनी दूर की ख़ाक छानी थी। जब एक पाली-सूत्र में कौशाम्बी के घोषिताराम से आनन्द के 'देवकट सोब्भ' को एक छोटे पर्वत के पास पढ़ा था, तब संकेत होगया था कि यमुना के उत्तर में कहाँ से पहाड़। लेकिन अयुष्यान् आनन्द जब इन सभी तीर्थों को घूमकर सिंहल पहुँचे, तब वह सन्देह जाता रहा। इस एकांत पहाड़ी के दो भाग हैं, उत्तरवाला बड़ा पहाड़ कहा जाता है, जिसके निचले भाग में पद्म-प्रभु का मंदिर है। जैन गृहस्थों ने कहा, साथ चलें तो दरवाज़ा खोलकर दर्शन होगा। मैं थोड़ा आगे हो गया। (पहाड़ी की ऊपरी चट्टानों पर कितनी ही पुरानी छोटी छोटी मूर्तियाँ खुदी हुई हैं, बहुत सी दुर्गम भागों पर हैं। ये मूर्तियाँ अधिकतर जैनी मालूम होती हैं। इससे मालूम होता है, सहस्रों वर्ष तक कौशाम्बी के समृद्धिकाल में यहाँ जैन-साधुजन रहा करते थे। उस समय कौशाम्बी के धनकुबेर यहाँ कितनी ही बार धर्म-श्रवण करने आया करते थे। थोड़ी देर में जैन गृहस्थ भी आगये। उन्होंने स्वयं भी दर्शन किया। मुझे भी बड़े आदर से तीर्थंकर की प्रतिमाओं का दर्शन कराया। वाहर उस समय दो-चार बूँदे पड़ रही थीं। चौड़े गच किये हुए खुले आँगन पर कहीं कहीं पीली बूँद सी कोई चीज़ निकली हुई थी। उन्होंने बड़ी श्रद्धा से कहा—यहाँ अतीतकाल में केशर बरसा करती थी। तब लोग सच्चे थे, अब आदमियों के बेईमान होजाने से यही केसर की भाँति चीज़ निकलती है। मैंने सोचा अतीत कितनी मधुर स्मृति है। भारत का यही तो एक सबसे पुराना जीवित धर्म है, जो अविच्छिन्न रूप से चला आता है। बौद्ध यदि होते तो बराबरी का दावा करते। शंकर, रामानुज,······सभी तो इनके सामने कल के हैं। ढाई हज़ार वष हो गये, कौशाम्बी जन-शून्य, गृहशून्य हो गई, भूमि ने कितने ही मालिक बदले, परन्तु इनके लिए केसर की वर्षा की बात पूरी सच्ची है। उन्होंने भोजन करने का निमंत्रण दिया। कौन उस गाँव में उसे अस्वीकार करता, यदि वह सत्कार बिना भी मिलता। वहाँ से मैं पहाड़ की परिक्रमा करने निकला। फिर ऊपर गया। पुराने स्तूप का ध्वंस है। एक छोटा सा नया स्तूप बना हुआ है। वहाँ से पास में एक ओर कलिन्द-नन्दिनी की मन्द नीली धार देखी, जिसके उस पार अभिमानी शिशुपाल का देश फैला है। प्रद्योत ने



[ सारनाथ में पाये गये अशोक-स्तम्भ का ऊपरी भाग ]

उधर ही दूर के किसी जंगल में हाथी के शौक़ीन उदयन को पकड़ा होगा। लेकिन वत्स तब भी स्वतंत्र रहा, कौशाम्बी स्वतंत्र, वैभव-सम्पन्न कौशाम्बी वर्षों तक यमुना के उस ओर टकटकी लगाये देखती रही। अन्त में उसने एक द्रुतगामिनी हथिनी पर कुरुओं की अंतिम रेखा को अकेले ही नहीं, प्रचंड अवन्तिराज की त्रिभुवनसुन्दरी कन्या वासवदत्ता के साथ। किन्तु आज की कौशाम्बी को क्या आशा है जब कि उसके बच्चे उसकी क्षीण स्मृति को भी भुला चुके हैं!

'बड़ा पहाड़' से उतर कर दक्षिणवाले 'मुँडिया' पर चढ़े। इसके ऊपर भी भूमि समतल है, बड़ी बड़ी ईंटों का स्तूपावशेष है। यमुना इसकी जड़ से बह रही है। आज यह पहाड़ सूखा है, किन्तु ढाई सहस्र वर्ष पूर्व यहाँ कोई स्वाभाविक जलाशय रहा होगा, जो देव-कट-सोब्भ कहा गया है।

लौटने पर भोजन में अभी थोड़ी देर मालूम हुई। फिर रातवाली मढ़ी की ओर गया। मालूम हुआ, 'प्रभास-क्षेत्र' के ब्राह्मणों ने तालाब का नाम 'देवकुंड' और मढ़ी को 'अनन्दी महारानी' का पुनीत नाम दे रक्खा है। एक परिमाणाधिक शिर, मध्य में जैन ध्यानी मूर्ति, और नीचे दूसरी किसी मूर्ति का खंड बस "अनन्दी माई" बन गई। पूछने पर तरुण ब्राह्मण ने अपने को "मलइयाँ पाँड़" बतलाया। फिर क्या, ख़ून हमारे शरीर में भी तेज़ी से दौड़ने लगा—

"क्या यहाँ भी मलइयाँ पाँड़े!"

युवक ने कारण बताया। कैसे किसी समय संकृति-वंशी कोई सरवार—मलाँव के ब्राह्मण तरुण ने विवाह-संबन्ध-द्वारा ऊँचा बनने की इच्छावाले किसी दूसरे ब्राह्मण के फेर में पड़ कर हमेशा के लिए जन्मभूमि को छोड़ दिया। उसने चलते चलते जैन-मन्दिर जाने तथा जैन की पकाई रोटी खाने के बारे में भी अपनी टिप्पणी कर दी। संकिसा की भाँति यहाँ के लोग 'सरौका' को न-पानी-चलनेवाला नहीं कहते।

प्रेम और श्रद्धापूर्वक दी हुई मधुर रसोई, उस पर चौबीस घंटे का कड़ाका, फिर वह अमृत से एक जौ भी कैसे नीचे रह सकती है। वे लोग भी कौशाम्बी जाना चाहते थे, किन्तु उन्हें नाव से जाने का प्रबन्ध करना था। साथ में बच्चे और स्त्रियाँ भी पर्याप्त संख्या में थीं, उनको हमारी नज़र से देखना भी न था। इसलिए हम भोजन के बाद अकेले ही चल पड़े। सिंहबल एक कोस पर है। उससे आगे पाली। पाली में पुरानी ईंटों के बने हुए घर बहुत देखने में आते हैं। पाली से थोड़ी ही दूर आगे कोसम है। यहाँ बस्ती के अधिकतर मुसल्मानों की पुरानी लाखौरी ईंटों के बने मकान बतलाते हैं कि कौशाम्बी मुसल्मानों के हाथों आते ही एकदम ध्वस्त नहीं कर दी गई।

कोसम से प्रायः आधा कोस पर गढ़वा है। यही पुरानी कौशाम्बी है। यह यमुना के तट पर है। दूर तक इसके दुर्ग-प्राकार आज भी छोटी पहाड़ियों से दिखाई पड़ते हैं। इसी के बीच में एक ऊँची जगह में जैन-मन्दिर है। मन्दिर के पास ही एक अति सुन्दर खंडित पद्म-प्रभु की प्रतिमा है। जैन-मन्दिर के उत्तर ओर थोड़ी दूर पर विशाल अशोक-स्तम्भ है। यह किस स्थान को सूचित कर रहा है, यह निश्चित तौर पर नहीं कहा जा सकता। घोषिताराम, बदरिकाराम आदि बौद्ध-संघ को दिये गये तीनों ही आराम शहर से बाहर थे। संभव है, यह उस स्थान को सूचित करता है, जहाँ पर उदयन की एक रानी बुद्ध की एक श्रद्धालु उपासिका श्यामावती सखियों के सहित अपनी सौत मागन्दी-द्वारा जलवा दी गई थी। श्यामावती बुद्ध के ८० प्रसिद्ध शिष्य-शिष्याओं में है। जलते वक़्त उसका धैर्य भी अपूर्व बतलाया गया है। वह महल में जली थी, इसलिए सम्भव है कि यहाँ ही राजकुल रहा हो।

कन्नौज की भाँति कोसम में भी रास्ता पूछते वक़्त एक मुसलमान सज्जन ने अपने मकान ले जाने को बहुत आग्रह किया था। न मानने पर गढ़वा देख कर

आने के लिए ज़ोर दिया। यद्यपि उन्होंने 'शाहजी' नहीं कहा, तो भी मालूम होता है, उनको भी मुझमें मुसलमानीपन ज़ाहिर होता था। यही भ्रम एक और मुसलमान ने उसी शाम को अकिलसराय के क़रीब कुछ दूर पर बकरियों को पत्ता खिलाते हुए, 'सलामालेकुम्' कहकर प्रदर्शित किया था। अँधेरा हो जाने पर अकिलसराय पहुँचे। पक्के कुएँ के पास ही धर्मशाला है, जिसके पास ही मंदिर। मन्दिर के अधिक साफ़ होने से वहीं रात बितानी चाही। मंदिर में आसन लगाकर आरती के बाद ठाकुरजी को दण्डवत् न करने जाना मेरा बड़ा भारी अपराध था। पुजारीजी ने नास्तिक कह ही डाला। लेकिन उसकी चोट लगे, इसका दिल ही कहाँ। इस प्रकार अकिल की सराय में १९२८ समाप्त हो गया।

पहली जनवरी को बस पर चढ़ मनौरी आये। बस में इलाहाबाद को जानेवाले दफ़्तर के बाबू भी थे। इस बार एक हिन्दू बाबू ने भी मुसलमान होने का सन्देह किया। ख़ैर! उनके साथी ने नहीं माना; और यही अन्तिम सन्देह था। इस सन्देह की भी बड़ी मौज रही। मैं हैरान होता था—सिवा १५, २० दिन के बढ़े हुए बाल के, और क्या बात देखते हैं, जो लोग मुझे मुसलमान बनाते हैं। उन्हें मालूम ही क्या था कि मैं राम-खुदाई दोनों से योजनों दूर हूँ।

[ क्रमशः

—राहुल सांकृत्यायन

# फ़िलस्तीन

[ फ़िलस्तीन की समस्या एक प्रकार से अन्तर्राष्ट्रीय समस्या है। और अपने इस रूप में वह धीरे धीरे महत्त्व को भी प्राप्त होती जा रही है। इस लेख में श्रीयुत परिपूर्णानन्दजी ने इसका विस्तार के साथ वर्णन किया है। राजनीति के प्रेमियों को आशा है इससे विशेष मनोरञ्जन होगा। ]

अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से फ़िलस्तीन का प्रश्न बड़े महत्त्व का है। इस प्रश्न के साथ ब्रिटिश-प्रतिज्ञा-पालन की प्रतिष्ठा का बहुत गहरा सम्बन्ध है। फ़िलस्तीन के सम्बन्ध में मौजूदा ब्रिटिश-मन्त्रि-मण्डल ने जिस नीति का अवलम्बन किया है उसके विषय में हाउस आफ़् कामन्स में २८ आक्टोबर को ब्रिटिश-अनुदार-दल के नेता तथा भूतपूर्व प्रधान मन्त्री मिस्टर बाल्डविन ने कहा था—

"मज़दूर-दल की फ़िलस्तीन-सम्बन्धी नवीन नीति का सबसे बड़ा दोष यह है कि यह हमारी पुरानी नीति को तो बदल ही रही ह, साथ ही हमारे वादे को झूठा प्रमाणित कर रही है। पूर्व तथा पश्चिम की ऐसी परिस्थिति के समय जब कि एक नव युग का आरम्भ करने के लिए हम अपनी भारतीय प्रजा का एक सम्मेलन कर रहे हैं, अपने पुराने वादों को, चाहे वे कैसे ही कठिन और अनुचित क्यों न हों, तोड़कर अपनी नीयत में सन्देह उत्पन्न कराना बड़ा ख़तरनाक है।"

फ़िलस्तीन का प्रश्न ऐसा ही है। मिस्टर बाल्डविन के शब्दों में ब्रिटेन के 'पुराने वादों' की सचाई को तोलने की एकमात्र कसौटी है, अतएव इस प्रश्न का यहाँ थोड़ा इतिहास बतलाना सामयिक होगा।

## महासमर के समय

गत योरपीय महायुद्ध में तुर्कों के सुलतान ने जर्मनी का साथ दिया। अपने एशियाई साम्राज्य के कारण इँगलेंड को विशेष चिन्ता हुई और इसी कारण मेसोपोटामिया आदि में जमकर लड़ाई हुई। उस समय का ब्रिटिश-मन्त्रिमण्डल—लायड जार्ज—की लिबरल सरकार बड़ी प्रतिभाशाली और दूरदर्शी थी। उसने तुर्की-साम्राज्य को छिन्न-भिन्न कर डालने का एक कार्यक्रम बनाया। उसके अनुसार यह घोषणा की गई कि ग्रेटब्रिटेन पैलेस्टाइन, आर्मीनिया आदि को तुर्की साम्राज्य की अधीनता से निकाल कर पूर्ण स्वाधीन कर देगा। १९१८ में लायड जार्ज ने यह घोषणा भी की थी कि 'हमारी सम्मति में अरब,

आर्मीनिया, मेसोपोटामिया और सिरिया को यह हक़ है कि उनकी भिन्न राष्ट्रीय स्थिति स्वीकार की जाय। तुर्कों और अरबों से पूरी तरह कभी नहीं निभी थी। स्वधर्मी होने पर भी तुर्क-शासक अरबों को नीची निगाह से देखता था और अरब भी अपने को पराधीन समझता था। ब्रिटेन के इस वादे से अरब लोग स्वाधीनता के स्वप्न देखने लगे। वे लुक-छिपकर तुर्क-सरकार के ख़िलाफ़ षड्यन्त्र करने लगे। सुलतान की जर्जर शक्ति और भी नष्ट हो गई।

महासमर की समाप्ति के कुछ पहले तुर्क-राष्ट्र पद-दलित हो चुका था। तुर्क-सरकार की शक्ति एक-दम नष्ट हो गई थी। रूस के लड़ाई से हाथ खींचने, जर्मनी से सहायता न मिलने तथा अरबों के असन्तोष ने सुलतान को शक्ति-हीन बना दिया। इधर प्रतिभाशाली लायड जार्ज ने तटस्थ राष्ट्रों को भी अपनी ओर मिलाकर उन्हें भी लड़ाई में शामिल करना शुरू कर दिया। जापान लड़ाई में शामिल हो चुका था। अमरीका का शामिल कराना ज़रूरी थी। अमरीका की सरकार धनियों की सरकार है। अपने करोड़ों रुपये से मदद देकर वहाँ के धनी राष्ट्रपतिपद के लिए अपना उम्मेदवार खड़ा करते हैं। अतएव अमरीका के राष्ट्रपति के मित्रों को मिलाना ही सबसे बड़ी कूट-नीति थी। अमरीका में ६० प्रतिशत धनी और प्रभावशाली व्यक्ति यहूदी हैं। इनका वहाँ बड़ा प्रभाव है। इँग्लेंड में भी प्रत्येक राजनैतिक दल को यहूदियों-द्वारा रुपये-पैसे से बड़ी मदद मिलती है। अतएव इँग्लेंड के ख़ाली ख़ज़ाने की सहायता तथा विश्वभर के यहूदियों की सहानुभूति तथा अमरीका का साथ प्राप्त करने के लिए लायड जार्ज के मन्त्रिमण्डल की ओर से लार्ड बालफ़ोर ने यह घोषित किया कि 'सम्राट् की सरकार फ़िलस्तीन में यहूदियों का 'राष्ट्रीय घर' बनाना चाहती है तथा इस प्रकार यहूदियों का एक राष्ट्रीय स्थान बनाने में वह पूरी सहायता देगी।' बालफ़ोर की यह घोषणा संसार की सर्व-प्रसिद्ध घोषणाओं में से है।

## बालफ़ोर-घोषणा का महत्त्व

फ़िलस्तीन ईसाई, यहूदी तथा मुसलमान तीनों का प्रसिद्ध धर्म-स्थान है। इस स्थान पर अधिकार पाने के लिए करोड़ों के लगभग जानें गई होंगी। यहीं हज़रत ईसा को सूली दी गई, यहीं हज़रत पैग़म्बर एक चट्टान पर पैर रखकर (वह चट्टान अभी तक सुरक्षित है) स्वर्ग को चले गये थे—यहूदियों के पैग़म्बर अथवा उनसे भी बढ़कर 'यहोवा' का यही स्थान है, यहीं यहोवा का संसार में किसी समय सबसे बड़े मन्दिरों में से एक मन्दिर था। मुसलमानों ने हमला करके उस मन्दिर को तोड़ डाला और उसी की एक दीवार को मिला-कर अपनी बहुत बड़ी मस्जिद बनवाई। वह दीवार अब तक है और हफ़्ते में एक दिन—शुक्रवार के दिन—यहूदी उस मस्जिद में जाकर उस दीवार पर सिर पटक कर रोते हैं और यहोवा से प्रार्थना करते हैं कि तू फिर संसार में आ और तेरा मन्दिर पुनः बन जाय।

मुसलमानों ने यहूदियों को जेरूसेलम तथा फ़िलस्तीन प्रान्त भर से निकाल दिया था। वे विश्व भर में फैल गये। किन्तु यहूदियों और ईसाइयों की लड़ाई पुरानी है। यहूदियों ने ही हज़रत ईसा को सूली पर चढ़ाया था। अतः जहाँ यहूदी गये, झगड़ा बाँधते गये। यहूदियों पर ईसाई राष्ट्रों ने पर्याप्त अत्याचार किया, पर उनके धन ने सब वैर ठंढा कर दिया। तो भी यहूदियों को यह बात हमेशा खटका करती थी कि उनका कोई घर नहीं है। ब्रिटिश सरकार ने उनका प्यारा 'फ़िलस्तीन' ही उनको देने का वादा कर मानो उन्हें स्वर्ग दे दिया। वे बड़े प्रसन्न हुए। ब्रिटिश-राजनीति काम कर गई। विश्व के अधिकांश यहूदी ब्रिटेन की तरफ़ हो गये। अमरीका भी ब्रिटेन का साथी बन गया।

किन्तु अरब इस बात से बहुत असन्तुष्ट हुए। उनके घर में दूसरे को बसाने का निश्चय कर ब्रिटेन ने यह स्वीकार कर लिया कि वह फ़िलस्तीन को अरबों के हाथ में न छोड़ देगा। किन्तु अरबों की नाराज़गी से हानि होने की सम्भावना जाती रही। अरबों को ब्रिटिश-प्रतिनि

र विश्वास न करने का कोई प्रत्यक्ष व्यावहारिक कारण भी स्पष्ट रूप से नहीं मिला था।

## राष्ट्र-परिषद् का फ़र्मान

महासमर समाप्त हो गया। महासमर की प्रति-ज्ञाओं का स्मरण दिलाकर अरबों ने अपने अपने देशों की आज़ादी की माँग पेश की। फ़िलस्तीन के अरबों ने भी आन्दोलन शुरू किया, पर वहाँ ब्रिटिश-संरक्षण में यहूदियों का उपनिवेश बसना शुरू हो गया। ब्रिटेन ने अरबों को स्वाधीनता देना इस बुनियाद पर नामंज़ूर किया कि 'नव युग की विकट परिस्थिति में ये राष्ट्र अपने पैरों पर नहीं खड़े हो सकते...पर इनमें सुशासन और सुव्यवस्था तथा उन्नति का आरम्भ कराना "सभ्यता" का एक पवित्र कर्त्तव्य है। इस कर्त्तव्य का भार राष्ट्र-सङ्घ के नियम-द्वारा निश्चित हो जायगा।" इसी के अनुसार राष्ट्र-सङ्घ ने अपनी २२ वीं धारा में स्वीकार किया कि "कुछ वर्ग तुर्क-साम्राज्य के अन्तर्गत ऐसे भी हैं जिनकी उन्नति इतनी हो चुकी है कि स्वाधीन राष्ट्र मान लिये जायँ, पर उस समय तक के लिए जब तक वे अपना भार स्वयं वहन न कर सकें, राष्ट्र-सङ्घ अपने फ़र्मानों-द्वारा उन्हें किसी राष्ट्र के अन्तर्गत रखे।"

इसी समय से यहूदी-अरबी कलह आरम्भ होता है। ब्रिटेन ने वादा कर दिया था कि यहूदियों के कारण अरबों के नागरिकता के अधिकार तथा धार्म्मिक स्वत्वों में कोई बाधा न पहुँचेगी। पर मुसलमान एक क़ाफ़िर राष्ट्र को पनपते नहीं देखना चाहते थे। दूसरे वे यहूदियों को ही अपनी आज़ादी का अड़ंगा मानते थे। उधर यहूदियों की ओर से यह कहा जाने लगा था कि 'फ़िलस्तीन यहूदी राष्ट्र' बनाया जा रहा है। उस समय उपनिवेश-सचिव मिस्टर विंस्टन चर्चिल ने स्पष्ट शब्दों में यह सूचित कर दिया था कि 'हम फ़िलस्तीन को यहूदियों का राष्ट्र नहीं बनाना चाहते, बल्कि फ़िलस्तीन राष्ट्र में उनका एक राष्ट्रीय घर बनाना चाहते हैं।' फ़िलस्तीन यहूदियों का उस प्रकार कभी नहीं हो सकता जिस प्रकार इँग्लेंड अँगरेज़ों का है। मिस्टर चर्चिल की यह घोषणा १९२२ की है, उस समय मिस्टर बाल्ड-विन प्रधान मन्त्री थे।

## भारत-सचिव और भारत

१९१७ में बालफ़ोर-घोषणा प्रकाशित हुई थी। इस सम्बन्ध में भूतपूर्व भारत-सचिव स्वर्गीय मिस्टर मांटेगू के विचार ध्यान देने योग हैं। ११ नवम्बर १९१७ को जब वे भारत पहुँचे उस समय उनको घोषणा का समाचार मिला। अपने विचारों को उन्होंने अपनी प्राइवेट डायरी में लिखा है। वह डायरी अभी हाल में प्रकाशित हुई है। उसमें लिखा है—

"बालफ़ोर ने उस ज़िओनिस्ट (यहूदी) घोषणा की विज्ञप्ति कर ही डाली जिसके विरुद्ध मैं इतना लड़ा था। ऐसी सरकार (मन्त्रिमण्डल) का मेरा सदस्य होना एक आश्चर्यजनक बात है। जो सरकार व्यर्थ में अपने रास्ते से हटती है तथा अपने एक ऐसे सदस्य के कार्यों को घातक धक्का पहुँचाती है जो बहुत कुछ विरोधी होते हुए भी उसके साथ सहयोग करता जा रहा है।......उन्होंने व्यर्थ एक ऐसे समूह को उत्पन्न करने की घोषणा की है जो वास्तव में नहीं है, व्यर्थ ही मुसलिम भयभीत किये गये हैं। हम मुस्लिम प्रवृत्ति के कारण मुहम्मदअली को नज़र-कैद करें और उधर स्वयं यहूदी प्रवृत्ति को जन्म दें। यह बात मैं इस ज़िन्दगी में न समझ सकूँगा।"

अस्तु, यहूदी-राष्ट्र के इस जन्म का क्या रहस्य था तथा वास्तव में उन्नत विचारवाले अँगरेज़ इससे कितने असन्तुष्ट थे, यह ऊपर के उदाहरण से जाना जा सकता है। तब से अब तक फ़िलस्तीन में कितने ही साम्प्रदायिक कलह हो चुके हैं और अरब स्वाधीनता की माँग ज़ोरों से कर रहे हैं। पर गत छः मास पूर्व दीवार के पीछे यहूदी-अरबी कलह ने जो भयंकर साम्प्र-दायिक दंगे का रूप धारण किया, सैकड़ों की जानें गईं, नगर में फ़ौजी क़ानून तक जारी करना पड़ा, फ़िलस्तीन के समुद्र में ब्रिटिश जंगी जहाज़ भेजने पड़े,

महीनों तक काफ़ी खून-ख़राबा रहा, उससे यह बात स्पष्ट हो गई कि अरबी-यहूदी झगड़े का फ़ैसला करा डालना होगा। भारत के मुसलमानों की उत्तेजना का भी बहुत बड़ा ख़याल था। उधर न्यू-यार्क बर्लिन आदि नगरों में यहूदियों की ज़बर्दस्त सभाओं में ब्रिटिश-नीति की निन्दा की गई तथा अरबों को उचित दण्ड देने और फ़िलस्तीन को 'यहूदी-गृह' ही स्वीकार करने पर काफ़ी ज़ोर दिया गया। वहाँ के दो अरबी-पत्र बन्द करा दिये गये। यहूदी-पत्रों पर भी क़ानून का प्रतिबन्ध लगाया गया, अतएव स्थिति की भयंकरता इसी से स्पष्ट हो गई। मज़दूर-सरकार ने परिस्थिति की पूरी जाँच के लिए एक कमीशन बैठाया। उस समय लार्ड बालफ़ोर ज़िन्दा थे।

कमीशन ने परिश्रम-पूर्वक काम किया और काफ़ी जाँच-पड़ताल की गई। इस अवधि में दोनों ओर से पर्य्याप्त आन्दोलन भी हो गया था। कमीशन की रिपोर्ट समाचार-पत्रों में पाठकों ने पढ़ी होगी। बालफ़ोर-घोषणा के घोषक लार्ड बालफ़ोर मर चुके थे। रिपोर्ट का सारांश प्रायः सरकार-द्वारा प्रकाशित विज्ञप्ति से बहुत कुछ मिलता-जुलता है, अतः हम उसको यहाँ दुहराना नहीं चाहते। इधर पार्लामेन्ट में विरोधी दल की ओर से विशेष ज़ोर दिया जाने लगा कि फ़िलस्तीन के सम्बन्ध में सरकार क्या नीति रखती है, उसे स्पष्ट कर देना चाहिए। सरकार ने २० आक्टोबर (१९३०) को फ़िलस्तीन के सम्बन्ध में अपनी नीति को स्पष्ट कर दिया।

सरकार की ओर से इस सम्बन्ध में जो कहा गया उसका सारांश इस प्रकार है—"यह साफ़ तौर से समझ लेना चाहिए कि फ़िलस्तीन में यहूदियों के नवीन गुट को बसने की आज्ञा दी तथा भूमि के सम्बन्ध में और उनके दृढ़ और असहिष्णु विचारवाले नेताओं की माँग पूरी की जा सकती है। अरब नेताओं का यह आन्दोलन भी व्यर्थ है कि हम स्वतन्त्र शासन-विधान दे सकेंगे, जिससे यहूदी और ग़ैर-यहूदी दोनों के प्रति अपनी ज़िम्मेदारी पूरी करने में हम असमर्थ हो जायँ। फ़रमान-द्वारा प्रस्ताविक ज़िम्मेदारियों को महसूस करते हुए इस प्रकार अपने कर्त्तव्य का पालन ही सरकार को अभीष्ट है, जिससे दोनों वर्गों का कल्याण हो सके।" इसके बाद १९२२ की चर्चिल की घोषणा के आधार पर एक व्यवस्थापक सभा की स्थापना की जाने की आशा है, जिसमें हाई-कमिश्नर, दस अफ़सर तथा १२ ग़ैर-सरकारी मेम्बर रहेंगे। फ़िलस्तीन में ब्रिटिश-सरकार की बहुत सेना है और उसका ख़र्च घटाने के लिए बड़ा आन्दोलन हो रहा है, पर मौजूदा स्थिति में ब्रिटिश-सरकार ऐसा नहीं कर सकती। सरकार दोनों वर्गों से प्रार्थना करती है कि व्यर्थ की भिन्नता के लिए युद्ध न कर मिलकर काम करें।

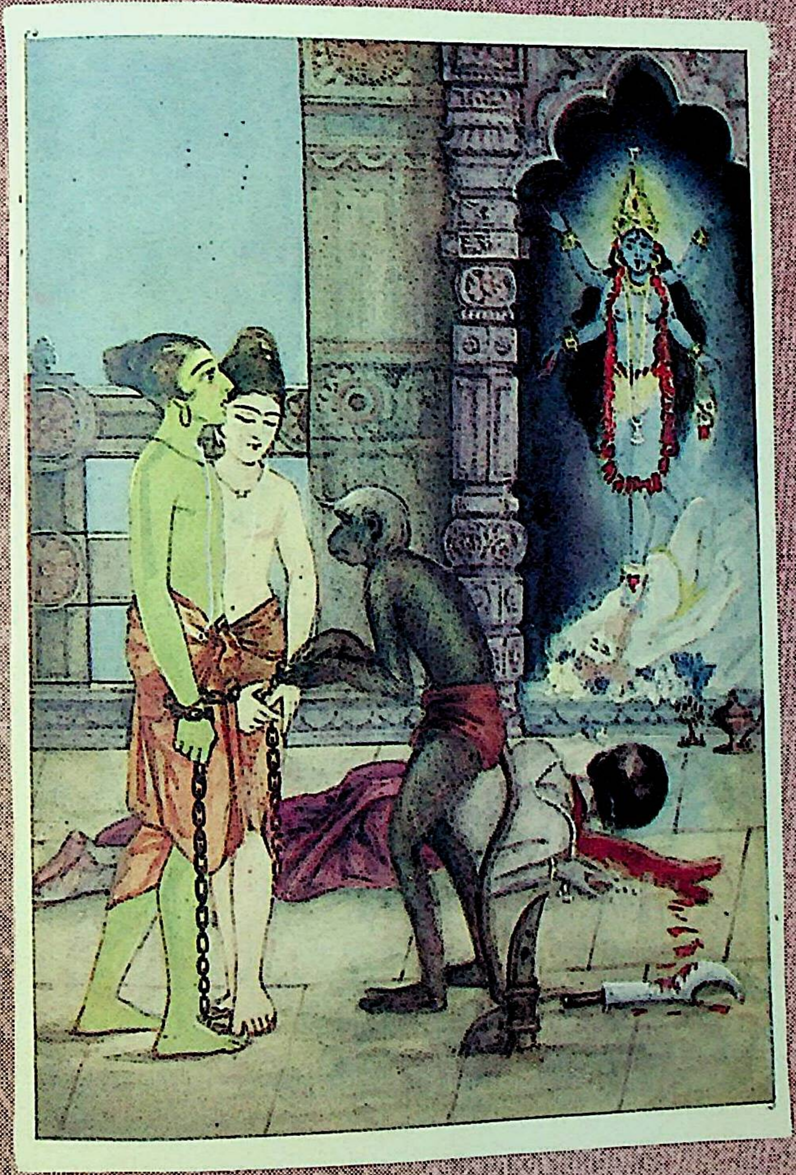
इस विज्ञप्ति का कैसा स्वागत हुआ, इस विषय पर विचार करने के पहले हम यहूदी और अरबी स्थिति को स्पष्ट कर देना चाहते हैं। अरब चाहते हैं कि 'हमको पूर्ण शासनाधिकार दिया जाय तथा १९१७ का वादा पूरा किया जाय। हमारे सिर पर व्यर्थ की झंझट लादी गई है कि हम यहूदियों को भी स्थान दें।' इस सम्बन्ध में अरब से सभी देशों के मुसलिम सहमत हैं।

यहूदियों का कहना है कि 'हमसे वादा किया गया था कि फ़िलस्तीन यहूदी-राष्ट्र बना दिया जायगा। अब वह वादा तोड़ा जा रहा है। हमने महासमर में तन-मन-धन से जो सहायता दी थी उसका एहसान ठुकराया जा रहा है।'

मज़दूर-सरकार इस बात को स्वीकार करती है कि फ़िलस्तीन अरबों का राज्य था, अतः यहूदियों को बसाना अनुचित था। पर अब उनको बसाकर हर प्रकार से उनको सुविधायें देनी होंगी, पर अरबों का राज्य यहूदियों का राष्ट्र नहीं बनाया जा सकता। इसके साथ ही वे यहूदियों को नाराज़ भी नहीं करना चाहते तथा अरबों को विशेष अधिकार भी नहीं देना चाहिए। स्वाधीनता का वादा तो जहाँ का तहाँ रह गया। साधारण शासन-सुधार तथा सैनिक व्यय से मुक्ति भी नहीं दी गई है तथा न दी जाने की सम्भावना है।

## रिपोर्ट तथा विज्ञप्ति पर आन्दोलन

कमीशन की रिपोर्ट तथा इस सरकारी विज्ञप्ति ने ब्रिटिश-राजनीति में पर्याप्त खलबली मचा दी।



अहिरावण-वध

रखनेवाले तथा अखिल-विश्व-यहूदी-आन्दोलन के अध्यक्ष डाक्टर वीज़मैन (Dr. Wiezman) ने फ़ौरन ही त्यागपत्र दे दिया। आपका कहना था कि 'ब्रिटेन के वादे झूठे निकले। मैं आन्दोलन का सभापति रह कर ही क्या करूँगा जब उसके सब फल व्यर्थ निकले।' डाक्टर वीज़मैन का इस्तीफ़ा एक बड़ी बात थी। लन्दन के 'टाइम्स' ने इस पर एक प्रभावशाली अग्रलेख लिखकर दुःख प्रकट किया। इसी पत्र में मिस्टर बाल्डविन, मिस्टर आमेरी तथा सर आस्टिन चैम्बरलेन के सम्मिलित हस्ताक्षर से एक पत्र प्रकाशित हुआ, जिसमें वीज़मैन की तारीफ़ तथा मज़दूर-सरकार की नीति की निन्दा की गई।

अरब भी रिपोर्ट से सन्तुष्ट नहीं थे। पर उनको उतना दुःख भी न था। संसार में यहूदियों का बड़ा ज़ोर है। मुसलमानों का इतना प्रभाव कहाँ? अतः वे बहुत डरते थे कि कहीं यहूदियों की बात पूरी न हो जाय। इसी कारण उन्होंने अपना डेपुटेशन लन्दन भेजा था। उनके भाग्य से मज़दूर-सरकार का अधिकार था।

आज मिस्टर बाल्डविन और उनके समर्थक इस विज्ञप्ति का क्यों विरोध कर रहे हैं? वे यहूदियों के प्रति इतनी सहानुभूति क्यों दिखलाते हैं? इसका कारण यह है कि मज़दूर-दल स्वयं ग़रीबों का दल है, पर अनुदार-दल के पास काफ़ी पैसा है और यह पैसा इँग्लैंड के धनी यहूदियों का है। अनुदार-दल में स्वयं यहूदी अच्छे प्रभावशाली मेंबर हैं, जिनमें लार्ड रीडिंग का नाम विशेष उल्लेखनीय है। अतएव अनुदार-दल यहूदियों को प्रसन्न करना चाहता है, यद्यपि स्वयं १६२२ में मिस्टर बाल्डविन के समय में ही चर्चिल की अत्यावश्यक घोषणा प्रकाशित हुई थी।

## गाँधी का अनुकरण

यहूदियों ने ब्रिटेन को दण्ड देने के लिए गाँधी-नीति के अवलम्बन का निश्चय किया है। यहूदियों की राष्ट्रीय कौंसिल ने जेरुसलेम में २३ आक्टोबर को अपनी सभा की ८ घण्टे तक की लगातार बैठक में सर्व-सम्मति से निश्चय कर सरकार को सूचित कर दिया है कि 'सरकारी नीति फ़िलस्तीन में यहूदी-गृह की स्थापना में बाधक होगी, अतएव उसके विरोध में वे प्रस्तावित कौंसिल का पूर्ण बहिष्कार करेंगे।

फ़्रेन्च ज़िवोनिस्ट (ज़िओनिस्त यहूदियों के उस वर्ग को कहते हैं जो "फ़िलस्तीन को लौट चलो" आन्दोलन का प्रचारक होता है) समिति के उपाध्यक्ष मिस्टर हिलेल ज़तोपोलस्की (M. Hillel Zratopolski) ने २२ आक्टोबर को ही सूचना प्रकाशित की कि 'महात्मा गाँधी की नीति के अनुसार फ़िलस्तीन में ब्रिटेन का तीव्र बहिष्कार किया जाय। जिस प्रकार जर्मनी ने बेल्जियम की तटस्थता भङ्ग कर घोर पाप किया था, उसी प्रकार ब्रिटेन कर रहा है। अगर फ़िलस्तीन में यहूदियों के लिए दरवाज़ा बन्द कर दिया जायगा तो वे फ़्रेंच झण्डे के नीचे सीरिया में अपना घर बसावेंगे। फ़्रांस में स्थान स्थान पर विरोध में सभायें भी हुईं। फ़्रांस के प्रमुख "रब्बी" और बैङ्करों ने भी विरोधी पत्र प्रकाशित कराये।

अमरीका में इस विज्ञप्ति से लाभ उठाने की उस समुदाय ने पूरी चेष्टा की जो ब्रिटेन का सदैव विरोधी रहा है तथा अमेरिकन-ब्रिटिश मैत्री का सदैव विरोध करता रहा है। न्यूयार्क की एक महती सभा में, ब्रिटेन तथा मज़दूरदल की घोर निन्दा की गई। सभा में प्रमुख वक्ता डाक्टर जॉन हेने होम्ज़ (Dr. John Heynes Holmes) थे, जो ब्रिटेन के विरुद्ध सदैव लेख लिखा करते हैं। आपने जनता से अनुरोध किया कि "फ़िलस्तीन में महात्मा गान्धी की नीति का ज़ोरदार तरीक़े से पालन किया जाय। वहाँ पूर्ण सत्याग्रह आन्दोलन प्रारम्भ हो।

इसी समय एक और समाचार मिला जो अत्यन्त महत्त्व-पूर्ण था। ब्रिटिश राजनीति में लार्ड मेलचेट का स्थान बड़ा ऊँचा है। आपने "यहूदी एजेन्सी की संयुक्त कौंसिल "तथा" राजनैतिक समिति" से त्यागपत्र दे दिया है।

दक्षिण-अफ़्रिका से जनरल स्मट्स ने तार देकर सरकार का ध्यान उसके प्रतिज्ञा-भङ्ग की ओर आकर्षित

किया। जेनरल स्मट्स स्वयं यहूदी हैं, अतः उन्होंने केवल इतना करके ही शान्ति न ली। तीव्र आन्दोलन शुरू कर दिया—इँग्लेंड के राजनीतिज्ञों पर दबाव डालना शुरू किया। इधर पार्लिमेण्ट की बैठक शुरू हो गई थी और मिस्टर बाल्डविन, सर सैमुयेल होर प्रभृति व्यक्तियों ने सरकार को चैन नहीं लेने दिया।

इतने आन्दोलन का प्रभाव अवश्य पड़ेगा। ३ नवम्बर का रायटर का संवाद है कि मज़दूर-सरकार अपनी नीति की विज्ञप्ति को स्पष्ट करने के लिए एक विवेचनात्मक विज्ञप्ति निकालने का निश्चय कर रही है और यह विज्ञप्ति कितनी महत्त्व-पूर्ण होगी, यह लिखना व्यर्थ है।

मज़दूर-उपनिवेश-सचिव लार्ड पैस्फ़ील्ड ने अपने बयान में स्पष्टरूप से समझाने की कोशिश की है कि हमने फ़िलस्तीन में एक यहूदी-गृह स्थापित करने का निश्चय किया था न कि एक यहूदी-राज्य। भारत के उप-मंत्री डाक्टर ड्रूमण्ड शील्स ने हाउस-आव-कामन्स में इसी बात को दुहराया। इस विषय में तीव्र विरोध के भय से ही २८ आक्टोबर को पार्लामेण्ट की बैठक का प्रारम्भ कराते समय सम्राट् का जो व्याख्यान हुआ था तथा जिसमें गोलमेज़-सम्मेलन का ज़िक्र किया गया था, इस महत्त्वपूर्ण घटना पर लेशमात्र भी "हिदायतें" नहीं दी गई थीं।

## अरबों का भय

यहूदियों के इस आन्दोलन तथा सरकार के दूसरी 'विज्ञप्ति' प्रकाशन के संवाद से अरबों का चिन्तित होना स्वाभाविक था। ८ नवम्बर को उनकी कार्य-कारिणी समिति में एक प्रस्ताव पास हुआ, जिसके अनुसार ब्रिटिश-उपनिवेश-विभाग के पास तार भेजकर यह सूचित किया गया—"यहूदियों के आन्दोलन को देखते हुए तथा यह संवाद सुनकर कि सरकार अपनी घोषित नीति में परिवर्तन करना चाहती है, अरब-प्रजा भयभीत हो रही है। सरकारी नीति १९२२ की घोषणा से बिलकुल भिन्न नहीं है। सरकार फ़ौरन एक बयान प्रकाशित कर अरबों का भय दूर कर दे।"

उपनिवेश-विभाग ने अरबों को बहुत कुछ सहायता भी दी है, इसमें कोई सन्देह नहीं। यहूदियों की एक धारा-सी, बिना किसी रुकावट के फ़िलस्तीन में बहती आती थी। अरबों का कहना था कि इस छोटे से प्रान्त में जितनी आबादी को खिलाने की क्षमता हो उतने को ही आने देना चाहिए तथा आबादी को अनुपात से बढ़ाकर 'हमें भूखों न मारना चाहिए'।

उपनिवेश-विभाग ने आगामी ६ मास में १,५८० यहूदियों को फ़िलस्तीन में बसने की आज्ञा दी है तथा फ़िलस्तीन-सरकार इतने ही आज्ञा-पत्र निकालेगी। मज़दूर-सरकार ने एक दूसरी सरकारी विज्ञप्ति निकाल कर सूचित किया है कि "फ़िलस्तीन में यहूदी तथा अरबों—दोनों में घोर बेकारी है, अतएव वहाँ जानेवालों की संख्या नियमित करनी पड़ेगी। इसका यह अर्थ नहीं है कि जाना बन्द किया जा रहा है, केवल भूमि के ख़याल से अनुपात का नियमन-मात्र किया जा रहा है।"

अस्तु, गोलमेज़-सम्मेलन के इस अवसर पर फ़िलस्तीन में मज़दूर-सरकार की नीति की घोषणा बहुत महत्त्व रखती है। गोलमेज़ के बाद शायद मज़दूर-सरकार का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य यही है। गोलमेज़-सम्मेलन में भी फ़िलस्तीन का प्रश्न सामने आयेगा। जिस समय मुसलमानों के धार्मिक स्थानों के संरक्षण तथा नियमन का प्रश्न उठेगा, फ़िलस्तीन की महत्त्वपूर्ण समस्या भी उपस्थित होगी। इसी विषय में भारतीय मुसलिम सदस्यों को सहायता देने तथा प्रश्नों का उत्तर देने के लिए उन्हीं के अनुरोध से फ़िलस्तीन की प्रधान मुस्लिम-समिति के मंत्री श्रीयुत जमालहुसैनी लन्दन गये भी हैं।

ईश्वर सम्पूर्ण समस्याओं को सुलझा दे।

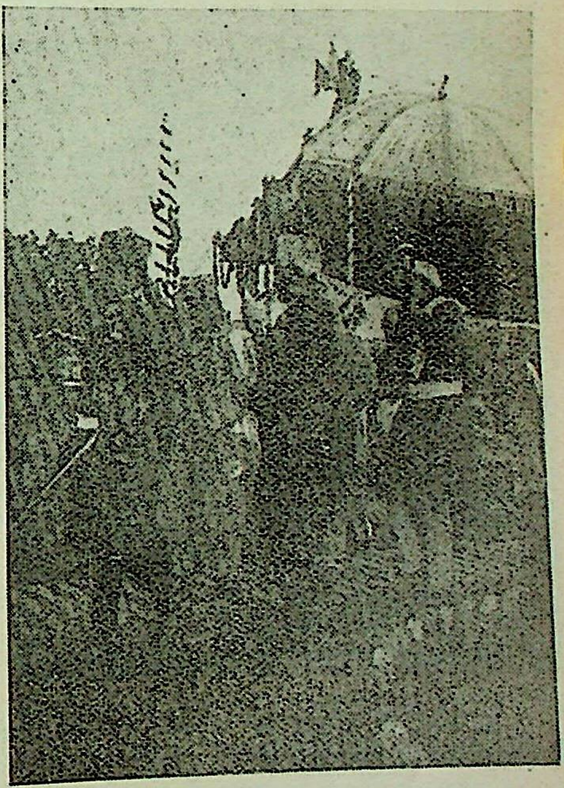
—परिपूर्णानन्द वर्मा

# अखिल एशिया शिक्षा-सम्मेलन

अखिल एशिया शिक्षा-सम्मेलन का जन्म वास्तव में योरप में हुआ। सन् १९२९ के अप्रेल में काशी तथा अन्य स्थानों से बहुत से गण्य-मान्य शिक्षित और विद्वान् लोग पर्यटन करने के लिए योरप गये थे। वहाँ डेनमार्क के 'इलिसनोर' स्थान में संसार के शिक्षित लोगों का एक महत् अधिवेशन हुआ था। उस अधिवेशन में संसार के तेंतालीस देशों के प्रतिनिधि इकट्ठा हुए थे। वहाँ एशिया-महाद्वीप के भिन्न-भिन्न देशों के प्रतिनिधि भी इकट्ठा हुए थे। वहीं एशिया के प्रतिनिधियों ने अखिल एशिया शिक्षा-सम्मेलन का एक अधिवेशन करना तय किया। यहीं से इस शिक्षा-सम्मेलन का सूत्रपात हुआ। उसके लिए स्थान भारतीविद्या का केन्द्र काशी-नगरी चुनी गई।

सम्मेलन की कार्यकारिणी समिति की पहली बैठक काशी में हुई। महामना पण्डित मदनमोहन मालवीय स्वागत-समिति के स्वागताध्यक्ष चुने गये। बाबू गौरीशंकर वकील कोषाध्यक्ष तथा सर राजा मोतीचन्द कार्यकारिणी समिति के अध्यक्ष चुने गये। पण्डित रामनारायण मिश्र स्वागत-समिति के मन्त्री बनाये गये। विलायत से लौटने के बाद पण्डितजी ने सम्मेलन का कार्य करना आरम्भ किया।

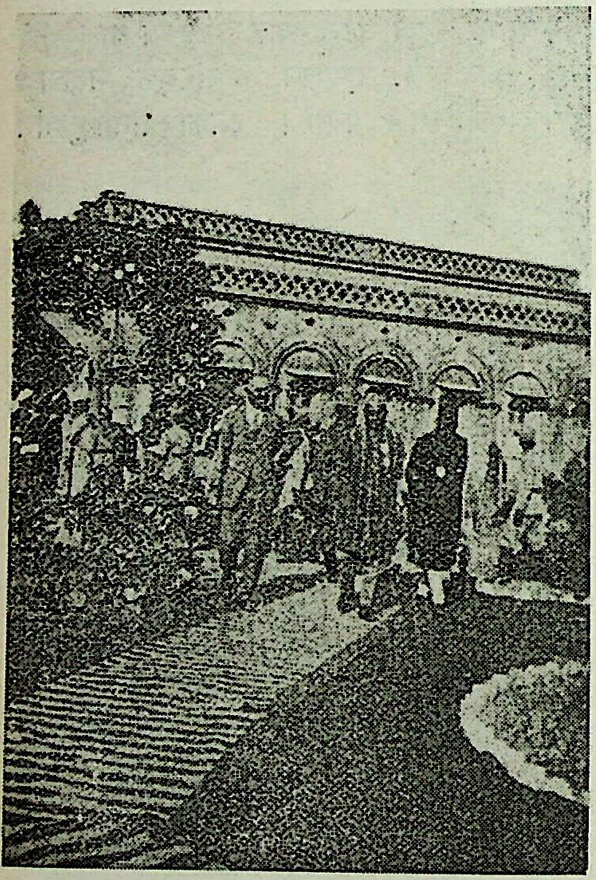
सम्मेलन का कार्य यों तो साधारणतया १५ दिसम्बर से ही आरम्भ हो गया था, लेकिन प्रधान-तया २६ तारीख़ से ही आरम्भ हुआ। सम्मेलन का समारोह सेंट्रल हिन्दू-स्कूल में हुआ था। २६ तारीख़ के २ बजे सम्मेलन के संरक्षक महाराज द्विजराज काशिराज पधारे। उनका स्वागत हुआ।



[ शिक्षा-सम्मेलन का उद्घाटन कार्य करके प्रिन्सपल शेषाद्रि के साथ हिज़ हाइनेस महाराज बनारस जा रहे हैं। ]

उन्होंने ही सम्मेलन के अधिवेशन का उद्घाटन किया। सम्मेलन के मनोनीत सभापति प्रोफ़ेसर राधाकृष्णन्

चुने गये थे। महाराज के मन्त्री श्रीयुत ललितविहारी सेन ने महाराज का लिखा हुआ स्वागत-भाषण पढ़ा। तत्पश्चात् और भी भाषण पढ़े गये। अन्त में प्रोफ़ेसर राधाकृष्णन ने भाषण किया। आपका भाषण बड़ा ही सारगर्भित हुआ। आरम्भ से अन्त तक उसमें अन्तर्राष्ट्रीय भाव भरे थे। अधिवेशन के और दिनों में विभागों की बैठकें हुईं। उनमें लोगों ने अपने



[ कार्यकारिणी समिति के अध्यक्ष राजा सर मोतीचन्द सम्मेलन में भाग लेने को आ रहे हैं। ]

अपने मत प्रकाशित किये। प्रधानतया सम्मेलन का कार्य सफलतापूर्वक समाप्त हुआ।

सम्मेलन के अधिवेशन में ब्रिटिश-भारत और देशी राज्यों की शिक्षा-संस्थाओं के प्रतिनिधि आये थे। केवल मदरास से २३० प्रतिनिधि आये थे। भारत के सिवा चीन, जापान, लंका के भी प्रतिनिधि आये थे। जो लोग आये उन्होंने सहानुभूति दिखाते हुए अधिवेशन में भाग लिया।

सम्मेलन के साथ साथ अखिल भारतीय शिक्षा-प्रदर्शनी का भी आयोजन किया गया था। प्रदर्शनी के अध्यक्ष बनारस-विभाग के शिक्षा-इन्सपेक्टर श्रीयुत कैलाशनाथ बाचूँ चुने गये थे। उन्होंने प्रदर्शनी के आयोजन में जो अदम्य उत्साह से परिश्रम किया उसका परिणाम बहुत अच्छा हुआ। भारत की अनेक शिक्षा-संस्थाओं ने इससे सहयोग किया। मैसूर जैसे सुदूर देशों से अच्छी से अच्छी और एक से एक अनोखी वस्तुएँ आई थीं। दिल्ली के मुसलिम विश्वविद्यालय ने चित्रों का अच्छा संग्रह भेजा था। पुरस्कार देने के लिए निरीक्षक लोग चुने गये थे। शिक्षा-प्रदर्शनी का कार्य सबसे महत्त्वपूर्ण रहा। सहस्रों नर-नारियों ने उसको देख कर अपने नयन तृप्त किये। प्रदर्शनी में विशेषकर शिक्षा-सम्बन्धी वस्तुएँ थीं।

प्रदर्शनी की कई दर्शनीय वस्तुओं के बीच चीन से आये हुए चित्र विशेष उल्लेखनीय हैं। प्रदर्शनी का उद्घाटन संयुक्त-प्रान्त के शिक्षा-विभाग के संचालक (डाइरेक्टर) मिस्टर ए० एच० मैकेंज़ी ने किया। उन्होंने अपने भाषण में एक बड़े मार्के की बात कही। भारतवर्ष के लिए वह बात नई नहीं है, लेकिन इन दिनों हमारे शिक्षक और अभिभावक उसे भूल ज़रूर गये हैं। मिस्टर मैकेंज़ी ने कहा कि शिक्षकों के लिए सबसे अधिक आवश्यक बात उनका बच्चों के प्रति सद्भाव है और वह सद्भाव क्या है—'बच्चों के लिए सच्चा प्रेम और उस प्रेम से निकली हुई समझदारी।'

प्रदर्शनी के सम्बन्ध में डाक्टर एनीबेसेंट ने कहा—

'यह प्रदर्शनी जो अपने ढंग की पहली है, संसार को बता देगी कि एशिया के मानसक्षेत्र में कैसे कैसे अपूर्व रत्न छिपे पड़े हैं। अगर कल के बने पश्चिम के देश इन रत्नों को न ठुकराते तो वे सारे संसार के ज्ञान-भाण्डार को बढ़ा सकते थे।'

दूसरे दिन की बैठक के बाद सम्मेलन के कई विभाग कर दिये गये, जिनमें शारीरिक शिक्षा, प्रारम्भिक शिक्षा, उच्च शिक्षा, स्त्री-शिक्षा इत्यादि विषयों पर अलग-अलग विचार हुए। देशी कसरत और खेल भी अच्छी तरह दिखाये गये। शान्ति-निकेतन की बालिकाओं की जुजुत्सु कसरत देखने ही योग्य थी।

अधिवेशन के दिनों में अधिवेशन-स्थान पर खासा बाज़ार लग गया था। बड़े बड़े पुस्तक-प्रकाशकों—ब्लैकी एन्ड सन्स, लांगमैन्स, इंडियन प्रेस आदि—की दूकानें लगी थीं। स्काउट सेन्ट्रल हिन्दू-स्कूल ने जलपान-गृह (रेस्टरा) खोल रक्खा था। अधिवेशन-बाज़ार में भी शिक्षा-सम्बन्धी वस्तुओं की ही अधिकता थी। अधिवेशन के प्रवन्धक पण्डित श्रीराम बाजपेयी (चीफ़ आर्गनाइज़िंग स्काउट कमिश्नर) थे। स्वयंसेवकों का प्रबन्ध उन्हीं के हाथ में था। उनका कार्यालय अधिवेशन-स्थान में ही था। मोटरगाड़ियाँ, साइकिल आदि के सुप्रबन्ध करने का तरीक़ा बहुत अच्छा रहा।

अधिवेशन के दिनों में यूनियन बैंक आफ़ एशिया नामक एक बैंक खुला था, जो केवल अस्थायी था। वह प्रतिनिधियों की सुविधा के लिए खोला गया था। एक पोस्टआफ़िस भी खुला था। अस्पताल अलग खुला था। उसके अध्यक्ष श्रीयुत अचलबिहारी सेठ थे। कहने का अर्थ यह कि कुल प्रबन्ध बहुत अच्छा रहा।

अधिवेशन के दिनों में आनेवाले प्रतिनिधियों के रहने का अलग अलग प्रबन्ध किया गया था। परन्तु भारत के बाहर से आनेवाले प्रतिनिधियों को बनारस के महाराज ने अपना ख़ास अतिथि बनाकर नदेसर-पैलस में रक्खा था।

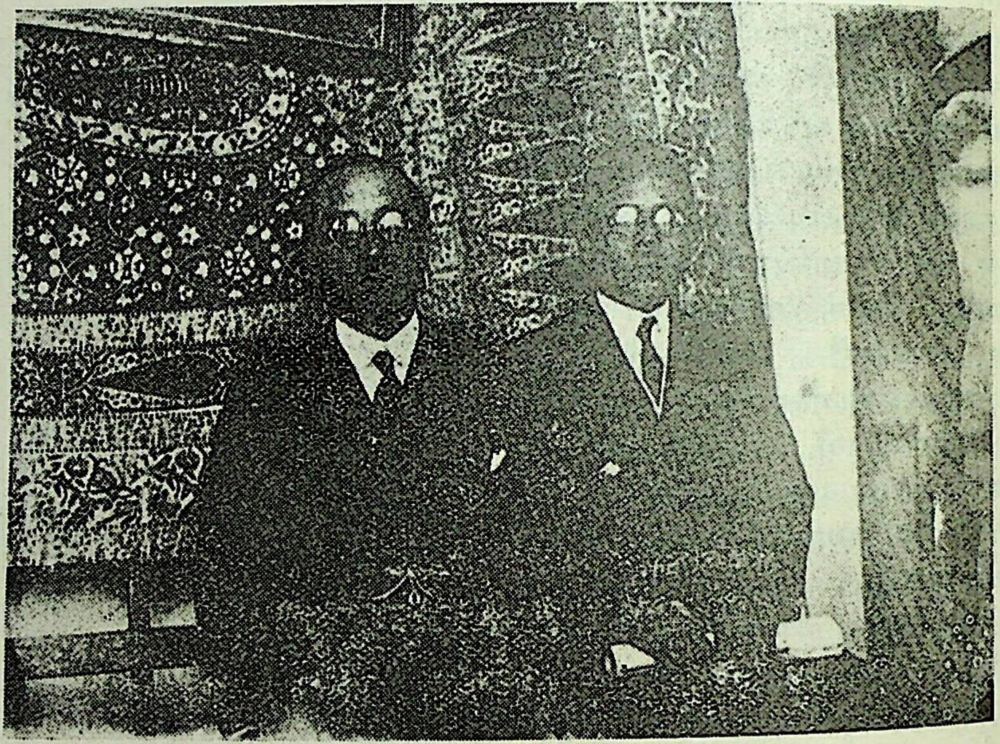
अधिवेशन में जिन जिन लोगों ने भाषण किया उनके भाषण बड़े सारगर्भित हुए। वे शिक्षा-पूर्ण थे। चीन के प्रतिनिधि श्रीयुत वागं महोदय ने अपने भाषण में कहा था कि 'पूर्व की सभ्यता के नीचे पाश्चात्य के लोग भी शीघ्र आवेंगे। हमें एक दूसरे से सहानुभूति रखकर अपना कार्य आरंभ कर देना चाहिए।'



[ सम्मेलन के सभापति प्रोफ़ेसर एस० राधाकृष्णन ]

काशी में इस सम्मेलन के श्रीगणेश के लिए स्थान नियत करने में बड़ी बुद्धिमानी से काम लिया गया, क्योंकि अपनी प्राचीन सभ्यता और संस्कृति के कारण इस गई-बीती अवस्था में भी भारतवर्ष संसार के देशों में ऊँचा स्थान रखता है और उसी भारत के सुविख्यात एवं लब्धप्रतिष्ठ विद्या-केन्द्रों में काशी एक प्रमुख केन्द्र-स्थान है। इसलिए अखिल एशिया शिक्षा-सम्मेलन के प्रथम अधिवेशन के लिए काशी से बढ़कर कोई और उपयुक्त स्थान सारे एशिया में

नहीं हो सकता था। माना कि काशी अब पहले जैसी नहीं है, लेकिन तो भी वह अपना प्रभाव रखती है। अब भी काशी के वायुमण्डल में मर्मज्ञों को प्राचीन समय के सुमधुर साम-रव का संगीतमय प्रकम्पन जान पड़ता है और अब भी वहाँ के वातावरण में भगवान् बुद्ध के प्रभावशाली व्यक्तित्व का उज्ज्वल आभास तत्त्वदर्शियों को देख पड़ता है।



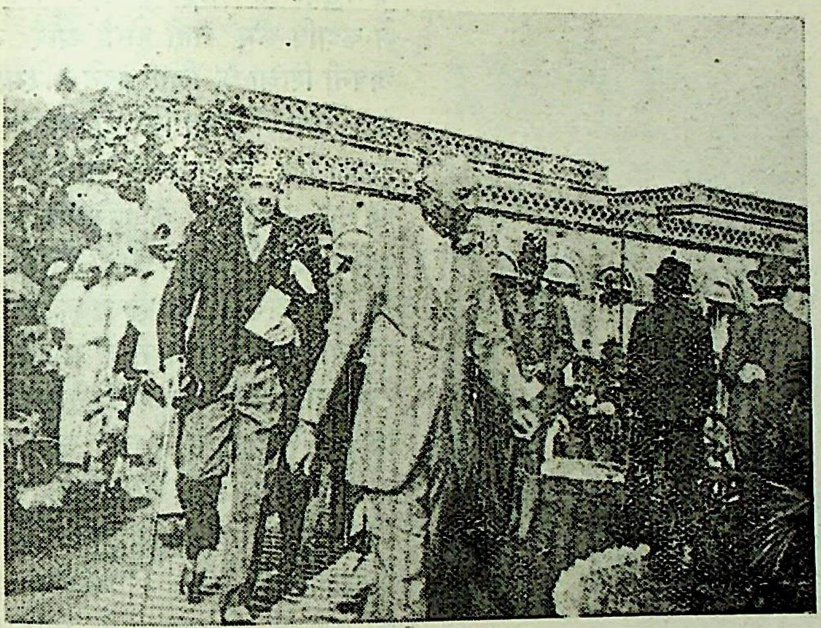
[ सम्मेलन में आये हुए २ जापानी प्रतिनिधि ]

इन दिनों भी संसार के कई विद्वानों ने कहा है कि काशी का भविष्य अत्यन्त आशामय और उज्ज्वल है। भारत के एक सच्चे सपूत ने काशी में हिन्दू-विश्वविद्यालय स्थापित कर और उसको सर्वाङ्ग-पूर्ण करने के लिए अपनी सारी शक्तियाँ समर्पित कर संसार भर के पक्षपात-रहित ज्ञानियों और मनीषियों के हृदय में यह आशा जगा दी है कि काशी एक बार फिर अपनी प्राचीन श्रेष्ठता को प्राप्त करेगी। कौन कह सकता है कि इस बार काशी में प्रथम एशिया-शिक्षा-सम्मेलन का होना उसके उन्नति-शिखर पर फिर से पहुँचने की पहली सीढ़ी नहीं है ?

संसार की आधुनिक सभ्यता में पाश्चात्य देशों के सामने एशिया-महाद्वीप पिछड़ा-सा जान पड़ता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि जापान और चीन ने इस कलङ्क को बहुत कुछ हटाया है, तो भी इस बात की आवश्यकता है कि सारा एशिया कम से कम शिक्षा जैसे महत्त्व-पूर्ण विषय को लेकर एक जगह इकट्ठा हो, अपनी विशेष कठिनाइयों पर विचार कर उनको हल करने की चेष्टा करे, अपने विशेष गुणों को सुपुष्ट करे और उनको संसार के सामने रखकर यह सिद्ध कर दे कि हमारी सभ्यता, हमारी संस्कृति और हमारी संस्थायें संसार के किसी भी महाद्वीप की सभ्यता से कम नहीं हैं। एशिया के लिए ऐसा कर सकना कोई कठिन बात नहीं है। उसके कुछ देशों का प्राचीन इतिहास और गौरव,

प्रकृति की ओर से प्राप्त अनेक सुविधायें और वर्तमान काल की चेष्टायें एशिया को फिर भी गौरवान्वित कर सकती हैं। लेकिन इसके लिए उसके विविध विद्वानों और वैज्ञानिकों को, समाज-सुधारकों और राजनीतिज्ञों को, स्त्री और पुरुषों को प्रतिवर्ष उसी तरह एकत्र होना चाहिए, जिस तरह वे इस बार शिक्षा के विषय को लेकर काशी में एकत्र हुए थे। इस दृष्टि से एशिया का यह पहला सम्मेलन बहुत ही महत्त्व-पूर्ण हुआ, क्योंकि इसने एशिया के अन्तर्गत भी सफल होगा और इसी तरह की और भी संस्थायें चल निकलेंगी, जिनके द्वारा अखिल एशिया अपनी कठिन समस्याओं को हल कर संसार में अपना सिर ऊँचा कर सकेगा।

एशिया की शिक्षा-सम्बन्धी सबसे कठिन समस्या क्या है? प्रिन्सपल शेषाद्रि ने प्रतिनिधियों का स्वागत करते हुआ इस विषय पर प्रकाश डाला था। उन्होंने भारतवर्ष के बारे में कहा कि यहाँ की सबसे कठिन समस्या साधारण जन-समुदाय की निरक्षरता है।

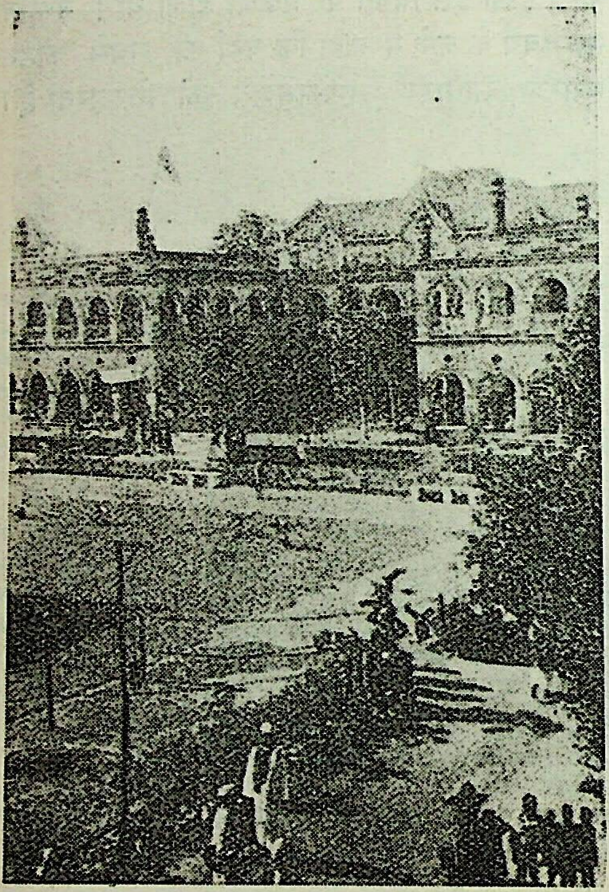


[ अलीगढ़-यूनीवर्सिटी के वाइस चैंसलर डाक्टर एस० रास मसऊद सम्मेलन में आ रहे हैं ]

विविध देशों के प्रतिनिधियों को एक ही विचार-मञ्च पर इकट्ठा होने का अवसर दिया। कहा जा सकता है कि दूसरे दूसरे देशों के प्रतिनिधि काफ़ी संख्या में नहीं आये या प्रबन्ध में कुछ त्रुटियाँ रह गई थीं, लेकिन इस तरह की पहली चेष्टा और भारत की वर्तमान अवस्था को देखते हुए जो कुछ भी हो सका वह अत्यन्त प्रशंसनीय है और जितने भी प्रतिनिधि आये बहुत आये। आशा है, आनेवाले दिनों में यह सम्मेलन, जिसका प्रारम्भ काशी में किया गया है, और

एशिया-महाद्वीप का एक बहुत बड़ा अङ्ग भारत है, इसलिए कहा जा सकता है कि भारत की समस्या किसी अंश में सारे एशिया की समस्या है। प्रिन्सपल शेषाद्रि ने कहा कि पाँच वर्ष के बच्चों को छोड़ कर यहाँ के फ़ी सदी सिर्फ़ १४ मर्द और दो औरतें पढ़ी-लिखी हैं। अगर स्कूल में पढ़नेवाले लड़के-लड़कियों की संख्या भी सन्तोषजनक होती तो आशा की जा सकती थी कि कुछ वर्षों के बाद यहाँ के पढ़े-लिखे लोगों की संख्या काफ़ी बढ़

जायगी। लेकिन वह भी सन्तोष-जनक नहीं है। जितने लड़के अभी स्कूलों में पढ़ रहे हैं उनसे कम से कम दुगुनी संख्या को पढ़ना चाहिए और लड़कियों की संख्या तो कम से कम सातगुनी अधिक होनी चाहिए—तब कहीं भविष्य के सन्तोषजनक होने की सम्भावना हो सकती है। प्रिन्सपल शेषाद्रि



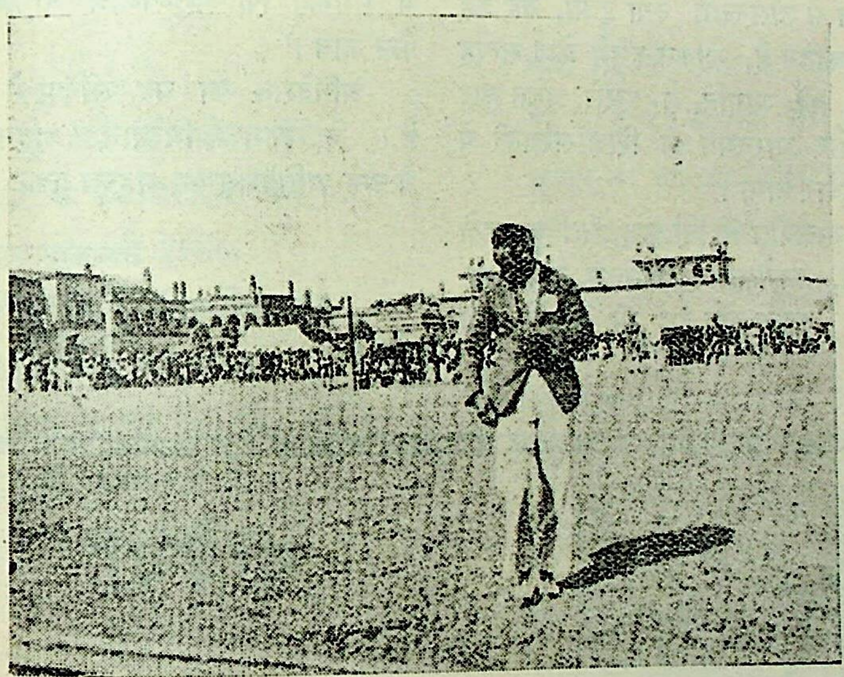
[ सेंट्रल हिन्दू-स्कूल के इस भवन में प्रदर्शनी खोली गई थी ]

ने यह भी कहा कि हार्टोग कमीटी की रिपोर्ट के अनुसार शिक्षा के लिए प्रतिवर्ष २० करोड़ रुपये ख़र्च करने से कुछ दिनों के बाद यह निरक्षरता दूर हो सकती है! सोचने की बात है कि भारत जैसे दरिद्र देश के लिए यह समस्या कितनी कठिन है! और फिर आदर्शों का उलट-फेर तो देखिए। जिस भारत में उसके उत्कर्ष और अभ्युदय के दिनों में ऊँची से ऊँची शिक्षा निःशुल्क दी जाती थी, जहाँ भारी से भारी विद्वान् बनने के लिए शायद कुछ भी ख़र्च नहीं करना पड़ता था, वहाँ की यह अवस्था कि निरक्षरता दूर करने के लिए प्रतिवर्ष २० करोड़ रुपयों की आवश्यकता हो! कुछ लोग कह सकते हैं कि भारत के अच्छे दिनों में भी सारा जन-समुदाय साक्षर और शिक्षित नहीं था, लेकिन उनको यह भी मानना पड़ेगा कि उस समय के शिक्षित मनुष्यों की संख्या आज-कल के ग्रेजुएट या मैट्रिक्यूलेशन 'पास' लोगों की संख्या से कदापि कम नहीं होगी और न उन शिक्षितों को अपनी शिक्षा के लिए इतने परिमाण में धन लगाना पड़ा होगा जितना कि आज-कल लगाना पड़ता है। इसका एक ही प्रत्युत्तर हो सकता है और वह यह कि आज-कल यहाँ की परिस्थिति बदल गई है। लेकिन बदली हुई परिस्थिति में भी अपने आदर्श की आधार-रेखा पर अवलम्बित रहना हमारा कर्त्तव्य है। अखिल एशिया शिक्षा-सम्मेलन के सामने निरक्षरता का प्रश्न लाया गया और प्रतिनिधियों ने उस पर विचार भी किया। आशा है, भावी सम्मेलनों के अवसर पर इस विषय पर और भी विचार किया जायगा और इस जटिल समस्या को हल करने की अच्छी से अच्छी विधि निकाली जायगी। प्रिन्सपल शेषाद्रि ने भारत की भयानक निरक्षरता के अतिरिक्त पढ़े-लिखे लोगों की बे-रोज़गारी, शिक्षकों की शोचनीय आर्थिकावस्था इत्यादि विषयों की ओर भी सम्मेलन का ध्यान आकर्षित किया।

सम्मेलन के सभापति भारत के योग्य विद्वानों में से एक, देश-विदेशों में सुविख्यात, कलकत्ता-यूनिवर्सिटी के फ़िलासफ़ी ( दर्शन-शास्त्र ) विभाग के अध्यक्ष डाक्टर राधाकृष्णन थे। संयोग से ही सभापति भी इतने अच्छे और योग्य मिल गये थे। वे काशी में दो ही दिन रहे, लेकिन उनके चले जाने पर भी उनका व्यक्तित्व जिसको उन्होंने अपने अपूर्व भाषण से फैला दिया था, सम्मेलन पर बराबर छाया रहा। उनकी

अनुपस्थिति में चीन के एक विद्वान् ने सभापति का काम किया। डाक्टर राधाकृष्णन ने अपने भाषण में प्राच्य, और विशेष कर भारत, की सच्ची संस्कृति का परिचय दिया। सुननेवाले दैवी उत्साह से पूर्ण हो गये और कहने लगे कि वास्तव में ये सज्जन अखिल एशिया-सम्मेलन के अध्यक्ष होने योग्य हैं। भारत की सच्ची संस्कृति क्या है? संसार के बाह्य आकारों के अन्दर एक ही जीवन-ज्योति का प्रकाश देखना, 'प्रकृति' होता था कि अन्तरात्मा का द्वार खुल गया है और उससे भावों की अविच्छिन्न धारा भाषारूपी स्रोत के सहारे निकली चली जा रही है। डाक्टर राधाकृष्णन ने कहा है—

'सच्ची शिक्षा मनुष्य के शरीर या मन को नहीं, बल्कि उसको आत्मा को शिक्षित करना है। इसी पर सारी मानव-जाति का सामंजस्य, सहकारिता और सच्चा सुख निर्भर है। अन्तरात्मा की ज्योति चारों



[ खेल के मैदान में स्कूल के लड़के क़वायद और खेल दिखला रहे हैं ]

के ऊपर 'पुरुष' का सर्वाधिकार स्वीकार करना, 'अनेक' के भ्रम में न पड़कर हर समय, हर अवस्था और हर पदार्थ में 'एक' का ही अस्तित्व अनुभव करना। डाक्टर राधाकृष्णन ने प्राच्य सभ्यता और संस्कृति की इस विशेषता को सम्मेलन के सामने अत्यन्त उपयुक्त और जोरदार शब्दों में रक्खा। उनके भाषण में कोई विशेष चेष्टा का चिह्न नहीं था। उनके हृदय के भावों को प्रकट करने के लिए उपयुक्त शब्द उनके होठों पर अनायास ही आ जाते थे। मालूम ओर फैलाना, अपने स्वभाव को मधुर और गम्भीर बनाना, विवेक प्राप्त करना और विचारशील, दृढ़प्रतिज्ञ, धीर, ज्ञानवान् और साहसी होना ही सच्ची शिक्षा और संस्कृति के लक्षण हैं। जब तक शिक्षा का आदर्श यह नहीं होगा तब तक हम अपने भविष्य को अपने गौरवयुक्त अतीत के अनुकूल नहीं बना सकते। अगर हम इन आदर्शों को पुष्ट और चरितार्थ करेंगे तो प्राच्य और पाश्चात्य का कोई भेद ही नहीं रह जायगा। एशिया और योरप को हम विचार

या जीवन में अलग-अलग नहीं कर सकते। × × × अगर पाश्चात्य विज्ञान संसार के भौतिक सुख के लिए आवश्यक है तो प्राच्य का आध्यात्मिक ज्ञान मनुष्य की मुक्ति के लिए जरूरी है। दोनों ही आवश्यक हैं। इसलिए प्राच्य और पाश्चात्य के भेद-भाव को दूर कर हम लोगों को श्रेष्ठ भारत, श्रेष्ठ एशिया और श्रेष्ठ संसार का निर्माण करना चाहिए।'

इस सम्मेलन से ठोस लाभ क्या हुआ, यह कह सकना अत्यन्त कठिन है, लेकिन इसमें कोई सन्देह नहीं कि एशिया की जागृति में इससे बहुत कुछ सहारा मिलेगा और भारतवर्ष की शिक्षा-प्रणाली में भी बहुत कुछ सुधार होगा।

सौभाग्यवश मालवीय जी जो कुछ ही दिन पहले जेल से निकले थे, सम्मेलन के अन्तिम दिन सभा-मण्डप में पधारे। दुर्बल होते हुए भी उन्होंने एक छोटा-सा, लेकिन प्रभावशाली भाषण किया और निम्न लिखित आशा प्रकट करते हुए सम्मेलन की कार्यवाही समाप्त की—

'अपने देश की समृद्धि, शक्ति और बल की उन्नति करने में हमको भारी प्रसन्नता होगी, लेकिन साथ ही साथ हमें दूसरे देशों की, चाहे वे छोटे हों या बड़े, समृद्धि, सुख और शान्ति की चिन्ता है। मैं आशा करता हूँ कि आप संसार का कल्याण इसी में समझेंगे कि मनुष्यमात्र में भ्रातृत्व का भाव फैल जाय।'

अधिवेशन का यह संक्षिप्त से संक्षिप्त विवरण है। जो लोग अधिवेशन के दिनों में काशी गये थे उन्हें अधिवेशन का महत्त्व प्रकट हुआ होगा।

—जानकीशरण वर्मा, बी० ए०,
नरसिंहराम शुक्ल

---

# उन्माद

(सागर-तरङ्गों के प्रति)

( १ )

फैल फैल कर औ फिर फिर कर,
उठ उठ कर के औ गिर गिर कर।
लम्बी और पीन-सी होकर,
फिर फिर आती हो घिर घिर कर।
विफल लालसाओं को लेकर,
नील क्षितिज से तुम भिर भिर कर।
तृषित लोचनों से लखती हो,
वार वार अति ऊँचा सिर कर ॥

( २ )

उछल रहा है कण कण कण का,
क्षण भी होती हो न हताश।
दर्पण-सा निर्मल छूने को,
स्वप्न-जगत् सा नीलाकाश।
लौट लौट कर पुनः लौट—
जाती हो बारम्बार निराश।
इसी साधना की समाधि में,
होता यहाँ तुम्हारा नाश।

( ३ )

पुनः गर्व-सी ऊपर उठ कर,
हो जाती हो नत-सी हीन।
तृष्णा-सी बढ़ बढ़ जाती हो,
हृदय-वासना में तल्लीन।
मन-सी वेगातुर-सी होकर,
उड़ना चहती पङ्ख-विहीन।
दीन-हृदय की इच्छा-सी फिर,
हो जाती हो विकल विलीन।

( ४ )

हृदय-पटल पर सागर के सिर
धुन धुन कर कर आर्त्त निनाद।
अश्रु-कणों से भिगो रहा है,
व्यथित हृदय को हृदय-विषाद।
तड़फ रही हो अन्तस्तल के—
तल पर करती मूक विवाद,
अट्टहास कर बजा रही हो,
कभी तालियाँ हा! उन्माद।

—रामगोपाल

# द्वन्द्व

[ जनवरी के अङ्क में द्वन्द्व का पहला परिच्छेद प्रकाशित हुआ है। उसमें लीला की चाल-ढाल तथा माता के साथ उसके कथनोपकथन का जो विवरण प्रकाशित हुआ है, उसमें पाठकों ने उसकी स्वाधीन मनोवृत्ति का पता पाया होगा। इस अङ्क में उपन्यास का जो अंश प्रकाशित हो रहा है, उससे उसकी सहृदयता तथा सामाजिक विचारों पर प्रकाश पड़ता है। ]

( २ )

मिसेज़ राय के पास से लौट कर लीला अपने कमरे में आई। सीटी बजाना बन्द करके उसने ऊँचे स्वर से पुकारा—चेन्ति !

उसके प्रबल कण्ठ-स्वर से नीचे की मंज़िल के नौकर-नौकरानियाँ चकित और भयभीत हो उठे। उसके बाद ही चान्त को बुला देने के लिए एक साथ बहुत से तीक्ष्ण कण्ठों की तेज़ से तेज़ आवाज़ें विचित्र स्वर से चारों ओर गूँजने लगीं।

पाँच मिनट के बाद चेन्ति उर्फ़ चान्तमणि अपना मोटा-ताज़ा, काला और बेडौल शरीर लिये हाँफते हाँफते दौड़ कर आ पहुँची। उसके बाद ही वहाँ एक बड़े ज़ोर का झगड़ा-सा मच खड़ा हुआ।

"बाप रे, यह क्या? देखो न, सूरत कैसी बनी है? सवेरे जब घूमने गई हो, तब से सारे शरीर की यह दशा करके, कीचड़ और धूल लपेट कर अब लौट रही हो? तुमसे तो कुछ कहते ही नहीं बनता बिटिया? आज सवेरे ही यह साड़ी अलमारी से निकाल दी थी न? उसे फाड़ भी डाला, और कीचड़ से लपेट दिया। छिः छिः, ऐसी उपद्रवी लड़की तो जीवन भर में कभी देखी ही नहीं! देखो न, एक लड़की और भी घर में है, उसे तो कभी ऐसा उपद्रव करते हमने नहीं देखा।"

चान्त की इन अनर्गल बातों की धारा रोक कर लीला ने कहा—जा जा, तुझे दलाली करने की ज़रूरत नहीं है। बीसों बार कह चुकी हूँ कि तू ऐसी बातें मत किया कर! क्या तू समझती है कि मैं अब भी वही ज़रासी बच्ची हूँ?

चान्त ने हाथ हिला कर और मुँह टेढ़ा करके कहा—जी नहीं। बच्ची तुम्हें कौन कहता है? तुम तो अब हमारी पुरखिन हो गई हो! इसी लिए न जब चाहती हो डाँट लेती हो? जब ज़रा सी थी, न रात को रात समझा और न दिन को दिन समझा, पाल-पोस कर इतना बड़ा किया, तब क्या इसका फल नहीं मिलेगा? मेरा ऐसा खोटा कर्म ही है कि और कहीं ठिकाना नहीं लगता, यहीं पड़ी हूँ। इसी लिए तो मेरी इतनी दुर्दशा हो रही है। जिसे मैंने अपने हाथ से पाल-पोस कर इतना बड़ा किया है, वही मेरा अपमान करे?

चान्त का सप्तम सुर क्रमशः धीमा होते देखकर लीला शङ्कित हो उठी। इसके बाद क्या क्या होगा और कौन कौन-सी बात आवेगी, यह सब पुराने अनुभव के अनुसार उसे मालूम था। इससे पहले ही सन्धि की आशा से लीला ने नम्र स्वर से कहा—व्यर्थ में बकबक करके क्यों मरती है? मैंने तुझे क्या कहा है, ज़रा बता तो। जब मैदान में खेलने गई थी, तब धोती में ज़रा-सा कीचड़ लग गया इसी के लिए अभी तक मा पचासों बातें सुनाती रहीं, वहाँ से लौट कर जैसे ही आई, तूने आरम्भ कर दिया! जाओ तुम लोग जैसा चाहो, वैसा करो। आज न तो मैं स्नान करूँगी न खाऊँगी, चुपचाप लेटी रहूँगी।

इस बात का प्रभाव पड़ने में विलम्ब नहीं हुआ। चान्त को जैसे ही यह बात मालूम हुई कि लीला मा के पास से डाँट खा आई है, उसका सारा क्रोध और अभिमान हवा हो गया। वह स्वयं लीला को चाहे जितना डाँट-फटकार लेती, इसमें कोई हानि नहीं थी परन्तु दूसरा कोई यदि उसे आधी बात भी कह देता तो वह उसे असह्य हो जाती।

लीला के जूते खोल कर मोज़े उतारते उतारते चान्त ने कहा—मा डाँटें न तो क्या करें? तुम्हारा यह बेढंगापन देख देख कर मेरी ही हड्डियाँ सुलगने लगती हैं, फिर वे तो मा हैं। दस आदमी दस तरह की बातें कहेंगे। कुछ भी हो। मा के दिल में चोट तो लगेगी ही। इसी से कभी कभी दो चार बातें कह देती हैं।

लीला जब से पैदा हुई है, तब से चान्त ने ही उसे पाल-पोस कर इतना बड़ा किया है। इसलिए वह समझती थी कि लीला पर मेरा बहुत बड़ा अधिकार है। यही कारण था कि अब भी वह लीला से ज़रा भी नहीं दब कर चलती थी। घर में भी उसका बड़ा प्रताप था। उसे कोई एक बात कहता तो वह चार बातें सुना देती। यहाँ तक कि उसकी भी ज़बान के भय से मिसेज़ राय को भी यथासम्भव उससे दब कर ही चलना पड़ता।

काम के साथ ही साथ चान्त का बकवाद भी बराबर जारी रहा। लीला किसी तरह अपने को सँभाले हुए चुपचाप बैठी रही। यदि कुछ प्रतिवाद करती तो और भी बुरा परिणाम होने की सम्भावना थी। अन्त में जब उससे न रहा गया तब कहने लगी—व्यर्थ में जब बकने लगती है तब तो दम तक नहीं लेती, परन्तु काम के समय कहीं पता भी नहीं रहता। घर में आकर जब बार-बार पुकारती हूँ तब भी तेरी सूरत नहीं दिखाती। मा ने कहा है कि स्नान करके अभी ही मेरे पास आओ। कहीं देरी हो गई तो फिर दस बातें सुनावेंगी, कहेंगी कि अभी तक कहाँ थी।"

लीला के भौंरे के समान काले काले बालों को उलझन छुड़ाते हुए चान्त ने कहा—जाऊँगी कहाँ। रात को जमादार साहब ने ताड़ी पी ली थी। उसी के नशे में आकर अपनी स्त्री को इतना मारा, कि मारते मारते अधमरी कर डाला। बेचारी फूट फूट कर रो रही थी। उसका माथा तो फूल कर ढोल हो गया है। इसीलिए ज़रा उसे देखने गई थी। परन्तु जैसे ही वहाँ जाकर खड़ी हुई, चेन्ति चेन्ति की चिल्लाहट शुरू हो गई। बाप रे, चण भर के लिए भी आँख के सामने से हटने की फ़ुर्सत नहीं!

यह बात सुनते ही क्रोध में आकर लीला ने कहा—क्या कहा? फिर उसने मारा है? मैंने उस दिन कह दिया था न उससे कि अब कभी ऐसा करेगा तो निकाल दूँगी? इतने पर भी वह नहीं माना?

यह सब अत्याचार लीला नहीं सह सकती थी। किसी को भी वह कभी ऐसा अत्याचार करते देखती तब सारे घर में तहलक़ा मचा देती। इसलिए यह बात लीला से कह डालने का चान्त को बड़ा पछतावा हो रहा था। इसे दबाने के लिए उसने तुरन्त ही अपनी बात का ढंग बदल दिया और कहने लगी—ज़रा सा मार ही दिया तो क्या हो गया? तुम तो सभी बातों में इतना क्रुद्ध हो जाती हो। स्वामी-स्त्री में तो यह सब होता ही रहता है। इसके पीछे तुम कहाँ तक पड़ी रहोगी। फिर भी उसने ऐसे तो

मारा नहीं—ताड़ी पीने पर क्या आदमी को किसी बात का ज्ञान रह जाता है ?

लीला ने गम्भीर भाव से कहा—तब ताड़ी ही वह क्यों पीता है ? पचास बार रोक चुकी हूँ न ? ताड़ी पीकर आदमी को जान मार डाले और उससे कुछ कहें तो कह दे कि नशे में मार डाला है ! इस अन्धेर का ठिकाना है ? मैं तो यहाँ यह सब अत्याचार न होने दूँगी। आज दूसरे वक्त जमादार का बन्दोबस्त मैं ख़ूब अच्छी तरह से कर दूँगी।

क्षान्त ने व्यस्त भाव से कहा—इस सबके लिए चिन्ता करने की तुम्हें कोई आवश्यकता नहीं है बिटिया रानी ! तुम जाकर देखो तो शायद अब उन दोनों में मेल हो गया होगा। जमादार को कोई बात कहने लगोगी तो उल्टा उसकी स्त्री ही आकर तुमसे हाथ-पैर जोड़ने लगेगी। पति-पत्नी के झगड़े में दूसरे का न पड़ना ही अच्छा है।

लीला ने जब सोच कर देखा तब इस विषय में क्षान्त की ही बात ठीक उतरी। इससे पहले स्त्री पर अत्याचार करने के अपराध में वह जब जब जमादार को दण्ड देने गई थी तब तब वह अत्याचार-पीड़ित स्त्री ही रो रोकर और अनुनय-विनय करके पति के लिए क्षमा माँगने आती थी।

बहुत ही विरक्त होकर उसने कहा—ऐसा करते करते तो तुम्हीं लोगों ने पुरुषों का साहस इतना बढ़ा दिया है। वे समझते हैं कि हम जो भी अत्याचार करते जायँगे, वह सब स्त्रियाँ मुँह बन्द करके सहती जायँगी। यदि ऐसी बात न होती तो भला पुरुष कभी इतना साहस कर सकते ?

क्षान्त ने शान्त भाव से कहा—तो किया ही क्या जाय ? स्वामी को कोई स्त्री फेंक तो सकती नहीं।

"इसमें फेंकने की कौन सी बात है ? स्त्री स्वामी छोड़ तो सकती है ? जमादार जब इतना अत्याचार करता है तब उसकी स्त्री मुँह बन्द किये चुपचाप सहती क्यों जाती है ? जमादार को छोड़ देने में ही तो सारा झंझट दूर हो जायगा ?"

क्षान्त लीला के स्लीपरों की धूल झाड़ रही थी। उन स्लीपरों को यों हीं छोड़ कर कुछ क्षण तक वह लीला के मुँह की ओर ताकती रही। अन्त में उत्तेजित होकर उसने कहा—छोड़ दे ? ऐसी बात मुँह से फिर कभी न निकालना बिटिया रानी। हिन्दू-घरों में स्त्रियों का काम ही है सब कुछ सहती रहना। मनुष्य के जीवन में कितने दुःख-क्लेश सहने पड़ते हैं। तब स्वामी के हाथ से ज़रा सी मार खा लेने में ही इतना दुःख क्यों होता है ? स्त्री यदि अपने श्वसुर का घर और पति को त्याग कर निकल आवे तो क्या फिर उसे किसी तरह की लज्जा रह जाती है ? जमादार तो आदमी बुरा नहीं है। स्त्री को अच्छी तरह से खिलाता है, कपड़े देता है, गहने भी दे रक्खे हैं। परन्तु कभी कभी जो तंग करता है, वह नशे के ज़ोर से। इस बात की तो परवा भी न करनी चाहिए। पुरुष के बिना कहीं क्षण भर भी स्त्री का निर्वाह हो सकता है ? खाना-कपड़ा कहाँ से मिलेगा ? गहने कहाँ से आवेंगे ? पुरुष ही तो चार पैसे कमा लाते हैं !

"तू तो एक ज़बरदस्त फ़िलासफ़र मालूम पड़ती है। तेरी युक्तियाँ भी बहुत ही अमूल्य और अकाट्य हैं। परन्तु पहले मेरे स्लीपर साफ़ कर दे तब फिर अपनी यह फ़िलासफ़ी झाड़ना।"

लीला स्लीपर पहन कर हँसते हँसते कमरे से निकल गई। क्षान्त कमरे की सारी चीज़ें झाड़ झाड़ कर सजाने लगी। वह मन ही मन गुनगुनाती भी जाती थी—जब से विलायत से यह आई है, बिलकुल ईसाई हो आई है। मैं तो पहले ही से जानती थी कि इन सब अभागे देशों में जाने से आदमी को न तो किसी तरह की ज्ञान-बुद्धि रह जाती है और न उसका धर्म-कर्म रह जाता है। सारा दीन-धर्म नाश करके ये लोग न जाने कैसी और किस प्रकृति के हो गये हैं। सीता-सावित्री की बात तो चूल्हे में गई, कहती है, स्वामी को छोड़ क्यों नहीं देती ? एकदम भ्रष्ट हो गई ? म्लेच्छों का सा ही इनका भी सारा कारख़ाना है ? राम ! राम !

( ३ )

मिसेज़ राय उस समय भी पढ़ने-लिखने के ही काम में मग्न थीं। लीला स्नान से निवृत्त होकर इस बार बहुत कुछ शान्त भाव से उनके पास जाकर खड़ी हुई। शरद ऋतु की हवा से उत्फुल्ल होकर एक बर्र शायद दूसरा स्थान खोज निकालने की आशा से कमरे में आ पड़ा था, और उसे खोज निकालने से पहले ही बाहर जाने का रास्ता भूल कर पर्दे के आस-पास वह भनभनाता हुआ भटक रहा था। उसकी दुर्दशा देखकर लीला के हृदय में दया आगई और उसने पर्दा हटा कर उसे बन्धन से मुक्त कर दिया।

कागज़ों पर से मस्तक उठाकर मिसेज़ राय ने लीला की ओर देखा। बाद को किसी तरह से प्रसन्नता का भाव व्यक्त करके उन्होंने कहा—कहो, स्नान कर आई हो? ख़ैर, फिर भी अब ज़रा ज़रा देखने लायक़ तुम्हारा चेहरा हो गया। वह कुर्सी खींच कर बैठ जाओ। तुमसे बहुत सी बातें करनी हैं। अब तुम बड़ी होगई हो, परिवार के सुख-दुःख में तुम्हें भी और लोगों की तरह समान रूप से भाग लेना चाहिए। हम सब लोग तुमसे इस बात की आशा करते हैं।

मिसेज़ राय इस तरह नर्मी के साथ कभी बात नहीं करती थीं। आज माता की बातों में एकाएक ऐसा परिवर्तन देखकर किसी अज्ञात आशङ्का से लीला का हृदय काँप उठा। वह शङ्कित भाव से एक कुर्सी खींच कर बैठ गई और उत्सुक दृष्टि से माता की ओर ताकने लगी।

क़लम की स्याही साफ़ कर के मिसेज़ राय ने उसे क़लमदान में रख दिया और फिर लीला की ओर देख कर कहने लगीं—आज सबेरे चाय पीने के बाद वीणा को अरुण की एक चिट्ठी मिली। बम्बई के अस्पताल से उसने लिखा है कि फ़्रांस के युद्ध-क्षेत्र में एक तोप फट गई थी, उसी के कारण उसकी दोनों आँखें फूट गईं।

"अरुण अन्धा हो गया? ओह, ईश्वर!" अतर्कित दुःसंवाद से लीला पहले पहल चौंक कर निस्तब्ध होगई। बाद को देखते ही देखते उसकी काली और बड़ी बड़ी आँखें आँसुओं की धारा से डूब गईं।

विषाद से मुँह नीचा करके मिसेज़ राय कुछ क्षण तक लीला की ओर ताकती रहीं। सदा से उनकी यही धारणा थी कि लीला बहुत ही हृदयहीन और निष्ठुर प्रकृति की है, स्त्री-सुलभ दया-ममता या स्नेह का उसमें लेश भी नहीं है। आज अरुण के दुख से हृदय फाड़ कर उसे रोते देखकर उनका चित्त लीला के प्रति बहुत कुछ कोमल हो गया। वे स्वयं भी रूमाल से आँखें पोंछ कर कहने लगीं—अब तुम यह अनुभव कर पाती होगी कि इस दुःसंवाद का वीणा के हृदय पर कितना सांघातिक प्रभाव पड़ा होगा। जब से उसे यह पत्र मिला है तब से वह कमरे से निकली तक नहीं। मेरे नेत्रों में तो सबेरे से आँसू ही आँसू आ रहे हैं। मेरी इतने दिनों की अभिलाषा, इतनी आशा, इस दुर्घटना से सारी की सारी मिट्टी हो गई।

लीला ने अरुण को कभी देखा नहीं था। वीणा के कमरे में उसका जो नयनाभिराम चित्र टँगा था उसे देखकर ही वह उससे मित्र के समान स्नेह करने लगी थी। कैसा सुन्दर उसका चेहरा था, उसके हृदय का भी ऐश्वर्य बड़ा मनोहर था। अरुण ने समरभूमि से वीणा को जितने पत्र लिखे थे उन्हीं के द्वारा उसके सरल, उन्नत और परिमार्जित हृदय का परिचय लीला को मिला था। मृत्यु की विभीषिका से परिपूर्ण उस भयङ्कर स्थान में रातदिन संहार का जो भयङ्कर ताण्डव-नृत्य हुआ करता उसमें निवास करते हुए क्षण भर के लिए भी अरुण ने अपने उत्साह तथा स्फूर्ति को नष्ट नहीं होने दिया। किस विशालता और प्रतिभा से पूर्ण था उसका हृदय! वीणा के ही प्रति उसका कैसा ज्वलन्त प्रेम था! उसके किसी पत्र में कभी उच्छ्वास का लेश नहीं रहता था,

फिर भी उसके पत्रों की एक एक पंक्ति में उसके संयमशील हृदय का स्वाभाविक अनुराग विकसित हो उठता था। वही अरुण! वह एक साथ ही सैनिक था, साहित्यिक था और कवि था! आज उसका सर्वस्व नष्ट हो गया। आज उसके नवीन चिर-सुन्दर नेत्रों पर चिर अन्धकार का बहुत ही मोटा पर्दा पड़ गया है! जीवन की सारी आशा, सारा आनन्द और सारा उत्साह, सब व्यर्थ हो गया, निष्फल हो गया। लीला कोई भी बात कह न पाई। अरुण के उस भयङ्कर परिणाम की बात सोच सोच कर वह केवल व्यथित और उच्छ्वसित हृदय से रोने लगी।

मिसेज़ राय भी कुछ क्षण तो निस्तब्ध रहीं बाद को उन्होंने कहा—आज केवल वही तीन मास पहले की बात मुझे याद आ रही है। किरण का वह घनिष्ट मित्र है। उसके पास जब वह यहाँ घूमने आया था, सारे शहर में एक तरह की धूम मच गई थी। जैसा सुन्दर उसका रूप है, वैसी ही शिक्षा है और वैसी ही शान्त एवं सरल प्रकृति है। इतने बड़े लक्षपति के घर का वह लड़का है और ऐसा सादा उसका स्वभाव है। क्या खेलने-कूदने में, क्या गाने-बजाने में, और क्या शिकार में, सारे शहर को उसने मोह लिया था। तुमने तो उसे नहीं देखा था न? तो तुम क्या समझ पाओगी कि वह कैसा अच्छा लड़का था! कितने ही लोगों ने उसे पाने की कितनी चेष्टा की। परन्तु उसने जिस दिन से वीणा को देखा था, उसी दिन से फिर उसने किसी की ओर घूम कर देखा तक नहीं। अहा! बेचारा कितना चाहता था वीणा को। वीणा के पास जब वह बैठता तब देख देखकर आनन्द और तृप्ति से मेरा हृदय परिपूर्ण हो उठता। मन में यही बात आती कि जैसी घर को चमका देनेवाली लड़की है वैसा ही सुन्दर दामाद भी मिल गया। कैसे अशुभ अवसर पर यह युद्ध छिड़ा है, कैसे अशुभ मुहूर्त में फ्रांस-सरकार ने बंगालियों की सेना भेजी! उसी के कारण मेरे भाग्य का सब कुछ जाता रहा।

बातें समाप्त करके मिसेज़ राय ने अपनी भीगी आँखें रूमाल से पोंछ लीं और तुरन्त ही उन्होंने फिर कहना आरम्भ किया—इसी लिए मैं सवेरे से ही तुम्हें खोज रही थी। इस समय वीणा को ज़रा-सी सान्त्वना देने की आवश्यकता है। परन्तु यह अधिक अच्छा होगा कि इस समय उसके पास जाकर तुम्हीं बैठो और उसे शान्त करो। मेरा जाना भी इतना अच्छा नहीं है, जितना कि तुम्हारा। आहा! बेचारी को कितनी चोट पहुँची है। मैं तो सवेरे से इसी सोच-विचार में पड़ी हूँ कि मैं अब उसे किस तरह शान्त करके सँभाल सकूँगी।

आँखें पोंछ कर लीला उसी समय उठ कर खड़ी हो गई। उसने कहा—मैं अभी उनके पास जाती हूँ मा।

जैसे ही लीला ने आगे की ओर पैर बढ़ाया—मिसेज़ राय ने कुछ व्यस्त भाव से कहा—ज़रा सा ठहर जाओ, तुम से एक बात और कह देनी है। वीणा से कहना कि अभी इतनी जल्दी अरुण के पत्र का उत्तर देने की कोई आवश्यकता नहीं है। दो एक दिन के बाद खूब सोच-समझ कर ही उत्तर देना अधिक अच्छा होगा। मेरा मतलब समझ रही हो न? मैं नहीं चाहती हूँ कि वीणा अरुण को कोई ऐसी बात लिखे, जिससे उसके मन में फिर किसी तरह की आशा रह सके। क्योंकि इस घटना के बाद से उसके साथ हमारा कोई भी सम्बन्ध न रह सकेगा।

यह बात सुनकर लीला चलते चलते ठमक कर खड़ी हो गई। इतनी देर के बाद सारा मामला उसकी समझ में आया। अब उसके दिल में यह बात जम गई कि मा अरुण के साथ किसी तरह का सम्पर्क नहीं रखना चाहतीं, परन्तु वीणा से यह बात कहने में उन्हें लज्जा आती है, अतएव इसे मुझसे कहलाना चाहती हैं।

मा का तात्पर्य समझ कर लीला को मन ही मन बड़ी वेदना हुई। जिस हतभाग्य पर दुर्दैव ने ही इस तरह का वज्र-प्रहार किया है, उसे मनुष्य भी इसी तरह

ही विडम्बना पहुँचावेगा ? इतने घोर सङ्कट के समय अपने प्रियजन से वह ज़रा भी स्नेह का स्पर्श तथा सान्त्वना की दो एक वातें भी न प्राप्त कर सकेगा ?

लीला का कर्तव्यनिष्ठ एवं परदुखकातर हृदय इस निर्णय को स्वीकार करने के लिए किसी तरह तैयार नहीं था। उसने बहुत ही कातर तथा विनीत स्वर से कहा—यह कार्य तो उचित न होगा मा ? यह दिन उसके बड़े दुख के दिन हैं, बड़ी निराशा के दिन हैं। आज उसे तुम लोगों को छोड़ कर और कहीं से भी शान्ति न मिलेगी। उसकी भी मा तुम हो। इतने दिनों तक उससे स्नेह किया करती थीं, इतना प्यार करती थीं, आज उसे दूर कैसे कर देंगी ? या वीणा ही उसे यह बात कैसे सूचित कर सकेगी ? यह तो वड़ा भारी अन्याय होगा मा।

मिसेज़ राय ने इस बात पर कुछ विशेष ध्यान नहीं दिया। उन्होंने उदासीन भाव से कहा—अब तो ऐसा नहीं हो सकता लीला। आज यदि वीणा हृदय के आवेग में आकर ऐसा जीवन-व्यापी त्याग करे भी तो यह उसकी बड़ी भारी भूल होगी। ऐसा करके वह जीवन में सचमुच कभी न सुखी हो सकेगी। अरुण की इस दुर्घटना से मेरे हृदय पर कितना आघात पहुँचा है, इस वात को यदि कोई अन्तर्यामी है, तो वे ही जान सकेंगे। परन्तु यह सब होने पर भी अपनी सन्तान की भलाई-बुराई तो मुझे पहले देखनी पड़ेगी ? इतनी बड़ी विपत्ति जान-बूझ कर अपने सिर पर कौन लाद सकता है ? मैं खूब समझती हूँ कि इस विवाह से वीणा का सारा जीवन ही बिलकुल नष्ट हो जायगा।

इस वात से लीला का चित्त शान्त न हुआ। सचमुच में जो मा है, वह क्या अपनी सन्तान के ही शुभ-अशुभ पर ध्यान देती है ? और किसी की ओर दृष्टि फेरने का उसे अवसर ही नहीं है ? अरुण भी तो किसी दिन 'मा' कहकर अपने को स्नेह का अधिकारी प्रमाणित करते हुए सामने आकर खड़ा हुआ था ? वीणा के ही लिए इन्हें इतनी चिन्ता क्यों है ? मानव-जीवन में क्या स्नेह, प्रेम तथा कर्तव्यबुद्धि आदि किसी भी वस्तु की आवश्यकता नहीं पड़ती ? क्या अपना ही सुख सबसे बड़ी चीज़ है ? दो ही दिन पहले जब उसका स्वास्थ्य, रूप, शक्ति आदि ज्यों के त्यों बने थे, तब वीणा उससे प्रेम करती थी।

उसने कहा—मान लीजिए कि इन लोगों का विवाह हो जाने पर कहीं ऐसी दुर्घटना होती तब तुम क्या कर सकतीं ? क्या उस समय भी इसी तरह निःसंकोच भाव से उसे परित्याग कर सकतीं ?

मिसेज़ राय के चेहरे पर अप्रसन्नता की रेखा विकसित हो आई। उन्होंने मन ही मन कहा—इस लड़की का सदा ही दुनिया से ऊपर व्यवहार रहता है। मानो इसने इस बात की प्रतिज्ञा-सी कर ली है कि जो बात स्वाभाविक और सीधी है उसे यह किसी तरह भी नहीं समझेगी। अपनी बहन के सुख-दुख पर तो ध्यान देती नहीं, जिसे कभी आँख से भी नहीं देखा उसी के लिए इसकी सारी माया-ममता उमड़ आई है। कैसी विपत्ति में वे पड़े हैं ?

प्रकट रूप से उन्होंने असहिष्णुभाव से कहा—नहीं, उस दशा में मैं वैसा नहीं कर सकती थी। तब तो चाहे कितना ही बड़ा दुःख पड़ता, वीणा को मस्तक झुका कर स्वीकार करने के अतिरिक्त और कोई उपाय ही नहीं था। परन्तु यहाँ तो कोई ऐसी परिस्थिति है नहीं, बातचीत भर लगी थी। ऐसे प्रस्ताव कितने लोगों के सम्बन्ध में किये जाते हैं और वे रद हो जाते हैं। ऐसी दशा में इसके सम्बन्ध में अधिक ज़ोर डालने की कोई आवश्यकता ही नहीं है। इसके अतिरिक्त मैंने स्वयं यह प्रस्ताव किया भी नहीं। अरुण ने ही वीणा से अपना इस तरह का अभिप्राय प्रकट किया था। उसका स्वभाव तो बहुत ही उदार और उच्च है। ऐसी परिस्थिति में आकर वह एक तरुण जीवन को इस निरानन्द दासता के जीवन में कैसे आकर्षित कर सकता है। यह विवाह न होने देने के लिए उसने स्वयं प्रस्ताव किया है।

"उसे तो यह बात कहनी ही पड़ेगी, क्योंकि उसे यह मालूम है कि इस घटना के बाद से वीणा मुझे पहले की सी दृष्टि से न देख सकेगी। इसलिए उसे ऐसा ही कहना उचित था। यही सोच कर उसने ऐसा कहा भी है। यह उसका बड़प्पन है। परन्तु क्या उसके इतना कह देने से ही उसके प्रति तुम लोगों के सारे कर्तव्यों की इतिश्री हो गई? इस समय तो वीणा को यही कहना चाहिए कि मैं तुम्हें किसी तरह भी नहीं त्याग सकती। उसके प्रति यदि वीणा को सचमुच प्रेम होगा तो इसके अतिरिक्त और वह कह ही क्या सकेगी, यह मेरी समझ में नहीं आता। इस समय तो वीणा ही अपने अगाध प्रेम के द्वारा उसे शान्त और सुखी बना सकती है और उसकी सारी निराशा और वेदना को दूर कर सकती है। यह तो और किसी का भी काम नहीं है।"

मिसेज़ राय ने बहुत ही असन्तुष्ट होकर कहा—तुम इस विषय पर केवल एक भावुकता की दृष्टि से विचार करती हो, सोच-विचार कर नहीं देखती हो। जीवन बहुत ही सत्य और क्रियात्मक वस्तु है। भावों का आवेग दस-पाँच दिन रह सकता है। परन्तु जब उसका अन्त हो जायगा तब जीवन पर वह कैसा प्रभाव डालेगा? तुम लोगों का अभी लड़कपन है। संसार के सम्बन्ध में कुछ जानती नहीं हो, किताबों में लिखी हुई थोड़ी सी बातें दोहराना भर जानती हो। यदि गम्भीरतापूर्वक सोच कर देखतीं तो क्या तुम कभी ऐसा प्रस्ताव कर सकती थीं? अरुण के साथ विवाह करने पर वीणा को अब आजन्म धात्री एवं बन्दिनी होकर ही अपना जीवन व्यतीत करना पड़ेगा, क्योंकि वह तो अब बिलकुल असहाय है। सदा स्त्री पर निर्भर रहने के अतिरिक्त उसके पास और कोई उपाय ही नहीं है। अब ज़रा सोचो तो, जीवन भर के लिए इतना क्लेश स्वीकार कर लेना क्या कोई आसान काम है? विशेषतः वीणा जैसी लड़की के लिए, जिसने जीवन में न तो कभी ज़रा भी किसी प्रकार के दुख या क्लेश का अनुभव किया है और न जिसे किसी तरह का काम करने का अभ्यास है। लाड़-प्यार और आमोद-प्रमोद में ही सदा से उसका पालन-पोषण होता आ रहा है। क्या वह कभी ऐसा जीवन सहन कर सकेगी? कहीं उसे इस तरह रहना पड़ा, तब तो वह मर ही जायगी।

मिसेज़ राय कुर्सी पर से उठ कर कमरे के भीतर टहलने लगीं। लीला भी किंकर्तव्य-विमूढ़ होकर स्थिर भाव से बैठी रही।

कमरे में दो एक बार घूम कर मिसेज़ राय ने कहा—जीवन भर के लिए ऐसा दुख अपने आप मस्तक झुका कर वह स्वीकार ही क्यों करने लगी! ऐसी सुन्दर लड़की, जो रूप-गुण में अतुलनीय है, समाज का एक सर्वश्रेष्ठ रत्न है, उज्ज्वल भविष्य जिसके लिए खुला हुआ है। वह इच्छानुसार किसी वर के साथ विवाह करके आजन्म सुखी रह सकती है। वर्तमान और भविष्य दोनों ही उसके अनुकूल हैं। उसे क्या पड़ी है कि वह ऐसा जीवन-व्यापी दुख स्वीकार करने जाय? तुम उसके पास जाओ और थोड़ी देर तक वहीं रहो। यदि आवश्यकता समझो तो मैंने जो जो बातें कही हैं वे सब समझा भी देना। तुम्हें भी अपनी सारी भावुकता भुला कर उसकी अवस्था पर विचार करना चाहिए और अरुण के इस पत्र का उत्तर भी वैसा ही देना चाहिए। इसमें सङ्कोच करने का हमारे लिए कोई कारण नहीं है।

लीला ने समझ लिया कि इस सम्बन्ध में अब मा से कोई बात कहनी व्यर्थ है। वे किसी तरह भी अपने निश्चय से न हटेंगी। यदि अधिक वाद-विवाद करूँगी तो केवल मनोमालिन्य की ही सृष्टि होगी।

और कोई भी बात मुँह से न निकाल कर वह शुष्कहृदय से वीणा की खोज में चली गई।

[ क्रमशः

—ठाकुरदत्त मिश्र

# विचार-विमर्श

## वीर-सतसई के कुछ बढ़िया दोहे

वीर-सतसई और उसके निर्माता का परिचय देने की जरूरत नहीं है। उनका सम्मान सुप्रसिद्ध श्रीमङ्गला-प्रसाद-पारितोषिक-द्वारा हो चुका है, अतएव लोग उनसे परिचित ही हैं। इस सतसई के सामान्य अंगों से यहाँ हमें कुछ मतलब नहीं। इस लेख में हम उन्हीं दोहों पर अपने कुछ विचार प्रकट करेंगे जिनमें कुछ साहित्यिक चीज़ लाने का प्रयत्न किया गया है।

आलोचना प्रारम्भ करने से पूर्व इतना निवेदन कर देना और आवश्यक है कि जब यह सतसई प्रकाशित हुई थी तभी पुरस्कृत होने से पहले ही इसकी समालोचना मैंने 'वीर-सन्देश' के दो-तीन अंकों में निकलवाई थी। बाद को 'सरस्वती' में भी इसी विषय की एक प्रत्यालोचना निकलवाई थी। अब हम यहाँ इस सतसई के दूसरे पहलू पर विचार करेंगे।

### मंगलाचरण

वीर-सतसई के मंगलाचरण में यह दोहा दिया गया है—

> रह्यो उरझि रथ-चक्र सों, धावत भीषम-ओर।
> कब गहिहौं 'रणछोर' के, वा पटुका को छोर॥

दोहे का उत्तरार्द्ध चिन्त्य है। व्यर्थ ही नहीं, प्रत्युत अनर्थकर है। भला, पटुका का छोर पकड़ने से लाभ ही क्या? इच्छा भी की तो पटुका के छोर के पकड़ने की! क्या ख़ूब! भक्तजन भगवान् के चरणों के पकड़ने की इच्छा किया करते हैं, यह तो मैं जानता हूँ; किन्तु पटुका के छोर को पकड़ने की बात एक ही रही! और सो भी किस अवसर पर? जब हमारे स्वामी अपने प्रतिद्वन्द्वी की ओर वीर-वेश और वेग से बढ़े जा रहे हैं—उसका मुक़ाबला कर रहे हैं? कहिए तो सही, ऐसे समय में कौन सज्ञान अपने मालिक का कपड़ा पकड़ कर उसे रोक रखने की चेष्टा करेगा? ऐसा करने से उसके मालिक का और उसका लाभ सम्भावित है या हानि? फिर ऐसा काम करने से—ऐसे मौक़े पर कपड़ा पकड़ कर रोक रखने से—मालिक ख़ुश होगा या क्रुद्ध? और, वीर-सतसई के कर्ता को क्या यही उचित है कि ऐसे समय में स्वामी का कपड़ा पकड़ कर रोक रक्खें, जिससे वे प्रतिद्वन्द्वी पर हमला न कर सकें—वहीं खड़े छटपटाते रहें?

एक बात और। यहाँ 'रणछोर' पद देकर न जाने वीर-रस का क्या उत्कर्ष किया गया है? ऐसे-रण-विभोर भगवान् को 'रणछोर' पद—इस मौक़े पर कैसी शोभा देता है? कैसा मौज़ूँ है! वाह!! भई, जो स्वयं रण-छोर है—रण से भाग खड़ा होनेवाला है—वह तुम्हारी क्या मदद करेगा? तुम उसके पीछे क्यों पड़े हो? कैसा सुन्दर यह मंगलाचरण है!

कहते हैं, एक बार नीति-निपुण भगवान् श्रीकृष्ण मथुरा से—एक लड़ाई से—भाग खड़े हुए थे। मनचले भक्त स्निग्ध परिहास में तभी से आपको 'रणछोर' भी कहा करते हैं। द्वारका और डाकोर में यह

नाम आपका प्रसिद्ध भी है। सो, यह सब हो, भले हो, परन्तु 'वीर-सतसई' के मंगलाचरण में भगवान् के इस नाम के देने की क्या ज़रूरत थी? क्या 'कंसारि' आदि वीररस-व्यंजक नाम ढूँढ़े न मिले थे? जो भी हो, दोहे का उत्तरार्द्ध बिलकुल बिगड़ गया है।

### वीर-रस की प्रधानता

कुछ लोगों ने शृंगार को रसराज माना है, पर यह उनकी भूल है। वस्तुतः शृंगार नहीं, वीर रसराज है, यह मैंने अपनी 'साहित्य-मीमांसा' में सिद्ध किया है। वीर-सतसईकार ने भी वीर को रसराज माना है, परन्तु आपने जो हेतु दिये हैं, बड़े अद्भुत हैं—हेत्वाभास हैं। उनसे अभीष्ट विषय सिद्ध नहीं होता। देखिए—

> आदि, मध्य, अवसानहू, जामें उदित उछाह।
> सुरस वीर इकरस सदा, सुभग सर्व रस-नाह॥

दोहे के पूर्वार्द्ध में प्रतिपादित विषय साध्य है और उत्तरार्द्ध में साधक (हेतु) है। परन्तु यह वस्तुतः हेतु नहीं, हेत्वाभास है। कहा गया है कि वीर-रस में उसका स्थायी भाव उत्साह सदा रहता है, इसलिए वह रसराज है। यह कोई बात नहीं हुई—इससे वीर-रस का रसराजत्व नहीं सिद्ध हुआ। यों तो शृंगारी जन कहेंगे कि शृंगार ही रस-राज है, क्योंकि उसमें सदा 'रति' रहती है। कोई कहेगा, भयानक-रस ही रसराज है, क्योंकि उसके आदि, मध्य और अन्त में—सदा ही उसका स्थायीभाव-भय उपस्थित रहता है। इसी प्रकार प्रत्येक रस के विषय में कहा जा सकता है। इससे वीर रसराज नहीं सिद्ध हो सकता। एक रस-अखण्ड-चिन्मय-रस-प्रकरण में उसका आदि, मध्य और अवसान कैसा? आपने लिखा है—

> वीर-स्थायी भाव सों, सरस सर्व रस आहिं।
> नीके हू फीके सबै, बिनु जाके जग माहिं॥

यह भी ग़लत! सब रस वीर के स्थायीभाव उत्साह से ही सरस हैं, यह बिलकुल भ्रम है—अज्ञान है। सब रस अपने अपने अनुभाव-विभावों से सुन्दर और पुष्ट होते हैं। दूसरे रस के स्थायीभाव से दूसरे की पुष्टि या सुन्दरता नहीं हुआ करती। यही नहीं, एक रस का दूसरे रस के साथ विरोध भी होता है। कहिए तो सही, यदि भयानक-रस के अवलम्बन-विभाव में वीर के स्थायीभाव उत्साह की भी रेखा हो तो क्या हाल होगा? यह फिर रस रहेगा या विष बन जायगा? कुछ पता नहीं! हाँ, तो दोहे का हेतु ठीक नहीं है। कोई भी रस दूसरे के स्थायीभाव से सुन्दर नहीं हुआ करता। उत्साह वीर-रस का स्थायीभाव है। इससे और रसों का उत्कर्ष नहीं हो सकता, अतएव वीर को रस-राज सिद्ध करने में यह समर्थ नहीं है। अलबत्ता इससे वीर रसराज सिद्ध होता है—

> परिनामहुँ जो देतु है, लोकोत्तर आनन्द।
> सुरस वीर रसराज सो, सहित उछाह असन्द॥

### वीर-रसानन्यता

> छाँड़ि वीर रसु अब हमैं, नहिं भावतु रस आन।
> ध्यायतु सावन आँधरो, हरो हरो हि जहान॥

इस दोहे में न तो दृष्टान्त ही है और न प्रतिवस्तूपमा ही—उपमान और उपमेय का साधारण धर्म न तो बिम्ब-प्रतिबिम्ब रूप से ही है और न उसकी शब्द-भेद से एक-रूपता ही है। सावन का अन्धा हरे हरे संसार का ध्यान नहीं किया करता, किन्तु उसे और कुछ दीखता ही नहीं—उसकी मनोवृत्ति ही वैसी हो जाती है। पर इस दृष्टान्त से प्रकृत का पोषण क्या और कैसे हुआ? यदि तन्मयता ही दिखाना अभीष्ट था तो 'भावतु' की जगह 'दिखात' आदि कोई पद देना चाहिए था। और भी—

> कहा करौं माधुर्य्य लै, मृदुल मंजु बिनु ओज।
> दिपैं न ज्योति-विकास बिनु, सुन्दर नैन-सरोज॥

यह ठीक नहीं। माधुर्य्य और ओज एकाधिकरणक हो ही नहीं सकते। दूसरी बात यह कि नयनों को सरोज बनाया तब उनके लिए 'दिपैं' क्रिया बिलकुल उपयुक्त नहीं। एक बात और। सभी ज्योतियों से सरोज नहीं खिलते, अतः यहाँ विशेष रूप से प्रखर-कर भगवान् भास्कर का ग्रहण होना चाहिए था। ओज का ठीक उपमान सूर्य्य है, न कि शीतल चन्द्रादि ज्योति भी। न चन्द्रादि के प्रकाश में सरोजों को विकसित करने की शक्ति ही है। बस, संक्षेप में इतना ही।

### शूरवीर

खंड खंड ह्वै जाय बरु, देतु न पाछें पेंड़।
लरत सूरमा खेत कौ, मरत न छाँड़त मेंड़॥

बतलाइए, दोहे के पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध में क्या फ़र्क़ है?

और—

मुँह-माँगे रण-सूरमा, देतु दान पर-हेतु।
सीस-दान हू देतु पै, पीठि-दान नहिं देतु॥

दोहे का प्रथम पद समस्त दोहे को इस प्रकार दूषित कर रहा है, जैसे सुन्दर शरीर में कुष्ठ का बड़ा सा व्रण! ऐसा दानी सूरमा मुँह-मागे (मुख से माँगने पर ही) नहीं, किन्तु बिना माँगे भी याचक की इच्छा किसी तरह जान कर ही—'मुँह-माँगो' दान देता है। यों 'मुँह-माँगो' दान का विशेषण बन जायगा। 'मुँह-माँगे' पद से प्रकृत का अपकर्ष और 'मुँहमाँगो' से उत्कर्ष है।

### दया-वीर

तूँ हीं या नर-देह को, बलि पारखी अनूप।
दया-खड्ग मरमी तुही, दया-सूर शिवि भूप!

यहाँ दया में खड्ग का आरोप किया गया है, जो नितान्त भ्रष्ट है। उपमेय में उपमान का आरोप किसी न किसी साधारण धर्म के कारण हुआ करता है। परन्तु दया और खड्ग का कोई भी साधारण धर्म प्रसिद्ध नहीं है, इनका वैधर्म्य ही प्रसिद्ध है—एक से शत्रु की भी प्राण-रक्षा होती है और दूसरी उनके विध्वंस के लिए ही है। करुणा और हिंसा का किस बात में सादृश्य है? हाँ, एक प्रकार से दया का उपमान खड्ग हो भी सकता था; यदि उस दया-द्वारा किसी तरह शत्रु का नाश हो गया होता। प्रतिद्वन्द्वी शस्त्र-प्रहार करता है, तो भी कोई दयालु उस पर दया करता है। इस अनुपम गुण के कारण यदि शत्रु अपने आप हार मान बैठे अथवा और ही किसी तरह शिकस्त खा जाय तो अवश्य दया खड्ग कही जा सकेगी। परन्तु महाराज शिवि की दया से उनके किसी शत्रु की कोई वैसी बात नहीं हुई है। इसलिए यहाँ दया में खड्ग का आरोप उचित नहीं है। परम्परित रूपक में अप्रधान आरोप सादृश्य के बिना भी हो जाता है, सो यहाँ है नहीं। हाँ, यदि महात्मा गान्धी की दया में खड्ग का आरोप किया जाय तो ठीक भी है। मतलब यह कि जब तक प्रतिद्वन्द्वी-भाव न हो तब तक दया में खड्ग का आरोप उचित नहीं है। इस दोहे में भी अहिंसा में अस्त्र का आरोप उचित है।

### भगवान् बुद्ध

दल्यो अहिंसा अस्त्र लै, दनुज-दुःख करि युद्ध।
अजय मोह-गज-केसरी, जयतु तथागत बुद्ध॥

यहाँ दुःख-रूपी राक्षस का विध्वंस करने के लिए अहिंसा को अस्त्र कहना उचित ही है। परन्तु एक दोष इस दोहे में भी आ गया है। उत्तरार्द्ध की उपमा से यह ध्वनित है कि बुद्ध ने बड़ी आसानी से मोह को जीत लिया। परन्तु वह मोह 'अजय' कह दिया गया है! यदि वह अजय है तो फिर उसे कोई जीत नहीं सकता और यदि किसी ने जीत लिया तो फिर वह अजय नहीं रहा। ये दोनों परस्पर विरुद्ध बातें वीर-सतसईकार ने साथ ही रख दी हैं, जिससे बिलकुल ही वाक्य दूषित हो गया है। 'अजय' की

जगह 'प्रबल' या 'मत्त' आदि कर देने से यह दोष दूर हो सकता है।

### सत्य-बीर

सुन्दर सत्य-सरोजु सुचि, विगस्यो धर्म-तड़ाग।
सुरभित चहुँ हरिचन्द कौ, जुग जुग पुन्य-पराग॥

यहाँ धर्म में तड़ाग का और सत्य में सरोज का रूपण हुआ है, सो तो ठीक, परन्तु 'पुन्य' में 'पराग' का रूपण बिलकुल असंगत है! कारण, धर्म और पुण्य एक ही बात है। अतएव जब धर्म में तड़ाग का रूपण हो चुका तब फिर पुण्य में पराग का रूपण अविचार-मूलक है। वही तड़ाग और वही पराग नहीं हो सकता। 'पुण्य' को जगह 'सुजस' कर देने से दोष दूर हो जाता है और यों 'चहुँ' भी गति-सम्पन्न हो जाता है; क्योंकि पुण्य चारों ओर नहीं फैलता, यश ही फैलता है। सो, यों इस दोहे का भी रूपक ग़लत है।

### गीता-गुरु रस-वश!

तजि सरबसु रस-बसु कियो, गीता-गुरु गोपाल।
भाव-भौन-धुज धन्य वै, विरह-वीर व्रज-बाल॥

इस जगह भगवान् को गीता-गुरु जब कह दिया तब फिर उन्हें रस के वश कहना उचित नहीं है। प्रेम-वश कहना ठीक भी हो जाता। रस के साथ गीता-गुरु का सामञ्जस्य नहीं है। 'रस-बसु' या 'गीता-गुरु' इन दो में से एक पद बदल देने से दोष दूर हो सकता है।

### दधीचि की हड्डी

सुर-तरु लै कीजै कहा, अरु चिन्तामनि ढेरु।
इक दधीचि की अस्थि पै, वारिय कोटि सुमेरु॥

मालूम नहीं, दधीचि-अस्थि का सादृश्य कल्पवृक्ष, चिन्तामणि और सुमेरु से क्यों दिया गया है? दधीचि की अस्थि नहीं, स्वयं दधीचि महाराज से उक्त सादृश्य उचित है। अस्थि बेचारी तो देय पदार्थ है। उसकी क्या प्रशंसा और क्या बात? दोहा यों कर देने से ठीक हो जाता है:—

कहा बड़ाई कल्पतरु, अरु चिन्तामनि ढेरु।
इक दधीचि पै वारिए, कोटिन कोटि सुमेरु॥

### शूर और कादर

सदय विवेकी सत्यव्रत, सुहृद लेखियतु सूर।
अविवेकी क्रोधी कुटिल, कादर कहियतु क्रूर!॥

दोहे में 'क्रूर' पद ऐसी जगह आया है जिससे प्रकट होता है कि 'सूर' का प्रतिद्वन्द्वी 'क्रूर' है, परन्तु यह बात नहीं है। उसका प्रतिद्वन्द्वी 'कादर' है। परन्तु 'कादर' शब्द ऐसे स्थल पर है जिससे उसका प्राधान्य नष्ट हो जाता है।

दूसरी बात यह कि पूर्वार्द्ध-वर्णित 'सूर' के विशेषणों के ठीक प्रतिकूल विशेषण 'कादर' के होने चाहिए थे और उसी क्रम से। परन्तु ये दोनों बातें विगाड़ दी गई हैं। क्रम भी भ्रष्ट है और अन्तिम दो विशेषणों में प्रतिद्वन्द्विता भी नहीं है।

और देखिए—

कूकरु उदरु खलाय कै, घर घर चाटतु चून।
रँगे रहत सद खून सों, नित नाहर-नाखून॥

कुत्ता 'पेट खला' कर घर-घर चून नहीं चाटता, चोरी से चाटता है। दीनता प्रदर्शित करने में उक्त मुहाविरे का प्रयोग होता है। कुत्ता चोरी से घर घर चून चाटता है और टुकड़ा डालनेवाले के सामने पेट खला कर—दीन होकर—पूँछ हिलाने लगता है। इसलिए दोहे का पूर्वार्द्ध दूषित है, उसे यों परिवर्तित कर देने से दोष दूर हो जाता है—

कूकरु कुभछहु लाभ हित, दीन रहत दिन दून।
रँगे रहत सद खून सों, नित नाहर-नाखून॥

अथवा—

कूकरु जूँठनि के लिए, दीन रहन दिन दून।
" " " " ॥

एक और—

कहहु कौन कायर तुम्हैं, बल-सायर ! रणमाहिं ।
भभरि भाजिबो पीठि दै, सबके बस कौ नाहिं ॥

न जाने, 'सागर' न कह कर 'सायर' क्यों कहा है! दोहे का चौथा चरण भी ठीक नहीं है। शूर-वीर तो लाखों में एक होता है। ऐसी दशा में यह कहना कि घबराकर भाग खड़ा होना सबके बस की बात नहीं है, कुछ उचित नहीं है। सब तो भाग ही खड़े होते हैं, वीर ही नहीं भागते। तब फिर कहना यह चाहिए कि यों पलायन भी तो बहादुरी ही है। दोहे में 'व्याज-स्तुति' है। यों परिवर्तन कर देने से दोहा ठीक हो जाता है—

भभरि भाजिबो पीठि दै, कहा न विक्रम माहिँ ॥

## युद्ध-वीर

केसरिया बागो पहिरि, कर कंकण उर माल ।
रण-दूलह ! बरि लाइयौ, 'दुलहिन' विजय 'सुबाल' ॥

'सुबाल' और 'दुलहिन' इन दो पदों में से एक अनावश्यक है—दोनों एकार्थक हैं। दूसरी बात यह कि ऊपर जो रण-दूलह का साज-सामान बतलाया है उसमें एक बड़ी कमी रह गई है। 'तलवार' का कहीं नाम ही नहीं आया ! और यही मुख्य है। यह भी नहीं कहा जा सकता कि विवाह में तलवार का काम नहीं, अतः उसका ग्रहण नहीं किया गया। राजपूताने में और कहीं कहीं अन्यत्र भी यह प्रथा अब तक प्रचलित है कि दूलह तलवार धारण करता है। यही क्यों, तलवार के अभाव में उसका प्रतिनिधि-स्वरूप चाकू, या लोहे की और कोई चीज़ रखने की प्रथा प्रायः सर्वत्र हिन्दुओं में है। और रण में तो यह प्रधान है ही। अतः कंकण आदि के साथ 'करवाल' का ग्रहण आवश्यक था और 'सुबाल' का परित्याग।

## कल-माल

लरतु काल सों लाख में, कोइ माई कौ लाल ।
कटु केते करबाल कौं करत कंठ कल-माल ॥

'कल' शब्द 'शब्द' का ही विशेषण होता है। श्रुति-मधुर अस्फुट शब्द को 'कल' कहते हैं। इसलिए 'कल' को 'माल' का विशेषण बना देना ग़लती है।

## तीन तीर्थ

अनल-कुण्ड असि-धार कै, रकत-रँग्यो रण-खेत ।
त्रय तीरथ तारण तरण, छिति छत्रिय-त्रिय हेत ॥

यहाँ असि-धार और रण-क्षेत्र का निर्देश पहले और अनलकुण्ड का बाद को करना था; क्योंकि अनलकुण्ड तो अगति की गति है—जब और कुछ न हो सका, तब अनलकुण्ड ! सो, अनल-कुण्ड का प्रथम-निर्देश वीरता की हत्या है। यों कर देने से ठीक हो जाता है—

असि-धारा, रण-खेत कै, अनलकुण्ड उद्दाम ।
छिति छत्रिय-कुल तरनहित, तीरथ तीन ललाम ॥

'कुल' न रख कर उसकी जगह 'त्रिय' पाठ भी रक्खें तो भी वैसी क्षति नहीं है; परन्तु 'कुल' में स्त्री-पुरुष, बाल-वृद्ध सब आ जाते हैं। प्रतिज्ञा-भंग होने पर अर्जुन आदि का अनल-प्रवेश के लिए तैयार होना प्रसिद्ध ही है।

## 'वीर-किसान'

उक्त शीर्षक के नीचे वीर-सतसई में दो दोहे हैं। यह शीर्षक ठीक नहीं है। इससे प्रतीत होता है कि किसानों की वीरता का वर्णन होगा; परन्तु ऐसा नहीं है; सिर्फ़ वीर में किसान का रूपण है। इसी प्रकार 'वीर वैश्य' आदि शीर्षक ग़लत हैं। एक दोहा भी लीजिए—

बोय सीसु सींच्यो सदा, हृदय-रक्त रण-खेत ।
वीर-कृषक कीरति लही करी मही जस-सेत ॥

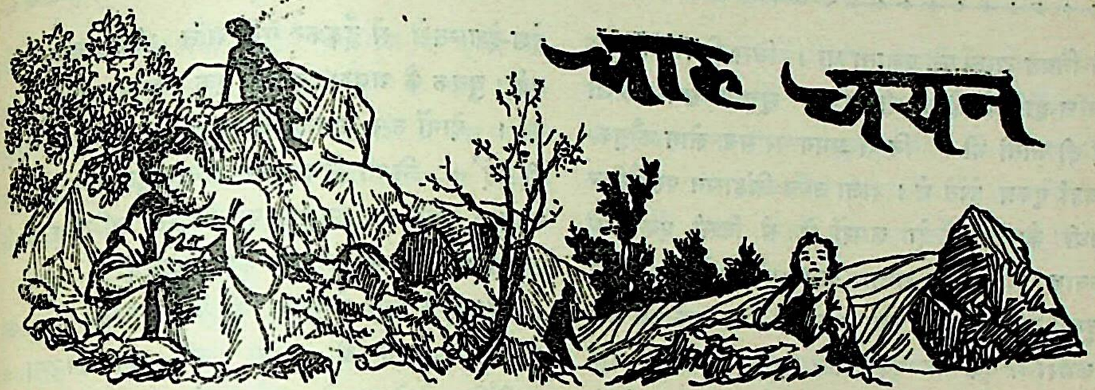
जब कि 'सीस' बो दिया तब फिर 'सदा' हृदय-रक्त से कैसे सींच सकता है? और उत्तरार्द्ध की 'कीरति' तथा 'जस' दो चीज़ें नहीं हैं, जिनका अलग अलग नाम आया है! यदि कहा जाय कि शत्रुओं के सिर काट कर बोये तो ठीक भी हो सकता है; परन्तु श्री वियोगी हरिजी के मन में शत्रुओं के सिर काटने की नहीं, अपना सिर कटवाने की ही बात है। देखिए दूसरा दोहा—

लै असि-हलु जोती मही, बोयो सीसु सुधान।
करि सुचि खेती जसु लुन्यो, धनि रजपूत-किसान॥

यहाँ 'बोयो' इस एक वचन क्रिया से सिर का एकत्व साफ़ है, जो शत्रुओं का न होकर अपना ही हो सकता है।

—किशोरीदास वाजपेयी

# भाव चयन



## १—उस पार

मुझे जाना है उस पार,
उठा माँझी अब पतवार !

मुझे यह मिलता है आभास,
वहाँ का पथ है कण्टकहीन;
वहाँ है व्याप्त मुक्त वातास;
वहाँ है प्यार द्वन्द्व से हीन !

मुझे जाना है उस पार,
उठा माँझी अब पतवार !

उदधि का यह जल अतल अपार,
सहस्रों उसकी विमल तरङ्ग;
सतत जो रहती हैं अविराम,
शान्ति है—उनकी आज उमङ्ग !

मुझे जाना है उस पार,
उठा माँझी अब पतवार !

अरे ये प्राण, प्राण के प्राण,
बने हैं ये विहङ्ग उद्भ्रान्त;
वहाँ की सुषमा स्वर्गिक देख,
वहाँ का पा सौरभ सम्भ्रान्त !

मुझे जाना है साकार,
उठा माँझी अब पतवार।

—मंगलप्रसाद विश्वकर्मा

## २—कामिनी या बाघिन

सभ्यता की स्थिति के अनुसार मनुष्यों की न्याय-प्रणाली भी परिवर्तित होती रहती है। अत्यन्त प्राचीन समय में आज-कल के समान कचहरियाँ न थीं। राजा स्वयं न्याय सुनाता था। उस समय न्याय का ढङ्ग अति असंस्कृत एवं विचित्र था। उसी काल के लगभग तरभा नामक देश में भीषण नाम का एक उजड्ड तथा मनमौजी राजा राज्य करता था। उसके विचार इतने अपरिमार्जित थे कि उसे अर्द्ध-बर्बर कहना अनुचित न होगा। उसका निर्देश ही नियम था। स्वादेश-भंग सुनकर वह आग का पुतला हो जाता था और अपराधी को कठोर से कठोर दण्ड देता था।

उस राजा ने एक सार्वजनिक अखाड़ा बनवाया था। उस अखाड़े को उसने यथाविधि सुसज्जित कर उसके निकट भूलभुलैया के सदृश एक गोलाकार रङ्गभूमि बनवाई थी, जिससे दर्शक उस पर होनेवाले खेलों का भले प्रकार अवलोकन कर सकें। इस अखाड़े में मानुषीय तथा पाशविक बल का प्रदर्शन कराकर जनता की मानसिक शक्ति को विकसित करने का भी प्रयत्न किया जाता था।

उस अखाड़े में पक्षपात के बिना दोषी को दण्ड तथा निर्दोषी को पुरस्कार प्रदान किया जाता था। जब कभी किसी बड़े अपराधी की सूचना राजा को दी जाती तब वह जांच के निमित्त उस अपराधी को अपने अखाड़े में

किसी नियत समय पर बुलाता था। जिस दिन अभियुक्त की जाँच होने को होती थी उसकी सूचना समस्त प्रजा को दे दी जाती थी। नियत समय पर सब लोग कौतुक-वश वहाँ एकत्र होते थे। राजा उच्च सिंहासन पर बैठकर अपराधी को वहाँ के दो कमरों में से किसी एक कमरे के किवाड़ खोलने की आज्ञा देता था। ये दोनों कमरे एक दूसरे से मिले हुए तथा एक ही प्रकार के बने थे। इन कमरों में एक में एक अति सुन्दर कामिनी और दूसरे में एक अति भयानक तथा क्षुधार्त्ता बाघिनी पहले से ही बन्द कर दी जाती थी। यह बात अत्यन्त गुप्त रक्खी जाती थी कि किस कमरे में कौन है। अभियुक्त अपने इच्छानुसार किसी एक कमरे का दरवाज़ा खोलता। यदि दुर्भाग्यवश वह बाघिनीवाला कमरा खोल डालता तो फिर क्या। बेचारा शीघ्र काल का ग्रास बन जाता। बाघिनी झट उस पर आक्रमण कर उसे हड़प कर जाती। दर्शक उसके दुर्भाग्य पर शोक करते हुए अपने अपने घर चले जाते। और यदि कहीं सौभाग्यवश वह कामिनी-वाला कमरा खोल लेता तो फिर उसकी चाँदी हो जाती। समारोह-पूर्वक उन दोनों का पाणिग्रहण होता और अभियुक्त निर्दोष माना जाता। विवाहित तथा अवि-वाहित सबको ऐसे संयोग पर विवाह करना अनिवार्य था। ऐसा न करने पर वह दण्ड पाता। बस, न्याय की यही सर्वोत्तम पद्धति समझी जाती थी।

राजा के मोहनी नाम की एकलौती पुत्री थी, जिसे वह अपनी आँखों का तारा समझता था। मोहनी भी अपने पिता के समान कठोरहृदय, ईर्ष्यालु तथा रूखे स्वभाव की थी। युवा होने पर वह राज-दरबार के एक युवक पर आसक्त हो गई। स्वभावतः दोनों के पार-स्परिक प्रेम की सरिता उमड़ चली, दोनों स्नेह के पाश में बँध गये।

संयोगवश राजा को उन दोनों के प्रेम का हाल ज्ञात हो गया। वह इस बात को न सह सका। उसने तुरन्त युवक को कारागार में बन्द करवा दिया। प्रचलित प्रथा के अनुसार उसके प्रेम में फँसने के औचित्य की जाँच करने के लिए एक दिन नियत किया गया। देश-देशान्तरों से ढूँढ़कर एक अति भीषण बाघिनी मँगाई गई। युवक के अवस्थानुसार एक दिव्य कान्ता भी छाँटी गई। दोनों उस अखाड़े के एक एक कमरे में बन्द कर दी गईं। नियत दिवस पर जन-समुदाय एकत्र हुआ। राजा ने अपने उच्च आसन पर बैठकर अभियुक्त को किसी एक कमरे का द्वार खोलने की आज्ञा दी।

राजा के पास मोहनी भी विराजमान थी। उसको भी उस दृश्य के देखने की बड़ी लालसा थी। अहर्निशि सोते-जागते उठते-बैठते इस स्थान का दृश्य उसके मानसिक चक्षुओं के सामने उपस्थित रहता। उसने गुप्तरीति से यह ज्ञात कर लिया था कि किस कमरे में कामिनी बन्द थी और किसमें बाघिनी। केवल यही नहीं, उसने उस निर्वाचित कामिनी के भी विषय में अनेक बातों का पता लगा लिया था। वह उस देश की सबसे कमनीय युवती थी। यह सब हाल जान कर मोहनी के हृदय में सौतियाडाह की ज्वाला धधक उठी। वह अपने प्रेमी तथा उसकी भावी कान्ता के भविष्य पारस्परिक प्रेम का चित्र अपने मानस-पटल पर खचित करने लगी।

आदेश पाकर युवक अखाड़े में उतरा। उसने रीत्य-नुसार राजा को प्रणाम किया। परन्तु ऐसा करते ही मोहनी से उसकी दो-चार आँखें हो गईं। युवक ने यह आशा कर कि मोहनी जानती होगी कि किस कमरे में कामिनी है और किस में बाघिनी, आँखों के इशारे से कामिनीवाला कमरा पूछा। खग जाने खग ही की भाषा। मोहनी झट उसके मनोगत भाव को ताड़ गई और अपने नेत्रों से दाहने कमरे की ओर इङ्गित कर दिया। युवक ने बिना किसी सङ्कोच के तुरन्त दाहनी ओर के कमरे का दरवाज़ा खोल दिया।

परन्तु अब प्रश्न यह है कि कमरे से कौन निकला? कामिनी या बाघिनी? हमें इस बात का पता लगाना है कि मोहनी ने कामिनीवाले कमरे की ओर इशारा किया अथवा बाघिनीवाले की ओर। मानव-हृदय के अध्ययन से इस प्रश्न का उत्तर मिल सकता है। पाठक उस अर्द्ध-बर्बर राजकुमारी के चरित्र से इस बात का पता लगा सकते हैं कि कमरे से कौन निकला। उसका प्रेमी

उसके हाथ से निकल गया था। वह उस पर दूसरे का प्रेम कैसे देख सकती थी? न्याय-दिवस के कई दिन पहले से ही वह अनेक प्रकार के विचारों में मग्न रहती थी। कभी वह अपने प्रेमी-द्वारा बाघिनीवाला कमरा खोलने का विचार करके शोकार्त्त हो बीभत्स तथा भयानक रसों का आस्वादन करती; और कभी वह दूसरा कमरा खोलने का ध्यान करती। ऐसा विचार करते ही वह सौतियाडाह की ज्वाला में भस्म होने लगती। इसी प्रकार इन दोनों विचारों का आवागमन उसके कल्पना-क्षेत्र में हुआ करता। कभी कभी वह यह भी सोचती कि यदि मेरे प्रेमी को बाघिनी ने खा भी डाला तो मुझको अधिक शोक न करना चाहिए, क्योंकि परलोक में मेरा तथा उसका मिलाप अवश्य होगा। परन्तु हा! मैं जीते जी उसकी दूसरी प्रेयसी को कैसे देख सकती हूँ?

मोहनी ने नियत दिवस के सात-आठ दिन पूर्व ही युवक के प्रश्न के उत्तर के विषय में निश्चय कर लिया था, क्योंकि वह जानती थी कि यह प्रश्न उससे पूछा जायगा। इसी कारण प्रश्न पूछे जाने पर उसने तत्क्षण दाहने कमरे की ओर इशारा कर दिया। अलम्! अब पाठक विचार कर लें कि कमरे से कौन निकला। कामिनी या बाघिनी?*

राजकिशोर तिवारी 'कान्त'

## ३—भारतीय छायाचित्र

वर्तमान समय के छायाचित्र अनेक कार्यों में व्यस्त रहनेवाले जन-समाज के मनोरञ्जन के हेतु एक साधन सा बन गये हैं। छायाचित्र केवल मनोरञ्जन के ही साधन न होने चाहिए, किन्तु इनमें ज्ञान-शक्ति और शिक्षा का भी समावेश होना चाहिए।

भारतीय छायाचित्र-व्यवसायी जन-समाज की मनोवृत्ति के आधार पर ही 'कथा' पसन्द करते हैं। परन्तु यहाँ यह कह देने में कोई हानि न होगी कि जन-समाज को ऐसी मनोवृत्तियों की ओर झुकानेवाले ये व्यवसायी ही हैं। यदि ये प्रथम से ही इस पर लक्ष्य रख कर उन्हें ऐसी मनोवृत्तियों के पोषक न बनाते तो आज इन्हें "देभर" टाइप के छायाचित्र बनाने की आवश्यकता ही न पड़ती। साथ ही व्यवसायी भी साहित्यिक या प्रजाहित की दृष्टि से छायाचित्र नहीं बनाते हैं, वरन इनका एक-मात्र उद्देश अपनी तिजोरियों को तर करने का ही रहता है।

जन-समाज का मानस भी इतना क्षीण हो गया है कि वह निरर्थक घुड़दौड़, नीरस पटेबाज़ी और वाहियात मारकाट के ही पीछे पागल बना फिरता है।

रूस में लोक-शिक्षा के लिए जितने साधन काम में लाये जाते हैं उनमें छायाचित्र ही एक-मात्र उत्कृष्ट साधन गिना जाता है।

यह तो सर्वविदित बात है कि छायाचित्रों और नाटकों के द्वारा जन-समाज की उन्नति में जितनी सहायता मिल सकती है, उतनी उपदेशों के करने से नहीं! इसी लिए आज छायाचित्रों के मार्ग में परिवर्तन करने की अत्यन्त आवश्यकता प्रतीत होती है। यह ठीक है कि सेन्सरबोर्डों की दृष्टि छायाचित्रों पर आठों पहर लगी रहती है। और इसी कारण हम अति उद्दाम तथा स्वदेशाभिमानी घटनाओं से परिपूर्ण छायाचित्र पर्दे पर नहीं दिखला सकते! परन्तु इसमें भी कई मार्ग ऐसे हैं जिनके द्वारा हम अपने उद्देशों की पूर्ति करते हुए भी सेन्सरबोर्डों की दृष्टि से बच सकते हैं।

हम सामाजिक जीवन में क्रान्ति पैदा करने के हेतु चाहे जैसी उग्रता स्क्रीन पर ला सकते हैं, इसमें सेन्सर किसी प्रकार का भी आक्षेप नहीं कर सकता है; लेकिन दुःख है कि इस क्षेत्र में अभी तक उचित ध्यान नहीं दिया गया है। छायाचित्रों में नवीनता लाने से कितने ही लाभ हो सकते हैं। एक ही प्रकार के छायाचित्रों को देखते देखते जनता भी उकता गई है। हमें अब आधुनिक जीवन की समस्याओं पर चारों ओर प्रज्वलित सामाजिक छायाचित्र का भयङ्कर से भयङ्कर चित्र स्क्रीन पर चित्रित करके उनकी आवश्यकतायें पूरी करना चाहिए।

छायाचित्रों को नये मार्ग पर लाकर भारतीय राष्ट्र को जागृत करने का समय आ पहुँचा है। इसके बिना

* एक अँगरेज़ी कहानी के आधार पर।

छायाचित्रों का अस्तित्व व्यर्थ व निरर्थक है। यह समय जीवन और जागृति का है, अतः ऐसे ही मार्गों का अनुसरण करना सिनेमा-कला को भी उचित है।

यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो नाटक और छायाचित्रों के बीच बहुत अन्तर है। नाटक की गति मन्द है—शिथिल है! इसकी कला धीरे धीरे विकसित होती है। इसमें लम्बे लम्बे भाषणों और गानों को सुनने के लिए प्रेक्षकों को घण्टों बैठना पड़ता है। इससे वस्तुविकास का वेग रुक जाता है। परन्तु छायाचित्र की गति इससे भिन्न है! छायाचित्र प्रचंड गति से आगे बढ़ते हैं। नाटक से तिगुनी गति के साथ इनमें घटनाक्रम बन जाते हैं। यदि प्रतिसप्ताह नियमित रूप से छायाचित्र बदलते रहें; तो सम्भव है कि छायाचित्रों की प्रगति में नाटकों का स्थान लुप्तप्राय हो जाय!

यदि जनता को कला और साहित्य की शिक्षा देने की अनिवार्य आवश्यकता हो—स्वार्थ-साधन में गोते खाते हुए मनुष्यों को स्वदेश और समाज के प्रति कुछ कर दिखाने की इच्छा हो—हृदयहीनों में पुनः नवजीवन का संचार करा देने की आशा हो, तो वर्तमान छायाचित्रों को नये मार्ग पर विचरण कराने के सिवा हमें तो अन्य कोई मार्ग दृष्टिगोचर नहीं होता है।

—कृष्णचन्द्र भुअल 'दुखित'

## ४—लाक्षागृह*

### उपनाम

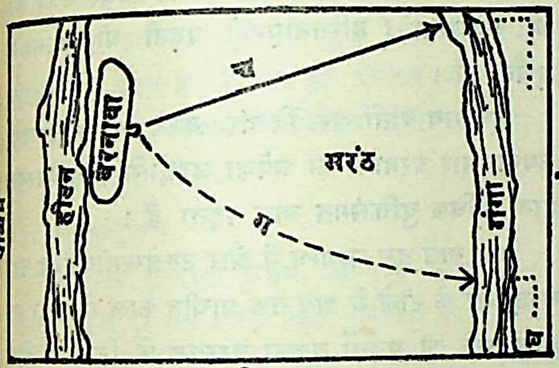
### लच्छागिर

यह स्थान गंगा के उत्तरीय तट पर प्रयाग-नगर से कोई २२ मील पूर्व तथा बी० एन० डबल्यू रेलवे के 'हँड़िया खास' स्टेशन से ३ मील दक्षिण की ओर है। यहाँ गंगा-किनारे लगभग २९ बीघे का एक बड़ा टीला है। इसी का नाम 'लच्छागिर' है।

महाभारत के आदिपर्व में अध्याय १४२ से एक कथा आरंभ होती है, जिसका सार यह है कि दुर्योधन ने पाण्डवों (युधिष्ठिर, भीम, नकुल, सहदेव तथा अर्जुन) को नष्ट करने के लिए एक षड्यंत्र इस प्रकार रचा कि समस्त हस्तिनापुर में यह घोषित करा दिया कि 'वारणावत' नगर में पशुपति नाम का एक महोत्सव बड़े समारोह से होनेवाला है। यह समाचार सुनकर पाण्डव अपनी माता कुन्ती-सहित वहाँ जाने को तैयार हो गये। यह देखकर दुर्योधन ने अपने मंत्री पुरोचन को बुलाकर कहा कि 'तुम पहले से वारणावत पहुँच कर नगर के किनारे जतुगृह अर्थात् सन और धूप इत्यादि अग्नि-वर्द्धक पदार्थों से एक ऐसा भवन तैयार कराओ जिसकी दीवारें घृत, तैल तथा लाख आदि से लिपी हुई हों। पाण्डवों को बड़ी अभ्यर्थना के साथ उसमें ठहराना और किसी दिन अवसर पाकर उनके सो जाने पर उसमें आग लगा देना।' परन्तु विदुरजी ने पाण्डवों से वहाँ का यह सब रहस्य बता दिया। तदनन्तर पाण्डव फाल्गुन महीने की अष्टमी को रोहणी नक्षत्र में वारणावत को चले। जब वे (पाण्डव) वहाँ पहुँचे तब पुरवासियों ने बड़ी धूम-धाम के साथ उनका स्वागत किया। पुरोचन ने भी उनका बहुत आदर-सत्कार किया और उनको पहले एक पृथक् स्थान में ठहरा दिया। दस दिन व्यतीत होने पर वह उनको जतुगृह में ठहराने के लिए लिवा ले गया। इसी बीच में विदुर का भेजा हुआ एक चतुर खनिक युधिष्ठिर के पास आया और उसने उस भवन के भीतर से बाहर निकलने के लिए एक सुरंग चुपचाप खोदना आरंभ किया। एक वर्ष के पश्चात् जब वह सुरंग बन कर तैयार हो गई तब एक दिन कुन्ती ने ब्रह्मभोज किया, जिसमें वहाँ के नगर-निवासी भी निमंत्रित किये गये। पुरोचन भी आया। सब लोग खा-पीकर अपने अपने घर चले गये, परन्तु पुरोचन और एक भीलनी जिसके पाँच बच्चे थे, वहीं सो रहे। उस रात को हवा बड़े वेग से चल रही थी और सब लोग निद्रादेवी की गोद में अचेत पड़े हुए थे। भीम ने सुअवसर देखकर जिस खंड में पुरोचन सोता था पहले उसी ओर आग लगा दी, अग्नि बात

*('प्रयाग-प्रदीप' नामक एक अप्रकाशित पुस्तक से)

[इ]सी बात में जतुगृह के चारों ओर फैल गई। पाण्डव [अप]नी माता-सहित सुरंग में जा घुसे और उसके द्वारा सुरक्षित बाहर निकल गये। वे वहाँ से रातों रात कुछ दूर तक गंगा के किनारे किनारे चले, फिर विदुरजी की भेजी हुई एक नौका मिली। उसी से पार उतर कर वे दक्षिण की ओर चले गये।




स्थानीय दन्तकथा यह है कि उक्त 'वारणावत' वही स्थान था जो पीछे इस घटना के कारण 'लाक्षागृह' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। फिर पीछे बिगड़ कर 'लच्छागिर' हो गया। पाण्डव लच्छागिर से कुछ दूर तक (लगभग ६ मील) गंगा के किनारे-किनारे पश्चिम की ओर चलकर सिरसा के सामने गंगापार करके दक्षिण 'मेजा' की ओर गये थे।

परन्तु यह विषय विवादास्पद है, क्योंकि कुछ विद्वानों का यह मत है कि प्राचीन 'वारणावत' मेरठ के ज़िले में था, जो अब तहसील ग़ाज़ियाबाद में 'बरनावा' के नाम से प्रसिद्ध है।* वहाँ एक ऊँचा टीला 'खेड़ा' के नाम से प्रसिद्ध है, इसको लोग लाख का मंडप कहते हैं। मेरठ-ज़िले के गज़टियर में इतिहास का भाग मिस्टर आर० बर्न ने लिखा है। उनका कहना है कि बरनावा के अतिरिक्त लच्छागिर का भी वारणावत होना बतलाया जाता है।*

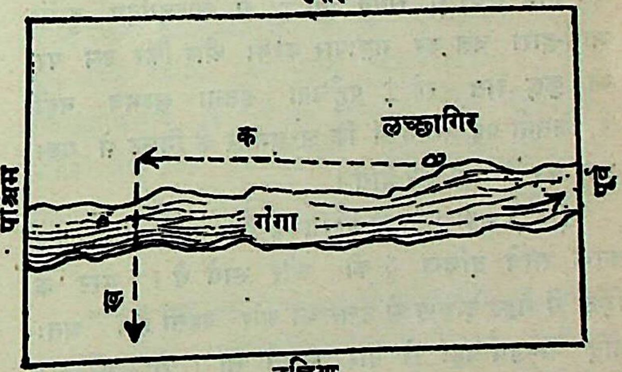
हम कुछ विस्तार के साथ यहाँ यह विचार करना चाहते हैं कि इन दोनों स्थानों में किसके पक्ष में वारणावत होने का अधिक अनुमान किया जा सकता है—

यहाँ पाठकों की सुगमता के लिए इन दोनों स्थानों के स्थिति-सूचक दो छोटे-छोटे मान-चित्र दिये जाते हैं—

बरनावा के विषय में वारणावत होने का अनुमान निम्न कारणों से हो सकता है—

(१) वारणावत से इसका नाम अधिक मिलता-जुलता है।

(२) बरनावा लच्छागिर की अपेक्षा हस्तिनापुर से अधिक निकट है।




अब लच्छागिर के पक्ष के प्रमाणों तथा युक्तियों को देखिए—

* देखो Geographical Dictionary of Ancient and Mediæval India by Mr. Nando lal Dey, P. 101 तथा District Gazetteer Meerut, P. 205 and 206.

* District Gazetteer Meerut, P. 148 तथा Archaeological Survey of India New Series by Dr. Führer Vol. II p. 143.

(१) महाभारत के पढ़ने से मालूम होता है कि वारणावत गंगा के तट पर था,* लच्छागिर भी अब तक ठीक गंगा के किनारे पर है। उधर बरनावा गंगा से कम से कम ४० मील दूर हींडन-नदी पर है।

(२) महाभारत में है कि पाण्डव वारणावत के जतुगृह से निकल कर रात को पहले कुछ दूर तक गङ्गा के किनारे किनारे ( 'क' मार्ग-द्वारा ) चले। फिर जब इनको विदुरजी की भेजी हुई नौका मिली तब उससे पार उतर कर वे दक्षिण की ओर ( 'ग' मार्ग से ) रातों रात भाग गये।

लच्छागिर से दक्षिण मिली हुई गङ्गा पश्चिम से पूर्व की ओर बहती है। अतः उसके निकट गङ्गापार करके पाण्डवों का दक्षिण की ओर भागना अधिक युक्ति-संगत है।

दूसरी ओर एक तो बरनावा के निकट गङ्गा है ही नहीं, दूसरे कम से कम आधी रात के उपरान्त जब सब सो गये होंगे तब जतुगृह में आग लगाई गई होगी, अतः उस रात के शेष ६ घण्टे में पाण्डवों का बरनावा से ५० ६० मील अँधेरे में सघन वनों † से आच्छादित दुर्गम मार्ग-द्वारा चल कर गङ्गापार करना और फिर उस पर भी कुछ रात रहे ‡ पहुँचना इतना सम्भव नहीं है, जितना यह मानने में कि लच्छागिर के निकट से गङ्गा उतर कर वे आगे गये होंगे।

( ३ ) महाभारत में लिखा है कि पाण्डव गङ्गापार करके सीधे दक्षिण § की ओर भागे थे। मेरठ के ज़िले में गङ्गा दक्षिण से उत्तर की ओर बहती है। अतः यदि पाण्डव वहाँ से पार उतरते तो ( 'ग' मार्ग से ) सीधे पूर्व की ओर उनका जाना अधिक स्वाभाविक था। यदि दक्षिण की ओर उनको जाना था तो उस पार नाव से उतर पड़ने की कोई आवश्यकता न थी, क्योंकि स्थल की अपेक्षा जल-मार्ग से ही वे अधिक आराम से दक्षिण की ओर जा सकते थे।

( ४ ) यदि यह कल्पना की जाय कि बरनावा से ('च' मार्ग-द्वारा) वे भाग कर पार उतरे होंगे तो ऐसी अवस्था में उनका दक्षिण की ओर जिधर उनके शत्रुओं की राजधानी ( हस्तिनापुर ) पड़ती थी, जाना महा-मूर्खता थी।

इन सब बातों पर विचार करने से महाभारत के कथनानुसार बरनावा की अपेक्षा लच्छागिर का वारणावत होना अधिक युक्तिसंगत जान पड़ता है।

एक बात इस सम्बन्ध में और उल्लेखनीय है वह यह कि लच्छागिर के टीले में अब तक प्राचीन काल से लेकर यवन-काल तक की मुद्रायें बहुधा बरसात के दिनों में मिलती हैं जो इस बात का सूचक हैं कि पुराने समय में यह कोई महत्त्व-पूर्ण स्थान अवश्य रहा होगा। अभी थोड़े दिन हुए ३० सिक्के हमको इस स्थान से मिले हैं, जिनमें ६ बौद्धकाल के और २ अवन्ती के राजाओं के समय के हैं। इनमें से किन्हीं किन्हीं सिक्कों पर ब्राह्मीलिपि में लेख हैं। विशेषज्ञों का मत है कि ये सिक्के २०० वर्ष ई० पू० से सन् १८० ई० तक के होंगे। शेष यवन-काल के हैं, जिनमें फ़ारसी-अक्षरों में लेख हैं। बरनावा से ऐसी पुरानी मुद्राओं के मिलने का हमको कहीं उल्लेख नहीं मिला।

इस समय लच्छागिर एक साधारण गाँव के रूप में बसा हुआ है। केवल इतना महत्त्व है कि सोमवती अमावस्या तथा वारुणी के अवसर पर वहाँ गङ्गा-स्नान का बड़ा मेला लगता है।

—शालग्राम श्रीवास्तव

## ५—कुसुम !

कुसुम !

अंशुमाली की तिग्म रश्मियों की ऊष्मा से मुरझाई हुई तुम्हारी यह करुणोत्पादक दशा किस सहृदय के हृदय को न पिघला देगी? तुम्हें ही यदि निज अस्तित्व का

* महाभारत आदिपर्व अ० १५१ श्लो० ५,११। अ० १५२ श्लो० १६ तथा श्रीचिन्तामणि विनायक वद्यकृत महाभारत-मीमांसा हिन्दी पृ० ४०६।

† महाभारत आदिपर्व अ० १५२ श्लो० २२
‡ ,, ,, ,, १५२ ,, २१
§ ,, ,, ,, १५२, ,, २०

किञ्चित् भी ज्ञान होता तो तुम्हारे भी नयन आज दो-चार अश्रु-बिन्दुओं से वसुन्धरा का अर्चन अवश्य कर देते।

कहाँ तो तुम्हारा वह अभिनव विकसित यौवन, दर्शक-वृन्द के चित्तों को आकर्षित करनेवाला आकर्षण और प्रेमी-युगलों के हृदयों को रंजित करनेवाला लालित्य और कहाँ यह तुम्हारी जीर्ण-शीर्ण दुर्दशा, धूलि-धूसरित, पददलित और इतस्ततः बिखरी हुईं पँखुड़ियाँ! इस अतर्कणीय और हृदय-द्रावक दृश्य को देखकर बरबस मुँह से निकल पड़ता है—'कालस्य विचित्रा गतिः'। ओह! कितना परिवर्तन !!

हा, रंक कुसुम!

तुम लुट गये, तुम्हारा अक्षय भाण्डार खो गया—तुम राजा से रंक हो गये। लुट चुका तुम्हारा वह सौरभ-भाण्डार, जिसकी भिक्षा का भिखारी अलिपुञ्ज तुम्हारे समीप आकर निरन्तर मृदु-झङ्कार से तुम्हारी वन्दना किया करता था, जिसकी याचना के लिए शीकर-शीतल-मरुत् सर्वदा तुम्हारी परिक्रमा किया करता था और जिसके कारण मानव-समाज तुम्हारा आदर, सत्कार और अभिनन्दन किया करता था।

कुसुम!

बतलाओ, बोलते क्यों नहीं हो। क्यों मौनावलम्बन कर लिया है?

कहाँ है वह तुम्हारा सहायक बाल-सखा, मधुकर-मण्डल, और तुम्हारे साथ बाल्यकेलि करनेवाला अप्रतिहतगामी मातरिश्वा—जिनके ऊपर तुम इतना इठलाया करते थे? बोलो इस दयनीय संकट-ग्रस्त दशा में वे तुम्हारी सहायता को क्यों नहीं आते?

अरे भोले कुसुम!

तुम इस प्रपञ्ची संसार में प्रपञ्चियों से वञ्चित किये गये हो। याद रक्खो, यह संसार प्रपञ्च का पुतला है। इसमें बड़े छोटों को हड़प जाने के लिए, उनको तहस-नहस कर डालने के लिए अनेक प्रकार के प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रयत्न करते रहते हैं। अतएव संसार में भोले और सरल लूटे तथा पीसे जाते हैं। तुमने अपनी सरल प्रकृति के कारण अपना सर्वस्व, आजन्म सञ्चित कोष लुटा दिया सो भी इस प्रकार कि तुम जान भी न पाये।

कहाँ है तुममें अब सौरभ, मकरन्द और मधुरता? कहाँ है तुम्हारे पास लालित्य, कोमलता, सरसता और विकसता? अरे भोले, छलिया तुम्हें छल चुके। अब तुम्हें भ्रमर या अनिल से आशा करना व्यर्थ है। मानव-समाज भी तुम्हारा उपभोग कर चुका। अब वह तुम्हें नीरस, निर्गन्ध और त्याज्य समझता है। तुम उसकी दृष्टि में तुच्छ हो। हा! इस समय संसार में तुम्हारा कोई भी आश्रयदाता नहीं है। वाह रे स्वार्थी संसार!

परन्तु,

कुसुम!

तुम्हारा जीवन धन्य है, अनुकरणीय है और वन्दनीय है। बिरले ही प्राणी तुम्हारे जैसे उत्कृष्ट जीवन के साँचे में ढले हुए मिलेंगे। तुम्हारे जीवन का एक एक क्षण परोपकारजन्य आनन्द-रस से सिक्त था। जन्म से लेकर आज पर्यन्त तुमने परोपकार को ही अपनाया। उसको ही अपने जीवन का मुख्य ध्येय चुना। तुमने निःसङ्कोचभाव से अपना परिमल और किञ्जल्क, भ्रमरों और पवन को लुटाकर, दान देकर रिक्त कर दिया। स्वयं निर्धन बनकर दूसरों को धनी बना दिया।

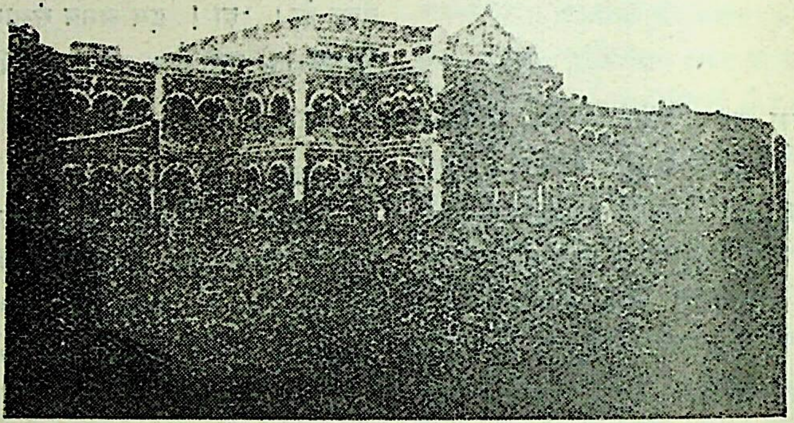
अधिक क्या कहें, परोपकार के सुदृढ़ सिद्धान्त पर ही तुम्हारा सुकोमल शरीर तीक्ष्ण सूई से छेद कर इष्टदेव के पुष्पोपहार में गूँथा गया। आज सूर्य्य की प्रखर किरणों से झुलसी हुई, पथ में पड़ी हुई तुम्हारी एक एक पँखुड़ी मौन-रूप से आने-जानेवाले यात्रियों को परोपकार का पाठ पढ़ा रही है। संसार बधिर है, वह तुम्हारी मौन-भाषा न समझ सकेगा, परन्तु तुम्हारे पाठ का एक एक शब्द मेरे हृन्मन्दिर में तारस्वर से प्रतिध्वनित होकर गुञ्जायमान हो रहा है।

—चन्द्र

## ६—मैक्डानल्ड यूनीवर्सिटी हिन्दू-बोर्डिंग-हाउस प्रयाग की स्वदेशी प्रदर्शनी

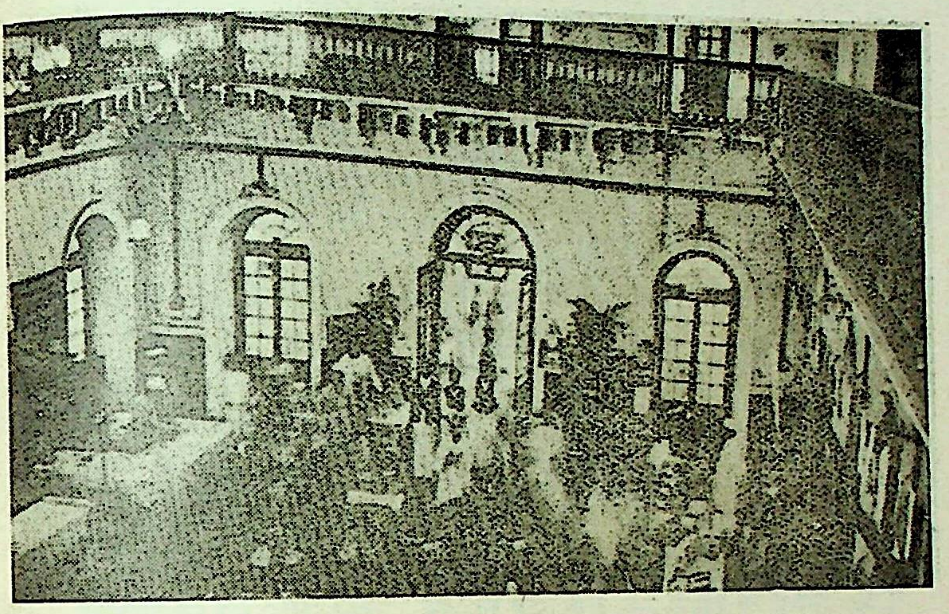
भारत में स्वदेशी का बहुत दिनों से प्रचार है और इस बात का प्रयत्न होता रहा है कि हमारे यहाँ हमारी आवश्यकता की सब चीजें बनने लगें। इस प्रयत्न से भारतवासी स्वदेशी वस्तुएँ ख़रीदने लगे हैं। आशा है, अब देश की दशा बहुत कुछ सुधर जायगी। बहुत से बेचारे ग़रीबों को पेट भर अन्न मिलने लगेगा। परन्तु केवल चीज़ों के बनने से देश का भला न होगा। लोगों को यह भी मालूम हो जाना चाहिए कि देश में क्या क्या चीज़ें बनती हैं। इसके लिए प्रचार की बड़ी आवश्यकता है। आचार्य राय ने कलकत्ता में एक स्वदेशी प्रदर्शनी का उद्घाटन करते समय कहा था कि स्वदेशी-प्रचार के लिए प्रदर्शनियाँ आवश्यक हैं और हमको ऐसी प्रदर्शनियाँ भिन्न भिन्न स्थानों पर करनी चाहिए। इससे लोगों को मालूम हो जायगा कि देश में क्या क्या चीज़ें बनती हैं। आज-कल बहुत से स्थानों में स्वदेशी वस्तुएँ नहीं पहुँचतीं। प्रदर्शनी-द्वारा इन स्थानों में भी वे सब पहुँचने लगेंगी।

प्रदर्शनी से व्यापारी तथा ग्राहक दोनों को ही लाभ होता है। व्यापारी की बिक्री ऐसे अवसर पर अच्छी हो जाती है, साथ ही उसका विज्ञापन भी हो जाता है। दूर दूर के व्यापारी एक ही स्थान पर एकत्र होते हैं, जिससे उनको अपनी चीज़ों की बुराई-भलाई मालूम हो जाती है। ऐसे अवसर के लिए व्यापारी अच्छे से अच्छा माल बना कर लाता है और उसको मूल्य भी अच्छा मिलता है। इससे वह नई चीज़ें बनाने के लिए और भी उत्साहित होता है। ग्राहकों को भी अच्छी और हर प्रकार की चीज़ें प्रदर्शनी में सस्ते दाम में मिल जाती हैं।

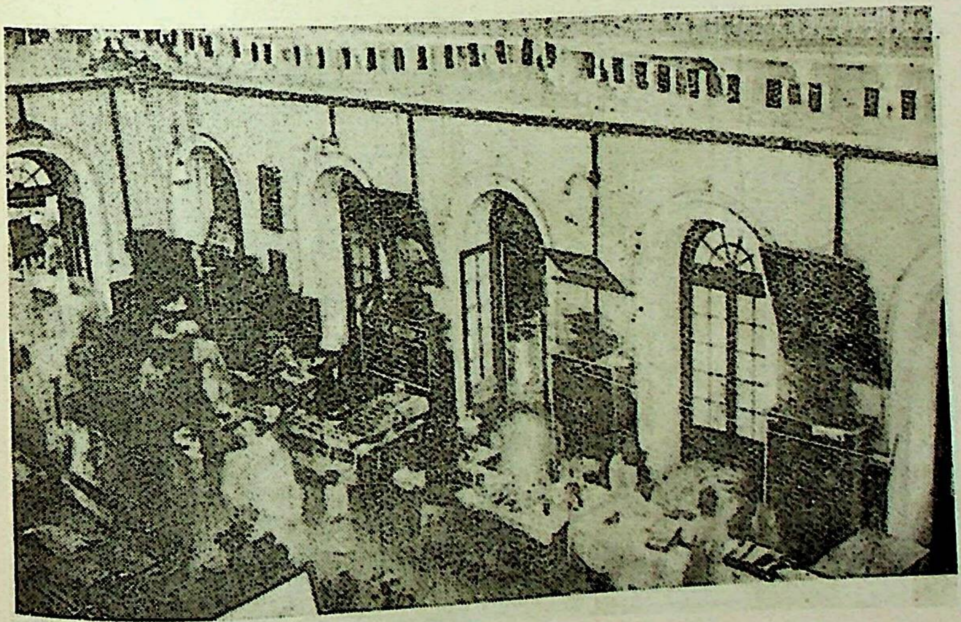


[ हिन्दू-बोर्डिंग-हाउस जहाँ श्रीमती स्वरूपरानी नेहरू ने प्रदर्शनी का उद्घाटन किया ]

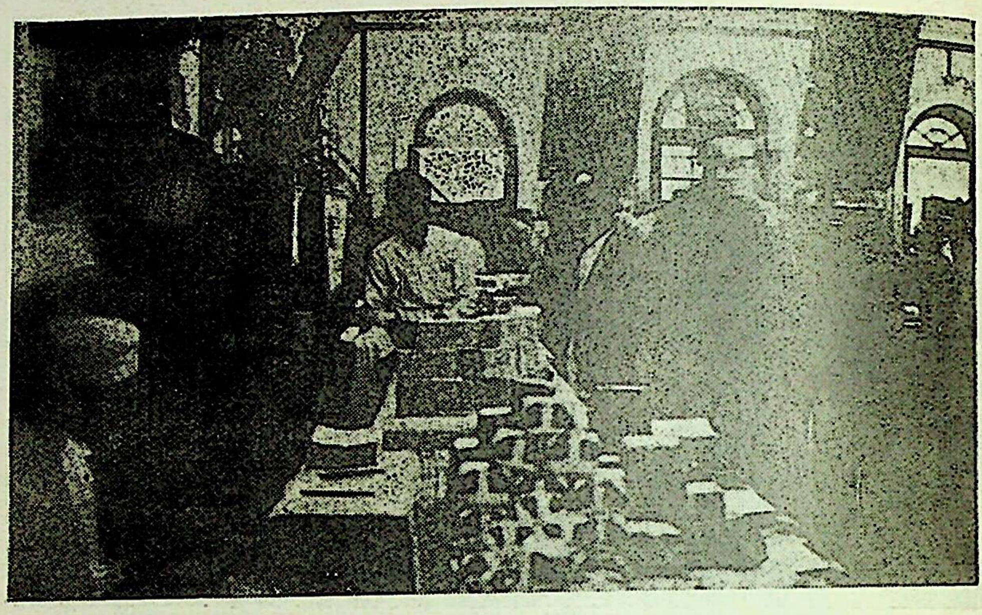
इसके सिवा देश को भी बहुत फ़ायदा होता है। लोगों का ध्यान आविष्कार करने की ओर आकर्षित होता है और देश का व्यापार भी उन्नत होता है। जिस स्थान में प्रदर्शनी होती है, वहाँ के लोगों का उत्साह बढ़ जाता है। इसलिए हमको चाहिए कि समय-समय पर भिन्न-भिन्न स्थानों में ऐसी प्रदर्शनियाँ करके लोगों को स्वदेशी का प्रेम सिखायें। व्यापारियों को भी पुरस्कार देकर उत्साहित करना चाहिए। बम्बई-प्रान्त के बहुत से भागों में ऐसी प्रदर्शनियाँ होती रहती हैं, पर हमारे प्रान्त में ऐसी कोई प्रदर्शनी सन् १९११ के बाद से नहीं हुई। हाल में प्रयाग में एक ऐसी ही प्रदर्शनी हुई थी, जिसका वर्णन यहाँ किया गया है।



[ प्रदर्शनी का प्रवेश-द्वार ]



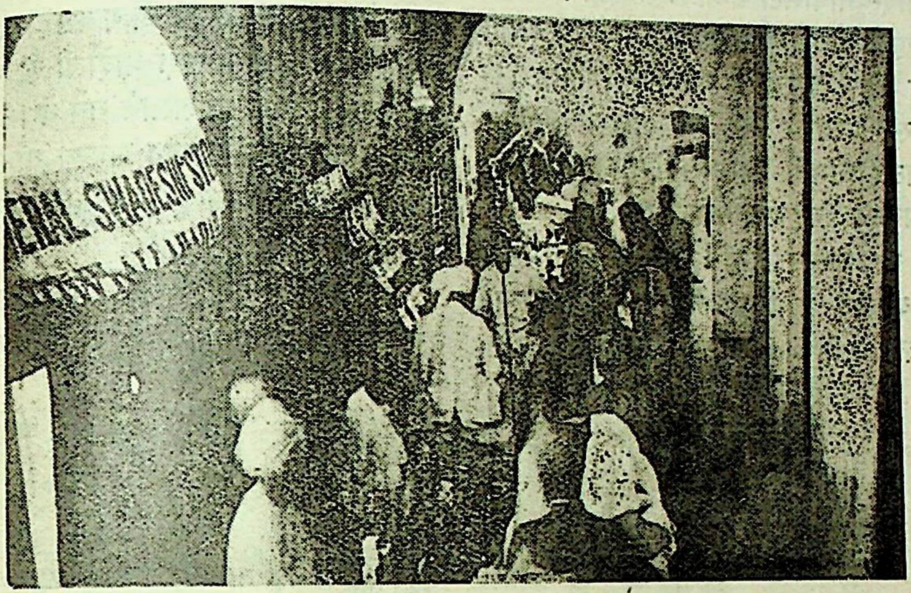
[ प्रदर्शनी के उस अञ्चल का दृश्य जहाँ बम्बई, लाहौर और सहारनपुर के व्यापारियों की दूकानें थीं ]



[ प्रदर्शनी के दूसरे अञ्चल का दृश्य। यहाँ बिस्कुट हलवा आदि की दूकानें थीं ]



[ प्रदर्शनी के बरामदे का दृश्य। नैनी ग्लास वर्क्स, ब्राडकास्ट कम्पनी और चर्खे की दूकानें ]



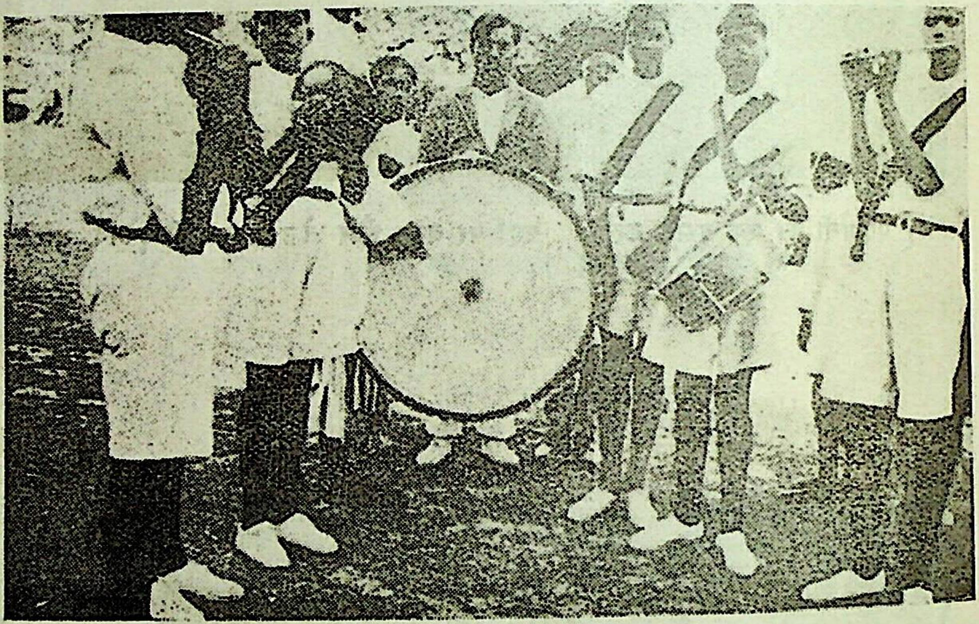

[ प्रदर्शनी का एक दूसरा दृश्य। यहाँ पर बटन और तेल साबुन की दूकानें थीं ]



[ म्यूनिसिपल स्कूल प्रयाग के चर्खे के पण्डाल का दृश्य ]

इलाहाबाद-यूनीवर्सिटी के प्रायः सब छात्रालयों में उपाधिवितरण के अवसर पर नाटक तथा अन्य उत्सव मनाये जाते हैं। पर इस वर्ष हिन्दू-बोर्डिङ्ग के छात्रों ने इस अवसर पर एक प्रदर्शनी की। इसका उद्घाटन श्रीमती स्वरूपरानी नेहरू ने किया और इसके प्रबन्ध की बड़ी प्रशंसा की।

प्रदर्शनी का प्रबन्ध हिन्दू-बोर्डिङ्ग के बलरामपुर-हाल और बरामदे में किया गया था। महात्मा गान्धी, मालवीयजी, स्वर्गीय लालाजी तथा अन्य नेताओं के चित्रों से हाल सुसज्जित किया गया था। बंगाल, मदरास, बम्बई, पंजाब, राजपूताना तथा भारत के अन्य सभी प्रान्तों से तरह-तरह की वस्तुएँ आई थीं। क़रीब क़रीब सभी दूकानों पर अच्छी बिक्री हुई। बजोई तथा आगले का शीशे का सामान, सहारनपुर का लकड़ी का काम, बम्बई के चाँदी के बटन तथा लकड़ी की तसवीरें और दयालबाग़ की चीज़ें बड़ी प्रशंसनीय थीं और इन दूकानों में बिक्री भी ख़ूब हुई।



[ दिल्ली अनाथालय का बैंड ]

प्रदर्शनी के साथ साथ म्यूनिसिपल स्कूल की तरफ़ से चर्खा की कताई और कपड़ा बुनाई का काम दिखलाया गया था। यहाँ बारदोली के तथा अन्य कई कई प्रकार के चर्खे दिखलाये गये थे। दर्शकों के लिए गाना सुनने का भी अच्छा प्रबन्ध था। रेडियो-द्वारा, बम्बई, कलकत्ता तथा दूर-दूर देशों का गाना सुनाया गया था।

प्रदर्शनी का पूरा प्रबन्ध हिन्दू-बोर्डिङ्ग-हाउस के छात्रों के ही हाथ में था और उन्होंने इसको बहुत भले प्रकार से किया। कुछ दूकानों पर छात्र ही विक्रेता भी थे और उन्होंने अच्छी बिक्री की। प्रयाग की जनता ने बड़ी संख्या में आकर कार्यकर्ताओं का तथा दूकानदारों का उत्साह बढ़ाया। जनता के अनुरोध से एक दिन केवल स्त्रियों के लिए नियत किया गया था। उस दिन का प्रबन्ध स्थानीय क्रास्थवेट कालेज की अध्यापिकाओं तथा बालिकाओं के हाथ में था और उन्होंने उसे बहुत भले प्रकार किया।

इस प्रदर्शनी से प्रयाग में स्वदेशी का अच्छा प्रचार हो गया। लोगों को मालूम होगया कि ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो भारत में न बन सकती हो। आशा है, विद्यार्थीगण भविष्य में अपने ऐसे समयों में नाटक आदि मनोरञ्जनों के साथ इस प्रदर्शनी जैसे लोकोपकारी कार्य करने को भी सचेष्ट होंगे।

—बिहारीलाल खन्ना

## ७—सौन्दर्य

तरल तान किस तंत्री की हो,<br>
हो किस सरस सुधा के सार।<br>
किस अज्ञात लोक की सुरभित,<br>
कलियों के हो कोमल हार।<br>
किस मदिरा की मादकता हो,<br>
किस उन्मादी के उन्माद।<br>
मतवाला हो जाता है जन,<br>
पाकर तेरा मधुर प्रसाद॥<br>
पूर्व पुण्य से जिसके ऊपर,<br>
देता है तू हाथ पसार।<br>
उसे देखने को लालायित,<br>
रहती निशि-दिन दृष्टि अपार॥<br>
शुद्ध स्वच्छ अति सरस सृष्टि में,<br>
वही सदा कहलाता है।<br>
अपनी रूप-सुधा से जिसको,<br>
तू संतत नहलाता है॥<br>
प्राप्य नहीं कुछ भी रहता है,<br>
पाकर तुझ-सा अनुपम रत्न।<br>
विश्व सुहृद बन जाता है वह,<br>
बिना किये ही प्रबल प्रयत्न॥<br>
शारदीय सुषमा के समुदय,<br>
मानस के मोहक सौन्दर्य।<br>
अकथनीय माना जाता है,<br>
तीन लोक में तेरा शौर्य॥<br>
वीरों का भी गर्व ख़र्व सा,<br>
हो जाता है तुझे निहार।<br>
विवश पाद-पद्मों में तेरे,<br>
शीश झुकाता है संसार॥

—कुंवर हिम्मतसिंह साहित्यरञ्जन

# विज्ञान की करामात

## १—लोहे के जूते

पाठकों ने सुना ही होगा कि चीन-देश में बाल्य-काल से ही स्त्रियों के पैरों में लोहे के जूते डाल दिये जाते हैं। लोहे के कटघरे में बन्द होने के कारण पैरों का प्राकृतिक विकास रुक जाता है, पैर छोटे हो जाते हैं। सभ्यता के प्रसार के अनुसार धीरे धीरे चीन से अब यह प्रथा उठ चली है।

परन्तु लोहे के जूतों की आवश्यकता अब जर्मनी को मालूम होने लगी है। क़ैदियों को अधिकार में रखने के लिए सारे संसार में लोहे की हथकड़ियों का प्रयोग होता है। वैज्ञानिक जर्मनी हथकड़ियों के स्थान में लोहे के जूते पहनाना चाहता है। इन जूतों के पहनने से पैरों को किसी प्रकार की हानि नहीं होती। हाँ, इनको पहन कर क़ैदी भाग नहीं सकता। यदि वह प्रयत्न भी करे तो गिर पड़ता है। जूतों में ताले का भी प्रबन्ध रहता है, अतएव क़ैदी उन्हें स्वतन्त्रता से निकाल भी नहीं सकता। क़ैदियों को क़ाबू में रखने की यह नई युक्ति वास्तव में बड़ी उपयोगी है।

## २—विचित्र गाड़ी

डाक्टर हेलेन्ड और मेक्स वेलियर ये दो प्रसिद्ध जर्मन व्यक्ति हैं। पहला वायुओं को द्रवरूप में करनेवाला विशेषज्ञ है और दूसरा राकेट गाड़ियों का तैयार करनेवाला है। कुछ समय से ये दोनों व्यक्ति एक ऐसी गाड़ी के तैयार करने में लगे हुए थे जो अन्य गाड़ियों से भिन्न हो और जिसके संचालन करने में भी एक ऐसे पदार्थ का उपयोग हो जिस पर वायुमंडल के ऊपरी हिस्से के नीचे तापक्रम का कोई असर न हो। संक्षेप में ये एक ऐसी गाड़ी तैयार कर रहे थे जो सफलता से पृथ्वी से चंद्रमण्डल तक जा सके।

बहुत-सी परीक्षाओं के बाद इन्होंने दो पदार्थों को चुना—बेनजेन और द्रव ओषजन। ओषजन में वस्तुओं को




[वेलियर महोदय अपनी अग्निमयी गाड़ी में]

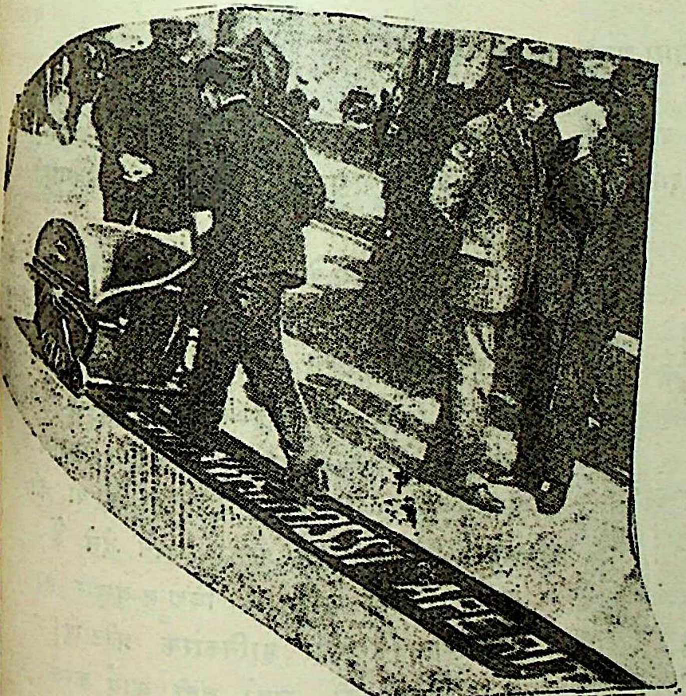
जलाने की बड़ी भारी शक्ति है। यदि आप गरम लोहा ही उसमें डाल दें तो वह तीव्र प्रकाश फैलाते हुए जल जावेगा। इस द्रव ओषजन और बेनजेन को दो नलियों के द्वारा इन्होंने मोटर की एक नली में प्रवेश

...या। यहाँ दोनों में आग लग गई और ६ फ़ुट लम्बी ...जो भयंकर आवाज़ के सहित निकली। इसके धक्के से ...गाड़ी चली। यह धक्का २०० घोड़ों की शक्ति से अधिक था।

पहली परीक्षा में तो मोटर का लोहा ही पिघल ...गया और वेलियर महोदय को दूसरी गाड़ी बनानी पड़ी। दूसरी बार के प्रयोग में ९२ मील की गति से गाड़ी चल पड़ी, परन्तु अकस्मात् उसमें आग लग गई और मिस्टर वैलियर का अन्त होगया। परन्तु उसके इस प्रयोग से यह सिद्ध होगया कि गाड़ियाँ इस नये ढंग से चलाई जा सकती हैं।

## ३—विज्ञापनबाज़ी की मशीन

व्यापारिक दुनिया में विज्ञापनबाज़ी का बड़ा ऊँचा स्थान है। पत्र-पत्रिकायें विज्ञापनों से भरी रहती हैं।



[सड़क के पृष्ठ पर विज्ञापनबाज़ी]

छोटे-छोटे रंगबिरंगे नोटिस अपनी रोचक शब्द-रचना से लोगों को अपनी ओर खींचते रहते हैं। स्पेन में एक व्यक्ति ने विज्ञापन बाँटने का एक नया तरीक़ा ढूँढ़ निकाला है। उसने एक मशीन बनाई है, जो आसानी से सड़क पर लुढ़काई जा सकती है। वह ज़मीन पर विज्ञापन छाप देती है। पहले पहल इस मनुष्य के कार्य को देखकर सरकारी अफ़सर बड़े चक्कर में पड़े। उन्हें अपने क़ानून लगाने की सूझी। एक कहने लगा कि भला इसे सड़क पर इस प्रकार विज्ञापन छापने का क्या अधिकार है। परन्तु उस व्यक्ति ने इनकी बातों की ओर कुछ ध्यान नहीं दिया।

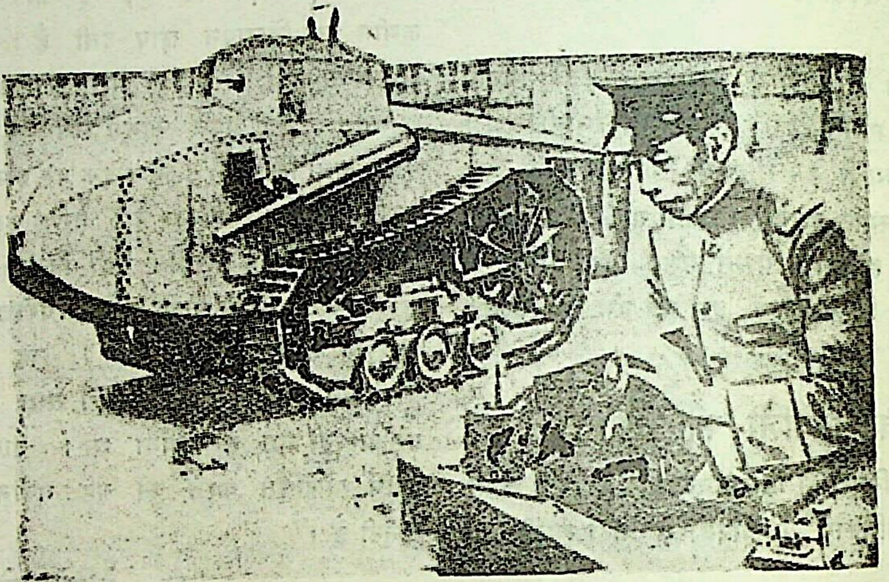
जब लोगों ने पास जाकर परीक्षा की तब उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। वह विज्ञापन पानी के द्वारा सड़क पर लिखा गया था। तथा पानी के सूख जाने पर आपही नष्ट हो जाता था। वास्तव में लोगों का ध्यान आकर्षित करने की यह नवीन विधि बड़ी ही अनूठी है।

## ४—रेडियो के चमत्कार

रेडियो का जन्म हुए अभी अधिक समय नहीं हुआ है, परन्तु इतने अल्प काल में ही उसने संसार में आश्चर्यजनक परिवर्तन कर दिये। रेडियो के द्वारा ही हम हज़ारों मील की दूरी पर बैठे हुए भाषण सुन सकते हैं, संगीत का आनन्द लूट सकते हैं और आवश्यक बातों के चित्र भी प्राप्त कर सकते हैं।

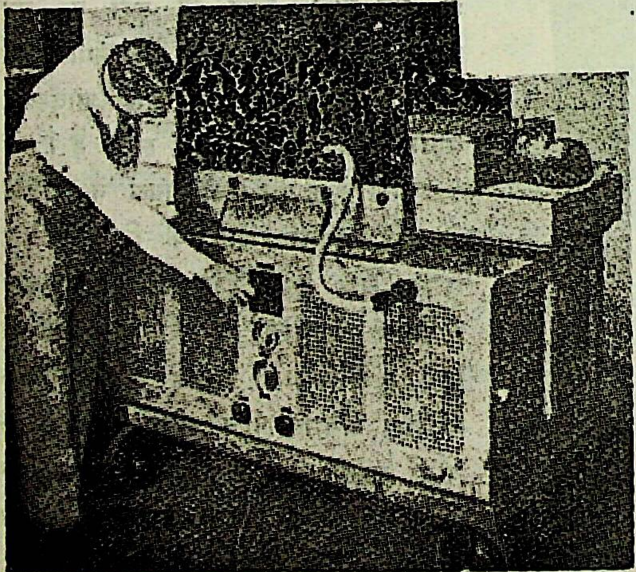
जापान के एक सेना-नायक ने रेडियो को एक भयंकर कार्य के लिए उपयुक्त समझा और उसके द्वारा उसने समर-क्षेत्र में संहार करनेवाली मशीन के संचालन की विधि ढूँढ़ निकाली। यह मशीन रेडियो के द्वारा लगभग पाँच मील की गति से यात्रा करती है। एक विशाल भयंकर मशीन का बिना किसी संचालक के एक स्थान से दूसरे स्थान पर आप से आप चला जाना मनुष्य-हृदय में भय उत्पन्न करता है। उसका संचालक मीलों

दूरी पर बैठा रहता है। बेतार के द्वारा इँग्लैंड में वायुयानों का सफल संचालन हुआ है। रेडियो के द्वारा इस प्रकार यन्त्रों का संचालन मामूली बात हो जायगी। रेडियो मशीन को कोई शक्ति प्रदान नहीं करता, सारी सामग्री तो उसमें पहले से ही रहती है। रेडियो की लहरें चाभियों पर असर डालती हैं, जिससे यंत्र चलने लगता है और निश्चित दिशा में अपना कार्य कर दिखाता है। परन्तु इसका अभी सर्वगामी प्रभाव नहीं हुआ है।



[रेडियो द्वारा चलने वाली तोप-गाड़ी]

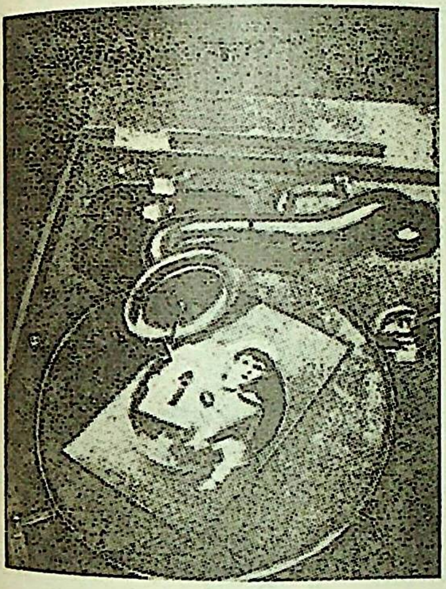
एक ओर हम रेडियो को ऐसा भयंकर कार्य करते देखते हैं तो दूसरी ओर रेडियो मनुष्य को आपत्तियों से बचाने के काम में भी लाया जाता है। रोग दूर करने के लिए इसका उपयोग प्रारम्भ हो गया है। भयंकर रोगों के कीटाणुओं से युक्त—मनुष्य को एक पेटी में रखकर लिटा देते हैं और रेडियो की छोटी लहरों का उस पर असर होने देते हैं। थोड़े समय में उसके शरीर में विद्युत्-बुखार का प्रभाव फैल जाता है और हानिकारक कीटाणु मर जाते हैं। रेडियो की लहरें वही कार्य करके दिखाती हैं जो कार्य इंजक्शन, वाष्प-स्नान आदि कर दिखाते हैं।



[रेडियो-बुखार यंत्र]

## ५—सच्चा पत्र

अभी तक पत्रों के द्वारा हम अपने हृदय के संदेश को शब्दों-द्वारा ही भेज सकते थे, परन्तु एक जर्मन आविष्कारक को यह बात वैज्ञानिक युग के लिए लज्जा-जनक-सी दिखी। उसने छोटे छोटे पोस्टकार्ड बना

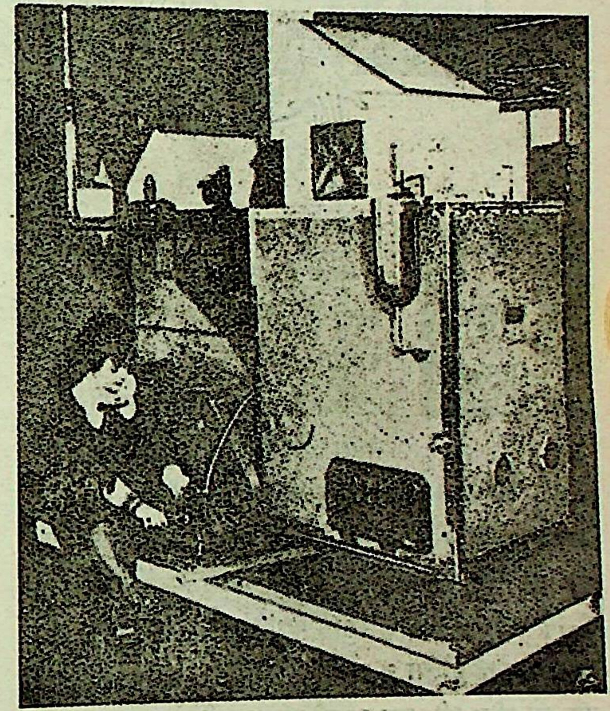


[ग्रामोफ़ोन पोस्ट कार्ड]

डाले। इन पोस्टकार्डों पर ग्रामोफ़ोन के रिकार्ड के समान अपनी आवाज़ को भी लिपिबद्ध वे कर सकते हैं और साथ ही अपना चित्र भी उस पर उतरवा सकते हैं। आप का मित्र ग्रामोफ़ोन की मशीन पर जाकर आपकी आवाज़ में ही आपके संदेश को सुन लेगा और चित्र-पट के दर्शन कर सकेगा।

## ६—इच्छित ऋतुएँ

बहुत दिन से पाश्चात्य मनुष्य की इच्छा थी कि वह इच्छित ऋतुएँ तैयार कर सके। सौभाग्य से छोटे रूप में अब यह सम्भव हो गया है। एक प्रकार की मशीन तैयार की गई है जो घर में इच्छित ऋतुओं का संचार करती है। इसके द्वारा आप अपने कमरे में कभी



[ऋतु-दायक मशीन]

वसंत की बहार लूट सकते हैं, गर्मी की ऋतु में ठंड का अनुभव कर सकते हैं और ठंड की ऋतु में अपने कमरे के वायुमण्डल को गरम रख सकते हैं। यहाँ तक कि वायुमंडल को आर्द्र और सूखा भी बना सकते हैं। कैसी अद्‌भुत बात है?

—नाथूराम शुक्ल



# मातृ-मण्डल

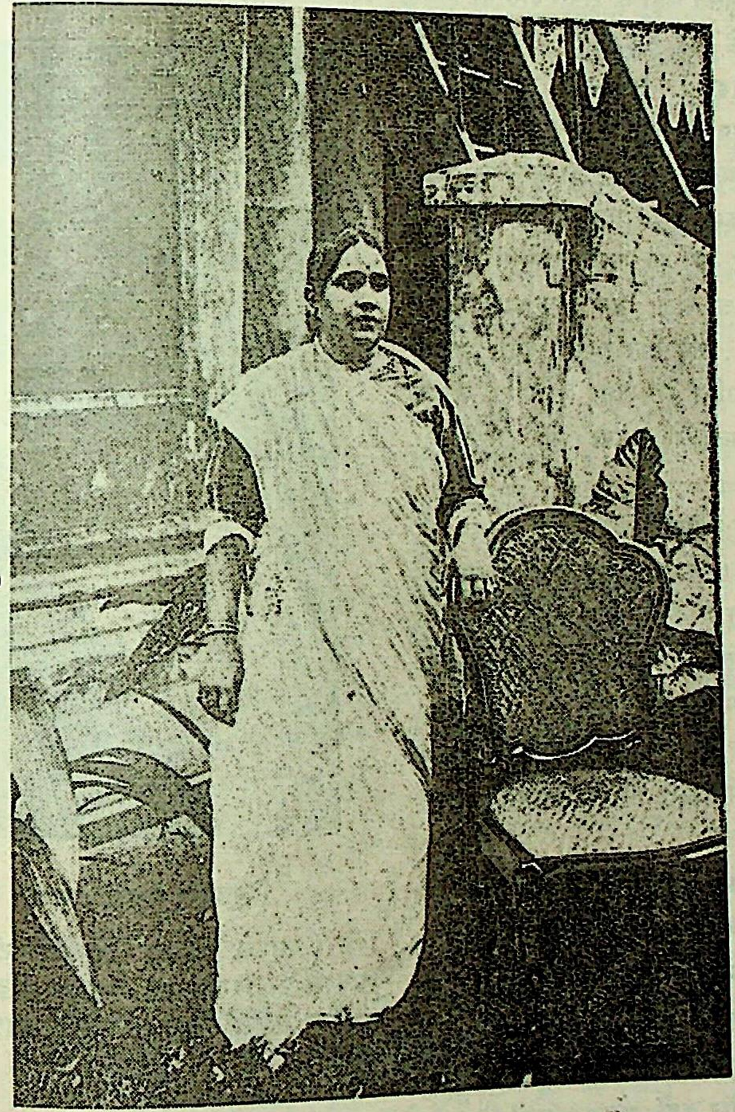
हिन्दू महिलाओं की धार्मिक भावना बड़ी प्रबल है। धर्म के ही नाम पर वे उठती हैं, धर्म के ही नाम पर बैठती हैं और धर्म के ही नाम पर घर-गृहस्थी का सारा काम करती हैं। संसार में ऐसा कोई भी काम नहीं है जिसका वे धर्म से सम्बन्ध न जोड़ती हों। कोई हिन्दू स्त्री शरीर की शुद्धि तथा स्वास्थ्य की उन्नति की दृष्टि से स्नान नहीं करती है, किन्तु इसलिए करती है कि धार्मिक दृष्टि से स्नान करना अनिवार्य है। दाँतों की काफ़ी सफ़ाई हो या न हो, इसकी उसे विशेष चिन्ता नहीं। वह तो नीम की एक पतली-सी लकड़ी मुँह में डाल कर घुमा लेने में भी अपने एक विशेष कर्तव्य से मुक्त हो जाती है। इसके विपरीत ब्रश या मञ्जन से दाँतों को रगड़ रगड़ कर साफ़ करने पर भी दातून किये बिना उसे सन्तोष नहीं होता, क्योंकि हमारे प्रातःकृत्य में इस तरह का विधान नहीं है। परन्तु क्या यह व्यवस्था उपयोगी है ?

हिन्दू-समाज में विवाह तथा अन्यान्य उत्सवों के समय बहुत-सा ऐसा कर्मकाण्ड प्रचलित है जिसका प्रत्यक्ष-रूप से शास्त्र से कोई सम्बन्ध नहीं दिखाई पड़ता, पद्धतियों में भी उसका उल्लेख नहीं है, परन्तु उसका होना अनिवार्य है। उस कर्मकाण्ड के कराने में प्रायः पुरोहित महाराज के भी छक्के छूट जाते हैं। उस समय प्रधान आचार्य का पद पास-पड़ोस की बड़ी-बूढ़ी स्त्रियों को ही मिलता है। ऐसा कर्मकाण्ड सुधारवादी युवकों की दृष्टि में निरर्थक एवं त्याज्य चाहे भले ही हो, किन्तु महिला-समाज को



[ कुमारी मृणालदास गुप्त ]
( ढाका यूनिवर्सिटी से आप ने हाल में एम० ए० की डिगरी प्राप्त की है। )

तो उसके प्रति लेशमात्र भी अवहेलना सह्य नहीं है। उसकी पद्धति में ज़रा भी हेर-फेर हुआ कि मानो सारा कर्मकाण्ड ही चौपट होगया, शास्त्रीय पद्धति का चाहे भले ही तत्परता के साथ अनुसरण किया गया हो। परन्तु हमारी गृहलक्ष्मियाँ इस बात की ओर ध्यान नहीं देतीं। है, त्यों त्यों आचार-अनुष्ठान के प्रति वे प्रायः उदासीन होते जा रहे हैं। काम-काज की उलझन के मारे भोजन-शयन आदि अनिवार्य कामों के लिए भी समय निकालना किसी उद्यमशील पुरुष के लिए कठिन हो जाता है। ऐसी दशा में जिन बातों से उसके दैनिक जीवन का कोई सम्बन्ध



[ कोचीन के प्रजाहितैषी महाराज की महारानी श्रीमती वी० के० परुक्कुठी नेथियारम्मा ]

कथा-पूजा, व्रत नियम तथा मन्दिर-तीर्थ आदि की ओर भी स्त्रियों का ही झुकाव अधिक है। व्यावहारिक जीवन में पुरुषों की क्रियाशीलता ज्यों ज्यों बढ़ती जा रही नहीं, उनके पीछे समय नष्ट करना उसे असह्य हो जाता है। विश्वविद्यालय के विद्यार्थी बिस्तर छोड़ने से पहले ही कोर्स की किताबों के पन्ने उलटने लगते हैं, बाबू लोग

भी फ़ाइलों का ढेर लादे बिना आफ़िस से पैर नहीं उठा पाते, उनके उलटने-पलटने में ही सुबह-शाम का उनका सारा समय बीत जाता है। मुअक्किल लोग तो रात-दिन वकीलों की खोपड़ी चाटते ही रहते हैं। शायद अपने मुक़द्दमों के ही सम्बन्ध में वे रात में स्वप्न भी देखते हों। इन बेचारों को इतनी फ़ुर्सत कहाँ कि सवेरा होते ही धोती-लोटा लेकर गङ्गाजी के तट तक जायँ। परन्तु स्त्रियों को ये सब झंझट नहीं रहते। सुबह-शाम भोजन बना कर ही वे समस्त दिन के काम से प्रायः छुट्टी ले लेती हैं। जिनकी आर्थिक अवस्था ज़रा अच्छी हुई वे आठ-दस रुपये मासिक व्यय करके इस जंजाल से भी छुट्टी ले लेती हैं। फिर चाहे, घूम कर गङ्गा नहायें या बरामदे में बैठ कर ताश-शतरंज खेलें, उन्हें पूछनेवाला कोई नहीं रहता। घर में यदि कोई उपद्रवी बच्चा हुआ तो वह कभी कभी इनकी शान्ति में बाधा पहुँचाता अवश्य है, किन्तु दो-एक चपत खाकर वह भी शान्त हो जाता है।

गृह-प्रबन्ध में हिन्दू-महिलायें भाग लेती अवश्य हैं, किन्तु उसमें भी उनका कोई विशेष उत्तरदायित्व नहीं रहता। आवश्यक वस्तुओं की सूची बनाने में ही उनके कर्तव्य की बहुत कुछ इतिश्री हो जाती है। उन वस्तुओं के संग्रह का भार गृहस्वामी पर ही पड़ता है। इस प्रकार फ़ुर्सत होने से पुरुषों की अपेक्षा कहीं अधिक वे अपनी प्रवृत्ति के अनुसार धर्म-चिन्ता और मनोरञ्जन आसानी से कर पाती हैं।

और हिन्दू-महिलाओं—विशेषतः प्राचीन प्रथा की महिलाओं के मनोरञ्जन का प्रधान साधन हैं तीर्थ-यात्रा और धार्मिक मेले। ऐसे मेलों में ही आँख खोलकर वे सारी चीज़ें देख पाती हैं। वहीं जाकर वे तरह तरह के आदमी भी देख पाती हैं। इन मेलों और तीर्थों के अतिरिक्त बाह्य दृश्य देखने का उन्हें प्रायः और कहीं अवसर नहीं मिलता। इस प्रकार यदि इन मेलों का सदुपयोग किया जाय तो इनसे बहुत कुछ शिक्षा मिल सकती है। किन्तु खेद है कि हमारी महिलाओं में अभी वह शक्ति नहीं है। चित्र-विचित्र के दृश्य और भिन्न-भिन्न आकार-प्रकार और प्रकृति के मनुष्यों को देखकर वे थोड़ा-बहुत मनोरञ्जन चाहे भले ही करलें, किन्तु उन्हें विवेचनात्मक दृष्टि से देखने की योग्यता उनमें नहीं होती। यही कारण है कि उससे वे कुछ लाभ नहीं उठा पातीं।

परन्तु तीर्थों या अन्य धार्मिक स्थानों में हिन्दू-जनता इसी विचार से नहीं जाती। वहाँ तो वह धार्मिक



[ कुमारी मथुरा रामराव नादकर्णी ]

( आपको बम्बई यूनीवर्सिटी के कनवोकेशन के अवसर पर 'वायसराय सिल्वर मेडल' और 'लेडी रीडिंग सिल्वर मेडल' दिया गया है। आप सुन्दरदास मेडिकल कालेज की हैं। )

भावना से ही प्रेरित होकर जाती है। हिन्दुओं का यह विश्वास है, और यह विश्वास आज का नहीं है, बल्कि बहुत प्राचीन काल से चला आ रहा है कि तीर्थों में जाने से मोक्ष मिलता है। यहाँ हम इस विश्वास की सत्यता या असत्यता के सम्बन्ध में विचार करना आवश्यक नहीं

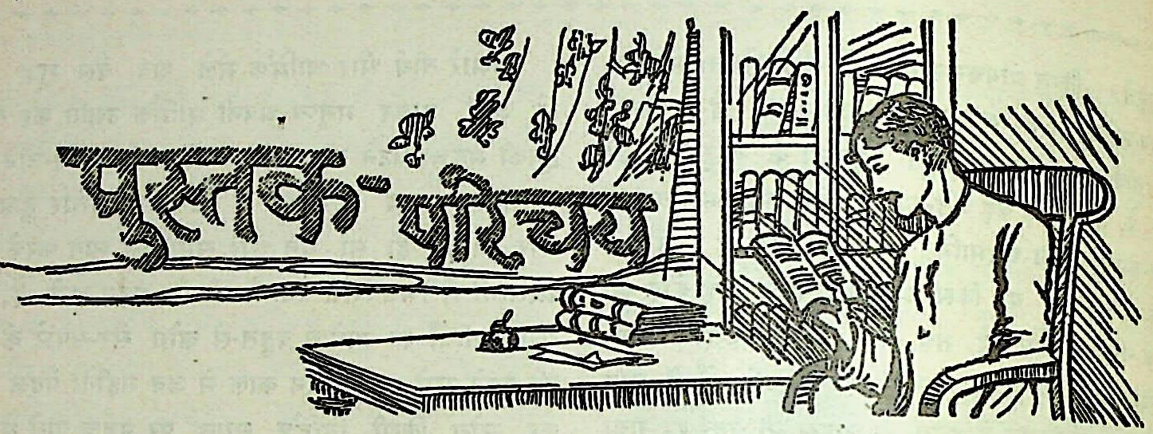
समझते। किन्तु प्रत्यक्षरूप में तीर्थों में विशेषतः मेले के समय महिलाओं का अपमान ही हुआ करता है। कितने ही तीर्थ या धार्मिक स्थान तो वञ्चकता के अड्डे-से हो गये हैं, जहाँ बड़े बड़े पंडे-पुजारी और साधू-महन्त तक कुल-कमलाओं को अपमानित करने की ताक में रहते हैं। मेले में भूल कर या किसी अन्य कारण से यदि कोई स्त्री उनके चंगुल में फँस गई तब फिर उसका उद्धार प्रायः असम्भव-सा हो जाता है। घर के कड़े पर्दे में बन्द रहते रहते महिलाओं में इतना सत्साहस भी नहीं रह गया है कि इन दुराचारियों का वे वीरता के साथ सामना कर सकें और अपना मार्ग स्वयं खोज लें।

बहुत-सी गर्भवती तथा आसन्नप्रसवा महिलाएँ भी ऐसे मेलों में जाती हैं। उनके हृदय में मोक्ष का लोभ इतना प्रबल होता है कि वे अपने या अपनी सन्तान के स्वास्थ्य और शरीर की ओर ध्यान तक नहीं देतीं। उनके इस कृत्य का परिणाम कभी कभी तो बहुत ही भयङ्कर हुआ करता है। बड़े मेलों में छोटे छोटे बच्चों का खो जाना तो एक साधारण-सी बात है। क्या ही अच्छा हो कि महिलायें इन सब क्लेशों से बचकर घर पर ही धर्म-चिन्ता किया करें। धार्मिक भावना को दृढ़ करने तथा आत्मा के उत्कर्ष का अच्छा साधन है धार्मिक ग्रन्थों का स्वाध्याय और भिन्न-भिन्न विषयों का ज्ञान-सञ्चय। हमारी धर्मभीरु महिलायें यदि इस ओर विशेष रूप से दत्तचित्त हों तो वे अपना भी सुधार कर सकेंगी, साथ ही देश का भी उनसे बड़ा उपकार होगा।

हमारे तीर्थ और धार्मिक मेले अब वैसे शुद्ध नहीं रहे जहाँ जाकर मनुष्य अपनी धार्मिक उन्नति कर सके। इनकी महत्ता घटने का प्रधान कारण है आने-जाने की सुगमता। जब से भारत में रेलों का विस्तार हुआ है और थोड़ा ही सा धन और समय का व्यय करके लोग आसानी से भिन्न-भिन्न स्थानों की सैर करने लगे हैं, तब से इन तीर्थों का उपयोग बहुत-से लोग सैर-सपाटे के लिए भी करने लगे। प्राचीन काल में जब महीनों पैदल चल कर लोग किसी निर्दिष्ट स्थान पर पहुँच पाते थे तब केवल वे ही लोग चाहे स्त्री हों या पुरुष—घर से पैर निकालने का साहस करते थे जो अपने उद्देश में दृढ़ होते थे। इस प्रकार चुने ही चुने आदमी तीर्थों में पहुँचते थे, और रास्ते भर एक दूसरों से मिलने-जुलने और भावों का आदान-प्रदान करने के कारण वे लोग बहुत कुछ ज्ञान-वृद्धि भी कर लिया करते थे। साथ ही उनके विचार भी परिपक्व हो जाते थे। उन अनुभवी तथा धुन के पक्के जिज्ञासुओं के सामने पाखण्डी और वञ्चक पंडे-पुजारियों और महन्तों के पाँव नहीं अड़ पाते थे। उस समय तो केवल वे ही प्रतिष्ठा-प्राप्त कर पाते थे जिनमें वास्तव में कुछ तत्त्व होता था, साथ ही उनका आचार-विचार भी शुद्ध होता था।

क्या हमारा स्त्री-समाज इन कुछ बातों की ओर ध्यान देने की कृपा करेगा?

—गङ्गाप्रसाद वर्मा




**१—अरब और भारत के सम्बन्ध**—संयुक्त-प्रान्त की 'हिन्दुस्तानी एकेडेमी' ने अब तक कई बड़ी उपयोगी पुस्तकें प्रकाशित की हैं। हाल में उसने 'अरब और भारत के सम्बन्ध' नाम की हिन्दी में एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक प्रकाशित की है। उर्दू के प्रसिद्ध विद्वान् मौलाना सैयद सुलेमान नदवी ने एकेडेमी के भवन में सन् १९२९ के मार्च में उपर्युक्त विषय पर गवेषणापूर्ण व्याख्यान पढ़े थे। वही उर्दू में पुस्तकाकार प्रकाशित हुए। उस उर्दू-पुस्तक का यह हिन्दी-भाषान्तर है।

यह पुस्तक उपयोगी ही नहीं, सामयिक भी है। अरबी तथा फ़ारसी के अनेक दुर्लभ ग्रन्थों का विवेचना-पूर्ण अध्ययन करके इसकी रचना हुई है। मुसलमानों के भारत-विजय के पहले भारत से मुसलमानों का जो व्यावसायिक, विद्या-सम्बन्धी एवं धार्मिक सम्बन्ध क़ायम था उस सबका विश्वसनीय प्रमाणों के आधार पर इस व्याख्यान-सङ्ग्रह में अलग-अलग प्रकरणों में ब्योरेवार वर्णन किया गया है। इसके पढ़ने से प्रकट होता है कि भारत-विजय के पहले से ही मुसलमानों का भारत से घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया था। सिन्ध से लेकर ट्रावनकोर तक समुद्र के किनारे किनारे उनकी अनेक बस्तियाँ क़ायम हो गई थीं, जहाँ वे मस्जिदें निर्माण करके अपने ढङ्ग से धर्म-कर्म करने के सर्वथा स्वतन्त्र थे। यही नहीं, उनका उन उन स्थानों के राजाओं तथा राजकर्मचारियों से सद्भाव था। इन सब बातों का सप्रमाण विवरण इस पुस्तक में किया गया है। पुस्तक के अन्तिम प्रकरण में उन मुसलमान यात्रियों का तथा भारत-सम्बन्धी उनके यात्रा-विवरणों का भी विस्तार के साथ उल्लेख किया गया है। इस पुस्तक से तत्कालीन भारत के विश्वसनीय इतिहास के एक विशेष अंश का बहुत कुछ ज्ञान हो जाता है। इतिहास के प्रेमी पाठकों के लिए तो पुस्तक उपयोगी है ही, इतर जनों का भी इससे काफ़ी मनोरञ्जन हो सकता तथा उनकी ज्ञान-वृद्धि हो सकती है। हिन्दी के प्रेमी पाठकों को इस पुस्तक से लाभ उठाना चाहिए। इसका अनुवाद बाबू रामचन्द्र वर्मा ने किया है। अनुवाद बहुत सुन्दर है। इस जिल्द-बँधी पुस्तक की पृष्ठ-संख्या ३३० और मूल्य ४) है। पता—हिन्दुस्तानी एकेडेमी, यू० पी०, इलाहाबाद है।

## विज्ञान-परिषद् प्रयाग की ४ नवीन पुस्तकें

(१) **कार्बनिक रसायन**—लेखक श्रीयुत सत्य-प्रकाश, मूल्य २॥)

(२) **वैज्ञानिक परिमाण**—लेखक श्रीयुत निहाल-करण सेठी तथा सत्यप्रकाश, मूल्य १॥)

(३) **वैज्ञानिक परिभाषा**—लेखक श्रीयुत सत्य-प्रकाश, मूल्य ॥)

(४) **साधारण रसायन**—लेखक श्रीयुत सत्य-प्रकाश, मूल्य २॥)

रसायन-शास्त्र के प्रायः दो बड़े बड़े विभाग माने जाते हैं—आङ्गारक रसायन तथा अनाङ्गारक रसायन। इन्हीं दोनों अंगों पर नं० १ तथा नं० ३ की पुस्तकें विज्ञान-परिषद् ने हाल में ही प्रकाशित की हैं। पहले ये पुस्तकें 'विज्ञान' में क्रमशः छपी थीं। वही लेख

[छप]कर अब पुस्तकरूप से प्रकाशित किये गये हैं। 'विज्ञान' ने हिन्दी-साहित्य की जो सेवा गत सोलह वर्षों में की है, उसके लिए हिन्दी-संसार विज्ञान-परिषद् का सदैव ऋणी रहेगा। 'विज्ञान' में अनेक ग्रन्थ भरे पड़े हैं। उनमें से अब तक प्रायः २० ग्रन्थ पुस्तक रूप से प्रकाशित हो चुके हैं। उन्हीं में से ये ऊपर के चार ग्रन्थ हैं।

२—कार्बनिक रसायन—इस पुस्तक में डबल क्राउन अठपेजी साइज़ के १६६+६ पृष्ठ हैं। प्रतिपाद्य विषय आङ्गारक या कार्बनिक रसायन है। भारतीय विश्व-विद्यालयों की इंटर मीडियेट परीक्षा के लिए जितने कार्बनिक रसायन के ज्ञान की आवश्यकता है, उतने विषय का समावेश इस पुस्तक में है।

प्रयाग-विश्वविद्यालय ने श्री सत्यप्रकाश को "एम्प्रेस विक्टोरिया रीडर" बनाया था। उस पद पर रहते हुए अथवा उपर्युक्त छात्रवृत्ति पाते हुए आपने इस ग्रन्थ का निर्माण कर यूनिवर्सिटी को भेंट किया है। कुछ वर्ष हुए पंडित शालिग्राम भार्गव ने भी चुम्बकशास्त्र की रचना इसी सम्बन्ध में की थी।

आङ्गारक रसायन पर अभी तक हिन्दी में कोई ग्रन्थ नहीं था, अतएव हर्ष है कि इस कमी को श्रीयुत सत्य-प्रकाशजी ने पूरा कर दिया।

पुस्तक प्रचलित अँगरेज़ी की पुस्तकों के ढंग पर लिखी गई है। परन्तु उसमें छापने में कुछ असावधानी की गई है। आंगारिक रसायन के ग्रन्थों में संगठनसूत्रों का बड़ा महत्त्व है। विशेषतः बन्दश्रृंखला (closed chain) के यौगिकों के लिए कुछ छोटे छोटे ब्लाक बनवा लिये जाते तो अधिक अच्छा था। खुली श्रृंखला के सूत्रों में भी कई स्थानों पर ग़लतियाँ हो गई हैं। इसी प्रकार यदि कई प्रकार के टाइपों का ठीक तरह से प्रयोग होता तो विषय के समझने में सुगमता होती। यौगिकों के नाम तथा सूत्र किसी भिन्न टाइप में रखने से विषय अधिक स्पष्ट हो जाता। पुस्तक की भाषा में भी यदि थोड़ा सा प्रयत्न किया जाता तो अधिक सरल और सुबोध बनाई जा सकती थी।

पारिभाषिक शब्दों की सूची पुस्तक के अन्त में दी गई है।

३—वैज्ञानिक परिमाण—विज्ञान के पठन-पाठन में ऐसे अनेक परिमाणों की पग-पग पर आवश्यकता पड़ती रहती है जिनको स्वयम् उसी समय, गणना अथवा प्रयोग-द्वारा निकालना कठिन हो जाता है। गणना अथवा प्रयोग करने में एक तो समय बहुत लगता है, दूसरे सबको समान सुविधा तथा सामग्री नहीं जुटती। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे परिमाण हैं जो वैज्ञानिकों ने बड़ी मेहनत से वर्षों में निकाले हैं। अतएव अँगरेज़ी में परिमाण-सूचियों के ग्रन्थ बनाये गये हैं, जिनमें साधारण तथा काम में आनेवाले सभी परिमाण दिये रहते हैं। हिन्दी में भी इस प्रकार के ग्रन्थ का प्रकाशित हो जाना बड़े सौभाग्य का विषय है। वैज्ञानिक लोग ही नहीं, बरन जितने कारीगरपेशे के लोग हैं—मिस्त्री, सुनार, बिजलीवाले, इंजीनियर, लोहार आदि सभी को इस पुस्तक से लाभ पहुँच सकता है। ज्यों ज्यों इनकी जानकारी बढ़ती जायगी, त्यों त्यों ये अपने अपने कामों में अधिक सफल होंगे और तभी ये प्रस्तुत ग्रन्थ के मूल्य को समझेंगे।

४—वैज्ञानिक परिभाषा—'विज्ञान' प्रायः १६ वर्ष से प्रकाशित हो रहा है। इस दीर्घ समय में सैकड़ों वैज्ञानिक विषयों पर हज़ारों लेख उसमें छप चुके हैं। उन लेखों में अनेक पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग हुआ है। उन्हीं पारिभाषिक शब्दों का यह उपयोगी संग्रह अब पुस्तकरूप से प्रकाशित हो गया है।

इसमें शरीर-विज्ञान, वनस्पति-शास्त्र, रसायन-शास्त्र, और भौतिक विज्ञान के पारिभाषिक अँगरेज़ी शब्द और उनका हिन्दी-अनुवाद दिया गया है। पुस्तक बड़ी उपयोगी है। यदि पत्रों के सम्पादक महोदय इन्हीं शब्दों का प्रयोग लेखकों-द्वारा कराने लगें तो एक बड़ी कठिन समस्या हल हो जाय।

५—साधारण रसायन—अनाङ्गारक रसायन का यह ग्रन्थ है। यह भारतीय विश्वविद्यालयों के इन्टर-मीडियेट के विद्यार्थियों के लिए उपयुक्त है। श्री सत्यप्रकाशजी

ने इस ग्रन्थ की रचना कर प्रायः २९ वर्ष बाद इस विषय को हिन्दी-संसार के सामने रक्खा। श्रीयुत महेश-चरण सिनहा के ग्रन्थ के बाद यही दूसरा ग्रन्थ हिन्दी-में लिखा गया है। आशा है कि इससे हिन्दी के पाठक लाभ उठायेंगे।

—गोपालस्वरूप भार्गव, एम० एस-सी०

**६—इँग्लेंड का सरल इतिहास (पूर्वार्द्ध)**—लेखक श्रीयुत मुरलीधर बी० ए०, प्रकाशक दी युनाइटेड प्रेस, लिमिटेड, भागलपुर हैं। पृष्ठ-संख्या २०६ और मूल्य १=) है।

भारतीय विश्वविद्यालयों ने जब से मातृभाषा के द्वारा हाईस्कूलों में इतिहास, भूगोल आदि की शिक्षा देने का नियम स्वीकार कर लिया है तब से हिन्दी में भी इन विषयों की उत्तमोत्तम पुस्तकें प्रकाशित होने लगी हैं। स्कूलों के विद्यार्थियों के ही उपयोग के लिए यह पुस्तक भी प्रकाशित हुई है। इसमें अँगरेज़ी इतिहास के प्रारम्भिक काल से लेकर रानी एलिज़ाबेथ के समय तक का हाल सरल भाषा में लिखा गया है। पुस्तक उपयोगी है।

**७—निबन्धावली**—लेखक और प्रकाशक श्रीयुत धर्मानन्द पन्त, पन्त ब्रादर्स ऐंड कम्पनी, नैनीताल हैं। पृष्ठ-संख्या ५१ और मूल्य ॥) है।

यह पुस्तक विद्यार्थियों के काम की है। इसमें मनुष्यत्व, समय, शिक्षा, आज्ञा-पालन, साहस, सहानुभूति, जीवन-संग्राम, सत्य, रहन-सहन तथा समाज आदि विषयों पर छोटे छोटे दस निबन्धों का संग्रह किया गया है। सभी निबन्ध सरल तथा शुद्ध भाषा में लिखे गये हैं। इनके द्वारा छठी-सातवीं कक्षाओं के विद्यार्थी रचना-सम्बन्धी ज्ञान बढ़ाने में सहायता प्राप्त कर सकते हैं।

**८—सन्दर्भ-मञ्जरी**—लेखक और प्रकाशक श्रीयुत नित्यगोपाल शर्मा, विद्याविनोद, संस्कृताध्यापक, विक्टोरिया-कालेज, कूचविहार हैं। पृष्ठ-संख्या ५४ और मूल्य ।―) है।

यह पुस्तक संस्कृत में है। लेखक महोदय ने इसे आधुनिक प्रथा की एक रीडर का रूप दिया है। ईश्वर-वन्दनम्, रामायणी कथा, भारतकथासंक्षेपः, अशोक-चरितम्, भीष्मचरितम्, युधिष्ठिरकथा, कर्णचरितम्, श्रीरामचरितम्, लक्ष्मणचरितम्, महर्षिदेवेन्द्रनाथः, विद्यासागरचरितम्, आशुतोषमाहात्म्यम्, वीरवरचरितम्, देशबन्धुचित्तरञ्जनमहिमा तथा जन्मभूमिवन्दनम् आदि विषयों पर गद्य तथा पद्यमय छोटे छोटे पाठ हैं। सभी पाठ सरल, बोधगम्य तथा शिक्षाप्रद हैं। प्रत्येक पाठ के अन्त में आपने टिप्पणी भी दे दी है, जो प्रारम्भिक विद्यार्थियों के लिए बहुत उपयोगी है। अँगरेज़ी स्कूलों के नवीं और दसवीं कक्षा के विद्यार्थी तो इससे लाभ उठा ही सकते हैं, साथ ही यह संस्कृत की प्रथमा परीक्षा के विद्यार्थियों के भी काम की है। परन्तु इसमें 'चरितों' का ही बाहुल्य है। यदि इसमें कुछ अन्य विषयों का भी समावेश किया गया होता तो यह और भी अधिक उपयोगी हो गई होती।



संकीर्तन

[ चित्रकार—श्रीयुत असितकुमार हल्दार

# अपनी बात

## १—चीन में जेल-सुधार

गृह-युद्ध के कारण यद्यपि चीन की अवस्था अभी भले प्रकार व्यवस्थित नहीं हो पाई है, तो भी वहाँ की राष्ट्रीय सरकार धैर्य-पूर्वक अपने निश्चय पर दृढ़ है। एक ओर वह अपने विरोधी गृह-युद्ध के सूत्र-धारों का सशस्त्र मुक़ाबिला करने में संलग्न है तो दूसरी ओर राष्ट्र के निर्माण-कार्य में भी दत्त-चित्त है। अपने अधिकृत विस्तृत प्रदेशों में वह शान्ति और व्यवस्था स्थापित करने में बहुत कुछ सफलमनोरथ हो गई है। इसी से संसार के प्रायः सभी प्रमुख राष्ट्र उससे समवेदना रखते हैं, साथ ही व्यावहारिक रूप में उसकी समय समय पर सहायता भी करते रहते हैं। यही कारण है कि आज नानकिंग की सरकार राष्ट्रपति च्यांग कैशेक के नेतृत्व में सभी विघ्न-बाधाओं को पार करती हुई नये नये सुधार जारी करने में कृतकार्य हुई है। इस सम्बन्ध की उसकी सारी कार्रवाइयों का विवरण यथासमय समाचार-पत्रों में प्रकाशित होता रहा है। हाल में उसके जेल-सम्बन्धी सुधार के सत्प्रयत्न का विवरण समाचार-पत्रों में छपा है। इस सम्बन्ध में अध्यापक चिंग यूयेन ने हाल में लन्दन में एक बड़ा मनोरंजक व्याख्यान किया है। अध्यापक महोदय पेकिंग के यूचिंग मिशनरी विश्वविद्यालय में समाज-शास्त्र के अध्यापक हैं। जेल की वास्तविक अवस्था का ज्ञान प्राप्त करने के लिए आपने जेल जाकर बन्दीजीवन तक व्यतीत किया है। चीनी जेलों के सुधार के सम्बन्ध में आपने कहा है—

'इस शताब्दी के आरम्भ में वाशिंग्टन के जेल-सुधार-सम्मेलन में चीन के दो प्रतिनिधि गये थे। उन्होंने अमरीका तथा योरप के जेलों की स्थिति देखकर जो रिपोर्ट लौटने के बाद दी उसी के कारण चीन में इस विचार ने जड़ जमाई कि जेल ऐसे होने चाहिए जहाँ क़ैदी केवल सुरक्षित रक्खे ही न जा सकें, वरन उनका सुधार भी किया जा सके। इसके बाद तुरन्त चीन में जेल-सुधार-आन्दोलन आरम्भ हुआ और विभिन्न स्थानों में ७१ नये जेल बनाये गये। इन जेलों का नाम पहले माडल जेल रक्खा गया, पर बाद में अनुभव हुआ कि कोई जेल माडल नहीं हो सकता, कारण विचारों की प्रगति के साथ साथ जेलों में भी बराबर सुधार करने की आवश्यकता पड़ेगी। गृह-युद्ध समाप्त हो जाने के बाद इन नये जेलों के निरीक्षण के लिए पृथक् जेल-विभाग बनाया गया और ६ मास के बाद राष्ट्रीय जेल-कांग्रेस की गई जो बड़ी सफल रही।

'इन जेलों के लिए प्रायः वैसे ही नियम बनाये गये जैसे अन्य देशों के जेलों में हैं। प्रत्येक जेल में, फिर वह कितना ही छोटा क्यों न हो, एक डाक्टर के रहने की व्यवस्था थी। इसके कामों में एक यह भी था कि वह .क़ैदियों को मिलनेवाले भोजन की देखभाल करे। २० वर्ष से कम उम्र के .क़ैदियों को प्रतिदिन दो घंटे पढ़ाने का प्रबन्ध था। चीन के विभिन्न धर्मों के प्रतिनिधियोंद्वारा विभिन्न धर्मावलम्बी .क़ैदियों को धार्मिक शिक्षा दिलाने की व्यवस्था की गई। प्रति रविवार को कोई भी अधिकारी व्यक्ति .क़ैदियों को धार्मिक शिक्षा देने के लिए आ सकता था। पीछे इन धर्मशिक्षकों की संख्या इतनी अधिक होने लगी कि केवल रविवार को सबको मौक़ा नहीं मिल सकता था और उनके लिए दूसरे दिन निश्चित करने पड़ते थे।

'बहुत से जेलख़ानों में .क़ैदियों को मज़दूरी भी दी जाती है। जेलों का भोजन वैसा ही होता है जैसा

साधारण लोग बाहर पाते हैं। और बहुत कम .क़ैदी भागने की कोशिश करते हैं। प्रायः क़ैदी जाड़े के दिनों में छूटने से बहुत घबराते हैं। पेकिन के बहुत से आदमी तो रोज़ी कमाना बहुत मुश्किल देखकर जाड़ों में जेल में आ जाते हैं।

'स्त्रियों के जेलख़ानों का सारा प्रबन्ध स्त्री कर्मचारियों के हाथ में रहता है और स्त्री .क़ैदियों को बहुत थोड़ा काम करना पड़ता है। स्त्रियों को पुरुषों की अपेक्षा बहुत अधिक छूट मिलती है, जब संभव होता है वे छोड़ दी जाती हैं।'

बड़े बड़े अपराधों के सम्बन्ध में चीन का क्या दण्ड-विधान है, इसका भी अध्यापक महोदय ने अपने भाषण में उल्लेख किया है आप कहते हैं—

वहाँ लोगों को प्रायः फाँसी नहीं दी जाती। यदि कोई अपने माता पिता का .ख़ून करता है तो वह ज़रूर फाँसी पाता है बशर्ते कि यह साबित न हो जाय कि हत्या करने के समय वह पागल था। .ख़ून के साथ जब चोरी भी की जाती है तब कभी-कभी अपराधी को फाँसी दी जाती है। अन्यथा .ख़ून करने पर आजन्म कारावास की सज़ा दीजाती है, जिसका अर्थ १० वर्ष की क़ैद होता है। इसके बाद .क़ैदी छोड़ दिया जाता है। आजन्म .क़ैद की सज़ा पानेवालों को अच्छे चाल-चलन के लिए अकसर छूट भी दी जाती है—आधी सज़ा समाप्त होते होते वह छूट जाता है।

भगवान् करे, चीन का राष्ट्र इसी प्रकार उत्तरोत्तर उन्नति करे और उसके गौरव की वृद्धि हो।

## २—रूस की बिभीषिका

इसी अङ्क में अन्यत्र 'रूस की अग्नि-परीक्षा'-शीर्षक एक लेख प्रकाशित हुआ है। उसमें रूस की बोल्शेविक सरकार के पञ्च वार्षिक कार्यक्रम का उल्लेख हुआ है। उसके इस कार्यक्रम से वहाँ के प्रजा-जन कहाँ तक सन्तुष्ट हैं, यह बात तो अधिकार-पूर्वक नहीं कही जा सकती है, किन्तु मास्को में जो षड्यन्त्र का मुक़द्दमा अभी उस दिन समाप्त हुआ है और जिसके निर्णय के अनुसार कतिपय प्रोफ़ेसरों तथा इंजीनियरों को गोली मार देने तथा आजन्म कारावद्ध करने की सज़ा दी गई है उसका विवरण पढ़ने से प्रकट होता है कि साधारण जन रूसी सरकार से सन्तुष्ट नहीं हैं और उनमें से एक दल उसे अधिकारच्युत कर नई लोकप्रिय सरकार स्थापित करना चाहता है। चाहे जो हो, वर्तमान रूसी सरकार क्रान्ति की सरकार है और उसका जीवन क्रान्ति का जीवन है। यही कारण है कि न तो वह रूस में लोकप्रिय हो सकी और न रूस के बाहर किसी अन्य देश में। इसके लोकप्रिय न होने का मूलकारण है इसकी अभिनव क्रान्ति की भावना। क्योंकि बोल्शेविकों ने जो कुछ अपने देश में किया है वही वे संसार के अन्य देशों में भी होते देखना चाहते हैं। यही नहीं, इसके लिए वे तरह तरह के षड्यन्त्र करते रहते हैं और उनका यह कार्य सर्वथा निन्द्य है। इस सम्बन्ध में उन्होंने अब तक जितने प्रयत्न किये हैं उनका परिणाम कहीं अभिनन्दनीय नहीं हुआ। इतना ज़रूर हुआ कि व्यर्थ में अशान्ति का ही सूत्रपात हुआ। इसका सबसे स्पष्ट उदाहरण चीन है। वहाँ इनके षड्यन्त्रों से जो मारकाट मच गई थी तथा इस समय भी मची हुई है उससे चीन की अपार हानि हुई है। परन्तु रूस के बोल्शेविकों को इसकी परवा नहीं। वे तो एक चीन क्या, एशिया के सभी देशों में नहीं संसार भर में अपने यहाँ की सी क्रान्ति मचवाना चाहते हैं। हमारे भारत के लिए भी उनका एक कार्य-क्रम अलग ही बना हुआ बताया जाता है। इस कार्य-क्रम के अनुसार वे भारत में अधर्म का राज्य क़ायम करवाना चाहते हैं। इसके अनुसार जातिपाति तथा जाति-सम्बन्धी अधिकार तोड़ दिये जायँगे, सबकी सम्पत्ति हड़प ली जायगी, ज़मींदारों तथा राजे, महाराजे न रहने पायेंगे, मठ-मन्दिर तोड़ दिये जायँगे और न मालूम क्या क्या न किया जायगा। बोल्शेविकों की भारत-सम्बन्धी क्रान्ति की योजना भारत को ऐसी ही न्यामतें देने का वादा करती है। परन्तु धर्मप्राण भारत तो उन्हें दूर ही से नमस्कार करेगा। इस भावी विभीषिका से भारत पहले से ही सावधान है।

## ३—मौलाना मुहम्मद अली का देहावसान

मुसलमानों के प्रसिद्ध नेता मौलाना मुहम्मद अली का लन्दन में ४ जनवरी को देहान्त हो गया। आप राउंडटेबल कान्फ़रेंस के प्रतिनिधि होकर लन्दन गये थे। आपकी मृत्यु से भारत का एक तेजस्वी नेता उठ गया। आप कट्टर मुसलमान होते हुए भी एक खरे राष्ट्र-वादी नेता थे। जहाँ आपने मुसलमानों के जगाने का काम किया, वहाँ आपने देश की भी पूरी सेवा की है। आप निर्भीक वाग्मी और प्रखर लेखक थे। आपकी मृत्यु से देश की वास्तव में क्षति हुई है।

मौलाना मुहम्मद अली का जन्म सन् १८७८ में हुआ था। शैशवावस्था में ही आप पितृहीन हो गये। उस समय आपके बड़े भाई मौलाना शौकत अली भी दो ही वर्ष के थे। इसलिए उनके लालन-पालन का भार उनकी सुप्रसिद्ध मा बी अम्मा पर पड़ा। प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् मुहम्मद अली अलीगढ़ के मुस्लिम कालेज में पढ़ने को भेज दिये गये। इसके पश्चात् आप इँग्लेंड की आक्सफ़ोर्ड-यूनीवर्सिटी में भर्ती होकर सन् १८६८ से सन् १६०२ तक शिक्षा पाते रहे। आई० सी० एस० की परीक्षा में आप अनुत्तीर्ण रहे।

भारत में लौटने पर मौलाना मुहम्मद अली रामपुर-रियासत के चीफ़ एजूकेशनल अफ़सर नियुक्त हुए और १ साल के बाद बड़ौदा-राज्य में अफ़ीम-विभाग के उच्च अधिकारी हो गये। आपने वहाँ १६०४ से १६१० तक नौकरी की। इसके बाद सन् १६११ में आप सार्वजनिक क्षेत्र में अवतीर्ण हुए और कलकत्ते से 'कामरेड' नामक साप्ताहिक पत्र प्रकाशित करना शुरू किया। इस पत्र के द्वारा आपने मुसलमानों की बड़ी सेवा की। फिर जब योरपीय महायुद्ध छिड़ गया तब मौलाना के कुछ प्रकाशित लेख गवर्नमेंट को राजविद्रोहात्मक मालूम पड़े, अतएव १६१५ में दोनों भाई नज़रबन्द कर दिये गये। मांटेगू-चेम्सफ़ोर्ड-रिफ़ार्म स्कीम के प्रारम्भ में जब राज-नैतिक क़ैदियों को क्षमा प्रदान की गई तब आप लोग बैतूल-जेल से मुक्त किये गये। आलइण्डिया मुस्लिम लीग की स्थापना आपने ही की थी।

असहयोग-काल में मौलाना मुहम्मद अली ने महात्माजी का पूरा साथ दिया था। १४ सितम्बर सन् १६२१ को आप विजगापट्टम में गिरफ़्तार कर लिये गये। कराँची के मुक़द्दमे में आपको दो साल की कड़ी क़ैद की सज़ा हुई। कारावास से मुक्त होने पर आप सन् १६२३ में कोकोनाडा में होनेवाली कांग्रेस के सभा-पति चुने गये। मदरास-कांग्रेस के बाद आप कांग्रेस से एक-दम अलग हो गये। वर्तमान सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन में आपने भाग नहीं लिया था। इन दिनों आप मुसलमानों के हित-रक्षा के आन्दोलन में ही निरत रहे।

लन्दन में आपकी मृत्यु के समय आपकी स्त्री, आपकी लड़की, मौलाना शौकत अली, तथा इनके दो पुत्र उप-स्थित थे। मौलाना का शव लन्दन से सरकार-द्वारा लाया जाकर उनके प्रसिद्ध तीर्थस्थान जेरूसलेम में ख़लीफ़ा उमर के मक़बरे में दफ़नाया गया है। भगवान् दिवंगत आत्मा को शान्ति प्रदान करे।

## ४—दिसम्बर का पिछला सप्ताह

दिसम्बर का पिछला सप्ताह इधर कई वर्षों से राष्ट्रीय सप्ताह कहलाने लगा था। इन दिनों बड़े दिन की छुट्टी में राष्ट्रीय महासभा के सिवा अन्य अनेक सभा-समाजों के भी जल्से होते थे। इस कारण इस अवसर पर देश में बड़ी चहल-पहल हो जाती थी। परन्तु पिछली लाहौर की कांग्रेस में यह निश्चय हुआ था कि भविष्य में राष्ट्रीय महासभा के जलसे दिसम्बर में न होकर फ़रवरी में हुआ करें, अतएव उसका जल्सा इस बार दिसम्बर के पिछले सप्ताह में नहीं किया गया। इससे यद्यपि कई एक महत्त्व-पूर्ण सभा-समाजों के इस अवसर पर जल्से हुए भी, तो भी पहले का सा नव जीवन इस बार नहीं दृष्टि-गोचर हुआ। दिसम्बर के महीने में जिन सभाओं के जल्से हुए उनमें 'अखिल-एशिया-शिक्षा-सम्मेलन' का विशेष महत्त्व रहा। इस सम्मेलन के सम्बन्ध में इसी अंक में एक सचित्र लेख प्रकाशित हुआ है। यह सम्मेलन अपने ढङ्ग का पहला सम्मेलन है। यद्यपि इसमें एशिया के सभी देशों के काफ़ी प्रतिनिधि नहीं शामिल हुए तथा मुसलमानी देशों का एक भी प्रतिनिधि नहीं आया,

तो भी निराश होने की ज़रूरत नहीं है। यह उसका पहला ही अधिवेशन था। भविष्य में यह त्रुटि न रहेगी और यह सम्मेलन क्रमशः अपने आप सङ्गठित होता जायगा।

इस शिक्षा-सम्मेलन की ही भाँति सफलतापूर्वक पटने में 'ओरियंटल कान्फ़रेंस' का जलसा हुआ है। इसके भी अधिवेशन में भारत के सभी प्रान्तों के प्रसिद्ध प्रसिद्ध विद्वान् एकत्र हुए थे। सभापति का आसन हिन्दी के अनुरागी पुरातत्त्वविद् रायबहादुर हीरालालजी ने ग्रहण किया था। आपने अपने भाषण में ऐतिहासिक खोज के सम्बन्ध में कई एक उपयोगी सूचनायें प्रकट कीं और इस बात पर अधिक ज़ोर दिया कि पुस्तकों के पुराने भाण्डारों की ख़ूब छानबीन होनी चाहिए।

परन्तु इस अधिवेशन में बम्बई के सर जीवनजी मोदी ने चन्द्रगुप्त और अशोक के ईरानी होने की चर्चा फिर छेड़ी है। मोदी साहब पारसी हैं और पुरातत्त्व के विद्वान् भी हैं। परन्तु आपने इस सम्बन्ध में जो बातें कही हैं, जिन कारणों से आपने चन्द्रगुप्त और अशोक को ईरानी सिद्ध किया है वे तो सबकी सब डाक्टर स्पूनर की दलीलें हैं। सन् १९१५ में डाक्टर साहब ने ही पहले-पहल इस सिद्धान्त की कल्पना की थी। पारसी-धन-कुबेर ताता की आर्थिक सहायता से आपने पाटलीपुत्र में खोदाई करवाई थी, जिसके परिणामस्वरूप आपने चन्द्र-गुप्त और अशोक को ईरानी सिद्ध किया था। परन्तु आपकी दलीलों की निस्सारता उसी समय सिद्ध कर दी गई थी। परन्तु शायद मोदी साहब डाक्टर स्पूनर को ठीक राह पर समझते हैं। आशा है, इतिहास के विद्वानों का इस महत्त्व-पूर्ण चर्चा की ओर ध्यान आकृष्ट होगा।

उपर्युक्त दो महत्त्व-पूर्ण संस्थाओं के सिवा इलाहाबाद में मुसलिम लीग, कराँची में हिन्दू-महासभा, जलगाँव में वर्णाश्रम-स्वराज्य-संघ के जल्से हुए हैं। मुस्लिम लीग के सभापति डाक्टर इक़बाल थे। हिन्दू-महासभा के सभा-पति भाई परमानन्द और वर्णाश्रम-स्वराज्य-संघ के सभा-पति नाथद्वारे के गोस्वामी दामोदरलालजी थे। मुस्लिम लीग और हिन्दू-सभा में साम्प्रदायिकता का ही ज़ोर रहा।

परन्तु इस नये वर्णाश्रम-स्वराज्य-संघ में एक नई बात हुई। इसमें अछूतों के लिए समुचित स्थान न दिये जाने से उन्हें सत्याग्रह का आश्रय लेना पड़ा, जिसके फल-स्वरूप उनका नेता तथा स्वयंसेवक पुलिस के द्वारा गिरि-फ़्तार किये गये। तब कहीं संघ के अधिवेशन की कार्य-वाही शुरू हो पाई। शायद इस संघ के कर्णधारों ने अछूतों को 'वर्णाश्रम' के अन्तर्गत न समझा हो। तभी तो यह नौबत पहुँची। ख़ैर, इस बार दिसम्बर का पिछला सप्ताह इसी प्रकार मनाया गया।

## ५—हिन्दी की पत्रिकायें

हिन्दी की 'पत्रिकायें'—पत्र नहीं—किस तरह निकल रही हैं, इसकी ओर हिन्दी के पाठकों का ध्यान आकृष्ट हुआ है। उनके सम्बन्ध में 'आज' में हाल में ही दो लेख निकले हैं। एक लेख के लेखक महोदय की यह शिकायत है कि मासिक पत्रिकायें ठीक समय पर नहीं निकलती हैं। आपकी यह शिकायत समुचित है। पत्रिकाओं के संचालकों को उन्हें ठीक समय पर निकालने का प्रयत्न करना चाहिए। दूसरे लेख के लेखक श्रीयुत लक्ष्मी-कान्त झा का कहना है कि हिन्दी की मासिक पत्रिकायें 'खिचड़ी-पन्थी' हैं। आप लिखते हैं—

'हिन्दी में पत्रिकाओं की संख्या बढ़ रही है। साधा-रणतः लोग इसे साहित्य की उन्नति का चिह्न समझते हैं पर वास्तविक उन्नति नहीं हो रही है। कारण, जितनी पत्रिकायें निकलती हैं उनमें कुछ भी विषय-भेद अथवा विशेषता नहीं दीखती। एक दो पत्रिकाओं को छोड़ बाक़ी सब पत्रिकाओं में क़रीब क़रीब एक ही प्रकार के विषय रहते हैं। हाँ, प्रत्येक पत्रिका में विषयों की भरमार रहती है। मैं नहीं समझ सकता कि एक या दो प्रधान सम्पादक अपने चार पाँच सहकारी सम्पादकों के साथ—जिन्हें प्रूफ़रीडरी भी करनी पड़ती है—इतने विषय के लेखों का अच्छी तरह सम्पादन कर सकते हैं। फल यह होता है कि मासिक पत्रिकाओं का मूल्य उनकी पृष्ठ-संख्या, चित्र-संख्या और कार्टून-संख्या पर निर्भर समझा जाता है।

'किसी मासिक पत्र को देखिए। उसमें छायावादी कविता से लेकर प्रहसन तक, दर्शन-शास्त्र से लेकर व्यङ्गविनोद तक, स्वास्थ्य-रक्षा से लेकर संगीत-स्वरलिपि तक, इतिहास से लेकर विज्ञान-वैचित्र्य तक, यात्रा और पर्यटन से लेकर समालोचना तक, मेस्मरिज़्म-विद्या से लेकर पाकशास्त्र तक, सभी विषय आप पायेंगे। इसका फल यह होता है कि आप किसी भी विषय पर अच्छे लेख जल्दी नहीं पाते।'

झा महाराज के ये अभियोग भी उपेक्षणीय नहीं हैं। परन्तु क्या हिन्दी इस अवस्था को पहुँच गई है जब उसमें भी उनके कथनानुसार 'विलायती और अमरीकन' पत्रिकाओं जैसी विषय-विशेष की पत्रिकायें अलग अलग प्रकाशित हो सकें? क्या योरप और अमरीका की तरह हिन्दी में ऐसा पाठक-समुदाय अस्तित्व में आ गया है जो विषय-विशेष की मासिक पत्रिकाओं को प्रश्रय दे सके। अनुभव तो यही प्रकट करता है कि अभी वैसी पत्रिकाओं के लिए हिन्दी में जगह नहीं है। यदि ऐसा होता तो कृषि, स्वास्थ्य, कविता, विज्ञान जैसे विषयों की पत्रिकायें निकल निकलकर अकाल में ही काल-कवलित न हो गई होतीं या ग्राहकों के अभाव में दान के आश्रय पर उन्हें अपना जीवन न बिताना पड़ता। ऐसी दशा में वर्तमान पत्रिकाओं की रूप-रेखा एकाएक परिवर्तन कर देना कहाँ तक उपयुक्त होगा, यह अधिकार-पूर्वक नहीं कहा जा सकता है। तो भी पाठकों की अपेक्षा इस ओर स्वयं पत्रिकाओं के संचालकों का भी ध्यान विशेषरूप से आकृष्ट रहता है। अन्त में यहाँ झा महोदय की तरह के विचार रखनेवाले हिन्दी-प्रेमियों से हमारा यह निवेदन है कि जो पत्रिकाएँ खिचड़ी पन्थी समझी गई हैं वे वैसी नहीं हैं। किन्तु वे अपनी अलग विशेषता या भिन्नता रखती हैं। और जिनमें वैसा स्पष्ट भेद अभी नहीं दिखाई दे रहा है उनमें भी समयान्तर में वह दिखाई देने लग जायगा। क्योंकि तभी वे फूल-फल सकेंगी।

## ६—राउंडटेबल कान्फ़रेंस

भारत के राजनैतिक इतिहास में लन्दन की राउंडटेबल कान्फ़रेंस का अपना अलग महत्त्वपूर्ण अध्याय होगा। यद्यपि भारत में डेढ़ सौ वर्ष से अँगरेज़ी अमलदारी क़ायम है और शासन-सम्बन्धी मसलों पर विचार करने के लिए अँगरेज़ी सरकार छोटे-बड़े अनेक जाँच कमीशन अब तक बैठा चुकी है, तथापि यह पहला ही अवसर है कि शासक वर्ग तथा प्रजावर्ग के अनुभवी प्रतिनिधि इतनी संख्या में इस प्रकार एक सभा में एकत्र हुए हों और उसमें भारतीय प्रतिनिधियों ने भारत के स्वाधिकारों की माँग व्यवस्थित रीति से उपस्थित की हो और अँगरेज़ी सरकार के प्रतिनिधियों ने उस पर मनोनियोग-पूर्वक विचार किया हो। जहाँ इस अवस्था के आ उपस्थित होने का एक कारण भारत का राजनैतिक आन्दोलन है, वहाँ वर्तमान साम्यवादी अँगरेज़-सरकार भी एक कारण है। यद्यपि मज़दूर-दल की सरकार का अँगरेज़ी पार्लियामेंट में बहुमत नहीं है, तो भी अपने जीवन के कुछ ही समय के भीतर उसने अनेक जटिल प्रश्नों के सुलझाने का यत्न ही नहीं किया है, किन्तु अपनी सहृदयता का भी पूरा परिचय दिया है। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में वह विश्वव्यापी शान्ति स्थापित करने के लिए संसार की दूसरी महाशक्तियों से सैन्य-बल के घटाने एवं उसी प्रकार की अन्य महत्त्वपूर्ण बातों का समझौता कर रही है तो इधर साम्राज्य में अधिक दृढ़ता लाने के लिए वह उपनिवेशों के साथ साथ साम्राज्य के अन्य देशों की विकट समस्याओं के हल करने को भी अग्रसर हुई है। उपर्युक्त राउंडटेबल कान्फ़रेंस इसी प्रसङ्ग का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। इस कान्फ़रेंस में अँगरेज़ी भारत के सभी धर्मों तथा वर्गों के प्रतिनिधि तो हैं ही, देशी राज्यों के भी प्रतिनिधि हैं। इन प्रतिनिधियों में से प्रायः सबके सब भारत के चुने हुए व्यक्ति हैं। इनमें अधिकांश नामी नामी राजनीतिज्ञ तथा प्रभावशाली नेता हैं। देश के इन नररत्नों ने भारत की स्वाधिकार-सम्बन्धी माँगों को जिस विवेचनात्मक ढङ्ग से उक्त सभा में उपस्थित किया है उसके लिए उनकी वहाँ भूरि भूरि प्रशंसा हुई है। अमरीका के संयुक्त-राज्यों के राजदूत ने तो यहाँ तक कहा है कि यदि कोई व्यक्ति इन भारतीय प्रतिनिधियों पर किसी तरह का दोषारोपण करेगा तो उसका यह काम राष्ट्रद्रोह

के समान होगा। इसमें सन्देह नहीं है कि इन प्रतिनिधियों ने भारत की परिस्थिति का स्पष्ट वर्णन किया है और अपनी माँगें भी उसी प्रकार स्पष्ट भाषा में उपस्थित की हैं। यदि मुसलमान प्रतिनिधि जातिगत समस्याओं पर अधिक ज़ोर न देते तो कान्फ़रेंस का परिणाम और भी अधिक स्पष्ट रूप में प्रकट हुआ होता। तो भी इस कान्फ़रेंस ने भारत को अपने लक्ष्य की प्राप्ति का मुख्य सूत्र प्रदान कर दिया है। यही इसका महत्त्व है। इस कान्फ़रेंस में जो विचार-विनिमय हुआ है उसीका यह परिणाम हुआ है कि इसकी समाप्ति पर प्रधान मन्त्री राम्से मैकडोनल्ड साहब ने बहुत अर्थ-गर्भित महत्त्वपूर्ण घोषणा की है। यह घोषणा साम्राज्य-सरकार की ओर से की गई है। वह इस प्रकार है—

"ब्रिटिश-सरकार का मत है कि भारत-शासन की ज़िम्मेवारी केन्द्रीय और प्रान्तीय व्यवस्थापक सभाओं को दी जाय, पर साथ ही परिवर्तन-काल के लिए कुछ ऐसे नियम बना दिये जायँ जिनसे कुछ ख़ास कर्तव्यों का पालन किया जाय तथा कुछ ख़ास परिस्थितियों का मुक़ाबिला किया जाय, तथा ऐसी गारंटियाँ भी दी जायँ जिन्हें अल्पसंख्यकवर्ग अपने राजनीतिक स्वत्वों और स्वातन्त्र्य की रक्षा के लिए आवश्यक समझते हैं। परिवर्तन-काल की आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए जो क़ानून बनाये जायँगे उनके सम्बन्ध में ब्रिटिश-सरकार प्रधानतया इस बात का ख़याल रक्खेगी कि संरक्षित अधिकारों की रचना ही इस प्रकार की जाय कि उनसे भारत नये शासन-विधान के ज़रिये पूर्ण उत्तरदायित्व प्राप्त कर सके और उसमें किसी प्रकार की बाधा न हो।

"ब्रिटिश-सरकार यह घोषणा करते समय भी जानती है कि ऐसे शासन की सफलता के लिए कतिपय आवश्यक बातों का अन्तिम निर्णय अभी तक नहीं हुआ है। तथापि उसे आशा है कि यहाँ अब तक जो काम किया जा चुका है उससे उक्त बातें यहाँ तक पहुँच गई हैं कि इस घोषणा के बाद और बात-चीत करने से उनका निपटारा हो जायगा।

"ब्रिटिश-सरकार ने इस बात को नोट कर लिया है कि यहाँ अब तक जो बात-चीत हुई है उसका आधारस्तम्भ यह है तथा इसे सब दलों ने मान लिया है कि केन्द्रीय सरकार ब्रिटिश-भारत और भारतीय रियासतों की संयुक्त शक्ति हो तथा ये केन्द्र की द्विअङ्गक व्यवस्थापक-संस्था में सम्मिलित हों। इस सामूहिक सरकार का प्रकृतरूप राजाओं और ब्रिटिश-भारत के प्रतिनिधियों से सलाह करके ठहराया जायगा। उस सरकार के ज़िम्मे कौन कौन विषय किये जायँगे, इस बात पर भी और विचार करना पड़ेगा, क्योंकि उस सरकार का सम्बन्ध रियासतों की उन्हीं बातों से होगा जिन्हें राजा लोग, समूह में प्रवेश करते समय, सामूहिक सरकार के ज़िम्मे कर देंगे।" (आज से)

इस घोषणा से इस कान्फ़रेन्स की समग्र कार्यवाही को एक सङ्गत रूप प्राप्त हो जाता है और यह प्रकट हो जाता है कि इस महत्त्वपूर्ण सभा का क्या सुपरिणाम होगा। प्रधान मन्त्री ने भावुकता के साथ स्पष्ट शब्दों में स्वीकार कर लिया है कि भारत उत्तरदायित्वपूर्ण शासन का सर्वथा अधिकारी है। तथास्तु।

## ७—सूचना

हिन्दुस्तानी एकेडेमी, संयुक्त प्रान्त, प्रयाग का वार्षिक सम्मेलन आगामी फ़रवरी १९३१ में होना निश्चय हुआ है।

सम्मेलन का उद्देश यह है कि हिन्दी और उर्दू के विद्वान् एकत्र होकर अपने विचारों का विनिमय तथा इन भाषाओं के आधुनिक साहित्य और भाषा-सम्बन्धी प्रश्नों पर विचार करें।

यह भी निश्चय हुआ है कि भिन्न-भिन्न विषयों पर विद्वानों से लेख माँगे जायँ और उनसे यह प्रार्थना की जाय कि वे सम्मेलन के अवसर पर उपस्थित होकर अपने लेखों को पढ़ें अथवा किसी निश्चित विषय पर व्याख्यान दें।

लेखों और व्याख्यानों के लिए ये विषय चुने गये हैं—

१. समालोचना
२. साहित्य का इतिहास
३. कला
४. भाषाविज्ञान
५. इतिहास और पुरातत्त्व
६. दर्शन और विज्ञान
७. एकेडेमी के उद्देश

लेखों तथा व्याख्यानों का विवरण एकेडेमी की ओर से पुस्तकरूप में प्रकाशित किया जायगा।

इसके अतिरिक्त यह भी प्रबन्ध किया गया है कि एकेडेमी की ओर से प्रतिवर्ष होनेवाले व्याख्यान भी इसी अवसर पर दिये जायँ।

जो विद्वान् इस अवसर पर अपने निबंध पढ़ना चाहें उनसे अनुरोध है कि वे अपने निबंध का संक्षेप एकेडेमी के दफ़्र में १५ जनवरी १९३१ तक अवश्य भेज दें जिसमें उसका विवरण यथासमय प्रकाशित हो सके।

सब भाषा-प्रेमियों से अनुरोध है कि इस सम्मेलन में उपस्थित होकर और इसमें भाग लेकर हमें अनुगृहीत करें।

विस्तृत कार्य-क्रम बाद में प्रकाशित किया जायगा।

ताराचन्द एम० ए० डी० फ़िल० आक्सन
१२ दिसम्बर १९३० जेनरेल सेक्रेटरी
हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग

## ८—भूल-सुधार

( १ )

जनवरी की सरस्वती में 'भविष्य की भावना' शीर्षक लेख पृष्ठ १६ कालम दूसरे की १४ वीं लाइन इस तरह पढ़ी जाय—'कि मनुष्य सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ नहीं है, अलौकिक है।'

( २ )

दिसम्बर की सरस्वती में 'महा-पुरुष कौन हैं' शीर्षक एक कविता छपी है। उसके मेकप में ग़लती हो गई है। उसमें तीनों मन्दाक्रान्ता के बाद पहले कुण्डलिया के ऊपर के शिखरणी, भुजंगी और सरसी छन्द पढ़े जायँ।

## ९—चित्र-परिचय

(१) मन्दोदरी और सीता—इस भावपूर्ण चित्र का चित्रण श्रीयुत उपेन्द्रचन्द्र घोष दस्तीदार ने किया है। इसकी रचना रामायण की एक घटनाविशेष पर हुई है। एक बार मन्दोदरी ने अपने वार्तालाप में सीताजी को डाँटा-डपटा था। उनकी उसी अवस्था का चित्रण चित्रकार महोदय ने अपने इस चित्र में किया है। मन्दोदरी वृक्ष के चबूतरे पर बैठी सीताजी को डाँट-फटकार रही है और बेचारी सीताजी सिर झुकाये उसका अन्याय सहन कर रही हैं। इसी भाव को छविमान करने में चित्रकार महोदय ने सफलता प्राप्त की है।

(२) अहिरावण-वध—यह चित्र भी दस्तीदार बाबू की ही रचना है। रावण के कहने पर पाताललोकवासी अहिरावण राम और लक्ष्मण को उनकी सेना से हर ले गया था और अपनी नगरी में ले जाकर उनका भगवती काली के आगे बलिदान कर देने का उपक्रम कर रहा था। परन्तु इसी बीच में हनूमानजी ने वहाँ पहुँचकर उसी का बलिदान कर दिया। इस चित्र में यही दृश्य दिखलाया गया है।

(३) दानलीला—और (४) सङ्कीर्तन—ये दोनों चित्र प्रसिद्ध चित्रकार श्रीयुत असितकुमार हल्दार की रचनायें हैं। एक में कृष्णजी की अनोखी लीलाओं में से दान-लीला का चित्रण किया गया है और दूसरे में श्रीचैतन्यदेव का स्वर्गीय सुख का नर्तन है। दोनों ही चित्र बहुत ही सुकुमार भाव प्रकट करते हैं।

# नव प्रकाशित पुस्तकें

## अँगरेज़ी भाषा की शिक्षा

(ई० एस० ओकली, एम० ए०)

यह अँगरेज़ी भाषा का एक प्रकार का व्याकरण है। अँगरेज़ी व्याकरण की प्रायः सभी बातें इसमें विस्तार-पूर्वक समझाई गई हैं, साथ ही अँगरेज़ी शब्दों और मुहाविरों का संग्रह तथा उनका प्रयोग भी दिया गया है। इस पुस्तक की सहायता से अँगरेज़ी लिखने का अभ्यास अच्छी तरह से किया जा सकता है। मूल्य २) दो रुपये।

## प्रबन्धप्रकाशः

(डाक्टर मंगलदेव शास्त्री, एम० ए०, डी० फ़िल०)

इस पुस्तक में संस्कृत में निबन्ध लिखने की विधि बतलाई गई है। साथ ही कई उत्तमोत्तम निबन्धों का संग्रह भी किया गया है। संस्कृत के सुप्रसिद्ध विद्वानों तथा अध्यापकों ने इसकी उत्तमता की मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा की है। संस्कृत-कालेज बनारस की मध्यमा परीक्षा के विद्यार्थियों के लिए यह पुस्तक बहुत उपयोगी है। मूल्य १) एक रुपया।

## पञ्चतन्त्रम् ( पञ्चमं तन्त्रम् )

( श्री हरिहर शास्त्री )

यह श्री विष्णुशर्मा-द्वारा सङ्कलित पञ्चतन्त्र का पाँचवाँ तन्त्र है। शास्त्रीजी ने पुस्तक के आदि में मूलग्रन्थ प्रकाशित किया है और बाद को छब्बीस पृष्ठों में संस्कृत में टिप्पणियाँ प्रकाशित की हैं, जिनमें आवश्यकतानुसार बड़े बड़े शब्दों के समास, प्रतिशब्द, श्लोकों तथा कथाओं के सारांश आदि दिये गये हैं। अन्त में ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद भी दिया गया है। पुस्तक संस्कृत-कालेज काशी की प्रथमा परीक्षा के विद्यार्थियों के लिए उपयोगी है। मूल्य ॥) आठ आने।

## प्राणायामविज्ञान और कला

(पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल एम० ए०, एल-एल० बी०)

यह पुस्तक डाक्टर शोजा-बुरो ओटेव के 'दि साइंस एंड आर्ट आफ़ डीप ब्रीदिंग' का हिन्दी अनुवाद है। इसके मूललेखक एक सुप्रसिद्ध चिकित्सक थे। प्राणायाम के विषय में लगातार बहुत दिनों तक प्रयोग एवं मनन करके उन्होंने जो कुछ अनुभव किया है, उसी का इसमें संग्रह है। योरप की कई भाषाओं में इसका अनुवाद प्रकाशित हो चुका है। मूल्य ॥।) बारह आने।

## नीरोग कन्या

( श्रीयुत सन्तराम बी० ए० )

स्वास्थ्य-रक्षा के लिए जिन जिन बातों का जानना आवश्यक है, उन सब पर इस पुस्तक में विशद रूप से विवेचन किया गया है। पुस्तक स्त्रियों—विशेषतः छात्राओं के लिए बहुत उपयोगी है। मूल्य १) रु०।

**मैनेजर (बुकडिपो), इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग**

*Printed and Published by K. Mittra at The Indian Press, Ltd., Allahabad.*

# सरस्वती

सचित्र

## मासिक पत्रिका

भाग १६, खण्ड २

जूलाई—दिसंबर

१६१५

सम्पादक

महावीरप्रसाद द्विवेदी

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, प्रयाग

वार्षिक मूल्य चार रुपये

# लेख-सूची

---

# चित्र-सूची।

## रङ्गीन चित्र।



## सादे चित्र

| | |
|---|---|
| रङ्गीन चित्र | १२ |
| सादे चित्र | ७३ |
| कुल | ८५ |

Santa Basawa Sastri

Jangamwadi

Jalihal

स्वा० ना भगवानंदेश

योग पीठ

में पहुँच कर जगन्नाथ प्रसाद [illegible]

बकसर




वियोगिनी।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

# सरस्वती

सचित्र मासिक पत्रिका ।

भाग १६, खण्ड २ ]  दिसम्बर १९१५—मार्गशीर्ष १९७२  [ संख्या ६, पूर्ण संख्या १९२


## वैदिक प्रार्थना ।

यजुर्वेद में एक मन्त्र है । वह कवित्वपूर्ण है और प्रार्थनात्मक है । उसकी नक़ल नीचे दी जाती है—

"आब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम् ।
आराष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायताम् ।
दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः ।
सभेयो युवाऽस्य यजमानस्य वीरो जायताम् ।
निकामे निकामे पर्जन्यो वर्षतु ।
फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्ताम् ।
योगक्षेमो नः कल्पताम्" ।

परलोकवासी राय देवीप्रसादजी से एक बार मैंने प्रार्थना की कि आप इसका भावार्थ हिन्दी में लिख दीजिए । राय साहब ने मेरी इच्छा-पूर्त्ति कर दी । साथ ही उन्होंने इस मन्त्र का भावार्थ अँगरेज़ी-पद्य में भी लिख दिया । हिन्दी-अनुवाद इस प्रकार है—

हे जगदीश दयाल ब्रह्म प्रभु ! सुनिए विनय हमारी—
हों ब्राह्मण उत्पन्न देश में धर्म-कर्म-व्रत-धारी ।
क्षत्रिय हों रणधीर महारथ धनुर्व्वेद-अधिकारी ।
धेनु दूध वाली हों सुन्दर, वृषभ तुङ्ग बलधारी ।
हों तुरङ्ग गति चपल, अङ्गना हों स्वरूप-गुणवाली ।
विजयी रथी पुत्र जनपद के रत्न तेज-बल-शाली ।
जबहीं जब जग करे कामना जलधर जल बरसावें ।
फलें पकें बहु-सुखद वनस्पति योग क्षेम सब पावें ।

अँगरेज़ी में किया गया अनुवाद भी नीचे दिया जाता है—

O Lord of Universe, O Brahman, kind,
We pray Thee humbly with devoted mind;
May country with such Brahmanas be filled,
As knowing Dharma, are in Karma skilled.

Full valorous Kshattriyas produce, of might,
And wielders of sharp Weapons, fam'd in Ride!
Produce milk-giving healthy cows; we long,
O Lord, for Powerful horses, tall and strong.

Let nation have good virtuous women all
Endow'd with Beauty, keen to Duty's call!
Bless us with sons, society's jewels bright;
Victorious and meritorious men of Light;

And, Lord, Whene'er may people Rains desire,
Let clouds pour down, O bounteous Devas' Sire!
May trees give ripe abundant fruits! And all our wants fulfil,
Protect our Acquisitions all; we humbly pray Thee still.

शूरजी वल्लभदास (बम्बई)

---

# भजनानन्दी पण्डित शम्भुदेव पाण्डेय।

पण्डित शम्भुदेव पाण्डेय बड़े भजनानन्दी और बड़े अच्छे गायक हैं। खेद है, आपका पूरा हाल मालूम नहीं। आपका चरित कीर्तनीय है। इसीसे आपके विषय में जो दो चार बातें मालूम हैं वही लिख कर सन्तोष करूँगा।

पाण्डेय जी के पूर्वज रायबरेली के रहने वाले थे। आपके पितामह का नाम पण्डित दीनानाथ तम्बूरे वाले था। तम्बूरा बजाने में उन्होंने बड़ा नाम पाया था। आपके पिता पण्डित पापालाल फ़ौज में जमादार थे। आप कान्यकुब्ज ब्राह्मण हैं। अब आप दक्षिण हैदराबाद में रहते हैं। आपके एक कन्या और दो पुत्र हैं। आप सांसारिक झंझटों से विरक्त से हो गये हैं। हरि-गुण-गान ही अब आपका एक मात्र व्यवसाय हो रहा है। पहले आप निज़ाम सरकार के यहाँ मुलाज़िम थे। पर मुलाज़िमत आप छोड़ बैठे हैं। अब आप ईश्वर ही के मुलाज़िम हैं।

पाण्डेय जी उर्दू बहुत अच्छी जानते हैं। संस्कृति से संस्कृत का भी कुछ ज्ञान हो गया है। आप बड़े प्रतिभाशाली हैं। गान-विद्या में तो आपकी प्रवीणता का कहना ही क्या है। सुनते हैं आपकी नानी ने आपको गाना सिखाने का आरम्भ कराया था। आप प्रायः अपने ही रचे हुए भजन और गीत गाते हैं। कभी कभी महात्मा निर्भयराम के रचे हुए पद भी आप गाते हैं। उन्हें आप अपना गुरु मानते हैं। उन्हीं की कविता का मनन करने से शायद आप के हृदय में वैराग्य उत्पन्न हुआ है।

पाण्डेय जी कई प्रकार के बाजे बजाते हैं। कविता भी आप कई प्रकार की भाषा में करते हैं। कोई कविता ख़ालिस उर्दू में, कोई ख़ालिस हिन्दी में, कोई हिन्दी-संस्कृत में। किसी किसी में एक चरण हिन्दी में है तो दूसरा उर्दू में। इनकी कई उर्दू-कवितायें बेनुक़्त हैं। कुछ कवितायें पढ़ते समय ओंठ से ओंठ नहीं लगते। कितनी ही कवितायें देखने में तो शृङ्गार-रस की मालूम होती हैं; पर उनके भीतर भक्ति और वेदान्त के भाव भरे हुए हैं। आपकी वेदान्त-विषयक कविता का एक नमूना नीचे दिया जाता है—

हर एक अरूप स्वरूप भये, हम भेप अनेक बनायेंगे क्यों?
गुमनाम के नाम अनन्त जपो, हम नाम को नाम धरायेंगे क्यों?
हम मिथ्या मद का मेट तिलक, हो शीतल चन्दन आप अलख;
कर मन का मनका फेरत हैं, फिर काठ की माल फिरायेंगे क्यों?
खटराग की आग सों देह तपे, बन त्याग वैराग के धाम बसे;
हम जोगी कुजोगी सुजोगी भये, संजोग से जोग हटायेंगे क्यों?
विश्वास की आँख पै स्वास भरे, विज्ञान सुज्ञान पै ध्यान धरे;
हम वेद अभेद सों बेध दिया, पुनि खेद में जीव फँसायेंगे क्यों?
आनन्द-तरङ्ग की गङ्ग बहै, गौरी सँग भङ्ग निसङ्ग पिये;
काया कैलाश में "शम्भु" बसै, हम काशी दर्शन जायँगे क्यों?

रामलीला आदि उत्सवों के अवसर पर बुलाने से आप प्रसन्नता-पूर्वक जाते हैं। संयुक्त-प्रान्त में भी आप कई बार गये हैं। आप रामलीला की तालीम बहुत अच्छी देते हैं। लीला-विषयक आपके कितने ही पद नाटकीय ढँग के हैं। जिस समय आप भक्ति-रस के आवेश में आ जाते हैं उस समय आपके मुख से धारा-प्रवाह भजन निकलते

चले जाते हैं। एक बार आपने रामजन्म से लेकर दशरथ की मृत्यु तक की कथा पर नये नये भजन गाकर सारी रात बिता दी। करुणा-रसात्मक गान सुनाकर श्रोताओं को रुला देना तो आपके बाँयें हाथ का खेल है। सुनते हैं, एक दफ़े आपने गान के प्रभाव से एक तोते को विकल कर दिया था।

पाण्डेय जी के सम्बन्ध में कई और अलौकिक घटनायें सुनी जाती हैं। एक दफ़े ये हैदराबाद से जगन्नाथ-यात्रा के लिए निकले। विरक्तों को आडम्बर से क्या काम? फटी हालत ही में ये धाराकोट पहुँचे। सुना, वहाँ के राजा साहब सङ्गीत के प्रेमी हैं। आप भी उनके दरबार में पहुँचे। पर आपकी सूरत-शकल कँगलों की सी देखकर आपका वहाँ आदर न हुआ। बिना गाना सुनाये ही आपको वहाँ से हट आना पड़ा। आपको इसका अफ़सोस रहा। जगदीश-यात्रा करके लौटने पर जब आप फिर उस स्थान पर पहुँचे तब आपको भूत-पूर्व घटना याद आ गई। आपने राज-भवन के सामने ही एक गृहस्थ के स्थान पर बैठ कर राग अलापना आरम्भ कर दिया। सुनने वाले दङ्ग रह गये। राजा साहब ने भी खिड़की से आपका आलाप सुना। वे बहुत खुश हुए। उन्होंने आपको बुलवाया। पर आपने जाने से इनकार कर दिया। इस पर एक दरबारी सज्जन भेजे गये। फिर भी शम्भुजी ने सूखा जवाब दिया। जब आपने सुना कि राजा साहब स्वयं ही आना चाहते हैं तब आपका आसन डिग गया। एक तो ब्राह्मण, दूसरे भक्त। क्यों न आप पिघल जायँ? अन्त को आप दरबार में पहुँचे और अपनी गान-विद्या से राजा साहब तथा अन्य उपस्थित लोगों को मुग्ध कर दिया। कुछ दिन तक आप वहाँ रहे और सादर बिदा किये गये।

हैदराबाद के पास कहीं दत्त टेकड़ी नाम की एक पहाड़ी है। वह देवस्थान है। वहाँ एक बार आप यात्रा के लिए गये। देखा तो लोग अवर्षण के कारण दुखी हैं। आपसे वहाँ वालों का कष्ट न देखा गया। आपने पाँच दिन तक वहाँ निराहार रह कर व्रत किया और वृष्टि के निमित्त ईश्वर से प्रार्थना की। आपकी प्रार्थना स्वीकृत हुई। छठे दिन खूब पानी बरसा। आपके व्रत का हाल सुन कर जो लोग आपकी निन्दा और हँसी करते थे वे भी, पीछे से, आपके भक्त बन गये। लोग आपसे ज्ञानोपदेश की प्रार्थना करने लगे। तब आपने अपनी ही बनाई हुई यह कविता अपने निन्दकों को गाकर सुनाई—

मैं आया हूँ अपना दीवाना, कोई कुछ कह दो कोई कुछ कहदो।
नादान हूँ या मैं हूँ दाना, " "
इस बात में गुज़री ज़ात मेरी, दिनरात में गई औक़ात मेरी,
वह चर्ख़ बना मैं काशाना, कोई कुछ०।
मनसूर को रुतबे यार मिला, शूली पै उसे दीदार मिला,
जाना तो अनल हक़ वो माना, कोई कुछ०।
सर पाकर सौदा सर पै लिया, सर करके जहाँ फिर सर को दिया,
वह मर्द बना मैं मरदाना, कोई कुछ०।
मैं होश में था बेहोश पड़ा, हुशयारी ने मुझको होश दिया,
वह मस्त बना मैं मस्ताना, कोई कुछ०।
ग़ैरत ने तक़ाज़ा मुझ से किया, ग़ैरों से दिल को फेर दिया,
वह शमा बना मैं परवाना, कोई कुछ०।
पत्थर सा कलेजा चाक किया, जौहर अपना दिखला ही दिया,
खुद आप हुआ मैं बेगाना, कोई कुछ०।

इसे सुनाकर आप वहाँ से चले आये। इस समय आप निज़ाम के हैदराबाद ही में निवास कर रहे हैं।

गणेशराम मिश्र।

---

## मिश्र-बन्धुविनोद।

### समालोचना।

इस पुस्तक में डबल क्राउन १६ पेजी आकार के १० पृष्ठों की अँगरेज़ी भूमिका के सिवा ४२४ पृष्ठ हैं, जिनमें १०४ में हिन्दी भूमिका है। यह ऐण्टिक पेपर पर छपी है और छपाई अच्छी है। यद्यपि पुस्तक में हिन्दी-साहित्य का इतिहास लिखने की चेष्टा की गई है तथापि इसका नाम मिश्र-बन्धु-

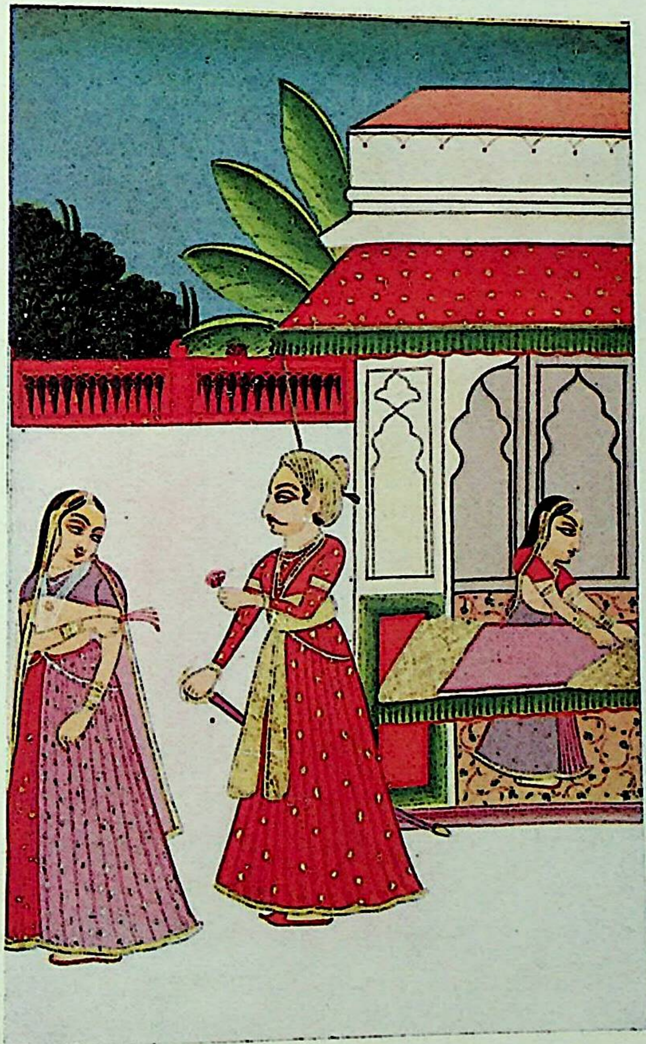
विनोद रखना बहुत ही उचित हुआ है। हिन्दी-साहित्य के इतिहास के सम्बन्ध में दो पुस्तकें हमने और देखी हैं। एक का नाम शिवसिंहसरोज और दूसरी का Modern Vernacular Literature of Hindustan है। इनके नामों से ही पाठक समझ सकते हैं कि पहली हिन्दी में और दूसरी अँगरेज़ी में है। हिन्दी-पुस्तक के लेखक ठाकुर शिवसिंह सेंगर और अँगरेज़ी के डा० ग्रियर्सन हैं। ग्रियर्सन साहब की पुस्तक का मूल आधार भी शिवसिंह-सरोज ही है, पर वह बहुत अच्छे ढङ्ग से लिखी गई है। इसलिए नई पद्धति से पढ़े लिखे लोगों को कवियों के विषय में कुछ जानने के लिए अँगरेज़ी की पुस्तक ही देखने में सुभीता होता है। जो अँगरेज़ी नहीं जानते और किसी कवि के सम्बन्ध में कुछ जानना चाहते हैं उन्हें शिवसिंहसरोज की शरण लेनी पड़ती है। परन्तु शिवसिंहसरोज की प्राचीन शैली के कारण उससे लाभ उठाने में समय समय पर लोग असमर्थ हो जाते हैं। ऐसी दशा में नवीन शैली पर लिखी हुई पुस्तक की बड़ी आवश्यकता थी। मिश्रबन्धुओं ने उसे पूर्ण करने का जो स्तुत्य प्रयत्न किया है इससे वे हिन्दी-भाषियों के धन्यवाद के पात्र हैं। इसमें उन्हें ऐसे साधनों से भी सहायता मिली है जो ठाकुर शिवसिंह और डा० ग्रियर्सन को भी उपलब्ध न थे। इस प्रयत्न में वे कहाँ तक सफलमनोरथ हुए हैं यही विचारणीय है।

समालोच्य पुस्तक तीन प्रकरणों में विभक्त है—एक संक्षिप्त इतिहास-प्रकरण, दूसरा आदि प्रकरण और तीसरा प्रौढ़ माध्यमिक प्रकरण। किसी भाषा के साहित्य का इतिहास लिखने के पहले उसका भी संक्षिप्त इतिहास लिखना चाहिए, जिससे पाठकों को उसके विषय में कुछ मालूम हो जाय। यह सन्तोष की बात है कि इस पुस्तक में हिन्दी की उत्पत्ति के विषय में कुछ लिखा गया है, पर अत्यन्त संक्षेप में है और प्रारम्भ में नहीं, मध्य में है। हिन्दी की उत्पत्ति बताने में लेखकों ने डा० ग्रियर्सन से सहायता ली है, पर स्वयं उसके अनुसन्धान का कष्ट नहीं उठाया है। इससे जो भूलें ग्रियर्सन साहब ने की हैं वे ही विनोद-लेखक भी कर बैठे हैं। इसमें सन्देह नहीं कि हिन्दू और ईरानी आर्य्य किसी समय एक ही स्थान में रहते और एक ही भाषा बोलते थे। पर वह परजिक या मीडिक थी, इसका प्रमाण कुछ भी नहीं मिलता। इसके विपरीत ऋग्वेद की प्राचीनतम ऋचाओं से पुराना ग्रन्थ न मिलने के कारण यह अनुमान कर लेना अनुचित न होगा कि, ईरानी और हिन्दू आर्य्यों की भाषा ऋग्वेद की ऋचाओं से मिलती जुलती थी। अवस्ता की भाषा से ऋग्वेद की भाषा की और वर्त्तमान फ़ारसी और संस्कृत की तुलना करने से यह सिद्ध होता है कि दोनों किसी एक ही भाषा से उत्पन्न हुई हैं। भारत के आदिम निवासियों की भाषा से आर्य्यों की भाषा के मिलने और फिर आर्य्यों की भाषा का संस्कार होकर व्याकरण द्वारा नियमित और संस्कृत होने और पाली के जन्म आदि की जो बातें विनोद-लेखकों ने लिखी हैं विलक्षण जान पड़ती हैं। बड़े ही खेद की बात है कि ऐसे गहन विषय पर जैसा विचार होना उचित था नहीं किया गया।

हमारी समझ से आर्य्यों की प्राचीन भाषा दो भागों में विभक्त थी—एक साहित्य की भाषा थी, दूसरी बोलचाल की जो साधारणतः वेदभाषा और लोकभाषा कहाती थी। साहित्य की भाषा का संस्कार हुआ तब वह संस्कृत कहाई। दूसरी प्राकृत नाम से प्रसिद्ध हुई, जिसे सिद्ध हेमचन्द्र ने अपनी प्राकृताष्टाध्यायी में "आर्ष प्राकृत" कहा है। "ऋषीणां भाषा आर्षं"—हेमचन्द्र के इस अर्थ से हमारे कथन की पुष्टि होती है। आर्ष-प्राकृत का रूपान्तर ही गाथा है जिसमें ललितविस्तर आदि कई बौद्ध ग्रन्थ हैं। यह बिलकुल बेतुकी बात है कि "संस्कृत पुरानी प्राकृत में घुसने लगी और इस प्रकार पुरानी प्राकृत बढ़ते बढ़ते मध्यवर्त्तिनी प्राकृत अर्थात् पाली भाषा हो गई।" वास्तव में पाली भाषा मागधी प्राकृत का रूपान्तर मात्र है। क्योंकि बौद्ध लोग मागधी के विषय में कहा करते हैं—

> सा मागधी मूल भासा
> नरा या आदिकप्पिका।
> ब्राह्मणा चास्सुतालापा
> संबुद्धा चापि भासरे।

अर्थात् मागधी ही मूल भाषा है जिसे आदिकल्पिका में ब्राह्मण और बौद्ध बोलते थे। यद्यपि उद्धृत श्लोक से यह जान पड़ता है कि मागधी ही सब भाषाओं की जननी है, पर इसे कोई बुद्धिमान् स्वीकार नहीं कर सकता। बौद्धों के समय में पाली सर्वश्रेष्ठ प्राकृत समझी जाती थी, पर वर-



## मार्गशीर्ष ।

मासन में हरिवंश कहत यामें सब कोऊ ।<br>
स्वारथ परमारथ न देत भारतमय दोऊ ॥<br>
केशव सरिता सरित फूल फूले सुगन्ध गुरु ।<br>
कूजत कुल कलहंस कलित कलहंसिनि के सुर ॥<br>
दिन परम नरम शीत न गरम करम करम यह पाइयतु ।<br>
करु प्राणनाथ परदेश को मारगशिर मारग न चितु ॥

इंडियन प्रेस, प्रयाग ।

हवि ने जब प्राकृतप्रकाश नामक व्याकरण बनाया तब महाराष्ट्री प्राकृत का प्राधान्य था। अनन्तर अपभ्रंश, शौरसेनी, अर्द्धमागधी और नागर प्राकृतों का समय आया और फिर इनसे पञ्जाबी, व्रजभाषा, खड़ी बोली आदि की उत्पत्ति हुई।

बङ्गाल की भाषा बँगला कहाती है, पर लेखकों ने अँगरेज़ी की नक़ल कर उसे "बङ्गाली" कहा है, जो अँगरेज़ी पढ़े लिखों के सिवा कोई नहीं समझ सकता। एक जगह तो मिश्रबन्धुओं ने यह लिख कर कमाल कर दिया है—"यह नहीं कहा जा सकता कि अमुक स्थान से अवधी भाषा समाप्त होती है और मैथिल का प्रारम्भ होता है।" मानो अवधी के बाद ही मैथिली बोली प्रारम्भ होती है। पर यह बात नहीं है; बल्कि मैथिली और अवधी के बीच में भोजपुरी और मगही बोलियाँ हैं। इसी प्रकार दूसरी बड़ी भारी भूल कुमारपालचरित्र को हिन्दी का ग्रन्थ बताने में की गई है। यदि सं० १३०० के लगभग का रचित कुमारपालचरित्र काव्य हिन्दी का ग्रन्थ है, तो फिर प्राकृत के सभी ग्रन्थ हिन्दी के हो जायँगे। बम्बई में यह ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है और इसी के साथ सिद्ध-हेमचन्द्र-कृत प्राकृताष्टाध्यायी है। जान पड़ता है कि किसी से सुन सुना कर लेखकों ने कुमारपालचरित्र को हिन्दी का ग्रन्थ लिख मारा है।

इस पुस्तक का नाम मिश्रबन्धुविनोद बहुत ही उचित है और इस नामकरण के लिए हम लेखकों को बधाई देते हैं। यदि इसके साथ ही "अथवा हिन्दी-साहित्य का इतिहास तथा कविकीर्त्तन" न लिखा होता तो जो कुछ ऊपर लिखा गया है और आगे लिखा जायगा वह कभी न लिखा जाता। क्योंकि यह पुस्तक मिश्रबन्धुओं ने स्वविनोदार्थ लिखी है, इसलिए यथेच्छाचार की मात्रा कम नहीं है। पहले तो १०४ पृष्ठों की हिन्दी भूमिका में १८ पृष्ठ में अपना ही वर्णन किया है। हमारा विश्वास है कि तीसरे भाग में जहाँ वर्त्तमान लेखकों और कवियों का उल्लेख होगा वहाँ मिश्रबन्धुओं ने अपना वर्णन कई पृष्ठों में अवश्य लिखा होगा। ऐसी अवस्था में भूमिका में अपने सम्बन्ध के १८ पृष्ठ रखना कहाँ तक उचित है, यह पाठक ही विचारें। परन्तु यह तो विनोद है। इसमें जो चाहें लेखक लिख सकते हैं। जो हो, भूमिका में "भाषा-सम्बंन्धी जो विचार" प्रकट किये गये हैं पहले हम उन्हीं के विषय में कुछ कहना चाहते हैं। क्योंकि हिन्दी की उत्पत्ति के साथ ही भाषा का विचार होना चाहिए। जब हमने पढ़ा—"हिन्दी ग्रन्थों की भाषा कैसी होनी चाहिए यह विषय भी विचारणीय है" तब विचारा कि इसमें भाषा पर कुछ सम्मति दी गई होगी, पर दो पृष्ठ पढ़ने पर भी हमारी समझ में यह न आया कि मिश्रबन्धु कैसी भाषा अच्छी समझते हैं। जो कुछ लिखा गया है, उसका अभिप्राय यही है कि, "हिन्दी को संस्कृत व्याकरण के फेर में डालने से लाभ अति स्वल्प हो सकता है पर हानि ऐसी प्रबल और असह्य होगी कि जिसका वार पार नहीं है।" पर यह न मालूम हुआ कि हिन्दी को कौन संस्कृत-व्याकरण के फेर में डाल रहा है। हम नहीं जानते कि वे "संस्कृत के विशेष प्रेमी" कौन हैं, जिनका "मत है कि हिन्दी में कम से कम गद्य लेखन शैली प्रायः पूर्णतया संस्कृत व्याकरण से नियमबद्ध होनी चाहिए।" यह तो बहुत से हिन्दी-हितैषी चाहते हैं और हमारा भी यही मत है कि हिन्दी में जो ग़दर मचा हुआ है उसका अन्त करने के लिए व्याकरण लिखा जाय, पर हम अथवा वे यह नहीं भूले कि "हिन्दी स्वतन्त्र भाषा है।" "हिन्दी एक जनसमुदाय की सरल भाषा है—" मिश्रबन्धुओं की इस बात से यह जाना जाता है कि वे सरल भाषा के पक्षपाती हैं, पर "सरल" भाषा की परिभाषा उन्होंने कुछ नहीं बताई। संस्कृत-व्याकरण का अनुसरण किये बिना ही भाषा जटिल और दुरूह हो सकती है, यह कदाचित् उनकी समझ में नहीं आया। हमारा तो यह कहना है कि व्याकरण-सम्मत भाषा जटिल नहीं, सरल होती है। हम जानते हैं कि जो लेखक व्याकरण-विरुद्ध भाषा लिखता है उसी के लेखों में जटिलता की मात्रा अधिक रहती है। इसलिए मिश्रबन्धुओं का यह सिद्धान्त कदापि माननीय नहीं है कि, "संस्कृत सम हिन्दी का व्याकरण बनने से हिन्दी जटिल हो जायगी।"

रङ्ग ढङ्ग से जान पड़ता है कि मिश्रबन्धुओं को नियमों से बड़ी घृणा है। वे भाषा में स्थिरता आने देना नहीं चाहते। भाषा की लिपि-प्रणाली में भी वे उसी प्रकार की धांधल मचाना चाहते हैं जैसी व्याकरण के विषय में। मिश्रबन्धु "हिन्दी हितार्थ यह आवश्यक समझते हैं कि एक ही शब्द अनेक प्रकार से लिखा जाय" अर्थात् शब्दों का वर्णविन्यास (Spelling) मनमाना रहे, जैसे "नायका"

शब्द को यदि कोई नाइका या नायिका भी लिख दे तो उसमें कोई दोष नहीं मानते तथा उसका समर्थन करते हैं। अपने इस कथन के समर्थन में आपने सतसई शब्द के छः रूप लिखे हैं, यथा शतसई, शतसैय्या, शतसैया, सतसैया और सतसइया। सतसई शब्द संस्कृत सप्तशती का और सतसैया संस्कृत सप्तशतिका का हिन्दी-रूपान्तर है। इन दोनों शब्दों का भावार्थ है सात सौ श्लोकों वा दोहों वाली पुस्तक। दुर्गा की पोथी में सात सौ श्लोक हैं, इसलिए वह सप्तशती कहाती है। विहारी की पुस्तक में ७०० दोहे हैं, इस लिए वह सतसई कहाती है और उसे सतसइया भी कहते हैं।

संस्कृत के श अक्षर के बदले हिन्दी में स कर दिया करते हैं। इसी से सप्तशती का रूपान्तर सतसई और सप्तशतिका सतसइया या सतसैया हो गया है। परन्तु आज तक यह सुनने में कभी नहीं आया कि स के बदले श कर देने का भी नियम है। मागधी प्राकृत में स को श उच्चारण करने का नियम है, और उससे उत्पन्न बँगला भाषा में श की तूती बोलती है सही, पर स के बदले श लिखने का नियम वहाँ भी नहीं है। इसके आविष्कार का सब श्रेय मिश्रबन्धुओं को ही है। पर हिन्दी वालों में ऐसी सुबुद्धि कहाँ जो कृतज्ञतापूर्वक आप का नेतृत्व स्वीकार करें! यदि मिश्रबन्धुओं की आज्ञा मान ली जाय तो हिन्दी में एक शब्द के दस दस बीस बीस रूप बनने में भी देर न लगेगी। आपने सूर्य्य शब्द के चार स्वरूप दिखाये हैं, सूर्य्य, सूर्य, सूर्ज और सूरज। पहले दो संस्कृत के रूप हैं और चौथा हिन्दी है। हिन्दी वाले "सूर्य" शब्द का उच्चारण "सूर्ज" करते हैं, पर लिखते "सूर्य" ही हैं। यदि शब्द-गढ़न्त में मिश्रबन्धुओं का अनुकरण किया जाय, तो सुरिज, सूरिज, सुरुज, सूरुजु, सुर्ज और सूर्जु रूप बन जायँगे। अर्थात् एक शब्द का जितने प्रकार का उच्चारण होगा उसके उतने ही रूप मानने पड़ेंगे। जैसे लक्ष्मण, लछमन, लषन, लखन, लाखन लिछमन, लिछमिण आदि। मिश्रबन्धुओं की यह बात हम मानने को तैयार नहीं हैं और न अन्य हिन्दीहितैषी ही इसे स्वीकार करेंगे। नागरी लिपि का गुण यह है कि जो लिखा जायगा वही पढ़ा जायगा। यह नहीं कि एक ही शब्द अनेक प्रकार से लिखा जाय। मिश्रबन्धु संस्कृत-शब्दों के प्रचार से बहुत चिढ़ते हैं, यद्यपि स्वयं संस्कृत-शब्दों का आवश्यकता से अधिक प्रयोग करते हैं। आप फ़ारसी अरबी के शब्द तो यथासाध्य शुद्ध लिखेंगे। यहाँ तक कि अपनी फ़ारसीदानी दिखाने को हिन्दी के "कनौज" शब्द को "क़न्नौज" लिखेंगे और क अक्षर के नीचे बिन्दी न छूट जाय इसका विशेष ध्यान रक्खेंगे, पर संस्कृत के शुद्ध शब्द आप की आँखों में खटकते हैं। आज कल हिन्दी में संस्कृत के शुद्ध शब्द लिखने की चाल चल पड़ी है और सैकड़े पीछे प्रायः ६५ लेखक शुद्ध लिखते भी हैं। इनमें कठिनाई से एक दो ऐसे विद्वान् होंगे जिन्होंने "१५ वर्ष तक सिद्धान्तकौमुदी की फक्किका वा महाभाष्य रटा" हो। यदि थोड़े अभ्यास से हम अँगरेज़ी जैसी कठिन भाषा के शब्द लिखने में भूल नहीं कर सकते, तो संस्कृत के शुद्ध शब्द लिखने का ज्ञान प्राप्त करने के लिए हताश होने का कोई कारण नहीं।

मिश्रबन्धुओं ने हिन्दी के किसी वादग्रस्त विषय की उपेक्षा नहीं की है। "शब्दों के नये रूप", "सन्धि", "विभक्ति-प्रत्यय," "लिङ्गभेद" और "हिन्दी की स्वतन्त्रता" पर भी विचार प्रकट किये गये हैं। शब्दों के रूपों के विषय में मिश्रबन्धुओं के कथन का सारांश यह है कि शुद्ध अशुद्ध चाहे जैसा शब्द कोई लिख दे, उसपर हिन्दीवाले चूँ तक न करें। यदि कोई कुछ बोले तो उसके बोलने का यह अर्थ समझा जाय कि, "दूसरों की कीर्त्ति बढ़ती देख हृदय में शूल हुआ चाहे और बिना उनकी निन्दा किए कब रहा जाय! बस ऐसे महापुरुषों को पर निन्दा से काम।" यदि दूसरा कोई समालोचक होता तो इन शब्दों को पढ़ इस काम से विरत हो जाता, पर हिन्दी-हित की दृष्टि से ऐसा करने में हम असमर्थ हैं। बंकिम बाबू ने सौजन्य वा सुजनता के बदले सौजन्यता लिख दिया तो वह अशुद्ध शब्द भी शुद्ध हो गया, यह आप के सिवा कोई स्वीकार न करेगा। बङ्गाल के तो किसी बँगला-लेखक ने इसे शुद्ध नहीं माना है। आज कल जैसी भाषा लिखी जाती है उससे ३।४ सौ वर्ष के लिखे पद्य वा गद्य की तुलना करना अनुचित है। उस समय तद्भव शब्दों का विशेष प्रचलन था और संस्कृत ही नहीं, अरबी और फ़ारसी शब्दों के रूप भी विकृत करके प्रायः लिखे जाते थे। संस्कृतज्ञ तथा अरबी-फ़ारसी के विद्वान् कवि भी इसका अनुकरण करते थे। इसलिए उन दिनों वैसी ही भाषा लिखी जाती थी।

हमारा यह अभिप्राय नहीं है कि तद्भव वा देशज शब्दों का हिन्दी से बहिष्कार कर दिया जाय, पर हम कहते हैं कि इस समय संस्कृत-शब्दों के रूप विकृत न किये जायँ। इससे लाभ नहीं है। जो हो, "सेनापति कविता की कविताई बिलसति है," वाक्य में मिश्रबन्धुओं ने "कविताई" शब्द को बंकिम बाबू के "सौजन्यता" शब्द के ढंग का बताया है। पर यह उनकी भूल है। यहाँ कविताई का अर्थ "कविता" नहीं है, बल्कि कवित्व या "कविता के गुण अथवा भाव" है। यद्यपि कविता और कवित्व का अर्थ एक ही है—पहले शब्द में "ता" प्रत्यय लगने से वह स्त्रीलिङ्ग बना रहा और दूसरा "त्व" लगने से पुँल्लिङ्ग बना रहा—तथापि "कवित्व" शब्द कविता के गुणों के अर्थ में प्रयुक्त होता है। यहाँ "कविताई" शब्द भी इसी अर्थ में लिखा गया है। आश्चर्य्य है कि मिश्रबन्धुओं की समझ में यह मोटी बात नहीं आई। मिश्रबन्धुओं का यह सिद्धान्त कि "कुछ अस्थिरता हमें हिन्दी के लिये आवश्यक प्रतीत होती है, क्योंकि नूतन विचार को व्यक्त करने के लिये भाषा का दिनों दिन विकास होना ही ठीक है" उनके और सिद्धान्तों के अनुसार ही है। हम नहीं समझते कि, "नूतन विचारों को व्यक्त करने के लिए" संस्कृत के विकृत या अशुद्ध शब्दों के प्रयोग की आवश्यकता है।

सन्धि के विषय में मिश्रबन्धुओं का कहना है कि सन्धि चाहे की जाय चाहे न की जाय। इस सम्बन्ध में भी आपकी बात सर्वांश में मानी नहीं जा सकती। मिश्रबन्धुओं ने कहा है कि यज्ञोपवीत लिखो चाहे यज्ञ उपवीत, पर हम जो लोगों को बोलते यज्ञोपवीत ही सुनते हैं। मूर्ख से मूर्ख भी "जग्गोपवीत" बोलते हैं। रामाधीन, रामावतार, रामाधार, गणेश, महेश, जगन्नाथ, मनोहर आदि शब्द हिन्दी में प्रचलित हैं। कोई कोई रामअधीन और रामअवतार भी बोलते हैं, पर गणईश, महाईश, जगत्नाथ और मन हर बोलते हमने किसी को नहीं सुना। तात्पर्य्य यह कि संस्कृत के जो शब्द हिन्दी में प्रचलित हैं वे सन्धि से बने हैं या नहीं, यह बहुतों को मालूम नहीं है और न वे इसके जानने की चेष्टा ही करते हैं। वे जैसे शब्द पाते हैं वैसे ही बोलते और लिखते हैं। स्वरसन्धि सहज है, इसलिए हिन्दी में वह बहुत प्रचलित है; व्यञ्जन और विसर्ग-सन्धियों की कठिनाई के कारण बहुतेरे हिन्दी-लेखक उनसे परिचित भी नहीं हैं।

विभक्ति-प्रत्यय के विषय में मिश्रबन्धुओं की बातें पढ़ कर कोई विचारशील हँसे बिना नहीं रह सकता। मिश्रबन्धु "ने, को, से" इत्यादि को कारक (Postposition) कहते हैं। आपटे के संस्कृत-अँगरेज़ी-कोष में कारक का अर्थ इस प्रकार बताया है—(In Gram.) The relation subsisting between a noun and a verb in a sentence (or between a noun and other words governing it) मिस्टर जे० टी० टामसन ने अपने हिन्दी-अँगरेज़ी कोष में कारक का अर्थ Case (in Gram.) लिखा है। इससे सिद्ध होता है कि कारक Postposition नहीं है। Postposition का अर्थ अँगरेज़ी कोष में लिखा है—A word or particle placed after or at the end of a word. अर्थात् एक शब्द या टुकड़ा जो पीछे या शब्द के अन्त में रक्खा जाय। इससे पाठक जान गये होंगे कि विभक्ति-प्रत्यय Postposition नहीं है। पादरी केलाग ने भी अपनी Grammar of the Hindi Language में विभक्ति-चिह्नों को Postposition कहा है। इनके विषय में आप १२६ वें पृष्ठ के फुटनोट में लिखते हैं:—

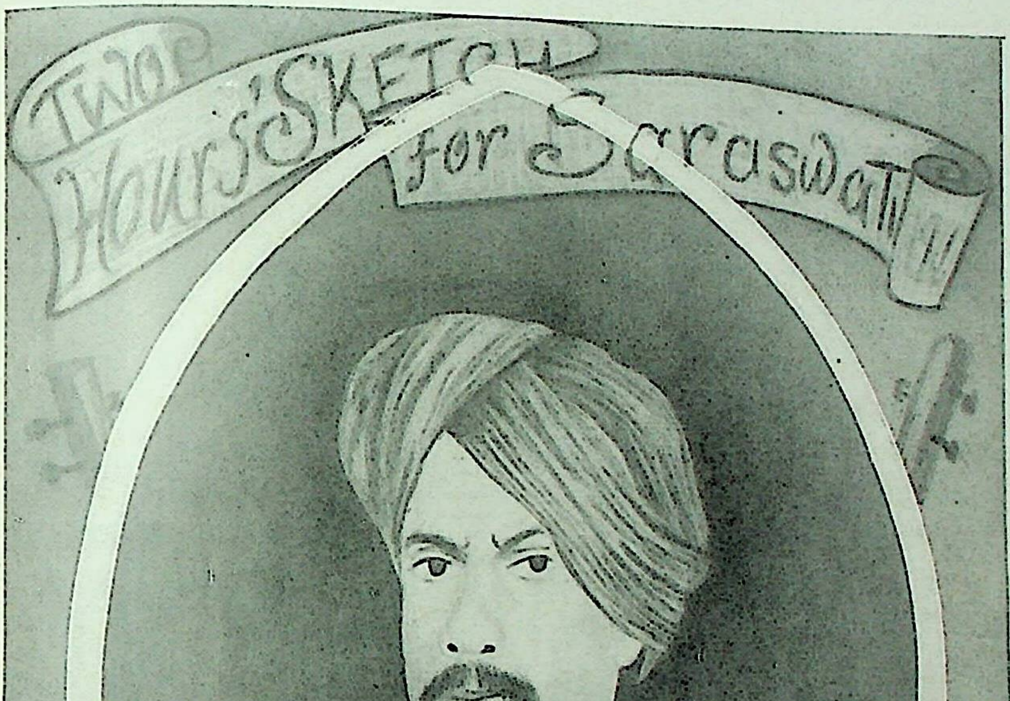
These are similar in character to prepositions in English, but as they follow their noun they are more accurately termed postpositions. मिस्टर बीम्स ने इन्हें Case-endings कहा है और हमारे मत से विभक्ति-चिह्नों का यह अर्थ बहुत ठीक है। मिश्रबन्धुओं ने व्याकरण की टाँग तो ख़ूब ही तोड़ी है। कारक और Postposition के अर्थों में जैसी भूल की है वैसी ही विभक्ति-प्रत्यय और अव्यय के अर्थों में भी की है। आप लोगों के मत से हिन्दी में विभक्ति-प्रत्यय हैं ही नहीं! विभक्ति का अर्थ Case-endings या Case-terminations है और प्रत्यय का अर्थ Termination, Suffix or Affix है। पर मिश्रबन्धुओं ने "ही" अव्यय को भी प्रत्यय लिख मारा है। किसी शब्द का अन्तिम भाग प्रत्यय कहाता है। पर अव्यय किसी शब्द का भाग नहीं होता। वह स्वतन्त्र शब्द ही है।

प्रत्यय शब्दांश होता है; मूल से वह मिला कर लिखा जाता है। जैसे ता, पा, पन आदि प्रत्यय हैं। सुन्दर, बूढ़ा और लड़का शब्दों के अन्त में लगने से इनसे सुन्दरता, बुढ़ापा और लड़कपन शब्द बनते हैं।

मिश्रबन्धुओं ने कारक, प्रत्यय और Postposition शब्दों के जो विलक्षण अर्थ किये हैं उनसे तो यह आशा नहीं होती कि विभक्तियों को शब्दों से मिला कर वा अलग लिखने का विचार करने के समय वे कुसंस्कार त्याग देंगे। हुआ भी ऐसा ही है। वे सदा हिन्दी पर संस्कृत के आक्रमण का स्वप्न देखा करते हैं। विभक्तियों को विकृत शब्द से मिला कर लिखने में भी उन्हें आशङ्का है कि कहीं हिन्दी संस्कृत न हो जाय। पर यह उनकी भूल है। "मुझी को" पद में "मुझ" तो "मैं" शब्द का विकृत रूप है। उसके बाद "ही" अव्यय है और अन्त में द्वितीया विभक्ति का आदेश "को" है। अब विचारना यह है कि जब "मुझ ही को" पद "मुझी को" हो गया है, तब मुझी और को में स्पेस रहना चाहिए या नहीं। जो हिन्दी भाषा की प्रकृति पहचानते हैं वे तुरत कह देंगे "नहीं।" क्योंकि जब अव्यय शब्द के विकृत रूप में मिल गया तब शब्दांश क्यों अलग लिखा जाय? "ही" अव्यय, जिसे मिश्रबन्धु प्रत्यय कहते हैं, केवल सर्वनाम और संज्ञा के विकृत रूपों और विभक्तियों के बीच में ही नहीं आता, बल्कि क्रियापदों में भी आता है, जैसे "करें ही गे" "माने ही गा" आदि। क्या इनके लिखने में "करें ही गे" "माने ही गा" लिखना उचित होगा? यदि नहीं, तो "मुझीको" लिखने में किसी को क्या आपत्ति हो सकती है? मिश्रबन्धु इन्हें Exception नहीं मानते, "क्योंकि हिन्दी में अब तक उनका शब्दांश माने जाने का नियम स्थिर ही नहीं हुआ है।" कौन स्थिर करेगा? आपने उसे अस्वीकार किया, इसलिए वह स्थिर ही नहीं हुआ! रही Inverted Commas के अन्दर शब्द लिखने की बात, सो इसका निर्णय दो प्रकार से किया जा सकता है। एक अँगरेज़ी के नियम से, जिसे देख कर इस परिपाटी का अनुसरण किया गया है और एक बँगला, गुजराती और मराठी आदि भाषाओं के अनुकरण से। अँगरेज़ी में केवल Possessive case में पद का पुराना रूप देखने में आता है। उसमें आज भी विभक्ति शब्द के साथ पाई जाती है, जैसे Robinson's Barley. यदि यह राविन्सन शब्द अँगरेज़ी में उद्धृत किया जाता है, तो वहाँ सविभक्तिक पद ही उद्धृत होता है, जैसे "Englishman's" Special Cablegram, पर यदि यह न स्वीकार हो तो बँगला के "भारतमित्रे"र, मराठी के "केसरी" चा और गुजराती के "प्रजाबन्धु"नी पदों के अनुसार लिख सकते हैं। जिन भाषाओं में विभक्ति-चिह्न शब्दों से मिला कर लिखे जाते हैं उनकी पद्धति का विचार करने पर मिश्रबन्धुओं की समझ में यह बात आ सकती है अन्यथा नहीं।

मिश्रबन्धुविनोद पढ़ने से बड़ा मनोविनोद होता है, क्योंकि लेखक पहले तो भूतों की कल्पना करते हैं और फिर उन्हें पछाड़ने का प्रशंसनीय पराक्रम दिखाते हैं। एक नहीं, अनेक स्थलों पर आपने समालोचकों की निन्दा की है। लिङ्गभेद का विचार करते समय आपने लिखा है कि "हमारे यहाँ के वे समालोचक, जो ईर्षाद्वेष वश आलोच्य लेख एवं लेखक का खण्डन (पीनल कोड रहते हुए!) करना ही अपना कर्तव्य समझते हैं, हिन्दी में प्रसिद्ध लेखकों तक की ऐसी ही भूलें खोज निकालने के लिए उत्सुक रहा करते हैं! (बड़ा अन्याय करते हैं।) वे इतना तक नहीं विचारते कि हमारे नामी लेखक-गण (नामी लेखकों से भूल का क्या सम्बन्ध?) भी इस लिङ्गभेद को नहीं समझ सकते तो इसमें किसका दोष है!!!" दोष छिपाने और समालोचकों को विरत करने के लिए लोग इस तरह की बातें कहा करते हैं, इस लिए हम इनकी उपेक्षा करके प्रकृत विषय की ओर ध्यान देना अपना कर्त्तव्य समझते हैं। अस्तु, मिश्रबन्धुओं ने १४ लेखकों की लिङ्गभेद-सम्बन्धी जो भूलें बताई हैं उनमें हिन्दी-व्याकरणानुसार केवल एक भूल है। इस सम्बन्ध में मिश्रबन्धुओं ने जो "प्रचलित ढंग" बताया है, वही हिन्दी-व्याकरण का नियम है। परन्तु उनका यह मत सर्वथा अग्राह्य है कि, "जहाँ तक नपुंसक लिङ्ग वाला प्रयोग स्पष्ट और निर्विवाद रूप से अशुद्ध न ठहर जावे वहाँ तक उसमें लिङ्गभेद-विषयक अशुद्धियाँ स्थापित न करनी चाहिए, क्योंकि वास्तव में निर्जीव पदार्थ न पुँल्लिङ्ग है और न स्त्रीलिङ्ग, उसको किसी एक में धींगा-धींगी से मान लिया जाता है।"

पाठकों को आश्चर्य होगा कि धींगाधींगी के समर्थक मिश्रबन्धु लिङ्ग-सम्बन्धी धींगाधींगी का विरोध करते हैं,




भजनानन्दी पण्डित शम्भुदेव पाण्डे।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

पर सूक्ष्म विचार से जान पड़ेगा कि यह विरोध धींगाधींगी मिटाने के लिए नहीं, बढ़ाने के लिए है। क्योंकि आपकी स्पष्ट आज्ञा है कि यदि नपुंसक-लिङ्गी शब्द को कोई पुल्लिङ्ग और कोई स्त्रीलिङ्ग लिखे तो किसी की भूल न दिखानी चाहिए, क्योंकि निर्जीव पदार्थ लिङ्गहीन होता है। पुस्तक, लेखनी, दावात, पत्थर आदि निर्जीव नाम वाले शब्दों को चाहे स्त्रीलिङ्ग लिखो चाहे पुँल्लिङ्ग, कोई हानि नहीं है! परन्तु यह भ्रम है। हिन्दी-लिङ्गभेद का ज्ञान प्राप्त करना सहज नहीं है। परन्तु धींगाधींगी से नपुंसक शब्द पुँल्लिङ्ग या स्त्रीलिङ्ग बना दिये जाते हैं यह कहना ठीक नहीं है। यदि हिन्दी-व्याकरण से सर्वथा अनभिज्ञ ऐसा कहता तो हमें कुछ भी आपत्ति न होती। पर मिश्रबन्धुओं के मुँह से यह शोभा नहीं देता। निर्जीव शब्दों के लिङ्ग-निर्णय के लिए हिन्दी में नियम हैं, पर बहुधा लोग उनकी उपेक्षा करते हैं। इसलिए पुराने कवि और लेखक जिस शब्द का जो लिङ्ग मानते हैं उसका उसी लिङ्ग में प्रयोग होता है। जिन भाषाओं में दो ही लिङ्ग होते हैं उनमें कुछ धींगाधींगी अवश्य होती है और वह अनिवार्य्य भी है। परन्तु साधारणतः निर्जीव पदार्थों के नामों का लिङ्ग नियमानुसार ही निश्चय किया जाता है। विदेशी शब्दों का लिङ्ग उनके अर्थानुसार निर्णय किया जाता है। इसके अपवाद-नियम भी हैं। पर अपवादों के कारण मुख्य नियम खण्डित नहीं हो जाते। बल्कि अँगरेज़ी कहावत—Exception proves the rule—के अनुसार अपवादों से मुख्य नियम का अस्तित्व प्रमाणित होता है।

"हिन्दी की स्वतन्त्रता" पर मिश्रबन्धुओं ने जो विचार प्रकट किये हैं वे उनके अन्य विचारों के समान ही हैं। जहाँ तक हम जानते हैं, ऐसा एक भी हिन्दी-लेखक नहीं है जो हिन्दी को स्वतन्त्र भाषा न स्वीकार करता हो। मिश्रबन्धुओं के प्रत्येक सिद्धान्त पर यदि कोई विचार करने बैठे तो मिश्रबन्धुविनोद से दूनी पोथी तैयार हो जाय। पर ऐसा करने के लिए न तो समय है और न स्थान ही। इस लिए संक्षेप में कहने के सिवा कोई उपाय नहीं है। मिश्रबन्धु कहते हैं कि, "पुराने भारी (१५ या ३० मने ?) लेखकों की भी रचनाएं उसके अनुसार अशुद्ध ठहरें तो वह व्याकरण ही निन्द्य ठहरेगा," पर इसे मानने को हम तैयार नहीं हैं। क्या संस्कृत के जो पुराने प्रयोग पाणिनीय व्याकरण से शुद्ध नहीं ठहरते, वे आर्ष प्रयोग नहीं माने जाते ? परन्तु यह प्राचीन प्रयोगों के लिए ही सम्भव है; आप नित्य जो अशुद्ध प्रयोग करेंगे वे कभी उस कोटि में न लिये जायँगे। हिन्दी पर संस्कृत के कल्पित आक्रमण से मिश्रबन्धु इतने अधीर हो गये हैं कि वे शान्त-चित्त से इस विषय पर विचार नहीं कर सकते। हिन्दी अथवा संस्कृत से प्राकृत द्वारा उत्पन्न सब भाषाओं में विदेशी शब्दों के सिवा तीन प्रकार के शब्द व्यवहृत होते हैं—तत्सम, तद्भव और देश्य या देशज। तत्सम का अर्थ है संस्कृत-सम। संस्कृत-सम वे शब्द हैं जो संस्कृत से लिये गये हैं, पर संस्कृत नहीं हैं, उसके समान हैं। ये शब्द प्रायः संस्कृत-शब्दों की प्रथमा विभक्ति के एकवचन के होते हैं—यथा राजा, माता, पिता, आत्मा आदि। तद्भव शब्द वे हैं जो संस्कृत-शब्दों से बनते हैं—जैसे हृदय से हिया, पानीय से पानी, अग्नि से आग, अक्षि से आँख आदि। देश्य या देशज वे शब्द हैं जो किसी प्रदेश-विशेष में बोले जाते हैं और उनके संस्कृतसम वा संस्कृतभव होने का प्रमाण नहीं मिलता—जैसे डोंगा, डाभ आदि।

अभी तक हमने मिश्रबन्धुविनोद के हिन्दी की उत्पत्ति और हिन्दी-भाषा-सम्बन्धीय सिद्धान्तों पर ही अपनी सम्मति प्रकट की है। हमने यह दिखाया है कि मिश्रबन्धुओं का यह कहना ठीक नहीं है कि, "पञ्जाब में आने से आर्यों की पुरानी संस्कृत यहाँ के आदिम निवासियों की भाषा से, जिसे पहली प्राकृत कह सकते हैं, मिलने लगी। यह गड़बड़ देख कर आर्यों ने अपनी भाषा का संस्कार करके उसे व्याकरण द्वारा नियमबद्ध कर दिया। इस प्रकार वर्त्तमान संस्कृत का जन्म हुआ।" सच तो यों है कि लोकभाषा और वेदभाषा—ये दो भेद बहुत पुराने हैं और वेदभाषा का संस्कार होने से वर्त्तमान संस्कृत की उत्पत्ति हुई तथा लोक-भाषा आगे चल कर प्राकृत नाम से प्रसिद्ध हुई। इसके समर्थन में हमने सिद्ध-हेमचन्द्र-सूरि की प्राकृताष्टाध्यायी का प्रमाण दिया था। इस प्राकृत-व्याकरण का तीसरा सूत्र है—"आर्षम्"। इसकी वृत्ति है "ऋषीणामिदं आर्षं" अर्थात् ऋषियों की भाषा "आर्ष" कहाती है। इससे स्पष्ट है कि वेदों की भाषा के सिवा एक आर्ष भाषा भी थी, जो ऋषि बोलते थे। इस

आर्ष प्राकृत के वैयाकरण रामायणकार वाल्मीकिजी बताये जाते हैं। मिश्रबन्धुओं ने भाषा-ज्ञान की दृष्टि से इस विषय पर न तो विचार ही किया है और न उनकी लिखी बातों से इसका पता ही लगता है कि मिश्रबन्धुओं को हिन्दी भाषा के विकास का कुछ भी ज्ञान है।

भाषा-सम्बन्धीय सिद्धान्तों में भी मिश्रबन्धुओं को उनकी भूलें प्रत्यक्ष करा दी गई हैं। उनका व्याकरण का विरोध कैसा अनुचित है, इसके दुबारा बताने का प्रयोजन नहीं है। व्याकरण भाषा का नियन्त्रण करता है। जिस भाषा का जितना उत्कृष्ट व्याकरण होता है वह उतनी ही अधिक उन्नत होती है। भाषा की उन्नति और व्याकरण की पूर्णता का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है, यह मिश्रबन्धु कदाचित् नहीं जानते। इसी से उससे झिझकते हैं। जिस प्रकार का ग़दर मिश्रबन्धु जैसे लेखक हिन्दी में मचाये रहना चाहते हैं उससे तो हिन्दी की अवनति के सिवा उन्नति की सम्भावना ही नहीं है। मिश्रबन्धु चाहते हैं कि, हम "आलोचक ग्रन्थ", "आपेक्षक आकार", "रचनाओं पर अनुमति", "महानता" जैसे अशुद्ध शब्द और पद लिखें और कोई कुछ न कहे। पर ऐसा कैसे सम्भव है? मिश्रबन्धुओं ने कदाचित् अँगरेज़ी के Critical Work और Comparative Size के लिए पहले दो अवतरणों का प्रयोग किया है, पर उनका अर्थ क्या होता है, इस पर ध्यान नहीं दिया। आलोचक का अर्थ Critical नहीं होता। आपेक्षक शब्द अशुद्ध है और उसका शुद्ध रूप आपेक्षिक है, पर उसका भी अर्थ Comparative नहीं है। "अनुमति" शब्द का प्रयोग सम्मति के अर्थ में किया गया है, पर उसका अर्थ सम्मति नहीं, आज्ञा है। भाषा सम्बन्धीय प्रयोगों में भी मिश्रबन्धुओं की पुस्तक में भूलों की भरमार है इसी लिए आप समालोचना नहीं चाहते हैं, क्योंकि उससे तो आपके अशिष्ट प्रयोग सब के सामने आ जाते हैं। On the whole के लिए "कुल मिला कर" तो उनका पेटेंट प्रयोग हो रहा है। "भ्रम हो सकता है" प्रयोग के बदले "भ्रम पड़ सकता है।" (१)

शोक किसी के मरने पर ही हुआ करता है, पर मिश्रबन्धु "लेखकों एवं समालोचकों के झुकाव" पर शोक प्रकट कर रहे हैं। मिश्रबन्धुविनोद में जगह जगह हम देखते हैं कि एक ही कवि को एक बार बहुवचन में लिख कर दो ही पंक्तियों के बाद एकवचन में लिखा है। उक्ति के अर्थ में कहावत शब्द का प्रयोग किया है, जो सर्वथा अशुद्ध है। इसी प्रकार एक ही शब्द भिन्न भिन्न लिङ्गों में व्यवहृत हुआ है। जैसे १५५ वें पृष्ठ में लिखा है "ठाकुर कवि ने सवैयाओं में बड़ी ही टकसाली कविता की।" यहाँ "सवैया" शब्द स्त्रीलिङ्ग में लिखा गया है। उक्त अवतरण से पाँचवीं ही पंक्ति में "सवैया" पुँल्लिङ्ग लिखा गया है। यथा, इसके सवैया (सवैये चाहिए) देव के छन्दों से पूरी टक्कर लेते हैं। विस्तार-भय से अधिक नहीं लिख सकते।

आज कल तद्भव शब्दों का प्रयोग हिन्दी में बहुत कम होता है। इसका एक कारण तो यह है कि वर्तमान हिन्दी-लेखकों में पुराने साहित्य से परिचय रखने वालों की संख्या नगण्य है और साहित्य का ज्ञान हुए बिना शब्दभाण्डार छूँछा रह जाता है। इसलिए तद्भव शब्दों का प्रयोग करने में वे असमर्थ रहते हैं। दूसरा कारण अन्य भाषाओं का हिन्दी पर प्रभाव है। जिस समय अरबी-फ़ारसी के विद्वानों ने हिन्दी लिखी, उस समय भाषा में उक्त भाषाओं के शब्दों का विशेष प्रयोग हुआ। संस्कृतज्ञ पण्डितों ने संस्कृतसम और कभी कभी संस्कृत-शब्दों का प्रयोग बहुतायत से किया और जब बँगला पुस्तकों का उल्था हिन्दी में होने लगा और क्रिया-विभक्ति बदलने तक ही भाषान्तरकारों ने अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझी, तब संस्कृत शुद्ध शब्द ही नहीं, अशुद्ध शब्द भी हिन्दी में घुसने लगे। मराठी से उल्था करने वालों ने "चालू" "लागू" जैसे शब्दों को हिन्दी में ला घुसेड़ा। बँगला-भाषा की पुस्तकों से हिन्दी को प्रश्रय अवश्य मिला, पर भाषा की आत्मा दब गई। जिसे मिश्रबन्धु हिन्दी पर संस्कृत का आक्रमण कहते हैं वह वास्तव में संस्कृत का नहीं, बँगला का है। इससे हिन्दी की रक्षा होनी चाहिए।

[भारतमित्र से उद्धृत]

# विक्रमशिला का विश्वविद्यालय।

प्राचीन भारत के विश्वविद्यालयों पर सरस्वती में कई लेख निकल चुके हैं। उनमें वैदिक काल और बौद्ध काल के मुख्य मुख्य विश्वविद्यालयों का संक्षिप्त वृत्तान्त लिखा गया है। विक्रमशिला-विश्वविद्यालय का भी इनमें ज़िक्र आया है। आज हम इस विश्वविद्यालय का अपेक्षाकृत विस्तृत विवरण सरस्वती के पाठकों को सुनाते हैं।

जिस समय नालन्दा-विश्वविद्यालय का प्रभाव भारतवर्ष में घटने लगा था उसी समय विक्रमशिला-विश्वविद्यालय की उत्पत्ति हुई थी। बौद्ध धर्म के संस्कृत-ग्रन्थों में इसका नाम विक्रमशिला-महाविहार लिखा है। पर किसी किसी जगह यह विक्रमशिला-देवमहाविहार भी कहा गया है।

कहते हैं कि यह विश्वविद्यालय महाराज धर्मपाल ने स्थापित किया था। पर यह राजा कब हुआ और इसने किस समय से किस समय तक राज्य किया, इस विषय में विद्वानों में मतभेद है। किसी किसी विद्वान् का कथन है कि महाराज धर्मपाल ने ८७१ ईसवी से लेकर ८९५ ईसवी तक राज्य किया। पर डाकृर सतीशचन्द्र विद्याभूषण आदि कई पण्डित इस मत को नहीं मानते। वे कहते हैं कि पूर्वोक्त नरेश ने वङ्ग-देश में ७६५ ईसवी से लेकर ८२९ ईसवी तक राज्य किया। तिब्बत के बौद्ध ग्रन्थों से भी इसी मत की पुष्टि होती है। जो हो, इसमें कोई सन्देह नहीं कि महाराज धर्मपाल अष्टम शताब्दी के अन्तिम भाग और नवम शताब्दी के आदि में जीवित थे और इसी समय के बीच यह विश्वविद्यालय प्रतिष्ठित हुआ था।

तिब्बती ग्रन्थों में लिखा है कि विक्रमशिला-विश्वविद्यालय गङ्गा के दक्षिणी किनारे पर अवस्थित था। उसके उत्तर में गङ्गाजी बहती थीं। पर यह था किस स्थान पर, यह निश्चित नहीं। हंटर साहब के मतानुसार यह विश्वविद्यालय नालन्दा के निकट था। किसी किसी की राय में बङ्गाल के वर्त्तमान विक्रमपुर स्थान ही में यह विश्वविद्यालय था। पर राय शरच्चन्द्रदास बहादुर ने इन सब मतों का बड़ी योग्यता से खण्डन किया है। उनकी राय में विक्रमशिला-विश्वविद्यालय वर्त्तमान भागलपुर ज़िले के सुलतानगञ्ज स्थान में अवस्थित था। आपने अपने कथन की पुष्टि में बहुत सी युक्तियाँ भी दी हैं। हमारी राय में राय शरच्चन्द्रदास का मत ही अपेक्षाकृत निर्भ्रान्त है।

विक्रमशिला-विश्वविद्यालय के नाम महाराज धर्मपाल ने कई गाँव दान कर दिये थे। इन्हीं गाँवों की आमदनी से इस विश्वविद्यालय का सब ख़र्च चलता था। इस विश्वविद्यालय में १०८ स्थायी अध्यापक नियमित रूप से अध्यापन-कार्य्य किया करते थे। जो बौद्ध अध्यापक सबसे अधिक विद्वान्, योग्य और प्रतिभाशाली समझे जाते थे वही इस विश्वविद्यालय के अध्यक्ष नियत किये जाते थे। यह विश्वविद्यालय कोई चार सौ वर्ष तक स्थापित रहा था। इतने दिनों में सब मिला कर कोई २७ बौद्धाचार्यों ने इसकी अध्यक्षता की थी। उनके नाम ये हैं:—

(१) आचार्य्य बुद्धज्ञानपाद। महाराज धर्मपाल के ये समकालीन थे। इस विश्वविद्यालय के पहले अध्यक्ष यही थे।

(२) लङ्काजयभद्र। ये लङ्कानिवासी थे। इन्होंने चक्रसम्बर नाम का एक तन्त्र-ग्रन्थ लिखा है।

(३) आचार्य्य श्रीधर। ये ब्राह्मण थे।

(४) भवभद्र। न्यायशास्त्र के ये बड़े प्रसिद्ध विद्वान् थे।

(५) भव्यकीर्त्ति। मन्त्रविद्या के ये अगाध पण्डित थे।

(६) लीलावज्र। इनके समय में तुर्कों ने विक्रमशिला पर आक्रमण किया था। पर सुनते हैं कि इन्होंने अपनी मन्त्रविद्या के बल से उन लोगों को भगा दिया था।

(७) आचार्य्य दुर्जयचन्द्र।

(८) आचार्य्य कृष्णसमरवज्र।

(९) तथागतरक्षित। मन्त्र के प्रभाव से ये कई देशों की भाषायें समझ सकते थे।

(१०) बोधभद्र। ये गुह्य-मन्त्र के ज्ञाता थे।

(११) कमलरक्षित। ये प्रज्ञापारमिता, गुह्य-समय और यमारितन्त्र में विशेष पारदर्शी थे। इनके विषय में एक कौतूहलप्रद कहानी प्रसिद्ध है। कहते हैं कि इनके समय में कोई पाँच सौ तुर्क अपने बादशाह के साथ कर्ण देश से मगध लूटने के लिए आये। जब वे इस विहार को भी लूटने लगे तब कमलरक्षित को बड़ा क्रोध आया। इसलिए उन्होंने तुर्कराज पर एक पूर्णकुम्भ फेंका। इसका फल यह हुआ कि तुर्क-सेना पहले ख़ून उगलने लगी और फिर धीरे धीरे ग़ायब हो गई।

(१२) आचार्य्य रत्नाकर-शान्ति।

(१३) वागीश्वर-कीर्त्ति। ये काशी के रहनेवाले थे।

(१४) आचार्य्य नरोप।

(१५) प्रज्ञाकर-मति।

(१६) रत्नवज्र। ये काश्मीर के निवासी थे।

(१७) ज्ञान श्रीमित्र। ये गौड़ देश के रहनेवाले थे।

(१८) दीपङ्कर श्रीज्ञान। ये बड़े विख्यात पण्डित थे।

(१९) महावज्रासन।

(२०) कमलकुलिश।

(२१) नरेन्द्र श्रीज्ञान।

(२२) दानरक्षित।

(२३) अभयकर गुप्त।

(२४) शुभङ्कर गुप्त।

(२५) सुनायक-श्री।

(२६) धर्माकर-शान्ति।

(२७) शाक्य-श्री। ये काश्मीर से आये थे।

प्राचीन काल के विश्वविद्यालयों में एक और पद भी बड़ा प्रतिष्ठित और महत्त्वपूर्ण समझा जाता था। इस पद के अधिकारी को द्वार-रक्षक कहते थे। इस पर वही लोग नियुक्त किये जाते थे जो सर्वोत्कृष्ट विद्वान् होते थे। किसी समय विक्रमशिला-विश्वविद्यालय की ऐसी महिमा थी कि जो यहाँ आकर अपनी विद्वत्ता प्रमाणित न कर सकता था वह विद्वान् न समझा जाता था। यदि कोई बाहरी पण्डित इस विश्वविद्यालय में प्रविष्ट होने के लिए आता तो उसे पहले द्वार-रक्षक के सामने अपना परिचय देना पड़ता था। द्वाररक्षक के साथ विचार करने में जो हार जाते थे वे भीतर प्रवेश न कर सकते थे। विक्रमशिला-विश्वविद्यालय में छः द्वार थे। एक एक पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण में था और दो बीच में थे। ९५० ईसवी से लेकर ९८३ ईसवी तक महाराज चणक के राजत्वकाल में भारत के निम्नलिखित प्रसिद्ध प्रसिद्ध पण्डित विक्रमशिला-विश्वविद्यालय के द्वाररक्षक का कार्य्य करते थे—

(१) पूर्वद्वार—आचार्य्य रत्नाकर-शान्ति।

(२) पश्चिम द्वार—आचार्य्य वागीश्वर-कीर्त्ति।

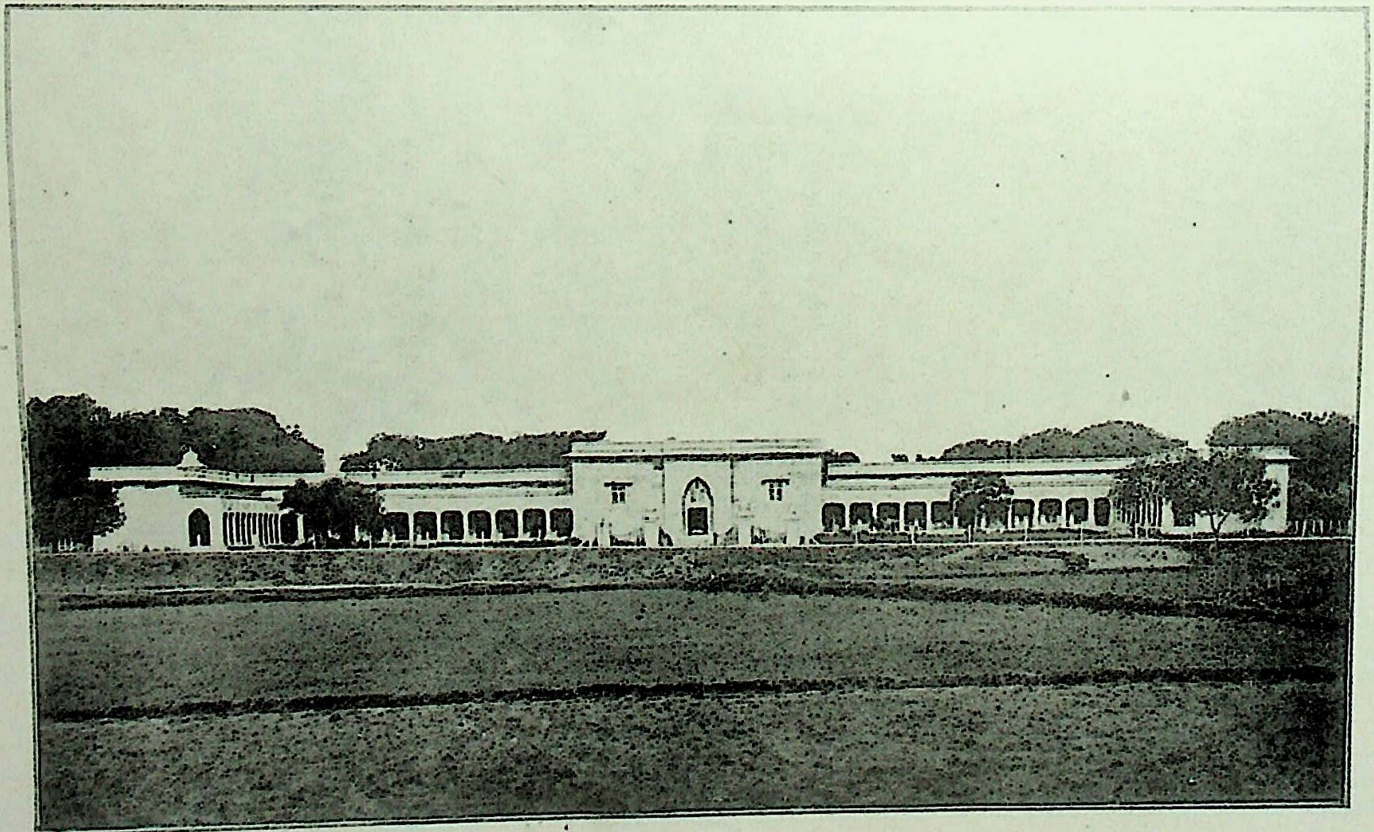
(३) उत्तर द्वार—आचार्य्य नरोप।

(४) दक्षिण द्वार—आचार्य्य प्रज्ञाकर-मति।

(५) प्रथम मध्य-द्वार—आचार्य्य रत्नवज्र।

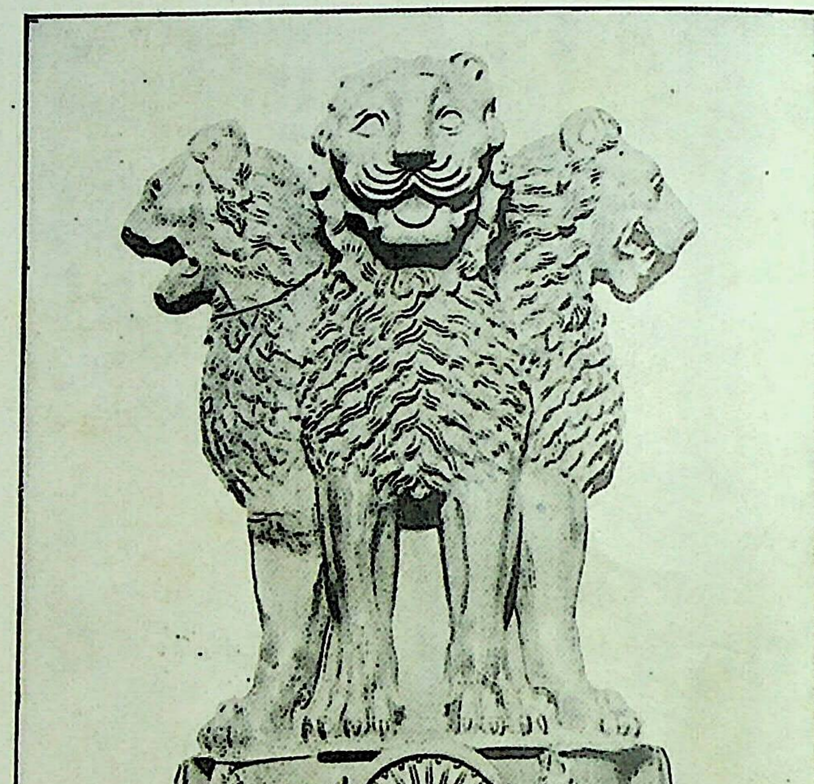
(६) द्वितीय मध्य-द्वार—आचार्य्य ज्ञानश्री मित्र।

विक्रमशिला-विश्वविद्यालय में व्याकरण, दर्शन, न्याय, तन्त्र आदि कई विषय पढ़ाये जाते थे। इस विश्वविद्यालय के चारों ओर की दीवारों पर कितने ही विद्वान् और सच्चरित्र पुरुषों की मूर्त्तियाँ चित्रित थीं। इस विश्वविद्यालय से जो छात्र उत्तीर्ण होकर निकलते थे वे पण्डित की प्रतिष्ठित उपाधि से विभूषित किये जाते थे। राजशाही के विख्यात बौद्ध नैयायिक आचार्य्य जेतारि ने ९४० ईसवी में इस विश्वविद्यालय से राजा महापाल का स्वाक्षरित प्रशंसापत्र और पण्डित उपाधि प्राप्त की थी। ९८३ ईसवी में काश्मीर के सुप्रसिद्ध पण्डित रत्नवज्र ने इस विश्वविद्यालय से राजा चणक का स्वाक्षरित प्रशंसापत्र और पण्डित उपाधि प्राप्त की थी।



सारनाथ के प्राचीन पदार्थ-संग्रहालय ( Museum ) की इमारत ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग ।



सारनाथ के अशोक-स्तम्भ का सिंह-शिखर।
( दो हज़ार वर्ष से भी अधिक पुराना )

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

तिब्बत के लामाओं ने विक्रमशिला में आकर वहाँ के पण्डितों की सहायता से अनेक संस्कृत-ग्रन्थ तिब्बती भाषा में अनुवादित किये थे।

१२०३ ईसवी में शाक्यश्री आचार्य्य विक्रमशिला विश्वविद्यालय के अध्यक्ष थे। इसी समय बख़्तियार ख़िलजी ने विक्रमशिला पर आक्रमण किया और उसे नष्टभ्रष्ट कर दिया। यह हम लिख चुके हैं कि यह विश्वविद्यालय आठवीं शताब्दी के अन्त में स्थापित हुआ था। इस हिसाब से यह कोई चार सौ वर्ष तक क़ायम रहा। इसके ध्वंस होने के बाद बङ्गाल और बिहार से बौद्ध धर्म अदृश्य हो गया और हिन्दू धर्म का फिर अभ्युदय हुआ। इसी समय मिथिला और नदिया में हिन्दू-विश्वविद्यालय प्रतिष्ठित हुए।

मनोरञ्जन मिश्र।

---

## स्वर्गीय सङ्गीत।

( ४ )

भुजङ्गी

मनुष्यत्व ही मुक्ति का द्वार है।

१—बना लो जहाँ, हाँ, वहीं स्वर्ग है,
स्वयम्भूत थोड़ा कहीं स्वर्ग है।
खलों को कहीं भी नहीं स्वर्ग है,
भलों के लिए तो यहीं स्वर्ग है।
सुनो, स्वर्ग क्या है, सदाचार है;
मनुष्यत्व ही मुक्ति का द्वार है॥

२—नहीं स्वर्ग कोई धरा-वर्ग है,
जहाँ स्वर्ग के भाव हैं, स्वर्ग है।
सुखी नारकी जीव भी हो गये—
वहाँ धर्म्मराज स्वयं जो गये।
कदाचार ही रौरवागार है;
मनुष्यत्व ही मुक्ति का द्वार है॥

३—यहीं स्वर्ग चाहे बना लीजिए,
यहीं नारकी सृष्टियाँ कीजिए।
नहीं कौन सी साधना है यहाँ?
वहीं सिद्धि है साधना है जहाँ।
महा-साधना-क्षेत्र संसार है;
मनुष्यत्व ही मुक्ति का द्वार है॥

४—स्वयं क्यों न संसार निःसार हो,
भले ही यहाँ मृत्यु-सञ्चार हो।
नहीं किन्तु विश्वेश है क्या यहाँ?
जहाँ इष्ट है क्या नहीं है वहाँ?
शरीरस्थ कर्ता क्रिया ऽऽ धार है,
मनुष्यत्व ही मुक्ति का द्वार है॥

५—जहाँ ज्ञान है, कर्म्म है, भक्ति है,
भरी जीव में ईश्वरी शक्ति है।
जहाँ भुक्ति में मुक्ति का धाम है,
जहाँ मृत्यु के बाद भी नाम है।
वही भव्य संसार क्या भार है?
मनुष्यत्व ही मुक्ति का द्वार है॥

६—यहीं प्रेम है, द्रोह भी है यहीं;
यहीं ज्ञान है, मोह भी है यहीं;
यहीं पुण्य है, पाप भी है यहीं;
यहीं शान्ति है, ताप भी है यहीं।
कहो, क्या तुम्हें आज स्वीकार है?
मनुष्यत्व ही मुक्ति का द्वार है॥

७—जहाँ स्वार्थ का सर्वथा त्याग है,
सभी के लिए एक सा भाग है।
जहाँ लोक-सेवा महा धर्म्म है,
जहाँ कामना छोड़ के कर्म्म है;
वहाँ आप ही आप उद्धार है;
मनुष्यत्व ही मुक्ति का द्वार है॥

८—यहाँ कल्पवृक्ष स्वयं हैं हमीं,
करें यत्न तो है हमें क्या कमी?
भरा कीर्ति में ही सुधा-सत्व है,
मनुष्यत्व ही दिव्य देवत्व है।
यही स्वर्ग-सङ्गीत का सार है;
मनुष्यत्व ही मुक्ति का द्वार है॥

मैथिलीशरण गुप्त

---

# सारनाथ।

( Catalogue of Museum of Archaeology at Sarnath—नामक पुस्तक के आधार पर )

भगवान् बुद्ध के चरित से चार स्थानों का विशेष सम्बन्ध है। इसी कारण बौद्धधर्मावलम्बी इन स्थानों को पवित्र मान कर इनका दर्शन करते हैं। इनमें से पहले स्थान में तो भगवान् बुद्ध का जन्म हुआ था। दूसरे में उन्हें ज्ञान-प्राप्ति हुई थी। तीसरे में उन्होंने पहले पहल धर्मोपदेश किया था और चौथे में उनकी मृत्यु हुई थी। ये चारों स्थान लुम्बिनि-ग्राम, बोधिगया, सारनाथ और कुशीनगर हैं। सारनाथ में भगवान् बुद्ध ने अपने धर्म का उपदेश पहले पहल कौण्डिन्य नामक शिष्य को दिया। इसी प्राथमिक धर्मोपदेश को बौद्ध लोग आलङ्कारिक भाषा में "धर्मचक्र-प्रवर्तन" कहते हैं। इस धर्मचक्र-प्रवर्तन का काल ईसा के पूर्व ५२८ वर्ष माना जाता है।

सारनाथ का प्राचीन नाम "मृगदाव" (हरिणवन) था। बुद्ध के निर्वाण के पश्चात् शीघ्र ही यह यात्रा-स्थान हो गया। परन्तु उसके लगभग तीन शतक बाद तक इसके विषय में कोई ऐतिहासिक लेख नहीं पाया जाता। सारनाथ के प्राचीन चिह्नों में सबसे महत्त्व का तथा सबसे पुराना चिह्न एक स्तम्भ है। उसकी स्थापना २५० वर्ष ईसा के पहले सम्राट् अशोक ने की थी। शोक का विषय है कि यह स्तम्भ विच्छिन्न हो गया है। अपनी मूल-स्थिति में स्तम्भ का केवल उतना ही भाग है जितना उसके विच्छेद के समय भूमि में गड़ा रह गया था। पर, दुःख में सुख की बात यह है कि इस स्तम्भ के टुकड़े तथा इसके ऊपर का सिंह-शिखर इसके पास ही मिल गया है। इस स्तम्भ पर सम्राट् अशोक का एक लेख वर्तमान है। लेख में धर्मचक्र-प्रवर्तन का कोई उल्लेख नहीं है, केवल सङ्घभेद करने वाले भिक्षुगणों को श्वेत वस्त्र पहना कर विहार से निकाल देने की आज्ञा है।

अशोक-काल का नहीं तो कम से कम मौर्य-काल का एक चिह्न यहाँ पर और है। यह ईंटों का एक स्तूप है। परन्तु सन् १७९३-९४ में काशी-नरेश चैतसिंह के मन्त्री जगत्सिंह ने काशी का जगतगञ्ज बनवाते समय इसका इतना मसाला खोद लिया कि इस समय इसका अत्यल्प ही अंश बाक़ी रह गया है। इसी समय का तीसरा चिह्न पत्थर का एक कठड़ा है। इसके कुछ खम्भे ओरटेल साहब को मिले थे। इनकी कारीगरी और सफ़ाई से अनुमान होता है कि कोई असाधारण वस्तु—कदाचित् धर्मचक्र-प्रवर्तन-स्थान—की रक्षा के लिए यह कठड़ा बनवाया गया होगा। शुङ्ग राजाओं के समय का भी ईसा के पूर्व १८४ से ७२ तक का, एक कठड़ा यहाँ मिला है। इसके खम्भे अशोकस्तम्भ के आस पास पाये गये हैं। इन पर बहुत से लेख हैं। उनमें खम्भे बनवाने वालों के नाम हैं। इससे जान पड़ता है कि यह काम चन्दे से किया गया होगा। इन्हीं में से दो खम्भों पर पुराने लेखों के साथ दो गुप्तकालीन लेख भी हैं। इनसे पता चलता है कि ये दोनों स्तम्भ भगवान् बुद्ध की मूलगन्धकुटी (प्रधान मन्दिर) में दीपस्तम्भ का काम देने के लिए खड़े किये गये थे। बहुत सम्भव है कि यह मूलगन्धकुटी वही प्रधान मन्दिर हो जिसका वर्णन ह्वेनसाँग नामक चीनी प्रवासी ने अपनी मृगदाव-यात्रा में किया है। यह प्रवासी लिखता है—"इस मन्दिर में एक पूर्णपुरुषाकृति पीतल की मूर्ति भगवान् बुद्धदेव की है। वह धर्मचक्र-प्रवर्तन कर रही है। मन्दिर की नैऋत्य दिशा में पत्थर का एक स्तूप है और स्तूप के सामने ७० फ़ीट ऊँचा पत्थर का एक स्तम्भ है। वह बहुत चिकना है। उस पर प्रार्थना करने वालों के अनुकूल और प्रतिकूल चिह्न दिखाई देते हैं"।

यह ध्यान में रखने योग्य है कि यह चीनी-प्रवासी न तो अशोक के लेख का ही उल्लेख करता

है और न इस स्तम्भ के सर्वोत्तम शिखर का ही। आज जो स्तम्भ विद्यमान है उसकी उँचाई भी ७० फ़ीट नहीं। अतः ह्वेनसाँग के वर्णित मन्दिर और स्तम्भ कोई दूसरे ही होंगे। परन्तु वोगेल साहब, ओरटेल साहब के मत का अनुसरण करते हैं। वे कहते हैं कि इस चीनी-प्रवासी की दृष्टि शिल्पकला और पुरातत्त्व की ओर न थी। इस कारण उसके वर्णन में अशोक के लेख और सिंह-शिखर का न पाया जाना अस्वाभाविक नहीं। यह भी सम्भव है कि ईसा की छठी शताब्दी के आरम्भ में सारनाथ की इमारतें हूणों की चढ़ाइयों के कारण नष्ट-भ्रष्ट हो गई हों। इतने दिनों में वहाँ की इमारतों का कई बार नाश हुआ होगा। पर हर समय किसी न किसी बुद्ध-भक्त ने फिर से उन्हें दुरुस्त कराया होगा।

इस प्रकार के एक जीर्णोद्धार के विषय में एक लेख पाया भी गया है। यह लेख बुद्ध की एक मूर्ति के आसन पर खुदा हुआ है। लेख यों हैः—

ॐ नमो बुद्धाय। वाराणसीसरस्यां गुरवश्रीवामराशि-पादाब्जम्। आराध्यनमितभूपति-शिरोरुहैः शैवलाधीशम्॥ ईशानचित्रघण्टादिकीर्ति रत्नशतानि यौ। गौडाधिपो महीपालः काश्यां श्रीमानकार(यत्)॥ सफलीकृतपाण्डित्यौ बोधाव-विनिवर्तिनौ। तौ धर्मराजिकां साङ्गं धर्मचक्रं पुनर्नवम्॥ कृतवन्तौ च नवीनामष्टमहास्थानशैलगन्धकुटीम्। एतां श्रीस्थिरपालो वसन्तपालोऽनुजः श्रीमान्॥ संवत् १०८३ पौष दिने ११॥

लेख का सार यह है कि गौडाधिपति महीपाल के राज्य में स्थिरपाल और वसन्तपाल नामक दो भाइयों ने धर्मराजिका और धर्मचक्र नाम की दो इमारतों की मरम्मत करवाई और आठ बड़े स्थानों के विषय में एक शैल-मन्दिर बनवाया।

बहुत सम्भव है कि सन् १०१७, अर्थात् संवत् १०७४, में जब महमूद गज़नवी ने काशी जीती तब इन स्थानों का नाश हुआ हो। इसके ९ वर्ष बाद पूर्वोक्त दोनों भाइयों ने इन्हें दुरुस्त कराया।

धर्मचक्र मृगदाव के प्रधान मठ का नाम था। उसका उल्लेख एक और प्रशस्ति में भी पाया जाता है। इससे पता चलता है कि क़न्नौज के अधिपति राजा गोविन्दचन्द्र की रानी कुमारदेवी की आज्ञा से भगवान् बुद्ध की मूर्ति, जैसी वह अशोक के समय में थी, दुरुस्त की गई और एक नया विहार बनवा कर वह उसमें रक्खी गई। सन् ११९३ में जब मुसलमानों का राज्य उत्तरी भारत में ख़ूब जम गया और काशी-नरेश जयचन्द्र भी मारा गया तब मुसलमानों की मूर्ति-भङ्ग-तृष्णा से यह स्थान बच गया।

इसके पश्चात् यह स्थान यद्यपि स्मृतिशेष ही रह गया तथापि मुग़ल-सम्राट् हुमायूँ एक बार यहाँ आकर ठहरा। उसकी मृत्यु के पश्चात् सन् १५८८ में सम्राट् अकबर ने इस बात के स्मरण में यहाँ ईंटों का एक अठकोना मीनार बनवा दिया।

## खुदाई का काम।

मुसलमानों के द्वारा नष्ट किये जाने के अनन्तर इस स्थान में केवल तीन ही भवन बच रहे—चौखण्डी स्तूप, जिस पर हुमायूँ की मीनार है, धमेख (धर्मेक्षा) स्तूप और मुख्य स्तूप। जगत्सिंह ने जब यहाँ से जगत्गञ्ज बनवाने के लिए मसाला ले जाना चाहा तब उसने मुख्य स्तूप पर ही हमला किया। कारण यह था कि इस स्तूप पर न तो कोई मीनार था, न धमेख स्तूप जैसा बड़े बड़े शिला-खण्डों से यह मढ़ा ही हुआ था। अतएव जगत्सिंह ने मुख्य स्तूप पर ही हाथ मारा और यहाँ से मसाला निकालना शुरू किया। जगत्गञ्ज जैसी बस्ती बसाने में इसका सारा मसाला लग गया। अतएव यह स्तूप बिलकुल जड़ तक खोद डाला गया। पर, भाग्य से यहीं पर, ज़मीन की सतह से लगभग १८ हाथ नीचे, दो पात्र—एक पत्थर का और एक संगमरमर का—मिला। इनमें एक के भीतर एक रक्खा हुआ था। भीतर वाले में मनुष्य की कुछ हड्डियाँ, कुछ छोटे मोटे मोती और कुछ सोना आदि पाया गया। यह बात सन् १७९४ के जनवरी में हुई। इसी के साथ बुद्ध की एक मूर्ति भी पाई गई। इस कारण बनारस के

तत्कालीन कमिश्नर मिस्टर जोनाथन डंकन ने अनुमान किया कि ये हड्डियाँ किसी बुद्ध-भक्त की हैं। उन्होंने इस बात की सूचना बङ्गाल की एशियाटिक सोसाइटी को दी। तभी से प्राचीन बौद्ध-स्थान के नाम से सारनाथ की प्रसिद्धि हुई।

इस आविष्कार से बहुत से लोगों का ध्यान सारनाथ की ओर आकृष्ट हुआ और कई लोगों ने यहाँ खुदाई शुरू की। पर इस खुदाई में स्वार्थ की मात्रा अधिक थी। कहते हैं, सन् १८१५ में, कर्नेल मेकञ्ज़ी ने यहाँ कुछ खुदाई कराई, पर उसका कुछ हाल ज्ञात नहीं। पुरातत्त्व-विभाग के नियमानुसार दिसम्बर १८३४ से जनवरी १८३६ तक कनिंघम साहब ने पहले पहल यहाँ खुदाई की। धमेख-स्तूप की वायव्य दिशा में आपको, अपने खुदवाये हुए एक मन्दिर और मठ के पास, एक कोठरी में बुद्ध की कोई ६० मूर्तियाँ इकट्ठी मिलीं। साथ ही और भी कुछ प्राचीन चिह्न मिले। इनमें से कुछ पर गुप्त-लिपि में खुदे हुए दान-लेख हैं। इससे अनुमान होता है कि हूणों के आक्रमण के समय (ईसवी छठी शताब्दी के आरम्भ में) रक्षा के लिए ये मूर्तियाँ यहाँ रक्खी गई होंगी। ये मूर्तियाँ एशियाटिक सोसाइटी को दी गईं और इस समय कलकत्ते के सङ्ग्रहालय में वर्तमान हैं। इनके सिवा जो और कई मूर्तियाँ और वस्तुयें पाई गईं उनमें से बहुत सी वरुणा के पुल बाँधने में लगा दी गईं!

इसके बाद इञ्जिनियर किट्टो, जज टामस, प्रोफ़ेसर हाल, डाक्टर बटलर, मिस्टर हार्न और मिस्टर कार्नेक ने यहाँ बहुत कुछ खोज की। परन्तु उनकी पाई हुई वस्तुओं में से बहुत सी लापता हैं। यद्यपि गवर्नमेंट ने सन् १८५६ में सारनाथ की ज़मीन अपने क़ब्ज़े में कर ली थी तथापि सन् १९०० तक इन प्राचीन वस्तुओं की रक्षा का कुछ भी प्रबन्ध न हो सका। इसके बाद सारनाथ तक एक नई सड़क बनाते समय ओरटेल साहब इञ्जिनियर को बुद्ध की एक सुन्दर और अखण्डित मूर्ति मिली। इससे उत्साहित होकर पुरातत्त्व-विभाग की अनुज्ञा और सहायता से ओरटेल साहब ने डिस्ट्रिक्ट इञ्जिनियर रायबहादुर बी० बी० चक्रवर्ती के साथ, सन् १९०४–१९०५ में, खुदाई शुरू की। जगत्सिंह के नष्ट किये हुए स्तूप के उत्तर में जो टीला था उस पर ओरटेल साहब ने ध्यान दिया। किट्टो साहब का अनुमान था कि यहाँ भी एक स्तूप होगा। पर खोदने से ज्ञात हुआ कि वहाँ पर सारनाथ का पुराना मुख्य मन्दिर था। उसी के पीछे अशोक-स्तम्भ और उसका सिंह-शिखर पाया गया। इसके सिवा कई मूर्तियाँ और लेख और भी पाये गये। उस साल की खुदाई में यहाँ ४१ लेख और ४७६ अवशिष्ट चिह्न मिले।

ओरटेल साहब की बदली आगरे को हो जाने से अगले साल यह काम बन्द रहा। पर सन् १९०७ में पुरातत्त्व-विभाग के डायरेक्टर जनरल मार्शल साहब ने कई और महाशयों की सहायता से फिर काम शुरू किया। इस खुदाई में कुशान और गुप्त-काल से लेकर बारहवीं शताब्दी तक के अवशेष चिह्न पाये गये और यह बात सिद्ध हो गई कि गुप्त-काल में धर्म्मचक्र अच्छी स्थिति में था। वह बारहवीं शताब्दी के मध्य तक भी वर्तमान था। जब ऐसी बहुमूल्य वस्तुयें अधिकता से यहाँ पाई गईं तब यहाँ एक सङ्ग्रहालय की इमारत बनवाना निश्चय हुआ। तदनुसार सन् १९१० में एक इमारत बन कर तैयार हो गई। यह इमारत बौद्धविहार के नमूने पर बनाई गई है।

## प्राप्त पदार्थ।

प्राप्त हुए पदार्थों में सबसे प्रसिद्ध अशोक-स्तम्भ का सिंह-शिखर है। इस संख्या में उसका चित्र प्रकाशित किया जाता है। उसे देख कर उसकी कारीगरी का अन्दाज़ा पाठक स्वयं कर सकेंगे। मौर्य्य और शुङ्ग-काल के अन्य अवशिष्ट पदार्थों का उल्लेख आरम्भ में ही हो चुका है। इसके सिवा कुछ खम्भे भी पाये गये हैं। ये आन्ध्रकाल में बने हुए कठड़ों के हैं। इन पर कहीं धर्म, सङ्घ और

बुद्ध के त्रिरत्न का निदर्शक त्रिशूल है, और कहीं धर्मचक्र है।

इन प्राचीन वस्तुओं के विषय में एक बात ध्यान में रखने योग्य है। इनमें बुद्ध की मूर्ति कहीं नहीं है। यद्यपि बारहवीं शताब्दी के एक लेख में अशोक-कालीन बुद्ध-मूर्ति का उल्लेख है, तथापि पुरातत्त्व-विषयक बातों से जान पड़ता है कि अशोक के समय में बुद्ध की मूर्तियाँ न बनी थीं। बुद्ध-मूर्ति की उत्पत्ति प्राचीन कन्धार देश में बैक्ट्रिया के सङ्गतराशों ने की। वहाँ से उसका प्रचार मथुरा में हुआ। फिर अन्त में गङ्गा के तटवर्ती नगरों में। सारनाथ में प्राप्त मूर्तियों में से सबसे प्राचीन बुद्ध की एक प्रचण्ड मूर्ति है। यह कनिष्क के तीसरे राज्य-वर्ष में बनाई गई थी। यह सारनाथ की अन्य मूर्तियों की तरह चुनार के पत्थर की नहीं है, मथुरा के लाल पत्थर की है। इस मूर्ति का दान करने वाले बल नाम के भिक्षु का नाम मथुरा में भी एक मूर्ति पर खुदा हुआ पाया जाता है। इन प्राचीन मूर्तियों पर पत्थर का छत्र मिलता है। इससे पुरातत्त्वज्ञों का अनुमान है कि उस समय मूर्तियों के लिए मन्दिर नहीं बनाये जाते थे। सारनाथ के लेखों में मन्दिर-सम्बन्धी सबसे प्राचीन उल्लेख गुप्त-कालीन लेखों में पाया जाता है। मूर्तियों के वस्त्र और प्रभामण्डल में ग्रीक कला की झलक दिखाई देती है। परन्तु गुप्त-काल की बनी हुई मूर्तियाँ सर्वोत्तम हैं। इनमें पाश्चात्य कारीगरी की झलक बिलकुल नहीं। इनमें से कुछ मूर्तियों का गम्भीर भाव बड़ा ही हृदयहारी है।

मूर्ति बनाने की प्रथा का आरम्भ होते ही अन्य बोधिसत्वों तथा अन्य देवताओं की भी मूर्तियाँ बनाई जाने लगीं। सारनाथ में ही ऐसी अनेक मूर्तियाँ पाई गई हैं। इनमें अवलोकितेश्वर, मैत्रेय, जम्भल, वसुधारा, वज्रवाराही इत्यादि की मूर्तियाँ देखने लायक़ हैं। मूर्तियों के सिवा बुद्ध-विषयक अन्य प्रसङ्गों के चित्र भी खुदे हुए पाये गये हैं।

इन मूर्तियों और अन्यान्य चित्रों के सिवा और कई वस्तुयें भी मिली हैं। इनमें बड़े बड़े मटके, पानी के घड़े, प्याले, सिल-लोढ़े और ओखली-मूसल आदि भी हैं। इन सब का वर्णन यहाँ नहीं हो सकता।

सारनाथ का सङ्ग्रहालय सचमुच ही अवलोकनीय है।

हरि रामचन्द्र दिवेकर।

---

## हिन्दुस्तानी सिपाहियों की वीरता।

### ( ३ )

आज कल हमारे हिन्दुस्तानी सिपाही ब्रिटिश राज्य की ओर से केवल फ़्रान्स और बेलजियम के रणक्षेत्र में ही नहीं, अन्य कई देशों तथा महाद्वीपों में भी अपनी राजभक्ति और वीरता का परिचय दे रहे हैं। कुछ तो मिश्र देश में स्वेज़ के नहर की रक्षा कर रहे हैं और कुछ पूर्वी आफ्रिका में वहाँ के जर्मन प्रान्त पर हमला कर रहे हैं। चीन में एक जगह कियाऊचाऊ है। वहाँ जर्मनी ने एक मज़बूत क़िला बनाया था। उसे लेने में हमारे कुछ सिपाहियों ने जापान को बहुत मदद दी। कुछ हिन्दुस्तानी फ़ौज तुर्की के मसोपटामिया अर्थात् इराक़-अरब प्रान्त में तुर्कों से कई बार टक्कर ले चुकी है और उन्हें अच्छी तरह हरा भी चुकी है। इस प्रान्त की लड़ाई में मराठे सिपाहियों ने तथा राजपूताना-निवासी राजपूत गूजड़ और मेरे जाति के योद्धाओं ने अपनी बहादुरी का अच्छा परिचय दिया है। उनके साथ जो थोड़े से पञ्जाबी, दक्षिणी मुसलमान, तथा संयुक्तप्रान्त-निवासी क्षत्रिय सिपाही थे। उन्हों ने भी ख़ूब नाम किया है।

जिस प्रकार हिन्दुस्तानी सेना अन्य प्रान्तों की समर-भूमि में गई है उसी प्रकार कुछ सेना दरेदानियाल के रणक्षेत्र में भी पहुँची है। वहाँ पर कम से कम एक हिन्दुस्तानी ब्रिगेड ( बेड़ा ) और एक दो पहाड़ी तोपख़ाने भी ऐसे हैं जिनके गोलन्दाज़ भी सब हिन्दुस्तानी ही हैं।

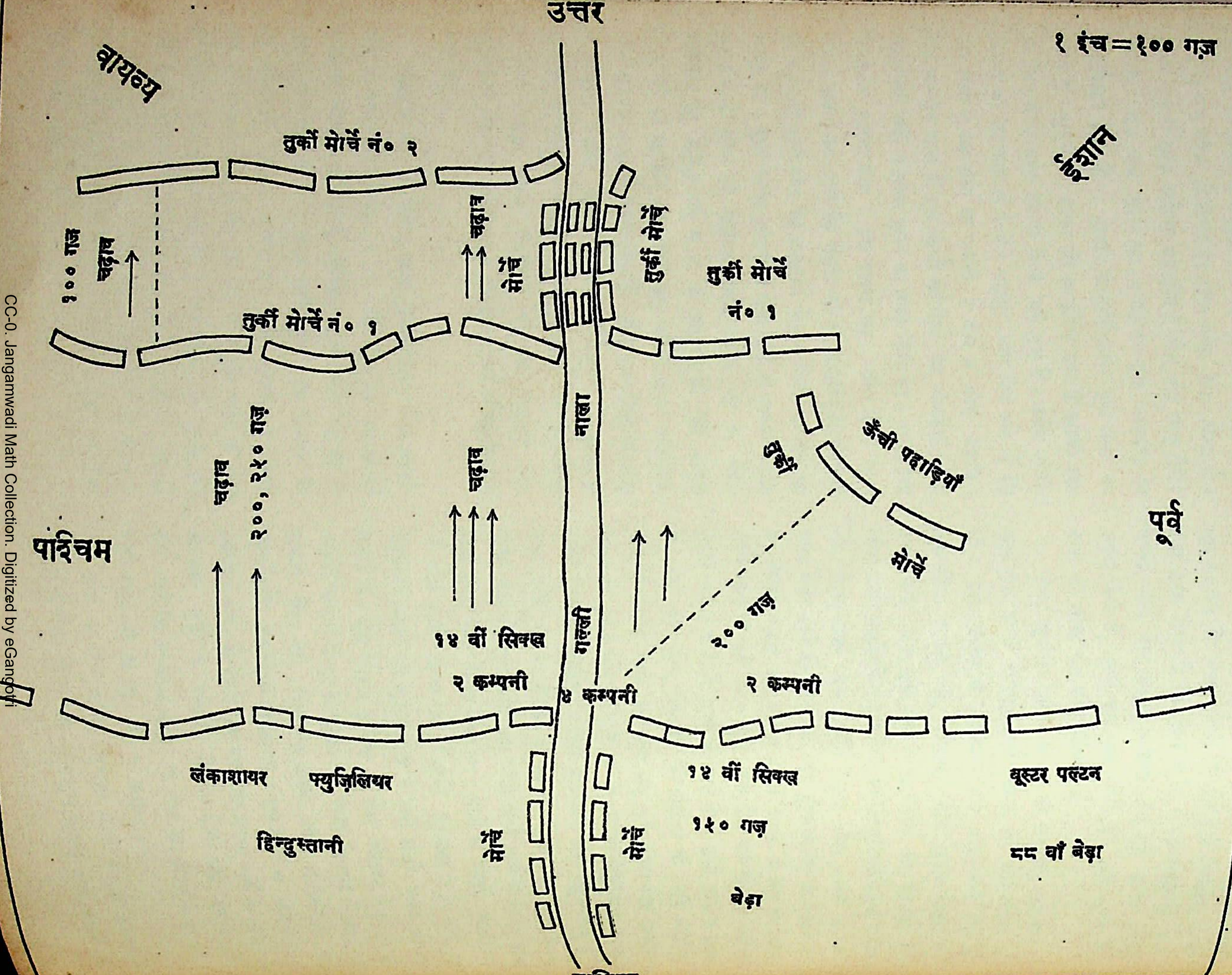
तुर्कों की राजधानी कुस्तुनतुनिया ( स्तम्बोल ) जाने के लिए दरेदानियाल के मुहाने से जहाज़ पर जाना पड़ता है। मुहाना एक मील से लेकर दो तीन मील तक चौड़ा है। उसके दाहनी तरफ़ एशिया महाद्वीप है और बाँई तरफ़ योरप महाद्वीप का एक छोटा सा प्रायद्वीप। इस प्रायद्वीप को गेलीपोली कहते हैं। मुहाने के दोनों तरफ़ तुर्क लोगों का राज्य है। मुहाने से होकर जो सामुद्रिक मार्ग है उसकी रक्षा के लिए दोनों तरफ़ तट पर क़िले बने हुए हैं। जर्मन एन्जीनियरों की सहायता से वे ऐसे मज़बूत बना दिये गये हैं कि उस रास्ते न जल-सेना जा सकती है और न कोई जहाज़। गत फाल्गुन मास में इन क़िलों को तोड़ कर अँगरेज़ी और फ़रासीसी बेड़ों ने भीतर घुसने का प्रयत्न किया था। परन्तु उन्हें नुक़सान उठाना पड़ा। इस कारण यह उद्योग छोड़ दिया गया। सलाह यह ठहरी कि गेलीपोली के प्रायद्वीप में अँगरेज़ी फ़ौज उतारी जावे और वह थलमार्ग से इन क़िलों को लेने का प्रयत्न करे। इसी प्रकार फ़रासीसी सेना पीछे से जाकर एशिया महाद्वीप की तरफ़ के समुद्र-तटवर्ती क़िलों को जा घेरे। थलसेना को समुद्र मार्ग से ले जा कर शत्रुओं की आँखों के सामने ही सुरक्षित उतार देना बड़ा कठिन, प्रायः असम्भव, कार्य समझा जाता है। पर अँगरेज़ी और फ़रासीसी जलसेना ने अनुपम उद्योग और युद्ध-कौशल दिखाया। साथ ही थलसेना के अफ़सरों ने ऐसी कार्य्य-कुशलता और सिपाहियों ने ऐसी अतुल वीरता प्रदर्शित की कि अँगरेज़ी और फ़रासीसी थलसेना अपने अपने निर्दिष्ट स्थानों पर कुशलपूर्वक उतर गई।

अँगरेज़ी सेना में विशेष करके आस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलेंड से आये हुए सैनिक थे। उन्हीं के साथ एक या दो पञ्जाबी पल्टनें, एक या दो गोरखा पल्टनें और एक या दो पहाड़ी तोपखाने भी थे। काम आये हुओं तथा घायलों की जो फ़हरिस्तें समय समय पर छपा करती हैं उनसे यह भी मालूम होता है कि इस बेड़े में संयुक्त प्रान्त के थोड़े से ब्राह्मण और क्षत्रिय भी हैं। गेलीपोली में उतरे हुए गोरे तथा हिन्दुस्तानी सैनिकों को वैसी ही कठिन लड़ाई लड़नी पड़ी है जैसी कि फ़्रान्स और बेलजियम में हो रही है। इसका एक उदाहरण सुनिए। उसका सम्बन्ध १४ नंबर की सिक्ख पल्टन से है।

इस पल्टन में विशेष करके फ़ीरोज़पुर ज़िले के जाट-सिक्ख भरती होते हैं। इन लोगों ने जो वीरता चौथी और पाँचवीं जून १९१५ को 'गल्ली' नाले की लड़ाई में दिखलाई है उससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि जिस भूमि ने भीष्मपितामह, द्रोणाचार्य्य, भीम और अर्जुन के सदृश वीर कई हज़ार वर्ष पूर्व उत्पन्न किये थे, उसमें कुछ कुछ वैसे ही वीर पुरुष पैदा करने की शक्ति अब भी विद्यमान है।

चौथी जून को पूर्वोक्त पल्टन की खाइयाँ, गल्ली नाले को काट कर, उसके आरपार पूर्व-पश्चिम की ओर निकल गई थीं। इस पल्टन के दाहिनी ओर ८८ नंबर बेड़े की एक गोरा पल्टन थी, जिसका नाम वूस्टर पल्टन है। उसके बाईं ओर एक और गोरा पल्टन थी, जिसका नाम लंका शायर फ्यूज़िलियर्स है और जो हिन्दुस्तानी बेड़े में शामिल थी। हिन्दुस्तानी बेड़ा बाँईं तरफ़ और गोरों का ८८ नंबर बेड़ा दाहिनी तरफ़ था। हिन्दुस्तानी बेड़े के दाहिने छोर पर सिक्ख पल्टन थी; उसका स्थान नाले के पार था। उसके मोर्चे नाले के पूर्व १५० गज़ तक फैल गये थे और वहीं से वूस्टर पल्टन के मोर्चे शुरू हो जाते थे। इसी नाले के पश्चिम में, कुछ दूर तक, सिक्खों की खाइयाँ थीं। तुर्क लोगों की खाइयाँ सामने नाले को काट कर पूर्व-पश्चिम ओर अन्दाज़न २०० से ३०० गज़ की दूरी पर थीं। नाला सङ्कीर्ण था। उसके दोनों किनारे चालीस पचास फुट ऊँचे और बहुत ढालू थे। कहीं कहीं तो वे दीवार के समान सीधे थे। इस कारण दोनों ओर के आदमियों को पीछे आने जाने के लिए प्रायः ढका हुआ रास्ता मिल गया था। पीछे से उनका आवागमन भी उसी रास्ते होता था। जितनी सुगमता से वे पीछे जा सकते थे उतनी ही सुगमता से वे उसी रास्ते आगे भी बढ़ सकते थे। इस कारण दुश्मन ने और सिक्ख सेना ने भी अपनी अपनी तरफ़ के नालों के दोनों किनारों के ऊपर भी गुफ़ायें और गढ़े खोद कर उनके भीतर मशीन-गनों और सिपाहियों को छिपा रक्खा था। इस दशा में यदि शत्रु के सिपाही नाले के रास्ते घुस आने का प्रयत्न करें तो दोनों तरफ़ से तथा ऊपर के कगारों से भी दोनों ओर इतनी कठिन मार पड़े कि उनमें से कोई भी लौट कर जीता न जा सके। आगे बढ़ने की तो बात ही न कहिए।

जहाँ पर हिन्दुस्तानी बेड़ा था उसके सामने की ज़मीन धीरे धीरे ऊँची होती गई थी। इस कारण उसके सामने तुर्कों



उत्तर
१ इंच = १०० गज़
वायव्य
ईशान
तुर्की मोर्चे नं० २
१०० गज़
चढ़ाव
चढ़ाव
मोर्चे
तुर्की मोर्चे
तुर्की मोर्चे नं० १
तुर्की मोर्चे
नं० १
नाला
तुर्की
ऊँची पहाड़ियाँ
मोर्चे
पश्चिम
पूर्व
चढ़ाव
२००, २५० गज़
चढ़ाव
२०० गज़
१४ वीं सिक्ख
गल्ली
२ कम्पनी
४ कम्पनी
२ कम्पनी
लंकाशायर
फ्युज़िलियर
हिन्दुस्तानी
मोर्चे
मोर्चे
१४ वीं सिक्ख
१५० गज़
बेड़ा
बूस्टर पल्टन
८८ वाँ बेड़ा
दक्षिण

फ़ौज ने एक के पीछे एक, ऐसी दो क़तारें खाइयों की बनवा दी थीं। एक क़तार तो अन्दाज़न २००—२५० गज़ की दूरी पर और दूसरी ३००—३५० गज़ की दूरी पर थी। इस कारण उस बेड़े के सिपाहियों पर दुहरी मार पड़ती थी। वे बेचारे थे नीची ज़मीन पर। इस कारण वे खाइयों की दो क़तारें न बना सकते थे।

यह हाल तो था नाले के पश्चिम ओर का। अब नाले के पूर्व ओर का हाल सुनिए। वहाँ सिक्ख पल्टन की दो कम्पनियाँ थीं। उस जगह २०० गज़ की दूरी पर पूर्व से उत्तर की तरफ़ गई हुई एक पहाड़ी थी। उस पहाड़ी पर भी तुर्क लोगों ने खाइयाँ खोद कर मोर्चे तैयार कर लिये थे। सामने तो मोर्चे थे ही। इस दशा में नाले के पूर्व की ओर से २०० गज़ तक बढ़ने वालों पर दुतरफ़ा क्या तितरफ़ा मार पड़ती थी।

इस विषय का नक़शा देखिए—

चौथी जून के हमले में चौदहवीं पल्टन को दो टुकड़ों में बँट जाने का हुक्म मिला। पहली टुकड़ी को यह काम दिया गया कि नाले के कगारों को दबा कर ८८ नम्बर के बेड़े और हिन्दुस्तानी बेड़े से अपनी लैन मिला लें। फिर सामने के मोर्चों पर हमला करें। दूसरी टुकड़ी को यह हुक्म हुआ कि नाले के भीतर से कुछ दूर पीछे घुस जाओ। फिर, उसके दोनों किनारों पर तुर्कों की जो खाइयाँ हैं उन पर क़ब्ज़ा कर लो। यह करके उन लोगों के दूसरे नम्बर के मोर्चों के पीछे हो जाओ।

गेलीपोली की अँगरेज़ी फ़ौज के प्रधान सेनापति ने जो वर्णन इस युद्ध का भेजा है वह एक प्रकार से कुछ अस्पष्ट है। तथापि अनुमान से मालूम होता है कि सिक्खों की दो कम्पनियाँ नाले की दाहनी तरफ़ से, दो बाईं तरफ़ से और चार नाले के भीतर से, कुछ दूर पीछे बढ़ीं। ८८ नम्बर बेड़े का धावा सफल हुआ। उसका काम औरों की अपेक्षा सुगम भी था। उसकी बाईं तरफ़ और नदी की दाहिनी तरफ़ जो दो सिक्ख-कम्पनियाँ बढ़ रही थीं उनका काम अधिक कठिन था। कारण यह कि उन पर तीन तरफ़ से मार पड़ती थी। एक तो सामने से, दूसरे ईशान कोण की पहाड़ियों से। इसके सिवा वायव्य की ओर जो दुहरे मोर्चों की क़तार थी उससे भी ये लोग साफ़ देख पड़ते थे। इस कारण उन पर वहाँ से भी गोलियों की बाढ़ पर बाढ़ छूटती थी। इस प्रकार तीनों ओर से गोलियों तथा गोलों की मार खाते हुए आगे बढ़ना मानो सीधे सिंह के मुख में जाना था; और सिंह भी अपना जबड़ा खोले हुए खड़ा बाट ही देख रहा था। परन्तु १४ नम्बर की पल्टन के "सिंह" झपटते हुए चले ही गये। उन पर तुर्कों ने गोलियों की बौछार छोड़ना आरम्भ कर दिया। पर सिक्ख लोग डरने वाले नहीं। वे शत्रुओं के मोर्चों तक पहुँच ही गये। जो साथी रास्ते में गिर गये उन पर उन्होंने नज़र ही न डाली। गरजते हुए वे तुर्कों की सामनेवाली खाइयों में घुस पड़े और सङ्गीनों द्वारा शत्रुओं को मार काट ढकेल बाहर किया। खाइयों पर उन्होंने अपना क़ब्ज़ा कर लिया। रात भर वे उनकी रक्षा करते रहे। तुर्कों ने भी विकट शौर्य दिखलाया। परन्तु गुरु गोविन्दसिंह के शिष्यों ने उनके दाँत बेतरह खट्टे कर दिये। उनकी दाहनी ओर से जो गोरा पल्टन बढ़ी थी उसका कुछ भाग पहाड़ियों के पश्चिम में था। परन्तु वे लोग कगारों की आड़ में थे। इस कारण उन्हें बहुत कम हानि पहुँची।

सिक्खों की ये दो कम्पनियाँ ५ तारीख़ को वापस बुलाई गईं। उनकी जीती हुई खाइयों की रक्षा के लिए और फ़ौज भेजी गई। हाज़िरी ली गई तो मालूम हुआ कि केवल एक अँगरेज़ और एक हिन्दुस्तानी (अर्थात् सिक्ख) अफ़सर और कुल १४ सिपाही अछूते बचे हैं।

अब उन दो कम्पनियों की वीरता का हाल सुनिए जो नाले के बाईं ओर के कगारों को दबाती हुई आगे बढ़ी थीं। उनका काम यह था कि हिन्दुस्तानी बेड़े के साथ साथ आगे बढ़ें और कगारों वाले तुर्की मोर्चों पर हमला करके उन्हें वहाँ से निकाल बाहर करें। इस बेड़े का काम भी बहुत कठिन था। उस पर सामने से दुहरी मार पड़ती थी। २५० गज़ का मैदान पार करना यों ही कठिन काम था। फिर उस तरफ़ बराबर चढ़ाव था। फल यह हुआ कि यह बेड़ा शत्रुओं को पहले नम्बर की खाइयों से न निकाल सका। बहुत हानि हो जाने से इस बेड़े की पल्टनों को लाचार होकर पीछे हटना पड़ा। परन्तु सिक्ख-कम्पनियों ने वापस लौटना पसन्द न किया। बचे बचाये सिपाही जहाँ तक पहुँचे थे वहीं, कगारों के ऊपर, कुछ आड़ के सहारे, रह गये। इन लोगों के तीन चौथाई साथी काम आ चुके थे। अँगरेज़ अफ़सरों में से तो एक भी न बचा था।

अब ज़रा उन लोगों का हाल सुनिए जो कुछ समय पीछे नाले के भीतर से घुसे थे। उनका आगे बढ़ना था कि दोनों किनारों के गढ़ों और गुफाओं से बन्दूकों तथा मशीन गनों की बाढ़ पर बाढ़ आने लगी। पहली ही बाढ़ से चौथाई आदमी गिर गये। पर बचे हुए सिक्ख ज़रा भी बिना हिचके झपटते हुए आगे बढ़े। परन्तु बाईं तरफ़ के बेड़े का हमला निष्फल हो जाने के कारण तुर्क लोगों को अपनी गुफायें छोड़ने की आवश्यकता न पड़ी। वे लोग सिक्खों पर बराबर वार करते ही रहे। तो भी असीम पराक्रमपूर्वक, इधर उधर कुछ ज़रा सी आड़ के सहारे, सिक्खों ने उस जगह पर कब्ज़ा कर ही लिया। उन्होंने अपनी दो मशीन-गनें चढ़ा दीं और आस पास के शत्रुओं से लड़ते रहे। इस प्रकार लड़ते भिड़ते उन्होंने रात काटी। सुबह होते ही तुर्कों ने कगारों के ऊपर से उन पर बम्ब छोड़ना शुरू किया। इसके जवाब में सिक्खों के पास कुछ भी न था। उस समय चार कम्पनियों में से कमाण्डिङ्ग अफ़सर, एक डाक्टर और केवल ४७ सिपाही रह गये थे। लाचार होकर उन्हें लौटना पड़ा।

हमले के आरम्भ में इस पल्टन में १५ अँगरेज़ अफ़सर, १४ सिक्ख अफ़सर और ५१४ सिपाही थे। दूसरे दिन सबेरे जब हाज़िरी ली गई तब केवल ३ अँगरेज़ और ३ सिक्ख अफ़सर और १३४ सिपाही जीते मिले। बाक़ी या तो मारे गये या घायल हो गये। जनरल ईयान हेमिल्टन साहब गेलीपोली में अँगरेज़ी सेना के प्रधान सेनापति थे। आपका कहना है कि इतनी भयङ्कर हानि उठाने पर भी एक भी सिपाही विचलित नहीं हुआ। जो जगह जिस टुकड़ी के हाथ आई उसे, हज़ार आपत्ति आने पर भी, उसने शत्रु के हाथ में नहीं जाने दिया।

इस पल्टन के दाहने बायें गोरा पल्टनें थीं। उनके सिपाहियों और अफ़सरों ने सिक्खों की वीरता अपनी आँखों से देखी है। वे लोग हिन्दुस्तान के इन योद्धाओं की प्रशंसा हृदय से कर रहे हैं। जिस नाले के दोनों कगारों पर और अगल बग़ल भी शत्रु मशीनगनें और बन्दूकें लिये छिपे हों उसकी घाटी में घुस जाने की हिम्मत करना ही विलक्षण शूरता है। फिर उसमें घुस कर रात भर एक स्थान पर डटे रहना वीरता की सीमा हो गई। इस प्रकार की वीरता का वर्णन करने के लिए भाषा-कोष में शब्द नहीं। सिक्ख लोग वीर-जाति के हैं। हिन्दुस्तान के इतिहास में उनकी अद्भुत वीरता के कितने ही उदाहरण पाये जाते हैं। परन्तु "गल्ली" नाले की लड़ाई में उन्होंने जो जवाँमर्दी दिखलाई है उससे बढ़ कर उदाहरण सिक्ख-इतिहास में भी शायद ही कहीं और मिले।

आस्ट्रेलिया तथा न्यूज़ीलेंड आदि उपनिवेशों के रहने वाले अपने देश में हिन्दुस्तानियों को नहीं आने देना चाहते। वे लोग इन्हें अपनी अपेक्षा कम दरजे के समझते हैं। परन्तु यदि ऊँच-नीच होना मनुष्य के गुणों पर अवलम्बित है तो इस युद्ध में हिन्दुस्तानियों ने दिखा दिया है कि वहाँ के निवासियों की अपेक्षा वे लोग यदि बढ़ कर शूर नहीं हैं, तो उनसे कम भी नहीं हैं। यह बात १४ नम्बर की पल्टन के सिपाहियों ने उन उपनिवेशों से आये हुए योद्धाओं को प्रत्यक्ष दिखा दिया है।

लज्जाशङ्कर झा

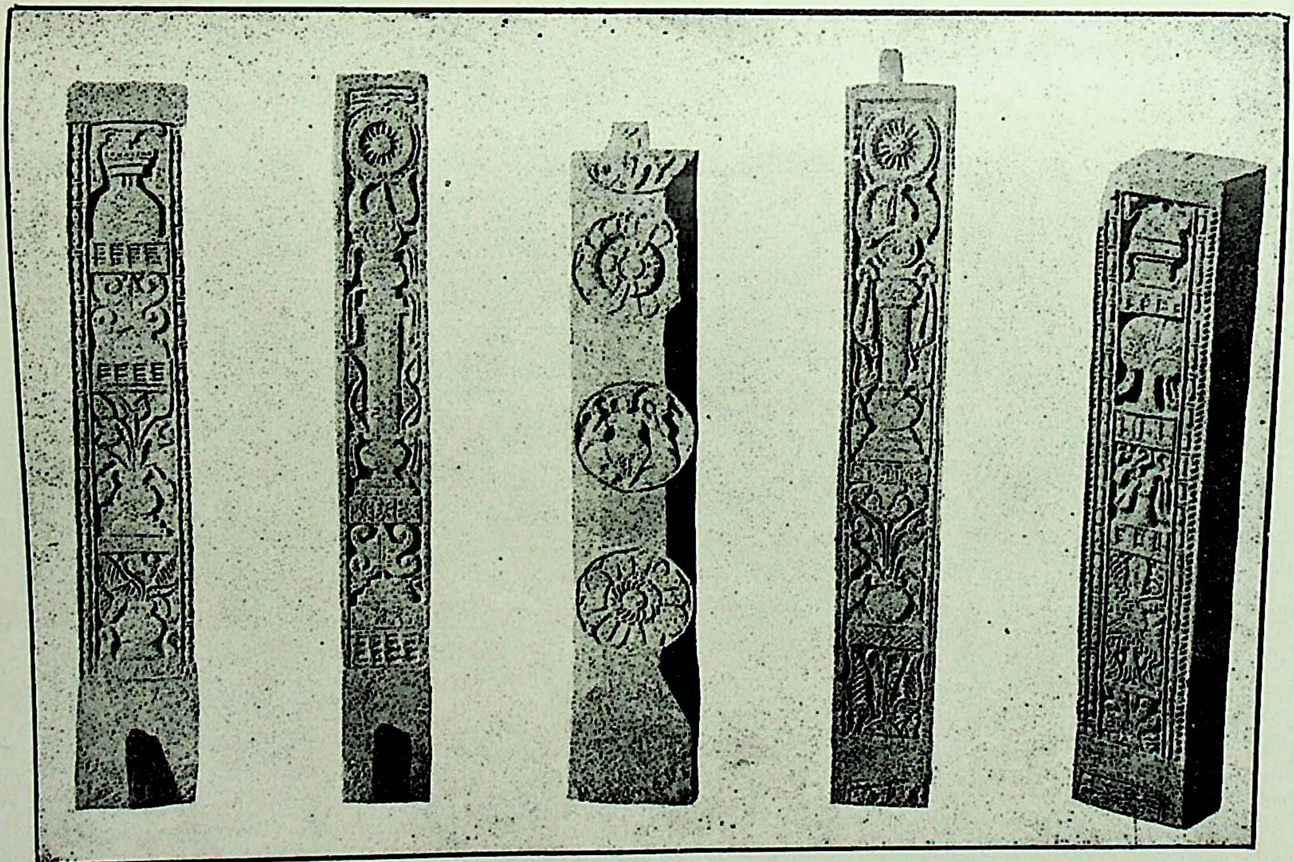
---

## अङ्गद और रावण।

[ रामचरित-चिन्तामणि से उद्धृत ]

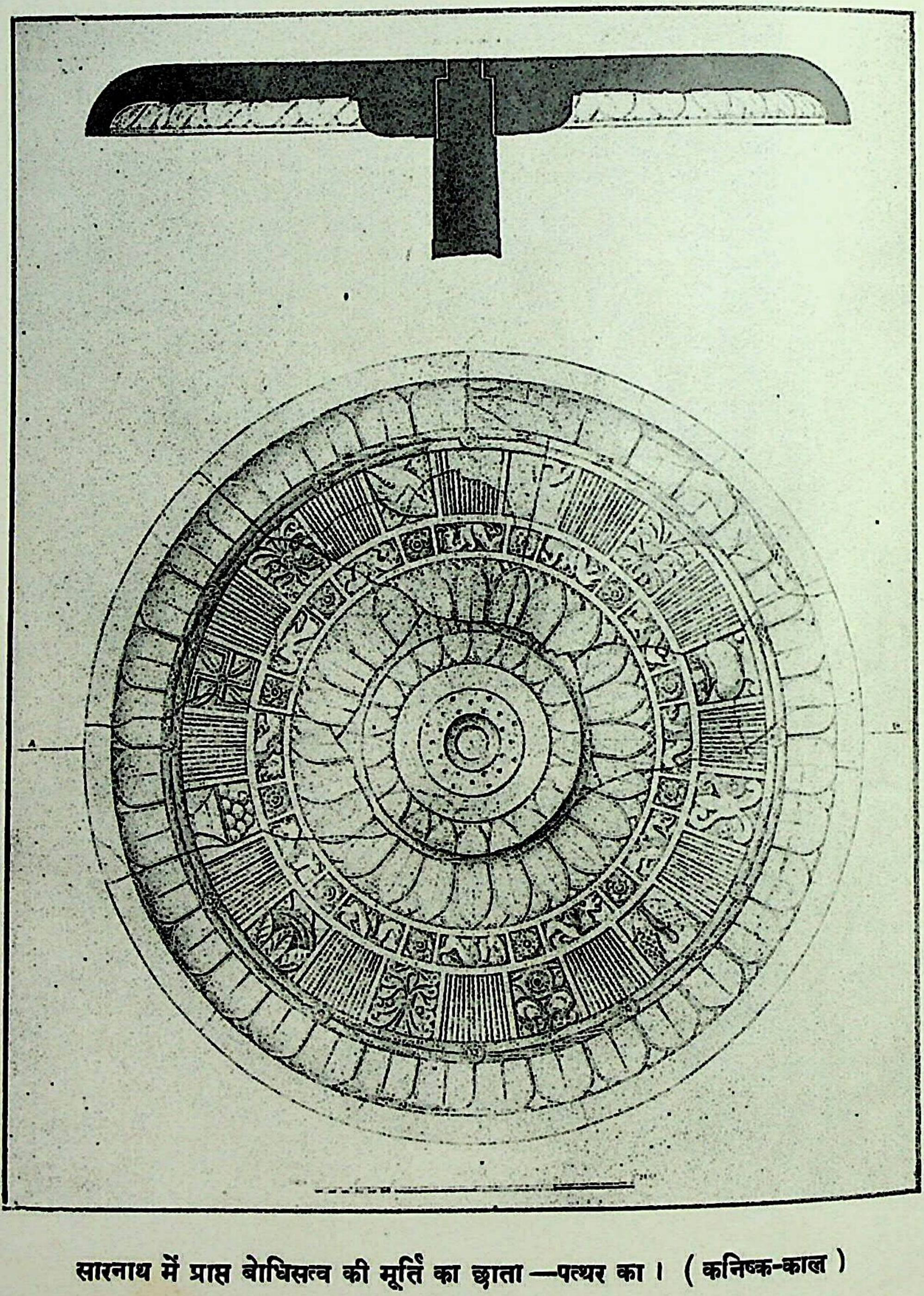
### अङ्गद।

मम निवेदन है कुछ आप से; सुन उसे उर में धर लीजिए।
ग्रहण है करता जिस युक्ति से मधुप सारस-सार सहर्ष हो॥ १॥
जनकजा रघुनायक हाथ में तुरत जाकर अर्पण कीजिए।
पर-वधू-जन से रहते सदा अलग सन्तत सन्त तमीचर!॥ २॥
कुशल से रहना यदि है तुम्हें, दनुज! तो फिर गर्व न कीजिए।
शरण में गिरिए रघुनाथ के; निबल के बल केवल राम हैं॥ ३॥



सारनाथ में प्राप्त कठड़े के ५ स्तम्भ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।



सारनाथ में प्राप्त बोधिसत्व की मूर्ति का छाता—पत्थर का। (कनिष्क-काल)

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

दुखद है तुमको जनकात्मजा; तुरत दूर उसे कर दीजिए ।
सुखद हो सकती न उलूक को नय-विशारद ! शारद चन्द्रिका ॥ ४ ॥
बहुत बार हुए विजयी सही; पर नहीं रहते दिन एक से ।
सँभल के रहिए, अब आपकी ग्रह-दशा न दशानन ! है भली ॥ ५ ॥
स्वकुल की करिए शुभ-कामना; सपदि युक्ति वही नृप ! सोचिए ।
न अब भी जिसमें करना पड़े, कठिन सङ्गर सङ्ग रमेश के ॥ ६ ॥
स्वमन को वश में रखिए सदा; अनय से पर-वस्तु न लीजिए ।
नृप ! कभी सुख-दायक हैं नहीं —सुत, रसा, धन साधन के विना ॥ ७ ॥
समय है अनमोल, कुकर्म में तुम विनष्ट करो उसको नहीं ।
दनुज ! है जग में सुखदायिनी नियम-हीन मही न महीप को ॥ ८ ॥
परम वीर चढ़े रघुवीर हैं तव पुरी पर वारिधि बांध के ।
छितिप ! आकर के रिपु-राज्य में तनिक भीरु कभी रुकते नहीं ॥ ९ ॥
कवि, गुणी, बुध, वीर, नयज्ञ भी, समझिए मन में निज को स्वयम् ।
पर विना कुछ कार्य किये कभी न मन-मोदक मोद-कलाप है ॥ १० ॥
सब सुरासुर हों वश आपके, करगता यदि हों सब सिद्धियाँ ।
तदपि हे दनुजेश्वर ! जानना—निज बिना शक नाशक राम को ॥ ११ ॥
अखिल-लोक-नृपेश्वर राम को समझ के उनसे मिलिए अभी ।
यह पुरी रघुनाथ-रणाग्नि में दनुज ! होम न हो, मन में डरो ॥ १२ ॥

## रावण ।

सुन कपे ! यम, इन्द्र, कुबेर की न हिलती रसना मम सामने ।
तदपि आज मुझे करना पड़ा मनुज-सेवक से बकवाद भी ॥ १ ॥
यदि कपे ! मम राक्षसराज का स्तवन है तुझसे न किया गया ।
कुछ नहीं डर है—पर क्यों वृथा निलज ! मानव-मान बढ़ा रहा ॥ २ ॥
तनय होकर भी मम मित्र का शठ ! न आकर क्यों मुझसे मिला ?
उदर के वश हो किस भाँति तू नर-सहायक हाय कपे ! हुआ ॥ ३ ॥
वसन, भोजन ले मुझसे सदा; विचर तू सुख से मम राज्य में ।
उस नृपात्मज के हित दे वृथा सुखद जीव न जीवन के लिए ॥ ४ ॥
तुम बिना करतूत बका करो; वचन-वीर ! सुनो हम वीर हैं ।
रिपु-विनाशक यज्ञ किये बिना समर-पावक पा बकते नहीं ॥ ५ ॥
बल सुना कर तू शठ ! राम का पच मरे, पर मैं डरता नहीं ।
झख भयातुर हो करके, बता, कब तिरोहित रोहित से हुआ ? ॥ ६ ॥
कवल-दायक के गुण-गान में निरत तू रह वानर ! सर्वदा ।
समर है सुख-दायक शूर को, कब रुचा रण चारण को भला ? ॥ ७ ॥
जनकजा-हृत चित्त हुआ सही; तदपि तापस से कम मैं नहीं ।
मधुर मोदक क्या पच जायगा—कपि ! सवा मन वामन-पेट में ॥ ८ ॥

लड़ नहीं सकता मुझसे कभी तनिक भी नृप-बालक स्वप्न में।
कब, कहाँ, कह तो किसने लखा, कपि! लवा-रण वारण से भला? ॥ ९ ॥
यह असम्भव है यदि राम भी समर सम्मुख रावण से करे।
कह कपे! उठ है सकती कभी यह रसा बक-शावक-चोंच से ॥ १० ॥
निलज हो बहको, निज नाथ के सुयश-गान करो, कपि-जाति हो।
जगत में दिखला कर पेट को, वचनवीर! न वीर नचा कभी ॥ ११ ॥
मम नहीं हित-साधक जो हुआ, वह न हो सकता पर का कभी।
कपट रूप बना कर राम का कपि! विभीषण भीषण शत्रु है ॥ १२ ॥
मर मिटें रण में, पर राम को हम न दे सकते जनकात्मजा।
सुन कपे! जग में बस वीर के सुयश का रण कारण मुख्य है ॥ १३ ॥
चतुरता दिखला मत व्यर्थ तू; रसिक हैं रण के हम जन्म से।
रुक नहीं सकते सुन के कभी, वचन-वत्सल वत्स! लड़े बिना ॥ १४ ॥

रामचरित उपाध्याय।

---

# शाकुन्तल में उपेक्षा।

[ प्रियंवदा और अनसूया। ]

संस्कृत-साहित्य के सम्राट्, कवि-कुल-चक्रवर्ती, महाकवि कालिदास शताब्दियाँ बीत जाने पर भी सहृदय जनों के हृदयों में आज तक पूर्ण आदर से अधिष्ठित हैं। कालिदास की प्रसाद-गुण-पूर्ण, सरस, सालङ्कार और सुवर्णमयी कविता-वनिता रसिक पाठक के शिरीष-कुसुम-कोमल हृदय को एक बारगी मुग्ध एवं गद्गद किये बिना नहीं रहती। यद्यपि संस्कृत के अन्यान्य कवियों ने भी गद्य और पद्य दोनों प्रकार के सरस काव्यों की रचना में वह कौशल दिखाया है कि बिना बारंबार सिर हिलाये उनको साद्यन्त पढ़ डालना सहज काम नहीं। परन्तु वीणापाणि सरस्वती के वर पुत्र कालिदास की कई बातें सबसे निराली हैं—एक दम बेजोड़ हैं। सरस और सुन्दर शब्द-विन्यास, समुचित कथा-वस्तु-वर्णन, लौकिक व्यवहारों में अलौकिक प्रवीणता आदि अनेक कारणों से कालिदास अद्वितीय महाकवि सिद्ध हो चुके हैं।

इस समय न हमें कालिदास की जीवन-घटनाओं पर मनन करना है और न उनके कवित्व के गुण-दोष की आलोचना ही करनी है। हमें यह दिखाना है कि जहाँ वे कुसुम से भी अधिक सुकुमार हृदय रखते थे वहाँ अनाथ तापस-कन्याओं को अकारण भूल भी जाते थे।

कालिदास की रसाल कृतियों में अभिज्ञान-शाकुन्तल शीर्षस्थानीय है। रसिकजन प्रायः कहा करते हैं—"नाटकेषु शकुन्तला"। उसमें भी महर्षि कण्व के प्रशान्त आश्रम का परित्याग कर, शकुन्तला के पति-गृह जाने का हृदय-द्रावक चित्र खेंचे जाने के कारण, यह भी सुना जाता है—"तत्रापि च चतुर्थोऽङ्कः"। परन्तु उसी शाकुन्तल के केन्द्रीभूत चतुर्थ अङ्क में एक दुःखद दृश्य भी दिखाई देता है। इसी अङ्क में दो निरपराध तापसियों पर कवि ने अपनी निरङ्कुशता का अङ्कुश चलाया है। कवि-परित्यक्त, संस्कृत-साहित्य की दोनों अवमानित तपस्विनियाँ—प्रियंवदा और अनसूया—आज पर्यन्त हमारी चित्त-भूमि में तपोवन बना कर विराज रही हैं।

पति-गृह को जाते समय शकुन्तला ने मार्ग में उनकी पूछ पाँछ की थी—"* ताद, इदो एव्व किं

*तात, इतएव किं प्रियंवदा मिश्राः सख्यो निवर्तिष्यन्ते।

पिअंवदा मिस्साओ सहीओ णिवत्तिस्सन्ति" ? परन्तु भगवान् काश्यप ने निष्करुण होकर यह उत्तर दे डाला—"वत्से, इमे अपि प्रदेये; न युक्तमनयोस्तत्र गन्तुम् । त्वया सह गौतमी यास्यति" । अगत्या अपनी प्यारी सहेलियों से शकुन्तला को नाता तोड़ना पड़ा। उसने कहा—"†हला, दुवे विमं समं एव्व परिस्सजह" । बस, इन दोनों सखियों का प्रेममय चरित्र-पट यहीं आवृत हो गया। दोनों रोती बिलखती—"‡ ताद, सउन्दला विरहिदं सुण्णं विअ तवो वणं कहं पविसामो" ?—आदि विरह-वाक्य कहती तपोवन को लौट आईं। इसके बाद भूल कर भी कवि ने उन्हें नाटक में नहीं प्रविष्ट किया। चिरकाल तक हमारे हृदय में ही वे सानन्द विश्राम कर रही हैं।

हम यह अच्छी तरह जानते हैं कि काव्य में सब पात्रों का अधिकार समान नहीं होता। दारुण-हृदय कवि, अपने नायक और नायिका के लिए, न जाने कितनी अक्षय प्रतिमायें रच डालता है और निर्दय होकर चाहे जहाँ उनका विसर्जन कर बैठता है। किन्तु वह अपनी प्रमत्त बुद्धि से जहाँ जिसका शेष कर देता है, क्या सचमुच वही उसका उपयुक्त स्थान होता है ? इसका निर्णय करना कठिन है।

ऋषि के दोनों क्रोधान्ध शिष्य और रोती हुई दुःखिनी गौतमी ने आश्रम में लौट कर जिस समय राज-सभा का दारुण वृत्तान्त उन दोनों उत्कण्ठिता सखियों को सुनाया होगा उस समय उनकी क्या दशा हुई होगी—इसका चित्रण कवि ने मूल नाटक के लिए सर्वथा ही अनावश्यक समझा है। किन्तु क्या इतने से ही उनकी दुःखवेदना शान्त हो गई होगी ? बिना लिखे और बिना अभिनय किये भी क्या उन अबलाओं के साथ हमारी सहानुभूति नहीं ?

कुलिश-शकल के समान काव्य अति कठिन वस्तु है। जब हम सोचते हैं कि कण्व-दुहिता पर उसकी सहज-सखी प्रियंवदा और अनसूया का कितना स्नेह था और उनका आपस में कितना सुदृढ़ सम्बन्ध-बन्धन था तब शकुन्तला के विपत्ति-समय में उन बाल-सखियों की इस प्रकार उपेक्षा होना, काव्य-दृष्टि से चाहे भले ही न्याय्य कहा जाय, परन्तु लोक-दृष्टि से न्याय्य नहीं माना जा सकता।

शकुन्तला के सुख, सौन्दर्य्य और गौरव की अभिवृद्धि ही के लिए ये लावण्य-प्रतिमायें अपने आराम-तकलीफ़ की कुछ भी परवा न करके उसके साथ साथ उससे अभिन्न रहीं। अतिथि अभ्यागत की अभ्यर्थना आदि का भार शकुन्तला पर छोड़ कर फल लाने के लिए ऋषि वन में चले गये। तीनों सहचरी बालिकायें सेचन-कलशों को हाथ में लेकर अकाल-विकसिता नव-मालती के तले एकत्र हुईं। इसी समय हठात् दुष्यन्त के दर्शन हुए। परन्तु एक माननीय, पर अपरिचित, सज्जन के सहसा समागम से शकुन्तला, स्त्री-स्वभाव-सुलभ व्रीडा और भय के वशीभूत होकर, कर्तव्य-विमूढ़ सी हो गई। व्यवहार-चतुर राजा के अनुरक्त प्रश्नों का उत्तर मुग्धा तपस्वि-कन्या को मौन के सिवा और कुछ न सूझा। उस समय शकुन्तला के हृदयस्थ भावों को सभ्यता-पूर्वक किसने प्रकट किया ? इन्हीं तापसी सहेलियों ने। अपनी प्रिय सहचरी के सुख की लालसा से विवश होकर अनसूया ने राजा से बड़ा कूट प्रश्न किया था—"* वअस्स, बहुवल्लहा राआणो सुणी अन्ति; जह णो पिअ सही बन्धुअण सोअणिज्जा ण होइ तह णिव्वत्तेहि" । राजा को अगत्या यह वचन देना पड़ा—

> परिग्रहबहुत्वेऽपि द्वे प्रतिष्ठे कुलस्य मे ।
> समुद्रवसना चोर्वी सखी च युवयोरियम् ॥

किन्तु कवि ने तपस्विनी के इस कृत्य को कृतज्ञता प्रकाश किये बिना ही बिसार दिया।

शकुन्तला स्वयं अपना एक तृतीय अंश है; दो अंश प्रियंवदा और अनसूया हैं। वही इसके अधिक अंश हैं। उनके बिना शकुन्तला की सुषमा में खटाई

† हला, द्वे अपि मां सममेव परिष्वजेथाम् । ‡ तात, शकुन्तलाविरहितं शून्यमिव तपोवनं कथं प्रविशावः" ?

* वयस्य बहु-वल्लभा राजानः श्रूयन्ते; यथा नः प्रिय-सखी बन्धु-जन-शोचनीया न भवति तथा निर्वर्त्तय ।

मिल जाती है। उन्होंने ही समय समय पर शकुन्तला के प्रेमालाप की मधुरिमा बढ़ाई है। तीसरे अङ्क में जहाँ निःसहाया शकुन्तला के साथ दुष्यन्त की प्रणय-विकलता का वर्णन है वहाँ कवि आर्या गैातमी को लाकर भले ही स्वस्थ हुआ है; पर रस की मात्रा में क्षति अवश्य पहुँची है; क्योंकि जिनसे घिरी रह कर शकुन्तला अपनी पूर्ति मानती थी वे वहाँ उपस्थित न थीं। वृन्त-विच्युत कुसुम पर दिनकर का प्रखर आलोक सहनीय नहीं होता। वृन्त ग्रैार पल्लव का ज़रा सा अन्तर हो जाने के कारण वह आलोक कुसुम पर उतने कोमल भाव से नहीं पड़ता। नाटक के उन कतिपय पृष्ठों में सखी-विरहिता शकुन्तला आँखों में ऐसी खटकती है कि उसके अनावृत भाव को देख कर एक प्रकार के सङ्कोच का उदय होता है ग्रैार आर्या गैातमी के सहसा आविर्भाव से पाठक चित्त में अपूर्व शान्ति का अनुभव करने लगते हैं।

हम यह कह सकते हैं कि प्रियंवदा ग्रैार अनसूया के साथ न होने से ही राज-सभा में दुष्यन्त शकुन्तला को पहचानने में अक्षम हुआ। दुर्वासा का शाप चाहे एक कारण हो, ग्रैार अँगूठी का खोया जाना दूसरा, परन्तु अज्ञान का प्रधान ग्रैार युक्ति-युक्त हेतु वही है। एक तो तपोवन से भिन्न देश, दूसरे शकुन्तला निःसहाया, तीसरे लोकापवाद-भीरु राजा। अब पहचान हो तो कैसे हो? हाँ, यदि राज-सभा में वे दोनों बाल-सखियाँ भेजी गई होतीं तो निःसंशय राजा का प्रमाद नष्ट हो जाता ग्रैार शकुन्तला को वह विडम्बना न सहनी पड़ती। वे अँगूठी न थीं जो खोई जातीं; फिर दुर्वासा के अभिशाप ग्रैार उसके प्रतीकार का भी उन्हें ज्ञान था। ऐसी दशा में पाँचवें ही अङ्क में कवि को अपनी कल्पना कुण्ठित करके नाटक समाप्त करना पड़ता। क्योंकि शकुन्तला के अभिज्ञान के साथ ही इस रूपक का पर्य्यवसान है। पर कवि की विचार-मन्दाकिनी पर बाँध बाँधना क्या सामान्य बात है?—"निरङ्कुशाः कवयः"।

शकुन्तला से विदा होकर शून्य तपोवन को लैाट आने पर क्या शैशव-सहचरी का वियोग ही उन तापसियों के सन्ताप का एक मात्र कारण हुआ होगा? चिर-वियोग के अतिरिक्त उस हतभाग्य तपोवन में क्या कोई अन्य परिवर्त्तन नहीं हुआ? अहो! उन्होंने बोध-द्रुम का फल चख लिया; जो अज्ञात था सो जान लिया। ग्रैार वह भी किसी कपोल-कल्पित ग्रैापन्यासिक नायिका के चरित्र-पाठ से नहीं, बल्कि अपनी प्रिय सखी के सदय हृदय की खोज से! क्या इसके अनन्तर ललित आलबालों में सलिल-सेचन के कृत्य को वे नहीं भूलीं? अब सूखे पत्तों की खड़खड़ाहट से चैाकन्नी होकर अशोक-पुञ्ज से किसी नव आगन्तुक के आगमन की आशङ्का नहीं करतीं? वे आश्रम के मृगशावक क्या फिर भी वैसे ही प्रीति-पात्र ग्रैार मनोरञ्जन के हेतु बने रहे?

जो हो, पर यह सखेद कहना पड़ता है कि कविकुल-गुरु की मुखरित लेखनी ने इन अभागिनी तपस्वि-कन्याग्रों के प्रति उपेक्षा का भरपूर परिचय दिया है। इनका जीवन दुःख के ही विषम आवर्त्त में निमग्न हो गया। मधुकरिका ग्रैार परभृतिका की सृष्टि करते समय भी कवि ने इन्हें सर्वथा ही भुलाये रक्खा। यदि तभी ये शकुन्तला की सेवा में लगा दी गई होतीं तो अवश्य ही इनकी विषण्ण मूर्त्ति इतनी मर्म-कृन्तक न होती। ये उक्त परिचारिकाग्रों से अधिक भाग्यशालिनी नहीं कही जा सकतीं। दुर्बल दैव ने कुमार भरत का मञ्जुल वदन इन्हें नहीं देखने दिया। ग्रैार तो क्या, वियोगिनी शकुन्तला के प्रत्यभिज्ञान का सुखद संवाद भी इनके कानों तक नहीं पहुँचा! इससे अधिक निरादर ग्रैार उपेक्षा ग्रैार क्या होगी? व्याकरण के नियमों का उल्लङ्घन, कवि-समय का तिरस्कार, नान्दी-निर्माण में पद-विन्यास आदि की उच्छृङ्खलता किसी भाँति क्षन्तव्य हो सकती है, क्योंकि ये बातें निरङ्कुशता की सीमा के अन्तर्गत मानी जा सकती हैं; किन्तु निरपराध तपस्वि-कन्याग्रों के प्रति ऐसी उपेक्षा क्षमा के योग्य नहीं।



फ़्रेडरिक निटशे ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग ।

आइए, उस तपोवन में ही कवि-परित्यक्त प्रियंवदा और अनसूया के दुःख-मय जीवन की एक बार फिर खोज करें। वे प्रतिबिम्ब-स्वरूप नहीं हैं कि शकुन्तला के साथ ही साथ एक से दूसरी दिशा में उनका तिरोभाव हो जाय। उनका जीवन अलग है और उनकी मूर्त्ति भी अलग है। रचित काव्य के बहिर्भाग में और अभिनीत रूपक की नेपथ्य-भूमि में उनकी वृद्धि हुई है। उस समय जकड़े हुए वल्कल से भी उनका तारुण्य आबद्ध हो सकता था; परन्तु अब उनकी मधुर मुसकान पर—वर्षाकाल में अमल नभस्तल पर जल-धरमाला की भांति—अश्रु-गम्भीरा छाया उत्पन्न हो गई है। अब दिनोंदिन शून्य-हृदयता और अनन्य-मनस्कता बढ़ती जाती है। इसीसे उनके उटज-प्राङ्गण तक पहुँच कर भी प्रायः अतिथियों को अकृत-सत्कार और अनभ्यर्थित ही लौटना पड़ता है। "वयमपि कष्टं परापतिताः"!

श्रीहरिहरसुरूप शर्म्मा

---

# सौत।

पण्डित देवदत्त का विवाह हुए बहुत दिन हुए। पर, उनके कोई सन्तान न हुई। जब तक उनके माँ-बाप जीवित थे तब तक वे उनसे सदा दूसरा विवाह कर लेने के लिए आग्रह किया करते थे। पर, पण्डितजी कभी इस पर राज़ी न हुए। उन्हें अपनी पत्नी गोदावरी से अटल प्रेम था। सन्तान से होने वाले सुख के निमित्त वे अपना वर्तमान पारिवारिक सुख नष्ट न करना चाहते थे। इसके अतिरिक्त वे कुछ नये विचार के मनुष्य थे। वे कहा करते थे कि सन्तान होने से माँ-बाप की ज़िम्मेदारियाँ बढ़ जाती हैं। जब तक मनुष्य में यह सामर्थ्य न हो कि वह उसका भले प्रकार पालन, पोषण और शिक्षण आदि कर सके तब तक उसकी सन्तान से देश, जाति और निज का कुछ भी कल्याण नहीं हो सकता। पहले तो कभी कभी बालकों को हँसते खेलते देख कर उनके हृदय पर चोट भी लगती थी। परन्तु अब अपने अनेक देश-भाइयों की तरह वे भी शारीरिक व्याधियों से ग्रस्त रहने लगे थे। अब क़िस्से-कहानियों के बदले धार्मिक ग्रन्थों से उनका अधिक मनोरञ्जन होता था। अब सन्तान का ख़याल करते ही उन्हें भय सा लगता था।

पर, गोदावरी इतना जल्द निराश होने वाली न थी। पहले तो वह देवी-देवता, गंडे-तावीज़ और यन्त्र-मन्त्र आदि की शरण लेती रही। परन्तु, जब उसने देखा कि ये ओषधियाँ कुछ काम नहीं करतीं तब वह एक महौषधि की चिन्ता में लगी। यह महौषधि काया-कल्प से कम न थी। उसने महीनों, बरसों, इसी चिन्तासागर में ग़ोते लगाते काटे। उसने दिल को बहुत समझाया; परन्तु मन में जो बात समा गई थी वह किसी तरह न निकली। उसे बड़ा भारी आत्मत्याग करना पड़ेगा। शायद पति-प्रेम के सदृश अनमोल रत्न भी उसके हाथ से निकल जाय। पर, क्या ऐसा हो सकता है? पन्द्रह वर्ष तक लगातार जिस प्रेम के वृक्ष की उसने सेवा की है क्या वह हवा का एक झोंका भी न सह सकेगा?

गोदावरी ने अन्त में अपनी प्रबल चेष्टा के आगे सिर झुका ही दिया। अब सौत का शुभागमन करने के लिए वह तैयार हो गई—

( २ )

पण्डित देवदत्त गोदावरी का यह प्रस्ताव सुन कर स्तम्भित हो गये। उन्होंने अनुमान किया कि या तो यह मेरे प्रेम की परीक्षा कर रही है या मेरा मन लेना चाहती है। उन्होंने उसकी बात हँस कर टाल दी। पर, जब गोदावरी ने गम्भीर भाव से कहा—"तुम इसे हँसी मत समझो। मैं अपने हृदय से कहती हूँ कि सन्तान का मुँह देखने के लिए मैं सौत से छाती पर मूँग दलवाने के लिए भी तैयार हूँ"—तब तो उनका सन्देह जाता रहा। इतने ऊँचे और पवित्र भाव से भरी हुई गोदावरी को उन्होंने गले से लिपटा लिया। वे बोले—"मुझसे यह न होगा। मुझे सन्तान की अभिलाषा नहीं"।

गोदावरी ने ज़ोर देकर कहा—"तुमको न हो, मुझे तो है। अगर अपनी ख़ातिर से नहीं तो तुम्हें मेरी ख़ातिर से यह काम करना ही पड़ेगा"।

पण्डितजी सरल स्वभाव के मनुष्य थे। हामी तो उन्होंने न भरी। पर, बार बार कहने से कुछ कुछ राज़ी वे अवश्य हो गये। उस तरफ़ से इसी की देर थी। पण्डितजी को कुछ भी परिश्रम न करना पड़ा। गोदावरी की कार्य्य-कुशलता ने सब काम उनके लिए सुलभ कर दिया। उसने इस काम के लिए अपने पास से केवल रुपये ही नहीं निकाले, किन्तु अपने गहने और कपड़े भी अर्पण कर दिये। लोक-निन्दा का भय इस मार्ग में सबसे बड़ा काँटा था। देवदत्त तो मन में विचार करने लगे कि जब मैं मौर सजा कर चलूँगा तब लोग मुझे क्या कहेंगे। मेरे दफ़्र के मित्र मेरी हँसी उड़ायेंगे और मुसकराते हुए कटाक्षों से मेरी ओर देखेंगे। उनके ये कटाक्ष छुरी से भी ज़ियादह तेज़ होंगे। उस समय मैं क्या करूँगा। पर, गोदावरी ने अपने गाँव में जाकर इस कार्य्य का आरम्भ कर दिया और इसे निर्विघ्न समाप्त भी कर डाला। नई बहू घर में आ गई। उस समय गोदावरी ऐसी प्रसन्न मालूम हुई माना वह बेटे का व्याह कर लाई हो। वह ख़ूब गाती बजाती रही। उसे क्या मालूम था कि शीघ्र ही उसे इस गाने के बदले रोना पड़ेगा।

( ३ )

कई मास बीत गये। गोदावरी अपनी सौत पर उसी तरह शासन करती थी मानो वह उसकी सास है। तथापि वह यह बात कभी न भूलती थी कि मैं वास्तव में उसकी सास नहीं। उधर गोमती को भी अपनी स्थिति का पूरा ख़याल रहता था। इसी कारण सास के शासन की तरह कठोर न रहने पर भी गोदावरी का शासन उसे अप्रिय प्रतीत होता था। उसे अपनी छोटी-मोटी ज़रूरतों के लिए भी गोदावरी से कहते सङ्कोच होता था।

कुछ दिनों बाद गोदावरी के स्वाभाव में एक विशेष परिवर्तन दिखाई देने लगा। वह पण्डितजी को घर में आते जाते बड़ी तीव्र दृष्टि से देखने लगी। उसकी स्वाभाविक गम्भीरता अब मानो लोप सी हो गई। ज़रा सी बात भी उसके पेट में नहीं पचती। जब पण्डितजी दफ़्र से आते हैं तब गोदावरी उनके पास घंटों बैठी गोमती का वृत्तान्त सुनाया करती है। इस वृत्तान्त-कथन में बहुधा ऐसी छोटी छोटी बातें भी होती थीं कि जब कथा समाप्त होती तब पण्डितजी के हृदय से बोझ सा उतर जाता। गोदावरी क्यों इतनी मृदुभाषिणी हो गई थी, इसका कारण समझना मुश्किल है। शायद अब वह गोमती से डरती थी। उसके सौन्दर्य्य से, उसके यौवन से, उसके लज्जायुक्त नेत्रों से शायद वह अपने को पराभूत समझती है। बाँध को तोड़ कर अब वह पानी की धारा को मिट्टी के ढेलों से रोकना चाहती है!

एक दिन गोदावरी ने गोमती से मीठे चावल पकाने को कहा। शायद वह रक्षाबन्धन का दिन था। गोमती ने कहा, शकर नहीं है। गोदावरी यह सुनते ही विस्मित हो उठी। इतनी शकर इतनी जल्दी कैसे उठ गई! जिसे छाती फाड़ कर कमाना पड़ता है उसे अखरता है। खाने वाले क्या जानें?

जब पण्डितजी दफ़्र से आये तब यह ज़रा सी बात बड़ा विस्तृत रूप धारण करके उनके कानों में पहुँची। थोड़ी देर के लिए पण्डितजी के दिल में भी यह शङ्का हुई कि गोमती को शायद भस्मक रोग तो नहीं हो गया।

ऐसी ही घटना एक बार फिर हुई। पण्डितजी को बवासीर की शिकायत थी। लाल मिर्च वे बिलकुल न खाते थे। गोदावरी जब रसोई बनाती थी तब वह लाल मिर्च रसोई में लाती ही न थी। गोमती ने एक दिन दाल में मसाले के साथ लाल मिर्च भी थोड़ी सी डाल दी। पण्डितजी ने दाल कम खाई। पर, गोदावरी गोमती के पीछे पड़ गई। ऐंठ कर वह उससे बोली—"ऐसी जीभ जल क्यों नहीं जाती"!

( ४ )

पण्डितजी बड़े सीधे आदमी थे ही। दफ़्र गये, खाया, पड़ कर सो रहे। वे एक साप्ताहिक पत्र मँगाते थे। उसे कभी कभी महीनों खोलने की नौबत न आती थी। जिस काम में ज़रा भी कष्ट या परिश्रम होता उससे वे कोसों दूर भागते थे। कभी कभी उनके दफ़्र में थियेटर के "पास" मुफ़् मिला करते थे। पर, पण्डितजी उनसे कभी काम न लेते। और ही लोग उनसे उन्हें माँग ले जाया करते। रामलीला या कोई और मेला तो उन्होंने शायद नौकरी करने के बाद फिर कभी देखा ही नहीं। गोदावरी उनकी प्रकृति का परिचय अच्छी तरह पा चुकी थी। पण्डितजी

भी प्रत्येक विषय में गोदावरी के हीं मतानुसार चलने में अपनी कुशल समझते थे।

पर, रुई सी मुलायम वस्तु भी दब कर कठोर हो जाती है। पण्डितजी को यह आठों पहर की चहचह असह्य सी प्रतीत होती। कभी कभी वे मन में झुँझलाने भी लगते। इच्छा-शक्ति, जो इतने दिनों तक बेकार पड़े रहने से निर्बल सी हो गई थी, अब कुछ सजीव सी होने लगी थी।

पण्डितजी यह मानते थे कि गोदावरी ने सौत को घर लाने में बड़ा भारी त्याग किया है। उसका यह त्याग अलौकिक कहा जा सकता है। परन्तु उसके त्याग का भार जो कुछ है मुझ पर है। गोमती पर उसका क्या एहसान! मेरे कारण उस पर क्यों ऐसी क्रूरतायें की जाती हैं। यहाँ उसे ऐसा कौन सा सुख है जिसके लिए वह फटकार पर फटकार सहे? पति मिला है वह बूढ़ा और सदा रोगी। घर मिला है, वह ऐसा कि अगर आज नौकरी छूट जाय तो कल चूल्हा न जले। इस दशा में गोदावरी का यह स्नेहरहित बर्ताव उन्हें बहुत अनुचित मालूम होता।

गोदावरी की दृष्टि इतनी स्थूल न थी कि उसे पण्डितजी के मन के भाव नज़र न आयें। उनके मन में जो विचार पैदा होते वे सब गोदावरी को उनके मुख पर अङ्कित से दिखाई पड़ते। यह जानकारी उसके हृदय में एक ओर गोमती के प्रति ईर्षा की प्रचण्ड अग्नि दहका देती, दूसरी ओर पण्डित देवदत्त पर निठुरता और स्वार्थप्रियता का दोषारोपण कराती। फल यह हुआ कि मनोमालिन्य दिन दिन बढ़ता ही गया।

( ५ )

गोदावरी ने धीरे धीरे पण्डितजी से गोमती की बातचीत करनी छोड़ दी। मानो उसके निकट गोमती घर में थी ही नहीं। न उसके खाने-पीने की वह सुधि लेती है, न कपड़े लत्ते की। एक बार कई दिनों तक उसे जलपान के लिए भी कुछ न मिला। पण्डितजी आलसी जीव तो थे ही। वे इन सब अत्याचारों को देखा करते, पर अपने शान्ति-सागर में घोर उपद्रव मच जाने के भय से किसी से कुछ भी न कहते। तथापि, इस पिछले अन्याय ने उनकी महती सहन-शक्ति को भी मथ डाला। एक दिन उन्होंने गोदावरी से डरते डरते कहा—"क्या आज कल घर में जलपान के लिए मिठाई विठाई नहीं आती"?

गोदावरी ने क्रुद्ध होकर जवाब दिया—"तुम लाते ही नहीं तो आये कहाँ से! मेरे कोई नौकर बैठा है"।

देवदत्त को गोदावरी के ये कठोर वचन तीर से लगे। आज तक गोदावरी ने उनसे ऐसी रोषपूर्ण बात कभी न की थी। वे बोले—"धीरे बोलो; झुँझलाने की तो मैंने कोई बात ही नहीं की"।

गोदावरी ने आँखें नीची करके कहा—"मुझे तो जैसे आता है वैसे बोलती हूँ। दूसरों की सी मधुर बोली कहाँ से लाऊँ"?

देवदत्त ने ज़रा गरम होकर कहा—"आज कल मुझे तुम्हारे मिज़ाज का कुछ रङ्ग ही नहीं मालूम होता। बात बात पर तुम उलझती हो"।

गोदावरी का चेहरा क्रोधाग्नि से लाल हो गया। वह बैठी थी; खड़ी हो गई। होंठ उसके फड़कने लगे। वह बोली—"मेरी कोई बात अब तुमको क्यों अच्छी लगेगी? अब तो मैं सिर से पैर तक दोषों से भरी हूँ। अब और लोग तुम्हारे मन का काम करेंगे। मुझसे नहीं हो सकता। यह लो, सन्दूक़ की कुञ्जी। अपने रुपये पैसे सँभाल लो। यह रोज़ रोज़ की झंझट मेरे मान की नहीं। जब तक निभा, निभाया। अब नहीं निभ सकता"।

पण्डित देवदत्त मानो मूर्च्छित से हो गये। जिस शान्ति-भङ्ग का उन्हें भय था उसने अत्यन्त भयङ्कर रूप धारण करके उनके घर में प्रवेश किया। वे कुछ भी न बोल सके। इस समय उनके अधिक बोलने से बात बढ़ जाने का भय था। वे बाहर चले आये और सोचने लगे कि मैंने गोदावरी के साथ कौन सा अनुचित व्यवहार किया है। उनके ध्यान में न आया कि गोदावरी के हाथ से निकल कर घर का प्रबन्ध कैसे हो सकेगा। इस थोड़ी सी आमदनी में वह न जाने किस प्रकार काम चलाती थी। क्या क्या उपाय वह करती थी! अब न जाने, नारायण कैसे पार लगावेंगे। उसे मनाना पड़ेगा। और हो ही क्या सकता है? गोमती भला क्या कर सकती है? सारा बोझ मेरे ही सिर पड़ेगा। मानेगी तो, पर मुश्किल से।

परन्तु, पण्डितजी की ये शुभकामनायें निष्फल हुईं। सन्दूक़ की वह कुञ्जी विषैली नागिन की तरह वहीं आँगन

में ज्यों की त्यों, तीन दिन तक, पड़ी रही। किसी को उसके निकट जाने का साहस न हुआ।

चौथे दिन पण्डितजी ने माने जान पर खेल कर उस कुञ्जी को उठा लिया। उस समय उन्हें ऐसा मालूम हुआ माने किसी ने इनके सिर पर पहाड़ उठा कर रख दिया। आलसी लोगों को अपने नियमित मार्ग से तिल भर भी हटना बड़ा कठिन मालूम होता है।

यद्यपि पण्डितजी जानते थे कि मैं अपने दफ़्र के कारण इस कार्य्य को सँभालने में असमर्थ हूँ, तथापि उनसे इतनी ढिठाई न हो सकी कि वह कुञ्जी वे गोमती को दे दें। पर, यह केवल दिखावा ही भर था। कुञ्जी उन्हीं के पास रहती थी; काम सब गोमती को करना पड़ता था। इस प्रकार गृहस्थी के शासन का अन्तिम साधन भी गोदावरी के हाथ से निकल गया। गृहिणी के नाम के साथ जो मर्य्यादा और जो सम्मान है वह भी गोदावरी के पास से उसी कुञ्जी के साथ चला गया। देखते देखते घर की महरी और पड़ोस की स्त्रियों के बरताव में भी बहुत अन्तर पड़ गया। गोदावरी अब पदच्युत रानी की तरह थी। उसका अधिकार अब केवल दूसरों की सहानुभूति पर ही रह गया था।

( ६ )

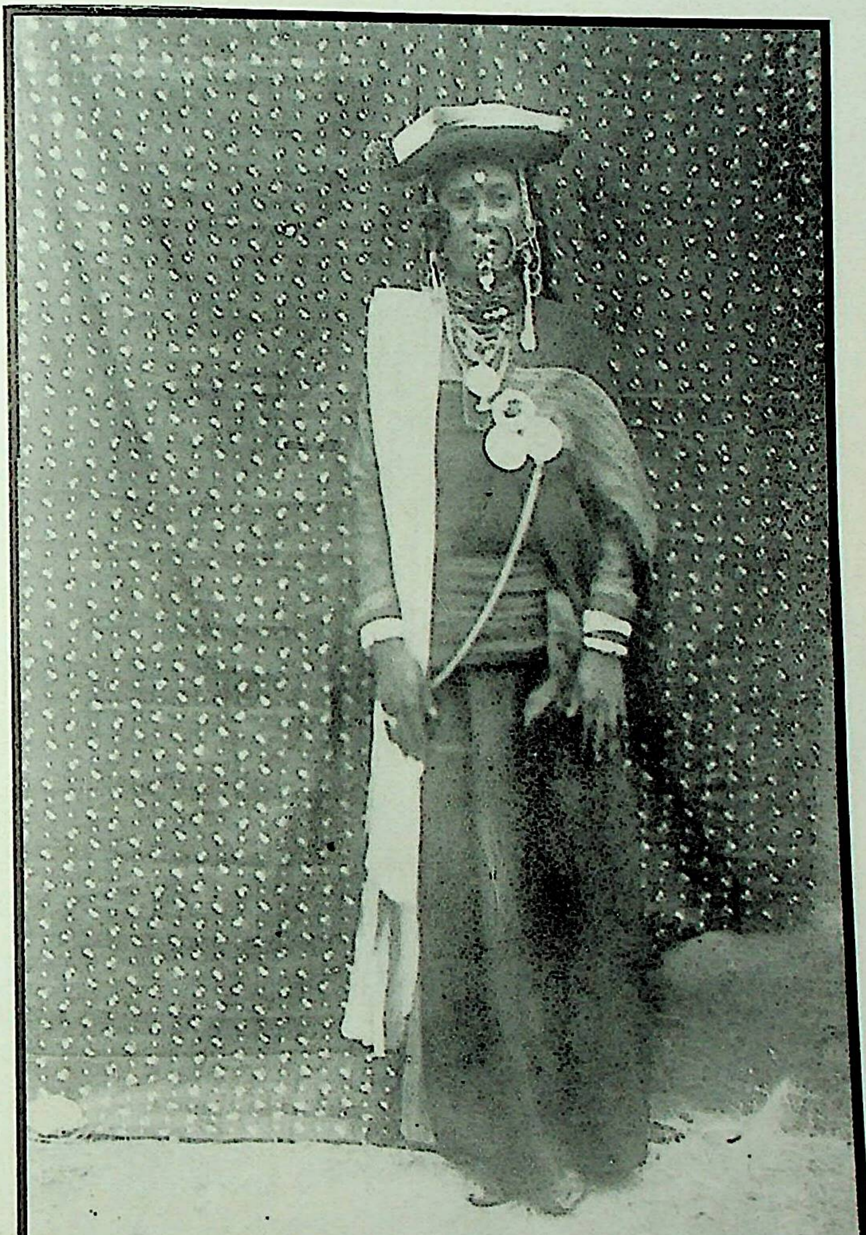
गृहस्थी के काम-काज में परिवर्तन होते ही गोदावरी के स्वभाव में भी शोकजनक परिवर्तन हो गया। ईर्षा मन में रहने वाली वस्तु नहीं। आठों पहर पास-पड़ोस के घरों में यही चर्चा होने लगी—देखो तो दुनिया कैसी मतलब की है। बेचारी ने लड़-झगड़ कर ब्याह कराया; जान-बूझ कर अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मारी। यहाँ तक कि अपने गहने कपड़े तक उतार दिये। पर अब रोते रोते आँचल भीगता है। सौत तो सौत ही है, पति ने भी उसे आँखों से गिरा दिया। बस, अब लौंडी की तरह घर में पड़ी पड़ी पेट जिलाया करे। यह भी कोई जीना है!

गोदावरी ये करुणासूचक बातें सुनती। इससे उसकी ईर्षाग्नि और भी प्रबल होती जाती। उसे इतना न सूझता था कि यह मौखिक समवेदनायें अधिकांश उस मनोविकार से पैदा हुई हैं जिससे मनुष्य को दूसरों की हानि और दुःख पर हँसने में विशेष आनन्द आता है।

गोदावरी को जिस बात का पूर्ण विश्वास और पण्डितजी को जिसका बड़ा भय था वह न हुई। घर के काम-काज में कोई विघ्न-बाधा, कोई रुकावट, न पड़ी। हाँ, अनुभव न होने के कारण पण्डितजी का प्रबन्ध गोदावरी के प्रबन्ध जैसा अच्छा न था। कुछ ख़र्च ज़ियादह पड़ जाता था। पर, काम भले प्रकार चला जाता था। हाँ, गोदावरी को गोमती के सभी काम दोषपूर्ण दिखाई देते थे। ईर्षा में अग्नि है। परन्तु अग्नि का गुण उसमें नहीं। वह हृदय को फैलाने के बदले उसे और भी सङ्कीर्ण कर देती है। अब घर में कुछ हानि हो जाने से गोदावरी को दुःख के बदले आनन्द होता है। बरसात के दिन थे। कई दिन तक सूर्य्य-नारायण के दर्शन न हुए। सन्दूक़ में रक्खे हुए कपड़ों में फफूँदी लग गई। तेल के अचार बिगड़ गये। गोमती को उन्हें धूप में रखने की सुधि न रही। गोदावरी को यह सब देख कर रत्ती भर भी दुःख न हुआ। हाँ, दो चार जली-कटी सुनाने का अवसर उसे अवश्य मिल गया—"मालकिन बनना ही आता है कि मालकिन का काम करना भी।"

पण्डित देवदत्त की प्रकृति में भी अब एक नया रङ्ग नज़र आने लगा। जब तक गोदावरी अपनी कार्य्य-परायणता से घर का सारा बोझ सँभाले थी तब तक उनको कभी किसी चीज़ की कमी नहीं खली। यहाँ तक कि शाक-भाजी के लिए भी उन्हें बाज़ार नहीं जाना पड़ा। पर, अब गोदावरी उन्हें दिन में कई बार बाज़ार दौड़ते देखती है। गृहस्थी का प्रबन्ध ठीक न रहने से बहुधा ज़रूरी चीज़ों के लिए उन्हें बाज़ार ऐन वक़्त पर जाना पड़ता है। गोदावरी यह कौतुक देखती और सुना सुना कर कहती—"यही महाराज हैं कि एक तिनका उठाने के लिए भी न उठते थे। अब देखती हूँ दिन में दस दफ़े बाज़ार में खड़े रहते हैं। कभी यह कहते अब मैं इन्हें नहीं सुनती कि मेरे लिखने-पढ़ने में हर्ज होगा"।

गोदावरी को इस बात का एक बार परिचय मिल चुका था कि पण्डितजी बाज़ार-हाट के काम में कुशल नहीं हैं। इसी लिए जब उसे कपड़ों की ज़रूरत होती तब वह अपने पड़ोस के एक बूढ़े लाला साहब से मँगवाया करती थी। पण्डितजी को यह बात भूल सी गई थी कि गोदावरी को साड़ियों की भी ज़रूरत पड़ती है। उनके सिर से तो जितना बोझ कोई हटा दे उतना ही अच्छा था। ख़ुद भी



वस्त्राभूषण से सुसज्जित किन्नर-युवती।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

वे वही कपड़े पहनते थे जो गोदावरी मँगा कर उन्हें दे देती थी। पण्डितजी को नये फ़ैशन और नये नमूनों से कोई प्रयोजन न था। पर, अब कपड़ों के लिए भी उन्हीं को बाज़ार जाना पड़ता है। एक बार गोमती के पास साड़ियाँ न थीं। पण्डितजी बाज़ार गये तो एक बहुत अच्छा सा जोड़ा उसके लिए ले आये। बज़ाज़ ने मनमाने दाम लिये। उधार सौदा लेने में पण्डितजी ज़रा भी आगा-पीछा न करते थे। गोमती ने वह जोड़ा गोदावरी को दिखाया। गोदावरी ने देखा और मुँह फेर कर रुखाई से बोली—"भला, तुमने उन्हें कपड़े लाना तो सिखा दिया। मुझे तो सोलह वर्ष बीत गये। उनके हाथ का लाया हुआ कपड़ा मुझे स्वप्न में भी पहनना नसीब नहीं हुआ"।

ऐसी घटनायें गोदावरी की ईर्षाग्नि को और भी प्रज्वलित कर देती थीं। जब तक उसे यह विश्वास था कि पण्डितजी स्वभाव ही से रूखे हैं तब तक उसे सन्तोष था। परन्तु, अब उनकी ये नई नई तरङ्गें देख कर उसे मालूम हुआ कि जिस प्रीति को मैं सैकड़ों यत्न करके भी न पा सकी उसे इस रमणी ने केवल अपने यौवन से जीत लिया। उसे अब निश्चय हुआ कि मैं जिसे सच्चा प्रेम समझ रही थी वह वास्तव में कपटपूर्ण था। वह निरा स्वार्थ था।

( ७ )

दैवयोग से इन्हीं दिनों गोमती बीमार पड़ी। उसे उठने-बैठने की भी शक्ति न रही। गोदावरी रसोई बनाने लगी। पर, उसे इसका निश्चय नहीं कि गोमती वास्तव में बीमार है। उसे यही ख़याल था कि मुझ से खाना पकवाने के लिए ही दोनों प्राणियों ने यह स्वाँग रचा है। पड़ोस की स्त्रियों से वह कहती कि लौंडी बनने में इतनी ही क़सर थी। वह भी अब पूरी हो गई।

पण्डितजी को आज कल खाना खाते वक़्त भागा भाग सी पड़ जाती है। वे न जाने क्यों गोदावरी से एकान्त में बात-चीत करते डरते हैं। न मालूम कैसी कठोर और हृदय-विदारक बातें वह सुनाने लगे। इसी लिए खाना खाते वक़्त वे डरते रहते थे कि कहीं उस भयङ्कर समय का आगमन न हो जाय! गोदावरी अपने तीव्र नेत्रों से उनके मन का यह भाव ताड़ जाती थी। पर, मन ही मन ऐंठ कर रह जाती थी।

एक दिन उससे न रहा गया। वह बोली—"क्या मुझ से बोलने की भी मनाई कर दी गई है? देखती हूँ, कहीं तो रात रात भर बातों का तार नहीं टूटता। पर मेरे सामने मुँह न खोलने की भी क़सम सी खाई है। घर का रङ्ग-ढङ्ग तो देखते हो न? अब तो सब काम तुम्हारे इच्छानुसार चल रहा है न"?

पण्डितजी ने सिर नीचा किये हुए उत्तर दिया—"ऊँह! जैसे चलता है वैसे चलता है। अब उस फ़िक्र में क्या अपनी जान दे दूँ? जब तुम यही चाहती हो कि घर मिट्टी में मिल जाय तब फिर मेरा क्या वश है।"

इस पर गोदावरी ने बड़े कठोर वचन कहे। बात बढ़ गई। पण्डितजी चौके पर से उठ आये। गोदावरी ने क़सम दिला कर उन्हें बिठाना चाहा। पर वे वहाँ क्षण भर भी न रुके। तब उसने भी रसोई उठा दी। सारे घर को उपवास करना पड़ा।

गोमती में एक विचित्रता यह थी कि वह कड़ी से कड़ी बात सहन कर सकती थी। पर, भूख सहन करना उसके लिए बड़ा कठिन था। इसी लिए वह कोई व्रत भी न रखती थी। हाँ, कहने सुनने से जन्माष्टमी रख लेती थी। पर, आज कल बीमारी के कारण उसे और भी भूख लगती थी। जब उसने देखा कि दोपहर होने आई और भोजन मिलने के कोई लक्षण नहीं तब विवश होकर बाज़ार से मिठाई मँगवाई। सम्भव है, उसने गोदावरी को जलाने ही के लिए यह खेल खेला हो। क्योंकि कोई भी एक वक़्त खाना न खाने से मर नहीं जाता। गोदावरी के सिर से पैर तक आग लग गई। उसने भी तुरन्त मिठाइयाँ मँगवाईं। कई वर्ष के बाद आज उसने पेट भर मिठाइयाँ खाईं। ये सब ईर्षा के कौतुक हैं!

जो गोदावरी दोपहर के पहले मुँह में पानी न डालती थी वही अब प्रातःकाल ही कुछ जल-पान किये बिना नहीं रह सकती। सिर में वह हमेशा मीठा तेल डालती थी; पर, अब मीठे तेल से उसके सिर में पीड़ा होने लगी थी। पान खाने का उसे नया व्यसन लग गया। ईर्षा ने उसे नई-नवेली बहू बना दिया।

जन्माष्टमी का शुभ दिन आया। पण्डितजी का स्वाभाविक आलस्य इन दो तीन दिनों के लिए ग़ायब हो जाता

था। वे बड़े उत्साह से झाँकी बनाने में लग जाते थे। गोदावरी यह व्रत बिना जल के रखती थी और पण्डितजी तो कृष्ण के उपासक ही थे। अब के उनके अनुरोध से गोमती ने भी निर्जल व्रत रखने का साहस किया। पर, उसे बड़ा आश्चर्य आया जब महरी ने आकर उससे कहा—"बड़ी बहू निर्जल न रहेंगी, उनके लिए फलाहार मँगा दो।"

सन्ध्या-समय गोदावरी ने मान-मन्दिर जाने के लिए इक्के की फ़रमाइश की। गोमती को यह फ़रमाइश बुरी मालूम हुई। आज के दिन इक्कों का किराया बहुत बढ़ जाता था। मान-मन्दिर कुछ दूर भी नहीं था। इससे वह चिढ़ कर बोली—"व्यर्थ रुपया क्यों फेंका जाय? मन्दिर कौन बड़ी दूर है। पाँव पाँव क्यों नहीं चली जातीं? हुक्म चला देना तो सहज है। अखरता तो उसे है जो बैल की तरह कमाता है!"

तीन साल पहले गोमती ने इसी तरह की बातें गोदावरी के मुँह से सुनी थीं। आज गोदावरी को ही गोमती के मुँह से वैसी ही बातें सुननी पड़ीं। समय की गति!

इन दिनों गोदावरी बड़े उदासीन भाव से खाना बनाती थी। पण्डितजी के पथ्यापथ्य के विषय में भी अब उसे पहले की सी चिन्ता न थी। एक दिन उसने महरी से कहा कि अन्दाज़ से मसाले निकाल कर पीस ले। मसाले दाल में पड़े तो दाल ज़रा अधिक तेज़ हो गई। मारे भय के पण्डितजी से वह न खाई गई। अन्य आलसी मनुष्यों के सदृश चटपटी वस्तुयें उन्हें भी बहुत प्रिय थीं। परन्तु वे रोग से हारे हुए थे। गोमती ने जब यह सुना तब भौंह चढ़ा कर बोली—"क्या बुढ़ापे में ज़बान गज़ भर की हो गई है?"

कुछ इसी तरह के कटु वाक्य एक बार गोदावरी ने भी कहे थे। आज उसकी बारी सुनने की थी।

(८)

आज गोदावरी गङ्गा से गले मिलने आई है। तीन साल हुए वह वर और वधू को लेकर गङ्गाजी को पुष्प और दूध चढ़ाने गई थी। आज वह अपने प्राण समर्पण करने आई है। आज वह गङ्गाजी की आनन्दमय लहरों में विश्राम करना चाहती है।

गोदावरी को अब उस घर में एक एक क्षण रहना दुस्सह हो गया था। जिस घर में रानी बन कर रही उसी में चेरी बन कर रहना उस जैसी सगर्वा स्त्री के लिए असम्भव था।

अब इस घर से गोदावरी का स्नेह उस पुरानी रस्सी की तरह था जो बार बार गाँठें देने पर भी कहीं न कहीं से टूट ही जाती है। उसे गङ्गाजी की शरण लेने के सिवा और कोई उपाय न सूझता था।

कई दिन हुए, उसके मुँह से बार बार जान दे देने की धमकी सुन पण्डितजी खिझला कर बोल उठे थे—"तुम किसी तरह मर भी तो जातीं।" गोदावरी उन विष-भरे शब्दों को अब तक न भूली थी। चुभने वाली बातें उसको कभी न भूलती थीं। आज गोमती ने भी वही बातें कहीं। यद्यपि उसने बहुत कुछ सहन करने के पीछे ये कठोर बातें कही थीं। तथापि गोदावरी को अपनी बातें तो भूल सी गई थीं। केवल गोमती और पण्डितजी के वाक्य ही उसके कानों में गूँज रहे थे। पण्डितजी ने उसे डाँटा तक नहीं। मुझ पर ऐसा घोर अन्याय और वे मुँह तक न खोलें!

आज सब लोगों के सो जाने पर गोदावरी घर से बाहर निकली। आकाश में काली घटायें छाई हुई थीं। वर्षा की झड़ी लग रही थी। उसके नेत्रों से भी आँसू की धारा बह रही थी।

प्रेम का बन्धन कितना कोमल है और कितना दृढ़ भी है! कोमल है अपमान के सामने; दृढ़ है वियोग के सामने। गोदावरी चौखट पर खड़ी खड़ी घंटों रोती रही; कितनी ही पिछली बातें उसे याद आती थीं। हा! कभी यहाँ उसके लिए प्रेम भी था, मान भी था, जीवन का सुख भी था। शीघ्र ही पण्डितजी के वे कठोर शब्द भी उसे याद आ गये। आँखों से फिर पानी की धारा बहने लगी। गोदावरी घर से चल खड़ी हुई।

इस समय यदि पण्डित देवदत्त नङ्गे सिर, नङ्गे पाँव, पानी में भीगते, दौड़ते आते और गोदावरी के कम्पित हाथों को पकड़ कर अपने धड़कते हुए हृदय से उसे लगा कर कहते—"प्रिये!" इससे अधिक और उनके मुँह से कुछ भी न निकलता, तो भी क्या गोदावरी अपने विचारों पर स्थिर रह सकती?

क्वार का महीना था। रात को गङ्गा की लहरों की गरज बड़ी भयानक मालूम होती थी। साथ ही जब बिजली तड़प

जाती तब उसकी उछलती हुईं लहरें प्रकाश से उज्ज्वल हो जाती थीं। मानों प्रकाश उन्मत्त हाथी का रूप धारण करके किलोलें कर रहा था। जीवन-संग्राम का एक विशाल दृश्य आँखों के सामने आ रहा था।

गोदावरी के हृदय में भी इस समय विचार की अनेक लहरें बड़े वेग से उठतीं और आपस में टकराती, ऐंठती हुई, लोप हो जाती थीं। कहां ? अन्धकार में।

क्या यह गरजने उमड़ने वाली गङ्गा गोदावरी को शान्ति प्रदान कर सकती है ? उसकी लहरों में सुधासम मधुर ध्वनि नहीं है और न उनमें करुणा का विकास ही है। वह इस समय उद्दण्डता और निर्दयता की भीषण मूर्त्ति धारण किये हुए है।

गोदावरी किनारे बैठी क्या सोच रही थी, कौन कह सकता है ? क्या अब भी उसे यह खटका नहीं लगा था कि पण्डित देवदत्त आते न हों ? प्रेम का बन्धन कितना मज़बूत होता है !

उसी अन्धकार में ईर्षा, निष्ठुरता और नैराश्य की सताई हुई वह अबला गङ्गा की गोद में गिर पड़ी ! लहरें झपटीं और उसे निगल गईं !!!

( ६ )

सबेरा हुआ। गोदावरी घर में नहीं थी। उसकी चारपाई पर यह पत्र पड़ा हुआ था:—

"स्वामी जी, संसार में सिवा आपके मेरा और कौन स्नेही था ? मैंने अपना सर्वस्व आपके सुख के भेंट कर दिया। अब आपका सुख इसी में है कि मैं इस संसार से लोप हो जाऊँ। इसी लिए ये प्राण भी अब आपकी भेट हैं। मुझ से जो कुछ अपराध हुए हों, क्षमा कीजिएगा। ईश्वर आपको सदा सुखी रक्खे।"

पण्डितजी इस पत्र को देखते ही मूर्च्छित होकर गिर पड़े।

गोमती रोने लगी। पर, क्या वे उसके विलाप के आँसू थे ?

प्रेमचन्द

---

# फ्रेडरिक निट्शे।

जर्मनी में फ्रेडरिक निट्शे (Friedrich Nietzsche) नाम का एक असाधारण विद्वान् हो गया है। उसे मरे अभी सिर्फ़ १५ वर्ष हुए। तब से उसके चरित तथा शिक्षाओं से सम्बन्ध रखने वाली पुस्तकों की संख्या सभी देशों में दिन पर दिन बढ़ती ही जा रही है। उसकी शिक्षाओं का लोगों पर, विशेष कर उसके देशवासियों पर, जो असर पड़ा है उसके सम्बन्ध में विद्वानों में बहुत मत-भेद है। कोई कोई उसे जर्मनी का सबसे बड़ा तत्त्ववेत्ता और नीतिशास्त्री मानते हैं, पर कोई कोई उसे अज्ञानी, मूर्ख, दुराचार-शिक्षक और अव्यवस्थितचित्त बताते हैं। कुछ लोगों का यह भी कहना है कि जर्मनी में युद्ध से प्रेम और शान्ति से घृणा पैदा कराने वालों में ट्राइट्स्के नाम के लेखक के बाद इसीका नम्बर है। यही कारण है कि जबसे यूरोप में महाभारत मचा है तबसे इसके विषय में सैकड़ों लेख लिखे जा रहे हैं। इसके विचार-वैचित्र्य की लोगों में यत्र तत्र चर्चा भी ख़ूब होने लगी है।

फ्रेडरिक निट्शे का जन्म, सन् १८४४ ईसवी में, एक ईसाई पादरी के घर हुआ था। जब वह ६ वर्ष का था, उसके पिता की मृत्यु हो गई। तब से वह बराबर अपनी माता की देखरेख में एक ग्रामीण स्कूल में शिक्षा पाने लगा। वहाँ की पढ़ाई समाप्त करके वह, १८६४ में, जर्मनी के बान-विश्वविद्यालय में जा कर भरती हुआ। वहाँ से, कुछ काल बाद, वह लिपज़िक नगर को चला गया। लिपज़िक में वह शोपनहार नामक तत्त्वज्ञानी की शिक्षाओं पर मुग्ध हो गया। शोपनहार अलौकिक प्रतिभासम्पन्न दार्शनिक था। वह हमारे उपनिषद्-ग्रन्थों को बड़े ही आदर की दृष्टि से देखता था। निट्शे ने एक जगह लिखा है—"मैं उन लोगों में से हूँ जो शोपनहार की किसी

पुस्तक का एक पृष्ठ पढ़ कर उसे बिना समाप्त किये नहीं रह सकते और जो उस महात्मा के मुख से निकलने वाले प्रत्येक शब्द को बड़े ध्यान से सुनने के लिए लालायित रहते हैं। ज्यों ज्यों समय बीतता है, मेरा विश्वास उसके वचनों पर बढ़ता ही जाता है। ऐसे ज्ञानी संसार में शायद ही कहीं खोजने से मिलेंगे" । यह बहुत कुछ शोपनहार की ही शिक्षाओं का फल था कि निट्शे ईसाई धर्म्म का परित्याग करके सदा के लिए कट्टर नास्तिक बन गया। शोपनहार के ही दुःखमय जीवन को लक्ष्य करके उसने लिखा है—"संसार में सुखमय जीवन असम्भव है। मनुष्य-जन्म लेकर—कभी अच्छे या बुरे फल के मिलने की परवा न करके—प्रत्येक कार्य्यक्षेत्र में वीरत्व दिखाना ही सब से अधिक प्रशंसनीय काम है। ऐसे मनुष्य का हृदय अन्त में वज्रवत् कठोर हो जाता है; पर उसकी महत्ता में रत्ती भर भी कमी नहीं होती। उसकी कामनायें नष्ट सी हो जाती हैं। वह कर्त्तव्यपरीक्षाओं में अवश्य ही उत्तीर्ण होता है। संसार की कृतघ्नता का अनुभव करता हुआ वह अन्त में निर्वाण प्राप्त करता है। संसार में उसकी स्मृति रह जाती है। और लोग उसे वीर कह कर उसकी पूजा करते हैं"।

थोड़े ही समय बाद निट्शे बेल-विश्वविद्यालय में ग्रीक-भाषा-शास्त्र का अध्यापक नियत हो गया। लिपज़िक के विश्वविद्यालय ने बिना उसकी परीक्षा लिये ही, उसे 'डिगरी' देदी। बेल में पूरे दस वर्ष वह अध्यापन का कार्य्य करता रहा। जब १८७० में जर्मनी और फ्रान्स के बीच युद्ध छिड़ा, निट्शे रोगियों की सेवा-शुश्रूषा करने के लिए जर्मन सेना के साथ फ़्रान्स गया। वहाँ से, कुछ काल बाद, बीमार होकर वह घर लौट आया। १८७२ में उसने "वियोगान्त या दुःखान्त नाटकों की उत्पत्ति" नाम की अपनी सब से पहली पुस्तक प्रकाशित की।

निट्शे ईश्वर या परलोक का अस्तित्व न मानता था। शोपनहार के सदृश उसका भी यही ख़याल था कि संसार में सुख की अपेक्षा दुःख अधिक है और हमारे दुःखों का एक मात्र कारण हमारी इच्छायें, हमारी भिन्न भिन्न प्रवृत्तियाँ, हैं। अतएव जहाँ तक हो सके हमें उनसे रहित होने का प्रयत्न करना चाहिए। पर शोपनहार का मत यह था कि संसार की यातनाओं से छुटकारा पाने का उपाय, संसार में जन्म-ग्रहण करने की इच्छा का नाश करना—निर्वाण पद की प्राप्ति के लिए प्रयास करना—है। और, निट्शे के अनुसार इस उपाय का अवलम्बन करना मनुष्योचित व्यवहार नहीं। वह कहता है—"अगर दुनिया तकलीफ़ों से भरी है तो भरी रहे। तुम्हें इस कारण जीवन से निराश होना उचित नहीं। अनन्त जीवन का जो स्रोत तुम्हारे चारों ओर प्रवाहित हो रहा है उसमें तुम्हारा जीवन एक तरङ्ग के समान है। इस लिए संसार के दुःख को अपना दुःख समझना—अपने हृदय में सहानुभूति का भाव उत्पन्न करना—तुम्हारा धर्म्म है; जीवन के बन्धन से मुक्त होने की कोशिश करना तुम्हारा धर्म्म नहीं। आदर्श पुरुष वही है जो जानता है कि संसार में सच्चा सुख कभी नहीं मिल सकता, जो हमारे और तुम्हारे लक्ष्य-पदार्थ—बाहरी चमक-दमक और शोभा-समृद्धि—को घृणा की दृष्टि से देखता है, जो नाश करने योग्य पदार्थों का नाश करने में कभी सङ्कोच नहीं करता, जो स्वयं दुःख पाकर अथवा दूसरों को दुःख पहुँचा कर मुख से कभी 'आह' नहीं निकालता और जो अपनी जीवन-यात्रा में कभी सत्य के मार्ग से विचलित नहीं होता"। हमें अपना स्वभाव कुछ ऐसा बना लेना चाहिए जिसकी बदौलत हमें संसार सदा आनन्द-परिपूर्ण दिखाई दे और जीवन-संग्राम में हमें कभी निराशा से भेंट न हो।

निट्शे ने अपनी नव-प्रकाशित पुस्तकों में यही सिद्ध किया है कि इसी भारी जीवनसमस्या को हल करने के उद्देश से, पुराने समय में, यूनानी विद्वानों ने वियोगान्त अथवा दुःखान्त नाटक लिखे थे, क्योंकि जब कभी कोई पुरुष ऐसा अभिनय देखता

था तब उसकी अहन्ता नष्ट हो जाती थी और वह विश्व के प्रेम में डूब कर, प्रकृति के साथ एकीभूत हो जाता था। निट्शे वास्तव में प्राचीन यूनानी सभ्यता का बड़ा पक्षपाती था। वह आधुनिक सभ्यता को बड़ी ही तुच्छ दृष्टि से देखता था। उसका मत था कि प्राचीन यूनानियों ने कविता, सङ्गीत, नाटकाभिनय, चित्रण, तक्षण इत्यादि कलाओं की सृष्टि इसी उद्देश से की थी कि जीवन के अन्धकारमय अंश पर ऐसा पर्दा गिर जाय जिससे हमें सर्वत्र प्रकाश ही प्रकाश दिखाई दे; और हम संसार की भयङ्करता को सदा के लिए नहीं तो कुछ काल के लिए अवश्य ही भूल जायँ।

१८७५ में निट्शे का स्वास्थ्य बहुत बिगड़ गया। इससे वह अध्यापन का कार्य्य छोड़ कर अपने मित्र—प्रसिद्ध सङ्गीताचार्य्य—वागनर से मिलने के लिए, १८७६ में, बेलेउथ नामक नगर को चला गया। उसी साल उसने वागनर की कला-कुशलता के सम्बन्ध में एक पुस्तक भी प्रकाशित की। इसके पहले उसने शोपनहार की शिक्षाओं पर भी एक पुस्तक लिखी थी। पर इसी निट्शे ने, १८८८ में, वागनर को साँप (A clever rattlesnake, a typical decadent) कह कर उसका परिचय दिया। शोपनहार में भी उसकी श्रद्धा अधिक काल तक नहीं रही। धीरे धीरे उसके विचारों में बड़े परिवर्त्तन उपस्थित होते गये। "Naturally a hero-worshipper, he lost, in the isolating process of his thinking, all his early ideals, his works becoming more and more charged with strongly-worded denunciations of all modern men and things."।

१८७९ ईसवी में उसने विश्वविद्यालय की नौकरी से इस्तैफ़ा दे दिया। इसके दो वर्ष बाद उसने प्रभातागम नाम की एक पुस्तक प्रकाशित की। उसमें उसने दिखाया कि शरीर-शास्त्र के सिद्धान्तों के आधार पर ही सच्चा सामाजिक सङ्गठन हो सकता है। १८८२ में उसने—आनन्ददायक ज्ञान—नाम की पुस्तक लिखी। उसकी प्रसिद्ध पुस्तक—ज़रथुष्ट्र की वचनावली—भी इसी साल निकली। शक्ति की कामना—नाम की एक बहुत बड़ी पुस्तक लिखने की उसकी बड़ी इच्छा थी। पर उसे वह पूरी न कर सका। उसके लिए उसने जो 'नोट' इकट्ठे किये थे वे अब ८०० पृष्ठों में, पुस्तकाकार, प्रकाशित हुए हैं। यह पुस्तक निट्शे के विचारों की विचित्रताओं की खान है।

निट्शे की समझ में यह कहना कि जीवधारियों के बीच अपना अपना अस्तित्व बना रखने के लिए संघर्षण चल रहा है, भूल के सिवा और कुछ नहीं। अपनी शक्ति—अपनी प्रभुता—बढ़ाना ही हम लोगों के जीवन का एकमात्र उद्देश है। निट्शे ने अपने पक्ष के समर्थन में जो प्रमाण पेश किये हैं वे इस छोटे से लेख में नहीं दिये जा सकते। समाज में सबके स्वत्व बराबर हैं, इस विचार का वह बड़ा ही विरोधी था। वह समाज में सब को बराबर अधिकार देना पसन्द न करता था। उसकी शिक्षा है कि समाज वर्णाश्रमधर्म्म पर ही ठहर सकता है; उसकी उन्नति के लिए समाज में भिन्न भिन्न जातियों का होना ज़रूरी है। वह समाज को हमारे मनुजी की व्यवस्थाओं के अनुसार सङ्गठित करना चाहता था। उसने ऊँची और नीची जातियों के जो भेद बताये हैं वे जानने योग्य हैं—

"नीची जातियों के हिस्से में दो ही चीज़ें हैं—अन्धविश्वास और दासत्व। इनके सिवा उनके लिए तीसरा मार्ग नहीं। दुःख उनके भाग्य में बदा है; इससे वे कभी बच नहीं सकतीं; क्योंकि 'सत्य' स्वयं कठोर है। इसी कारण किसी विशेष धर्म्म, सम्प्रदाय या पन्थ में अन्धविश्वास रखना उनके लिए बहुत आवश्यक है। ऐसे विश्वास की बदौलत उन्हें सन्तोष और शान्ति मिल सकेगी, और दूसरों के आज्ञा-पालन की उन्हें आदत पड़ जायगी। कृषि, व्यापार, कला-कौशल और विज्ञान से सम्बन्ध रखने वाले सभी काम इन्हीं नीच जातियों को

करने पड़ेंगे। इनके बाद, न्यायाधिकारियों और युद्ध-विद्याविशारदों का स्थान रहेगा। सबसे ऊँचा दरजा उन महात्माओं का होगा जो अपने देश-कालानुसार भले-बुरे का सच्चा ज्ञान रख सकेंगे और जो सर्वसाधारण लोगों के नेता बनने में अपने अथवा अपने समाज के सुख-दुख की कुछ भी परवा न करेंगे। वे संसार में जीवन और मरण की बाज़ी लगा कर अपना खेल खेलेंगे और अपनी वास्तविक उन्नति का सदा ख़याल रक्खेंगे"।

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में, पाश्चात्य देशों में विज्ञान-शास्त्र की बड़ी उन्नति हुई। वह वैज्ञानिक युग था। सत्य का अन्वेषण करने वालों को पुरानी लकीर पीटना पसन्द न था। डार्विन की पुस्तक--जीवों की उत्पत्ति—(Origin of the Species) ने सर्वत्र बड़ी हलचल सी मचा दी। हक्सले, टिन्डल, हेकल इत्यादि विद्वानों ने बरसों के कठिन परिश्रम से जो वैज्ञानिक तत्त्व आविष्कार किये उनसे लोगों के पुराने विचारों की जड़ें हिल उठीं। विकासवाद के साथ ही और भी कितने ही वादों का प्रचार बढ़ता गया। इन सब बातों से ईसाई धर्म की पुरानी और मज़बूत इमारत को ऐसा धक्का पहुंचा कि वह हिलने लगा। उसकी नींव बहुत ही कमज़ोर हो गई। तथापि बाइबल की सदाचार-शिक्षाओं का खण्डन करना किसी भी विज्ञानवादी ने मुनासिब न समझा। इस विषय में सभी पुरानी लकीर के फ़क़ीर बने रहे। यह काम हाथ में लेने का साहस निट्शे ही ने किया। यही कारण है कि उसे अपने विपक्षियों से इतने दुर्वचन सुनने पड़े और वह अभी तक कितनी ही ग़लतफ़हमियों का शिकार बन रहा है।

जिस समय मनुष्य किसी विशेष ग्रन्थ या किसी विशेष महात्मा की बातों में अन्धविश्वास करना नहीं चाहता उस समय उसके सामने यह प्रश्न उपस्थित होता है कि किसी आचरण के अच्छे या बुरे होने का सच्चा प्रमाण क्या है? जब हम आप्तवचनों को मानते हैं तब तो कुछ हर्ज ही नहीं, पर जब हम एकमात्र अपनी बुद्धि को ही मार्ग-दर्शक बनाना चाहते हैं तब समस्या बड़ी जटिल हो जाती है। प्रति दिन हम ऐसे हज़ारों काम करते, देखते या सुनते हैं जिनके विषय में हम अपनी सम्मति क्षण भर में स्थिर कर लेते हैं—अपनी बुद्धि के अनुसार उन्हें 'भले' या 'बुरे' कहने में कुछ भी विलम्ब नहीं करते। यह ठीक है कि इन विषयों में हम अपने ज्ञान—अपने अनुभव—से काम लेते हैं, पर फिर भी यह जानना ज़रूरी है कि किसी काम के 'अच्छे' या 'बुरे' होने की जाँच करने की कसौटी कौन सी है? इस सम्बन्ध में बड़ा मतभेद है। अतः कारणवाद का खण्डन करके ग्रन्थकार मिल ने उपयोगिता-वाद का प्रचार किया। हर्बर्ट स्पेन्सर ने लिखा—"आचरण-सम्बन्धी ज्ञान का विकास सामाजिक जीवन की गति के अनुसार होता है। यदि समाज में प्रत्येक मनुष्य मनमानी करना चाहे—यदि पारस्परिक संघर्षण की मात्रा बढ़ती चली जाय—तो उसमें घोर विप्लव उपस्थित होगा; वह बहुत दिनों तक न ठहर सकेगा। अतएव प्रत्येक व्यक्ति को समाज में उसी मार्ग से चलना पड़ता है जिसे अधिकांश मनुष्य अच्छा समझते हैं। कुछ काल में उसी मार्ग से चलने की प्रथा पड़ जाती है, और, लोगों को इस सामाजिक नियम के विरुद्ध आचरण करने का साहस नहीं होता। इसी प्रकार हमारे अन्तःकरण की जड़ जमती है"। निरस्तित्ववादियों (Nihilists) का भी कहना प्रायः यही है। अब फ़्रेडरिक निट्शे के विचार भी संक्षेप में सुन लीजिए:—

"इतिहास से जान पड़ता है कि प्राच्य या प्रतीच्य सभ्यता के प्रारम्भकाल में, प्रत्येक देश—प्रत्येक समाज—में दो दल वर्त्तमान थे। एक बलवान् और दूसरा निर्बल था। पराधीन हो जाने पर निर्बल जातियाँ अपने बलवान् स्वामियों की सेवा करती थीं। इसी से उनका पालन-पोषण होता था। बलवान् स्वामी अपने निर्बल सेवकों को घृणा की दृष्टि से देखते थे; निर्बल सेवक अपने

स्वामियों से असन्तुष्ट रहते थे। आर्य्य श्रेष्ठ थे और अनार्य्य म्लेच्छ। एक जाति अपने के सभ्य और दूसरी को बर्ब्बर समझती थी। यहीं पर अच्छे और बुरे का भेद शुरू हुआ। स्वामी को वीरता पसन्द थी। इसी से वह बल, साहस, धोखेबाज़ी, यहाँ तक कि निर्दयता को गुण समझता था। भय, चापलूसी, नम्रता, मिथ्या भाषण इत्यादि उसकी दृष्टि में दोष थे। उसका विश्वास था कि अपने सेवकों के साथ मनमाना बर्त्ताव करने का उसे पूरा अधिकार है। वह चाहे उन पर दया दिखावे, चाहे अत्याचार करे। पर साथ ही, अपनी बराबरी के लोगों को उसे और ही दृष्टि से देखना पड़ता था। वृद्ध पुरुषों का सम्मान करना, अपने प्रभु की आज्ञा का पालन करना, चिरागत प्रथाओं का सत्कार करना, उसके आवश्यक कर्त्तव्य थे। उसकी समझ में ऐसा कोई भी आचरण अच्छा नहीं कहा जा सकता था जिससे उसकी जाति के बल का ह्रास हो सकता था"।

"विजित जातियों का व्यवहार ठीक इसके विपरीत था। उसके जन-समुदाय अपने जीवन से असन्तुष्ट थे। उन्हें अपने शासकों से घृणा थी। निर्बल होने के कारण उनके मत में दया, सुशीलता, धैर्य्य, अध्यवसाय, नम्रता इत्यादि गुण थे। मनुष्य में इन बातों का होना वे अच्छा समझते थे। ज़ोरो-ज़ुल्म और सख़्ती के काम इनकी समझ में बुरे थे। इस तरह संसार में दो नीतिमार्गों की सृष्टि हुई—एक शासक और दूसरा शासित जातियों के लिए। ऐसी अवस्था में, समाज में, भिन्न भिन्न प्रकार के मनुष्यों के रहते हुए, सभी के लिए एक ही मार्ग ठीक समझना उचित नहीं। शेर की भलाई में बकरी की बुराई है। फिर, यदि दोनों को एक ही सदाचार की शिक्षा दी जाय तो उसका नतीजा कैसा ख़राब होगा? अतएव, हमें सदा स्मरण रखना चाहिए कि कहीं हम धोखे में आकर सेवकों के हित को अपना हित न समझ लें, और जो बातें उनकी दृष्टि में गुण हैं उनको हम भी गुण न मानने लगें"।

निट्शे के ऊपर सबसे अधिक दोषारोपण इसी लिए किया गया है कि वह दीन-दुखियों के ऊपर दया दिखाना पाप समझता है। उसका कहना है कि जो मनुष्य दुर्दशा-ग्रस्त, अतएव दुखी हैं, उसकी सहायता करने से—उसके साथ सहानुभूति दिखाने से—संसार में दिन पर दिन कमज़ोरी बढ़ती जायगी, लोगों को अपने पैरों पर खड़े होने की—स्वावलम्बन की—शिक्षा न मिलेगी। निट्शे सुप्रजनन-शास्त्र (Eugenics) के जन्मदाताओं में से था। दुर्बलता उसकी समझ में मृत्यु की निशानी है। वह मानव-जाति की पीड़ाओं की परवा नहीं करता। यदि कोई किसी दुःख या व्याधि से पीड़ित है तो पीड़ित रहे। हमें उसके साथ आँसू बहाने से क्या लाभ? हाँ, यह उसका धर्म्म है कि वह अपनी अवस्था सुधारने के लिए प्राणपण से चेष्टा करे। अपनी अशक्तता दूर करने के लिए शक्ति-सञ्चय करना सीखे।

ऊपर जिन पुस्तकों का उल्लेख हो चुका है उनके सिवा और भी कितनी ही पुस्तकें निट्शे ने लिखी हैं। सच पूछिए तो संसार में उसकी किसी से नहीं बनी। मिल, स्पेन्सर, डार्विन, शोपनहार, वागनर इत्यादि सभी विद्वानों के मतों का उसने तीव्र प्रतिवाद किया। स्पेन्सर ने लिखा था—"जीवन चञ्चलता का नाम है"। इस पर आप बहुत ख़फ़ा हो गये। आपने लिखा—"नहीं—जीवन बलप्रयोग, अत्याचार, छीनाझपटी और क्रूरता का नाम है; सिर्फ़ चञ्चलता कहने से कुछ समझ में नहीं आता"।

जैसा कि प्रारम्भ में कहा गया है, निट्शे की शिक्षाओं के सम्बन्ध में विद्वानों में बड़ा मतभेद है। उदाहरण लीजिए। एक अँगरेज़ी मासिक पत्र में किसी लेखक ने लिखा है:—" The Nietzsche craze went so far that many people called him a spiritual master .........One wonders how some English writers could really pronounce him to be a great genius

in moral philosophy" इत्यादि। और, उसी पत्र की दूसरी संख्या में एक प्रसिद्ध विद्वान् अपनी सम्मति देता है—Nietzsche was a highly spiritual teacher, a prophet in the real sense of the term, being in the direct line of those Great teachers who have come from time to time to encourage men to fight against sin, the world and the Devil.

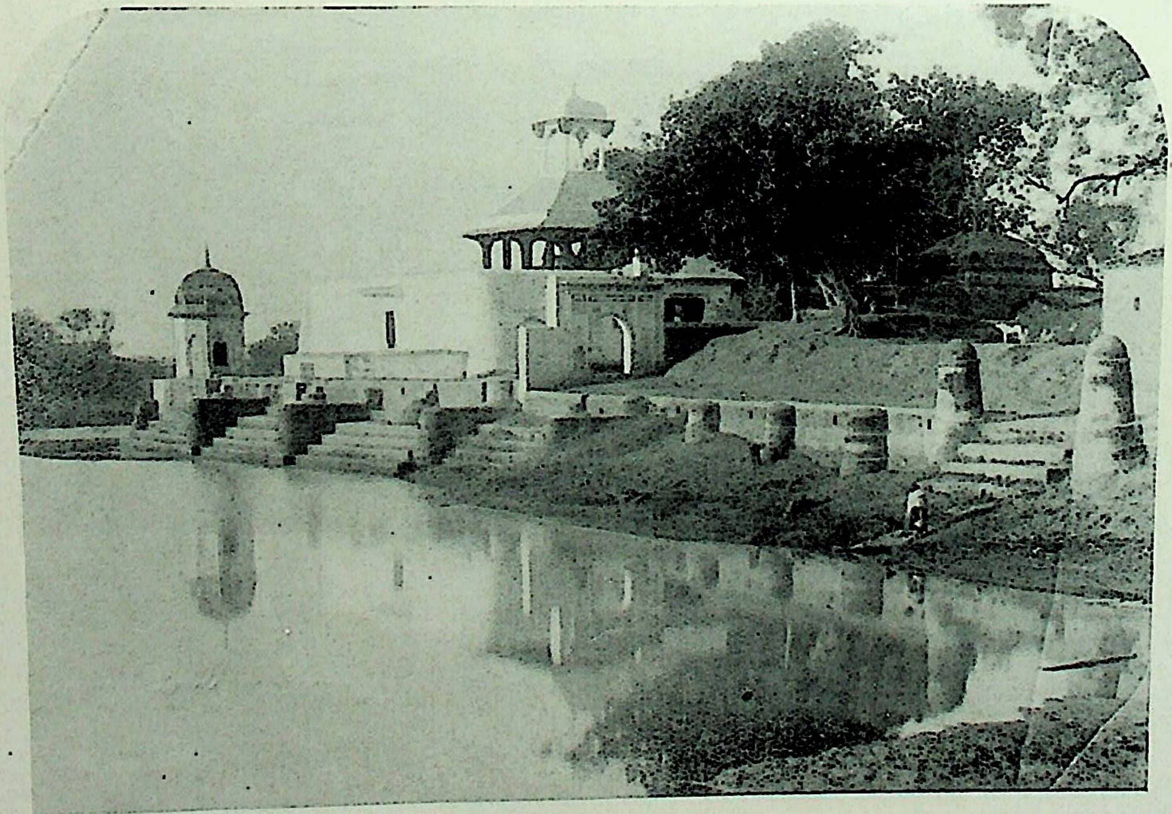
१८८८ में निट्शे का दिमाग़ बिगड़ गया। बहुत कोशिश करने पर भी वह अच्छा न हो सका। १९०० के जनवरी मास में वह इस संसार से चल बसा। तब से उसके भक्तों की संख्या दिन पर दिन बढ़ती ही गई। यूरोप की प्रायः प्रत्येक भाषा में उसके ग्रन्थों के अनुवाद निकले। उनकी कितनी ही अनुकूल और प्रतिकूल समालोचनायें हुईं। किसी ने सरस्वतीसदन में उसे बहुत ही ऊँचे आसन पर बिठाना चाहा; किसी ने उसकी बातों को पागल की बकवास मात्र समझा। इसी बीच में यूरोप में महाभारत शुरू हो गया। लोगों को निट्शे की और भी अधिक याद आने लगी। तब से बराबर उसके ऊपर सैकड़ों लेख निकल रहे हैं। लोग अपनी अपनी क़लम लड़ा रहे हैं। पर अभी तक सत्यासत्य का निर्णय नहीं हो सका। शायद इसके लिए और भी अधिक समय लगे। "तस्मात्प्रवर्तेय सखे सततं परीक्षाम्"।

पारसनाथसिंह

---

## कौशल्या का विलाप।

तन मन जिस पै मैं वारती थी सदैव,
वह गहन वनों में जायगा हाय दैव।
सरसिज-तन हा! हा! कण्टकों में खिँचेगा;
घृत, मधु, पय-पाला स्वेद ही से सिँचेगा ॥१॥
यह हृदय-विदारी दृश्य मैं देखती हूँ;
नयन-सलिल-धारासार से भीगती हूँ।
खल, पतित, अभागे प्राण जाते नहीं क्यों!
रह कर तन में ये हैं लजाते नहीं क्यों ॥२॥
मणि-महल-निवासी कन्दरा में रहेगा;
तज सुमन-बिछौने भूमि पै ही रहेगा।
मृदु-पद-तल वाला कङ्कड़ों में चलेगा;
तज मख़मल आला कङ्कड़ों में चलेगा ॥३॥
नित षट-रस-भोजी खायगा कन्द मूल;
जल तक न मिलेगा नित्य इच्छानुकूल।
वर वसन ज़री के धारता जो सदा था;
वह अजिन बिछावे भाग्य में यों बदा था ॥४॥
नरपति-सुत होके यों उदासी बनेगा;
यह ख़बर किसे थी दैव ऐसा करेगा।
पल पल भर में मैं देख लेती उसे थी;
मुख मलिन न होवे प्राण देती उसे थी ॥५॥
वह मुझ दुखिनी के नेत्र की ज्योति ही था;
बस अधिक कहूँ क्या जान था और जी था।
वन वन फिरने को जायगा लाल मेरा;
विधि कुटिल करेगा हाय क्या हाल मेरा ॥६॥
विधु-मुख न विलोके चैन कैसे पड़ेगी;
निज सब कुछ खोके चैन कैसे पड़ेगी।
वह घन-छवि-वाला सामने जो न होगा;
वह मम पय-पाला सामने जो न होगा ॥७॥
वह मृग-दृग वाला दृष्टि से जो हटेगा;
यह कठिन कलेजा क्यों न मेरा फटेगा।
वह मृदु मुसकाता जो न माता कहेगा;
फिर सुख मुझको क्या प्राण रक्खे रहेगा ॥८॥
फिर मधुर मलाई मैं किसे हाय दूँगी;
वर विविध मिठाई मैं किसे हाय दूँगी।
मन मृदु वचनों से कौन मेरा हरेगा;
यह हृदय दुखी हो धैर्य्य कैसे धरेगा ॥९॥
प्रति पल किस पै मैं प्राण वारा करूँगी;
मुख लख किसका मैं धीर धारा करूँगी।
विधि यदि जगती में जन्म मेरा न होता,
कुछ रुक रहता क्या कार्य्य तेरा न होता ॥१०॥
दुख विषम सहाने के लिए था बनाया;
यह दिन दिखलाने के लिए था बनाया।



इटौरा ( ज़िला जालौन ) का समाधि-मन्दिर ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग ।

गुण-गण जिसके है गा रहा आज लोक ;
वह सुत बिछुड़ेगा शोक ! हा हन्त शोक ॥११॥
वह नृप-पद पावे मैं नहीं चाहती थी ;
दुख भरत उठावे मैं नहीं चाहती थी ।
सुरपति-पदवी भी तुच्छ मैं मानती थी ;
बढ़ कर सब से मैं लाल को जानती थी ॥१२॥
सिर मुकुट बिना ही क्या न शोभा सना था ?
वह गुण-गरिमा से क्या न राजा बना था ?
भुज-बल समता को लोक में था न वीर ;
रण-सुभट यथा था, था तथा धर्म-धीर ॥१३॥
रतिपति-मद-हारी रूप भी था सलोना ;
वह सुरभि सना था और था मञ्जु सोना ।
प्रिय सुत वह मेरा वेश धारे यती का ;
निज नयन निहारूँ, दोष है भाग्य ही का ॥१४॥
उर उपल धरूँगी और क्या मैं करूँगी ;
विधि-वश दुख ऐसे देख के ही मरूँगी ।
विधि ! सहृदय हो तो प्रार्थना मान जाओ ;
अब तुम मुझको ही मेदिनी से उठाओ ॥१५॥
मम प्रिय सुत छूटा साथ ही देह छूटे ;
पल भर जननी का स्नेह-नाता न टूटे ।
फल कुकृति किये का हाय ! मैं पा रही हूँ ;
पर, विधि पर सारा दोष मैं ला रही हूँ ॥१६॥
इस विषम विपद् में ज्ञान जाता रहा है ;
सदय विधि क्षमा दें, ज्ञान जाता रहा है ।
पर, विनय न मेरी हे विधाता ! भुलाना ;
मम सुत वन में भी तू न भूखा सुलाना ॥१७॥
दुख उस पर कोई और आने न पावे ;
वह कुँवर कन्हैया कष्ट पाने न पावे ।
युग युग चिर जीवे लोक में नाम होवे ;
फिर घर फिर आवे राम ही राम होवे ॥१८॥
किस विध दुख झेलूँ, आर्त्ति कैसे घटेगी ?
यह अवधि बड़ी है, हाय ! कैसे कटेगी ।
पल पल युग होगा याम तो कल्प होंगे ;
दिन दिन दुख दूना, कष्ट क्या अल्प होंगे ? ॥१९॥
फिर यह अति दीना धैर्य्य कैसे धरेगी ;
सुध कर कर प्यारे की दुखी हो मरेगी ।
वह सुघर सलोना, अम्ब का प्राण-प्यारा ;
वह सुरभित सोना, अम्ब का प्राण प्यारा ॥२०॥
वह दृढ़-प्रण-पाली नीतिशाली कहाँ है ?
वह हृदय-लता का मञ्जु माली कहाँ है ?
वह प्रबल प्रतापी हंस-वंशी कहाँ है ?
वह खल-गण-तापी विष्णु-अंशी कहाँ है ? ॥२१॥
तन सघन घटा सा श्याम प्यारा कहाँ है ?
वह अवधपुरी का राम प्यारा कहाँ है ?
वह मुझ जननी का चक्षु तारा कहाँ है ?
वह तन मन मेरा प्राण-प्यारा कहाँ है ॥२२॥
वह कलरव-केकी बोलता क्यों नहीं है ?
अब मधु श्रवणों में घोलता क्यों नहीं है ?
वन क्षण भर में ही क्या गया हाय प्यारा ?
अब मुझ दुखिनी को क्या रहा है सहारा ? ॥२३॥
फिर मम सुत कोई पास मेरे बुला दे ;
शशि-मुख वन जाते देख लूँ आ दिखा दे ।
निज हृदय लगा लूँ, ताप सारी मिटा लूँ ;
फिर लख उसको मैं चित्त में चैन पा लूँ ॥२४॥
घर घर घर खाता जो कि था मोद-धाम ;
मम प्रिय सुत हा ! हा ! राम ! हा राम ! राम !
यह कह कर रानी हो गई चेत-हीन—
जल तज कर जैसे खिन्न हो मीन दीन ॥२५॥

"सनेही"

---

## किन्नर-जाति ।

शिमला नगरी से कोई एक सौ मील की दूरी पर, उत्तर दिशा में, रामपुर बशहर रियासत के अन्तर्गत, एक अति सुन्दर और सुरम्य प्रदेश है। उसे लोग "कनौर" नाम से पुकारते हैं। कनौर-प्रान्त रामपुर-नरेश की दूसरी राजधानी, सराहन, से लेकर तिब्बत की सीमा तक चला गया है। वहाँ के पर्वत देवदार के हरे भरे जङ्गलों से ढके हुए हैं। पर्वतों के शिखर पर खड़े होकर चारों ओर दृष्टि दौड़ाने से ऐसा

मालूम होता है, मानों गिरिराज हिमालय हरे वस्त्र धारण किये हुए भगवद्भक्ति में निमग्न है। वनों में नाना प्रकार के कुसुमों से लदी हुई तरुलतायें और झरझर बहनेवाले शीतल और मधुर जल के झरने कनौर की शोभा बढ़ा रहे हैं। पुष्प-सुगन्ध के परमाणुओं से परिपूर्ण समीर अपनी मन्द मन्द गति से प्राणिमात्र में नव जीवन का सञ्चार कर रहा है। बीचों बीच सतलज नदी की निर्मल सलिल-राशि पर्वतों के साथ खेलती हुई, कलकल नाद के साथ, बह रही है। ऐसे ही सुहावने प्रदेश में एक जाति निवास करती है जिसे सर्व-साधारण कनौरा कहते हैं। यह वही जाति मालूम होती है जिसका उल्लेख हमारे प्राचीन ग्रन्थों में "किन्नर" नाम से हुआ है। रूप-लावण्य और आकृति से ये लोग आर्य्य-वंशीय प्रतीत होते हैं। हलका शरीर, लम्बा ललाट, बड़े बड़े नेत्र और गौर वर्ण—ये सब बातें आर्य्य-जाति के ही चिह्न हैं। किन्नर-स्त्रियाँ बड़ी चतुर और सुन्दरी होती हैं। निर्धनता के कारण मैले कुचैले वस्त्र पहनने पर भी उनका प्राकृतिक सौन्दर्य्य ऐसा चमकता है जैसे गुदड़ी के भीतर मणि। हिमालय के स्वच्छ वायु और निर्मल जल के सेवन से जो कान्ति इनके मुखमण्डल पर दिखाई देती है वह नगरों के विषैले और दुर्गन्धयुक्त वायुमण्डल में रह कर सहस्रों प्रकार के उबटन लगाने से भी नहीं प्राप्त हो सकती।

किन्नर-पुरुष ऊनी कपड़े का कोट, पायजामा और टोपी पहनते हैं। स्त्रियाँ गाऊन की तरह का एक ऊनी वस्त्र पहनती हैं। उसे पहाड़ी भाषा में "दोड़" कहते हैं। दूर से देखने पर गाऊन और दोड़ में बहुत कम भेद प्रतीत होता है। दोड़ को अटका रखने के लिए एक प्रकार की सूई या बकसुआ सा होता है। उसे पीचू बोलते हैं। स्त्रियाँ सिर पर टोपी रखती हैं। टोपी के आगे अँगरेज़ों की टोपी के सदृश कपड़े का एक छज्जा सा बाहर निकला होता है। उससे सूर्य्य के प्रकाश से नेत्रों की रक्षा होती है। स्त्रियाँ प्रायः गले में मूँगे की माला और दुवन्नी-चवन्नी आदि के हार; कानों में बालियाँ; हाथों में कङ्कन और नाक में नुकरा, जिसे किन्नर-भाषा में कुण्डी कहते हैं, पहनती हैं। सुन्दर और भड़कीले वस्त्र प्रायः इन्हें बहुत कम प्राप्त होते हैं। इसलिए ऊनी कपड़ों को ही धो धा कर ये प्रायः साफ़ करती रहती हैं।

कनौर में शीत अधिक पड़ता है। इसलिए खेती बहुत कम होती है। हिमाच्छादित स्थानों के समीप तो वर्ष भर में केवल एक ही बार गेहूँ की फ़सल होती है। वह भी थोड़ी सी। इसलिए खाद्य वस्तुओं की यहाँ बहुत कमी है। परन्तु इस देश में शफ़तालू बहुत होता है। लोग उसे इकट्ठा करके सुखा लेते हैं। उसके छिलके को वे आटे की तरह पीस कर उससे एक प्रकार का भोजन बनाते हैं। इस भोजन को वे अपनी भाषा में "लफ्फी" कहते हैं। शफ़तालू की गुठली तोड़ कर उसका बीज निकाल लेते हैं। वह खाने में बड़ा स्वादिष्ट होता है। पेरने पर उससे तेल निकलता है। ये लोग इस तेल को खाते हैं।

गेहूँ के अतिरिक्त यहाँ फाफरा और ओगला नाम के दो और निकृष्ट धान्य भी होते हैं। मांस, मदिरा और चाय का भी यहाँ बहुत प्रचार है। परन्तु स्त्रियाँ मदिरा-पान नहीं करतीं। यहाँ के आदमी बड़े मृदु-प्रकृति और सुशील हैं। परन्तु कई कारणों से ये डरपोक हो गये हैं। पयटकों और अन्य लोगों के अत्याचार इन्हें बहुत सहने पड़ते हैं। इनसे बेगार ली जाती है। श्वेत-वस्त्रधारी को देखते ही ये बेचारे काँपने लगते हैं। ग़रीब-अमीर, स्त्री-पुरुष सभी बेगार में पकड़े जाते हैं। फिर भी ये लोग बड़े मौजी और ज़िन्दा-दिल हैं। दरिद्रता में भी प्रसन्न रहना कोई इनसे सीखे। स्त्रियों में पर्दे का नाम नहीं। गाने-बजाने और खाने-पीने का सबको शौक़ है। स्त्री-पुरुष, लड़के-लड़कियाँ सब मिल कर गाते और नाचते हैं। उत्सवों और मेलों में समस्त नर-नारी कपड़े साफ़ करते और स्नान करते हैं। फिर सायङ्काल देव-मन्दिर में जाकर, एक दूसरे

का हाथ पकड़ कर और पंक्ति बाँध कर नाचते तथा गाते हैं। पंक्ति के अगले भाग में प्रायः पुरुष होते हैं और पिछले में स्त्रियाँ। परन्तु इसका कोई विशेष नियम नहीं। कहीं कहीं स्त्री-पुरुष परस्पर मिल कर भी खड़े हो जाते हैं। इनका नाच देख कर और इनके गीत सुन कर चित्त बहुत प्रसन्न होता है। जिन्होंने स्वयं अपनी आँख से यह नाच देखा है वे इसे कभी निन्द्य नहीं कह सकते। इसमें किसी प्रकार का अनौचित्य नहीं दिखाई देता। यह नाच पवित्र प्रेम और प्राकृतिक आमोद का सूचक है। यह एक जातीय उत्सव है। संसार की कितनी ही सभ्य जातियों में इस तरह का नाच प्रचलित है।

दिन भर भारी परिश्रम के पश्चात्, विशेषतः सायङ्काल, बेगार करके लौटते समय, जब सब स्त्री-पुरुष, एक दूसरे का हाथ पकड़े, दो दो की पंक्ति में, ऊँचे स्वर से गाते हुए चलते हैं तब बड़ा मनोहर दृश्य दिखाई देता है। इनका गीत-गान दो दो चार चार घण्टे बराबर होता रहता है। खेत में बैठी हुई एक दो युवतियाँ जब मिल कर गाती हैं तब पर्वतों की टक्कर से प्रतिध्वनित होकर उनकी आवाज़ एक विशेष प्रकार का आनन्द देती है। इन लोगों को पुष्पों से बड़ा प्रेम है। जहाँ कहीं फूल मिले, झट तोड़ कर टोपी से लटका लिये।

आचार की दृष्टि से भी ये लोग अपने पड़ोसी अन्य पहाड़ी लोगों से बहुत अच्छे हैं। शिमले के समीपवर्ती प्रदेश में फ़ी सदी ८० स्त्रियाँ आचारहीना हैं। पर किन्नर-नारियों में इनकी संख्या बहुत ही कम है। सुनते हैं, पहले, पति या प्रेमी के विश्वास-घात करने और छोड़ कर भाग जाने पर, अथवा किसी के व्यर्थ लाञ्छन लगाने पर, किन्नर-नारियाँ सतलज में कूद कर प्राण परित्याग कर दिया करती थीं। अब भी कहीं कहीं ऐसी घटना हो जाती है।

कनौरी-भाषा एक जुदा ही भाषा है। परन्तु जिन लोगों को और देशवालों से काम पड़ता है वे कामचलाऊ हिन्दी अच्छी तरह समझ सकते हैं और बोल भी सकते हैं। इनकी भाषा तिब्बती और संस्कृत के मिश्रण से बनी प्रतीत होती है। उदाहरणार्थ—"तुम्हारा नाम क्या है"। किन्नर भाषा में इसका अनुवाद होगा—"किं नामं छिद" ? इन लोगों के नाम भी, भाषा की दृष्टि से, तीन प्रकार के हैं—विशुद्ध संस्कृत, विशुद्ध तिब्बती और तिब्बती तथा संस्कृत-मिश्रित। नीचे हम तीनों प्रकारों के उदाहरण देते हैं। पाठक देखेंगे कि इनमें से कई नाम कैसे मनोहर हैं—

(१) विशुद्ध संस्कृत-नाम।

[ पुरुषों के नाम ]

पद्मवीर, इन्द्रवीर, इन्द्रियजित, नरज्ञान, नकुल, नरपाल, धर्मराय, पद्मदास, ज्ञानवीर, सर्वजित, सुखानन्द।

[ स्त्रियों के नाम ]

चन्द्रमणि, इन्द्रमणि, हीरामणि, देवकली, श्यामकली, कुन्ती, द्रौपदी, हिरण्य, गङ्गादासी, धर्मदासी, इन्द्रदासी, जीवदासी, श्रद्धा।

(२) विशुद्ध तिब्बती-नाम।

[ पुरुषों के नाम ]

डण्डप छुपल, टाशी छरिङ्ग, छरिंग डुप, यङ्गतुन, क्षालछेदने।

( स्त्रियों के नाम )

टाशी बूटी, क्षलजिन, सिम्बा, छरिंग टाशी।

(३) मिश्रित-नाम।

[ पुरुषों के नाम ]

नरतन छरिङ्ग, टाशीराम, सनमसुख, यङ्ग सुखाराम।

( स्त्रियों के नाम )

सनममणि, पतिछो, जुगतपुरी, धनलच्छि, छरिङ्गपति।

इन लोगों का धर्म्म आर्य्यधर्म्म है; परन्तु बौद्ध मत की भी बहुत सी बातें उसमें घुस गई हैं। इन लोगों में देवी-देवताओं की पूजा का बड़ा प्रचार है। स्थान स्थान पर देवालय बने हुए हैं।

निचार नामक स्थान में उषा देवी का एक विशाल मन्दिर है। शिक्षा का प्रचार न होने के कारण ये लोग प्रायः मूढ़-विश्वासी हैं। परन्तु अब कहीं कहीं प्रारम्भिक स्कूल खुल गये हैं, जिससे इन लोगों के ज्ञान-चक्षु खुलने लगे हैं और अविद्यान्धकार दूर हो रहा है।

इनके विवाह की रीति बड़ी विचित्र है। घर के छोटे बड़े सब भाई मिल कर एक स्त्री रख लेते हैं। इस विवाह को ये लोग पाण्डव-विवाह कहते हैं। बड़े भाई की स्त्री सब भाइयों की स्त्री समझी जाती है। इस रीति का यह परिणाम हुआ है कि बहुत सी स्त्रियाँ अविवाहिता हैं। यदि इनसे इस रीति का कारण पूछा जाता है तो ये कहते हैं, हमारा देश ठण्ढा है। यहाँ अन्न बहुत कम उपजता है। सब भाइयों के अलग अलग स्त्री करने से सन्तान-संख्या बहुत बढ़ जाय और उसके पालन-पोषण के लिए इस प्रान्त में अन्न-वस्त्र मिलना कठिन हो जाय। कुटुम्बियों में से एक भाई नमक ख़रीदने जाता है, दूसरा भेड़-बकरी चराता है, तीसरा अनाज लाता है, चौथा सरकारी बेगार देता है। तब कहीं जाकर कुटुम्ब का निर्वाह होता है। यदि एक एक मनुष्य अलग अलग विवाह करके गृहस्थी चलावे तो इतने काम कैसे कर सके ? अतः उसका जीना असम्भव हो जाय। इस सम्मिलित विवाह से दूसरा लाभ यह है कि घर में बहुत सी स्त्रियों के आने से परस्पर ईर्ष्या-द्वेष और फूट की अग्नि प्रज्वलित नहीं होती और कुल नष्ट होने से बच जाता है।

इन लोगों में एक और प्रकार का भी विवाह होता है। उसे किन्नर-भाषा में "डबडब" कहते हैं। इसकी विधि यह है—यदि लड़की किसी के साथ विवाह करना स्वीकार कर ले, परन्तु उसके माता-पिता राज़ी न हों, तो लड़की को अकेली पाकर वर अपने एक दो मित्रों की सहायता से ज़बरदस्ती उठा ले जाता है। ले जाने के समय यदि लड़की के पास उसकी सहेलियाँ हों और वे उसे छुड़ाने के लिए दौड़ें तो वर के मित्र उन्हें एक एक दो दो रुपये देकर उनसे पिण्ड छुड़ा लेते हैं। लड़की को घर ले जाकर उसके साथ नियमपूर्वक विवाह किया जाता है। यदि वह लड़के के घर जाकर विवाह करना पसन्द न करे तो वह अपने पिता के घर वापस भेज दी जाती है।

सब जायदाद बड़े भाई को मिलती है। वह अपने सिर पर लम्बी चोटी रखता है। बाक़ी के सब भाई सिर मुँडाते हैं।

इस प्रान्त की स्त्रियाँ हमारी स्त्रियों के सदृश परावलम्बिनी नहीं; वे पुरुषों से बढ़ कर काम करती हैं। पुरुष केवल हल जोतते हैं। शेष काम—बीज डालना, निकाई करना, काटना, माँडना इत्यादि—स्त्रियाँ ही करती हैं। सरकारी आज्ञा से प्रत्येक पुरुष को अपनी बारी पर बेगार भुगतनी पड़ती है। कभी कभी पुरुष की बारी आने पर स्त्रियाँ ही बेगार कर आती हैं। स्त्रियाँ यहाँ की स्वतन्त्र कमाई करती हैं। इसलिए, विवाह हो जाने पर भी, पुरुष स्त्री पर अत्याचार नहीं कर सकता। यदि पति पतित हो जाय, व्यभिचारी हो जाय, अथवा स्त्री पर अत्याचार करे तो पत्नी उसका परित्याग कर देती है। ऐसे अवसर पर एक विशेष संस्कार किया जाता है, जिसे किन्नर भाषा में "शिङ्ग टकाशमें" कहते हैं। पहले प्रतिष्ठित लोगों की एक पञ्चायत जोड़ी जाती है। उसमें पति और पत्नी अपनी अपनी शिकायतें पेश करते हैं। तब पञ्च लोग शिकायतों को दूर करके दोनों को पुनः प्रीतिपूर्वक रहने का उपदेश करते हैं। यदि दोनों मान गये तो अच्छा; नहीं तो एक लकड़ी का एक सिरा स्त्री के हाथ में और दूसरा पुरुष के हाथ में पकड़ा दिया जाता है। तब वह लकड़ी बीच से तोड़ दी जाती है। इसका यह अर्थ होता है कि अब तुम्हारा विवाह-सम्बन्ध टूट गया; अब तुम दोनों स्वतन्त्र हो। जिससे चाहो पुनः विवाह कर सकते हो।



सर फ़ीरोज़शाह मेहता, के० सी० आई० ई० ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग ।

इन लोगों का गृह-जीवन बड़ा आनन्दमय है। चाय पीते और भोजन करते समय गृहिणी नमकीन चाय की देग़ची सामने रख लेती है। सारा परिवार पंक्ति बाँध कर उसके चारों ओर बैठ जाता है। वह प्यालियों में चाय डालती जाती है और वे पीते जाते हैं। एक घूँट पी लेते हैं, फिर प्याली को भूमि पर रख कर बातें करने लग जाते हैं। प्याली में चाय न रह जाने पर किसी को माँगने की आवश्यकता नहीं होती; गृहदेवी स्वयं सब का ख़याल रखती है। प्याली ख़ाली नहीं होने पाती कि उसमें वह और चाय डाल देती है। इस समय ये लोग, कङ्गाल होकर भी, चक्रवर्ती से प्रतीत होते हैं।

प्रत्येक कुलीन घर में एक लड़की और एक लड़का प्रायः उम्र भर ब्रह्मचारी रहता है और अपने जीवन को धर्म्म-सेवा में लगाता है। किन्नर-भाषा में ब्रह्मचारिणी लड़की को "ज़ोमो" और ब्रह्मचारी लड़के को "लामा" कहते हैं। सब प्रकार के विषय-विकारों से बचे रहना इनके लिए आवश्यक है।

भाद्रपद में कनौर में एक भारी जातीय उत्सव होता है, जिसे "फुलायच" कहते हैं। इस मेले में ख़ूब राग-रङ्ग और नृत्य होता है। इस उत्सव के साथ वर्ष भर के सारे शोक और आत्मीय जनों की मृत्यु के कारण पैदा हुए सब दुःख दूर कर दिये जाते हैं। सारी जाति शोक के वस्त्र उतार कर आमोद की पोशाक़ पहन लेती है। साल में इनके यहाँ भिन्न भिन्न अवसरों पर कोई दस मेले होते हैं, जिनमें ये लोग ख़ूब खाते-पीते और गाते-बजाते हैं। उत्सव के दिन खान-पान की सामग्री लेकर स्त्री-पुरुष सब जङ्गल में चले जाते हैं। सारा दिन वहाँ खेल-कूद में व्यतीत करके सायङ्काल घर लौट आते हैं।

सन्तराम, बी० ए०

---

# भारतीय आदेश।

( अपने पुत्रों के प्रति )

सुराज्य प्रभा है अहा छागई;
तुम्हारे सुखों की घड़ी आगई।
नहीं दीखता है अँधेरा कहीं;
न है राक्षसों का बसेरा कहीं।
सवेरा हुआ नींद को तोड़ दो;
सुतो! शीघ्र आलस्य को छोड़ दो॥ २॥

तुम्हें चाहिए व्यर्थ सोना नहीं;
सदा ख़्वाब में काल खोना नहीं।
हुआ सो हुआ, व्यग्र होना नहीं;
तुम्हें योग्य है आज रोना नहीं।
वृथा वाद से चित्त को मोड़ दो;
सुतो! शीघ्र आलस्य को छोड़ दो॥ ३॥

नहीं विघ्न-बाधा कहीं आज है;
पुराना ज़माना नहीं आज है।
सुखों के सजे ये सभी साज हैं;
प्रतापी हमारे महाराज हैं।
फुटैली अभी फूट को छोड़ दो;
सुतो! शीघ्र आलस्य को छोड़ दो॥ ४॥

वृथा बैठने का नहीं काल है;
महा हानिकारी बिछा जाल है।
ज़रा देख तो लो कि क्या हाल है;
अनेकांश में देश कङ्गाल है।
सभी को, उठो, ऐक्य से जोड़ दो;
सुतो! शीघ्र आलस्य को छोड़ दो॥ ४॥

सदा ही सदाचार को स्थान दो;
शुभादर्श को ज्ञान से मान दो।
दयाधाम सर्वेश का ध्यान हो;
उन्हीं के गुणग्राम का ज्ञान हो।
अविद्यार्त्ति के पैर को तोड़ दो;
सुतो! शीघ्र आलस्य को छोड़ दो॥ ५॥

वैकुण्ठनाथ शर्म्मा ( काव्यतीर्थ )

# इटौरा का समाधि-मन्दिर।

कुछ समय हुआ, मुझे एक बारात में जाना पड़ा। बारात गई थी ज़िला जालैान। बारात में मैंने सुना कि वहाँ से इटौरा नाम का मौज़ा दो कोस है। वहाँ एक प्रसिद्ध मन्दिर है। उसे देखने की बड़ी इच्छा हुई। मैं वहाँ गया। मन्दिर को देख कर चित्त प्रसन्न हुआ। इटौरे में वहाँ के ज़मींदार पण्डित बालाजी माधव लघाटे, बी० ए०, के दर्शन हुए। आपसे मन्दिर-सम्बन्धिनी अनेक बातें ज्ञात हुईं। मन्दिर का चित्र भी आपसे प्राप्त हुआ। मन्दिर के महन्त तथा लघाटे महाशय से मन्दिर का जो हाल मालूम हुआ है वह संक्षेप में नीचे लिखा जाता है।

क़सबा कालपी से इटौरा ३ मील दक्षिण है। सन् ईसवी के सोलहवें शतक में रोपण गुरु नाम के एक प्रसिद्ध योगी थे। सुनते हैं वे डौंडियाखेरा, ज़िला उनाव, के रहनेवाले थे। यह वही डौंडिया-खेरा नाम की राजधानी है जो सरस्वती-सम्पादक के जन्मग्राम के पास है और जहाँ कनकप्रकाश के कर्त्ता रामकृष्ण राजवैद्य हो गये हैं। इस कनक-प्रकाश की समालोचना पाठकों ने सरस्वती में पढ़ी ही होगी। रोपण गुरु डौंडियाखेरा छोड़ कर कालपी के पास एक निर्जन स्थान में रहने लगे। जहाँ इस समय इटौरा गाँव है वहाँ, ३०० वर्ष पूर्व, गाँव के आस पास, घना जङ्गल था। इसी जङ्गल में वे तपःसाधन में निरत हो गये। एक दिन वे यमुना-स्नान करने कालपी गये। वहाँ श्रीकृष्ण चैतन्य (गौराङ्ग देव) से उनकी भेंट हुई। चैतन्य प्रभु गुरु रोपण की सात्विक वृत्ति देख कर उन पर बहुत प्रसन्न हुए और उन्हें अपना शिष्य बना लिया। चैतन्य महाप्रभु ने शिष्य रोपण को प्रसादस्वरूप एक कम्बल दिया। यह कम्बल अब तक गुरु रोपण के वंशजों के पास है। उसे वे गद्दी कहते हैं। भविष्य-पुराण में यह बात इस प्रकार वर्णन की गई है—

इत्युक्त्वा भगवाञ्जीवो देवमाहात्म्यमुत्तमम्।
स्वमुखात्स्वांशमुत्पाद्य ब्रह्मयोनौ बभूव ह॥ १॥
इष्टिका नगरी रम्या गुरुदत्तस्य वै सुतः।
रोपणो नाम विख्यातो ब्रह्ममार्गप्रदर्शकः॥ २॥
सूत्रग्रन्थिमतीं मालां तिलकं जलनिर्म्मितम्।
वासुदेवेति तन्मन्त्रं कलौ कृत्वा जने जने॥ ३॥
कृष्णचैतन्यमागम्य कम्बलं च तदाज्ञया।
गृहीत्वा स्वपुरीं प्राप्य कृष्णध्यानपरोऽभवत्॥ ४॥
(इति श्रीभविष्यपुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युग-खण्डापरपर्य्याये कलियुगेतिहाससमुच्चये कृष्णचैतन्यादि-वर्णने एकोनविंशोऽध्यायः)

भविष्यपुराण कब बना अथवा ये चारों श्लोक उसमें कब मिलाये गये, इस विषय पर हम यहाँ बहस नहीं करना चाहते। हमें सिर्फ़ इतना ही कहना है कि कृष्णचैतन्य के समय में गुरु रोपण हो अवश्य गये हैं। किंवदन्ती तो यह कहती है कि गुरु रोपण डौंडियाखेरे के रहने वाले थे, पर भवि-ष्यपुराण के अनुसार उनकी निवास-भूमि इष्टिका नगरी थी। सम्भव है डौंडियाखेरे की रियासत में इस नाम का कोई नगर या ग्राम उस समय रहा हो। वह प्रसिद्ध न रहा हो, अतएव रियासत की राजधानी को ही गुरु रोपण अथवा उनके वंशजों ने अपना पूर्व-स्थान बताया हो। यह भी सम्भव है कि उस समय इटौरा के ही आस पास इस नाम का कोई गाँव रहा हो, या इष्टिका ही का अपभ्रंश इटौरा हो गया हो। अधिक सम्भावना तो इसी पिछली बात की है। भविष्य-पुराण के पूर्वोल्लिखित श्लोकों से यह भी सूचित है कि रोपण गुरु के पिता का नाम दत्त या गुरुदत्त था।

अपने समय में गुरु रोपण बड़े नामी महात्मा थे। उनकी कीर्त्ति धीरे धीरे दूर दूर तक फैल गई। उनके हज़ारों शिष्य हो गये। गुरुजी ने अपने मत का नाम निरञ्जन-सम्प्रदाय या निरञ्जन-मत रक्खा। दुःख की बात है, इस सम्प्रदाय अथवा गुरुरोपण का बहुत ही कम ऐतिहासिक वृत्तान्त प्राप्य है। इनके विषय में जो कुछ ज्ञात है उसका अधिकांश कपोलकल्पित ही जान पड़ता है।

राजा वीरबल कालपी के रहनेवाले थे। इटौरा कालपी के पास ही है। लोग कहते हैं कि वीरबल ने अकबर बादशाह से गुरु रोपण की तपस्या और सिद्धियों का वर्णन किया। अकबर में धर्म्म-द्वेष बिलकुल ही न था। वह सब धर्म्मों के महात्माओं और विद्वानों का आदर करता था। उसने अपना एक नया ही धर्म्म चलाया था। उसका नाम था दीने इलाही। वीरबल से गुरु रोपण की प्रशंसा सुन कर अकबर ने उन्हें अपने दरबार में बुला भेजा। पर इस समय गुरु रोपण ब्रह्मलीन हो चुके थे। इस कारण बादशाह की आज्ञा का पालन गुरु रोपण के पुत्र जानराय ने किया। वे मण्डनराय के नाम से भी प्रसिद्ध थे। अकबर ने महात्मा राय की परीक्षा लेने का निश्चय किया। उसने एक दिन एक बर्तन के भीतर एक काला साँप बन्द कराया। फिर उस बर्तन को दरबार में रख कर रायजी से पूछा—इसमें क्या है? रायजी ने उत्तर दिया—गुरु का प्रसाद है। बादशाह ने कहा—तो इसे बाँट दो। निरञ्जनी महात्मा ने बर्तन का ढक्कन खोल कर दो दो पेड़े सबको बाँट दिये। फिर उसे उन्होंने पूर्ववत् ढक दिया। अकबर ने उसे फिर ढक देने का कारण पूछा तो उत्तर मिला कि प्रसाद बँट गया; अब जो था वह रह गया है। इसीसे इसे फिर ढक देने की ज़रूरत हुई है। यह देख कर अकबर बहुत प्रसन्न हुआ। उसने कहा, जिस महात्मा के प्रभाव से इसके शिष्यों को ऐसी सिद्धियाँ प्राप्त हो सकती हैं उसकी यादगार बननी चाहिए। उसने आज्ञा दी कि मेरे ख़र्च से गुरु रोपण का स्मारक एक सुन्दर समाधि-मन्दिर इटौरे में बनवाया जाय और उसी के पास एक अच्छा तालाब भी खुदाया जाय, तथा अकबर-पुर नाम का एक गाँव भी बसाया जाय। गाँव, मन्दिर और तालाब तीनों अब तक विद्यमान हैं।

मन्दिर अकबर की मृत्यु के बाद, जहाँगीर के राज्यकाल में, बना। मन्दिर में जो शिलालेख हैं उनके अनुसार वह फाल्गुन शुक्ल १३, सोमवार, संवत् १६७२ (सन् १६१५ ईसवी) में बन कर तैयार हुआ। इस मन्दिर में तीन शिलालेख हैं। दो संस्कृत में हैं, एक उस समय की बुँदेलखण्डी हिन्दी में। इनमें से पहले की नक़ल नीचे दी जाती है—

(१)

निरञ्जनसपक्षेण दक्षेण मुनिवृत्तिना।
भूपालवृन्दवन्द्येन रामेणात्र समाहितम्॥ १॥
नयनमुनिनृपेब्दे क्रोधने मासि माघे (?)।
सदनमकृत रामः पुष्यभेन्दौ च वारे।
यवन-अवनदक्षे श्रीजहाँगीरसंज्ञे।
जगति विशदकीर्त्तौ कुर्व्वतीशे सुराज्यम्॥ २॥
गङ्गाकूलसुमूलपूर्व्ववसतिग्रामेस्विटौराभिधे।
राजन्योऽजनि रोपणिः पुनरतः श्रीजानरायिप्रभुः।
तस्यापीह सुतो नुतोऽखिलजनैः श्रीपरशरामो गुरुः।
चैत्यं चारु चकार चोपलमयं वैश्यो वदान्यो भुवि॥३॥
रामश्चारुचकोरकोविदमनोमानं ददद्देहिनाम्।
सन्तापं विनुदन्विनोदमनयत्सत्कैरवाणां कुलम्॥
पात्रापात्रविवेकदाननिरतः पीयूषपूर्णः सदा।
श्रीमद्रोपणिवंशरत्नजलधेर्जातोद्भुतश्चन्द्रमाः॥ ४॥
समीपे श्रोकरीपुर्या ग्रामः सिंहावलीति च।
ततः शिलाः समानीताः श्रीमता रतिभानुना॥ ५॥

इस शिलालेख की भाषा कई जगह दोषपूर्ण है। सम्भव है, इन भाषा-सम्बन्धिनी त्रुटियों में से कुछ नक़ल करने में हो गई हों—भ्रम से कुछ का कुछ लिख गया हो। पर कुछ त्रुटियाँ शिलालेख के पद्यप्रणेता ही की हैं। जान पड़ता है, संस्कृत-व्याकरण और छन्दः-शास्त्र में लेखक की यथेष्ट गति न थी। तथापि लेख का मतलब अच्छी तरह समझ में आ जाता है। वह इस प्रकार है—जहाँगीर के राज्यकाल में, संवत् १६७२ के फाल्गुन में यह मन्दिर बना। उस दिन पुष्य नक्षत्र और सोमवार था। भूपाल-वृन्द-वन्दित निरञ्जनमतानुयायी मुनि-वृत्तिधारी राम या रोपण इसमें समाहित हैं। गङ्गा-तटवर्ती इटौरा ग्राम में रोपणि-नामक राजन्य (क्षत्रिय) हुआ। उसके जानरायि नामक पुत्र हुआ। जानरायि के परशुराम पुत्र हुआ। उस

वदान्य ( बड़े दाता ) वैश्य ने इस चैत्य का निर्माण किया। सीकर-नगरी के पास सिंहावली नाम का एक गाँव है। वहाँ से श्रीमान् रतिभानु के द्वारा लाये गये पत्थर से यह निर्मित हुआ।

गुरु रोपण के वंशज अपने को "बैस (वैश्य) ठाकुर" कहते हैं। इसीसे शायद "राजन्य" के साथ ही "वैश्य" पद का भी प्रयोग इस लेख में किया गया है। चैत्य उसे कहते हैं जिसमें किसी की चिता का कुछ अंश स्थापित किया जाय। इस मन्दिर में गुरु रोपण के "फूल" अर्थात् उनकी अस्थियों का कुछ अंश अवश्य रक्खा गया होगा। क्योंकि ऐसा होने ही से इसका नाम चैत्य या समाधि सार्थक हो सकता है। इस लेख में अकबर या जहाँगीर से प्राप्त साहाय्य का कुछ भी उल्लेख नहीं। यह आश्चर्य्य की बात है। एक बात और भी है। वर्तमान इटौरा के पास गङ्गा नहीं। पर शिलालेख में इटौरा गङ्गा-तटवर्त्ती बताया गया है। हाँ, डौंडियाखेरा में गङ्गा अवश्य हैं। सम्भव है, वहाँ इस नाम का कोई गाँव रहा हो। रोपण या उनके वंशजों ने उसी के नामानुसार कालपी के पास वाले इटौरा गाँव को बसाया हो। आशा है, लघाटे महाशय इस विषय का विवेचन करेंगे।

इटौरा में गुरु रोपण की गद्दी के वर्तमान महन्त का नाम बलदेवप्रसाद है। आपसे मालूम हुआ कि आपके पूर्व इतने महन्त इस गद्दी के हो गये हैं—(१) गुरु रोपण (२) जानराय (३) परशुराम (४) रतिभान (५) जनार्द्दन (६) भीमसेन (७) जसकरन (८) इन्द्रजीत (९) चतुरदास (१०) कृष्णदास (११) भावनाथ (१२) जयलाल (१३) शिवप्रसाद। इस हिसाब से चैत्य-निर्माता परशुराम गुरु रोपण के पौत्र और सीकरी से पत्थर लानेवाले रतिभानु प्रपौत्र थे। अकबर की मृत्यु १६०५ ईसवी में हुई और मन्दिर बना १६१५ ईसवी में। मालूम नहीं किस सन् में जानराय देहली गये थे। यदि वे अकबर की मृत्यु के ५ वर्ष भी पहले गये हों तो मन्दिर बनने तक, अर्थात् पन्द्रह ही वर्ष में, मण्डनराय भी परलोकगामी हो गये और परशुराम को महन्त की गद्दी मिल गई। साथ ही परशुराम के पुत्र रतिभानु भी इतने वयस्क हो गये कि पत्थर लाने का काम उन्हीं ने किया। तीन सौ वर्ष में तो १४ महन्त हुए, अर्थात् हर महन्त के लिए बीस इक्कीस वर्ष का औसत पड़ा, पर आरम्भ के पन्द्रह ही वर्ष में दो हो गये! सम्भव है, इसमें कुछ ग़लती हो। अथवा जानराय अल्पायु हो गये हों।

इस शिलालेख की वंश-क्रम-सूचना में "सुत" शब्द का प्रयोग हुआ है। शायद ये मुनिवृत्तिधारी निरञ्जनी साधु विवाह करके प्रजोत्पादन भी करते हैं।

दूसरे शिलालेख का मज़मून नीचे दिया जाता है:—

( २ )

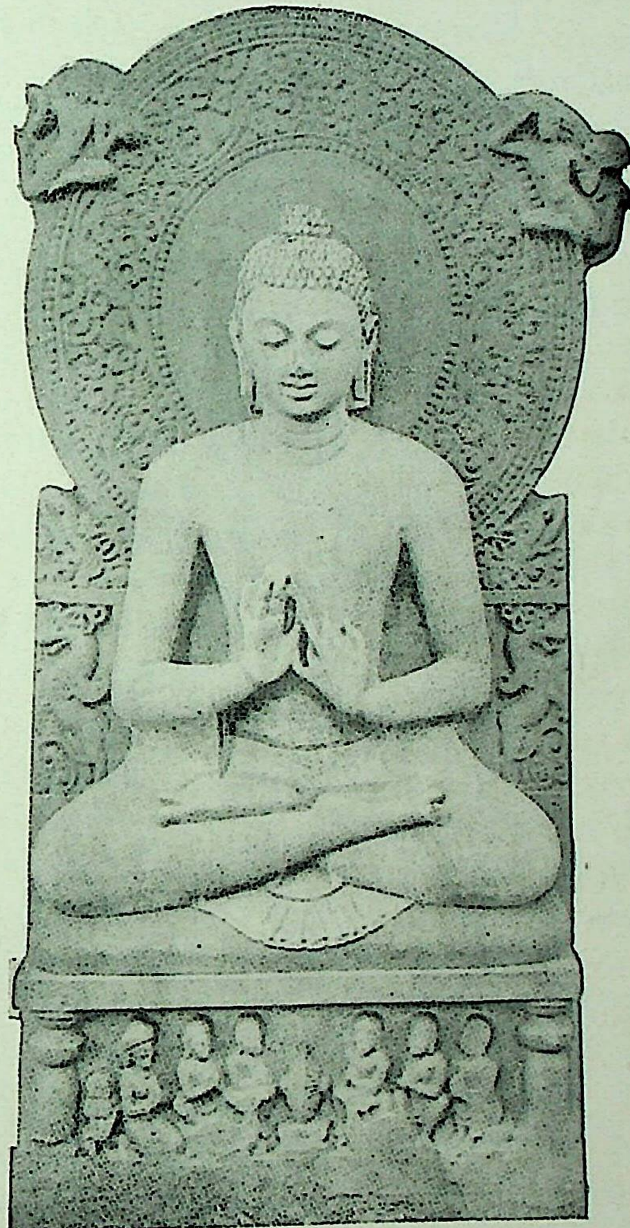
अस्ति हि आज्ञा गुरोर्देयं दानं दीनेषु नित्यशः।
ज्ञानं सर्वत्रगं ब्रह्म नामैकं तु निरञ्जनम् ॥ १ ॥
दयां सत्यं तपः शौचं प्रतापं पुण्य-लोपनम्।
कलिमागतं विज्ञाय रोपणेः कोपनोऽभवत् ॥ २ ॥
दीयतां दीयतां दानं प्रातरारभ्य नित्यशः।
आनिशीथमिहातिष्ठन् परशुरामेऽवदद् वचः ॥ ३ ॥

इसका तात्पर्य्य यह है—नामों में निरञ्जन का नाम और ज्ञानों में सर्वव्यापक ब्रह्म का ज्ञान ही श्रेष्ठ है। दया, सत्य, तप, शौच और पुण्य आदि का लोप करनेवाले कलि को आ गया देख गुरु रोपणि को क्रोध आया। उन्होंने ( शायद स्वप्न में ) परशुराम से कहा कि यहाँ रह कर प्रातःकाल से सायङ्काल तक अनवरत दान देते रहो। इसीसे गुरु की यह आज्ञा इस मन्दिर में अङ्कित की जाती है। इस लेख की भी संस्कृत-भाषा में गड़बड़ है। पर मतलब समझ में आ जाता है।

तीसरा शिलालेख पुरानी बुँदेलखण्डी हिन्दी में है। वह ९ पंक्तियों में है। पहली ६ पंक्तियों की अक्षरशः नक़ल इस प्रकार है—

( ३ )

श्रीरोपनि गुर जग उधरन
संवत् १६७२ साक १२३७
फागुन सदि १३ सेमरु पख
नछत्रु चौषड पायन को



सारनाथ में प्रथमोपदेश-निरत बुद्ध की मूर्ति।
( गुप्त-कालीन )

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

बनववो पथर को श्रीप—
रसरम गुसाइ इटर

इसके आगे ढाई पंक्तियों में शायद लेख खोदने-वाले या मन्दिर के मुख्य मिस्त्री का नाम है। पर वह ठीक ठीक नहीं पढ़ा जाता। अन्त में है—"सभ मस्तु"। इसमें भी मन्दिर बनने का संवत् इत्यादि और बनवानेवाले परशुराम गुसाईं का नाम है।

यह मन्दिर सीकरी से लाये गये लाल पत्थर का है। मन्दिर बड़ा विशाल है। बनवाने में बहुत रुपया ख़र्च हुआ होगा। इसमें पत्थर पर अच्छा काम है। मन्दिर के भीतर पत्थर पर खुदी हुई बेलें बहुत ही सुन्दर हैं। गुरु रोपण के चलाये हुए निरञ्जनी लोगों का एक मन्दिर ज़िला जालौन के पिया-निरञ्जनपुर मौज़े में भी है। पर वह इतना पुराना और अच्छा नहीं। असली और नामी मन्दिर इटौरे ही का है। यहाँ हर साल कार्त्तिकी पूर्णिमा को बहुत बड़ा मेला होता है। हज़ारों आदमी गुरु की समाधि का दर्शन करने आते हैं। बच्चों का चूड़ा-कर्म भी मन्दिर में होता है।

समाधि के पट सदा बन्द रहते हैं। दर्शनार्थी लोग १।) देकर एक और २॥) देकर दोनों द्वार खुलवा सकते हैं। समाधि में मूर्त्ति नहीं। चार-पाँच सीढ़ियाँ उतरने पर नीचे एक छोटी सी कोठरी है। वहीं फूल आदि चढ़ाये जाते हैं। शायद वहीं पर गुरु का देहावशेष भूमिस्थ है।

इस मन्दिर के ख़र्च के लिए पहले इटौरा और अकबरपुर गाँव लगे हुए थे। वे गुरु के वंशजों के अधिकार में थे। परन्तु उन लोगों ने १८५७ ईसवी के ग़दर के समय गवर्नमेंट की प्रतिकूलता की और बहुत उत्पात मचाया। इससे यह ज़मींदारी उनसे छीन ली गई और झाँसी के सरकारी मुलाज़िम रावबहादुर पण्डित गोपालराव लघाटे को, उनकी ख़ैरख़ाही के उपलक्ष्य में, दे दी गई। तबसे पूर्वोक्त दोनों गांव लघाटे महाशय के ही वंशजों के अधिकार में हैं।

इटौरे के इस मन्दिर को निरञ्जनी सम्प्रदाय के अनुयायियों से पूजा-अर्चा और भेंट में जो कुछ मिल जाता है उसीसे इसका ख़र्च चलता है। आमदनी का और कोई द्वार नहीं। बुँदेलखण्ड में इस मत का विशेष प्रचार है। विशेष कर डिढ़ोमर बनिया इसी मत के अनुयायी हैं।

नन्दकिशोर द्विवेदी
(केनिंग् कालेज, लखनऊ)

---

# भारत की उन्नति का उपाय।

[स्वामी विवेकानन्द और उनके एक शिष्य में परस्पर बात चीत]

शिष्य—स्वामीजी, आप इस देश में वक्तृता क्यों नहीं देते? वक्तृता ही के प्रभाव से तो आपने योरुप, अमेरिका आदि देशों को मुग्ध कर दिया है। पर भारत में लौटने के पश्चात् उस ओर आप का उद्यम और अनुराग न मालूम क्यों कम हो गया है। इसका कारण क्या? मेरी समझ में तो पाश्चात्य देशों की अपेक्षा भारत में उस प्रकार के विशेष उद्यम की आवश्यकता है।

स्वामीजी—इस देश में पहले खेत तैयार करने होंगे। त[ब] बीज बोने से अङ्कुर उत्पन्न होंगे। पाश्चात्य देशो[ं] की ज़मीन ख़ूब उर्वरा है। वह बीज बोने के उप[-] युक्त हो गई है। उस देश के मनुष्य भोग क[ी] चरम सीमा तक पहुँच गये हैं। भोग से अब उनक[ी] तृप्ति नहीं होती। उन्हें अब एक और ब[ड़ा] भारी अभाव दिखाई दे रहा है। तुम्हारे देश [में] न तो भोग ही है और न योग ही। भोग [की] इच्छा कुछ कुछ तृप्त हो जाने पर मनुष्य यो[ग] की कथा सुनने और समझने की इच्छा क[रता] है। अन्नाभाव से क्षीण देह, क्षीण मन, [रोग-] शोक-परिताप की जन्म-भूमि भारत में [लेक-] लेक्चरबाज़ी से क्या फल होगा?

शिष्य—पर आप ही तो कभी कभी कहा करते हैं कि [यह] देश धर्म्म-भूमि है। इस देश के मनुष्य जितनी

कथा समझते और कार्य्यतः धर्म्मानुष्ठान करते हैं उतना अन्य देश वाले नहीं। तब आप की ज्वलन्त वाग्मिता के प्रभाव से यह देश क्यों न जागृत होगा और फल भी क्यों न प्राप्त होगा ?

स्वामीजी—क्या तुमने यह नहीं सुना —"भूखे भगति न होय गोपाला"। पहले पेट की पूजा करनी होगी। उसे ठंडा किये विना-तुम्हारी धर्म्म कर्म्म की बातों पर कोई ध्यान न देगा। क्या तुम नहीं जानते कि इस समय भारत पेट की चिन्ता से विह्वल हो रहा है ? अनेक कारणों से वह अस्थिचर्म्मावशिष्ट हो रहा है। धर्म्म-कथा सुनाने के पहले मनुष्यों के मन से पेट की चिन्ता दूर करनी होगी। अन्यथा केवल लेक्चरों से कोई फल न होगा।

शिष्य—तो हमें अब क्या करना चाहिए ?

स्वामीजी—पहले तो कुछ ऐसे त्यागी मनुष्यों की आवश्यकता है जो स्वार्थ का त्याग कर के दूसरों के लिए जीवन उत्सर्ग करने को प्रस्तुत हों। इसी लिए मठस्थापना करके मैं कुछ बाल-संन्यासी तैयार कर रहा हूँ। शिक्षा समाप्त होने पर वे द्वार द्वार भ्रमण करके सब को देश की वर्तमान शोचनीय दशा का ज्ञान करावेंगे। वर्तमान हीनावस्था से किस तरह उद्धार हो, इसका वे उपदेश करेंगे। साथ ही धर्म्म की महत्ता को भी लोगों के हृदय पर अङ्कित करेंगे। तुम्हारे देश की जनता कुम्भकर्णी निद्रा में निमग्न है। एक तो यहाँ यों ही शिक्षा की कमी है। जिन्हें वह प्राप्त भी होती है वे भी देश-हित के लिए कुछ नहीं कर सकते। करें भी तो किस तरह। कालेज से निकलते न निकलते हमारे युवक कई बच्चों के बाप हो जाते हैं। मुश्किलों में कहीं उन्हें कोई छोटी मोटी नौकरी मिलती है। उनकी शिक्षा का यही फल होता है। गृहस्थी के भार के कारण उच्च कर्म्म तथा उच्च विचार करने का उन्हें अवकाश ही नहीं मिलता। वे अपने ही स्वार्थ की सिद्धि नहीं कर सकते, दूसरों के लिए वे भला क्या करेंगे ?

शिष्य—तो अब क्या कोई उपाय नहीं ?

स्वामीजी—है अवश्य। यह देश सनातन-धर्म्म की जन्म भूमि है। गिर अवश्य गया है। पर इसका उत्थान हो सकता है। यह उठेगा और खूब उठेगा। समुद्र अथवा नदी का पानी जितना ही कम हो जाता है, लहरें उतनी ही प्रबलता से उठती हैं। भगवान् भुवन-भास्कर के धार्मिक उदय में विलम्ब नहीं। काम में लग जाओ; आलस्य से अब काम न चलेगा। धर्म्म और शिक्षा-सम्बन्धिनी अधोगति का सँदेशा सुना कर कहो, भाई ! उठो और कब तक सोओगे। शास्त्रों की महत्ता सरलता-पूर्वक उनको समझा दो। अभी तक इस देश के ब्राह्मणों ने धर्म्म को एकाङ्गी बना रक्खा था। काल के प्रभाव से अब वे बात नहीं रहीं। अतएव ऐसी व्यवस्था करो जिसमें सर्व-साधारण उस महान् धर्म्म के रहस्यों को समझ सकें। सब को समझा दो कि ब्राह्मणों की भाँति तुम्हारा भी धर्म्म पर समान अधिकार है। चाण्डाल से लेकर ब्राह्मण तक सभी को इस महा मन्त्र से दीक्षित करो। मीठी मीठी बातों से उन लोगों का ध्यान व्यापार, वाणिज्य, कृषि आदि गृहस्थ-जीवनोपयोगी विषयों की ओर खींचो। नहीं तो तुम्हारी शिक्षा और तुम्हारा वेद-वेदान्त-ज्ञान ही व्यर्थ है।

शिष्य—गुरुदेव ! हम लोगों में ऐसी शक्ति कहाँ ? आप के शतांश का एकांश भी हममें होता तो हम अपने को धन्य मानते और दूसरों का भी उपकार करने में समर्थ होते।

स्वामीजी—अरे मूर्ख ! क्या शक्ति किसी के देने से मिलती है ? वह तेरे ही भीतर है। समय आते ही वह स्वयं ही विकसित हो जायगी। तू कार्य्य में लग तो जा। देखना, ऐसी शक्ति प्राप्त होगी कि सँभालना मुश्किल हो जायगा। थोड़ा भी परोप-कार करते ही आन्तरिक शक्ति जागृत हो उठती है। दूसरे की भलाई के लिए थोड़ी भी चिन्ता करते ही हृदय में सिंह-बल का सञ्चार हो जाता

है। यद्यपि मैं तुम लोगों का इतना प्यार करता हूँ तथापि इच्छा यही होती है कि तुम लोग दूसरों के लिए अपना शरीर अर्पण कर दो और मैं देखकर सुखी होऊँ।

शिष्य—पर स्वामीजी, जो लोग हमारे ही ऊपर अवलम्बित हैं उनकी क्या दशा होगी?

स्वामीजी—यदि तू परार्थ-सम्पादन में लग जायगा तो परमात्मा तेरे आश्रितों का अवश्य ही कुछ न कुछ कर देगा। क्या तूने गीता में नहीं पढ़ा—नहि कल्याणकृत् कश्चित् दुर्गतिं तात गच्छति।

शिष्य—हाँ, पढ़ा अवश्य है।

स्वामीजी—वास्तव में त्याग ही सब कुछ है। बिना त्यागी बने कोई भी बड़ा कार्य्य नहीं हो सकता। त्यागी ही सब को सम दृष्टि से देखता है और सब की सेवा करने में समर्थ होता है। वेदान्त में तूने पढ़ा ही है कि सब को समदृष्टि से देखना चाहिए। फिर तू अपनी स्त्री और पुत्रों ही को दूसरों की अपेक्षा क्यों विशेषता देता है? तेरे द्वार पर स्वयं नारायण कङ्गाल-वेश में अनाहारी होकर मृतप्राय पड़े हुए हैं। उन्हें कुछ न देकर केवल अपनी स्त्री और पुत्रों के उदर की पूर्ति करना पशुओं का काम है।

शिष्य—स्वामीजी, परोपकार करने के लिए विशेष धन की भी तो आवश्यकता होती है। वह कहाँ से आवे?

स्वामीजी—अच्छा, जितनी शक्ति है, पहले उतना ही क्यों नहीं करते। यदि धनाभाव से कुछ नहीं दे सकते तो क्या दो एक मीठी मीठी बातें अथवा थोड़ा सा सदुपदेश भी नहीं दे सकते? क्या इसमें भी धन की आवश्यकता है?

शिष्य—हाँ, यह तो कर सकता हूँ।

स्वामीजी—कर सकते हो, यह केवल मुँह से कह देने ही से काम न चलेगा। जितना कर सकते हो उतना कर दिखाओ। तब हम समझेंगे कि तुम्हारा हमारे पास आना सार्थक हुआ। कार्य्य में झटपट लग जाओ। यह जीवन कितने दिन के लिए है। संसार में आये हो तो कुछ चिह्न छोड़ जाओ। नहीं तो पशु-पक्षी भी तो पैदा होते और मरते हैं। "मनुष्य" क्या कभी मरने जीने की इच्छा कर सकता है? कार्य्य करके हमें यह दिखा दो कि तुम्हारा वेदान्त पढ़ना सार्थक हुआ। सब के कानों में यह फूँक दो कि तुम्हारे भीतर अनन्त शक्ति वर्तमान है। उसे उद्दीप्त करो। केवल अपनी मुक्ति प्राप्त करने से क्या होगा? मुक्ति की कामना करना भी तो महती स्वार्थपरता है। तिलाञ्जलि दे दो ध्यान को। परित्याग कर दो मुक्ति की कामना को। लग जाओ उस कार्य्य में जिसमें मैं लगा हुआ हूँ।

शिष्य अवाक् सुनने लगा। स्वामीजी फिर कहने लगे।

स्वामीजी—तुम लोग जाकर खेत तैयार करो। हमारे समान हज़ारों विवेकानन्द इस देश में वक्तृता देने के लिए शरीर धारण करेंगे। इसकी कोई चिन्ता न करो। देखो, हम लोगों के साथियों ही ने, जो पहले यह सोचते थे कि हम में शक्ति नहीं, आज कितने ही अनाथाश्रम, दुर्भिक्ष-फण्ड आदि खोल रक्खे हैं। क्या तुम नहीं देखते कि निवेदिता पाश्चात्य बाला होकर भी तुम्हारी सेवा करना सीख गई है? तो क्या तुम लोग अपने देशवासियों ही की सेवा करना न सीख सकोगे? जहाँ पर महामारी, दुर्भिक्ष आदि कष्टों से लोग पीड़ित हो रहे हैं वहाँ जाओ। बहुत होगा म[र] जाओगे। हमारे तुम्हारे जैसे कितने ही कीट-पत[ङ्ग] मरते जीते हैं। उससे संसार का क्या बन[ता] बिगड़ता है? एक दिन मरना ही है तो कि[सी] महान् उद्देश के साधन ही में मरना श्रेष्ठ है। जाओ, इस महा-मन्त्र का घर घर में प्रच[ार] करो। इससे तुम्हारा और तुम्हारे देश का, दे[श] ही का, कल्याण होगा। तुम्हीं लोग देश [की] आशा-धन हो। तुम्हें कर्म्महीन देख मुझे [बड़ा] कष्ट होता है। काम में लग जाओ! काम [में] लग जाओ! मृत्यु दिन दिन निकट आ रही [है।] फिर करेंगे, ऐसा कह कर बैठ न रहना। [ऐसा करने से] तो कुछ भी न होगा।　[ अनुवादि[त]

बालदत्त पाण्डे[य]

## सोने के गुण ।

सोना सब धातुओं में बढ़िया गिना जाता है। शुद्ध सोना रङ्ग में साफ़ और वायु तथा जल में रहने से भी मैला नहीं होता। यह धातु व्यापार में बहुत काम आती है। इसके सिक्के और अनेक प्रकार के आभूषण आदि बनाये जाते हैं। सोने के परमाणु बहुत सघन होते हैं। इस कारण उसमें गुरुत्व भी विशेष होता है। और धातुओं की अपेक्षा सोना अधिक तेज़ अग्नि में गलता है और बढ़ाने से अधिक बढ़ाया भी जा सकता है। जो यह तार की सूरत में खींचा जाय तो इसका तार बहुत पतला खिँच सकता है। यह नरम तो होता है, पर चीमड़ा भी होता है—अर्थात् तोड़ने से यह नहीं टूटता और खींचने से नहीं कटता। अधिक नरम होने के कारण शुद्ध अवस्था में सोने का विशेष उपयोग नहीं होता।

धातुओं की गुरुता, अर्थात् भारीपन, की जाँच से जाना गया है कि मामूली धातुओं में सोना सबसे भारी है। कौन धातु कितनी भारी है, यह जानने की स्थूल रीति इस प्रकार है। धातुओं के गुरुत्व की जाँच के लिए पानी का परिमाण मुख्य माना जाता है। पानी सुगमता से स्वच्छ किया जा सकता है और विना कष्ट सब कहीं मिल भी सकता है। वर्षा का जल धरती पर गिरने के पूर्व ही, यदि स्वच्छ पात्र में इकट्ठा कर लिया जाय तो वह शुद्ध और स्वच्छ होता है। जल को भपके में भर कर उसकी बाष्प यदि एकत्र कर ली जाय तो उससे भी निर्मल जल प्राप्त हो सकता है। इस तरह प्राप्त किया गया जल धातुओं की गुरुता की माप का परिमाण माना जाता है। ऐसे शुद्ध जल की तोल जाँच की इकाई मानी गई है। कल्पना कीजिए कि एक प्याले में शुद्ध और स्वच्छ जल भरा है। उसे तोलिए। उसकी तोल से प्याले की तोल घटा दीजिए। जो बचे वही शुद्ध जल की तोल समझिए। अब ख़ूब पोंछ कर उसी प्याले में सोना आदि धातु ख़ूब ठाँस कर भर दीजिए, जिस में वायु के सञ्चार के लिए भी स्थान न रहे। तब उसे फिर तोलिए। जो तोल आवे उस से प्याले की तोल को घटा दीजिए। जो बाक़ी बचेगा वही सोने आदि धातु की असल तोल होगी। इस तोल या वज़न में शुद्ध जल की तोल से भाग दीजिए तो प्राप्त हुई लब्धि ही धातु का गुरुत्व होगा। अर्थात् उससे यह सिद्ध होगा कि जल की अपेक्षा धातु में इतना अधिक भारीपन है। इस तरह परीक्षा करने से ज्ञात हुआ है कि सुनारों और सराफों के उपयोगी धातुओं का गुरुत्व जल की अपेक्ष इस भाँति है—

| धातु | गुरुत्व |
|---|---|
| जल | १ |
| जस्ता | ७·२ |
| ताँबा | ८·९६ |
| चाँदी | १०·५ |
| सोना | १९·२ |

पीटने से धातु के परमाणु और भी सघन हो जाते हैं और उसका गुरुत्व भी बढ़जाना है। इस कारण गढ़े जाने पर सोने का गुरुत्व १९·५ होजाता है। सब धातुयें अग्नि संयोग से पिघल जाती हैं। जुदी जुदी धातु के पिघलने के लिए जुदी जुदी उष्णता दरकार होती है—

| धातु | कितने दर्जे की गरमी से गलती है |
|---|---|
| शुद्ध सोना | २०१६ दर्जे |
| " ताँबा | १९९४ " |
| " चाँदी | १८७३ " |
| शुद्ध जस्ता | ७७३ दर्जे |
| " सीसा | ६१२ " |
| " राँगा | ४४२ " |

इससे स्पष्ट है कि सोना बहुत तेज़ आग में पिघलता है। सबसे अधिक गुरुत्व और सबसे अधिक तेज़ आग से पिघलना, इन दो विशेष गुणों

के सिवा, सोने में यह भी विशेष गुण है कि पीटने से वह सब धातुओं की अपेक्षा अधिक फैल सकता है। एक विज्ञानवेत्ता महाशय का कथन है कि एक तोले सोना पीट कर उसका पत्तर चार एकड़ भूमि के बराबर बढ़ाया जा सकता है; और यदि उसका अत्यन्त महीन तार खींचा जाय तो एक इंच के दो लाखवें भाग की बराबर पतला खींचा जा सकता है। बाज़ार में सोने के वरक़ बिकते हैं। वे ओषधि के काम आते हैं। वे सोने की अत्यधिक वर्द्धनशीलता के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। एक तोले सोने का तार ९२,३२० फुट लम्बा खींचा जा सकता है।

बढ़ाव और खिँचाव में तो सोना सब धातुओं से श्रेष्ठ है पर चीमड़पन में नहीं। सोने का जितना मोटा तार ७५ सेर बोझ सँभाल सकता है, चांदी और लोहे का उतना ही मोटा तार क्रम से ९४ और २७५ सेर बोझ सँभाल सकेगा। इससे स्पष्ट है कि बोझ सँभालने में सोना और धातुओं की बराबरी नहीं कर सकता।

और धातुओं के मुक़ाबिले में सोना अधिक नरम है। इस कारण यदि वह शुद्ध रूप में व्यवहृत होता है तो शीघ्र घिस जाता है।

गङ्गाशङ्कर पञ्चौली

---

# सर फ़ीरोज़शाह मेहता।

लगभग एक ही वर्ष में भारतवर्ष को बड़ी हानि उठानी पड़ी। राष्ट्रनेताओं की इस हानि का यथेष्ट परिमाण बताना शक्ति के बाहर है। भारत के अनेक नेता उसे छोड़ गये। इसी वर्ष के फ़रवरी महीने में माननीय गोखले का देवलोक हो गया। उस शोक से उत्पन्न आँसू भी न सूखने पाये थे कि भारत के हितेच्छु सर हेनरी काटन का देहान्त हो गया। उनकी मृत्यु को हुए एक पाख भी न व्यतीत होने पाया था कि सर फ़ीरोज़शाह मेहता का परलोकवास हो गया। भारतवासियों के शोक का भला कहीं ठिकाना है!

सर फ़ीरोज़शाह मेहता की मृत्यु का समाचार सुन कर हम लोगों के हृदय पर अचानक कड़ी चोट लगी है। सर फ़ीरोज़शाह मेहता भारत के नामी नेता थे। बम्बई-प्रान्त में उनका बहुत मान था। उनके गुणों की प्रशंसा गोखले, रानडे आदि महात्मा पुरुषों ने की है। वृद्धावस्था में उनके अस्वस्थ होने के समाचार से ही सब चिन्तित हो गये थे। सब लोग हृदय से उनके आरोग्य होने की प्रार्थना करते थे। ५ नवंबर को उनके देहान्त का समाचार पाकर सबको शोक-ग्रस्त हो जाना पड़ा।

फ़ीरोज़शाह मेहता का जन्म ४ अगस्त सन् १८४५ को हुआ था। उनके पिता कामा एंड कम्पनी के एक हिस्सेदार थे। उनकी आर्थिक दशा साधारणतः अच्छी थी। इस कारण फ़ीरोज़शाह को विद्याध्ययन का अच्छा अवसर मिला। सन् १८६४ ईसवी में एम० ए० की परीक्षा पास करके बैरिस्टरी की शिक्षा प्राप्त करने वे विलायत गये। वहाँ पर उस समय दादाभाई नौरोजी अकेले ही भारतवासियों के लिए इस प्रयत्न में लगे थे कि उन्हें उनके राजकीय स्वत्व मिल जायँ। फ़ीरोज़शाह मेहता को उनसे मिलने का अवसर प्राप्त हुआ। वे लंडन इंडियन सोसाइटी और ईस्ट इंडिया असोसियेशन में भी सम्मिलित हुए। वहाँ पर डब्ल्यू० सी० बैनर्जी से उनकी मित्रता हो गई। ईस्ट इंडिया असोसियेशन में फ़ीरोज़शाह मेहता ने उदार शिक्षा के विषय पर एक महत्त्व-पूर्ण लेख पढ़ा। इसके पश्चात् वे शिक्षा-सम्बन्धी विषयों की ओर विशेष ध्यान देने लगे।

सन् १८६८ ईसवी में बैरिस्टर होकर वे बम्बई लौट आये। बम्बई में वे म्युनिसिपलिटी के मेम्बर हो गये। म्युनिसिपलिटी के ही काम में उनके जीवन का अधिकांश व्यतीत हुआ। कोई ४५ वर्ष तक बम्बई की म्युनिसिपलिटी के मेम्बर रह कर उन्होंने उसमें कई बड़े महत्त्व के सुधार किये। बम्बई की

म्युनिसिपलिटी की आधुनिक उन्नति अधिकतर उन्हीं के प्रयत्नों का फल है। वह स्वराज्य-सभा का एक छोटा सा नमूना है। बहत्तर मेम्बरों में से केवल सोलह को गवर्नमेंट चुनती है। शेष बम्बई के निवासियों ही द्वारा चुने जाते हैं।

इसके बाद सर फ़ीरोज़शाह भारतवर्ष के प्रत्येक राजनैतिक कार्य्य की ओर ध्यान देने और उसकी चर्चा में सम्मिलित होने लगे। लार्ड लिटन के शासनकाल में वर्नाक्युलर-प्रेस-एक्ट का सबसे अधिक विरोध सर फ़ीरोज़शाह मेहता ने ही किया था। इस एक्ट के विरोध में जो बातें उन्होंने उस समय कहीं वे विशेष महत्त्व की हैं।

सन् १८८५ ईसवी में बम्बई के प्रान्तीय सम्मेलन ( Bombay Presidency Association ) की पहली बैठक हुई। इस समिति से उनका बराबर सम्बन्ध बना रहा। कुछ काल तक वे उसके सभापति भी रहे। उनके राजनैतिक विचारों का बहुत कुछ प्रसार इस सम्मेलन में दिये हुए व्याख्यानों द्वारा ही हुआ। वे सदा नरम दल के पक्षपाती रहे। भारत गवर्नमेंट और प्रजा में मित्रता बढ़ा कर प्रजा के लिए राजकीय अधिकार प्राप्त करना ही उनका उद्देश था। उन्होंने सरकारी कार्यों की सदा निर्भीकता से आलोचना की। उस समय से उनकी राजनीतिज्ञता की प्रशंसा बम्बई प्रान्त क्या, सारे भारतवर्ष में होने लगी।

सन् १८८६ में वे बम्बई की लेजिस्लेटिव कौन्सिल के मेम्बर चुने गये। इस कौन्सिल में गवर्नर तथा अन्य मेम्बरों ने भी उनके काम की बड़ी प्रशंसा की। ऐसा कोई भी क़ानूनी मसविदा "पास" नहीं हुआ जिसकी उन्होंने ख़ूब विचार-पूर्वक उचित समालोचना न की हो। जब उन्होंने किसी क़ानूनी मसविदे को प्रजा के लिए हानिकारक समझा तब उसका विरोध करने में कभी सङ्कोच न किया। सभा में वाद-विवाद करने की उनमें विशेष योग्यता थी। उनके उत्तर बहुत ही उचित होते थे। वे कूट और कटाक्ष-पूर्ण होते थे। भूमि-कर के सम्बन्ध में जो मसविदा पेश किया गया था उसका उन्होंने बहुत विरोध किया, परन्तु विपक्षी दल की प्रबलता के कारण वे सफल न हुए। बम्बई की कौन्सिल में वे लगातार २२ वर्ष तक मेम्बर रहे।

वाइसराय की कौन्सिल के लिए भी वे तीन बार मेम्बर चुने गये। वहाँ पर भी उनके कार्य्य, बम्बई की कौन्सिल के समान ही, महत्त्व-पूर्ण हुए। कहते हैं कि सर फ़ीरोज़शाह मेहता ने कौन्सिल में प्रवेश करके वहाँ, उचित मामलों में, शासक दल का विरोध करने की नई प्रथा चलाई। उनके जाने से शासक दल को यह बात विदित हो गई कि प्रजा के नियत किये हुए मेम्बरों द्वारा भी अब गवर्नमेंट के क़ानूनी मसविदों की कड़ी समालोचना का आरम्भ हो गया है। पहले वर्ष सर फ़ीरोज़शाह मेहता ने सर एन्टोनी मेकडानल के पुलिस-विभाग-सम्बन्धी मसविदे का विरोध किया। बजट (आयव्यय के लेखे) के ऊपर उन्होंने जो पहली वक्तृता दी वह समुचित समालोचना और गवेषणा-पूर्ण विचारों से भरी हुई थी। सन् १९०१ में उन्होंने माननीय गोखले को वाइसराय के कौंसिल में पहुँचाने के लिए अपनी मेम्बरी से इस्तैफ़ा दे दिया।

सर फ़ीरोज़शाह मेहता नेशनल कांग्रेस के मुख्य मेम्बरों में से थे। १८९० ईसवी में कलकत्ते में जो कांग्रेस हुई थी उसके वे सभापति थे। दो वर्ष वे कांग्रेस की स्वागतकारिणी सभा के प्रधान हुए थे। सन् १९०९ में वे फिर कांग्रेस के सभापति चुने गये थे, परन्तु उस साल उन्होंने वह आसन सुशोभित न किया। इस वर्ष भी वे कांग्रेस की स्वागतकारिणी सभा के प्रधान चुने गये थे। परन्तु दुर्भाग्यवश मृत्यु उन्हें पहले ही उठा ले गई।

मेहता महाशय का राजनैतिक मत यह था कि भारतवर्ष अँगरेज़ों के अधीन रह कर ही अपनी उन्नति कर सकता है। राज-भक्त रह कर प्रजा के अधिकारों की रक्षा करना और उचित अधिकार प्राप्त करना उनका उद्देश था। उनके राजनैतिक विचारों

से माननीय गोखले पूर्णतया सहमत थे। माननीय गोखले ने तो एक बार यहाँ तक कह डाला था कि उन्हें सर फ़ीरोज़शाह के साथ रह कर किसी काम में भूल करना स्वीकार है, किन्तु बिना फ़ीरोज़शाह के बिना भूल का काम करना भी स्वीकार नहीं। पार-लियामेंट के एक अँगरेज़-मेम्बर की यह राय है कि फ़ीरोज़शाह मेहता अपने गुणों के कारण किसी भी देश के राजनीतिज्ञों में सबसे ऊँचा स्थान पाने योग्य थे। श्रद्धास्पद दादाभाई नौरोजी ने सर फ़ीरोज़-शाह की राजनीतिज्ञता की बड़ी प्रशंसा की है। रानडे सदा उनकी सलाह लिया करते थे। मिस्टर तैलङ्ग ने एक समय यहाँ तक कहा था कि वे सर फ़ीरोज़शाह मेहता को अपना नेता मानते हैं। गव-र्नमेंट ने भी मेहता महाशय के गुणों के उपलक्ष्य में उन्हें, सन् १८९४ ईसवी में, सी०आई० ई० की और, सन् १९०४ में, के० सी० आई० ई० की उपाधि से विभूषित किया।

सर फ़ीरोज़शाह शिक्षा-सम्बन्धी विषयों की ओर भी विशेष ध्यान देते थे। तीस वर्ष तक वे बम्बई के विश्वविद्यालय के सदस्य (फ़ेलो) रहे। मृत्यु के समय वे उस विद्यालय के वाइस चान्सलर थे।

परन्तु काल की गति पर किसी का वश नहीं। भारतवर्ष की वर्तमान राजनैतिक दशा में सर फ़ीरोज़शाह के सदृश राष्ट्रनेताओं की मृत्यु बहुत ही दुःखजनक है। इस समय यद्यपि वे संसार में नहीं हैं, पर जो कुछ वे अपने देशवासियों के लिए कर गये हैं वह अवश्य स्थायी रहेगा। जो राजनैतिक पाठ उन्होंने अपने आचरण तथा शिक्षा द्वारा हमको पढ़ाये हैं उन्हें हम अपने हृदय से कभी दूर न कर सकेंगे।

श्यामाचरण राय।

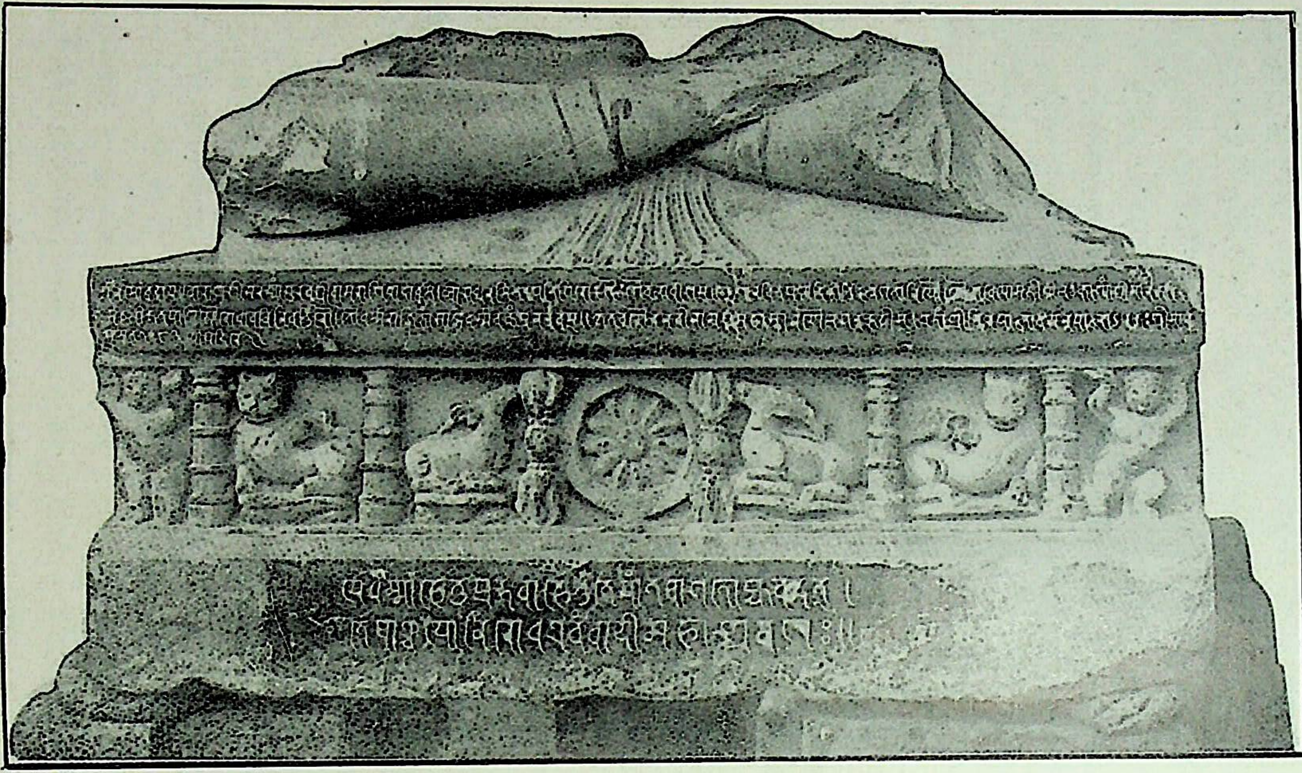
---

# मौर्य्य-साम्राज्य का लोप।

ईसा के कोई तीन सौ वर्ष पहले चन्द्रगुप्त ने मगध में मौर्य्य-साम्राज्य की प्रतिष्ठा की थी। इस वंश के राजाओं की राजधानी पाटलिपुत्र (वर्त्तमान पटना) था। इस वंश में अशोक नामक एक बड़ा ही प्रतापी राजा हो गया है। उसने बहुत दूर तक अपने राज्य का विस्तार किया था। अनेकानेक लोकोपकारी कार्य्य भी उसने किये थे। परन्तु अशोक की मृत्यु के बाद थोड़े ही दिनों में मौर्य्य-साम्राज्य नष्ट हो गया। इतने बड़े साम्राज्य के इस तरह नष्ट हो जाने का ठीक कारण आज तक विद्वान् इतिहास-लेखक निश्चित नहीं कर सके हैं। कुछ समय हुआ, महामहोपाध्याय पण्डित हरप्रसाद शास्त्री का लिखा हुआ, एशिया-टिक-सोसाइटी की पत्रिका में, इस विषय पर एक लेख निकला था। उसमें उन्होंने मौर्य्य-साम्राज्य के लोप होने का बहुत ही युक्तिसङ्गत कारण बतलाया है। उसी लेख का सारांश पाठकों के अवलोकनार्थ यहाँ प्रकाशित किया जाता है।

विन्सेंट स्मिथ साहब इसका कोई कारण निर्णय नहीं कर सके कि अशोक का इतना बड़ा साम्राज्य क्यों नष्ट हो गया। हिन्दुस्तान का प्राचीन इतिहास—नामक अपने ग्रन्थ में उन्होंने लिखा है कि सबसे पहले कलिङ्ग देश इस साम्राज्य से निकल गया। इसके बाद विदर्भ, आन्ध्र आदि प्रदेशों ने भी उसका अनुकरण किया। ग्रीक लोगों ने पञ्जाब पर अधि-कार कर लिया; इससे वह भी इस साम्राज्य से अलग हो गया। ये सब बातें ठीक हैं। तथापि यह विचार करने की बात है कि अशोक के सदृश प्रतापी सम्राट् का दृढ़ प्रतिष्ठित साम्राज्य, उसकी मृत्यु के चालीस ही पचास वर्ष बाद टुकड़े टुकड़े हो गया, इसका कारण क्या है।

इसका कारण ढूँढ़ने के लिए दूर जाने की ज़रूरत नहीं। यद्यपि अशोक किसी धर्म्म में बाध



सारनाथ में प्राप्त बुद्ध की मूर्ति का अधोभाग, दो संस्कृत-लेखों से युक्त—समय १०२६ ईसवी ।

(क) ऊपर के लेख में जीर्णोद्धार का उल्लेख है। लेख की नक़ल सारनाथ-विषयक लेख में देखिए ।

(ख) नीचे के लेख में बौद्ध-धर्म्म के तत्त्वार्थसूचक वचन हैं ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग ।

का अन्त हो गया और पुष्यमित्र ने उस पर अपना अधिकार जमा लिया। मालविकाग्निमित्र नाटक से पता लगता है कि पुष्यमित्र अपनी सेना के साथ पाटलिपुत्र ही में रहा और अपने पुत्र को उसने विदिशा (भिलसा) के सिंहासन पर बिठाया। इस विप्लव में ब्राह्मणों की साज़िश साफ़ साफ़ दिखाई देती है। इसका कारण, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, यह था कि अशोक ने अपने साम्राज्य में पशुबलि को बन्द कर दिया था। पुष्यमित्र ने सम्राट् होकर अशोक ही की राजधानी पाटलिपुत्र में अश्वमेध-यज्ञ किया। क्या इससे कथित कारण की पुष्टि नहीं होती? किसी किसी बौद्ध-ग्रन्थ में लिखा है कि पुष्यमित्र बौद्धों का विरोधी था। यह बात मिथ्या नहीं मालूम होती। पुष्यमित्र के राजा होने पर थोड़े ही दिनों में ब्राह्मणों का माहात्म्य बढ़ गया। मौर्य्य-साम्राज्य के सिवा और भी दूर दूर तक उनका प्रभाव फैला। ब्राह्मणों ने बौद्ध और जैन धर्म्म का प्रचार रोक दिया। देश की सारी विद्याओं को उन्होंने लिपिबद्ध किया और ब्राह्मण-धर्म्म को ऐसे साँचे में ढाला कि आज तक वह बना हुआ है। पुष्यमित्र के यज्ञ में पतञ्जलि ऋषि ने पुरोहित का काम किया था। पुष्यमित्र के आश्रय में रह कर ही पतञ्जलि ने महाभाष्य की रचना की थी। कण्ववंशीय राजाओं ने मनुसंहिता का संकलन कराया और उन्हीं ने रामायण और महाभारत को आधुनिक रूप मे परिणत किया। ब्राह्मण-राजवंश जिस समय राजसिंहासन पर न था उस समय भी ब्राह्मण लोग शुङ्गवंशीय राजाओं के गुरु थे। राज्यसञ्चालन में उनका भी हाथ रहता था। राज्यशासन-सम्बन्धी प्रभुता का लोप होने पर भी बहुत दिनों तक वे समाज के मुखिया थे और सारी विधि-व्यवस्था उन्हीं के द्वारा होती थी। मनुसंहिता से मालूम होता है कि अशोक ने ब्राह्मणों के जो अधिकार छीन लिये थे उनको ब्राह्मणों ने फिर से प्राप्त करके समाज में अपनी श्रेष्ठता पुनर्वार स्थापित कर दी। अशोक ने ब्राह्मणों की भूदेव-उपाधि को मिथ्या बतलाया था। परन्तु ब्राह्मणों ने अशोक के बाद पहले से भी अधिक सम्मान प्राप्त कर लिया।

अशोक ने जाति-पाँति का विचार न करके विचार-समता का नियम चलाया था। उसका जो परिणाम हुआ वह मृच्छकटिक नामक नाटक से मालूम होता है। जान पड़ता है कि इस नाटक का राजा पालक अशोक का अनुगामी था। उसके राज्य में ब्राह्मणों की बड़ी दुर्दशा थी। चारुदत्त नामक ब्राह्मण और उसके अनुचर बहुत ही दरिद्र हो गये थे। शार्वलिक नामक एक ब्राह्मण को जीविका के लिए चोरी करनी पड़ी थी। न्यायाधीश ने जिस समय चारुदत्त को स्त्री-हत्या का अपराधी ठहराया उस समय वह चारुदत्त को ब्राह्मण समझ कर उसे प्राणदण्ड देने के विषय में पशोपेश करने लगा। परन्तु राजा ने उसकी एक न सुनी। उसने चारुदत्त को फाँसी पर चढ़ा देने ही की आज्ञा दी। उसकी आज्ञा का पालन भी नहीं किया गया था कि दङ्गा उठ खड़ा हुआ। राजा सिंहासन से उतार दिया गया। चारुदत्त ने प्रधान मन्त्री का पद प्राप्त किया और शार्व्वलिक भी एक उच्च पदाधिकारी बनाया गया। इस साहित्य से यह प्रमाणित होता है कि अशोक ने ब्राह्मणों को जो अन्य वर्णवालों के बराबर करने की चेष्टा की थी उसीसे उसका साम्राज्य अधिक दिनों तक न ठहर सका।

---

## फ़ा-हियान की भारत-यात्रा।

प्राचीन भारत के इतिहास का थोड़ा बहुत पता जो हमें लगता है वह ग्रीक और चीनी यात्रियों के यात्रा-वृत्तान्त से लगता है। ग्रीस वाले इस देश में सैनिक, शासक अथवा राजदूत बन कर आते थे। इसी से उनके लेखों में अधिकतर भारतीय राजनीति, शासन-पद्धति और भौगोलिक बातों ही का उल्लेख है। उन्होंने भारतीय धर्म और शास्त्रों की छान बीन

करने की विशेष परवा नहीं की। चीनी यात्रियों का कुछ ग्रैर ही उद्देश था। वे विद्वान् थे। उन्होंने हज़ारों मील की यात्रा इस लिए की थी कि वे बौद्धों के पवित्र स्थानों का दर्शन करें, बौद्ध धर्म्म की पुस्तकें एकत्र करें ग्रैर उस भाषा को पढ़ें जिसमें वे पुस्तकें लिखी गई थीं। इन यात्राग्रों में उनको नाना प्रकार के शारीरिक क्लेश सहने पड़े; कभी वे लूटे गये, कभी वे रास्ता भूल कर भयङ्कर स्थानों में भटकते फिरे ग्रैर कभी उन्हें जंगली जानवरों का सामना करना पड़ा। परन्तु इतना सब होने पर भी वे केवल विद्या ग्रैर धर्म-प्रेम के कारण भारत-वर्ष में घूमते रहे। चीनी यात्रियों में तीन के नाम बहुत प्रसिद्ध हैं—पहला फा-हियान, दूसरा संग-यान ग्रैर तीसरा ह्वेनसांग। इन तीनों ने अपनी अपनी यात्रा का वृत्तान्त लिखा है। उसका अनुवाद अँगरेज़ी, फ़्रेंच आदि यूरप की भाषाग्रों में हो गया है। उनसे भारतीय सभ्यता का बहुत कुछ पता चलता है। प्रसिद्ध चीनी यात्रियों में फा-हियान सब से पहले भारत में आया। उसी की यात्रा का संक्षिप्त हाल नीचे लिखा जाता है—

फ़ा-हियान मध्य-चीन का निवासी था। ४०० ईसवी में वह अपने देश से भारत-यात्रा के लिए निकला। इस यात्रा से उसका मतलब बौद्ध तीर्थों के दर्शन ग्रैर बौद्ध धर्म्म की पुस्तकों का सङ्ग्रह करना था। उन दिनों चीन से भारत-वर्ष आने के दो रास्ते थे। एक रास्ता .खुतन नगर के पश्चिम से होता हुआ भारतीय सीमा पर पहुँचता था। यह रास्ता कुछ चक्कर का था। इसी से भारत ग्रैर चीन के मध्य व्यापार होता था। दूसरा रास्ता जलद्वारा जावा ग्रैर लङ्का के टापुग्रों से होकर था। यह रास्ता पहले से सीधा तो था; परन्तु पीत-समुद्र के तूफ़ानों ने इस सुगम जल-मार्ग को बड़ा भयानक बना रक्खा था। फ़ा-हियान निडर मनुष्य था। वह भारत आया तो .खुतन के रास्ते ही से, परन्तु स्वदेश को लौटा लङ्का ग्रैर जावा के रास्ते।

फ़ा-हियान के साथ ग्रैर भी कितने ही मुसा-फ़िर थे। .खुतन पहुँचने के लिए लाप नामक जङ्गल से हो कर जाना पड़ता था। इस जङ्गल में यात्रियों को बड़ा कष्ट सहना पड़ा। कोसों पानी न मिला। सूर्य्य की गरमी ने ग्रैर भी गज़ब ढाया। प्यास के मारे यात्रियों का बुरा हाल हुआ। समय समय पर रास्ता भूल जाने के कारण भी उन पर बड़ी विपत्ति पड़ी। जब वे सब किसी तरह लाब नामक झील के किनारे पहुँचे तब उनकी बड़ी बुरी दशा थी। कितने ही यात्रियों के छक्के छूट गये ग्रैर उन्होंने आगे बढ़ने का विचार छोड़ दिया। पर फ़ा-हियान ने हिम्मत न हारी। वह दो चार मित्रों सहित आगे बढ़ा ग्रैर नाना प्रकार के कष्टों को सहता हुआ, दो मास में, .खुतन पहुँचा। लोगों ने .खुतन में उनका अच्छा आदर-सत्कार किया। उस समय .खुतन एक हरा भरा बौद्ध राज्य था। इस समय .खुतन उजड़ा पड़ा है। परन्तु, हाल ही में, डाक्टर स्टीन ने उसकी पूर्व-समृद्धि के बहुत से चिह्न पाये हैं। प्राचीन महलों, स्तूपों, विहारों ग्रैर बाग़ों के न मालूम कितने चिह्न उन्हें मिले हैं। उन्होंने इस सम्बन्ध में एक पुस्तक लिखी है, जो बड़े महत्त्व की है।

.खुतन से फा-हियान काबुल आया। उस समय काबुल उत्तरीय भारत के अन्तर्गत था। काबुल से वह स्वात, गान्धार ग्रैर तक्षशिला होता हुआ पेशावर पहुँचा। पेशावर में उसने एक बड़ा ऊँचा, सुन्दर ग्रैर मज़बूत बौद्ध स्तूप देखा। सिन्धु नदी पार करके वह मथुरा आया। मथुरा का हाल वह इस प्रकार वर्णन करता है—

मथुरा में यमुना के दोनों किनारों पर बीस संघाराम हैं, जिनमें लगभग ३००० साधु रहते हैं। बौद्ध धर्म्म का .खूब प्रचार है। राजपूताना के राजा बौद्ध हैं। दक्षिण की ग्रोर जो देश है वह मध्य-देश कहलाता है। इस देश का जल-वायु न बहुत उष्ण है, न बहुत शीतल। बर्फ़ अथवा कुहरे की अधिकता नहीं है। प्रजा सुखी है। उन्हें अधिक कर नहीं देना पड़ता। शासक लोग कठोरता नहीं करते। जो

लोग भूमि जोतते और बोते हैं उन्हें अपनी पैदावार का एक निश्चित भाग राजा को देना पड़ता है। लोग अपनी इच्छा के अनुसार चाहे जहाँ आ जा सकते हैं। अपराधी को उसके अपराध के गौरव-लाघव के अनुसार भारी अथवा हलका दण्ड दिया जाता है। शारीरिक दण्ड बहुत कम दिया जाता है। बार बार विद्रोह करने पर कहीं दाहिना हाथ काटे जाने का दण्ड दिया जाता है। राजा के शरीर-रक्षकों को नियत वेतन मिलता है। देश भर में जीव-हत्या नहीं होती। चाण्डालों के अतिरिक्त कोई मद्यपान नहीं करता और न कोई लहसुन और प्याज़ ही खाता है। इस देश में कोई न तो मुर्गी ही पालता है और न बतख़ ही। पालतू पशु भी कोई नहीं बेचता। बाज़ारों में पशु-वध-शालायें अथवा मांस बेंचने की दुकानें नहीं। सौदा-सुलफ़ में कौड़ियों का व्यवहार होता है। केवल चाण्डाल ही पशु-वध करते और मांस बेचते हैं। बुद्ध भगवान् के समय से यहाँ की यह प्रथा है कि राजा, महाराजा, अमीर, उमराव और बड़े आदमी विहार-निर्माण करते हैं और उनके ख़र्च के लिए भूमि इत्यादि का दान-पत्र लिख देते हैं। पीढ़ियाँ गुज़र जाती हैं वे विहार ज्यों के त्यों विद्यमान रहते हैं। उनका ख़र्च दान दी हुई भूमि की आमदनी से चलता रहता है। उस भूमि को कोई नहीं छीनता। विहारों में रहने वाले साधुओं को वस्त्र, भोजन और बिछौना मुफ़्त मिलता है।

मथुरा से फ़ा-हियान क़न्नौज आया। यह नगर, उस समय, गुप्त-राजाओं की राजधानी था। उसने क़न्नौज के विषय में इसके सिवा और कुछ नहीं लिखा कि वहाँ दो संघाराम थे। कौशल-राज्य की प्राचीन राजधानी श्रावस्ती उजाड़ पड़ी थी। उसमें केवल दो सौ कुटुम्ब निवास करते थे। जैतवन, जहाँ भगवान् बुद्ध ने धर्मोपदेश किया था, अच्छी दशा में था। वहाँ एक सुन्दर विहार था। विहार के पास एक तालाब था, जिसका जल बड़ा निर्मल था। कई बाग़ भी थे, जिनसे विहार की शोभा बहुत बढ़ गई थी। विहार में रहने वाले साधुओं ने फ़ा-हियान का हर्ष-पूर्वक स्वागत किया और उस की इस कारण बड़ी बड़ाई की कि उस ने यात्रा धर्मप्रेम के वशीभूत हो कर की थी।

भगवान् बुद्ध के जन्म-स्थान कपिल-वस्तु की दशा, फ़ा-हियान के समय में, बुरी थी। वहाँ न कोई राजा था, न प्रजा। नगर प्रायः उजाड़ था। केवल थोड़े से साधु और दस-बीस अन्य जन वहाँ थे। कुशी-नगर भी, जहाँ भगवान् बुद्ध की मृत्यु हुई थी, बुरी दशा में था। उस वैसाली नगरी को, जहाँ बौद्ध धर्म की पुस्तकों का संग्रह करने के लिए बौद्धों का दूसरा सम्मेलन हुआ था, फ़ा-हियान ने अच्छी दशा में पाया। प्रसिद्ध पाटलिपुत्र नगर के विषय में फ़ा-हियान ने लिखा है कि उस का पुराना राज-महल बड़ा विचित्र है। उस के बनाने में बड़े बड़े पत्थरों से काम लिया गया है। मनुष्यों के हाथों से वह न बना होगा। बिना आसुरी शक्ति के कौन इतने बड़े बड़े पत्थर ऊपर चढ़ा सका होगा। अवश्य ही अशोक ने उसे असुरों द्वारा बनवाया होगा। फ़ा-हियान का कथन है कि अशोक के स्तूप के समीप ही एक सुन्दर सङ्घाराम बना हुआ है, जिस में लगभग छः सात सौ साधु रहते हैं। प्रति-वर्ष दूसरे महीने के आठवें दिन वहाँ एक उत्सव होता है। उस अवसर पर चार पहिये का एक रथ बनाया जाता है। उस रथ के ऊपर पाँच खण्ड का एक मन्दिर रक्खा जाता है। मन्दिर बाँसों का बनता है। उस के बीच में सात आठ गज़ लम्बा एक बाँस रहता है। वही उसे साधे रहता है। मन्दिर श्वेत वस्त्र से मँढ़ दिया जाता है। पर उसका पिछला भाग चटकीले रङ्गों से रँगा रहता है। सुन्दर रेशम के शामियानों के नीचे देव-मूर्तियाँ वस्त्राभूषणों से सजा कर रक्खी जाती हैं। रथ के चारों कोनों में चार ताक़ रहते हैं। उन ताक़ों में बुद्ध भगवान् की बैठी हुई मूर्ति स्थापित की जाती है। इस प्रकार के कोई बीस रथ तैयार किये जाते हैं। उत्सव के दिन बड़ी भीड़ होती है। खेल तमाशे होते हैं और मूर्तियों पर फूल आदि चढ़ा



बौद्ध काल की एक स्त्री ।



बौद्ध काल का एक मनुष्य ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग ।

यात्रियों में एक व्यापारी बड़ा सज्जन था। वह फ़ा-हियान से प्रेम करने लगा था। मल्लाहों की इस सलाह का उसने घोर प्रतिवाद किया। उसी के कारण बेचारा फ़ा-हियान किसी निर्जन टापू में छोड़ दिये जाने से बच गया। ८२ दिन की यात्रा के बाद दक्षिणी चीन के समुद्रतट पर वह सकुशल उतर गया और अपनी जन्मभूमि के पुनर्वार दर्शनों से उसने अपने को कृतकृत्य माना।

---

# विविध विषय।

## १—पुरातत्त्व-विभाग।

इस महकमे के डाइरेक्टर जनरल ने गवर्नमेंट आव् इंडिया को एक रिपोर्ट भेजी है। उसमें उन्होंने गत ५ वर्षों के काम का संक्षिप्त उल्लेख किया है। २३ आक्टोबर के गैज़ट आव् इंडिया में गवर्नमेंट ने उसे, अपने वक्तव्य के साथ, प्रकाशित कर दिया है। गवर्नमेंट ने इस महकमे के चार उद्देश बताये हैं:—

(१) हिन्दुस्तानियों को अधिक भर्ती करना
(२) अजायब-घरों की उन्नति करना
(३) पुरातत्त्व-सम्बन्धिनी खोज का काम बढ़ाना और खोज करने वालों को उत्साहित करना।
(४) पुरातत्त्व-विषयक पुस्तकों का प्रचार बढ़ाना और महकमे के बाहर के विद्वानों को पुरातत्त्व-सम्बन्धी काम करने के लिए उत्साह-प्रदान करना।

गवर्नमेंट की राय है कि इस महकमे में और भी अधिक भारतवासियों का लिया जाना बहुत ज़रूरी है। जो लोग अब तक लिये गये हैं वे बहुत अच्छा काम कर रहे हैं। पर शायद यहाँ भी, रुपये की कमी के कारण, अब तक अधिक संख्या में भारतवासी नहीं लिये जा सके। संस्कृत जानने वाले दो एक एम० ए० 'पास' पण्डितों ने इसमें प्रवेश पाने की इस साल प्रार्थना की थी। परन्तु वे सफल-मनोरथ नहीं हुए।

१८६० ईसवी में इस महकमे की नीव पड़ी थी। कोई ४० वर्ष तक तो इसने कुछ सटपट ही काम किया। १९०२ ईसवी में लार्ड कर्ज़न की कृपा से इसका जीर्णोद्धार हुआ। अफ़सरों की संख्या बढ़ाई गई। ख़र्च के लिए रुपया भी अधिक मंज़ूर हुआ। काम का ढर्रा भी निर्दिष्ट हुआ। प्राचीन इमारतों की रक्षा का काम भी इसी को सौंपा गया। तब से इस महकमे में जान सी आ गई है। अब यह धड़ल्ले के साथ काम कर रहा है। १९१४—१५ में इसने सात लाख से भी अधिक रुपया ख़र्च किया। यह ख़र्च पुरातत्त्व की खोज, पुरानी वस्तुओं की ख़रीद और पुरानी इमारतों की रक्षा में किया गया। खोज और संरक्षण ही इसके प्रधान काम हैं। अजायबघरों की स्थापना, रक्षा और उन्नति का काम भी यही करता है। अब तक पुरातत्त्व-विषयक अजायबघरों की संख्या ३९ तक पहुँच चुकी है।

इस रिपोर्ट के लेखक, डाइरेक्टर जनरल आव् आर-कियालोजी, ने गत पांच वर्ष के मुख्य मुख्य कामों का जो संक्षिप्त वर्णन किया है उसमें पाटलिपुत्र की खुदाई का भी उल्लेख है। डाक्टर स्पूनर की तरह आपकी भी राय है कि मौर्य्य नरेशों के प्रासाद अनेक अंशों में फ़ारिस के राज-कीय महलों की नक़ल पर ही बने थे।

इस महकमे में एक दोष है। यदि कहीं कोई नय शिलालेख मिलता है या कोई नया आविष्कार होता है त उसके प्रकाशन में बरसों लग जाते हैं। छपे तो वह पह इसी महकमे की पुस्तकों और रिपोर्टों में छपे। यदि गवर्नमे चाहती है कि साक्षर भारतवासी भी इस काम में योग तो उनके लिए सब तरह का सुभीता भी कर देना चाहिए माँगने पर शिलालेखों की नक़लें मिलनी चाहिए और उन विषय में जो कुछ पूछा जाय वह बताना भी चाहिए। महकमे की रिपोर्टें और सामयिक पुस्तकें देशी भाषा समाचारपत्रों को भी दी जानी चाहिए। बिना ऐसा महकमे के काम की यथेष्ट चर्चा नहो सकेगी और अँग

पढ़े लिखे कुछ ही विद्वानों को छोड़ कर औरों को इससे लाभ उठाने का मौक़ा भी न मिलेगा।

### २—कूच नामक एक प्राचीन राज्य।

एस० लीवाइ नाम के एक विद्वान् नामी पुरातत्त्ववेत्ता हैं। आपने रायल एशियाटिक सोसायटी के जरनल में एक लेख प्रकाशित कराया है। लेख बड़ा मनोरञ्जक है। उसमें आपने लिखा है कि किसी समय चीनी तुर्किस्तान (Chinese Turkestan) में भारतवासियों ही का आधिपत्य था। उनके तत्कालीन प्रभुत्व, विद्वत्त्व और कलाकौशल के चिह्न अब तक पाये जाते हैं। इस राज्य का नाम कूच (कुत्स ?) था। यह उस भूमि-भाग में था जो काशगर की राह चीन जाने वालों को बीच में पड़ता है। इस प्रान्त के वर्तमान निवासियों का धर्म्म, रहन-सहन और भाषा यद्यपि अब और की और हो गई है तथापि इनमें अब भी ऐसी अनेक बातें पाई जाती हैं जो इनके आर्य्यवंशीय होने की सूचना दे रही हैं। कूचियों की प्राचीन भाषा में पिता के लिए पातर, माता के लिए मातर, है के लिए स्ते, आठ के लिए आक्ट आदि शब्द थे। सन् ईसवी के सौ दो सौ वर्ष बीत जाने पर कूचियों ने बौद्ध धर्म्म स्वीकार कर लिया। धीरे धीरे वही उनका प्रधान धर्म्म हो गया। कूच-राज्य का सम्बन्ध खोटान या ख़ुतन से बहुत समय तक रहा। खोटान किसी समय प्रसिद्ध राज्य था और बड़ी उन्नत दशा में था। उसके साथ व्यापार-व्यवसाय करके कूच राज्य ने भी बड़ी उन्नति की। उस समय के बड़े बड़े बाज़ारों, पाठशालाओं, मन्दिरों, महलों और मठों के ध्वंसावशेष इस राज्य की पुरानी उन्नति की अब तक घोषणा दे रहे हैं। उन्हें देख कर यही कहना पड़ता है कि यह राज्य किसी समय धनसम्पन्नता और विद्या, इन दोनों बातों में बहुत बढ़ा चढ़ा था। वहाँ संस्कृत भाषा का ख़ूब अध्ययन-अध्यापन होता था। मठों में सैकड़ों-हज़ारों बौद्ध संस्कृत पढ़ते और संस्कृत ही में शास्त्रों की चर्चा करते थे। वहाँ के प्राचीन निवासियों ने अनेक संस्कृत-ग्रन्थों का अनुवाद अपनी, अर्थात् कूची, भाषा में किया। पीछे से इन लोगों ने कितने ही नये नये ग्रन्थ भी अपनी भाषा में लिखे। बौद्धों के विनयपीठक और अवदानों के आधार पर तथा उनके अनुकरण में इस प्राचीन राज्य के पण्डितों ने बहुत ग्रन्थरचना की। वहाँ वाले हीनयान सम्प्रदाय के बौद्ध थे। इन लोगों ने बौद्धों के ब्रह्मकल्प-सदृश तान्त्रिक ग्रन्थ भी लिख डाले। अनेक ग्रन्थों की रचना तो इन्होंने संस्कृत ही में की। वैद्यविद्या की पुस्तकें भी इन्होंने लिखीं। कूचियों की भाषा में लिखी गई—विरोध नामक पुस्तक लन्दन के ब्रिटिश म्यूज़ियम में सुरक्षित है। प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान् कुमारजीव कूच नगर में बहुत समय तक रहे थे। यह वही कुमारजीव हैं जिनके लिखे हुए अनेक संस्कृत-ग्रन्थों के अनुवाद चीनी भाषा में पाये जाते हैं।

### ३—शहरे-बहलोल में प्राप्त प्राचीन मूर्त्तियाँ।

पेशावर के ज़िले में होती-मरदान नाम की एक छोटी सी रियासत है। उसके पश्चिम, कोई आठ मील दूर, शहरे-बहलोल नाम का एक गाँव है। उसके पास कितने ही बहुत पुराने पुराने धुस्स और डीह हैं। कोई दो हज़ार वर्ष पहले वहाँ पर एक नगर था और क़िला भी था। बौद्धों की वहाँ विशेष बस्ती थी। अनेक विहार, स्तूप और चैत्य थे। यह कुशानवंश के राजाओं के राज्य-काल की बात है। ईसा की पाँचवीं छठी सदी में यह जगह उजड़ गई जान पड़ती है। क्योंकि ह्वेनसांग आदि चीनी परिव्राजकों ने इस स्थान का उल्लेख अपनी यात्रा-पुस्तक में नहीं किया। यहाँ ज़मीन के भीतर से सैकड़ों सुन्दर सुन्दर मूर्त्तियाँ, बहुत समय से, निकलती रही हैं। कुछ तो ऊपर ही पड़ी हुई मिली हैं। वहाँ वाले इन मूर्त्तियों को अद्भुत वस्तु समझ कर अँगरेज़ों के हाथ बेचते रहे हैं। इस स्थान की प्राचीनता को देख कर पुरातत्त्व-विभाग के स्टीन साहब ने फ़रवरी-एप्रिल १९१२ में ६ डीहों की खुदाई की। इस काम में गवर्नमेंट का चार हज़ार से ऊपर रुपया ख़र्च हुआ। १९११—१२ की आरकियोलाजिकल सर्वे रिपोर्ट में इस खुदाई का फल प्रकाशित हुआ है। उसमें प्राप्त हुई वस्तुओं के अनेक चित्र भी दिये गये हैं।

स्टीन साहब को इस खुदाई में आशातीत सफलता हुई। १२०० मूर्त्तियाँ, बर्तन और खुदे हुए पत्थर के टुकड़े इत्यादि यहाँ पर उन्हें मिले। कितनी ही बौद्धमूर्त्तियाँ तो अखण्डित दशा में प्राप्त हुईं। जो चीज़ें यहाँ पर भू-गर्भ से खोद निकाली गईं उनमें से दो मूर्त्तियाँ बड़े महत्त्व की हैं। एक मूर्त्ति तो किसी मनुष्य की है और दूसरी

किसी स्त्री की। जिनकी ये मूर्त्तियाँ हैं उन्होंने शायद इस बौद्ध-तीर्थ में कोई धार्म्मिक काम किया होगा, अथवा कुछ पुण्यदान दिया होगा, अथवा कोई इमारत बनवा दी होगी। पुरुष की मूर्त्ति की कारीगरी बहुत अच्छी है। पर, मूर्त्ति का बायाँ हाथ टूटा हुआ है। उसके दाहने हाथ में कोई चीज़ है। वह शायद कोई फल है। पर क्या है, ठीक नहीं कहा जा सकता। स्त्री की मूर्त्ति में भी दोनों हाथों में कोई चीज़ है। दो हज़ार वर्ष पहले गान्धार देश में स्त्री-पुरुष कैसे कपड़े पहनते थे, यह बात इन मूर्त्तियों से अच्छी तरह प्रकट होती है। इस दृष्टि से ये मूर्त्तियाँ बड़े मोल की हैं। इनका चित्र पाठक इसी संख्या में देखेंगे।

## ४—विश्वविद्यालय में शिक्षा पाने वाले छात्रों की संख्या।

इस देश में पहले की अपेक्षा शिक्षा का अधिक प्रचार अवश्य है। प्रारम्भिक, माध्यमिक और उच्च शिक्षालयों की संख्या भी बढ़ गई है और उनमें शिक्षा पाने वाले छात्रों की भी। इस विषय पर कई नोट सरस्वती में निकल चुके हैं। एक अभी गत संख्या में ही निकला है। सब प्रकार की शिक्षा के प्रचार में वृद्धि होने पर भी और देशों की अपेक्षा यह देश अभी बहुत पिछड़ा हुआ है। एस० एम० दीक्षित नाम के एक महाशय ने लन्दन से एक पत्र लिखा है। वह यहाँ के कई समाचारपत्रों में प्रकाशित हुआ है। उसमें उन्होंने यह दिखाया है कि अन्यान्य देशों में कितने छात्र विश्वविद्यालयों में शिक्षा पा रहे हैं, और भारतवर्ष में कितने। यह हिसाब उन्होंने एक विश्वसनीय पुस्तक के आधार पर दिया है। उसका कुछ अंश नीचे नक़ल किया जाता है। पाठक देखेंगे कि आबादी के लिहाज़ से फ़ी एक लाख मनुष्यों में कितने छात्र भिन्न भिन्न देशों के विश्वविद्यालयों में शिक्षा पाते हैं—

| | |
|---|---|
| (१) अमेरिका के संयुक्त राज्य | २८० |
| (२) स्विट्ज़रलेंड | २०१ |
| (३) फ़्रांस | १०६ |
| (४) स्पेन | ८६ |
| (५) आस्ट्रिया | ८३ |
| (६) जर्मनी | ७७ |
| (७) इँगलेंड | ७४ |
| (८) नारवे | ७१ |
| (९) इटली | ६९ |
| (१०) जापान | ६२ |
| (११) रूस | २२ |
| (१२) हिन्दुस्तान | १० |

अमेरिका में एक लाख आदमियों में से २८० छात्र विश्वविद्यालयों में पढ़ते हैं और छोटे से स्विट्ज़रलेंड में २०१। इँगलेंड में केवल ७४ छात्र इस प्रकार के विद्यालयों में अध्ययन करते हैं। पर भारत में केवल १० छात्र विश्वविद्यालयों तक पहुँच पाते हैं। अतएव कहना पड़ता है कि यहाँ अन्न-धन का ही दुर्भिक्ष नहीं, उच्च शिक्षा का भी दुर्भिक्ष है।

## ५—लड़कियों के लिए सामयिक पत्र।

स्त्री-शिक्षा का प्रचार वृद्धि पर है। देहात तक में अब लोग लड़कियों को मदरसे भेजने लगे हैं। जो नहीं भेजते और पढ़े लिखे हैं वे घर पर ही बहुधा अपनी लड़कियों और कुटुम्ब की स्त्रियों को पढ़ाते हैं। कुछ समय पूर्व एक छोटे से गाँव की एक दस वर्ष की लड़की के मुँह से हमने गोरक्षा-विषयक एक उत्तम कविता सुनी थी। यह लड़की तिलक, गोखले और सुरेन्द्रनाथ आदि के नामों से भी परिचित थी। स्त्रियों और लड़कियों के लिए जो पत्र और पत्रिकायें हिन्दी में निकलती हैं उनकी भी अब अच्छी माँग है। हमारे पास जो इस तरह की दो एक सामयिक पुस्तकें आती हैं उनकी राह पास-पड़ोस की लड़कियाँ सदा देखा करती हैं और उन्हें बड़े चाव से पढ़ती हैं। इनमें से प्रयाग के कन्या-सर्व्वस्व को वे बहुत चाहती हैं। इस पत्र को निकलते दो वर्ष हुए। इसका एक विशेष अङ्क अभी निकला है। वह आश्विन का अङ्क है। उसमें कोई १०० पृष्ठ हैं। कई चित्र भी हैं। पद्यांश अधिक है, गद्यांश कम। शिक्षा और उपदेश के सिवा मनोरञ्जन की सामग्री भी उसमें है। पद्य, पहेलियाँ और खेल कूद-विषयक लेख पढ़ कर लड़कियाँ बहुत प्रसन्न होती हैं। गृहलक्ष्मी, स्त्रीदर्पण और स्त्री-धर्म-शिक्षक नाम की भी पुस्तकें प्रयाग से निकलती हैं। ये भी स्त्रियों और लड़कियों के काम की हैं।

## ६—पनामा-प्रदर्शिनी में हिन्दुस्तानी विद्या-रसिकों की सभा।

अमेरिका में जो हिन्दुस्तानी हैं उन्हों ने एक सभा बना ली है। उसका नाम है—Hindustan Association of America. यह सभा एक मासिक पत्र भी निकालती है। उसके सितम्बर १९१५ के अङ्क से मालूम हुआ कि जिस सम्मेलन का उल्लेख गत अगस्त की सरस्वती में हुआ था वह हो गया। सम्मेलन १४, १५ और १६ अगस्त को तीन दिन तक बराबर होता रहा। कई बैठकें हुईं। अनेक लेख पढ़े गये; अनेक व्याख्यान भी हुए। अन्तिम दिन की छठी बैठक में सब कारवाई हिन्दी में हुई। हिन्दी का सौभाग्य! मदरासी, बङ्गाली, पञ्जाबी, महाराष्ट्र, गुजराती और संयुक्त-प्रान्तीय लोग हिन्दी के सिवा और किस प्रान्तीय भाषा का आश्रय लेते? १५ अगस्त को इस सम्मेलन की पाँचवीं बैठक पनामा-प्रदर्शिनी की सीमा के भीतर कैलीफ़ोर्निया-बिलडिंग नाम की इमारत में हुई। प्रदर्शिनी के अध्यक्ष मूर साहब के प्रतिनिधि भी इस बैठक में पधारे थे। आपने एक छोटी सी वक्तृता की और हिन्दुस्तान असोसियेशन के मन्त्री आइयर महाशय को एक पदक दिया। प्रदर्शिनी के सम्मेलनों के सहायक अध्यक्ष, काव्यल साहब, और कैली-फ़ोर्निया-विश्वविद्यालय के अध्यापक पोप साहब भी कुछ देर तक बोले। ग्रीस के राजदूत ने सब का स्वागत किया। विविध व्याख्यान हुए। खूब चहल-पहल रही। अन्त को जलपान हुआ। हलुवा, पकौड़ी और कचौड़ी आदि का प्रबन्ध था। परोसनेवाली श्रीमतियों ने हिन्दुस्तानी साड़ियाँ धारण की थीं। उपस्थिति कोई ६०० के लगभग थी। इस सम्मेलन के अधिवेशन के वर्णन से प्रकट होता है कि इसका अधिकांश श्रेय श्रीयुत केशवदेव शास्त्री को है। इस सम्बन्ध में एक बात मार्के की हुई। बिना सरकारी सहायता के ही पनामा-प्रदर्शिनी में हिन्दुस्तानी चीज़ों की भी एक प्रदर्शिनी हुई। उसके लिए एक अलग स्थान तैयार किया गया था। मानिक जे० भूमगारा नाम के महाशय के प्रबन्ध से यह काम हुआ।

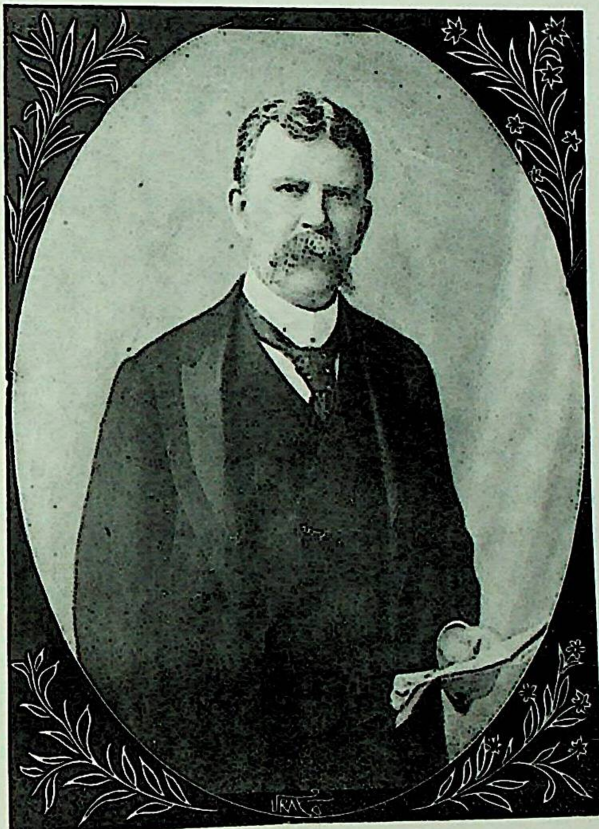
किसी तरह इन प्रवासी भारतवासियों ने अपने देश की थोड़ी बहुत चर्चा कर दी और उसकी कुछ चीज़ों के दर्शन भी करा दिये। एतदर्थ वे हमारे धन्यवाद-पात्र हैं।

## ७—कुमारी हेलन केलर (Miss Helen Keller)

योरप और अमेरिका में प्रति दिन विस्मयजनक आविष्कार हुआ करते हैं। अभी बहुत समय नहीं हुआ जब हम लोगों का खयाल था कि अन्धों, बहरों तथा गूँगों को शिक्षा देना असम्भव है। किन्तु शिक्षा का गौरव समझने वाले पूर्वोक्त देशों ने इन लोगों को पढ़ाने के लिए भी स्कूल खोल कर यह दिखा दिया कि वैसा समझना हमारा भ्रम था। यही नहीं, हाल में एक अमेरिकन अबला ने, अन्धी, बहरी तथा गूँगी होकर भी, कई प्रसिद्ध भाषाओं में उच्च शिक्षा प्राप्त करके संसार को विस्मित कर दिया है। आपका नाम कुमारी हेलन केलर है।

कुमारी हेलन केलर का जन्म उत्तरी अलबामा (Alabama) के टस्कम्बिया (Tuscumbia) नामी गाँव में, २७ जून सन् १८८० ईसवी, को हुआ था। अपने माता-पिता की पहली सन्तान होने के कारण वह उनको बहुत प्यारी थी। परन्तु दुर्भाग्यवश डेढ़ वर्ष की अवस्था में ही इस होनहार लड़की को एक भयङ्कर रोग ने आ दबाया। उसी व्याधि ने उसे आँखों और कानों के उपयोग से वञ्चित कर दिया। वह गूँगी भी हो गई। जिस प्रकार गूँगे सङ्केतों द्वारा अपने विचार दूसरों पर प्रकट करते हैं उसी प्रकार यह लड़की भी अपना काम चलाती थी। परन्तु अभी तक वह यह न समझती थी कि संसार में प्रत्येक वस्तु के लिए भिन्न भिन्न चिह्न या नाम हैं।

हेलन केलर के माता-पिता की यह हार्दिक इच्छा थी कि हम अपनी लड़की को पढ़ावें। परन्तु बहुत दिन तक कोई ऐसा शिक्षक न मिला जो इस अन्धी, बहरी तथा गूँगी कन्या को पढ़ाने का साहस करता। बहुत खोज करने पर कुमारी सलीवान (Sullivan) नाम की एक विदुषी ने यह कार्य्य स्वीकार किया। यह उसी के निरन्तर परिश्रम का फल है कि हेलन केलर कई भाषाओं में उच्च शिक्षा प्राप्त करने में सफल हुई। केलर की उम्र ७ वर्ष की थी जब कुमारी सलीवान ने उसे पढ़ाना आरम्भ किया। बाल्यावस्था में ही प्रत्येक वस्तु को छूकर उसके सम्बन्ध की सब बातें जानने के लिए केलर बड़ी उत्सुक रहा करती थी। अपने खिलौनों में एक गुड़िया को वह बहुत पसन्द करती



सर हेनरी काटन, सी० आई० ई० ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग ।

थी। कुमारी सलीवान ने एक दिन वह गुड़िया उससे छीन ली। जब वह रोने लगी तब उसके हाथ पर उँगली से कुमारी सलीवान ने Doll अर्थात् "गुड़िया" लिख दिया। इसी प्रकार दो चार बार करने पर लड़की को यह मालूम हो गया कि वह चिह्न गुड़िया ही का है। अतः जब कभी वह गुड़िया खेलना चाहती तब अपनी माँ या कुमारी सलीवान के हाथ पर Doll लिख कर सुगमता से गुड़िया पा जाती। इसी प्रकार कुमारी सलीवान ने घर की सब वस्तुओं के नामाक्षर उसे सिखा दिये। प्रति दिन इस प्रकार के नामाक्षरों की संख्या बढ़ने लगी।

इस प्रकार संज्ञा-शब्दों के अक्षर सीख जाने पर कुमारी सलीवान ने उसका ध्यान क्रियाओं की ओर खींचा। Doll (गुड़िया) Table (मेज़) इत्यादि के चिह्न या सङ्केत वह जानती ही थी। इस कारण गुड़िया माँगने पर कुमारी सलीवान ने उसके हाथ पर—Doll is on the table अर्थात्—गुड़िया मेज़ पर है—इत्यादि इत्यादि वाक्य लिखना आरम्भ किया। धीरे धीरे इस तरह के अनेक वाक्य भी हेलन केलर समझने लगी। अतः अब पढ़ाने का कार्य्य आरम्भ हुआ।

अन्धों को पढ़ाने के लिए उभड़े हुए अक्षरों की किताबें छापी जाती हैं। उनको उँगलियों से टटोल कर ये लोग पढ़ लेते हैं। ऐसी ही एक किताब केलर को भी दी गई। जिन जिन शब्दों के अक्षर वह सीख चुकी थी उनको किताब में पाकर वह बहुत प्रसन्न हुई। अतः उसे एक खेल समझ कर वह दिन भर में जो जो वस्तु पाती उसके अक्षर ढूँढ़ ढूँढ़ कर कुमारी सलीवान या अपनी माँ को दिखाती। क्रमशः वह उभड़े हुए अक्षरों और वाक्यों के भाव समझने में सफल-प्रयत्न हुई। साथ ही साथ अक्षरों का लिखना भी उसने सीख लिया।

१० वर्ष की अवस्था में वह हाथ पर लिख लिख कर बातें करने लगी। परन्तु कभी कभी अपने माता या पिता के हिलते हुए ओठों को छूकर वह यह सोचती कि मैं भी इसी प्रकार क्यों न करूँ। इस लिए वह बोलने के लिए बहुत उत्सुक हो उठी। यह देख कर कुमारी सारा फुलर* (Sara Fuller) ने हेलन केलर का हाथ अपने मुँह पर रख कर बार बार Water (पानी) का उच्चारण किया। इस पर इस बुद्धिमती बालिका ने जीभ तथा ओठों की चाल अपनी उँगलियों से ध्यानपूर्वक देखी और स्वयं दत्तचित्त होकर उसका अनुकरण करने लगी। अभ्यास से क्या नहीं हो सकता? थोड़े ही दिनों में ओंठ छू छू कर उसने अनेक शब्दों का उच्चारण सीख लिया। यहाँ तक कि अब वह व्याख्यान देती है। इसका उच्चारण हम लोगों के उच्चारण से कुछ भिन्न है।

इस प्रकार लिखना पढ़ना एवं बोलना सीख कर अँगरेज़ी, फ़्रेंच, जर्मन तथा लैटिन जैसी भाषाओं में उसने उच्च परीक्षायें पास कीं। इनके अतिरिक्त वह और भी भाषायें जानती है। देखने और सुनने की शक्ति उसकी उँगलियों में आ गई है। अपने मित्रों को, चाहे जितने समय के पश्चात् वे क्यों न मिलें, वह केवल हाथ मिला कर पहचान लेती है। जब कोई नवीन मनुष्य उससे मिलने आता है तब वह उसके मुँह पर हाथ फेर कर सदा के लिए उसे पहचान लेती है। पढ़ने लिखने के अतिरिक्त वह शतरञ्ज भी अच्छी तरह खेल सकती है।

विद्यार्थी यदुनन्दनप्रसाद मिश्र।

* यह कुमारिका गूँगों के एक स्कूल में अध्यापिका थी।

## ८—एक नामी कोशकार की मृत्यु।

अँगरेज़ी भाषा का साहित्य बहुत उन्नत दशा में है। उसमें कितने ही कोश—और बहुत बड़े बड़े कोश—विद्यमान हैं। जानसन, वरसेस्टर, वेब्स्टर आदि के लिखे हुए कोश-ग्रन्थों को देख कर उनकी महत्ता पर आश्चर्य्य होता है। अजस्र परिश्रम करने और दस दस बीस बीस साल तक काम में निरन्तर लगे रहने पर कहीं ये लोग अपने कोश लिख पाये। तिस पर भी ये कोश पूरे और विश्वसनीय नहीं समझे गये। एक निर्दोष कोश की आवश्यकता फिर भी बनी ही रही। सर जेम्स मरे नामक विद्वा[न] ने इस आवश्यकता की प्रायः पूर्ति करके, ७८ वर्ष की उ[म्र] में, २७ जूलाई १९१५ को, परलोकयात्रा की। इस को[श] का नाम है—न्यू इँगलिश डिक्शनरी, अर्थात् अँगरे[ज़ी] भाषा का नया कोश। इस कोश का काम, एक साहि[त्य] सभा ने, १८५७ ईसवी में शुरू किया था। उसके प्र[ारम्भ] से लगातार २१ वर्ष तक शब्द-संग्रह होता रहा। प्र[त्येक] शब्द के कितने अर्थ होते हैं और उन अर्थों में उसका [किस] किस ने व्यवहार किया है, यह जानने के लिए काग़ज़[ों के] अलग अलग टुकड़ों पर नामी नामी ग्रन्थकारों के ग्रन्थ[ों से] अवतरण दिये गये। इन सब काग़ज़ों का वज़न कोई

-मन हुआ ! १८७८ ईसवी में यह काम डाक्टर मरे को सिपुर्द किया गया। उन्होंने ग्रेट-ब्रिटन और अमेरिका के शिक्षित जन-समुदाय से सहायता माँगी। हज़ारों आदमियों ने उनकी प्रार्थना पर कोई दस ग्यारह लाख काग़ज़ के टुकड़ों पर शब्दों की उत्पत्ति, इतिहास और अर्थ लिख लिख कर भेजा। १५०० ईसवी के पहले की प्रत्येक पुस्तक और उसके बाद की प्रत्येक महत्त्वपूर्ण पुस्तक पढ़ कर शब्दों का संग्रह किया गया। यह सब सामग्री प्रस्तुत हो जाने पर कोश-रचना का काम शुरू हुआ। प्रधान सम्पादक सर जान मरे की सहायता के लिए कोई २० उपसम्पादक नियत हुए। तब कहीं, ३६ वर्ष में, यह काम पूरा हो सका; सो भी अभी कुछ बाक़ी है। इससे यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि विश्वसनीय और पूरा शब्द-कोश बनाना कितने श्रम, कितने धैर्य्य, कितने व्यय और कितनी विद्वत्ता का काम है।

## ९—युद्ध का पहला वर्ष—धन और जन-नाश।

गत अगस्त के आरम्भ में एक वर्ष हो गया; युद्ध बराबर जारी है। इन १२ महीनों में कितने आदमी काम आये, कितने घायल हुए और कितने क़ैद हो गये, इसका अन्दाज़ा बहुत लोगों ने लगाया है। संयुक्त-राज्य, अमेरिका, के न्यूयार्क नगर से इंडिपेंडेंट नाम का एक पत्र निकलता है। उसने भी इस जन-नाश की एक तालिका प्रकाशित की है। यह तालिका इस देश के भी पत्रों में छपी है। इसकी नक़ल नीचे दी जाती है—

| देश | मारे गये | घायल हुए | क़ैद हुए या ला-पता | टोटल |
|---|---|---|---|---|
| रूस | ८,००,००० | २०,००,००० | ८,००,००० | ३६,००,००० |
| फ़्रांस | ४,५०,००० | ८,००,००० | ३,१०,००० | १५,६०,००० |
| ग्रेट-ब्रिटन | १,२५,००० | २,५०,००० | ९०,००० | ४,६५,००० |
| बेलजियम | ५०,००० | १,६५,००० | ४५,००० | २,६०,००० |
| सरविया | ६५,००० | १,१३,००० | ५०,००० | २,२८,००० |
| मांटिनिगरो | ८,००० | १५,००० | ५,००० | २८,००० |
| इटली | ५,००० | १२,००० | २,००० | १९,००० |
| मित्र-राज्यों का टोटल | १५,०३,००० | ३३,५५,००० | १३,०२,००० | ६१,६०,००० |
| जर्मनी | ५,००,००० | ९,००,००० | २,५०,००० | १६,५०,००० |
| आस्ट्रिया-हंगरी | ३,५५,००० | ८,००,००० | २,००,००० | १३,५५,००० |
| टर्की | ५०,००० | १,००,००० | ५०,००० | २,००,००० |
| शत्रु-राज्यों का टोटल | ९,०५,००० | १८,००,००० | ५,००,००० | ३२,०५,००० |
| कुल टोटल | २४,०८,००० | ५१,५५,००० | १८,०२,००० | ९३,६५,००० |

पर इस हिसाब में भूल मालूम होती है। ख़बर भेजने वाली जितनी कम्पनियाँ हैं उनमें रूटर कम्पनी की बड़ी प्रतिष्ठा है। उसकी भेजी हुई ख़बरें बहुत विश्वसनीय समझी जाती हैं। उसका कहना है कि शत्रु-राज्यों की हानि मित्र-राज्यों की हानि से बहुत अधिक है। एक नामी पत्र के आधार पर उसने ख़बर दी है कि जर्मनी, आस्ट्रिया-हंगरी और टर्की को ८५ लाख आदमियों की हानि उठानी पड़ी है, जिसमें से ६० लाख मरे या सदा के लिए बेकार हो गये हैं।

कुछ भी हो, ऊपर के लेखे में जो हानि ग्रेट-ब्रिटन को उठानी पड़ी है उसमें अवश्य ही भूल है। क्योंकि ब्रिटिश साम्राज्य के प्रधान मन्त्री एसक्विथ साहब ने २९ आक्टोबर को पारलियामेंट में जो हिसाब पेश किया वह नीचे दिया जाता है—

| | |
|---|---|
| मारे गये | १,०३,६९२ |
| घायल हुए | ३,१७,४६५ |
| ला-पता | ७४,१७७ |
| | ४,९५,२३४ |

इसमें से पश्चिमी रणक्षेत्र में हुई जन-हानि की संख्या ३,६३,०४३ है। अवशिष्ट १,३२,२९१ की हानि अन्यान्य रणक्षेत्रों में हुई। अमेरिका के पूर्वोक्त पत्र ने ग्रेट-ब्रिटन की हानि का जो हिसाब दिया है वह, सम्भव है, बहुत पहले का हो। एसक्विथ साहब की बताई हुई हानि का हिसाब ९ आक्टोबर १९१५ तक का है।

इसमें सन्देह नहीं कि इस प्रलयङ्कर युद्ध की अग्नि में दोनों पक्षों के लाखों मनुष्य स्वाहा हो गये। अब तो इसने और भी विकराल रूप धारण किया है। भगवान् करे शीघ्र ही इसकी समाप्ति हो!

इस महायुद्ध में कितना रुपया ख़र्च हो रहा है। यह सुन कर तो आश्चर्य्य की सीमा ही नहीं रहती। १५ सितम्बर १९१५ को ब्रिटिश-साम्राज्य के प्रधान अमात्य, एसक्विथ साहब, ने हाउस आव् कामन्स (पार्लियामेंट) में कहा कि युद्ध के पहले १३ महीनों में कुछ कम १९ अरब रुपया ख़र्च हुआ है! जूलाई १५ के आरम्भ में युद्ध के ख़र्च का औसत ४३⁄४ करोड़ रुपया रोज़ था। पर सितम्बर में बढ़ कर वह ५१⁄४ करोड़ रोज़ हो गया था! इस ख़र्च के दिन पर दिन बढ़ने ही के लक्षण दिखाई दे रहे हैं। और देशों के युद्ध-ख़र्च का भी यही हाल है। कुछ समय पहले फ़्रांस का दैनिक युद्ध-ख़र्च भी कुछ कम ४१⁄२ करोड़ रुपया रोज़ था। जर्मनी और आस्ट्रिया के युद्ध-ख़र्च का ठीक ठीक हिसाब मालूम नहीं। परन्तु इन देशों का भी बहुत ख़र्च होता होगा। ग्रेट-ब्रिटन को जो इतना अधिक रुपया ख़र्च करना पड़ा है उसका कारण है। उसने अपने मित्र राष्ट्रों और अपने उपनिवेशों को बहुत सा रुपया क़र्ज़ भी दिया है। वह भी इसी युद्ध-ख़र्च में शामिल है।

## १०—सर हेनरी काटन।

हिन्दुस्तान के बहुत बड़े हितैषी सर हेनरी काटन का परलोकवास हो गया। २३ आक्टोबर को उनकी इस लोक की यात्रा समाप्त हो गई। जब तक इस देश में रहे तब तक उन्होंने भारतवासियों की हर तरह मङ्गलकामना ही नहीं की, उनके हक़ों की यथाशक्ति रक्षा भी की। जब पेन्शन लेकर आप विलायत गये तब भी आप इस देश को नहीं भूले। उसकी उन्नति के लिए लेखों द्वारा, वक्तृताओं द्वारा, पुस्तकों द्वारा और पारलियामेंट द्वारा आप लगातार चेष्टा करते ही रहे। हम लोगों की उन्नति के मार्ग में जो बाधायें हैं उन्हें दूर करने के लिए वे सदा ही तत्पर रहे। उनकी पुस्तकों से सूचित होता है कि वे भारत को उसी दृष्टि से देखते थे जिस दृष्टि से कि बड़े से बड़ा स्वदेशभक्त भारतवासी देख सकता है। उनकी राय थी कि भारतवासियों के साथ प्रेम, उदारता और समानता का व्यवहार होना चाहिए; उन्हें बड़े से बड़े पद मिलने चाहिए; उन्हें विचार-स्वातन्त्र्य का पूर्ण अधिकार होना चाहिए। और लोगों की तो बात ही नहीं, कुलियों तक के वे हितचिन्तक और पक्षपाती थे। वे न चाहते थे कि छोटे से भी छोटे भारतवासी के नागरिक अधिकार में बाधा उपस्थित की जाय। जिस समय वे आसाम के चीफ़ कमिश्नर थे उस समय वहाँ के चाय के बाग़ीचों में काम करने वाले भारतीय कुलियों के साथ अच्छा व्यवहार न किया जाता था। जब इन कुलियों के लिए क़ानून बनने लगा तब आपने कुलियों का पक्ष लिया। इस उच्च उदारता के कारण कुछ कुटिल और सङ्कीर्णहृदय महात्माओं के मुख से आपको अनेक खरी खोटी बातें सुननी पड़ीं। आपने हानियाँ सहीं, पर न्याय्य पथ से पद न हटाया।

विलायत में भी भारत का पक्ष लेने के कारण आपको न मालूम कितना त्रास सहना पड़ा। परन्तु मरते दम तक आप अपने निश्चित मार्ग से नहीं डिगे।

सर हेनरी काटन के प्रपितामह पहले पहल भारत आये। यह बात कोई डेढ़ सौ वर्ष पहले की है। इसके बाद उनके पितामह और पिता भी इस देश में बड़े बड़े ओहदों पर रहे। उनके एक पुत्र भी इस समय यहाँ सिविलियन हैं। इस तरह पाँच पुश्तों से आपके कुटुम्बीय भारत की सेवा करते आ रहे हैं। १८४५ ईसवी में मदरास प्रान्त के कुम्भकोणम् नगर में सर हेनरी काटन का जन्म हुआ। बचपनही में वे विद्याध्ययन के लिए विलायत भेजे गये। १८६७ ईसवी में वे वहाँ से सिविलियन हो कर लौटे। पहले पहल उन्हें मिदनापुर में जगह मिली। अनेक पदों पर उन्होंने काम किया। अन्त को वे आसाम के चीफ़ कमिश्नर नियत हुए। सुनते हैं, आप बङ्गाल की लफ़्टिनेंट गवर्नरी के हक़दार थे। पर वह उन्हें नहीं मिली। इस कारण खिन्न होकर उन्होंने पेन्शन ले ली।

१९०४ ईसवी में सर हेनरी काटन फिर भारत आये और बम्बई में, उस साल, नेशनल कांग्रेस के सभापति हुए। लन्दन में जो कांग्रेस कमिटी है उसमें शामिल होकर आपने बहुत कुछ काम किया। "इंडिया" नाम का पत्र जो विलायत से निकलता है वह इसी कमिटी के प्रबन्ध से निकलता है। सर हेनरी के पुत्र ही उसका सम्पादन करते हैं। चार पांच वर्ष तक सर हेनरी काटन पारलियामेंट के मेम्बर थे। इस मेम्बरी के समय में आपने भारत-सम्बन्धिनी अनेक चर्चायें पारलियामेंट में कीं। आपकी इन सब सेवाओं के उपलक्ष्य में भारत आपका बहुत ऋणी है। आपकी मृत्युवार्ता सुन कर सभी को खेद हुआ है।

सर हेनरी काटन की पुस्तकों में न्यू इंडिया नाम की पुस्तक बहुत अच्छी है। उसका हिन्दी-अनुवाद भी हो चुका है।

---

## पुस्तक-परिचय।

१—**वेणीसंहार की आलोचना।** आकार मँझोला; पृष्ठ-संख्या ८०; मूल्य ४ आने; प्राप्ति-स्थान—रामभूषण प्रेस, आगरा। भट्टनारायण का लिखा हुआ वेणीसंहार नाम का एक नाटक संस्कृत में है। उसकी बड़ी प्रसिद्धि है। नाटक वीररसात्मक है। इस देश की कितनी ही भाषाओं में उसके अनुवाद हो चुके हैं। पण्डित बदरीनाथ भट्ट, बी० ए०, ने उसी के आधार पर अपने "कुरुवनदहन" नाटक की रचना की है। प्रस्तुत "आलोचना" भी आपही की लिखी हुई है। आलोचना का ढँग बहुत अच्छा है। कवित्व-दृष्टि से भी आलोचना की गई है, नाट्य-दृष्टि से भी। किस पात्र की कौन बात प्रासङ्गिक और कौन अप्रासङ्गिक है, इस पर यथेष्ट विचार किया गया है। पात्रों के स्वभावादि के गुण दोष भी बताये गये हैं। जो बातें समयोचित, अनुकूल भावों की द्योतक और पात्रों की दशा और स्वभाव के अनुरूप हैं, उनका रहस्य भी प्रकट किया गया है। कवि की रचना का जो अंश सदोष समझा गया है उसका स्पष्ट उल्लेख कर दिया गया है—ज़रा भी मुलाहिज़ा नहीं किया गया। उदाहरण—

(१) कवि ने यहाँ भीमसेन का जो बातूनीपन दिखाया है वह और जगहों से बढ़ गया है और बुरा मालूम होता है।

(२) यह—'अभून्निमग्न' पद लाकर कवि ने श्लोक के महत्त्व को तो कम किया ही, युधिष्ठिर के चरित्र पर भी खारी और गरम पानी फेर दिया।

आलोचना की भाषा कहीं कहीं बड़ी सरस और हँसाने वाली है। नाटक के कर्त्ता भी भट्ट और आलोचक भी भट्ट। दो भट्टों का यह कृतिकौशल देखने योग्य है।

२—**श्रीमद्भगवती-भागवत।** बम्बई के सस्तुं साहित्य वर्द्धक कार्य्यालय ने कुछ बड़े बड़े ग्रन्थों के प्रकाशन का भी बीड़ा उठाया है। ऐसे दो तीन ग्रन्थों का परिचय सरस्वती की पिछली संख्याओं में दिया जा चुका है। आज एक और ग्रन्थ का परिचय देना है। यह भगवती-भागवत देवीभागवत का गुजराती-अनुवाद है। इस ग्रन्थ का दूसरा नाम देवी-भागवत है। इसमें भी श्रीमद्भागवत की तरह १२ स्कन्ध

हैं। इस मूल-ग्रन्थ के टीकाकार नीलकण्ठ ने इसे श्रीमद्-भागवत की भी अपेक्षा अधिक महत्त्व का माना है। इसका गुजराती-अनुवाद प्रकाशित हुए बहुत वर्ष हुए। बम्बई की वेद-धर्म्म-सभा ने इसे पहले पहल प्रकाशित किया था। मूल्य रक्खा था ८॥) फ़ी कापी। यह अनुवाद कालिदास गोविन्द शास्त्री से कराया गया था। इसकी पहली आवृत्ति की कापियाँ अब नहीं मिलतीं। इसी से सस्तुं साहित्य-वर्द्धक कार्य्यालय ने पूर्वोक्त वेद-धर्म्म-सभा की अनुमति से इसका दूसरा संस्करण निकाला है और मूल्य केवल २॥।) रक्खा है। इस संस्करण की पृष्ठ-संख्या एक हज़ार से कुछ ही कम है। अच्छे काग़ज़ पर मोटे और स्पष्ट टाइप में यह ग्रन्थ छपा है। प्रत्येक अध्याय के आद्यन्त के मूल संस्कृत-श्लोक भी देवनागरी टाइप में दे दिये गये हैं। इस संस्करण में एक और भी विशेषता है। मूल श्लोकों के संख्या-सूचक अङ्क भी लगा दिये गये हैं। इससे अनुवाद का मिलान मूल से करने के लिए श्लोक ढूँढ़ने में व्यर्थ परिश्रम नहीं करना पड़ता। मनोहर जिल्द बँधी हुई है। इस दिव्य ग्रन्थ को इतना सुलभ कर देने वाले पुण्य-पुरुषों को अनेक साधुवाद।

❋

३—गर्भिणी तथा गर्भ-चिकित्सा। आकार मँझोला; पृष्ठ-संख्या ९८; जिल्ददार, छपाई और काग़ज़ साधारण; मूल्य १ रुपया; लेखक, श्रीविजयकृष्ण सेन, बी० ए०, भागलपुर, से प्राप्य। इसके दो भाग हैं। पहले में गर्भस्वरूप, सूतिकागृह और शिशुपालन आदि का वर्णन है। दूसरे में चिकित्सा-वर्णन है। चिकित्सा तीन अवस्थाओं की है—गर्भावस्था की, प्रसवावस्था की और प्रसूतावस्था की। और भी कितनी ही ज्ञातव्य बातें इसमें हैं। ओषधियाँ जो बताई गई हैं, सब होमियोपैथी चिकित्सा से सम्बन्ध रखती हैं। वे सर्वत्र नहीं मिलतीं। होमियोपैथ डाक्टर प्रायः बड़े बड़े शहरों ही में रहते हैं। इस पुस्तक में बताई गई चिकित्सा यदि न भी की जा सके तो भी इसके पाठ से बहुत सी लाभदायक बातें मालूम हो सकती हैं। पुस्तक की भाषा कहीं कहीं दोषपूर्ण है। मूल्य बहुत है।

❋

४—रघुनाथ-शिकार। पण्डित अयोध्याप्रसाद वाजपेयी अवध में एक नामी कवि हो गये हैं। पण्डित चम्पारामजी मिश्र, बी० ए०, का लिखा हुआ उनका जीवन-चरित, जून १९१३ की सरस्वती में निकल चुका है। अब मिश्रजी ने उनके काव्यों के प्रकाशन का काम भी आरम्भ कर दिया है। रघुनाथ-शिकार से ही आपने श्रीगणेश किया है। इस पुस्तक में पहले तो वाजपेयीजी का जीवन-चरित है, फिर रामचन्द्र का शिकार-वर्णन। इस वर्णन में कवि ने रामचन्द्रजी की बाल्यावस्था पर बड़ी अच्छी कविता की है। कविता की अधिकांश भाषा तो पुरानी ही है, पर उक्तियाँ सरस और कहीं कहीं बड़ी अनोखी हैं। छन्द कई प्रकार के प्रयुक्त हुए हैं। इस पुस्तक में एक विशेषता है कि कवि ने उर्दू में भी कुछ कविता की है। नमूना देखिए—

> जादे कलाम से काम नहीं कछु ख़ाम नहीं इनसाफ़ इरादे।
> नाम के काज गरीबनेवाज सलामत साहिबो सीपति सादे॥
> औध प्रकाश सुपास मिजाय दिलाय कि चीज सो दाता दिलादे।
> शेष के भैया महेश अजी अजीज अवधेश के साहबजादे॥

पुस्तक का मूल्य ~)। है। छपाई और काग़ज़ साधारण है। मिलने का पता, चौबे मुरलीधर, कोठी मैनेजर कोरट, प्रतापगढ़ (अवध)

❋

५—फ़ीजी द्वीप में मेरे २१ वर्ष। पृष्ठ-संख्या १२२, मूल्य ६ आने। पण्डित तोताराम सनाढ्य की इस पुस्तक के पहले संस्करण की समालोचना हो चुकी है। यह दूसरा संस्करण है। भुक्तभोगी सनाढ्य महाशय ने जिन यन्त्रणाओं का वर्णन इसमें किया है उन्होंने भारत के हज़ारों सदय-जनों के हृदय कँपा दिये हैं। कुली-प्रथा का विरोध जितना पहले किया जाता था अब उससे कई गुना अधिक किया जा रहा है। एँड्रूज़ और पियर्सन साहब इस पुस्तक का अँगरेज़ी-अनुवाद साथ लेकर फ़ीजी द्वीप गये हैं। भारतीय कुलियों की जो दुर्दशा फ़ीजी में होती है उसे वे अपनी आँखों देखेंगे। इस कुलीगरी से भारत की शीघ्र ही रक्षा होनी चाहिए। पुस्तक मिलने का पता—भारती-भवन, फ़ीरोज़ाबाद, आगरा।

❋

६—श्रीबदरीधाम-मार्गादर्श। इस छोटी सी पुस्तक में कोई सवा सौ पृष्ठ हैं। मूल्य ४ आना है। प्रकाशक और संग्रह-कर्ता पण्डित महीधर शर्म्मा डिमरी, बदरिका-

...म, गढ़वाल को लिखने से मिलती है। बदरीनाथ की यात्रा करने वालों के सुभीते के लिए इसमें रास्ते के सभी स्थानों और चट्टियों आदि का वर्णन है। बदरीनाथ का माहात्म्य तथा और भी कितनी ही बातें हैं। यात्रियों के लिए यह पुस्तिका अवश्य ही लाभदायक है।

❋

**७—महात्मा गोखले।** आकार मध्यम; पृष्ठ-संख्या १००; मूल्य ४ आने; लेखक—पण्डित नन्दकुमार देव शर्म्मा; प्रकाशक—ओंकार-प्रेस, इलाहाबाद, से प्राप्य। इसमें गोखले का चरित विशेष विस्तार के साथ, अच्छी भाषा में, लिखा गया है और पढ़ने लायक़ है। आरम्भ में गोखले का चित्र भी है।

❋

**८—गुणस्थान-दर्पण।** आकार मध्यम; पृष्ठ-संख्या ...१; "अमूल्य"; लेखक—रतलाम-निवासी रावत शेरसिंह ...डवंशी, जैन-पाठशाला, बीकानेर को लिखने से प्राप्य। इसमें जैन-धर्म्म के अनुसार १४ गुण-स्थानों का विवेचन और उनके अवान्तर भेदों आदि का वर्णन है। इसकी भाषा लेखक महाशय की अपनी निज की हिन्दी है। उदाहरण—

"यह निर्जरा सिवा संज्ञी पञ्चेन्द्रिय के कोई नहीं कर सकता है। इस निर्जरा को बारह प्रकार के तप करके आदर की जाती है"।

जैन धर्म्म में दीक्षित लोग ही इस पुस्तक से कुछ लाभ उठा सकते हैं।

❋

**९—गाने की चन्द चीज़ें।** यह पुस्तक चार भागों में है। कुल. पृष्ठ-संख्या ८० के लगभग है। मूल्य सब का, कच्ची जिल्द में, ४½ आने है। बाबू माँगीलाल बज़ाज़, छावनी नीमच, को लिखने से ये चारों भाग मिल सकते हैं। आप ही इनके रचयिता हैं। गीतों के विषय प्रायः सामयिक हैं। लावनी, ग़ज़ल, ठुमरी, दादरा आदि में लेखक महाशय ने अच्छे विचारों के प्रचार की चेष्टा की है।

❋

**१०—प्रैक्टिकल फ़ोटोग्राफ़ी।** आकार मँझोला; पृष्ठ-संख्या १६४; मूल्य लिखा नहीं। इसे बाबू हरिगुलाम ठाकुर ने लिखा है। फ़ाइन आर्ट फ़ोटोग्राफ़िक स्टूडियो, गोरखपुर, के पते पर आपही को लिखने से यह मिलती है। हिन्दी में इस विषय की कई पुस्तकें आज तक निकल चुकी हैं। हमारे देखने में जो पुस्तकें आई हैं उन सब से यह अच्छी है। फ़ोटोग्राफ़ी से सम्बन्ध रखने वाली प्रायः सभी मुख्य मुख्य बातें इसमें हैं। यह कला सीखने की इच्छा रखने वाले इससे बहुत लाभ उठा सकते हैं। जो सीखना नहीं चाहते, किन्तु इस कला की प्रारम्भिक बातें जानना चाहते हैं, वे भी इससे अपनी कुतूहल-निवृत्ति कर सकते हैं। पुस्तक की भाषा सरल—सब के समझने योग्य—है।

❋

**११—हिन्दी-साङ्गीन-संग्रह।** इस ६४ पृष्ठों की पुस्तक में कई आधुनिक कवियों के रचे हुए पदों का संग्रह है। पदों का सम्बन्ध हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि से है। कुछ पद अच्छे हैं; शेष साधारण। मूल्य ४ आने। मिलने का पता—दामोदर प्रेस, लखनऊ

❋

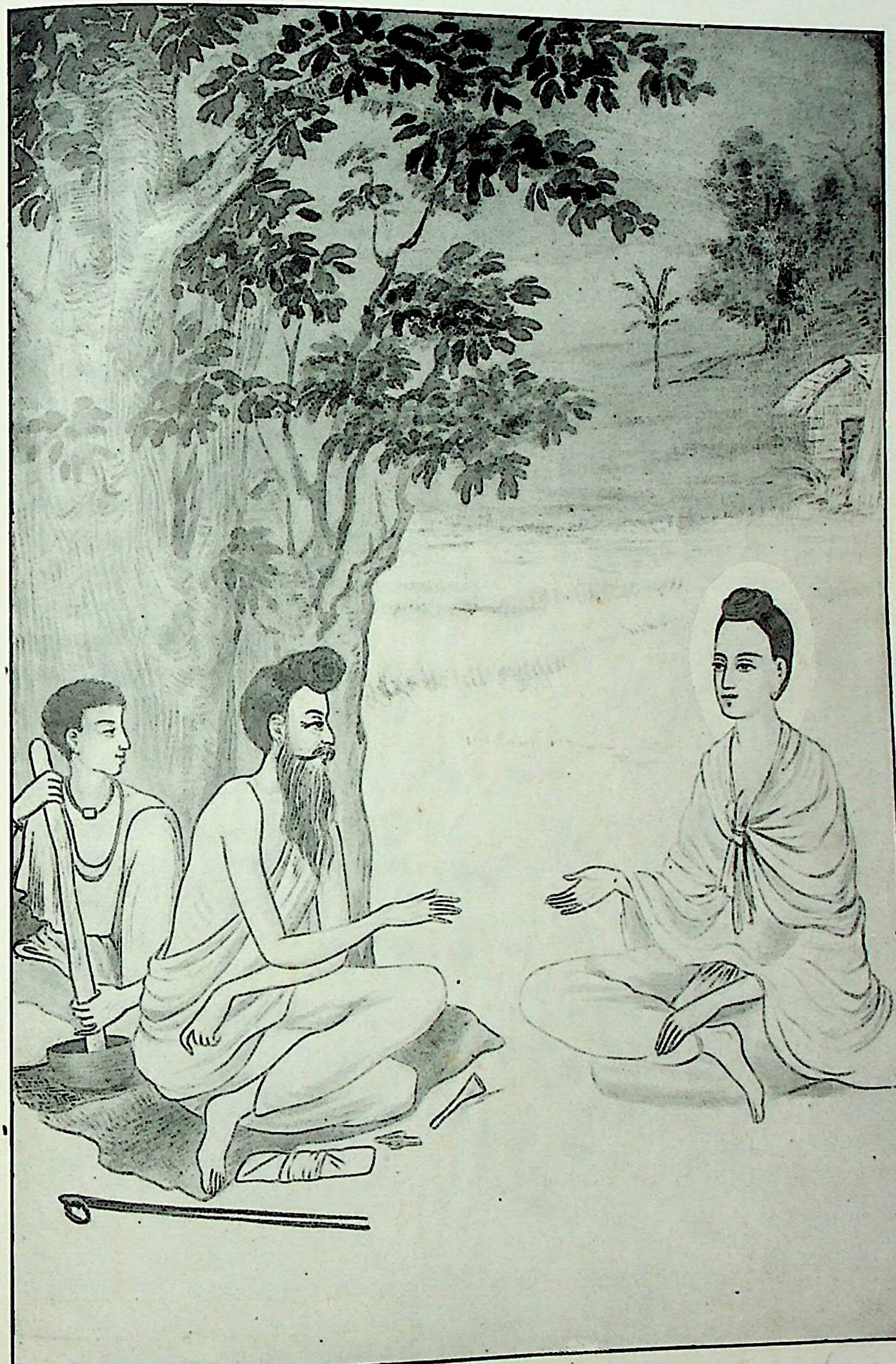
**१२—आदर्श शिक्षक।** पृष्ठ-संख्या ७१, मूल्य ४ आने, लेखक—पण्डित जगदीश झा, हेड पण्डित, स्कूल, चम्पानगर। भाषा, साहित्य, व्याकरण, भूगोल, इतिहास, गणित, विज्ञान आदि किस तरह पढ़ाना चाहिए, इसकी शिक्षा इस छोटी सी पुस्तक में है। यह अध्यापकों के काम की मालूम होती है। "हड़बड़ाहट" के कारण इसमें इतनी अशुद्धियाँ रह गई हैं कि पूरे ८ सफ़े का अशुद्धि-संशोधन-पत्र लगाना पड़ा है।

❋

**१३—नीति-पुष्पावली।** आकार मध्यम; पृष्ठ-संख्या २२३; मूल्य ६ आने; लेखक, लाला शङ्करदास साहब वर्म्मा। इसमें नैतिक, सामाजिक और शारीरिक विषयों पर निबन्ध और शिक्षायें हैं। विषय और उनके विवेचन सब उपयोगी हैं; पर भाषा, काग़ज़ और छपाई अच्छी नहीं। रामनगर (पञ्जाब) के पते पर लेखक को लिखने से यह पुस्तक मिलती है।

❋

**१४—श्राविका-सुबोध।** आकार मध्यम, पृष्ठ-संख्या १२०; मूल्य ६ आने; अनुवादक, आशालाल अमुलखशाह,



सुरत। हिन्दी में श्रावकवनिता-बोधिनी नाम की एक पुस्तक है। उसी का यह गुजराती-अनुवाद है। इसमें गृहस्थ-स्त्रियों के कर्तव्य का जैन-शास्त्र-सम्मत निरूपण है। मिलने का पता—दिगम्बर-जैन-आफ़िस, सूरत।

☀

१५—स्वामी रामतीर्थ, भाग नववा। भाषा मराठी; पृष्ठ-संख्या १५०; मूल्य १२ आने; सम्पादक, भास्कर विष्णु फड़के और रामकृष्ण वासुदेव बर्वे से प्राप्य। पता—पोस्ट माटुंगा, बम्बई। इसके पहले भागों का परिचय पूर्व-संख्याओं में दिया जा चुका है। इस भाग में सम्पादकों की प्रस्तावना के अतिरिक्त स्वामीजी के ९ व्याख्यानों का मराठी-अनुवाद है। स्वामीजी का एक चित्र भी है।

☀

१६—ए० पी०भाण्डार, बहावलपुर, की पुस्तकें। इस भाण्डार से हमें तीन पुस्तकें प्राप्त हुई हैं—(१) भानु-चरित। पृष्ठ-संख्या ५२; मूल्य ४ आने। इसमें बहावलपुर के परलोकवासी पण्डित तेजभानु शास्त्री का संक्षिप्त चरित है। शास्त्रीजी बड़े योग्य, उदाराशय, वक्ता और विद्वान् थे। थोड़ी ही उम्र में उनका शरीर छूट गया। चरित पढ़ने लायक है। (२) ऋषि-सन्तान-चिह्न। पृष्ठ-संख्या ४८; मूल्य २ आने। इसमें शिखा और यज्ञोपवीत पर शास्त्रीय और धोती बाँधने पर साधारण विचार है। पण्डित रामचरणाचार्य्य शास्त्री ने कुम्भोत्सव पर एक व्याख्यान कनखल में दिया था। यह वही है। अच्छा है। (३) समाज और हम। पृष्ठ-संख्या २८; मूल्य १ आना। महता चम्पतराय, बी० ए० ने बहावलपुर में इस नाम का एक व्याख्यान दिया था। उसी का यह पुस्तक-रूप है। विचार प्रशंसनीय हैं।

☀

नीचे जिन पुस्तकों के नाम दिये जाते हैं वे भी पहुँच गई हैं। भेजने वाले महाशयों को धन्यवाद—

(१) जां-निसार तेजा—अनुवादक, श्रीयुत प्रभुदयाल वर्म्मा, बूँदी।

(२) श्रीवीतरागस्तोत्र, हिन्दी भाषान्तर—प्रकाशक, जैन-पुस्तक-प्रचारक मण्डल, देहली।

(३) श्रीदाहिमा-महासभा के षष्ठ अधिवेशन का विवरण—प्रेषक, पं० रामकर्णजी, जोधपुर।

(४) आनन्द-गीत—संग्रहकर्ता, प्रेमदास, कराची।

(५) कृष्ण-कहानी—लेखक, विसाहूराम, धमतरी।

(६) श्रीमुकुन्दमहिमास्तोत्र
(७) श्रीभगवत्पूजाविधि
(८) वेदान्तसिद्धान्तसार
(९) केनोपनिषद्
(१०) श्रीभगवद्ध्यानम्
(११) The Decade of Nectarine Verses

} प्रेषक, श्रीनिम्बार्क पुस्तकालय, नानपारा

(१२) स्त्रीशिक्षादर्पण—लेखिका, श्रीमती पार्वती देवी देहली

(१३) अग्रजन्मादिब्राह्मणोत्पत्तिभास्करः—संग्रहकर्त्ता, पं० बटुकप्रसाद मिश्र, काशी

(१४) अरण्यबाला—लेखक, बाबू व्रजनन्दनसहाय वकील आरा

(१५) धेनुउपकारमाला—लेखक, वैष्णव मनोहरदास छाल, बिलासपुर

---

## चित्र-परिचय।

### (१)

### वियोगिनी

यह रङ्गीन चित्र एक प्रोषित-पतिका वियोगिनी स्त्री है। वियोग की दशा में साध्वी स्त्री की जो दशा होती है उसके हृदय में जैसे भावों का उदय होता है उन्हें वर्णन ठीक ठीक बताना सुकवि का और चित्र में अङ्कित करके दि अच्छे चित्रकार ही का काम है। जान पड़ता है, यह मन ही मन अपने पति को यह उलाहना दे रही है कि मैं तुम्हारे दर्शन के लिए व्याकुल हूँ, पर तुम इतने निठु कि एक पैसे के पोस्टकार्ड पर अपने कुशल-समाचार भी नहीं भेजते—

पिया गये परदेश लिखत नहिं पाती रे ।

रोय रोय भरि आवत अँखियाँ फाटत मेरी छाती रे ॥

इस चित्र का निर्माण कलकत्ते के चित्रकार बाबू रामेश्वर-प्रसाद वर्मा ने किया है ।

( २ )

### मार्गशीर्ष

दूसरा रङ्गीन चित्र मार्गशीर्ष नामक है । उसके नीचे छपे हुए केशवदास के छप्पय-छन्द के आधार पर उसकी रचना हुई है ।

( ३ )

### कुमार सिद्धार्थ का मनोरथ-कथन ।

कुमार सिद्धार्थ विरक्त हो कर और राज-पाट, स्त्री-पुत्र छोड़ कर वन वन घूमने लगे । घूमते फिरते एक तपोवन में उन्होंने एक आश्रम देखा । वहाँ उपस्थित हो कर और आश्रम-वासी मुनि को प्रणाम करके उन्होंने अपनी कथा कही । वे बोले—

> दुर्वारसंसारदवाग्नितप्तं दोधूयमानं दुरदृष्टवातैः ।
> भीतं प्रपन्नं परिपाहि मृत्योः शरण्यमन्यद्यदहं न जाने ॥

संसाररूपी दवाग्नि से जल रहा हूँ । बेहद भयभीत हूँ । आपकी शरण आया हूँ । मृत्यु से मेरी रक्षा कीजिए ।

मुनि ने अभयदान देते हुए कहा—

> मा भैष्ट विद्वंस्तव नास्त्यपायः संसारसिन्धोस्तरणेऽस्त्युपायः ।

सर एडविन आर्नल्ड की लाइट आव् एशिया ( Light of Asia ) नामक, गौतम बुद्ध के जीवन-चरित, के आधार पर चित्रकार बाबू रामेश्वरप्रसाद वर्म्मा ने इसी घटना का बोधक एक सुन्दर चित्र बनाया है । उसी का नाम है—कुमार सिद्धार्थ का मनोरथ-कथन । उसे पाठक अन्यत्र इसी संख्या में देखेंगे ।

---

Printed and published by Apurva Krishna Bose, at the Indian Press, Allahabad.